

ओशो द्वारा भगवान महावीर के समण-सुत्त पर दिए गए
62 प्रवचनो मे से 31 प्रवचनो का प्रथम सकलन।

ओशो



महावीर क्या आए जीवन में
हजारों-हजारों बहारें आ गईं

भाग : १

जिन-सूत्र

सहयोग

सकलन — मा कृष्ण प्रिया, स्वामी कृष्ण वेदात, मा प्रेम कल्पना
सपादन — स्वामी चैतन्य कीर्ति, स्वामी आनद सत्यार्थी
सयोजन — स्वामी योग अमित
साज-सज्जा — स्वामी प्रेम प्रभु
डार्करूम — स्वामी आनद अगम
टाइपिग — मा आनद भगवती, स्वामी आनद प्रभु,
मा देव साम्या, मा कृष्ण लीला
पेज मेकिग — स्वामी प्रेम राजेद्र
फोटोटाइपसेटिग — ताओ पब्लिशिग प्रा लि ,
50 कोरेगाव पार्क, पूना
मुद्रक — टाटा प्रेस लिमिटेड, बबई
प्रकाशक — रेबल पब्लिशिग हाउस प्रा लि ,
50 कोरेगाव पार्क, पूना

विशेष राजसस्करण — जुलाई 1993
प्रतिया — 3000

एक निमंत्रण

ओशो के प्रवचनो की भूमिका लिखने का मै अपने आपको अधिकारी पात्र नही समझता हू, क्योकि केवल एक सबुद्ध ही दूसरे सबुद्ध के सबध मे कुछ कहने और लिखने का अधिकारी है, जैसा कि भगवान महावीर तथा उनके जिन-सूत्रो पर आज पुन पच्चीस सौ वर्ष के उपरात ओशो ने अपने प्रवचनो के माध्यम से उनके सत्य का उदघाटन किया है। वही सम्यक है।

भगवान महावीर के सबध मे ओशो कहते है

" महावीर से ज्यादा सुदर, महिमामडित परमात्मा की कोई और छवि देखी है? महावीर से ज्यादा आलोकित, विभामय कोई और विभूति देखी है? कहीं और देखा है ऐसा ऐश्वर्य जैसा महावीर मे प्रगट हुआ? जैसी मस्ती और जैसा आनद, और जैसा सगीत इस आदमी के पास बजा, कही और सुना है? कृष्ण को तो बासुरी लेनी पड़ती है, तब बजता है सगीत, महावीर के पास बिना बासुरी बजा है। मीरा को तो नाचना पड़ता है, तब बजता है सगीत। कोई सहारा न लिया—वीणा का भी नही, नृत्य का भी नहीं, बासुरी का भी नहीं। कृष्ण तो सुदर लगते है—मोर-मुकुट बाधे है। महावीर के पास तो सौदर्य के लिए कोई सहारा नहीं—बेसहारे। निरालब। लेकिन कही और देखा है परमात्मा का ऐसा आविष्कार? जीवन की ऐसी प्रगाढ़ता। ऐसा घना आनद।"

ऐसे अनूठे महावीर के जिन-सूत्रो पर प्रवचनो के माध्यम से ओशो जिन-साधना के लिए हमे निमंत्रण दे रहे है। इस साधना मे अनत उतार-चढ़ाव आएंगे, अनेक भटकाव भी आ सकते है। ओशो के ये अमृत-प्रवचन अतिम घड़ी तक, यात्रा की अतिम कड़ी तक हमारे लिए पाथेय है।

यशस्वी कवि श्री हरिवशराय बच्चन की कुछ पक्तिया है—

पोत अगणित इन तरगो ने
डुबाए, मानता मै
पार भी पहुचे बहुत से
बात यह भी जानता मै
कितु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे
पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मै
डूबता मै, कितु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा
हो युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन
तीर पर कैसे रुकू मै
आज लहरो मे निमत्रण।

ओशो कहते है "महावीर दूर अनत के सागर की लहरो का निमत्रण है। और निमत्रण ही नही, उस दूर के सागर तक पहुचने का एक-एक कदम भी स्पष्ट कर गए है। महावीर ने अध्यात्म के विज्ञान मे कुछ भी अधूरा नहीं छोडा है, खाली जगह नही है। नक्शा पूरा है। एक-एक इच भूमि को ठीक से माप गए है, और जगह-जगह मील के पत्थर खड़े कर गए है।

"महावीर के निमत्रण को अनुभव करो। उनकी पुकार को सुनो। ऐसे खाली नाम मात्र को जैन हो कर बैठे रहने से कुछ भी न होगा। ऐसी नपुसक स्थिति से कुछ लाभ नही। उठो। अपने को जगाओ। बहुत बड़ी सभावना तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। खतरा है। इसलिए महावीर कहते है अभय। साहस चाहिए।

"सुनो इस निमत्रण को। करो हिम्मत। चलो थोड़े कदम महावीर के साथ। थोड़े ही कदम चलकर तुम पाओगे कि जीवन की रसधार बहने लगेगी। थोडे ही कदम चलकर तुम पाओगे, सपदा करीब आने लगेगी। आने लगी शीतल हवाए—शाति की, मुक्ति की। फिर तुम रुक न पाओगे। फिर तुम्हे कोई भी रोक न सकेगा। थोडा लेकिन स्वाद जरूरी है। दो कदम चलो, स्वाद मिल जाए, फिर तुम अपने स्वाद के बल ही चल पड़ोगे।"

कहा ले जाना चाहते है महावीर हमे? ओशो कहते है "महावीर तुम्हे वहा ले जाना चाहते है जहा न कोई विचार रह जाता, न कोई भाव रह जाता, न कोई चाह रह जाती, न कोई परमात्मा रह जाता—जहा बस तुम एकात, अकेले, अपनी परिपूर्ण शुद्धता मे बच रहते हो। निर्धूम जलती है तुम्हारी चेतना।

"महावीर ने आत्मा की जैसी महिमा का गुणगान किया है, किसी ने भी नही किया। महावीर ने सारे परमात्मा को आत्मा मे उडेल दिया है। महावीर ने मनुष्य को जैसी महिमा दी है और किसी ने भी नही दी। महावीर ने मनुष्य को सर्वोत्तम, सबस ऊपर रखा है।"

ओशो की यह विशेषता है कि जब वे किसी आध्यात्मिक व्यक्ति के बारे मे बोलते है तब वे शब्द के पार सीधे उस व्यक्ति की आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते है। यह कार्य कोई ऊर्ध्व-चेतना सपन्न व्यक्ति ही कर सकता है। और ओशो जन्मो-जन्मो की साधना के बाद उस चेतना को उपलब्ध हुए है। ओशो ने वह कुजी प्राप्त कर ली है जिसस महावीर, बुद्ध, कृष्ण, ईसा, मोहम्मद, जरथुस्त्र इत्यादि की महाचतना के ताले खोले जा सकते है।

यह हमारे युग का सौभाग्य है कि हमे ओशो का सान्निध्य प्राप्त हुआ है।

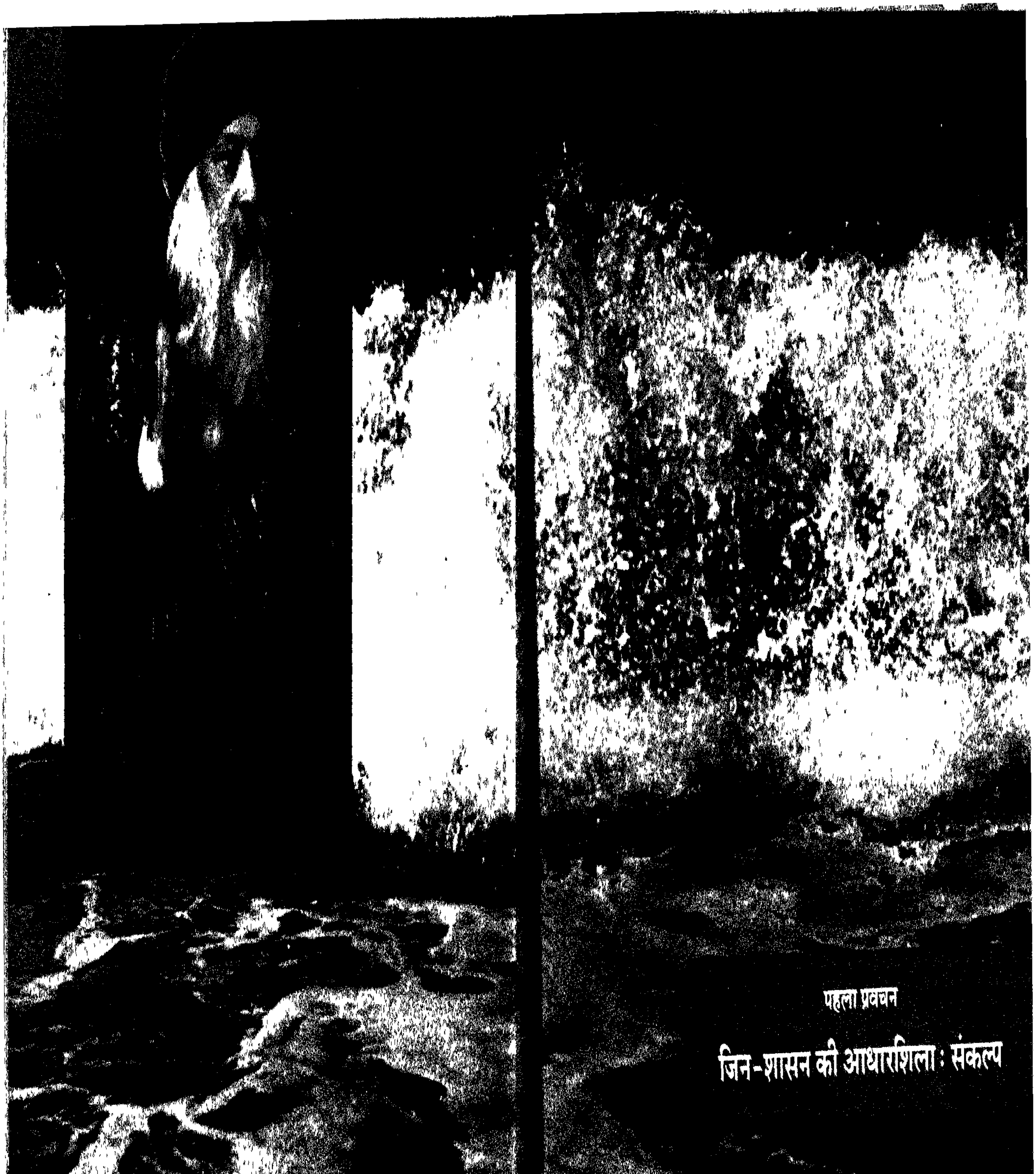
महेंद्र कुमार 'मानव'

श्री महेद्र कुमार 'मानव' हिदी भाषा के यशस्वी कवि एव लेखक होने के साथ ही साथ सपादक, समाज-सेवी एव स्वतत्रता सग्राम सेनानी भी है। श्री मानव विध्यप्रदेश के वित्त एव समाज सेवा मत्री तथा म प्र विधान सभा के सदस्य रहे है।

आपकी प्रकाशित पुस्तको मे 'मनुष्य की गध मुझे आती है' काव्य-सग्रह तथा प कन्हैयालाल मुशी की गुजराती पुस्तक का हिदी अनुवाद 'नवलिकाओ' विशेष उल्लेखनीय है। सप्रति श्री मानव 'दि पचायत राज' साप्ताहिक के प्रधान सपादक है तथा इडो-जर्मन फ्रेडशिप एसोसिएशन, इडियन फेडरेशन आफ स्माल एड मीडियम न्यूज पेपर्स, स्वामी प्रणवानद सरस्वती लिटरेचर ट्रस्ट आफ इडिया, आल इडिया फ्रीडम फाइटर्स आर्गनाइजेशन आदि विभिन्न सस्थाओ के विशिष्ट पदो पर अपनी सेवाए प्रदान कर रहे है।

अनुक्रम





पहला प्रवचन

जिन-शासन की आधारशिला : संकल्प

सूत्र

जं इच्छसि अप्पणतो, ज च न इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि या, एत्तियगं जिणसासणं।।१।।

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए।
कि नाम होज्ज तं कम्मय, जेणाऽह दुग्गइ न गच्छेजा।।२।।

खणामित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा।।३।।

सुट्ठुवि मग्गिज्जंतो, कत्थवि केलीइ नत्थि जह सारो।
इंदिअविसएसु तहा, नत्थि सुहं सुट्ठु वि गविट्ठु।।४।।

जह कच्छुल्लो कच्छुं, कडयमाणो दुहं मुणइ सुक्खं।
मोहाउरा मणुस्सा, तह कामदुह सुहं विंति।।५।।

वेद कहते है, परमात्मा अकेला था। एकाकीपन उसे खला, अकेलेपन से ऊबा। सोचा उसने, बहुत हो जाऊ। फिर उसने बहुत रूप धरे। ऐसे ससार निर्मित हुआ। सृष्टि की यह कथा है।

स एकाकी न रेमे, एकोऽह बहुस्याम्।

अकेला वह ऊबने लगा। सोचा बहुत रूपो को सृजू, बहुत रूपो मे रमू।

ब्राह्मण-सस्कृति इसी सूत्र का विस्तार है—परमात्मा का अवतरण, परमात्मा का फैलाव। ब्रह्म शब्द का यही अर्थ है जो फैलता चला जाए, जो बहुत रूप धरे, जो बहुत लीला करे, जो अनेक-अनेक ढगो से अभिव्यक्त हो, सागर जैसे अनत-अनत लहरो मे विभाजित हो जाए।

एक अनेक बनता है, एक अनेक मे उत्सव मनाता है। एक अनेक मे डूबता है, स्वप्न देखता है। माया सर्जित होती है।

ससार परमात्मा का स्वप्न है। ससार परमात्मा के गहन मे उठी विचार की तरगें है।

ब्राह्मण-सस्कृति ने परमात्मा के इस फैलाव के अनूठे गीत गाए। उससे भक्ति-शास्त्र का जन्म हुआ। भक्ति-शास्त्र का अर्थ है. परमात्मा का यह फैलता हुआ रूप, अहोभाग्य है। परमात्मा का यह फैलता हुआ रूप परम आनद है। इसलिए भक्ति मे रस है, फैलाव है। एक शब्द मे कहे तो महावीर का जो बचपन का नाम है, वह ब्राह्मण-संस्कृति का सूचक है। महावीर का बचपन का नाम था वर्द्धमान—जो फैले, जो विकासमान हो। फिर महावीर को दूसरी ऊर्जा का, दूसरे अनुभव का, दूसरे साक्षात का सूत्रपात हुआ। वह ठीक वेद से उलटा है।

वेद कहते है, वह अकेला था, ऊबा, उसने बहुत को रचा। महावीर बहुत से ऊब गए, भीड से थक गए और उन्होने चाहा, अकेला हो जाऊ। परमात्मा का उतरना ससार मे, फैलना और महावीर का लौटना वापिस परमात्मा मे। इसलिए श्रमण-सस्कृति के पास अवतार जैसा कोई शब्द नहीं है। तीर्थंकर। अवतार का अर्थ है परमात्मा उतरे, अवतरित हो। तीर्थंकर का अर्थ है उस पार जाए, इस पार को छोड़े। अवतार का अर्थ है उस पार से इस पार आए। तीर्थंकर का अर्थ है घाट बनाए इस पार से उस पार जाने का। ससार कैसे तिरोहित हो जाए, स्वप्न कैसे बद हो, भीड़ कैसे विदा हो, फिर हम अकेले कैसे हो जाए—वही श्रमण-सस्कृति का आधार है। वर्द्धमान कैसे महावीर बने, फैलाव कैसे रुके, क्योकि जो फैलता चला जा रहा है उसका कोई अत नहीं है। वह पसारा बड़ा है। वह कहीं समाप्त न होगा। स्वप्न फैलते ही चले जाएगे, फैलते ही चले जाएगे—और हम उनमे खोते ही चले जाएगे। जागना होगा।

भक्ति-शास्त्र ने परमात्मा के इस ससार के अनेक-अनेक रूपो के गीत गाए, महावीर ने इस फैलती हुई ऊर्जा से सघर्ष किया—इसलिए 'महावीर' नाम—लड़े, धारा के उलटे बहे।

गगा बहती है गगोत्री से गगासागर तक—ऐसी ब्राह्मण-सस्कृति है। ब्राह्मण-सस्कृति का सूत्र है समर्पण, छोड दो उसके हाथ मे, जहा वह जा रहा है, चले चलो, भरोसा करो, शरणागति।

महावीर की सारी चेष्टा ऐसी है जैसे गगा गगोत्री की तरफ बहे—मूलस्रोत की तरफ, उत्स की तरफ। लडो। दुस्साहस करो—सघर्ष, समर्पण नहीं। महान सघर्ष से गुजरना होगा, क्योकि धारा को उलटा ले जाना है, विपरीत ले जाना है।

धारा का अर्थ है जाए गगोत्री से गगा सागर की तरफ। धारा को उलटा करना है—राधा बनाना है। गगा चले, बहे उलटी, ऊपर की तरफ, पानी पहाड चढे। मूल उदगम को खोज हो।

ब्राह्मण-सस्कृति आधी है। श्रमण-सस्कृति भी आधी है। दोनो से मिलकर पूरा वर्तुल निर्मित होता है। और इसलिए इस देश मे ब्राह्मण और श्रमणो के बीच जो सघर्ष चला, उसने दोनो को पगु किया। तब ब्राह्मणो के पास फैलने के सूत्र रह गए, श्रमणो के पास सिकुड़ने के सूत्र रह गए। दोनो ही अधूरे हो गए, सत्य आधा-आधा कट गया। मेरे देखे, जहा ब्राह्मण और श्रमण राजी होते है, सहमत होते है, मिल जाते है, वही परिपूर्ण धर्म का आविर्भाव होता है।

निश्चित ही परमात्मा थक गया अकेलेपन से, बहुत रूप उसने धरे, लेकिन फिर बहुत रूप से भी तो थकेगा, फिर विश्राम भी तो मागेगा। इसलिए महावीर के वचन वेद-विरोधी मालूम होगे, क्योकि वेद बह रहा है गगोत्री से गगासागर की तरफ। इसलिए हिंदुओ ने समझा कि महावीर वेद-विरोधी है—प्रतीत होते है। परमात्मा अपने घर वापिस लौटने लगा। ऊब गया बाजार से, देख ली भीड़-भाड, बहुत रूप धर लिये, थक गया उनसे भी। उसने फिर कहा, अब हो गया बहुत अनेक, अब एक होना चाहता हू। इसलिए महावीर के पास एक शब्द है जो बडा बहुमूल्य है। महावीर ने कहा, मनुष्य बहुचित्तवान है, बहुत-बहुत खडो मे विभाजित है—उसे एक होना है। बहुत रूपो मे बटा है—उसे सगृहीत होना है। इस सगृहीत चैतन्य का नाम ही महावीर की भाषा मे परमात्मा है। वर्द्धमान को महावीर होना है। फैलते को वापिस लौटना है, क्योकि सब फैलाव कामना का है। परमात्मा भी फैला ससार मे कामना से। कामना ही फैलती है। तो जिसे मुक्त होना है, उसे सिकुडना होगा। उसे मूल स्वभाव मे लौट आना होगा।

परमात्मा उतरा है, हिंदू विचार मे—अवतरण हुआ। महावीर कहते है, ऊर्ध्वगमन, वापिस लौटना है घर, देख लिया ससार।

इसलिए महावीर के सूत्र भक्ति-सूत्र से बिलकुल विपरीत मालूम होगे। घबड़ाना मत। श्रवण और ब्राह्मण मिलकर ही पूर्ण सस्कृति का जन्म होता है। नही हो पाया ऐसा, होना चाहिए था। अब भी कुछ देर नही हुई, हो सकता है। जहा नारद और वर्द्धमान महावीर राजी हो जाते है, वहा पूर्ण वर्तुल पैदा होता है।

पर महावीर की भाषा सघर्ष की है। महावीर के पास शरणागति जैसा कोई शब्द ही नही है। महावीर कहते है, अशरण-भावना। किसी की शरण मत जाना। अपनी ही शरण लौटना है। घर जाना है। किसी का सहारा मत पकड़ना। सहारे से तो दूसरा हो जाएगा। सहारे मे तो दूसरा महत्वपूर्ण हो जाएगा। नही, दूसरे को तो त्यागना है, छोडना है, भूलना है। बस एक ही याद रह जाए, जो अपना स्वभाव है, जो अपना स्वरूप है—इसलिए कोई शरणागति नहीं।

महावीर गुरु नही है। महावीर कल्याणमित्र है। वे कहते है, मै कुछ कहता हू, उसे समझ लो, मेरे सहारे लेने की जरूरत नहीं है। मेरी शरण आने से तुम मुक्त न हो जाओगे। मेरी शरण आने से तो नया बधन निर्मित होगा, क्योकि दो बने रहेगे। भक्त और भगवान बना रहेगा। शिष्य और गुरु बना रहेगा। नही, दो को तो मिटाना है।

इसलिए महावीर ने भगवान शब्द का उपयोग ही नहीं किया। कहा कि भक्त ही भगवान हो जाता है।

इसे समझना। विपरीत दिखाई पडते हुए भी ये बाते विपरीत नही है।

नारद कहते है, भक्त भगवान मे लीन हो जाता है। भगवान ही बचता है, भक्त खो जाता है। महावीर कहते है, भक्त जाग जाता है अपनी परिपूर्णता मे, भगवान खो जाता है, भक्त मे लीन हो जाता है। भक्त ने पहचान लिया अपना स्वरूप—भगवान हो गया। स्वरूप को पहचान लेना भगवत्ता है। इसलिए महावीर के धर्म मे भगवान नहीं है, शरणागति नहीं है। शरण जाने को ही कोई नहीं है, जिसकी शरण चले जाओ। कोई प्रार्थना नहीं, कोई पूजा नहीं—हो नहीं सकती, क्योकि पूजा मे तो दूसरा जरूरी होगा। 'पर' चाहिए पूजा को।

महावीर की भाषा ध्यान की है, पूजा की नहीं। और ध्यान और प्रार्थना मे यही फर्क है। प्रार्थना मे दूसरा चाहिए। ध्यान मे दूसरे को मिटाना है, भुलाना है। इस तरह भुला देना है कि बस अकेले तुम ही बचो, शुद्ध चैतन्य बचे, दूसरे की रेखा भी न रहे, छाया

भी न पड़े। पर दोनो ही रास्तो से वहीं पहुचना हो जाता है। जो समर्पण से बहते है, जो धारा बनते है, आखिर सागर से बादलो पर चढ़ कर गगोत्री पहुच ही जाते है। उन्होने सुगम मार्ग चुना।

नारद की यात्रा बड़ी सरल है। महावीर की यात्रा बड़ी कठिन है। इसीलिए तो 'महावीर'! वह योद्धा का मार्ग है, प्रेमी का नहीं, सघर्ष का। लेकिन कुछ है जिनके लिए वही स्वाभाविक है। इसलिए अपने भीतर देखना। इसकी फिक्र मत करना कि किस घर मे पैदा हुए। वह तो सायोगिक है। जैन घर मे पैदा हुए कि हिदू घर मे कि मुसलमान घर मे कि ईसाई घर मे, वह तो सायोगिक है। अपने जीवन की अतर्दशा समझना। योद्धा बनने की रुझान है? योद्धा बनने की तरफ सहज प्रवाह है? योद्धा होने मे लगता है स्वरूप खिलेगा? तो योद्धा बनना। तो फिर महावीर के पीछे चलना। और लगे कि लडना अपने से न होगा, वह अपनी भाषा नही है, लगे कि समर्पण ही उचित है, तो फिर नारद को चुन लेना।

नारद एक छोर है, महावीर दूसरे छोर है। और कही न कही नारद और महावीर के बीच सारे महापुरुष है—बुद्ध हो, कृष्ण हो, राम हो, मुहम्मद हो, जरथुस्त्र हो, जीसस हो—महावीर और नारद के बीच कही न कहीं। लेकिन महावीर और नारद परम छोर है। और इसलिए जैसा नारद ने भक्ति को उसकी परम प्रगाढ़ता मे प्रगट किया है, शरणागति को आखिरी रूप दिया, आखिरी परिभाषा दे दी—उसके पार परिष्कार सभव नही है—वैसे महावीर ने सघर्ष को आखिरी रूप दिया है। अब उसको और ऊपर उठाने का कोई उपाय नही है। महावीर ने आखिरी बात कह दी है संघर्ष के रास्ते पर। चुनाव तुम्हे यह नही करना है कि कौन ठीक है। दोनो ठीक है। चुनाव तुम्हे यह करना है कि कौन हमें जचता है।

फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे
पर हमे उनमे तुम्हीं भाए बहुत।

—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कितने फूल खिले।

फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे।

चपा है, चमेली है, जूही है, केतकी है, गुलाब है, कमल है।

फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे
पर हमे उनमे तुम्हीं भाए बहुत।

फिर तुम्हे जो भा जाए वही तुम्हारा फूल है। तुम्हे कमल भा जाए, तुम्हारे बेटे को गुलाब भा जाए, तो झगड़ा मत करना। जो तुम्हे भा जाए, वही तुम्हारे लिए मार्ग है।

लोग अकसर उलटा करते है। लोग सोचते है, 'कौन ठीक?' गलत प्रश्न उठा लिया। 'महावीर ठीक कि नारद ठीक?'—तुमने प्रश्न ही गलत पूछ लिया। यही पूछो, कौन जचता है। ठीक-गलत, तुम कैसे निर्णय करोगे? उस परम की बाते, वे ही जाने जो परम को उपलब्ध हुए है। तुम तो इतना ही तय कर लो, कौन-सा तुमको जचता है, कौन-सा तुम्हारे मन को भा जाता है।

मै, अगर मुझसे पूछो, तो कहूगा, सभी ठीक। लेकिन सभी ठीक से तो हल न होगा। क्योकि सभी रास्तो पर तो तुम चल न सकोगे। द्वार तो तुम्हे चुनना ही होगा। सभी द्वार उसी के मदिर के है। लेकिन फिर भी तुम एक ही द्वार से गुजर सकोगे, सभी द्वारो से न गुजर सकोगे। सभी द्वारो से गुजरने मे तो तुम बड़ी मुश्किल मे पड़ जाओगे। एक पैर एक द्वार मे डाल दोगे, एक हाथ दूसरे द्वार मे डाल दोगे—तुम अटक जाओगे। एक से ज्यादा द्वार चुन लिये तो द्वार पहुचाएगे न, अटकाएगे। तुम अपना द्वार चुन लेना। तुम अपना फूल चुन लेना। तुम अपनी रुझान को पहचानो। तुम्हे जो भा जाए वही सत्य है। जो तुम्हारे काम आ जाए वही सत्य है। जो द्वार तुम्हे पहुचा दे वही गुरुद्वारा है। पहुचकर तो तुम भी पाओगे, अरे। सभी द्वार यही आ गए। पहुचकर तो तुम मिलोगे उनसे जो दूसरे द्वारो से आते थे और दुश्मन मालूम पडते थे। क्योकि मैने तो उस मदिर मे महावीर और नारद को आलिगन करते देखा है। लेकिन तुम चुन लेना। तुम्हारा चुनाव यह न हो कि कौन ठीक है। वह तो बात ही अभद्र हो गई। तुम्हारा चुनाव तो बस इतना हो

फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे
पर हमे उनमे तुम्ही भाए बहुत।
जब देखिए कुछ और ही आलम है तुम्हारा
हर बार अजब रग है, हर बार अजब रूप।

बहुत रूपो मे सत्य प्रगट हुआ है। बहुत रगो मे, बहुत ढगो मे प्रगट हुआ है। और हर बार जब प्रगट हुआ है तो अजब ही। तो बड़ा आश्चर्यचकित करनेवाला है, अवाक कर जानेवाला है। नारद को समझोगे, अवाक रह जाओगे। महावीर को समझोगे, ठगे रह जाओगे।

जब देखिए कुछ और ही आलम है तुम्हारा
हर बार अजब रग है, हर बार अजब रूप

मगर ये रूप सब एक के ही है। यह यात्रा एक ही है।

ईसाइयत कहती है, अदम को परमात्मा ने स्वर्ग से बहिष्कृत किया। निकाला स्वर्ग के राज्य से, क्योंकि आज्ञा उसने न मानी थी, अनाज्ञाकारी था। फिर जीसस ने आज्ञा मानी। जीसस वापिस समारोहपूर्वक स्वर्ग मे प्रविष्ट हुए। जिसे अदम मे निकाला था, वही जीसस मे लौटा। अदम पहला आदमी है, जीसस आखिरी आदमी है। अदम ससार की तरफ यात्रा है—धारा। जीसस ससार से विपरीत यात्रा है—राधा।

यहूदियो की कथाए थोड़ी कठोर है। पूरब मे लोग ज्यादा कोमल भाषा बोलते है।

यहूदी कहते है, परमात्मा ने बहिष्कृत किया अदम को। हम ऐसा नही कहते। हम कहते है, स एकाकी न रेमे। वह अकेला था। एकोऽहं बहुस्याम। उसने कहा, बहुत को रचू। बहिष्कृत नहीं हुआ, अवतरित हुआ। आया, मर्जी से आया।

और इसे भी समझ लेना जरूरी है। तुम जहा हो, अपनी मर्जी से हो। ससार मे हो तो अपनी मर्जी से हो। तुम्हारे भीतर के परमात्मा ने यही चुना। कुछ परेशान होने की बात नही। बेमर्जी से तुम नहीं हो। अपने ही कारण हो। अपनी ही आकाक्षा से हो। और यह बड़े सौभाग्य की बात है कि बेमर्जी से नहीं हो। क्योंकि जिस दिन चाहो, उसी दिन घर का द्वार खुला है, लौट आ सकते हो। जब तक चाहो, जा सकते हो दूर। जिस दिन निर्णय करोगे, उसी दिन लौटना शुरू हो जाएगा।

ब्राह्मण-सस्कृति परमात्मा के फैलाव की कथा है। श्रमण-सस्कृति परमात्मा के घर लौटने की कथा है। तो निश्चित ही, जो अकेले मे थक गया था, वह भीड़ मे भी थक ही जाएगा।

तुमने अपने भीतर भी देखा। यही होता है। बाजार मे थक जाते हो, मदिर की आकाक्षा पैदा होती है। भीड़ मे ऊब जाते हो, बस्ती से ऊब जाते हो, हिमालय जाने की आकाक्षा पैदा होती है। हिमालय पर जो बैठे है, एकात मे, उनके मन मे बाजार आकर्षण निर्मित करता है।

मै कुछ मित्रो को लेकर कश्मीर की यात्रा पर था। कश्मीर के पहाडो मे, झरनो मे, वे बडा आनद अनुभव कर रहे थे। डल झील पर उनके साथ मै ठहरा था। हमारा जो माझी था, जब हम लौटने लगे तो वह कहने लगा, 'ऐसा आशीर्वाद दे कि एक दफा बबई देखनी है।'

'तू बबई देखकर क्या करेगा?'

उसने कहा, 'यहा मन नहीं लगता। और बबई बिना देखे मर गए तो एक आस रह जाएगी।'

जो मेरे साथ आए थे, वे बबई के मित्र थे। वे चौके। वे आए थे कश्मीर। वे आए थे हिमालय की शरण मे। और जो हिमालय की शरण मे पैदा हुआ था, वह बबई आना चाह रहा था।

तुम अगर अपने मन को भी पहचानोगे तो यही पाओगे। परमात्मा की कथा वस्तुत तुम्हारी ही कथा है। कोई परमात्मा और तो नही। तुम कोई और तो नही। परमात्मा की कथा शुद्ध चेतना के स्वभाव की कथा है। ठीक ही कहते है वेद, 'ऊब गया, अकेला था। कहा, बहुत को रचू। उसने बहुत रचे।'

महावीर कहते है, अब हम बहुत से ऊब गए, अब घर वापिस जाने की आकाक्षा पैदा होती है।

इसलिए महावीर के सूत्रो मे लौटती यात्रा के सूत्र है। निश्चित ही वे भिन्न होगे। रस की बात न होगी यहा। यहा विरसता की बात होगी। यहा कामना की, वासना की बात न होगी। यहा त्याग, वैराग्य की बात होगी। यहा राग नहीं, वीतरागता लक्ष्य होगा। मगर ध्यान रखना, राग ही वीतरागता बनता है। वही है ऊर्जा, जो सागर की तरफ जाती है। वही है ऊर्जा, जो गगोत्री की तरफ जाती है। ऊर्जा वही है। पर महावीर का मार्ग थोड़ा कठिन है, क्योंकि धारा के विपरीत लड़ना होगा।

किश्ती को भवर मे घिरने दे, मौजो के थपेड़े सहने दे
जिदो मे अगर जीना है तुझे, तूफान की हलचल रहने दे
धारे के मुआफिक बहना क्या, तौहीने-दस्तो-बाजू है
परवर्द-ए-तूफा किश्ती को धारे के मुखालिफ बहने दे।
किश्ती को भवर मे घिरने दे।

महावीर कहते है, सघर्ष न हो तो सत्य आविर्भूत न होगा। जैसे सागर के मथन से अमृत निकला, ऐसे जीवन के मथन से सत्य निकलता है। सत्य कोई वस्तु थोड़े ही है कि कहीं रखी है, तुम गए और उठा ली, कि खरीद ली, कि पूजा की, प्रार्थना की और माग ली। सत्य तो तुम्हारे जीवन का परिष्कार है। सत्य तो तुम्हारे ही होने का शुद्धतम ढग है। सत्य कोई सज्ञा नहीं है, क्रिया है। सत्य कोई वस्तु नही है, भाव है। तो तुम जितने सघर्ष मे उतरोगे,

जितने मथे जाओगे, जितने जलोगे, जितने तूफानो की टक्कर लोगे, उतना ही तुम्हारे भीतर सत्य आविर्भूत होगा; उतनी ही तुम्हारी धूल झड़ेगी, गलत अलग होगा, निर्जरा होगी व्यर्थ से। झाड़-झखाड़ ऊग गए है, घास-फूस ऊग आया है—आग लगानी होगी, ताकि वही बचे, जिसके मिटने का कोई उपाय नही। अमृत ही बचे, मृत्यु को तो खाक कर देना होगा। यह बैठे-बैठे न होगा। इसके लिए बड़े प्रबल आह्वान की, बड़ी प्रगाढ़ चुनौती की जरूरत है।

किश्ती को भवर मे घिरने दे, मौजो के थपेड़े सहने दे।

भवर दुश्मन नही है। महावीर के रास्ते पर भवर मित्र है, क्योकि उसी से लड़कर तो तुम जगोगे, उसी से उलझकर तो तुम उठोगे। उसी की टक्कर को झेलकर, सघर्ष करके, विजय करके, तुम उसके पार हो सकोगे। इसलिए महावीर का मार्ग कहा जाता है, 'जिन का मार्ग', जिनो का मार्ग, उनने, जिन्होने जीता। जिन शब्द का अर्थ है जिसने जीता। जैन शब्द उसी जिन से बना। जिन का अर्थ है जिसने जीता।

सभी शब्द बड़े अर्थपूर्ण होते है। बुद्ध का अर्थ है जो जागा। जिन का अर्थ है जो जीता।

जिदो मे अगर जीना है तुझे, तूफान की हलचल रहने दे।

—यह प्रार्थना मत कर कि तूफान को हटा लो। फिर तू क्या करेगा ?

धारे के मुआफिक बहना क्या, तौहीने-दस्तो-बाजू है।

—यह तो तेरे बाहुओ का अपमान हो जाएगा, अगर तू धारा के साथ बहा।

धारे के मुआफिक बहना क्या

—फिर तेरे हाथो का क्या होगा ? फिर तेरी बाजुओ का क्या होगा ? फिर तेरे बल को चुनौती कहा मिलेगी ? यह तो अपमान होगा तेरी ऊर्जा का। समर्पण—नही।

परवर्द-ए-तूफा किश्ती को धारे के मुखालिफ बहने दे।

यह किश्ती तो तूफान से ही पैदा होती है। यह किश्ती तो तूफान मे ही पलती है। यह किश्ती तो जन्मती ही तूफान मे है।

परवर्द-ए-तूफा किश्ती को

—इस तूफान में पैदा हुई जीवन की किश्ती को, धार के मुखालिफ बहने दे, उलटा चलने दे। चल गगोत्री की यात्रा पर।

महावीर का मार्ग योद्धा का मार्ग है—क्षत्रिय थे, स्वाभाविक है। जैनो के चौबीस ही तीर्थंकर क्षत्रिय थे। लड़ाको की बात है। लड़ना ही जानते थे। तूफान मे ही किश्ती पली थी। तलवार ही उनकी भाषा थी। युद्ध ही उनका अनुभव था। यद्यपि सब युद्ध छोड़ दिया, अहिंसक हो गए, पर क्या होता है, इससे क्या फर्क पड़ता है ? चींटी को भी नही मारते थे, लेकिन योद्धा होना तो जारी रहा। अपने स्वभाव से कोई भिन्न हो नहीं पाता। ससार भी छोड़ दिया, प्रतियोगिता के सारे स्थान भी छोड़ दिये, जहां-जहा सघर्ष, युद्ध की बात थी, हिसा थी, सब छोड़ दिया—लेकिन फिर भी योद्धा तो नही मिट पाता।

जैनो के सारे तीर्थंकर क्षत्रिय है। यह आकस्मिक नहीं है। एक भी ब्राह्मण तीर्थंकर न हुआ। ब्राह्मण की भाषा लडने की भाषा नहीं है, समर्पण की भाषा है, शरणागति की भाषा है।

बड़ी मधुर कहानी है। झूठ ही होगी, पर मधुर है। और माधुर्य इतना गहरा है उसमे कि झूठ की मै फिक्र नहीं करता, मेरे लिए मधुर ही सत्य है। इतनी सुदर है कि सत्य होनी ही चाहिए। वही कसौटी है सत्य की।

कहानी है कि महावीर का जन्म तो हुआ था एक ब्राह्मणी के गर्भ मे, पैदा तो हुए थे ब्राह्मणी के गर्भ मे—लेकिन देवताओ ने कहा, 'ऐसा कभी हुआ है कि जैन तीर्थंकर और ब्राह्मण के घर पैदा हो ? ऐसा तो कभी सुना नही। और ब्राह्मण के घर पैदा होगा तो फिर जिन तीर्थंकर कैसे होगा ? फिर तूफान मे किश्ती पल ही न पाएगी। फिर सघर्ष की भाषा ही न होगी। फिर उसके जीवन मे तलवार की धार और चमक न होगी। देवता बडे बिबूचन मे पडे। और दुनिया का पहला आपरेशन हुआ। उन्होने निकाल लिया ब्राह्मणी के गर्भ से महावीर को। तीन या चार महीने के थे, तब उन्होने गर्भ निकाल लिया। बदल दिया गर्भ एक क्षत्राणी के गर्भ से। वहा एक लडकी पैदा होने को थी, उसे निकालकर ब्राह्मणी के गर्भ मे रख दिया, महावीर को एक क्षत्रिय के गर्भ मे रख दिया।

यह भी बड़ी सूचक है बात। स्त्री स्वभावत समर्पण की भाषा जानती है। इसलिए ठीक ही किया कि स्त्री को निकाल लिया क्षत्रिय के गर्भ से, ब्राह्मण के गर्भ मे रख दिया। स्त्रैण भाषा समर्पण की है।

जिनके मन कोमल है, फूल जैसे कोमल है, उनके लिए नारद का ही मार्ग है। पर जिनके हृदय मे तलवार की चमक और कौध

है, उनके लिए महावीर का मार्ग है। कहानी सुदर है, अर्थपूर्ण है। इतना कहती है कहानी कि 'ब्राह्मण के घर कभी कोई योद्धा पैदा हुआ ? योद्धा पैदा होने के लिए रोए-रोए मे, खून-खून मे, हड्डी-मास-मज्जा मे युद्ध का स्वर चाहिए।

दूसरी मजे की बात है कि चौबीस ही जैनो के तीर्थकर क्षत्रिय घर मे पैदा हुए और चौबीस ही तीर्थकर अहिसक हो गए, उन्होने हिसा छोड़ दी। तलवार लेकर भी क्या लड़ना। वह कमजोर के लडने का ढग है, कमजोरी को तलवार से पूरा कर लेता है। इसलिए आदमी जितना कमजोर होता गया है, उतने ही उसके शस्त्र मजबूत होते चले गए है। अब आज तो लडने के लिए कमजोर और ताकत का कोई सवाल ही नही है, एटमबम गिराना हो, बच्चा भी गिरा दे सकता है। एक बटन दबा देगा हवाई जहाज मे से, एटमबम गिर जाएगे। जिस आदमी ने एटम गिराया हिरोशिमा, नागासाकी पर, वह कोई बलशाली आदमी थोड़े ही था, साधारण आदमी। और एक लाख आदमी क्षण मे मार डाले। यह कमजोर की बात हो गई।

महावीर कहते है, जो जितना ही योद्धा होता जाएगा उतने ही शस्त्र छोड़ देगा, उसका खुद होना ही पर्याप्त है। फिर वह मारेगा भी नही, क्योकि मारने की भाषा भी कमजोर की भाषा है। तुम दूसरे को मिटाना चाहते हो, क्योकि तुम दूसरे से डरते हो—कहीं उसे जीवित छोड दिया, हानि न करे, कही तुम्हे न मार डाले। तुम उसी को मारते हो जिससे तुम्हे डर है कि कही तुम्हारी मौत न आ जाए। महावीर ने कहा, वह भी कमजोर की भाषा है, हम किसी को मारेगे नही। अगर कोई मारने भी आएगा तो हम मरने को राजी रहेगे, भागेगे नही, लड़ेगे भी नही।

साधारणत दो उपाय है जब भी तुम पर कोई हमला करे तो या तो भागो या जूझो—दोनो ही कमजोर के है। जो बहुत कमजोर है, वह भाग जाता है, जो उतना कमजोर नही है, वह लडता है। लेकिन है दोनो ही कमजोर।

महावीर कहते है, जो सच मे कमजोरी के पार हो गया, अभय हो गया, वह न तो भागता है न लडता है। वह कहता है, 'खडे है। हम यही खड़े है। तुम्हे मारना हो मार डालो।' वह मर जाता है, लेकिन उसके हृदय मे हिसा का भाव नहीं उठता। वह मर जाता है, लेकिन उसके हृदय मे प्रतिहिंसा नही उठती।

यहा एक बात और समझ ले, क्योकि फिर सूत्रो को समझना आसान होता जाएगा।

जब परमात्मा ने सोचा कि अकेला हू, थक गया हू, बहुत हो जाऊ, तो जीवन पैदा हुआ। निश्चित ही महावीर मृत्यु का साधन करेगे। उलटे लौटना है। तो जिस तरह परमात्मा ने जीवन के धागे फैलाए थे, उसी तरह उनको मृत्यु के धागे फैलाने है, या जीवन के धागे काटने है। वृक्ष खड़ा है, तो वासना की जड़े फैलती है पृथ्वी मे, तो ही खडा है। रस लेता है, आकाश मे फैलाता है शाखाओ को, सूरज की किरणे पीता है। वृक्ष को मरना हो, वृक्ष को सिकुड़ना हो, बीज मे डूबना हो, वापिस लौटना हो, तो फिर जड़ो को खीच लेगा, फिर शाखाओ को झुका लेगा, क्योकि फिर सूर्य की ऊर्जा की कोई जरूरत न रही। फिर पृथ्वी के रस की कोई जरूरत न रही।

महावीर के सारे सूत्र एक गहन अर्थ मे आत्मघात के सूत्र है। इसलिए तुम चकित होओगे कि महावीर अकेले जाग्रत पुरुष है जिन्होने अपने सन्यासी को आत्मघात की भी आज्ञा दी है। दुनिया मे किसी ने नहीं दी। आत्मघात की भी आज्ञा। दुनिया का कोई कानून और दुनिया का कोई शास्त्र स्वीकार नहीं करता कि आदमी को हक है कि वह मरना चाहे तो मर जाए, महावीर स्वीकार करते है—करना ही पडेगा। यह तर्कयुक्त है, क्योकि वे सिकुडने की तरफ जा रहे है, लौट रहे है वापिस, तो जीवन के सब तरफ से सबध तोड देने है। अगर कोई यह भी चाहे कि मुझे पूरे सबध अभी छोड़ देने है, तो कौन दूसरा उसे रोकने का हकदार है। महावीर ने आखिरी स्वतत्रता आदमी को दी है कि वह आत्मघात करना चाहे तो भी निर्णायक स्वय है। अगर वह मरना चाहे तो भी हक है उसका। मृत्यु मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। लेकिन ये सब बाते सगत है उनके साथ। और उनके सारे सूत्र, कैसे जीवन से हमारे सबध छिन्न-भिन्न हो जाए, कैसे यह फैलाव बद हो जाए, कैसे हम वापिस घर की तरफ लौट पड़े, इसके ही सूत्र है। यह सारा शास्त्र मृत्यु का शास्त्र है।

तबीबो से मै क्या पूछू इलाजे-दर्दे-दिल।
मरज जब जिदगी खुद हो तो फिर उसकी दवा क्या है।

महावीर के लिए जीवन ही रोग है। और रोग तो गौण है। और रोग तो मूल रोग की छायाए है। जीवन ही रोग है। जीवन ही बधन है। उसी से मुक्त हो जाना है।

तो महावीर का जो मोक्ष है, वह महामृत्यु है—जहां तुम

बिलकुल ही मिट गए हो, जहा कुछ भी नहीं बचा, जहा परम शून्य अवतरित होता है।

अब हम सूत्रो को ले

महावीर ने कहा है, 'जो तुम अपने लिए चाहते हो वही दूसरो के लिए भी चाहो। और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते, वह दूसरो के लिए भी मत चाहो। यही जिन शासन है। तीर्थकर का यही उपदेश है।

समझे। साधारणत तुम जो अपने लिए चाहते हो, वह तुम दूसरो के लिए नही चाहते, क्योकि फिर तो अपने लिए चाहने का कोई अर्थ ही न रहा। तुम एक महल बनाना चाहते हो अपने लिए, तो बहुत गहरे मे तुम पाओगे कि तुम चाहते हो कि दूसरा कोई ऐसा महल न बना ले, अन्यथा मजा ही गया। अगर सभी के पास महल हो तो तुम्हारे पास महल होने का अर्थ ही क्या रहा। तुम एक सुदर स्त्री चाहते हो कि सुदर पुरुष चाहते हो, तो तुम भीतर यह भी चाहते हो कि ऐसी सुदर स्त्री किसी और को न मिल जाए, अन्यथा काटा चुभेगा। तुम ऐसी सुदर स्त्री चाहते हो जो बस तुम्हारी हो, और वैसी सुदर स्त्री किसी के पास न हो। सुदर स्त्री मे भी तुम अपने अहकार को ही भरना चाहते हो। अपने महल मे भी अहकार को भरना चाहते हो।

तुम जो अपने लिए चाहते हो, वह तुम दूसरे के लिए कभी नही चाहते। उससे विपरीत तुम दूसरे के लिए चाहते हो—अपने लिए सुख, दूसरे के लिए दुख। लाख तुम कुछ और कहो, लाख तुम ऊपर से कहो कि नहीं, ऐसा नही है, हम सब के लिए सुख चाहते है—लेकिन जरा गौर से खोजना। सब के लिए सुख तो तुम तभी चाह सकते हो जब तुमने जीवन से अपनी जडे तोड़नी शुरू कर दीं, उसके पहले नही। क्योकि जीवन प्रतिस्पर्धा हे, प्रतियोगिता है, महत्वाकाक्षा है, पागलपन है, छीन-झपट है, गलाघोट सघर्ष है।

बड़ी पुरानी कहानी है कि एक आदमी ने बड़ी प्रार्थना-पूजा की और किसी देवता को प्रसन्न कर लिया। वर्षो की साधना के बाद देवता बोला और देवता ने कहा, 'क्या चाहते हो?' उसने कहा, 'जो भी मै मागू वह मुझे मिल जाए।' देवता ने कहा, 'निश्चित मिलेगा। लेकिन एक शर्त है तुमसे दुगुना तुम्हारे पड़ोसियो को भी मिल जाएगा।' बस सब पूजा-प्रार्थना व्यर्थ हो गई। वह आदमी उदास हो गया। यह भी क्या आशीर्वाद हुआ। क्योकि मजा ही इसमे था कि जो मेरे पास हो, मेरे पड़ोसियो के पास न हो। आशीर्वाद तो मिल गया। आशीर्वाद मे कोई कमी न थी। देवता ने कहा, जो तू चाहेगा उसी क्षण पूरा होगा। इसमे कुछ रुकावट न थी। लेकिन मन सुखी न हुआ, प्रसन्न न हुआ, फूल खिले नही। बडा उदास हो गया। बडे उदास मन से देखा कि देखे, वरदान काम भी करता है या नही। यह कोई वरदान हुआ। यह तो खाली, चली हुई कारतूस जैसा वरदान हुआ। इसमे कुछ रस ही न रहा।

फिर भी उसने कहा, देखे शायद । कहा कि एक महल बन जाए। एक महल बन गया। लेकिन जब बाहर आकर देखा तो बडा मुश्किल मे पड गया दो-दो महल बन गए थे पड़ोसियो के। छाती पीट ली। यह कोई वरदान हुआ। यह तो अभिशाप हो गया। इससे तो पहली ही भले थे। अपनी ही मेहनत से कर लेते। लेकिन उसने रास्ते खोज लिये। आदमी की हिंसा बड़ी गहन है। उसने कहा, 'ठीक है। देवता धोखा दे गये, हम.भी रास्ता खोज लेगे।' मिला होगा वकीलो से, सलाह ली होगी। किसी वकील ने सुझा दिया कि इसमे कुछ घबडाने की बात नहीं है। जहा-जहा कानून है वहा-वहा निकलने का उपाय है। तू ऐसा कर, तू जाकर माग कि मेरे घर के सामने दो कुए खुद जाए। उसने कहा, 'इससे क्या होगा?' उसने कहा, 'तू पहले कोशिश तो कर।' दो कुए उसके घर के सामने खुद गए, पडोसियो के सामने चार-चार कुए खुद गए। वकील ने कहा, 'अब तू प्रार्थना कर कि मेरी एक आख फूट जाए।' तब समझा वह राज। उसने कहा, अरे। मुझे खयाल मे ही न आया। एक आख फोड़ने का वरदान माग लिया,'पड़ोसियो की दोनो आखे फूट गई। अब अधे पड़ोसी और चार-चार कुए घर के समाने, जो हुआ, वह हम समझ सकते है।

लेकिन सुख हमारा दूसरे के दुख मे है। और जीवन हमारा दूसरे की मौत मे है। और हमारी सारी प्रसन्नता किसी की उदासी पर खड़ी है। हमारा सारा धन दूसरे की निर्धनता मे है। लाख तुम दूसरे के दुख मे सहानुभूति प्रगट करो, जब भी दूसरा दुखी होता है, कही गहरे मे तुम सुखी होते हो। और तुम्हारी सहानुभूति मे भी तुम्हारे सुख की भनक होती है।

तुमने कभी पकडा अपने को सहानुभूति प्रगट करते हुए? किसी का दिवाला निकल गया, तुम सहानुभूति प्रकट करने जाते

हो। कहते हो, बड़ा बुरा हुआ। लेकिन कभी अपना चेहरा आईने मे देखा, जब तुम कहते हो, बडा बुरा हुआ, तो कैसी रसधार बहती है! तुम कभी गए, जब किसी को लाटरी मिल गई हो, तब तुम कहने गए कि बहुत अच्छा हुआ?

जब कोई सुखी होता है तब तुम अपना सुख प्रगट करने नही जाते, तब तो ईर्ष्या पकड़ती है, जलन पकड़ती है। अगारे छाती मे बैठ जाते है। फफोले उठ आते है भीतर, घाव महसूस होते है, पीड़ा होती है कि फिर कोई आगे निकल गया। तब तो तुम दूसरी बाते करते हो। तुम तो कहते हो, धोखेबाज है, बेईमान है। तब तो तुम परमात्मा से कहते हो, 'यह क्या हो रहा है तेरे जगत मे? अन्याय हो रहा है। यहा पापी और व्यभिचारी जीत रहे है और पुण्यात्मा हार रहे है।' पुण्यात्मा यानी तुम। पापी यानी वे सब जो जीत रहे है।

तुमने कभी खयाल किया, जब भी कोई जीत जाता है, तुम अपने को समझाते हो, सात्वना देते हो कि जरूर किसी गलत ढग से जीत गया होगा, कोई बेईमानी की होगी, रिश्वत दी होगी, चालबाजी की होगी, कोई रिश्तेदारी खोज ली होगी कहीं।

एक महिला मेरे पास आई। उसका बच्चा फेल हो गया। वह कहने लगी कि बड़ा अन्याय हो रहा है। ये सब शिक्षक और यह सब शिक्षा की व्यवस्था, सब धोखेबाज, बेईमान है। जिन्होने शिक्षको को रिश्वते खिला दी, वे तो सब उत्तीर्ण हो गए, मेरा लड़का फेल हो गया। मैने कहा, इसके पहले भी तेरा लड़का पास होता आया था, तब तू कभी भी न आई कहने कि मेरा लड़का पास हो गया, जरूर किसी न किसी ने रिश्वत खिलाई होगी। जब तेरा लड़का पास होता है, तब अपनी मेहनत से पास होता है, जब दूसरो के लडके पास होते है, तब रिश्वत से पास होते है।

तुमने कभी देखे ये दोहरे मापदड? जब तुम सफल होते हो तो होना ही था, तुम प्रतिभाशाली हो। और जब दूसरा सफल होता है, बेईमान। कही कोई धोखे का रास्ता निकाल लिया। कोई चालबाजी कर गया। जब तुम हारते हो तो अपने पुण्यात्मा होने की वजह से हारते हो। और जब दूसरा हारता है तो पापी है, अपने कर्मो की वजह से हारता है। तुमने कभी ये दोहरे मापदड देखे? पर यह मापदड ठीक है फैलाव के रास्ते पर, क्योकि फैलाव यानी प्रतिस्पर्धा। फैलाव यानी गलाघोट सघर्ष। फैलाव यानी लड़ना है दूसरे से। एक-एक इच जमीन के लिए लड़ना है। एक-एक इच पद के लिए लड़ना है। एक-एक इच धन के लिए लड़ना है।

महावीर इस पहले सूत्र मे ही तुम्हे मौत का पहला पाठ देते है। वे कहते है, जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरो के लिए भी चाहो। चाह मरेगी ऐसे। फिर चाह जी न सकेगी। चाह की जड़ ही काट दी। जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरो के लिए भी चाहो।

जरा सोचो तुम चाहते थे कि एक महल बन जाए—दूसरो के लिए भी। उस चाह मे ही तुम पाओगे कि तुम्हारे महल बनाने की चाह गिर गई। तुम चाहते थे, ऐसा हो वैसा हो, वही सबको भी हो जाए—अचानक तुम पाओगे, पैरो के नीचे से किसी ने जमीन खीच ली।

और जो तुम अपने लिए नही चाहते, वह दूसरो के लिए भी मत चाहो। लोगो ने अपने लिए तो स्वर्ग की कल्पनाए की है, और दूसरो के लिए नर्क का इतजाम किया है। जब भी तुम सोचते हो अपने लिए तो स्वर्ग मे सोचते हो, कल्पना करते हो। नहीं, अगर तुम अपने लिए नर्क नहीं चाहते तो दूसरे के लिए भी मत चाहो।

क्यो महावीर इस सूत्र को इतना मूल्य देते है? यह उनका आधार-सूत्र है। यह बडा सीधा और सरल दिखता है ऊपर, लेकिन इसका जाल बहुत गहरा है और सूत्र बड़ी गहराई मे तुम्हारे अचेतन को रूपातरित करने वाला है। अगर तुम एक सूत्र को भी पालन कर लो तो तुम्हे पूरा धर्म उपलब्ध हो जाएगा। अपने लिए वही चाहो जो तुम दूसरे के लिए भी चाहते हो और जो तुम अपने लिए नही चाहते वह दूसरे के लिए भी मत चाहो—अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन की आपाधापी खो गई। अचानक तुम पाओगे, प्रतिस्पर्धा मिट गई, महत्वाकाक्षा को जगह न रही, बीज सूखने लगे, जलने लगे।

यही जिन शासन है।

एतियग जिणसासण। यही तीर्थकर का उपदेश है। जिन्होंने जीता है स्वय को, उनका यह उपदेश है।

'अध्रुव, अशाश्वत और दुखबहुल ससार मे ऐसा कौन-सा कर्म है जिससे मै दुर्गति मे न जाऊ?'

महावीर पूछते है, अध्रुव, अशाश्वत । सभी चीजे प्रतिक्षण बदली जाती है। यहा कुछ भी तो शाश्वत नहीं। पानी पर खींची

लकीर जैसा है जीवन। यहा तुम खींच भी नहीं पाते लकीर कि मिट जाती है। यहा तुम बना भी नहीं पाते महल कि विदा होने का क्षण आ जाता है। साज-सामान जुटा पाते हो, गीत गा भी नहीं पाते कि विदाई उपस्थित हो जाती है। जीवन की तैयारी ही करने मे जीवन बीत जाता है और मौत आ जाती है।

'अध्रुव, अशाश्वत, दुखबहुल ।' और जहा दुख ज्यादा है और सुख तो केवल आशा है जहा, जहा सुख के केवल सपने है, सत्य तो जहा दुख है—यहा ऐसे इस जगत मे कौन-सा ऐसा कर्म है, जिससे मै दुर्गति मे न जाऊ? क्योकि कही ऐसा न हो कि व्यर्थ लकीरे खींचने मे मै अपने लिए दुर्गति बना रहा होऊ। हम बना रहे है। व्यर्थ की आकाक्षा मे हम अपने लिए ऐसा जाल बुन रहे है, जैसे कभी-कभी मकडा जाल बुनता है और खुद ही उसमे फस जाता है। और जो हम बुन रहे है उससे कुछ मिलने का नही है। उससे कुछ खो जाता है।

धन पाने के लिए लोग कितना दौड़ते है। पाकर भी क्या पाते है? क्या मिल पाता है? हाथ तो खाली के खाली रह जाते है। मरते वक्त निर्धन के निर्धन ही रहते है। मगर सारा जीवन गवा देते है। वही जीवन ध्यान भी बन सकता था, जिसे तुमने धन बनाया। वही जीवन-ऊर्जा ध्यान भी बन सकती थी, जिसे तुमने धन मे गवाया। वही जीवन-ऊर्जा तुम्हारे जीवन का आत्यतिक समाधान बन सकती थी, समाधि बन सकती थी, और तुम व्यर्थ सामान जुटाने मे लगे रहे। और सामान भी ऐसा जुटाया जो मौत के क्षण मे साथ न ले जा सकोगे, मौत जिसे छीन लेगी। और सामान भी ऐसा जुटाया कि न मालूम कितनो को दुख दिया, न मालूम कितनो की पीड़ा निर्मित की, न मालूम कितनो के लिए नर्क बनाया। इतना दुख देकर तुम सुखी हो कैसे सकोगे? इतना दुख तुम पर लौट-लौट आएगा, अनत गुना होकर बरसेगा। क्योकि जगत तो एक प्रतिध्वनि है। तुम गीत गाओ, तुम्हारा ही गीत प्रतिध्वनित होकर तुम पर बरस जाता है। तुम गालिया बको, तुम्हारी ही गालिया लौटकर तुम पर बरस जाती है, छिद जाती है।

यह जगत तो एक प्रतिध्वनि मात्र है।

तो महावीर कहते है, मौलिक सवाल यह है कि मै कौन-सा कर्म करू। इस दुखबहुल ससार मे, इस अशाश्वत ससार मे, जहा सभी कुछ क्षण-क्षण में बदला जा रहा है, जहा न तो वस्तुओ का भरोसा है, न देह का भरोसा है, न मन का भरोसा है ।

मुझे दिल की धड़कनो का नहीं एतिबार 'माहिर'
कभी हो गई शिकवे, कभी बन गई दुआए।

यहा अपने ही दिल का भरोसा नहीं है। क्षणभर में प्रसन्न है, क्षणभर मे रोता है। क्षणभर पहले दुआए दे रहा था, क्षणभर बाद शिकायतो से भर गया। क्षणभर पहले ऐसा प्रकाशोज्ज्वल मालूम होता था और क्षणभर बाद गहन अधकार से घिर गया। यहा अपने ही दिल का भरोसा नहीं, जो इतने करीब है। दिल यानी तुमसे जो करीब से करीब है। उसका भी भरोसा नहीं है। यहा किस और चीज का भरोसा करे।

कलियो के जिगर अफसुर्दा है, काटो की जबाने सूखी है
हम बाग के धोखे मे शायद, जगल के किनारे आ बैठे।

कहीं कुछ धोखा हो गया है। सभी लोग सुख चाहते है, मिलता दुख है। सभी लोग फूल मागते है, मिलते काटे है। सभी लोग आनद के लिए आतुर और व्यथित है, पाते सताप है।

कलियो के जिगर अफसुर्दा है, काटो की जबाने सूखी है
हम बाग के धोखे मे शायद, जगल के किनारे आ बैठे।

कही कुछ भूल हो गई है। कही कोई बुनियादी चूक हो गई है। हम शायद समझ नहीं पा रहे। हम शायद रेत से तेल निकालने की चेष्टा मे सलग्न है, अन्यथा इतना दुख कैसे होता? सभी सुख चाहते हो, इतना दुख कैसे होता? सभी लोग अमृत चाहते हो और मौत ही घटती है, अमृत तो घटता दिखाई नहीं पडता। सभी लोग चाहते है कि नाचते, प्रसन्न होते, लेकिन रसधार रोज-रोज सूखती चली जाती है। न नाच है जीवन मे, न उमग है, न कोई उत्सव है।

'ऐसा कौन-सा कर्म करू, जिससे इस दुर्गति से बचू।'

क्या करू? क्या करना मुझे इस उपद्रव के बाहर ले जाएगा?

'ये काम-भोग क्षणभर सुख और चिरकाल तक दुख देनेवाले है, बहुत दुख और थोड़ा सुख देनेवाले हैं; ससार-मुक्ति के विरोधी, और अनर्थो की खान है।'

थोड़ा-सा सुख। ऐसे ही है जैसे कोई मछलियों को पकड़ने जाता है, काटे पर आटा लगा देता है। मछलिया आटे के लिए आती है, काटे के लिए नही, मिलता काटा है। ऐसा ही लगता है कि जैसे कोई मछुआ मजाक किए जा रहा है। सभी दौड़ते है सुख

के लिए और आखिर मे पाते है, काटे छिद गए।

तुमने भी कितनी बार सुख नही चाहा। पाया है? महावीर कहते है, शायद थोड़ा-सा आभास मिला हो, प्रथम क्षण मे, शायद उल्लास के क्षण मे कि मिल गया, तुमने अपने को धोखा दे लिया हो; पर जल्दी ही झूठी पर्तें उघड़ जाती है। जल्दी ही पता चल जाता है।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन अपने दफ्तर मे अपने मालिक से बोला कि शादी की है, हनीमून के लिए पहाड जाना चाहता हू—दो सप्ताह, तीन सप्ताह की छुट्टी। मालिक ने कहा, हनीमून कितने दिन चलेगा—एक सप्ताह, दो सप्ताह, तीन सप्ताह। उतनी छुट्टी ले लो। मुल्ला ने कहा, आप ही बता दे। मालिक ने कहा, मैंने तुम्हारी पत्नी को अभी देखा ही नहीं, मै बताऊ कैसे कितनी देर चलेगा?

देर-अबेर हो सकती है, पर जल्दी ही घड़ी आ जाती है, जब प्रेम राख हो जाता है। कोई थोडी देर तक अपने को भुलाए रखता है, कोई थोडी जल्दी जाग जाता है। पर देर-अबेर सभी जाग जाते है। इस ससार मे जो भी प्रेम है, वह चाहे धन का हो, चाहे रूप का हो, चाहे पद का हो, वह देर-अबेर उखड़ ही जाता है। असलियत कब तक छिपाए छिपेगी?

असलियत दुख है। सुख तो ऊपर का रग-रोगन है, जरा वर्षा पड़ी, बह गया रग-रोगन। वह तो कागज के फूलो जैसा है, जरा वर्षा पडी, बिखर गये, गल गए।

'ये काम-भोग क्षणभर सुख और चिरकाल तक दुख देनेवाले है, बहुत दुख और थोडा सुख देनेवाले है, ससार-मुक्ति के विरोधी ' ससार से मुक्त होने के विरोधी है, क्योकि इन्हीं की आशा मे तो लोग अटके रहते है, क्यू लगाए खड़े रहते है अब मिला, अब मिला। अब तक नही मिला, मिलता ही होगा। लोग राह ही देखते रहते है, बिना यह सोचे कि जिस क्यू मे खडे हैं उसमे किसी को भी कभी मिला? माना कि कुछ लोग क्यू मे बिलकुल आगे पहुच गए हैं—कोई सिकदर—मगर सिकदर से भी तो पूछो, मिला?

सिकदर मर रहा था तो उसने अपने चिकित्सको से कहा कि मै अपनी मा को बिना देखे नही मरना चाहता हू। लेकिन मा दूसरे गांव मे थी। या तो वह आए या सिकदर वहा तक पहुचे। चौबीस घटे की कम से कम जरूरत थी। और सिकदर ने कहा कि मैं सब कुछ देने को तैयार हू, जो भी तुम्हारी फीस हो ले लो, लेकिन चौबीस घटे मुझे और जिला लो, जिससे मै पैदा हुआ हू उससे विदा तो ले लेने दो, मा को देखकर जाना चाहता हू। चिकित्सको ने कहा, असभव है। सिकदर ने कहा, अपना आधा साम्राज्य दे दूगा। उदास खड़े चिकित्सक। उसने कहा, पूरा ले लो। काश। मुझे पहले पता होता कि पूरा साम्राज्य देकर भी एक सास नही मिलती, तो अपने जीवनभर की सासें इस साम्राज्य के लिए क्यो खराब करता।

लेकिन इसी आपा-धापी मे, इसी दौड-धूप मे सब गया।

एक-एक सास इतनी बहुमूल्य है, तुम्हे पता नही। इसलिए महावीर कहते है, सोच लो, कहा लगा रहे हो अपनी श्वासो को। जो मिलेगा, वह पाने योग्य भी है? कही ऐसा न हो कि गवाने के बाद पता चले कि जो मूल्य दिया था, बहुत ज्यादा था, और जो पाया वह कुछ भी न था। असली हीरो के धोखे मे नकली हीरे ले बैठे।

कम से कम मौत से ऐसी मुझे उम्मीद नही
जिदगी तूने तो धोखे पे दिया है धोखा।

जिदगी सिलसिला है धोखे पर धोखा।

'बहुत खोजने पर भी जैसे केले के पेड़ मे कोई सार दिखाई नही देता, वैसे ही इद्रिय-विषयो मे भी कोई सुख दिखाई नही देता।'

लगता है—लगता है, मूर्च्छा के कारण।

कभी किसी कुत्ते को देखा, सूखी हड्डी को चबाते। चबाता है कितने रस से। तुम बैठे चकित भी होओगे कि सूखी हड्डी मे चबाता क्या होगा। सूखी हड्डी में कोई रस तो है नही। सूखी हड्डी मे चबाता क्या होगा। लेकिन होता यह है कि जब सूखी हड्डी को कुत्ता चबाता है तो उसके ही जबड़ो, जीभ से, तालू से लहू—सूखी हड्डी की टकराहट से लहू बहने लगता है। उसी लहू को वह चूसता है। सोचता है, हड्डी से रस आ रहा है। हड्डी से कहीं रस आया है। अपना ही खून पीता है। अपने ही मुंह मे घाव बनाता है। भ्राति यह रखता है कि हड्डी से रस आता है। हड्डी से खून आ रहा है। जिन्होने भी जागकर देखा है, थोड़ा अपना मुह खोलकर देखा है, उन्होने यही पाया है कि इंद्रिय-सुख सूखी हड्डियो जैसे है, उनसे कुछ आता नहीं। अगर कुछ आता भी मालूम पड़ता है तो वह हमारी ही जीवन की रसधार है। और वह घाव हम व्यर्थ ही पैदा कर रहे है। जो खून हमारा ही है, उसी

को हम घाव पैदा कर-कर के वापिस ले रहे है।

काम-भोग मे जो सुख मिलता है, वह सुख तुम्हारा ही है जो तुम उसमे डालते हो। वह तुम्हारे काम-विषय से नहीं आता। स्त्री को प्रेम करने मे, पुरुष को प्रेम करने मे तुम्हे जो सुख की झलक मिलती है, वह न तो स्त्री से आती है न पुरुष से आती है, तुम्ही डालते हो। वह तुम्हारा ही खून है, जो तुम व्यर्थ उछालते हो। पर भ्राति होती है कि सुख मिल रहा है। कुत्ते को कोई कैसे समझाए। कुत्ता मानेगा भी नहीं। कुत्ते को इतना होश नही। लेकिन तुम तो आदमी हो। तुम तो थोड़े होश के मालिक हो सकते हो। तुम तो थोड़े जाग सकते हो।

'बहुत खोजने पर भी जैसे केले के पेड़ मे कोई सार दिखाई नहीं देता, वैसे ही इद्रिय-विषयो मे भी कोई सुख दिखाई नहीं देता।'

'खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को भी सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य काम-जन्य दुख को सुख मानता है।'

खुजली हो जाती है। जानते हो, खुजलाने से और दुख होगा, लहू बहेगा, घाव हो जाएगे, खुजली बिगड़ेगी और, सुधरेगी न। सब जानते हुए, फिर भी खुजलाते हो। एक अदम्य वेग पकड़ लेता है खुजलाने का। जानते हुए, समझते हुए, अतीत के अनुभव से परिचित होते हुए, पहले भी ऐसा हुआ है, बहुत बार ऐसा हुआ है, फिर भी कोई तमस, कोई मोह-निद्रा, कोई अधेरी रात, कोई मूर्च्छा मन को पकड़ लेती है, फिर भी तुम खुजलाए चले जाते हो।

तुमने कभी खयाल किया, लोग जब खुजली को खुजलाते है तो बड़ी तेजी से खुजलाते है। क्योकि वे डरते है। उन्हे भी पता है कि अगर धीरे-धीरे खुजलाया तो रुक जाएगे। बड़े जल्दी खुजला लेते है, अपने को ही धोखा दे रहे है। मास निकल आता है, लहू बह जाता है। पीड़ा होती है, जलन होती है। फिर वही अनुभव। लेकिन दुबारा फिर खुजली होगी तो तुम भरोसा कर सकते हो कि तुम न खुजलाओगे?

कितनी बार तुमने क्रोध किया, कितनी बार क्रोध से तुम विषाद से भरे, कितनी बार तुम काम मे गए, कितनी बार हताश वापिस आए, कितनी बार आकाक्षा की और हर बार आकाक्षा टूटी और बिखरी, कितनी बार स्वप्न सजोए—हाथ क्या लगा? बस राख ही राख हाथ लगी। फिर भी, दुबारा जब आकाक्षा पकड़ेगी, दुबारा जब क्रोध आएगा, दुबारा जब काम का वेग उठेगा, तुम फिर भटकोगे।

मनुष्य अनुभव से सीखता ही नही। जो सीख लेता है, वही जाग जाता है। मनुष्य अनुभव से निचोडता ही नहीं कुछ। तुम्हारे अनुभव ऐसे है जैसे फूलो का ढेर लगा हो, तुमने उनकी माला नहीं बनाई। तुमने फूलो को किसी एक धागे मे नहीं पिरोया कि तुम्हारे सभी अनुभव एक धागे मे सगृहीत हो जाते और तुम्हारे जीवन मे एक जीवन-सूत्र उपलब्ध हो जाता, एक जीवन-दृष्टि आ जाती।

अनुभव तुम्हे भी वही हुए है जो महावीर को। अनुभव मे कोई भेद नहीं। तुमने भी दुख पाया है, कुछ महावीर ने ही नहीं। तुमने भी सुख मे धोखा पाया है, कुछ महावीर ने ही नही। फर्क कहा है? अनुभव तो एक से हुए है। महावीर ने अनुभवो की माला बना ली। उन्होंने एक अनुभव को दूसरे अनुभव से जोड़ लिया। उन्होने सारे अनुभवो के सार को पकड लिया। उन्होने उस सार का एक धागा बना लिया। उस सूत्र को हाथ मे पकड़कर वे पार हो गए। तुमने अभी धागा नही पिरोया। अनुभव का ढेर लगा है, माला नही बनाई। माला बना लेना ही साधना है। उसी की तरफ ये इशारे है।

'खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को भी सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य काम-जन्य दुख को सुख मानता है।'

थोडा समझो। हमारी मान्यता से बड़ा फर्क पड़ता है। हमारी मान्यता से, हमारी व्याख्या से बहुत फर्क पडता है।

तुमने कभी खयाल किया? एक स्त्री को तुम आलिगन कर लेते हो, सोचते हो, सुख मिला। सोचने का ही सुख है। ऐसा ही तो सपने मे भी तुम सोच लेते हो, तब भी सुख मिल जाता है। सपने मे कोई स्त्री तो नही होती, तुम्ही होते हो। सपने मे कोई स्त्री तो नही होती, तुम्हारी ही धारणा होती है। हो सकता है, अपनी ही दुलाई को छाती से चिपटाए पड़े हो, सपना देख रहे हो। जागकर हसते हो कि कैसा पागलपन है।

लेकिन सपने मे भी उतना ही सुख मिल जाता है, शायद थोड़ा ज्यादा ही मिल जाता है, जितना कि जागने की स्त्री से मिलता है। क्योकि जागते हुए स्त्री की मौजूदगी कुछ बाधा भी पैदा करती है। सपने मे तो कोई भी नही, तुम अकेले ही हो, तुम्हारा ही सारा भावनाओ का खेल है।

सपने मे तुम सुख ले लेते हो स्त्री को आलिगन करने का, तो

थोडा सोचो तो। सुख तुम्हारी ही धारणा का होगा। जागते मे भी इतना सुख नहीं मिलता, क्योकि जागते मे एक जीवित स्त्री उस तरफ खड़ी है। जीवित स्त्री मे पसीने की बदबू भी है। जीवित स्त्री मे काटे भी हैं। जैसे तुममे है, ऐसे उसमे है। जीवित स्त्री की मौजूदगी थोड़ी बाधा भी डालती है। दूसरे व्यक्ति की मौजूदगी परतत्र भी करती है। परतत्रता की पीडा भी होती है। स्त्री हो सकता है, अभी राजी न हो कि आलिगन करो, हाथ से हटा दे। लेकिन सपने मे तो कोई तुम्हे हाथ से न हटा सकेगा।

एक आदमी एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और उसने कहा कि मेरी बड़ी मुसीबत है, मेरी सहायता करे। मै रात सपना देखता हू कि हजारो सुदरिया नग्न मेरे चारो तरफ नाचती है। मनोवैज्ञानिक अपनी कुर्सी से टिका बैठा था, सम्हलकर बैठ गया। उसने कहा, 'यह परेशानी है ? अरे पागल। और क्या चाहता है ? इसमे परेशानी कहा है ? तू अपना राज बता, कैसे तू यह सपना पैदा करता है ? क्या तेरी फीस है, बोल।'

उस आदमी ने कहा, 'परेशानी यह है कि सपने मे मै भी लडकी होता हू। यही झझट है। मुझे किसी तरह सपने मे आदमी रहने दो। यही पूछने आया हू।'

सपनो मे सुख मिल जाता है। सपने मे तुम कभी सम्राट हुए ? जरूर हुए होओगे। कोई कमी नहीं रह जाती।

चीन मे एक बड़ा सम्राट हुआ। उसका एक ही लड़का था। वह मरणासन्न पडा था। वह उसके पास तीन दिन से बैठा था, तीन रात से बैठा था। सारी आशा वही था। सारी महत्वाकाक्षा वही था। फिर झपकी लग गई उसकी, तीन दिन का जागा हुआ सम्राट, बैठे-बैठे सो गया। उसने एक सपना देखा कि उसके बारह लड़के है—एक से एक सुदर, बलिष्ठ, प्रतिभाशाली, मेधावी। बड़ा उसका स्वर्ण से बना हुआ महल है। महल के रास्ते पर हीरे-जवाहरात जड़े है। बड़ा उसका साम्राज्य है। वह चक्रवर्ती है। तभी बाहर जो बेटा बिस्तर पर पडा था, वह मर गया। पत्नी चीख मारकर चिल्लाई, सपना टूटा और सम्राट ने सामने मरे हुए लड़के को पड़ा देखा। पत्नी को चीखते देखा। पत्नी जानती थी कि पति को बड़ा सदमा पहुचेगा। घबडा गई, क्योकि पति देखता ही रहा। न केवल रोया नहीं, हसने लगा। पत्नी समझी कि पागल हो गया। उसने कहा, 'यह तुम्हे क्या हुआ ? तुम हस क्यो रहे हो ?'

उसने कहा, 'मै हस रहा हू इसलिए कि अब किसके लिए रोऊ। अभी सपने मे बारह लड़के थे, बड़े सुदर थे, यह कुछ भी नही। बड़े स्वस्थ, बलिष्ठ थे। जैसे उनकी मौत कभी आएगी ही न, ऐसे थे। अमृत-पुत्र थे। और बड़ा महल था, यह महल झोपड़ा है। सोने का बना था। राह पर हीरे-जवाहरात लगे थे। तेरी चीख ने सब गड़बड़ कर दिया। न तेरा मुझे पता था, न इस बेटे का मुझे पता था, सपने मे तुम ऐसे ही खो गए थे, जैसे अब सपना खो गया। अब मै सोचता हू, किसके लिए रोना। उन बारह के लिए रोऊ पहले कि इस एक के लिए रोऊ ? इसलिए हसी आती है। हसी आती है कि रोना व्यर्थ है। हंसी आती है कि वह भी एक सपना था, यह भी एक सपना है। वह आख-बद का सपना था, यह आख-खुली का सपना है।'

तुम जिसे सुख मान लेते हो, वह सुख मालूम पड़ता है। कई दफा दुख को भी तुम सुख मान लेते हो, सुख मालूम पड़ता है। पहली दफा जब कोई सिगरेट पीता है तो सुख नहीं मिलता, दुख ही मिलता है, खासी आ जाती है, धुआ सिर मे चढ जाता है, चक्कर मालूम होता है, घबड़ाहट लगती है। आखिर धुआ ही है—गदा धुआ है। उसको भीतर ले जाने से सुख कैसे हो सकता है ? लेकिन फिर धीरे-धीरे अभ्यास करने से

'रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान।' फिर घिसते-घिसते रस्सी के, अभ्यास करते-करते 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।' पहले जड़मति थे, अकल न थी, इसलिए धुआ पीया और मजा न आया। फिर बुद्धि आ जाती है अभ्यास से। फिर मजे से पीने लगते है। फिर बिना पीए कष्ट मिलने लगता है। शराब पहली दफे पीकर देखी, बेस्वाद है, तिक्त है। फिर धीरे-धीरे वही मधुर होने लगती है। शराब जैसी तिक्त वस्तु मधु जैसी मधुर मालूम होने लगती है। अभ्यास ।

तुम अगर अपने जीवन के सुख-दुख की ठीक से छानबीन करोगे तो तुम पाओगे जो तुमने सुख मान लिया, वह सुख, जो तुमने दुख मान लिया, वह दुख।

पूरब, सुदूर पूर्व मे कुछ छोटे-छोटे कबीले है। वे चुबन नहीं करते। उन्हे पता ही न था जब तक वे सभ्यता के सपर्क मे न आए कि लोग चुबन भी करते है। और जब उन्होने देखा कि स्त्री-पुरुष चुबन करते हैं तो वे बहुत घबड़ाए, बड़ा वीभत्स उन्हे

मालूम हुआ। यह भी कोई बात हुई। ओठ, झूठे ओंठ, गदे ओठ, लार और थूक से सने ओठ, एक-दूसरे पर रगड़ रहे है और कहते हैं, मजा आ रहा है। उन्होने कभी सदियो मे चुबन नहीं लिया। उन्हे पता ही न था। वे जो करते है, अगर तुम करोगे तो बहुत हैरान होओगे। वे एक-दूसरे से नाक रगड़ते हैं। तुमने कभी रगड़ी नाक? रगड़ोगे तो पागल मालूम पड़ोगे, यह क्या कर रहे हो। कोई देख न ले। अपनी प्रेयसी से भी नाक न रगड़ोगे, क्योकि वह भी सोचेगी कि तुम्हारा दिमाग खराब है, नाक रगड़ते हो। लेकिन वह कबीला सदियो से नाक रगड़ता रहा है। वही उनका चुबन है। ज्यादा हाइजिनिक। अगर चिकित्साशास्त्रियो से पूछो तो तुमसे बेहतर है। कम से कम नाक ही रगड़ते हैं, कोई कीड़ो का और कीटाणुओ का आदान-प्रदान तो नहीं करते। अब चुबन मे तो कोई लाखो कीटाणुओ का आदान-प्रदान हो जाता है।

मैंने सुना, एक आदमी अपने डाक्टर के पास गया। बड़ा घबडाया हुआ था। और उसने कहा कि यह चेचक की बीमारी बड़े जोर से फैल रही है। और मेरे लड़के को भी लग गई है।

डाक्टर ने कहा, 'घबड़ाने की कोई बात नही है। फैली है। महाकोप उसका है। सावधान रहो, सक्रामक है, पर घबड़ाने की कोई बात नहीं। लड़का भी ठीक हो जाएगा।' उसने कहा, 'ठीक हो जाएगा जब, बात अलग। लड़का मेरी नौकरानी को चूमता है, इससे मुझे घबड़ाहट हो गई है।'

'और तुम समझाये नहीं?'

उसने कहा कि 'अब समझाने का क्या है, मै भी उसको चूम लिया हू। और इतना ही नहीं है ।'

फिर भी डाक्टर ने कहा, 'घबड़ाओ मत, ठीक हो जाएगा।'

पर उसने कहा, 'इतना ही मामला नही है, मैंने पत्नी को भी चूम लिया है।' डाक्टर घबराया। उसने कहा कि 'रुको जी, बकवास बद करो। पत्नी को भी चूमा है? पहले मै अपनी जाच करवाऊ, क्योंकि तुम्हारी पत्नी को मै भी चूम बैठा हू।'

अब तक शात था। बीमारिया लेन-देन हो रहा है। लोग कह रहे हैं, बड़ा सुख मिल रहा है। चुबन जैसा सुख । पर कभी तुमने सोचा, कभी जागकर देखा? सुख क्या हो सकता है? तुम भी चौंकोगे, क्योंकि तुमने कभी जागकर सोचा नही, ध्यान नहीं किया। तुमने जिन-जिन बातो मे सुख माना है, उनमे फिर से तो विचार करो। फिर से एक बार पुनर्विचार करो। तटस्थ भाव से, वैज्ञानिक दृष्टि से निरीक्षण करो। तुम बहुत हैरान हो जाओगे, तुम्हारे सुख तुम्हारी मान्यताओ के सुख है। जो मान लिया, जो पकड़ लिया अचेतन मे, वही सुख मालूम हो रहा है। जैसे ही जागोगे, वैसे ही तुम्हारे सुख विदा हो जाएगे। तुम इस जीवन मे दुख ही दुख पाओगे।

महावीर का सारा साधना-शास्त्र इस अनुभूति पर निर्भर है कि तुम्हे जीवन मे परम दुख का अनुभव हो जाए।

खुदा की देन है जिसको नसीब हो जाए
हर एक दिल को गमे-जाविदा नही मिलता

—यह जो परम दुख है, यह परमात्मा की अनुकपा से मिलता है। यह परम दुख, यह स्थायी दुख का बोध कि यहा सब दुख है—'गमे-जाविंदा'—यह स्थायी गम

खुदा की देन है जिसको नसीब हो जाए
हर एक दिल को गमे-जाविदा नही मिलता

महावीर को मिला। तुम्हे भी मिल सकता है। है तो, मिला तो है। तुम देखते ही नही। तुम छिटकते हो। तुम देखने से बचना चाहते हो।

लोग अपने जीवन के सत्य को देखने से बचना चाहते है, क्योकि डरते है। और डर उनका स्वाभाविक है। डरते है कि कहीं जीवन का सत्य देखा तो कहीं दुखँ ही दुख हाथ मे न रह जाए। इसलिए पीठ किए रहते है। इसलिए आख बचाए चले जाते है। इसलिए आख बद कर लेते है। मगर ऐसे तुम किसे धोखा दे रहे हो? यह धोखा स्वय को ही दिया गया धोखा है।

एक कहानी मैंने सुनी है। एक शहर मे एक नई दुकान खुली। जहा कोई भी युवक जाकर अपने लिए एक योग्य पत्नी ढूढ सकता था। एक युवक उस दुकान पर पहुचा। दुकान के अदर उसे दो दरवाजे मिले। एक पर लिखा था, युवा पत्नी, और दूसरे पर लिखा था, अधिक उम्र वाली पत्नी। युवक ने पहले द्वार पर धक्का लगाया और अदर पहुचा। फिर उसे दो दरवाजे मिले। पत्नी वगैरह कुछ भी न मिली। फिर दो दरवाजे। पहले पर लिखा था, सुदर, दूसरे पर लिखा था, साधारण। युवक ने पुन पहले द्वार मे प्रवेश किया। न कोई सुदर था न कोई साधारण, वहा कोई था ही नहीं। सामने फिर दो दरवाजे मिले, जिन पर लिखा था अच्छा खाना बनानेवाली और खाना न बनानेवाली।

युवक ने फिर पहला दरवाजा चुना। स्वाभाविक, तुम भी यही करते। उसके समक्ष फिर दो दरवाजे आए, जिन पर लिखा था अच्छा गाने वाली और गाना न गाने वाली। युवक ने पुन पहले द्वार का सहारा लिया और अब की उसके सामने दो दरवाजो पर लिखा था दहेज लानेवाली और न दहेज लानेवाली। युवक ने फिर पहला दरवाजा चुना। ठीक हिसाब से चला। गणित से चला। समझदारी से चला। परतु इस बार उसके सामने एक दर्पण लगा था, और उस पर लिखा था, 'आप बहुत अधिक गुणो के इच्छुक है। समय आ गया है कि आप एक बार अपना चेहरा भी देख ले।'

ऐसी ही जिदगी है चाह, चाह, चाह। दरवाजो की टटोल। भूल ही गए, अपना चेहरा देखना ही भूल गए। जिसने अपना चेहरा देखा, उसकी चाह गिरी। जो चाह मे चला, वह धीरे-धीरे अपने चेहरे को ही भूल गया। जिसने चाह का सहारा पकड लिया, एक चाह दूसरे मे ले गई, हर दरवाजे दो दरवाजो पर ले गए, कोई मिलता नही। जिदगी बस खाली है। यहा कभी कोई किसी को नही मिला। हा, हर दरवाजे पर आशा लगी है कि और दरवाजे है। हर दरवाजे पर तख्ती मिली कि जरा और चेष्टा करो। आशा बधाई। आशा बधी। फिर सपना देखा। लेकिन खाली ही रहे। अब समय आ गया, आप भी दर्पण के सामने खड़े होकर देखो। अपने को पहचानो।

जिसने अपने को पहचाना वह ससार से फिर कुछ भी नही मागता। क्योकि यहा कुछ मागने जैसा है ही नही। जिसने अपने को पहचाना, उसे वह सब मिल जाता है जो मागा था, नही मागा था। और जो मागता ही चलता है, उसे कुछ भी नही मिलता है।

इस जिदगी मे तुम न केवल अपने को धोखा दे रहो हो, तुम्हारे, जिनको तुम अपने कहते हो, उनका भी धोखा दे रहे हो। घर मे एक बच्चा पैदा होता है। तुम तो धोखे मे जीए ही, तुम यही धोखा उसको भी सिखाते हो। तुम तो दुख मे जीए ही, तुम इसी दुख का शिक्षण उसे भी देते हो। ऐसे पागलपन हटता नही ससार से, बढता है। हम अपनी बीमारिया दूसरो को दिये चले जाते है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने लडके पर रौब गाठने के लिए एक दिन शिकार पर उसे साथ ले गया। वहा एक पक्षी पर निशाना साधते हुए लड़के से बोला, 'देख बेटे। मेरा निशाना कितना अचूक होता है।' यह कहकर उसने गोली दागी। हमेशा की तरह, निशाना चूक गया। यह देखकर कि लडका बहुत ध्यान से उड़ते पक्षी की ओर देख रहा है, मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'देख बेटे, देख। आश्चर्य देख। मरकर भी पक्षी उड़ान भर रहा है।'

मगर कोई मानने को राजी नहीं है कि निशाना अपना चूक गया है। बाप का निशाना चूक गया है, लेकिन बेटे से कह रहा है, 'देख, बेटे देख। निशाना तो लग गया, चमत्कार देख। फिर कभी मौका मिले न मिले। पक्षी मरकर भी उड रहा है।'

अगर तुम्हारा निशाना चूक गया हो तो किसी को भूलकर भी यह आभास मत देना कि लग गया है। अपनी हार को स्वीकार कर लेना। इससे तुम्हे भी लाभ होगा, औरो को भी लाभ होगा। अपनी पराजय को मान लेना, क्योकि तुम्हारी पराजय ही तुम्हारी विजय-यात्रा का पहला कदम बनेगी। धोखा मत दिये चले जाना। यह अकड़ व्यर्थ है। इस अकड़ का कोई सार नही है।

महावीर इस अकड़ को तोडने के लिए ही ये सूत्र कह रहे है। हम वही-वही मागे चले जाते है। हर बार हारते है, फिर वही मागते है। कभी-कभी तो हमारी मागे ऐसी असगत और मूढ़तापूर्ण होती है, लेकिन चूकि हमारी मागे है, हम न तो उनकी मूढता देखते, न असगति देखते है।

एक भिखारी ने लाटरी का टिकट खरीदा और भगवान मे प्रार्थना की कि हे प्रभु। मुझे लाटरी का पहला इनाम दे दो, जिससे मै कार खरीद सकू। पैदल भीख मागते-मागते तो मेरी टागे टूटी जाती है।

कार मे भी भीख ही मागगा। जैसे हमे कोई होश ही नही है। तुम क्या माग रहे हो? तुम जो मागते हो, उसमे फिर तुम वही माग रहे हो, वही पुराना ढाचा जिसमे तुम जन्मो-जन्मो से जी रहे हो, और जिसमे सिवाय दुख, सिवाय पीडा और सताप के कुछ भी नहीं पाया है।

एक छोटे शहर के चौधरी घूमने के ख्याल से दिल्ली पहुचे। तो एक मामूली से परिचित सज्जन के घर जा धमके और बाते करने लगे।

बहुत देर तक, जब उसने वहा से जाने का नाम न लिया तो घर वाले सज्जन ने अपने नौकर को आवाज देकर बुलाया और कहा, 'भाई सामान बाधो और चलने की तैयारी करो।'

चौधरी और नौकर दोनो आश्चर्य मे पड़ गए कि एकाएक कहा जाने की तैयारी है। आखिर में चौधरी के पूछने पर कि इस वक्त

कहां जा रहे है, सज्जन ने कहा, 'भाई। मकान पर तो आपने अधिकार कर ही लिया है। कही सामान भी हाथ से न जाता रहे, इसलिए यहा से भागना अच्छा है।'

इससे उलटी हालत तुम्हारी है। मकान पर तो अधिकार हो ही गया है ससार का, सामान पर भी अधिकार हो गया है। तुम ही बचे हो, और तो सब खो दिया है। अब अपने को ही खो रहे हो। भागो। महावीर की साधना-विधि जीवन में आग लगी है, ऐसा देखकर तुम्हे जगाने की और इस घर को छोड़ देने के लिए है। बाहर आओ। लोग तुमसे कहेगे, 'पलायनवादी हो रहे हो ?'

महावीर कहते है, घर मे जब आग लगी हो तो पलायन ही समझदारी है। जहा दुख हो, वहा से भाग जाना ही समझदारी है।

और ध्यान रखना, अगर तुम दुख से बच सको तो सुख की सभावना का द्वार खुलता है। लेकिन सुख कहीं बाहर नही है। सुख तुम्हारा स्वभाव है। ससार बाहर है। सुख तुम्हारा स्वभाव है। जितने तुम बाहर जाओगे उतने सुख से दूर होते चले जाओगे। जितने तुम बाहर न जाओगे उतनी ही सुख की धुन बजने लगेगी। सुख का सितार बजने को तैयार रखा है, सिर्फ तुम घर आओ।

मुल्ला नसरुद्दीन एक धनपति के घर नौकरी करता था। एक दिन उसने कहा, 'सेठ जी, मै आपके यहा से नौकरी छोड़ देना चाहता हू। क्योकि यहा मुझे काम करते हुए कई साल हो गए, पर अभी तक मुझ पर आप को भरोसा नही है।' सेठ ने कहा, 'अरे पागल। कैसी बात करता है। नसरुद्दीन होश मे आ। तिजोरी की सभी चाबिया तो तुझे सौप रखी है। और क्या चाहता है ? और कैसा भरोसा ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'बुरा मत मानना, हुजूर। लेकिन उसमे से एक भी ताली तिजोरी मे लगती कहा है।'

जिस ससार मे तुम अपने को मालिक समझ रहे हो, तालियो का गुच्छा लटकाए फिरते हो, बजाते फिरते हो, कभी उसमे से ताली कोई एकाध लगी, कोई ताला खुला ? कि बस तालियो का गुच्छा लटकाए हो। और उसकी आवाज का ही मजा ले रहे हो। कई स्त्रिया लेती है, बड़ा गुच्छा लटकाए रहती है। इतने ताले भी मुझे उनके घर मे नहीं दिखाई पड़ते जितनी तालिया लटकाई है। मगर आवाज, खनक सुख देती है।

जरा गौर से देखो, तुम्हारी सब तालिया व्यर्थ गई है। क्रोध करके देखा, लोभ करके देखा, मोह करके देखा, काम मे डूबे, धन कमाया, पद पाया, शास्त्र पढ़े, पूजा की, प्रार्थना की—कोई ताली लगती है ?

महावीर कहते है, ससार की कोई ताली लगती नही। और जब तुम सब तालिया फेक देते हो, उसी क्षण द्वार खुल जाते है। ससार से सब तरह से वीतराग हो जाने मे ही ताली है, चाबी है।

आज इतना ही।





दूसरा प्रवचन

प्यास ही प्रार्थना है

प्रश्न-सार

क्या यह आरोप सही है कि महावीर और बुद्ध
यह कह कर कि जीवन दुख-ही-दुख है,
भारत और एशिया के जीवन को विपन्न बना गए?

प्रतिक्रमण इतना असहज-सा क्यों लगता है?

प्रसाद संकल्प से मिला या समर्पण से, मालूम नही ..
और अयाचित और असमय।
उसकी वर्षा हो रही है।. ?

श्रवण और पठन-पाठन मे क्या भेद है।

पहला प्रश्न क्या यह आरोप सही है कि महावीर और बुद्ध, यह कहकर कि जीवन दुख ही दुख है, भारत और एशिया के जीवन को सदियो-सदियो के लिए विपन्न और दुखी बना गए? और क्या यह जीवन अस्वीकार की दृष्टि स्वस्थ अध्यात्म कही जा सकती है?

पहली बात, न तो कोई तुम्हे आनदित कर सकता है, न कोई तुम्हे विपन्न कर सकता है। जो भी तुम होते हो, तुम्हारा ही निर्णय है। बहाने तुम कोई भी खोज लो।

महावीर ने कहा, जीवन व्यर्थ है। कहा, ताकि तुम महाजीवन मे जाग सको। तुमने अगर गलत पकड़ा और तुमने इस जीवन को भी छोड़ दिया—और नीचे गिर गए, महाजीवन मे न उठे। एक जगह तुम खड़े थे सीढ़ी पर और महावीर ने कहा, छोड़ो इसे, आगे बढ़ो। छोड़ा तो तुमने जरूर, लेकिन पीछे हट गए। कसूर तुम्हारी समझ का है।

जीवन मे सदा ही उत्तरदायित्व हमारा है। दूसरो पर टालने की आदत छोड़ो। महावीर ने कहा था, ताकि तुम महाजीवन की तरफ उठो। जीवन की निदा की थी, किसी परम जीवन की प्रशसा के लिए।

इस जीवन को जिसे तुम जीवन कहते हो, जीवन कहने जैसा क्या है? इसमे सपन्न होकर भी क्या मिलेगा? यह मिल भी जाए तो कुछ मिलता नहीं, खो भी जाए तो कुछ खोता नही। स्वप्नवत है। स्वप्न से जागने को कहा था। तुम स्वप्न से जागे तो नहीं, और महातद्रा मे खो गए। तुम्हारे दृष्टिकोण मे, तुम्हारी व्याख्या मे कही भूल हो गई। तुम्हारा भाष्य भ्रात है।

महावीर को तो देखो, विपन्न दिखाई पड़ते है? और सपन्नता क्या होगी? महावीर से ज्यादा सुदर महिमा-मडित परमात्मा की कोई और छवि देखी है? महावीर से ज्यादा आलोकित, विभामय और कोई विभूति देखी? कहीं और देखा है ऐसा ऐश्वर्य, जैसा महावीर मे प्रगट हुआ? जैसी मस्ती और जैसा आनद, और जैसा सगीत इस आदमी के पास बजा, कहीं और सुना है? कृष्ण को तो बासुरी लेनी पड़ती है तब बजता है सगीत, महावीर के पास बिना बासुरी के बजा है। मीरा को तो नाचना पड़ता है, तब बजता है सगीत, महावीर के पास बिना नाचे नचा है। कोई सहारा न लिया—वीणा का भी नही, नृत्य का भी नहीं, बासुरी का भी नही। कृष्ण तो सुदर लगते है—मोर-मुकुट बाधे है। महावीर के पास तो सौदर्य के लिए कोई भी सहारा नही—बेसहारे, निरालब। लेकिन कही और देखा है परमात्मा का ऐसा आविष्कार—जीवन की ऐसी प्रगाढ़ता, ऐसा घना आनद। तो महावीर जीवन के विपरीत तो नही हो सकते। नहीं तो सूख जाते, जैसे जैन मुनि सूखे है। जीवन के विपरीत तो नहीं हो सकते, नही तो कुरूप हो जाते, जैसे जैन मुनि हो गए हैं। सिकुड़ जाते। जीवन को छोड़ा है, लेकिन सिकुड़े नही है। मृत्यु को वरण किया है, महामृत्यु को वरण किया है—लेकिन मरे नही है। मृत्यु उन्हे और निखार दे गई। मृत्यु को स्वीकार करके उनका जीवन और भी सपन्न हुआ है, और भी गहन धन की वर्षा हुई है।

तुम मृत्यु से डरे-डरे जीते हो। महावीर को वह डर भी न रहा,

उनका जीवन अभय हुआ है। तुम घबडाए हो, धन छिन न जाए। तो धन भी हो, धन से ज्यादा तो घबड़ाहट आ जाती है कि छिन न जाए। महावीर ने धन छोडा, इतना ही मत देखो, साथ ही घबड़ाहट भी तिरोहित हो गई है। जब धन ही न रहा तो छिनने की बात ही कहा उठती है। महावीर ने वह सब छोड़ दिया जिसके साथ भय आता हो, वह सब छोड़ दिया जिसके साथ चिता आती हो।

लेकिन ध्यान रखना, छोड़ने पर जोर नही है। पाया। चितामुक्त जीवन-दशा पायी। अपूर्व शाति पायी। अभय पाया। सत्य प्रगट हुआ महावीर से। ऐसा बहुत कम हुआ है।

महावीर को अगर गौर से समझो तो पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि महावीर के पास कोई भी कारण नही है। जीसस का सम्मान है—सूली कारण है। जीसस अगर सूली पर न चढे होते, न चढाए गए होते, ईसाइयत पैदा न होती। इसलिए क्रास प्रतीक बन गया। जीसस के दुख ने करोडो लोगो की सहानुभूति को आकर्षित कर लिया। दुख सदा सहानुभूति आकर्षित करता है।

कृष्ण की बासुरी के स्वर है। पशु भी नाच उठे, पक्षी भी आनदित हुए, दौड पड़े स्त्री-पुरुष। महावीर के पास क्या है? न बासुरी है, न सूली है। महावीर निपट खड़े है नग्न, वस्त्र भी नहीं। कुछ भी नही है, जिस कारण लोग महावीर के पास जाए। फिर भी लोग गए। फिर भी उन चरणो मे लोग झुके है।

कृष्ण ने तो कहा 'सर्वधर्मान परित्यज्य, मामेक शरण व्रज। सब छोड, मेरी शरण आ।' तो भी अर्जुन झिझका-झिझका शरण आया। उसकी झिझक से ही तो गीता पैदा हुई। सदेह करता ही चला गया।

महावीर ने कहा 'किसी की शरण जाने की कोई भी जरूरत नही है। मेरी शरण मत आओ, अपनी शरण जाओ।' फिर भी लोग महावीर के चरणो मे आए, जरूर कुछ महिमापूर्ण घटित हुआ है। कुछ अनूठा लोगो को दिखा है।

जैन धर्म से खो गई वह अनूठी बात—वह दूसरी बात है। उससे महावीर को मत जोड़ो। जैन धर्म तुम्हारा है। जैन धर्म तुम्हारी व्याख्या है महावीर के सबध मे। जैन धर्म वह नही है जो महावीर ने दिया है। जैन धर्म वह है जो तुमने लिया है। महावीर ने जो कहा है, वह तो कुछ और है। तुमने जो पकड़ा है, समझा है, वह कुछ और है। तुम्हारी समझ के सग्रह का नाम तुम्हारा शास्त्र, तुम्हारा धर्म, तुम्हारी सभ्यता, सस्कृति है।

निश्चित ही, कल ही मै आपसे कहता था कि चौबीसो तीर्थंकर जैनो के क्षत्रिय है। युद्ध के मैदान से आए। युद्ध की पीड़ा और युद्ध की हिसा और युद्ध की व्यर्थता देखकर आए। उनकी अहिसा भय की अहिसा नही है, कायर की अहिंसा नहीं है—महावीरो की अहिसा है। देखकर कि हिसा मे तो कायरता ही है, उन्होने हिसा का त्याग किया। लेकिन फिर क्या हुआ? जैन धर्म बना तो वणिको से, वैश्यो से। जैनियो मे तुम्हे क्षत्रिय न मिलेगा। सब दुकानदार है। कैसी दुर्घटना घटी। जिनके सब तीर्थकर क्षत्रिय है, उनके सब अनुयायी दुकानदार है। नहीं, जिन्होने पकडा है उन्होने कुछ और अर्थ से पकड़ा है। उन्होने कहा, न किसी को मारेगे, न कोई हमे मारेगा, न झगडा-झासा करेगे, न पिटेगे। उन्होने 'अहिसा परमोधर्म' का उदघोष किया। उन्होने कहा, यह बात बडी अच्छी है। यह तो ढाल की तरह है कि हम मरने-मारने मे विश्वास ही नही रखते।

मगर जरा जैनियो की तरफ देखो, इनकी अहिसा मे अभय है? भय ही भय को तिलमिलाता पाओगे। ये भय के कारण अहिसक है।

ये डरे है कि कोई मारे न, कोई लूटे न, कोई खसोटे न, कोई झझट न करे, तो स्वाभाविक है कि अहिसा की चर्चा करो।

महावीर की अहिसा मृत्यु के पार जो अनुभव है उससे आती है। जैनो की जो अहिसा है, जीवन का ही अनुभव नहीं, मृत्यु के अनुभव की तो बात दूर।

एक जैन ने प्रश्न पूछा है कि 'आप कहते है कि वह परम अवस्था तो शून्य की है, तो ऐसे शून्य को पाकर क्या करेगे? इससे तो यही जीवन ठीक है। कम से कम सुख-दुख का अनुभव तो होता है।'

शून्य का डर। इससे वे स्वर्ग-नर्क, सुख-दुख, कुछ भी हो झेलने को तैयार है, मिटने को तैयार नही है। शून्य यानी मिटना। न तुम यहा मिटने को तैयार हो, न तुम वहा मिटने को तैयार हो। बचना चाहते हो। बचाव भय की अभिव्यक्ति है। अब जिन मित्र ने पूछा है, दुख को भी पकड़ने को तैयार है, कम

से कम रहेगे तो। बचेगे तो। दुख ही सही, नर्क ही सही—मगर मिटने को तैयार नही है।

और जीवन का परम सत्य यही है कि जब तक तुम अपने को पकड़े हो तब तक मिटते रहोगे। और जिस दिन तुम अपने को छोड़ दोगे और जिस दिन तुम शून्य होने को तैयार हो जाओगे, उसी क्षण पूर्ण घटित होता है—तत्क्षण घटित होता है। उस क्राति मे फिर एक क्षण भी प्रतीक्षा नही करनी होती। तुम इधर शून्य होने को तैयार हुए कि तुम पूर्ण हुए। फिर कोई बाधा न रही। कोई भय न रहा तो बाधा कैसी? तुम जब मिटने तक को तत्पर हो गए तो तुम्हारी कोई पकड़ न रही। जो शून्य होने को राजी है वह धन को थोडे ही पकड़ेगा। जिसने अपने को ही न पकडा वह धन को क्या पकडेगा। सारी पकड़ के भीतर पहली पकड़ तो अपनी पकड़ है। तुम धन को किसलिए पकड़ते हो? धन के लिए ही थोडी कोई धन को पकड़ता है—अपने को पकड़ता है, इसलिए धन को पकड़ता है। क्योकि धन सुरक्षा देता है, भविष्य मे व्यवस्था देता है। कल घबडाहट न होगी, तिजोरी है, बैक मे बैलेस है। बीमारी आए, बुढापा आए, कुछ भी हो, तो धन सुरक्षा का आश्वासन देता है।

तुम अपने को पकडते हो, इसलिए धन को पकड़ते हो। तुम अपने को पकडते हो, इसलिए पत्नी को, बच्चे को पकडते हो।

उपनिषद कहते है, कोई पत्नी को थोड़े ही प्रेम करता है, लोग अपने को प्रेम करते है, इसलिए पत्नी को प्रेम करते है। पत्नी तो बहाना है।

तुम कहते हो कि तुमसे मुझे प्रेम है। लेकिन तुम्हारे प्रेम का अर्थ कितना है? क्या है अर्थ? इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे होने के कारण मै प्रफुल्लित होता हू, तुम हो तो मै सुख पाता हू—लेकिन तुम साधन हो, साध्य तो मै ही हू। तुम अपने बच्चो को प्रेम करते हो, उनको पकड़ते हो—किसलिए? बुढ़ापे के सहारे है। तुम्हारी महत्वाकाक्षाओ के लिए कधा देगे। भविष्य मे तुम्हारी महत्वाकाक्षाओ को पूरा करेगे। तुम तो पूरा न कर पाओगे, यह तुम्हे पता है। महत्वाकाक्षाए अनत है। वासनाए दुष्पूर है—बहुत है। जीवन बड़ा छोटा है गया-गया, हाथ से बहा-बहा है। तुम तो पूरा न कर पाओगे, तुम्हारे बच्चे तुम्हारी याद पूरी करेगे, परपरा को जारी रखेगे, बाप का नाम बचाएगे। तुम तो जा चुके होओगे, लेकिन बच्चो के सहारे किसी तरह तुम अपनी शाश्वतता खोजते हो। तुम सोचते हो, चलो और तरह का अमरत्व तो सभव नही है, इसी बहाने बच्चो मे जीते रहेगे, मेरा ही तो खून है, मेरे ही तो जीवाणु है। चलो यह देह न रहेगी, बच्चो मे जीएगे।

बाप बेटे मे जीता है। मा बेटे मे जीती है। ऐसी परपरा बनती है। 'हम न रहेगे, हमारा तो कोई रहेगा।' इसलिए तुम 'हमारे' को पकड़ते हो। पर सारी पकड़ भीतर 'मै' की है। जिसने समझने की कोशिश की, वह धन को नहीं छोड़ेगा। धन छोड़ने से क्या लेना-देना है। क्योकि धन तो गौण है, असली बात तो 'मै' की पकड छोडने की है। तुम्हे राजी होना है, ऐसी घडी के लिए कि जहा मै भी न रह जाऊ, तो भी क्या हर्ज है। क्या हर्ज है? क्या मिटेगा? क्या खो जाएगा? तुम्हारे हाथ मे क्या है? तुम मुट्ठी खोलने से डरते हो, क्योकि मै कहता हू मुट्ठी खाली है। तुम कहते हो, इससे तो मुट्ठी बधी ही रहे, चाहे तकलीफ होती है बाधे रखने मे, होती रहे—कम से कम बधी तो है। लोग कहते है, बधी लाख की। खाली है, मगर कहते है, बधी लाख की। क्योकि जो दिखाई ही नही पड़ता तो मान लो लाख है, करोड है, जो भी मानना है मान लो। खोलो, लाख गए। मुट्ठी खाली है। लेकिन तुम बाधो कि खोलो, इससे कोई फर्क नही पड़ता, मुट्ठी खाली है।

तुम कहते हो, इससे तो दुख ही बेहतर, सुख का आभास ही बेहतर—कम से कम है तो। यह अनुयायी की आवाज है। जिसने पूछा है वह जैन है। यह महावीर की आवाज नहीं है। महावीर तो कहते ही यही है कि छोडो परिग्रह, छोडो ससार, छोडो वासना, ताकि इस सब छोडने मे, जो इन सब के पीछे छिपा है और अपने को बचा रहा है, वह तुम्हे प्रगट हो जाए कि मूल मे तो तुम अहकार को बचा रहे हो, अपने को बचा रहे हो। सब बहाने छोडो तो साफ दिखाई पड़ जाएगा कि अपने को बचाने मे लगे हो। लेकिन बचाने मे सार क्या है? और बचा-बचाकर तुम बचाओगे कैसे? या तो तुम बचोगे ही, अगर वह तुम्हारा स्वभाव है, और अगर स्वभाव मे ही अमरत्व नही है तो तुम लाख बचाओ, बच न सकोगे।

इसलिए महावीर कहते है छोड़ो यह आपा-धापी। छोडो यह बचने की आकाक्षा। यह जीवेषणा छोडो। जीवेषणा सभी पापो का आधार है। मै जीना चाहता हू, चाहे फिर दूसरो को मारकर

भी जीना पड़े, तो भी जीऊगा। मै जीना चाहता हू, मुझे क्या फिक्र है कि कौन मरता है।

तो महावीर की सारी अहिसा का सूत्र यही है, कि तुम्हारे जैसे ही सभी जीना चाहते है। तुम वही करो उनके साथ जो तुम अपने साथ करना चाहते हो। तो तुम किसी को मारो मत। लेकिन जो किसीको न मारेगा, वह मरना शुरू हो जाएगा।

यह जीवन तो बडा सघर्ष है। यहा तो तुम दूसरे की गर्दन न दबाओ तो कोई तुम्हारी गर्दन दबाएगा। यहा तो सुरक्षा का सबसे श्रेष्ठ उपाय आक्रमण है। मैक्यावली से पूछो। महावीर से अहिसा समझ लो, मैक्यावली से हिसा समझ लो। मैक्यावली कहता है कि इसके पहले कि कोई हमला करे, हमला करो, इसके पहले कि कोई तुम पर हमला करे, हमला कर दो। मौका मत दो पहल का, अन्यथा तुम पिछड़ ही गए सघर्ष मे। मार लो, मार डालो, इसके पहले कि कोई तुम्हे मारे। यही सूत्र है—जीवन मे सघर्ष का, अपने को बचाने का। बडी मछली छोटी मछली को खा जाती है। तुम शक्तिशाली बनो और दूसरो को पीते चले जाओ। उसी मे तुम्हारा जीवन है।

महावीर कहते है, ऐसे जीवन को क्या करोगे? इस जीवन का सार भी क्या है, अर्थ भी क्या है? बच भी जाएगा तो क्या बचेगा, हाथ क्या लगेगा? हाथ-लाई क्या होगी?

महावीर कहते है, सब देखा। सारा जीवन झूठा है, भ्रात है। यह दूसरे को मारने योग्य तो है ही नही। अगर दूसरे को बचाने मे अपने को मिटा भी देना पडे तो मिटा दो—इसमे कुछ हर्जा नहीं है, कुछ जा नहीं रहा है। और महावीर इतने आश्वस्त होकर यह कहते है, क्योकि वे जानते है, जो तुम्हारे भीतर अतर्तम मे छिपा है उसकी कोई मृत्यु नही है। जिसे तुम बचा रहे हो, वह तुम्हारी झूठी प्रतिमा है, वह तुम्हारा स्वय के प्रति झूठा भाव है। जिसे तुम बचा रहे हो, अहकार, वह तो मरेगा। वह तो समाज का दिया हुआ है, मौत के साथ समाप्त हो जाएगा। तुम जैसे आए थे, कोरे, कुआरे, जन्म के साथ, ऐसे ही कुआरे-कुआरे तुम मृत्यु के साथ जाओगे। तुम्हारा नाम-धाम, पता-ठिकाना, सब यही छूट जाएगा। और वह जो मृत्यु के पीछे भी चला जाता है तुम्हारे साथ और जन्म के पहले भी तुम्हारे पास था, उसकी कोई मृत्यु नही है। तुम दौड छोड़ो बचने की, तो तुम्हे उसका पता चलेगा जो सदा ही बचा हुआ है। तुम अपनी सुरक्षा न करो, तो तुम्हे उसका पता चल जाएगा जो सदा सुरक्षित है।

जब मै कहता हू शून्य होने की बात, तो उसका कुल इतना ही अर्थ है कि पूर्ण तुम हो। इधर तुम शून्य होने को राजी हुए तो तुम्हारी दौड़-धूप मिटी। दौड़-धूप मिटी तो सारी चेतना मुक्त हुई दौड़-धूप से, चेतना घर लौटी। बाहर नही जाओगे तो कहा जाओगे? घर आओगे। घर आने का कोई रास्ता थोड़े ही है—बस बाहर जाना छोड़ देना है कि घर आ गए। घर तो तुम हो ही, तुम्हारी वासना ही भटकती है दूर-दूर।

यहा तुम बैठे मुझे सुन रहे हो हो सकता है, तुम यहा सिर्फ बैठे हो शरीर की भाति, तुम्हारी वासना कही और भटकती है—कलकत्ते मे होओ, दिल्ली मे होओ, बबई मे होओ। तो जितना तुम्हारा मन बबई मे चला गया मुझे सुनते वक्त, उतने तुम यहा नही हो। अगर तुम्हारा पूरा मन ही बबई मे चला गया, तो तुम यहा बिलकुल नहीं हो। यहा तुम्हारा होना न होना बराबर है। तुम होते न होते कोई फर्क नहीं पडता। सिर्फ एक प्रतिमा बैठी है, जिसमे कोई प्राण नही है। क्योकि प्राण तो वासना मे भटक गए। तुम कही जाते थोड़े ही हो बाहर, वासना मे मन उलझा कि तुम बाहर गए। वासना बहिर्गमन का मार्ग है। वासना बाहर जाना है। क्षणभर को भी अगर तुम बाहर न जाओ तो तुम जाओगे कहा फिर? जब बाहर जाने के सब सेतु टूट गए, सब द्वार-दरवाजे बद हो गए, सब मार्ग व्यर्थ हो गए, न तुम धन मे गए, न तुम पद मे गए, न तुम प्रेम मे गए, तुम कही बाहर गए ही नहीं, तो तुम अचानक अपने को घर मे बैठा हुआ पाओगे—जहा तुम सदा से बैठे हुए हो, जहा से तुम क्षणभर को भी हटे नही, तिलभर को भी हटे नहीं, जहा से हटने का कोई उपाय नही। उसी को महावीर स्वभाव कहते है। उसी को महावीर धर्म कहते है, जिससे हटा न जा सके, जिसे खोकर भी खोया न जा सके, जिसे मिटाकर भी मिटाया न जा सके। जिसे तुम लाखो जन्मो मे चेष्टा कर-कर के, भटक-भटककर भी नहीं अपने से छुड़ा पाए हो, वही तुम्हारा स्वभाव है। जो छूट जाए, वह पर-भाव है।

तुम्हारे वस्त्र छीने जा सकते है, वह तुम्हारा स्वभाव नहीं। तुम्हारा शरीर छिन जाता है, वह तुम्हारा स्वभाव नही। तुम्हारा मन भी छिन जाता है, वह भी तुम्हारा स्वभाव नहीं। देह और मन के पार कुछ है—अनिर्वचनीय, जिसे न कभी छीना जा सका है,

न छीना जा सकता है।

बादल घिरते हैं आकाश मे, इससे कुछ आकाश नष्ट नहीं हो जाता। क्षणभर को दिखाई नहीं पड़ता। खो जाता है। ओझल हो जाता है। पर मिटता थोडे ही है। फिर बादल चले जाते है, वर्षा समाप्त हुई, बादल विदा हो गए—आकाश अपनी जगह खड़ा है। ऐसी ही वासनाए आती है तुम्हारे अतर-आकाश मे, क्षणभर को घिरती है, शोरगुल मचता है, गड़गड़ाहट होती है, बिजलिया चमकती है—क्रोध है, लोभ है, मोह है, माया है—हजार तरह के बादल घिरते है, गडगड़ाहट होती है, वासना बरसती है। फिर जिस दिन भी बोध सम्हलेगा—गए बादल। इससे तुम खराब थोड़े ही हो गए। तुम्हारा कुआरापन कुछ ऐसा है कि खराब हो ही नहीं सकता। बादल सदा आएगा-जाएगा, आकाश तो कुआरा बना रहता है। आकाश व्यभिचारित थोडे ही होता है। रेखा भी तो नही छूट जाती बादल की। छाया भी तो नहीं छूट जाती बादल की। पद-चिह्न खोजकर भी तो न खोज पाओगे। कोई हस्ताक्षर तो बादल कर नही जाता कि यहा मै आया था। कोई नाम-ठिकाना भी नहीं छूट जाता। ऐसे ही तो तुम्हारी देह खो जाती है।

कितनी देहे इस पृथ्वी पर रही है तुमसे पहले। तुम कुछ नये हो? वैज्ञानिक कहते है, जहा तुम बैठे हो वहा कम से कम दस लाशे गड़ी है। जितनी जगह तुम बैठने के लिए लेते हो, वहा कम से कम दस आदमी मर चुके, गड चुके, खो चुके। वही तुम भी खो जाओगे। यह तो आदमियो की बात हुई। अब जानवरो का हिसाब करो, कीड़े-मकोड़ो का हिसाब करो, मक्खी-मच्छरो का हिसाब करो, वृक्ष-पौधो का हिसाब करो, तो तुम जहा बैठे हो वहा अनत जीवन हुए और खो गए। वही तुम भी खो जाओगे। खोते ही चले जा रहे हो। प्रतिक्षण खिसकते जा रहे हो गड्ढे मे। मौत पास आती चली जाती है। एक-एक क्षण जीवन रिक्त होता चला जाता है। बूंद-बूद कर के घड़ा खाली हो जाएगा। लेकिन फिर भी तुम हो—जो कभी खाली नहीं होगा।

जो ससार से मिला है, ससार वापिस ले लेता है। लेकिन कुछ तुम्हारे पास है जो तुम्हे किसी से भी नहीं मिला—जो बस तुम्हारा है। वही तुम्हारी सपदा है। वही तुम्हारी आत्मा है।

जब कहते है, शून्य हो जाओ तो उसका कुल इतना ही अर्थ है बादलो से शून्य हो जाओ, ताकि आकाश से पूर्ण हो जाओ। उसका इतना ही अर्थ है व्यर्थ से शून्य हो जाओ, ताकि सार्थक का आविर्भाव होने लगे। बाहर से शून्य हो जाओ, ताकि भीतर की धुन बजने लगे। बाजार मे खडे हो। भीतर तो धुन बजती ही रहती है, सुनाई नहीं पड़ती, बाजार का शोरगुल भारी है। भीतर आओ। थोड़े आख-कान बद करो। छोड़ो बाजार को। भूलो बाजार को। तो भीतर की धुन सुनाई पड़ने लगे, अनाहत का नाद सुनाई पड़ने लगे।

अहर्निश बज रही है वह वीणा। क्षणभर को भी उस कलकल-नाद मे बाधा नही पड़ती। पर बड़ा सूक्ष्म है नाद। जब तुम सुनने मे सजग होओगे, जब तुम्हारा श्रवण सधेगा, जब तुम्हारे कान भीतर की तरफ मुड़ेगे और जब तुम धीरे-धीरे बारीक को, बारीकतम को पकड़ने मे कुशल हो जाओगे—तब, तब तुम्हे उस वीणा का नाद सुनाई पड़ेगा, जिसको योगी अनाहत कहते है।

और सब नाद तो आहत है, दो चीजो की टक्कर से पैदा होते है। मै ताली बजाऊ तो दो हाथ टकराते हैं। एक हाथ से तो ताली बजती नहीं। लेकिन एक नाद है तुम्हारे भीतर, जो अहर्निश चल रहा है। वह आहत-नाद नही है। वह दो हाथ की ताली नही है, एक हाथ की ताली है। वह किन्ही दो चीजो की टकराहट से पैदा नही हुआ, अन्यथा किसी न किसी दिन बद हो जाएगा। जब दो चीजे न टकराएगी तो बद हो जाएगा। वह तुम्हरा स्वभाव है। ओकार। प्रणव। वह तुम्हारा स्वभाव है।

यह तुमने कभी सोचा? हिदू है, जैन है, बौद्ध है, भारत मे ये तीन महाधर्म पैदा हुए। तीनो के विचारो मे बड़ा भेद है, जमीन-आसमान का भेद है। तीनो की सैद्धातिक धारणाए भिन्न है। तीनो के ढाचे अलग है, मार्ग अलग है, पथ अलग है। कोई समर्पण का मार्ग है, कोई सकल्प का। कोई सघर्ष का मार्ग है, कोई शरणागति का—कोई पूजा-प्रार्थना, भक्ति का, कोई ध्यान-समाधि का। लेकिन एक बात इन तीनो धर्मो ने स्वीकार की है—वह है ओकार। वह है ओऽम् का नाद। उसे इनकार करने का उपाय नहीं। क्योकि जब भी कोई भीतर गया है, तो उस नाद को सुना है। जब भी कोई भीतर गया है तो ऐसा कभी हुआ ही नही, कोई अपवाद नही कि वह नाद न सुना हो। वह जीवन-नाद है, ब्रह्म-नाद है।

तो जब हम कहते है, शून्य हो जाओ, तो अर्थ इतना ही है कि

बाहर के शोरगुल से शून्य हो जाओ। और अभी तो तुम जो भी जानते हो, सब बाहर का शोरगुल है। इसलिए कहते है, तुम जो हो उससे बिलकुल शून्य हो जाओ। अभी तो तुमने व्यर्थ को ही जोड़-जोड़कर अपनी प्रतिमा बनायी है। अभी तो तुमने कागज-पत्तर को जोड-जोड़कर अपनी प्रतिमा बनायी है। अभी तो शाश्वत का तुम्हारी प्रतिमा से कोई भी सबध नहीं है। अभी तो तुम कहते हो, यह मेरा नाम है, यह मेरी जाति है, यह मेरा धर्म है, यह मेरा घर है, यह मेरा कुल है यह मेरा देश है, यह मै हिदू हू कि जैन हू, कि मुसलमान हू कि ईसाई हू, कि मै गरीब हू कि अमीर हू, कि शिक्षित कि अशिक्षित, कि गोरा कि काला, कि सम्मानित कि अपमानित, कि साधु कि असाधु—अभी तो तुमने जो भी जोड़ा है, बाहर से जोड़ा है। यह तो दूसरो ने जो कहा है, उसको ही तुमने इकट्ठा कर लिया है।

इसलिए कहते है, तुम अपने से खाली हो जाओ। यह सब कूडा-कर्कट हटाओ। और घबडाने की कोई जरूरत नही। तुम बेफिक्र कूड़ा-कर्कट हटाओ, क्योकि जो कूडा-कर्कट नही है, उसे तुम हटाओ भी, तो भी हटा न सकोगे। इसलिए भय की कोई जरूरत नही है। इसलिए डर-डरकर हटाने की जरूरत नही कि कहीं ऐसा न हो कि हीरे खो जाए। वे हीरे कुछ ऐसे है कि खो ही नहीं सकते। इसलिए तुम आग भी लगा दो इस मकान मे, तो भी कुछ बिगडेगा नही। तुम खालिस, साबित निकल आओगे, क्योकि तुम्हारा स्वभाव जलता नही।

नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावक ।

न आग उसे जलाती, न शस्त्र उसे छेदते है। अमरत्व तुम्हारा स्वभाव है।

लेकिन अनुयायी की भाषा है, वह घबडाता है। वह कहता है, इससे तो ससार मे बने ही रहे, चलो झूठे ही सही, कुछ तो है सुख। मान्यता ही सही, मिलते नही, आशा ही बधाते है, कुछ तो है। दुख है, चलो कोई हर्जा नही, हम तो है। काटे भी चुभते है, चलो सह लेगे, जूते पहन लेगे, दवा खोज लेगे, मलहम कर लेगे, ऐसे रास्तो पर न जाएगे जहा काटे है—लेकिन कम से कम हम तो हैं। लेकिन इस 'हम' को करोगे क्या? इस अह को करोगे क्या?

मुश्किल नही है मौत, आजमाओ तो सही
मर जाने से पहले क्यो मरे जाते हो?

महावीर का सारा शिक्षण मृत्यु का शिक्षण है—शून्य होने की कला है। पर शून्य होने की कला ही पूर्ण होने की कला है। चाहे दोनो मे से कुछ भी शब्द चुन लो, लेकिन मै कहूगा, तुम शून्य ही चुनना। पूर्ण को चुना कि तुम चूके। क्योकि पूर्ण के साथ लोभ आया। तुमने कहा, 'अरे! तो हम पूर्ण हो जाएगे। गजब!' पकड़ा अहकार ने रस। वही अहकार जिसको छुड़ाना है, छूटना है जिससे, पूर्ण होने की आकाक्षा से भर गया। फिर तुम्हारे गुब्बारे मे और हवा भरने लगेगी। फिर अहकार और बड़ा होने लगेगा। पूर्ण होने का नशा छा गया। इसलिए ज्ञानियो ने शून्य की भाषा कही है—जानते हुए कि अतिमत पूर्ण घटता है लेकिन तुमसे कहना उचित नही। तुमसे कहना खतरनाक है।

महावीर ने जो कहा, उसको तुमने वैसा ही नही सुना है जैसा उन्होने कहा था। अन्यथा ये दुर्दिन, यह दुर्दशा, यह दारिद्र , यह दीनता न घटती। इसलिए जो लोग ऐसा लाछन लगाते हैं, ऐसा विवाद खड़ा करते हैं, उनके विवाद मे तथ्य तो है, लेकिन तथ्य का इशारा तुम्हारी तरफ है, उन्ही की तरफ है। तथ्य का इशारा महावीर की तरफ नही है। काश! तुम महावीर को समझते तो इस देश मे जैसा धन्यभाग फलता, इस देश मे जैसे महिमावान फूलो का जमघट जुड जाता, वैसा कही भी नही हो पाता। अगर महावीर को समझे होते तो तुम्हारे भीतर जो अपरिसीम है, वह प्रगट होता। तुम्हारे चारो तरफ प्रकाश-मडल निर्मित होता। न भी कुछ तुम्हारे पास होता तो भी तुम समृद्ध होते। और अभी तो हालत ऐसी है कि सब कुछ भी तुम्हारे पास हो, तो भी दरिद्रता कहा मिटती है?

तुमने धनी आदमियो की दरिद्रता नहीं देखी, तो फिर तुमने कुछ भी नही देखा। तुमने शक्तिशालियो की शक्तिहीनता नही देखी। तुमने पदधारियो की नपुसकता नही देखी। अकड़ के झडो के पीछे कमजोरी के सिवाय और क्या है? जितने बड़े झडे हाथ मे है, जितने ऊचे डडे हाथ मे हैं, उतनी ही हीनता भीतर छिपी है। हीनता न हो तो कौन डडे और झंडे लेकर यात्राए करता है। क्या जरूरत है? किसको दिखाना है? जिसको अपना स्वरूप दिख गया, उसको दिखाने को अब कुछ भी न बचा।

फिर तुम जिसे जिदगी कहते हो, और कहते हो जीवन का स्वीकार, उसमे जिदगी जैसा क्या है?

था ख्वाब मे खयाल को तुझसे मुआमला

अब आख खुल गई न जिया था न सूद था।

मेरा-तेरा सयोग सपने की कल्पना थी, क्योकि जब आख खुल गई तो—बकौल तुलसीदास 'हानि-लाभ न कछु।' बड़ा हिसाब था। बड़ा धधा किया था सपने मे। सुबह उठकर पाते है, 'हानि-लाभ न कछु।'

जिसे तुम जीवन कहते हो वह स्वप्न है। अच्छा हो, तुम उसे सपना कहो। जीवन को अभी तुमने जाना नहीं। और जिसे तुमने जाना है वह जीवन नहीं है।

कोई मुझको दौरे जमां ओ मका से निकलने की सूरत बता दो
कोई यह सुझा दो कि हासिल है क्या हस्ती-ए-रायगा से।

इस फिजूल की जिंदगी से मिलता क्या है। कोई मुझे सुझा दो कि इसमे क्या अर्थपूर्ण है। कोई मुझे राह बता दो कि कैसे इस व्यर्थ के कारागृह से मै बाहर हो जाऊ।

कोई मुझको दौरे जमा ओ मका से निकलने की सूरत बता दो
कोई यह सुझा दो कि हासिल है क्या हस्ती-ए-रायगा से।

इस व्यर्थ की दौड-धूप से क्या हासिल है?

कोई पुकारो कि उम्र होने आई है
फलक को काफिला-ए-रोज-ओ-शाम ठहराए।

कोई पुकारो, कहो आकाश को कि रोक, अब यह काफिला सुबह और शाम का, समय के पार होने की यात्रा होने दे। समय मे बहुत जी लिये।

सुबह होती शाम होती, उम्र तमाम होती।

फिर वही सुबह, फिर वही साझ, फिर वही दोहरावा—कोल्हू के बैल की तरह घूमते है। आख पर पट्टिया, अधे की तरह। लगता है, यात्रा हो रही है, पहुंचते कही भी नहीं। अगर यात्रा होती होती तो कहीं तो पहुंचते। कभी यह तो सोचो, पहुचे कहा? चलते बहुत हैं, थक गए है बहुत, पहुचते कभी भी नहीं, खडे वहीं के वहीं हैं। कैसी पागल यह दौड़ है, जहा रत्तीभर यात्रा नहीं होती और जीवन पर जीवन चुकते चले जाते हैं।

कोई पुकारो कि उम्र होने आई है
फलक को काफिला-ए-रोज-ओ-शाम ठहराए।

मगर यह सुबह और शाम का काफिला आकाश नही ठहराता—तुम्ही को ठहराना पड़ेगा। यह किसी के पुकारने की बात नही। कोई दूसरा तुम्हारे सुबह-शाम के काफिले को नही ठहरा सकता। यह तो सुबह-शाम की धारा चलती ही रहेगी, तुम ही धारा के बाहर हो जाओ। यह ससार तो चलता ही रहेगा, चलता ही रहा है। तुम्हीं छलाग लगा लो। तुम्हीं किनारे खड़े हो जाओ। बस इतना ही हो सकता है कि तुम अलग हो जाओ इस उपद्रव से, तुम सपने से जाग जाओ।

जिंदगी किसे कहते हो तुम? जन्म और मृत्यु के बीच जो है, उसे तुम जिदगी कहते हो? महावीर कहते है उसे जिंदगी, जो जन्म और मृत्यु के पार है। जन्म और मृत्यु के बीच जो है, वह जिदगी नहीं, एक लबा सपना है। जन्म के समय तुम सो जाते हो, मृत्यु के समय जागते हो—तब पता चलता है कि यह जिदगी एक सपना थी।

खत्म न होगा जिदगी का सफर
मौत बस रास्ता बदलती है।

मौत रास्ता बदलती जाती है। मौत बस रास्ता बदलती है। एक जिंदगी खत्म हुई, दूसरी जिदगी शुरू, दूसरी जिदगी खत्म हुई, तीसरी जिदगी शुरू। मौत सिर्फ रास्ता बदलती है। जब तक कि तुम जागकर अलग न हो जाओ इस धारा से, इस मूर्च्छा और तद्रा से ।

नहीं, महावीर ने इस देश को न तो दीनता दी है न दरिद्रता दी है। हा, यह हो सकता है कि महावीर को सुनकर तुमने जो समझा, उससे तुमने दीनता-दरिद्रता मे अपने को आरोपित कर लिया हो। महावीर ने तो तुम्हे महाजीवन का सूत्र दिया था। महावीर का जो जीवन-अस्वीकार है, उसे इतना ही कहना चाहिए कि वह भ्रामक जीवन का अस्वीकार है। और भ्रामक जीवन का अस्वीकार वास्तविक जीवन की बुनियाद है। भ्रामक जीवन का अस्वीकार, अध्यात्म की शुरुआत है। और सत्य-जीवन की उपलब्धि अध्यात्म की पूर्णता है।

दूसरा प्रश्न प्रतिक्रमण, घर वापिस लौटना, हमे असहज, कठिन और असभव सा क्यो लगता है?

स्वाभाविक है, क्योकि अब तक घर से दूर आने को ही जीवन समझा। उसी की आदत बनी। उसी मे रगे, पगे, बडे हुए। वही हमारे मन का शिक्षण है। वही हमारा सस्कार है। वही हमारे कर्मो की थाती है। वही हमारे सारे जीवनो का निचोड है। बाहर जाने को ही जाना है। कभी भीतर तो गए ही नहीं,

एक कदम न उठाया।

तो जहां कदम कभी न डाले हो, जिस तरफ कभी आख न उठाई हो, उस तरफ जाने मे मन अगर डरे, भयभीत हो—अपरिचित, अनजान रास्ता, पता नहीं कैसा हो कैसा न हो—स्वाभाविक है। इसलिए तो अध्यात्म की लोग बाते करते है, लेकिन जाते नहीं, चर्चा करके समझा लेते है, उतरते नहीं।

चर्चा मे कुछ हर्जा नही है, मन बहलाव है, मनोरजन है। सुन लेते, समझ लेते, पढ़ लेते, शास्त्र को पकड़ लेते, मदिर हो आते, मस्जिद हो आते—भीतर नहीं जाते।

इसीलिए तो लोगो ने बाहर मदिर और मस्जिद बनाए है कि अगर मदिर-मस्जिद जाने की भी धुन पकड़ जाए तो बाहर ही जाए, कहीं ऐसा न हो कि किसी धुन मे भीतर की तरफ कदम उठा ले और मुश्किल मे पड़ जाए।

रास्ता अपरिचित है, बीहड है। फिर, बाहर के रास्ते पर भीड है। तुम अकेले नहीं, और सब साथ है। भीतर के रास्ते पर तुम अकेले हो जाओगे, वह भी डर है। वहा कोई साथ न जा सकेगा—न मित्र, न सगी, न साथी, न पति, न पत्नी, न बेटे, न मा, न पिता—कोई साथ न जा सकेगा वहा। वहा तो तुम्हे निपट अकेले जाना होगा। जैसे मौत मे तुम अकेले जाओगे, वैसे ही स्वय मे भी अकेले जाना होगा। न कोई दूसरा तुम्हारे लिए मर सकता और न कोई दूसरा तुम्हारे लिए भीतर जा सकता। तो जैसे लोग मौत से डरते है, वैसे ही लोग ध्यान से डरते है। हा, ध्यान की चर्चा वगैरह करनी हो, कर लेते है। इस देश मे से जिससे पूछ लो, जिससे-जिससे पूछ लो, ध्यान क्या है—जवाब दे देगा, प्रार्थना क्या है, पूजा क्या है—प्रवचन दे देगा। ऐसी कोई बात ही नहीं जिसको इस देश मे लोग न जानते हो। ब्रह्म की बात उठाओ, हर कोई, राह चलता ब्रह्मज्ञान बघार देगा। आसान है, उसमे कुछ हर्जा नहीं है। लेकिन भीतर जाने की बात मत करो। पाव डगमगाते है। घबड़ाहट होती है।

पहली तो घबड़ाहट यह कि रास्ता नया! दूसरी और गहरी घबड़ाहट यह कि अकेले है। अकेले तो कभी कही गए नहीं, जब भी गए किसी के साथ गए। कोई यात्रा अकेले न की, तो अकेले की आदत ही छूट गई है। इसीलिए तो सन्यासी अकेले के अभ्यास के लिए एकात मे चला जाता है। वह सिर्फ बाहर से अकेलेपन का अभ्यास कर रहा है, ताकि धीरे-धीरे भीतर भी अकेले होने की हिम्मत आ जाए, कुशलता आ जाए। बाहर एकात के अभ्यास का इतना ही प्रयोजन है कि थोड़ा अकेले होने की हिम्मत आ जाए। बैठता है अधेरी गुफा मे, कोई नही, अकेला, अधकार घिरता है, रात आ जाती है, जगली जानवर सब तरफ, अकेला। धीरे-धीरे रमता है। धीरे-धीरे भूलने लगता है कि दूसरे की जरूरत है। धीरे-धीरे साहस आता, आत्म-विश्वास बढ़ता है कि नहीं, अकेला भी हो सकता हू। ऐसे बाहर का एकात फिर भीतर ले जाने मे सीढ़ी बन जाता है।

बाहर का एकात अत नहीं है—साधन है। इसलिए जिसने यह समझ लिया कि गुफा मे बैठना आ गया तो अतरज्ञान हो गया, वह भटक गया। गुफा मे बैठे रहो लाखो वर्षो तक, कुछ भी न होगा। गुफा मे बैठना तो सिर्फ एक कदम था। ऐसे ही जैसे कोई तैरना चाहता है, तैरना सीखना चाहता है, तो एकदम से गहरे मे नहीं जाता, किनारे पर, जहा गहराई नहीं है, गले-गले पानी है, कमर-कमर पानी है, वही तडफड़ाता है, वही सीखता है। सीख ले एक दफा तो फिर गहरे मे जाता है। पर सीखकर भी वही तड़फड़ाता रहे किनारे पर ही, तो तैरना सीखा न सीखा बराबर। उस किनारे पर तो बिना ही सीखे खड़े हो जाते, गले-गले पानी था, सुरक्षित थे।

तो जो लोग गुफाओ मे बैठकर बंद हो गए है और सोचते है, पा लिया है, वे भी भ्राति मे है।

कुछ ससार मे खोए है, कुछ सन्यास मे खो गए हैं।

सन्यास तो केवल साधन है, ताकि तुम्हे थोड़ा भीड़ से बाहर निकाल ले, थोड़ी झलक दे, और इस बात का भरोसा दे कि अकेले मे भी मजा है, कि अकेले मे और ज्यादा मजा है, कि अकेले की भी धुन है, कि अकेले का भी नशा है, कि मस्ती है, कि ऐसी मस्ती तो कभी न पायी थी जो अकेले में मिली! थोड़ा गुफा मे बैठकर, बाजार से दूर, भीड़ से दूर, अपनो से दूर, ससार की चिताओ और फिक्रो से दूर, एक बार स्वाद आ जाए कि अरे। बाहर के अकेलेपन मे इतना स्वाद है तो कितना न होगा भीतर के अकेलेपन मे। फिर तो भीतर की भी पुकार उठने लगती है। निश्चित ही कोई गुफा इतनी अकेली नहीं है जितनी अकेली भीतर की गुफा है। क्योकि गुफा मे भी वृक्ष हिलते है बाहर, आवाज होती है, हवा गुजरती है, कोयल गीत गाती है, सिह दहाड़ता है। कोई है! आकाश मे चाद-तारे है। हिमालय की

गुफा मे भी बैठे हो तो हवाई जहाज निकल जाता है। कोई है। कोई इतने अकेले नहीं हो, कहीं भी इतने अकेले नही हो। ससार किसी न किसी रूप मे अपनी खबर भेजता ही रहता है। एक चींटी काट जाती है, एक बिच्छू आ जाता है—उचककर खड़े हो जाते हो। कोई है। एकदम अकेले नहीं हो।

भीतर की गुफा मे कोई भी नही है। न कोई हवाई जहाज गुजरता, न कोई चींटी चढ़ती, न कोई बिच्छू आता, न कोई सिह दहाड़ता, न वृक्षो मे हवा की सरसराहट होती, न पानी का कलकल-नाद है—कोई भी नहीं है, कोई भी नहीं है। वहा बस विराट, विराट, निस्तब्ध, निबिड़ तुम हो। बड़ा गहन, परम गहन शून्य है वहा। वहा ऐसी शाति है जैसी तब थी जब परमात्मा ने सोचा भी न था, 'अकेला हू, ससार को बनाऊ', वैसी शाति।

उस घड़ी मे तुम फिर पहुच जाते हो जहा परमात्मा रहा होगा, ससार को बनाने के पहले। तुम प्रथम को छू लेते हो। तुम उस सूर्योदय के क्षण मे पहुच जाते हो, जहा ससार शुरू न हुआ था, जहा अभी ससार प्रगट न हुआ था, बीज मे छिपा था, जहा ब्रह्माड अभी अड मे खोया था, जहा अभी सपना परमात्मा का फैलना शुरू न हुआ था। तुम सृष्टि के प्रथम चरण मे पहुच जाते हो। वैसी गहन शाति है। अनत शाति है। शाश्वत शाति है।

स्वाभाविक, घबड़ाहट होती हे। वह शाति वैसी ही है, जैसी मृत्यु मे है। सब खो जाता है, तो डर लगता है। इसलिए भीतर जाने की लोग बाते सुनते है, विचार भी करते है कि कभी जाएगे।

दो व्यक्ति बात कर रहे थे। एक-दूसरे के ऊपर अपने-अपने जीवन की छाप डालने की चेष्टा कर रहे थे। बड़ी हाक रहे थे। एक ने कहा कि मैं रोज सुबह पाच बजे उठता हू। दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं, मै तीन बजे उठता हू। ऋषि-मुनि सदा तीन बजे ही उठते रहे। पाच बजे भी कोई उठना है। आलसी हो। मै तीन बजे उठता हू—स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ, फिर घूमने जाता हू सूर्योदय के समय, फिर आकर शास्त्र-अध्ययन, मनन, फिर दफ्तर जाता हू, फिर दफ्तर से लौटता हू, फिर खेलने जाता हू, फिर सांझ घर आता हू—बच्चों के पास बैठना, चर्चा, सगीत, फिर ठीक समय पर, नौ बजे सो जाता हू।

दूसरा सुनकर बड़ा चकित हुआ। उसने कहा, 'कब से ऐसा कर रहे हो?' वह व्यक्ति बोला, 'यह मत पूछो। कल से शुरू करने का इरादा है।'

बस लोग इरादे बाधते हैं। ध्यान-करेगे। जिसने कहा, करेगे, चूका। करो। इस क्षण है क्षण। उतरो, योजना मत बनाओ। योजना मन का धोखा है। मन बड़ा चालाक है। वह कहता है, कल करेगे।

लोग मेरे पास आते है, वे कहते हैं, सन्यास मे उतरना है। मै कहता हू, 'उतर जाओ, उतरना है तो। कौन रोक रहा है? मै तो नहीं रोक रहा।' वे कहते है, 'नहीं, उतरेगे।' फिर तुम्हारी मर्जी। कल पर तुम्हारा भरोसा है? कल होगा? ऐसा आश्वस्त हो? बीच मे मौत आ जाएगी तो क्या करोगे? कहोगे कि सन्यास लेना है, जरा ठहर?

सन्यासिनी है हमारी गीता। उसके पिता सन्यास लेना चाहते थे। कोई सालभर से मुझसे कहते थे। सुनते है मुझे कोई दस वर्षो से। अभी कोई दो महीने पहले आए थे। महीनेभर यहा रहे। दो तीन बार मिलने आए। मैने उनसे कहा, 'अब किसलिए देर कर रहे हो?' वे कहते है, 'कुछ देर नही है बस । अब आप तो समझते है। लेना है, और लेकर रहूगा।' आखिरी बार मुझे मिलने आए थे, मैने उनसे कहा कि 'पक्का है, कल होगा?' उन्होने कहा, 'अभी तो कोई बूढ़ा नही हो गया हू।' लेकिन गए। वह आखिरी मिलना हुआ। उस दिन यहा से उठकर गए, अस्पताल मे ही गए सीधे। रात हार्ट-अटैक हो गया। फिर बचे नही।

कल पर टालते है, कल कर लेगे। जिसने कल पर टाला, वह असल मे करना नही चाहता। अच्छा हो कि कहो, करना नही है। तो भी कम से कम ईमानदारी तो होगी, सत्य तो होगा, प्रामाणिकता तो होगी। लेकिन बेईमानी बडी है, तुम कहते हो, करेगे। इससे तुम छिपाते हो। करना भी नही चाहते और यह भी अपने को आश्वासन दिला लेते हो कि कोई बुरा आदमी थोडे ही हू, धार्मिक आदमी हू, करना तो है ही।

लोग बहाने खोजते है—न मालूम कितने-कितने। पति कहता है कि पत्नी रोकती है। कौन किसको रोक सका है· कौन किसको रोक सका है, कब रोक सका है। मौत जब आएगी तो पत्नी रोकेगी? और किसी चीज मे पत्नी नही रोक पाती। पत्नी जिदगीभर से रोक रही है कि दूसरी औरतो को मत देखो, नहीं रोक पायी। तुम कहते हो, क्या करे, मजबूरी है। मगर जब कहती है, ध्यान मत करो—तत्क्षण राजी हो जाते हो, बिलकुल

ठीक है। पत्नी रोकती है, क्या करे।

तुम जिसमे रुकना चाहते हो, किसी का भी बहाना खोज लेते हो। जिसमे तुम रुकना नही चाहते, तुम कोई बहाना मानने को राजी नहीं होते। तुम कहते हो, विवशता है। वासना पकड लेती है, क्या करें? चिकित्सक रोक रहा है कि ज्यादा खाना मत खाओ। पत्नी रोक रही है, बच्चे समझा रहे है, पड़ोसी मित्र समझाते है।

एक मेरे मित्र है, खाए चले जाते है। बहुत भारी हो गई देह, सम्हाले नहीं सम्हलती। चिकित्सक समझा-समझाकर परेशान हो गया है। अभी आखिरी बार चिकित्सक के पास गए थे तो कहने लगे कि बडी अजीब-सी बात है। रात सोता हू तो आख खुली की खुली रह जाती है। चिकित्सक ने कहा कि रहेगी, चमड़ी इतनी तन गई है कि जब मुह बद करते हो तो आख खुल जाती है, जब मुह खोले रहते हो तो थोड़ी चमड़ी शिथिल रहती है, तो आख बद रहती है। होगा। सारी दुनिया रोक रही है। खुद भी कहते है, रोकना चाहते है, मगर क्या करे, विवशता है।

ऐसी विवशता कभी ध्यान के लिए पकडती है? ऐसी विवशता कभी सन्यास के लिए पकड़ती है? ऐसी विवशता कभी आत्मखोज के लिए पकडती है? नही, तब तुम बहाने खोज लेते हो। तुम कोई न कोई रास्ता खोज लेते हो—बच्चे छोटे है, विवाह करना है, जैसे कि बच्चे तुम्हे उठा-उठाकर बड़े करने है। वे अपने से बडे हो जाएगे। तुम न भी हुए तो भी बडे हो जाएगे। तुम न भी हुए तो भी विवाह कर लेगे। तुम जरा उनको विवाह से रोककर तो देखना। तब तुम्हे पता चल जाएगा कि तुम्हारे रोके नहीं रुकते, करने का तो सवाल ही दूर है। तुम्हे कौन रोक सका? तुम बच्चो को कैसे रोक सकोगे?

कोई किसी को रोकता नही, लेकिन आदमी बेईमान है। आदमी रास्ते खोज लेता है। जो तुम नहीं करना चाहते उसके लिए तुम दूसरो पर बहाना डाल देते हो। जो तुम करना चाहते हो, तुम करते ही हो। इसे ईमानदारी से समझना उचित है।

लोग ध्यान की बात करते हैं। लोग आत्मा की बात करते है, परमात्मा की बात करते है। वे कहते है, किसी दिन यात्रा करनी है, तैयारी कर ले। यात्रा कभी होती दिखाई नही पड़ती। वे टाइम-टेबल ही पढते रहते है। कुछ लोग है जो टाइम-टेबल पढ़ते है।

जाओ भी। कभी यात्रा पर भी निकलो। डर स्वाभाविक है। डर के रहते भी जाना होगा। डर के रहते ही जाना होगा। अगर तुमने सोचा कि जब डर मिट जाएगा तब जाएगे, तो तुम कभी जाओगे न।

कुछ न देखा फिर वजुज एक शोला-ए-पुर पेचोताब
शमा तक तो हमने भी देखा कि परवाना गया।

—बस परवाना शमा तक जाता हुआ दिखाई पड़ता है, फिर थोड़े ही दिखाई पड़ता है। फिर तो एक झपट और एक लपट—और गया।

कुछ न देखा फिर वजुज एक शोला-ए-पुर पेचोताब
शमा तक तो हमने भी देखा कि परवाना गया।

बस परवाने को लोग शमा तक ही देख पाते है। जब शमा छू गई, एक लपट—और समाप्त।

लोगो ने ध्यान के पास जाते लोगो को देखा है। बस, फिर खो जाते देखा है। इसलिए घबडाहट है। लोगो ने देखा वर्द्धमान का जाते हुए ध्यान की तरफ, फिर एक लपट—वर्द्धमान खो गया। जो आदमी लौटा, वह कोई और ही था। महावीर कुछ और ही है, वर्द्धमान से क्या लेना-देना। वर्द्धमान तो राख हो गया, जल गया ध्यान मे। सिद्धार्थ को जाते देखा, जो लौटा—बुद्ध। वह कोई और ही।

इसलिए घबड़ाहट होती है कि तुम कही मिट गए। मिटोगे निश्चित। लेकिन यह भी तो देखो कि मिटकर जो लौटता है, वह कैसा शुभ है, कैसा सुदर है।

परवाने को जाते देखा है तुमने, लपट के सौदर्य को भी तो देखो। परवाना, जब खो जाता है प्रकाश मे, उस प्रकाश को भी तो देखो। तो घबड़ाहट कम होगी। इसलिए सदगुरु का अर्थ है किसी ऐसे व्यक्ति के पास होना, जो खो गया, ताकि तुम्हे भी थोड़ी हिम्मत बढ़े, खो जाने मे थोड़ा रस आए। तुम कहो कि चलो, देखे, चलो एक कदम हम भी उठाए।

मिटना तो होता है, लेकिन मिटने के पार कोई जागरण भी है। सूली तो लगती है, लेकिन सूली के पीछे कोई पुनरुज्जीवन भी है। शास्त्र ही पढोगे तो अड़चन होगी। शास्त्र मे कहानी ही वहा तक है, जहा तक परवाना शमा तक जाता है। उसके आगे की कहानी शास्त्र मे हो नहीं सकती। कोई महावीर खोजो। कोई बुद्ध खोजो। किसी ऐसे आदमी को खोजो, जो वहा तक गया

हो, परवाना मिट भी गया हो और फिर भी उस मिटे से उठती हो धूप, उठती हो गध, उठती हो सुवास, कोई जो 'न' हो गया हो और फिर भी जिसमे होने की परम वर्षा हो रही हो। कोई ऐसा व्यक्ति खोजो।

सदगुरु न मिले तो शास्त्र। जब तक सदगुरु मिले, तब तक सदगुरु। शास्त्र तो मजबूरी है। वह तो दुर्भाग्य है। वह तो अधेरे मे टटोलना है। शास्त्र पढ-पढकर घबड़ाहट होगी। और घबड़ाहट को आश्वासन शास्त्र से न मिलेगा, लाख शास्त्र कहे, मगर किताब का क्या भरोसा। जीवत कोई चाहिए।

इसलिए जगत मे जब भी धर्म की लपट आती है, वह किसी जीवत व्यक्ति के कारण आती है। महावीर जब हुए, लाखो लोग सन्यस्त हुए। एक आग लग गई सारे जगल मे। वृक्ष-वृक्षो पर आग के फूल खिले। जिनने कभी सपने मे भी न सोचा होगा, वे भी सन्यस्त हुए।

तुमने कभी जगल देखा है, पलाश-वन देखा है? जब पलाश के फूल खिलते है तो पूरा जगल गैरिक हो उठता है, लपटो से भर जाता है। ऐसा जब महावीर चले इस जमीन पर थोडे दिन, वे दिन परम सौभाग्य के थे। वैसे चरण इस पृथ्वी पर बहुत कम पड़ते है। तो जिनको भी उनकी गध लग गई, जिनको भी थोडी-सी उनकी हवा लग गई, उन्ही को पर लग गए। वही परवाने हो गए। फिर उन्होने फिक्र न की। इस आदमी को देखकर भरोसा आ गया। उन्होने कहा कि ठीक है, तो हम भी छलाग लेते है। एक श्रद्धा जन्मी। श्रद्धा शास्त्र से कभी पैदा नही होती, शास्त्र से ज्यादा से ज्यादा विश्वास पैदा होता है। श्रद्धा के लिए कोई जीवत चाहिए, कोई प्रमाण चाहिए, कोई प्रत्यक्ष चाहिए—जिसमे वेद खड़े हो। कोई शास्ता चाहिए, जिसमे शास्त्र जीवत हो। फिर जब महावीर खो जाते है तो लोग शास्त्रो मे उनकी वाणी इकट्ठी कर लेते है, फिर पूजा चलती है, पाठ चलता है, पडित इकट्ठे होते है, सब मुर्दा हो जाता है, फिर सब मरघट है। महावीर जीवित थे तब जिन-धर्म जीवित था, फिर तो सब मरघट है।

और ध्यान रखना, हताश मत होना, ऐसा कभी भी नहीं होता कि पृथ्वी पर कोई चरण न हो जिनकी वजह से पृथ्वी धन्यभागी न हो। ऐसा कभी नही होता। इसलिए यह मत सोचना कि क्या करे, अभागे है हम, महावीर के समय मे न हुए। महावीर के समय मे भी तुम्हारे जैसे बहुत अभागे थे, जो महावीर को न देख पाए। महावीर उनके गाव से गुजरे और उन्होने न देखा। उन्होने महावीर मे कुछ और देखा। किसी ने देखा : 'यह आदमी नगा खड़ा है, अनैतिक है। अश्लीलता है यह तो। परम साधु हो चुके है, मगर नग्न खड़ा होना, यह तो समाज के विपरीत व्यवहार है।' खदेडा महावीर को गाव के बाहर, पत्थर मारे। जिसके चरणो मे मिट जाना था, उसका विरोध किया। और यह मत सोचना कि वे नासमझ लोग थे—वे तुम्हीं हो। वे तुम जैसे ही लोग थे। इसमे कुछ फिर फर्क नहीं है, जरा भी फर्क नही है। और जब उन्होने ऐसे तर्क खोजे थे तो उनका भी कारण था, कि यह आदमी वेद-विरोधी है—और वेद तो परम ज्ञान है। अब शास्ता सदा ही शास्त्र-विरोधी होगा। उसका कारण है, विरोधी होने का, क्योकि जब जीवत घटना घट रही हो धर्म की तो तुम बासी बाते मत उठाओ। बासी बातो से क्या लेना-देना? जब ताजा भोजन तैयार हो तो ताजा भोजन बासी भोजन के विपरीत होगा ही, क्योकि तुम बासे को फेक दोगे। तुम कहोगे, जब ताजा मिल रहा है तो बासे को कौन खाए। बासे को तो तभी तक खाते हो जब ताजा नही मिलता, मजबूरी मे खाते हो।

जब शास्ता पैदा होता है तो शास्त्रो को लोग हटा देते है। वे कहते है, 'रखो भी, फिर पीछे देख लेगे। यह घडी पता नही कब विदा हो जाए। अभी तो जो सामने मौजूद हुआ है, अभी तो जो प्रगट हुआ है, अवतरित हुआ है, अभी तो जो लपट जीवत खडी है—इसके साथ थोडा रास रचा ले, थोडा खेल खेल ले, इसके साथ तो थोड़े पास हो ले। यह तो थोड़ा सत्सग का अवसर मिला है, शास्त्र तो फिर देख लेगे। कोई जल्दी नही है, जन्म पड़े है, जीवन पड़े है।'

तो जब भी कोई शास्ता पैदा होता है, पुराने शास्त्रो को माननेवाले लोग उसके विपरीत हो जाते है, क्योकि उस आदमी के कारण शास्त्रो को लोग हटाने लगते है। शास्त्रो को हटाते है तो पडितो को हटाते है, तो सारा व्यवसाय हटाते है। कठिन हो जाता है। पडित दुश्मन हो जाते है। फिर जब यह शास्ता मर जाता है, वही पंडित जो इसके दुश्मन थे, मरघट पर इकट्ठे हो जाते है—श्रद्धाजलि चढाने को। फिर वे ही शास्त्र बना लेते है। उनकी दुश्मनी जीवत से थी, शास्त्र से थोड़े ही थी। फिर वे ही शास्त्र बना लेते है।

यह बड़े मजे की बात है। महावीर तो क्षत्रिय, लेकिन महावीर के जितने गणधर, सब ब्राह्मण। तो बड़ी हैरानी की बात है। क्या, मामला क्या है? महावीर के मरते ही ब्राह्मण झपटे, उन्होने कहा, यह तो अच्छा अवसर मिला, फिर शास्त्र बना लो। उन्होने तत्क्षण शास्त्र खड़े कर दिए। जैन धर्म निर्मित हो गया। अब अगर कोई पुन जीवत धर्म को लाए, तो फिर शास्त्री, पडित, शास्त्र का पूजक, फिर कठिनाई मे पड़ जाता है, फिर मुश्किल मे पड जाता है। वह कहता है, यह फिर गड़बड़ हुई। फिर उसके व्यवसाय मे व्याघात हुआ।

ध्यान रखना, भीतर अगर तुम जाना चाहते हो तो कोई न कोई द्वार कहीं न कही पृथ्वी पर सदा खुला है। तुम जरा आखे खुली रखना, शास्त्रो से भरी मत रखना, तुम जरा मन ताजा रखना, शब्दो से बोझिल मत रखना, सिद्धातो से दबे मत रहना, जरा सिद्धातो के पत्तों को हटाकर तुम जीवत धारा को देखने की क्षमता बनाए रखना। तो कही न कहीं तुम्हे कोई सदगुरु मिल जाएगा। उसके पास ही तुम्हारा भय मिटेगा भीतर जाने का। अभी तो तुम शास्त्र पढ़ते रहो, मदिर मे घटिया बजाते रहो, पूजा करते रहो, अर्चना के थाल सजाते रहो—सब धोखा है।

दिल को महवे-गमे-दिलदार किए बैठे है
रिंद बनते है मगर जहर पिए बैठे है।

लोग बनते है कि मद्यप है, कि शराब पिए है, कि मस्ती मे है। *रिद बनते है मगर जहर पिए बैठे है।* खयाल ही देते है कि बडी मस्ती मे है, लेकिन गौर से भीतर देखो तो हृदय मे सिवाय घावो के और कुछ भी नहीं, जहर पिए बैठे है।

मदिरो मे, मस्जिदो मे, गिरजाघरों मे, जो तुम्हे लोग पूजा और प्रार्थना मे डोलते हुए मालूम पड़ते है, धोखे मे मत पड़ जाना, जरा उनके भीतर देखना, कुछ भी नहीं डोल रहा है। वे नाहक का व्यायाम कर रहे है। जब भीतर कोई डोलता है तो फिर क्या मदिर और क्या मस्जिद। फिर पूजा के थाल क्या सजाना। फिर तो जहा भी वे होते है, वहीं डोलते हैं। कबीर ने कहा है. 'जहा-जहा डोलू सो-सो परिक्रमा, खाऊ-पिऊ सो सेवा।' परमात्मा की सेवा हो गई, खा-पी लिया, मजे से खा-पी लिया, चढ गया भोग। और कहा जाना है?

जिस दिन तुम्हारे जीवन मे मधु का अवतरण होता है, जिस दिन तुम्हारे जीवन मे अतरात्मा की झलक भी मिलने लगती है, उस दिन तुम जहा हो वहीं मदिर है। अतर्यात्रा। तुम्हारी ही देह मदिर बन जाती है।

'प्रतिक्रमण, घर वापिस लौटना, हमे असहज, कठिन, असभव-सा क्यो लगता है?'

स्वाभाविक है। कभी गए नहीं उस द्वार, कभी चखा नहीं उसे, कोई सबध न बना, अजनबी हो—इसलिए। थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करो। बैठो उन लोगो के पास जो पहले से पीये हो। थोड़ी उनकी मस्ती को सक्रामक होने दो। थोड़े उनके साथ डोलो, उठो, बैठो, परिक्रमा करो, सेवा करो। थोड़ा झुको उनके पास, जो लबालब है और ऊपर से बहे जा रहे है। थोड़े न बहुत छींटे तुम तक भी पहुच ही जाएगे।

बस इतनी ही चेष्टा है यहा कि थोड़े छींटे तुम तक पहुच जाए। एक बार भी तुम्हे भीतर की धुन का जरा-सा नशा आ जाए, फिर तुम न रुकोगे, फिर तुम्हे कोई भी न रोक पाएगा। फिर कोई कभी किसी को रोक ही नही पाया।

तीसरा प्रश्न मुझे मालूम नही, प्रसाद सकल्प से मिला या समर्पण से, पर मिला, और मिल रहा है, और अकारण, और अयाचित, और असमय, और भरपूर—वर्षा की भाति।?

अब इससे प्रश्न मत उठाओ। डूबो। अब चिता मत करो कहा से मिल रहा है, क्यो मिल रहा है। परमात्मा जब मिलता है तो ऐसे ही बेबूझ मिलता है। तुम्हारे हिसाब-किताब से थोड़े ही मिलता है। तुमने कुछ किया, इसलिए थोड़े ही मिलता है। तुम ने चाहा ।

अलग बैठे थे फिर भी आख साकी की पड़ी हम पर
अगर है तश्नगी कामिल तो पैमाने भी आएगे।

बस प्यास पूरी हो, तो प्याले भर जाएगे।

अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर।

प्यास हो तो परमात्मा तुम्हें खोजता है। फिर गिड़गिड़ाना थोड़े ही पड़ता है। फिर भिखारी की तरह रोना थोड़े ही पड़ता है, झोली थोड़ी फैलानी पड़ती है।

अलग बैठे थे फिर भी आख साकी की पड़ी हम पर।

कही भी बैठे होओ, अलग कि भीड़ मे, क्या फर्क पड़ता है। जहा प्यास है, वहा साकी की नजर पहुच ही जाती है। प्यास ही

उसके लिए निमत्रण है। प्यास ही प्रार्थना है। जो प्यास नही जानते, वे और शब्द दोहराते है। जिनको प्यास की समझ आ गई, वे सिर्फ प्यास ही प्यास मे डूब जाते है। वे इतने प्यासे हो जाते है कि भीतर कोई प्यासा भी नहीं होता, बस प्यास ही प्यास होती है—इस पार से उस पार, रोए-रोएं मे, धड़कन-धड़कन मे, श्वास-श्वास मे।

अलग बैठे थे फिर भी आख साकी की पड़ी हम पर
अगर है तश्नगी कामिल तो पैमाने भी आएगे।

अगर प्यास पूरी है तो तुमने प्याला तो तैयार कर दिया। अब, अब तुम फिक्र छोड़ो। अब शराब भी आ जाएगी। अब कोई भर भी देगा प्याले को, तुम प्याला तो बनाओ।

सदा ही परमात्मा अकारण घटित होता है। इससे तुम गलत मत समझ लेना मुझे। तुम यह मत समझ लेना कि फिर क्या करना। जब मै कहता हू कि अकारण घटित होता है, तो मै यह कह रहा हू कि तुम जो भी करते हो, वह तो ना-कुछ है। जब परमात्मा घटित होगा तो तुम जानोगे, अरे। मैने कुछ भी तो नहीं किया था। यद्यपि तुमने बहुत किया था, लेकिन अब तुम जानोगे कि कुछ भी तो न किया था। जो मिला है, वह इतना ज्यादा है कि जो किया था अब उसकी बात भी करनी फिजूल है। मिला है खजाना अकूत, जो तुमने किया था वह कौड़ी-कौड़ी था। अब उसकी बात भी उठाने मे शर्म लगेगी। फिर तुम यह थोड़े ही कहोगे परमात्मा से कि 'सुनो जी। कितने उपवास किए, याद हे? कि कितने ध्यान मे बैठता था, भूल तो नही गए? कितना दान-पुण्य किया था।'

सुना है मैंने, एक कजूस मरा। स्वर्ग के द्वार पर पहुचा। द्वारपाल ने पूछा कि 'कुछ पुण्य वगैरह किए है?' ध्यान रखना, ठीक से कहानी सुन लेना, पूछेगा, तुम भी जब जाओगे। और वही गलती मत कर देना जो इस आदमी ने की। उसने कहा, 'हा किये है।' बस यही तो पापी का लक्षण है। अगर वह कह देता 'कहा। क्या पुण्य। सामर्थ्य कहा। करने को मेरे पास क्या था।' द्वार खुल जाते, लेकिन चूक गया। उसने कहा, 'किए है।' तो द्वारपाल ने कहा, 'फिर ठहरो। फिर खाते-बही देखने पड़ेगे। हिसाबी-किताबी आदमी हो।' खाते-बही देखे तो पता चला, एक भिखारी को चार पैसे उसने दान दिए थे।

तुम कहोगे 'बस इतना?' लेकिन 'बस इतना' ही सिद्ध होता है जो तुमने किया है। क्या किया है? कभी एक पैसा किसी भिखारी को दे दिया है। और उसी की जेब काटी थी पहले, नहीं तो भिखारी ही कैसे होता, यह भी तो सोचो। फिर उसी को समझाने लिए एक पैसा भी दे दिया है कि उपद्रव न कर, हड़ताल वगैरह पर मत जा, शात रह। क्या किया है तुमने? चार पैसे भिखारी को दिए थे।

द्वारपाल चितित हो गया। उसने अपने सहयोगी से पूछा, बोल भाई, क्या करे? उसने कहा, 'करना क्या है। चार पैसे वापस दो और कहो कि नर्क जा, नर्क जा, खत्म कर मामला, हिसाब साफ कर।'

तुम्हारा किया कितना हो सकेगा? चम्मच-चम्मच से सागर के किनारे हम बैठे है। चम्मचे भर रहे हैं, इससे कही सागर उलिचता है। इससे कहीं कुछ होता नहीं।

लेकिन इससे तुम यह मत समझ लेना कि मै यह कह रहा हू कि चलो, झझट मिटी, चार पैसे भी अब देने की कोई जरूरत नही। यह मै नही कह रहा हू। मै तुमसे कहता हू, देना। दिल खोलकर देना। लेकिन आखिर मे याद रखना कि वे चार पैसे ही दिये। कितना ही दिया हो, सब दे दिया हो, सब लुटा दिया हो, तो भी चार पैसे ही तुम्हारे पास थे, ज्यादा तो तुम्हारे पास ही न था, ज्यादा तुम देते भी कैसे।

इसलिए जिन्होने पाया है, उनको हमेशा लगा कुछ भी तो नहीं किया, प्रसाद-स्वरूप है। यही भूल पैदा होती है। सुननेवाला समझ लेता है, चलो तब अब यह भी झझट नही। अब कुछ करना ही नही, जब मिलना है प्रसाद रूप तो जब मिलेगा, मिलेगा। लेकिन प्रसाद उन्ही को मिलता है जो अपनी समग्र चेष्टा करते है। मिलता प्रसाद रूप है लेकिन प्रसाद उन्हीं को मिलता है जो समग्र चेष्टा करते है।

इसलिए चिता मत करो। सकल्प से मिला या समर्पण से, यह भी छोड़ो। कैसे मिला, इसकी क्या फिक्र। मिला। अब तो थोड़ा नाचो। अब विचार छोडो, अब तो थोडा समारोह करो। अब तो कुछ उत्सव करो।

जमी पे जाम को रख दे, जरा ठहर साकी
मै इस पे हो लूं तसद्दुक तो फिर उठा के पिऊ।

अब तो जरा बलिहारी हो जाओ। कहो कि जरा रख जमीन पर, पहले मै नाच लू, थोड़ा बलिहारी हो जाऊ इस पर, फिर

उठाकर पीऊ। अब तो थोड़ा नाचो।

ध्यान रखना, प्रसाद जब क्षणभर को भी मिलता हो, कणभर को भी मिलता हो—तुम नाचना। तुम्हारे नाचने से प्रसाद बढ़ेगा। उत्सव मे ही बढ़ता है। तुम्हारी प्रसन्नता मे ही बढ़ता है। तुम्हारे अनुग्रह के भाव मे बढ़ता है। सिकुड़ मत जाना। सोचने मत लगना कि कैसे मिला, कहा से मिला, क्यो मिला, मैने क्या किया था, अब मै क्या करू कि और ज्यादा मिले। इसमे तो खो जाएगा, जो मिला है वह भी खो जाएगा, जो द्वार खुला था क्षणभर को वह भी बद हो जाएगा—तुम्हारे सोच-विचार मे। सोच-विचार से तो पर्दे पड़ जाते है। नाचना। गाना। गुनगुनाना। जो मिला है, उस पर बलिहारी जाना। कहना जमी पर जाम को रख दे, जरा ठहर साकी। परमात्मा से भी कहना, 'जल्दी मत कर, रख। जरा मै नाच तो लू। मै इस पे हो लू तसद्दुक तो फिर उठाके पिऊ। पहले बलिहारी जाऊ, पहले नाचू, पहले थोड़ा उत्सव मना लू, तेरा स्वागत कर लू। अकारण मिला है। बिना मेरे कुछ किए मिला है। तो ऐसे ही उठाकर पी लेना तो अशोभन होगा। शोभा न होगी। ऐसे ही उठाकर पी लेना असस्कृत होगा। थोडा नाचकर, गुनगुनाकर, थोडी गहन कृतज्ञता मे डूबकर।

'मुझे मालूम नहीं, प्रसाद सकल्प से मिला या समर्पण से।'

भाड़ मे जाने दो। मालूम करने की फिक्र ही मत करो। मिल गया। कैसे मिलती है कोई चीज, यह तो तब सोचना चाहिए जब न मिली हो। तब आदमी साधन खोजता है। तब कहता है, कहा से जाऊ। चलो मजिल ही तुम्हे खोजती आ गई, अब तुम फिक्र छोड़ो, कहीं ऐसा न हो कि तुम उधेड़-बुन मे पड जाओ, और मजिल हट जाए। क्योकि जो आ गई है अपने से तुम्हारे पास, अपने से हट भी जा सकती है।

' पर मिला और मिल रहा है—और अकारण।'

सदा ही अकारण मिलता है। अकारण का बोध बनाए रखना। क्योकि मन की वृत्ति है कि वह सोचने लगता है जल्दी कि जो मिल रहा है वह कारण से मिल रहा है।

अमरीका का एक बहुत बडा करोड़पति हुआ मार्गन। वह एक भिखारी को हर महीने सौ डालर देता था। भिखारी पर प्रसन्न था। कुछ भिखारी की आवाज मे बड़ी जान थी। जब भिखारी गीत गाता तो । तो उसने कहा कि अब तुझे बार-बार आने की जरूरत नहीं, एक तारीख को सौ डालर तू ले ही जाया कर। तो वह नियम से सौ डालर एक तारीख को ले आता था। ऐसा वर्षो चला। एक दिन एक तारीख को वह एक तारीख को एक दिन भी नहीं चूकता था वह आकर एक तारीख को खड़ा हुआ दफ्तर मे और मैनेजर ने कहा कि भई सुनो, अब से पचास डालर। उसने कहा, 'क्या ? पचास डालर ? क्या मतलब ?' उसने कहा कि ऐसा है कि मालिक की लड़की की शादी हो रही है, पैसे की उन्हे खुद ही तगी है। धधा भी घाटे मे जा रहा है। थोड़ी मुसीबत मे है। इसलिए पचास। उसने कहा, 'हद्द हो गई। मेरे रुपयो पर लड़की की शादी की जा रही है ? और घाटा तुम्हे लगे, भोगू मै ? समझा क्या है ? बुलाओ मालिक को।'

मन की वृत्ति है कि अगर तुम्हे मिलता चला जाए तो तुम सोचते हो, तुम्हारी पात्रता है। जो तुम्हे मुफ्त मिलता है, तुम धीरे-धीरे सोचने लगते हो, यह भी मेरी पात्रता है। तुम न केवल यह सोचने लगते हो बल्कि तुम प्रतीक्षा करते हो कि मिलना ही चाहिए। अगर न मिले तो शिकायत शुरू हो जाती है।

सोचो। कहा धन्यवाद और कहा शिकायत। कहा आभार और कहा शिकवे। लेकिन मन की यह आदत है। और इस आदत के कारण बहुत-से लोग परमात्मा के द्वार से लौट जाते है। सत्य आ ही रहा था, करीब आ ही रहा था कि उनकी अकड़ आन लगी। अकड आई कि अरे, जब आ रहा है तो निश्चित ही हमने अर्जित किया होगा। जब आ रहा है तो कोई कारण होगा। कुछ हममे होगी खूबी, तभी आ रहा है।

सदा याद रखना, तुम जब भी पात्रता के बोध से भर जाओगे, तभी अपात्र हो जाओगे। जब तक अपात्र होने का तुम्हे स्मरण रहेगा, तुम्हारी पात्रता बढ़ती रहेगी। इस विरोधाभास को महामत्र की तरह स्मरण रखना।

और, जिन्होने भी उसको पीया है, उनमे से कोई भी नहीं बता सका कि क्यो और क्या। पीने के पहले की सब बाते है। पीने के पहले के लिए सब रास्ते और साधन है। पी लेने के बाद तो फिर राज है, फिर तो रहस्य है।

क्या हमने छलकते हुए पैमाने मे देखा
ये राज है मैखाने का इफशा न करेगे।

क्या देखा है लोगो ने परमात्मा मे छलकते हुए ? उसे कहा नहीं जा सकता।

ये राज है मैखाने का इफ्शा न करेगे।
क्या हमने छलकते हुए पैमाने मे देखा
वहा जाकर लोग चुप हो गए हैं।

वाणी की एक सीमा है। बुद्धि की एक सीमा है। जहा तक साधन है वहा तक बुद्धि की सीमा है। जहा साध्य आया, बुद्धि की सीमा गई। क्योकि बुद्धि स्वय साधन है। बुद्धि खोज का उपाय है। जब पहुच गए, तो बुद्धि की कोई जरूरत न रही।

तो इस सौभाग्य को बढ़ाना। और बढ़ाने की कला यह है कि उसे अकारण ही रहने देना। कोई कारण मत खोजना, समझ मे न आए, नासमझी मे रस लेना। समझने की जरूरत कहा है। समझ कहीं खराब न कर दे, कही विश्लेषण खडित न कर दे। उसे राज ही रहने देना। और तब धीरे-धीरे तुम पाओगे कि जो तुम्हे मिला है, वह मिला ही नहीं, वह तुम्हारे भीतर आवास कर लिया है। वह तुम्हारी आखो मे समा गया। वह तुम्हारी आखो का नूर हो गया। वह तुम्हारे हृदय की धड़कन बन गया। और ऐसा ही नही कि तुम्हे मिला है, अगर तुमने उसे ठीक से पीया तो तुम्हारे द्वारा दूसरो पर भी छलकने लगेगा।

हम लिए फिरते है आखो मे चमन ऐ बागवा
जिस तरफ उठी निगाहे-शौक गुलशन हो गया।

और जहा आख उठ जाती है ऐसे आदमी की, वहीं बगीचे हो जाते हैं, वही बगीचे खिल जाते है।

जिस तरफ देख लोगे, वही परमात्मा का फैलाव हो जाएगा। जिस पर तुम्हारी नजर पड जाएगी, वह भी चौक जाएगा। जिसके हृदय मे तुम गौर से देख लोगे, वहा भी कोई बीज तड़फकर टूट पड़ेगा और अकुर हो जाएगा।

पर सम्हालना, मन की आदते बड़ी पुरानी हैं। मन कर्ता बनना चाहता है। वह कहता है, मैने किया, मेरे कर्मो का फल है, देखो। बस वही चूक हो जाएगी। जल्दी ही तुम पाओगे, आई थी जो झलक, खो गई, दिखा था जो प्रकाश अब दिखाई नही पड़ता, खुला था जो द्वार, बद हो गया।

ऐसा न हो पाए। अपने को अपात्र, और भी अपात्र, अपने को ना-कुछ, कर्ता नहीं, सिर्फ भोक्ता जानना—परमात्मा का भोक्ता। प्यासा जानना, अधिकारी नही। और, और-और वर्षा होगी, और-और घने मेघ घिरेगे, और-और तुम तृप्त होओगे, महातृप्त होओगे।

आखिरी प्रश्न जब आपको सुनता हू तो आपका प्रत्येक शब्द दिल की गहराई तक उतर जाता है और हलचल पैदा करता है। लेकिन जब आपको पढता हू तो वह दिमागी खेल बनकर रह जाता है। कृपया बताए कि ऐसा क्यो होता है ?

साफ-साफ है। गणित बिलकुल सीधा है। जब तुम पढते हो तब तुम्हीं होते हो, तब मै नहीं होता। जो तुम पढ़ते हो, वह तुम ही तुम हो। दिमागी खेल बनकर रह जाता है। जब तुम मुझे सुनते हो तो कभी-कभी तुम्हारे जाने-अनजाने मै भी तुम मे प्रवेश कर जाता हू। कम ही तुम ऐसा मौका देते हो। लेकिन कभी-कभी चूक तुमसे हो जाती है। कभी-कभी बे-भान, तुम जरा दरवाजा खुला छोड देते हो, मै भीतर आ जाता हू।

इसलिए तुम जब मुझे सुन रहे हो तो बात और है। इसलिए सत्य सदा कहा गया है, लिखा नही गया। लिखा जा नहीं सकता। कहना भी बहुत मुश्किल है, लेकिन फिर भी कहा जा सकता है, थोड़ा-सा कहा जा सकता है। ऐसी थोड़ी-सी खबर दी जा सकती है। क्योकि कहने मे कई बाते सम्मिलित है, जो लिखने मे खो जाती हैं।

जब तुम किताब पढोगे तो किताब तो मुर्दा होगी। किताब तुम्हारे पास कोई वातावरण तो पैदा न कर सकेगी। किताब का कोई माहौल तो नही होता। किताब तुम्हारे पास कोई जीवत वातावरण निर्मित नहीं कर सकती। वातावरण तुम्हारा होगा, उसमे ही किताब प्रवेश करेगी।

जब तुम मेरे पास हो, जब तुम मुझे सुन रहे हो, यदि सच मे सुन रहे हो, तो तुम्हारा वातावरण यहा नही है, वातावरण मेरा है, हवा यहा मेरी है। तुम मेहमान की तरह उसमे हो। और जो समझदार है वे अपने को वही रख आते है जहा जूते उतारते है, ताकि तुम यहा गडबड़ी न कर सको, ताकि तुम पूरे मुझ मे डूब जाओ, ताकि निर्वस्त्र, नग्न, ताकि पूरे के पूरे, बिना किसी आवरण के, अनावृत्त होकर तुम मुझ मे डूब जाओ, यह थोड़ी-सी देर को जो लहरे मै तुम्हारे आसपास पैदा करता हू, ये तुम्हे छू ले। बोलना तो बहाना है। बोलना तो बहाना है, ताकि तुम उलझे रहो सुनने मे। यह तो ऐसा है, जैसे छोटा बच्चा उपद्रव करता है, खिलौना दे दिया कि खेल, उलझ गया। बिना बोले, तुम मुश्किल मे पड़ोगे। मै न बोलू तो तुम्हारा मन

हजार-हजार जगह जाएगा। बोलता हू, बोलने मे तुम्हारा मन उलझ गया, सुनने मे लग गया, पर यह तो ऊपर-ऊपर की बात है, भीतर कुछ और हो रहा है। इधर तुम उलझे कि उधर मैने तुम्हारे हृदय को टटोला। एक हाथ से तुम्हे खिलौना देता हू, दूसरे हाथ से तुम्हारे हृदय को टटोल रहा हू। कभी-कभी तुम्हारी आदते पुरानी है, मजबूत है। आदते ऐसी हो गई हैं जड़ कि तुम खिलौने मे उलझे भी रहते हो और फिर भी हृदय को बाधे रहते हो, बद रखते हो। कभी-कभी खुल जाता है। उस घडी, मै तुम्हारे भीतर पहुच जाता हू। उस घडी, मेरा और तुम्हारा होना मिट जाता है। उस घड़ी हम एक ही वातावरण के हिस्से हो जाते है। एक सागर की तरगे। इसलिए स्वाभाविक है कि उस क्षण कुछ हो जाए, जो किताब से न हो सकेगा।

फिर, जब तुम मेरे पास हो तो बोलना तो मेरे पास होने का एक अश मात्र है। पास होना बडी घटना है। सान्निध्य बडी घटना है। निकट होना तो मेरी तरगें और तुम्हारी तरगे एक रासलीला मे लीन होती है। तुम मेरे आसपास नाचते हो, मै तुम्हारे आसपास नाचता हू। कुछ घटता है, जो खाली आखो से नही देखा जा सकता। कुछ घटता है, चर्म-चक्षु उसे नही देख पाते। कुछ अदृश्य मे घटता है।

तुम दृश्य ही तो नहीं हो। मै जो तुम्हे दिखाई पड़ रहा हू, उसी पर तो सीमित नहीं हू। तुम्हे अपने अदृश्य का पता नही है, मुझे मेरे अदृश्य का पता है। इसलिए मै तुम्हारे अदृश्य को भी पुकारता हू। तुम्हारा अदृश्य भी बाहर आ जाता है। एक नृत्य शुरू होता है। उस नृत्य मे ही तुम्हारे हृदय मे कुछ फूल खिलते है, कमल खिलते है।

यह सवाल बोलने का ही नहीं है। और यह जो मै बोल रहा हू, ये कोरे शब्द नही है, ये किसी गहन अनुभव मे डूबकर आए है, ये किसी गहन अनुभव से सिक्त है, किसी गहन अनुभव मे पगे है। यह कोई शब्दो का काव्य नहीं है, जीवन का काव्य है। कवि कहते हैं

दिल मे घर करने के अदाज कहा से लाऊ
हो असर जिसमे वह आवाज कहा से लाऊ।

ऋषि यह कहते नहीं। आवाज सहज आती है, जो दिल मे घर कर जाती है।

दिल मे घर करने के अदाज कहा से लाऊ। जब तुम्हारे पास कुछ सपदा होती है अनुभव की, तो आवाज अपने-आप उस अदाज को पा लेती है जो दिल मे घर कर जाता है। नहीं कि इसका कोई अभ्यास है, नही कि इसकी कोई वक्तृत्व शैली है, नही कि इसका कोई विधि-विधान है—नहीं, कुछ भी नहीं है। जब तुम पाते हो सत्य को, तो सत्य का पाना ही इतना विराट है कि तुम्हारे हर शब्द मे उसकी धुन, हर शब्द मे उसका रस, हर शब्द मे उसका सगीत और सुवास फैलने लगती है।

दिल मे घर करने के अदाज कहा से लाऊ
हो असर जिसमे वह आवाज कहा से लाऊ।

आ जाती है। पहले उसे ले आओ जिसे प्रगट करना है, फिर प्रगट करने की आवाज अपने से आ जाती है। यही तो कवि और ऋषि मे फर्क है। कवि आवाज की फिक्र करता है। कवि फिक्र करता है वाहन की। ऋषि फिक्र करता है वाहक की। ऋषि फिक्र करता है विषय-वस्तु की। जब बोलने को कुछ हो तो बोलना आ जाता है। ऐसे बोलना आ जाए तो जरूरी नही है कि बोलने को कुछ हो। बोलना तो सभी को आता है। बोलने मात्र से पता नही चलता कि कुछ बोलने को तुम्हारे पास है। बोलते तो तुम चौबीस घटे हो—बिना कुछ हुए। कुछ भी नहीं देने को, फिर भी बोले जाते हो। उसी को तो हम बडबड़ कहते है, बकबक कहते है। बडबड़ का इतना ही अर्थ है कि कुछ है नही बोलने को, लेकिन बोले चले जाते हो, क्या करे, चुप होने की आदत नहीं है। क्या करे, चुप होना भारी पड़ता है, बोले चले जाते है।

लेकिन फिर एक और बोलना भी है, जब तुम्हारे पास कुछ देने को होता है। वाणी वाहन बनती है। वाणी घोड़ा बनती है।

तो जो शब्द मै तुम्हारे पास पहुचा रहा हू, वे तो घोड़ो की भाति है, उन पर बैठा सवार भी कभी-कभी तुम्हे दिखायी पड़ जाता है। वही तुम्हारे हृदय को पकड लेता है। वही तुम्हे मथन मे डुबा देता है।

किताब से यह न हो सकेगा; लेकिन किताब से भी हो सकता है, अगर तुम धीरे-धीरे मुझे सुनने मे समर्थ हो जाओ। इसलिए मैने कहा है लोगो को कि मै जैसा बोलता हू वैसी ही किताबे रहे, उनमे जरा भी फर्क न किया जाए। उनको बदला न जाए, क्योकि लिखने का ढग और होता है, बोलने का ढग और होता है। बोला हुआ शब्द अलग बात है, लिखा हुआ शब्द अलग बात है। तो मैने कहा है कि जैसा मै बोलता हू, वैसा ही लिखे मे हो, ताकि

अगर एक बार तुम्हारा मुझसे तारतम्य बंध जाए तो किताब को पढ़ते-पढ़ते भी तुम मुझे सुनने लगोगे। तो जिन्होंने मुझे ठीक से सुना है, वे किताब को पढ़ते वक्त भी किताब को नहीं पढ़ेंगे, मुझे सुनेंगे। किताब उनसे बोलने लगेगी। एक बार तुमने मुझे अपने हृदय में जगह दे दी, तो फिर किताब से भी मैं तुम्हारे पास आ सकूंगा। बिना किताब के भी आ सकूंगा। तुमने जरा मेरी याद की तो भी पास आ जाऊंगा। तुम पर निर्भर है।

और जब मैं कहता हूं 'अगर ठीक से सुना', तो मेरा अर्थ है अगर प्रेम से सुना, सहानुभूति से सुना, सहयोग किया मुझसे, श्रद्धा से सुना, संदेह को हटाकर सुना, अपने मन को हटाकर सुना, कहा अपने मन को कि हट, थोड़ी जगह दे। तो, तो मेरा प्रेम तुम्हें बेहोश भी बनाएगा और मेरा प्रेम तुम्हें होश में भी लाएगा। यह बेहोशी कुछ ऐसी है कि इसमें होश बढ़ता चला जाता है। यह होश कुछ ऐसा है कि इसमें बेहोशी बढ़ती चली जाती है।

हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आए
अरे दीवाना हो जाना मुहब्बत में तो आसा है।

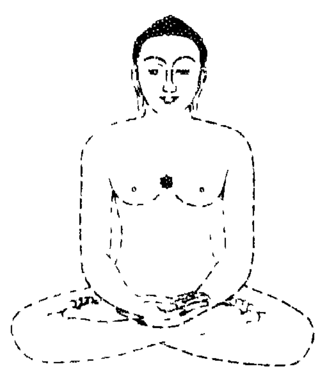
प्रेम में पागल हो जाना तो बहुत आसान है। हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आए हैं।

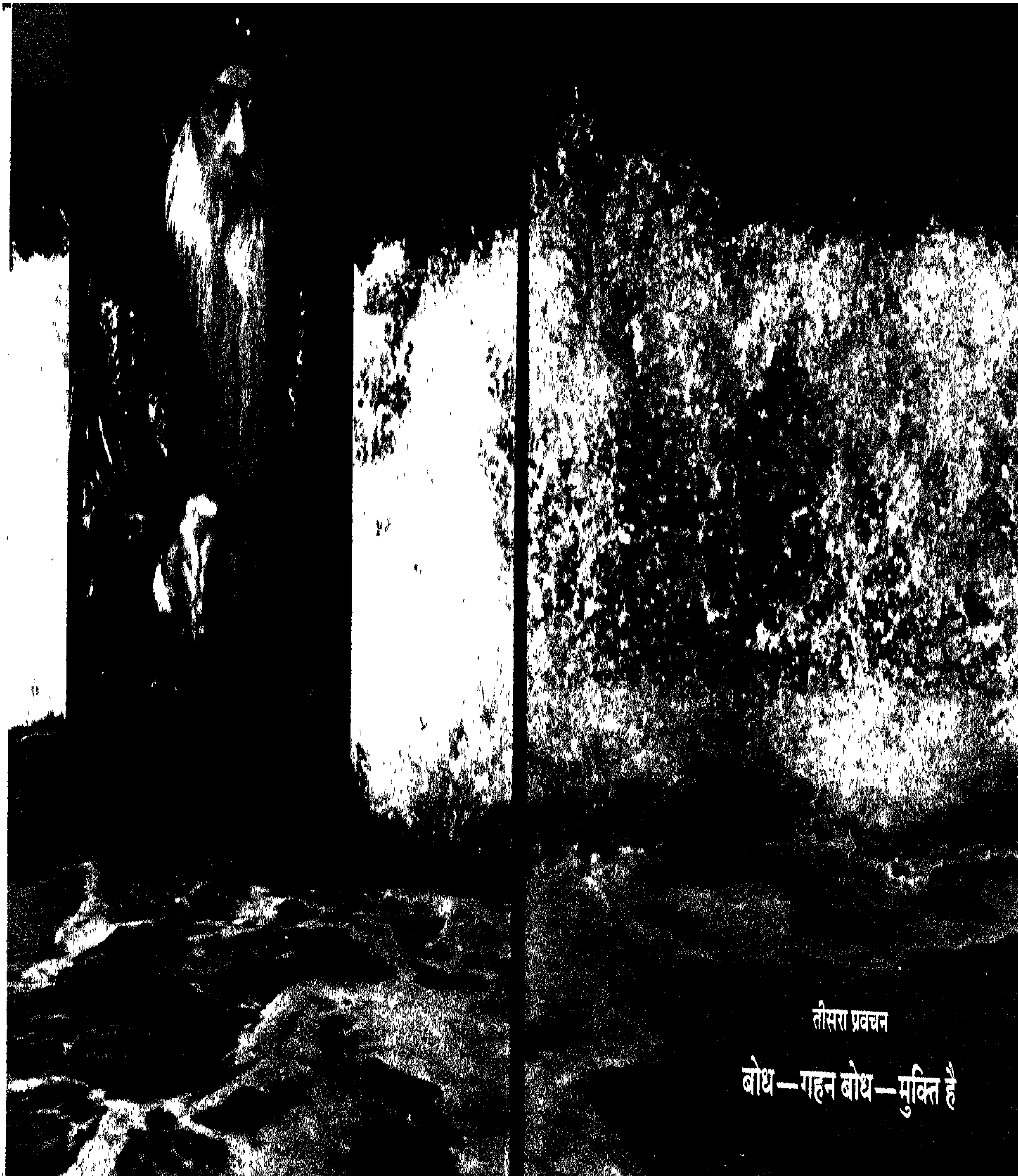
मैं तुम्हें जो प्रेम दे रहा हूं, वह एक दर्द है, वह एक पीड़ा है। उस पीड़ा से तुम निखरो। वह एक आग है जो तुम्हें जलाएगी। तुम घबड़ा मत जाना। तुम मेरे साथ चलना, सहयोग करना।

हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आए
अरे दीवाना हो जाना मुहब्बत में तो आसा है।

बहुत आसान है पागल हो जाना प्रेम में, लेकिन जागना बड़ा कठिन है। यह प्रेम तुम्हें जगाए तो ही सार्थक हुआ। यह प्रेम तुम्हें उठाए तो ही सार्थक हुआ। यह प्रेम तुम्हें तुम तक पहुंचा दे तो ही सार्थक हुआ। हो सकता है। मेरा हाथ बढ़ा है, तुम भी अपना हाथ बढ़ाओ और उसे पकड़ लो।

आज इतना ही।





तीसरा प्रवचन

बोध—गहन बोध—मुक्ति है

सूत्र

जाणिज्जह चिन्तिज्जइ, जन्मजरामरणंसंभवं दुक्ख।
न य विसएसु, विरज्जइ, अहो सुबद्धो कवडगंठी।।६।।

जन्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसति जतवो।।७।।

हा जह मोहियमइणा, सुग्गइमग्ग अजाणमाणेण।
भीमे भवकंतारे, सुचिर भमियं भयकरम्मि।।८।।

मिच्छत्तं वेदतो जीवो, विवरीयदसणो होइ।
न य धम्म रोचेदु हु, महुरं पि रसं जहा जरिदो।।९।।

मिच्छत्तपरिणदप्पा तिव्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो।
जीव देहं एक्क, मण्णतो होदि बहिरप्पा।।१०।।

पहला सूत्र

जाणिज्जइ चिन्तिज्जइ, जन्मजरामरणसभव दुक्ख।
न य विसएसु विरज्जई, अहो सुबद्धो कवडगठी।।

'जीव जरा, जन्म और मरण से होनेवाले दुख को जानता है, उसका विचार भी करता है, कितु विषयो से विरक्त नही हो पाता है। अहो, माया की गाठ कितनी सुदृढ है।'

जीवन मे गुजरते तो हम सभी एक ही राह से है। उसी राह से महावीर भी गुजरते है। राह मे कोई भेद नही है। जीवन का ताना-बाना एक जैसा है। विस्तार मे थोड़े फर्क होगे। कोई इस गाव मे पैदा होता कोई उस गाव मे, कोई इस देह मे कोई उस देह मे, कोई स्त्री की तरह कोई पुरुष की तरह, कोई गरीब कोई अमीर—ये विस्तार के भेद है, लेकिन जीवन का ताना-बाना एक ही है।

जन्म, जीवन, मृत्यु—और सब मे अनुस्यूत दुख की धारा है। कहा जन्मे, इससे फर्क नही पड़ता। कहा मरे, इससे फर्क नहीं पड़ता। जन्म और मृत्यु का स्वाद तो एक ही है।

सभी एक ही रास्ते से गुजरते है। फिर भी उसी रास्ते से सभी अलग-अलग अनुभव और निष्कर्ष लेते है। घटनाए तो एक-सी घटती है, लेकिन जीवन के निष्कर्ष बड़े अलग हो जाते हैं। और जब तक कोई घटना अनुभव न बने, तब तक घटी न घटी बराबर।

दुख आता है—सभी को आता है। दुख भोगा जाता है। लेकिन दुख भोगना दो ढग से हो सकता है कोई जागकर भोगता है, कोई सोए-सोए भोगता है। जो सोए-सोए भोगता है वह फिर-फिर भोगेगा, क्योकि जो पाठ लेना था लिया नही, जो सीखना था सीखा नहीं। उसे पुन पुन उसी विद्यालय मे वापिस लौट आना पड़ेगा।

दुख को कोई जागकर भोगता है, तो अनुभव हाथ आता है। अनुभव हाथ आता है कि दुख को मैने ही पैदा किया था, कैसे पैदा किया था, अब दुबारा वैसा न करूगा। इसकी कोई कसम नही लेनी पड़ती, न कोई व्रत लेना पड़ता है, क्योकि व्रत और कसमे तो सब नासमझी के हिस्से है, वे तो सोनेवाले आदमी की तरकीबे है। जिसने एक बार देख लिया कि आग मे हाथ डालने से हाथ जल जाता है, वह किसी मदिर मे, किसी साधु के सत्सग मे प्रतिज्ञा नही लेता कि अब आग मे हाथ दुबारा न डालूगा। समझ आ गयी।

समझ काफी है। प्रतिज्ञा से समझ का कोई सबध नही है। नासमझ प्रतिज्ञा लेते है। नासमझ व्रत लेते है। समझदार तो समझ से जीना शुरू कर देता है। वही उसका व्रत है, वही उसकी प्रतिज्ञा है।

एक बार देखा कि हाथ जल गया, अब दुबारा जलना मुश्किल हो जाएगा, क्योकि हाथ मै ही डालू तभी जलता है।

आग का स्वभाव जलाना है। लेकिन आग तुम्हारे पीछे नही दौड़ती, तुम ही आग मे हाथ डालो तो ही जलते हो। तो अपनी ही बात है, अपना ही निर्णय है, अपना ही दायित्व है। डाले तो जलेगे, न डाले तो नहीं जलेगे। यद्यपि जीवन इतना सरल नही है। आज हाथ डालते हो, हो सकता है कल पता चले, जला। खबर आते-आते देर लग जाए। बीज की तरह जो आज घटा है,

वृक्ष बनते-बनते समय लग जाए। यह हो सकता है कि तुम्हारे कृत्य मे और तुम्हारे फल मे थोड़ा समय का फासला हो। तो शायद तुम जोड़ भी न पाओ कि किस कारण से दुख मिला।

जो समझ नहीं पाते, जाग नही पाते, दुख को जागकर भोगते नहीं, वे चितन तो बहुत करते है, मनन तो बहुत करते है कि दुख न हो। ऐसा कौन होगा मनुष्य जो चाहता है दुख हो। दुख न हो, ऐसा तो सभी चाहते है। लेकिन चाह से थोड़े ही दुख रुकता है। जो समझे है, उन्होने तो पाया है कि चाह से ही दुख पैदा होता है। दुख न हो, इस चाह से भी दुख पैदा होता है। चाह मात्र दुख के बीज बोती है। फिर फसल काटनी होती है। चाह मात्र जहर है।

चिंतन, विचार तो बहुत लोग करते है।

महावीर कहते है जाणिज्जइ चिन्तिज्जइ। लोग जानते भी है। ऐसा भी नहीं कि नहीं जानते। लोग जानते है, कहा-कहा दुख होता है, लेकिन फिर भी सो-सो जाते है। शायद जहा-जहा दुख होता है, वहा-वहा मोह का बड़ा आवरण है। ऐसे ऊपर से लगता है कि आग मे हाथ डालने से हाथ जलता है, लेकिन भीतर कोई प्रबल वासना है जो बार-बार आग के पास ले आती है, जो कहती है आग मे हाथ डालो, बड़ा सुख होगा। तो यह जानकारी ऊपर-ऊपर रह जाती है। तो जब भीतर की वासना प्रबल नहीं होती, तब तो तुम बड़े समझदार होते हो। वासना के अभाव मे कौन समझदार नहीं होता।

जब तुम पर क्रोध का तूफान नहीं है, तब तुम भी समझदार होते हो, तुम भी समझा सकते हो, सलाह दे सकते हो कि क्रोध व्यर्थ है, जहर है, अपने लिए दुख का निमत्रण है। लेकिन जब क्रोध का आवेश उठता है, जब तुम आविष्ट होते हो, जब तुम तूफान मे घिर जाते हो और क्रोध का बवडर तुम्हारे चारो तरफ होता है, तब सब समझ खो जाती है। तो ऐसा लगता है, तुम्हारी समझ तो ऊपर-ऊपर है और क्रोध का उत्पात बहुत गहरा है, वहा तक तुम्हारा जानना नही है।

सोचते हो, विचारते हो, पर सब सतह पर है, लहरो-लहरो मे है। सागर की गहराई मे तुम्हारा उतरना नही हुआ। वह जागने से ही सभव होता है, क्योकि तुम चैतन्य हो। जितने जागोगे, जितने चेतन बनोगे, उतने ही भीतर जाओगे। चैतन्य तुम्हारा स्वभाव है। चैतन्य तुम्हारी गहराई, तुम्हारी ऊचाई है। तो जितने चेतोगे उतने ही गहरे उतरोगे। जिस दिन तुम्हारी चेतना उतनी ही गहरी हो जाएगी जितनी तुम्हारी वासना, उसी क्षण मुक्ति हो जाएगी। जिस क्षण, आग मे हाथ डालने से हाथ जलता है, यह सत्य उतना ही गहरा उतर जाएगा जितना आग में हाथ डालने की प्रबल वासना गहरी है, उसी दिन वासना कट जाएगी।

वृक्ष की शाखाओ को मत काटते रहो। उससे कुछ भी न होगा। जड़े काटनी होगी। जमीन मे गहरे उतरना होगा। अपनी ही चेतना के अधकार मे दीये ले जाने होगे।

तो महावीर कहते है, सोचते है लोग, जानते-से भी लगते है, किंतु विषयो से विरक्त नही हो पाते हैं। अहो, माया की गाठ कितनी सुदृढ होती है।

बडे आश्चर्यचकित हो महावीर कहते है अहो। कैसी आश्चर्यचकित करनेवाली है यह माया की गाठ। जानते, सोचते, सूझते हुए लोग भी अधे हो जाते है। आखवाले अधे हो जाते है। समझवाले भ्रात हो जाते है। शाति के क्षणो मे जो सलाह तुम दूसरे को दे सकते हो, अशाति के क्षणो मे खुद के ही काम नहीं आती। अपना ही दीया बुझा लेते हो। अपनी ही सलाह के विपरीत चले जाते हो। अपनी ही समझ को फिर-फिर खडित कर देते हो। आश्चर्यचकित करनेवाली बात है।

महावीर का वचन, 'अहो। माया की गाठ कितनी सुदृढ है'—बडा सोचने जैसा है, बड़ा ध्यान करने जैसा है। महावीर दुखित होते है तुम्हारे लिए, करुणा से भरे है। पर हसते भी है कि मूढ़ता बड़ी गहरी है।

तुमने कभी किसी व्यक्ति को सम्मोहित दशा मे देखा? किसी को सम्मोहित कर दिया जाता है, मूर्च्छित कर दिया जाता है। कठिन नही, बड़ा सरल है। कोई भी होने को राजी हो तो तुम भी कर सकते हो।

कभी छोटा प्रयोग करके देखना। तुम्हारा छोटा बच्चा भी तुम्हे सम्मोहित कर सकता है, तुम भर राजी हो जाना। वह तुमसे दोहराए जाए कि तुम गहरी तद्रा मे जा रहे हो, मूर्च्छा मे जा रहे हो, बेहोश होते जा रहे हो—तुम स्वीकार करते जाना। तुम इनकार मत करना कि नहीं। तुम यह मत कहना कि अरे, छोड़। तेरे कहने से कि हम सोये जा रहे है, कहीं हम सो जाएगे? तुम प्रतिरोध मत करना। तुम सहयोग करना। तुम उसके सुझाव के साथ बहे जाना। वह जो कहे, माने चले जाना। थोड़ी देर मे तुम पाओगे कि खो गये किसी बड़ी गहरी तद्रा मे। तब तुम्हारा

छोटा-सा बच्चा भी अगर कहे कि यह लो, यह आम है मीठा, और प्याज दे दे हाथ मे, तो तुम चखोगे; होगी प्याज, लेकिन तुम कहोगे, बड़ा स्वादिष्ट आम है। तुम्हारा सब स्वाद, प्याज की दुर्गंध, कुछ भी काम न आएगी। क्योकि तद्रा की गहराई मे सुझाव उससे ज्यादा गहरे पहुच गया जहा तक प्याज की गध पहुचती। तुम शांत भाव से स्वीकार कर लिये।

तो तुमने अगर सम्मोहन करनेवाले को, बाजार मे मदारी को देखा हो तो तुम चकित हो जाओगे, वह जो कह देता है, लोग वैसा ही व्यवहार करने लगते है। खासा तगड़ा जवान है, चौड़ी छाती है, बलिष्ठ भुजाए है, चलता है तो मंच हिलता है—उसको वह बेहोश कर देता है और कहता है, 'तुम एक कोमल तन्वगी, एक सुदर युवती हो गये। इस किनारे से मच के उस किनारे तक चलो।' तुम चकित हो जाओगे, वह ऐसे चलने लगता है जैसे स्त्री चलती हो, जो कि अति कठिन है पुरुष को चलना। पुरुष के पास वैसे कूल्हे नही है। स्त्री के पेट मे गर्भ के लिए जगह है। उस जगह के कारण उसकी अस्थियो का ढाचा अलग है। इसलिए उसकी चाल अलग है। लेकिन वह पुरुष चलने लगता है स्त्री की चाल से, जो कभी जीवन मे न चला होगा। उसे कुर्सी के सामने बिठा देता है और कहता है, यह गाय खड़ी है, दूध लगाओ। वह कुर्सी के पास उकडू बैठकर—उसी आसन मे जिसमे महावीर ज्ञान को उपलब्ध हुए थे, गो-दुग्ध-आसन मे महावीर ज्ञान को उपलब्ध हुए थे, पता नही क्या करते थे, बैठे थे उकडू—दूध खींचने लगता है। बिलकुल वैसे ही कृत्य करेगा जैसे गाय सामने खड़ी हो। तुम सब हसोगे कि कैसा पागल बन रहा है यह। लेकिन सम्मोहन ने इतने गहरे डाल दिया है विचार कि इतने गहरे आख का विचार भी नहीं जाता। आख से तो उसको भी कुर्सी दिखायी पड़ती है। लेकिन जहा तक कुर्सी दिखायी पड़ती है उससे भी गहरा सम्मोहन का विचार पहुच गया। तो अब कुर्सी के ऊपर गाय आरोपित हो जाती है।

सम्मोहन के सत्य को समझना जरूरी है, क्योकि मनुष्य का जीवन करीब-करीब सम्मोहित जीवन है। जन्मो-जन्मो मे तुमने अपने को ही आत्म सम्मोहित किया है। जन्मो-जन्मो मे तुमने कहा है, स्त्री सुंदर है—स्त्री सुदर हो गयी है। जन्मो-जन्मो मे तुमने दोहराया है, 'स्त्री सुदर है'—स्त्री सुदर हो गयी है। यह तुम्हारा सम्मोहन है। बहुत बार तुम स्त्री की कुरूपता के करीब भी आ जाते हो। बहुत बार पुरुष की कुरूपता के करीब आ जाते हो। बहुत बार जीवन मे सिवाय व्यर्थता के कुछ भी नही दिखायी पड़ता है। लेकिन जन्मो-जन्मो का सम्मोहन है। तुमने ही अपने को समझाया है, जीवन बड़ा बहुमूल्य है। तुमने ही अपने को समझाया है कि जीने का बडा मूल्य है। किसी भी कीमत पर जीना है, जीये चले जाना है। जीवेषणा। नर्क मे भी पड़े हो तो भी जीये चले जाना है; जीवन का जैसे अपने-आप में ही मूल्य है। कुछ भी न घटता हो, हाथ-पैर गल गये हो कोढ़ मे, सड़क पर घिसटते होओ, तो भी कोई आशा, कोई बड़ी गहन आकाक्षा पकडे रहती है कि जीये चले जाओ, जीये चले जाओ।

यह जो जीने की आकाक्षा है, इस पर पुनर्विचार, इस पर पुनर्ध्यान तुम्हे जगायेगा और तुम्हे बतायेगा कि यह तुमने ही अपने मन मे धारणा बना ली, धारणा बना ली तो मजबूत हो गयी। अलग-अलग जातियो मे, अलग-अलग समयो मे, अलग-अलग धारणाए महत्वपूर्ण हो गयी है। जो धारणा महत्वपूर्ण हो जाती है वही तुम्हारे जीवन का सत्य हो जाती है। जैसे अफ्रीका मे, मध्य अफ्रीका मे, सदियो से स्त्रिया बाल घोट लेती रही है। अब तुमने सिर-घुटी स्त्री मे सौंदर्य कभी न देखा होगा। कोई स्त्री राजी न होगी सिर घोटने को। हमने मान रखा है, बाल सुदर है। अफ्रीका मे उन्होने मान रखा है कि घुटा हुआ सिर सुदर है। करोगे क्या? वहा जिस स्त्री के बाल हो, उसको पति मिलना मुश्किल हो जाएगा, जैसे यहा घुटे-सिर स्त्री को पति मिलना मुश्किल हो जाए, लोग दूर से ही छिटकेंगे। घुटा हुआ सिर तो हमे मुर्दे की याद दिलाता है। इसलिए तो सन्यासी सिर घोटते रहे। वे यह कहते है कि हम मर गये ससार से, अब तुम हमे मुर्दा समझो। न केवल उतने से ही अफ्रीका मे सौंदर्य का बोध पूरा नहीं होता, तो आड़ी-तिरछी लकीरें, आग की सलाखो से शरीर पर, मुह पर, आख पर, सिर पर लोग सजा लेते है। तुम तो पाओगे, ये तो घाव बना लिये। लेकिन वह सौंदर्य है। उन्होने सदियो तक इसी को सौंदर्य माना है, यही उनका सम्मोहन हो गया है।

जो तुम मान लो वही सत्य हो जाता है। इस जीवन के सत्य माने हुए सत्य है। दस रुपये का नोट कागज का टुकड़ा है, लेकिन मान्यता है कि दस का नोट है, सम्हालकर रख लेते हो।

छोटे बच्चे को दस रुपये का नोट और एक पैसा, दोनो बताओ, वह पैसा चुन लेगा। अभी पैसे तक ही उसकी मान्यता है, दस रुपये का नोट वह जानता ही नही।

मैने सुना है, अमरीका के एक समुद्र तट पर एक आदमी था, बूढ़ा हो गया था और लोग उसके सामने रुपये लाते, पैसे लाते, लेकिन वह हमेशा पैसे चुन लेता। कभी-कभी सौ-सौ डालर का नोट उसके सामने रखते, कहते, चुन लो जो भी चुन लो दो हाथो मे से। वह पैसे चुन लेता। ऐसा वर्षो से हो रहा था। और जो भी आते समुद्र-तट पर, यह प्रयोग करते, और हसते हुए जाते। एक दिन एक आदमी ने उससे पूछा कि कोई बीस साल से मै तुम्हे देख रहा हू, तुम्हे अब तक अकल नही आई? जब लोग तुम्हारे सामने सौ डालर का नोट करते है और पैसे करते है, तुम पैसे चुन लेते हो। उसने कहा, अकल तो मुझे भी है। लेकिन जिस दिन भी मैने नोट चुना, खेल बद हुआ। यह खेल चल रहा है। पैसे चुन-चुनकर मैने हजारो डालर चुन लिये धीरे-धीरे। कोई मै मूर्ख, कोई पागल नहीं हू। लेकिन उनको मजा आता है समझकर कि मै पागल हू, इसी बहाने वे पैसे मेरे सामने लाते है।

छोटा बच्चा पैसा चुन लेगा। पैसे का उसके लिए मूल्य है। यह आदमी भी पैसा चुन रहा है, क्योकि जानता है, जिस दिन इसने नोट चुना उसी दिन खेल बद हुआ, फिर कोई नहीं लाएगा। चुन तो यह भी नोट ही रहा है, लेकिन तुमसे ज्यादा चालाक है। तुम समझे कि यह नासमझ, बुद्धू है। तुम मजा ले रहे हो इसके बुद्धूपन मे, यह तुम्हारे बुद्धूपन मे मजा ले रहा है।

मान्यताए है। जो हम मान लेते है सुदर, वह सुदर हो जाता है। जो हम मान लेते है कुरूप, वह कुरूप हो जाता है। जो हम मान लेते है मूल्यवान, वह मूल्यवान हो जाता है।

अफ्रीका मे हड्डियो का आभूषण बनाते है, तो मूल्यवान है।

एक युवक सन्यासी हिमालय से वापस लौटा और एक माला ले आया, किसी तिब्बतन लामा ने उसे दे दी। उसने मेरे हाथ मे रखी, मैंने कहा, 'पागल। तू यह कहा से उठा लाया?' वह तो किसी जानवर के दातो की बनी माला थी, बड़ी गदी और बेहूदी थी। पर उसने कहा, एक तिब्बती लामा ने मुझे दी है और उसने कहा कि यह बडी बहुमूल्य है। तिब्बत मे माना जाता है कि बड़ी बहुमूल्य है। हड्डी की माला, हड्डी के गुरिये बना लेते है, उनकी माला। तुम्हे कोई हाथ मे देगा तो तुम हाथ धोओगे, तिब्बती उसे सम्हालकर रखते है।

तुम्हारी भी मान्यताएं ऐसी ही है। लेकिन सदियो तक जो हम मानते है वह सस्कार हो जाता है।

इसलिए महावीर कहते है, लोग जानते भी मालूम पड़ते है, फिर भी अनजाने की तरह व्यवहार करते है, क्योकि जानना ऊपर-ऊपर है। गहरे मे वासना पड़ी है, विषय-भोग की आकाक्षा पड़ी है, जीवेषणा पड़ी है।

विचार करता है, चितन करता है, जानता मालूम होता है, फिर भी विरक्त नहीं होता। ऐसे विचार का क्या अर्थ जो विराग न ले आए। विचार की यह कसौटी है महावीर के लिए कि जिससे वैराग्य पैदा हो, वही विचार। यह उनका मापदड है। इसी पर वे कसते है। वे कहते है, जिससे वैराग्य आ जाए, वही विचार। जिससे वैराग्य न आए, उसे क्या विचार कहना। वही तो अविचार है। पतजलि भी यही कहते है, विवेक वही जिससे वैराग्य आ जाए। विचार वही जिससे वैराग्य आ जाए। फल से ही तो वृक्ष जाना जाता है—आम लगे तो आम, नीम के कड़वे फल लग जाए तो नीम। वृक्ष से थोड़े ही वृक्ष जाना जाता है, फल से जाना जाता है। वैराग्य फल है विचार का।

तो तुम विचारवान हो या नहीं, तुम्हारे जीवन के वैराग्य से पता चलेगा। तुम लाख बैठकर ऊहापोह करते हो। तुम्हारे सिर मे बड़ी दौड़-धूप मचती है विचारो की। तुम बड़े शास्त्र लिख सकते हो। इससे कुछ हल न होगा। असली प्रमाण यह होगा कि तुम्हारे जीवन मे वैराग्य फला, वैराग्य के फल लगे, वैराग्य के मीठे फल आए? तुमने वैराग्य की फसल काटी? चीजो की व्यर्थता तुम्हे दिखायी पड़ी? तुम्हारा ज्ञान वासना से गहरा गया? इतना गहरा गया कि वासना उठनी असभव हो गयी? नहीं कि तुम्हे नियत्रण करना पड़ा। नियत्रण तो सब थोथे है। अनुशासन तो सब ऊपरी है। बोध, इतना गहरा बोध कि बोध ही मुक्ति बन जाए, तो वैराग्य।

तो अब तुम सोचना कि विचार करने का अर्थ, तार्किक विचार करना नही है। विचार करने का अर्थ, सम्यक विचारणा है। विचार करने का अर्थ है, सत्य जैसा है वैसा ही जानने की क्षमता।

वासना और विचार के फर्क को समझो। वासना प्रक्षेपण है। तुम जो चाहते हो वही तुम प्रक्षेपण कर लेते हो। तुम वह नहीं

देखते, जो है—कृष्णमूर्ति जिसे कहते है, दैट व्हिच इज। जो है, उसे तुम नही देखते। तुम वही देख लेते हो, जो तुम देखना चाहते हो। तुम्हारी आख केवल ग्राहक नहीं होती, प्रक्षेपक होती है।

एक रुपया पड़ा है रास्ते पर या कि एक हीरा पड़ा है रास्ते पर। हीरा एक पत्थर है, जैसे और पत्थर है। अगर आदमी न हो जमीन पर तो हीरे और दूसरे पत्थरो मे कोई फर्क मूल्य का न होगा। हीरे भी वही पड़े रहेगे, साधारण ककड़ भी वही पड़े रहेगे। हीरा यह न कह सकेगा कि 'हटो ककड़ो, मै कोहिनूर हू। रास्ता दो। सिहासन बनाओ।' कोहिनूर भी साधारण पत्थर है, आदमी न हो तो। आदमी आया कि झझट आयी। आदमी आया कि वह कहता है, हटो ककड़ो। तुम तो शूद्र रहे, यह सम्राट है। यह है कोहिनूर। इसे सिहासन पर बिठाओ।

आदमी मूल्य लाता है। कोहिनूर मे कोई मूल्य नहीं है—हो नही सकता। सदियो तक पडा था जमीन मे। न ककड़-पत्थरो ने उसकी फिक्र की, न कीडे-मकोडो ने फिक्र की, न साप-बिच्छुओ ने कोई आदर दिया, न पशु-पक्षियो ने कोई चिता ली—किसी ने कोई फिक्र न की। फिर आदमी के हाथ पड गया। जिस आदमी के हाथ पड़ा, वह भी सीधा-सादा आदमी था। वह उसे ले आया और उसने अपने बच्चो को खेलने को दे दिया। करता भी क्या, पत्थर ही था।

बड़ी प्यारी कहानी है, उस घर मे एक सन्यासी मेहमान हुआ। और उस गरीब किसान को देखकर उसे बड़ी दया आ गयी। और उसने कहा कि 'तू यहा कब तक इस गोलकुडा की सूखी जमीन पर अपना श्रम गवाता रहेगा? मैने ऐसी जगहे देखी है कि जहा तू जरा-सी मेहनत कर कि हीरे-जवाहरात इकट्ठे कर ले। इतनी खोदा-खादी, इतनी मुश्किल—क्या पैदा कर पाता है? पेट भी तो नहीं भरता। बच्चे तेरे सूख रहे है।'

सन्यासी तो दूसरे दिन सुबह चला गया अपनी यात्रा पर, लेकिन किसान के मन मे वासना पकड गयी। सम्मोहित हो गया किसान। उसने अपना खेत-वेत सब बेच दिया। छोटी-सी नदी के किनारे उसका खेत था। वह उसने बेच दिया, मकान बेच दिया। निकल पड़ा हीरो की खोज मे। कहते है, वर्षो भटकता रहा, कहीं कोई हीरे न मिले, घर आ गया। लेकिन इस बरसो के भटकाव मे, हीरे क्या होते है, यह समझ आ गयी, यह सम्मोहन आ गया। कई जौहरियो को मिला। हीरे जिनके पास थे उनको मिला। हीरे देखे। जो था उसके पास पैसा, उसने इसी मे गवा दिया। घर लौटकर आया तो चकित हो गया, बच्चा उस हीरे से खेल रहा था जिसकी वह खोज मे था। कोहिनूर। और तब रोया, छाती पीटी, क्योकि खेत उसने बेच दिया। वही खेत बाद मे गोलकुडा की सबसे बड़ी खदान बना। हैदराबाद निजाम के महलो मे जो हीरे है, वे सब उसी गरीब आदमी के खेत से निकले है। वह बेच दिया उसने।

लेकिन तब तक सम्मोहन न था, मन पर कोई परत न थी—सीधा-सादा आदमी था, प्राकृतिक आदमी था, सभ्य न हुआ था, जौहरी पैदा न हुआ था।

हीरा भी ककड-पत्थर है। आदमी न हो तो हीरे का कोई विशेष सम्मान न होगा। जब तुम हीरे को विशेष सम्मान देते हो, राह पर पड़ा हीरा तुम्हे मिलता है, झपटकर उठा लेते हो, ककड़ को तो नहीं उठाते—तब तुमने वह नही देखा जो था, तुमने वह देख लिया जो तुम देखना चाहते थे। तुमने अपनी वासना को आरोपित किया। तुम्हारी आखे शुद्ध ग्राहक न रही। तुम्हारी आखो ने हीरे के पर्दे पर कुछ फेका, कोई वासना फेकी। साधारण ककड-पत्थर भी वासना से अभिभूत हो जाए, महिमावान हो जाता है। जहा तुमने वासना रख दी, वही महिमा आ गयी।

यह ससार इतना महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, क्योकि तुमने जगह-जगह वासना को नियोजित कर दिया है। किसी ने धन मे रख दी है वासना, तो धन बहुमूल्य हो गया है। तब वह अपने जीवन को गवाये चला जाता है, लेकिन धन कमाये चला जाता है। वह मरेगा। तिजोडी यही रहेगी, भरकर छोड़ जाएगा। ठीक से भोजन भी न करेगा, कपडे भी न पहनेगा। धन इकट्ठा करना है। वासना रख दी धन मे तो जीवन से बहुमूल्य हो गया धन। तुमने अगर पद मे वासना रख दी, पद बहुमूल्य हो गया।

तुम्हे कभी-कभी हैरानी नही होती देखकर। राजनीति के दीवाने हैं, पदो के पागल है, भीख मागते फिरते है सहारा दो, वोट दो, मत दो, साथ दो। हाथ जोड़ते फिरते है। कभी तुम चकित नहीं हुए, तुम सोचे नही कि क्या पागलपन चढ़ा है। और जो पद पर पहुच जाते है उन्हे कुछ मिलता दिखायी नही पड़ता। गालिया मिलती है, निदाए मिलती है। सम्मान भी मिलता है, लेकिन सम्मान सब झूठा है, पद से उतरते ही खो जाता है। फिर कोई

नहीं पूछता। फिर कोई विचार नही करता। फिर कोई नमस्कार भी करने नहीं आता। लेकिन इतना क्या पागलपन है? पद मे वासना रख दी। तुमने नहीं रखी तो तुम्हे हसी आएगी कि यह भी क्या पागलपन है।

देखा तुमने। कोई फुटबाल के पागल है, कोई क्रिकेट के पागल हैं। एक सज्जन को मै जानता हू, जब क्रिकेट चल रही हो तो वे रेडियो पर सारी दुनिया का सब काम छोड़कर बैठ जाते है। एक बार उनकी जो टीम जीतनी चाहिए थी, हार गयी तो उन्होने रेडियो उठाकर पटक दिया। नाराजगी मे। इतना क्रोध आ गया। दगे हो जाते है। तुम्हारी टीम हार गयी, दगे हो जाते है। लूट-पाट हो जाती है। मारे जाते है लोग। जो नहीं है उस जगत मे, वह हसेगे कि मामला क्या है। आखिर यह हो क्या रहा है? फुटबाल है क्या? कुछ लोग गेद को उधर ले जा रहे है, कुछ लोग इधर ला रहे है, कुछ लोग उधर ले जा रहे है—मगर है क्या? मामला क्या है? ऐसा इतना और लाखो लोग देखने क्या चले आये है? क्या देख रहे हैं। और बड़े उत्तेजित है। पागल हुए जा रहे हैं।

हा, जो वासना के बाहर है उसे हसी आएगी। जो वासना के भीतर है, वह मूर्च्छित है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात घर लौटा, नशे मे धुत्त। बड़ी उसने चेष्टा की। चाबी तो हाथ मे है, ताला न मिले। पत्नी ऊपर से देख रही है। उसने कहा, 'बहुत हो चुका। अगर चाबी खो गयी हो तो बोलो, दूसरी चाबी फेंक दू।' उसने कहा, 'चाबी तो है, ताला खो गया है, दूसरा ताला फेंक दे।'

लेकिन कभी तुम अगर बेहोश रहे हो, तो तुम्हे पता चलेगा कि हसने की बात नही है। ऐसी ही दशा हो जाती है। वह जो बेहोश है, वह किसी और ही दुनिया मे है—अविचार की दुनिया मे। जो तुम्हारी वासना नहीं है, वहा तुम विचारवान मालूम पड़ोगे। बूढ़े विचारवान हो जाते है, जवानो को समझाने लगते है कि यह सब पागलपन है, यह जवानी दो दिन का नशा है। यही उनके बूढ़ो ने भी उनसे कहा था, तब उन्होने नहीं सुना था। कोई किसी की सुनता ही नहीं।

जब तक नशा है तब तक विचार पैदा नहीं होता, या विचार पैदा हो जाए तो नशा टूटने लगता है। समझने की बात यह है कि वासना मे तुम वही देखते हो जो तुम देखना चाहते हो। तुमने कभी देखा, शतरज के खिलाड़ी बैठे हैं। कुछ भी नहीं है, लकड़ी के, हड्डियो के या प्लास्टिक के हाथी-घोड़े, राजा-रानी है—और तलवारे चल गयी है शतरज पर, लोग कट गये हैं। जो नहीं है खेल मे, वह हसता है। वह हसता हुआ निकल जाएगा कि पागल हो गये हो, कहा हाथी-घोड़े कुछ भी नहीं है। जिसकी समझ गहरी है उसे तो असली हाथी-घोड़े मे भी हाथी-घोड़े नहीं दिखायी पड़ते, असली राजा-रानी मे भी राजा-रानी नही दिखायी पड़ते। मगर जहा वासना हो ।

मैंने सुना है, एक बिल्ली इंग्लैंड गयी। सास्कृतिक मिशन पर गयी। तो इग्लैंड की रानी ने मिलने के लिए बुलाया। फिर वह लौटी, तो दिल्ली मे बिल्लियो ने बड़ी सभा की। उन्होने पूछा कि 'अरे, कहो। क्या-क्या हुआ? रानी को मिलने गयी थी कि नहीं?'

उसने कहा, 'गयी थी।'

'क्या देखा?'

उसने कहा कि बडा गजब देखा। कुर्सी के नीचे चूहा बैठा था।

रानी से क्या लेना-देना बिल्ली को। जो दिखा वह चूहा था। जहा वासना है, वही दर्शन है। तुम्हे रानी दिखायी पडती, चूहा दिखायी न पड़ता, क्योकि तुम्हारी वासना बिल्ली की वासना नही है। रानी भी तुम्हे तभी दिखायी पड़ती जब तुम्हारी पद की वासना हो, राज्य की वासना हो, नहीं तो रानी मे देखने जैसा क्या है। साधारण स्त्री है। चाहे कितना ही मोर-मुकुट बाधो, इससे क्या होता है। कितने ही बड़े सिंहासन पर बैठ जाओ, इससे क्या होता है। अगर महावीर जैसा व्यक्ति जाए तो न तो चूहा दिखायी पड़े न रानी दिखायी पड़े। तुमको रानी दिखायी पड़ती, बिल्ली को चूहा दिखायी पड़ा। जो-जो वासना थी, वह दिखायी पड़ा। अगर कोई हीरो का पारखी हो, तो उसे रानी न दिखायी पड़ेगी, उसके मुकुट मे लगे हीरे दिखायी पड़ेगे। अगर कोई चमार चला जाए तो रानी के जूते दिखायी पड़ेगे, और कुछ दिखायी न पड़ेगा। चमार को जूते ही दिखायी पड़ते है, वह जूते ही देखता रहा जिंदगीभर। वहीं उसकी वासना लिप्त है। राह पर देखता रहता है लोगो के जूते। जूते को ही देखकर वह आदमियो की परख करता है। जूते की कहानी पढ़ लेता है तो आदमी की कथा प्रगट हो जाती है। जूते मे उसे सारी आदमी की आत्मकथा लिखी मालूम पड़ती है। जूते पर चमक है तो वह जानता है, जेब गर्म

है। जूता मुर्झाया, पिटा-पिटाया है तो वह जानता है कि आगे बढ़ो, यहा लाने की जरूरत नहीं है।

वासना का अर्थ है . हम अपने सम्मोहन के अनुसार जगत को देखते है। विचार का अर्थ है · सम्मोहन को हटाकर देखते हैं, जो है उसे वैसा ही देखते हैं जैसा है। आम को आम देखते हैं, नीम को नीम देखते है। जहर को जहर देखते हैं, अमृत को अमृत देखते है; अपनी वासना डालकर, कुछ और नहीं देखते।

तो महावीर कहते है, लगते है लोग सोच रहे, विचार रहे, फिर भी विरक्त नही हो पाते। कही कुछ धोखा है। क्योकि अगर कोई जीवन को ठीक से देख ले तो विरक्त होगा ही। यहा कुछ भी तो नहीं है। यहा उलझाने योग्य कुछ भी तो नही है। जो तुम्हे अटका ले, ऐसा कुछ भी तो नहीं है।

दोरंगिया यह जमाने की जीते जी है सब
कि मुर्दो को न बदलते हुए कफन देखा।
ये सब रगरेलिया, ये बदलाहटे, ये फैशने ।
दोरंगिया यह जमाने की जीते जी है सब
कि मुर्दो को न बदलते हुए कफन देखा।

जो जीवन को बहुत गौर से देखेगा, दोरंगियो को हटाकर गहराई मे देखेगा, वह पायेगा यहा सब मरा ही हुआ है, समय की बात है।

ऋषियो ने कहा है, क्षरति इति शरीरम्। जो क्षीण होता जाता उसी का नाम शरीर। क्षरति इति शरीरम्। जो प्रतिपल क्षीण होता जाता है, जीर्ण होता जाता, वही शरीर है। यह घर नहीं है। जो खडहर होता जाता है, वही शरीर है। इसीलिए शरीर नाम दिया उसे, क्योंकि वह क्षीण होता है, जीर्ण होता है, सड़ता है, मरा ही है, समय की बात है; क्यू मे खड़ा ही है, जब नंबर आ जाएगा गिर जाएगा।

अगर शरीर को कोई गौर से देखे तो क्या पाएगा। मृत्यु को रूप धरते देखेगा वहां। मृत्यु को गर्भ मे पाएगा वहा। रोए-रोए मे शरीर के मृत्यु को छिपा पाएगा। प्रगट होने की प्रतीक्षा चल रही है। आज नहीं कल प्रगट हो जाएगी। जो शरीर को गौर से देखेगा, वह मृत्यु को देख लेगा। फिर तुम शरीर से बंधोगे कैसे, आसक्त कैसे होओगे? मुर्दे से तो कोई बधता नहीं। मुर्दे से तो कोई संबध नहीं रखता।

मैने सुना है, एक मुसलमान फकीर के पास एक युवक आता था। वह युवक कहता था कि मुझे भी सन्यास की यात्रा करनी है। मुझे भी सूफियो के रग-ढग मन को भाते है। लेकिन क्या करू, पत्नी है और उसका बड़ा प्रेम है। क्या करू बच्चे हैं, और उनका मुझसे बड़ा लगाव है। मेरे बिना वे न जी सकेगे। मैं सच कहता हू, वे मर जाएगे। मैं पत्नी से सन्यास की बात भी करता हू तो वह कहती है, फासी लगा लूगी।

उस फकीर ने कहा, 'तू ऐसा कर । कल सुबह मै आता हू। तू रातभर, एक छोटा-सा तुझे प्रयोग देता हू, इसका अभ्यास कर ले और सुबह उठकर एकदम गिर पड़ना।' प्रयोग उसने दिया सास को साधने का कि इसका रातभर अभ्यास कर ले, सुबह तू सास साध कर पड़ जाना। लोग समझेगे, मर गया। फिर बाकी मै समझ लूगा।

उसने कहा, 'चलो। क्या हर्ज है ? देख ले करके। क्या होगा इससे?'

उसने कहा कि तुझे दिखायी पड जाएगा, कौन-कौन तेरे साथ मरता है। पत्नी मरती है, बच्चे मरते, पिता मरते, मा मरती, भाई मरते, मित्र मरते—कौन-कौन मरता है, पता चल जाएगा। एक दस मिनट तक सास साध कर पड़े रहना है, बस। सब जाहिर हो जाएगा। तू मौजूद रहेगा, तू देख लेना, फिर दिल खोलकर सास ले लेना, फिर तुझे जो करना हो कर लेना।

वह मर गया सुबह। सास साध ली। पत्नी छाती पीटने लगी, बच्चे रोने लगे, मा-बाप चिल्लाने-चीखने लगे, पड़ोसी इकट्ठे हो गये। वह फकीर भी आ गया इसी भीड़ मे भीतर। फकीर को देखकर परिवार के लोगो ने कहा कि आपकी बड़ी कृपा, इस मौके पर आ गये। परमात्मा से प्रार्थना करो। हम तो सब मर जाएगे। बचा लो किसी तरह। यही हम सबके सहारे थे।

फकीर ने कहा, घबड़ाओ मत। यह बच सकता है। लेकिन मौत जब आ गयी तो किसी को जाना पड़ेगा। तो तुम मे से जो भी जाने को राजी हो, वह हाथ उठा दे। वह चला जाएगा, यह बच जाएगा। इसमे देर नहीं है, जल्दी करो।

एक-एक से पूछा। पिता से पूछा। पिता ने कहा, अभी तो बहुत मुश्किल है। मेरे और भी बच्चे है। कोई यह एक ही मेरा बेटा नही है। उनमे कई अभी अविवाहित है। कोई अभी स्कूल मे पढ़ रहा है। मेरा होना तो बहुत जरूरी है, कैसे जा सकता हू।

मा ने भी कुछ बहाना बताया। बेटो ने भी कहा कि हमने तो

अभी जीवन देखा ही नहीं। पत्नी से पूछा, पत्नी के आसू एकदम रुक गये। उसने कहा, अब ये तो मर ही गये, और हम किसी तरह चला लेगे। अब आप झझट न करो और।

फकीर ने कहा, अब उठ। तो वह आदमी आख खोलकर उठ आया। उसने कहा, 'अब तेरा क्या इरादा है?' उसने कहा, अब क्या इरादा है, आपके साथ चलता हू। ये तो मर ही गये। अब ये लोग चला लेगे। देख लिया राज। समझ गये, सब बातो की बात थी। कहने की बाते थी।

कौन किसके बिना रुकता है। कौन कब रुका है। कौन किसको रोक सका है।

दृष्टि आ जाए तो वैराग्य उत्पन्न होता है। उस घड़ी उस युवक ने देखा। इसके पहले सोचा था बहुत। उस घडी दर्शन हुआ। इसके पहले विचार बहुत किया था, लेकिन वे विचार विचार न थे, विवेक न था, क्योंकि उनसे वैराग्य न फलित होता था, उलटा राग फलित होता था।

तो कसौटी है जिसमे राग लगे, वह विचार नहीं, वह भीड-भाड है विचारो की। थोथा है सब, असार है, राख है। उसमे अगार नहीं है। जिसमे वैराग्य की लपट उठे—अगार है, जीवन है, विचार है, विवेक है।

जिदगी एक हादिसा है और कैसा हादिसा
मौत से भी खत्म जिसका सिलसिला होता नही।

यह जिसे हम जिंदगी कहते है, यह हमारी जीवेषणा है। जिसे हम जिदगी कहते है, यह हमारे जन्मो-जन्मो का सकलित सम्मोहन है।

जिदगी एक हादिसा है और कैसा हादिसा
मौत से भी खत्म जिसका सिलसिला होता नहीं।

मौत आती है, जाती है, लेकिन सम्मोहन चलता रहता है। जीवेषणा को मौत नही मार पाती। शरीर छूट जाता है, हम नया शरीर ग्रहण कर लेते है। तुम शरीर मे इसलिए नहीं हो कि शरीर ने तुम्हे चुना है, तुम शरीर मे इसलिए हो कि तुमने शरीर को चुना है। तुम दुख मे इसलिए नही हो कि दुख तुम पर आया है, तुम दुख मे इसलिए हो कि तुमने दुख को बुलाया है।

महावीर का मौलिक सूत्र है कि तुम्हारा उत्तरदायित्व आत्यतिक है। न कोई भाग्य, न कोई भगवान—तुम ही जिम्मेवार हो। सार-सूत्र महावीर का यह है कि तुम अपनी बागडोर अपने हाथ मे ले लो। दुख है तो तुम कारण हो। अधेरा है तो तुमने ही दीया छिपाकर रखा है। अगर काटो मे चल रहे हो तो तुमने ही कांटे बोए हैं।

महावीर ने मनुष्य को सीधा मनुष्य के ऊपर फेक दिया; कोई सहारा न दिया, कोई सात्वना न दी, नही कहा कि भगवान है, खेल खेल रहा है, उसका खेल है, घबडाओ मत, प्रार्थना करो, उसका सहारा मिलेगा। कोई सात्वना न दी।

महावीर का धर्म सात्वना-रहित है। अति कठोर मालूम पड़ता है। लेकिन उतनी कठोरता हो तो ही कोई घर वापिस लौटता है।

कैदे-हस्ती की भी तारीक बदल दू तो सही
खेल समझे हो मेरा दाखिले-जिदा होना।

कारागृह मे आ गया हू तो अगर कारागृह का ढग ही न बदल दू तो मेरे आने का अर्थ ही नही है।

कैदे-हस्ती की भी तारीक बदल दू तो सही। यह जो जिदगी और जिदगी का जाल है और जिदगी के बधन है, इनका भी इतिहास बदल दू तो सही। *खेल समझे हो मेरा दाखिले-जिदा होना।* एक बार कारागृह मे आ गया, तो अब कारागृह को भी स्वतत्रता बनाकर छोड़ूगा।

ऐसा महावीर का भाव है। और महावीर ने ऐसा किया। कोई सहारा न लिया, कोई भीख न मागी। महावीर जैसा अकेला कोई भी जीवन के पथ पर नहीं चला है। कोई न कोई सहारा आदमी खोज लेता है। सहारे के सहारे ससार आ जाता है। सहारे के सहारे फिर सब उतर आता है। एक के बाद एक सिलसिला लग जाता है।

फक्र को मेरे वैर है जज्बए-इकसार से
जिमे-जुनू भी हो तो मै भीख न लू बहार से।

स्वाभिमान के विपरीत है। अगर प्रेमियो का पागलपन भी बहार से मिलता हो, अगर भक्तो का भी पागलपन बहार से मिलता हो, तो भी मै भीख न लू। स्वाभिमान के विपरीत है।

महावीर कहते है, भीख मत लेना। क्योंकि भीख मे जो मिलेगा वह भीख ही होगी, स्वामित्व न मिलेगा।

इसलिए महावीर के विचार मे प्रार्थना की कोई जगह नहीं है, विचार काफी है। विचार का ही सम्यक रूप ध्यान बन जाता है। ध्यान का सम्यक रूप समाधि बन जाता है। समाधि यानी समाधान। तुम जीवन को ठीक से देख लो, वहीं मुक्ति है।

'अहो। माया की गाठ कितनी सुदृढ़ होती है।' सब लोग जानते हुए मालूम पड़ते है। सब लोग सोचते हुए मालूम पड़ते है। यहा बुद्धिहीन खोजना तो बहुत मुश्किल है, सभी बुद्धिमान है। फिर भी जब माया पकड़ती है तो सभी उसकी पकड़ मे आ जाते हैं, गांठ बड़ी सुदृढ़ मालूम होती है। और गांठ कहीं इतने गहरे है। तुम जहा हो अभी वहा से कहीं ज्यादा गहरी तुम्हारी गाठ है। जब तुम गाठ से ज्यादा गहरे हो जाओगे तभी गाठ खुल जाएगी। इसलिए असली सवाल भीतर यात्रा का है। अपनी गहराई से गहराई खोजनी है। तुम जिस चीज के ज्यादा गहरे उतर गये, उससे ही मुक्त हो गये।

'जन्म दुख है, बुढापा दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है। अहो। ससार दुख ही है, जिसमे जीव क्लेश पा रहे है।'

'जन्म दुक्ख जरा दुक्ख, रोगा या मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु ससारो, जत्थ की सति जतवो।।'

आश्चर्य है, महावीर कहते है, सब दुख है, फिर भी लोग पकड़े है। दुख ही दुख है, फिर भी लोग छोड़ते नही। मूर्च्छा बडी गहरी होगी। इसलिए कहते है, आश्चर्य है। लोग अपने ही पैरो से कारागृह मे चले आ रहे है, आश्चर्य। लोग अपने ही हाथो से अपनी जजीरे ढाल रहे है, आश्चर्य। और लोग रोते भी है, चिल्लाते भी है कि मुक्त होना है, कि आनदित होना है। और जो करते है, वह बिलकुल विपरीत है। जो करते है उससे बधन निर्मित होता है।

तो लोग जो कहते है, उस पर मत ध्यान देना, लोग जो करते है, उस पर ध्यान देना। लोग क्या कहते है, यह तो छोड़ ही देना। अकसर तो ऐसा है, लोग उलटा ही कहते है। उसका भी कारण समझ लेना चाहिए। लोग उलटा कहते है, क्योंकि उस तरह से वे अपने को संतोष बधाए रखते हैं। अपने हाथों से तो वे बनाते जाते हैं कारागृह और अपनी वाणी से गीत गाते रहते हैं स्वतंत्रता का। यह स्वतंत्रता कारागृह के मिटाने के काम नहीं आती। यह स्वतंत्रता की बातचीत कारागृह को बनाने मे सुविधापूर्ण है। कारागृह भी बनता जाता है, स्वतत्रता की बात भी चलती चली जाती है।

तुम देखते हो, दुनिया मे सब तरफ ऐसा होता है। राजनीतिज्ञ शाति की बात करते है, युद्ध की तैयारी करते है। सारे राजनीतिज्ञ कबूतर उड़ाते है शांति के—शांति-कपोत। और हर राज्य अपनी सपत्ति का साठ, सत्तर, अस्सी प्रतिशत युद्ध की तैयारी पर खर्च करता है। कबूतर भी उड़ाये चले जाते है, अणु-बम भी बनाये चले जाते है। किसको सच माने? यह जो शाति की चर्चा है, यह युद्ध को करने मे सहायता देती है। यह विपरीत नहीं है। अगर यह विपरीत होती और ये कबूतर सच्चे होते, तो कोई कारण न था, लोग क्यो युद्ध के लिए तैयारिया करे।

शांति की तुमने कहीं कोई तैयारी होते देखी? कोई शाति की कहीं तैयारी नहीं होती। शाति की लोग सिर्फ बात करते है, शाति चाहिए। युद्ध की तैयारी करते है। ध्यान रखना, जिसकी तैयारी करते हैं वही चाहते हैं। अगर शाति चाहते होते तो कुछ शांति पर भी खर्च करते, शाति की सेनाए खडी करते, लोगो को शाति का प्रशिक्षण देते। लेकिन वैसा तो कही कुछ नहीं होता। सब प्रशिक्षण युद्ध का है। सब प्रशिक्षण लड़ने, मरने, मारने का है। और कौन कितना कुशल है मारने मे, उसकी दौड है। अमरीका है, रूस है, चीन है—नीचे तो अणु-बम के ढेर लगाये चले जाते है, ऊपर से शाति-काफ्रेस करते चले जाते हैं। वह जो शाति-काफ्रेस है, वह उस ढेर को छुपाने की तरकीब है, वह तबू है शाति का, जिसके अदर बम छिप जाएगे और पता भी न चलेगा। आदमी ऐसा धोखेबाज है। और ऐसा राज्यो के सबध मे ही नही है, सभी के सबध मे यही है।

तुमने कभी खयाल किया, तुम जो कहते हो उससे तुम्हारा जीवन बिलकुल विपरीत है। और अगर ऐसा ही चलते जाना है तो कृपा करो, कहना बद करो। क्योकि कहने से क्या सार है? क्यो उतनी शक्ति व्यय करते हो? व्यर्थ कबूतर मत उड़ाओ। उतना पैसा और बम बनाने मे लगा दो। कम से कम सफाई तो हो, सचाई तो हो, सीधी-सीधी बात तो हो।

अब तक जितने युद्ध हुए दुनिया मे, थोडे नही हुए, कोई तीन हजार साल मे पाच हजार युद्ध हुए है। जितने युद्ध हुए वे सभी युद्ध इसीलिए हुए कि दुनिया मे शाति होनी चाहिए। इससे तो बेहतर है, शांति की बकवास बद करो। अगर शाति के लिए पाच हजार युद्ध करने पड़े तीन हजार सालो मे तो छोड़ो यह शाति काम की नही है, यह तो बडी खतरनाक है, बडी महगी है। सारी दुनिया के राज्य अपने युद्ध के इतजाम का नाम—देखा, 'सुरक्षा-मत्रालय', 'डिफेस' कहते है। सब अटैक करते है और सब डिफेस कहते है। सब आक्रामक है, लेकिन किसी

राज्य का .हिटलर का भी जो युद्ध-मत्रालय था वह सुरक्षा . । कहते है, हम अपनी रक्षा के लिए तैयारिया कर रहे हैं। बड़े मजे की बात है, अगर सभी रक्षा के लिए तैयारिया कर रहे हैं तो हमला कौन कर रहा है ? डर किसका है फिर ? सभी सुरक्षा चाहते है तो फिर तो भय का कोई कारण नहीं है।

लेकिन झूठी है ये बाते। सुरक्षा ऊपर-ऊपर है, बातचीत है, दिखावा है। और इसलिए आज तक यह भी तय नहीं हो पाया कि किसने कब आक्रमण किया। किसने किया ? हिटलर कहता है, हमने नहीं किया, दूसरो ने किया। दूसरे कहते है, हिटलर ने किया। जो जीत जाता है अतत वह इतिहास लिखता है। इसलिए वह इतिहास मे लिख देता है कि दूसरे ने किया। जो हार जाता है, वह तो इतिहास लिख नहीं सकता। इसलिए बड़ा मजा चलता है। पक्का नही है कि जो हार गया है, हो सकता है सुरक्षा ही कर रहा हो, जो जीत गया वही आक्रामक हो। आक्रामक बड़े कुशल है, आक्रमण करने के पहले वे ऐसा इतजाम करते हैं कि ऐसा प्रतीत हो कि वे सुरक्षा कर रहे है।

और ऐसा समाज, राष्ट्र और व्यक्ति, सभी के सबध मे सही है। तुम अपनी तरफ सोचना। तुम जरा अपने दाव-पेच पहचानना। तुम जरा अपनी स्ट्रेटेजि, वह जो तुम्हारी कूटनीति है भीतर, उसको देखना।

तुम अपने बेटे को मारते हो, तुम कहते हो, 'तेरे ही लिए, तेरे ही हित के लिए ।' यही तो राजनीति है।

क्रोध आया था, बेटे ने घड़ी तोड़ दी, या तुमने चाहा था बेटा चुप बैठे और वह चुप नही बैठा, या तुमने चाहा था वह सिनेमा न जाए और चला गया—चोट तुम्हारे अहकार को लगती है। लेकिन तुम कहते हो, तेरे सुधार के लिए। अब यह बडे मजे की बात है, हर बाप सुधार रहा है, लेकिन कोई बेटा सुधरता नहीं मालूम होता। तो जरूर कहीं सुधार में कुछ भूल है, नहीं तो कुछ तो सुधरते। इतना बड़ा आयोजन चलता है।

नहीं, कोई किसी को सुधारने मे उत्सुक नहीं है, लोग अपनी चलाने मे उत्सुक है। अपना अहकार। बाप का भी अहकार है। उसकी आज्ञा तुमने तोडी, यह बरदाश्त के बाहर है। सिनेमा गये, यह बड़ा सवाल नहीं है, यह तो बहाना है, सिनेमा तो वे खुद भी जाते है।

एक सज्जन को मै जानता हू। अपने बेटे को मना किए थे, क्योकि कोई गदी फिल्म आयी थी, कोई अमरीकन। बेटे को मना किए थे, लेकिन बेटे को मना किया तो बेटा भी उत्सुक हुआ। बेटा पहुच गया। घर लौटकर बहुत नाराज हुए, नाराज हुए क्योकि वे भी खुद वहा थे। बड़ा कष्ट जो हुआ वह यह हुआ कि बेटे ने उनको भी वहा पा लिया। उनके बेटे से मैने पूछा, फिर कहा क्या उन्होने ? बेटा हसने लगा। कहने लगा, 'कहते क्या। कहने लगे, मैं यही देखने आया था कि तुम आये तो नहीं हो।' इसके लिए तीन घटे फिल्म मे बैठे रहे।

पर ऐसा ही चलता है। तुम अपने को देखना शुरू करो। जागना शुरू करो। लबी और कठिन यात्रा है। सहारे और सात्वनाओ से काम न चलेगा। पूजा-प्रार्थनाओ से काम न चलेगा। एक-एक इच अपने जीवन को रूपातरण करना होगा। एक प्रामाणिकता चाहिए।

'जन्म दुख है, बुढ़ापा दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है।' और है क्या जीवन मे ? यहा विफलता मिले तो दुख है, यहा सफलता मिलती है तो भी दुख लाती है। यहा गरीब रह जाओ तो दुख है, यहा अमीर हो जाओ तो भी सुख नहीं आता। यहा हार जाओ तो, तो दुख है ही, यहा जीत जाओ तो भी हाथ मे कुछ लगता नहीं। यहा हारे और जीते सब बराबर है, सफल और असफल सब बराबर है।

'अहो। ससार दुख है, जिसमे जीव क्लेश पा रहा है। अहो दुक्खो हु ससारो।' महावीर कहते है, आश्चर्य। चकित होकर कहते है, आश्चर्य। इतना दुख है, फिर भी लोग उसमे डुबकी लगाये जा रहे है। इस दुख की धारा को गगा समझा है। डुबकी लगा रहे हैं।

यहा दरख्तो के साये मे धूप लगती है
चलो यहा से चले और उम्र भर के लिए।

यहा तो दरख्तो का जो साया है उसके पास भी धूप ही खड़ी है। यहा तो साये मे भी धूप लगती है। यहा तो सुख के साथ भी दुख ही खड़ा है। यहा तो शाति के आसपास भी अशाति ने ही घेरा बाधा है।

यहा दरख्तो के साये मे धूप लगती है
चलो यहा से चले और उम्र भर के लिए।

जो जीवन को देखेगे, जो जरा आख खोलकर जीवन को देखेगे, जो विचार करके जीवन को देखेगे, जो विवेक से जीवन

को देखेगे, वे कहेगे 'चलो। चलो यहा से चले और उम्र भर के लिए, सदा के लिए।'

यही वैराग्य है।

मुझे जिंदगी की दुआ देनेवाले
हसी आ रही है तेरी सादगी पर।

लोग जिदगी की दुआ देते है कि खूब जीयो, जुग-जुग जीयो। जरा पूछो भी तो किसलिए दुआ दे रहे हो? क्या पाया तुमने जुग-जुग जीकर? जुग-जुग जीयो यानी जुग-जुग दुख भोगो। सीधी कहो न बात, काहे छिपाते हो?

मै विश्वविद्यालय से घर लौटा, तो मेरी मा, मेरे पिता, परिवार के लोग बडे चितित थे शादी। शादी। शादी। डरते भी थे मुझसे पूछने मे, क्योकि वे जानते रहे सदा से कि मै 'हा' कह दू तो 'हा' और 'ना' कह दू तो 'ना'—फिर 'हा' करना मुश्किल है। तो पूछते नही थे सीधा, यहा-वहा से खबर भेजते—कोई रिश्तेदार, कोई मित्र। तो मेरे पिता के एक मित्र थे, वकील थे। उन्होने सोचा कि वकील आदमी है, यही ठीक रहेगा। उनको कहा कि तुम ही कुछ समझाओ। वकील ने कहा, 'समझा लेगे। बड़े मुकदमे जीते है, यह भी कोई बात है।' वकील तैयार होकर आए। वे मुझसे विवाद करने लगे कि शादी के क्या-क्या लाभ है। मैने सब सुना। मैने कहा, 'सुनो। अगर तुमने सिद्ध कर दिया कि शादी मे लाभ है तो मै शादी कर लूगा, अगर तुम सिद्ध न कर पाए तो तुम्हारी तरफ से दाव पर क्या है? तुम छोड़ोगे पत्नी-बच्चे, अगर सिद्ध हो गया कि शादी ठीक नही ? एकतरफा तो मत करो।'

वे थोड़े चौके। आदमी ईमानदार थे। उन्होने कहा, यह मैने सोचा न था कि मेरा भी कुछ दाव पर लगेगा। तो फिर मुझे सोचने दो। मैने कहा कि तुम सोच कर ही आना। अगर मै हार गया तो उसी वक्त तैयार हो जाऊगा, फिर यह भी फिक्र न करूगा, किससे शादी करते हो। कर देना किसी से भी। लेकिन अगर नहीं हरा पाए तो फिर घर लौटकर नहीं जाने दूगा। छुट्टी लेकर ही आना।

वे कभी आए ही नही। रास्ते पर मुझे मिलते थे, इधर-उधर बचकर निकलते थे। दो-चार बार मै उनके घर भी गया तो वे कहने लगे, 'क्यो मेरे पीछे पडे हो?' मैने कहा, 'मै क्यो पीछे पडा हू। तुम ही मेरे पीछे पड़े थे।' एक बार गया तो पत्नी को बाहर भेज दिया। पत्नी ने कहा कि 'आप किसलिए आते हो बार-बार?' मैने कहा, 'तुमको भी पता होना चाहिए, तभी तुम नाराज मालूम होती हो। वह एक दाव की बात है।'

कहने लगी कि हमारे छोटे बच्चे है, क्यो फिजूल के ? क्योकि जब से तुमसे मिलना उनका हुआ है, वे बड़े चितित रहते है और उदास रहने लगे है।

मेरी मा ने मुझे कहा, तो मैने कहा, 'तू ऐसा कर, पद्रह दिन तू भी सोच ले। अगर तुझे तेरे जीवन मे और तेरी शादी से और तेरे बच्चो से कोई सुख मिला हो —ऐसा सुख जो तू चाहे कि तेरे बेटे को भी मिलना चाहिए, अगर ऐसा कुछ तूने पाया हो, जो कि तेरे मन मे दुख रहेगा कि तेरे बेटे को न मिला—तो पद्रह दिन बाद मुझे कह देना, मै शादी कर लूगा। और अगर ऐसा कुछ भी न पाया हो, दुख ही पाया हो तो इतनी तो कृपा कर कि मुझे चेता दे, मुझे बता दे कि दुख ही पाया है, तो किसी भूल-चूक से मै न उलझ जाऊ।'

मेरी मा, सीधी-सादी। उसने पद्रह दिन बाद कहा कि यह झझट की बात है। तुम्हे करना हो करो, न करना हो न करो। और हमे सोचने को मत कहो, क्योकि सोचने से और घबडाहट होती है, सच मे पाया तो कुछ भी नही। मै तुमसे न कह सकूगी कि तुम शादी करो, क्योकि ऐसा कुछ भी मुझे नही मिला है।

जीवन मे हम अगर गौर से देखे तो हम बहुत चकित होगे। दुख मे लोग जी रहे है, हम दुख मे और लोगो को भी धकेले चले जाते है।

मुझे जिदगी की दुआ देनेवाले
हसी आ रही है तेरी सादगी पर।

जिदगी की लबाई का कोई मूल्य नही है। जिदगी के विस्तार का कोई मूल्य नही है। जिदगी की गहराई का कुछ मूल्य है। वासना से जिदगी लबी होती है, विचार से जिदगी गहरी होती है। लबे होने से ससार मिलता है, गहरे होने से स्वय की सत्ता मिलती है, भगवत्ता मिलती है।

'हा। खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मै मूढमति भयानक तथा घोर भव वन मे चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।'

जब भी कोई जागा है, जब भी कोई महावीर जैसी जिनावस्था मे पहुचा है, तो उसे यह लगा ही है कि हा। खेद। अब तक क्यो

न जागा। इतना समय कैसे सोया रहा। कैसे-कैसे दुखस्वप्नो मे दबा रहा, फिर भी आख न खोली।

'हा। खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मै मूढ़मति भयानक तथा घोर भव वन मे चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।'

यहीं श्रमण और ब्राह्मण-सस्कृति के बुनियादी भेद साफ होते है। ब्राह्मण-सस्कृति कहती है, राम अवतरित हुए, कृष्ण अवतरित हुए। वे भगवान के अवतार है। ऊपर से नीचे आये। वे मनुष्य नहीं है, वे भगवान है।

महावीर ऊपर से नीचे नहीं आए, नीचे से ऊपर आए। वे उसी जगह से गुजरे जहा से तुम गुजर रहे हो। उन्होने वही दुख भोगे जो तुमने भोगे। उन्होने वही पीडाए जानी जो तुमने जानी है। तुम उनके लिए अपरिचित नही हो। तुम्हारा जो वर्तमान है वह उनका अतीत था। और उनका जो वर्तमान है, वह तुम्हारा भविष्य है। उनकी कडी तुमसे जुड़ी है।

इसलिए अगर जैन तीर्थकरो की भाषा मनुष्य के हृदय के बहुत करीब है और जैन तीर्थंकरो और मनुष्यो के बीच कोई खाई-खदक नही है, तो कारण साफ है। जैन तीर्थकर उसी जगह से आए जहा से तुम गुजर रहे हो। तुम्हारे दुख उन्होने जाने है। तुम्हारे कष्ट उन्होने जाने है। तुम्हारा अनुभव उनका अनुभव भी है। इसलिए जब कृष्ण कुछ कहते है तो अर्जुन और कृष्ण की बातचीत मे बडा अतराल है। ऐसा लगता है, कृष्ण किसी और ही जगत की कह रहे है, अर्जुन किसी और ही जगत की कह रहा है—जैसे सवाद हो ही नही पाता। राम का महिमापूर्ण चरित्र। लेकिन उसमे महिमा कुछ भी नही है, क्योकि वह ईश्वर का चरित्र है।

लेकिन महावीर का चरित्र महिमापूर्ण है, क्योकि वह मनुष्य का चरित्र है। राम भगवान से मनुष्य हो रहे है। उन्हे मनुष्यो का क्या पता, कुछ भी पता नही है। महावीर मनुष्य से भगवान हुए है, उन्हे मनुष्यो का रत्ती-रत्ती पता है, उसका दुख, उसकी पीड़ा, उसका सकट, उसकी मूढ़ता, अज्ञान, भ्रातिया, माया-मोह, उसका भटकना उन्हे पूरी तरह पता है।

इसलिए महावीर के वचनो की एक वैज्ञानिकता है। कृष्ण के वचनो मे एक दार्शनिकता है। बडी ऊची हवा ही बात है, आकाश की बात है। लेकिन महावीर के पैर जमीन मे अड़े है, उनका सिर आकाश मे उठा है, लेकिन पैर उनके जमीन पर है। बड़ा यथार्थ, बड़ा अनुभव-पूरित, अनुभव-गम्य मार्ग है। इसलिए महावीर के वचनो मे रहस्यवाद नहीं है। वे कोई मिस्टिक नही है। वे किसी धुधले लोक की, किसी आकाश की बात नही कर रहे है, वे तुम्हारी बात कर रहे है। और जब वे तुमसे बात कर रहे है, तो उनके मन मे ऐसा भाव नही है कि तुम क्षुद्र । वे जानते है कि वे भी यही थे। वे चकित होते है तुम पर, लेकिन तुम पर क्रोधित नही है। यह समझने जैसी बात है।

उनके मन मे तुम्हारी निंदा नही है, करुणा है, गहन करुणा है। आश्चर्य से भरे है, लेकिन उस आश्चर्य मे तुम पर ही आश्चर्य नही है, स्वय पर भी आश्चर्य है। इसलिए तत्क्षण जैसे ही उन्होने कहा कि अहो। ससार मे दुख ही दुख है, फिर भी जीव क्लेश पा रहे है—उसके बाद ही वे कहते है, 'हा। खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मै मूढ़मति भयानक तथा घोर भव-वन मे चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।' वे यह नही कह रहे है कि तुमसे मै कुछ ऊपर हू, पवित्र हू, श्रेष्ठ हू—मै तुम मे से हू। मै तुम्हारी ही भीड से आया हू, मै अपरिचित, अनजान नहीं। मै कोई परदेशी नही। मै तुम्हारे ही देश का वासी हू। और जो तुम भोग रहे हो, वह मैने भी भोगा है। तुम्हारी मूढता मेरी भी मूढ़ता है। तुम्हारा अज्ञान मेरा भी अज्ञान है।

'सुगति का मार्ग न जानने के कारण ।'

सुगति का मार्ग है ध्यान, विवेक, विचार, जागरूकता, अमूर्च्छा, अप्रमाद। न जानने के कारण—

रोती है शबनम कली दिलतग है गुल सीनाचाक
क्या इसी मजमूआ-ए-गम का गुलिस्ता नाम है।

रोती है शबनम—आसू है शबनम मे। आसू ही शबनम है। कली दिलतग है—कली सिकुड़ी है अपने मे, खुल नही पाती। कली दिलतग है गुल सीनाचाक। फूल का हृदय टूट गया है। पखुड़िया बिखरी जा रही है। क्या इसी मजमूआ-ए-गम का गुलिस्ता नाम है। क्या इसीको गुलिस्ता कहे। जहा जन्म भी दुख है, जहा जीवन भी दुख है, जहा मृत्यु भी दुख है, जहा एक दुख के बाद दूसरे दुख की शृखला है—इसको जीवन कहे, गुलिस्तां कहे। नहीं, इसमे जीवन जैसा कुछ भी नही है। एक गहन स्वप्न है, स्वप्न भी मधुर नहीं। स्वप्न भी दुख-स्वप्न है, नाइटमेयर।

लेकिन महावीर कहते है, क्या करो ? अनत जन्म ऐसे गये, क्योकि सुगति का कोई मार्ग पता न था।

थोड़ा सोचो। सुगति का मार्ग पता न था, क्या ऐसे लोग न थे जो सुगति का मार्ग बता रहे थे? महावीर के पहले जैनो के भी तेईस तीर्थंकर हो गये। महिमावान पुरुष हुए। सुगति का मार्ग तो था, बतानेवाले थे—सुना नही महावीर ने। उसी लिए आज रोते है। सुगति का मार्ग तो था, लेकिन उस पर चले नहीं। क्योंकि यह मार्ग कुछ ऐसा है कि चलने से ही बनता है। यह कोई बना-बनाया मार्ग नही है। कोई पी डब्ल्यू डी नहीं है कहीं आकाश मे कि रास्ते बनाती है कि तुम बस तैयार रास्ते है, चल पड़ो। जब मौज आ जाए, निकाल लो गैरेज से अपनी गाडी और चल पड़ो। नहीं, बने-बनाये रास्ते नही है। रास्ता चल-चलकर बनता है। पगडडियो जैसा है, राजपथ नही। चलते हो, उतना ही बनता है।

सुनो उनकी जिन्होने पाया हो। गुनो उनकी जिन्होने पाया हो। पीयो उनको जिन्होने पाया हो। और फिर थोड़ा-सा जो तुम्हारे गले मे घूट उतर जाए, उसको सिर्फ ज्ञान बनाकर मत रह जाना। उसको पचाओ। पचाने का अर्थ है चलो। जो तुमने सुना और समझा, थोडा उसका जीवन मे प्रयोग करो। उतना रास्ता बनता है। और एक कदम उठता है तो दूसरे कदम के लिए सुविधा बनती है। दूसरा कदम उठता है तो तीसरे कदम की सुविधा बनती है। और एक-एक कदम से आदमी हजारो मील की यात्रा कर जाता है।

'हा, खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मै मूढ़मति भयानक तथा घोर भव वन मे चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।'

'जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त हो गया है, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। उसे धर्म भी रुचिकर नहीं लगता, जैसे ज्वरग्रस्त मनुष्य को मीठा रस भी अच्छा नही लगता।'

महावीर कहते है, नही कि मैने नही सुना था, नही कि सदगुरु नहीं थे। लेकिन बुद्धि विपरीत थी। सुनता था कुछ, गुनता था कुछ। जो कहा जाता था उससे विपरीत सुन लेता था। जो बताया जाता था, उससे उलटा चल पड़ता था।

एक वकील के दफ्तर मे ऐसा घटा। एक बहुत बडे वकील अपने दफ्तर मे कार्य करनेवाले लड़के को सुधारने की कोशिश कर रहे थे। एक दिन लड़का अपनी टोपी उछालते हुए कमरे मे आया और बोला, 'मिश्रा जी, आज एक बहुत अच्छा नाटक हो रहा है और मै वहा जाना चाहता हू।' मिश्रा जी भी चाहते थे कि लड़का नाटक देख ले, पर उसे कुछ तमीज सिखाने के खयाल से उन्होने कहा, 'छोटे। पूछने का यह कोई तरीका है? टोपी उछालते हुए चले आ रहे हो दफ्तर मे। यह कोई ढग है? तुम मेरी कुर्सी पर बैठो, मै तुम्हे सही तरीका सिखाता हू।'

लड़का कुर्सी पर बैठ गया और वकील साहब कमरे के बाहर चले गये।

फिर उन्होने अदर आने के लिये धीरे से दरवाजा खोला और कहा, 'साहब। आज दोपहर को एक बहुत अच्छा नाटक हो रहा है, यदि आप मुझे छुट्टी दे दे तो मै उसे देख आऊ।'

'क्यो नही', कुर्सी पर बैठे लड़के ने कहा, 'और छोटे। यह लो टिकट के पाच रुपये।'

बडा मुश्किल है सिखाना। क्योकि जिसे तुम सिखाने चले हो, वह पहले से ही सीखा बैठा हुआ है। इस ससार मे शिष्य खोजना बडा मुश्किल है, क्योकि शिष्य पहले से ही गुरु बना बैठा है। लोग जानते ही है। उसी जानकारी के कारण अगर कोई जाननेवाला भी मिल जाए तो उससे चूक जाते है।

मेरे पास लोग आते है। वे कहते है, हमारे शास्त्र मे तो ऐसा लिखा है और आपने ऐसा कहा। तो मै उनसे कहता हू, तुम्हे शास्त्र ठीक लगता हो तो उस पर चलो। चलो। तुम्हे मै ठीक लगता हू, मुझ पर चलो। कृपा करके इस झझट मे तो न पड़ो कि शास्त्र ठीक कि मै ठीक। क्योकि ठीक का पता सोच-विचार से न चलेगा, चलने से चलेगा। मैने तुमसे कहा, पूर्व से जाओ तो नदी पहुच जाओगे। कोई तुमसे कहता है, पश्चिम से जाओ तो नदी पहुच जाओगे। तो मै कहता हू, कैसे तय करोगे यही खडे-खड़े, कौन ठीक कहता है? चलो, जिस पर तुम्हे भरोसा हो। शास्त्र पर भरोसा हो, चलो। अगर नदी न मिले तो हिम्मत रखना स्वीकार करने की कि शास्त्र गलत। अगर मेरी बात मानकर चलो और नदी न मिले, तो हिम्मत रखना यह बात स्वीकार करने की कि जिसको गुरु समझा था वह गलत था। फिर ऐसा मत करना कि जब एक दफा मान लिया किसी की बात को कि पूरब मे नदी है, तो अब चाहे पूरब मे नदी मिले या न मिले, चाहे जन्म-जन्म भटक जाए लेकिन हम पूरब मे ही खोजेगे, क्योकि मान लिया सो मान लिया।

ऐसी हठग्राहिता से कुछ अर्थ नही है। लोग माने बैठे हैं, चले भी नही, कभी प्रयोग करके भी नहीं देखा। सैद्धातिक बकवास

लोगो के मन में गूजती रहती है। उसके कारण अगर कोई जतानेवाला भी मिल जाए, कोई जगानेवाला भी मिल जाए, कोई तुम्हारी ज्योति को थोड़ा सहारा भी देनेवाला मिल जाए, तो तुम उसे सहारा नहीं देने देते। तुम कहते हो, 'ठहरो। हमारी मान्यता के विपरीत तो नही है ?' तुम मान्यताओ को क्या सपत्ति समझे हुए हो ? तो फिर तुम न सीख पाओगे।

तो महावीर कहते है, जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त होता है उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। नही कि सदपुरुष न थे। नही कि ज्योतिर्मय पुरुष न थे। लेकिन कहते है, 'मै मूढमति। जो उन्होने कहा, उससे उलटा समझा। जो उन्होने बताया वह तो सुना ही न, कुछ और सुन लिया। जो उन्होने कहा, वह तो कभी किया न, उसे सैद्धातिक बोझ बना लिया।'

'उसे धर्म भी रुचिकर नही लगता।' और धर्म की बात रुचिकर नही लगती। क्योकि धर्म की बात को अगर रुचि से सुनो भी, तो तुम्हारे जीवन मे क्राति सुनिश्चित है। लेकिन क्राति से घबडाहट होती है। तुमने बहुत-से न्यस्त स्वार्थ बना रखे है। तुम एक बड़ा मकान बना रहे हो, अब कोई कहता है कि ये सब खडहर हो जाएगे। तो तुम कहते हो, यह बातचीत सुनो ही मत, अब यह बना तो लेने दो। अभी अगर यह बीच मे बात सुन ली तो यह बनाने का जो उपक्रम चल रहा है, बद हो जाएगा।

मेरे एक मित्र के साथ, इदौर के पास माडू मे मै मेहमान था। माडू की सख्या कभी नौ लाख थी—ज्यादा दिन नही, सात सौ साल पहले, और आज नौ सौ भी नही है। बड़ी विराट नगरी थी माडू। माडवगढ उसका नाम था। जब बस्ती सिकुड गयी तो माडवगढ 'माडू' हो गया—हो ही जाना चाहिए। माडवगढ अब कहने का कोई मतलब नही है। इतनी-इतनी बडी मस्जिदे है, उनके खडहर है, जहा दस-दस हजार लोग इकट्ठे नमाज पढ़ सकते थे। इतनी बड़ी धर्मशालाए है कि जहा दस-दस हजार लोग इकट्ठे उतर सकते थे। माडव बडी नगरी थी। उन जमानो की बबई थी। क्योकि ऊटो का सारा आवागमन था और माडू मध्य मे था। सारा मुल्क माडू से गुजरता था। मुल्क के बाहर के यात्री भी, चाहे अफगानिस्तान से आते हो, चाहे काबुल से आते हो, चाहे ईरान से आते हो, माडू से ही गुजरते थे। तो हजारो यात्री बने रहते थे। सैकडो मस्जिदे थी, सैकडो मदिर थे, सैकडो धर्मशालाए थी। ऊटो के ठहरने के लिए इतने-इतने बडे स्थान थे कि हजारो ऊट इकट्ठे ठहर सके। फिर अचानक सब खो गया। आज माडू मे नौ सौ आदमी है। खडहर पड़े है। विशाल खडहर है। बडे महल है। मीलो तक विस्तार है।

जिन मित्र के साथ मै ठहरा था, वे इदौर मे एक बड़ा मकान बना रहे थे। वे इतनी धुन से भरे थे अपने बड़े मकान की कि सुबह उठे तो उसकी बात करे। नये-नये विचार, नयी-नयी तरगे कि ऐसा कर लेगे। तो स्विमिगपूल कैसा बनाना । कौन-सा पत्थर लगाना, रात सोते-सोते भी वे वही बात करते, सुबह उठकर भी। दो-तीन दिन के बाद मैने उनसे कहा कि तुम जरा माडू भी तो देखो। कहने लगे, क्या देखना माडू मे ? मैने कहा, जरा चारो तरफ नजर भी तो फैलाओ, कितने बडे महल थे, सब खडहर हो गये। उन्होने कहा, रहने दो बाबा। पहले मुझे मकान तो बना लेने दो। जब होगा खडहर तब होगा। अभी मत छेडो बीच मे यह बात।

वे मुझसे उस दिन बोले कि कभी-कभी तुम्हारे साथ होकर डर लगता है। हो तो जाने दो पहले मकान पूरा, तुम अभी से खडहर की बात करने लगे। अपशगुन तो मत करो। कोई शुभ कार्य मे ऐसी बात तो नही कहनी चाहिए।

वे घबड़ा गये। स्वभावत कोई महल बना रहा हो, उसको तुम खडहर की बात बताओ, नाराज होगा। समझ मे भी आ जाए समझ मे क्यो न आएगा ? समझने की क्या अड़चन है इसमे ? इतना फैलाव पड़ा है, इतने खडहर हो गये मकान—तुम्हारा मकान भी खडहर हो ही जाएगा। तुम बना-बनाकर मर जाओगे, मिट जाओगे। तुम अपने को गवा दोगे ईटे रखने मे। फिर पछताओगे।

लेकिन आदमी के न्यस्त स्वार्थ है।

इसलिए महावीर कहते है

'मिच्छत्त वेदन्तो जीवो विवरीयदसणो होइ।
न य धम्म रोचेदु हु, महुर पि रस जह जरिदो।।'

जैसे ज्वरग्रस्त आदमी को मीठा रस भी मीठा नहीं मालूम पडता, ऐसे वासना के ज्वर से भरे व्यक्ति को धर्म की बात भी सुनायी नही पड़ती, उलटी सुनायी पड़ती है।

एक छोटा बच्चा एक बगीचे मे आम तोड़ता हुआ पकड़ा गया। माली ने उसे पकड़ा, पुलिस-थाने ले गया। लड़का भोला-भाला था। भोला-भालापन देखकर दरोगा ने कहा,

'बेटे, तुम्हे बुरे लोगो से बचना चाहिए।' उस लडके ने कहा, 'अजी मैने तो माली से बचने की बहुत कोशिश की, पर उसने मुझे पकड ही लिया।'

दरोगा कह रहा है, बुरे सत्सग से बचो, ताकि चोरी न सीखो। लड़का सुन रहा है कि यह माली बुरा आदमी है, मै तो भागने की कोशिश कर ही रहा था, इससे बचने की कोशिश कर ही रहा था, फिर भी इसने पकड लिया।

तुम अपनी वासना के आधार से सुनते हो। इसलिए अपने सुने हुए पर बहुत भरोसा मत करना। बहुत गौर से सुनना। सुन भी लो तो भी पुन पुन विचार करना, यही कहा गया था। तुमने कही कुछ मिश्रित तो नही कर लिया है, तुमने कहीं कुछ जोड तो नही लिया, तुमने कही कुछ घटा तो नही दिया है। एक शब्द भी घटा देने से बडा फर्क पड़ जाता है। एक शब्द भी जोड लेने से बडा फर्क पड जाता है। जरा-सा जोर एक शब्द पर ज्यादा दे दो, बडा फर्क पड़ जाता है।

'और मिथ्यात्व से भरा हुआ व्यक्ति, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है।'

'मिथ्यात्व' महावीर का विशेष शब्द है। जैसे 'माया' शकर का, ऐसे 'मिथ्यात्व' महावीर का। मिथ्यात्व बडा बहुमूल्य शब्द है। इसका अर्थ समझना चाहिए। मिथ्यात्व का अर्थ है जैसा है, उसको वैसा न देखना। जैसा है, उसको वैसा देख लेना—सम्यकत्व। जैसा है, उसको वैसा न देखना—मिथ्यात्व। कुछ को कुछ देख लेना ।

अधेरे मे चल रहे हो, दूर से दिखता है कि कोई चोर खड़ा है, पास आते हो तो पाते हो कि बिजली का खभा है। तो वह जो चोर दिखायी पड़ गया था—'मिथ्यात्व'। नही कि चोर वहा था, तुम्हे दिखायी पड़ गया था।

रस्सी पड़ी है। अधेरे मे गुजर रहे हो, घबडाकर छलाग लगा जाते हो, लगता है साप है। रोशनी लाते हो, देखते हो कोई साप नही, रस्सी पड़ी है। रस्सी साप जैसी दिखायी कैसे पड़ गयी? तुम्हारे भीतर के भय ने लगता है साप निर्मित कर लिया। रस्सी मिलती-जुलती है साप से थोड़ी, साप जैसी लहरे लिये पडी है। उस मिलते-जुलतेपन के कारण तुम्हारे भीतर के भय का तूफान उठ गया, आधी उठ गयी। और तुम्हारे भय ने साप देख लिया। इतना ही समझो कि तुम्हारे भीतर साप का भय पड़ा हुआ है। रस्सी मे साप दिख गया, क्योकि तुम्हारे भीतर साप का भय पडा हुआ है।

तुम थोडा सोचो, ऐसा कोई आदमी जिसने साप कभी देखा ही न हो, या सुना ही न हो, क्या वह आदमी भी इस रस्सी मे साप देख सकेगा? कैसे देखेगा? असभव।

एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था। वह अपने विद्यार्थियो को ले गया काशी के मदिर मे, विश्वनाथ के मदिर मे। शकर जी की पिडी के पास वह अपना हैट रख आया और दरवाजे पर उसने खडे होकर शिष्यो को पूछा कि क्या है, शकर जी की पिडी के पास क्या रखा है?

उन सब ने गौर से देखा और सब ने कहा कि शकर जी का घटा। क्योकि हैट और शकर जी का सबध ही नही जुड़ता। तो वह जो हैट था, घटे जैसा दिखायी पडने लगा।

तुमने कभी देखा, आकाश मे बादल बनते है। तुम जो देखना चाहते हो, देख लेते हो। कभी-कभी वर्षा की बूदे दीवालो पर चित्र अकित कर जाती है, तुम जो देखना चाहते हो देख लेते हो। वहा कुछ भी नही है। कभी-कभी चेहरा दिखायी पडता है। दीवाल पर पानी की रेखाए बह गयी है। वहा कुछ भी नही है। लेकिन तुम आरोपित कर लेते हो।

मिथ्यात्व का अर्थ है जो नही है वह तुमने देख लिया, और जो था उससे तुम चूक गये। जब तुम उसे देख लोगे जो नही है तो उससे तुम चूक ही जाओगे जो है।

दृष्टि को साधना है। दृष्टि को निर्मल करना है। और धीरे-धीरे दृष्टि के साथ जल्दी निष्कर्ष नही लेने है। निष्कर्ष करने मे थोडा धैर्य करो। सुनो, देखो, जल्दी निष्कर्ष मत लो। मेरे पास तुम आए हो, सुनते हो। इधर तुम सुन रहे हो, साथ-साथ तुम निष्कर्ष भी लेते जाते हो।

तुम मे से कई है जो सिर हिलाते है, वे कहते है, बिलकुल ठीक। उनके भीतर मेल खा रही है बात। वे जो मानते रहे है उससे मेल खा रही है। कोई सिर हिलाता है कि नही। वह उसे पता भी नही कि वह सिर हिला रहा है, मुझे दिखाई पड़ता है कि वह कह रहा है कि नही। यह बात जचती नहीं।

इतनी जल्दी मत करो, पहले मुझे सिर्फ सुन लो। सिर्फ शुद्ध सुनना काफी है। फिर सुनने के बाद, समझने के बाद फिर तालमेल बिठा लेना। अभी तुमने अगर साथ ही साथ दो

प्रक्रियाए जारी रखी कि तुम अपने भीतर विचार भी चलाते रहे, तर्क भी करते रहे, विवाद भी करते रहे, तालमेल भी बिठाते रहे, तो तुम मुझे न सुन पाओगे। तुम्हारा शोरगुल इतना ज्यादा होगा, तुम कैसे मुझे सुन पाओगे? फिर तुम जो निष्कर्ष लोगे वह मिथ्यात्व होगा।

'मिथ्या-दृष्टि जीव तीव्र कषाय से पूरी तरह आविष्ट होकर जीव और शरीर को एक मानता है। वह बहिरात्मा है।'

महावीर कहते है, आत्मा की तीन अवस्थाए है बहिरात्मा—जब तुम वासना से बाहर बहे जाते हो, अतरात्मा—जब तुम ध्यान से भीतर चले आते हो, और परमात्मा—जब बाहर-भीतर दोनो खो गये।

हो तो तुम वही। हो तो तुम परमात्मा ही। लेकिन जब परमात्मा बाहर की तरफ बह रहा है तो बहिरात्मा। जब पदार्थ मे रुचि है, वस्तु मे रुचि है, दूसरे मे रुचि है, विषय-वस्तु मे रुचि है, जब तुम अपने को इतना भूल गये हो कि बस पदार्थ ही सब कुछ हो गया, धन के दीवाने हो, पद के दीवाने हो—तब तुम बहिरात्मा। बहिरात्मा यानी आत्मा बाहर की तरफ बहती हुई। फिर विचार शुरू हुआ। बहुत जले, इतने जले कि दूध का जला छाछ भी फूक-फूककर पीने लगा। विचार का जन्म हुआ, विवेक उठा, तब तुम भीतर लौटने लगे, अतर्यात्रा शुरू हुई—तब अतरात्मा।

हो तो तुम वही—दिशा बदली, आयाम बदला, तुम्हारा गुणधर्म बदला, अभी तुम घर के बाहर जाते थे, अब तुम घर की तरफ आने लगे, अभी ससार की तरफ मुह था, अब पीठ हो गयी, अभी सन्मुख ससार था, अब तुम आत्म-सन्मुख हुए, फिर पहुच गये घर, फिर तुम अपने मे लीन हो गये, फिर स्वभाव उपलब्ध हो गया—तब परमात्मा।

अब न कुछ बाहर है, अब न कुछ भीतर है। द्वद्व गया, दुई मिटी। द्वद्वात्मकता खोयी, निर्द्वद्व हुए। निर्ग्रंथ हुए। इसको महावीर कहते है मोक्ष-अवस्था।

बहिरात्मा को अतरात्मा बनाना है, अतरात्मा को परमात्मा बनाना है। परमात्मा तुम हो ही, सिर्फ यात्रा के रुख बदलने है, दिशा बदलनी है। जो तुम हो, वही हो सकते हो। जो तुम हो ही, वही होओगे। लेकिन अगर विपरीत चले जाओ, मिथ्यात्व मे खो जाओ, तो तुम रहोगे भी परमात्मा, लेकिन अपने को कीड़ा-मकोडा समझने लगोगे, आदमी, स्त्री, हिंदू, मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र समझने लगोगे। रहोगे परमात्मा और किसी छोटी-सी चीज से अपना सबध बना लोगे, कहोगे—यही मै हू, यही मै हू, यही मैं हू।

लौटो भीतर की तरफ। ध्यानस्थ होओ। धीरे-धीरे तुम्हारी दृष्टि क्षुद्र से छूटेगी। जैसे अपनी तरफ लौटोगे, अचानक पाओगे न तो मै शरीर हू न मै मन हू, न मै हिंदू न मै मुसलमान, न ब्राह्मण न शूद्र, न जैन न ईसाई, न स्त्री न पुरुष, न गरीब न अमीर, न सुखी न दुखी। जैसे-जैसे भीतर आने लगोगे, द्वद्व छूटने लगे—दूर खोने लगे, आकाश मे कही। रह गए स्वप्नवत। स्मृति रह गयी। फिर एक दिन अचानक घर मे प्रवेश हो जाएगा। तुम अपने स्वरूप मे थिर हो जाओगे।

स्वरूप मे थिर हो जाना स्वस्थ हो जाना है। स्वस्थ यानी स्वय मे स्थित। परमात्मा हुए, परमात्मा प्रगट हुआ।

महावीर की विचार-सरणी मे परमात्मा प्रकृति के प्रारभ मे नही है। परमात्मा, जब प्रकृति का परिपूर्ण उन्मेष और विकास हो जाता है, तब है। और परमात्मा एक नही है, उतने ही परमात्मा है, जितने जीवन-बिंदु है। हर बिंदु सागर हो जाता है। उतने ही सागर है जितने बिंदु है।

इसलिए परमात्मा, महावीर की दृष्टि मे, कोई तानाशाही की धारणा नहीं है, बडी लोकतात्रिक धारणा है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है। प्रत्येक व्यक्ति की नियति परमात्मा है, स्वभाव परमात्मा है।

महावीर ने तुम्हारे भीतर के परमात्मा को पुकारा है—किसी परमात्मा की पूजा के लिए नहीं, किसी परमात्मा की अर्चना के लिए नही—अपने परमात्मा को पाने के लिए। और जब तक कोई परमात्मा की अवस्था को उपलब्ध न हो जाए ध्यान रखना, परमात्मा अवस्था है, व्यक्ति नही तब तक जीवन दुख से भरा रहता है, तब तक अधेरी रात नहीं टूटती।

उठो। चलो। उस सूरज की खोज करो जो तुम्हारे भीतर छिपा है। जागो। थोडा हलन-चलन करो। थोड़ी गति करो। उसकी खोज करो जो तुम्हारे भीतर पड़ा ही है, जिसे तुम सदा ही अपने भीतर छिपाये रहे हो, लेकिन नजर नहीं दी, उस तरफ आख नहीं फेरी। जैसे ही तुम भीतर की तरफ नजर को फेरते हो, मिथ्यात्व सरकने लगता है, खोने लगता है।

जैसे दीये के जलने पर अंधेरा विसर्जित होता है—सम्यकत्व का जन्म होता है। और जब तुम पहुंच गये, तो वहां न मिथ्यात्व है न सम्यकत्व, दोनों द्वंद्व गये। फिर वहां तो केवल-ज्ञान, केवलत्व, कैवल्य है।

आज इतना ही।





चौथा प्रवचन

धर्म : निजी और वैयक्तिक

प्रश्न-सार

कोई आठ वर्षो से आपको सुनती-पढ़ती हू,
लेकिन सिर्फ आप ही है सामने। रोना ही रोना। यह क्या है?

शास्त्रीय परंपरा मे संन्यासी काम-भोग से विमुख
और प्रभु-प्राप्ति के लिए उन्मुख होता है,
लेकिन आपके सन्यास मे विरक्ति पर जोर क्यो नही? ..

क्या भक्ति-मार्ग मे बुरे कर्मो का फल भोगना पड़ता है अथवा नही?

यदि इस पृथ्वी पर कही स्वर्ग है तो वह यही है, यही है, यही है।
ऐसा क्यो हुआ, कृपया समझाए।

पहला प्रश्न कोई आठ वर्षो से आपको सुनती हू, पढती हू, लेकिन सब भूल जाता है, सिर्फ आप ही सामने होते है। और अब तो रोना ही रोना रहता है। घर पर आपके चित्र के सामने रोती हू, यहा प्रवचन मे रोती हू। यह क्या है ? तेरी यारी मे बिहारी सुख न पायो री।

प्रेम जलाता है। और प्रेम मे जो जलने को राजी है वही प्रार्थना को उपलब्ध भी होता है। प्रेम दुख देता है, क्योकि प्रेम काटता है। जैसे मूर्तिकार पत्थर को तोड़ता है, छैनी-हथौड़ी से, लेकिन तभी प्रतिमा का आविर्भाव होता है। जो प्रेम के दुख से डर गया, वह अप्रेम के नर्क मे जीयेगा सदा। जिसने प्रेम की पीडा को स्वीकार कर लिया, तो दुख जल्दी ही सुख मे रूपातरित होगा—और ऐसे सुख मे जिसका कोई अत नही।

आसुओ से भरा है रास्ता सत्य की खोज का, लेकिन एक-एक आसू के बदले मे करोड-करोड़ फूल खिलते है। ये आसू साधारण आसू नही है। जिसने पूछा है उसे मै जानता हू। ये आसू साधारण आसू नही है। और इन आसुओ का दुख साधारण दुख भी नहीं है। इन आसुओ मे एक रस है। इनको आसू ही मत समझना, अन्यथा चूक हो जाएगी। दूसरे समझे तो समझने देना। खुद इन आसुओ को अगर आसू ही समझ लिया तो बड़ी चूक हो जाएगी। यह तो अनिवार्य चरण है।

परमात्मा की खोज मे दो ही उपाय है। या तो आसू बिलकुल सूख जाये, आंख जरा भी गीली न रहे, गीलापन ही न रहे, लकड़ी सूखी हो जाये कि आग लगाओ तो धुआ न उठे, लपट ही लपट हो। वैसा महावीर का मार्ग है। वहा आसू सुखाने है। वहा आसुओ को बिलकुल वाष्पीभृत कर देना है। वहा प्रेम को बचाना नही, वहा प्रेम की सारी सभावनाओ को समाप्त कर देना है—ताकि तुम ही बचो, निपट अकेले, बाहर जाने का कोई द्वार भी न बचे। क्योकि प्रेम बाहर ले जाता है। ससार मे भी ले जाता है, परमात्मा मे भी ले जा सकता है, लेकिन साधारणत तो ससार मे ही ले जाता है, निन्यान्नबे मौके पर तो ससार मे ही ले जाता है।

महावीर का मार्ग कहता है, इन आसुओ को सुखा डालो। न कोई भक्ति न कोई भाव, न कोई पूजा न कोई प्रार्थना—बुझा दो ये सब दीप अर्चना के। निपट अपने अकेलेपन मे राजी हो जाओ। तो भी परमात्मा प्रगट होता है। इस अति पर भी परमात्मा प्रगट होता है।

फिर दूसरा मार्ग है नारद का, चैतन्य का, मीरा का। जिसने पूछा है उसका नाम भी मीरा है। वहा आसू ही आसू हो जाओ। वहा तुम न बचो। पिघलो और बह जाओ, कि पीछे कोई रोनेवाला न बचे, रुदन ही रह जाये। इस तरह गलो कि जरा-सी भी गाठ न रह जाये भीतर। सब आखो के बहाने बह जाये। सब आसुओ मे ढल जाये। तो भी परमात्मा तक पहुचना हो जाता है। क्योकि जब सब बह जाता है, तुम बचते ही नही, तो परमात्मा ही बचता है।

या तो तुम्हीं बचो और कुछ न बचे, तो परमात्मा मिलता है। या और सब बचे, तुम न बचो, तो परमात्मा मिलता है।

या तो तुम्हारा आत्मभाव इतना विराट हो जाये कि सब उसमे

समा जाये, या तुम्हारा आत्मभाव इतना शून्य हो जाये कि सबमे समा जाये।

महावीर का मार्ग आत्मा को सुदृढ करने का मार्ग है। नारद का मार्ग आत्मा को विसर्जित कर देने का मार्ग है। इसलिए घबड़ाओ मत। हसकर रोओ, रोकर नाचो, नाचकर रोओ। नृत्य को उत्सव समझो।

हम पे मुश्तरका है अहसान गमे-उलफत के
इतने अहसान कि गिनवाऊ तो गिनवा न सकू
हमने इस इश्क मे क्या खोया है, क्या पाया है
जुज तिरे और को समझाऊ तो समझा न सकू।

हम पे मुश्तरका है अहसान गमे-उलफत के। प्रेम की पीडा के इतने अहसान है, प्रेम के दुख ने इतना दिया है—गमे-उलफत।

हम पे मुश्तरका है अहसान गमे-उलफत के
इतने अहसान कि गिनवाऊ तो गिनवा न सकू।

अनत है उनका उपकार। एक-एक आसू ने भक्त को निखारा है, स्वच्छ किया है, ताजगी दी है, निर्दोष बनाया है।

एक-एक आसू जहर को लेकर बाहर हो गया है, पीछे अमृत ही छूट गया है।

हम पे मुश्तरका है अहसान गमे-उलफत के
इतने अहसान कि गिनवाऊ तो गिनवा न सकू
हमने इस इश्क मे क्या खोया है, क्या पाया है
जुज तिरे और को समझाऊ तो समझा न सकू।

और कोई समझ भी न सकेगा।

बहुत कुछ खोया भी जाता है प्रेम मे। बहुत कुछ पाया भी जाता है प्रेम मे। खोना मार्ग है पाने का। खोने से डरे तो पाने से वचित रह जाओगे। पहले तो खोया ही जाता है, पाना तो बाद मे घटता है। पहले तो खोना ही खोना है। सौदा पहले तो घाटे का है। जब सब खो जाता है, तब मिलन के क्षण आते है, तब वर्षा होती है। जैसे गर्मी मे सब सूख जाता है, धरती तपती है, वृक्ष रूखे हो जाते, पत्ते गिर जाते, वृक्ष नग्न हो जाते, धरती प्यासी और रोती—तब मेघ-मल्हार, तब मेघ घिरते है, तब आषाढ़ के दिवस आते और वर्षा होती है।

पहले तो खोना ही खोना है। खोना पाने की पात्रता है। पहले तो खाली होना है, इसलिए खोना पडेगा। पात्र जब पूरा खाली होगा तो बरसेगा परमात्मा।

हमने इस इश्क मे क्या खोया है, क्या पाया है
जुज तिरे और को समझाऊ तो समझा न सकू।

उस परम प्यारे के अतिरिक्त किसी और को समझा भी न सकोगे। कोई समझेगा भी नही, क्योकि यह सौदा बड़े पागलपन का है। भक्त का रास्ता दीवाने का रास्ता है।

महावीर का रास्ता अत्यत विचार का रास्ता है, अत्यत विवेक का, गणित का। वहा चीजे साफ-सुथरी है। इसलिए जैन-शास्त्रो मे रस नही है। पढ़े जाओ, सुने जाओ, मरुस्थल ही मरुस्थल है। जैन शास्त्रो मे रस नही है—हो नही सकता। वह मार्ग वैराग्य का है, विरसता का है। रस है तो भक्ति के शास्त्रो मे। वहा तुम्हे कोई सूखी जमीन न मिलेगी। वहा सब कमलो से ढका है। लेकिन वे कमल मुफ्त नही मिलते। वे कमल यू ही नही खिलते, जब कोई सब गवाता है, तब खिलते है। तो घबड़ाना मत। अब रोने को ही साधना समझना। कजूसी से मत रोना। रोए और कजूसी से रोए तो व्यर्थ रोए। दिल भरकर रोना। समग्रता से रोना। और रोने को प्रार्थना समझना, अहोभाव समझना। ये आसू कम ही सौभाग्यशालियो की आखो मे आते है। बहुतो की आखे तो पथरा गयी हैं, नकली हो गयी है।

मैने सुना है, एक करोडपति कजूस की एक आख नकली थी, पत्थर की थी। एक आदमी भीख मागने आया था। कजूस ने कभी किसी को भीख न दी थी। लेकिन उस दिन कुछ शुभ मुहूर्त मे आ गया था भिखारी। कजूस कुछ प्रसन्न था। कोई बड़ी सपदा हाथ लग गयी थी। अभी-अभी खबर मिली थी तो बडा प्रफुल्लित था। तो रोज से उस दिन सदय था। कभी किसी भिखारी को कुछ न दिया था। उस दिन भिखारी से कहा, 'अच्छा दूगा कुछ, लेकिन पहले एक शर्त है। क्या तू बता सकता है कि मेरी कौन-सी आख असली है, कौन-सी नकली है?' उस भिखारी ने देखा और उसने कहा कि बायीं असली होनी चाहिए, दायी नकली। चकित हुआ धनपति। उसने कहा, 'कैसे तूने जाना?' तो उसने कहा, 'नकली आख मे थोड़ी-सी करुणा मालूम पड़ती है, थोड़ी दया का भाव मालूम पड़ता है, इससे पहचाना। असली तो बिलकुल पथरा गयी है।'

बहुत है जिनकी आखे पथरा गयी है, जिनके हृदय सूख गये है, रसधार नहीं बहती। गगा खो गयी है, रूखे-सूखे रेत के पहाड़ खड़े रह गये है। कही कोई अकुर नही फूटता, कोई पक्षी गीत

नहीं गाता। सौभाग्यशाली है वे जिनकी आखे अब भी तर हो सकती है, भीग सकती है। उनकी आत्मा के भीगने का अभी उपाय है। तो अगर रोना आता हो तो आने देना, सहयोग करना, साथ देना, सगी बनना। लड़-लड़कर मत रोना। झिझक-झिझककर मत रोना। सकुचाना मत। शर्माना मत। नहीं तो चूक हो जायेगी।

अगर आसुओ से तुम पूरे बह जाओ तो कुछ कहने को नही बचता। फिर कोई प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। फिर कोई शास्त्र आवश्यक नहीं है। फिर तुम्हारे आसू सब कह देगे—जो नहीं कहा जा सकता वह भी, जो कहा जा सकता है वह तो निश्चित ही। फिर तो तुम्हारे आसू सब गा देगे—जो गेय है, अगेय है, सभी गा देगे, जो नही गाया जा सकता है, अगेय है, वह भी गा देगे। फिर तो तुम्हारे आसुओ की धुन मे सब प्रगट हो जाएगा। तुमसे ज्यादा ढग से कह देगे वे, परमात्मा से क्या कहना है।

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आखो से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान

सारा काव्य आसुओ का है। हसी से कोई काव्य निर्मित होता है? सारा काव्य आसुओ का है, क्योकि हसी बड़ी उथली है, ऊपर-ऊपर है, खोखली है। कोई हसना आसुओ की गहराई नही छू पाता। हसना ऊपर-ऊपर लहर की तरह आता है, चला जाता है। आसू कही गहरे मे सघन हो जाते है। तो आसू तो गहराई मे उतरने की सुविधा है, सौभाग्य है।

और धीरे-धीरे, पहले तो आसू अपने लिए बहते है, फिर आसू औरो के लिए भी बहने लगते है। पहले-पहले तो कारण से बहते है, फिर अकारण बहने लगते है। जब अकारण बहने लगते है, तब उनका मजा ही और है।

अश्रु अपनी ही व्यथा का निर्वसन तन
गीत जग भर के दुखो की आत्मा है।

पहले तो अपनी ही पीडा से बहते है, लेकिन जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम्हारी पीड़ा सारी मनुष्यता की पीड़ा है। जल्दी ही तुम पाओगे तुम्हारी पीड़ा सारे अस्तित्व की पीड़ा है। यह तुम ही नही रोए हो, यह परमात्मा से बिछुड़ापन रोया है।

वियोगी होगा पहला कवि।
—यह वियोग रोया है।
आह से उपजा होगा गान।
—और जल्दी ही तुम्हारे आसुओ से गीत उतरने लगेगे।

मीरा खूब रोयी। इसलिए तो मीरा के गीतो मे जो है, वह महाकवियो के गीतो मे भी नही। मीरा के गीत भाषा और व्याकरण की दृष्टि से तुकबदिया है। हृदय की दृष्टि से तो वैसे गीत कभी-कभार पृथ्वी पर उतरे है, किसी दूसरे लोक से आये है। बहुतो ने गीत लिखे है, लेकिन जैसे मीरा के गीत हृदय-हृदय मे उतरे है, वैसे किसी के गीत कभी नहीं उतरे। न तो भाषा, न छद-शास्त्र, न काव्य की मात्राओ का कुछ हिसाब है, न सगीत का कोई गणित है—पर कुछ और है जो इन सब के पार है। यह व्यथा मीरा की अपनी नही है अब। जैसे मीरा के कठ से सारी मनुष्यता, सारा अस्तित्व अपनी पीडा को प्रगट किया है।

जब आसू तुम से मुक्त हो जाते है, और सबके हो जाते है, तो तुम समाप्त हुए। अब तुम कोई छोटी-मोटी धारा न रहे जो सूख जाती है। वर्षा, गर्मी मे भर जाती है वर्षा मे, वर्षा मे बाढ आ जाती है गर्मी मे पता भी नही चलता कहा खो गई। जब तुम्हारी व्यथा सबकी व्यथा से जुड जाती है, तो तुम सागर हो गए। तब तुम्हारे भीतर सिर्फ व्यथा ही नही रहती, व्यथा के गीत उठते है, विरह के गीत उठते है।

सारा भक्ति-शास्त्र विरह है, वियोग है। और भक्त ने विरह को दुर्भाग्य नही माना है, सौभाग्य जाना है। भक्त ने अपनी पीडा को भी स्वर्णिम माना है। है भी स्वर्णिम, क्योकि जब सब खो जायेगा, जब कुछ भी न बचेगा, केवल एक प्यास बचेगी, एक उत्तप्त हृदय बचेगा—तभी उसी क्षण मे, उसी परम सौभाग्य के क्षण मे, उसी धन्यता की घडी मे परमात्मा का अवतरण होता है।

'कोई आठ वर्षो से आपको सुनती हू, पढती हू, लेकिन सब भूल जाता है, सिर्फ आप ही सामने होते है।'

शुभ हो रहा है। मै क्या कहता हू, उसका हिसाब वे रखे जो मुझे नही समझ पाते। उनके हाथ कूड़ा-कर्कट पड़ेगा। वे उच्छिष्ट को इकट्ठा कर लेगे। जैसे भोजन की टेबल के आसपास थोडे टुकडे गिर जाते है, ऐसे ही शब्द है। टुकडे भोजन से गिर गये—रोटी के, साग-सब्जी के, मिष्ठान्न के—ऐसे ही शब्द है। क्योकि जो मै हू वह शब्दो मे प्रगट नही

हो सकता। शब्द बड़े छोटे है। तो शुभ है कि शब्द भूल जाये और मैं याद रहू। अशुभ होगा कि शब्द याद रहे और मै भूल जाऊं। बहुतो को यही होता है शब्द याद रह जाते है, मै भूल जाता हू। कुछ मिला उन्हे, लेकिन जहा बहुत मिल सकता था, वहा अपने ही हाथ वे क्षुद्र को इकट्ठा करके आ गये। जहा हीरे मिल सकते थे वहा से ककड़-पत्थर बीन लाये।

अच्छा है। भूल ही जाओ। जो सुना है उसे याद रखने की जरूरत नहीं है।

अगर मुझ से मिलन हुआ है, अगर क्षणभर को भी मुझे देखा है, मुझमे झाका है, तो क्या मैं कहता हू, इसकी क्या फिक्र।

चाहे तो तुमको चाहे, देखे तो तुमको देखे
ख्वाहिश दिलो की तुम हो, आखो की आरजू तुम।

जिसे दर्शन हुआ, जिसे दिखाई पड़ने लगा, वह कानो की फिक्र छोड़ देता है। जब आखे भरने लगीं तो कान की कौन फिक्र करता है।

सुनने पर तो हम तब भरोसा करते है जब हम अधे होते है और देखने का उपाय नहीं होता। सुनने को तो हम तब पकडते है, मजबूरी मे, क्योकि देख नहीं पाते, अधेरे मे टटोलते है। कान से ही जीना पड़ता है अधे को। पर जिसके पास आख है वह आख से जीता है। फिर कौन फिक्र करता है कान की।

आख से ही जीयो। तो तुम डूबोगे। कान से जो जीते हैं, वे डूब नही पाते। ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि मुझे सुनते समय तुम पर थोड़ी-सी बूदे बरस जाये, पर वे तुम्हे डुबा न पायेगी, घर जाते-जाते धूप मे उड़ जायेगी। लेकिन तुम अगर मुझ मे डूबो, मुझे अगर देख पाओ । इसलिए हमने इस देश मे तत्व-चिंतन की धारा को दर्शन कहा है—श्रवण नही, दर्शन कहा है। कुछ बात देखने की है। कुछ आख से जुडने की बात है। मेरी बात सुनकर तुम मुझ तक आ जाओ, काफी है इतना, फिर मुझे देखो, फिर सुनने मे ही मत उलझे रह जाओ।

डूबा जो कोई आह, किनारे पै आ गया
तुगयाने बहरे इश्क है साहिल के आसपास।

जो कोई डूबा वह किनारा पा गया। क्योकि कुछ ऐसा मामला है कि इश्क का जो तूफान है, प्रेम का जो तूफान है, वह ठीक किनारे के पास है। साधारण तूफान तो किनारे से दूर होते है—बहुत दूर होते है। जितना बड़ा तूफान हो उतना ही किनारे से दूर होता है। किनारे के पास कहीं तूफान होते है। लेकिन प्रेम के नियम उलटे है। इस ससार के जो नियम हैं, प्रेम के नियम उससे बिलकुल उलटे है। यहा अगर नदी पार करनी हो तो डूबना मत। प्रेम की दुनिया मे अगर नदी पार करनी हो तो डूबने का अवसर आ जाये तो चूकना मत।

डूबा जो कोई आह, किनारे पै आ गया।

डूबते ही किनारा मिल जाता है। डूबना ही किनारा है, और कोई किनारा नहीं। डूबना ही मजिल है, और कोई मजिल नही। क्योकि डूबे कि तुम मिटे। तुम मिटे कि वही रह गया, जो है, जो सदा से है। तुम जरा ऊपर-ऊपर की धूल-धवास हो, उस पर छा गया जो सनातन है, शाश्वत है। डूबे कि धूल-धवास बह गई, बचा वही जो सदा था—तुम्हारे होने के पहले था, तुम्हारे होने के बाद होगा। बचा वही जो शाश्वत है, कालातीत है।

डूबा जो कोई आह, किनारे पै आ गया।
तुगयाने बहरे इश्क है साहिल के आसपास।

ये जो तूफान है, प्रेम की आधिया है, ये किनारे के बहुत आसपास है, इनसे घबड़ाना मत। और जब आधी तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे तो निकल आना, डूबने को राजी हो जाना, आधी से लडना मत।

'सब भूल जाता है, सिर्फ आप ही सामने होते है।'

तो वही हो रहा है जो होना चाहिए।

'और अब तो रोना ही रोना रहता है। घर आपके चित्र के सामने रोती हू, यहा प्रवचन मे रोती हू। यह क्या है?'

प्रश्न मत उठाओ, रोओ। प्रश्न उठाया कि रोना बद हुआ। क्योकि प्रश्न जहा से आता है वहा से रोना नहीं आता। प्रश्न आता है बुद्धि से, रोना आता है हृदय से। प्रश्न उठाया कि बुद्धि ने हृदय के बीच मे बाधा दी। प्रश्न उठाया कि बुद्धि ने कहा, यह क्या हो रहा है? प्रश्न उठाया कि बुद्धि ने अड़चन शुरू की, कि बुद्धि ने पहरा बांधा, कि बुद्धि ने कहा, 'बद करो यह पागलपन, यह दीवानगी। सम्हलो, होशियार बनो।'

अब यही तुम्हे खयाल रखना है। अगर महावीर के मार्ग पर चलते हो तो सम्हलो, होशियार बनो। वहा होश आखिरी गुण है। अगर नारद के मार्ग पर चलते हो, मीरा के और चैतन्य के, तो वहा बेहोशी ही मार्ग है। वहा होशियार मत बनना। वहा होशियार बने कि गवाया। और अपनी-अपनी चुन लेना राह। न

महावीर से कुछ लेना है, न नारद से कुछ लेना है—देखना है कि अपनी मौज कहा, हम कहा बहे जाते है सरलता से, जहा कोई उपाय नहीं करना पड़ता, जहा हम छोड़ देते है और धारा ले चलती है। अगर सकल्प तुम्हारी वृत्ति हो तो रोकना, तो हृदय को तोड़ना और बुद्धि को जगाना, तो हृदय को पोछ देना बिलकुल कि राग का शेष भी न रहे, न आसू हो, न हसी हो।

तुमने देखा महावीर की प्रतिमा पर? थिर है। मध्य मे है। न हसती है न रोती है। मूर्तिवत। मूर्ति ही मूर्तिवत नहीं है, महावीर भी मूर्तिवत थे। वे ठीक बीच मे खड़े थे होश को सम्हालकर। वह भी मार्ग है। जिनको सकल्प मे रस हो, उस मार्ग पर जाये। उससे भी लोग पहुचे है।

लेकिन अगर तुम्हे सकल्प मे अड़चन पड़ती हो तो घबड़ाना मत, सकल्प ने कोई ठेका नहीं लिया। तुम जिस ढग से हो, परमात्मा तुम्हे उस ढग से भी स्वीकार करता है। इसलिए तो हिंदू कहते है, उसके हाथ अनेक है—सहस्रबाहु। एक ही हाथ होता तो बड़ी मुश्किल हो जाती, किसी एक को उठा लेता, बाकियो का क्या होता। दो हाथ होते, दो को उठा लेता। उसके उतने ही हाथ है जितने तुम हो। एक-एक के लिए एक-एक हाथ है। उसने तुम्हारे लिए जगह रखी है। तुम्हारा हाथ तुम्हारे लिए मौजूद है। तुम जरा अपने को पहचानो। और इस भूल मे कभी मत पड़ना कि तुम दूसरे के मार्ग से पहुच सकोगे। अगर तुमने विपरीत मार्ग चुन लिया जो तुम्हारी सहज वृत्ति के अनुकूल न आता था, तो तुम उलझन मे पडोगे, तुम झझट मे उलझोगे। तुम अपने ऊपर व्यर्थ के अवसाद और सताप इकट्ठे कर लोगे। तुम अपने को व्यर्थ की प्रवचनाओ मे, धोखो मे, आत्म-वचनाओ मे उलझा लोगे। तुम पाखड मे पड़ जाओगे। विमुक्ति तो बहुत दूर रही, तुम विक्षिप्त होने लगोगे। जो अपने से अनुकूल न गया, वह विक्षिप्त होने लगता है। स्वय के अनुकूल होना साधक की पहली समझ है।

तो जो तुम्हे लगता हो, अनुकूल है, जो तुम्हे भाता हो, रुचता हो; जो तुम्हारी रुझान मे बैठ जाता हो—बस वही। न महावीर से कुछ लेना है, न नारद से कुछ लेना है—असली सवाल तो तुम्हे अपने घर लौटना है।

अपनी राह पहचानना। और अपनी राह पहचानने का उत्तमतम उपाय है अपने थोड़े झुकाव को समझना।

जिसने पूछा है, मै जानता हू, रोना उसके लिए मार्ग है। भूल जाओ महावीर को। गुण गाओ प्रभु के। नाचो मस्ती मे। बेहोशी में डूबो। और कुछ भी बचा न रखो। जरा भी कृपणता मत करना क्योकि परमात्मा तुम्हे पूरा का पूरा चाहता है।

वहा त्याग है तो सर्वस्व का है। वहा कुछ-कुछ देने से, अश-अश देने से काम न चलेगा। वहा कुछ और देने से काम न चलेगा, जब तक तुम स्वय को ही न दे डालो—अशेष भाव से, बिना पीछे कुछ बचाये।

रोओ। रोना शुभ है। अगर सरलता से आता है तो बड़ा शुभ है। अगर न आता हो तो नाहक कोशिश मत करना। मिर्ची इत्यादि पीसकर आखो मे मत आजना।

वैसे भी लोग है। कोई जबर्दस्ती सकल्प की चेष्टा करने लगता है, कोई जबर्दस्ती समर्पण की चेष्टा करने लगता है। जहा भी तुम्हे लगे जबर्दस्ती करनी पड़ रही है, वहीं सचेत हो जाना कि अपना मार्ग न रहा। जहां तुम्हे लगे अरे खिलने लगे, सरलता से पखुडिया खिलने लगी, मस्ती आने लगी, चित्त प्रसन्न और प्रफुल्लित होने लगा—तब तुम जानना कि ठीक-ठीक रास्ते पर हो। तुम्हारा अतर-यत्र प्रतिपल तुम्हे बता रहा है, कसौटी दे रहा है। जो भोजन तुम्हे रास आता है, उसे खाकर प्रसन्नता होती है। जो भोजन तुम्हे रास नहीं आता, उसे खाने के बाद अप्रसन्नता होती है। जो बात तुम्हे रास आ जाये वही तुम्हारा धर्म है।

धर्म की परिभाषा महावीर ने की है बत्थु सहाओ धम्म। वस्तु का स्वभाव धर्म है। बडी प्यारी परिभाषा है। स्वभाव धर्म है। तुम धर्म की फिक्र छोडो, स्वभाव की फिक्र कर लो। धर्म पीछे-पीछे चला आयेगा। बहुत नासमझ धर्म की फिक्र करते है और स्वभाव को पीछे घसीटते है। महावीर ने यह नही कहा कि धर्म स्वभाव है, महावीर ने कहा, स्वभाव धर्म है। बड़ा फर्क है दोनो मे। स्वभाव—जो अनुकूल आ जाये, जो प्रीतिकर लगे, जो प्रेयस है, जिसके पास आते ही तुम नाचने लगते हो, जिसके पास होते ही गध तुम्हे घेर लेती है—तुम्हारी ही सुगध।

और पहले से ही ऐसे चलोगे, अपने स्वभाव के अनुकूल तो तुम्हे प्रयास न करना पड़ेगा।

झेन फकीर कहते है, अप्रयास से जो सध जाये वही सत्य है, प्रयास से जो सधे, चेष्टा से जो सधे, उसमे कही कुछ गड़बड़ है। कली को फूल बनने मे कोई अड़चन आती है? कली को

खींच-खींचकर फूल बनाना पडता है? पौधो को जमीन से खींच-खींचकर बाहर निकालना पड़ता है? अपने से बढ़े चले आते है। कलिया लग जाती है। कलिया खिल जाती है, फूल बन जाते है। फूल बन जाते है, सुगध बिखर जाती है—हवाओ मे, आकाश की यात्रा पर निकल जाती है। सब चुपचाप होता चला जाता है। ऐसा ही आदमी भी है। पर आदमी की अड़चन यह है कि आदमी के पास सोच-विचार का यत्र है, उससे अड़चन खडी होती है। जरा किसी गुलाब के पौधे को सोच-विचार का यत्र दे दो, बस मुश्किल हो जायेगी। फिर गुलाब मुश्किल मे पड़ा। फिर हजार अड़चने खड़ी हो जायेगी। क्योकि वह सोचेगा, कितना बड़ा फूल चाहिए। पड़ोसी गुलाब से ईर्ष्या भी जगेगी। ईर्ष्या के साथ राजनीति पैदा होगी, महत्वाकाक्षा जगेगी कि मै सबसे बडा गुलाब हो जाऊ। अब अगर वह बटन गुलाब है तो बटन गुलाब है, सबसे बड़ा गुलाब हो नहीं सकता, लेकिन सबसे बड़े गुलाब होने की जद्दो-जहद मे बड़ी चिता खड़ी होगी, रात तनाव रहेगा, नींद न आयेगी, दिनभर उदास रहेगा, गणित बिठायेगा कैसे बडा हो जाऊ। और डर यह है कि इस सब चिता मे जो ऊर्जा नष्ट होगी उससे वह वह भी न हो पायेगा जो हो सकता था।

मनुष्य की तकलीफ यही है—होनी नही चाहिए थी। बुद्धि का अगर सदुपयोग हो तो तुम्हे सहयोग देगी, लेकिन दुरुपयोग हो रहा है। तुम जैन घर मे पैदा हो गये अब तुम्हारी बुद्धि कहती है, तुम जैन हो। और तुम्हारी आखे अगर आसुओ से भरी है तो बडी कठिनाई होगी। महावीर के मदिर मे आसुओ के लिए जगह नहीं है। उस मदिर मे आसू पाप है, वर्जित है। तब तुम्हे कृष्ण का कोई मदिर खोजना पडे, जहा रोने की छुट्टी है, छुट्टी ही नहीं, जहा रोना साधन है।

अब अगर तुम किसी भक्ति-मार्गी के घर मे पैदा हो गये, कृष्ण-मार्गी के घर मे पैदा हो गये और तुम्हारी आखो में आंसू नहीं है—नहीं है तो तुम क्या करोगे? परमात्मा ने तुम्हें वैसा नही चाहा। सभी रोनेवाले नहीं चाहिए, कुछ हसनेवाले भी चाहिए। सभी समर्पणवाले नहीं चाहिए, कुछ सकल्पवाले भी चाहिए। जीवन मे विरोधो का सतुलन है। जितने यहा समर्पणवाले लोग है उतने ही यहा सकल्पवाले लोग है। जीवन सतुलन से चलता है। रात और दिन, अधेरा और प्रकाश, जीवन और मृत्यु, ग्रीष्म और शीत, यहा सब चीजे सतुलित है। दो पैर हैं, दो पख हैं, ताकि सतुलन बना रहे।

तो अगर तुम किसी भक्ति-मार्गी के घर में पैदा हो गये और बचपन से ही तुमने नारद के सूत्र सुने कि भक्त भाव-विह्वल हो जाता है, रोमाचित हो जाता है, आखें आसुओ से भर जाती हैं, रोता है, उसके गीत गाता है, नाचता है, मदमस्त होता है, मतवाला हो जाता है—अगर तुमने ये सुने और तुम्हारी आंखों मे आसू नहीं आते, तुम क्या करोगे? तुम जबर्दस्ती करोगे। तुमने बुद्धि का सदुपयोग न किया।

अपने को देखो। तुम्ही महत्वपूर्ण हो, न नारद न महावीर, न मै न कोई और। तुम्ही महत्वपूर्ण हो, क्योकि तुम्हीं तुम्हारे गतव्य हो। उपयोग कर लो जिसका उपयोग करना हो, लेकिन सदा ध्यान रखना, तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल उपयोग हो, तो तुम पहुचोगे, नही तो भटक जाओगे।

'तेरी यारी मे बिहारी सुख न पायो री।'

बिहारी ने बड़े सुख मे कहा है यह। तेरी यारी मे बिहारी सुख न पायो री। बडे प्रेम मे कहा है। यह उलाहना नहीं है, शिकायत नही है। यह प्रेमियो का खेल है, यह प्रेमियो की क्रीड़ा है। भक्त भगवान से कहता है कि तेरे प्रेम मे कुछ सुख न मिला। भगवान ही भक्त के साथ थोडे ही खेलता है, भक्त भी खेलता है। भगवान ही थोडे ही मजाक करता है भक्त के साथ, भक्त भी करता है। जहा अपनापा है, वहा मजाक भी चलती है।

बिहारी कोई शिकायत नहीं कर रहे है। एक पहेली दे रहे है परमात्मा को कि सुनो जी। खूब उलझाया। मगर तुम्हारे प्रेम मे कुछ सुख न पाया। लेकिन यह कोई दुख से निकली आवाज नहीं है। इस शब्द मे पगे प्रेम को देखते हो। तेरी यारी मे बिहारी सुख न पायो री। बड़े सुख मे पगे शब्द हैं।

नहीं, उसकी याद मे मिला दुख भी सुख है। उसकी राह पर मिले काटे भी फूल है। उसके मार्ग पर मर भी जाना पड़े तो जीवन है। और उसके बिना जीवन भी मिले तो निरर्थक। उसके बिना फूल ही फूल मिले और काटे भी न हो तो उनसे मरण-शैय्या ही बनेगी। वे तुम्हारी कब्र पर चढाये गये फूल सिद्ध होगे। उसके मार्ग पर जो मिल जाये वही सुख है—दुख भी मिले तो भी। उसके मार्ग पर जा रहे है।

तुमने कभी किसी प्रेमी को अपनी प्रेयसी की तरफ जाते देखा।

रास्ते मे गड़े काटो की शिकायत करता है? पता भी नहीं चलता। गिर पड़े, चोट खा जाये, लहूलुहान हो जाये, तो भी पता नहीं चलता।

तुलसीदास, कथा कहती है, अपनी पत्नी के प्रेम मे साप को पकड़कर चढ़ गये, समझे कि रस्सी है। मुर्दे की लाश का सहारा लेकर नदी पार उतर गये, समझे कि कोई बहती हुई लकड़ी है।

उसकी दीवानगी मे जो डूबे है, उन्हे कुछ दुख, दुख मालूम नहीं होता। दुख भी सुख है उसके मार्ग पर। ससार के मार्ग पर सुख भी दुख हो जाते है। प्रभु के मार्ग पर दुख भी सुख हो जाते है। यह आध्यात्मिक जीवन की कीमिया है, रसायन है।

दूसरा प्रश्न शास्त्रीय परपरा से सन्यासी माया और काम-भोग से विमुख होकर प्रभु-प्राप्ति के लिए उन्मुख होता है, योग और भोग परस्पर विरोधी जाने जाते है। लेकिन आपके सन्यास मे भोग से विरक्ति पर जोर नही है। अत कृपा कर अपने सन्यास की धारणा को स्पष्ट करे।

धर्म का परपरा से कोई सबध नही है।

परपरा यानी वह जो मर चुका। परपरा यानी पिटी-पिटाई लकीर। परपरा यानी अतीत के चरण-चिह्न। अतीत जा चुका, चरण-चिह्न रह गये है, राहो पर बने।

धर्म परपरा नही है। धर्म तो नित-नूतन है—यद्यपि चिर पुरातन भी। मगर धर्म पुराना नही है, परपरा नही है। इसलिए तो धर्म का शिक्षण नहीं हो सकता, परपरा होती तो शिक्षण हो सकता था। गणित की परपरा है। विज्ञान की परपरा है। इसलिए विज्ञान का शिक्षण हो सकता है।

आइस्टीन ने एक खोज कर ली, सापेक्षता के सिद्धांत की, तो अब कोई हर आदमी को खोजने की जरूरत नहीं है, अब परपरा बन गई। अब तो सिद्धात एक दफा खोज लिया गया। अब ऐसा थोड़े है कि हर विद्यार्थी जो पढ़ने जायेगा विश्वविद्यालय मे उसको आइस्टीन के सिद्धात को फिर-फिर खोजना होगा। बात खतम हो गयी। खोज पूरी हो गयी। एक आदमी ने खोज दिया, फिर परपरा बन गयी। अब दूसरा तो सिर्फ पढ लेगा। आइस्टीन को जो खोजने में वर्षों लगे होंगे, वह अब किसी विद्यार्थी को पढ़ने मे घटे भी न लगेगे।

तो विज्ञान की परपरा बनती है, ट्रेडीशन होती है। धर्म की कोई परपरा नहीं होती। महावीर को ज्ञान उपलब्ध हुआ, इससे तुम सोचते हो, तुम्हे खोजना न पड़ेगा? बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुआ, इससे क्या तुम सोचते हो बात खतम हो गई, अब तुम पढ़ लोगे धम्मपद? जैसे आइस्टीन की किताब को पढकर कोई सापेक्षता का सिद्धात समझ लेगा, क्या वैसे ही तुम कृष्ण की गीता पढकर कृष्ण के सिद्धात को समझ लोगे, या महावीर के वचन पढकर महावीर को समझ लोगे? नहीं, तुम्हे फिर-फिर खोजना होगा।

इसे जरा समझना। फिर-फिर खोजना होगा। जो चीज परपरा बन जाती है उसको दुबारा नही खोजना होता, खोज ली गई, बात खतम हो गई।

धर्म परपरा बनता ही नहीं। उसका प्रत्येक व्यक्ति को पुन पुन आविष्कार करना होता है। जो बुद्ध ने खोजा वह बुद्ध का अनुभव है। इतनी ही हमे मिल सकती है उनसे खबर कि खोजनेवाले खोज लेते है—बस इतना आश्वासन। सत्य नहीं मिलता, सत्य का आश्वासन मिलता है। सत्य नही मिलता, सत्य भी सभव है, इसकी सभावना पर भरोसा मिलता है। महावीर ने खोजा, कृष्ण ने खोजा, क्राइस्ट ने खोजा, इससे हमे केवल इतनी खबर मिलती है कि हम यू ही व्यर्थ खोज मे नही लगे है, मिल सकता है। बस, इतनी श्रद्धा मिलती है। सत्य नहीं मिलता, इतना आत्म-भरोसा मिलता है कि हम यू ही अधेरे मे व्यर्थ नही टटोल रहे है, द्वार है, क्योकि कुछ लोग निकल गये। कुछ जो भीतर थे बाहर हो गये है, तो हम भी हो सकेगे। लेकिन इससे यह मत सोचना कि उनकी किताब पढ ली और चल पड़े द्वार खोजकर और निकल पडे बाहर। द्वार तुम्हे अपना पुन खोजना पड़ेगा।

इसलिए धर्म की कोई परपरा नहीं बनती। और धर्म का कोई शिक्षण नहीं हो सकता। धर्म क्राति है, परपरा नही—रिवोल्यूशन। और जिस पर घटती है, बस उस पर ही घटती है।

जैसे समझो, तुम्हे अगर प्रेम नही हुआ किसी से, तो तुम क्या खाक जानोगे कि प्रेम क्या है। प्रेम-शास्त्र लिखे पड़े है, पुस्तकालय अटे पडे है। तुम जाकर पढ़ लो, मजनू को क्या-क्या हुआ, लैला को क्या-क्या हुआ, शीरी-फरिहाद और हीर-राझा—लेकिन इससे कुछ होगा न।

पढ़ी-लिखी बात कहीं भी जायेगी न, हृदय मे छिदेगी न, तीर लगेगा न। तुम वैसे के वैसे खाली लौट आओगे, पाडित्य से भरकर। हा, प्रेम पर अगर कोई कहेगा, तो तुम प्रवचन दे सकोगे। हा, प्रेम पर कोई कहेगा, तुम पी एच डी कर सकोगे। लेकिन प्रेम तुम्हारे जीवन मे कहीं भी न होगा। प्रेम तो तुम करोगे तो होगा। प्रेम की कोई परपरा नहीं होती। प्रेम तो हर व्यक्ति को अपना ही खोजना होता है—निजी, वैयक्तिक।

और अच्छा है कि प्रेम की परपरा नही होती, नहीं तो सोचो, कैसा दुर्भाग्य होता, कैसे दुर्दिन आते। लोग प्रेम की किताब पढ लेते और समाप्त हो जाते।

सोचो थोड़ा, परमात्मा ऐसे उधार मिलता होता, किसी को मिल गया था पच्चीस सौ साल पहले, महावीर को, बस खतम। उन्होने तुम्हारा सारा अभियान छीन लिया। तब तो महावीर ने तुम्हारे जीवन का सारा रस छीन लिया। तब तो वे मित्र न हुए, दुश्मन हो गये। तब तो तुम्हे उन्होने मौका ही न छोड़ा कुछ खोजने का, तुम्हे यात्रा पर जाने की जगह ही न छोड़ी।

नहीं, परमात्मा कुछ ऐसा है, सत्य कुछ ऐसा है, प्रेम कुछ ऐसा है कि जो खोजता है बस उसी को दर्शन होते है। हा, अपने दर्शन की बात दूसरे से कह सकता है। लेकिन उस बात से किसी को दर्शन नहीं होता। उस बात से किसी की सोयी प्यास जग सकती है। उस बात से किसी के भीतर उन्मेष हो सकता है कि चलू, मै भी खोजू, किसी के भीतर चुनौती आ सकती है कि चलू, मै क्या कर रहा हू बैठा-बैठा, उठू। यह कहा गवा रहा हू जीवन बाजार मे और दुकान मे, उठू, उसे खोजू।

इसलिए पहली बात धर्म परपरा नहीं है। धर्म चिर-पुरातन, नित-नूतन है। यह विरोधाभास है। सदा से है, लेकिन फिर भी हर बार नया-नया खोजना पडता है। जब धर्म का सूर्योदय होता है तो वह निजी है, वैयक्तिक है, वह सामूहिक नहीं है। वह समाज की सपत्ति और थाती नहीं बनता। अगर तुम भरोसा न करो बुद्ध पर तो बुद्ध के पास कोई उपाय नहीं है तुम्हें भरोसा दिलाने का। कभी तुमने इस पर सोचा? अगर तुम कहो कि हमे शक है कि तुम झूठ बोल रहे हो, कि तुम्हे हुआ है परमात्मा का अनुभव, हम कैसे माने? तो बुद्ध भी कधे बिचकाकर रह जायेंगे, वे कहेगे, अब क्या उपाय है। जो हुआ है वह निजी और वैयक्तिक है। उसे तुम्हारे सामने टेबल पर फैलाकर रख देने की कोई सुविधा नहीं है। जो हुआ है वह आतरिक है; उसे बाहर लाकर प्रगट करने का कोई उपाय नहीं है। जो हुआ है वह इतने गहन मे हुआ है कि उसकी प्रदर्शनी नहीं सजाई जा सकती, कि जो भी आये देख ले।

इसीलिए तो दुनिया मे इतने परम बुद्धपुरुष हुए, लेकिन फिर भी नास्तिकता नही मिटती। मिट नही सकती, क्योकि नास्तिक यह कह रहा है कि हमे दिखला दो। नास्तिक यह कह रहा है, धर्म को परपरा बना दो। अब यह बड़े मजे की बात है: जिनको तुम धार्मिक कहते हो वे कहते है, धर्म परपरा है। मैं उनको नास्तिक कहता हू। नास्तिक भी तो यही कह रहा है कि धर्म को परपरा बना दो, जैसे विज्ञान परपरा है, हम जाये प्रयोगशाला मे और देख ले, टेस्ट-ट्यूब मे पकड दो परमात्मा को, बिछा दो टेबल पर सर्जन की तुम्हारी समाधि को, ताकि ठीक-ठीक विश्लेषण हो सके और हम काट-पीट करके जान ले कि मामला क्या है, ले आओ तुम्हारा अनुभव प्रकाश का, सत्य का, बाजार मे, जहा हम सब देख ले, क्योकि जो निज मे घटा है, क्या पता सपना हो। क्योकि साधारण अनुभव मे सपने ही निजी होते है, बाकी सब चीज तो निजी नहीं है। सिर्फ सपने निजी होते है, बाकी तुम जो सपना रात देखते हो, तुम अपनी पत्नी को भी तो उसमे नहीं बुला सकते कि आओ, आज निमत्रण है। तुम अपनी पत्नी को भी तो नही कह सकते कि आज, चलो दोनो साथ-साथ एक ही सपना देखे।

दो आदमी एक मनोवैज्ञानिक के पास इलाज करवा रहे थे। दोनो ने एक दिन सोचा, दफ्तर से बाहर निकलते हुए, एक मजाक करने की बात सोची। एक अप्रैल आ रही थी, तो सोचा कि अप्रैल के दिन एक मजाक करे मै भी आऊगा और एक सपना कहूंगा। और दोनो ने सपना तय कर लिया मनोवैज्ञानिक को सुनाने के लिए। फिर शाम को तुम आना और तुम भी वही सपना कहना। देखे, इस पर क्या गुजरती है। क्योंकि दो आदमी एक ही सपना तो देख ही नहीं सकते। तो उन्होंने सपना तय कर लिया विस्तार से, एक-एक बात कि क्या-क्या हुआ सपने मे, लिख लिया, कठस्थ कर लिया। सुबह एक आया और उसने कहा कि रात एक सपना देखा, इसका अर्थ करे। मनोवैज्ञानिक ने उसका सपना सुना। दोपहर दूसरा आया। उसने भी वही सपना दोहराया। उसने कहा कि रात एक सपना देखा—और विस्तार

मे इच-इच वही। और वह देखता रहा बार-बार कि मनोवैज्ञानिक पर क्या असर हो रहा है। लेकिन वह बड़ा हैरान हुआ कि कुछ खास असर नही हो रहा है। पूरा सपना सुनाने के बाद उसने पूछा, 'आप क्या सोचते है इस सपने के बाबत?' मनोवैज्ञानिक ने कहा कि मै बड़ा परेशान हू, क्योकि तीन आदमी तो यह सपना मुझे दिन मे सुना ही चुके हैं। तीन आदमी। वे दोनो बडे हैरान हुए कि यह तीसरा कौन है। क्योकि तीसरे को तो उन्होने बताया नही था। सोचते थे, मजाक मनोवैज्ञानिक से कर रहे है, लेकिन मनोवैज्ञानिक ने मजाक उनके साथ कर दी। वे बड़ी मुश्किल मे पड़ गये कि अब यह तीसरे का कैसे पता चले। और हद हो गई, यह तो सपना हम दोनो ने भी देखा नही, सिर्फ तय किया था, तीसरा कौन है। दोनो दूसरे दिन आये। उन्होने कहा, 'माफ करे। हम मजाक कर रहे थे। लेकिन तीसरा कौन है?' उन्होने कहा, 'रातभर हम सो नहीं सके।'

मनोवैज्ञानिक ने कहा, 'तीसरा कोई नहीं, वह मै मजाक कर रहा था, क्योकि दो आदमी तो देख ही नही सकते। वह तो मै जान ही गया कि जब दो ने एक सपना देखा तो दोनो तय करके आये है एक अप्रैल की वजह से। इसलिए मैने कहा कि तीन तो कह ही चुके। हद हो गई।

दो आदमी एक सपना देख ही नही सकते। सपना निजी है। इसीलिए तो नास्तिक कहता है, भगवान सपना है। क्योकि तुम कहते हो, हमने देखा, लेकिन दिखाओ। सपने मे और तुम्हारे भगवान के अनुभव मे फर्क क्या हुआ? सिर्फ सपना ही ऐसी चीज है जो दूसरे को नही दिखाया जा सकता। इसलिए भगवान तुम्हारा सपना है। यह कुडलिनी-जागरण और प्रकाश के अनुभव—ये सब तुम्हारे सपने है। नास्तिक कहता है, इसमे और सपने मे फर्क कहा? फर्क तो एक ही होता है सपने मे और सचाई मे कि सचाई सबकी होती है, सामूहिक होती है, सार्वजनिक होती है। और सपना निजी होता है। इसलिए इतने बुद्धपुरुष हुए और एक नास्तिक को सारे बुद्धपुरुष मिलकर भी राजी नहीं कर सकते, क्योकि जब तक तुम सदेह किये चले जाओ, कोई उपाय नहीं है, कोई प्रमाण नही है।

परमात्मा अनुभव है और उसका कोई प्रमाण नहीं छूटता। जिसको होता है, बस उसको होता है। और जिसको होता है, वह अकेला पड़ जाता है। और जिनको नही हुआ है, वे अरबो-खरबो है। इसलिए तो बुद्ध हो, महावीर हो, कृष्ण हो, क्राइस्ट हो—वे सभी कहते है, श्रद्धा से सुनोगे तो शायद कुछ हो सके, सदेह से सुनोगे तो द्वार तो पहले ही बद हो गया। श्रद्धा पर इतना जोर क्यो है? इसीलिए कि धर्म की परपरा नही बन सकती। जिसको हुआ है, अगर तुम्हारे मन मे उसके प्रति थोड़ी सहानुभूति हो, लगाव हो, थोड़ी चाहत का रग हो, तुम दोनो मे कुछ तालमेल हो, तुम उस आदमी को इतना प्रेम करते हो कि तुम जानते हो कि झूठ वह बोल न सकेगा—तभी। अगर तुम्हारे मन मे जरा-सा भी सदेह है कि हो सकता है, यह आदमी झूठ बोल रहा हो, या यह भी हो सकता है कि झूठ न बोल रहा हो, खुद ही धोखा खा गया हो, चाहकर झूठ न बोल रहा हो, लेकिन खुद ही ने सपना इतना गहरा देख लिया हो कि इसे भरोसा आ गया हो, या तो यह धोखा दे रहा है या खुद धोखा खा रहा है—इतना-सा सदेह काफी है, कि सत्य तुम्हारे लिए बद हो गया।

बुद्धपुरुष तुम्हारे भीतर केवल प्यास को जगा सकते है, वह भी तुम्हारी श्रद्धा का सहारा हो तो।

तो पहली तो बात, धर्म कोई परपरा नहीं है। सन्यास भी कोई परपरा नही है। सन्यास एक-एक व्यक्ति का निजी उदघोषण है, एक-एक व्यक्ति की परमात्मा के द्वारा स्वीकार की गई चुनौती है—अलग-अलग है। इसलिए हर व्यक्ति मे जब सन्यास घटित होगा तो भिन्न घटित होगा। सन्यास बडी निजी बात है। बड़ी सभावना है।

क्राइस्ट है, सन्यस्त पुरुष है, पर इनका सन्यास महावीर जैसा नहीं है। क्राइस्ट को कोई अड़चन न थी, कोई मित्र बुलाये और शराब पीने को दे दे तो पी लेते थे। महावीर तो पानी भी न पीयेगे ऐसा, शराब तो दूर की बात। महावीर तो कहते है, किसी के बुलाये वे जायेगे ही नही, क्योकि किसी के बुलाये गये तो सबध निर्मित होता है। शराब की तो छोड़ो, पानी पीने भी तुमने महावीर को कहा कि आज मेरे घर आ जाना, भरी दुपहरी है, धूप है, तेज है, थोडा छाया मे बैठ जाना, पानी पी लेना—तो वे न आयेगे। क्योकि वे कहते है कि जिसका निमंत्रण तुमने स्वीकार किया उससे सबध बना लिया।

तो महावीर भीख भी मागते है तो बड़े अनूठे ढग से मागते थे। उनकी भीख मागने का ढग भी अनूठा है; ऐसा दुनिया मे कभी किसी ने भीख नही मागी है। इसलिए कहता हू, सन्यास बडा

अनूठा है और प्रत्येक के लिए अलग-अलग घटता है।

महावीर सुबह उठकर ध्यान मे निर्णय करते कि आज अगर किसी घर के सामने ऐसी घटना घटी हुई मिलेगी तो वहा मै हाथ पसार दूगा। घटना—कि घर के सामने गाय खडी हो और उसके सींग मे गुड़ लगा हो। कोई ऐसा रोज नही घटता ऐसा। एक दफा यह बात उन्होने तय कर ली, क्योकि वे कहते थे, अगर अस्तित्व को मुझे भोजन देना है तो वह मेरी शर्त पूरी करेगा, नहीं तो नहीं देगा। इसका मतलब है कि मुझे भूखा रखना चाहता है तो मै भूखा रहूगा। अगर मेरे बचने की कोई भी जरूरत है अस्तित्व को, तो मेरी शर्त पूरी करेगा, नही तो मै समझ लूगा कि ठीक है, बात खतम हो गई, अस्तित्व नहीं चाहता कि मै बचू। तो मै अपनी कोई चेष्टा न करूगा। अगर अस्तित्व ही चेष्टा करेगा तो ठीक है।

तो एक बार ऐसा हुआ कि तीन महीने तक उन्होने यह ले लिया व्रत और वे यह किसी को कहते नही थे। अब तो जैन मुनि, दिगबर, जो इसको अब भी मानते है, वे कहकर चलते है। उन्होने सब बता रखा है। और उनके सब बधे हुए प्रतीक है, वे सबको मालूम है—उनके भक्तो को, कि घर के सामने दो केले लटके हो, तो जितने घरो मे दिगबर जैन मुनि जाता है, वह सब केले लटकाये रखता है। अब उनके बधे हुए प्रतीक है—दो केले लटके हो इस तरह के कुछ। चार-छह चीजे एक मुनि रखता है, वे उन्ही-उन्हीं को । तो वह सब कर देते है इतजाम। एक ही घर मे सभी चीजे लटका देते है। तो स्वीकार हो गया, यह बेईमानी है।

महावीर ने कहा कि गाय खड़ी हो, गुड सींग पर लगा हो। तीन महीने तक भोजन न मिला। पर एक दिन मिला। बैलगाडी जाती थी गुड़ से भरी और पीछे से एक गाय ने आकर गुड खाने की चेष्टा की और उसके सीग मे गुड़ लग गया। बस जिस घर के सामने वह गाय खडी थी, वहा महावीर ने अपने हाथ फैला दिये भोजन के लिए। तीन महीने बाद अस्तित्व ने चाहा तो ठीक।

तो महावीर तो निमत्रण भी स्वीकार न करेगे। और जीसस है, कि न केवल निमत्रण स्वीकार कर लेते है, अगर कोई शराब भी पिलाये तो वह भी पी लेते है। वे कहते है, क्या अस्वीकार? किस बात का अस्वीकार? क्योकि सब अस्वीकार अहकार केद्रित है। चलो, मित्रो ने चाहा है, पी लो तो पी लेते है। अस्वीकार मे उन्हे हिंसा मालूम होती है। वे कहते है, 'नहीं' कहना किसी को दुख पहुचाना है।

अब बड़ी मुश्किल की बात है।

महावीर नग्न खड़े है, कृष्ण सुदर वस्त्रो से सजे है। क्योकि कृष्ण कहते है, जब परमात्मा अवतरित होता है तो उसकी विभूति अवतरित होती है, उसका सौदर्य अवतरित होता है, उसके हजार-हजार रग और रूप अवतरित होते है। परमात्मा एक इद्रधनुष है। उसका बड़ा ऐश्वर्य है। उसकी बड़ी महिमा है। इसीलिए तो हम उसे ईश्वर कहते है। ईश्वर यानी जिसका ऐश्वर्य है। तो जब कृष्ण मे परमात्मा उतरा है, तो वे उसका स्वागत करते है, सब तरह से, जैसे तुम्हारे घर कोई मेहमान आ जाये तो तुम घर को सजाते हो। तो कृष्ण कहते है, जब परमात्मा उतरा हो तो देह को सजाना होगा। यह घर है। इसमे वह उतरा। उसने अनुकपा की। तो वे बासुरी बजाते है। वे मोर-मुकुट लगाते है।

महावीर नग्न खड़े है। सजाने की तो बात दूर, बाल बढ़ जाते है तो हाथ से उखाड़ते है। नाई के पास नही जाते, क्योकि यह तो नाई के पास जाना समाज मे प्रवेश होगा। इसका अर्थ हुआ कि तुम्हे नाई की जरूरत है। समाज का क्या अर्थ होता है? मुझे दूसरे की जरूरत है—यानी समाज। मै अकेला नही रह सकता, नाई की जरूरत पड़ती है—तो भी इतना तो समाज हो ही गया मेरा। कभी नाई की जरूरत पड़ती है, कभी चमार की जरूरत पडती है, कभी दर्जी की जरूरत पडती है। तो यही तो समाज है। समाज का अर्थ क्या है?

इसलिए मै कहता हू, जैनियो का अब तक कोई समाज नही है। क्योकि कोई जैन न तो चमार है, न कोई जैन दर्जी है, न कोई जैन भगी है। तो जैनियो का कोई समाज नही है। जैनी तो हिदुओ की छाती पर जीते है, उनका कोई समाज नही है। क्योकि कोई जैन चमार होने को राजी नही है। तो समाज तुम्हारा कैसा? जैनियो से मै कहता हू तुम एक बस्ती तो बसाकर बता दो, सिर्फ जैनियो की। तब हम कहेगे कि तुम्हारा कोई समाज है। कोई जैनी राजी न होगा भगी बनने को। तो तुम समाज कैसे? तो तुम्हे हिदुओ की जरूरत है, मुसलमानो की जरूरत है, ईसाइयो की जरूरत है। तो तुम परोपजीवी हो, तुम्हारा अपना कोई समाज नहीं है।

जैन अब तक केवल सस्कृति है, समाज नही। वह केवल वायवीय बाते है।

इसलिए मैने पीछे कहा भी कि ये पच्चीस सौ वर्ष महावीर के पूरे हुए, तुम कुछ भी न करो, एक जैनियो की बस्ती तो बना दो—सिर्फ जैनियो की, जो पूरी तरह जैन हो, उससे कम से कम एक नमूना तो मिलेगा कि जैनियो का समाज कैसा होगा। वहा बड़ी कलह मच जायेगी, क्योकि भगी कौन बने, जूता कौन सिये, खेती कौन करे। क्योकि जैन को खेती करनी नही चाहिए, हिसा होती है। सर्जन कौन हो, चीरा-फाड़ी कौन करे। बड़ी कठिनाई खड़ी हो जायेगी। बड़ी मुश्किल हो जायेगी।

समाज का अर्थ होता है सबध, जरूरत। महावीर अकेले जीये—इतने अकेले जीये कि अपने पीछे समाज का कोई सूत्र नहीं छोड़ गये। उन्होने तो अकेले जी लिया, लेकिन जो उनके पीछे चले, वे बड़ी मुश्किल मे पड़े। क्योकि यह बिलकुल निजी, एकात, अकेले होने का आग्रह है महावीर का। उन्होने कोई समाज बनाया नही, लेकिन जो पीछे चलेगे अनुयायी, वे तो समाज के बिना नहीं जी सकते। उनको तो कपडे भी चाहिए होगे, तो कपडा कोई बुनेगा, कपास कोई उगायेगा। उन्हे तो भोजन भी चाहिए होगा, तो खेती कोई करेगा, वृक्षो को कोई काटेगा। उन्हे तो दवा भी चाहिए होगी, ऐलोपेथी की दवा भी चाहिए होगी, जो पशुओ को मारकर बनाई जायेगी, किसी के खून से बनेगी, किसी की हड्डी से बनेगी—वह भी कोई करेगा। उन्हे जूते भी पहनने होगे, तो चमार भी होगा, मरे हुए जानवरो की चमड़ी भी उधेड़ी जायेगी, मरे हुए काफी न होगे तो जिदा मारे भी जायेगे। यह सब चलेगा।

तो इसमे तो महावीर खडे हो जाते बाहर, क्योकि न उनको जूते की जरूरत, न उनको कपड़े की जरूरत।

जरा सोचो तो, उनको समाज की जरूरत नहीं। वे यह कह रहे है कि यह हम खडे है हमको कोई समाज की जरूरत नही। वे नाई के पास भी नही जाते। वे एक साथ मे उस्तरा तो रख सकते थे। उस्तरा भी नही रखते। वे कहते है, उस्तरा रखा तो लोहार । वे हाथ से उखाड़ते है बाल।

इससे ज्यादा स्वतत्र व्यक्ति पृथ्वी पर दूसरा नही हुआ। समाज मुक्त। समाज-शून्य। निपट समाज-शून्य।

तुम कहोगे कि भीख तो मागते है। मगर महावीर की शर्त देखी। महावीर वहा भी धन्यवाद नहीं देते, अगर तुम उनको भीख देते हो। वे कहते है कि अस्तित्व ने चाहा। अगर तुम न भी होओगे तो महावीर कहेगे कि वृक्ष के नीचे खड़ा हो जाऊगा, अगर फल टपक जाये अपने से तो ठीक, पाच मिनट राह देख लूगा, हट जाऊगा। वे महीनो भूखे रहे।

बारह वर्ष की तपश्चर्या के काल मे, कहते है केवल तीन सौ साठ दिन उन्होने भोजन लिया। बारह वर्ष के लबे काल मे, केवल एक वर्ष भोजन लिया, ग्यारह वर्ष भूखे रहे। कभी महीना भर भूखे, फिर एक दिन भोजन, कभी पद्रह दिन भूखे, फिर एक दिन भोजन, कभी आठ दिन भूखे, फिर एक दिन भोजन, ऐसा मिला-जुलाकर बारह साल मे एक साल भोजन और ग्यारह साल भूखे। औसत ग्यारह दिन के बाद उन्होने भोजन लिया, बारहवे दिन। मगर यह भोजन के लिए वे धन्यवाद नही देते किसी को। वे कहते है, तुम्हारा कोई धन्यवाद नही है, तुम्हारा कोई अनुग्रह नही। मैने तुम्हारा निमत्रण स्वीकार नही किया। मै तो अपने हिसाब से चल रहा हू। अस्तित्व देना चाहता है, ले लेता हू, अस्तित्व नही देता तो माग भी नहीं करता हू। वे द्वार पर आकर खडे हो जाते है, वे माग भी नही करते। वे यह भी नही कहते कि दो, क्योकि देने का मतलब तो होगा, कर्म की शुरुआत हो गई, लेना-देना शुरू हो गया।

इधर कृष्ण है। परमात्मा के लिए जगह बनाते है तो शरीर सजाते है।

उस बात मे भी अर्थ मालूम पड़ता है कि जब प्रभु घर आये हो तो ऐसा क्या रूखा-सूखा स्वागत करना। बदनवार बनाओ। स्वागत द्वार बनाओ। जो भी हो फूल-पत्ती, लटकाओ। लेकिन कुछ तो करो। साज-सगीत बजाओ। सुगध फैलाओ। धूप-दीप जलाओ। कुछ तो करो। प्रभु द्वार पर आये है।

कृष्ण को बिलकुल न जचेगा कि नगे खड़े हो जाओ, प्रभु द्वार पर आये है। महावीर को जचा, क्योकि महावीर कहते है कि प्रभु को किसी ऐश्वर्य की कोई जरूरत नही है, क्योकि वह स्वय ऐश्वर्यवान है। और हम जो भी करेगे वह छोटा ही होगा, वह काफी न होगा।

दोनो के तर्क सही है। मै तुमसे यह कह रहा हू कि अगर तुमने एक का तर्क पकड़ लिया तो तुम अधे हो जाओगे, दूसरे का तर्क न देख पाओगे। और इस जगत मे जितने लोग सन्यास को

उपलब्ध हुए, उन सब का अपने सन्यस्त होने का ढग है।

इसलिए संन्यास की कोई परपरा नहीं है। सन्यास व्यक्तिगत क्राति है। अब 'सन्यासी माया और काम-भोग से विमुख होकर प्रभु-प्राप्ति के लिए उन्मुख होता है', यह बात भी सच नहीं है। जिसने पूछा है, उनको ठीक-ठीक पता नहीं है, उन्हे भक्ति मार्ग का पता नहीं है। क्योकि भक्ति मार्ग का सन्यासी भोग से विमुख नहीं होता, परमात्मा का ही भोग शुरू करता है। जिन मित्र ने पूछा है, उन्हें हिंदू, शकराचार्य, जैन, महावीर, गौतम सिद्धार्थ, बुद्ध—इनकी परपरा के सन्यासियो का बोध है। और ऐसा हुआ है कि इनकी परपरा इतनी प्रभावी हो गयी कि धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा कि दूसरी कोई परपरा नही है। रामानुज का भी सन्यासी है। निम्बार्क का भी सन्यासी है। चैतन्य महाप्रभु का भी सन्यासी है। मगर वे ओझल हो गये। बुद्ध, महावीर, और शकराचार्य इतने प्रभावी हो गये—और प्रभावी हो जाने का कारण है, क्योकि तुम सब भोगी हो। इसे तुम्हे जरा अडचन होगी समझने मे। चूकि तुम सब भोगी हो, त्यागी की भाषा तुम्हे समझ मे आती है। क्योकि त्यागी की भाषा तुमसे विपरीत है। जो तुम्हारे पास नही है, उसमे आकर्षण पैदा होता है। गरीब अमीर होना चाहता है। तुम भोगी हो, तुम त्यागी होना चाहते हो। तुम कहते हो, भोग मे तो दुख ही दुख पाया, इसलिए महावीर, शकर और बुद्ध ठीक ही कहते होगे कि त्याग मे सुख है, क्योकि एक तो हमे अनुभव हो गया कि भोग मे दुख है।

रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य—इनकी भाषा तुमने नहीं समझी, क्योकि वे कहते है कि तुम्हारे भोग मे दुख नही है, तुम्हारा भोग गलत चीजो का हो रहा है, इसलिए दुख है। भोग भगवान का करो। तुमने अभी स्त्री को भोगा है, लेकिन कभी स्त्री मे भगवान को देखकर भोगो, फिर दुख समाप्त हुआ। तुमने अभी भोजन को भोगा है, दुख है, लेकिन भोजन मे भगवान को देखकर भोगो, दुख समाप्त हुआ।

उनकी बात मे भी सार है। अब इधर मै हू। मै कहता हू कि दोनो का सगीत पैदा हो जाये तो सन्यास है। मैं कहता हू, तुम्हारा त्याग ऐसा हो कि भोगी के भोग से ज्यादा गहरा और तुम्हारा भोग ऐसा हो कि त्यागी के त्याग से ज्यादा गहरा। तो मै तुमसे यह कह रहा हू कि एक परम समन्वय हो। तुम भोगो—त्यागते हुए, तुम त्यागो—भोगते हुए।

उपनिषद कहते है, तेन त्यक्तेन भुजीथा। उन्होने ही भोगा, जिन्होने त्यागा। या उसका ऐसा भी अर्थ कर सकते हैं कि उन्होने ही त्यागा जिन्होने भोगा। वह वचन बड़ा अपूर्व है। ऐसा भोगो, ऐसा गहरा भोगो कि भोग मे ही त्याग घटित हो जाये।

अब इसे थोड़ा समझो। जब तुम अधूरा-अधूरा भोगते हो तो भोग सरकता है। जो भी जीवन मे अधूरा अनुभव है, वह पीछा करता है। जब भी अनुभव पूरा हो जाता है, छुटकारा हो जाता है। अगर तुमने स्त्री को ठीक से न भोगा, तो तुम्हारे मन मे स्त्री की कामना छाया डालती रहेगी। अगर तुमने ठीक से भोग लिया, एक स्त्री को भी एक सभोग मे भी ठीक से अनुभव कर लिया और जान लिया, क्या है, तुम मुक्त हो गये। उसी क्षण तुम भोग के बाहर हो गये।

गहरा भोग त्याग ले आता है। और गहरे त्यागी के भोग की चर्चा करनी मुश्किल है, क्योकि वही भोगना जानता है।

तुम जरा सोचो। जब कृष्ण भोजन करते होगे या महावीर भी जब भोजन करते होगे, तो तुमने ऐसा भोजन कभी भी नहीं किया जैसा महावीर करते होगे। चाहे उन्हे रूखी-सूखी रोटी ही मिली हो, उस रूखी-सूखी मे से भी ब्रह्म को निचोड़ लेते होगे। उस रूखी-सूखी रोटी मे से सिर्फ खून और मास-मज्जा ही नही आती थी उनको, ब्रह्म भी आता था। इसलिए तो उपनिषद कहते है अन्न ब्रह्म। अन्न ब्रह्म है। जिन्होने लिखा है, उन्होने खूब भोगकर लिखा होगा, खूब अन्न को परखकर लिखा होगा।

एक सन्यासी बीमार था। थोड़ा-थोड़ा भोजन लेता था। चिकित्सको ने उससे कहा कि इतने थोडे भोजन से काम न चलेगा, थोड़ा और भोजन लो। तो उस सन्यासी ने कहा, इतना काफी है, क्योकि इसमे से मै वही नहीं ले रहा हू जो दिखाई पड़ता है, वह भी ले रहा हू जो दिखाई नहीं पड़ता। और जब मै श्वास लेता हू, तब भी मै भोजन कर रहा हू—क्योकि प्राण । और जब मै आकाश को देखता हू, तब भी भोजन कर रहा हू—क्योकि आकाश । जब सूरज की किरणें मुझ पर पड़ती है, तब भी भोजन कर रहा हू—क्योंकि किरणे प्रवेश करती हैं। भोजन तो चौबीस घटे चल रहा है। ब्रह्म चौबीस घटे हजार-हजार मार्गों से तुम मे उतर रहा है और नाच रहा है।

जिसने ठीक से भोगा, वह हर भोग मे ब्रह्म को खोज लेगा। और जिसने ठीक से त्यागा, उसकी आख इतनी शुद्ध और निर्मल

हो जाती है कि उसे सिवाय ब्रह्म के फिर कुछ दिखाई पड़ता नहीं।

अब तक ब्राह्मण और श्रमण सस्कृतिया विपरीत खड़ी रही है। श्रमण-सस्कृति त्याग की सस्कृति है। ब्राह्मण-सस्कृति भोग की सस्कृति है। ब्राह्मण-सस्कृति परमात्मा के ऐश्वर्य की सस्कृति है, परमात्मा के विस्तार की। श्रमण-सस्कृति त्याग की सस्कृति है, वीतराग की, परमात्मा के सकोच की, वापसी यात्रा है। इसीलिए रामानुज, वल्लभ और निम्बार्क, शकर को हिदू नही मानते। वे कहते है, प्रच्छन्न बौद्ध, छिपा हुआ बौद्ध है यह आदमी। निम्बार्क, शकर के बीच, वल्लभ, शकर के बीच, रामानुज, शकर के बीच बड़ा विवाद है। और मै भी मानता हू, शकर हिदू नही है—हो नही सकते। शकर ने बड़े छिपे रास्ते से श्रमण-सस्कृति को ब्राह्मण-सस्कृति की छाती पर हावी कर दिया। इसलिए शकर के सन्यासी को तुम जानते हो, वही सन्यासी हो गया खास। वह सन्यासी बिलकुल हिदू है ही नहीं।

तुमने उपनिषद के ऋषि-मुनियो को देखा है, सुनी है उनकी बात, उनकी खबर, उनकी कहानी सुनी? उपनिषद के ऋषि-मुनि गृहस्थ थे। पत्नी थी उनकी, बच्चे थे उनके, घर-द्वार था उनका, बाग-उपवन थे उनके, गऊए थी उनकी, धन-धान्य था, त्यागी नही थे। बुद्ध और जैन अर्थो मे त्यागी नही थे। भोगकर ही भगवान को उन्होने जाना था। शकर ने श्रमण-सस्कृति की बात का प्रभाव देखकर क्योकि जब श्रमण साधु खडे हुए तो स्वभावत हिदू ब्राह्मण, ऋषि-मुनि फीके पडने लगे। क्योकि ये तेजस्वी मालूम पड़े। सब छोड़ दिया। ये चमत्कारी मालूम पडे, क्योकि बडे उलटे मालूम पडे। स्वभावत रास्ते पर सब लोग चलते है, कोई जरा शीर्षासन लगाकर खड़ा हो जाये, तो भीड़ इकट्ठी हो जायेगी। वही आदमी पैर के बल खड़ा रहे, कोई न आयेगा, सिर के बल खडा हो जाय, सब आ जायेगे। वे कहेगे, क्या मामला हो गया। कोई फूल चढाने लगेगा, कोई हाथ जोड़ने लगेगा कि कोई चमत्कार कर रहा है, यह आदमी बड़ा त्यागी है। उलटा आकर्षित करता है।

तो जैन और बौद्ध सन्यासियो ने बड़ा आकर्षण पैदा किया। शकर ने बड़े छिपे द्वार से उनकी ही बात को हिदू-छाती पर सवार करवा दिया। अगर कोई गौर से देखे तो हिदू सस्कृति को बचानेवाले शकर नहीं है, नष्ट करनेवाले है। हालाकि लोग सोचते है, शकर ने बचा लिया—बचाया नही। यह बचाना क्या बचाना हुआ? यह तो नाम का ही फर्क हुआ।

हिदू सस्कृति भोग का परम स्वीकार है। और भोग मे ही परमात्मा का आविष्कार है। श्रमण-सस्कृति त्याग का, सन्यास का, छोड़ने का, विरक्ति का, वैराग्य का मार्ग है। और उसी से परमात्मा को पाना है।

मेरे देखे, त्याग और भोग दो पखो की तरह है।

श्रमण-सस्कृति भी अधूरी है, ब्राह्मण-सस्कृति भी अधूरी है। मै उसी आदमी को पूरा कहता हू, उसी को मै परमहस कहता हू, जिसके दोनो पख सुदृढ है, जो न भोग की तरफ झुका है न त्याग की तरफ झुका है, जिसका कोई चुनाव ही नहीं है, जो सहज शात जो भी घट रहा है, उसे स्वीकार किया है, घर मे है तो घर मे स्वीकार है, मदिर मे है तो मदिर मे, पत्नी है तो ठीक, पत्नी मर गई तो ठीक, पत्नी होनी ही चाहिए, ऐसा भी नही है, पत्नी नही ही होनी चाहिए, ऐसा भी नही है—जिसका कोई आग्रह नही है, निराग्रही।

सन्यास का मै अर्थ करता हू सम्यक न्यास। जिसने अपने जीवन का सतुलित कर लिया है, जिसने अपने जीवन को ऐसी बुनियाद दी है जो अपग नही है, जो अधूरी नहीं है, जो परिपूर्ण है। भोग और त्याग दोना जिसमे समाविष्ट है, वही मेरे लिए सन्यासी है।

और मजा ही क्या, छोडकर भाग गये तब छूटा तो मजा क्या। यहा रहे और छोडा, बाजार मे खडे रहे और भीतर हिमालय प्रगट हुआ।

यह हमी है कि तेरा दर्द छुपाकर दिल मे
काम दुनिया के बदस्तूर किए जाते है।

छोड देना आसान है, पकड रखना भी आसान है, पकड़े हुए छोड़ देना अति कठिन है। बडी कुशलता चाहिए। कृष्ण ने जिसको कहा है योग कर्मसु कौशलम्। बडी कुशलता चाहिए। योग की कुशलता चाहिए। जैसे कि कोई नट सधी हुई रस्सी पर चलता है, दो खाइयो के बीच खिची हुई रस्सी पर चलता है। तो देखा, कैसा सम्हालता है, सतुलित करता है, कभी बाये झुकता कभी दाये झुकता, जब दिखता है, बाये झुकना ज्यादा हो गया, अब गिरूगा, तो दाये झुकता है, ताकि बाये की तरफ जो असतुलन हो गया था, वह सतुलित हो जाये। फिर देखता है, अब दाये तरफ ज्यादा झुकने लगा, तो बाये तरफ

झुकता है। बाये को दाये से सम्हालता है, दाये को बाये से सम्हालता है। ऐसे बीच मे तनी रस्सी पर चलता है।

और धर्म तो खड्ग की धार है। वह तो बडा बारीक रास्ता है, सकीर्ण रास्ता है—ठीक खिंची हुई रस्सी की तरह दो खाइयो के बीच मे। इधर ससार है, उधर परमात्मा है, बीच मे खिची हुई रस्सी है—उस पर चलनेवाले को बडा कुशल होना चाहिए।

तो अगर तुम्हारे जीवन मे प्रेम बुझ जाये और फिर वैराग्य हो, तो कुछ खास न हुआ।

प्रेम जलता रहे और वैराग्य हो तो कुछ हुआ।

बुझी इश्क की राख अधेर है
मुसलमा नहीं राख का ढेर है
शराबे-कुहन फिर पिला साकिया
वही जाम गर्दिश मे ला साकिया
मुझे इश्क के पर लगा कर उड़ा
मेरी खाक जुगनू बना कर उड़ा
जिगर मे वही तीर फिर पार कर
तमन्ना को सीने मे बेदार कर।
बुझी इश्क की राख अधेर है।

प्रेम का अगारा बुझ जाये तो फिर जिसे तुम वैराग्य कहते हो, वह राख ही राख है।

प्रेम का अगारा भी जलता रहे और जलाये न, तो कुछ कुशलता हुई, तो कुछ तुमने साधा, तो तुमने कुछ पाया।

बुझी इश्क की राख अधेर है
मुसलमा नही राख का ढेर है।

—फिर वह आदमी धार्मिक नहीं, मुसलमा नही—राख का ढेर है।

तो एक तरफ जलते हुए, उभरते हुए अगारे ज्वालामुखी है, और एक तरफ राख के ढेर है—बुझ गये, ठडे पड़ गये, प्राण ही खो गये, निष्प्राण हो गये। तो एक तरफ पागल लोग है, और एक तरफ मरे हुए लोग है। कहीं बीच मे ।

पागलपन इतना न मिट जाये कि मौत हो जाये, और पागलपन इतना भी न हो कि होश खो जाये। पागलपन जिदा रहे और फिर भी मौत घट जाये। अहकार मरे, तुम न मरो। ससार का भोग मरे, परमात्मा का भोग न मरे। त्याग हो, लेकिन जीवत हो, रसधार न सूख जाये।

शराबे-कुहन फिर पिला साकिया।

—बड़ी प्यारी पक्तिया है। पक्तिया यह कह रही है, अगर राख का ढेर हो गये हम, तो क्या सार। हे परमात्मा, फिर थोड़ी शराब बरसा।

शराबे-कुहन फिर पिला साकिया
वही जाम गर्दिश मे ला साकिया

—फिर वही जाम गर्दिश मे ला। अभी ससार को प्रेम किया था, अब तुझे प्रेम करेगे, लेकिन फिर वही जाम दोहरा। प्रेम तो बचे, जो व्यर्थ के लिए था वह सार्थक के लिये हो जाये। दौड़ तो बचे, अभी वस्तुओ के लिए दौडे थे, अब परमात्मा के लिये दौड़ हो जाये।

शराबे-कुहन फिर पिला साकिया
वही जाम गर्दिश मे ला साकिया
मुझे इश्क के पर लगा कर उड़ा।

—अभी इश्क के पर तो थे, लेकिन खिसकते रहे जमीन पर, रगड़ते रहे नाक जमीन पर। मुझे इश्क के पर लगाकर उड़ा। उड़े परमात्मा की तरफ, लेकिन पर तो इश्क के हो, प्रेम के हो।

मेरी खाक जुगनू बना कर उड़ा
जिगर से वही तीर फिर पार कर।

—वह जो ससार मे घटा था, वह जो किसी युवती के लिए घटा था, किसी युवक के लिए घटा था, वह जो धन के लिए घटा था, पद के लिए घटा था—वही तीर।

जिगर से वही तीर फिर पार कर
तमन्ना को सीने मे बेदार कर।

—वह जो वासना थी, आकाक्षा थी, अभीप्सा थी, वस्तुओ के लिए, ससार के लिए—उसे फिर जगा, लेकिन अब तेरे लिए।

बहुत लोग है, अधिक लोग ऐसे ही है—जीते है, भोगते है, लेकिन भोग करना उन्हे आया नही। वासना की है, चाहत मे अपने को डुबाया, लेकिन चाहत की कला न आयी।

न आया हमे इश्क करना न आया
मरे उम्र भर और मरना न आया।

जीवन एक कला है और धर्म सबसे बड़ी कीमिया है। इसलिए मेरे लिए सन्यासी का जो अर्थ है, वह है सतुलन, सम्यक सतुलन, सम्यक न्यास, कुछ छोड़ना नहीं और सब छूट जाये, कही भागना नही और सबसे मुक्ति हो जाये, पैर पड़ते रहे

जलधारो पर लेकिन गीले न हो, आग से गुजरना हो जाये, लेकिन कोई घाव न पड़े। और ऐसा सभव है। और ऐसा जिस दिन बहुत बड़ी मात्रा मे सभव होगा, उस दिन जीवन की दो धाराए, श्रमण और ब्राह्मण, मिलेगी, भक्त और ज्ञानी आलिगन करेगा। और उस दिन जगत मे पहली दफा धर्म की परिपूर्णता प्रगट होगी। अभी तक धर्म अधूरा-अधूरा प्रगट हुआ है, खड-खड मे प्रगट हुआ है।

तीसरा प्रश्न एक मार्ग भगवान महावीर का है—सघर्ष का, सकल्प का, दूसरा मार्ग शरणागति का, समर्पण का। और दोनो मुक्ति के लिए है।

कृपया बताये कि भक्ति करने से आदमी को अपने बुरे कर्मो का फल भोगना पड़ेगा अथवा नही?

कर्म की भाषा भक्त की भाषा नहीं है। यह तो ऐसे ही है, जैसे तुम पूछो कि बगीचे से गुजरने पर मरुस्थल बीच मे पडेगा या नही, या मरुस्थल से गुजरने पर फूल कमल के खिले हुए मिलेगे या नही। तुम अलग-अलग धाराओ की बात कर रहे हो।

कर्म की भाषा समर्पण के मार्ग की भाषा नही है, सकल्प के मार्ग की भाषा है। सकल्प कहता है तुमने जो किया है वही तुम पाओगे। इसलिए महावीर का तो पूरा शास्त्र कर्म के सिद्धात पर खड़ा है। भगवान तो हटा ही दिया है महावीर ने, कर्म ही भगवान हो गया है—तुम जो करते हो वही, कार्य-कारण, सीधा विज्ञान है।

भक्त को कर्म की भाषा ही नही आती। भक्त कहता है, हमने कभी कुछ किया ही नही, वही करवा रहा है। भक्त कहता है, हम कर्ता ही नहीं है, कर्ता वही है; और उसने जो करवाया हमने किया, गुनहगार हो तो वही हो। भक्त के सामने भगवान को मुश्किल पड़ेगी, क्योकि भक्त कहेगा, 'तूने करवाया, हमने किया, हमको फसाता है?'

इसलिए भक्त कर्म की भाषा नही बोलता। भक्त कहता है, सब तुझ पर छोड़ा, कर्म भी छोड़े। अपने को ही छोड़ा तो अब कर्म का खाता कहा अलग रखे? जब सब छोड़ा तो बैक-बैलेस भी तुझे ही दिया। ऐसा थोड़े ही है कि अपना बैक-बैलेस बचा लिया और कहा कि बाकी सब दिया।

तुम्हे तो जुहद-ओ-रिया पर बहुत है अपने गरूर
खुदा है शेख जी। हमसे भी गुनहगारो का।

भक्त कहता है, 'शेख जी। तुम्हे तो बड़ा गरूर है अपने कर्मो का, शुभ कर्मो का, उपासना, पूजा, प्रार्थना का, साधना, तपश्चर्या का।'

तुम्हे तो जुहद-ओ-रिया पर बहुत है अपने गरूर।

लेकिन भक्त यह भी कहता है कि यह सब जो तुमने किया है, थोथा है, क्योकि करने का भाव तो भीतर मौजूद ही है। इसलिए यह सब वचना है। और हम तुम से कहते है *खुदा है शेख जी। हमसे भी गुनहगारो का।* वह हमारी भी खबर लेगा। वह सिर्फ धार्मिको का ही नही है, गुनहगारो का भी है।

फरिश्ते हश्र मे पूछेगे पाकबाजो से
गुनाह क्यो न किए, क्या खुदा गफूर न था?

वे जो पुण्यात्मा है, भक्त कहता है, उनसे जरूर फरिश्ते पूछेगे स्वर्ग मे।

फरिश्ते हश्र मे पूछेगे पाकबाजो से।

—पवित्र लोगो से, धर्मात्माओ से, पुण्यात्माओ से।

गुनाह क्यो न किए, क्या खुदा गफूर न था?

क्या तुम्हे भरोसा न था कि उसकी करुणा अपरपार है? तुम्हे कुछ सदेह था? कर लेते गुनाह। ऐसे क्या डरे-डरे जीये?

नही, भक्त की भाषा अलग है।

ध्यान रखो, अगर कर्मो का हिसाब रखना हो तो भक्ति का रास्ता तुम्हारे लिए नही है। गणित और काव्य की भाषा अलग-अलग है। गणित मे दो और दो चार ही होते है, काव्य मे कभी-कभी दो और दो पाच भी हो जाते है, कभी तीन भी रह जाते है। काव्य तो रहस्य है।

तो अगर तुम्हे गणित की भाषा समझ मे आती हो तो तुम भक्ति की भाषा ही छोड़ो, तो फिर कर्मो का हिसाब रखो। जो-जो बुरा किया है, उसके ठीक-ठीक तुलना मे गणित की तरह भला करो। एक-एक काटो। कठिन होगा मार्ग, लेकिन किसी की करुणा पर तुम्हे निर्भर न रहना पड़ेगा। जटिल होगा, बड़ा दुर्धर्ष सघर्ष होगा। क्योकि अनत-अनत जन्मो के पाप है, उन्हे काटना आसान नही है। इसलिए तो महावीर जन्मो-जन्मो यात्रा करते है। काटते-काटते, काटते-काटते, पच्चीस सौ वर्ष पहले वह घड़ी आई, जब वह काट पाये। इसलिए महावीर और बुद्ध दोनो

ने, श्रमण सस्कृति के दोनो आधार है, अपने पिछले जन्मो की कथा कही है।

किसी भक्त ने फिक्र नही की क्या करना, हिसाब क्या रखना उसका। महावीर और बुद्ध ने कही है। दोनो ने जाति-स्मरण, पिछले जन्मो के स्मरण को एक खास विधि माना, खास विधि बनाया कि पीछे जन्मो मे जाओ, क्योकि हिसाब पूरा देखना पड़ेगा, कहा-कहा भूल-चूक की है, वहा-वहा सुधार करना है, जहा-जहा गलत किया, उसके मुकाबले ठीक करना है, जहा-जहा पाप हुआ वहा-वहा पुण्य रखना है। धीरे-धीरे-धीरे तराजू को बराबर करना है, दोनो पलडे जब बराबर हो जायेगे और काटा जब बीच मे सम्यकत्व पर खडा हो जायेगा तब तुम मुक्त हो सकोगे। बडा हिसाबी-किताबी मामला है। मगर कुछ है जिनको इस मे रस है। जरूर वे वैसा करे।

लेकिन भक्तो ने कभी पिछले जन्मो का हिसाब नही किया। उन्होने कहा, 'हिसाब कौन रखे। तू ही रख। तू ही सम्हाल। तूने भेजा, हम आये। तूने चलाया, हम चले। तूने जैसा रखा, हम राजी रहे।'

भक्त की तो पूरी बात ही इतनी है कि मै नही हू, तू ही है। इसलिए भक्त को कोई सवाल नही है।

दोनो मार्ग पहुचा देते है। भक्त छलाग से पहुचता है, ज्ञानी इच-इच काटकर पहुचता है। भक्त एकबारगी पहुच जाता है। एक साथ छोड देता है अपने 'मै' को। वह पूरा का पूरा उसके चरणो मे अपने सिर को रख देता है—एक साथ। ज्ञानी काटता है, पाप को छोडता है, पुण्य को पकडता है—फिर एक ऐसी घडी आती है, तब पुण्य को भी छोडता है। नहीं तो पुण्य ही अहकार बन जाता है।

इसलिए महावीर के मार्ग पर जो चलते है, पहले पाप को काटो पुण्य से, फिर एक घडी आयेगी तब पुण्य को भी काटो, क्योकि वह सोने की जजीरे है। पहले पाप को मिटाओ पुण्य से, एक काटे को दूसरे से निकालो, फिर दोनो काटो को फेक दो, फिर पाप भी पुण्य भी दोनो चले जाये। जब सारे कर्म शून्य हो जायेगे तो कर्ता मिट जाता है। जब कर्म ही न बचे तो कर्ता कौन। यह महावीर का मार्ग है।

भक्त का मार्ग यह है, वह कहता है हम कर्ता को ही रखे आते है उसके चरणो मे। कर्म से शुरू नही करता भक्त। भक्त कर्ता का समर्पण करता है।

वह कहता है, 'यह रहे। बुरे-भले जैसे भी है, तू स्वीकार कर। पत्र-पुष्पम्। यह जो कुछ हमारे पास है, पत्ते, फूल, फूल की पखुड़ी सही, यह तू सम्हाल। ज्यादा कुछ है नही।'

वह अपने अहकार को सीधा रखता है।

ज्ञानी के मार्ग पर, सकल्प के मार्ग पर कर्म को काट-काटकर कर्ता मिटाया जाता है। भक्ति के मार्ग पर कर्ता को छोड़कर ही सारे कर्म मिट जाते है।

आखिरी सवाल सुनता था कि इस जहा से आगे जहा और भी है, इस मका से आगे मका और भी है, लेकिन अब आप से मिलने पर ऐसा प्रतीत होता है

गर बर रूए जमी बहिश्त अस्त

हमी अस्त हमी अस्त हमी अस्त।

—यदि इस पृथ्वी पर कही स्वर्ग है तो वह यही है, यही है, यही है। ऐसा क्यो हुआ, कृपापूर्वक समझाये।

छोडो भी समझ को। समझ के पीछे क्यो इतना लट्ठ लेकर पडे हो? समझ से ऐसा क्या लेना-देना है? समझ को खाओगे कि पीयोगे कि ओढ़ोगे? जो हुआ है उसके बीच मे समझ का मत लाओ। समझ बाधा डालेगी। समझ ने सदा ही बाधा डाली है। विश्लेषण तोड़ देता है उन चीजो को, फोड देता है उन चीजो को—जो विश्लेषण के पार है।

जैसे मै एक सुदर फूल तुम्हे दू, भोगो इसे। सूघो इसे। पीयो इसके रस को आखो से। नाच लो थोडी देर इसके साथ। जल्दी ही यह फूल कुम्हला जायेगा। जल्दी ही फूल फिर जैसे अदृश्य से आया, अदृश्य मे लीन हो जायेगा। विश्लेषण मत करो, अन्यथा तुम भागोगे, काटोगे-पीटोगे फूल को, सोचोगे कहा सौदर्य है, कहा छिपा है। उस काट-पीट मे फूल भी खो जायेगा, सौदर्य भी खो जायेगा।

विश्लेषण से सौदर्य का पता नही चलता, न सत्य का पता चलता है, क्योकि जो है, वह अखड मे है। इसलिए मै कहता हू, छोड़ो समझ को। समझ खडित करती है चीजो को। वह कहती है, काटो-पीटो, जाचो, तोड़ो। सारा विज्ञान तोड़-फोड़ से चलता है। तुम दे दो वैज्ञानिक को फूल, वह फौरन भागेगा

प्रयोगशाला मे। फूल को देखेगा भी नहीं। फूल को थोड़ा मौका भी न देगा कि फूल थोड़ा गुनगुना ले। भागेगा प्रयोगशाला मे। जल्दी ही तुम पाओगे, पखुड़िया बिखर गई। विच्छेद कर डाला उसने फूल का। जल्दी ही तुम पाओगे, लेबिल लगा दिये गये, अलग-अलग बोतलो मे उसने फूल से निकालकर रस सजो दिये। बता देगा, कितना लवण है, कितनी मिट्टी है, कितनी शक्कर है, कितना क्या है। सब बता देगा, लेकिन कोई भी ऐसी बोतल न होगी जिसमे सौदर्य होगा, और सब चीजे पकड मे आ जायेगी। पार्थिव पकड मे आ जायेगा, अपार्थिव छूट जायेगा। तुम पूछोगे, 'सौदर्य कहा है? हमने फूल दिया था, एक सुदर फूल दिया था—यह फूल का विश्लेषण हुआ, सौदर्य कहा है?' वह कहेगा, 'सौदर्य था ही नही। मैने बडे गौर से काटा-पीटा, कोई भी चीज बाहर नही जाने दी है। जितना वजन फूल का था—उतना ही इन चीजो का है, तुम तौल ले सकते हो। सौदर्य कही गया नही। था ही नही। होगा ही नही। तुम किसी भ्राति मे पड़े होओगे। तुमने कोई सपना देखा होगा।'

समझ खड-खड करती है। समझ यानी विश्लेषण। और सत्य उपलब्ध होता है सश्लेषण से, जोड से, अखड से। तो मै तुमसे कहता हू, अगर लगता है कही, यही स्वर्ग है, तो अब समझने की फिक्र छोडो। स्वर्ग मे तो समझ मत लाओ। समझ से ससार चलता है। समझ से ससार बनता है। स्वर्ग मे तो समझ मत लाओ। अगर काव्य उठा है, अगर हृदय अभिभूत हुआ है तो नाचो। अब स्वर्ग आ गया है, तुम पूछते हो कि ऐसा क्यो हुआ। जो हुआ, हुआ।

'क्यो' मे जाने का अर्थ है अतीत मे जाओ। 'क्यो' मे जाने का अर्थ है कारण मे जाओ। 'क्यो' मे जाने का अर्थ है विज्ञान मे जाओ। विज्ञान पूछता है, 'क्यो?'

नही, धर्म स्वीकार करता है। धर्म पूछता ही नही। धर्म कोई प्रश्न नहीं है। धर्म एक आश्चर्यभाव है। धर्म कहता है, अहा। यही स्वर्ग है, तो नाच ले, तो गीत गा ले। सुनो इस कोयल को।

स्वर्ग अगर आ गया तो आखिरी दरवाजा आ गया।

तेरी उम्मीद छुट नही सकती
तेरे दर के सिवाय दर ही नही।
और क्या देखने को बाकी है,
आप से दिल लगा के देख लिया।

अगर परमात्मा से थोडा दिल लग गया तो वही स्वर्ग है।

और क्या देखने को बाकी है,
आप से दिल लगा के देख लिया।

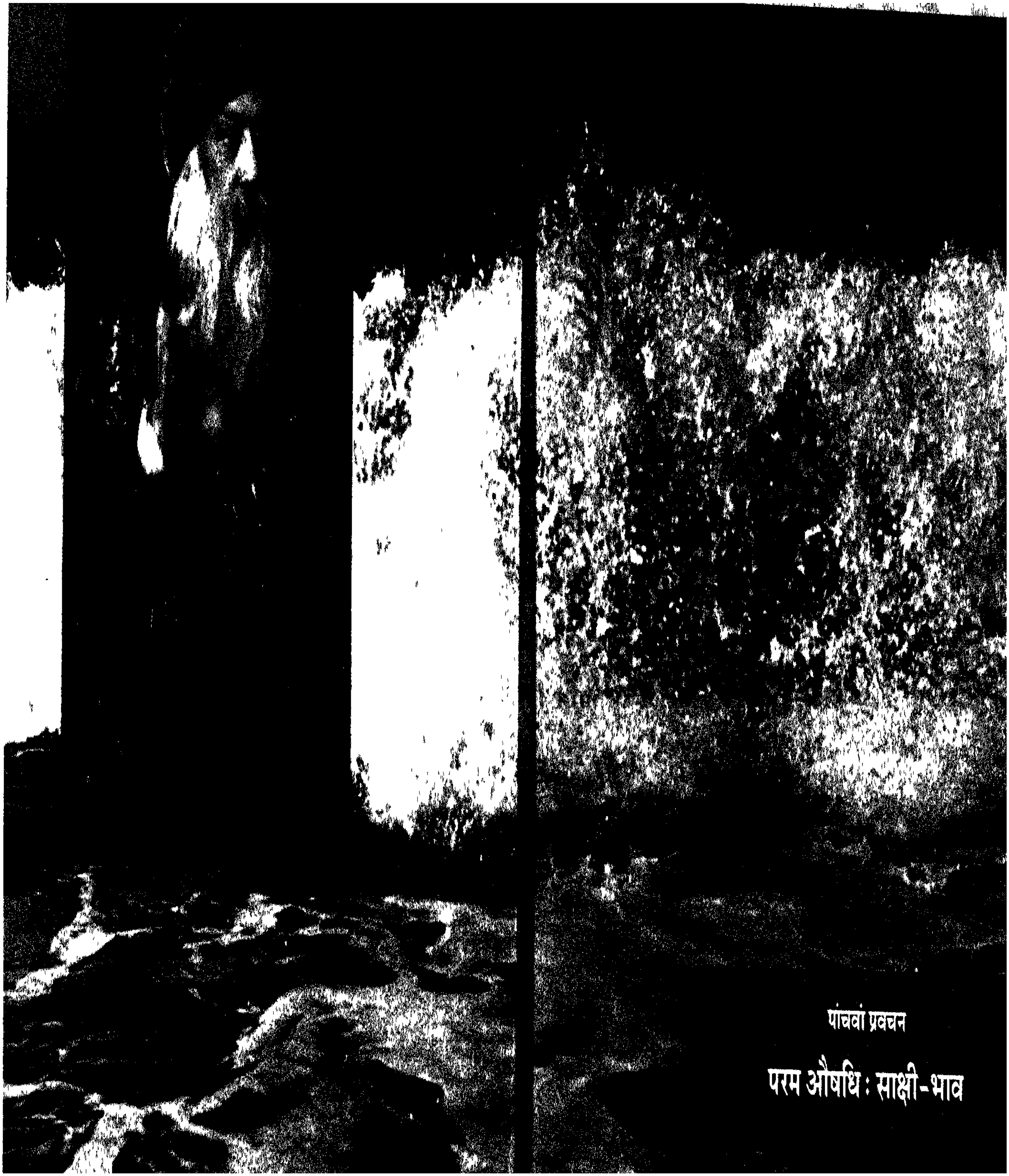
पर अब बुद्धि को मत दौड़ाओ। अब बुद्धि के जाल मत बुनो। छोडो भी। बुद्धि विरस कर देगी। बुद्धिमान स्वर्ग भी चला जाये, नर्क को निर्मित कर लेगा, क्योकि वह स्वीकार नही कर सकता है। घटना घट भी जाये तो भी पूछता है, 'क्यो।' 'क्यो' का कोई उत्तर नही है। ऐसा है। जब भी तुम्हारा दिल खुला होता है और प्यारे को तुम उपलब्ध होते हो, घट जाता है।

तुमने किसी को भी प्रेम किया, वही से परमात्मा की किरणे उतरनी शुरू हो जाती है, वही खिडकी हो जाता है, वही वातायन हो जाता है। तुमने अगर मुझे प्रेम किया तो यहा स्वर्ग बन जायेगा। जिनका मुझ से प्रेम नही है, वे तुम्हे पागल समझेगे। उन्हे सोचने दो कि क्या हुआ, क्यो हुआ, कैसे हुआ। यह काम उन पर छोड़ दो, जिनको नही हुआ है। कुछ काम उनके लिए भी तो छोडो।

और क्या देखने को बाकी है,
आप से दिल लगा के देख लिया।

आज इतना ही।





पांचवां प्रवचन

परम औषधि : साक्षी-भाव

सूत्र

रागो य दोसो वि य कम्मवीयं, कम्मं च मोहप्पभव वयति।
कम्मं च जाईमरणस्य मूल, दुक्खं च जाईमरण वयति।।११।।

न य ससारम्मि सुहं, जाइजरामरणदुक्खगहियस्स।
जीवस्स अत्थि जम्हा, तम्हा मुक्खो उवादेओ।।१२।।

तं जइ इच्छसि गंतु, तीरं भवसायरस्स घोरस्स।
तो तव सजमभड, सुविहिय गिण्हाहि तूरतो।।१३।।

जेण विरागो जायइ, तं त सव्वायरेण करणिज्ज।
मुच्चइ हु ससवेगी, अणतवो होइ असवेगी।।१४।।

एवं ससंकप्पविकप्पणासु, सजायई समयमुवट्ठियस्स।
अत्थे य संकप्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु तण्हा।।१५।।

भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खो परपंरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं।।१६।।

घर मे आग लगी हो तो बाहर जाने के दो ही उपाय है या तो बाहर आग नही है, ऐसा दिखाई पडे, या घर की आग जीवन-घाती है, ऐसा दिखाई पड़े।

या तो बाहर सुख है, आनद है, जीवन है, ऐसी प्रतीति हो, तो व्यक्ति घर के बाहर भागे, और या घर की पीडा, घर के भीतर लगी आग जलाने लगे, अनुभव मे आये, जगाये, तो व्यक्ति बाहर भागे।

दुनिया मे दो ही तरह के धर्म है। एक—जो परमात्मा के आनद का वर्णन करते है, उस परम दशा के सुख की महिमा गाते है, समाधि का सौरभ, उस सौरभ के गीत गुनगुनाते है। और दूसरे धर्म है—जो तुम्हारी जीवन-दशा की अग्नि, दुख, पीडा, छाती मे चुभे काटो का विचार करते है।

महावीर का धर्म दूसरे प्रकार का धर्म है, इसलिए दुख की बार-बार चर्चा होगी। पतजलि का धर्म पहले प्रकार का धर्म है, इसलिए परमात्मा के प्रसाद, समाधि के आनद, ध्यान के हर्षोन्माद की बार-बार चर्चा होगी। लेकिन दोनो का लक्ष्य एक है कि तुम घर के बाहर आ जाओ। और यदि गौर से देखो तो महावीर की पकड़ ज्यादा वैज्ञानिक, ज्यादा तर्क-युक्त, ज्यादा व्यवहारिक है। क्योकि जिस परमात्मा की हम चर्चा कर रहे है। उसे देखा नहीं। चर्चा मे बहुत बल हो नहीं सकता। तुम कभी घर के बाहर आये नही।

मै तुमसे कहता हू, 'घर के बाहर बड़ा प्रकाश है, क्यो अधेरे मे पड़े हो?' लेकिन तुमने अधेरे के सिवा कभी कुछ जाना नही। प्रकाश की तुम कल्पना भी नही कर सकते हो। प्रकाश का सपना भी नही देख सकते हो। प्रकाश से तुम्हारी कोई पहचान नही हुई। तो तुम सुनोगे, सुन लोगे—लेकिन इससे तुम्हारे जीवन मे रूपातरण न होगा। तुम कहोगे, 'क्या भरोसा, प्रकाश होता भी है?'

तुमसे मै फूलो की बात करू, फूलो की कथा कहू, लेकिन फूल तुमने देखे ही न हो और तुम्हारे नासापुटो मे कभी गध ने आवास न किया हो, तो क्या उपाय है? तुम कैसे आकर्षित होओगे? तुम सुन लोगे बात, लेकिन तुम्हारे हृदय को छू न पायेगी, तुम्हारे प्राणो मे इससे क्राति का जन्म न होगा। शायद तुम पडित हो जाओ, लेकिन प्रज्ञावान न हो सकोगे। शायद तुम भी सुन-सुनकर यही बात औरो से करने लगो। शायद शब्द तुम्हे कठस्थ हो जाये, शास्त्र तुम्हारी स्मृति मे प्रविष्ट हो जाये, लेकिन तुम दौड़ोगे नही घर के बाहर। तुम कहोगे, हाथ की आधी को भी छोडकर सपने की पूरी के लिए दौडना ठीक नही है, ये बाते सपनीली है, अव्यवहारिक है, कल्पना-जाल है। भीतर तो तुम यही जानते रहोगे। तुम्हारा शब्द-ज्ञान बढता जायेगा, अज्ञान मिटेगा नहीं। तुम धर्म के काव्य मे डूब जाओगे, लेकिन धर्म तुम्हारे जीवन का तथ्य न बनेगा। तब तुम एक दुविधा मे भी पडोगे। क्योकि जो सुख तुम्हारे शब्दो मे छा जायेगा और प्राणो को आदोलित न करेगा, वह तुम्हे दो हिस्सो मे तोड देगा जीवन मे तो दुख होगा, जिह्वा पर सुख की बाते होगी, प्राणो मे तो काटे छिदे होगे, स्मृति मे कल्पना के फूल तैरेगे। तुम दो हिस्सो मे खडित हो जाओगे।

सारी मनुष्य जाति खडित हो गई है, क्योकि एक तरफ

परमात्मा खीचता है और उसकी खीच मे बहुत बल नही हो सकता। क्योकि जिसे जाना नही, चखा नही, जीया नहीं, उसकी पुकार सुनोगे कैसे ? वह बहुत दूर की धुधली-सी आवाज, बस एक गूज रह जाती है, प्रतिध्वनि-मात्र, छाया-मात्र।

और जीवन की वासनाए है, वे प्रगाढ़ है, वे तुम्हे खींचेगी। तो तुम बधे तो रहोगे जीवन के ही पहिये से, घसिटते तो रहोगे जीवन के रथ के साथ ही, धूल-धवास तो जीवन की ही खाते रहोगे। हां, सपने तुम मोक्ष के, बैकुठ के देखने लगोगे। इससे तुम शात न होओगे। इससे तुम्हारी अशाति शायद थोड़ी और बढ जायेगी। इससे तुम परमात्मा को पा सकोगे, ऐसा तो कम दिखायी पड़ता है, इससे तुम जीवन मे उदास और खिन्न और विषाद-युक्त हो जाओगे।

इसलिए महावीर ने दूसरा मार्ग चुना। वे परमात्मा की बात ही नही करते। उसे अलग ही कर दिया, बाद ही दे दी, हाशिये पर भी नहीं रखा है, शास्त्र की तो बात छोडो। उसे हटा ही दिया। समाधि के प्रसाद-गुण की बात नही करते, न आनद की बात करते—वे तो तुम्हारे जीवन की, जहा तुम हो, उसकी ही बात करते है, और कहते है, यहा दुख है। वे तुम्हे जीवन के दुख की प्रगाढ़ता से परिचित करा देना चाहते है। वे तुम्हारे हृदय मे चुभे हुए शूलो से तुम्हारी पहचान करा देना चाहते है। उनका सारा आधार तुम्हारी वस्तुस्थिति से तुम्हे परिचित करा देना है। तुम्हे पता चल जाए कि घर मे आग लग गई है। तुम जल रहे हो, लपटो से घिरे हो। तो महावीर मानते है कि तुम दौड़कर बाहर निकल जाओगे। निकलोगे बाहर तो बाहर को जानोगे।

फूल भी खिले है। नहीं कि फूल नहीं खिले है। परमात्मा भी है। नही कि परमात्मा नही है। समाधि के भी मेघ बरस रहे है, अमृत की धार बह रही है। सब है। लेकिन महवीर उसकी बात नहीं करते। वे तो सिर्फ तुम्हारे जीवन के दुख की बार-बार पुनरुक्ति करते है। तुम्हे जीवन का दुख दिखाई पड जाये तो तुम जीवन को छोड़ने लगोगे। उसी छोडने मे मोक्ष उतरता है।

इसलिए महावीर का मार्ग निषेध का है, नकार का है। महावीर का मार्ग चिकित्सक का है। तुम चिकित्सक के पास जाते हो तो वह स्वास्थ्य की चर्चा नही करता। नही कि स्वास्थ्य नही है, लेकिन बीमार से स्वास्थ्य की क्या चर्चा करनी। वह तुम्हारी बीमारी का निदान करता है, बीमारियो को उघाडकर रखता है, एक-एक बीमारी की पकड़ करता है, जाच-परीक्षण करता है, डायगनोसिस करता है। बीमारी पकड़ मे आ जाती है, बीमारी समझ मे आ जाती है—औषधि बता देता है। स्वास्थ्य की कहीं कोई चिकित्सक बात करता है। बीमारी पकड़ मे आ गई, चिकित्सा का पता चल गया—अब तुम्हारे ऊपर है। अगर तुम्हे बीमारी दिखाई पड़ती है, बीमारी की पीड़ा दिखाई पड़ती है, तो औषधि तुम वरण करोगे, चाहे औषधि कड़वी भी क्यों न हो। बीमारी से साक्षात्कार हुआ तो औषधि तुम अगीकर कर लोगे। औषधि बीमारी को काट देगी। जो शेष रह जायेगा बीमारी के कट जाने के बाद, वह अनिर्वचनीय है, उसकी बात ही नही की जा सकती, वह अभिव्यक्ति के योग्य नही है, उसकी कोई अभिव्यजना कभी नहीं कर पाया। कहो 'ईश्वर', तो भी कुछ पता नही चलता। कहो 'समाधि', तो भी शब्द ही हाथ मे आता है। कहो 'कैवल्य', कुछ शब्द की गूज होती है, हृदय मे कोई अनुभूति का तालमेल नही बैठता। लेकिन जब तुम्हारी सारी बीमारी हट जाती है, तब अचानक जो घटता है—जीवत, अस्तित्वगत—वही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य बताया नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है।

तो इसलिए महावीर के वचनो मे तुम्हे बार-बार दुख की चर्चा मिलेगी। इससे तुम्हे थोडी बेचैनी भी होगी। क्योकि तुम सुख की चर्चा सुनना चाहते हो।

तुम कहते हो, यह क्या दुख का राग है।

इसलिए पश्चिम मे जब महावीर के वचन पहली दफा पहुचने शुरू हुए तो लोगो ने समझा, दुखवादी है। महावीर दुखवादी नही है। इनसे परम सुखवादी कभी पैदा नही हुआ। क्या चिकित्सक तुम्हारी बीमारी की चर्चा करे, औषधि का निदान करे, तो तुम यह कहोगे कि यह बीमारी का पक्षपाती है ? वह चर्चा ही बीमारी की इसलिए कर रहा है कि तुम उससे छूट जाओ। वह स्वास्थ्य की चर्चा नहीं कर रहा है, क्योकि चर्चा करने से कभी कोई स्वस्थ हुआ। इसलिए महावीर दुख का ही विश्लेषण करते चले जाते है। हजार तरफ से एक ही इशारा है उनका · दुख। तुम्हे यह दिखाई पड़ने लगे कि तुम्हारा सारा जीवन दुख है—सुबह से साझ तक, जन्म से मृत्यु तक—दुख का ही अबार है, राशि है।

ऐसी तुम्हारी पहचान जिस दिन हो जायेगी और यही हो

सकता है, क्योकि इसमे तुम खड़े हो। परमात्मा तो दूर की बातचीत है, हो न हो, दुख है। तो महावीर इसकी भी चिता नहीं करते, सृष्टि कब बनी, इसकी भी चिता नहीं करते, किसने बनायी। इन दूर की बातो मे जाने से फायदा क्या है? ऐसा तो नहीं है कहीं कि तुम दूर की बाते कर के पास की असलियत को भुलाना चाहते हो? ऐसा तो नहीं है कि सृष्टि किसने बनायी, कौन है बनानेवाला, क्यो बनायी—इस तरह के बड़े-बड़े सवाल उठाकर जिदगी के असली सवालो को तुम छिपा और ढाक लेना चाहते हो? कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये सब सात्वना के उपाय है, ताकि दुख दिखाई न पड़े, ताकि दुख चुभे न, छिदे न, ताकि दुख की पीड़ा न हो। कहीं तुम्हारे मदिर-मस्जिद, पूजागृह तुम्हारी सात्वनाओ का जाल तो नही?

महावीर ऐसा ही जानते है। यह सब तुम्हारी सात्वना का जाल है। इसलिए महावीर मित्र भी मालूम नहीं होते। इसलिए तो महावीर बहुत अनुयायी इकट्ठे न कर पाये। सुख की चर्चा की होती, दुखी लोग आ गये होते। उन्होने दुख की चर्चा की, दुखियो ने सोचा, 'हम वैसे ही दुखी है, बख्शो।' दुखियो ने कहा, 'हम वैसे ही दुखी है, तुम्हारे पास आकर और दुख की ही चर्चा, और दुख की ही चर्चा । ऐसे ही क्या दुख कम है, जो अब तुम और चर्चा करके जोडे जा रहे हो? हमे थोडी सात्वना दो, भरोसा दो, आश्वासन दो, आशा दो। कहो हमे कि आज सब गलत है, कल सब ठीक हो जायेगा। कहो कि यह ससार तो माया है।'

महावीर ने नही कहा कि यह ससार माया है, क्योकि महावीर ने कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम दुख को माया कहकर भुलाना चाहते हो। जिस चीज को भी माया कह दो, उसे भुलाने मे सुविधा हो जाती है। ससार माया है, तो दुख भी माया है, तो बीमारी भी माया है, तो झेल लो, भोग लो, कुछ असलियत तो इसमे है नहीं, असली चीज तो परमात्मा है।

महावीर ने संसार को बड़ा सत्य माना है, परमात्मा की बात ही नहीं की। जो सत्यो का सत्य है, उसकी तो बात नहीं की, और इस भ्रामक ससार को बड़ा सत्य माना है। क्योकि महावीर कहते है कि तुम्हारे मन को मै पहचानता हू। तुम्हारे परमात्मा, तुम्हारे मोक्ष, सब मलहम-पट्टिया है, उनसे तुम घाव को छिपाते हो। और यह घाव कुछ ऐसा है, इसकी शल्य-चिकित्सा होनी चाहिए, सर्जरी होनी चाहिए। तो तुम सर्जन के पास जाओगे तो वह दबायेगा भी तुम्हारा घाव, तो तुम चीखोगे भी, मवाद भी निकालेगा—तो तुम यह थोड़ी कहोगे कि दुश्मन हो, कि हम वैसे ही तो दुख मे भरे थे, तुमने और मवाद निकाल दी, हम वैसे ही तो तड़फ रहे थे, तुमने यह और क्या किया, ऐसे ही क्या दुख कम था कि तुम छुरी-काटे लेकर खड़े हो गये हो। नहीं, तुम जानते हो, सर्जन मित्र है। वह उस गलत अग को काटकर अलग कर देगा, जहा से विष तुम्हारे पूरे जीवन-सस्थान मे फैला जा रहा है।

महावीर एक सर्जन है, दार्शनिक कम, तत्वचितक कम, चिकित्सक ज्यादा है। इस शब्द को खयाल मे रखो चिकित्सक। नानक ने अपने को वैद्य कहा है। बुद्ध ने भी अपने को वैद्य कहा है। महावीर भी वैद्य है। ये तुम्हे लोरिया सुनाने मे उत्सुक नहीं है, कि तुम्हे थोड़ी झपकी लग जाये, तुम रातभर जागे हो, जन्म-जन्म जागे हो, थोडा सो लो। नहीं, इनकी उत्सुकता तुम्हे सुलाने मे नही है, क्योकि सोने के कारण ही तो तुम्हारे जीवन की सारी पीड़ा और जाल और प्रवचना का फैलाव है। इसलिए महावीर तुम्हारे दुख से भरी रग को छुएगे, घबड़ाना मत। दुखवादी नही है वे। लेकिन तुम दुख मे हो। और तुम धीरे-धीरे अपने को इस तरह की भ्रातियो मे डाल लिये हो कि तुम दुख को दुख नही मानते, तुम उसे सुख मानने लगे हो—तो तुम्हे बार-बार जगाना पड़ेगा कि दुख दुख है, सुख नही।

जिस दिन तुम्हारा सारा जीवन लपटो से भर जायेगा—भरा तो है ही, दिखाई पड जायेगा जिस दिन, जिस दिन तुम देखोगे कि यहा कुछ भी तो नही है, कीडे-मकोड़े है, घाव, मवाद, पीड़ा ही पीड़ा—उसी दिन छलाग लगाकर इस घर के बाहर हो जाओगे। हा, बाहर खुला आकाश है, सूरज का प्रकाश है, खिले फूल है, पक्षियो के गीत है, बाहर बडी वातास है, बड़ी मधुरिमा है, बडा सौदर्य है। लेकिन वह तो तुम बाहर आओगे, तो ही सुनाई पड़ेगा। वह तो तुम बाहर आओगे, तो ही दिखाई पडेगा। इसलिए बाहर की कोई बात नही। जहा तुम हो, उसकी बात है। बड़ी व्यवहारिक बात है।

बुद्ध के जीवन मे एक उल्लेख है...। और बुद्ध और महावीर इस सबध मे एक ही दृष्टिकोण के है। दोनो श्रमण-सस्कृति के आधार है। कहते है बुद्ध को जब परमज्ञान हुआ, तो शैतान

प्रगट हुआ। यह कथा बहुत धर्मो मे आती है जब परम ज्ञान प्रगट होता है तो शैतान भी प्रगट होता है। इस कथा मे जरूर कोई सार होगा। यह कथा केवल प्रतीक नही हो सकती, क्योकि यही जीसस के जीवन मे भी उल्लेख है, कि जीसस जब ज्ञान के करीब पहुचे तो शैतान प्रगट हुआ और शैतान ने उन्हे उत्तेजित किया, उकसाया। और शैतान ने बड़ी वासनाओ के प्रलोभन दिये। और शैतान ने कहा कि सारे जगत का तुझे सम्राट बना दू, सारी धन-राशि तेरी हो, सुदरतम स्त्रिया तेरी हो, लबा तेरा जीवन हो। क्या चाहिए ?

वही बुद्ध से भी शैतान ने कहा। बुद्ध हसते रहे। बुद्ध ने कहा, 'मुझे कुछ चाहिए नहीं। मै बचा नही। चाहनेवाला जा चुका, चाह भी जा चुकी। चाहा तो मैने भी था, बड़े साम्राज्य बनाऊ, चाहा तो मैंने भी था, चक्रवर्ती बनू। उसी चाह के कारण भिखारी रहा। उसी चाह के कारण भटका जन्मो-जन्मो तक। चाह छोडी, तब शाति मिली। चाह जब पूरी गई, तो अब मै परम आनद से भरा हू। अब तू गलत वक्त पर आया है, पहले आता तो शायद तेरे चक्कर मे भी पड जाता।'

तो शैतान ने कहा कि तुम सोचते हो तुम्हे परमज्ञान हो गया है, तुम्हारा गवाह कौन है ? तुम्हारे कहने से ही मान लूगा ? तुम्हारी गवाही कौन दे सकता है ?

तो बडी अनूठी बात है—तुमने शायद बुद्ध का चित्र या प्रतिमा भी देखी होगी, जिसमे वे एक अगुली जमीन पर रखे हुए दिखाये गये है। बुद्ध ने जमीन पर अगुली लगाई और कहा, यह पृथ्वी मेरा प्रमाण है, यह मेरी गवाही है। बड़ी हैरानी की बात है पृथ्वी को गवाही बता रहे है। आकाश मे परमात्मा को बताया होता कि परमात्मा मेरा गवाह है तो समझ मे आता। लेकिन बुद्ध और महावीर दोनो ही परमात्मा की बात नहीं करते। वे जीवन के यथार्थ की बात कहते है। वे कहते है, 'इस पृथ्वी से पूछ लो। इसी से मै बना हू। यही पृथ्वी मेरी देह है। इसी पृथ्वी ने मेरे भीतर हजार-हजार वासनाये उठायी थीं। इसी पृथ्वी से पूछ लो। बहुत दुख मैने झेले है, और अब मै दुखो के बाहर हो गया हू। और कौन गवाह हो सकता है ?'

पृथ्वी से गवाही दिलवाते है बुद्ध। यह बड़ा प्रतीकात्मक है। महावीर के लिए यह ससार बड़ा वास्तविक है। वे इसको माया नहीं कहते। वे कहते है, यह सत्य है। माया कहकर तुम बचो मत। बचकर कुछ सार न पाओगे। इस सत्य से जूझना ही पड़ेगा। और यह सत्य बड़ा कष्टपूर्ण है। इसलिए मन करता है, मान लो यह है ही नही। तुम भी जानते हो तुम्हारे मन की प्रक्रिया को। जो चीज बहुत कष्ट देने लगती है, तुम मानने लगते हो यह है ही नहीं।

मेरे एक परिचित थे। उन्हे टी बी की बीमारी थी। उनकी पत्नी उन्हे मेरे पास लायी और कहा, कि आप किसी तरह इनको समझाये कि डाक्टर से चलकर ठीक से निदान करवा ले। पति भड़क उठे। कहा कि 'क्या कहती है ? जब मै बीमार ही नही हू तो मै जाऊ क्यो ? परीक्षण के लिए क्यो जाऊ ? परीक्षण के लिए वह जाये जो बीमार है। जब मै बीमार ही नही हू तो जाने की बात ही क्या उठाती है ?'

लेकिन उनकी मैंने घबड़ाहट देखी, उनका तमतमाया चेहरा देखा, उनके कपते हाथ देखे। मैने उनसे कहा कि आप बिलकुल ठीक कहते है। आप बीमार ही नहीं है। चिकित्सक के पास जाने की कोई जरूरत ही नही है।

वे बडे प्रसन्न हुए। कहा कि जिसके पास ले जाती है यह मेरी पत्नी, वही कहता है कि जाइये, जब यह कहती है तो परीक्षा करवा लीजिये। मैने कहा कि नहीं आप बिलकुल ठीक कहते है। कोई बीमारी नही है, इसलिए चिकित्सक के पास जाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह पत्नी पागल हुई जा रही है, जरा इस पर दया करो। यह मर जायेगी इसी घुटन मे, तुम इस पर कृपा करके चिकित्सक के पास चले जाओ। बीमारी तो है ही नही तो चिकित्सक भी कहेगा, बीमारी नहीं है। तुम घबडाते क्यो हो ? मगर इसकी शका, इसका शल्य दूर हो जायेगा।

वे बड़े उदास हो गये।

कहने लगे, यह तो उलझा दिया आपने। सच यह है, उनकी आख मे आसू आ गये कि मै डरता हू। मुझे भी डर है कि शायद बीमारी है। मै किसी तरह अपने को समझा रहा हू कि नहीं है। चिकित्सक के पास तो कैसे छिपा पाऊगा कि नहीं है। पत्नी को समझाने की कोशिश कर रहा हू, बच्चो को समझाने की कोशिश कर रहा हू। मैं मौत से डरता हू। टी बी शब्द ही मुझे घबड़ाता है। अगर चिकित्सक ने कहा कि टी बी है तो मै मर ही जाऊगा। टी बी से मरूगा या नही, यह सवाल नही है, बस यह जानकर कि टी बी है, मैं मर जाऊगा।

मैने उनसे कहा, तुम पागल हुए हो। टी बी से आज कहीं कोई मरता है। तुम पुराने जमाने की बात कर रहे हो।

घबड़ाहट। डाक्टर के पास जाने से लोग डरते है। जब बीमारी बहुत ही पकड़ लेती है, कोई उपाय ही नहीं रह जाता है। तब डाक्टर के पास जाते हैं। डाक्टर के पास जाने के पहले और तरह के लोगो के पास जाते है—कोई ओझा, कोई मत्र पढ़नेवाला, कोई फकीर, कोई ताबीज बाध देनेवाला—और जगह जाते है, जहा सात्वना है, लेकिन डाक्टर के पास सीधा-सीधा नहीं जाते। क्योकि डाक्टर तो सीधा कहेगा, फलां-फला बीमारी है, इलाज की बात उठेगी। तो पहले मत्र पढ़ते है, ताबीज बाधते है, भभूत ले आते है। पहले साईंबाबा, फिर जब सब साईंबाबा हार जायें, तब मजबूरी मे चिकित्सक के पास जाते है।

ठीक वैसा ही धर्म के जगत मे भी है। पहले तुम उनकी बात सुनोगे जो कहते है, ससार माया है। महावीर के पास जाने मे डरोगे, पैर कपेगे, क्योकि महावीर तुम्हारी किसी भ्रात आकाक्षाओ को सहारा देने मे उत्सुक नही है। महावीर तो ठीक तुम्हारी उस रग पर हाथ रख देगे, जहा पीड़ा है, जहा दुख है।

ये सूत्र निदान-सूत्र है। ये चिकित्सक के वचन है। इन्हे तुम गौर से सुनना। चाहे ये कितना ही कष्ट देते मालूम पड़े, इनसे ही मुक्ति का मार्ग है। महावीर के पास जाकर अगर तुम कह सको—

फिर मै आया हू तेरे पास ऐ अमीरे-कारवा

—हे पथ-प्रदर्शक। मै फिर तेरे पास आया हू।

छोड़ आया था जिसे तू, वो मेरी मजिल न थी।

—जहा तू मुझे छोड़ आया था, या जहा मैने तुझे छोड़ दिया था, वह मेरी मजिल न थी। मै गलत पथ-प्रदर्शको के साथ भटका।

दुनिया मे जहा एक ठीक पथ-प्रदर्शक होता है, वहा निन्यानबे गलत भी होते हैं। होगे ही, क्योकि जिंदगी में इतना दुख है, और दुख से बचने की इतनी आकाक्षा है, कि भ्रात और धोखा देनेवाले लोग भी पैदा होगे ही। जहा इतने लोग बीमारी से बचना चाहते है—बीमारी की चिकित्सा तो बहुत कम लोग करना चाहते है, पहली तो कोशिश यही होती है कि कोई समझा दे कि बीमारी है ही नही—वहा ऐसे लोग भी जरूर पैदा हो जायेगे जो समझा देगे कि बीमारी है ही नहीं, यह ताबीज बाध लेना, सब ठीक हो जायेगा, यह राम-राम जप लेना, सब ठीक हो जायेगा, यह मत्र की माला फेर लेना रोज, सब ठीक हो जायेगा। काश, इतना आसान होता।

थोडा सोचो भी, कैसी बचकानी आकाक्षाए है। क्या तुम सोचते हो जीवन इतना आसान है कि राम-राम जपने से ठीक हो जायेगा? जरा जीवन की जटिलता तो देखो, उलझन तो देखो। इतना आसान है कि एक माला के गुरिए सरका देने से ठीक हो जायेगा? तुम किन मदिरो के सामने हाथ जोड़े खड़े हो? प्रतिमाए परमात्मा की तो नहीं हैं—तुम्हारी ही आकाक्षाओ की है, तुमने ही बनायी है, तुमने ही प्रतिष्ठा दी है, तुमने ही पूजा दी है। पहले तुम भगवान बनाते हो, फिर अपने ही बनाये भगवान के सामने हाथ जोड़कर खडे हो जाते हो। थोडा जाल तो देखो। थोड़ी अपनी चालाकी तो देखो। पहले तुम्ही भगवान बनाते हो। तुम्हारी मान्यता से ही कोई मूर्ति भगवान हो जाती है। कल तक बाजार मे खड़ी थी, बिकती थी, तब भगवान न थी—फिर तुम ले आते हो, मत्रोच्चार करते हो, पूजा-प्रार्थना करते हो, पडित-पुरोहित इकट्ठे होते हैं, क्रियाकाड होता है। फिर पत्थर जो बाजार मे बिकता था, तुम्ही खरीद लाये, तुम्हारे ही जैसे लोगो ने बनाया, उसी मूर्ति के सामने तुम हाथ जोड़कर खडे हो जाते हो। तुम प्रार्थना करने लगते हो। तुम भी जानते हो गहरे मे, प्रार्थना काम न आयेगी। क्योकि परमात्मा ही तुम्हारा बनाया हुआ है। परमात्मा बनाने के हमने ग्रामोद्योग खोले हुए है। बिना परमात्मा के रहना मुश्किल है, क्योकि भय है, और जीवन है, और कष्ट है और काटे ही काटे है। तो पृथ्वी से आख चुराते है। आकाश की तरफ देखते है। इसलिए सभी का परमात्मा आकाश मे है।

बुद्ध ने ठीक किया कि पृथ्वी की तरफ हाथ लगाकर कहा कि यह मेरी गवाह है। किसी और से पूछा होता तो वह आकाश की तरफ इशारा करता कि वहा मेरा परमात्मा है, वह मेरा गवाह है। आकाश की तरफ तुम आख उठाते हो क्योकि पृथ्वी से आख चुराना चाहते हो। लेकिन तुम जानते हो कितना ही झुठलाओ क्या फर्क पड़ेगा?

मैने सुना है·

एक ऐसे गाव मे जहा बारिश नहीं हो रही थी, एक पुजारी ने घोषणा की कि वह सब गाववालो के सामने भगवान से प्रार्थना करेगा कि वर्षा हो। ठीक समय पर सब गाववाले उपस्थित हो

गये, तो पुजारी ने कहा, 'भाइयो और बहनो। इससे पूर्व कि मै भगवान से प्रार्थना करू, आपसे एक प्रश्न पूछता हू कि आप लोगो के छाते कहा है?' भगवान से प्रार्थना करने इकट्ठे हुए है कि वर्षा हो—होगी वर्षा—छाते कहा है? लेकिन जो लोग चले आये हैं प्रार्थना करने, वे भी जानते है कि कहीं ऐसे वर्षा होती है। फिर भी चले आये है। छाते नहीं लाये है। छाता लाये होते तो पता चलता कि श्रद्धा है।

तुम मंदिर तो चले जाते हो—छाता ले जाते हो? मस्जिद तो हो आते हो—छाता ले जाते हो?

तुम्हे पहले से पता है कि कही कुछ होना है। लेकिन कर लो, हर्ज भी क्या है, शायद हो ही जाये।

मुल्ला नसरुद्दीन के साथ मै एक मकान मे ठहरा हुआ था। किसी ने बता दिया उसको कि इस मकान मे भूत-प्रेत का वास है। तो वह आया भागा हुआ, उसने जल्दी से सामान बाधा। उसने कहा, 'आप रुकना हो रुको, मै चला। मै होटल ठहर जाऊगा, धर्मशाला, कहीं भी, स्टेशन पर सो जाऊगा।'

मैने कहा, 'मामला क्या है?'

उसने कहा, 'किसी ने कहा है कि इस मकान मे भूत-प्रेत का वास है।' लेकिन मैने कहा, 'नसरुद्दीन। तुम तो सदा से कहते रहे कि तुम भूत-प्रेत मे भरोसा नही करते।' उसने कहा कि निश्चित, 'मैं भूत-प्रेत मे कभी भरोसा नहीं करता।' तो फिर मैने कहा, 'फिर क्यो डरे जा रहे हो?' उसने कहा, 'पर क्या पता, मेरा भरोसा गलत हो। मै गलत भी तो हो सकता हू। झझट कौन ले। रात हम स्टेशन पर सो लेगे।'

एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक जर्मनी मे—अभी-अभी उसकी मृत्यु हुई—वह अपनी टेबल के पीछे घोडे के पैर मे लगाए जानेवाला नाल लटकाये हुए था। जर्मनी मे ऐसा खयाल है कि अगर घोड़े के पैर का नाल लटका दो तो परमात्मा से जो भी आशीर्वाद बरसते है, वे नाल मे अटक जाते है, तुम उनके मालिक हो जाते हो। कोई चीज रोकने को चाहिए न। तो नाल जो है, प्याली का काम करता है। एक अमरीकन उस वैज्ञानिक को मिलने गया था। वह बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि तुम जैसा महावैज्ञानिक, नोबेल प्राइज, पुरस्कार-विजेता और तुम यह घोड़े का नाल लगाये हुए हो। तुम्हे शर्म नही आती? यह तो मै भरोसा ही नही कर सकता कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी और ऐसे अध-विश्वास मे भरोसा करता होगा।

उसने कहा, यह तो साफ ही है कि मै और अध-विश्वास मे भरोसा। कभी नही। मेरा कोई भरोसा नही है। मै यह नही मानता कि इस नाल से कुछ होनेवाला है।

फिर क्यो लटकाये हो?

उसने कहा कि लेकिन जिसने मुझे यह दिया है, उसने कहा कि चाहे तुम भरोसा करो या न करो, फायदा तो होता ही है। उसने कहा कि भरोसे न भरोसे का सवाल ही नहीं है।

आदमी बड़ा बेईमान है। प्रार्थना भी कर लेता है, भीतर-भीतर जानता भी रहता है कि कही कुछ होना है। यह स्वाभाविक है, क्योकि जिसकी तुम प्रार्थना कर रहे हो, उससे परिचय ही नहीं है, प्रेम की बाते कर रहे हो, मुलाकात हुई ही नही। किसी अजानी स्त्री से कैसे प्रेम करोगे? अपरिचित पुरुष को कैसे प्रेम करोगे? जिसका नाम नही सुना, गाव का पता नही, जिसकी कभी छवि नहीं देखी, जिसका कभी कोई पत्र भी नही मिला, जिसका तुम्हे पता ही नही है कि जो है भी या नही—उसे तुम प्रेम कैसे करोगे?

तो महावीर प्रार्थना की बात नहीं करते। वे कहते है, कोई ऐसे रास्ते मत खोजो। जीवन सीधा-साफ है। और सचाई यह है कि जिंदगी मे दुख है। इस दुख से ही जूझना है, भागना नहीं, पलायन नहीं। इस दुख की चुनौती स्वीकार करनी है।

'राग और द्वेष के बीज मूल कारण है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। यह जन्म-मरण का मूल है। और जन्म-मरण को दुख का मूल कहा गया है।'

एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करे। यह पहला सूत्र 'राग और द्वेष कर्म के बीज है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। और मोह जन्म-मरण का मूल है। और जन्म-मरण को दुख का मूल कहा गया है।'

यह निदान है। यह चिकित्सक की भाषा है। यहा कोशिश चल रही है कि मूल कारण को पकड़ ले। राग और द्वेष कोई मेरा है, कोई मेरा नहीं है। राग और द्वेष चाहता हू कोई बचे, और चाहता हू कोई नष्ट हो जाये, कहता हू यह अच्छा है, और कहता हू यह बुरा है, चुनाव—जो अच्छा है वह हो, जो बुरा है वह न हो।

महावीर कहते है, जब तक चुनाव है, जब तक तुम कहते हो,

यह होना चाहिए और वह नहीं होना चाहिए, स्वास्थ्य होना चाहिए, बीमारी नहीं होनी चाहिए, जवानी मिलनी चाहिए, बुढ़ापा नहीं मिलना चाहिए, मित्र घर आये, शत्रु नष्ट हो जाये । इसलिए तो महावीर वेदो को धर्म न कह सके, क्योंकि वेद की प्रार्थनाओ मे भी राग-द्वेष भरा हुआ मालूम पड़ता है। ऐसी प्रार्थनाएं है वेद में कि कोई प्रार्थना करता है इद्र से कि हे इद्र। मेरे दुश्मनो को नष्ट कर दे। कोई प्रार्थना करता है वेद मे कि हे भगवान। मेरी गउओ के थनो मे दूध बढ़ जाये और दुश्मनो की गउओ के थनो से दूध सूख जाये। भोले-भाले किसानो की प्रार्थनाये मालूम पड़ती है, धर्म कुछ नही मालूम पड़ता। यही तो हमारी आकाक्षाये है कि मुझे मिल जाये, दूसरे को न मिले, मेरा सुख—दूसरे का दुख भी हो तो उस कीमत पर भी।

महावीर कहते है, राग और द्वेष कर्म के बीज है। और जहा तुमने चुना, कर्म शुरू हुआ। तुमने कहा, यह मिलना चाहिए, कि तुम उसे पाने की यात्रा पर निकले। तुमने कहा, कि यह नहीं होना चाहिए, कि तुम उसे मिटाने के लिए चले। तुम्हारे मन मे यह विचार भी उठा कि दुश्मन मर जाये तो, महावीर कहते है, हिसा हो गयी, कर्म शुरू हो गया।

विचार कर्म का पहला चरण है।

फिर धीरे-धीरे विचार घना होगा, सघन होगा, कृत्य बनेगा, और आज जो तुम्हारे मन मे सिर्फ एक भाव की तरह आया था, वह कल-परसो घटना बन जाएगा।

दोस्तोवस्की का बड़ा प्रसिद्ध उपन्यास है 'क्राइम एड पनिशमेट', अपराध और दड। उसमे रासकलोनिकोव नाम का एक पात्र है। वह एक युवक है विश्वविद्यालय का। और उसके सामने ही एक बूढ़ी महिला रहती है—बड़ी धनपति और महाकजूस। और उसका कुल धधा गरीबो को चूसना है। ब्याज का काम करती है, और जितना ब्याज ले सकती है उतना लेती है। जो एक बार उसके जाल मे फस जाता है, वह फिर कभी निकल नहीं पाता। ब्याज ही नहीं चुका पाता, मूल के वापिस का तो सवाल ही नहीं है। ब्याज ही बढ़ता चला जाता है। इतनी ज्यादा मात्रा मे ब्याज लेती है कि यह जो रासकलोनिकोव है, यह बैठा-बैठा अपनी किताब पढ़ता रहता है, खिड़की से देखता रहता है उस बुढ़िया को। बुढ़िया अस्सी साल की हो गयी। मरने के करीब है। कोई उसके आगे-पीछे नहीं है। लेकिन उसका शोषण जारी है।

इसके मन मे ऐसे ही विचार उठता है कि यह बुढ़िया मर ही जाये तो क्या हर्ज होनेवाला है। इसका न तो कोई आगा, न कोई पीछा, न इसके मरने से कोई रोनेवाला है, सारा गांव खुश होगा उलटे, प्रसन्न होगे लोग, उत्सव मनाया जायेगा। इसको भगवान उठा क्यो नहीं लेता। और यह किसलिए जी रही है? न इसके जीवन मे कोई सुख है, कमर झुक गयी है, आखो से दिखाई नहीं पड़ता, लकड़ी टेककर चलती है। इसे उठा ही ले भगवान।

अब इसमे कुछ बुरा नहीं हुआ है, लेकिन यह विचार का बीज उसके मन मे पड़ गया, पड़ गया, पड़ गया, यह बार-बार दोहरने लगा। जब भी बुढ़िया को देखे, उसे यह भाव कि यह उठ ही जाये । धीरे-धीरे पहले तो सोचता था, परमात्मा उठा ले, फिर सोचने लगा कि यह गाव भी कैसा है, कोई इसको मार ही क्यो नहीं डालता? सारा गाव चूसे जा रही है। फिर धीरे-धीरे उसे यह भी खयाल उठने लगा कि मै यहा बैठा-बैठा क्या कर रहा हू। एक झटके मे यह खतम हो जायेगी। तब वह बड़ा चौका भी, कि यह कैसा मेरा विचार उठता है। लेकिन ये विचार डोलते रहे, ये तरगे घूमती रहीं, ये भाव उसके मन मे सरकते रहे, सरकते रहे, सघनीभूत होते गये। परीक्षा उसकी करीब आती है और उसे फीस जमा करनी है और पैसे नहीं है, तो वह अपनी घड़ी बुढ़िया के पास रेहन रखने जाता है। सोचा भी नहीं है कुछ उसने, कोई हत्या का आयोजन भी नहीं किया है—बस वह घडी रेहन रखने गया है। साझ का वक्त है, धुधला होता जा रहा है, धुधलका उतर रहा है, अभी लोगो के दीये भी नहीं जले। वह बुढ़िया के हाथ मे घड़ी देता है, बुढ़िया उसे खिडकी के पास ले जाकर रोशनी मे देखने की कोशिश करती है, कितने दाम की होगी। वह पीछे खड़ा है। अचानक वह पाता है कि जैसे आविष्ट हो गया। एक झटके मे वह कूदा और उसने बुढ़िया की गर्दन पकड़कर दबा दी। वह तो मरने के करीब थी ही। उसने चीख-पुकार भी न की और मर गई। वह धडाम से नीचे गिर पड़ी। तब इसे होश आया कि यह मैने क्या कर दिया। तब यह घबड़ाया। तब यह भागा। लेकिन किसी को पता भी नहीं चला है। और कोई यह सोच भी नहीं सकता कि यह युवक जो चुपचाप अपनी किताबो मे उलझा रहता है, इसकी हत्या करेगा।

पुलिस खोजबीन करती है, मगर कोई पता नही चलता। किसी

ने देखा नहीं, कोई गवाह नहीं। लेकिन अब इसके मन के भीतर एक भय समा गया है कि यह मैंने क्या किया, यह मैंने क्या किया। अब वह दिन-रात न सो सकता है, न कुछ और कर सकता है। वह खिड़किया बद किये बैठा रहता है। वह सोचता है अब पुलिस आई, अब यह जूते की आवाज आने लगी, अब यह गाड़ी आ रही है, पुलिस की ही होगी। कोई दरवाजे पर दस्तक देता है, वह घबड़ा जाता है, पसीने-पसीने हो जाता है। अब एक दूसरा विचार उसको पकड़ रहा है कि मै पकडा जाऊगा। जैसे पहला विचार एक दिन सघनीभूत होकर कृत्य बन गया, बिना सोचे हत्या हो गई, ऐसा ही अब दूसरा विचार घनीभूत होता चला जाता है। अब वह पत्तो से भी चौकने लगता है, कोई पत्ता खड़कता है और वह घबड़ा जाता है। आसपास के लोग भी चितित हो गये है कि यह इतना घबडाया-घबड़ाया क्यो है, रास्ते पर चलता है तो बच-बचकर चलता है, देखकर चलता है कौन आ रहा है, कौन जा रहा है। पुलिस दिखाई पड़ती है, गली मे निकल जाता है, भाग खड़ा होता है। आखिर सारे गाव मे खबर हो जाती है कि मामला क्या है। लोग उससे पूछने लगते है कि मामला क्या है। वह इनकार करता है कि 'मामला क्या है, कोई मामला नही है। तुमने पूछा क्यो? तुम हो कौन पूछनेवाले? तुमने सदेह कैसे किया?'

लोग बडे हैरान होते है कि जरूर कोई बात है। अब घनी होने लगती है बात। आखिर वह इतनी पीड़ा मे पड जाता है कि सो भी नहीं सकता, रात-दिन एक ही सपना कि पुलिस पकड़ती है। एक दिन वह पुलिस थाने पहुच जाता है। वह जाकर वहा कहता है· पकड़ ही लो, यह बकवास बद करो। रात-दिन, सुबह शाम न मै सो सकता, न मै भोजन कर सकता। हा, मैंने ही हत्या की है। पुलिस इसपेक्टर भला आदमी है। वह कहता है, 'तू पागल हो गया है? तू और हत्या क्यो करेगा? तुझ से बुढ़िया का लेना-देना क्या है?'

पुलिस उसे समझाती है कि तेरा दिमाग तो खराब नही हो गया है। वह कहता है, 'नहीं, दिमाग खराब नहीं हो गया है, मैंने हत्या की है।' अदालत मे वह यही बयान देता है कि मैंने हत्या की है, लेकिन पुलिस कोई गवाह नहीं जुटा पाती।

एक छोटे-से विचार की तरग आज नही कल घटना मे रूपातरित हो जाती है। तुम जो सोचते हो, वही हो जाते हो। तुम जो सोचते हो, वही तुम्हारा कृत्य बन जायेगा।

इसलिए महावीर कहते है, कृत्य को बदलने के पहले विचार पर जागना होगा। अगर विचार चल पड़ा तो ज्यादा देर नहीं है कृत्य के पूरे हो जाने मे।

महावीर कहते थे सोचा, कि आधा हो गया। महावीर के बड़े प्रख्यात सिद्धातों मे, बड़े उलझन-भरे सिद्धातो मे एक यह है कि सोचा कि आधा हो गया। इसको तर्क-रूप से सिद्ध करना बड़ा मुश्किल है। महावीर के दामाद ने इसी बात को लेकर महावीर के खिलाफ बगावत खड़ी कर दी थी और पाच सौ महावीर के मुनियो को लेकर अलग भी हो गया था। क्योकि उसने कहा, यह बात तो गलत है, महावीर कहते है, सोचा और आधा हो गया, यह तो बात गलत है। क्योकि मै सोचता हू कि यह मकान गिर जाये, आधा तो नही गिरता। सोचना सोचना है, होना होना है। सोचने से कैसे आधा हो जायेगा? हर आदमी सोचता है, मै धनी हो जाऊ, हो तो नही पाता। आधा भी नही हो पाता।

एक मालिक ने अपने नौकर को समझाया देखो, यदि किसी काम की योजना ठीक तरह से बन जाये तो समझना चाहिए कि आधा काम हो गया। तत्पश्चात नौकर को कमरो की सफाई का आदेश देकर वे कही चले गये। दो घटे बाद जब वापिस आये तो उन्होने पूछा, 'कहो, काम हो गया?'

'जी, आधा हो गया,' नौकर ने तपाक से कहा।

'अच्छा, कौन-कौन से कमरे साफ कर दिये?' मालिक ने पूछा। 'जी, सफाई तो अभी शुरू नहीं की परतु योजना बना ली है कि किस कमरे की किस क्रम से सफाई करनी है,' नौकर ने उत्तर दिया।

महावीर के विरोध मे जो लोग खड़े हो गये थे, उनकी बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है, क्योकि सोच लेने से तो नहीं हो जायेगा कुछ। लेकिन महावीर बड़ी गहरी बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, जब पहली तरग उठ गई, जब बीज भूमि मे पड़ गया तो अब यह किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता कि वृक्ष हो गया। लेकिन बीज भूमि में पड़ गया—आधी बात हो गई, असली बात हो गई। अब तो समय की ही बात है। अब तो थोड़े समय की ही बात है और थोड़े ऋतु की बात है, वर्षा के बादल आयेगे, वर्षा होगी, बीज फूटेगा, अकुर बनेगा। अब यह सब समय की बात है, लेकिन बीज जमीन मे पड़ गया—आधी बात

हो गई। असली बात तो हो गई। क्योकि बिना बीज के पड़े वृक्ष कभी पैदा नहीं हो सकता। और बीज पड़ गया है, तो वृक्ष भी पैदा हो जायेगा।

महावीर कहते है, अगर वृक्ष को पैदा होने से रोकना हो तो बीज को ही भूमि मे पड़ने से रोक लेना। इसलिए वे कहते है, राग और द्वेष कर्म के बीज, मूल कारण है।

लोग कर्म से बचना चाहते है। लोग कहते है, कर्मों से कैसे छुटकारा होगा? लोग कहते है, कर्मजाल से कैसे मुक्त हो? महावीर कहते है, कर्मजाल से मुक्त होना है तो बीज को पकडो, शुरू से ही शुरू करो, प्रारभ से ही प्रारभ करो। मध्य से कुछ भी नहीं हो सकता।

राग का अर्थ है किसी चीज से लगाव। द्वेष का अर्थ है किसी चीज से विरोध। राग का अर्थ है मैत्री बनाना। द्वेष का अर्थ है शत्रुता बनानी। तो न तुम्हारा कोई मित्र हो न कोई शत्रु। न तुम कुछ चाहो और न तुम किसी चीज से विकर्षित होओ। जो हो रहा है, तुम उसे चुपचाप बिना किसी चुनाव के स्वीकार करते चले जाओ। यह महावीर के ध्यान का सूत्र है। जो हो रहा है—सुबह आये सुबह, साझ आये साझ, सुख आये सुख, दुख आये दुख, न तो तुम सुख को कहो कि और-और आना, न तुम दुख को कहो कि अब दुबारा मत आना, न तो तुम सुख के गले मे फूल मालाये पहनाओ और न तुम दुख का अपमान करो—जो आ जाये द्वार पर, द्वार खुला हो। दुख आये दुख को बसा लेना, सुख आये सुख को बसा लेना, जाता हो जाने देना, क्षणभर को भी रोकना मत। न तो किसी को धकाना, न किसी को बुलाना। जिसको कृष्णमूर्ति 'च्वायसलेस अवेयरनेस' कहते है। महावीर उसी को 'निर्विकल्प ध्यान' कहते है।

तुम चुनाव मत करना, क्योकि चुनाव से ही जकड़ शुरू होती है। चुनाव से ही तुम बध जाते हो। और एक दफा चुनाव की तरग उठ गई कि जल्दी ही समय पाकर कृत्य भी हो जायेगा।

तो कहा जागना है? जागना है जहा से बीज शुरू होता है।

'कर्म मोह से उत्पन्न होता है।' मोह का अर्थ होता है तद्रा। मोह का अर्थ होता है मूर्च्छा, प्रमाद। हम सोए-सोए लोग है जैसे हमने नशा किया हुआ है। नशे हमारे अलग-अलग है, शराबे हमारी अलग-अलग है, लेकिन हम सबने नशा किया हुआ है। कोई आदमी धन के नशे मे है, सबको दिखाई पड़ता है कि यह आदमी पागल है, किसलिए धन इकट्ठा कर रहा है। लेकिन जो नशे मे है, उसे भर दिखाई नही पड़ता। कोई आदमी पद के नशे मे है, सबको दिखाई पडता है कि क्यो पागल हुए जा रहे हो। बड़ी से बड़ी कुर्सी पर बैठकर भी क्या हो जायेगा? जो बैठे गये हैं, जरा उनको तो देखो कि क्या हुआ। बहुत धन के जिन्होने अबार लगा लिये है, उन्होने क्या पाया?

एडरू कारनेगी, अमेरीका का करोड़पति, मर रहा था, तो उसने अपने सेक्रेटरी से पूछा कि एक बात पूछनी है। कई बार सोची, फिर मै सकोच कर कर रह गया, अब तो मरने का दिन भी आ गया, अब पूछ ही लू तुझसे। तू मेरे पास कोई तीस साल से काम करता है। करीब-करीब जिदगीभर का साथ है। एक बात ईमान से बता दे, अगर परमात्मा ने तुझ से पूछा होता पैदा होने के पहले कि तू एडरू कारनेगी बनना चाहता है या एडरू कारनेगी का सेक्रेटरी बनना चाहता है, तो तूने क्या मागा होता?

उसने कहा, 'मै सेक्रेटरी ही बनना मागता।' एडरू कारनेगी उठकर बैठ गया। उसने कहा, 'तेरा मतलब?' उसने कहा कि मै आपको तीस साल से देख रहा हू, आपने कुछ भी नही पाया। दौडे बहुत, पहुचे कही भी नही। इकट्ठा बहुत कर लिया, लेकिन जितनी चिता और सताप आपको है, उसे देख-देखकर मै रोज भगवान को जब रात प्रार्थना करता हू तो मै कहता हू, हे भगवान। तेरी बडी कृपा। एडरू कारनेगी तूने मुझे न बनाया। अच्छा किया। फसा देता तो मुश्किल हो जाती।

एडरू कारनेगी ने अपने सेक्रेटरी को कहा कि मै तो मर रहा हू, लेकिन इस बात को तू सारी दुनिया मे प्रचारित कर देना। मै तुझ से राजी हू। मै व्यर्थ ही दौडा-धूपा।

इतना धन। दस अरब नगद रुपये एडरू कारनेगी छोड़कर मरा और अरबो का और फैलाव। कहते है, उससे बड़ा धनी आदमी सिवाय निजाम हैदराबाद को छोड़कर और कोई न था। पर पाया क्या? न तो सो सकता था ठीक से। अपने बच्चो को भी ठीक से मिल नही सकता था। पत्नी भी अपनी अपरिचित जैसी हो गई थी, क्योकि काम से फुर्सत कहा थी। कहते है कि चपरासी भी दफ्तर मे नौ बजे पहुचता, एडरू कारनेगी आठ बजे पहुच जाता। चपरासी नौ बजे आता, क्लर्क दस बजे आते, मैनेजर ग्यारह बजे आते, डायरेक्टरर्स एक बजे आते, डायरेक्टर तीन बजे गये, मैनेजर चार बजे गया, क्लर्क भी पाच बजे गये,

चपरासी भी साढ़े पाच बजे चला गया—एडरू कारनेगी सुबह आठ से लेकर रात नौ और दस और ग्यारह बजे रात तक दफ्तर मे बैठा है। यह तो चपरासी से भी गई-बीती हालत हो गई। फिर रात सो न सके क्योकि चिंताओ का भार, सारी दुनिया मे फैला हुआ धन का साम्राज्य। और मरते वक्त भी जब किसी ने उससे पूछा कि 'तुम तृप्त मर रहे हो?' उसने कहा, 'तृप्ति कैसी। केवल दस अरब रुपये छोड़कर मर रहा हू, सौ अरब की आकाक्षा थी। पूरा न हो पाया, यात्रा अधूरी रह गई।'

पर जो धन की दौड़ मे है उसे नहीं दिखाई पड़ता; उसे एक नशा है। अगर तुम इतना ही करो कि तुम अपने चारो तरफ दौडते हुए लोगो को गौर से देख लो, तो तुम्हारी दौड़ धीमी हो जाये। जो पहुच गये है, जरा उनको तुम देख लो। जिन्होंने पा लिया है, जरा उनको तुम देख लो, तो तुम्हारे सब सपने गिर जाये।

उनकी ऊपरी और झूठी शक्लो को मत देखना, उनकी भीतरी, उनकी आतरिक दशा को देखना। राष्ट्रपति है कोई, कोई प्रधानमत्री है—उनकी भीतरी दशा को देखना, अखबारो मे छपती तस्वीर को मत देखना। वे तस्वीरे सब झूठी है। वे तस्वीरे आयोजित है।

स्टेलिन और हिटलर कोई भी तस्वीर को ऐसे ही न छपने देते थे। स्टेलिन और हिटलर की तस्वीरे पहले एक खुफिया विभाग से गुजरती थी, जहा उनकी जाच की जाती। वही तस्वीर छप पाती थी अखबार मे, जो प्रसन्नता प्रगट करती हो, आनद प्रगट करती हो, खुशी प्रगट करती हो। स्टेलिन के चेहरे पर चेचक के दाग थे, किसी फोटो मे कभी नहीं छपे। वे चेचक के दाग कभी स्वीकार नहीं किये गये कि छपे।

राजनेता बीमार पड़ जाते है, महीनो तक खबर नही दी जाती। राजनेता और बीमार कहीं पडता है? उससे प्रतिमा खडित होती है। हाथ-पैर डगमगाने लगते है, तो भी इसकी खबर नहीं दी जाती।

तस्वीर बनाई हुई है। भीतर से देखो उन्हे, तो बडे चकित हो जाओगे। उनसे ज्यादा नर्क मे कोई भी जीता नहीं। लेकिन कठिनाई उनकी तुम समझ सकते हो। इतनी मुश्किल से नर्क पाया है, अब यह स्वीकार भी कैसे करे कि यह नर्क है। इतनी जद्दोजहद से पाया है, इतने सघर्ष से पाया है, अब यह कैसे स्वीकार करे कि यह नर्क है।

एक गाव मे एक लफगे आदमी की लोगो ने नाक काट दी। उससे बहुत परेशान थे। हर किसी से छेड़-खान । गाव की बहू-बेटियो का जीना दूभर हो गया था। नाक कट गई तो वह बड़ा परेशान हुआ, अब क्या करना। वह साधु हो गया और दूसरे गाव चला गया। दूसरे गाव मे एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, धूनी रमा कर। गाव के लोग कुतूहल जगा, कौन है भाई। कुछ विचित्र भी है, नाक भी नहीं है, और बड़ी आखे बद किये हुए, और ध्यानमग्न बैठा है। लोग आये। गाव के लोग इकट्ठे हो गये। किसी ने पूछा, 'महाराज। आप यहा क्या कर रहे है?' उसने कहा कि परमात्मा का स्वाद ले रहे है, भोग कर रहे है प्रभु का। अहा। कैसा आनद बरस रहा है।

लोगो ने भी आकाश की तरफ देखा। कहा कि हमे दिखाई नही पड़ता। उसने कहा, 'तुम्हे कैसे दिखाई पड़ेगा । उसके लिए नाक कटवानी जरूरी है। और यह तो हिम्मतवरो का काम है। यह तो कभी कोई । तो धर्म तो खड्ग की धार है। खानानिधार।'

एकाध हिम्मतवर खड़ा हो गया, क्योकि यह तो चुनौती हो गई। उसने कहा, 'क्या समझा है तुमने? कोई नामर्दो का गाव है। मै तैयार हू।' उसने कहा, 'तैयार हो तो बस ठीक।' वह उसे पास दूसरे खेत मे ले गया, झाड़ की छाया के किनारे जाकर उसने उसकी नाक काट दी। चीख पड़ा वह आदमी। उसने कहा कि दिखाई तो कुछ पड़ता नही। उसने कहा, 'पागल। किसी से कहना मत। क्या हमको दिखाई पडता है। मगर जब कट गई तो अपनी इज्जत तो बचानी है, अब तुम्हारी भी कट गई। अब अगर तुमने लोगों से जाकर कहा कि कुछ दिखाई नही पड़ता तो वह लोग हसेगे, तुम बुद्धू समझे जाओगे। तुम्हारी मर्जी। अब तो तुम हमारे साथ ही हो जाओ। अब तो तुम जाकर, नाचते हुए जाओ और कहना, अहा। जैसे हजारो सूरज एक साथ निकले हो, करोड़ो कमल खिले हो। हे प्रभु। कैसा आनद दिखला रहा है, कभी भी दिखाई न पड़ा था। अब तो तुम यही कहो।'

'वैसे तुम्हारी मर्जी', उसने कहा, 'तुमको मैं कहता नहीं कि यही कहो। तुम्हे सचाई कहनी हो सचाई कह दो।'

उसने कहा, 'अब क्या खाक सचाई कहेगे। अब नाक तो कट ही गई है, अब और कटवानी है क्या, सचाई कहकर?'

उसने जाकर गाव मे शोरगुल मचा दिया। वह नाचता हुआ

गया। गाव मे कई लोग तैयार हो गये नाक कटवाने को। कहते है, धीरे-धीरे उस पूरे गाव की नाक कट गई। खबर राजा तक पहुची। राजा भी आया देखने, गाव मे लोग नाच रहे है, चीख रहे है, बड़े प्रसन्न है। राजा ने कहा, 'हद हो गई। ईश्वर को पाने की इतनी सरल तरकीब। न सुनी, न शास्त्रो मे पढ़ी।'

मगर जब इतने लोगो को हो गया है तो राजा तक तैयार हो गया। उसके वजीर ने कहा, 'ठहरो महाराज। इतनी जल्दी मत करो, क्योकि इस आदमी को मै इसकी शक्ल मुझे पहचानी मालूम पड़ती है। यह तो दूसरे गाव का आदमी है और वहा के लोगो ने इसकी नाक काटी थी। तुम जरा रुको। नाक मत कटवा लेना। तुम्हारे कटवाने पर तो बड़ा उपद्रव हो जायेगा। फिर तो यह पूरा राज्य कटवा लेगा।'

जिसकी कट जाती है, वह फिर उसकी बचाने की भी चेष्टा करता है। मैने अब तक कोई धनपति नही देखा जिसकी नाक कट न गई हो, न कोई राजनेता देखा जिसकी नाक कट न गई हो। लेकिन अब किससे कहे। अब यह दुख अपना किससे कहे, किससे रोये। अब जो हो गया, हो गया। और अपनी इज्जत यही है, इसी मे है कि कहे चले जाओ कि बडे आनदित है, बड़े प्रसन्न है।

तुम, जिन्होने पा लिया है, उनकी तरफ जरा गौर से देखना। जिन्होने बड़े महल बना लिये है, उनकी तरफ जरा गौर से देखना। जिनके पास तिजोड़िया भर गई है, उनको जरा गौर से देखना। कुछ मिला है?

उनको गौर से देखकर तुम्हारा राग-द्वेष क्षीण होगा। और तुमने भी राग-द्वेष करके बहुत देख लिया है—थोड़ा और ज्यादा, मात्रा मे भेद होगा—लेकिन तुमने पाया क्या?

राग से भी दुख मिलता है, द्वेष से भी दुख मिलता है। जो अपने है वे भी दुख ही दे जाते है, जो पराये है वे तो दे ही जाते है। दुश्मन तो दुख देता ही है, मित्रो से तुम्हे कुछ सुख मिला?

'राग और द्वेष कर्म के बीज है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। वह जन्म-मरण का मूल है।'

और फिर जब इस जीवन मे तुम अधूरे मरते हो, अतृप्त, तो आकाक्षा रहती है मरते वक्त और नया जीवन पाने की। क्योकि कुछ पूरा न हुआ, खाली के खाली, रिक्त के रिक्त आ गये, हाथ भिक्षा के पात्र ही बने रहे, कभी कुछ भरा नहीं। तो वह जो याचना है, वह जो अधूरी वासना है, वह जो मागने की और होने की अतृप्त कामना है, वह फिर नया जन्म देगी। तुम जन्मते हो, क्योकि तुम्हारा जीवन अतृप्त है। और तुमने यह नहीं देखा कि जीवन का अतृप्त होना स्वभाव है। बहुत बार हम जन्मते है—कोई हमे जन्माता नहीं।

महावीर परम वैज्ञानिक है। वे यह नही कहते कि परमात्मा जन्माता है, कि वह लीला कर रहा है। क्योकि यह 'लीला' जरा बेहूदी मालूम पडती है। यह लीला तो बताती है कि परमात्मा कोई मेसोचिस्ट होगा, कोई पर-पीडनकारी। और पाप की परिभाषा यही है 'पाप पर-पीडनम्।'

पाप की परिभाषा यही है कि दूसरे को सताना पाप है। तो परमात्मा से बड़ा तो पापी कोई नही हो सकता, क्योकि इतने लोगो को पैदा कर रहा है, और सता रहा है। तो महावीर कहते हैं, ऐसे परमात्मा की बात ही मत उठाओ, ऐसा कोई परमात्मा नही है। परमात्मा हो तो यह पीडा हो नहीं सकती, क्योकि परमात्मा पर-पीडन मे थोड़े ही रस लेगा।

दूसरे को दुख देने मे क्या लीला हो सकती है? लोग सड रहे है, गल रहे है, रो रहे है, सताप से भरे है—और परमात्मा मजा ले रहा है। नहीं, यह बात सच नही हो सकती। यह मजा जरा रुग्ण है, परवर्टिड। यह मजा विक्षिप्त का है। पागल होगा परमात्मा, अगर यह उसकी लीला है। बच्चा पैदा नही हुआ और मर जाता है, मा रो रही है, चीख रही है, बेटे रो रहे है, बेटिया रो रही है, पति रो रहा है, पत्नी रो रही है, सब तरफ रोना मचा है, हाहाकार है, युद्ध है, लाखो लोग मर रहे है, गल रहे है, सड़ रहे है, सब तरफ सघर्ष है, सब तरफ खून-पात है, सब तरफ छीना-झपटी है—और फिर भी पाता कोई कुछ नही, हाथ खाली के खाली। यह लीला कैसी है? यह तो दुख-स्वप्न है।

महावीर कहते है, नही, परमात्मा को बीच मे मत लाओ। चीजे सीधी देखो। परमात्मा को बीच मे लाने से अड़चन हो जाती है। परमात्मा को बीच मे लाने से ऐसा ही हो जाता है जैसे प्रिज्म मे से सूरज की किरण निकले, सात टुकड़ो मे टूट जाती है, खड-खड हो जाती है। हटाओ प्रिज्म को बीच से, सूरज की किरण को सीधा ही देखे, उसके स्वभाव को सीधा ही पहचाने।

महावीर कहते है, तुम ही अपने जीवन के कारण हो। महावीर तुम्हारा उत्तरदायित्व तुम्हे परिपूर्णता से देते है। महावीर कहते है,

कोई और नहीं है तुम्हारे ऊपर जो तुम्हे भटका रहा है, तुमने भटकना चाहा है, इसलिए भटक रहे हो।

उत्तरदायित्व गहन है, गभीर है, लेकिन साथ ही इसी उत्तरदायित्व मे छिपी हुई सूरज की किरण भी है, सुबह भी है। इसी उत्तरदायित्व मे स्वतत्रता का बीज भी है। क्योकि अगर मै ही अपने दुखो का कारण हू तो बात खतम हो गई। तो जिस दिन मै निर्णय करूगा, उसी दिन दुख समाप्त हो जायेगे। जिस दिन मै पैदा न करूगा और, उसी दिन विलुप्त हो जायेगे। अगर मैने ही इस जीवन-जन्म के फैलाव को स्वीकार किया है, अपने ही हाथो से निर्मित किया है, तो जिस दिन मेरा सहारा छूट जायेगा उसी दिन यह धारा खडित हो जायेगी।

'मोह जन्म-मरण का मूल है, और जन्म-मरण को दुख का मूल कहा है।'

सब कुछ अदीब। इश्क ने जी से भुला दिया
जाना कहा है और आये थे कहा से हम।

मोह की तद्रा मे सब भूल जाता है कहा से आये, कहा जा रहे है, कौन है।

है कुछ खराबिया मेरी तामीर मे जरूर
सौ मर्तबा बनाकर मिटाया गया हू मै।

भक्ति-मार्ग के लोग कहेगे, परमात्मा तुम्हे बनाता है, मिटाता है, क्योकि कुछ खराबिया है तुम्हारी तामीर मे। जैसे कोई चित्रकार चित्र को बनाता है, फिर-फिर बनाता है, कोई मूर्तिकार मूर्ति बनाता है, फिर-फिर बनाता है, क्योकि मूर्ति बन नहीं पाती, पूरी नही बन पाती।

है कुछ खराबिया मेरी तामीर मे जरूर।
—मेरे होने मे ही कुछ खराबी है।
सौ मर्तबा बनाकर मिटाया गया हू मै।
—और इसीलिए तो इतने जन्म, इतनी मृत्युए, इतनी बार बनना, इतनी बार मिटना ।

लेकिन महावीर कहते है, कोई बना और मिटा नही रहा है। क्योकि अगर परमात्मा तुम्हे बना रहा है और फिर भी तुम मे खराबी रह जाती है, तो खराबी परमात्मा मे है, तुम मे नही। एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है और मूर्ति नहीं बन पाती, तो खराबी मूर्ति मे थोड़े ही है, मूर्तिकार मे है। फिर बनाता है, फिर भी कमी रह जाती है, तो फिर भी खराबी मूर्तिकार मे है। अगर परमात्मा है तो सारी जुम्मेवारी परमात्मा की है और फिर मनुष्य परतत्र है। मनुष्य की स्वतत्रता की परिपूर्ण घोषणा महावीर ने की है। इससे बड़ी घोषणा मनुष्य की स्वतत्रता की न पहले कभी हुई, न बाद मे कभी हुई। कहा कि मनुष्य सब के ऊपर है। कहा, मनुष्य से ऊपर कोई भी नही। बड़ी स्वतत्रता, बड़ा दायित्व। एक-एक कदम सम्हालकर रखने की बात है फिर। क्योकि अगर परमात्मा है तो हम चले जा सकते है, उसकी प्रार्थना करते हुए, वह हाथ पकड़े रहेगा, उसकी जुम्मेवारी है।

महावीर ने मनुष्य को एक अर्थ मे अनाथ कर दिया, क्योकि कोई नाथ न रहा ऊपर। जैसे किसी बच्चे के मा-बाप छीन लिए। लेकिन तुमने देखा। जैसे ही तुम्हारे ऊपर से कल्पना के जाल हट जाये, कोई नही ऊपर, तुम अकेले हो—वैसे ही तुम सम्हलकर चलने लगते हो। तुमने कभी बच्चे को मा के साथ चलते और अकेले चलते देखा ?

मै एक घर मे मेहमान था। एक छोटा बच्चा खेल रहा था, वह गिर पड़ा। उसने चारो तरफ उठकर देखा। मा उसकी पास न थी, वह बाजार गई थी। उसने मेरी तरफ भी देखा, फिर सोचा कि पता नहीं । मैने उसकी तरफ देखा ही नही, जैसे वह गिरा, फिर मैने कहा, अब देखना ठीक नहीं। मै दूसरी तरफ ही देखता रहा। वह उठ आया। वह अपने खेल मे फिर लग गया। आधा घटे बाद जब उसकी मा आई, दरवाजे पर देखकर एकदम चीखकर रोने लगा। मैने उससे पूछा कि देख, बेईमानी कर रहा है तू। आधा घटा पहले गिरा था। उसने कहा, उससे क्या होता है ? कोई यहा था ही नही, तो रोने से फायदा क्या। और आप दूसरी तरफ देख रहे थे, आप देख ही नही रहे थे इस तरफ। फायदा क्या।

पीड़ा के कारण नही रो रहा है, मा आ गई है इसलिए रो रहा है।

महावीर ने ऊपर से सारा छत्र हटा लिया। कहा, कोई परमात्मा नहीं है। आदमी को अकेला छोड दिया। अब तो तुम्हे अपने पैर अपने ही हाथ सम्हालने है। इससे बडे होश की सभावना पैदा हुई। इससे बड़ी जागरूकता की सभावना पैदा हुई। जैसे कि तुम कभी पहाड़ के कगार पर चलते हो, तो कितने सम्हलकर चलते हो। अधेरी रात मे चलते हो अकेले, कितने सम्हलकर चलते हो। कितने चौकन्ने। कितने सावधान। कितने सावचेत।

महावीर ने परमात्मा को हटा लिया ताकि तुम सावधान हो सको। कोई सहारा न होगा तो तुम सावधान होओगे ही, क्योंकि फिर सावधानी ही सहारा है। और कोई दूसरा तुम्हें जन्म नहीं दे रहा है, तुम ही अपने राग-द्वेष से ।

'इस ससार मे जन्म, जरा और मरण के दुख से ग्रस्त जीव को कोई सुख नहीं है। अत मोक्ष ही उपादेय है।'

रत्तीभर भी सुख नही है। इस सबध मे महावीर अत्यत अतिवादी है। वे कहते है, रत्तीभर भी सुख नही है। और तुम्हे अगर कभी-कभी सुख मालूम होता है तो तुम्हारी धारणा है, तुम्हारी मान्यता है। इसलिए जल्दी ही तुम्हारी मान्यता टूट जायेगी। तुम पाओगे सुख गया।

दुनिया मे कोई गम के अलावा खुशी नही
वो भी हमे नसीब कभी है, कभी नही।

दुख इतना गहन है कि दुख भी सदा नसीब नही होता। कभी-कभी तुम ऐसी हालत मे होते हो कि दुख भी नही होता—इतने खाली, इतने रिक्त। इसलिए तो लोग दुख को पकडे रखते है सुख न सही, दुख तो है, कुछ तो है। कभी-कभी ऐसी घड़िया भी आती है सुख तो है ही नही, दुख भी नही है। तब महादुख की घडी आती है। तब तुम एकदम राख हो जाते हो। जीने मे कुछ भी सार नही रह जाता—इतना भी सार नही रह जाता कि दुख है, कम से कम इससे लड़ना है, इसे मिटाना है। दुख भी नही है। एक बडी गहन ऊब, एक गहन बोरडम, राख-राख सब हो जाता है। हृदय मे कोई धड़कन नही। श्वासो मे कोई कपन नही। जीवन का कोई प्रवाह नही, कोई ऊर्जा नही। उठ आते हो, एक धक्के मे। उठना पडता है, सुबह हो गई। रात सो जाते हो, क्योकि रात हो गई। जिदा रहते हो, क्योकि रहना ही पड़ेगा जब तक मौत न आये। करोगे क्या ? ऐसे धक्के मे चलते चले जाते हो।

महावीर कहते है, यहा कोई भी सुख नही है। क्योकि रत्तीभर भी तुम्हे आशा रहे कि थोड़ा भी है, एक प्रतिशत भी है, तो भी तुम जकडे रहोगे।

वह एक प्रतिशत भी काफी रहेगा तुम्हे रोकने को।

ऐसा समझो कि तुम कारागृह मे बद हो। अगर तुम मानते हो कि कारागृह मे थोड़ी-सी जमीन है जो कारागृह नही है, तो फिर तुम कारागृह के बाहर न जा सकोगे, कम से कम उसी जमीन मे अटके रहोगे। कारागृह या तो पूरा कारागृह है और या फिर पूरा घर है। इससे कम मे काम न चलेगा। अगर तुमने कहा कि माना, पूरा कारागृह तो कारागृह है, लेकिन यह दीवाल कारागृह नही है। इसके पास बैठकर बड़ी शाति मिलती है। मगर यह दीवाल भी कारागृह के भीतर है। तुमने कहा, 'और सब तो बुरा है, लेकिन यह पहरेदार बडा भला है, मुस्कुराता है कभी-कभी, कभी दो बात भी कर लेता है।' और सब तो बुरा है, लेकिन यह पहरेदार भी तो इसी कारागृह का हिस्सा है।

तो जिदगी मे कभी-कभी मुस्कुराहटे भी होगी। खयाल रखना, ये भी कारागृह के ही हिस्से है। और कभी-कभी प्रसन्नताये भी होगी, लेकिन ये भी कारागृह के ही हिस्से है। कभी-कभी दीये जले हुए भी मालूम पडेगे, क्योकि अगर दीये बिलकुल न जले तो तुम सभी अधेरे को छोड़कर बाहर भाग जाओगे। थोड़ी आशा का दीप जलता रहना चाहिए। तुम्ही जलाये रहते हो—अपनी ही वासना का तेल डाल-डालकर, ईधन डाल-डालकर। तुम्ही सोचते रहते हो।

तुमने कारागृह मे देखा। मै कभी-कभी कारागृह जाया करता था—कैदियो से मिलने। एक प्रात के गवर्नर मेरे मित्र थे, तो उन्होने मुझे पास दिया हुआ था, उस प्रात के सारे कारागृहो मे मै जा सकता था। वहा मै बड़ा चकित होता। लोग कारागृह मे अपनी कोठरी को भी सजा लेते है। कुछ न मिले, अखबार से फिल्म ऐक्टर-ऐक्ट्रेस की फोटो निकालकर चिपका लेते है। सोचो थोड़ा। उसको भी घर बना लेते है। साफ-सुथरा रखते है अपनी कोठरी को। कोई अपनी रामायण ले आता है अपने साथ, कोई अपनी बाइबिल रख लेता है—मगर यह सब कारागृह का हिस्सा है।

यह पूरा कारागृह ही छोड़ने योग्य है। पूरा छोडने योग्य है, तो ही छोडने योग्य क्षमता पैदा होगी तुममे, अन्यथा नही पैदा होगी।

इसलिए महावीर कहते है, 'इस ससार मे जन्म, जरा और मरण के दुख से ग्रस्त जीव को कोई सुख नही है। अत मोक्ष ही उपादेय है।'

मोक्ष का अर्थ है कारागृह से मुक्ति, राग-द्वेष के बधन से मुक्ति, मूर्च्छा, मोह से मुक्ति।

'यदि तू घोर भवसागर के पार जाना चाहता है तो हे सुविहित। शीघ्र ही तप-सयम रूपी नौका को ग्रहण कर।'

इस सूत्र मे कुछ बाते समझने जैसी हैं।

'यदि तू भवसागर के पार जाना चाहता है ।'

इस ससार को हमने भवसागर कहा है। भवसागर का अर्थ होता है जहा होने की तरगे उठती रहती है। भव यानी होना। जहा हम मिट-मिटकर होते रहते हैं। जहा लहर मिटती नहीं कि फिर उठ आती है। जहा एक वृक्ष गिरा नही कि हजार बीज छोड़ जाता है। जहा तुम जाने के पहले ही अपने आने का इतजाम बना जाते हो। जहा मरते-मरते तुम जीवन के बीज बो देते हो। जहा एक असफलता मिलती है, वहा तुम दस सफलताओ के सपने देखने लगते हो। जहा एक द्वार बद होता है, तुम दूसरा खोलने लगते हो।

भवसागर का अर्थ है जहा होने की तरगे उठती रहती है, उठती रहती हैं—अतहीन।

'यदि तू इस घोर भवसागर के पार जाना चाहता है' यदि तुझे दिखाई पड़ने लगा है कि जीवन दुख है, पीड़ा है, सताप है, अगर तूने इससे मुक्त होना चाहा है 'तो हे सुविहित। शीघ्र ही तप-सयमरूपी नौका को ग्रहण कर।' शीघ्र ही ।

त जइ इच्छसि गतु, तीर भवसायरस्स घोरस्स।

तो तव सजमभड, सुविहिय गिण्हाहि तूरतो।।

तुरत। शीघ्र। एक क्षण भी खोये बिना। क्योकि जितनी देर भी तू क्षण खोता है निर्णय करने मे, उतनी ही देर मे भवसागर नयी तरगे उठाये जाता है। जितना तू स्थगित करता है उतनी देर खाली नही जाता ससार, नयी इच्छाये, नयी वासनाये, तेरे घर मे घोसला बना लेती है, तेरे वृक्ष पर डेरा बना लेती है। शीघ्र ही। तत्क्षण। जिस क्षण यह समझ मे आ जाये कि जीवन दुख है, उसी क्षण तप-सयम रूपी नौका को ग्रहण कर।

तप का अर्थ महावीर की भाषा मे क्या है? दुख को स्वीकार कर लेना तप है। दुख को अस्वीकार करना भोगी की मनोदशा है। भोगी कहता है, दुख को मै स्वीकार न कर सकूगा, मुझे सुख चाहिए। तपस्वी कहता है, दुख है तो दुख को स्वीकार करूगा, मुझे अन्यथा नही चाहिए। जो है वह मुझे स्वीकार है।

इसे थोड़ा समझना, क्योकि महावीर की परपरा, महावीर के अनुयायी इसे बड़ा गलत समझे। महावीर के अनुयायी समझे कि जैसे दुख पैदा करना है। दुख पैदा करने की जरूरत नही है—दुख काफी है, काफी से ज्यादा है। होना ही दुख है, अब और दुख की थोड़े ही जरूरत है कि तुम दुख का आयोजन करो कि तुम भूखे खड़े रहो, कि धूप मे खड़े रहो, कि शरीर को गलाओ, कि सड़ाओ, इस सब की कोई जरूरत नहीं है। यह तो फिर तुमने एक नया राग-द्वेष बो दिया। पहले तुम सुख मागते थे, अब तुम दुख मागने लगे—मगर माग जारी रही। पहले तुम कहते थे, महल चाहिए, अब अगर तुम्हे महल मे ठहरना पड़े तो तुम रुक नहीं सकते महल मे, तुम कहते हो, अब तो सड़क चाहिए—मगर चाहिए कुछ जरूर। पहले तुम कहते थे, सुस्वादु भोजन चाहिए, अब अगर सुस्वादु भोजन मिल जाये तो तुम लेने को तैयार नही हो। तुम कहते हो, अब तो ककड़-पत्थर, मिट्टी उसमे मिला ही होना चाहिए, तो ही हमे सुपाच्य होगा।

दुख को चुनना नही है। आये दुख को स्वीकार कर लेना तप है। आये दुख को ऐसे स्वीकार कर लेना कि दुख भी मालूम न पड़े, तप है। अगर तुमने मागा तो माग तो जारी रही। कल तुम सुख मागते थे, अब दुख मागने लगे, कल तुम कहते थे धन मिले, अब तुम कहते हो कि त्याग, कल तुम कहते थे ससार, अब तुम कहते हो, नही ससार नही, हिमालय भाग रहे हो—लेकिन कही जाना रहा, कोई दिशा रही।

महावीर के तप का अर्थ है जो अपने से होता हो उसे तुम स्वीकार कर लेना। दुख तो हो ही रहा है—दुख ही हो रहा है, और कुछ भी नहीं हो रहा है। तुम स्वीकार भर कर लेना। उसी स्वीकार मे तुम्हारा याचक रूप तिरोहित हो जायेगा, तुम्हारा भिखमगा मिट जायेगा, तुम सम्राट हो जाओगे।

जिसने दुख स्वीकार कर लिया, उसके भीतर एक महाक्राति घटित होती है। उसकी सुख की माग तो रही नही, नही तो दुख स्वीकार न कर सकता था। और जिसने दुख स्वीकार कर लिया, उसे दुख दुख न रहा।

इसे तुम थोड़ा प्रयोग करना। सिर मे दर्द हो तो तुम उसे स्वीकार करके किसी दिन देखना। बैठ जाना शात, लेट जाना, स्वीकार कर लेना कि सिर मे दर्द है, उससे भीतर कोई सघर्ष मत करना, भीतर यह भी मत कहना कि न हो। है तो है। जो है वह है। उसे स्वीकार कर लेना। उसे साक्षी-भाव से देखते रहना। तुम चकित होओगे कभी-कभी साक्षी-भाव सधेगा, उसी क्षण मे तुम पाओगे सिरदर्द खो गया। जब साक्षी-भाव छूट जायेगा, तुम पाओगे, फिर सिरदर्द आ गया। एक बड़ा क्रातिकारी

अनुभव होगा कि जब तुम बिलकुल स्वीकार कर लेते हो सिरदर्द को, तभी वह खो जाता है। और जैसे ही फिर इच्छा उठती है कि नही, यह सिरदर्द नही होना चाहिए, कितनी तकलीफ हो रही है—वैसे ही सिरदर्द फिर घना हो जाता है।

इसे तुम छोटे-छोटे प्रयोग करके देखो। कोई भी दुख आए—और दुख तो रोज आ रहे है और सभी को आ रहे है। यह तो भवसागर है, यहा तो दुख पैदा हो ही रहे है, तरगे उठ ही रही है। और नयी तरगे पैदा करने की जरूरत नही है, जो अपने से आ रहा है, जो तुम्हारे अतीत मे किये कर्मो से आ रहा है—उसके ही तुम साक्षी हो जाओ। तो तुमने तप-सयम-रूपी नौका को ग्रहण कर लिया। और इस तपसयमरूपी नौका मे चारो तरफ भवसागर के तूफान उठेगे और हर तूफान तुम्हे सुदृढ कर जायेगा, और हर तूफान तुम्हे भीतर एकजुट, इकट्ठा कर जायेगा। और हर तूफान, और हर तूफान की चुनौती तुम्हारे भीतर आत्मा को जन्म देनेवाली बनेगी।

तूफा से खेलना अगर इसान सीख ले
मौजो से आप उभरे किनारे नये-नये।

एक बार तूफान से जूझना, एक बार तूफान से खेलना, एक बार तूफान के साक्षी बन जाना—फिर लहरो मे ही नये-नये किनारे उठने लगते है। सुख खोजकर किसी ने कभी कुछ नही पाया, लेकिन जिसने दुख का साक्षी बनना सीख लिया, उसने महासुख पाया है।

'जिससे विराग उत्पन्न होता है, उसका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए। विरक्त व्यक्ति ससार बधन से छूट जाता है और आसक्त व्यक्ति का ससार अनत होता चला जाता है।'

'जिससे विराग उत्पन्न हो उसका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए।' महत्व है 'आदरपूर्वक' पर। तुम जबर्दस्ती भी विराग कर सकते हो। तुम बेमन से भी विराग कर सकते हो। तुम दिखावे के लिए भी विराग कर सकते हो। जैसे समझो, उपवास कर लेते हो तुम—पर्यूषण आए, आठ या दस दिन के उपवास कर लिये। अब कैसी चीजे विकृत हो जाती है। तुम उपवास करते हो, फिर तुम्हारा आदर किया जाता है, शोभा-यात्रा निकलती है, बैड-बाजे बजते है, लोग प्रशसा करने आते है कि बड़ा काम किया, समाज मे बड़ा सम्मान मिलता है। यह तो बडी चूक हो गई।

महावीर ने यह नही कहा था कि तुम विराग करो—और दूसरे आदर करे।

महावीर कहते है, तुम आदरपूर्वक विराग करना। जब तुम उपवास करो तो परम आदर से करना। यह बड़ी घड़ी है। यह बड़ी महिमा की घड़ी है, क्योकि साधारणत मनुष्य की जीवन-आकाक्षा भोजन की है, तुम उपवास कर रहे हो। तुम बड़ी पवित्र भूमि पर यात्रा कर रहे हो। यह तीर्थयात्रा है। उन दस दिनो मे तुम जितने सम्मानपूर्वक, जितने अहोभाव से, जितने कृतज्ञता-भाव से उपवास कर सको, उतनी ही उपवास की महिमा होगी।

दूसरो को तो पता भी मत चलने देना, क्योकि दूसरो से आदर पाने की आकाक्षा उपवास का अनादर है। यह तो तुमने उपवास को भी बाजार मे बेच दिया। यह तो तुमने उपवास से भी कुछ और खरीद लिया—समाज का सम्मान, रिस्पेक्टेबिलिटी। यह तो तुमने उपवास को भी बाजार की चीज बना दिया, इसको भी बेच दिया, इसको तो कम से कम चुपचाप करते।

मुहम्मद ने कहा है जब तुम प्रार्थना करो तो तुम्हारी पत्नी को भी पता न चले। जीसस ने कहा है एक हाथ से दान दो, दूसरे हाथ को खबर न हो। तो सम्मान है।

सम्मान का अर्थ है तुम जो कर रहे हो, वही साध्य है, उसका तुम साधन की तरह उपयोग न करोगे। अगर तुमने उपवास और तप का भी साधन की तरह उपयोग कर लिया कि अखबार मे फोटो छपेगी, चलो किसी तरह दस दिन गुजार दो—तो तुम उपवास से वचित रह गये। तुमने अनशन किया, उपवास नही। तुम भूखे मरे, लेकिन तुम उपवास के आनद से वचित रह गये। यह तो किसी को कानो-कान खबर न हो।

तुम्हारी तपश्चर्या साध्य बने, साधन नही। तुम्हारी पूजा-प्रार्थना, अर्चना, तुम्हारा ध्यान, सामायिक, साध्य बने। रात के अधेरे मे जब सारा जगत सोया हो, चुपचाप उठकर कर लेना अपनी सामायिक। लेकिन तुमने देखा, लोग मदिर मे जाकर करेगे। लोगो को तुमने सामायिक और ध्यान करते देखा। करते भी जायेगे, माला भी फेरते जायेगे—चारो तरफ देखते जायेगे, कोई देख रहा है कि नही। अगर कोई न देख रहा हो तो जल्दी माला फिर जाती है, दो-दो गुरिए एक साथ चले जाते है। कोई अगर देख रहा हो तो आहिस्ता-आहिस्ता चलती है। यह

बगुला-भगति है। वह बगुले को देखा, खड़ा एक पैर पर, कैसा भगत, शुभ्र-वेश मे, हिलता भी नहीं, लेकिन नजर मछली पर लगी है।

तुम्हारी नजर अगर अभी आदर और सम्मान दूसरो से पाने पर लगी है, तो यह तो अहकार की ही पूजा हुई, इससे धर्म का कोई सबध नहीं है।

महावीर कहते है, आदरपूर्वक । जिससे विराग उत्पन्न होता है उसका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए। एक-एक कृत्य विराग का इतने सम्मान और अहोभाव से करना कि उसके करने मे ही तुम्हारे भीतर फूल बरस जाये, तुम्हारे भीतर सुगध फैल जाये। साधन की तरह नही, साध्य की तरह। वही अपने आप मे गतव्य है। उससे कुछ और नहीं पाना है।

उपवास करके स्वर्ग नही पाना है। उपवास स्वर्ग है—यह आदर हुआ। ध्यान करके पुण्य नहीं पाना है। ध्यान पुण्य है—यह आदर हुआ। तो जो भी तुम आदरपूर्वक करोगे, वही तुम्हे धर्म की दिशा मे गतिमान करेगा।

'विरक्त व्यक्ति ससार-बधन से छूट जाता है।'

विरक्त का अर्थ है जिसने विराग को आदर दिया। विरक्ति ओढी, ऐसा नहीं—विराग को आदर दिया। विरक्ति ओढनी बडी आसान है। तुम नग्न खडे हो जाओ, छोड़ दो वस्त्र, एक दफा भोजन करने लगो—लेकिन अगर तुम्हारी आखो मे प्रसाद न आये, तुम्हारी वाणी मे माधुर्य न आये, तुम्हारे उठने-बैठने मे प्रतिपल धन्यता न बरसे—तो तुम कर लो यह सब, इससे कुछ हल न होगा, कुछ लाभ न होगा।

एक मुनि के सबध मे मैने सुना है। क्रोधी थे वे, जब मुनि नहीं थे। महाक्रोधी थे। इतने क्रोधी थे कि अपने बेटे को क्रोध मे आकर कुए मे फेक दिया था। उसकी मौत हो गई थी। उसी से पश्चात्ताप हुआ। गाव मे कोई मुनि ठहरे थे, वे गये। मुनि ने कहा कि पश्चात्ताप अगर सच मे हुआ है तो छोड़ दो ससार। क्रोधी आदमी थे, छोड़ दिया। लेकिन ध्यान रखना, छोडा भी क्रोध मे। जिद्द पकड़ गई। 'अरे, तुमने कहा और हम न छोड़े। तुमने समझा क्या है?' और लोगो ने समझाया कि कभी तुमने त्याग साधा नहीं है, कभी ध्यान किया नहीं है, एक दम से छलाग मत लो, आहिस्ता चलो। जिद्द पकड़ गई। हठी थे। वही हठ पुराना। जिस आदमी ने कुए मे धक्का दे दिया था बेटे को और हत्या कर दी थी, उसी ने अपने को भी धक्का दे दिया वैराग्य मे। वे मुनि हो गये।

दिगबर जैनो मे पाच सीढ़िया है, वे एक साथ छलाग लगा गये। एक-एक कदम महावीर ने बड़े आहिस्ता बढ़ने को कहा है। क्योकि महावीर कहते हैं, जीवन एक क्रम है। जैसे वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ता है, ऐसे ही धीरे-धीरे बढ़ने की जरूरत है। क्योकि धीरे-धीरे शाखाये ऊपर उठती है। उसी आधार से धीरे-धीरे जड़े भी नीचे गहरी जाती है। वृक्ष अगर एकदम ऊपर चला जाये और जड़े गहरी भीतर न जा पाये, तो गिरेगा, मरेगा। यह बढना न हुआ, यह तो मौत हो जायेगी। पाच सीढ़िया बनाई है। एक-एक कदम बढना है। मुनि होने की सीढ़ी पाचवी सीढ़ी है, जब वस्त्र भी छूट जायेगे, सब छूट जायेगा।

वह एकदम से मुनि हो गया। उसने जाकर मदिर मे वस्त्र फेक दिये। क्रोधी आदमी था, जिद्दी आदमी था। जिन मुनि ने दीक्षा दी, वे बड़े प्रभावित हुए। उन्होने कहा, 'व्याख्यान देते-देते जन्म हो गया मेरा, अनेक लोग मिले, मगर लोग कहते है, सोचेगे। तू एक करनेवाला है। तू बड़ा धार्मिक है।' लेकिन वह आदमी धार्मिक नहीं था। उनको नाम मिला शातिनाथ। वह आदमी क्रोधी था।

राजधानी उनका आगमन हुआ, तो पुराने बचपन का एक मित्र भी राजधानी आया था, तो उनसे मिलने गया। देखा कि वह महाक्रोधी, क्रोधनाथ शातिनाथ हो गये है। देखे। जाकर देखा तो कुछ कहीं शाति तो दिखाई न पड़ी, वही तमतमाया चेहरा था, वही जलती हुई आखे थीं, वही क्रोध और अहकार था। उसने परीक्षा लेनी चाही। वह पास गया। उसने कहा कि महाराज । मुनि पहचान तो गये क्योकि वे बचपन से परिचित थे उससे, लेकिन जब कोई आदमी पद पर पहुच जाता है—मुनि पद—तो फिर पहचान कैसी! ऐरे-गैरे नत्थू-खैरो से पहचान कैसी। पहचान तो गये और वह आदमी भी पहचान गया कि पहचान गये है। आंखे सब कह देती है। मगर ऊपर से ऐसे ही रूप रखा कि नहीं पहचाने है। उसने पूछा, 'महाराज। क्या आपका नाम पूछ सकता हू?' उसने कहा, 'हा-हा। अखबार नही पढ़ते? रोज तो अखबार मे छपता है। कौन ऐसा है जो मुझे नही जानता? और तू मुझ से नाम पूछता है? मुनि शातिनाथ मेरा नाम है।'

उस आदमी ने कहा कि यह कुछ बदला नहीं है। वह थोड़ी देर चुप रहा।

उसने फिर पूछा कि 'महाराज। मै भूल गया। आपका नाम क्या है?' उन्होने डडा उठा लिया। कहा, 'तू होश मे है? कह दिया एक दफे कि मेरा नाम शातिनाथ है।' वह आदमी थोड़ी देर फिर चुप रहा। उसने कहा, 'महाराज।' वह महाराज ही कह पाया था कि उन्होने डडा उस के सिर पर लगा दिया। उन्होने कहा कि कह तो चुका इतनी बार। बुद्धि है कि मूढ़ है बिलकुल? 'शातिनाथ' मेरा नाम है।

उसने कहा कि महाराज। लेकिन शाति कहीं पता नहीं चलती। मै तो वही रूप देख रहा हू, जिससे बचपन से परिचित हू, कहीं कोई फर्क नही दिखाई पड़ता। ऊपर के आवरण बदल गये, भीतर की अतरात्मा वही है।

विरक्ति ओढ़ना मत। विरक्ति कोई वस्त्र नही है, आवरण नहीं है कि तुम ओढ़ लो, भीतर तुम वही रहो और ऊपर से वस्त्र बदल लो। विरक्ति तो भीतर की भाव-दशा है। धीरे-धीरे सम्मान करना। एक-एक उस घड़ी का जिससे विराग आता हो, उसका सम्मान करना। एक-एक इच विराग की भूमि पर अपने को जमाना, चलाना। धीरे-धीरे ससार का बधन छूट जाता है। क्योकि बधन राग के कारण है। जब विरक्ति आती है, छूट जाता है। गाठ जैसे बधी है, जब उससे उलटा करने लगते हो, गाठ खुल जाती है।

'और आसक्त व्यक्ति का ससार अनत होता चला जाता है।' आसक्त व्यक्ति का ससार अनत होता चला जाता है, क्योकि एक वासना दस वासनाओ को जन्म देती है। वासना सतति-नियमन मे भरोसा नहीं रखती। वासना की बड़ी सतान होती है। एक वासना दस को जन्मा देती है। दस वासनाये सौ को जन्मा देती है—ऐसा ही गणित फैलता चला जाता है।

तुमने कभी एक ककड़ फेककर देखा पानी मे। एक ककड़ फेकते हो जरा-सा, कितनी लहरे उठती है। एक लहर उठती है, एक दूसरी को उठाती है, दूसरी तीसरी को उठती है। दूर कूल-किनारो तक सारा लहरो से भर जाता है सरोवर। एक जरा-सा कंकड़ फेंका था। एक जरा-सा ककड वासना का और तुम्हारा सारा जीवन लहरो से विक्षुब्ध हो जाता है।

तो महावीर कहते हैं, आसक्त व्यक्ति का ससार अनत होता चला जाता है। अनासक्त व्यक्ति का ससार इसी क्षण टूटने लगता है, बिखरने लगता है, जैसे किसी ने भूमि ही खीच ली, बुनियाद अलग कर ली।

'अपने राग-द्वेषात्मक सकल्प ही सब दोषो के मूल है।'

जो इस प्रकार के चितन मे उद्यत होता है तथा इद्रिय-विषय दोषो के मूल नहीं हैं, इस प्रकार का सकल्प करता है—उसके मन मे समता उत्पन्न होती है। और उससे उसकी काम-गुणो मे होनेवाली तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है।'

एक और महत्वपूर्ण बात महावीर इस सूत्र मे कहते है। वे कहते है, कामवासना के विषय कारण नही है। धन कारण नहीं है धनासक्ति का। धन पडा रहे तुम्हारे चारो तरफ, आसक्ति न हो तो धन मिट्टी है। मिट्टी मे भी आसक्ति लग जाये, तो मिट्टी धन है। धन तुम्हारी आसक्ति से निर्मित होता है। तुम महल मे रहो, इससे कोई फर्क नही पड़ता। महल किसी को नही बाधता है। तुम झोपड़े मे रहो और तुम्हारी आसक्ति गहन हो झोपडे मे तो झोपडा ही बाध लेगा। एक छोटी-सी लगोटी बाध ले सकती है, और एक बडा साम्राज्य भी न बाधे।

सूत्र है 'अपने राग-द्वेषात्मक सकल्प ही सब दोषो के मूल है।' तुम्हारे भीतर ही है सारे मूल। विषय भोगो के मूल नहीं है। इद्रिय-विषय-भोग दोषो के मूल नहीं है। जो इस प्रकार का सकल्प करता है, उसके मन मे समता उत्पन्न होती है।'

जैसे-जैसे तुम जानोगे और इस धारणा मे गहरे जमोगे, जड़े फैलाओगे कि वस्तुए नही है, बाहर कुछ भी नहीं है जो मुझे बाधता है—मैने ही बधना चाहा है, मेरे बधने की चाह ही मुझे बाधती है, मेरे भीतर ही मूल है। फिर बाहर के ससार को छोड़कर भाग जाने का बडा सवाल नहीं है। अगर कोई भाग भी जाये तो वह केवल प्रशिक्षण है।

महावीर चले गये छोड़कर राजपाट। लेकिन बड़ी मीठी कथा है। महावीर छोडना चाहते थे, मा ने कहा, 'अभी मै न छोडने दूगी। जब तक मै जिदा हू, मत छोडो।' महावीर ने फिर बात ही न उठाई। यह बड़ी हैरानी की बात है। बुद्ध तो भाग गये एक रात, बिना किसी को कहे, पत्नी को भी न कहा कि मै जा रहा हू। बारह वर्ष बाद जब आये थे तो पत्नी ने यही शिकायत की थी कि तुम्हे जाना ही था, तो मै कैसे रोक पाती? जानेवाले को कौन रोक पाया है। तुम जाना ही चाहते थे तो तुम गये ही होते, लेकिन

कम से कम मुझे कहा तो होता। तुमने मुझे इस योग्य भी न समझा। इसी बात का मुझे दुख रहा है।

यशोधरा ने बारह वर्ष बाद कहा कि तुमने मुझ पर इतना भी भरोसा न किया। इतना तो सम्मान दिया होता मुझे भी। मुझ से पूछ तो लिया होता। मै रोकती, फिर भी तुम्हे जाना होता तो तुम गये होते। लेकिन तुमने यह कैसे मान लिया कि मै रोकती ही? क्या जरूरी था कि रोकती ही? मेरे मन मे यह घाव की तरह रहा है कि तुमने मुझसे पूछा भी नही, रात तुम चोर की तरह भाग गये। जिसके साथ सबध जोड़ा था, जिसके साथ प्रेम के नाते बनाये थे, उससे कम से कम पूछ तो लेते, विदा तो ले लेते।

महावीर ने ऐसा न किया। महावीर जाना चाहते थे और मा से पूछा। स्वाभाविक, जिसने जीवन दिया, अब जीवन को छोड़ते है, कम से कम उससे तो पूछ ले।

और मा ने कहा कि नहीं, मेरे सामने यह बात ही मत उठाना। मै मर जाऊगी दुख से। उसका पाप तुम्हीं को लगेगा। फिर तुम्हारी अहिसा कहा रहेगी?

तो महावीर, कहते है, चुप हो गये। यह बड़ी अनूठी घटना है मनुष्य के इतिहास की, कि महावीर ने फिर विवाद भी न किया, तर्क भी न किया, दुबारा आग्रह भी न किया। जब मा मर गई, मरघट से लौटते वक्त अपने बडे भाई को कहा कि अब क्या खयाल है? अब तो जा सकता हू?

घर भी न आ पाये थे।

बड़े भाई ने कहा कि तुम थोड़ा सोचो तो। मा को दफनाकर लौट रहे है, अभी घर भी नहीं पहुचे है, छाती पर पत्थर पड़ा है, तुम्हे त्याग की पड़ी है। यह कोई मौका है?

महावीर ने कहा, 'इससे और अच्छा मौका कहा होगा?' इसको वे कहते है, वैराग्य की जहा भी सभावना हो उसको सम्मान देना। मृत्यु से बड़ी वैराग्य की सभावना क्या होगी। मा मर गई, इससे बडी और क्या जगानेवाली घटना हो सकती है? जब मा मर गई, मुझे जन्म देनेवाली मर गई, तो मै भी मरूगा। मुझे जन्म देनेवाली न बच सकी तो मेरे बचने का क्या उपाय है? उसी शृखला की कडी हू। जाने दो मुझे। भाई ने कहा कि नही, तुम न जा सकोगे। जब तक मै तुम्हे आज्ञा न दू, न जा सकोगे। बड़े भाई की आज्ञा का खयाल रखना।

कहते है, महावीर फिर चुप हो गये। दो-चार वर्ष बीत गये, लेकिन वे ऐसे रहने लगे उस महल मे जैसे न हो। चलते जैसे छाया चलती हो, धूल भी न हिलती। उठते-बैठते, लेकिन किसी के बीच मे न आते। घर के, परिवार के, लोगो को पता ही न चलता कि वे है या नहीं है। ऐसे चुप हो गये। ऐसे गुमसुम हो गये। ऐसे 'ना' हो गये। शून्यवत घूमने लगे उस घर मे। आखिर घर के लोगो ने भाई से कहा, बड़े भाई से, कि अब व्यर्थ है रोकना। यह तो जा ही चुका। रोककर भी हम क्या रोके? हम सोचते है कि यह है, मगर है नहीं। महीनो बीत जाते है, किसी को पता ही नही चलता, न किसी बात मे भाग लेता, न किसी चर्चा मे भाग लेता, न अपना कोई मतव्य देता, न किसी को बाधा डालता। तो अब 'न होने' का और क्या अर्थ होता है? होने से सार क्या है? हम इसे व्यर्थ रोक रहे है और हम व्यर्थ ही पाप के भागी हो रहे है।

तो भाई और परिवार के लोग इकट्ठे हुए। उन्होने महावीर से कहा, तुम जा ही चुके हो, अब हम तुम्हे न रोकेगे। ऐसे उन्होने घर छोडा। घर छोडने के बहुत पहले महावीर ने घर छोड दिया था। घर से निकलने के बहुत पहले, घर से निकल गये थे। और मै जानता हू कि अगर भाई ने न कहा होता तो वे सदा घर मे रहे आते। क्या फर्क पडता था? इसलिए महावीर का वैराग्य बडा गहन है। वह भगोडापन नही है। वह क्राति है, रूपातरण है। फिर जगल भी चले गये। बारह वर्ष एक गहरा प्रशिक्षण था। जगल मे बहुत साधा। बहुत निखारा अपने को। सब तरह से शून्य किया। शब्द गवाये। मौन मे उतरे। शब्द छोड ही दिये। वाणी खो ही गई। तब फिर वापिस लौटे। क्योकि जगल मे पाया जा सकता है, लेकिन बाटना तो बस्ती मे ही होगा। वृक्षो, पशुओ के पास पाया जा सकता है, देना तो मनुष्य को ही होगा। और जब मिलता है तो देना होगा। महावीर ने धन ही नही छोड़ा, जब उन्होने परम धन पाया, उसको भी लुटाया। एक बार छोड़ने का मजा आ जाये तो परम धन पाकर भी आदमी लुटाता है।

'अपने राग-द्वेषात्मक सकल्प ही सब दोषो के मूल है, जो इस प्रकार के चितन मे उद्यत होता है तथा इद्रिय-विषय दोषो के मूल नही है, इस प्रकार का सकल्प करता है, उसके मन मे समता उत्पन्न होती है।'

तत्क्षण भी समता का स्वाद आ जायेगा। तुम जरा घर मे बैठे-बैठे ऐसे सोचो कि घर के बाहर हो। तुम पत्नी के पास

बैठे-बैठे जरा ऐसे सोचो, कौन किसका है। तुम बाजार मे बैठे-बैठे जरा ऐसा सोचो, सब सन्नाटा है। बाजार मे भी समता आ जाती है। घर मे भी समता आ जाती है। सब काम-धाम करते हुए भी भीतर तुम थिर होने लगते हो। भीतर बुद्धि स्थिर होने लगती है। भीतर की ज्योति डगमगाना छोड़ने लगती है।

समता का अर्थ है अकप चैतन्य का हो जाना।

'और उससे उसकी काम-गुणो मे होनेवाली तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है।'

हस्ती के मत फरेब मे आ जाइयो 'असद'
आलम तमाम हल्कए-दामे-खयाल है।

चीजो के चक्कर मे बहुत मत पड जाना। लेकिन चीजे उलझाती नही है। कल्पना ही उलझाती है।

आलम तमाम हल्कए-दामे-खयाल है।

यह जो सारा चारो तरफ फैलाव दिखाई पड रहा है, यह तुम्हे नही फासता—तुम्हारी कल्पना का जाल फास लेता है।

'भाव से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त हो जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल मे लिप्त नही होता, वैसे ही वह ससार मे रहकर भी अनेक दुखो की परपरा से लिप्त नही होता है।'

महावीर ससार छोडने को नही कह रहे है। यह सूत्र प्रमाण है। कहते है, कमलिनी के पत्र जैसे हो जाओ।

भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खो परपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि सतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलास।।

जैसे पोखर मे, तालाब मे, खिला हुआ कमलिनी का फूल। उसके पत्ते जल मे ही होते है, जल की बूदे भी उन पर पड़ी होती है, लेकिन जल स्पर्श भी नही कर पाता—ऐसी ही चैतन्य की एक दशा है, विराग की एक दशा है। ठीक ससार मे खडे हुए भी, ठीक गृहस्थी मे रुके हुए भी, कुछ छू नही पाता।

महावीर ने चार तीर्थ कहे है श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी। किसी अनजानी दुर्घटना के कारण साधु-साध्वी महत्वपूर्ण हो गये। लेकिन महावीर का पहला जोर श्रावक-श्राविका पर है।

श्रावक का अर्थ है ऐसी सम्यक स्थिति का व्यक्ति जो सुनकर ही सत्य को उपलब्ध हो जाता है, सुनने मात्र से ही जो जाग जाता है। साधु का अर्थ है सुनना मात्र जिसे काफी नही, सुनने के बाद जो साधना भी करेगा, प्रयत्न की भी जरूरत रहेगी—तब मुक्त हो पाता है। श्रावक की गरिमा बड़ी महिमापूर्ण है।

श्रावक का अर्थ है जिसने सत्य को सुना, सुनते ही जाग गया।

बुद्ध कहते थे, घोड़े कई तरह के होते है। एक घोड़ा होता है कि जब तक उसको मारो-पीटो न, तब तक चले न। एक घोडा होता है कि मारने-पीटने की धमकी दो, गाली-गलौज दो, उतने से ही चल जाता है, मारने-पीटने की जरूरत नही पडती। एक घोड़ा होता है, गाली-गलौज की भी जरूरत नहीं पडती, हाथ मे कोड़ा हो, इतना घोडा देख लेता है, बस काफी है। और बुद्ध कहते है, एक ऐसा भी घोड़ा होता है कि कोड़े की छाया भी काफी होती है। श्रावक का अर्थ है जिसे कोडे की छाया भी काफी है।

तुम यहा मुझे सुन रहे हो। सुनने से तुम्हारे लिए पहला तीर्थ खुलता है। अगर तुम ठीक से सुन लो, हृदयपूर्वक सुन लो, निमज्जित हो जाओ सुनने मे, तो करने को कुछ बचता नही, सुनने मे ही गाठे खुल जाती है, सुनकर ही बात साफ हो जाती है, गाठ खुल जाती है। कुछ अधेरा था, छट जाता है। कुछ उलझन थी, गिर जाती है। द्वार खुल गया, नाव तैयार है तुम इसी तीर्थ से पार हो सकते हो।

कुछ है जो सुनने से ही पार न हो सकेंगे, उन्हे कोडे की छाया काफी न होगी, उनके लिए कोडे काफी होगे, कोडे मारने पडेगे।

साधु का अर्थ है जो सुनने से न पार हो सका, सत्य की समझ काफी न हुई, सत्य के लिए प्रयास भी करना पड़ा।

वस्तुत श्रावक की महिमा साधु से ज्यादा है।

लेकिन साधुओ को यह बरदाश्त न हुआ। साधुओ के अहकार को यह भला न लगा। तो कोई जैन साधु जैन श्रावक को नमस्कार नही करता। साधु और श्रावक को कैसे नमस्कार कर सकता है। साधु ऊपर है, श्रावक नीचे है। साधु को, श्रावक को नमस्कार करनी चाहिए।

हा, यह बात जरूर है कि श्रावक कहा है? पर दूसरी बात भी तो है, साधु कहा है? सुनकर पहुचनेवाले बहुत मुश्किल है, कोडे की छाया से चलनेवाले बहुत मुश्किल है। कोड़ो से भी अपने को मार-पीट करके कहा कौन चल पाता है। उनकी भी आदत हो जाती है।

'भाव से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त हो जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल मे लिप्त नही होता, वैसे ही वह ससार मे रहकर भी अनेक दुखो की परपरा से लिप्त नही होता है।'

भाव से मुक्त होते ही—राग और द्वेष के भाव से मुक्त होते ही, चुनाव से मुक्त होते ही, सकल्प-विकल्प से मुक्त होते ही—यह सत्य पहचानकर कि सारा खेल मेरे भीतर है, अपने को सिकोड़ लेता है, जैसे कछुआ अपने को सिकोड़ लेता है।

दूर जा पहुचा गुबारे-कारवा
मेरी मुश्ते-खाक तनहा रह गयी,
सब तमन्नाए हमारी मर चुकी
एक मरने की तमन्ना रह गयी।

अपने को सिकोड़ता जाता है। जीवन-जीवेषणा से अपने को हटा लेता है। अब जीने की कोई आकाक्षा नही रह जाती। जीता है, क्योकि जब तक पुराने कर्मो का जाल है, हिसाब-किताब है, चुकतारा है, निपटाता है। नया जाल खड़ा नहीं करता, पुराना लेन-देन तो चुकाना ही पड़ेगा। जीता है, लेकिन अब जीने पर जोर नहीं है। अब उसने एक राज सीखा है—और वह यह परम मृत्यु। कैसे पूरी तरह मर जाये, ताकि दुबारा पैदा न होना पडे। और जिसके भीतर ऐसी भाव-दशा आ जाती है, उसकी सुबह ज्यादा दूर नहीं है।

हो चली सुबह फसाना है करीबे-तकमील
घुल चली शमा बस अब है उसे ठडा होना।

जिसके भीतर जीवेषणा ठडी हो गई, वह खोने लगा।

हो चली सुबह फसाना है करीबे-तकमील

कहानी पूरी होने के करीब आ गई, सुबह होने लगी। घुल चली शमा—दीया बुझने लगा, बस अब है उसे ठडा होना। वह ठडक, वह शीतलता जो जीवेषणा के बुखार के बुझ जाने पर पायी जाती है, उसी का नाम मोक्ष है।

दुख पर ध्यान करना। दुख को सब तरफ से पहचानना, निदान करना। दुख दिख जाये तो औषधि पानी बड़ी कठिन नही है। दुख दिख जाये तो छूटने की परम आकाक्षा पैदा होती है, अभीप्सा पैदा होती है।

साक्षी-भाव औषधि है। दुख है निदान—साक्षी-भाव औषधि है—मोक्ष स्वास्थ्य है।

आज इतना ही।





छठवां प्रवचन

तुम मिटो तो मिलन हो

प्रश्न-सार

श्याम-श्याम रटते जीवन की सांझ हो गयी है, अभी तक मेरा श्याम नही आया। मुझे उसके दर्शन कराना।

नककटे साधु की कहानी   क्या आपके सन्यासियो की यही स्थिति नही है ?

भीतर विचारों की भीड़ है और अहकार से विक्षुब्ध हू . ?

बेमुरौअत बेवफा बेगाना-ए-दिल आप है।.. ?

बहुत शुक्रिया बहुत मेहेरबानी
मेरी जिदगी मे हुजूर आप आए

प*हला प्रश्न*

शाम शाम कूकदी नूं जिदगी दी शाम होई।
आया नही शाम मेरा, ओसनू मिलायो जी।।

'श्याम-श्याम रटते जीवन की साझ हो गयी है, अभी तक मेरा श्याम नही आया। मुझे उसके दर्शन कराना।'

आपकी शरण आयी हू, स्वीकार करो। कही चूक न जाऊ।

परमात्मा को पाना मात्र रटन की बात नही है। रटने से ही होता होता तो बड़ा आसान होता। रट तो तोते भी लेते है। बोध चाहिए। अकेली रटन काम न देगी। रटन ठीक है, उपयोगी है, बहुमूल्य है—लेकिन बोध से सयुक्त हो तभी, अन्यथा रटन यात्रिक हो जाती है। कोई रटता रहता है श्याम-श्याम-श्याम, लेकिन इस रटन के पीछे और हजार विचार चलते रहते है। यह रटन धीरे-धीरे अभ्यास हो जाती है। इसे करने के लिए, रटने के लिए, किसी बोध की जरूरत ही नही रह जाती, यत्रवत सरकती रहती है। तुम न भी चाहो तो होती रहती है। और भीतर गहरे तलो पर हजार-हजार विचार चलते रहते है, हजार वासनाए चलती रहती है। जब तक वे भीतर के तल पर विचार और वासनाए खो न जाये, जब तक रटन अकेली न रह जाये, श्याम के लिए पुकार उठे तो बस पुकार हो, भीतर कुछ और न हो—तब तो पुकारने की भी जरूरत न पडेगी, बिन पुकारे परमात्मा पास आ जाता है।

परमात्मा कभी दूर गया नही। जो दूर चला जाये वह परमात्मा नही। वह सदा तुम्हारे पास है। सब तरफ से उसने ही तुम्हे घेरा है—बाहर भी वही, भीतर भी वही।

जिसे तुम रट रहे हो, वह तो परमात्मा है ही, जो रट रहा है, वह भी परमात्मा है। तो रटन मे ज्यादा मत उलझ जाना। पुनरुक्ति कही मन को बहुत ज्यादा ग्रसित न कर ले। रटन पर बहुत ज्यादा भरोसा मत कर लेना। उपयोगी है, लेकिन कुछ और भी चाहिए। वह है बोध। वह है ध्यान।

'श्याम-श्याम रटते ही जीवन की साझ हो गई। अभी तक मेरा श्याम नही आया।'

नहीं, पहचान तुम्हारे पास नही, श्याम तो बहुत बार आया। श्याम तो आता ही रहा। श्याम तो आता ही रहता है। उसके सिवाय और कोई है ही नही जो आये। जो भी आया है उसमे श्याम ही आया है। कोई और तो आयेगा कैसे? सभी उसके रूप है। सभी उसके ढग है। सभी उसके रग है। फूल मे भी वही। पत्तो मे भी वही। पहाडो-पत्थरो मे भी वही। पशु-पक्षियो मे वही। स्त्री-पुरुषो मे वही। जहा 'कुछ' है, वही है, और जहा कुछ भी नहीं है, वहा भी वही है। इसलिए आने-जाने की भाषा तो हमारे मन की भाषा है।

परमात्मा है न आता न जाता। जो 'है' उसका ही नाम परमात्मा है—जो सदा है, जिसमे कोई गति नही है, जिसमे कोई प्रक्रिया-क्रिया नही है, जो 'मात्र होना' है। इस क्षण भी तुम्हे उसी ने घेरा है। तुम राह किसकी देखते हो? कही राह देखने मे ही तो नहीं चूक रहे हो? क्योकि जब आखे किसी की राह देखती है, तो और सब चूक जाता है। तुम अगर अपनी प्रेयसी की राह देख रहे हो द्वार पर बैठकर, तो फिर और कोई नही दिखायी

पड़ता। राह चलती रहती है। लोग गुजरते रहते है। तुम और सबके प्रति अधे हो जाते हो, क्योकि तुम्हारा मन एकाग्र है—किसी वासना मे, किसी कामना मे, किसी आकाक्षा मे, अभीप्सा मे, तुम एकजुट एकाग्र हो। तुम राह देखते हो किसी चेहरे की।

तो श्याम तो तुमने पुकारा होगा, लेकिन तुम किसी चेहरे की राह देख रहे हो—बासुरी धरे हुए आयेगा, मोर-मुकुट लगाकर आयेगा। तो तुम चूके। तुम्हारी इस आकाक्षा मे ही, तुम्हारी इस धारणा मे ही पर्दा है। तुम्हारी कोई निश्चित मनोदशा है, जिसमे तुम माग कर रहे हो, ऐसा होना चाहिए।

कहते है, तुलसीदास को कृष्ण के मदिर मे ले गये, तो वे झुके नहीं। तुलसीदास जैसा समझदार आदमी भी नासमझी कर गया। झुके नही, क्योकि वे राम के भक्त थे, कृष्ण की मूर्ति के सामने झुके कैसे। खडे रहे, अड़े रहे। वे तो एक को ही पहचानते थे—धनुर्धारी राम को। यह मुरली-मुरारि को, यह मुरलीधारी को, वे पहचानते न थे, मानते भी न थे। कैसे झुके।

कहानी बडी मधुर है। कहानी यह है कि उन्होने कहा कि तुम जब धनुष-बाण हाथ लोगे, तभी मै झुकूगा, नही तो मै न झुकूगा। मै तो एक का ही भक्त हू।

कहानी कहती है कि तुलसीदास के लिए कृष्ण ने हाथ मे धनुष-बाण लिया, मूर्ति बदली। मुरली खो गई, मोर-मुकुट खो गया, धुनर्धारी राम प्रगट हुए—तब, तब तुलसीदास झुके। मैं नही मानता हू कि मूर्ति बदली होगी। तुलसीदास ने ही कोई सपना देखा होगा।

कही परमात्मा तुम्हारे पक्षपातो के अनुसार ढलता है? तुम परमात्मा को आज्ञा दे रहे हो? तुम परमात्मा को कह रहे हो कि अगर मेरी स्तुति चाहिए हो तो इस ढग से आ जाओ। ऐसे पीत वस्त्र पहनकर, पीताबर होकर खड़े होना, ऐसा नील वर्ण हो तुम्हारा, ऐसी तुम्हारी आखे हो, इस तरह से खड़े होना। तुम मुद्रा, ढग, रूप-रग, सब तय किये बैठे हो, इसलिए परमात्मा से चूक रहे हो। लोग धार्मिक होने के कारण धर्म से चूक रहे है। क्योकि धार्मिक होने मे वे साप्रदायिक हो गये है और उन्होने एक रुख पकड़ लिया है।

मेरी सारी चेष्टा यहा यही है कि तुम्हारे पक्षपात विसर्जित हो जाये। तुम माग न करो। तुम कहो, तू जिस रूप मे आयेगा, हम पहचानेगे। तू हमे धोखा न दे पायेगा। तू धनुष-बाण लेकर आयेगा, कोई हर्ज नही, तो भी पहचानेगे। तू मुरली हाथ मे लेकर आयेगा तो भी पहचानेगे। तू महावीर की तरह नग्न खडा हो जायेगा, न धनुष-बाण होगे न मुरली होगी, तो भी हम पहचानेगे। तू जीसस की तरह सूली पर लटक जायेगा, तो भी हमे धोखा न दे पायेगा।

धार्मिक व्यक्ति मै उसको कहता हू, जिसने परमात्मा को चुनौती दे दी कि अब तू हमे धोखा न दे पायेगा, हम पहचान ही लेगे। तू जिस रूप मे आये, आ जाना, क्योकि हमने अब एक बात समझ ली है कि सभी रूप तेरे है।

फिर तुम कैसे चूकोगे? फिर जिदगी की शाम कभी न होगी। फिर जिदगी सदा सुबह ही बनी रहेगी।

शकराचार्य के जीवन मे एक उल्लेख है।

कल ही मै साझ उनकी कहानी कह रहा था। शिष्यो को समझा रहे है। कुछ ऐसा उलझा हुआ प्रश्न खड़ा हो गया है। तो उन्होने दीवाल पर कलम उठाकर एक चित्र बनाया—समझाने के लिए। चित्र मे बनाया एक वृक्ष—बोधिवृक्ष। उसके नीचे बैठाया एक युवा सन्यासी को—गुरु की तरह। और फिर उस चित्र के आसपास, युवा सन्यासी के आसपास, बिठाये बडे बूढ़े शिष्य, जीर्ण-जर्जर, बड़े प्राचीन। एक शिष्य ने खडे होकर कहा, 'यह आप क्या कर रहे है? शायद आप चूक गये। इस युवक सन्यासी को गुरु और इन बूढे वृद्ध ऋषि-मुनियो को शिष्य। आपसे कुछ गलती हो गई है।'

शकर ने कहा, गलती नही हुई, जानकर बना रहा हू। क्योकि शिष्य सदा बूढ़ा है। क्योकि शिष्य का अर्थ है मन। मन बडा प्राचीन है। मन बडा पुराना है। मन यानी पुराना। मन यानी अतीत। मन यानी जो हो चुका, उसकी धूल-धवास, जो जा चुका उसके रेखा-चिह्न, जो बीत चुका उसके पद-चिह्न।

मन का अर्थ ही है जो बीत चुका, उसकी लकीरें। बड़ा पुराना है मन।

शिष्य के पास मन है। गुरु का मन खो गया है, तो अतीत खो गया। तो शकर ने कहा, 'गुरु तो सदा नित-नवीन है, युवा है, किशोर है।' इसलिए तुमने देखा। राम की तुमने कोई बूढ़ी प्रतिमा देखी? बूढ़े कभी तो हुए होगे। कोई जगत नियम तो नही बदलता—किसी के लिए नहीं बदलता। कृष्ण की तुमने बूढ़ी

प्रतिमा देखी? निश्चित बूढ़े हुए थे, अस्सी वर्ष के हो गये थे, तब तीर लगा और मरे। बुद्ध की तुमने बूढी प्रतिमा देखी? महावीर की तुमने बूढ़ी प्रतिमा देखी? नही, हमने कोई बूढ़ी उनकी प्रतिमा नही बनायी। इसलिए नहीं कि वे बूढे नहीं हुए थे, बूढ़े तो हुए थे, लेकिन हम पहचान गये कि उनके भीतर जो घटा था वह नित नवीन था। सद्य स्नात। अभी-अभी नहाया हुआ। इसी क्षण जन्मा।

मन तो पुराना है। मन की धारणाए पुरानी है। परमात्मा प्रतिपल नया है—नयी फूटती कोपल की भाति। नयी खिलती कली की भाति।

छोड़ो धारणाए मन की, तो तुम उसे सब तरफ से आते पाओगे। हर पगध्वनि मे उसी की पगध्वनि सुनायी पड़ेगी। कोयल के मधुर कठ मे ही नही, कौवे की काव-काव मे भी वही है। और जब तक तुम कौवे मे न पहचान पाओगे, तब तक तुम जानना, पहचान पक्की न हुई। राम मे ही नही, रावण मे भी वही है। और जब तक तुमने कहा कि रावण मे नही है, तब तक तुम राम मे भी न पहचान पाओगे।

तुलसीदास ने तो हद कर दी नासमझी की। कृष्ण मे भी न पहचान पाये राम को, तो रावण मे तो कैसे पहचान पायेगे। महाकवि रहे होगे, जाग्रत पुरुष नही। काव्य की महिमा है उनकी। बडे सुदर उनके वचन है। लेकिन कही कुछ चूका-चूका है, कही कुछ खोया हुआ है—अनुभव खोया हुआ है।

फिर जीवन की कभी शाम न होगी, अगर परमात्मा से पहचान हो गयी। जीवन की साझ होती है, सुबह होती है, परिवर्तन होता है, जन्म और मौत होती है, क्योकि उससे हमारी पहचान नही हो पाती, जो सनातन है, शाश्वत है।

'शाम शाम कूकदी नू जिदगी दी शाम होई।

आया नही शाम मेरा, ओस नू मिलायो जी।।'

श्याम-श्याम रटते जीवन की साझ हो गयी, अब तो जागो। रटन से कुछ भी न होगा। देखो। दर्शन चाहिए। आख चाहिए। तुम्हारी रटन के कारण ही श्याम बहुत बार आया और लौट गया। उसने कहा, अरे। यह तो अभी भी रट रही है। अभी भी खाली नही है। अभी भी मन इसका मुक्त नही है, शात नहीं है। अभी भी किसी श्याम-श्याम, को रट रही है।

तुम्हारी रटन के कारण ही तो पर्दा खड़ा हो गया है। तुम अपनी रटन मे इतने लीन हो कि तुम्हें फुर्सत कहा कि तुम जरा आख खोलो और देखो कि कौन आया है। रटन जब वस्तुत हार्दिक होती है तो रटन होती ही नहीं। आवाज कहा उठती है। बोल कहा उठते है। सब खो जाता है, सन्नाटा हो जाता है।

परमात्मा की खोज मे निकले खोजी, परमात्मा को पाने के पहले खुद खो जाते है।

वे ही उसे पाते है जो अपने को खो देते हैं।

रटन का हिसाब छोड़ो। माला कितनी जपी, यह फिक्र छोड़ो। कितनी बार उसका नाम लिया, यह फिक्र छोडो।

मै एक घर मे मेहमान था। तो पूरा घर शास्त्रो से भरा पड़ा था। तो मैने कहा, 'बडे शास्त्र है, क्या मामला है? कौन-कौन से शास्त्र है।' उन्होने कहा, 'कुछ नही, सब शास्त्रो मे राम-राम लिखा है।' वे जिनके घर मै ठहरा था, वे राम-भक्त थे। तो उनका काम ही है यह चौबीस घटे, वे और कोई काम नहीं करते, वे किताब लिये बैठे रहते हैं राम-राम-राम-राम । हजारो किताबे उन्होने खराब कर दी है। मैने उनसे कहा, बच्चो को दे देते, पढ़ने के काम आ जाती, स्कूल मे बाट देते—ये तुमने खराब क्यो कर दी? अपना भी समय खराब किया। और मैने उनसे कहा, देखो तुम ऐसे लिखते रहते हो चश्मा चढाये, क्योकि आखे धुधली हो गई है, बूढ़े हो गये—राम कई दफे आता है, लौट जाता है। तुम्हे कभी फुर्सत मे नही पाता। तुम्हे राम-राम लिखने से फुर्सत मिले, तब न। राम हटे तो राम मिले। श्याम हटे तो श्याम मिले। तुम मिटो तो मिलन हो।

थक थक के हर मुकाम पे दो-चार रह गये

तेरा पता न पाए तो नाचार क्या करे।

यह तसव्वुफ की भाषा है, प्रेम की, सूफियो की।

थक थक के हर मुकाम पे दो-चार रह गये।

परमात्मा की खोज मे जो निकलता है, एक घड़ी आती है थक जाता है, खो जाता है।

थक थक के हर मुकाम पे दो-चार रह गये।

तेरा पता न पाए तो नाचार क्या करे।

हम असहाय करे भी क्या, तेरा पता तो मिलता नही। खोजते-खोजते खुद ही खो जाते है, अपना ही पता खो जाता है।

लेकिन जिस क्षण अपना पता खो जाता है, उसी क्षण सब दिशाओ से उसकी मगल वर्षा होने लगती है। मगल वर्षा तो

पहले भी हो रही थी, लेकिन हम भरे थे, हम किन्ही खयालो से दबे थे।

ईश्वर की सभी धारणाए छोड़ दो अगर ईश्वर को चाहते हो। अगर सत्य को पहचानना है तो शास्त्र को हटाओ। अगर उसे देखना है जो अभी खड़ा है तुम्हारे सामने, जो हवा के झोके मे तुम्हे सहला गया है, जो पक्षियो के कलरव मे तुम्हे बुला रहा है, सूरज की किरण मे जिसने अपना हाथ फैलाया है और तुम्हारा स्पर्श किया है—अगर उसे देखना है, उस सहस्रबाहु को, उस अनत को, तो तुम सारी धारणाओ को हटाओ। तुम नग्न हो जाओ, निर्वस्त्र—धारणाओ से बिलकुल निर्वस्त्र। यही तो महावीर होने का अर्थ है—निर्ग्रंथ, नग्न, दिगबर।

जैनो ने बड़ी उलटी बात पकड ली। वे समझे कि बस वस्त्र छोड़कर नग्न खड़े हो जाने पर महावीर की नग्नता पूरी हो जाती है। महावीर की नग्नता तब पूरी होती है जब चित्त के सारे वस्त्र उतर जाते है।

तुमने कृष्ण की कहानी पढ़ी है? गोपिया स्नान कर रही है, वे उनके वस्त्र चुराकर वृक्ष पर बैठ गये है। अश्लील मालूम होती है। आज करे तो पुलिस पकडेगी। चल गई उन दिनो, अब न चलेगी। और स्त्रिया ही मुश्किल मे डाल देगी। लेकिन कहानी का अर्थ बड़ा गहरा है। कृष्ण यह कह रहे है, जो मेरे प्रेम मे पडेगा उसके मै वस्त्र छीन लूगा। गोपी यानी जो उनके प्रेम मे है। कृष्ण कह रहे है कि तुम्हारे वस्त्र छीन लूगा, तुम्हे निर्वस्त्र करूगा। कृष्ण कह रहे है कि जब तक तुम्हारे पास कुछ भी है तुम्हारा, जिसमे तुम अपने को छिपा लो, तब तक मुझसे मिलन न हो सकेगा।

वस्त्र का अर्थ होता है, जिसमे तुम अपने को छिपा लो, ढाक लो। निर्वस्त्र होने का अर्थ है छिपाने को कुछ भी न रहा, ढाकने को कुछ भी न रहा, हमने खोला अपना हृदय, सारे शब्द, सारे सिद्धात हटा डाले। तुम जब कहते हो, मै हिंदू हू, तो तुम मन पर कुछ वस्त्र पहने हुए हो। तुम्हारा मन नग्न नहीं। तुम्हारी चेतना का कुछ आवरण है। जब तुम कहते हो, मै जैन हू, तब तुम सत्य के लिए खुले नही। तुम कहते हो, सत्य के प्रति मेरी कुछ धारणा है, जब सत्य उस धारणा को पूरा करेगा तो ही मै मानूगा कि सत्य है तुम भटकोगे फिर। एक साझ नही, हजारो साझ होगी रटते-रटते, पहुचना न होगा।

खोने की तैयारी करो। मिटने की तैयारी करो। एक-एक इच अपने को गलाओ।

खोजनेवाला खो जाये, यही शर्त है उसे पाने की।

और फिर से तुम्हे दोहरा दू, परमात्मा आता-जाता नहीं। आने-जाने की क्रिया ससार है। सदा होने की स्थिति परमात्मा है। जो आता है जाता है, उसी को तो हम मन कहते है। जो न आता न जाता, जो सदा है, वही तो चैतन्य है। बादल आते है, घिरते है, घुमडते है, नाचते है, बिजलिया चमकती है, फिर विदा हो जाते है। अब आषाढ़ आता है जल्दी, घिरेगे बादल, घुमड़ेगे, घडी भर को बड़ा रौरव मचायेगे, बडा शोरगुल करेगे—फिर जा चुके होगे। जो बचा रहता है वही आकाश है। कितनी बार बादल घिरे और कितनी बार गये। आये और गये—वही ससार है। जो बचा रहा है पीछे, अछूता, अस्पर्शित, पोखर के कमल के पत्तो जैसा, जिस पर कोई बादल की छाया भी न छूटी और जिसे बादल मलिन भी न कर पाये, जिस पर बादलो की स्मृति भी नही है।

आज आकाश को देखो, तो क्या तुम सोचोगे इस पर अरबो-खरबो वर्षो से बादल घिरते रहे है? निष्कलुष। निर्मल। कुआरा। कुआरा का कुआरा। इसका कुआरापन कभी भी खडित नही हुआ। बादल आये और गये, इसके पास उनकी कोई स्मृति भी नही है।

ऐसा ही है परमात्मा। हम आते है जाते है—परमात्मा है।

हम बहुत बार आये है, बहुत बार गये है—आषाढ के बादल—कभी बहुत शोरगुल मचाया—नेपोलियन, चगेज, तैमूर। कभी चुपचाप भी आकर चले गये—कपसीले बादल—कोई शोरगुल भी न मचाया, वर्षा भी न की, साधारण। कभी बिजलिया कौधी, बड़ा रौरव किया, बड़ा रौद्र रूप दिखाया, कभी चुपचाप सपनो जैसे तैर गये, न कोई रौरव नाद किया, न कोई शोरगुल मचाया, किसी को पता भी न चला। कभी इतिहास बनाया उपद्रव का, कभी चुपचाप गुजर गये, कानो-कान किसी को खबर भी न मिली आने-जाने की। पर हर हालत मे हम आये और गये।

उसे जानना है, जो न आया और न गया।

झेन फकीर हुआ तोझान ओसो। वह बड़ा बहुमूल्य फकीर था। कहते है जब तोझान ओसो समाधि को उपलब्ध हुआ,

परमज्ञान को उपलब्ध हुआ, निर्वाण पा लिया उसने, खो गया सब भाति, बचा वही जो सदा है—तो कहते है, देवलोक मे देवता आतुर हुए तोझान को देखने को—होना ही चाहिए। क्योकि देवता कितने ही सुदर हो, अभी बादल ही हैं, कितने ही स्वर्णमडित हो, अभी बादल ही है, कितने ही सुखमय हो, अभी सपने मे ही है। उत्सुक हुए तोझान का चेहरा देखने को। जब भी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो देवता उत्सुक होते है। उनको भी आकाक्षा जगती है। क्योकि यह परम घटना घटी। तो देवता आये तोझान के आश्रम मे। उन्होने सब तरफ से चेष्टा की तोझान को देखने की, पहचानने की, लेकिन कोई चेहरा दिखायी न पड़े। आकाश का कही कोई चेहरा है। बादल हो तो रूप-रग, रेखा, आकृति । आकाश तो निराकार है। तोझान तो आकाश हो गया। उन्होने सब तरफ से उसके भीतर गये, बाहर गये, सब तरफ से खोजा, कुछ भी न पाया। सन्नाटा है, अनत सन्नाटा है, शून्य है। वे बडे चितित हुए कि क्या हमे दर्शन न होगे। उसी मे से गुजरते थे और उसके दर्शन न हो रहे थे। उसी के आसपास परिक्रमा कर रहे थे और उससे पहचान न हो रही थी। भीतर-बाहर आ जा रहे थे, लेकिन सब सूना सन्नाटा था। मदिर ही बचा था, प्रतिमा तो खो गई थी—दर्शन किसके हो। राम बचा था, धनुष-बाण खो गये थे, प्रतिमा खो गई थी। कृष्ण बचा था, बासुरी न बची थी, गीता न बची थी। गीता पर रखी बासुरी खो गई थी।

आखिर देवताओ मे जो सब से ज्यादा कुशल था, उसने कहा, 'ठहरो। कुछ उपाय करना पड़ेगा। ऐसे तो दर्शन न होगे।'

तोझान घूमने निकला था। सुबह की बेला। नया-नया ऊगा सूरज। पक्षियो के गीत। तोझान लौट रहा था आश्रम की तरफ। उस चालाक देवता ने आश्रम के चौके से कुछ चावल मुट्ठियो मे भर लिये, कुछ गेहू मुट्ठी मे भर लिये और आकर तोझान के रास्ते पर उन्हे फेक दिया।

अब झेन आश्रम मे बड़ी सावधानी बरती जाती है। क्योकि प्रत्येक चीज का अपरिसीम सम्मान है। अन्न तो ब्रह्म है। इसलिए कोई झेन साधु, कोई झेन साधक ऐसे चावल और गेहू को फेक नही सकता रास्ते पर। इसमे कोई अर्थशास्त्र का सवाल नही है। यह कोई गाधीवादी बचायत और किफायत नही है। यह सवाल नही है। सवाल यह है कि प्रत्येक चीज का समादर है। यह कोई कजूसी नहीं है। अर्थशास्त्र से इसका कोई लेना-देना नहीं है। इसका सबध तो बडे अध्यात्म से है। प्रत्येक चीज का सम्मान। तो भोजन करते वक्त भोजन को भी नमस्कार कर के ही भोजन शुरू करना है। भोजन करते वक्त पहले परमात्मा को भोग लगा देना है, तब भोजन शुरू करना है। आज फिर उसने अवसर दिया। आज फिर घडी आई भोजन की। एक दिन और मिला। उसकी अनुकपा अपार है—ऐसे भाव से।

तो किसने फेके ये चावल के दाने? आश्रम मे ऐसा कभी भी न हुआ था। तो तोझान के मन मे विचार उठा देखकर, किसने फेके ये चावल के दाने, किसने फेके ये गेहू। कहते है, उसी वक्त देवताओ ने उसके दर्शन कर लिये। क्योकि जब विचार उठा तो बादल घिरा। जब बादल घिरा तो आकृति आ गई। उस वक्त पकड़ लिया देवताओ ने तोझान को। एक क्षण को ही उठी लहर, पर उठ गई। एक क्षण को कुछ सघन हो गया, भीतर एक तनाव आ गया किसने, क्यो फेके ये? यह कैसी गैर-सावधानी है? यह कौन है जो असावधानी से जी रहा है? एक प्रश्न उठ गया। एक समस्या आ गई। एक चिंता आ गई। बादल घिरे। क्षणभर को सब अधेरा हो गया। उस क्षण मे देवताओ ने दर्शन कर लिये। फिर खुल गये बादल।

तोझान हसा। उसने कहा, 'तो अच्छा, यह शरारत है।' उसने देवताओ से कहा, 'अच्छा तो यह शरारत है।' क्योकि जब तोझान का चेहरा आया और देवताओ ने तोझान को देखा, तो तोझान ने भी देवताओ को देख लिया। उसने कहा, 'अच्छा, तो यह तुम्हारी शरारत है।'

जरा-सा विचार, और तनाव पैदा हो जाता है। निर्विचार, कि आकाश पैदा हो जाता है।

तो श्याम-श्याम रटने से कुछ भी न होगा। रटन ही तनाव बनेगी, बादल बनेगी। राम चदरिया ओढ लेने से कुछ भी न होगा। सब चादर उतार देनी है।

जिस क्षण तुम्हे पता भी न रहेगा कि परमात्मा की प्रतिमा कैसी, नाम भी याद न रहेगा कि उसका नाम क्या है, उसका धाम क्या है, पता-ठिकाना क्या है, जिस क्षण तुम अबूझ, आश्चर्यचकित, अवाक, मौन, निराकार मे खडे हो जाओगे—फिर कोई साझ न होगी, फिर सुबह ही सुबह है।

परमात्मा के जगत मे सुबह ही सुबह है, आदमी के जगत मे

साझ ही साझ है। आदमी के जगत मे सुबह होती है सिर्फ साझ को लाने के लिए। आदमी के जगत मे जन्म होता है केवल मृत्यु की तरफ जाने के लिए। यहा जन्म भी मौत की तरफ एक कदम है। यहा सुख भी केवल दुख को पाने की व्यवस्था है। परमात्मा के जगत मे फिर कोई साझ नहीं है, वह तो सदा ही मौजूद है।

उलटा उधर नकाब तो परदे इधर पड़े
आखो को बद जलवए-दीदार ने किया।

तुम किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? उसका ही जलवा है। उसके ही दर्शन की रोशनी है सब तरफ। तुम किसे खोजते हो? कही उसकी रोशनी के कारण तुम आखे बद किये तो नही बैठे?

उलटा उधर नकाब तो परदे इधर पड़े।

परमात्मा जैसे ही अपना घूघट उठाता है, तुम्हारी आखे बद हो जाती है।

उलटा उधर नकाब तो परदे इधर पड़े
आखो को बद जलवए-दीदार ने किया।

उसकी रोशनी तुम झेल नहीं पाते, आख बद कर लेते हो। जिस दिन तुम उसकी रोशनी झेल पाओगे, ककड़-पत्थर मे भी उसे छिपा पाओगे। ककड-पत्थर मानकर तुमने अपनी आखे बद कर ली है। फिर से खोलो। आख खोलो। दर्शन को उपलब्ध होओ।

जिन्होने उसे पाया है, वे कहते है दो दुख है जीवन मे। एक, उसे पाने के पहले, एक, उसे पाने के बाद। पाने के पहले का दुख नकारात्मक है। पाने के बाद का दुख बडा विधायक है। पाने के बाद के दुख मे बडा रस है। उस पीड़ा मे बडी मधुरता है, मधुरिमा है। इसलिए तो नारद कहते है, भक्त भगवान से प्रार्थना करता है 'मेरे विरह को मत मिटा देना।' यह पाने के बाद की पीड़ा है। तब एक खेल शुरू होता है। वह खो-खोकर फिर-फिर पाता है, आख बद-बद करके फिर खोलता है।

तुमने कभी खयाल किया। कोई बहुत चमत्कारी अनुभव होता हो, बडी गहन सुबह हुई हो, सूरज निकला हो, बडा प्रीतिकर हो वातावरण—तुम देखते हो, फिर तुम आख बद करके, फिर खोलकर देखते हो। एक क्षण को आख बद कर लेते हो ताकि खो जाये, ताकि आख ताजी हो जाये। फिर देखते हो।

परमात्मा को जिन्होने पाया है, वे कहते है दो दुख है। एक तो उसे पाने के पहले का दुख। वह कुछ भी नही है। वह तो सिर्फ उजाड़ रेगिस्तान जैसा था। एक उसे पाने के बाद का दुख। क्योकि पाने के बाद, और पाने की अदम्य लालसा जगती है। यह कोई ऐसी बात थोड़े ही है कि पूरी हो जाती है कभी। परमात्मा कुछ ऐसा थोड़े ही है कि पा लिया, पा लिया। इधर तो पाया कि और भी पाने की आकाक्षा जगती है। यह तो सागर अतहीन है। इसका कोई कूल-किनारा नही है।

जाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नही
हो गई है मुझमे इक ऐसी कमी तेरे बगैर।

मगर यह तो जानने के बाद की बात है। जानने के पहले तो हमे पता ही नही कि हम क्या खो रहे है। जानने के पहले तो हमे पता ही नही है कि हम सम्राट है और भिखारी की तरह भटक रहे है। जानने के बाद—

जाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नही
हो गई है मुझमे इक ऐसी कमी तेरे बगैर
तुझसे छुटकर कितना फीका पड गया है रगेगुल
हो गई बेले की कलिया सावली तेरे बगैर
कल जहा जर्रा-जर्रा तूरदर आगोश था
आज इस घर मे नही है रोशनी तेरे बगैर
दिल नही झुकता है पहले की तरह सजदो के साथ
नामुकम्मिल है मजाके-बदगी तेरे बगैर।

और तो और, प्रार्थना मे भी मन नही लगता अब। जिसने परमात्मा की एक झलक पा ली, फिर प्रार्थना मे भी मन नही लगता, क्योकि प्रार्थना मे भी उसकी कमी ही खलती है।

दिल नही झुकता है पहले की तरह सजदो के साथ
नामुकम्मिल है मजाके-बदगी तेरे बगैर।

किसी को दिखाई भी न पड़ेगा बाहर से। परमात्मा को पाना, ससार मे कुछ पा लेने जैसी बात नहीं है। एक मकान बना लिया, बना लिया—बात खतम हो गई। एक पत्नी से विवाह करना था, रचा लिया—बात खतम हो गई। परमात्मा से तो सिर्फ बात शुरू होती है, खतम कभी नहीं होती। इसलिए तो कहता हू सुबह ही सुबह है, साझ नही आती। यात्रा का प्रारभ तो है, फिर अत नही है। सागर मे उतरते तो है, लेकिन फिर किनारा नहीं मिलता। लेकिन तब एक तरफ तो पीड़ा भी सालती है कि और मिल जाये, गहन अतृप्ति जगती है, एक दिव्य असतोष पैदा होता है, और दूसरी तरफ हर तरफ से उसकी झलक भी आने लगती

है। रह-रहकर उसके झोके आ जाते है हवा के। रह रहकर उसकी गध तैर जाती है।

बहार जब भी चमन मे दीये जलाती है
हुजूमे-गुल से मुझे तेरी आच आती है।

बहार जब भी चमन मे दीये जलाती है—जब बसत आ जाता है और बगीचो मे दीये जलते है, फूलो के दीये जलते है हुजूमे-गुल से मुझे तेरी आच आती है। तब फूलो के गुच्छो से मुझे तेरी आच आती है। हर तरफ जीवन उसी की आच देने लगता है। हर श्वास उसी की श्वास है। हृदय मे दौडते हुए रक्त-कण उसी के है। तो एक तरफ तो सब तरफ से उसकी खबर मिलने लगती है, और दूसरी तरफ, और चाहिए, और चाहिए, और चाहिए, क्योकि दूसरा किनारा नही मिलता।

भक्त भगवान को पाकर और भी विरह मे पड़ जाता है। यह भक्ति का विरोधाभास है। जिन्होने नही पाया है, वे तो कभी-कभी रोते है उसके लिए, कभी-कभी श्याम-श्याम की रटन करते है, जिन्होने पाया है, उनके रोने का तुम्हे कुछ पता ही नही। वे रोते ही रहते है। कभी रोते है, कभी नही रोते—ऐसा नही, रोते ही रहते है। रटन करते है, ऐसा भी नही है, लेकिन फिर भी रटन होती रहती है। दूर गहन गहरे हृदय मे पुकार चलती ही रहती है।

परमात्मा एक अनत यात्रा है, ऐसा तीर्थ है जिसकी तरफ हम चलते तो है, लेकिन कभी पहुच नही पाते। परमात्मा गतव्य नही है। हम उसकी तरफ गति करते है, लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि हम कह दे, बस अब आगे और नहीं। अगर ऐसा होता तो परमात्मा को अनत कहने का कोई भी अर्थ न था। अगर आगे और नही तो परमात्मा भी शात है, पूरा हो गया। नही, सदा शेष है। यही दुविधा भी है, यही सौभाग्य भी। नही तो सोचो, जिसने पा लिया वह क्या करता? ऊबकर, थककर बैठ जाता 'अब क्या करू? अब कहा जाऊ? अब क्या बनू? अब क्या हो जाऊ? अब किसको खोजू?'

अनत है। रोज-रोज नये-नये शिखर उसके पुकारते है। रोज नयी चुनौती आ जाती है। वह बुलाता ही चला जाता है। तुम पास भी आते चले जाते हो और फिर भी उसे छू नही पाते।

'आपकी शरण आयी हू, स्वीकार करो। कहीं चूक न जाऊ ।'

चूकने का उपाय नहीं है। हा, तुम मानना चाहो तो माने रह सकते हो कि चूके हो। चूकना तुम्हारी भ्राति है। जिस दिन जानोगे उस दिन हसोगे—हसोगे इस मूढ़ता पर कि अब तक कैसे मैने माने रखा कि चूक गये थे, परमात्मा को चूक गये थे, भूल गये थे। यह कैसे सभव हुआ था कि अब तक मै समझ न पाया था कि वह हमेशा मौजूद है, सब तरफ मौजूद है।

कबीर कहते है कि मुझे देख-देखकर बड़ी हसी आती है कि मछली सागर मे प्यासी है। मछली सागर मे प्यासी है। और सागर को मछली खोज रही है, कहा है।

ईश्वर की सारी खोज ऐसे ही है जैसे मछली सागर को खोजती हो, कहा है। इतने निकट है कि खोजने का अवकाश भी कहा है। मछली सागर से ही बनती है, सागर मे ही पैदा होती है। सागर ही मछली के भीतर भी लहरे लेता है, बाहर भी लहरे लेता है। फिर सागर मे ही लीन हो जाती है एक दिन, खो जाती है। सागर की ही एक लहर है मछली—थोड़ी ज्यादा ठोस, थोडी ज्यादा देर टिक जानेवाली—थोड़े ज्यादा दिन उछल-कूद कर लेती है और लहरो की बजाय, लेकिन लहर सागर की है।

इसलिए घबडाओ मत। चूकने का उपाय नही है। मै तुम्हे जो समझा रहा हू, वह पाने का उपाय नही बता रहा हू, तुम्हे सिर्फ यह समझा रहा हू कि तुमने चूकने के लिए जो उपाय बना रखे है, वे छोड़ दो। साधारणत लोग कहते है कि हमे विधि बताओ कि कैसे हम परमात्मा को पा ले। मै तुमसे कहता हू, मै तुम्हे जो विधि बतला रहा हूं, वह परमात्मा को पाने की नहीं है, क्योकि उसको तो कभी खोया नही, वह तो बात ही छोड़ दो, वह बकवास तो मेरे सामने उठाओ ही मत। कोई मछली मुझसे पूछे सागर कहा है, मै जवाब देनेवाला नही हू, क्योकि मै क्यो फिजूल पचायत मे पडू। वह तो नासमझ है ही और मुझको भी नासमझ बनाने की तैयारी है। तो मै तो यही समझने की कोशिश करूगा कि यह मछली कैसे भूल गई है, यह मछली कैसे अपरिचित रह गई है। इसके अपरिचय को तोड देना हैं।

परमात्मा से परिचय थोड़े ही बनाना है, अपने अपरिचय के जो ढग है, वे तोड़ देने है। पर्दे उठा लेने है, जो हमने डाले है—परमात्मा तो सामने ही है। उसके चेहरे पर कोई घूघट नही है, हमारी ही आखो पर पर्दा है। फिर पर्दा डाले तुम कही भी घूमते रहो, काशी कि काबा, कोई फर्क न पडेगा। तुम्हारी आख

पर पर्दा है, तुम जहा जाओगे—तुम्हारी आख का पर्दा तुम्हारी आख का पर्दा जन्मो-जन्मो तक तुम्हे घेरे रहेगा।

इसलिए यह तो पूछो ही मत कि कही चूक न जाऊ। कोई उपाय नही चूकने का। अब तक कोई चूक ही नही पाया है। हां, लेकिन तुम अगर मानना चाहो कि चूक गये है तो क्या करे, सागर भी क्या करे? मछली को कैसे समझाये कि मै यहा हू? मछली की अगर यही मौज है कि चूकना चाहती है, चूकती रहे।

और कहा है, आपकी शरण आयी हू, स्वीकार करो। अस्वीकार कर सकता होता तो स्वीकार करता। मुझसे लोग पूछते है कि आप हर किसी को सन्यास दे देते है। करू क्या? अस्वीकार करने का उपाय नही है। किसको अस्वीकार करू? मै तो उनको भी देना चाहता हू, जो लेने नही आये है, मगर क्या करू। जो आ जाता है उसको इनकार करने का तो सवाल कैसे उठे? तुम्हारे आने के पहले भी तुम्हे स्वीकार किया हुआ है। ऐसा नहीं है कि तुम्हारे बाबत सोचता था कि तुम्हे स्वीकार करना है। स्वीकार मेरी भाव-दशा है। ऐसे एक-एक आदमी के बाबत तो सोचूगा भी कैसे कि किस-किसको स्वीकार करू? स्वीकार मेरी भाव-दशा है। अस्वीकार करने का मेरे पास उपाय नही है। निर्णय तुम्हारा है, इकतरफा है। मुझे स्वीकार कर लो या मुझे अस्वीकार कर दो, यह तुम्हारी बात है। मेरी तरफ से तुम स्वीकृत हो, स्वीकार करो तो, अस्वीकार करो तो।

और घबड़ाओ मत। प्यास आ गयी है तो पानी भी आयेगा। जाननेवाले तो कहते है, पानी पहले आ गया होगा, तभी प्यास आयी है। क्योकि जाननेवाले कहते है, परमात्मा बच्चे को पैदा करता है, उसके पहले मा के स्तन मे दूध भर देता है। देखा है चमत्कार। रोज घटता है, लेकिन देखते नही। इधर मा गर्भवती हुई, उधर बच्चा बढने लगा। अभी बच्चा आया भी नही है बाहर, अभी दूध पीनेवाला तैयार ही हो रहा है, अभी रास्ते पर है—लेकिन दूध तैयार हो गया। मा के स्तन दूध से भर जाते है। बच्चा जब आयेगा तब आयेगा, लेकिन परमात्मा तैयारी पहले से कर लेता है।

ऐसा ही सारे जीवन मे है। तुम नाहक ही दौड़-धूप करते हो। यह बात अलग है, तुम नाहक शोरगुल मचाते हो। वह तो बच्चे को भी थोडी बुद्धि हो तो वह भी बडी चिता करेगा गर्भ मे पडा-पडा कि पता नहीं, अब जन्म के बाद क्या होता है, देखे। न तो कोई बैक-बैलेस है, न कोई जान-पहचान है, अपरिचित दुनिया मे जाते है, भाषा भी पता नहीं कि क्या भाषा बोलनी पड़ेगी। किस तरह के लोगो से मिलना होगा, कुछ पता नहीं है। तो बच्चा भी अगर समझदार हो जाये, जैसा कि कुछ लोग समझदार है, तो रुक जाये वहीं कि जाना नही। यहा सब मजे से चल रही है, ठीक से चल रही है, कहा की झझट उठानी। भूख लगेगी तो कौन दूध देगा। प्यास लगेगी तो कौन पानी देगा।

मा के पेट मे तो श्वास भी मा ही लेती है, उसी से बच्चे को आक्सीजन मिलती है। श्वास भी वह खुद नही लेता। मा के ही भोजन पर पलता है।

लेकिन उसे पता नहीं कि जिसने उसे बनाया है, उसने इतजाम कर रखा है। वह आये, उसके पहले दूध तैयार है।

मनोवैज्ञानिक कहते है कि पुरुषो को इतनी ज्यादा रस की, आकर्षण की बात स्त्री के स्तन मे क्यो है? पुरुष के मन मे स्त्री के स्तन का बड़ा आकर्षण है। काव्य-शास्त्र भरे पडे है। कविताए उरोजो के, स्तनो के आसपास घूमती है। कहानिया । क्या कारण है? वह भी परमात्मा की व्यवस्था है। क्योकि जो पिता बनने जा रहा है, इसके पहले कि पिता बने, वह अपने बेटे के लिए ठीक उरोज, भरे उरोजो का इतजाम कर ले रहा है। वह भी परमात्मा का आयोजन है। पुरुष के मन मे स्त्री के स्तन का इतना आकर्षण है—वह आकर्षण इसीलिए है। वह प्रकृति की व्यवस्था है, क्योकि अगर स्त्री के स्तन ठीक न हो, सुडौल न हो, भरे न हो, भरे-पूरे न हो, तो बच्चा भूखा मरेगा। तो पुरुष उस स्त्री को खोजेगा, जिसके स्तन भरे-पूरे है। वह उसे सुदर मालूम होगी। सुदर वगैरह मालूम होना तो ठीक है, मगर पीछे प्रकृति बडा आयोजन कर रही है, वह यह कह रही है कि यह स्त्री है जो तेरे बच्चे की मा बन सकेगी। यह बच्चे को बचाने का आयोजन चल रहा है, तुम धोखे मे पड़ रहे हो—तुम समझ रहे हो, तुम सौदर्य का इतजाम कर रहे हो।

इसलिए जिन स्त्रियो के स्तन ठीक नहीं है, वे धीरे-धीरे खो जायेगी, उनको पति न मिलेगे, उनकी सतान न होगी। वे धीरे-धीरे खो जायेगी।

जीवन के रहस्य को अगर तुम समझो तो यहा प्यास के पहले पानी तैयार है, श्वास के पहले हवा तैयार है। और इसकी समझ जिसको आ गई, उसी के जीवन मे श्रद्धा का आविर्भाव होता है।

हो नही सकता कि शीशा आए और सहबा न आए
मय भी आएगी 'अदम' जब आबगीना आ गया।

—जब प्यालिया आ गईं, जब मधुपात्र आ गये, तो शराब भी आती ही होगी।

हो नही सकता कि शीशा आए और सहबा न आए
मय भी आएगी 'अदम' जब आबगीना आ गया।

—जब प्यालियो की खनक आने लगी, तो शराब भी आती ही होगी। तो जिसके जीवन मे परमात्मा को खोजने की आकाक्षा आ गई, प्यास आ गई—अब घबड़ाओ मत, राह पर हो। ठीक दिशा मे उन्मुख हो गये हो। अब डरो मत, अब प्यास को पकड़ने दो कि तुम्हे पकड ले झझावात की तरह, आधी-अधड़ की तरह। अब उडाने दो प्यास को कि बन जाये तुम्हारे पख। अब मथने दो प्यास को कि बन जाये आग और जला दे तुम्हारे अहकार को।

हो नही सकता कि शीशा आए और सहबा न आए
मय भी आएगी 'अदम' जब आबगीना आ गया।

दूसरा प्रश्न कल के प्रवचन मे आपने नककटे साधु की कहानी सुनायी, जिसके चक्कर मे पड़कर पूरा गाव नाक गवा बैठा था। क्या करीब-करीब यही स्थिति आपके सन्यासियो की नही है?

देखो, मेरी नाक तुम्हे साबित दिखाई पड़ती है या नही। क्योकि कहानी के होने के लिए पहले तो मै नककटा होना चाहिए। न तो गेरुआ वस्त्र पहने हू, न माला लटकाई है। अपनी ही नाक नही कटी, तुम्हारी क्यो काटूगा?

इसलिए कहानी यहा लागू हो नही सकती।

हा, जिन मित्र ने पूछा है, उनको जरा अपनी नाक टटोलकर देख लेनी चाहिए। कही ऐसा तो नहीं है कि है ही नही अब कटाने को। कही पहले कटा तो नही बैठे। क्योकि मैं मुश्किल से ऐसे आदमी के करीब आता हू जो नककटा न हो। अगर तुम हिदू हो तो नाक कटा चुके। हिदुओ के हाथ कटा ली। अगर मुसलमान हो तो कटा चुके—तो मस्जिद मे कटायी, मदिर मे न कटायी। अगर जैन हो तो कटा बैठे।

यह प्रश्न किसी नककटे का होना चाहिए, जो कहीं कटा बैठा है और जिसे बड़ी बेचैनी हो रही है।

और या फिर किसी ऐसे आदमी का होना चाहिए, जिसका अहकार उसकी नाक पर बैठा है।

अहकारी की नाक देखी। अहकारी नाक की भाषा मे बोलता है। उसका सारा अहकार नाक पर होता है। अगर नाक पर अहकार बैठा हो, इससे बेचैनी मालूम हो रही है, तो कटा ही लो। न रहेगा बास, न बजेगी बासुरी। नाक ही न रहेगी तो अहकार को बैठने की जगह न रह जाएगी। कटा ही लो प्यारे।

कही कोई गहरी अडचन होगी प्रश्नकर्ता को। मै जानता हू, अड़चन होती है। यहा इतने लोग गैरिक वस्त्रो मे है। यहा इतने लोग सन्यासी के वेश मे हैं—तुम जब गैर-सन्यासी की तरह आते हो, तुम हीन-भाव अनुभव करते हो। लक्ष्मी कल ही मुझे कहती थी कि दफ्तर मे लोग उससे आकर कहते है कि सफेद कपडो मे हम यहा ऐसे मालूम पडते है जैसे अजनबी है, पराये है, बाहर-बाहर है। स्वाभाविक है। यह एक परिवार है। यह मेरा परिवार है। वस्त्रो का ही थोडे ही सवाल है, वस्त्र तो केवल इगित है, इशारे है। जिन्होने गैरिक वस्त्र स्वीकार किये है, उन्होने तो केवल इतना कहा है कि इस इशारे से हम कहते है कि अब हम तुमसे राजी है। यह तो सिर्फ एक भाव-भगिमा है। उन्होने यह कहा है कि अब हम हमारा तर्क छोडते, विवाद छोडते—अब तुम जहा ले चलोगे, चलेगे, चलो, गड्ढे मे ले चलोगे तो गड्ढे मे चलेगे, भटकाओगे तो भटकेगे, लेकिन तुम्हारे साथ भटकेगे। जिन्होने मुझे चुना है उन्होने यह मानकर चुना है—इसलिए नही कि मै उन्हे ठीक जगह ही पहुचा दूगा। इसका तो पता कैसे होगा जब तक पहुचोगे न। इसका तो कोई उपाय नहीं है, पहले से जान लेने का। जिन्होने मुझे चुना है उन्होने यह मानकर चुना है कि चलो, अब ठीक जगह भी पहुचना अगर इस आदमी के बिना होता हो तो भी इस आदमी के बिना नही चलना है। अगर यह गड्ढे मे ले जायेगा तो इसके साथ गड्ढे मे सही। उन्होने अपने विचार करने की, अपना निजी विचार करने की, जो अस्मिता थी, वह छोडी है। कपड़े तो गौण है। कपडो मे क्या रखा था? कपड़ो से कही कोई सन्यासी हुआ है। लेकिन वह तो इगित है और इगित समझने चाहिए।

ऐसा हुआ कि रामकृष्ण की एक रात बैठक चलती थी। कुछ बैठे थे लोग। कोई इसी तरह के सज्जन, जिन्होने यह प्रश्न पूछा

है, वहां पहुच गये। सभी जगह पहुच जाते है। इस तरह के लोग क्यो भटकते रहते है, यह भी बड़े आश्चर्य की बात है। अपने घर ही रहे। अपनी नाक बचानी है, अपने घर ही रहो, यहा-वहा जाने मे कही कट ही जाये। कोई रौ आ जाये, कोई सनक चढ़ जाये, किसी भावावेश मे कटवा बैठो, फिर पछताओगे।

रामकृष्ण की बैठक मे कोई पहुच गये ज्ञानी। पडित थे, जानकार थे शास्त्रो के। रामकृष्ण कह रहे थे कि ओकार के नाद से बड़ी उपलब्धि होती है। ज्ञानी को अड़चन पड़ी। उसने कहा, ठहरे। क्योकि ज्ञानी जानता है कि रामकृष्ण गैर पढ़े-लिखे है, शास्त्र का तो कुछ पता नहीं है, हाक रहे है, सस्कृत तो आती नही, कुछ भी कहे चल जा रहे है। वह अपना ज्ञान दिखाना चाहता था। उसने कहा कि शब्दो मे क्या रखा है। ओकार तो केवल एक शब्द है, इसमे रखा क्या है? इससे कैसे आत्मज्ञान हो जायेगा?

बात तो पते की ही कह रहा था, लेकिन खुद आदमी पते का नही था। रामकृष्ण ने उसकी तरफ देखा, चुप बैठे रहे। वह और जोर-जोर से शास्त्रो के उल्लेख करने लगा और उद्धरण देने लगा। कोई आधा घटा बीत गया, तब रामकृष्ण एकदम से चिल्लाये 'चुप, उल्लू के पट्ठे। बिलकुल चुप। अगर एक शब्द बोला आगे तो ठीक नही होगा।'

'उल्लू के पट्ठे' तो मै कह रहा हू, रामकृष्ण ने ज्यादा वजनी गाली दी। तो रामकृष्ण कोई छोटी-मोटी बकवास नहीं मानते थे, वे जब गाली देते थे तो बिलकुल नगद। वह आदमी घबड़ा गया, तमतमा गया एकदम। क्रोध भर गया आख मे। जोश आ गया। साझ थी ठडी, शीत के दिन थे, पसीना-पसीना हो गया। पर हिम्मत भी न पड़ी, क्योकि अब रामकृष्ण ने इतने जोर से कहा है, और अगर कुछ गडबड़ की तो मारपीट हो जायेगी, वहा सब रामकृष्ण के भक्त थे। फिर, रामकृष्ण फिर अपना समझाने लगे कि ओकार । कोई पाच-सात मिनट बाद उस आदमी की तरफ देखा और कहा, महानुभाव। माफ करना। वह तो मैंने सिर्फ इसलिए कहा था कि देखे शब्द का असर होता है कि नही। तुम तो बिलकुल तमतमा । 'उल्लू के पट्ठे' का इतना असर, तो जरा सोचो तो ओकार का। पसीना-पसीना हुए जा रहे हो, मरने-मारने पर उतारू हो। वह तो यह कहो कि लोग मौजूद है, नहीं तो तुम मेरी गर्दन पर सवार हो जाते। हाथ-पैर तुम्हारे कप रहे है। जरा-सा शब्द 'उल्लू के पट्ठे' मत्र का काम कर गया। जरा सोचो तो। शास्त्र काम न आये। इतना तो याद रखते कि 'शब्दो मे क्या रखा है।'

वस्त्रो मे क्या रखा है, पूछते हो? माला मे क्या रखा है, पूछते हो? उल्लू के पट्ठे। थोड़ा सोचना, थोड़ा विचार करना।

आदमी जैसा है, छोटी-छोटी बातो से जीता है। क्षुद्र-क्षुद्र बातो से बनकर, मिलकर तुम्हारा व्यक्तित्व बना है। वह जिसने गैरिक वस्त्र स्वीकार किये है, वह भी जानता है, तुमसे ज्यादा भलीभाति जानता है कि वस्त्रो से कुछ भी होनेवाला नही है, लेकिन उसने एक कदम उठाया है, होने की दिशा मे थोड़ी हिम्मत की है, पागल होने की हिम्मत की है। मेरे साथ चलने की हिम्मत पागल होने की हिम्मत है। क्योकि मेरे साथ चलने का मतलब है समाज मे अड़चन होगी, परिवार मे अड़चन होगी। अगर पति हो तो पत्नी झझट देगी। अगर पत्नी हो तो पति झझट देगा। अगर बाप हो तो बच्चे झझट देगे।

सन्यासी मेरे पास आकर कहते है कि बेटे कहते है, 'पिता जी। आप घर मे ही पहनो ये वस्त्र तो ठीक है, क्योकि स्कूल मे दूसरे बच्चे हम पर हसते है कि तुम्हारे पिताजी को क्या हो गया। भले-चगे थे, यह क्या इनको धुन सवार हुई।' पत्निया मेरे पास आती है। कहती है कि जरा समाज मे जीना है, कम से कम इतना तो कर दो कि विवाह इत्यादि के अवसर पर पतिदेव गेरुआ पहनकर न पहुचे, नही तो दुल्हा तो एक तरफ रह जाता है, ये दुल्हा मालूम पड़ते है। और स्त्रिया देखकर हसती है कि इनको क्या हो गया।

कोई मेरे साथ खडे होकर तुम्हे कुछ राहत थोड़े ही मिल जायेगी। अड़चन मे डालूगा। यह तो अड़चन मे डालने की शुरुआत है। जैसे-जैसे पाऊगा कि तुम्हारी अगुली हाथ मे आ गई, पहुचा पकड़ूगा। यह तो शुरुआत है। आगे-आगे देखिए होता है क्या।

तीसरा प्रश्न भीतर विचारो की ऐसी भीड़ है कि भगवान का भी भगवान जैसा गुरु पाकर भी इस जन्म मे पहुचने की आशा नही बधती। बिना कारण आसू बहाता हू, रोता हू, चीखता-चिल्लाता हू, फिर भी मौका आने पर न अहकार से बच पाता हू और न भीतर की बड़बड़ाहट से। प्रभु श्री, यदि

इस जन्म मे भी नहीं पहुच पाया, तो फिर क्या अगला पथ वैसा ही कोरा रह जायेगा? आप भी सहायता न कर पायेगे क्या?

नहीं, चिता का कोई भी कारण नहीं है। विचारो की भीड़ है। छुटकारा आसान भी नहीं। लेकिन छुटकारा आसान नहीं है, इससे यह मत समझना कि विचारो की भीड़ बड़ी बलशाली है। नहीं। छुटकारा इसीलिए कठिन मालूम पड़ रहा है कि तुमने विचारो की भीड़ से लड़ना शुरू कर दिया है, वहा भूल हो गई है। ताकत विचारों की नहीं है—तुम्हारे गलत आयोजन की है। जैसे अधेरा कमरे मे भरा हो और तुम धक्के देकर उसे बाहर निकालना चाहो और अधेरा तो नहीं निकलेगा ऐसे, तो तुम्हारे मन मे लगेगा, अधेरा बड़ा प्रबल है, बड़ा बलशाली है। जन्म-जन्म भी धक्के मारो अधेरे को तो न निकलेगा, यह सच है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अधेरा बलशाली है। इससे केवल इतना ही पता चलता है कि धक्का मारना सम्यक उपाय नही है। जितनी ताकत धक्का मारने मे लगा रहे हो उतनी ताकत दीये को जलाने मे लगाओ। दीया खोजो। जरा-सा, छोटा-सा दीया, जरा-सी दीये की बाती, और अधेरा बाहर हो जायेगा। धक्के मारने से अधेरा बाहर नहीं होता, क्योकि अधेरा है ही नही, धक्का मारोगे कैसे उसे? जो नही है उसे धकाया नही जा सकता। उसकी ताकत नही है कुछ भी। उसका बल इसी मे है कि वह नही है। कुर्सी होती, फर्नीचर होता, निकाल बाहर कर देते। पति-पत्नी होते, उन्हे भी धक्का देकर बाहर कर देते। अधेरे को कैसे करोगे? दीया जलाओ। सम्यक आयोजन करो। ठीक साधन खोजो।

विचार अंधेरे की भाति है। तुम उन्हे धक्के देकर बाहर न कर पाओगे। जितना धक्का दोगे उतना ही पाओगे कि वे बलशाली होते जा रहे है। उतने ही तुम कमजोर मालूम पड़ोगे। हर बार हारोगे, हर बार हारोगे, आत्मविश्वास खो जायेगा। फिर रोओगे, चीखोगे, चिल्लाओगे। उससे भी क्या होगा? कुछ भी न होगा। क्योंकि न तो अधेरा सुनेगा रोने को, न चीखने को, न चिल्लाने को। अधेरा तो मानता है एक ही भाषा—वह है प्रकाश की भाषा। और विचार भी मानते है एक ही भाषा—वह है साक्षी-भाव की भाषा।

साक्षी बनो। जितनी बार कहा जाये उतना ही थोड़ा है साक्षी बनो। इसमे अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। साक्षी एकमात्र सूत्र है। विचारो से लड़ो मत—देखो। चलने दो, क्या बिगाड़ते है। चलने दो जैसे राह चलती है, कारे गुजरती है, बसे गुजरती है, बैलगाड़िया गुजरती है, अच्छे-बुरे-भले लोग गुजरते है, शैतान-साधु गुजरते है—राह चलती है, तुम राह के किनारे बैठे रहो, देखते रहो चलती राह को। जैसे राह बाहर चल रही है, ऐसे ही विचारों का कारवा भी भीतर चल रहा है, लेकिन वह भी तुमसे बाहर है। शरीर के भीतर है, तुमसे बाहर है। तुम तो वह चैतन्य हो जो देखता है कि ये विचार चल रहे है।

तादात्म्य छोड़ो। दूर खड़े होकर देखते रहो, देखते रहो, देखते रहो—इतना भी रस मत लो कि इन्हे अलग करना है। इतना भी रस लिया कि अडचन शुरू हुई, सबध बने।

मित्र से ही सबध नहीं बनते, शत्रु से भी बन जाते है। जिसके तुम पक्ष में हो उससे भी सबध बनता है। जिसके तुम विपक्ष मे हो उससे भी सबध बनता है—विपक्ष का सही। सबध मत बनाओ। साक्षी का इतना ही अर्थ है असबध, असग। दूर खडे देखते रहो। जैसे तुम किसी पहाड़ की चोटी पर बैठे हो और नीचे घाटियो मे काफिले गुजर रहे है लोगो के, गुजरने दो, तुम्हारा क्या लेना-देना है। बाहर कोयल बोल रही है, कभी कोई कुत्ता भौकेगा, कभी कोई कौवा काव-काव करेगा—इससे तुम अड़चन मे नही पड़ते। तुम सिर नही धुन लेते कि अब क्या करे, यह कुत्ता भौक रहा है। तुम सिर नही धुन लेते कि यह कौवा काव-काव कर रहा है। यह तुम्हारा मन भी काव-काव कर रहा है, भौक रहा है—भौकने दो। तुम इससे भी थोडे दूर हट जाओ। तुम इससे भी थोडे पीछे हट जाओ। और हटने मे अड़चन नहीं है, क्योकि तुम्हारा स्वभाव मन के पार है।

तो इसी क्षण पहुचना हो सकता है, पूरे जन्म की बाते क्या करनी, आगे जन्म की चिता क्या करनी। और ध्यान रखो, मेरी सहायता तुम्हे पूरी उपलब्ध है, उसमे रचमात्र कमी नही है। लेकिन अकेली मेरी सहायता से क्या होगा? मै इशारा कर सकता हू, चलना तो तुम्हे ही पडेगा। मै औषधि बता सकता हू, लेकिन पीना तो तुम्हे ही पड़ेगी। मै निदान कर सकता हू, लेकिन मेरे निदान से ही तो कुछ न होगा। औषधि भी दे सकता हू, उससे भी तो कुछ न होगा। औषधि का तुम्हे उपयोग करना पड़ेगा, तो ही बीमारी कटेगी। साक्षी की बात कर रहा हू, वह औषधि है।

उसका उपयोग करो।

और ध्यान रखना—

हर प्रदीप की पृष्ठभूमि मे
अधकार अनिवार्य है।
बिना सघनता क्षुद्र विरलता
कर सकती विस्तार नही
मिले बिना परिवेश शून्य का
सज पाता आकार नही।
हर प्रदीप की पृष्ठभूमि मे
अधकार अनिवार्य है।

अधकार तुम्हारा दुश्मन भी नही है। जरा प्रदीप जला लो, फिर तो अधकार भी सुख देगा। अधकार की मखमली चादर प्रकाश को और हजार गुना प्रज्वलित कर देती है। इसलिये तो दिन मे तारे नहीं दिखाई पडते—है तो अपनी ही जगह, कही चले नही गये है, दिन मे कुछ सो नहीं गये है, कहीं खो नही गये है, अपनी जगह है। पूरा आकाश तारो से भरा है, वैसा ही जैसा रात मे, लेकिन तारे दिखाई नहीं पडते, उनको पृष्ठभूमि चाहिए अधकार की। जब अधकार घेर लेता है, तब तारे चमक आते है। अमावस की रात जैसे चमकते है वैसे कभी नही चमकते।

तो जीवन को सृजनात्मक दृष्टि से देखो। यहा कुछ बुरा है, ऐसा कहकर लडो मत। जो बुरा है उसे पृष्ठभूमि बना लो, और जो शुभ है उसका दीया जलाओ—और तब तुम पाओगे, अशुभ ने भी शुभ को साथ दिया, अधेरे ने भी दीये को ज्योतिर्मय किया।

तब विचार भी ध्यान की पृष्ठभूमि बन जाते है। तब पाप भी पुण्य की पृष्ठभूमि बन जाते है। और तब ससार भी परमात्मा की खोज का उपाय हो जाता है। तब शरीर भी आत्मा का मदिर हो जाता है।

मेरा पूरा दृष्टिकोण अनिदा का है। किसी भी चीज की निदा का एक ही अर्थ होता है कि तुम उसका उपयोग करना न जान पाये, तुम समझ न पाये कि इसका क्या करे। तुमने जिसे मार्ग का पत्थर समझा, वह प्रतिमा भी बन सकती थी। तुमने जिसे मार्ग का पत्थर समझा, वह मार्ग की सीढ़ी भी बन सकती थी। तुम पत्थर मानकर बैठ गये और रोने लगे। मै कहता हू, सीढ़ी समझो, चढ़ो। मै कहता हू, अनगढ पत्थर देखकर नाराज मत होओ, जरा छैनी उठाओ, गढ़ो।

जीवन मे कुछ भी ऐसा नही है जिसका उपयोग न हो। पाप का भी उपयोग है, क्योकि उसी से पुण्य की सुवास उठती है। विचार का भी उपयोग है, अन्यथा निर्विचार कैसे हो पाओगे? ससार की जरूरत है, अन्यथा सत्य को कैसे खोजोगे? भटकना भी जरूरी है, अन्यथा पहुचोगे कैसे? एक बार तुम्हारे जीवन मे सृजनात्मक भाव आ जाये और हर चीज का सृजनात्मक मूल्य आ जाये, तो तुम पाओगे, सब चीज का तुमने उपयोग करना शुरू कर दिया।

कूड़ा-कर्कट भी फेकने जैसा नही है, उसका भी उपयोग हो सकता है। लेकिन तुम्हे सदियो से इस तरह की बाते सिखायी गई है—यह गलत, यह गलत, यह गलत, गलत और सही को विपरीत, दुश्मन की तरह खड़ा किया गया है, राम और रावण को लड़ाया गया है, भगवान और शैतान को खडित करके अलग कर दिया गया है, पाप और पुण्य, दिन और रात दुश्मन—इस दुश्मनी के भाव से तुम्हारी परेशानी हो रही है।

मै तुमसे कहता हू, दिन और रात दुश्मन नही है, एक ही खेल के हिस्से है। राम और रावण दुश्मन नही है, अन्यथा राम-कथा न बनेगी।

तुमने रामलीला मे देखा। पर्दे पर धनुष-बाण लिये खड़े है, लड़ रहे है, और पर्दे के पीछे राम और रावण बैठकर गपशप कर रहे है, चाय पी रहे है। जिदगी के पर्दे के पीछे भी मैने ऐसा ही देखा है। वहा जो सामने नाटक करते दिखायी पड रहे थे दुश्मनी का, पीछे गले लगकर बैठे है। होना भी ऐसा ही चाहिए, नही तो जीवन खड-खड होकर छितर जाता।

किसने सम्हाला है? ये जिदगी की सारी ईटे किस सीमेट से जुडी है? ये शुभ और अशुभ साथ-साथ कैसे खड़े है? साधु और असाधु कैसे साथ-साथ जुड़े है? सयुक्त है। और एक बार तुम्हे यह समझ मे आ जाये तो तनाव कम हो जायेगा। तब तुम पाओगे कि अगर कुछ अडचन हो रही है, तो मेरी समझ-बूझ मे कुछ कमी है।

मैने सुना है, एक महिला को सितार सीखने की धुन सवार हुई। तो पहले ही दिन चाहती थी कि मेघ-मल्हार हो जाये। पहले दिन चाहती थी कि पशु-पक्षी आ जाये। बार-बार जाकर खिड़की पर देख आती थी, अभी तक नही आये। न कोई भीड़ जुडी। उलटे पति जो घर मे बैठा था वह निकलकर बाहर चला

गया। बच्चे जो ऊधम कर रहे थे घर मे, वह भी सन्नाटा हो गया, वे भी कहीं निकल गये। पास-पड़ोसियो ने द्वार-दरवाजे बद कर लिये। तो उसने समझा कि निश्चित ही सितार मे कुछ भूल है। जिस दुकान से सितार खरीद लाई थी, फोन किया कि आदमी भेजो, सितार मे कुछ गड़बड़ है। आदमी आया, ठोक-पीटकर सब उसने कहा, बिलकुल ठीक है। आदमी वापस पहुचा भी नहीं था कि फिर फोन उसने कहा, 'भई इतनी जल्दी कैसे बिगड गया?' उसने कहा कि न बजाओ तो सब ठीक रहता है, लेकिन बजाओ कि सब गड़बड़। तब उस आदमी को समझ मे आया। उसने कहा कि 'देवी। बजाना भी आता है?'

सितार की भूल नही है—बजाना आता है कि नही।

कहते है, परम सगीतज्ञ, जिनको बजाने की कला आ जाती है, अगर बर्तनो को भी बजा दे तो सितार बज उठते है, ककड-पत्थरो को टकरा दे तो स्वरो का आरोह-अवरोह हो जाता है। सितार की भूल नही है। जीवन की कही कोई भूल नही है। बजाना न आया। थोड़ा बजाने की फिक्र करो। और बजाने का पहला सूत्र है स्वीकृति। सब, जो परमात्मा ने दिया है, उसका कुछ न कुछ उपयोग है, निरुपयोगी तो हो ही नही सकता अस्तित्व मे। होगा ही क्यो? फिर तो अस्तित्व न होगा, अराजकता होगी। सब उपयोगी है। और जल्दी मत करना काटने-पीटने की कि यह गलत है, इसे अलग कर दो, यह गलत है, इसे अलग कर दो।

जैसे क्रोध है अगर तुम क्रोध को काट डालो अब वैज्ञानिको के पास उपाय है कि शरीर की कुछ ग्रथिया काट डाली जाये तो आदमी का क्रोध समाप्त हो जाता है। कुछ ग्रथिया काट डाली जाये तो कामवासना समाप्त हो जाती है। तुम देखते ही हो, साड कैसे बैल हो जाता है। ग्रथि काट दी तो बड़ी सरल बात है यह तो। फिर ब्रह्मचर्य के लिए इतना उपद्रव क्यो मचाना। यह इतना सीधा हो जाता है कि साड देखते-देखते बैल हो जाता है। तो जरा-सी ग्रथिया काट डालो। क्रोध की भी ग्रथिया है, उसके भी हारमोन है—काट डालो! आज नहीं कल, खतरा है कि दुनिया की सरकारे आदमी से क्रोध की, बगावत की ग्रथियो को काट देगी। तो फिर कोई शोरगुल न होगा। फिर कोई हडताल न होगी। फिर कोई बगावत, विद्रोह न होगा, कोई क्राति न होगी।

लेकिन तुम जरा सोचो, जिस आदमी के जीवन से क्रोध की ग्रथि कट जाती है, उसके जीवन मे करुणा पैदा नहीं होती, सिर्फ क्रोध का अभाव हो जाता है। उस आदमी का जीवन पहले से बदतर हो जाता है। अब क्रोध भी न रहा। रूखा-रूखा, सूखा-सूखा अब कोई चीज उसे उद्वेलित नहीं करती, लेकिन करुणा का जन्म नहीं होता। क्योकि करुणा तो तब पैदा होती है जब तुम क्रोध की वीणा को बजाना सीख जाते हो।

वीणा तोड़ दी तुमने क्रोध की, तो क्रोध तो न होगा। जैसे कि अगर तुम वीणा फेक आये बाहर, तो विसगीत पैदा न होगा, लेकिन सगीत भी पैदा न होगा। क्रोध अगर तोड़ दो तो क्रोध तो पैदा न होगा, लेकिन करुणा भी पैदा न होगी, क्योकि करुणा उसी वीणा का सगीत है। सजे हुए हाथ, सधे हुए हाथ उसी वीणा पर करुणा को बजाते है—बुद्ध, महावीर—जिस वीणा पर तुम क्रोध बजाते हो। सधे हुए हाथ उसी जीवन-ऊर्जा से निर्विचार बजाते है, जिसमे तुम केवल विचारो की उलझन मे पड़ जाते हो। सधे हुए हाथ इसी शरीर मे अशरीरी को खोज लेते है, जिसमे तुम केवल हड्डी-मास-मज्जा पाते हो। भूल वीणा की नही है, इतना स्मरण रखना।

चूकने का कोई कारण नहीं है, जरा साज को सम्हालना है।

'बेदार' वह तो हरदम सौ-सौ करे है जलवे
इस पर भी गर न देखे तो है कसूर तेरा।

परमात्मा तो कितने-कितने ढग से नाचता है तुम्हारे चारो तरफ।

'बेदार' वह तो हरदम सौ-सौ करे है जलवे।
इस पर भी गर न देखे तो है कसूर तेरा।

और जैसा मै देखता हू, यह किसी एक ही व्यक्ति का प्रश्न नही है—'ईश्वर बाबू' ने पूछा है—सबका है। जैसा मै देखता हू, हर आदमी मजिल के सामने ही बैठा रो रहा है कि मजिल कहा, कि किस मार्ग से जाये।

हसरत पे उस मुसाफिरे-बेकस के रोइये
जो थक के बैठ जाता हो मजिल के सामने।

तुम्हे देखकर हसी भी आती है, रोना भी आता है। रोना आता है कि तुम बड़े परेशान हो रहे हो। हसी आती है कि व्यर्थ परेशान हो रहे हो। सामने ही द्वार है। मजिल के सामने ही थककर बैठे हो। कहीं चलकर जाना नही है। कही उठकर भी नही जाना है। क्योकि मजिल तुम्हारे बाहर नही है, तुम्हारे भीतर है, तुम्हारा

स्वभाव है, तुम्हारा स्वरूप है। थोड़े साक्षी को साधो। वीणा सुमधुर होने लगेगी। तार तालमेल मे आने लगेगे। थोड़े साक्षी को साधो, सगीत उठेगा। जैसे-जैसे साधते जाओगे वैसे-वैसे सगीत मधुर, सूक्ष्म होता जायेगा। और ऐसी भी घड़ी आती है—तब शून्य का भी सगीत उठता है। आ जायेगी घडी, क्योकि मै देखता हू मजिल के सामने ही तुम बैठे हो।

चौथा प्रश्न

बेमुरौअत बेवफा बेगाना-ए-दिल आप है,
आप माने या न माने मेरे कातिल आप है।
सास लेती हू तो यह महसूस होता है मुझे,
जानती हू दिल मे रखने के ही काबिल आप है।
गम नही है लाख तूफानो से टकराना पडे
मै हू वह किश्ती कि जिस किश्ती के साहिल आप है।

तरु ने पूछा है। बिलकुल ठीक है बेमुरौअत, बेवफा।

मुरौअत की नही जा सकती। करू तो तुम्हे रास्ते पर न ला सकूगा। कई बार सख्त होना पडता है। कई बार तुम्हे गहरी चोट भी करनी पड़ती है।

झेन फकीर डडा लिये रहते है। वे अपने शिष्यो के सिर पर डडे मारते है।

डडा मेरे पास भी है—सूक्ष्म है, उतना स्थूल नही है। जब लगता है, जरूरत है कि तुम नीद मे खोये जा रहे हो, तो डडा भी मारना पडता है। तो बेमुरौअत बिलकुल ठीक है, क्योकि प्रेम है तुमसे, इसलिए बेमुरौअत होना ही पडेगा। क्योकि प्रेम है, इसलिए तुम्हे जगाना ही पड़ेगा। और माना कि कई बार जब तुम्हे जगा रहा हू, तब तुम कोई मीठा सपना देख रहे हो, तो तुम नाराज भी होते हो।

'बेवफा बेगाना-ए-दिल'—ठीक है। तुम जितने मेरे करीब आओगे, उतना मै पीछे दूर हटता जाऊगा, क्योकि तुम्हे और आगे ले जाना है। इसलिए बहुत बार बेवफा मालूम पड़ूगा। बुलाऊगा पास और खुद दूर हट जाऊगा। पुकारूगा और जब तुम चल पड़ोगे तो तुम पाओगे कि मै वहा नहीं खडा हू जहा से पुकारा था।

इसलिए बहुत-से मित्र मेरे साथ परेशानी मे रहते है। वे कहते है कि हम जब तक राजी हो पाते है एक बात करने को, तब तक आप जा चुके, आप कुछ और कहने लगे।

मुझे रोज ही ऐसा करना पडेगा। क्योकि तुम्हे वहा ले जाना है—उस ला-मंजिल—उस जगह जिसके आगे फिर कोई और मजिल नही है। और अत समय मे भी तुम्हारे बीच से मुझे हट जाना पड़ेगा, क्योकि मै तुम्हारा द्वार हू, दरवाजा हू, तुम्हारी मजिल नही।

गुरु यानी गुरुद्वारा। गुरु का केवल इतना ही अर्थ है कि वह तुम्हे इशारा कर दे परमात्मा की तरफ और हट जाए। आखिरी घडी मे मै भी हट जाऊगा। जब तुम पहुचने-पहुचने के करीब होओगे, तब मुझे हट ही जाना पड़ेगा। अन्यथा मैं तुम्हारे लिए दीवाल हो जाऊगा, दरवाजा नही। फिर मै तुम्हे रोकूगा परमात्मा से। तो मुझे बेवफा होना ही पडेगा।

'आप माने या न माने मेरे कातिल आप है'—मानता हू। यह धधा ही कातिल होने का धधा है।

ठहरा गया है ला के जो मजिल मे इश्क की
क्या जाने रहनुमा था कि रहजन था, कौन था।

प्रेम की मजिल पर जो तुम्हे ले आता है, तय करना मुश्किल होता है कि वह पथ-प्रदर्शक था कि लुटेरा था।

ठहरा गया है ला के जो मजिल मे इश्क की
क्या जाने रहनुमा था कि रहजन था, कौन था।

तय करना बहुत मुश्किल है। क्योकि प्रेम की मजिल पर वही ला सकता है जो तुम्हे लूटता भी हो। वहा मार्गदर्शक और लुटेरे एक ही है, रहनुमा और रहजन एक ही है।

पूरा प्रयास यही तो है कि तुम्हे मिटा दू, ताकि तुम 'हो' सको। तुम्हारे अहकार को तोड़ दू, ताकि तुम्हारा निरहकार मुक्त हो सके, उठ सके। तुम्हारे अहकार की जजीर टूटे, तो ही तुम्हारे निरहकार की स्वतत्रता का आविर्भाव हो। लेकिन अगर तुम जन्मो-जन्मो तक जजीरो मे रहे हो, तो जजीरो को तुमने आभूषण मान लिया है। तो जब मै तुम्हारे आभूषण तोड़ूगा—मै समझता हू जजीरे, तुम समझते हो आभूषण—तो तुम्हे लगेगा कि यह तो आए थे गुरु के पास, यह आदमी कातिल सिद्ध हुआ। हम खोजते थे, कोई जो सात्वना देगा, इसने और सारी सात्वनाए छीन ली। हम खोजते थे, कोई जो हमारे शृगार को और थोडा बढ़ावा देगा, जो हमारे आभूषणो को और थोड़ी सजावट देगा।

लेकिन तुम जिसे आभूषण कहते हो, वह आभूषण नहीं। और तुमने जिसे अभी समझा है तुम हो, वह तुम नही—उसकी तो हत्या ही करनी पड़ेगी—बेमुरौअत। उस पर कोई दया नही की जा सकती। उसे तो मिटाना होगा। वही तो तुम्हारे पावो को जकड़े है।

'सास लेती हू तो यह महसूस होता है मुझे,
जानती हू दिल मे रखने के ही काबिल आप है।
गम नहीं है लाख तूफानो से टकराना पडे
मै हू वह किश्ती कि जिस किश्ती के साहिल आप है।'

तूफान से टकराने मे गम कैसा? क्योकि तूफान से टकराकर ही कोई किनारे को उपलब्ध होता है। किनारे के आसपास ही तूफान है, तूफानो के आसपास ही किनारा है। और अगर ठीक से कहे तो तूफान मे ही छिपा किनारा है।

मेरे डूब जाने का बाइस तो पूछो
किनारे से टकरा गया था सफीना।

नाव किनारे से टकराकर डूब गई, यह कारण है डूब जाने का।

मेरे डूब जाने का बाइस तो पूछो।
किनारे से टकरा गया था सफीना।

वह किनारा ही क्या जो तुम्हारी नाव को न तोड दे। वह किनारा ही क्या जो तुम्हे तुम्हारी नाव से मुक्त न कर दे। नाव नदी के लिए है। किनारा तो तुम्हे नाव से छुडा ही देगा, नाव को तोड ही देगा। वह मजिल ही क्या जिसको पाकर रास्ता खो न जाए, मिट न जाए। जिससे चल चुके वह मिट जाना चाहिए, अन्यथा उस पर लौट जाने की सभावना बनी रहती है।

तो जितना-जितना तुम बढते जाओगे उतना-उतना मै तुम्हारी नाव को तोड़ता जाऊगा। जब देखूगा किनारा करीब है तो नाव बिलकुल तोड़ देनी चाहिए। नही तो डर है कि तुम फिर वासनाओ की नाव मे सवार हो जाओ।

और ध्यान रखना, जो नाव उस किनारे से इस किनारे तक ले आयी है, वही नाव इस किनारे से उस किनारे ले जा सकती है। नाव तो वही होगी, सिर्फ दिशा बदलती है। जो सीढ़ी तुम्हे ऊपर ले जाती है, वही सीढ़ी तुम्हे नीचे भी ले जा सकती है। इसलिए समझदार ऊपर पहुचकर सीढी तोड़ देते है।

'सास लेती हू तो यह महसूस होता है मुझे
जानती हू दिल मे रखने के ही काबिल आप है।

कब तक जानती रहोगी 'तरु'? रखो।

जानने-जानने मे कब तक समय गवाओगी? कही ऐसा न हो कि जानने की बात जानने की ही रह जाए। होने की बनाओ। जब कोई बात ऐसी लगती हो कि दिल मे रख लेने की है, तो सोचो मत। सोचने मे क्षण न खोओ, रख ही लो।

एक बारी धक से होकर दिल की फिर निकली न सास
किस शिकार अन्दाज का यह तीरे-बेआवाज है।

फिर जब कोई चीज हृदय मे जाती हो, तो जाने दो तीर की तरह। सोचो मत। सोचने मे ही तीर इधर-उधर हो जाएगा। और हर बात के पकने का क्षण होता है, ऋतु होती है। जो अभी हो सकता है, अभी हो सकता है, कल न हो पाए। और जो अभी न हो सका, ताजा-ताजा न हो सका, वह कल कैसे हो पाएगा? बासा हो जाएगा। तो जो दिल मे रख लेने जैसा लगे उसे रखो। अगर जगह न हो तो दिल को बाहर करो। जगह बनाओ।

मेरे पास होने का एक ही अर्थ है, कि तुम मिटने की कला सीखो। नही कि तुम्हारे दिल मे रहने का मेरा कोई इरादा है, यह तो केवल बीच का उपाय है। यह तो केवल बहाना है। यह तो मै तुम्हे फुसला रहा हू। यह तो मै यह कह रहा हू कि चलो इस बहाने से सही, इस निमित्त सही, तुम अपना दिल तो छोडो, अपना दिल तो तोडो। मेरे लिए ही सही, जगह तो बनाओ। जगह बनते ही मै वहा नही बैठूगा। जगह हो जाए तो उसी जगह मे तो परमात्मा विराजमान होता है। कबीर ने कहा है

गुरु गोविद दोइ खडे, काके लागू पाव।

किसके पैर पकडू। दोनो साथ ही खडे है, किसके पहले चरण छुऊ। कही कोई अपमान न हो जाए, कोई अनादर न हो जाए। कही शिष्टाचार का कोई भग न हो जाए।

गुरु गोविद दोइ खडे, काके लागू पाव।

बडी मुश्किल मे पड गए होगे। ऐसा होता नही। जब गुरु होता है तो गोविद नही होता, जब गोविद होता है तो गुरु नही होता। कभी ऐसा भी होता है, जब दोनो साथ खडे होते है। एक बार होता है ऐसा। पहले गुरु को जगह देते है। धीरे-धीरे गुरु हृदय मे बैठता जाता है, बैठता जाता है, फिर एक दिन गुरु हट जाता है—उस दिन गोविद। इधर गुरु जाने को होता है, उधर गोविद आने को होता है। एक घडी मे ऐसी बात होती है जब गुरु जा रहा होता है, गोविद आ रहा होता है—तब दोनो साथ खड़े होते है।

गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागू पाव।
फिर कबीर कहते है, गुरु के ही पैर लगे।
'बलिहारी गुरु आपने गोविद दियो बताए।'

इसके दो अर्थ हो सकते है, दोनो महत्वपूर्ण है। एक अर्थ तो यह हो सकता है कि जब कबीर बिगूचन मे पड़ गए तो गुरु ने गोविंद की तरफ इशारा कर दिया कि गोविद के ही पैर लगो।

बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताये वह मुक्त कर दिया चिता से। कहा कि फिक्र न कर मेरी, गोविद के पैर लग।

एक अर्थ तो यह हो सकता है, जो कि सीधा-साधा है। इससे भी महत्वपूर्ण अर्थ है दूसरा, वह यह है कि बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताये कबीर कहते है, पैर तुम्हारे ही लगूगा, क्योकि तुम्हारी ही बलिहारी है कि तुमने गोविद को बताया। फिर गोविद के तो पैर अब लगते ही रहेगे, लगते ही रहेगे, अब तो पैरो मे ही पड़े रहेगे, लेकिन तुम्हारे पैर अब दोबारा न मिलेगे।

गुरु जा रहा है, गोविद आ रहा है। गुरु विदा हो रहा है।

सदगुरु वही है जो तुम्हे मिटाए, तुम्हारे हृदय के सिहासन पर बैठ जाए—बस उस क्षण तक जब तक तुम तैयार नही हो, सिहासन तैयार नही है, फिर हट जाए। असदगुरु वही है जो तुम्हे हटाए, तुम्हारे सिहासन पर बैठ जाए और फिर हटे न। फिर कहे, छोड़ो भी अब परमात्मा-अरमात्मा की बातचीत। तो यह तो एक झझट से छूटे, दूसरी मे पड गए। यह तो अपनी झझट से छूटे तो दूसरे की झझट मे पड़ गए। इससे तो पहली ही झझट ठीक थी, कम से कम अपनी तो थी।

'गम नहीं है लाख तूफानो से टकराना पडे
मै हू वह किश्ती कि जिस किश्ती के साहिल आप है।'

एक ही तूफान है—और वह तूफान है मूर्च्छा का। एक ही अधड़ है, आधी है—और वह अधड, आधी है मूर्च्छा का, प्रमाद का, सोए-सोए होने का। उससे ठीक से टकराओ। निद्रा से टकराकर ही जागरण पैदा होता है। निद्रा से टकराकर ही—उसी टकराहट मे, उसी घर्षण मे—जागरण पैदा होता है। वही जागरण किनारा है।

आखिरी प्रश्न आप कहते है कि तुम्हारे पास जो है उसे बाटो। मगर ऐसा हो रहा है कि सगीत, नृत्य, मस्ती सब अस्तित्व मे लीन हो रहा है और एक गहन चुप्पी घेरती जा रही है। बस अब तो एक कोने मे बैठकर अस्तित्व की लीला निहारती रहू और वक्त आए तो उसमे लीन हो जाऊ। पास मे क्या बचा है।

बहुत शुक्रिया, बड़ी मेहरबानी
मेरी जिदगी मे हुजूर आप आए,
कदम चूम लू या आखे बिछा दू
करू क्या, यह मेरी समझ मे न आए।

मै कहता हू, जो हो बाटो। नाच हो तो नाच। गीत हो तो गीत। मस्ती हो तो मस्ती। अगर चुप्पी घनी हो रही है तो चुप्पी बाटो। मौन भी बाटो।

बड़ी सपदा है मौन की। मस्ती से भी बड़ी मस्ती है मौन की। नाच से भी गहन नाच है मौन का। गीत से भी गीत, गीत से भी गहन गीत है गीत मौन का—बाटो उसे।

चुप्पी का अर्थ यह थोडे ही है कि उसे सम्हालकर बैठो। तो चुप्पी की कजूसी हो गई।

ध्यान रखना, जीवन मे शुभ भी हम इस ढग से कर सकते है कि अशुभ हो जाये और अशुभ भी इस ढग से कर सकते है कि शुभ हो जाये—सारी कला यही है। इसी कला को जिसने जान लिया उसने धर्म को जान लिया।

अब एक तो मौन है जो कजूसी का मौन है। एक तो मौन है कि जो अपने-आप को बद कर लेने का मौन है कि हट जाओ दूर सबसे—सबसे तोड लेनेवाला मौन है। अपने मे बद हो जाओ मोनोड बन जाओ, लीबनेस के। सब द्वार-दरवाजे बद कर दो, खिड़किया बद कर दो। कोई हवा न आये, कोई रोशनी न आये। न अपनी आवाज किसी तक जाये, न किसी की आवाज अपने तक आये। तो यह मौन तो मरघट का मौन होगा। इसका गुण अलग होगा। यह गुण शुभ नही है। यह मौन तो मौत जैसा मौन होगा। इससे सडी लाश की बदबू आयेगी।

इसलिए तुम बहुत-से त्यागी, तपस्वी, मौनियो के पास जाकर, मुनियो के पास सिर्फ लाश की सड़न पाओगे। मौन वहा खिल न पाया, फूल न बना। मौन वहा केवल अभाव रहा। मौन का अर्थ वहा इतना ही रहा कि बोलते नही है। यह भी कोई मौन हुआ जो बोल न सके। मौन तो बोलता है—मौन से भी बोलता है।

तो ध्यान रखना, मौन सिर्फ न बोलना भर न हो, नही तो वही होगा क्रोध काट डाला, काम की ग्रथि काट डाली। काम की ग्रथि गई तो ब्रह्मचर्य पैदा होने का उपाय भी गया। क्रोध की ग्रथि गई तो करुणा भी न आई। ऐसा मौन मत कर लेना कि सिर्फ न बोलने पर आग्रह हो कि बोलते नही है। तो फिर तुम्हारे भीतर जिदगी सड़ने लगेगी, प्रवाह बद हो जाएगा। तुम एक पोखर हो जाओगे, सरिता न रहोगे। जल्दी ही कीचड मच जायेगी। जल्दी ही तुम अपनी कुठा मे सड़ोगे। क्योकि जीवन सबधो मे है।

कोई फिक्र नही, हजार ढग है बोलने के। बोलना ही थोड़े ही सब कुछ है। किसी का हाथ ही हाथ मे ले लो तो क्या तुम बोले नही? किसी की तरफ भरी हुई आखो से देखा तो क्या तुम बोले नही? किसी के पास चुपचाप बैठे रहे, लेकिन बद नहीं, खुले, बहते तो क्या तुम बोले नहीं? सच तो यह है कि जीवन मे जो भी महत्वपूर्ण है, ऐसे ही बोला जाता है। जब दो प्रेमी गहन प्रेम मे होते है तो चुप बैठ जाते है। जब प्रेमी बातचीत करने लगे तो समझना कि पति-पत्नी हो गये। पति-पत्नी चुप नही बैठ सकते, क्योकि चुप बैठे तो दोनो बद हो जाते है, दोनो बद हो जाते है तो बोझिल हो जाते है। तो पत्नी कहने लगती है, 'चुप क्यो बैठे हो? क्या मतलब?' तो कुछ भी बोलो। बोल जारी रखो, ताकि कही ऐसा न हो कि एक-दूसरे की मुर्दानगी और एक-दूसरे की ऊब प्रगट हो जाये। तो बोलते है, चेष्टा करके बोलते है। नही बोलना हो, बोलते है। कुछ भी बात ले आते है—खबर, समाचार—उसकी चर्चा चलाने लगते है। न पत्नी को उस मे रस है, न पति को रस है, न पत्नी सुन रही है, न पति बोल रहा है—लेकिन वाणी चल रही है। दोनो आसपास शब्दो का जाल बुनते है, ताकि कहीं धोखा न टूट जाये, कही भ्रम न मिट जाये, कही ऐसा न हो जाये कि पता चले कि हम टूट गये, अलग-अलग हो गये।

मेरे एक मित्र है। हिमालय की यात्रा को जाते थे। तो मुझसे कहा, आप चले। मैने कहा कि हिमालय की यात्रा पर जाते हो, अच्छा है। तुम पति-पत्नी जा रहे हो, मुझे क्यो और बीच मे लेते हो? मेरे होने से बाधा पडेगी। उन्होने कहा, आप भी क्या बात करते है। तीस साल हो गये शादी हुए, अब क्या बाधा खाक पड़ेगी? अब तो हालत ऐसी है कि अगर तीसरा आदमी मौजूद न हो तो हमारी समझ मे नही आता, क्या करे। इसलिए तो आपसे प्रार्थना कर रहे है कि आप चलो, तो थोड़ा रस रहेगा। किसी न किसी को तो ले जाना ही पड़ेगा।

पति-पत्नी सदा किसी एक को और साथ ले लेते है। दोनो के बीच जरा बातचीत चलाने को सेतु बन जाता है। यह बोलना कोई बोलना है? लेकिन दो प्रेमी चुपचाप बैठ जाते है। देखते है चाद को आकाश मे। या सुनते हैं हवा की सरसराहट। या देखते है चुपचाप तारो को। कुछ बोलते नहीं। लेकिन खुले है। बहते है एक-दूसरे मे, ऊर्जा मिलती है। मिलन होता है। एक गहन तल पर गहन सभोग होता है। पर चुप।

शब्द बाधा डालते है। जब कोई प्रेमी किसी प्रेयसी से बहुत कहने लगे, बार-बार कहने लगे कि मै तुझे प्रेम करता हू, तब समझना कि प्रेम जा चुका, अब बातचीत है। अब प्रेम नही है, इसलिए बातचीत से परिपूर्ति करनी पड़ती है। नही तो प्रेम काफी है, कहने की जरूरत नही है।

तो मै तुमसे कहता हू, मौन तो आये, लेकिन जीवत आये, बहता हुआ आये। तुम्हारा प्रवाह न मिटे। तुम बद न होओ। तुम खुलो। तो फिर मौन भी बटे।

यह मै तुमसे जो बोल रहा हू, क्या तुम सोचते हो, बोल रहा हू? अपना मौन बाट रहा हू। क्योकि तुम मेरे मौन को सीधा न समझ सकोगे, शब्दो की सवारी से बाट रहा हू। शब्दो के ऊपर सवार होकर जो आ रहा है, वह मौन है। घुडसवार को देखना, घोड़े को ही मत देखते रहना। शब्दो पर जो सवारी करके आ रहा है, जरा उसे देखो। तुम्हे जो मै देना चाहता हू, वह शब्द नही है। तुम्हे जो देना चाहता हू, वह मेरा मौन है।

तो मौन ही बाटो। कहीं छुपता है कुछ। अगर जीवत मौन हो तो मौन ही दिखाई पड़ने लगता है, सघन हो जाता है। जहा से गुजरोगे, दूसरा आदमी चौककर सुनने लगेगा मौन को जरा पास से।

'बेदार'। छुपाए से छुपते है कही तेरे
चेहरे से नुमाया है आसार मुहब्बत के।

कही प्रेम छुपा। कितना छिपाओ, आख की झलक, चेहरे का रग-ढग, ओठो की मुस्कुराहट, कितना छिपाओ, चाल की गति, उठने-बैठने का प्रसाद, सब तरफ जैसे प्रेमी के आसपास कुछ सूक्ष्म घुघरू बजते है।

'बेदार'! छुपाए से छुपते है कही तेरे

चेहरे से नुमाया है आसार मुहब्बत के

मौन भी नहीं छुपता। परमात्मा भी नही छुपता। तुम चुप भी बैठे रहो तो भी प्रगट होता चला जाता है।

हम तो चुप थे मगर अब मौजे सबा के हाथो
फैली जाती है तेरे हुस्न की खुशबू हर सू

जब कोई प्रभु को उपलब्ध होता है, उस परम शाति को, परम निर्विकार को, तो चुप भी बैठा रहे तो भी क्या फर्क पड़ता है।

हम तो चुप थे मगर अब मौजे सबा के हाथो

—हम तो चुप ही बैठे थे, लेकिन सुबह की ठडी हवाये आ गई, हम क्या करे।

फैली जाती है तेरे हुस्न की खुशबू हर सू

—और तेरे सौदर्य की खुशबू ये हवाये ले चली, और ये फैलाने लगी।

बुद्ध को परम अनुभव हुआ। कहते है, सात दिन वे चुप बैठे रहे। पर देवता भागे चले आये स्वर्ग से। पहुच गई भनक कुछ घटा है पृथ्वी पर। अस्तित्व ने कोई नया रग लिया है। अस्तित्व ने कोई नया नाच नाचा है। कोई शिखर बना है अस्तित्व का। कोई गौरीशकर उठा है। भागे देवता। वे चुप ही बैठे रहे। देवताओ ने नमस्कार किया, चरणो मे सिर रखा, और कहा, कुछ बोले। बुद्ध ने कहा, 'लेकिन तुम्हे पता कैसे चला? मै तो बिलकुल चुप हू। सात दिन से तो मै बोला ही नही। और मैंने तो यही तय किया है कि बोलूगा नहीं। क्या सार बोलने से? जिनको समझना है, बिना बोले समझ लेगे। और जिनको नही समझना है, वे कही बोलकर भी समझ पायेगे। मगर यह तो बताओ, तुम्हे खबर कैसे मिली?'

तो देवताओ ने कहा, आप भी कैसी बात करते है। यह घटना कुछ ऐसी है, जब घटती है तब खबर मिल ही जाती है। तुम बैठे रहो चुप, जल्दी ही तुम पाओगे कि रास्ते बनने लगे, तुम्हारी तरफ लोग आने लगे। वे तुम्हे बुलवा कर रहेगे। तुम्हे बोलना ही पड़ेगा, तुम्हारी करुणा को बोलना ही पड़ेगा। तुम इतने कठोर कैसे हो सकोगे? हम ही आ गये, कितनी दूर से—स्वर्ग से। कोई चुप हो गया है। कुछ घटा है।

तुमने कभी चुप्पी को अनुभव किया है? चुप्पी भी एक घना अस्तित्व है। रेलगाड़ी शोरगुल करती निकल जाती है। उसके बाद तुमने देखा है, चुप्पी कैसी घनी हो जाती है। तूफान आता है, बड़ा शोर मचता है, फिर तूफान जा चुका, फिर शाति कैसी घनी हो जाती है। जब बुद्ध जैसा व्यक्ति शात होगा, सदियो-सदियो का एक तूफान, जन्मो-जन्मो का एक तूफान, एक अंधड़ जो चलता ही रहा और चलता ही रहा, अचानक आज बद हो गया—देवताओ को खबर न मिलेगी। चुप होने से ही खबर मिल गई।

जो है वही बाटो। अगर चुप्पी बन रही है, शुभ है। बद मत होना, चुप्पी को भी सबध बनाये रखना। मित्रो को कभी निमत्रित कर देना कि आओ, चुपचाप बैठेगे। जिसको चुपचाप बैठना होगा, आ जायेगा। हाथ मे हाथ ले लेना, साथ-साथ रो लेना, या हस लेना। बोलना मत। और तब तुम पाओगे कि एक नया ही द्वार खुला सबधो का। तुमने किसी और ढग से दूसरे मनुष्य की चेतना को छुआ और तुमने मौका दिया, दूसरे को भी कि एक नये ढग से, शब्दो के अलावा सबध निर्मित करे।

'गहन चुप्पी घेरती जाती है। एक कोने मे बैठकर अस्तित्व की लीला निहारती हू।'

निहारने को बाटो। जिस ढग से तुम निहारती हो, उसी ढग से किसी और को निमत्रित करो कि आओ, मेरी दृष्टि मे सहभागी बनो। इसलिए तो मैने तुम्हे यहा बुला भेजा है। बुलाये चला जाता हू, दूर-दूर देशो से, पृथ्वी का कोई कोना नहीं जहा से लोग चले नही आते। अपनी दृष्टि मे मै तुम्हे सहभागी बनाना चाहता हू। चाहता हू कि तुम भी जरा मेरी आख से झाककर देखो। जो मैने देखा है, थोडा-सा तुम भी देखो। फिर तुम अपनी आख खोज लेना। एक दफा स्वाद तो आ जाये।

'और वक्त आये तो उसी मे लीन हो जाऊ।'

आ ही जायेगा वक्त। आ ही गया है। बाटो। बाटना भी लीन होने की प्रक्रिया है।

'पास मे क्या बचा है?' जब कुछ नहीं बचता, तभी जो बचा है वही सपदा है। एक झेन फकीर एक रास्ते से गुजर रहा था। वह बड़ा बलिष्ठ आदमी था। बडा बलशाली था। दो डाकुओ ने उस पर हमला कर दिया। दुबले-पतले दीन-हीन डाकू थे, नहीं तो डाकू ही क्या होते—दीन-हीन ही डाकू बनते हैं। उसने दोनो की गर्दन पकडकर उनको उठा लिया और दोनो का सिर टकराने जा रहा था, तो उसे खयाल आया अरे बेचारे। इनके पास कुछ भी तो नही है। दोनो को छोड़ दिया। वे तो बड़े

चौंके-से, चौकन्ने-से खड़े रह गये कि अब क्या करना। और जो कुछ उसके पास था उसने दे दिया। वे दोनो भागे लेकर। और वह फकीर जोर-जोर से हसने लगा, तो वे लौटकर आये। उन्होने कहा कि महाराज। आप हस क्यो रहे है? आप अजीब आदमी है। हम तो समझे कि मरे। आपने जब दोनो के सिर पास लाये, तो हम समझे कि गये। फिर क्या हुआ, आपने दोनो को छोड़ भी दिया? हमने मागा भी नही, हम तो भागने की तैयारी कर रहे थे कि आपके पास जो था आपने दे दिया। अब आप हस किसलिए रहे है?

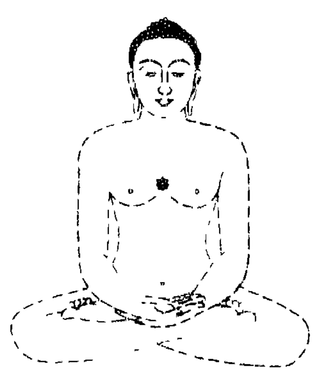
तो उस फकीर ने कहा कि आज मुझे पहली दफे पता चला उसका जो मेरे पास है, और जिसे कोई भी ले नही सकता। जो लेने योग्य था, देने योग्य था वह मैने तुम्हे दे दिया—आज मै नग्न खडा हू। आज मेरे पास बस वही बचा है, जिसको न कोई ले सकता है, न कोई दे सकता है। आज शुद्ध अस्तित्व बचा है।

उसी शुद्ध अस्तित्व का नाम महावीर ने आत्मा दिया है।

खोओ। जो खो ही जायेगा उसे अपने हाथ से ही खो दो। जो मौत छीन लेगी तुम उसे स्वय ही दे दो, ताकि मौत जब आये तो छीनने को उसके पास कुछ भी न हो। तुम्हारे पास कुछ भी न हो जिसे वह छीन सके। मौत के पहले जो छीना जा सकता है, उसे बाट दो।

पकड़ो मत। पकड़ छोड़ो। और तब तुम पाओगे मौत आयेगी, लेकिन तुम्हे मार न पायेगी। क्योकि मौत घटती है इसीलिए कि तुम उसे पकडे हो जो छीना जा सकता है। जब मौत छीनती है, तुम समझे कि मरे। जिसने उसे पहले ही छोड़ दिया—मौत आती है, खाली हाथ चली जाती है। कुछ है ही नहीं छीनने को। वही बचा है जिसे छीना नही जा सकता—स्वभाव, धर्म, तुम्हारे भीतर का परमात्मा।

आज इतना ही।





सातवां प्रवचन

जीवन एक सुअवसर है

सूत्र

सच्चाम्मि वसदि तवो, सच्चाम्मि संजमो तह वसे तेसा वि गुणा।
सच्चं णिबधणं हि य, गुणाणमुदधीव मच्छाणं।।१७।।

सुवण्णरूप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किचि, इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया।।१८।।

जहा पोम्म जले जाय, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित कामेहि, त वय बूम माहण।।१९।।

जीवो बभ जीवम्मि, चेव चरिया हविज्ज जा जदिणो।
त जाण बभचेरं, विमुक्क परदेहनित्तिस्स।।२०।।

तेल्लो काडविडहनो, कामग्गी विसयरूक्खपज्जलिओ।
जोव्वणतणिल्लचारी, जं ण डहइ सो हदइ घण्णो।।

जा जा वज्जई रयणी, ण सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ।।२१।।

पहला सूत्र 'सच्चाम्मि वसदि तवो'—सत्य मे तप का वास है। 'सच्चामि सजमो तह वसे तेसा वि गुणा।' 'सत्य मे सयम और समस्त शेष गुणो का भी वास है। जैसे समुद्र मछलियो का आश्रय है, वैसे ही समस्त गुणो का सत्य आश्रय है।'

सत्य का अर्थ समझ लेना अत्यत अनिवार्य है।

साधारणत हम सोचते है, सत्य कोई वस्तु है, जिसे खोजना है, जैसे सत्य कहीं रखा है, तैयार है, किसी दूर के मदिर मे सुरक्षित है प्रतिमा की भाति—हमे यात्रा करनी है, मदिर के द्वार खोलने है, और सत्य को उपलब्ध कर लेना है। ऐसा सोचा तो भूल हो गई शुरू से ही।

सत्य कोई वस्तु नही है। सत्य तो एक प्रतीति है, अनुभूति है। कही तैयार रखा नही है। जीयोगे तो तैयार होगा। कही मौजूद नही है कि उघाड लेना है। ऐसा नही है कि चाबी मिल जायेगी, ताला खोल लोगे, तिजोड़ी तक पहुच जाओगे—और धन तो तिजोड़ी मे रखा ही था, जब चाभी न मिली थी तब भी रखा था, जब ताला न खोला था तब भी रखा था, न खोलते सदा के लिए तो भी रखा रहता—ऐसा नहीं है। सत्य तो जीवत अनुभूति है। सज्ञा नहीं, क्रिया है।

सत्य का अर्थ है ऐसे जीना, जिस जीवन मे कोई वचना न हो, ऐसे जीना कि बाहर और भीतर का तालमेल हो। सत्य एक सगीत है—बाहर और भीतर का तालमेल है। तो कदम-कदम सम्हालना होगा, क्योकि सत्य आचरण है।

इसलिए महावीर कहते है 'सत्य मे तप है, सयम है, समस्त गुणो का वास है।' क्योकि सत्य आचरण है।

जिसने सत्य को साध लिया, सब सध जायेगा। फिर अलग से कुछ साधने को बचता नही। क्योकि जिसने बाहर और भीतर का एक ही जीवन शुरू कर दिया, उसके जीवन मे हिसा नही हो सकती, उसके जीवन मे झूठ नही हो सकता, उसके जीवन मे क्रोध नही हो सकता, उसके जीवन मे प्रतिस्पर्धा नही हो सकती। असभव है। सत्य आया तो जैसे प्रकाश आया, अब अधेरा नही हो सकता।

लेकिन सत्य न तो कोई वस्तु है—वस्तु होती तो उधार भी मिल जाती। सत्य उधार नही मिलता। मेरे पास हो तो भी तुम्हे देने का कोई उपाय नही। सत्य कोई सिद्धात भी नही है, नही तो एक बार कोई खोज लेता, सबके लिए, सदा के लिए मिल जाता। सत्य कोई तर्क की निष्पत्ति भी नही है, कि केवल विचार करने से मिल जायेगा, कि ठीक से सोचा तो मिल जायेगा। नहीं, जो ठीक से जीएगा, उसे मिलेगा। सोचना काफी नही है—जीना पडेगा।

दो ढग से जीने के उपाय है। एक, जिसे हम असत्य का जीवन कहे। तुम कुछ हो, कुछ होना चाहते हो—बस असत्य शुरू हो गया। तुम कुछ हो, कुछ और दिखाना चाहते हो—असत्य हो गया। तुम कुछ हो, और तुमने कुछ मुखौटे ओढ़ लिए, होना तो कुछ था, प्रदर्शन कुछ और हो गया—असत्य हो गया।

इसे समझोगे तो पाओगे कि तुम्हारे तथाकथित धर्मो ने तुम्हे सत्य की तरफ ले जाने मे सहायता नही दी बाधा डाल दी। क्योकि उन सबने तुम्हे पाखड सिखाया। उन सबने कहा, कुछ हो जाओ।

महावीर कहते है, तुम जो हो उसमे ही रह जाओ, कुछ और होने की कोशिश मत करना, अन्यथा असत्य शुरू हो जाएगा। कमल कमल हो, गुलाब गुलाब हो, कमल गुलाब होने की कोशिश न करे, अन्यथा असत्य शुरू हो जाएगा। तुम तुम हो। तुम महावीर होने की कोशिश भी करोगे तो असत्य हो जाएगा। तुम बुद्ध होने की कोशिश करोगे तो असत्य हो जायेगा। कभी कोई दूसरा महावीर हो पाया? कितने लोगो ने तो कोशिश की है। कितने लोगो ने कोशिश नही की है। पच्चीस सौ वर्षो मे हजारो लोग महावीर होने की चेष्टा मे रत रहे है—कोई दूसरा महावीर हो पाया?

इतिहास के ज्वलत तथ्यो को भी हम देखते नही, आखे चुराते है। कोई दूसरा कभी बुद्ध हो पाया? कभी कोई दूसरा राम मिला इस जीवन के पथ पर? कभी फिर कृष्ण की बासुरी दुबारा सुनी गई? पुनरुक्ति यहा होती नहीं। अनुकरण यहा सभव नही। यहा प्रत्येक बस स्वय होने को पैदा हुआ है। और जिसने भी दूसरे होने की कोशिश की वह पाखडी हो जाता है।

आदर्शों ने तुम्हे असत्य कर दिया। यह बात बडी कठिन मालूम होगी, क्योकि तुम तो सोचते हो, आदर्शवादी जीवन बड़ा महान जीवन है। आदर्शवादी जीवन असत्य का जीवन है। आदर्शवादी का अर्थ है कि मै कुछ हू, कुछ होने मे लगा हू। सत्यवादी के जीवन का अर्थ है जो है, मैने उसे स्वीकार किया, अब मै उसको सरलता से जी रहा हू, जो है—बुरा भला, शुभ-अशुभ, जैसा हू, जैसा इस अनत ने मुझे चाहा है, जैसा इस अनत ने मुझे सरजा है, जैसा इस अनत ने मुझे गढ़ा है—मै उससे राजी हू।

सत्य है परम स्वीकार स्वय का, और तब शेष गुण अपने-आप चले आते है, छाया की तरह चले आते है। शेष गुणो को खोजना भी नही पड़ता। आदर्शवादी खोजता है, सत्यवादी के पास अपने से चले आते है। आदर्शवादी खोजता रहता है और कभी नही पाता। सत्यवादी खोजता नही, और पा लेता है।

लेकिन सत्य, समझ मे आ जाए तो पहला तो सत्य का अर्थ है तुम जैसे हो, निदा मत करना। तुम जैसे हो, दूसरे से तुलना मत करना। क्योकि तुलना मे ही स्पर्धा शुरू हो गई। तुम जैसे हो, वैसे को परिपूर्णता से स्वीकार कर लेना। रत्तीभर भी ना-नुच न करना, यहा-वहा न डोलना। तुम जो हो सकते हो, तुम हो। तुम्हे जैसा अस्तित्व ने चाहा है, वैसे तुम हो। इसमे कुछ सुधार की जरूरत नहीं है। दौड़-धूप बद करनी है। और इस होने मे थिर हो जाना है। नही तो तुम डोलते रहोगे—कभी राम होना चाहोगे, धनुष उठा लोगे, कभी कृष्ण होना चाहोगे, बासुरी बजाने लगोगे, न बासुरी बजेगी न धनुष उठेगा। कभी महावीर होना चाहोगे, नग्न खड़े हो जाओगे—प्रदर्शन हो जाएगा। नग्न खड़े हो जाओगे लेकिन महावीर का निर्दोष भाव कहा से लाओगे? तुम्हारी नग्नता तो आरोपित होगी। जो भी आरोपित है, वह निर्दोष नही होता। तुम्हारी नग्नता तो चेष्टित होगी, प्रयास से होगी। जो भी प्रयास से होता है, वह निर्दोष नही होता। जो भी चेष्टा से होता है, वह तो जबर्दस्ती होता है।

महावीर नग्न कभी हुए नही—उन्होने पाया। नग्न होने का कोई अभ्यास नही किया, जैसा जैन मुनि करते है। नग्न होने के लिए कोई आयोजन, व्यवस्था नही जुटाई—अचानक पाया कि नग्न हो गए है।

कथा है महावीर घर से निकले तो एक चादर लेकर निकले थे। सोचा जितना कम होगा परिग्रह, उतनी कम असुविधा होगी। सोचा था, जितना कम होगा पास मे, उतनी चिता कम होगी। एक चादर लेकर निकले थे। वही ओढ़नी थी, वही बिछौना था। वही दिन मे वस्त्र का काम दे देगी। वर्षा होगी तो सिर पर ढाककर छाता बना लेगे। राह पर चल रहे थे कि एक नगे भिखारी ने, भिखमगे ने कहा, कुछ दे जाए। सब लुटा चुके थे। यह एक चादर बची थी, तो आधी फाड़कर उसे दे दी। सोचा एक से चलता है, आधे से भी चल जाएगा।

जिनको समझ आ जाए तो कम से कम मे भी चल जाता है और जिनको समझ न हो तो ज्यादा से ज्यादा मे भी नही चलता। सवाल वस्तुओ का नही है, सवाल समझ का है।

महावीर ने कहा, इतनी लबी की जरूरत भी क्या है, थोड़े पैर सिकोड़कर सो जाएगे। तन पूरा न ढकेगा, थोड़ा कम ढकेगा, हर्ज क्या है। हवा आती-जाती रहेगी, थोड़ी सूरज की किरणे शरीर को मिलेगी।

लेकिन आगे बढ़े, भागे जा रहे है जगल की तरफ, एक गुलाब की झाड़ी से आधी चादर उलझ गई काटो मे। हसने लगे। तो कहा, मर्जी नही है अस्तित्व की, कि चादर को ले जाऊ। राह मे

कोई मिल गया, आधा बोझ उसने ले लिया। अब यह झाड़ी मिल गई, अब यह मागती है, आधी मुझे दे दो। तो आधी चादर झाड़ी को दे दी। सोचा कि आधी से चल जाएगा, बिना भी चल जाएगा। आखिर सारे पशु-पक्षी बिना चादर के चला रहे है। तो मै आदमी हू, जो पशु-पक्षी कर लेते है वह मुझसे न हो सकेगा? और अब झाड़ी से छुड़ाना शोभा नहीं देता।

जिसने देना ही जाना हो, छुड़ाने का उसका मन नही करता। जिसने देने का ही रस पाया हो, वह झाड़ी से भी न छीनना चाहेगा। वह चादर झाड़ी को भेट कर दी, वे नग्न हो गए। ऐसे महावीर नग्न हुए।

यह कोई चेष्टा न थी—यह घटना थी। इसके पीछे कोई आयोजन न था, न कोई शास्त्र थे, न कोई सिद्धात था। नग्न होने के लिए कोई विचार न था। यह कोई अनुशासन नही था, जो उन्होने थोपा अपने ऊपर। ऐसा जीवन के सहज प्रवाह मे पाया कि जो लेकर आए थे वह भी जा चुका। फिर वे नग्न हो गए। फिर नग्न होने मे जो मस्ती पायी तो फिर उन्होने दुबारा चादर पाने का कोई आग्रह न रखा।

क्योकि जो नग्न होकर मिला क्या मिला नग्न होकर? अपने जीवन का सत्य।

हम नग्न होने से डरते क्यो है? शरीर को भी हम छिपा-छिपाकर दिखाते है। उतना ही दिखाते है जितना हमे लगता है, दिखाने योग्य है। उतना ही दिखाते है जितना लगता है कि दूसरो को भी रुचेगा, भाएगा। उसको छिपाते है जो हमे लगता है कही दूसरो को न रुचे, न भाए। कपडे तुम अपने लिए थोड़े ही पहनते हो, दूसरो के लिए पहनते हो। इसलिए तो जिस दिन घर मे बैठे हो, छुट्टी के दिन बैठे हो तो कैसे ही कपड़े पहने बैठे रहते हो। बाजार चले कि सजे, कि तैयार हुए। विवाह मे जा रहे है, महोत्सव मे जा रहे है, तो और सजे, और भी तैयार हुए।

दूसरे के लिए कपड़े पहनते है हम। शरीर के उन हिस्सो को छिपाते है जो हम चाहते है कोई दूसरा जान न ले। ये कपड़े हम कोई धूप, सर्दी, वर्षा से बचाने को थोड़े ही पहने हुए है, इनके पीछे बड़ा मन जुड़ा है, बड़ा आयोजन जुड़ा है।

जिस दिन किसी स्त्री को तुम चाहते हो लुभाना, उस दिन तुम ज्यादा देर रुक जाते हो दर्पण के सामने। उस दिन ज्यादा ढग से दाढ़ी बनाते हो, कपड़े सजाते हो, इत्र छिड़क लेते हो। दूसरे के लिए है यह आयोजन।

हम दिखाते है केवल अपने हाथ, अपना चेहरा, शेष शरीर को हम ढाके है। ढाकने के दो अर्थ है। एक तो हम सोचते है, दिखाने योग्य नही। दूसरा ढाकने से जो ढका है उसमे आकर्षण बढ़ता है। दूसरे उसे उघाडना चाहते है। स्त्रिया अगर नग्न हो तो कोई गौर से देखे भी न। आदि समाजो मे, आदिवासियो मे स्त्रिया नग्न है, कोई चिता नही करता।

स्त्री खूब ढाककर शरीर को चलती है। जो-जो ढका है, उसे-उसे उघाडने का सहज मन होता है।

तो एक तो हम छिपाते भी है, हम आकर्षित भी करते है, लुभाते भी है। इसके पीछे आयोजन है। हमारे वस्त्रो के पीछे भी आयोजन है। किसी दिन हम थक जाते है इन वस्त्रो से, इस प्रदर्शन से, इस दिखावे से, इस नाटक से, तो फिर हम दूसरा आयोजन करते है—नग्न कैसे हो जाए। लेकिन वह भी आयोजन है। सरलता से तुम कुछ भी न होने दोगे? सहजता से तुम कुछ भी न होने दोगे? तुम्हारे जीवन मे क्या कोई भी निर्दोष ज्योति न जगेगी? सभी प्रयोजन से होगा? सोच-सोचकर होगा? हिसाब लगाकर होगा?

अब जैन मुनि है, नग्न खड़े है। मगर नग्न खड़ा होना उनका वैसे ही है, जैसे तुमने दाव लगाया हो जुए पर। वे कहते है, नग्न हुए बिना मोक्ष न मिलेगा। इसलिए दिगबर जैन कहते है कि स्त्रियो का मोक्ष नही है, क्योकि स्त्रियो को नग्न करना कठिन होगा, समाज डावाडोल होगा, अड़चन खड़ी होगी। तो स्त्री को पहले पुरुष-योनि मे जन्म लेना पडेगा। क्योकि बिना पुरुष-योनि मे जन्म लिये वह नग्न न हो सकेगी। नग्न न हो सकेगी, तो मोक्ष कैसे?

अब तुम थोड़ा सोचो। नग्न होने मे भी दाव है, हिसाब है, गणित है। यह नग्न होना भी शुद्ध सरल नही है। महावीर नग्न हुए थे, मोक्ष का कोई सवाल न था—एक भिखारी ने चादर माग ली थी। महावीर नग्न हुए थे, मोक्ष का कोई सवाल न था—एक फूलो की झाड़ी ने चादर छीन ली थी। महावीर नग्न हुए थे, इसके पीछे कभी सोचा भी न था।

लेकिन तुम जब नग्न होओगे, तो मोक्ष । तुम्हारी नग्नता भी सौदा है।

कपड़ो मे ढाका है हमने अपने शरीर को। और ऐसे ही हमने

बहुत-बहुत पर्ते अपने मन मे ढाकी है। हम वही कहते है, जो हम सोचते है रुचिकर लगेगा। हम वही कहते है, चुन-चुनकर, छाट-छाटकर, जो दूसरे को मोहित करेगा और हमारी एक सुदर प्रतिमा निर्मित होगी। हम वही नही कहते जो हमारे भीतर उठता है। भीतर गालिया भी उठती हो तो भी हम बाहर स्वागत के गीत गाए चले जाते है। भीतर क्रोध भी उठता है तो भी ओठो पर मुस्कुराहट को फैलाए चले जाते है। मुस्कुराहट झूठी होती है। जो भी थोड़ा आखवाला है, वह देख लेगा, झूठी है, जबर्दस्ती ओठो को ताना गया है, खींचा गया है—बही नही है। मुस्कुराहट भीतर से उठी नही है। मुस्कुराहट कहीं से आयी नही है, बस ऊपर से लीपी-पोती गयी है। लेकिन हमारी मुस्कुराहट झूठी है। हमारे आसू झूठे है। हमारी सहानुभूति झूठी है, उदासी झूठी है। हमारा सारा जीवन एक झूठ का व्यापार है।

जब महावीर कहते है सत्य, तो उनका अर्थ यह नही है, जैसा गणित मे होता है—दो और दो चार, यह सत्य हुआ गणित का—ऐसे सत्य की बात महावीर नही कर रहे है। जब महावीर कहते है सत्य, तो वे यह कह रहे है कि तुम जो हो, जैसे हो, निपट और नग्न, खोल दो अपने को वैसा ही। तुम चिता न करो कि कौन क्या सोचेगा। तुम अपने मे कोई भी आयोजन न करो। जैसे वृक्ष खड़े है नग्न और सहज, ऐसे ही तुम भी नग्न और सहज हो जाओ।

महावीर का सत्य बड़ा कठिन है। पर महावीर का सत्य बडा गहरा भी है। और महावीर का सत्य ही सत्य है, दार्शनिको के सत्य मे कुछ भी नही रखा है। वह तो बातचीत है, शब्दो का जाल है। वह भी शायद कुछ छिपाने की चेष्टा है।

तुम अपने को पकडो। तुम अपना पीछा करो और जगह-जगह देखो, चौबीस घटे मे कितना असत्य कर रहे हो। अनजाने ही। ऐसा भी नही कि तुम सभी असत्य जान-जानकर बोलते हो, सोच-सोचकर बोलते हो—आदत इतनी प्रगाढ हो गई है, ऐसे रग-रोए मे समा गई है, ऐसे खून-खून की बूद मे बैठ गई है, कि अब तो तुम किए चले जाते हो, कोई हिसाब भी नही रखना पड़ता। तुमसे असत्य ऐसे ही निकलता है जैसे वृक्षो से पत्ते निकलते है। अब कुछ करना भी नही पड़ता, कुशलता इतनी गहन हो गई है। कभी तो तुम चौकोगे कि जहा जरूरत भी नही होती, वहा भी असत्य निकलता है। जहा उससे कुछ लाभ भी होने को नही है वहा भी असत्य निकलता है। वहा भी सत्य नही निकलता, वहा भी असत्य निकलता है।

कभी तुमने पकड़ा अपने को? ऐसे मौको पर भी, जब कि कोई लाभ भी नही दिखाई पडता झूठ बोलने मे, लेकिन झूठ बोलने की आदत हो गई है। इस आदत को तोड़ना पड़े। कितनी ही मजबूत हो, कितने ही हथौड़े मारने पड़े, पर तोडना पडे। और धीरे-धीरे तुम जो हो उसके लिए राजी होना पड़े। हो सकता है, प्रतिष्ठा खो जाए, क्योकि हो सकता है, प्रतिष्ठा तुम्हारे असत्य पर ही खड़ी हो। हो सकता है, तुम्हारा सम्मान खो जाए, क्योकि अकसर इस बात की सभावना है कि तुम्हारा सम्मान तुम्हारे उन्ही झूठो पर खडा हो, जो तुमने समाज के सामने बोले है। तुम्हारा दिखावा, तुम्हारे प्रदर्शन, तुम्हारे नाटक ही बुनियाद मे हो, तो सम्मान भी गिर जाएगा। गिर जाने दो। इसे ही मै सन्यास कहता हू, जिसको महावीर सत्य कह रहे है।

तुम जैसे हो, तुम बेशर्त उसे स्वीकार कर लो। कठिन होगा। आग से गुजरना होगा। मगर आग निखारेगी। कचरा जल जाएगा, कुदन बाहर आएगा। साफ शुद्ध सोना होकर तुम निकलोगे। जो सोना आग से निकलने से डर गया वह कभी शुद्ध नही हो पाता। जो मनुष्य सत्य की आग से निकलने से डरता है, वह कभी मनुष्य नही हो पाता।

'सत्य मे तप, सयम, शेष समस्त गुणो का वास है।'

तो पहला सत्य तो जो मै हू, वैसा ही अपने को स्वीकार कर लू। जो मै हू, उससे अन्यथा होने की चेष्टा भी न करू, क्योकि उस सब चेष्टा मे ही झूठ प्रवेश करता है।

तुम क्रोधी हो, तो तुम क्या करते हो? तुम अक्रोध की साधना करते हो। मेरे पास लोग आते है, वे कहते है, 'मन बडा अशात है, शाति की कोई तरकीब बता दे।' क्या करोगे शाति की तरकीब का? ऊपर-ऊपर लीपा-पोती कर लोगे, भीतर अशाति उबलती रहेगी ज्वालामुखी की तरह। ऊपर-ऊपर तुम शाति के भवन बना लोगे, ज्वालामुखियो पर बैठे होगे भवन। भूकप आते ही रहेगे। शात तुम हो न पाओगे।

शात होने की उतनी जरूरत नही है, जितनी अशाति को समझने की जरूरत है। पहले तो अशाति को स्वीकार करने की जरूरत है कि मै अशात हू। फिर अशाति को पहचानने की जरूरत है कि यह अशाति क्या है—बिना किसी निदा के। पहले

से ही अगर तुमने तय कर लिया कि अशाति बुरी है तो तुम जान कैसे पाओगे, देख कैसे पाओगे? जो आखे पहले ही पक्षपात से भर गई और जिन्होने तय कर लिया कि अशाति बुरी है और अशाति से छूटना है, वे आखे अशाति का अवलोकन न कर पाएगी। अवलोकन शुद्ध न होगा, अवलोकन प्रामाणिक न होगा। तुम पहले से ही तैयार हो। तुम जूझने को तैयार हो, लडने को तैयार हो। दुश्मन को कभी कोई भर आख देख पाता है। दुश्मन से तो हम आखे बचा लेते है। मित्र को देख पाते है। प्रेमी को देख पाते है। जिससे हमारा प्रेम हो, उसकी आखो मे आखे डाल पाते है।

तो अपने को प्रेम करो, अगर सत्य होना है। और जैसे भी हो बुरे-भले, यही हो, इसके अतिरिक्त कुछ और हो नही सकता था। जो तुम हुए हो, इसको पहचानो, परखो, जाचो, खोलो एक-एक गाठ। अशाति है तो अशाति सही, क्या करोगे? अशाति तुम्हारा तथ्य है। जैसे आग जलाती है, वह उसका गुणधर्म है। अशाति तुम्हारे आज का तथ्य है। आज तुम जैसे हो उसमे अशाति के फूल लगते है, अशाति के काटे लगते है। लेकिन देखो, पहचानो, समझो, स्वीकार करो। भागो मत। डरो मत। विपरीत की चेष्टा मत करो। अशाति है तो शाति को लाने के प्रयास मे सलग्न मत हो जाओ। वह प्रयास अशाति से बचने का प्रयास है। बचकर कोई कभी बच नही पाया। अगर कामवासना है तो उतरो। उस गहरे कुए मे उतरो जिसका नाम कामवासना है। उसकी सीढ़ी दर सीढ़ी नीचे जाओ। उसकी आखिरी तलहटी को खोजो। वही से उठेगा ब्रह्मचर्य। जागरण से उठेगा ब्रह्मचर्य। कामवासना की पहचान मे से ही ब्रह्मचर्य पैदा होता है। कामवासना मे ही छिपा है ब्रह्मचर्य, जैसे कामवासना बीज का खोल है और उसके भीतर छिपा है कोमल ततु, कोमल पौधा ब्रह्मचर्य का। तुम समझो, बीज को कैसे जमीन मे बोए, फिर कैसे सम्हाले—उसी से निकलेगा। कीचड़ से जैसे कमल निकलता है, ऐसे ही कामवासना से ब्रह्मचर्य निकलता है।

अशाति का ही सार है शाति। उसी के भीतर से निचोड़ना है। जैसे फूलो से इत्र निचोड़ते है, ऐसे ही क्रोध से निचुड़कर करुणा आती है।

तो जो तुम्हारे पास है उसके विपरीत होने मे मत लग जाओ। जो तुम्हारे पास है उसको ही कैसे रूपातरित करे, कैसे उसमे से ही सार को खोजे, असार को त्यागे, कैसे उसको निचोड़े, इत्र बनाए—तो तुम सत्य हो सकोगे।

महगा है यह सौदा। इसलिए महावीर कहते है, तप है यह सत्य। इसमे तपना पड़ेगा। यह तपना सस्ता तपना नहीं है कि धूप मे खड़े हो गए और तप लिए। वह तो बच्चे भी कर लेते है। वह तो बुद्धू भी कर लेते है। उसके लिए तो कोई बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। जड भी कर लेते है। वस्तुत जो जडबुद्धि है, वे ज्यादा आसानी से कर लेते है। क्योकि जितनी जड़बुद्धि होती है उतनी जिद्दी होती है। और जितनी जड़बुद्धि होती है, उतनी सवेदनहीन होती है। धूप मे भी खड़े हो जाते है, थोडे दिन मे उसका भी अभ्यास हो जाता है। उपवास भी कर लेते है, उसका भी अभ्यास हो जाता है। कुछ लोग है जो खडे है वर्षो से, बैठे नही, लेटे नहीं—उसका भी अभ्यास हो गया। लेकिन तुमने कभी इन लोगो की आखो मे गौर से देखा। वहा तुम्हे प्रतिभा की दमक न मिलेगी। वहा तुम्हे आनद और शाति के स्वर सुनाई न पडेगे। इनकी छाती के पास, हृदय के पास कान लगाकर सुनना, वहा कोई अनाहत का नाद न मिलेगा। वहा तुम पाओगे जड़ता, राख, मरे हुए लोग।

अकसर हठी जड़ होता है। और जिसको तुम तप कहते हो, वह हठ से ज्यादा नहीं है, जिद्द है, क्रोध है, अहकार है—लेकिन सत्य नही।

सत्य का तप क्या है? सत्य का तप है अपने को जैसा है वैसा स्वीकार किया, वैसा ही प्रगट किया, अपने और अपनी अभिव्यक्ति मे कोई भेद न किया। फिर जो हो, समाज अच्छा कहे बुरा कहे, लोग चाहे न चाहे, सम्मान दे अपमान दे, फिर जो हो—यह है असली तप। लोग निदा करे, वह भी स्वीकार है। लोग प्रशसा करे, वह भी स्वीकार है। लोग भूल जाए, उपेक्षा करे, वह भी स्वीकार है। यह है तप। सत्य होने को महावीर कहते है तप।

'सच्चामि वसदि तवो'—सत्य मे बसता है तप। सयम भी वही है।

इन दो शब्दो को समझ लेना चाहिए, क्योकि महावीर ने इन दो शब्दो का साथ-साथ उपयोग किया।

तप का अर्थ है तुम्हारे भीतर ऐसी बहुत-सी सचाइया है

जिनके कारण तुम्हे अड़चन होगी। उस अड़चन को झेलने के लिए तैयार होना तप है। तुम्हारे भीतर ऐसी बहुत-सी सचाइया है, जिनके कारण बहुत-से काम तुम जो अभी कर रहे हो, कल न कर पाओगे। वह जो न करने की अवस्था है, वही सयम है।

समझो। अब तक तुम दान दे रहे थे। लेकिन सच्चा आदमी सोचेगा 'दान का भाव उठा है या नही?' दान के लिए ही तो सभी दान नही देते, और दूसरे कारणो से देते है। राह पर भिखमगा पकड़ लेता है, इज्जत दाव पर लगा देता है। भिखमगा भी अकेले मे तुमसे भीख नहीं मागता, क्योकि अकेले मे जानता है कि तुम धुतकारोगे। बीच बाजार मे पकड लेता है। वहा इज्जत सवाल है 'लोग क्या कहेगे, दो पैसे भी न देते बने। लोग हसेगे।' वहा तुम दो पैसा देकर दानी बन जाना चाहते हो। क्योकि उस दो पैसे मे इज्जत मिल रही है, वह इज्जत तुम दुकान पर काम मे ले आओगे। दो पैसे से तुम दो रुपये निकालोगे। जिसने आज तुम्हे दानी की तरह देख लिया है, कल वही ग्राहक की तरह दुकान पर होगा, तो तुम जो भी दाम बताओगे, मान लेगा—आदमी दानी है। बाजार मे अगर भिखमगे ने पकड़ लिया तो तुम्हे देना ही पडता है।

एक मारवाड़ी को एक भिखमगे ने पकड़ लिया बाजार मे। तख्ती लगाए था भिखमगा कि मै अधा हू। और उसने कहा, 'सेठ कुछ मिल जाए। बडे दिन से सिनेमा नही गया हू।' मारवाड़ी तो तैयार ही था कि कैसे छूटे। उसने देखा, 'सिनेमा—और तख्ती लगाए हो कि मै अधा हू। सिनेमा जाकर करोगे क्या? धोखा देने की कोशिश कर रहे हो?' उस अधे ने कहा, 'दाता। गाने ही सुन लूगा। अब देने से न बचो।'

भीड लग गई थी। सेठ ने देखा, बचने का उपाय नही है, तो पाच पैसे का सिक्का निकालकर उसको देने लगा। अधे ने कहा कि सेठ, बैक मे जमा करवा देना। मेरा मार्केट तो मत बिगाड़ बाबा। पाच पैसे?

भिखमगा भी बाजार मे है, उसका भी मार्केट है। सेठ भी बाजार मे है, उसका भी मार्केट है। न दे तो उसका मार्केट बिगड़ता है। ये लोग देख रहे है चारो तरफ, वे कहेगे, अरे कृपण। अरे कजूस।

उस सेठ ने कहा कि 'तू पहचाना कैसे कि पाच पैसे का सिक्का है, अगर तू अधा है? अभी मैने दिया भी नहीं, हाथ मे ही लिया है।' उस अधे ने कहा, 'मालिक। अब और क्या प्रमाण चाहिए। मारवाड़ी से भीख माग रहा हू, इससे बड़ा प्रमाण अधे होने का और क्या होगा?'

भिखमगा भी सोच-समझकर पकड़ता है। भिखमगा भी जानता है, दान तो कोई देना नहीं चाहता। लेकिन लोग इतने ईमानदार भी नहीं है कि कह दे कि हम दान नहीं देना चाहते। लोग दिखाना चाहते है कि हम है तो दानी। उसी का भिखमगा शोषण कर रहा है। तुम भी लज्जा से भर जाते हो कि अब कैसे निकले। चलो, छुटकारा पाने के लिए देते हो। लेकिन अगर तुम ईमानदार हुए तो तुम कहोगे कि बाबा, मेरे मन मे देने की कोई इच्छा नही है। चाहे बाजार मे सारी इज्जत प्रतिष्ठा पर लग जाए, चाहे कल दुकान बद क्यो न हो जाए, चाहे लोग तुम्हे कृपण समझे, बेईमान समझे, धोखेबाज समझे, धन का आग्रही समझे—लेकिन तुम कहोगे कि क्या करू, मेरे मन मे देने का कोई स्वर नही है।

तप पैदा होगा। सयम भी पैदा होगा। क्योकि बहुत-से काम तुम कर रहे हो इसलिए, क्योकि करने चाहिए। अगर सब खरीद रहे है कोई सामान, नया फर्नीचर, नई कार, तो तुम भी खरीद रहे हो—बिना इसकी फिक्र किए कि तुम्हे जरूरत है। तुमने कभी सोचा कि तुम जो चीजे खरीद लाते हो, उनकी जरूरत थी? लेकिन अगर पड़ोसी खरीद लाए थे तो तुम भी खरीद लाते हो।

तुमने कभी सोचा है कि तुम जो कर रहे हो, जो दिखावा कर रहे हो, उसकी कोई जरूरत है? लेकिन और दिखावा कर रहे है तो तुम कैसे रह सकते हो। अगर व्यक्ति सचाई से अपने भीतर देखने लगे, तो पाएगा अचानक बहुत-से काम तो बद हो गए, क्योकि निष्प्रयोजन थे, दुसरे कर रहे थे, दूसरो के दिखावे के लिए तुम भी कर रहे थे।

लड़की की शादी करनी है, लोग हजारो रुपये लुटाते है—उनके पास नहीं है, कर्ज लेकर लुटाते है। क्यो? और दूसरो ने, दुश्मनो ने, पड़ोसियो ने—पड़ोसी यानी दुश्मन—उन्होने अपनी लड़की की शादी मे इतना लगाया। अब तुम्हारी इज्जत दाव पर लगी है। तुम्हारे अहकार का सवाल है। तुम्हे भी लगाना होगा। तुम्हे लड़की से कोई मतलब नही है। न तुमने जो दिया है, वह प्रेम से दिया है। न तुमने लड़की को दिया है। तुमने अहकार को दिया है। तुम अपने झडे को ऊचा

करके दिखाना चाहते थे कि देख लो। तुम अगर गौर से अपनी सचाई को पहचानने लगो तो तुम पाओगे तप भी आता, सयम भी आता।

सौ मे निन्यान्नबे आकाक्षाए तुम्हारी बिलकुल व्यर्थ है। वे तुमने न मालूम कैसे उधार ले ली है। सक्रामक रोग की तरह तुम्हे लग गई है। दुख आएगा तो तुम स्वीकार करोगे। और बहुत-से सुख जो सुख नहीं है, तुम दूसरो के कारण ही भोगे चले जाते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन जा रहा था। पूछा, 'कहा जा रहे हो ?' उसने कहा, 'शास्त्रीय सगीत सुनने जा रहा हू।' मैने कहा, 'लेकिन तुम जानते नहीं।' उसने कहा, 'अब क्या करे। सभी जा रहे है, न जाओ तो ऐसा लगता है कि शास्त्रीय सगीत नही आता। हालाकि कुछ समझ मे नही आता मेरे। अभी से डरा हुआ हू कि वहा करूगा क्या। मुझे तो उलटी घबड़ाहट होती है। जब आऽऽऽऽ करने लगते है, मुझे ऐसा लगता है कि अब पता नही कब यहा से निकलना हो पाएगा।' उसने बताया मुझे कि पहले भी एक दफा ऐसा हो चुका है मै गया था शास्त्रीय सगीत सुनने और जब सगीतज्ञ बहुत आऽऽऽऽ करने लगा तो मै रोने लगा। तो मेरे पड़ोस के लोगो ने पूछा कि अरे मुल्ला। हमने तो कभी सोचा भी न था कि तुम इतने सगीत के पारखी हो।

उसने कहा, 'पारखी-वारखी कुछ नही, यही हालत मेरे बकरे की हुई थी। उसी रात मर गया था। यह आदमी बचेगा नही। यह बिलकुल मरने के करीब है। इसलिए मुझे याद आ रही है बकरे की, कि बेचारा बकरा, इसी तरह शास्त्रीय सगीत करते-करते ।'

मगर जाना पड़ रहा है, क्योकि सारा मोहल्ला-पड़ोस जा रहा है। इज्जत का सवाल है।

तुमने कभी गौर किया अपने को। तुम बहुत-सी चीजो मे सम्मिलित हुए हो, जहा तुम कभी जाना न चाहते थे, लेकिन क्या करते। तुम भीड़ के हिस्से हो। तुमने कभी-कभी अपनी जरूरतो को भी कुर्बान किया है—उन बातो के लिए जो तुम्हारी जरूरते न थी। तुमने गहने खरीद लिए है, पेट को भूखा रखा है। तुमने बड़ा मकान बना लिया है, बच्चो के लिए औषधि नहीं जुटा पाए। तुमने कार खरीद ली, बच्चो को शिक्षा नहीं दे पाए।

तुमने कभी गौर किया है कि तुम वे चीजे कर गुजरे, जो न करते तो चल जाता, और उन चीजो को न कर पाए जो कि करनी बिलकुल जरूरी थीं।

सयम पैदा होता है, जो व्यक्ति सच्चा होने लगता है। उसे दिखाई पड़ता है, जो मेरे लिए जरूरी है वह करूगा, जो नही जरूरी है वह नहीं करूगा। और ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे भीड़ के बाहर हो जाता है। इस अकेले हो जाने का नाम ही सन्यास है। भीड़ मे ही होता है, लेकिन अकेला हो जाता है। अपने ढग से जीता है। और अपने ढग को किसी हालत मे भी समझौता नही करता। कुछ भी हो जाए, सत्य की आकाक्षा करनेवाला समझौतावादी नहीं होता। वह आगे-पीछे नहीं देखता, वह यह हिसाब नहीं लगाता कि इसके क्या परिणाम होगे। वह कहता है, जो भी परिणाम होगे उसका तप झेल लूगा, जो भी खोना पड़ेगा, उसका सयम हो जाएगा। लेकिन जो मै हू, उससे अन्यथा मै नही होना चाहता।

एक बडी क्राति घटती है, जब तुम अपने से राजी होते हो। जब तुम अपने से राजी होते हो तो तुम अपने भीतर उतरने लगते हो। जब तुम अपने से राजी होते हो और यहा-वहा नही दौड़ते और दूसरो का अनुगमन नही करते तो तुम अपने मे डूबने लगते हो, एक डुबकी लगती है। उस डुबकी के माध्यम से तुम अपनी सतह से ही परिचित नही होते, अपने भीतर की गहराइयो से परिचित होने लगते हो।

और एक दिन ऐसी भी घड़ी आती है कि तुम अपने केद्र पर आरोपित हो जाते हो। वही है धर्म, आत्मज्ञान कहो।

'सत्य मे तप, सयम और शेष समस्त गुणो का वास होता है। जैसे समुद्र मछलियो का आश्रय है, वैसे ही सत्य समस्त गुणो का आश्रय है।'

सत्य जैसे सागर है, सभी नदिया उसी मे गिर जाती है, ऐसे ही सत्य जीवन का परम आचरण है, धर्म का पर्यायवाची है, और सभी गुण उसी मे गिर जाते है।

लेकिन लोग उलटा कर रहे है। लोग कहते है, तप साध रहे है, सयम साध रहे है—क्योकि सत्य पाना है। महावीर कहते है, सत्य साधो, तो सयम और तप अपने से आ जाते है। अब इतनी सीधी-सी बात भी कैसे चूक जाती है। ऐसा लगता है, लोग चूकना ही चाहते है। अब इतना साफ-सा वचन है। 'सच्चाम्मि वसदि तवो' लेकिन किसी जैन मुनि से पूछो, तो वह कहेगा, 'तप करोगे तो ही सत्य मिलेगा। तपश्चर्या के बिना कही सत्य

मिला है।' महावीर ठीक उलटी बात कह रहे है कि सत्य के बिना कहीं तपश्चर्या हुई है। दोनो दुश्मन मालूम पड़ते है। यह जैन मुनि महावीर के पीछे चलता हुआ मालूम नहीं पड़ता। यह तो उलटा ही काम कर रहा है। यह तो कारण को पकडकर कार्य को लाना चाहता है, जो कि सभव नहीं है। कार्य से कारण आता है। तुम चलते हो, तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे चलती है। महावीर कहते है, तुम चलोगे, तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे चलेगी। जैन मुनि कहता है, छाया का पीछा करो, कही ऐसा न हो कि छाया यहा-वहा चली जाए।

अब तुम अड़चन मे पड़ जाओगे, अगर तुमने छाया का पीछा किया तो तुम तो उलटी यात्रा पर लग गए। यह तो छाया तुम्हारी आत्मा हो गई, तुम छाया हो गए।

महावीर कहते है, सत्य मे तप, सयम और शेष समस्त गुणो का वास हो जाता है। वे नाम भी नही गिनाते। गिनाने की कोई जरूरत नहीं है। कह दिया सागर, तो सभी नदिया आ गई। आ ही जाती है देर-अबेर। नदी-नदी का कहा-कहा पीछा करोगे? सागर को ही पकड लो। जब सागर ही मिलता हो तो नदियो के पीछे क्यो भटकते हो?

लेकिन अगर जैन मुनि ऐसी बात कहे, तो उसका खुद का क्या हो। क्योकि वह भी नदियो के पीछे भटक रहा है।

इसे समझो।

जैनो का शब्द है 'उपवास'। बड़ा प्यारा शब्द है। उपवास शब्द का अर्थ होता है अपने अतर्तम मे वास। उप+वास अपने पास होना, अपने निकट होना। इसका खाने न खाने से कुछ भी सबध नही। तुम जिसे उपवास कहते हो, वह अनशन है, उपवास नही। फर्क क्या है? महावीर कहते है, जब तुम अपने पास हो जाओगे तो उन घड़ियो मे भोजन भूल जाता है, क्योकि शरीर भूल जाता है। जब कोई अपने पास होता है, आत्मा के पास होता है। जब आत्मा का सत्सग चलता है, जब उस रस मे कोई डूबता है—कहा याद रहती है भूख-प्यास की।

तुमने कभी खयाल नहीं किया। कोई मित्र घर आ जाए वर्षो का बिछड़ा हुआ, भूख याद पड़ती है? प्यास पता चलती है? घटो बीत जाते है, बैठे है, चर्चा कर रहे है, न भूख है न प्यास है।

तुम्हारा प्रेमी मिल जाए, तुम्हारी प्रेयसी मिल जाए—भूख, प्यास भूल जाती है। घड़िया ऐसे बीतने लगती है जैसे पल भागे। दिन-राते ऐसे गुजर जाती है जैसे आई और गईं, पता ही न चला।

तो जरा सोचो, जिस दिन भीतर का प्यारा, भीतर का प्रियतम मिल जाए, जब उसके पास सरकने लगोगे तो कहा याद आएगी भूख की, कहा याद आएगी प्यास की।

महावीर कहते है, उपवास के कारण अनशन हो जाता है। जैन मुनि कहता है, अनशन करो तो आत्मा के पास जाओगे।

अब बड़ा मुश्किल है मामला। अनशन करनेवाला और भी शरीर के पास हो जाता है। भूखे मरोगे तो शरीर की ही याद आएगी। नहीं तो करके देख लो। उपवास करके देख लो। जिसको जैन मुनि उपवास कहते है, मै तो अनशन कहता हू। अनशन करके देख लो। जिस दिन खाना न खाओगे, उस दिन खाने ही खाने की याद आएगी। उस दिन रास्ते पर गुजरोगे तो न तो कपडे की दुकाने दिखाई पड़ेगी, न जूतो की दुकाने, बस रेस्तरा, होटल, उन्ही-उन्ही के बोर्ड एकदम पढोगे और दिल मे बड़ी तरगे उठेगी। रसगुल्ले उठेगे। रसमलाई फैलेगी। सदेशो के सदेश आएगे।

भूखा आदमी भोजन का ही सोच सकता है।

इसलिए जैन जब उपवास करते है पर्यूषण के दिनो मे, तो मदिर मे गुजारते है ज्यादा समय, क्योकि घर तो बहुत ज्यादा याद आती है। मदिर मे किसी तरह भुलाए रखते हैं, शोरगुल मचाए रखते है। और फिर वहा और भी उन्ही जैसे भूखे बैठे है, उनको देखकर भी ऐसा लगता है 'कोई अकेले ही थोडे ही है। अपन ही थोड़े ही परेशान हो रहे है, और भी सब हो रहे है।'

और एक-दूसरे की हिम्मत बधाए रखते है। बैड-बाजा बजाए रखते है। घर आए तो भोजन की याद आती है। वहा भी भोजन की ही याद आती है। तुम जिस चीज के साथ जबर्दस्ती करोगे, उसका काटा चुभेगा।

महावीर कहते है, उपवास हो जाए—अनशन अपने से हो जाता है।

जैन मुनि कहते है, अनशन करो तो उपवास होगा। यही पूरी की पूरी उलट-बासी चल रही है, उलटी धारा बह रही है।

'समुद्र जैसे सभी नदियो का आश्रय है, ऐसे ही सत्य सभी धर्मो का आश्रय है। कदाचित सोने और चादी के कैलाश के समान असख्य पर्वत हो जाएं तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ

भी नहीं होता, तृप्ति नही होती, क्योकि इच्छा आकाश के समान अनत है।'

सोने और चादी के कैलाश, हिमालय के हिमालय सोने और चादी के, अनत हिमालय, असख्य पर्वत तुम्हे उपलब्ध हो जाए, तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नही होता। क्योकि लोभ का इससे कोई सबध ही नही है। लोभ का जो तुम्हारे पास है उससे कोई सबध ही नही है। लोभ की दौड़ तो उसके लिए है जो तुम्हारे पास नहीं है।

लोभ के गणित को समझो। जो तुम्हारे पास है, लोभ उसको देखता ही नही, जो तुमसे दूर है, उसी को देखता है।

एक बहुत मोटा आदमी था। डाक्टर ने उसको सलाह दी कि अब तुम कुछ और नहीं करते तो मरोगे। तुम गोल्फ खेलना शुरू कर दो। तो वह सात दिन बाद आया। उसने कहा, बडी मुश्किल है। अगर गेद को बहुत पास रखता हू तो दिखाई नहीं पडती। तोद बड़ी है। अगर बहुत दूर रखता हू तो चोट नही मार सकता। अब करू क्या?

लोभ की तोद बड़ी है। जो पास है वह तो दिखाई ही नहीं पड़ता। जो दूर है वही दिखाई पड़ता है। लेकिन जो दूर है वह तभी तक दिखाई पड़ता है जब तक दूर है। जैसे-जैसे तुम पास आए, तुम्हारी तोद भी गई। जब तुम पास पहुचे वह तोद के नीचे फिर ढक गया। अब फिर दूर रखो। तुम्हारे पास दस हजार है तो नही दिखाई पड़ते, लाख दिखाई पड़ते है। लाख हो गए, वे नहीं दिखाई पड़ते, वे तोद के नीचे पड़ गए—दस लाख दिखाई पड़ते है। अगर यह गणित समझ मे आ गया, तो एक हिमालय हो कि हजार हिमालय हो जाए सोने से भरे हुए तुम्हारे पास, क्या फर्क पडता है।

जो तुम्हारे पास है, वह लोभ को दिखाई नही पड़ेगा, जो दूर है, जो नही है, वही दिखाई पड़ता है।

तो जो इस बात को समझ लेगा, वह एक बात समझ लेगा कि लोभ के तृप्त होने का कोई उपाय नही है। चोट लग ही नही सकती। पास रखो, दिखाई नही पडता, दूर रखो, दिखाई पड़ता है—लेकिन दूर को चोट कैसे मारो। चोट तो पास को लग सकती थी। इसलिए लोभ कभी तृप्त नहीं होता। तुम यह मत सोचना कि गरीब आदमी का तृप्त नही होता, अमीर का तो हो जाता होगा। किसी का तृप्त नही होता। अमीर गरीब से भी ज्यादा गरीब हो जाता है। जितना होता जाता है उतनी ही मुश्किल होती जाती है। इतना हो गया, कुछ भी नहीं हुआ—और बेचैनी बढ़ती है। गरीब को तो कम से कम एक चैन रहता है, एक आशा रहती है कि जब हो जाएगा तो सब ठीक हो जाएगा; अमीर की वह आशा भी छिन जाती है। क्योकि उसे एक बात कब तक झुठलाएगा वह कि इतना तो हो गया, और कुछ भी नहीं हुआ।

यह कुछ आश्चर्यजनक नहीं है कि जैनो के चौबीस ही तीर्थकर राजपुत्र थे। यह कुछ आश्चर्यजनक नही है कि बुद्ध भी राजपुत्र थे। और कृष्ण और राम और हिंदुओ के सारे अवतार शाही घरो से आए थे। अगर उनको यह दिखाई पड़ गया, तो इसके दिखाई पड़ने के पीछे एक कारण है। उन्होने दौड को देखा। कितना धन था, कुछ सार नहीं मिलता, लोभ तो पकड़े ही रहता है।

तो एक बात तय है कि लोभ का जिसने साथ रखा, अतृप्ति की छाया बनती रहेगी। लोभ से जिसने तृप्ति चाही, वह असभव चाह रहा है—जो न हुआ है, न होता है, न हो सकता है। तृप्ति अगर चाहनी हो तो लोभ से जागो।

'कदाचित सोने और चादी के कैलाश के समान असख्य पर्वत हो जाए ।'

'सुवण्णरूप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असखया ' असख्य हो जाए कैलास, 'नरस्स लुद्धस्स न तेहि किचि ' फिर भी लोभी को कोई तृप्ति नही।

'इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया।' इच्छा आकाश की तरह अनत है। बढो, दिखाई पडता है, आकाश छू रहा है पृथ्वी को, यही कोई दस-पाच मील दूर, क्षितिज पास ही दिखाई पडता है—पहुचो, कभी मिलता नही।

तुम जितने बढ़ते हो, क्षितिज भी उतना ही तुम्हारे साथ बढता जाता है। तुम्हारे और क्षितिज के बीच का जो फासला है, वह सदा उतना ही रहता है। उसमे कोई अतर नही पडता। तुम्हारे पास क्या है, इससे कुछ भेद नही पड़ता। तुम्हारे और तुम्हारे लोभ का अतर सदा समान रहता है। गरीब और उसकी उपलब्धि मे, अमीर और उसकी उपलब्धि मे उतना ही अतर है। अतर बराबर है।

ऐ शेख। अगर खुल्द की तारीफ यही है
मै इसका तलबगार कभी हो नही सकता।

कवि ने कहा है कि अगर तुम्हारे स्वर्ग की यही प्रशसा है कि वहा सोने के वृक्ष हैं और हीरे-जवाहरातो, मणि-माणिक्य के फूल है, और वहा सुदर स्त्रिया है जिनका रूप कभी ढलता नही, और वहा शराब के चश्मे है—तो कवि ने कहा है ऐ शेख। अगर खुल्द की तारीफ यही है—अगर तेरे स्वर्ग की यही तारीफ है, यही प्रशसा है, मै इसका तलबगार कभी हो नही सकता—तो फिर मै इसकी आकाक्षा नही कर सकता। क्योकि यह तो फिर वही मूढ़ता है जो ससार की है। इसमे तो कुछ भेद न हुआ। यहा थोड़े-थोड़े ढेर थे सोने-चादी के, वहा कैलाश जैसे पर्वत होगे। यहा सुदर स्त्रिया थी, लेकिन उनका रूप ढल जाता था, वहा सुदर स्त्रिया होगी जिनका रूप न ढलेगा। अतर परिमाणात्मक है, गुणात्मक नही—क्वाटिटी का है, क्वालिटी का नहीं।

मै इसका तलबगार कभी हो नही सकता।

जिसने जीवन की लोभ की प्रक्रिया को समझ लिया, वह स्वर्ग की माग न करेगा। और अगर तुम अभी भी स्वर्ग की माग कर रहे हो तो तुम समझना कि तुम ससार को ही बार-बार मागे जा रहे हो। तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारे ससार का ही फैलाव है, इसका ही विस्तार है।

तुम जरा स्वर्ग की तारीफ तो देखो। तुम जरा शास्त्रो मे स्वर्ग का वर्णन तो देखो। जिनने ये शास्त्र लिखे है, वे बुद्धिमान नही हो सकते। और जिन्होने स्वर्ग की ये प्रशसाए की है, वे लोभ से मुक्त नही हो सकते। वस्तुत स्वर्ग की इन आकाक्षाओ मे लोभ ही सघनीभूत होकर प्रगट हुआ है। जो यहा पूरा नही होता, जो क्षितिज यहा नही मिलते, उनको पूरा कर लेने की आकाक्षा है। लोभ, स्वर्ग मे कह रहा है, घबड़ाओ मत, वहा तुम जहा खडे हो वहीं जमीन आसमान को छुएगा। कल्पवृक्ष। आकाक्षा हुई नही कि पूरी हुई। तुमने चाहा नही कि पा लू क्षितिज को और क्षितिज खुद चला आएगा। तुम्हे जाना न पडेगा।

ये जो आकाक्षाए है, ये धार्मिक नहीं है—ये अधार्मिक आदमी की आकाक्षाए है। ससार मे आकाक्षा हार गई तो वह कहता है, कोई हर्ज नही, स्वर्ग मे पूरी कर लेगे, जो यहा नही हुआ उसे वहा पूरा कर लेगे।

यह जन्नत मुबारिक रहे जाहिदो को
कि मै आपका सामना चाहता हू।

जो जानते है, वे कहते है 'प्रभु। तुम्हारा मुकाबला चाहते है।'

यह जन्नत मुबारिक रहे जाहिदो को। यह तुम्हारे तथाकथित त्यागी, विरक्तो को मुबारिक। जिन्होने यहा बेचारो ने छोड़ा है इस आकाक्षा मे कि वहां पा लेगे, उनको दे देना जन्नत। यहा स्त्रिया छोड़ दी है, बैठे है आसन लगाए, आशा कर रहे है अप्सराओ की। उर्वशी से कम मे उनका काम न चलेगा। चौक-चौककर देखते है, मेनका अभी तक आई नहीं। सुना तो था कि आती है। जब ऋषि-मुनि पहुच जाते है समाधि की अवस्था को, समाधि मे भी आख खोल-खोलकर देख लेते है, मेनका अभी तक आई नही। इद्र का आसन नहीं डोला। लेकिन जो आख खोल-खोलकर मेनका को देख रहा है, उसकी समाधि कहा लगी? उसकी समाधि कैसे लगेगी?

समाधि का अर्थ है लोभ व्यर्थ हो गया। ऐसे समाधान का नाम समाधि है। लोभ व्यर्थ हो गया—यहा का नही, वहा का नही, लोभ मात्र व्यर्थ हो गया। न अब यहा, न अब वहा—अब लोभ की कोई आकाक्षा न रही। जान लिया, पहचान लिया, लोभ का सार पकड लिया कि लोभ कभी तृप्त नही हो सकता, इसलिए अब लोभ छोड़ दिया। ससार का लोभ नही—लोभ को ही छोड़ दिया। क्योकि जब तक लोभ है, लोभ नए ससार बनाए चले जाता है। लोभ ससार का सूत्र है।

तो लोग कहते है, 'हम कोई ससारी थोड़े ही है। हमने तो ससार छोड़ दिया है। हम तो उस सुख की तलाश कर रहे है जो शाश्वत है।' लेकिन सुख की ही तलाश जारी है। ये लोग, जिनको तुम सन्यासी कहते हो, ऋषि-मुनि कहते हो, ये ससारी है, ये तुमसे भी गहन ससारी है। तुम तो छोटे-मोटे से राजी हो, छोटा-मोटा टीला सोने का काफी है, ये कहते है, सुमेरु पर्वत, कैलाश, हिमालय। इनका लोभ तुमसे बड़ा है। 'नरस्स लुद्धस्स न तेहि किचि।' इनका लोभ इन्हे गिद्ध बना रहा है। ये बैठे व्यर्थ की आकाक्षा लगाए।

गिद्धो को देखा है। जहा लाश पड़ी है, वही मडराते है। ऐसा ही लोभ भी गिद्ध की भाति व्यर्थ पर, असार पर, मुर्दे पर मडराता है। और जीवन चूका जाता है।

यह जन्नत मुबारिक रहे जाहिदो को
कि मै आपका सामना चाहता हू।

जिसने समझा लोभ के सत्य को, वह लोभ से मुक्त हुआ।

ऐसा नही कि वह चेष्टा करता है मुक्त होने की, क्योंकि चेष्टा तो तभी होती है जब नया लोभ पैदा हो। समझना। तुम तो चेष्टा कर ही नहीं सकते बिना लोभ के।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते है, 'ध्यान तो करे, लेकिन लाभ क्या? कोई लाभ बताए।' तो मैं उनसे कहता हू, तुम महर्षि महेश योगी के पास जाओ। वे लाभ बताते है। वे कहते है, धन भी बढेगा ध्यान करने से। तब तो अमरीका मे इतना प्रभाव है। ध्यान मे किसकी चिंता है। धन बढ़ाना है। धन भी बढ़ेगा ध्यान करने से। कभी सोचा नहीं था किसी ने कि ध्यान करने से धन बढ़ता है। लेकिन अगर लोगो को ध्यान मे लगाना हो तो धन बढ़ाने का प्रलोभन देना जरूरी है। धन मे ही लोग उत्सुक है, ध्यान मे उत्सुक नही। उन्हे ध्यान का पता ही नही।

ध्यान का अर्थ है ऐसी मनोदशा जिसके पार कोई लोभ की आकाक्षा नही है।

अब तुम पूछते हो, 'ध्यान से लाभ क्या?' कुछ भी लाभ नही है। कमल खिलते है—लाभ क्या? सूरज निकलता है—लाभ क्या? परमात्मा है—लाभ क्या? बुद्ध और महावीर सिद्धशिलाओ पर बैठे है—लाभ क्या?

तुम सोचते हो कि पच्चीस सौ साल मे खूब धन इकट्ठा कर लिया होगा महावीर ने सिद्ध शिला पर बैठे-बैठे, खूब दुकान चलाई होगी? लाभ क्या?

बर्ट्रेड रसेल ने लिखा है कि यह पूरब के लोगो का मोक्ष मुझे घबड़ाता है—सीधा साफ गणित वाला आदमी है—मुझे घबड़ाता है। अनत काल तक वहा बैठे-बैठे करेगे क्या? एक दफा मुक्त हो गए, हो गए, फिर लौटने का तो उपाय भी नही है। ससार से बाहर जाने की व्यवस्था है, भीतर आने की व्यवस्था नहीं है। सोच-समझकर बाहर जाना—गए कि गए, फिर लाख सिर मारो, दरवाजा नहीं खुलता। अब तक जो भी मोक्ष गया, लौटकर नहीं आ पाया। इसीलिए जो समझदार है, वे कहते है, जल्दी क्या है? वे कहते है, पहले इसको तो भोग ले।

देख ले इस चश्मे-दहर को दिल भरकर 'नजीर'
फिर तेरा काहे को इस बाग मे आना होगा।

खूब देख लो दिल भरकर। लौटकर आना कोई आया नही। इसलिए लोग कहते है, थोड़ा टालो मोक्ष को, इतनी जल्दी कहा है।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते है, अभी तो हम जवान है। कब तक रहोगे जवान? टालो। चलो जवानी के नाम पर टालो कि जब बूढ़े होगे तब। बूढ़ा आदमी कहता है, अभी तो मै जिदा हू। टालो। जब मर जाओगे—तब? कोई न कोई बहाना आदमी खोजे जाता है। लेकिन असली बहाना यह है कि तुम्हे वस्तुत धर्म मे कुछ लाभ नहीं दिखाई पड़ रहा। सुनते हो बाते महावीरो की, बुद्धो की—चमत्कृत हो जाते हो। सुनते हो गुणगान उस परम दशा का, तुम्हारे भीतर लोभ जगता है कि अरे, हमे यह भी मिल जाए। लेकिन जो तुम्हे मिल रहा है, मिला हुआ है, या मिलने की आशा मे है, उसके साथ-साथ मिल जाए। यह भी तुम्हारा लोभ ही बनता है।

और ध्यान?—तुलसी ने कहा है स्वात सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। अपनी प्रसन्नता के लिए, आनद के लिए। कोई पूछता है कि क्यो गाए जाते हो राम के गीत। स्वात सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा—अपने सुख के लिए। कही कोई भविष्य मे लाभ नहीं है। अभी, यही—मजा आ रहा है। मै ही तुमसे बोल रहा हू—स्वात सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। बोल रहा हू—न कोई लाभ है, न कोई लोभ है। बोल रहा हू, ऐसे ही जैसे पक्षी कलरव कर रहे है वृक्षो मे। काश, तुम भी ऐसे ही सुन सको जैसे मै बोल रहा हू। तो ध्यान हो गया।

ध्यान के लिए कुछ करने का थोडे ही सवाल है। ध्यान तो एक समझ की दशा है, एक प्रज्ञा की स्थिति है। जहा लोभ गिर गया वहा ध्यान। जहा तुमने लोभ की असारता सपूर्णता से जान ली और पहचान ली, कि यह असभव आकाक्षा है, पूरी नही होगी। इसमे तुम्हारी कमजोरी का सवाल नही है। तुम कितने ही बलशाली होओ तो भी पूरी न होगी। नेपोलियन भी पूरी नही करता, सिकदर भी पूरी नहीं करता, चगेज और नादिर और तैमूर कोई पूरी नही करते। इसमे कमजोरी या ताकत का सवाल नहीं है। यह तो ऐसे ही है जैसे कोई रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश कर रहा है। इसमे ताकत और कमजोरी का थोडे ही सवाल है। रेत मे तेल है ही नहीं, तो निचुड़ेगा कैसे?

लोभ से जो आनद को निचोड़ने की कोशिश कर रहा है, बस उलझ गया। कोशिश जारी रहेगी, हाथ कभी कुछ भी न लगेगा।

'कदाचित सोने और चादी के कैलाश के समान असख्य पर्वत हो जाए, तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नही होता।'

तृप्ति नहीं होती, क्योकि इच्छा आकाश के समान अनत है। लेकिन इस लोभ की दौड़ मे तुम कुछ गवा रहे हो, मिलता तो कुछ भी नहीं। एक बात तय है कि मिलता कुछ भी नही। लेकिन गवा तुम बहुत कुछ रहे हो। कमा तो कुछ भी नही पाते, गवाते बहुत हो। अपने को गवा रहे हो। धन के ठीकरे इकट्ठे करोगे, आत्मा को बेचते जाओगे टुकड़ा-टुकड़ा करके, क्योकि बिना अपने को बेचे यह धन इकट्ठा न होगा। बिना अपने को बेचे तुम लोभ की दौड़ मे न लग पाओगे। हर कदम, लोभ की दिशा मे उठाया गया, आत्मघात है। यह जिस दिन जीवन का दीया बुझने लगेगा उस दिन पछताओगे, उस दिन रोओगे, लेकिन तब बहुत देर हो चुकी होगी।

तूफाने-दर्दो-गम मे न गुल हो सकी मगर
शम-ए-हयात सास के झोके से बुझ गई।

बडे-बड़े तूफान और दुख और दर्द भी जिसे नही बुझा पाते, वह जिदगी बस जरा से सास के झोके से बुझ जाती है।

तूफाने-दर्दो-गम मे न गुल हो सकी मगर
शम-ए-हयात सास के झोके से बुझ गई।

पर जिस दिन वह जीवन की शमा, वह जीवन की ज्योति सास के जरा-से झोके मे बुझने लगेगी, उस दिन पछताओगे, छाती पीटोगे, रोओगे। मेरे देखे मरते वक्त आदमी का जो रुदन है, मरते वक्त आदमी की जो पीड़ा है, वह मृत्यु के कारण नही है—वह व्यर्थ गए जीवन के कारण है। सारा जीवन असार गया, हाथ यह मौत आई अब। क्या-क्या चाहा था। कैसी-कैसी चाहत न की थी। कैसे-कैसे इद्रधनुष फैलाए थे वासनाओ के। वह तो कुछ भी हाथ न आया। हाथ यह मौत आई है। जिसको कभी न चाहा था वह हाथ आई। जिसको कभी न मागा था वह मिली। जिसकी कभी आरजू न की थी, मिन्नत न की थी, प्रार्थना न की थी, जिसके लिए परमात्मा के द्वार पर कभी दस्तक न दी थी, वह मिली। और जो-जो चाहा था वह तो मिला ही नहीं। उसको पाने की कोशिश मे जो जीवन मिला था वह भी गवा दिया।

इसलिए धार्मिक व्यक्ति कल का भरोसा नहीं करता। वह कल पर नही टालता। कल पर टालना ही लोभ है। लोभ का अर्थ है कल मिलेगा। धार्मिक व्यक्ति कहता है, अभी जिएगे, यहीं जिएगे। कल होता कहा? भविष्य है कहा? भविष्य तुम्हारे मन का ही खेल है। जो है वह तो सदा वर्तमान है। जिस दिन तुम्हारे मन मे कोई लोभ न होगा, उसी दिन तुम पाओगे, भविष्य भी खो गया। लोभ भविष्य है। भय अतीत है। भय के कारण तुम अतीत को पकडे रहते हो। क्योकि कुछ तो सहारा चाहिए, नही तो गिर पड़ोगे अखड खड्ड मे। पकड़े रहते हो कि मै कौन हू—जाति, कुल, धर्म, परिवार, वश, प्रतिष्ठा, पद, उपाधि, जो-जो किया उस सबका सार सग्रह—तुम पकडे रहते हो। अतीत को पकड़े रहते हो, क्योकि वही लगता है कि उसी को पकडकर लटके रहे, अन्यथा शून्य है विराट। अगर कोई सहारा न रहा पीछे, शून्य मे गिर जाएगे।

अतीत को पकड़े हो—भय के कारण। और भविष्य को जिलाए रखते हो, जगाए रखते हो—लोभ के कारण। लोभ और भय एक ही सिक्के के दो पहलू है। इसलिए लोभी कभी भय से मुक्त नही हो सकता और भयभीत कभी लोभ से मुक्त नहीं हो सकता।

तुमने देखा। जितना तुम्हारे पास धन इकट्ठा होता जाता है, उतना ही भय भी बढता जाता है। यह बडा अजीब मामला है। लोग धन इकट्ठा करते है ताकि भय न रहे जीवन मे, लेकिन जैसे-जैसे धन इकट्ठा होता है, वैसे-वैसे भय बढ़ता है, घटता नही। अब और एक नया भय लगता है कि कोई धन न छीन ले। अब एक नया भय लगता है कि कही जो मिला है वह खो न जाए। मिला कुछ भी नही है, लेकिन खो न जाए, यह भय तुम्हारे जीवन को घेर लेता है। तब तुम और ज्यादा दौड़ मे लगते हो कि और कमाओ, और इकट्ठा करो। इसलिए तो देने मे डरते हो कि कही दे दिया तो फिर भय मे खड़े हो जाओगे। इकट्ठा होता जाता है, कृपणता बढ़ती चली जाती है। जितना धनी, उतना ज्यादा कृपण हो जाता है। गरीब तो शायद कुछ दे भी दे, क्योकि वह कहता है, दे भी दिया, तो क्या हर्ज है, वैसे ही कुछ नहीं है, होता तो बचाते, जब है ही नही तो बचाना क्या। अमीर तो कुछ भी नही दे पाता। एक-एक पैसे का हिसाब रखता है। अब डरता है कि एक भी पैसा खिसका तो कम हुआ। अब यह बड़े मजे की बात है, मिला कुछ भी नहीं है, लेकिन कम होने का डर पकड़ता है। कोई छीन न ले। धन की आकाक्षा भय से होती है—धन पाकर भय और दुगना हो जाता है।

तुमने भय के कदम देखे। लोभ के पीछे-पीछे ही चलते है।

लेकिन धार्मिक व्यक्ति अभी जीता है।

मै कल का भरोसा नही करता साकी
मुमकिन है कि जाम रहे मै न रहू।
मै कल का भरोसा नही करता साकी
मुमकिन है कि जाम रहे मै न रहू।

आज काफी है। यह क्षण काफी है। इस क्षण मे जो जीता है, वही ध्यान मे है। जिसने पूछा, ध्यान का लाभ क्या, वह कल पर सरक गया। उसने पूछा, लाभ क्या? मिलेगा क्या? कृष्ण की पूरी गीता बस इतनी-सी ही बात कहती है

मै कल का भरोसा नही करता साकी
मुमकिन है कि जाम रहे मै न रहू।

कृष्ण कहते है, फलाकाक्षा-रहित होकर तू कर्म मे जुट जा—यही ध्यान है, यही धर्म है। फलाकाक्षा यानी लोभ। तू यह मत पूछ कि क्या मिलेगा। जैसे ही कोई व्यक्ति लोभ को हटाकर जीना शुरू कर देता है, उसके जीवन मे ध्यान की वर्षा हो जाती है, उसका कण-कण ध्यान से भर जाता है। लोभ के बादल को हटाओ, ध्यान का आकाश उपलब्ध हो जाता है।

'जिस प्रकार जल मे उत्पन्न हुआ कमल जल से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार काम-भोग के वातावरण मे उत्पन्न हुआ जो मनुष्य उससे लिप्त नही होता, उसे हम ब्राह्मण कहते है।'

महावीर की ब्राह्मण की परिभाषा

'जहा पोम्म जले जाय, नोवलिप्पइ वारिणा।
एव अलित कामेहि, त वय बूम माहण।।'

उसे कहते है हम ब्राह्मण, जो कामवासना मे पैदा हुआ, कामवासना मे ही जन्मा और बड़ा हुआ, कामवासना के ही जगत मे जीता है—लेकिन कमल के फूल की भाति, अलिप्त, जगत उसे छू नहीं पाता।

इसे समझें।

हिंदू-शास्त्र भी कहते हैं कि जन्म से तो सभी शूद्र है। जन्म से तो सभी शूद्र है ही, क्योकि जन्म ही कीचड़ मे होता है, जन्म ही कामवासना मे होता है। जन्म ही असभव है कामवासना के बिना। तो जन्म से तो सभी कीचड़ है, शूद्र है। फिर इनमे से ब्राह्मण कोई बन सकता है, बनना चाहे। सभी बन सकते है, बनना चाहे। लेकिन ब्राह्मण कोई तभी बनता है, जब कमल की भाति कीचड़ से दूर होता जाता है—इतना दूर, इतना पार और इतना अलिप्त कि जल उसे छू भी नहीं पाता, ऐसा निर्दोष कि कुछ भी उसे दोषी नहीं कर पाता, ऐसा पुण्य का फूल कि पाप उसे छू भी नहीं पाता। पाप मे ही खड़ा रहेगा, क्योकि जाओगे कहा? ससार से भागोगे कहा? जहा जाओगे वहा भी ससार है। जहा भी जाना-आना हो सकता है वहा ससार है। इसलिए तो हम ससार को आवागमन कहते है—आना-जाना। तो कहा जाओगे? कहा आओगे? जहा भी जाओगे, जहा भी आओगे, वही ससार है। ठहर जाओ। आना-जाना छोड़ो। जहा हो वहीं ठहर जाओ। भीतर उतरो। इतने भीतर उतर जाओ कि बाहर की धुन भी न पहुचे। इतने भीतर उतर जाओ कि बाजार चलता रहे और चलता रहे और तुम्हे पता भी न चले। इतने भीतर उतर जाओ कि पत्नी पास हो, बच्चे पास हो, मकान हो, घर-गृहस्थी हो, सब हो—लेकिन तुम भीतर अकेले हो जाओ।

सबके बीच जो अकेला हो गया, वही सन्यासी है। भीड़ के बीच जो भीड का हिस्सा न रहा, वही सन्यासी है।

जल मे कमलवत—महावीर कहते है—यही मेरी व्याख्या है ब्राह्मण की।

इसलिए ब्राह्मण कोई जाति से नहीं होता, न जन्म से होता है। जन्म और जाति से तो सभी शूद्र है। ब्राह्मण तो कोई उपलब्धि से होता है। इसलिए महावीर ने वर्ण-व्यवस्था नही मानी। महावीर ने कहा, यह कैसे हो सकता है कि कोई कहे, कि मै ब्राह्मण हू जन्म से। जन्म से तो कोई ब्राह्मण नही होता—जागरण से कोई ब्राह्मण होता है। होश से कोई ब्राह्मण होता है।

'जीव ही ब्रह्म है। देहासक्ति से मुक्त होकर मुनि की ब्रह्म के लिए जो चर्या है, वही ब्रह्मचर्य है।'

बड़ी प्यारी परिभाषा है। ब्राह्मण की जो चर्या है, वह ब्रह्मचर्य। और प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ब्रह्म है।

'जीव ही ब्रह्म है। देहासक्ति से मुक्त व्यक्ति की जो चर्या है, वही ब्रह्मचर्या है, वही ब्रह्मचर्य है।'

जैसे ही तुम शरीर के द्वारा नहीं जीते, शरीर का उपयोग करते हो, लेकिन शरीर के मालिक होकर जीते हो, शरीर सेवक हो जाता है, तुम स्वामी हो जाते—उसी क्षण तुम्हारे भीतर के ब्रह्म का आविष्कार हुआ, तुमने जाना, तुम कौन हो। और उस जानने के बाद जो आचरण है, वही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का इतना छोटा-सा अर्थ जो लोग ले लेते है—वीर्य-नियमन—काफी

नही है। एक हिस्सा है, लेकिन पूरा नहीं है। पूरा अर्थ तो ब्रह्मचर्य शब्द मे छिपा हुआ है—ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। तुम्हारे भीतर जो ईश्वर छिपा है उससे जब तुम जीने लगोगे तो ब्रह्मचर्य। स्वभावत वीर्य-नियमन अपने से आ जाएगा, उसे लाना भी न पडेगा। वह उसके साथ आया हुआ अनुषग है।

अभी तो हम ऐसे जीते है जैसे शरीर है। शरीर मे है, ऐसे भी नही—शरीर ही है, ऐसे जीते है। अभी तो कोई तुम्हारा शरीर काट दे तो तुम समझोगे कि तुम कट गए। अभी तो कोई शरीर को मार डाले तो तुम समझोगे कि तुम मर गए। अभी तो शरीर से तुमने अपने पृथक 'होने' को जरा भी नहीं जाना, रत्तीभर फासला नही कर पाए।

काट कर पर मुतमईन सैयाद बेपरवा न हो
रूह बुलबुल की इरादा रखती है परवाज का।

ऐसी घड़ी अभी तुम्हारे पास नही आई कि तुम मौत से कह सको—

काट कर पर मुतमईन सैयाद बेपरवा न हो
कि हे जल्लाद। पख काटकर तू निश्चित मत बैठ।
रूह बुलबुल की इरादा रखती है परवाज का।

पखो से क्या लेना-देना है, आत्मा उड़ने का इरादा रखती है आकाश मे। पखो को काटकर तू निश्चित मत हो जा। जिस दिन ऐसी घड़ी आती है कि तुम मौत से कह सकोगे कि काट डाल शरीर को, लेकिन इससे निश्चित होकर मत बैठना, क्योकि मै अनकटा पीछे हू। शरीर से थोड़े ही चलता था—शरीर मेरे कारण चलता था। मैं चलता रहूगा। शरीर से थोड़े ही उड़ता था—शरीर मेरे कारण उड़ता था। मै उडता रहूगा।

काट कर पर मुतमईन सैयाद बेपरवा न हो
रूह बुलबुल की इरादा रखती है परवाज का।

लेकिन जब तुम अपनी रूह को पहचान सको, आत्मा को अलग शरीर से, तब तुम मौत से भी हसकर दो बाते कर सकोगे।

'जीव ही ब्रह्म है।' जो अपने भीतर उतरेगा, पाएगा। लेकिन जिनको तुमने धर्म जाना है, वे तुम्हे भीतर तो उतरने की तरफ नहीं ले जाते, वे तुम्हे बाहर के मदिरो-मस्जिदो मे भटकाते है। वे तुम्हारे हाथ मे कुछ झूठे धर्म पकडा देते है। इन्ही धर्मो के कारण दुनिया मे इतना अधर्म है।

हम तो 'ताबा' हुए है लामजहब
मजहलो देख सब के मजहब का।

—यह सब उपद्रव और अज्ञान देखकर, मजहब के नाम पर जो चलता है, बहुत-से धार्मिक व्यक्ति अधार्मिक हो जाते है।

तुम्हे पहचाना है तुम्हारे भीतर, कहीं और मदिर नहीं है। तुम्हे लगाना है तुम्हारी पूजा और अर्चना मे, कही और देवता नही है। तुम्हे जगाना है वहा, जहा तुम्हारी चैतन्य की धारा उठती है—उसी गगोत्री मे।

धीरे-धीरे उतरो भीतर। शरीर को देखो और पहचानो—मेरी खोल है, मेरे घर की दीवाल है। और भीतर उतरो—विचार को पकड़ो और पहचानो। विचार तुम नही हो, क्योकि तुम उसे भी देख सकते हो। और थोड़े भीतर उतरो—वासना, भावना को पकड़ो, पहचानो। यह भी तुम नहीं हो, क्योकि तुम पहचाननेवाले हो, देखनेवाले हो, द्रष्टा हो। ऐसे चलते चलो, चलते चलो—उस घड़ी तक, जब केवल द्रष्टा रह जाए, और देखने को कुछ भी न बचे, शुद्ध दर्शन हो।

जिसके पीछे तुम न जा सको—वही तुम हो। जिसके और पीछे तुम न जा सको—वही तुम हो। ऐसे पीछे उतरते-उतरते-उतरते साक्षी पकड मे आता है। बस उसके पार फिर कोई नही जा सकता। साक्षी के साक्षी तुम नही हो सकते हो। आखिरी घड़ी आ गई। बुनियाद आ गई अस्तित्व की। भूमि आ गई, जिस पर सब खड़ा है, सारा महल खड़ा है। जिसने इस अस्तित्व की बुनियाद को पकड़ लिया, आत्मा को पकड़ लिया, वही ब्राह्मण है। और उसके जीवन की चर्या ब्रह्मचर्य है।

'विषयरूपी वृक्षो से प्रज्वलित कामाग्नि तीनो लोकरूपी अटवी को जला देती है, किंतु यौवनरूपी तृण पर सचरण करने मे कुशल जिस महात्मा को वह नहीं जलाती या विचलित नही करती, वह धन्य है।'

'जो रात बीत रही है वह लौटकर नहीं आती। अधर्म करनेवाले की रात्रिया निष्फल चली जाती है।'

विषयरूपी वृक्षो से प्रज्वलित कामाग्नि तीनो लोकरूपी अटवी को जला रही है। तीनो लोक जल रहे है एक ही कामना मे। नर्क तो जल ही रहा है। तुमने नर्क की कथाए सुनी है—अग्नि की

लपटे, और लोग जलाए जा रहे है। लेकिन तुमने जरा गौर से अपने आसपास देखा, यहा क्या हो रहा है। लपटे यहा भी है और लोग जल रहे है। लपटे जरा सूक्ष्म है—वासना की है, काम की है, दिखाई नहीं पड़ती। शायद नर्क की लपटे ज्यादा स्थूल होगी। लेकिन स्थूल लपटो के साथ तो कुछ उपाय भी किया जा सकता है, क्योकि दिखाई पड़ती है।

मैने सुना है, एक धनपति मरा। कजूस था बहुत। तो मरते वक्त उसने अपनी पत्नी से कहा कि मेरे कपड़े पहनाने की लाश को कोई जरूरत नही है। सम्हालकर रखना, बच्चो के काम आ जाएगे। पत्नी ने कहा, 'क्या बात करते हो। नगे जाने का सोचते हो?' धनपति ने कहा, 'मुझे पता है, कहा जाना है। वहा काफी गर्मी है। तू फिक्र मत कर।' मर गया, लेकिन दूसरे ही दिन रात आकर दरवाजे पर उसने खटखट की। पत्नी घबड़ाई। उसने कहा कि सुन, मेरा कोट कमीज सब निकालकर दे। पत्नी ने कहा कि तुम तो कहते थे ऐसी जगह जाना है, जहा काफी गर्मी है। उसने कहा, 'वही गया, लेकिन सभी धनी वहा गए है, उन्होने सब एयरकडीशन्ड कर डाला। मरा जा रहा हू ठड मे, सिकुड़ा जा रहा हू। कपड़े दे। शीत सर्दी के सब कपडे दे दे।'

भूत लेने आया है कपड़े।

तो नर्क मे तो सभव भी है कि एयरकडीशनिग हो सके, क्योकि लपटे बाहर है। यहा इस पृथ्वी पर लपटे बहुत अदृश्य है। बाहर इतनी नही है जितनी भीतर है। रोए-रोए मे है। तुम्हे कोई आग मे फेक नही रहा है, तुम आग मे ही खड़े हो।

कामवासना जलाती है, इसे देखा नही। कितना जलाती है। किस बुरी तरह जलाती है। तृप्त होती ही नही। और तुम जो भी कामवासना की तृप्ति के लिए आयोजन करते हो, वह सब अग्नि मे डाले गए घी की तरह सिद्ध होता है। और बढ़ती है, और लपटे लेती है। एक स्त्री से तृप्त नहीं, दो स्त्री से तृप्त नही, तीन स्त्री से तृप्त नहीं—किससे कौन तृप्त है।

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक मार्शेल ने लिखा है कि जीवन भर के अनुभव के बाद मै यह कहता हू कि मुझे सारी स्त्रिया भी ससार की मिल जाए, तो भी मै तृप्त न हो सकूगा।

तृप्त कोई हो ही नही सकता, क्योकि तृप्ति के लिए हम जो करते है वह घी सिद्ध होता है। अभ्यास और बढ़ता है। और जड़े मजबूत होती है मूढ़ता की।

'विषयरूपी वृक्षो से प्रज्वलित कामाग्नि तीनो लोकरूपी अटवी को जला रही है।'

नर्क तो जल ही रहा है, साफ-साफ लपटे है उसकी। पृथ्वी भी जल रही है, लपटे उतनी साफ नहीं है। स्वर्ग भी जल रहा है, लपटे और भी सूक्ष्म है स्वर्ग मे। पृथ्वी पर तो लपटे पाप की है। स्वर्ग मे लपटे पुण्य की है—और भी सूक्ष्म है। देवता भी जल रहे है। देवताओ की भी भाग-दौड़ मची है—वही वासना, वही उपद्रव, वही नाच-गान। और वहा भी घबडाहट है। वहा भी तृप्ति मालूम नही होती।

कथा है उर्वशी की। पृथ्वी पर विचरण करने आई थी, पुरुरवा के प्रेम मे पड़ गई—एक मृत्य के प्रेम मे, एक पृथ्वीवासी के प्रेम मे। देवताओ से तृप्ति न मिली। देवता नही तृप्त कर पाए। जो भी मिल जाए उससे तृप्ति नहीं होती। अप्सराए तडपती है पृथ्वी के पुरुषो के लिए। यह कथा है उर्वशी की। पृथ्वी के लोग तड़फ रहे है अप्सराओ के लिए। कुछ मामला ऐसा है कि जो जहा है वहा अतृप्त है। कही और, कही और होते तो तृप्ति हो जाती।

'किंतु यौवनरूपी तृण पर सचरण करने मे कुशल जिस महात्मा को वह नही जलाती या विचलित नहीं करती, वह धन्य है ।'

तीनो लोक जल रहे है। जो इस विराट दावानल मे अलिप्त खडा है, अनजला खड़ा है, जिसे कोई लपट भीतर से नही पकड़ती, जिसके भीतर कामवासना की लपट नही उठती—वह धन्य है।

एक ही धन्यता को महावीर जानते है—और वह धन्यता है वासना की दौड से छूट जाना। क्योकि वासना की दौड से छूटते ही तुम आत्मा मे थिर हो जाते हो। वासना ऐसे है जैसे हवा के थपेडे, और लौ को डगमागाते है तुम्हारी ज्योति की, तुम्हारे दीये को। और वासना से छूट जाना ऐसे है जैसे हवाए बद हो गई और ज्योति निष्कप हो गई। वासना यानी आत्मा का डगमगाना। आत्मा यानी वासना से मुक्त हो जाना। डगमगाहट गई, अकप हुए। धन्य है वह व्यक्ति।

'जो-जो रात बीत रही है, वह लौटकर नहीं आती। अधर्म करने वाले की रात्रिया निष्फल चली जाती है।'

बहादुरशाह जफर ने मरने के पहले कुछ वचन कहे

न किसी की आख का नूर हू

न किसी के दिल का करार हू
जो किसी के काम न आ सके
मै वो एक मुश्ते-गुबार हू।

—एक मुट्ठी भर धूल।

न किसी की आख का नूर हू।

—अब किसी के आख की रोशनी नही हू मै।

न किसी के दिल का करार हू।

—न किसी के प्रेम, लागत, चाहत का विषय हू, विषयवस्तु हू।

जो किसी के काम न आ सके।

—अब तो बस हालत ऐसी है कि एक मुट्ठी भर धूल हू जो किसी के भी काम की नही है।

आदमी की देखी हालत। जानवर मर जाते है तो कुछ काम भी आ जाते है। हाथी मर जाए तो हजारो मे बिकता है। जिदा हाथी की कीमत कम है, मरे की ज्यादा है। जिदा को पाले कौन। न राजा-महाराजा रहे, न महत-अधिपति रहे—हाथी को पाले कौन। मर जाता है तो भी कीमत है लेकिन, हड्डिया बिक जाती है। आदमी अकेला प्राणी है ससार मे जिसका मरने पर कुछ भी, कुछ काम नही आता, सब जलाने-योग्य सिद्ध होता है, सब व्यर्थ सिद्ध होता है।

जो किसी के काम न आ सके
मै वो एक मुश्ते-गुबार हू।

दिन रात बीते चले जाते है

बजुज गोरेगरीबा नक्शे-पा थे फिर नही आगे
यही तक हर मुसाफिर ने पता पाया है मजिल का।

लोगो को देखो। बस उनके पैर उनके मरघट तक जाते है। और वहा सब खो जाता है।

बजुज गोरेगरीबा नक्शे-पा थे फिर नही आगे—बस मौत तक लोगो के पैरो के चिह्न दिखाई पड़ते है। यही तक हर मुसाफिर ने पता पाया है मजिल का।

पर मौत मजिल है कि कब्र गतव्य है? कि चले और गिरे कब्र मे, तो जीवन का अर्थ क्या हुआ, सार्थकता क्या हुई? नही, कुछ और भी लोग हुए है, थोडे-से धन्यभागी लोग, जिन्होने मौत के आगे का भी पता पाया है। उन्ही की हम यहा चर्चा कर रहे है—महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद, जरथुस्त्र, लाओत्सु। कुछ है थोडे-से धन्यभागी, जिन्होने जीवन इस तरह से साधा कि मौत से बचकर निकल गये।

उनकी साधना की कला क्या है?

उनकी कला का सूत्र महावीर कह रहे है

'यौवनरूपी तृण पर सचरण करने मे कुशल जिस महात्मा को वह नही जलाती या विचलित नही करती, वह धन्यभागी है।'

जो जीवन मे रहते-रहते जीवन की वासना के पार हो जाता है, उसे मौत के आगे रास्ता मिल जाता है। क्योकि मौत सिर्फ वासना की है, तुम्हारी नही है।

अगर तुमने वासना को जीते-जी त्याग दिया, तो फिर तुम्हारी कोई मौत नही है। अन्यथा, जिसको तुम जिदगी कहते हो वह बस नाममात्र को जिदगी है—कहने को। जिदगी जैसा क्या है वहा? कहा है अगार? राख ही राख है।

मुझसे जो पूछिए तो बहरहाल शुक्र है
यू भी गुजर गई मेरी यू भी गुजर गई।

बस ऐसी ही गुजरी जाती है।

लोग कहते है, सब ठीक है। पर कभी गौर से देखा, जब लोग कहते है सब ठीक है, तब उनके चेहरे पर कैसी उदासी होती है। जब वे कहते है, सब ठीक है, तो जैसे कहते है, कुछ भी ठीक कहा। मगर अब कहने से भी क्या सार है। सब ठीक है।

किसी से पूछो, कहो, क्या हालचाल है?—कहता है, सब ठीक है, सब मजे मे चल रही है।

मुझसे जो पूछिए तो बहरहाल शुक्र है।
यू भी गुजर गई मेरी यू भी गुजर गई।

बस किसी तरह ले-देकर गुजर जाती है। ऐसे-वैसे गुजर जाती है। इसको तुम जिदगी कहते हो जो ऐसे गुजर जाती है?

अगर इसको जिदगी कहते हो, तो किसी दिन रोओगे, तड़फोगे और कहोगे

मै वो एक मुश्तेगुबार हू
जो किसी के काम न आ सके।

गुजारो मत—जीयो। काटो मत—जीयो। गवाओ मत—जीयो।

'जा जा वज्जई रयणी, ण सा पडिनियत्तई।
अहम्म कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ।।'

जो-जो रात बीत रही, लौटकर नही आएगी, नहीं आती है।

'अधर्म करने वाले की रात्रिया निष्फल चली जाती है।'

निष्फल मत जाने दो। ये दिवस-रात महगे है। ये दिवस-रात बड़ी मुश्किल से मिले है।

मनुष्य का जन्म दुर्लभ है। कोटि-कोटि योनियो के बाद मनुष्य हो पाता है। कितनी आकाक्षाओ, कितनी अभीप्साओ को लेकर तुम मनुष्य हुए हो। अब इसे ऐसे ही मत गुजर जाने देना। कितनी चेष्टाओ और कितने जन्मो के यात्रा-पथो के बाद, कितनी देहे, कितनी योनियो मे भटकने के बाद, सौभाग्य का क्षण आया है कि तुम मनुष्य हुए हो? इसे ऐसे ही मत गवा देना। ये दिन फिर लौटकर नही आते। ये राते गई तो गई। इनमे एक-एक क्षण को इस ढग से जीना कि क्षण तो जाए, लेकिन अमृत की तुम्हे खबर दे जाए। क्षण तो जाएगा ही, लेकिन इस ढग से निचोड़ लेना कि क्षण तो चला जाए, लेकिन सार तुम्हारे साथ रह जाए। क्षण तो जाए, लेकिन अमृत का द्वार खोलता जाए। यह जीवन तो जाएगा ही, लेकिन जाते-जाते तुम जीवन का ऐसा उपयोग कर लेना कि तुम इसके कधो पर चढ जाओ और इसके पार देख लो। इसके पार जो है वही असली जीवन हे।

मनुष्य सक्रमण है, एक सेतु है। पीछे अतीत है—जानवरो का, पशु-पक्षियो का, पत्थरो का, पहाड़ो का। आगे परमात्मा है। तुम बीच के सेतु हो। यह मनुष्य कुछ घर नही है, जहा बस जाना है—यह धर्मशाला है, जहा रात टिके, सुबह जाना है।

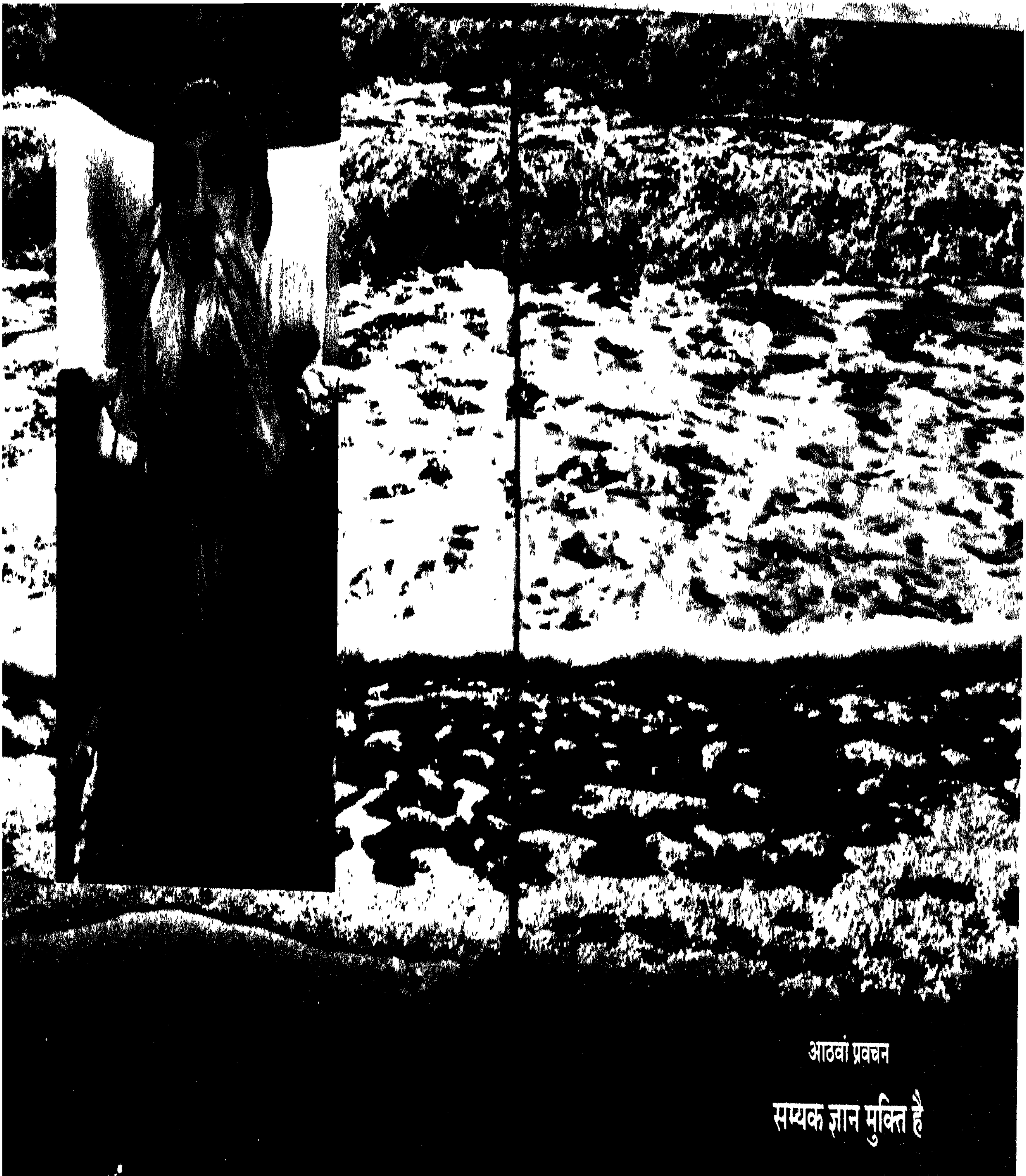
याद रखना, यात्रा अभी होने को है—हो नही गई। अभी कुछ घटने को है, घट नही गया।

तुम सिर्फ एक अवसर हो। अवसर को ही सत्य मत मान लेना। तुम सिर्फ एक सभावना हो, अनत सभावना, जिसमे अगर ठीक से तैयारी चली, अगर तुम अपने को मदिर बना पाए, तो किसी दिन, सत्य कहो, ब्रह्म कहो, या जो नाम तुम्हे पसद हो, जीवन का वह भगवत रूप, भगवत्ता तुममे उतरेगी।

तो इस जीवन को तुम भोग ही मत समझना—यह जीवन योग भी है। भोग का अर्थ है गुजार दो, यह कर लो, वह कर लो, यह भोग लो, वह भोग लो। योग का अर्थ है गुजारो ही मत, सुधारो भी। योग का अर्थ है, सजाओ, कोई मेहमान आने को है। अतिथि आ रहा पास। ऐसा न हो कि वह आए और तुम्हे तैयार न पाए। तुम तैयार रहना, द्वार खोले। सिहासन सजाकर रखना। धूप-दीप, अर्चा, फूल, वदनवार। तुम्हारे क्षण अमृत की तैयारी मे लगे। तुम्हारे दिवस और रात्रि ध्यान बन जाए। धीरे-धीरे समाधि का सगीत तुम्हारे भीतर उठे, बजे। तो ही, तुम किसी दिन जान पाओगे—उसे, जो तुम हो। जान पाओगे उसे, जो जीवन का अर्थ है, प्रयोजन है। जान पाओगे उसे, जो जीवन का गतव्य है। उसे जाने बिना जो जीते है, वे नाममात्र को जीते है। उसे जानकर जो जीते, वही जीते है। उसे बिना जाने जो जीते, वे तो सिर्फ मरते। उसे जानकर जो मरते भी है, तो भी अमृत को उपलब्ध होते है।

आज इतना ही।





आठवां प्रवचन

सम्यक ज्ञान मुक्ति है

प्रश्न-सार

आपने कहा कि सत्य सज्ञा नही है, क्रिया है।
क्या प्रेम, आनंद, ध्यान, समाधि भी क्रिया ही है?
क्या क्रिया का समझ से कोई सबध नही?

तीर्थकर चौबीस ही क्यो, ज्यादा क्यो नही?

क्या परपरा की जरूरत नही है? क्या परपरा से हानि ही हानि हुई है?

क्या कारण है कि 'जिन' जैन बन कर रह गया?

किसी सुदर युवती को देख कर मन उसकी ओर आकर्षित हो जाता है।
क्या यह वासना है, या प्रेम, या सुंदरता की स्तुति?

*प*हला प्रश्न आपने कल कहा कि सत्य सज्ञा नही है, क्रिया है। क्या इसी भाति प्रेम, आनद, ध्यान, समाधि जो भी स्वभावगत है, वह भी सज्ञा नही, वरन क्रिया है? और क्या क्रिया का समझ से कोई सबध नही है? कृपा कर समझाए।*

क्रिया है जीवतता। सज्ञा है लाश। सज्ञा का अर्थ है जो चीज हो चुकी। क्रिया का अर्थ है जो अभी हो रही, हो रही, हो रही। जैसे नदी बह रही है, नदी क्रिया है, तालाब नही बह रहा, तालाब सज्ञा है। बहाव जीवन है, ठहराव मृत्यु है।

जीवन मे जो भी महत्वपूर्ण है, सभी क्रिया जैसा है। प्रेम भी कोई वस्तु नही है, प्रेम भी प्रक्रिया है। करो तो है, न करो तो गया। जो तुमसे कहता है, मै तुम्हे प्रेम करता हू, उसका प्रेम भी उन्ही क्षणो मे होता है जब वह करता है, जब नहीं करता तब प्रेम खो जाता है।

प्रेम को बनाये रखना हो तो क्रिया को जारी रखना पड़े। ध्यान भी तभी होता है जब तुम करते हो, जब तुम नहीं करते, खो जाता है। जो तुम करते हो वही होता है। श्वास भी तुम जब तक ले रहे हो, तभी तक है, जब न लोगे, तब कैसी श्वास?

जीवन का बड़ा गहनतम सत्य है कि यहा सभी प्रक्रियाए है। विज्ञान ने भी इस सत्य को उदघोषित किया है।

बड़े वैज्ञानिक एडिगटन ने लिखा है कि 'ठहराव' झूठा शब्द है, क्योकि कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। सब हो रहा है। इसलिए ठहराव को प्रदर्शित करनेवाले सभी शब्द अज्ञान-सूचक है। हम कहते है, वृक्ष है। ऐसा कहना नही चाहिए। यह सत्य के अनुकूल नही है। यह अस्तित्व का सूचक नही है। कहना चाहिए, वृक्ष हो रहा है। जब हम कहते है वृक्ष है, तब ऐसा लगता है कि होना बद हो चुका, कोई चीज है। जब हम कहते है वृक्ष है, जितनी देर हमने कहने मे लगाई कि वृक्ष है, उतनी देर मे वृक्ष कुछ और हो चुका। कुछ पुराने पत्ते गिर गये। कुछ नई कोपले सरककर बाहर आ गयी। कोई कली फूल बन गई। कोई फूल बिखर गया। वृक्ष उतनी देर मे बूढ़ा हो रहा है। हम कहते हैं, मकान है, लेकिन मकान भी जराजीर्ण हो रहा है, आज है कल नही हो जायेगा, अन्यथा महलो के खडहर कैसे होते। हम कहते है, यह आदमी जवान है, अगर हम गौर से देखे तो कहना पडेगा, यह आदमी जवान हो रहा है या यह आदमी बूढा हो रहा है। 'है' की कोई अवस्था नहीं है।

यूनान के बहुत बड़े मनीषी हैराक्लतु ने कहा है, तुम एक ही नदी मे दुबारा नहीं उतर सकते। दुबारा उतरने को वही नदी पाओगे कहा? पानी बहा जा रहा है।

फिर हैराक्लतु के एक शिष्य ने कहा कि अगर हैराक्लतु सही है तो एक ही नदी मे एक बार भी कैसे उतरा जा सकता है? जब तुम्हारे पैर ने नदी की ऊपर की सतह छुई, तब नदी और थी, जरा पैर नीचे गया, तब नदी और हो गई, और तलहटी तक पहुचा, तब तक नदी और हो गई। गगा बही जाती है। बहाव मे गगा है। इसलिए सब हो रहा है।

तुम हो, ऐसा नहीं—तुम हो रहे हो।

जीवन एक घटना है, वस्तु नही। और जिसने जीवन का यह

घटनामय रूप देखा, उसके भीतर जीवन बड़ी प्रज्वलता से जलेगा। तब तुम यह नही कहोगे कि प्रेम कोई स्थायी निधि है, कि रखी है हृदय मे। प्रेम भी श्वास जैसा है, लो तो है, न लो तो नहीं है।

तुम जो करते हो, उस कृत्य मे ही चीजे होती है। तुम जो हो उससे तुम्हारी कोई स्थिति का पता नहीं चलता, सिर्फ तुम्हारी क्रिया का पता चलता है। तुम कहते हो, यह आदमी साधु है। इसका केवल इतना ही अर्थ हुआ, यह आदमी साधु होने मे लगा है। यह आदमी साधुता को सम्हाल रहा है। तुम कहते हो, यह आदमी ध्यानी है। इसका इतना ही अर्थ होता है कि यह ध्यान की श्वासे ले रहा है।

यहा सब चीज चल रही है, कोई चीज ठहरी नही है। सब रूपातरित हो रहा है, प्रतिपल रूपातरित हो रहा है। प्रतिपल नया घट रहा है, पुराना जा रहा है। इसलिए तो कहते है, पुराने से मोह मत रखो, क्योकि तुम्हारा मोह तुम्हे अटकायेगा। और जीवन और तुम्हारा छद टूट जायेगा। इसलिए तो कहते है, भविष्य की चाह मत करो, क्योकि भविष्य अभी नही है। अतीत न हो चुका, भविष्य अभी नहीं है। जो न हो चुका उसे पकड़ोगे तो मुश्किल मे पड़ोगे, अडचन पैदा होगी, जो अभी नही है उसे तो पकड़ोगे कैसे ? सिर्फ कल्पना करोगे। जो है, उसे देखो। और जो है, वह प्रतिपल बहा जा रहा है। इस बहती गगा का साक्षात्कार करो।

बुद्ध के ऊपर कोई एक व्यक्ति आया और थूक गया। नाराज था बहुत। बडे क्रोध मे था। बुद्ध जैसे व्यक्तियो का होना भी कुछ लोगो को बड़े क्रोध से भर देता है। क्योकि बुद्ध जैसे व्यक्तियो के होने से कुछ लोगो के होने की असभावना पैदा हो जाती है। बुद्ध की मौजूदगी अहकार को तोड़ती है। बुद्ध की मौजूदगी कहती है कि तुम भी ऐसे हो सकते थे, न हो पाये। बुद्ध की मौजूदगी तुम्हे तुम्हारे सत्य से परिचित कराती है। बुद्ध का फूल तुम्हे तुम्हारे काटे की तरफ इशारा करवाता है। नाराजगी पैदा होती है।

थूका बुद्ध के ऊपर। बुद्ध ने पोछ लिया अपनी चादर से। दूसरे दिन वह आदमी क्षमा मागने आया। रात भर सो न सका। बुद्ध ने कहा, 'नही, क्षमा की कोई बात नही, क्योकि जो थूक गया था, वह अब है ही कहा। जिस पर थूक गया था, वह भी अब नही है। न मै वही हू, न तुम वही हो। छोड़ो भी। जाने भी दो। उन बातो मे पड़ने की जरूरत कहा है ? एक तो तुमने थूककर गलती की, फिर रातभर व्यर्थ की चिता की। अब पश्चात्ताप कर रहे हो। अब छोड़ो। मेरी तरफ देखो। मै वह नहीं हू, जिस पर तुम थूक गये थे। तुम भी वह नही हो।

आनद, बुद्ध का शिष्य, पास बैठा था। उसने कहा कि ठहरे, यह बात दर्शनशास्त्र की नही है। यह आदमी थूक गया था और वही आदमी है। बुद्ध ने कहा, 'तुम थोड़ा देखो आनद। कल यह थूक गया था, आज यह क्षमा मागने आया है—वही आदमी हो कैसे सकता है ? जो थूक गया था और जो क्षमा मागने आया है, इसमे तुम्हे भेद नही दिखायी पड़ता ? तुम चेहरे से धोखे मे आ रहे हो। जरा भीतर देखो। यह आदमी वही नही है, नही तो थूकता। यह तो क्षमा मागता है। यह कोई और है। यह किसी नये का आविर्भाव हुआ है। तुम इस नये के दर्शन करो।'

लेकिन आनद मानने को राजी नही है, क्योकि आनद तो कल को ही पकड़े बैठा है। जो तुम्हे कल गाली दे गया था, वह आज जब तुम्हे दुबारा मिले तो तुम कल को पकडकर मत बैठना, अन्यथा तुम जो आज आया है, उसे न देख पाओगे। हो सकता है, क्षमा मागने आया हो। कल जो मित्र था, आज शत्रु हो सकता है। जो आज शत्रु है, कल मित्र हो सकता है।

ध्यानी अपने को सतत खाली रखता है, निर्मल रखता है, आख खुली रखता है। बादल नही इकट्ठे करता। तथ्य को देखता है, जैसा अभी है। न तो कल से तौलता है, न आनेवाले कल से तौलता है। जैसा अभी है, उस तथ्य को देखता है। लेकिन इस तथ्य को देखने के लिए तुम्हे भी सत्य होना पड़े। इसलिए महावीर ने सत्य को समस्त धर्म का सार कहा। तप और सयम, और शेष सब गुण उसमे समाविष्ट है।

सत्य का अर्थ हुआ भीतर तुम जो हो, वही रहो। तो बाहर भी तुम उसी को देख पाओगे, जो है। हम बाहर वही देखते रहते है, जो नही है। अतीत बडा बोझिल है। भविष्य भी बड़ा बोझिल है। और इन दोनो की कशमकश मे, इन दो चक्कियो के पाट के बीच वर्तमान का छोटा-सा क्षण पिस जाता है। तुम या तो कल्पना करते हो, या याददाश्तो में खोये रहते हो। तुम देखते ही नही, जो तुम्हारे पास से गुजर रहा है।

जीवन को तथ्य मे देखो। लेकिन उस देखने के लिए तुम्हे

सत्यमय होना पड़ेगा। जो सत्य है, वह सत्य को देखेगा। और तब तुम्हे सज्ञाए न दिखायी पड़ेगी, क्रियाए दिखायी पडेगी।

आत्मा कोई वस्तु थोड़े ही है कि तुम उसे मुट्ठी मे बाध ले सकते हो—आत्मा तो तुम्हारे भीतर चैतन्य की सतत प्रक्रिया है। वह जो चैतन्य का आविर्भाव हो रहा है पल-पल, वह जो साक्षी जन्म रहा है शून्य से निरतर—वही है आत्मा।

मनस्विद कहते है कि आदमी जब पैदा होता है तो शून्य की तरह पैदा होता है। बच्चा पैदा हुआ, शून्य की तरह पैदा होता है। अभी उसे कुछ भी पता नही है। वह है, ऐसा भी पता नही है। इसे होने के लिए भी थोड़ी देर लगेगी। लेकिन पैदा हुआ है, तो शून्य की तरह—यह उसकी पहली जीवन-घटना है। लेकिन जैसे ही बच्चा पैदा हुआ, मिटने का भय समाने लगता है। जब हुए, तो मिटने का भय भी आता है। भूख लगती है, प्यास लगती है—मिटने का भय पकडने लगता है। तो पहली जो तुम्हारे भीतर गहनतम स्थिति है, वह तो शून्य की है। उसे महावीर आत्मा कहते है। बुद्ध उसे अनात्मा कहते है। दोनो कहे जा सकते है—आत्मा, क्योकि वह तुम्हारा स्वरूप है—अनात्मा, क्योकि वहा 'मै' जैसा कोई भाव नही, शुद्ध स्वरूप है। 'मै' भी नहीं है वहा। लेकिन जैसे ही बच्चा पैदा हुआ कि डर पैदा हुआ कि अब मै हू, तो कही मिट न जाऊ। जहा 'हू' आया, वहा न होने का भय भी आया। जहा प्रकाश आया, पीछे-पीछे अधेरा भी आया। तो एक भय की पर्त खडी होती है। शून्य है भीतर, उसके आसपास भय की पर्त है। अमृत है भीतर, उसके आसपास मृत्यु की पर्त है।

फिर समाज बच्चे को ढालना शुरू करता है। बच्चे को वैसा ही नहीं छोड़ देता, जैसा वह आया है। सस्कार देने है। शिक्षा देनी है। सभ्यता देनी है। बहुत कुछ काटना है, बहुत कुछ बनाना है। बहुत कुछ नया उगाना है, बहुत कुछ हटाना है। समाज काट-छाट शुरू करता है। छैनी उठा लेता है। तो बच्चे के भीतर एक तीसरी पर्त पैदा होती है—नीति की, समाज की, सस्कार की, सस्कृति की। लेकिन स्वभावत यह जो सस्कृति, समाज की पर्त है, यह उसके स्वभाव के प्रतिकूल पड़ती है। नही तो इसकी जरूरत ही न होती। इसकी जरूरत ही इसलिए होती है कि जैसा बच्चा स्वभाव के अनुसार है, वैसा समाज को अगीकार नही है। बच्चा बेवक्त हसने लगे, उसके स्वभाव के अनुकूल है कि उसे हसी आ रही है, लेकिन समाज नियमन करेगा कि सब स्थान सब समय हसने के योग्य नही है। कोई मर गया हो और तुम हसने लगो ।

मेरे एक शिक्षक मर गये थे। बड़े सीधे-साधे शिक्षक थे। रहने-सहने का ढग भी उनका बडा सीधा-साधा था। एक बड़ी पगड़ी बाधते थे। अकेले ही थे उस पूरे गाव मे, जो उतना बड़ा पग्गड़ बाधते थे। चलते भी ऐसे ढीले-ढाले थे। सस्कृत के शिक्षक थे। तो उनको लोग पोगा-पडित ही समझते थे। स्कूल मे उनका नाम बच्चो ने 'भोलेनाथ' रख लिया था। जैसे ही वे आते, बच्चे कहने लगते 'जय भोले बाबा।' उनकी कमीज पर पीछे लिख देते 'जय भोले बाबा।' बोर्ड पर लिख देते भोलानाथ। वे नाराज भी होते थे, लेकिन उनकी नाराजगी भी बड़ी प्रीतिकर थी। वे बड़ी नाच-कूद भी मचाते थे, बडे गुस्से मे भी आ जाते थे। मरने-मारने की जैसी हालत होती, लेकिन मारते-करते किसी को न थे। सीधे-साधे आदमी थे। शोरगुल मचाकर चुप हो जाते थे।

वे मरे तो मै अपने पिता के साथ उनके घर गया। उनकी लाश पड़ी थी। और उनकी पत्नी आयी और उनकी छाती पर गिर पडी और कहा, 'हाय, मेरे भोलेनाथ।' भोलेनाथ कहकर हम उन्हे चिढाते थे। यह तो किसी और को पता न था, मुझको ही पता था। वहा तो सब बड़े-बूढ़े थे। तो वे तो चुप रहे, लेकिन मुझे बड़ी जोर की हसी आई कि यह तो हद मजाक हो गयी। जिदगी मे भी 'भोलेनाथ', मरकर अब कोई और कहने को नही तो खुद पत्नी कह रही है, 'हाय मेरे, भोलेनाथ।' जितना मैने रोकने की कोशिश की, उतनी मुश्किल हो गयी। आखिर हसी निकल ही पड़ी। पिता नाराज हुए। कहा, दुबारा अब कभी ऐसी जगह न ले जायेगे। और शिष्टाचार सीखो। यह कोई ढग हुआ ? वहा कोई मरा पड़ा है, लोग रो रहे है—और तुम हस रहे हो।

मैने उनसे कहा, मेरी भी तो सुनो। वहा किसी को पता ही नही था, जो राज मुझे पता है। जिस वजह से मुझे हसी आयी—वह हसी यह थी कि जिदगीभर इस आदमी को हम भोलानाथ कहकर चिढ़ाते रहे, मरकर भी मजाक तो देखो। कोई और नहीं तो खुद पत्नी कह रही है, 'हाय मेरे भोलेनाथ।' यह आदमी, इसकी आत्मा वहा भी उछलने-कूदने लगी होगी, नाराज हो गई होगी कि हद हो गई। आखिरी विदा के क्षण मे भी।

लेकिन तब से उन्होने मुझे ले जाना बद कर दिया। कही कोई मर जाये, कुछ हो तो वे मुझे न ले जाते।

सस्कार देना जरूरी है। परिवार की अपनी अड़चन है। समाज की अपनी असुविधा है। बच्चे को वैसे ही नहीं छोड़ा जा सकता, कुछ न कुछ काट-छांट करनी पड़ेगी। वह जो काट-छाट है, उसमे बच्चे के स्वभाव के प्रतिकूल उस पर कुछ थोपा जाता है। जहा रोना चाहता है, रो नहीं सकता है। जहा हसना चाहता है, हस नही सकता। जहा क्रोध करना चाहता है, क्रोध नही कर सकता। जहा प्रेम नही करना है, वहा प्रेम दिखलाना पड़ता है। जिनके पैर नहीं छूने, उनके पैर छूने पड़ते है। जो नही खाना है, वह खाना पडता है। जो खाना है, वह खाने को मिलता नहीं है। तो तीसरी पर्त खड़ी होती है—सस्कार की, समाज की, नियत्रण की। कारागृह बनता है।

फिर जैसे ही बच्चा बडा होता है, धीरे-धीरे जैसे-जैसे उसके पास ताकत आती है, वह पीछे के दरवाजो से अपने स्वभाव की पूर्ति के रास्ते खोजता है। कमजोर है बच्चा, छोटा है, तब तक तो स्वीकार कर लेता है, लेकिन जैसे-जैसे समझ आने लगती है, ताकत आने लगती है, वह कोई रास्ते निकालने लगता है, छिप-छिपकर करने लगता है काम, जो उसे करने है। धोखा पैदा होता है। तो चौथी पर्त पैदा होती है जो समझौते की पर्त है। वह समाज जो मानता है, चाहता है, वैसा दिखाता है, और जो उसे करना है, वैसा करता है। तो दोहरा व्यक्तित्व बनता है। यह चौथी पर्त है।

फिर पाचवीं एक पर्त है, जो सबसे ऊपर-ऊपर है—लोकाचार की, शिष्टाचार की। किसी को तुम मिलते हो तो कहते हो, 'कहिए, कैसे है? बड़ी खुशी हुई मिलकर। बड़े दिनो बाद दर्शन हुए। बडे दिन से आखे तरसती थी।'

ये सब बाते है। यह औपचारिक पर्त है। इससे थोड़ा सबधो मे सुगमता बनी रहती है। जयराम जी, हैलो—इससे थोड़ा दो व्यक्तियो के बीच मे स्निग्धता बनी रहती है—लुब्रिकेशन। नहीं तो कोई मिला और सीधे खड़े हो गये। वह भी खड़ा है, तुम भी खड़े हो—कहा से चले, क्या कहे, क्या न कहे। तो अड़चन खड़ी होगी, तो कहा जयराम जी। बातचीत शुरू हुई। 'मौसम कैसा है?' 'अच्छा है।' 'पति-पत्नी, बच्चे, घर, सब कुशल है?' सिलसिला चल पड़ा। अब आगे बात चल सकेगी। कही से शुरू तो करना होगा।

तो पाचवी पर्त है उपचार की। ये तुम्हारी पर्ते है। पहली जो घटना थी शून्य की, वह तुम्हारा सत्य है। अब इन चार पर्तो के नीचे दबा है सत्य। इन पर्तो को धीरे-धीरे छाटना होगा। इन पर्तो को धीरे-धीरे हटाना होगा। जैसे कि नदी पर पत्ते छा जाते है, सैवाल फैल जाता है, तो हम हटाकर देखते है, नीचे जलधार बह रही है—इन चार पर्तो के नीचे तुम्हारा स्वभाव बह रहा है, तुम्हारी गगा बह रही है। इनको हटाने का नाम ही साधना है। ये चारो पर्ते जड़ है। ये चारो पर्ते सज्ञा की है। और तुम्हारा स्वभाव क्रिया का है। इन चारो पर्तो के साथ समाज राजी है, तुम्हारे स्वभाव से राजी नही है, क्योकि ये चारो पर्ते तुम्हे नियत्रण मे ला देती है। तुम्हारा स्वभाव तो बडी विस्फोटक घटना है।

इसलिए तो महावीर जब जिदा होते है तो स्वीकार नहीं होते। बडे विस्फोटक आदमी है। अपने रग मे जीते है। कोई समझौता नही करते। अपने स्वभाव मे जीते है, चाहे कोई भी कीमत चुकानी पडे। अगर नग्न होने मे मजा आया तो नग्न जीते है। चाहे दुनिया कुछ भी कहे। भला कहे, बुरा कहे—कोई चिता नही लेते।

तो महावीर तो एक बगावती है, एक क्रातिकारी है। धर्म बगावत है, क्राति है। हा, जब महावीर मर जाते है तो उनके पीछे जो इकट्ठे होते है, वे कोई बगावती नही है। या हो सकता है, पहली जो सख्या, पहले लोग जो महावीर के पास आये थे, वे बगावती रहे हो, लेकिन उनके बेटे तो बगावती नही होगे। उनके बेटे तो पैदाइश से जैन होगे। जिन्होने महावीर को चुना था अपनी स्वेच्छा से, उन्होने तो बडी हिम्मत की थी, बड़ा साहस किया था। क्योकि महावीर बदनाम थे। गाव-गाव से खदेड़े जाते थे। पत्थर मारे गये। कान मे खीले ठोक दिये किसी ने। कहीं स्वीकार न थे। जिन्होने उन्हे स्वीकार किया था, वे तो बड़े हिम्मतवर लोग रहे होगे, बडे साहसी।

तो शिष्यो का जो पहला समूह होता है, वह तो हिम्मतवर होता है। लेकिन जो दूसरी पीढ़ी आती है, वह तो फिर वैसी ही होती है। इसलिए तो सभी धर्म खो जाते है। जब सदगुरु जीवित होता है तो धर्म भी जीवित होता है। जब सदगुरु विदा हो जाता है तो धीरे-धीरे सदधर्म की ध्वनि भी, प्रतिध्वनि बनती जाती है—दूर, दूर, दूर—फिर खो जाती है। फिर महावीर पूज्य हो जाते है।

फिर कोई अड़चन नहीं रह जाती है। फिर तुम उनकी मूर्ति बनाकर पूजो। फिर तुम्हे जो करना हो महावीर के साथ, बेशक करो।

दिगबर है, नग्न मूर्ति की पूजा करते है। उनकी मौज। श्वेतांबर है, नग्न मूर्ति की पूजा नही करते। उनकी मौज। दिगबर आख-बद महावीर की पूजा करते है—उनकी मौज। अब महावीर कुछ कह नही सकते कि जरा ठहरो, मुझे आख खोलनी है। वे फौरन रोक देगे कि बद करो बकवास, आख बद रखो। नियम से चलो। दिगबर बद आख की पूजा करते है, श्वेताबर खुली आख की पूजा करते है। कुछ मदिर है, जो दोनो के है। तो आधा दिन दिगबर पूजा करते है, आधा दिन श्वेताबर पूजा करते है। अब बड़ी मुश्किल है, पत्थर की मूर्तिया है। वैसा कुछ आसान भी नही है कि आख खोल दो, लगा दो। तो झूठी आख चिपका देते है। जब सुबह दिगबर पूजा करेगे, तो वे खाली मूर्ति की पूजा कर जाते है। जब श्वेताबरो की घडी आती है बारह बजे के बाद, तो वे आकर नकली आख, खुली आख चिपका देते है, कपड़े पहना देते है। पूजा शुरू हो जाती है। महावीर न तो कह सकते कि ये कपड़े मुझे पसद नही, न कह सकते कि मुझे नग्न रहना है, न कह सकते है कि मुझे ठडी लग रही है, अभी नग्न मत करो, कि अभी बहुत गर्मी है, कुछ कह नही सकते। अब तुम्हारे हाथ के खिलौने है। तुम्हारे महावीर, तुम्हारे बुद्ध, तुम्हारे कृष्ण, तुम्हारे हाथ के खिलौने है। असली महावीर, असली कृष्ण और बुद्ध जलते हुए अगारे थे। उनको हाथ मे रखने के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए थी। जो दग्ध होने को राजी थे वे उनके पास आये थे। कमजोर तो उनसे दूर भागे थे। कमजोर तो उनके दुश्मन थे। लेकिन पीछे ।

मेरे पास सन्यासी आते है। कोई पिता आता है, कोई मा आती है। वह कहते है, हमारे बेटे को भी सन्यास दे दे। उनका भाव मै समझता हू। उन्हे जो सुख मिला है, उन्हे जो शाति मिली है, वे चाहते है उनके बेटे को भी मिल जाये। लेकिन उन्होने तो मुझे चुना है, बेटे को वे ले आये है। बेटे ने मुझे नहीं चुना है। बेटे ने स्वेच्छा से मुझे नहीं चुना है, बाप के साथ चला आया है। बाप कहता है, सन्यास तेरा भी करवाना है, तो वह कहता है, ठीक है। लेकिन यह सन्यासी और ढग का सन्यासी होगा। यह तो मजबूरी का सन्यासी होगा।

ऐसी स्त्रिया मेरे पास आती है, वे कहती है, 'गर्भ मे बच्चा है, उसे सन्यास दे दे।' उनका भाव मै समझता हू। उनका प्रेम मै समझता हू। मगर उनके भाव और प्रेम से थोड़े ही ससार चलता है। उनकी भाव की बात बड़ी शुद्ध है। उनका भाव यह है कि उनका बच्चा पैदा होते से ही सन्यासी हो। ठीक है, शुभ है। लेकिन बेटे से तो पूछो। वह जो अभी पैदा ही नही हुआ है, उसे जुआरी बनना है कि शराबी बनना है, कि सन्यासी बनना है, कि हिदू बनना है कि मुसलमान बनना है—उससे तो पूछो। लेकिन उससे अभी पूछने का कोई उपाय नही है।

तो जैसे जैन घर मे पैदा होने से कोई जैन हो जाता है, मेरे सन्यासी के घर मे पैदा होने से कोई सन्यासी हो जायेगा। लेकिन दूसरी पीढी मुर्दा होगी। शायद दूसरी पीढ़ी मे भी थोड़ा घिसटता-लगड़ता हुआ धर्म रह जाये, क्योकि उसने पहली पीढ़ी के दर्शन किये होगे, कम से कम पहली पीढ़ी के पास रही होगी, उस हवा मे पली होगी। लेकिन तीसरी पीढी? वह तो और दूर हो जायेगी। चौथी पीढी और ।

फिर पच्चीस सौ साल हो गये महावीर को हुए, अब तो सब मुर्दे है। अब तो जैन के नाम से जो है वह मुर्दा है। वह उतना ही मुर्दा है जैसे मुहम्मद का मुसलमान मुर्दा है और ईसा का ईसाई मुर्दा है। यह स्वाभाविक है। इसे टाला नही जा सकता। जैसे व्यक्ति पैदा होते है, जवान होते है, मर जाते है—ऐसे ही धर्म पैदा होते है, जवान होते है, बूढ़े होते है और मर जाते है। इस ससार मे जो भी चीज जन्मती है, वह मरती भी है। वह जो परमधर्म है, जो कभी पैदा नही होता, कभी नहीं मरता, उसका तो कोई नाम नहीं है—न हिदू, न जैन, न मुसलमान, न ईसाई। उसकी हम बात नहीं कर रहे। लेकिन जैन, हिदू, मुसलमान, ईसाई जिस धर्म का नाम है, यह कभी पैदा हुआ, कभी मरेगा।

ये जो चार पर्ते है तुम्हारे ऊपर, ये सब सज्ञा की तरह है। तुमने जिसे जैन धर्म कहा है, वह सज्ञा है। मै जिसे जैन धर्म कह रहा हू, वह क्रिया है। तुम जिसे जैन धर्म कह रहे हो, वह तुम्हारी पैदाइश, तुम्हारे जन्म, तुम्हारे सयोग की घटना है। मै जिसे जैन धर्म कह रहा हू, वह तुम्हारा आविष्कार है, तुम्हारी खोज है। फिर-फिर तुम्हे खोजना होगा। मेरा जो जैन धर्म है, वह हिदू धर्म के विपरीत नही है। मेरा जो जैन धर्म है, वह इस्लाम के विपरीत नही है। मेरा जो जैन धर्म है, वह सभी धर्मो का सार है। वहा बाइबिल और कुरान और गीता और धम्मपद और जिन-सूत्र,

सब एक हो जाते है। तुम्हारा जो जैन धर्म है, वह राजनीति है। वह हिंदू के खिलाफ है, वह मुसलमान के खिलाफ है। तुम्हारा जो जैन धर्म है, वह एक सप्रदाय है, धर्म नही। वह एक जड़, मरी हुई वस्तु है।

निश्चित ही, जैसे सत्य एक जीवत आग है, लपटे जल रही है—ऐसे ही प्रेम भी, आनद भी, ध्यान भी, समाधि भी, जो भी जीवत है, वह लपट की तरह बहता हुआ है, गगा की तरह प्रवाहमान है। जो भी मर गया, वह राख की तरह है। फिर उसमे कोई गति नही।

तुम मुर्दा से जरा सावधान रहना। और मुर्दे तलो को बहुत मत पकड़ना, अन्यथा तुम उन्ही के नीचे दबोगे और मर जाओगे। कब्रो मे तो लोग बहुत बाद मे प्रवेश होते है, उनके बहुत पहले मर जाते है। मरने के बहुत पहले मर जाते है, क्योकि मुर्दे से साथ जोड़ लेते है। बहुत सजग होना, क्योकि मुर्दे का बडा आकर्षण है, क्योकि मुर्दा प्राचीन है, उसकी परपरा है।

अगर मै कुछ कहता हू तो नयी बात होगी। मुझ पर भरोसा करने मे खतरा भी हो सकता है, यह आदमी कुछ जाना-माना तो नहीं है। महावीर की बात मे भरोसा करना आसान होता है, पच्चीस सौ साल से जानी-मानी बात है। अगर गलत होता तो पच्चीस सौ साल तक हजारो-लाखो लोग इसे मानते क्यो? जब इतने लोग मानते है, तो ठीक ही मानते होगे। फिर शास्त्र गवाह होगे कि ठीक है, परपरा गवाह होगी कि ठीक है, लबी धारा जो लोगो ने अनुकरण की पैदा की है, वह गवाह होगी कि ठीक है। मेरी बात तो तुम्हे सीधी-सीधी स्वीकार करनी होगी, बिना किसी परपरा के। बड़ी हिम्मत चाहिए। हा, पच्चीस सौ साल बाद मेरी बात भी इतनी ही आसान हो जायेगी। तब मेरे माननेवाले फिर धर्म के विपरीत खड़े हो जायेगे।

जो अतीत को पकडता है, वह हमेशा धर्म का दुश्मन है। क्योकि धर्म तो सदा नित नूतन है, नया है, अभी है, ताजा है—अभी खिलते फूल की भाति। धर्म तो सदा खिलता हुआ फूल है। जिसको तुम धर्म कहते हो, वह तो मुर्दा फूलो का निचोड़ा हुआ इत्र है। फूल तो कभी के खो गये। उनका खिलना तो कभी का बद हो गया। फूल तो बचे भी नही, लेकिन तुमने मुर्दा फूलो का लहू निचोड लिया है। उसको पकडकर तुम बैठे हो। और तुमने निश्चित ही अपने मतलब से निचोड़ लिया है।

एक आदमी जुआरी है, बड़ा जुआरी है। सब गवा दिया है। एक रात घर लौटा देर से। जूआ खेलकर ही लौटा था। पत्नी नाराज थी। उसने कहा, 'तुम फिर पहुच गये जुआ-घर। अब बचा क्या है?' उसने कहा, 'जुआ-घर नहीं गया था, महाभारत हो रही थी रास्ते मे, वहा बैठकर सुन रहा था। रास्ते से निकला, वहा महाभारत हो रही थी, वह देखता आया था।' कुछ और बहाना न मिला तो यही उसने कह दिया। पत्नी ने कहा, 'मै मान नहीं सकती, तुम और महाभारत सुनने गये। तुम्हारे कपडे से, तुम्हारे चेहरे से जुए-घर की बास आती है।'

उसने कहा, 'सुन देवी। और वहा मैने यह भी सुना महाभारत मे कि युधिष्ठिर खुद जुआ खेलते थे। धर्मराज। और जुआ खेलते थे। तू मेरे पीछे नाहक पडी है। इससे साफ सिद्ध होता है कि जुआ एक धार्मिक कृत्य है—युधिष्ठिर खेलते थे और धर्मराज थे।'

पत्नी ने कहा, 'तो फिर ठीक है। तो सोच राखिओ, कि द्रौपदी के पाच पति थे।'

लोग अपने मतलब की बाते निकाल रहे है। तुम जो धर्म खडा कर लेते हो, वह तुम्हारा मतलब है। तुम बड़े चालाक हो, होशियार हो, बडे कुशल हो—अपने को धोखा देने मे।

जब कोई जीवित गुरु होता है, महावीर जब जिदा होते है, तब तो तुम धोखा नही दे सकते। क्योकि महावीर जगह-जगह कहेगे, 'गलत। यह मैने कहा नही। यह तुमने सुन लिया होगा।' जब महावीर जा चुके, फिर कोई कहने वाला न रहा, फिर तुम्हे जो कहना है, तुम्हे जो मानना है, उसे तुम बनाये चले जाओ, माने चले जाओ।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या जैन धर्म मे चौबीस ही तीर्थकर हो सकते है, ज्यादा नही?

सभी धर्म अपने दरवाजे बद कर लेते है देर-अबेर। क्योकि अगर दरवाजा खुला रहे तो धर्म पुराना कभी भी न हो पायेगा। और अगर दरवाजा खुला रहे तो धर्म सड़ा कभी न बन पायेगा, क्रिया ही बना रहेगा। तो इतने तूफान और उथल-पुथल होते रहेगे कि तुम कभी आश्वस्त न हो पाओगे। तो सभी धर्म अपने दरवाजे बद कर लेते है, कोई देर, कोई अबेर। और जब दरवाजे

बंद करते है, तब याद रखना, ऐसी घड़ी मे करते है जब उनका सबसे ऊचा शिखर आ जाता है। महावीर पर जैन दृष्टि ने सबसे ऊचे शिखर को छू लिया। बस, फिर पीछे चलनेवालो को लगा कि अब दरवाजे बद कर दो। अब बहुत हो चुका। सबसे ऊचा शिखर छू लिया—अब दरवाजे बद। अब कोई तीर्थकर न होगा। क्योकि तीर्थकर और होते रहेगे, इसका अर्थ है कि नित-नूतन धर्म होता रहेगा। कोई नया तीर्थकर नयी बात कहेगा। महावीर ने भी बहुत-सी नयी बाते कही, जो पार्श्वनाथ ने न कही थी। महावीर ने बहुत-सी बाते नयी कही, जो आदिनाथ ने न कही थी। और अब तो मजा यह है कि जो महावीर ने कहा, उसी के आधार पर हम सोचते है कि ऋषभ ने, आदि ने, नेमी ने क्या कहा होगा। अब तो महावीर प्रमाण हो गये। अतिम प्रमाण हो जाता है, वह सबको रग देता है। लेकिन महावीर ने कुछ बाते कही है, जो निश्चित ही ऋषभ ने नही कही होगी। कारण भी साफ है।

वेद हिदुओ के ग्रथ है। ऋषभ का बड़े सम्मान से उल्लेख करते है। लेकिन महावीर का किसी हिदू-ग्रथ ने उल्लेख नही किया। ऋषभ मे अड़चन मालूम न हुई होगी, कोई बहुत क्रातिकारी व्यक्ति न रहे होगे। तो वेद भी उनका उल्लेख करता है—सम्मान से, बड़े सम्मान से। लेकिन महावीर की बात भी नही उठाता। महावीर की बात भी कोई हिदू-शास्त्र मे नही है। महावीर के अगर माननेवाले न हो, तो महावीर का कोई प्रमाण भी नही रह जायेगा। क्योकि हिदू-धर्म के ग्रथो ने कोई उल्लेख नही किया। महावीर निश्चित ही बड़े खतरनाक रहे होगे। इस आदमी की बात भी उठानी खतरनाक थी। बुद्ध से ज्यादा खतरनाक रहे होगे, क्योकि बुद्ध को तो हिंदुओ ने बाद मे धीरे-धीरे अपना एक अवतार स्वीकार कर लिया। लेकिन महावीर का तो नाम भी उल्लेख न किया। इस आदमी का नाम भी खतरनाक रहा होगा। यह आदमी खतरनाक था।

तुम जरा थोड़ा सोचो। जैन धर्म ने अपनी आखिरी क्राति छू ली। फिर पीछे चलनेवाला अनुयायी घबड़ा गया कि अब बहुत हो चुका, अब द्वार-दरवाजा बद करो, अब कहो कि अब और कोई तीर्थकर न होगा। अन्यथा तीर्थकर आते रहेगे। अन्यथा नये-नये उन्मेष, नयी-नयी क्रातिया—तो हम ठहरेगे कहा? रोज कोई आयेगा और पुराने भवन को गिरायेगा और नये बनाने की योजना रखेगा, तो भवन बनेगा कब?

मुहम्मद के साथ मुसलमानो ने अपने दरवाजे बद कर लिये। मुहम्मद के साथ ही इस्लाम ने अपनी आखिरी ऊचाई छू ली। मुहम्मद पहले और आखिरी तीर्थकर है इस्लाम के। पहले और आखिरी पैगबर। फिर इस्लाम ने इतनी भी हिम्मत न की, जितनी हिम्मत जैनियो ने की थी, कम से कम चौबीस को तो बरदाश्त किया। मुसलमानो ने इतनी भी हिम्मत न की, बडा कमजोर धर्म साबित हुआ। दरवाजे बद कर लिये। ईसाइयो ने भी यही किया, दरवाजे बद कर लिये। अब कोई नही होगा। आखिरी पैगाम आ गया परमात्मा का, अब इसमे कोई तरमीम न होगी, कोई सुधार न होगा, कोई सशोधन न होगा।

जिदगी रोज चली जाती है, तुम्हारे धर्म कहीं न कही रुक जाते है। जो धर्म जिदगी के साथ नही चलता, वह अधर्म हो जाता है।

तो मै तो तुमसे कहता हू, प्रतिपल तीर्थकर होगे, प्रतिपल पैगबर होगे। और तुम्हे अब जब भी कभी मौका मिले और तुम्हे दो पैगबरो के बीच मे चुनना हो, तो नये को चुनना, पुराने को मत चुनना। क्योकि पुराने को चुनने मे तुम अपने को चुनोगे। नये को चुनने मे तुम अपने को छोडोगे तो ही चुन सकोगे। जब तुम पुराने को चुनते हो तो तुम अपने को ही चुनते हो, क्योकि पुराने के साथ तो तुम आत्मसात हो गये हो। तुमने पुराने को तो पिघला लिया है। तुमने पुराने को तो अपने ही ढग का बना लिया है। तुमने तो पुराने मे काफी तरमीम और काट-छाट कर ली है। पुराने से तुम्हे कोई खतरा नही रहा है, नया फिर तुम्हे डगमगाता है, फिर तुम्हारी जडे उखाड़ता है, फिर तुम्हे जलाता है, फिर अग्नि मे फेकता है। जब भी चुनना हो तो नये को चुनना।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कहते है, धर्म परपरा नही है, लेकिन क्या परपरा की जरूरत नही है? क्या परपरा से हानि ही हानि हुई कि कुछ लाभ भी ?

यह मैने कहा नही कि परपरा की जरूरत नही है। अगर तुम्हे जड़ रहना हो, परपरा की बड़ी जरूरत है। अगर तुम्हे मुर्दा रहना हो, तो परपरा औषधि है। अगर तुम्हे रूपातरित न होना हो तो परपरा बड़ी सुरक्षा है। कायरो के लिए, कमजोरो के लिए, परपरा शरण-स्थल है। बड़ी जरूरत है, क्योकि कायर है दुनिया

मे। आखिर उनके लिए भी तो कोई जगह होनी चाहिए। आत्महीन लोग है दुनिया मे—आखिर उनके लिए भी तो कोई सहारा होना चाहिए। आत्मवचक है दुनिया मे—आखिर उनको भी तो कोई उपाय होना चाहिए कि अपने को धोखा दे ले। परपरा की बडी जरूरत है।

मैने नही कहा कि जरूरत नही है। जरूरत न होती तो परपरा होती ही न। है, जरूरत होगी कहीं। कहीं बड़ी जरूरत होगी, क्योकि इतने महापुरुष हुए, जिन्होने परपरा को तोडने की हजार-हजार कोशिशे की, परपरा नही टूटती। महावीर कोशिश करते, बुद्ध कोशिश करते, कृष्ण कोशिश करते, क्राइस्ट कोशिश करते—परपरा तोड़ने की, कुछ नही होता, परपरा नही टूटती। लोग इन्हीं को छोड़ देते है, परपरा को नही छोड़ते। या इन्ही को परपरा मे आत्मसात कर लेते है, लेकिन परपरा को नही छोड़ते। वे इन्हीं को परपरा मे रग देते है। वे कहते है, हम तुम्हारी भी पूजा करेगे, लेकिन हमे बख्शो। हमे परेशान मत करो। तुम भी परपरा के हिस्से बन जाओ। और तुम्हारे लिए भी हमारे मदिर मे जगह है। तुम्हारी प्रतिमा भी रख देगे। तुम ज्यादा शोरगुल न मचाओ। तुम भी स्वीकार।

परपरा की जरूरत जरूर होगी, अन्यथा टूट गयी होती परपरा। बहुत थोड़े-से लोग, बड़े हिम्मतवर, जिदादिल लोग, बिना परपरा के जीते है। क्योकि बिना परपरा के जीने का अर्थ होता है जागरण से जीना। तब तुम्हे प्रतिपल अपना जीवन-निर्णय करना होगा। परपरा बडी सुविधापूर्ण है, बड़ी सुरक्षापूर्ण है। तुम्हे कुछ तय नहीं करना होता। परपरा ने तय कर दिया है, तुम चुपचाप अधे की तरह अनुसरण किये चले जाते हो। सब लिखा है किताब मे, नक्शे हाथ मे है—तुम उनका अनुसरण कर लेते हो। परपरा मार्गदर्शक जैसी है। वह तुम्हे बताये चली जाती है। तुम कभी गये?

कल एक मित्र ने सन्यास लिया। वे खजुराहो मे मार्गदर्शक है। खजुराहो के मदिर-मूर्तियो को, आए यात्रियो को, अतिथियो को समझाते है, दिखाते है। अगर तुम खजुराहो के मदिर मे बिना किसी मार्गदर्शक के जाओ तो बड़ी अड़चन होगी। वर्षों लग जायेगे। क्योकि तुम्हे एक-एक चीज की खुद ही खोजबीन करनी होगी। तुम्हे एक-एक मूर्ति को भर आख स्वय देखना होगा। तुम्हे एक-एक मूर्ति पर स्वय ध्यान करना होगा। तभी शायद तुम थोड़ा-सा रहस्य, थोड़ा-सा राज इकट्ठा कर पाओगे। सस्ता उपाय है, तुम मार्गदर्शक को साथ ले लेते हो, वह बताये चला जाता है कि यह मूर्ति कितनी पुरानी है, किसने बनाई, कब बनाई इसका क्या इतिहास है। तुम भी बहरे की भाति सुनते चले जाते हो, अधे की भाति देखे चले जाते हो। घटे दो घटे मे सब मदिर देख डाले—चले आये। जिन मदिरो को बनने मे सदिया लगी, जिन मूर्तियो पर हजारो लोगो के जीवन निछावर हुए तब बनी, तुम उनको घड़ी भर मे निपटाकर घर आ जाते हो, कहते हो, 'खजुराहो हो आये है। अजता देख डाला। ऐलोरा घूम आये।' सारी पृथ्वी का चक्कर लगा लेते हो।

अगर तुम अपने ही हिसाब से चलो तो बड़ी मुश्किल होगी। और यह कोई जिदगी मूर्तियो का, मदिरो का हिसाब नही है। यहा एक-एक पल तुम्हे अपना निर्णय लेना पडेगा, अगर तुम्हारे पास कोई परपरा न हो। किसी ने गाली दी, अब क्या करना? तुम्हे खुद ही जागकर प्रतिध्वनि करनी होगी। कोई परपरा नही है। तुम परपरा मे मानते नही हो। न तुम किसी और की बनाई परपरा मे मानते हो, न अपनी बनाई हुई लीक को मानते हो—क्योकि कल किसी ने गाली दी थी, तुमने क्रोध किया था, परसो भी किसी ने गाली दी थी, तुमने क्रोध किया था—क्रोध तुम्हारी परपरा है। आज फिर कोई गाली देता है, तुम परपरा की सुनोगे या आज तुम जागकर इस गाली को समझोगे और तय करोगे, क्या करू? परपरा के आधार पर नही—होश के आधार पर। बीते कल के आधार पर नही—आज के, इस क्षण के आघात के आधार पर। यह जो प्रत्याघात अभी हुआ है, इसको तुम सीधा-सीधा दर्पण की तरह लोगे? इसका उत्तर दोगे? कठिन होगा। तब तो प्रतिपल तुम्हारी जिदगी लहरो मे होगी, तूफानो मे होगी, आधियो मे होगी। कुछ तय न हो पायेगा। कुछ बधी लकीरे न होगी। कुछ पिटी लकीरे न होगी। राज-पथ न होगा, पगडडिया होगी। तुम्हीं को बनाना पड़ेगी।

लोग सस्ता रास्ता चुनते है। परपरा को मान लेते है। ठीक है, परपरा की जरूरत है, क्योकि दुनिया मे कायर है। दुनिया मे बड़े कमजोर दीन-हीन लोग है। दुनिया मे ऐसे लोग है जो अपनी चेतना पर भरोसा नही कर सकते। दुनिया मे ऐसे लोग है जिनकी श्रद्धा जीवन मे नही है, मृत्यु मे है, जो मर जाओ, तभी भरोसा करते है।

तुमने कभी खयाल किया। गाव मे कोई मर जाता है, फिर उसके खिलाफ कोई भी नहीं बोलता। सभी कहते है 'स्वर्गीय हो गये।' पूरा गाव उनके खिलाफ रहा हो भला, और सभी जानते है कि अगर नर्क कही है तो वे निश्चित पहुच गये, या अगर कहीं स्वर्ग है और ये पहुच गये तो नर्क बनाकर छोड़ेगे—मगर कहते है, स्वर्गीय हो गये।

मुर्दा जब कोई हो जाता है, तो तुम देखते हो, कैसी लोग स्तुति करते है, उसके गुणगान करते है कि बड़े महापुरुष थे, अधेरा छा गया, दीया बुझ गया, यह पूर्ति अब कभी हो न सकेगी जो जगह खाली हुई।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक मित्र को फोन किया। पत्नी फोन पर आयी। मुल्ला ने घबड़ाकर पूछा कि 'कहा है, पति कहा है?' उसने कहा, 'ऐसे क्या घबड़ा रहे हो? क्या मामला है? स्नानगृह मे स्नान करते है।' मुल्ला ने कहा, 'फिर ठीक। क्योकि गाव मे कई लोगो से मैने उनकी प्रशसा सुनी है, मैने समझा कि मर गये।'

क्योकि बिना मरे तो कोई किसी की प्रशसा करता ही नही है। जिदा की निदा है, मुर्दे की प्रशसा है। क्योकि मुर्दे के साथ तुम अपना समझौता कर लेते हो।

जिदा के साथ समझौता नही कर पाते।

तुम यह मत सोचना कि महावीर और बुद्ध की तुम जो इतनी प्रशसा करते हो, वह कोई धर्म की प्रशसा है—वह मुर्दा, मृत्यु की प्रशसा है। जब जीवित थे तो तुम्ही ने इन पर पत्थर फेके। तुम जब कहानी पढते हो कि किसी ने महावीर के कानो मे खीले ठोक दिये, तुमने कभी सोचा कि यह तुम भी हो सकते हो जिसने खीले ठोके हो? तुमने कभी फिर से सोचा कि अगर महावीर आज आ जाये और बाजार मे तुम्हे मिल जाये, तो तुम क्या व्यवहार करोगे? अगर नग-धडग 'ब्लू डायमड होटल' के सामने खड़े हुए मिल जाये, तो तुम क्या व्यवहार करोगे और कोई बतानेवाला न हो कि ये महावीर है? तो पहला तो काम, तुम पुलिस मे इत्तला करोगे। तुम सम्मान करोगे? तुम झुककर पैर छुओगे? हा, अगर कोई कह दे कि महावीर है, भगवान महावीर आ गये, तो शायद झुक भी जाओ, क्योकि भगवान महावीर शब्द के साथ तुम्हारा बड़ा लगाव बन गया है। वह तो कोई और भी खड़ा हो जाये ।

जैसे देखा, रामलीला होती है, कोई आदमी राम बन जाता है, तो लोग उसके पैर छूते हैं। क्या अधापन है। जानते है भलीभाति, गाव का छोकरा है। लेकिन उसके पैर छूते है। राम-नाम की ऐसी ग्रथि बध गई है। नाटक मे राम बना है, तो भी पैर छूते है, फूल चढ़ाते है, शोभा-यात्रा निकलती है। अधापन कैसा गहरा है।

मेरे पास लोग आते है। अब जैसे कि मै जिन-सूत्र पर बोल रहा हू, तो जैन आ गये है। मै जो बोल रहा हू वही बोल रहा हू, न मुझे जिन-सूत्र से कुछ लेना है, न शिव-सूत्र से कुछ लेना है। मै शिव-सूत्र मे भी यही बोलता हू, मगर तब जैन नही आते 'शिव-सूत्र है, अपने को क्या लेना-देना है।' हिंदू आते है, वे कहते है, 'महाराज। गीता पर फिर कब बोलेगे?' गीता ही बोल रहा हू। उसी के गीत गा रहा हू। मगर नही, शब्द की पकड है। बस शब्द की पकड़ है। लकीरो की पकड़ है। तुम्हे अगर मै हीरा भी दू और कहू ककड़-पत्थर है, तो तुम कहते हो, क्या करेगे। और मै तुम्हे ककड़-पत्थर भी दू और कहू हीरा है, तो तुम कहते हो, लाये सम्हालकर रख ले।

तुम शब्दो से जीते हो? शब्द सत्य है? शब्दो से थोडा जागो। शब्दो की परपरा होती है, सत्यो की कोई परपरा नही।

और पूछते हो, 'क्या हानि ही हानि हुई, या लाभ भी हुआ?'

दुकानदारी कब मिटेगी तुम्हारी? तुम हानि-लाभ का ही हिसाब करते रहोगे? धर्म का कोई सबध हानि-लाभ से नही है। धर्म का सबध दोनो के त्याग से है। हानि भी नही, लाभ भी नहीं। क्योकि लाभ के पीछे हानि छिपी है, हानि के पीछे लाभ छिपा है—वे एक ही सिक्के के दो पहलू है।

धर्म का सबध उस परम जागरण से है, जहा तुम कहते हो, अब न हानि की कोई चिता है, न लाभ की कोई आकाक्षा है। धर्म से कोई हानि-लाभ थोड़े ही होता है। धर्म से तो तुम हानि-लाभ से मुक्त होते हो। वह चिताधारा ही गलत है। अगर उस चिताधारा से चले, तो जो तुम्हारी मर्जी, वही तुम खोज लोगे। अगर तुम्हे हानि खोजनी है तो परपरा की हानि खोज लोगे। अगर तुम्हे लाभ खोजने है, तुम लाभ खोज लोगे।

एक आदमी ने एक किताब लिखी है। पश्चिम के मुल्को मे तेरह का आकड़ा बुरा समझा जाता है। तो बड़ी होटलो मे तेरहवी मजिल ही नहीं होती, क्योकि वहा कोई ठहरता नही तेरहवी

मजिल पर। बारहवीं मजिल के बाद सीधी चौदहवी होती है। चौदहवीं कहने से हल हो जाता है, है वह तेरहवी, मगर चौदहवीं कह दी तो उतरनेवाले को क्या फिक्र है। लेकिन तेरहवीं कहो तो कोई उतरने को राजी नहीं। तेरह नबर का कमरा नहीं होता। तेरह तारीख को लोग यात्रा करने नहीं जाते। तो एक आदमी ने बड़ी किताब लिखी है। उसने सारे आकडं इकट्ठे किये है कि तेरह निश्चित ही खतरनाक आकड़ा है। तेरह तारीख को कितने युद्ध शुरू हुए, उसने सब हिसाब बनाया है। तेरह तारीख को कितनी कार-दुर्घटनाए होती है, तेरह तारीख को कितने लोग कैसर से मरते है, तेरह तारीख को कितने तलाक होते है—तेरह तारीख, तेरहवीं मजिल, तेरह का जहा-जहा सबध है, उसने बड़े हजारो आकड़े इकट्ठे किये है।

कोई मित्र मुझे दिखाने लाया था, वह भी बड़ा प्रभावित था। उसने कहा कि देखो, अब तो तथ्य सामने है। मैने उससे कहा, तू चौदह तारीख की खोज कर, इतने ही तथ्य, चौदह तारीख मे भी मिल जायेगे। चौदह को भी लोग मरते है। चौदह को भी कार-दुर्घटनाए होती है। और चौदहवी मजिल से भी लोग गिरते है। तू कोई भी तारीख के पीछे पड़ जा। जिंदगी इतनी बड़ी है, तुम कोई भी पक्ष तय कर लो, तुम्हे प्रमाण मिल जायेग।

इसलिए सत्य की खोज पर जो निकलता है, उसे पहले से पक्ष लेकर नही चलना चाहिए। नही तो वह जो खोज रहा है, खोज लेगा। यही तो बड़े से बड़ा खतरा है जगत मे कि तुम जो खोजना चाहते हो खोज ही लोगे। तुम अपनी मान्यता को सिद्ध कर लोगे। सत्य के खोजी को कोई मान्यता नही होनी चाहिए। उसे तो खुली आख रखनी चाहिए—निष्पक्ष, निर्दोष—तो तथ्य का दर्शन होता है।

परपरा के लाभ भी है, हानिया भी है। लेकिन धर्म परपरा नहीं है। और हानि-लाभ से धर्म का कोई सबध नहीं है।

तुम्हें हानि-लाभ मे रहना हो, धर्म से बचना, सावधान रहना। तुम्हे हानि-लाभ से ऊपर उठना हो, तो धर्म के द्वार पर दस्तक देना। और धर्म के द्वार पर दस्तक देनी हो, परपरा को वहीं छोड़ आना जहा जूते उतार आते हो।

अगर परपरा को लेकर धर्म के मदिर मे आये तो तुम धर्म के मदिर मे कभी आओगे ही नही, तुम्हारी परपरा तुम्हे घेरे रहेगी। तुम आओगे भी और नहीं भी आ पाओगे।

धर्म के जगत मे जिसे जाना हो उसे महावीर जैसा दिगबर होना चाहिए—परिपूर्ण नग्न, सारे आवरणो से मुक्त।

लेकिन बुद्धिमान आदमी हानि-लाभ की सोचता है। बुद्धि का ही धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है।

तेरे सीने मे दम है, दिल नही है
तेरा दिल गर्मि-ए-महफिल नहीं है
गुजर जा अक्ल से आगे कि यह नूर
चिरागे-राह है, मजिल नही है।

यह जो बुद्धि का छोटा-सा टिमटिमाता दीया है, 'चिरागे-राह है', राह पर इसका थोड़ा उपयोग कर लो। चिरागे-राह है, मजिल नही है। इस बुद्धि के दीये को आखिरी मजिल मत समझ लेना। यह टिमटिमाता दीया, इस पर ही उलझ मत जाना। यह हानि-लाभ का विचार, शुभ-अशुभ का विचार, स्वर्ग-नर्क का हिसाब, यह गणित बिठाना—अगर इसमे ही लगे रहे तो तुम धीरे-धीरे पाओगे कि खोपड़ी तो तुम्हारी बडी होती जाती है, हृदय सिकुडता जाता है। धर्म का सबध हृदय से है, बुद्धि से नही, सोच-विचार से नही। गहन भाव की दशा है धर्म।

तेरे सीने मे दम है, दिल नही है
तेरे सीने मे दम है, दिल नही हैं
तेरा दिल गर्मि-ए-महफिल नही है
गुजर जा अक्ल से आगे कि यह नूर
चिरागे-राह है, महफिल नही है।

ध्यान हम कहते ही उसे है जहा तुम इस चिरागे-राह को फूककर आगे निकल जाते हो। इसलिए तो बुद्ध और महावीर ने उसे 'निर्वाण' कहा है। निर्वाण शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है दीये को बुझा देना। जब सारे दीये बुझा देते है तो निर्वाण है।

अब बड़े मजे की बात है, जैन दीवाली मनाते है, क्योकि उस रात महावीर का निर्वाण हुआ। और दीये जलाते हैं। उस रात तो सब दीये बुझा दो, पागलो। निर्वाण का अर्थ होता है दीये बुझा दो। जैन दीवाली पर दीये जलाते है—खुशी मे कि महावीर का निर्वाण हुआ। लेकिन निर्वाण शब्द का अर्थ होता है दीये बुझा दो। ये बुद्धि के, हिसाब के, किताब के दीये बुझा दो। ये तर्क के, विचार के दीये बुझा दो। उस गहन मौन और शून्य और शात अधेरे मे खो जाओ, जो तुम्हारा स्वभाव है।

महावीर ने भी खूब रात चुनी—अमावस की रात—मुक्त होने

को। पूर्णिमा चुनते तो कुछ हिसाब-किताब समझ मे आता। अमावस की रात। लेकिन ठीक चुनी। ऐसा ही गहन स्वभाव है। गहन अधकार, शात, असीम। प्रकाश मे तो थोड़ी उत्तेजना है। इसलिए तो प्रकाश जलता हो कमरे में तो सोना मुश्किल हो जाता है। आखे उत्तेजित रहती है। इसलिए तो दिन मे नींद मुश्किल होती है। रात नींद के लिए है। दीये भी बुझा देते है। सब उत्तेजना खो जाती है।

कभी तुमने खयाल किया, प्रकाश को जलाओ तो है, बुझाओ तो मिट जाता है। अधेरा सदा है, शाश्वत है। अधेरा सत्य के सबध मे बड़ी गहरी खबर देता है। और अधेरे मे बड़ी गहन शाति है। तुम्हे डर लगता है, यह दूसरी बात है। ध्यान मे सभी को डर लगता है, समाधि मे सभी को डर लगता है। तुम्हे डर लगता है, इस कारण तुम दीये को पकड़ लो, यह दूसरी बात है। लेकिन महावीर तो कहते है, जो अभय को उपलब्ध हुआ, वही उस गहन आत्मभाव मे प्रवेश करता है। वह जो भीतर का शून्य है, वहा तो सब ये चिराग, ये दीये, ये हिसाब-किताब, ये तर्क, ये प्रमाण, ये शास्त्र, ये परपराए, सब छोड़कर जाना पड़ता है। जिसकी हिम्मत हो अधेरे मे जाने की, वही आये। जिसकी हिम्मत हो जीते-जी मृत्यु मे प्रवेश की, वही आये। क्योकि समाधि जीते-जी मृत्यु का स्वेच्छा से वरण है। इसीलिए तो हम साधु की कब्र को भी समाधि कहते है। सभी की कब्र को समाधि नही कहते, लेकिन जिसने अपने भीतर समाधि अनुभव कर ली हो, उसकी मृत्यु को भी हम समाधि कहते है। दोनो एक है।

ये जो चार पर्ते मैने तुम्हे बताई, जब ये मर जाती है, तब तुम शून्य मे प्रवेश करते हो। तुम वहीं पहुच जाते हो जहा तुम जन्म के पहले थे।

और यह पहुचना प्रक्रिया है। यह पहुचना संज्ञा नहीं है।

जिदगानी है फकत गर्मि-ए-रफ्तार का नाम
मजिले साथ लिये राह पे चलते रहना।

मंजिल कहीं ऐसी दूर नहीं है कि तुम उस तरफ जा रहे हो।

जिदगानी है फकत गर्मि-ए-रफ्तार का नाम
मजिले साथ लिए राह पे चलते रहना।

मजिल तुम्हारे साथ ही है, तुम्हारे चलने मे है, तुम्हारी गति मे है। मजिल गतव्य नहीं है, तुम्हारी गति की प्रखरता का नाम है, तुम्हारी गति की तीव्रता, त्वरा का नाम है। जब तुम इतने गतिमान होते हो कि तुम्हारे भीतर केवल गत्यात्मकता होती है, कोई और नहीं होता, कोई थिर, जड़ वस्तु नही होती, सब प्रवाह होता है, जब तुम गगा होते हो—तब मजिल वहीं मिल गई।

तुम्हारा होना, अहकार, एक जड़ वस्तु है, पत्थर की तरह है। इसे पिघला लो। इसे जिदगी की गर्मी मे पिघल जाने दो। तुम मिटो तो ही तुम्हारा शून्य प्रगट हो सकेगा। महावीर उस शून्य को आत्मा कहते हैं, क्योकि वह तुम्हारा स्वभाव है।

ध्यान रखना, दृष्टि की सारी बात है।

साहिल भी एक लय है अगर कोई सुन सके
उमड़े हुए सकूत से तूफान बन सके।

दृष्टि की बात है। तूफान शाति बन सकता है, शाति तूफान बन सकती है। तुम्हारी दृष्टि की बात है। तुम अगर शाति से तूफान को देखो तो तूफान भी एक अदभुत लयबद्धता है। और अगर तुम अशाति से शाति को भी देखो, तो शाति भी खो जाती है और केवल एक बेचैनी और एक उन्माद रह जाता है।

यह जो जिदगी का प्रवाह है, इसे तुम दुश्मन की तरह मत देखो, और इससे लडो मत। लड़ने से तुम्हारा अहकार और मजबूत होता चला जायेगा। इसके साथ बहो। इसे होने दो। इसे स्वीकार करो। इसके सत्य को स्वीकार करो और अपने सत्य को स्वीकार करो। और जब दोनो सत्य मिलते है—तुम्हारे भीतर का सत्य, प्रवाहमान, और तुम्हारे बाहर का सत्य, प्रवाहमान—जब इन दोनो प्रवाहो का मिलन होता है, उस मिलन का नाम ही समाधि है। उस आलिंगन का नाम ही समाधि है।

और इस प्रश्न का दूसरा हिस्सा है 'और क्या क्रिया का समय से कोई सबध नहीं है?'

जब तुम परिपूर्ण क्रिया मे होते हो, समय मिट जाता है। जब तुम किसी भी क्रिया मे पूरे लीन होते हो, समय मिट जाता है। एक चित्रकार चित्र बना रहा है, जब वह पूरा-पूरा डूबा होता है तो समय मिट जाता है। नहीं कि घडी ठहर जाती है, घड़ी चलती रहेगी, घड़ी का समय कोई असली समय थोड़े ही है। लेकिन उस चित्रकार के लिए सब ठहर गया। जब कोई गीतकार गीत गाता है, और सिर्फ प्रदर्शन नही करता, वस्तुत गाता है, और ऐसे ओठ ही नहीं हिलाता, हृदय से प्रवेश हो जाता है, तो समय ठहर जाता है। जब कोई नर्तक नाचता है और नाच ही हो जाता है, तो समय ठहर जाता है। जहा भी क्रिया परिपूर्ण है, वही समय

ठहर जाता है। जहा भी क्रिया अपूर्ण है, वहीं समय चलने लगता है। जहा क्रिया बहुत अपूर्ण है, झटके ले लेकर चलती है, तुम चलना भी नही चाहते और चलते हो, मजबूरी होती है—वहा समय लबा होने लगता है।

तुमने कभी खयाल किया। कोई प्रेमी घर आ जाये, घटा बीत जाता है, क्षणभर मालूम पड़ता है। और कोई उबानेवाले सज्जन घर आ जाये और बकवास करे, दो-चार-पाच मिनट भी ऐसे लगते है जैसे कि घटो लगाये दे रहे है। क्या हो जाता है? समय मे इतना अतर क्यो हो जाता है?

समय बड़ा लोचपूर्ण है। जब तुम सुख अनुभव करते हो, समय छोटा हो जाता है। तब तुम मित्र की बाते सुन रहे हो, साधारण-सी बाते है, बड़ी मधुसिक्त हो जाती है। जब कोई आ जाता है उबानेवाला, चाहे बाते वह बड़ी मधुर कर रहा हो, लेकन तुम्हे रास नहीं आता। तो एक भेद पड़ गया। तुम उस चर्चा मे डूब नहीं पाते। चर्चा की क्रिया गतिमान नही हो पाती, ठहर-ठहर जाती है, लगड़ाती है। तुम जबर्दस्ती बार-बार घड़ी देखते हो, जम्हाई लेते हो, कोई तरह इशारा करते हो कि भाई देखो, अब जाओ भी।

अल्बर्ट आइस्टीन के जीवन मे उल्लेख है कि एक मित्र के घर गया था। भुलक्कड़ आदमी था। बात चलती रही, भोजन हो गया। फिर बात चलती रही। मित्र बार-बार घड़ी देखे, जम्हाई ले। आइस्टीन भी बार-बार घड़ी देखे, जम्हाई ले, लेकिन उठे न। आखिर मित्र ने कहा, 'दो बज रहे है, पत्नी राह देखती होगी ।' आइस्टीन ने कहा, 'मतलब?'

मित्र ने कहा, 'मेरा मतलब यह है कि पत्नी राह देखती होगी । वैसे कोई हर्जा नही है, आप बैठे और।' आइस्टीन घबड़ाकर खड़ा हो गया। उसने कहा, 'हद हो गई, मै तो सोचता था कि कब आप जाये तो मै सोऊ। मै तो यही सोच रहा था कि मैं अपने घर मे हू।'

दोनो घड़ी देख रहे है, दोनो जम्हाई ले रहे है। समय बड़ा लबा मालूम पड़ता है।

जब तुम किसी क्रिया के साथ लीन नही हो पाते, वही क्रिया, ठीक वही क्रिया ।

तुम नाच रहे हो—किसी और के लिए, नाचना नहीं चाहते, तो समय रहेगा। तुम नाच रहे हो अपने लिए, या किसी के लिए जिसके लिए तुम नाचना चाहते हो—समय मिट जायेगा। समय तनाव है। जहा तनाव नहीं वहा समय नहीं। जहा तुम बे-तनाव हो, वहा समय नहीं, तुम समयातीत हो गये, कालातीत हो गये।

और यही बात जो समय के सबध मे सच है वही बात क्षेत्र के सबध मे भी सच है। टाइम-स्पेस, समय और क्षेत्र यह दोनो एक साथ खो जाते है, जब तुम्हारी लीनता परिपूर्ण होती है। भक्त अपनी भक्ति मे भूल जाता है—सब भूल जाता है। भगवान को भी भूल जाता है। धुन रह जाती है। मस्ती रह जाती है। ध्यानी अपने ध्यान मे भूल जाता है—ध्यान को भी भूल जाता है। फिर बस एक सुवास रह जाती है। वह सुवास इस पृथ्वी की नही है। उस सुवास को न तो समय घेरता है, न स्थान घेरता है। वह सुवास समय-क्षेत्र अतीत है।

दिल की बस्ती अजीब बस्ती है
लूटनेवाले को तरसती है

हिम्मत चाहिए लुटने की। जहा भी लुट जाओ, वही से धर्म का द्वार खुल जायेगा। वही गुरुद्वारा है।

इसलिए इसकी बहुत फिक्र मत करो कि कैसे। जो तुम्हे रास आ जाये, जो तुम्हे जम जाये—भक्ति तो भक्ति, ज्ञान तो ज्ञान, कर्म तो कर्म—लेकिन कही से भी ऐसी घडी बना लो, जहा समय मिट जाये, जहा तुम इतने डूब सको, इतने डूब सको कि कोई रेखा तनाव की न रह जाये—समग्र मन से, समग्र तन से। नही तो जिदगी मे दुख ही दुख होगा, पीडा ही पीड़ा होगी।

पीड़ा का अर्थ है तनाव की पर्ते। दुख का अर्थ है परमात्मा से चूकते जाना। दुख का अर्थ है सत्य से चूकते जाना। दुख का अपने-आप मे कोई अस्तित्व नही है। सत्य से तुम्हारी जितनी दूरी है उतना ही दुख है।

नारद उसे ईश्वर कहते है। महावीर उसे सत्य कहते है। पर इशारे उनके एक ही की तरफ है।

हर तरफ छा रही है तारीकी
आओ मिल जुल के जिक्र-यार करे।

जिनको उस परमात्मा का प्रेम की भाषा मे स्मरण करना हो—आओ मिल जुल के जिक्रे-यार करे। चलो उस परमात्मा की बात करे, उसका गीत गाये, उसके लिए नाचें।

जिन्हे यह रास न आता हो, जिन्हे यह बात कुछ स्त्रैण लगती हो, जिन्हें यह बात जमती न हो, जिनके संकल्प को यह बात

बाधा डालती हो—तो महावीर कहते है, छोड़ो यह फिक्र, तुम्हारे लिए भी मार्ग है। जिस दिन तुम बने उसी दिन तुम्हारा मार्ग भी तुम्हारे साथ निर्मित हो गया है। तुम अपना मार्ग अपने साथ लाये हो। ऐसा कोई भी नहीं है जो परमात्मा से चूके। हा, अगर तुम्हारी मर्जी ही चूकने की हो तो परमात्मा बाधा नहीं डाल सकता। जो चूकना चाहता है वही चूकता है। जिसको पहुचना है वह पहुच जाता है।

मैने सुना है, एक शराबी बैठा था राह के किनारे और एक आदमी ने कार रोकी और उसने कहा कि मुझे स्टेशन जाना है, कहा से जाऊ। रास्ता भूल गया हू। अजनबी हू यहा।

शराबी ने झकझोर कर अपने को जरा सजग किया। और उसने कहा, ऐसा करो, पहले बाये जाओ—दो फर्लांग। फिर चौरस्ता पडेगा। फिर तुम उससे दाये मुड़ जाना—दो फर्लांग। फिर उसने कहा कि नही-नहीं, यह तो गलत हो गया। तुम यहा से दाये जाओ। चार फर्लांग के बाद मस्जिद पड़ेगी। बस मस्जिद के पास से तुम बाये मुड़ जाना। उसने कहा कि नही-नही, यह फिर गलत हो गया। अब तो वह अजनबी भी थोड़ा मुश्किल मे पडा कि यह मामला क्या है। उसने फिर कहा कि तुम ऐसा करो कि जहा से तुम आये हो उसी तरफ लौट जाओ। आठ फर्लांग के बाद नदी पड़ेगी, पुल आयेगा। उसने कहा, कि नहीं-नही फिर गलत हो गया।

उस ड्राइवर ने कहा, 'महानुभाव। मै किसी और से पूछ लूगा।' उसने कहा कि तुम किसी और से ही पूछ लो तो अच्छा, क्योकि जहा तक मै समझता हू, यहा से स्टेशन पहुचने का कोई उपाय ही नही है।

जो जैसा है वही से उपाय है। जो जहा है वही से उपाय है। निराश मत होना। सकल्प सधे, सकल्प, न सधे, चिता मत करना। साधनो की बहुत फिक्र मत करना, साध्य को स्मरण रखना। राह की कौन चिता करता है, वाहन की कौन फिक्र करता है, बैलगाड़ी से पहुचे कि हवाई जहाज से पहुचे—पहुच गये। हवाई जहाज के भी मजे है, बैलगाड़ी के भी मजे है। हवाई जहाज मे समय बच जाता है, लेकिन बैलगाड़ी मे जो सौदर्य का, दोनो तरफ के रास्तो का अनुभव होता है, वह नही हो पाता। बैलगाड़ी मे थोड़ा समय लगता है, लेकिन दोनो तरफ पृथ्वी के सुहावने दृश्य उभरते है।

मेरे एक मित्र है, बड़े धनी है, लेकिन चलते हमेशा पैसेंजर गाड़ी से। एक दफा मुझे उनके साथ चलना पड़ा। तीन दिन लग गये पहुचने मे जहा एक घटे मे पहुच सकते थे।

मैने कहा कि मामला क्या है। वे कहने लगे कि मुझे पसद ही नहीं कुछ और। उनके साथ चला तो मुझे भी समझ मे आया कि बात तो वे भी ठीक कहते है। पैसेंजर गाड़ी का चलना, हर स्टेशन पर ठहरना। और उनको, वे काफी यात्रा करते रहे है तो हर स्टेशन पर उनकी पहचान है। कहा के भजिये अच्छे है, कहा की गुजिया अच्छी है, कहा का दूध, कहा की चाय, कहा की चाय केसर मिली है—वह सारा हिदुस्तान का उनको हिसाब है। वे कहते है, यह भी कोई चलना कि बैठे हवाई जहाज मे, यह कोई यात्रा है। इधर बैठे, उधर उतर गये। यह कोई बात हुई? चलने का मजा ही न रहा।

अपनी-अपनी मौज है। बैलगाड़ी का भी मजा है। हवाई जहाज का भी मजा है। सकल्प से भी पहुचते है लोग, समर्पण से भी पहुचते है लोग।

जैसा उस शराबी ने कहा था, यहा से पहुचने का कोई उपाय नही है—मैं भी एक शराबी हू, मै तुमसे कहता हू, यहा से पहुचने के सब उपाय है। और जो भी रास्ते है सब उसी की तरफ जाते है। तुम बाये चलना चाहते हो तो बाये से पहुचने का उपाय है। तुम दाये चलना चाहते हो तो दाये से पहुचने का उपाय है। तुम लौटना चाहते हो पीछे तो लौटकर पहुचने का उपाय है। तुम न चलना चाहो तो खड़े-खड़े पहुच जाने का उपाय है।

तीसरा प्रश्न क्या कारण है कि महावीर का 'जिन' मात्र जैन बनकर रह गया?

सदा ही ऐसा होता है। महावीर के ही अनुयायी के साथ ऐसा हुआ, नही, सभी के साथ ऐसा होता है। ऐसा ही होगा। प्रकृति का नियम है। जब महावीर जीवित होते है तब जिनत्व होता है, जब वे जा चुके होते है तब 'जैन' का प्रादुर्भाव होता है।

जैन का अर्थ है जो जिन तो नही हुआ, जो जिन होना भी नही चाहता, लेकिन परपरा से, सस्कार से, जैन घर मे पैदा हुआ है। यह सस्कार उधार है, स्वेच्छा से वरण नही किये गये। और जो धर्म स्वेच्छा से वरण नही किया गया है, वह केवल बौद्धिक है,

आत्मिक नहीं है। यह सभी के साथ होगा। यह स्वाभाविक है।

एक डाक्टर ने नौकर को आदेश दे रखा था कि कोई काम उनसे पूछे बगैर न करे। एक दिन वे दवाइयो की डोज देख रहे थे कि नौकर आकर बोला, 'सर। चाय मे कितनी चीनी दू ?'

'दो या तीन चम्मच भर', डाक्टर ने कहा।

नौकर थोड़ी देर बाद फिर आया और बोला, 'सर। सब्जी मे नमक कितना देना है ?'

'दो या तीन चम्मच भर', थोड़ा नाराज होते डाक्टर बोला।

फिर थोड़ी देर मे लौटकर नौकर आया और उसने कहा कि सर, चावल कितना बनेगा ? 'कितनी बार कहा', डाक्टर चीखा, 'दो या तीन चम्मच भर।'

चावल दो या तीन चम्मच भर। लेकिन धीरे-धीरे लकीरे बन जाती है। उत्तर निर्णीत हो जाते है। बहुत बार जो बात तुमने कही है, तुम उसे कहने के लिए धीरे धीरे अवश हो जाते हो। बहुत बार जिस मदिर के सामने तुम झुके हो, तुम झुक जाते हो मूर्च्छा मे, झुकना सच नही होता। तुम्हे पक्का भी नहीं होता।

मेरे एक मित्र हैं। मेरे साथ घूमने जाते थे। हनुमान के भक्त है। अब हनुमान के भक्त की बडी दिक्कत है, क्योकि जितने हनुमान के मदिर, मूर्ति इधर-उधर सब जगह है । जहा जाए, वही उनको . । तो उनको जगह-जगह नमस्कार ।

और हनुमान के साथ खतरा है कि नाराज न हो जाये। एक और झझट। तो मैने उनसे कहा कि यह तुम क्या करते हो दिनभर ? तुमको कोई काम दूसरा नहीं सूझता ? चलो तो मुसीबत। रिक्शा रोककर उतरते है, पहले नमस्कार। हनुमान जी नाराज न हो जाये।

मैने कहा, 'और जहा तक मै देखता हू, न तो तुम्हारे नमस्कार मे कोई रस है। मैं देखता हू, एक तरह की फजीहत, एक तरह की परेशानी। तुम झिझियाये से, खिझियाये से नमस्कार करते हो।'

बोले, 'बात तो ठीक है क्योकि बचपन से यह आदत मेरे पिताजी ने डाल दी है। वे भी यही करते थे। वे भी खिझियाए रहते थे। क्योकि गाव क्या है, जहां देखो वही हनुमान जी बैठे है। इस झाड़ के नीचे बैठे है, उस झाड़ के नीचे बैठे है। हनुमानजी के बैठने मे दिक्कत नही लगती। कही भी पत्थर रख दो, लाल रग से रग दो। झझट खड़ी हो गई। अब ये हनुमान जी है, अब अगर न इनको नमस्कार करो तो नाराज हो जायेगे।

तो मैने कहा, तुम एक काम करो। तुम एक तीन दिन नियम रखो कि नमस्कार न करोगे हनुमान जी को। बोले कि 'अगर नाराज हो गये तो ?'

'वह मेरा जुम्मा। मै निपट लूगा। तीन दिन मै कर लूगा तुम्हारी तरफ से नमस्कार। लेकिन तुम तीन दिन ।'

उन्होने कहा कि बड़ा मुश्किल होगा। मैने कहा, तुम कोशिश तो करो। तीन दिन सभव न हो पाया। वे शाम को उसी दिन आये। उन्होने कहा, मुश्किल है। वह तो याद ही नही रहती, एकदम से हाथ झुक जाता है।

अब यह पूजा हुई ? यह प्रार्थना हुई ? यह तो एक मजबूरी हो गई, एक बेहोशी हो गई। यह तो एक आदत हो गई, जैसे सिगरेट पीनेवाले को सिगरेट की तलफ लगती है, हाथ खीसे मे चला जाता है, पैकेट बाहर निकल आता है, सिगरेट ठोकने लगता है पैकेट पर। एक यात्रिक प्रक्रिया हो गई।

जब तुम धर्म को बिना स्वेच्छा के स्वीकार कर लेते हो, आदतवश, सस्कारवश, परपरावश, तब तुम एक खतरे मे पड रहे हो, क्योकि धर्म तो तभी धर्म होता है जब तुम स्वेच्छा से, सावचेत, सावधानी से स्वीकार करो। धर्म तो तभी धर्म होता है जब तुम्हे जगाये, सुलाये न।

तो तुम दोहरा सकते हो। जैन दोहरा रहा है। 'जिन' होना हो तो जीना पड़ेगा, दोहराने से काम न होगा। महावीर के वचन याद कर लेने से कुछ भी न होगा। जीना पडेगा। उन्हे फिर से खोजना पड़ेगा कि जीवन की सचाई उनमे है या नही। तुम्हे प्रमाण बनना पड़ेगा शास्त्र का। तुम्हे खबर देनी पड़ेगी अपने खुद के अन्वेषण से कि ठीक है, मेरा अन्वेषण भी मुझे वही ले आता है जहा महावीर का अन्वेषण ले गया, मै भी तालमेल पाता हू, उन्होने जो कहा, ठीक कहा है, यह मेरा अनुभव भी कहता है—तब तो तुम 'जिन' हो पाओगे।

लेकिन अगर तुम दोहराते रहे, तो दोहराते रह सकते हो। तुम जैन बने-बने सड़ जाओगे।

तुम कही पहुच न पाओगे।

फिर शास्त्रो से हम जो अर्थ लेते है, उस अर्थ के लिए भी बड़ी साक्षी भाव-दशा चाहिए, तो ही अर्थ का फूल तुम्हारे भीतर खिलेगा। शब्द तो मिल जाते है शास्त्र से, अर्थ कहा से लाओगे ? अर्थ तो तुम्हे डालना होगा।

एक रोगी ने अपने डाक्टर से आकर कहा कि बड़ी कठिनाई है, जो आपने कहा था, हो नहीं पाता। डाक्टर ने कहा कि मैने ऐसी कोई कठिन बात तुमसे कही न थी। इतना ही तो कहा था कि जो तुम्हारा बच्चा खाता है, वही भोजन तुम लो। इसमे क्या अड़चन है? कुछ दिन तक जो तुम्हारा बच्चा लेता है, वही भोजन तुम लो, तो तुम्हारा शरीर ठीक रास्ते पर आ जायेगा।

उसने कहा कि मैने प्रयत्न तो किया, पर सफल न हो सका। डाक्टर ने कहा, 'क्या बेवकूफी है? इतनी-सी बात तुमसे न हो सकी कि तुम्हारा बच्चा जो खाता है वही तुम खाओ? दूध पीता है तो दूध पीओ। खिचडी खाता है तो खिचड़ी खाओ। और जितनी थोडी मात्रा मे खाता है उतनी ही मात्रा मे खाओ। यह भी तुमसे न हो सका?'

उसने कहा कि महाराज, मेरा बच्चा मोमबत्ती, कोयला, मिट्टी, जूते के फीते, ऐसी कौन-सी चीज है जो नही खाता। वही तो मै मरा जा रहा हू खा-खाकर। मेरी हालत और खराब हो गई है।

थोडी सावधानी चाहिए। अर्थ तो तुम डालोगे।

महावीर कहते है, उपवास, तुम पढ़ोगे, अनशन। महावीर कहते है, सत्य मे सयम छिपा है, तुम पढोगे, सयम मे सत्य छिपा है। ऐसे चूकते चले जाओगे। फिर तुम अपनी मतलब की बात सदा निकाल लोगे। आदमी अपनी मतलब की बात निकाल लेता है।

मै जबलपुर बहुत वर्षो तक रहा। एक बूढे सिधी की दुकान थी। पुरानी किताबे, पुराना कागज, खरीदता और बेचता। मै भी उसकी दुकान पर पुरानी किताबो की तलाश मे जाता था। कभी-कभी बड़े महत्वपूर्ण शास्त्र उसकी किताब की दुकान पर से मिल गये। उस सिधी को सिधियो मे ऐसी मान्यता थी कि वह कुछ धार्मिक है, वे उसको साई कहते थे। मै भी किताबे पुरानी ढूढ़ते-ढूढ़ते, सुनता रहता था उसकी बाते, उसके कुछ शिष्य-शागिर्द भी कभी-कभी बैठे रहते थे। एक दिन एक आदमी आया जो फाउन्टेनपेन खरीदकर ले गया था। पुरानी और चीजे भी वह खरीदता-बेचता था। वह आदमी बडा नाराज था। उसने कहा कि यह तुमने धोखा दिया। यह तो फाउन्टेनपेन चार आने का भी नही है और लिखा है इस पर 'मेड इन यू एस ए ।' यह है नहीं 'अमरीका का बना।'

वह सिंधी नाराज हुआ। उसने कहा, 'कहा किसने कि यह अमरीका का बना है?' पर उसने कहा, 'इस पर लिखा हुआ है मेड इन यू एस ए । तो वह सिधी नाराज हुआ। उसने कहा, 'कोई यू एस ए ने यू एस ए लिखने का ठेका ले रखा है? अरे, यू एस ए का मतलब होता है उल्हासनगर सिधी एसोसिएशन।'

अपने-अपने हिसाब है, अपने-अपने मतलब है। यू एस ए की चीज खरीदते वक्त उल्हासनगर के सिधियो को याद रखना। तुम ही तो अर्थ डाल लोगे। शब्द तो बेचारा क्या करेगा। अर्थ तो तुम जोडोगे। अर्थ तो तुम निकालोगे।

महावीर की नग्नता हुई—सहज, स्वाभाविक, सहजस्फूर्त।

मेरे एक मित्र है जैन-सन्यासी। उनके गाव के पास से गुजरता था तो मैने गाड़ी रुकवाई। मैने कहा कि उनको मिलता चलू, वर्षो से मिला नही। देखा खिड़की से तो वे अपनी छोटी-सी कोठरी मे—दूर जगल मे रहते है—नग्न टहल रहे थे। जब मै दरवाजे पर गया और मैने दस्तक दी तो वे आए तो चादर लपेटे थे। मैने पूछा, 'मामला क्या है? अभी तो मैने खिड़की से देखा, तुम नग्न थे, चादर क्यो लपेट ली?' वे हसने लगे। उन्होने कहा कि जरा अभ्यास कर रहा हू।

'काहे का अभ्यास कर रहे हो?'

वे अभी ब्रह्मचारी है, जैनियो की पहली सीढ़ी पर है सन्यास की। मुनि जब नग्न होते है, तो वे पाचवी सीढी है। तो उन्होने कहा, थोड़ा अभ्यास कर रहा हू। मैने कहा, कैसे अभ्यास करोगे? उन्होने कहा, 'पहले अकेले मे करता हू। नग्न होने की थोड़ी आदत हो जाये। फिर मित्र, परिचितो के बीच रहूगा। फिर धीरे-धीरे गाव मे जाऊगा। फिर शहर मे भी। ऐसे हिम्मत बढ जायेगी। अभी तो बड़ा सकोच लगता है।'

मैने उनसे पूछा, 'तुमने कभी सुना कि महावीर ने ऐसा अभ्यास किया था। नग्नता अभ्यास से आये तो निर्दोष कहा रही? अभ्यास तो हर चीज को दोषी बना देता है। अभ्यास का तो मतलब हुआ—परफार्मेन्स। अभ्यास का तो अर्थ हुआ—नाटक। यह तुम रिहर्सल कर रहे हो मुनित्व का, मुनि होने का? तैयारी कर रहे हो? यह कोई नाटक है या जीवत घटना है? माना कि तुम सकोच छोड़ दोगे अभ्यास करने से, अभ्यास से जो सकोच छूट जायेगा उससे क्या निर्दोषता आयेगी? निर्दोषता तो तब आती है जब समझ से सकोच गिरता

है, अभ्यास से नहीं।'

समझ अभ्यास बन गई। फिर चूक हो गई। तो 'जिन' तो खो गये, जैन है।

और ऐसा ही सभी धर्मो के साथ हुआ है। ऐसा ही मै जो तुमसे कह रहा हू, मेरे साथ होगा। यह प्रकृति का नियम है। इसलिए इस पर नाराज मत होना। जब तुम्हे समझ मे आ जाये तो तुम खिसक जाना इसके घेरे के बाहर, बस। इस पर नाराज होने जैसा कुछ नहीं है। ऐसा सदा होगा। आखिर मै अपने शब्दो का अर्थ करने कितनी देर बैठा रहूगा? एक न एक दिन तुम मेरे शब्दो का अर्थ करने के मालिक हो जाओगे। फिर मै कुछ न कर सकूगा। तुम जो अर्थ निकालोगे, तुम्हारी मौज।

इसलिए तो इतने धर्मो के सप्रदाय पैदा होते है। अब महावीर के भी सप्रदाय हो गये। छोटी-सी सख्या है जैनो की, उसमे भी दिगबर है, श्वेताबर है, फिर श्वेताबरो मे भी स्थानकवासी है, और तेरापथी है, और एक गच्छ, दूसरा गच्छ। फिर दिगबरो मे भी तारणपथी है। और छोटे-छोटे पथ। और उनके झगडे क्या है—बड़े छोटे-छोटे। हसने जैसे। कुछ मुद्दा नही है उनमे।

लेकिन सवाल यह नही है। सवाल यह है कि जब सदगुरु जा चुका तो अनुयायी अपने-अपने तरह से अर्थ करेगे। अर्थो मे भेद हो जायेगे। भेदो के माननेवाले अलग-अलग हो जायेगे, सप्रदायो मे टूट जायेगे। यह भेद कुछ महावीर के वचनो मे नही है। यह भेद अर्थ करनेवालो की व्याख्या मे है। सब व्याख्याए तुम्हारी होगी।

तो क्या उपाय है?

इसलिए मै निरतर कहता हू कि अगर तुम्हे कोई जीवित गुरु मिल सके, तो खोज लेना, अगर न मिल सके तो मजबूरी मे शास्त्र मे उतरना। क्योकि शास्त्र मे तुम अकेले छूट जाओगे। तुम्ही अर्थ करोगे, तुम्ही पढ़ोगे। कौन निर्णय देगा कि तुमने जो पढ़ा, ठीक पढ़ा? कि तुमने जो अर्थ किया वह ठीक किया? बहुत बेईमानी की सभावना पैदा हो जाती है, जब तुम अकेले छूट जाते हो। तुम बेईमान हो। अपनी इस बेईमानी के प्रति सावचेत रहना। कही ऐसे व्यक्ति को खोजो, जो तुमसे चार कदम भी आगे हो तो भी चलेगा। कम से कम चार कदम तो तुम सुरक्षा से प्रकाश मे चल सकोगे। फिर चार कदम के बाद वह काम का न रह जाये, किसी और को खोज लेना। आदमियो से थोड़े ही बधना है—सत्य की खोज करनी है। जहा से जितना इशारा मिल जाये, जीवत, उतना ले लेना और आगे बढ़ते जाना। एक दिन ऐसी घड़ी भी आ जायेगी कि तुम अपना भी प्रकाश पैदा कर लोगे। तब फिर किसी गुरु की कोई जरूरत नही रह जाती।

आखिरी प्रश्न किसी सुदर युवती को देखकर जाने क्यो मन उसकी ओर आकर्षित हो जाता है, आखे उसे निहारने लगती है। मेरी उम्र पचास हो गई है, फिर भी ऐसा क्यो होता है? क्या यह वासना है, या प्रेम, या सुदरता की स्तुति? कृपया मेरा मार्ग-निर्देश करे।

ऐसा होता है निरतर, क्योकि जब दिन थे तब दबा लिया। तो रोग बार-बार उभरेगा। जब जवान थे, तब ऐसी किताबे पढते रहे जिनमे लिखा है ब्रह्मचर्य ही जीवन है। तब दबा लिया।

जवानी के साथ एक खूबी है कि जवानी के पास ताकत है—दबाने की भी ताकत है। वही ताकत भोग बनती है, वही ताकत दमन बन जाती है। लेकिन जवान दबा सकता है।

मेरे अनुभव मे अकसर ऐसी घटना घटती रही है, लोग आते रहे है, कि चालीस और पैतालीस साल के बाद बड़ी मुश्किल खड़ी होती है, जिन्होने भी दबाया। क्योकि चालीस-पैतालीस साल के बाद, वह ऊर्जा जो दबाने की थी वह भी क्षीण हो जाती है। तो वह जो दबाई गई वासनाए थी, वे उभरकर आती है। और जब बे-समय आती है तो और भी बेहूदी हो जाती है।

जवान स्त्रियो के पीछे भागता फिरे, कुछ भी गलत नही है, स्वाभाविक है, होना था, वही हो रहा है। बच्चे तितलियो के पीछे दौड़ते फिरे, ठीक है। बूढ़े दौड़ने लगे—तो फिर जरा रोग मालूम होता है। लेकिन रोग तुम्हारे कारण नही है, तुम्हारे तथाकथित साधुओ के कारण है—जिनने तुम्हे जीवन को सरलता से जीने की सुविधा नही दी है। बचपन से ही जहर डाला गया है कामवासना पाप है। तो कामवासना को कभी पूरे प्रफुल्ल मन से स्वीकार नही किया। भोगा भी, तो भी अपने को खीचे रखा। भोगा भी, तो कलुषित मन से, अपराधी भाव से, यह मन मे बना ही रहा कि पाप कर रहे है। सभोग मे भी उतरे तो जानकर कि नर्क का इतजाम कर रहे है।

अब तुम सोचो, जब तुम सभोग मे उतरोगे और नर्क का भाव बना रहेगा, क्या खाक उतरोगे? सभोग की सुरभि तुम्हे क्या घेरेगी? वह नृत्य पैदा न हो पायेगा। तो तुम बिना उतरे वापिस लौट आओगे। शरीर के तल पर सभोग हो जायेगा, मन के तल पर वासना अधूरी अतृप्त रह जायेगी। मन के तल पर दौड़ जारी रहेगी। तो जब बूढ़े होने लगोगे और शरीर कमजोर होने लगेगा और शरीर की दबाने की पुरानी शक्ति क्षीण होने लगेगी और मौत दस्तक देने लगेगी दरवाजे पर और लगेगा कि अब गये, अब गये—तब ऐसा लगेगा, यह तो बडा गड़बड़ हुआ, भोग भी न पाये और चले। डोली तो उठी नही, अर्थी सज गई। तो मन बडे वेग से स्त्रियो की तरफ दौडेगा, पुरुषो की तरफ दौडेगा।

यह तथाकथित समाज के द्वारा पैदा की गई रुग्ण अवस्था है। बच्चे को उसके बचपन को पूरा जीने दो, ताकि जब वह जवान हो जाये तो बचपन की रेखा भी न रह जाये, ताकि वह पूरा-पूरा जवान हो सके। जवान को पूरा जीने दो, उसे अपने अनुभव से ही जागने दो, ताकि जवानी के जाते-जाते वह जो जवानी की दौड-धूप थी, आपाधापी थी, मन का जो रोग था, वह भी चला जाये, ताकि बूढा शुद्ध बूढा हो सके। और जब कोई बूढा शुद्ध बूढा होता है तो उससे सुदर कोई अवस्था नही है। लेकिन जब बूढे मे जवान घुसा होता है, तब एक भूत तुम्हारा पीछा कर रहा है। तब तुम एक प्रेतात्मा के वश मे हो। तब तुम्हे बड़ा भटकायेगा। तब तुम्हे बड़ा बेचैन करेगा। और जैसे-जैसे शरीर अशक्त होता जायेगा वैसे-वैसे तुम पाओगे, वेग वासना का बढ़ने लगा।

एक स्त्री के सबध मे मैने सुना है। वह चालीस से ऊपर की हो चुकी थी। मोटी हो गई थी, बेहूदी हो गई थी, कुरूप हो गई थी। फिर भी बनती बहुत थी। दावत मे पास बैठा युवक उसकी बातो से उकता गया था और भाग निकलने के लिए बोला, 'क्या आपको वह बच्चा याद है जो स्कूल मे आपको बहुत तग करता था ?' उसका हाथ पकड़कर स्त्री ने कहा, 'अच्छा, तो वह तुम थे?'

उसने कहा, 'नही, जी नहीं, मै नही। वे मेरे पिताजी थे।'

एक उम्र है तब चीजे शुभ मालूम होती है। एक उम्र है तब चीजो को जीना जरूरी है। उसे अगर न जी पाये तो पीछा चीजे करेगी। और तब चीजे बड़ी वीभत्स हो जाती है।

एक सिनेमा-गृह मे ऐसा घटा। एक महिला पास मे बैठे एक बदतमीज बूढ़े से तग आ गई थी, जो आधे घटे से सिनेमा देखने की बजाय उसे ही घूरे जा रहा था।

आखिर उसने फुसफुसाकर उस आदमी से कहा, 'सुनिए, आप अपना एक फोटो मुझे देगे?'

आदमी बाग-बाग हो गया 'जरूर जरूर। एक तो मेरी जेब मे ही है। लीजिए। हा, क्या कीजिएगा मेरे फोटो का?'

उसने कहा, 'अपने बच्चो को डराऊगी।'

सावधान रहना। वही जो एक समय मे शुभ है दूसरे समय मे अशुभ हो जाता है। वही जो एक समय मे ठीक था, सम्यक था, स्वभाव के अनुकूल था, वही दूसरे समय मे अरुचिपूर्ण हो जाता है, बेहूदा हो जाता है।

जिन मित्र ने पूछा है, उनको थोड़ा जागकर अपने मन मे पडी हुई, दबी हुई वासनाओ का अतर्दर्शन करना होगा। अब मत दबाओ। कम से कम अब मत दबाओ। अभी तक दबाया और, उसका यह दुष्फल है। अब इस पर ध्यान करो। क्योकि अब उम्र भी नही रही कि तुम स्त्रियो के पीछे दौड़ो या मै तुमसे कहू कि उनके पीछे दौड़ो। वह बात जचेगी नही। वे तुमसे फोटो मागने लगेगी। अब जो जीवन मे नही हो सका, उसे ध्यान मे घटाओ।

अब एक घटा रोज आख बद करके, कल्पना को खुली छूट दो। कल्पना को पूरी खुली छूट दो। वह किन्ही पापो मे ले जाये, जाने दो। तुम रोको मत। तुम साक्षी-भाव से उसे देखो कि यह मन जो-जो कर रहा है, मै देखू। जो शरीर के द्वारा नही कर पाये, वह मन के द्वारा पूरा हो जाने दो। तुम जल्दी ही पाओगे कुछ दिन के एक घटा नियम से कामवासना पर अभ्यास करो, कामवासना के लिए एक घटा ध्यान मे लगा दो, आख बद कर लो और जो-जो तुम्हारे मन मे कल्पनाए उठती है, सपने उठते है, जिनको तुम दबाते होओगे निश्चित ही—उनको प्रगट होने दो। घबडाओ मत, क्योकि तुम अकेले हो। किसी के साथ कोई तुम पाप कर भी नही रहे। किसी को तुम कोई चोट पहुचा भी नही रहे। किसी के साथ तुम कोई अभद्र व्यवहार भी नहीं कर रहे कि किसी स्त्री को घूरकर देख रहे हो। तुम अपनी कल्पना को ही घूर रहे हो। लेकिन पूरी तरह घूरो। और उसमे कजूसी मत करना।

मन बहुत बार कहेगा कि 'अरे, इस उम्र मे यह क्या कर रहे हो।' मन बहुत बार कहेगा कि यह तो पाप है। मन बहुत बार

कहेगा कि शात हो जाओ, कहा के विचारो मे पड़े हो।

मगर इस मन की मत सुनना। कहना कि एक घटा तो दिया है इसी ध्यान के लिए, इस पर ही ध्यान करेगे। और एक घटा जितनी स्त्रियो को, जितनी सुदर स्त्रियो को, जितना सुदर बना सको बना लेना। इस एक घटा जितना इस कल्पना-भोग मे डूब सको, डूब जाना। और साथ-साथ पीछे खडे देखते रहना कि मन क्या-क्या कर रहा है। बिना रोके, बिना निर्णय किये कि पाप है कि अपराध है। कुछ फिक्र मत करना। तो जल्दी ही तीन-चार महीने के निरतर प्रयोग के बाद हलके हो जाओगे। वह मन से धुआ निकल जायेगा।

तब तुम अचानक पाओगे बाहर स्त्रिया है, लेकिन तुम्हारे मन मे देखने की कोई आकाक्षा नही रह गई। और जब तुम्हारे मन मे किसी को देखने की आकाक्षा नहीं रह जाती, तब लोगो का सौदर्य प्रगट होता है। वासना तो अधा कर देती है, सौदर्य को देखने कहा देती है। वासना ने कभी सौदर्य जाना? वासना ने तो अपने ही सपने फैलाये।

और वासना दुष्पूर है, उसका कोई अत नही है। वह बढती ही चली जाती है।

एक बहुत मोटा आदमी दर्जी की दुकान पर पहुचा। दर्जी ने अचकन के लिए बड़ी कठिनाई से उसका नाप लिया। फिर एक सौ रुपये की सिलाई मागी। वे महाशय बोले, 'टेलीफोन पर तो तुमने पच्चीस रुपये सिलाई कही थी, अब सौ रुपये? हद हो गई। बेईमानी की भी कोई सीमा है।'

दर्जी ने कहा, 'महाराज! वह अचकन की सिलाई थी, यह शामियाने की है।'

अचकने शामियाने बन जाती है। वासना फैलती ही चली जाती है। तबू बडे से बडा होता चला जाता है। अचकन तक ठीक था, लेकिन जब शामियाना ढोना पड़े चारो तरफ तो कठिनाई होती है।

मै अड़चन समझता हू। लेकिन अडचन का तुम मूल कारण खयाल मे ले लेना तुमने दबाया है। तुमने दमन किया है। तुम गलत शिक्षा और गलत सस्कारो के द्वारा अभिशापित हुए हो। तुमने जिन्हे साधु-महात्मा समझा है, तुमने जिनकी बातो को पकड़ा है—न वे जानते है, न उन्होने तुम्हे जानने दिया है।

मेरे पास साधु सन्यासी आते है तो कहते है, 'एकात मे आपसे कुछ कहना है।' मैं कहता हू, सभी के सामने कह दो, एकात की क्या जरूरत है? वे कहते है कि नही, एकात मे। अब तो मैने एकात मे मिलना बद कर दिया है। क्योकि एकात मे जब भी साधु-सन्यासी आये तो वे एकात ही मागते है। और एकात मे एक ही प्रश्न है उनका कि यह कामवासना से कैसे छुटकारा हो। कोई सत्तर साल का हो गया है, कोई चालीस साल से मुनि है—तो तुम क्या करते रहे चालीस साल? कहते है, क्या बताये, जो-जो शास्त्र मे कहा है, जो-जो सुना है—वह करते रहे है। उससे तो हालत और बिगडती चली गई है।

मवाद को दबाया है, निकालना था। घाव पर तुमने ऊपर से मलहम-पट्टी की है, आपरेशन की जरूरत थी। तो जिस मवाद को तुमने भीतर छिपा लिया है, वह अब तुम्हारी रग-रग मे फैल गई है, अब तुम्हारा पूरा शरीर मवाद से भर गया है।

तो थोडी सावधानी बरतनी पडेगी। आपरेशन से गुजरना होगा। और तुम्ही कर सकते हो वह आपरेशन, कोई और कर नही सकता। तुम्हारा ध्यान ही तुम्हारी शल्यक्रिया होगी। तब एक घटा रोज । तुम चकित होओगे, अगर तुमने एक-दो महीने भी इस प्रक्रिया को बिना किसी विरोध के भीतर उठाये, बिना अपराध भाव के निश्चित मन से किया, तो तुम अचानक पाओगे धुए की तरह कुछ बाते खो गई। महीने दो महीने के बाद तुम पाओगे तुम बैठे रहते हो, घड़ी बीत जाती है, कोई कल्पना नही आती, कोई वासना नहीं उठती। तब तुम अचानक पाओगे अब तुम चलते हो बाहर, तुम्हारी आखो का रग और। अब तुम्हे सौदर्य दिखाई पडेगा। क्योकि सब सौदर्य परमात्मा का सौदर्य है। स्त्री का, पुरुष का कोई सौदर्य होता है? फूल का, पत्ती का, कोई सौदर्य होता है? सौदर्य कहीं से भी प्रगट हो, सौदर्य परमात्मा का है, सौदर्य सत्य का है। लेकिन सौदर्य को देख ही वही पाता है, जिसने वासना को अपनी आख से हटाया। वासना का पर्दा आख पर पडा रहे, तुम सौदर्य थोडे ही देखते हो। सौदर्य तुम देख ही नहीं सकते।

वासना कुरूप कर जाती है सभी चीजो को। इसलिए तुमने जिसको भी वासना से देखा, वही तुम पर नाराज हो जाता है। कभी तुमने खयाल किया? किसी स्त्री को तुम वासना से देखो, वही बेचैन हो जाती है। किसी पुरुष को वासना से देखो, वही थोड़ा उद्विग्न हो जाता है। क्योकि जिसको भी तुम वासना से

देखते हो, उसका अर्थ ही क्या हुआ? उसका अर्थ हुआ कि तुमने उस आदमी या उस स्त्री को कुरूप करना चाहा। जब भी तुम किसी को वासना से देखते हो, उसका अर्थ हुआ कि तुमने किसी का साधन की तरह उपयोग करना चाहा, तुम किसी को भोगना चाहते हो। और प्रत्येक व्यक्ति साध्य है, साधन नही है। तुम किसी को चूसना चाहते हो? तुम किसी को अपने हित मे उपयोग करना चाहते हो? तुम किसी के व्यक्तित्व को वस्तु की तरह पद-दलित करना चाहते हो?

वस्तुओ का उपयोग होता है, व्यक्तियो का नहीं। लेकिन जब तुम वासना से किसी को देखते हो, व्यक्ति खो जाता है, वस्तु हो जाती है। इसलिए वासना की आख को कोई पसद नही करता। जब वासना खो जाती है तो सौंदर्य का अनुभव होता है। और जब सौंदर्य का अनुभव होता है, तो तुम्हारे भीतर प्रेम का आविर्भाव होता है।

प्रेम उस घड़ी का नाम है, जब तुम्हे सब जगह परमात्मा और उसका सौंदर्य दिखाई पडने लगता है। तब तुम्हारे भीतर जो ऊर्जा उठती है, जो अहर्निश गीत उठता है—वही प्रेम है। अभी तो तुमने जिसे प्रेम कहा है, उसका प्रेम से कोई दूर का भी सबध नही है। वह प्रेम की प्रतिध्वनि भी नही है। वह प्रेम की प्रतिछाया भी नही है। वह प्रेम का विकृत रूप भी नही है। वह प्रेम से बिल्कुल उलटा है।

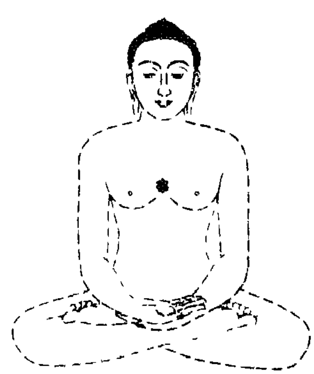
इसलिए तो तुम्हारे प्रेम को घृणा बनने मे देर कहा लगती है। अभी प्रेम था, अभी घृणा हो गई। एक क्षण पहले जो मित्र था, क्षणभर बाद दुश्मन हो गया। क्षणभर पहले जिसके लिए मरते थे, क्षणभर बाद उसको मारने को तैयार हो गये।

तुम्हारा प्रेम प्रेम है? घृणा का ही बदला हुआ रूप मालूम पड़ता है। प्रेम सिर्फ तुम्हारी बातचीत है। प्रेम तो उनका अनुभव है जिनकी आख से वासना गिर गई, जिन्हे सौंदर्य दिखाई पड़ा, जिसे सब तरफ उसके नृत्य का अनुभव हुआ, जिसे सब तरफ परमात्मा की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी। फिर प्रेम का आविर्भाव होता है। प्रेम यानी प्रार्थना। प्रेम यानी पूजा। प्रेम यानी अहोभाव, धन्यता, कृतज्ञता।

नही, अभी तुम्हे प्रेम का अनुभव नही हुआ। अभी तो तुमने वासना को भी नही जाना, प्रार्थना को तुम जानोगे कैसे? वासना को जानो, ताकि वासना से मुक्त हो जाओ। जब मै निरतर तुमसे कहता हू, वासना को जानो, तो मै यही कह रहा हू कि वासना से मुक्त होने का एक ही उपाय है उसे जान लो। जिसे हम जान लेते है, उसी से मुक्ति हो जाती है।

सत्य बडा क्रातिकारी है। जान लेने के अतिरिक्त और कोई रूपातरण नही है।

आज इतना ही।





नौवां प्रवचन

अनुकरण नहीं—आत्म-अनुसंधान

सूत्र

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ।।२२।।

एगप्पा सजिए सत्तू, कसाया इदियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।।२३।।

एगओ विरइ कुञ्जा, एगओ य पवत्तण।
असजमे नियत्ति च, सजमे य पवत्तण।।२४।।

रागे दोसे य दो पावे, पावकम्म पवत्तणे।
जे भिक्खू रूभई निच्च, से न अच्छइ मडले।।२५।।

पहला सूत्र

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ।।

'आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है। और आत्मा ही सुख-दुख का भोक्ता, विकर्ता है। सत्प्रवृत्ति मे स्थित आत्मा अपना ही मित्र ओर दुष्प्रवृत्ति मे स्थित आत्मा अपना ही शत्रु है।'

महावीर के चितन का सारा विश्व आत्मा है। महावीर के उडने का सारा आकाश आत्मा है। आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। आत्मा से अन्यथा को कोई भी स्थान महावीर की धारणा मे नही है। न ससार का कोई मूल्य है, न परमात्मा का कोई मूल्य है—दूसरे का कोई मूल्य ही नही है। मूल्य है तो अपना।

अगर ठीक से कहे और गलत न समझे तो महावीर से बड़ा स्वार्थी आदमी कभी हुआ नही। लेकिन गलत मत समझ लेना।

स्वार्थ का अर्थ होता है अपना अर्थ, अपना प्रयोजन। स्वार्थ का अर्थ होता है अपना हित, अपना कल्याण, अपना मगल। जो स्वार्थ को पूरा साध लेते है उनसे परार्थ अपने आप सध जाता है। क्योकि जो अपने हित मे करता है वह दूसरे के अहित मे कभी कुछ कर ही नहीं पाता। क्योकि जिसने अपने हित को पहचानना शुरू किया, वह धीरे-धीरे जानने लगता है जो अपने हित मे है वह दूसरे के हित मे भी है, और जो अपने हित मे नही है, वह दूसरे के हित मे भी नही है। इससे विपरीत भी, कि जो दूसरे के हित मे नहीं है, वह अपने हित मे नहीं हो सकता, और जो दूसरे के हित मे है वही अपने हित मे हो सकता है। क्योकि दूसरा भी मेरे जैसा ही आत्मा है। मेरे और दूसरे के स्वभाव मे रत्तीभर भेद नहीं है। तो जो मुझे प्रीतिकर है वही दूसरे को प्रीतिकर है। जो दूसरे को प्रीतिकर है वही मुझे प्रीतिकर है। मै और दूसरा दो अलग-अलग आयाम नही—एक ही चैतन्य के दो रूप है, एक ही स्वभाव के दो सघट है।

पर महावीर की शिक्षा परम स्वार्थ की है। परार्थ की तो वे बात ही नही करते। परार्थ की वे बात ही कैसे करेगे। 'पर' को तो वे कहते है, खयाल ही छोड़ दो। परार्थ के लिए भी पर का खयाल रखा तो पर से उलझे रह जाओगे। पर ही तो ससार है। दूसरे पर ध्यान रखना ही तो ससार है। दूसरे से अपने ध्यान को मुक्त कर लेना समाधि है। अपने पर लौट आए, अपने घर आ गए। अपना ध्यान अपने मे ही लीन कर लिया। अपने से पार अब कुछ भी न बचा, जिसका कोई मूल्य है।

इसलिए तो महावीर ने परमात्मा को स्वीकार न किया। क्योकि परमात्मा को स्वीकार करने का तो अर्थ ही होता है, दूसरा महत्वपूर्ण बना ही रहेगा। वस्तुओ से छूटेगे, दुकान से छूटेगे तो मदिर महत्वपूर्ण हो जाएगा। धन से छूटेगे तो धर्म महत्वपूर्ण हो जाएगा। पद से छूटेगे तो परमात्मा का पद, परमपद, उसकी आकाक्षा पैदा हो जाएगी। लेकिन हर हालत मे दूसरा महत्वपूर्ण बना रहेगा। और महावीर का गहरा विश्लेषण यह है कि जब तक दूसरा है तब तक ससार है।

जब तुम अकेले हो—इतने अकेले कि तुम्हे अकेलेपन का पता भी नहीं चलता, अगर अकेलेपन का पता चलता हो तो दूसरा अभी मौजूद है। अकेलेपन का पता तभी चलता है जब दूसरे की याद आती है, जब दूसरे की आकांक्षा जगती है। दूसरे की कमी

मालूम होती है तो अकेलेपन का पता चला है। अगर दूसरा बिलकुल ही खो गया है, तुम्हे दूसरे की याद भी नही आती तो अकेलेपन का पता कैसे चलेगा? अकेलापन तब परम हो जाता है, पूर्ण हो जाता है। उसको महावीर ने 'कैवल्य' कहा है। वह अकेलेपन की परिपूर्णता है।

तुम इतने अकेले हो कि अकेलेपन का भी पता नही चलता। पता चलाने को तो दूसरे की थोडी-सी मौजूदगी चाहिए—छाया सही, स्मृति सही। अपने घर की तुम्हे दीवाल बनानी होती है, तो पड़ोसी चाहिए, पड़ोसी के बिना कहा तुम सीमा-रेखा खींचोगे? पडोसी न भी प्रवेश कर सके तुम्हारी भूमि मे तो भी पड़ोसी के बिना तुम अपनी भूमि किस भूमि को कहोगे? तो जहा तक अकेलेपन का पता चले वहा तक अकेलापन शुद्ध नही हुआ—दूसरा मौजूद है, किसी अधेरे कोने मे खडा है, दूर सही पर मौजूद है। उसकी भनक पडेगी, उसकी छाया होगी, प्रतिध्वनि होगी।

इसे समझना। आत्मवान तुम तभी हो सकोगे, जब दूसरे की छाया की भी जरूरत तुम्हारी परिभाषा के लिए न रह जाए। तभी तुम आत्मा हो जब तुम दूसरे से मुक्त हो।

अगर तुम्हे अपनी आत्मा की अनुभूति के लिए भी दूसरे का सहारा लेना पडता है तो वह अनुभूति भी निर्भर हो गई, वह अनुभूति भी सासारिक हो गई।

इसलिए आत्मा की गहनतम स्थिति मे 'मै' का भी पता न चलेगा, क्योकि 'मै' के लिए तो 'तू' का होना जरूरी है। 'तू' के बिना 'मै' का क्या अर्थ? कैसे कहोगे 'मै?' जब भी कहोगे 'मै', 'तू' आ जाएगा, 'तू' पीछे के दरवाजे से प्रवेश कर जाएगा।

इसलिए आत्मा का अर्थ अहकार मत समझना, अस्मिता मत समझना। आत्मा तो तभी परिपूर्ण होती है जब 'मै' का भी भाव विलीन हो जाता है। न कोई 'मै' बचता, क्योकि बच ही नही सकता—'तू' ही नही बचा। कोई पर नही बचता, तभी तुम शुद्ध होते हो, इतने अकेले होते हो कि तुम्ही पूरा आकाश—असीम—होते हो।

महावीर परम स्वार्थी है।

सभी धर्म अपनी पराकाष्ठा मे स्वार्थी होते है, क्योकि धर्म का बुनियादी आधार व्यक्ति है, समाज नही। यही तो राजनीति और धर्म का फर्क है। यही तो मार्क्स और महावीर का फर्क है। दूसरा महत्वपूर्ण है, तो समाज। मै अकेला भर महत्वपूर्ण हू, तो व्यक्ति। इससे तुम यह मत समझ लेना कि महावीर समाज विरोधी है। महावीर समाज से मुक्त है, विरोधी नही। और तुम इससे यह भी मत समझ लेना कि मार्क्स समाज का पक्षपाती है। समाज मे है, लेकिन समाज का पक्षपाती नही है। यह जरा जटिल है। विरोधाभास मालूम होगा।

इसे फिर से मै दोहरा दू। महावीर अपने स्वार्थ को इतनी गहनता से साधते है कि उनके स्वार्थ मे सबका स्वार्थ सध ही जाता है, उसको अलग से साधने कि जरूरत नही रह जाती। जहा महावीर विचरण करते है, वहा भी सुख की किरणे छिटकने लगती है। जहा वे मौजूद होते है, वहा भी आनद की लहरे बिखरने लगती है।

जो आनदित है, वह आनद की लहरे अपने चारो तरफ पैदा करता है। जो दुखी है, वह दुख की लहरे पैदा करता है। तुम दुखी हो, तो तुम लाख चाहो कि दूसरे को सुख दे दू, दोगे कहा से? लाओगे कहा से? अपने लिए न जुटा पाए, दूसरे को कहा दोगे? दूसरे को तो देने की सभावना तभी है, जब इतना हो तुम्हारे पास कि तुम्हारी समझ मे न आता हो कि क्या करे, जब इतना हो तुम्हारे पास, बाढ की तरह कि कूल-किनारो को तोड़कर बहा जाता हो, तुम इतने भरे हो आनद से कि न लुटाओगे तो करोगे क्या? बादल जब भर जाता है जल से, तो बरसता है। फूल जब भर जाता है गध से, तो गध को लुटाता है। दीया जब रोशनी से जगमगाता है, भरा होता है, तो रोशनी लुटाता है। करोगे क्या?

जो व्यक्ति आनद को उपलब्ध हुआ, वह एक आनदित समाज का आधार बनता है—लेकिन चेष्टा से नही—अनायास। सहज ही।

सोचकर नही, विचारकर नही। वह कोई समाजवादी थोड़े ही होता है। ऐसा घटता है। जब भीतर के केंद्र पर अहर्निश वर्षा होती है, तो बाढ आती है। अमृत बरसता है तो बाढ़ आती है। फिर बाढ आती है तो लुटना भी शुरू हो जाता है।

जो दूसरे को सुखी करने की चेष्टा मे लगा है, उस पर जरा गौर करना। तुमने भी दूसरे को सुखी करने की चेष्टा की है—कर पाए? कर इतना ही पाए कि उसे और दुखी कर दिया। पति

पत्नी को सुखी करने की चेष्टा कर रहा है। पत्नी से पूछो। पत्नी पति को सुखी करने की चेष्टा कर रही है। पति से पूछो। मा-बाप बेटे-बच्चो को सुखी करने की चेष्टा कर रहे है। बच्चो से पूछो। तुम चकित होओगे।

राजनेता समाज को सुखी करने की कोशिश कर रहे है। समाज से पूछो। राजनेताओ से मत पूछो। लोगो से पूछो। कौन किसको सुखी कर पा रहा है? सभी सभी को सुखी कर रहे है और ससार मे सिवाय दुख के कुछ भी दिखाई नही पड़ता। सभी, सभी को आनद देने की चेष्टा मे सलग्न है, मिलता है जो, उस पर तो खयाल करो। तुम्हारी अभिलाषा से थोड़े ही आनद बटेगा—होगा तो बटेगा। और होने की यात्रा तो निजी है—आत्मा की है।

तुम वही दे सकोगे जो तुम हो जाओगे। इसके पहले कि तुम दो, हो जाओ। क्योकि हम अपने को ही बाट सकते है, और तो कुछ बाटने को नहीं है। और अपने को भी हम तभी बाट सकते है, जब अनत हो जाए, नही तो कजूसी होगी, डर लगेगा कि बाटा तो कुछ कमी हो जाएगी, छोटे हो जाएगे।

तो जब तक तुम इतने आत्मवान न हो जाओ कि तुम्हारी आत्मा का कोई किनारा न हो, तुम तटहीन सागर न हो जाओ, तब तक तुम बाट न सकोगे, तब तक कृपणता जारी रहेगी। तो यह विरोधाभास खयाल रखना।

जो दूसरो की चिता करते ही नही, क्योकि चिता करना ही भूल गए है जो दूसरे को सुख देना ही नही चाहते, न देने का विचार करते है, क्योकि एक सत्य उनकी समझ मे आ गया है कि अपने पास जो नही है वह हम दे न सकेगे, जो अपने ही सुख को जन्माने की सतत साधना मे लगे है, क्योकि उन्हे पता चल गया है, जो अपने भीतर होगा, बढ़ेगा, बहेगा भी, बिखरेगा भी, फैलेगा भी, बटेगा भी, वह अपने से हो जाता है, उसका कोई हिसाब नहीं रखना होता—ऐसे सभी व्यक्तियो ने परम स्वार्थ की बात कही है।

मजहब यानी मतलब। धर्म यानी स्वार्थ। लेकिन स्वार्थ इतना महिमापूर्ण है कि परार्थ उसमे अपने-आप सध जाता है।

इसलिए तुम एक अनूठी बात देखोगे, महावीर के धर्म मे सेवा का कोई स्थान नही है। और अगर जैनियो के पास सेवा शब्द भी है, तो उसका अर्थ उनका बड़ा अनूठा है। जब वे जैन मुनि के दर्शन को जाते हैं तो वे कहते है, सेवा को जा रहे है। यह सेवा का बड़ा अनूठा अर्थ है। जिसको तुम्हारी सेवा की कोई भी जरूरत नहीं है, उसकी सेवा को जा रहे है। कोढ़ी को जरूरत है, बीमार को जरूरत है, दुखी को जरूरत है। इसलिए ईसाइयत का दावा ठीक मालूम पड़ता है कि पूरब मे पैदा हुए सभी धर्म स्वार्थी है, इनमे सेवा की कोई जगह नही है। न अस्पताल खोलने की उत्सुकता है, न स्कूल चलाने की उत्सुकता है। लोग आखे बद करके ध्यान कर रहे है—यह कैसा धर्म है।

ईसाइयत की बात मे सचाई है। पर बात बुनियादी रूप से भ्रात है। ईसाइयत धर्म न बन पायी, राजनीति रही, समाजशास्त्र रहा। सेवा तो ईसाइयत ने की, लेकिन जो सेवा करने गए उनके पास कुछ देने को न था। बाटने को तो गए, बड़ी शुभ-शुभ आकाक्षा थी। लेकिन कहते है, नर्क का रास्ता शुभाकाक्षाओ से पटा पड़ा है। गए तो सेवा करने, गर्दने काट दीं। ईसाइयत ने तलवारे उठा ली। ईसाइयत ने जितने लोग मारे, किसी ने नही मारे। जीसस ने तो कहा था, कोई चाटा मारे तो दूसरा गाल कर देना, लेकिन सेवा की धुन ऐसी चढ़ी कि अगर दूसरा सेवा करवाने को राजी न हो तो खतम करो उसे, सेवा करके ही रहेगे। सेवा सीढ़ी बन गई स्वर्ग चढ़ने की। दूसरे से प्रयोजन न रहा।

कभी-कभी मुझे डर लगता है। कभी ऐसी दुनिया होगी, न कोढी होगा, न अधा होगा, फिर ईसाइयत क्या करेगी? धर्म खतम। नही, खतम न होगा। वे अधे को पैदा करेगे, कोढ़ी को पैदा करेगे—सेवा तो करनी ही पडेगी, नही तो मोक्ष कैसे जाएगे। स्वर्ग कैसे जाएगे।

महावीर, बुद्ध, कृष्ण, किसी के धर्म मे सेवा की कोई जगह नही है। कारण? क्या इनके हृदय मे प्रेम पैदा न हुआ? क्या इनके भाव करुणा के न थे? थे। लेकिन उन्होने एक बडा गहरा सत्य जाना था कि तुम दूसरे को सुख देने की चेष्टा से सुख नही दे सकते—दुख ही दोगे।

ईसाइयत युद्ध लायी, दुख लायी। कौन सुखी हुआ। कपडे दिए होगे लोगो को, दवा भी दी होगी, लेकिन आत्माए खडित कर डाली। रोटी के सहारे, दवा के सहारे, लोगो के प्राण तोड़ डाले, उनके जीवन की दिशा भटका दी।

महावीर का धर्म कहता है तुम हो जाओ परिपूर्ण। तुम खिलो दीये की भाति। तुम बिखरो। फिर तुम्हारे जीवन मे होता रहेगा

सब जिससे दूसरे को लाभ होगा। मगर वह लाभ प्रयोजन नही है। वह लाभ लक्ष्य नही है। वह लाभ परिणाम है। वह सहज परिणाम है। अपने से होता है। सूरज निकलता है तो सोचता थोड़े ही है, रात हिसाब थोड़े ही लगाता है कि कितने फूल खिलाने है, कि कितने पौधो को प्राण देने है, कि कितने पक्षियो के कठ मे गीत बनाना है, कि कितने मोर नाचेगे, कि कितनी आखे प्रकाश से भरेगी। यह कोई हिसाब लगाता है। सूरज से पूछो तो शायद उसे पता भी न हो कि फूल भी खिलते है मेरे कारण, कि सोए हुए लोग जगते है मेरे कारण, कि पक्षी गीत गाने लगते है, कि भोर होती है मेरे कारण। उसे पता भी न होगा। यह स्वाभाविक, सहज परिणाम है। सूरज करता है, ऐसा नहीं, ऐसा सूरज की मौजूदगी मे होता है। सूरज तो केटालिटिक है। उसकी मौजूदगी काफी है।

जब भी कोई व्यक्ति महावीर जैसा स्वार्थ को उपलब्ध होता है—स्वार्थ यानी आत्मा को, जिस दिन कोई अपने मे रम जाता है—उसके आसपास बहुत पक्षी गीत गाते है। उसके आपपास बे-मौसम फूल खिल जाते है। उसके आसपास सोए हुओ की आखे खुल जाती है। उसके आसपास जन्मो-जन्मो से भटके हुए लोग मार्ग पर आ जाते है। कोई अनजाना तार खीचने लगता है।

लेकिन महावीर जैसा व्यक्ति कुछ करता नही, करने की भाषा ही भूल जाता है। होने की भाषा। होता है, करता नही। सेवा करता नही, सेवा होती है। यह कोई कृत्य नही है, यह उसकी भाव-दशा है।

इसलिए इस बात को याद रखना कि महावीर के लिए आत्मा से पार कुछ भी नहीं है। जो भी आत्मा के पार है, वह भटकानेवाला है। अपने से बाहर जिसने देखने की कोशिश की, वह ससार मे गया, अपने से भीतर जिसने देखने की कोशिश की, वह मोक्ष मे।

तो महावीर कहते है आत्मा की तीन दशाए है। एक बहिरात्मा, जिसको दूसरा दिखाई पड़ता है, जिसकी नजर दूसरे पर लगी है। फिर वह दूसरा कोई भी हो। धन हो कि पद हो, कि स्त्री हो कि पुरुष हो, कि परमात्मा हो, वह दूसरा कोई भी हो, बेशर्त, दूसरे पर आख लगी है, वह आदमी बहिरात्मा। इसलिए तुम जब मदिर जाते हो पूजा करने, तब महावीर तुमको बहिरात्मा कहेगे। पूजा करने और मदिर गए। नजर बाहर रखी। फूल-थाल सजाए। पूजा करने बाहर गए। मत्रोच्चार किए। उच्चार बाहर हुआ। तुम बहिरात्मा। कही सिर झुकाया, किन्हीं चरणो मे सिर रखा, लेकिन चरण बाहर थे, तो तुम बहिरात्मा। अभी तुम्हे भीतर आना होगा। अभी तुम आत्मा की सब से दीन दशा मे हो। आत्मा की दरिद्रतम अवस्था जो है, 'सर्वहारा', वह है बहिरात्मा—बाहर जाता हुआ व्यक्ति। जितना बाहर जाता है, उतना ही भीतर के स्वर दूर होते जाते है, भीतर का सगीत खोता चला जाता है। जितना बाहर जाता है, उतनी ही स्वभाव से जड़े उखड़ जाती है, उतना ही दुख, उतनी ही क्लाति, उतनी ही थकावट, उतनी ही ऊब, उतना ही जीवन भार, बोझिल हो जाता है।

दूसरी दशा, महावीर कहते है, समझो लौटो घर—अतरात्मा। जिसने दूसरे की तरफ पीठ कर ली, नजर अपनी तरफ कर ली। अभी जहा हम खडे है वहा दूसरे की तरफ नजर है, पीठ अपनी तरफ। हम अपनी ही तरफ पीठ किए हुए है—यह सासारिक की दशा है। धार्मिक की—उसने पीठ ससार की तरफ की, सन्मुख हुआ अपने, अपनी तरफ चला, अब ध्यान अपने पर है। इसी को महावीर 'सामायिक' कहते है। इसी को योग 'ध्यान' कहता है। अब अपनी तरफ लौटने लगे। फिर एक दिन जब पहुच गए, अपने मे पहुच गए, जिसके आगे जाने की कोई जगह न रही, ठहर गए उस बिदु पर जहा से चले थे, जो स्रोत था जीवन का, वर्तुल वहीं आकर पूरा हो गया—तो फिर अब अतरात्मा भी कहना ठीक नहीं। क्योकि अतरात्मा तो वह है जो अपनी तरफ नजर किए है। लेकिन अपने से अभी फासला है। मुड़ा है घर की तरफ, लेकिन घर अभी दूर है, रास्ता बीच मे है। फिर घर ही पहुच गया, तो अब तो अपने मे और अपनी नजर मे कोई फासला न रहा। अब तो स्वय का होना और स्वय को देखना एक ही हो गए। अब दो न रहे। अब तो डुबकी लग गई। इस अवस्था को महावीर कहते है परमात्मा।

परमात्मा महावीर के लिए अवस्था है—तुम्हारे अतर्तम की। दूसरो के लिए परमात्मा बाहर, कहीं स्वर्ग, कहीं आकाश मे बैठा है, महावीर के लिए अतर-आकाश मे।

महावीर ने बडी से बडी क्रातिकारी उदघोषणा की है कि तुम परमात्मा हो। जब तुम नही जानते हो तब भी हो। इससे क्या फर्क पड़ता है। जब तुम्हे पता नहीं है, तब भी हो। भेद सिर्फ पता

का है। महावीर ने मनुष्य को अतिम इकाई माना। मनुष्य की महिमा ऐसी किसी व्यक्ति ने कभी न गायी थी। मनुष्य के ऊपर कुछ न कुछ था।

चडीदास का बड़ा प्रसिद्ध वचन है

साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाई।

चडीदास ने जरूर महावीर से लिया होगा। या चडीदास के भीतर भी वैसी ही भाव-ऊर्मि उठी होगी, जैसी महावीर के भीतर। चडीदास कहते है साबार ऊपर मानुस सत्य, सब सत्यो के ऊपर मनुष्य का सत्य है, ताहार ऊपर नाई, उसके ऊपर कुछ भी नही।

इससे बडी और महिमा, इससे बडा गुणगान न हो सकता था।

महावीर ने परमात्मा को इनकार किया, ताकि आत्मा को परम पद दिया जा सके। क्योकि परमात्मा रहेगा तो आत्मा दोयम रहेगी, नबर दो रहेगी। परमात्मा रहेगा तो नजर दूसरे पर ही रहेगी। लाख उपाय करो, नजर अपने पर न आ पाएगी।

यही पूरब और पश्चिम की मनीषा का फर्क स्पष्ट होता है। नीत्से भी इसी तर्क के करीब पहुच गया था जहा महावीर पहुचे। सौ वर्ष पहले नीत्से भी करीब-करीब इसी घटना के आ गया, जहा उसे एक बात समझ मे आने लगी कि ईश्वर के रहते मनुष्य परिपूर्ण स्वतत्र न हो सकेगा। कोई ऊपर रहेगा। कोई नजर कौधती ही रहेगी। कोई जाचता ही रहेगा। कोई मालकियत जतलाता ही रहेगा। ठीक वहीं उसी बिदु पर जहा महावीर पहुचे, नीत्से भी पहुचा, लेकिन तब रास्ते अलग हो गए। महावीर तो विमुक्त हुए, नीत्से विक्षिप्त हुआ। क्या फर्क पड़ गया? नीत्से ने यह बात तो समझ ली कि परमात्मा नही होना चाहिए, लेकिन बात दूसरी न समझ पाया। यह तो निषेधात्मक अग हुआ कि परमात्मा न होना चाहिए। दूसरी बात न समझा कि अगर परमात्मा नहीं है तो अब आदमी को परमात्मा होना पड़ेगा। यह कोई स्वतत्रता ही नहीं है, जुम्मेवारी भी है। यह स्वच्छदता बन गई नीत्से के लिए। तो नीत्से ने कहा, 'गाड इज डैड। एड नाउ मैन इज फ्री टू डू व्हाट सो एवर ही वाट्स टू डू।'

'ईश्वर मर गया और अब आदमी स्वतत्र है, जो भी करना चाहे करे।'

यह स्वच्छदता बनी। ईश्वर की मृत्यु, आत्मा का पुनर्जन्म न बनी। इधर ईश्वर तो मरा, लेकिन उसकी मृत्यु के कारण आत्मा जगी नही, बल्कि आत्मा ने स्वच्छदता का मार्ग लिया। आत्मा ने कहा, फिर ठीक है, अब कोई मालिक नहीं है, तो अब जो मौज हो करे, तो अब तक जो-जो बधन थे, निषेध थे, तोड़े, तो अब तक जो-जो प्रतिबध थे, उन्हे उखाड़े, तो अब तक जो-जो करने से रोके गए थे, अब कर ही ले।

जैसे घर मे बाप मर जाए तो बेटे मे दो घटनाए घट सकती है—या तो वह नीत्से के रास्ते पर जा सकता है, या महावीर के। बाप मर जाए, तो निषेधात्मक तो यह होगा कि बाप ने जो-जो करने से रोका था—कि मत जाना शराबघर, मत जाना वेश्या के पास—अब कर लो। अब कोई रोकनेवाला न रहा। दूसरी घटना भी घट सकती है कि अब तक तो बाप रोकनेवाला था, अब वह भी न रहा, अब मुझे जागना पड़ेगा। अब जो काम बाप कर देता था, वह मुझे खुद ही करना पडेगा। तो अब तक तो डर था कि किसी दिन बाप की आज्ञा तोडकर पहुच भी जाता शराबघर, अब तो पहुचने का कोई उपाय न रहा, अब तो मेरी ही आज्ञा है, मै ही जानेवाला हू। तो अनुशासन पैदा होगा। जब भी बाप मरता है तो दोनो घटनाए सामने आती है। क्या तुम चुनोगे, तुम्हारा निर्णय है।

महावीर ने भी कहा कि कोई ईश्वर नही है। महावीर ने तो और भी गहरी बात कही है।

नीत्से ने तो कहा, मर चुका है। महावीर ने कहा, कभी था ही नही, मरने का कोई सवाल नही। कल्पना थी।

लेकिन वही से उन्होने सूत्र अपने हाथ मे ले लिया। उन्होने कहा, कोई परमात्मा नही है, इसलिए अब प्रत्येक को परमात्मा होना पड़ेगा। परमात्मा तो होना ही चाहिए, और कोई परमात्मा नहीं है। बिना परमात्मा के तो न चलेगा। तो अब जुम्मेवारी बड़ी है, गहन है, असीम है।

स्वतत्रता उत्तरदायित्व बनी।

इसलिए महावीर जैसा साधक खोजना बहुत मुश्किल है। क्योकि कोई सहारा भी नही है, जिसके चरणो मे बैठकर रो लेते, जिससे शिकायत-शिकवा कर लेते, जिससे कह देते कि तू क्यो नहीं उठा रहा है हमे, हम तो उठने को तैयार है, जिससे कह देते कि हम असहाय है, अब तू कुछ कर, हमारे किए कुछ भी नही होता, अब तू सम्हाल, अब कोई भी न रहा, अब बिलकुल अकेले है, अब नितात एकात है। इस एकात मे अपने को ही

उठाना है। इस एकात मे अपने को ही चलाना है। अपनी दिशा खोजनी है।

नीत्से अनाथ हुआ, विक्षिप्त हुआ। महावीर अनाथ होकर स्वय नाथ हो गये, स्वय भगवान हो गए।

जैनो का 'भगवान' शब्द हिदुओ के 'भगवान' शब्द से अलग अर्थ रखता है। ध्यान रखना, शब्द तो हम एक ही उपयोग करते है, लेकिन जब हमारी भाव-दशाए अलग होती है तो उनके अर्थ बदल जाते है। हिदुओ के भगवान का अर्थ होता है, जिसने सृष्टि की, जिसने सब बनाया। जैनो के भगवान का अर्थ होता है, जिसने अपने को जाना। जो जानकर परम महिमा से भर गया भगवान। भाग्यवान हो गया जो। जिस पर भाग्य की अतुल वर्षा हुई। जिसने अपने भाग्य को खोज लिया। जिसने अपनी नियति को खोज लिया। नही कि सृष्टि उसने बनाई, बल्कि जो अपना स्रष्टा हो गया। बड़ा फर्क है। इसलिए हिदु सदा पूछेगा कि भगवान क्यो कहते हो महावीर को, क्या इन्होने दुनिया बनाई? वह बात ही नही समझ रहा है। वह अपनी धारणा बीच मे ला रहा है।

महावीर कहते है, दुनिया तो कभी बनायी नही गयी, कोई बनानेवाला नहीं है। क्योकि बनाने की बात ही बचकानी है। भगवान बनाएगा तो फिर सवाल उठेगा, किसने उसे बनाया? यह तो बकवास कहीं रोकनी ही पड़ेगी। इसमे जाने मे कुछ सार नही है। है—अस्तित्व है—कोई स्रष्टा नही है। लेकिन अस्तित्व कोई अराजकता नहीं है, जैसा कि नीत्से ने कहा। कोई परमात्मा नही है, तो अस्तित्व अराजक है। कोई व्यवस्था नही है इसमे, तो फिर कर लो जो करना है। यह तो पागलपन है, कर लो जो करना है। यहा व्यर्थ समय मत गवाओ, भोग लो जो भोगना है। दौड़ जाओ इच्छाओ मे स्वच्छद होकर।

देखो, एक ही घटना को दो अलग व्यक्ति कैसे अलग लेते है। महावीर ने कहा, वहा कोई व्यवस्थापक नहीं है, इसलिए सम्हलो, नही तो पागल हो जाओगे। जागो। यहा कोई सूत्रधार नही है, तुम्हीं अकेले हो। अगर न जागे तो खो जाओगे, भटक जाओगे, यह अटल अधेरा है। ये गहन खाइया है। यहा कोई मार्गदर्शक नहीं है, कोई मार्ग-द्रष्टा नही है। कोई आगे चल नही रहा है, तुम अकेले हो। किन्ही झूठे सहारो पर भरोसा मत रखो। जिम्मेवारी अपने हाथ मे लो। तुम ही अपने मालिक हो।

'अप्पा कत्ता विकत्ता य'—तुम ही हो कर्ता, तुम ही हो भोक्ता। न कोई करनेवाला है, न कोई तुम्हे भुगा रहा है। परमात्मा कोई लीला नही कर रहा है, तुम ही कर रहे हो। यह खेल सब तुम्हारा है। अगर तुम दुखी हो तो तुम ही जुम्मेवार हो। अगर सुखी होना है तो तुम्हे सुख की नीवे रखनी पड़ेगी। और अगर सुख-दुख दोनो के पार जाना है, तो तुम्हे ही जाना पडेगा। यहा कोई नाव नही है, जिसमे बैठकर तुम उतर जाओ। तैरना होगा। प्रत्येक को अलग-अलग तैरना होगा। यहा कोई किसी को कधे पर बिठाकर नही ले जा सकता है।

महावीर ने जो द्वार खोला, वह विमुक्ति का द्वार बना।

नीत्से ने जो द्वार खोला, उसमे वह खुद ही पागल हो गया। द्वार एक ही था।

ध्यान रखना, जो भी मै तुमसे कह रहा हू, अगर तुम ठीक से न समझे तो बडी चूक हो जाएगी।

सत्य के साथ सबध बनाना आग के साथ खेलना है। अगर जरा भी चूके, कुछ और का कुछ और समझ लिये, तो विक्षिप्तता हाथ आती है। विमुक्ति तो दूर, जो थोड़ी-बहुत समझ-बूझ थी, वह भी खो जाती है।

अभी इसानो को मानूसे-जमी होना है
महरो महताब के ऐवान नही दरकार अभी।

महावीर ने कहा, पृथ्वी से तो परिचित हो लो। जीवन के सत्य से तो परिचित हो लो। चाद-तारो के सपने छोडो। यहा से परिचित हो लो। अपने तथ्य से परिचित हो लो। आकाशो की आकाक्षाए छोडो। स्वर्ग-नर्को के जाल छोडो।

अभी इसानो को मानूसे-जमी होना है

—पृथ्वी से परिचित होना है।

महरो महताब के ऐवान नही दरकार अभी।

—अभी इस उलझन मे मत उलझो कि चाद-तारो मे कौन निवास कर रहा है।

महावीर बड़े यथार्थवादी है, प्रैगमेटिक, व्यवहारवादी है। ठोस जमीन पर पैर रखने की उनकी आदत है। सपनो को हटा देते है, काट देते है।

तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारा सपना है। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारा परिपूरक सपना है। जिदगी मे जो तुम नहीं कर पाते, वह तुम परमात्मा के बहाने सपने मे करते हो। यहा तुम्हें जो नहीं

मिलता, वह स्वर्ग मे माग लेते हो। लेकिन तुम्हारा परमात्मा—तुम्हारा परमात्मा है। तुम गलत हो—तुम्हारा परमात्मा गलत होगा।

सोचो, विक्षिप्त आदमी का परमात्मा भी विक्षिप्त होगा। अधे आदमी का परमात्मा भी अधा होगा। क्योंकि जिसने खुद प्रकाश नहीं देखा, वह कल्पना भी नही कर सकता कि प्रकाश क्या है और प्रकाश को देखना क्या है और आखे क्या है।

बहरे आदमी का परमात्मा भी बहरा होगा। जिसने खुद ध्वनि नही सुनी कभी, वह कल्पना भी कैसे करेगा कि परमात्मा ध्वनि सुनता है, ध्वनि है क्या ?

तुम्हारा परमात्मा तुम्हारी प्रतिछवि है। मदिरो मे तुमने मूर्तिया नही बनाई है, दर्पण लगाए है। उन दर्पणो मे तुम अपने को ही देखकर अपने ही चरणो मे झुक जाते हो, घुटने टेककर अपने से ही बातचीत कर लेते हो। यह एकालाप है। यहा कोई उत्तर देनेवाला भी नही है। तुम जो चाहते हो, वही अपने को मना लेते हो, वही उत्तर अपने को समझा लेते हो। और इस तरह जीवन के क्षण व्यर्थ जाते है।

महावीर कहते है, हाथ मे लो बागडोर अपनी। बहुत भटक चुके दूसरो के द्वारो पर। बहुत हाथ फैलाए भिक्षा के, अब मालिक बनो। उत्तरदायित्व लो। यह बचकानापन छोड़ो। इस बचपन के बाहर आओ, प्रौढ बनो।

'आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है।'

इससे मन मे बड़ी पीड़ा होती है। इसलिए तो महावीर को बहुत अनुयायी न मिले। मन हमारा मानता है कि सुख के तो हो भी सकते है कि हमने निर्माण किया हो, लेकिन दुख, वह तो दूसरो ने किया है। जब भी तुम दुखी होते हो, तुम तत्क्षण आसपास कारण खोजने लगते हो कौन दुखी कर रहा है ? पति दुखी होता है तो सोचता है, पत्नी दुखी कर रही है। बाप दुखी होता है तो सोचता है, बेटे दुखी कर रहे है, तुम जरूर कोई न कोई बहाना खोजने लगते हो कौन दुखी कर रहा है ? क्योकि दुख जब आ रहा है तो कोई न कोई दुखी कर रहा होगा। और यह तो तुम मान ही नहीं सकते कि मै अपने को दुखी कर रहा हू, क्योकि यह बात तो बड़ी मूढ़ता की होगी। जब तुम दुखी नही होना चाहते तो क्यो कर रहे हो ? जरूर कोई और कर रहा है, मै तो कभी दुखी होना ही नही चाहता। इसलिए मै क्यो करूगा। यह तो सीधा तर्क मालूम होता है। कौन दुखी होना चाहता है। साफ है कि कोई और शरारत कर रहा है।

जब तुम्हे प्रत्यक्ष कोई कारण न मिल पाए तो तुम अप्रत्यक्ष कारण खोजते हो—समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति। अगर वहा भी कोई निमित्त न मिल पाए, तो भाग्य विडबना, विधि, भगवान। मगर कोई, तुम नही। यह मन का जाल है। मन तुम्हे एक सत्य देखने से अपरिचित रख रहा है कि तुम ही हो अपने दुख के कारण।

कोई मर गया—ऐसा उदाहरण ले—जिसमे साफ ही दूसरा दुख का कारण मालूम होता हो। पत्नी मर गई। अब तो साफ है कि पत्नी न मरती तो पति दुखी न होता। इसलिए पत्नी मरकर दुखी कर गई। यह भी कैसा वक्त चुना। यह कोई समय था, अभी तो जवान थी। अभी तो विवाह करके, अभी तो फेरे रचाकर लाये थे। तो पति रो रहा है।

इसको कैसे समझाओ कि दुख के कारण तुम ही हो ? वह तो कहेगा, यह तो बात साफ ही है कि पत्नी न मरती तो मै सुखी था, पत्नी मर गई, इसलिए दुखी हू।

महावीर कहते है, पत्नी का मरना तो निमित्त है। तुम मृत्यु को स्वीकार नही कर पाते, वहा से दुख आ रहा है। जीवन मे मृत्यु तो होगी ही। जन्म है तो मौत है। जन्म के साथ ही मौत हो गई है। थोड़े समय की बात है। जन्म के साथ ही घटना घटनी शुरू हो गई। थोड़ा समय लगेगा और घटना पूरी हो जाएगी। मरना जन्म के साथ ही शुरू हो गया। तुम जन्म के साथ मृत्यु को स्वीकार नही कर पाते हो, वहा तुम्हारे अस्वीकार मे दुख है।

फिर, महावीर कहेगे, यह स्त्री तुम्हारी पत्नी न होती, और मर जाती, तो तुम दुखी होते ? तुम कहोगे, फिर मै क्यो दुखी होता ? इतनी स्त्रिया मरती रहती है। ऐसे अगर हर स्त्री के लिए दुखी होने बैठू तो फिर सुखी होने का मौका ही न आएगा, फिर तो कोई न कोई मरेगा, और रो रहे है, कोई न कोई मरेगा, रो रहे है। अर्थी तो रोज ही उठती है। कितनी स्त्रिया दुनिया मे मरती है रोज। अब इसका कहा हिसाब रखेगे, नही तो मर गए।

नही, तो महावीर कहते है, यह तुम्हारी पत्नी, यह 'मेरी' है, उस 'मेरे' मे से दुख आ रहा है। यही पत्नी किसी और की होती, मर जाती, तुम्हे कुछ भी न होता, कोई रेखा भी न खिचती। तो पत्नी 'मेरी' है, इस 'मेरे' मे से दुख आ रहा है।

फिर, तुम्हारा खयाल है कि यह पत्नी तुम्हारे सुख का आधार थी। यह भी तुम्हारा खयाल है। क्योंकि सुखी आदमी को कोई सुख का आधार नहीं चाहिए। सुख भीतर से उमगता है। और दुखी आदमी कितने ही आधार खोज ले, सुखी नही हो पाता। तो पत्नी तो तुम्हारे सुख का आधार न थी। तुम्हारी कल्पना का, तुम्हारी भावना का, तुम्हारी वासना का—भला पर्दे की तरह काम किया हो पत्नी ने तुम्हारी अपनी वासना को फैलने के लिए, पत्नी ने तुम्हे मौका दिया हो कि फैला लो अपनी वासना को मेरे ऊपर, लेकिन तुम्हारे सुख और दुख, तुम्हारे भीतर से उमगते है।

आदमी को कठिनाई है यह बात मानने मे। आदमी चाहता है, कोई और जुम्मेवार हो। कोई भी हो जुम्मेवार, कोई और जुम्मेवार हो। इतिहास हो जुम्मेवार चलेगा।

पश्चिम मे जितने विचार पैदा हुए, उन सब मे कोई और जुम्मेवार है।

ईसाइयत कहती है, अदम और ईव को शैतान ने भड़काया और शैतान ने कहा कि खा लो यह ज्ञान के वृक्ष का फल। उसने उकसाया। भोले-भाले अदम और ईव उसकी बातो मे आ गए। शैतान जुम्मेवार है। लेकिन कोई शैतान से पूछो। शैतान तो अब तक कुछ भी बोला नही है। नही तो शैतान भी कुछ जुम्मेवारी बताएगा, किसी और पर टालेगा।

अदम कहता है, ईव ने फुसलाया मुझे। अब पत्नी है, इसकी बातो मे कौन नही आ जाए, आ ही गए। ईव कहती है, मैं क्या करू, शैतान साप की शकल मे आया और मुझे फुसलाया। साप बेचारा मौन है, उसके पास जबान नहीं, नही तो वह भी कहता कि किसने मुझे फुसलाया, शैतान ने मुझे फुसलाया। लेकिन कही न कहीं बात सरकती जाती। और यह कहानी कहानी नही रही है, यह पूरे पश्चिम के इतिहास पर फैली है। हीगल कहता है, इतिहास जुम्मेवार है, जो भी दुख हो रहा है उसके लिए। मार्क्स कहता है, अर्थव्यवस्था जुम्मेवार है। फ्रायड कहता है, गलत सस्कार जुम्मेवार है। मा-बाप ने जो व्यवहार किया है बच्चो के साथ, वह जुम्मेवार है। लेकिन कोई न कोई जुम्मेवार है।

अभी पश्चिम का मनोविज्ञान इतना प्रौढ़ नही हुआ कि कह सके कि तुम जुम्मेवार हो। इसके लिए बड़ी हिम्मत चाहिए, बड़ी प्रौढ़ता चाहिए। ये बचकानी बाते कि कोई और जुम्मेवार है, अपने उत्तरदायित्व को टालने की बाते है।

महावीर, पतजलि, बुद्ध इस प्रौढ़ता को उपलब्ध हुए कि उन्होने कहा कि छोड़ो बकवास, तुम जुम्मेवार हो। और ये बहाने तुम जो खोजते हो दूसरो पर टालने के, इनसे कुछ राहत नही मिलती, इनसे सिर्फ धोखा पैदा होता है। इनसे ऐसा लगता है, अब हम करे क्या, दूसरो ने किया है, हमारे किए क्या होगा। निराशा पैदा होती है। गुलामी पैदा होती है। और एक गहन हताशा पैदा होती है। अब करेगे क्या? अब इतिहास को बदलने का तो कोई उपाय नही। अब अर्थव्यवस्था तो आज बदलेगी नही, बदलने मे बदलनेवाले तो मर ही जाएगे। जिन्होने रूस मे क्राति लायी, वे तो मर चुके, और जो आज जिदा है, वे तड़फ रहे है। वे परतत्रता से दबे है। लेनिन सोचकर मरा होगा कि हम बड़ा भारी काम करके जा रहे है। लेकिन जो आज उनके बच्चे है, वे आज परतत्रता से दबे है, वे स्वतत्र होने के लिए छटपटाते है। सोल्जेनित्सिन से पूछो। कारागृहो मे पडे है।

लेनिन ने तो सोचा था कि बड़ा सुदर समाज निर्मित होगा, लेकिन वह हुआ नही। वह कभी होनेवाला नही, क्योकि बुनियादी बात गलत है। दूसरा जुम्मेवार है, जिस शास्त्र का यह आधार है, वह शास्त्र गलत है।

फ्रायड ज्यादा ईमानदार है इस हिसाब से। फ्रायड ने अपने जीवन के अतिम दिनो मे लिखा कि आदमी कभी सुखी नही हो सकता। हो ही नही सकता। यह असभव है। क्योकि इतने कारण है आदमी के दुखी होने के, उन कारणो को कब बदला जा सकेगा, कौन बदलेगा, कैसे बदलेगा? असभव है। जाल बहुत बड़ा है, आदमी बहुत छोटा है।

फ्रायड की हताशा देखते हो—जीवन भर की चेष्टा, खोज के बाद जब कोई आदमी कहता है कि आदमी कभी सुखी न हो सकेगा, सुख सिर्फ कल्पना है, भुलावा है, आदमी दुखी ही रहेगा ।

लेकिन महावीर, बुद्ध, पतजलि कहते है आदमी परम आनद को उपलब्ध हो सकता है। पर उसके पहले एक बहुत जरूरी बात समझ लेनी जरूरी है—वह यह कि मै जुम्मेवार हू। टालो मत, हटाओ मत। तथ्य को स्वीकार करो। क्योकि अगर मै जुम्मेवार हूं अपने दुख का, तो मेरे हाथ मे बागडोर आ गई, अब मै वे काम बद कर दू जिनसे दुख पैदा होता है, वे बीज बोना बद

कर दू जिनसे कड़वे फल आते है, उस फसल को जला डालू, निर्जरा करू उन कर्मों की जिनके कारण मै दुखी हो रहा हू।

'आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है और विकर्ता, भोक्ता। सत्प्रवृत्ति मे स्थित आत्मा अपना ही मित्र है।'

महावीर कहते है, न तो तुम्हारा मित्र तुम्हारे बाहर है, न तुम्हारा शत्रु। जब तुम सत्प्रवृत्ति मे हो क्या है सत्प्रवृत्ति ? जब तुम जागे हुए, शात, आनद-मग्न, निर्दोष भाव से ध्यानस्थ हो, सम्यक हो, सतुलित हो, तब तुम सत्प्रवृत्ति मे हो। तब तुम मित्र हो। दुष्प्रवृत्ति मे तुम ही अपने शत्रु हो। कोई तुम्हारा शत्रु नही। इसलिए किसी और से मत लड़ना। लड़ना है तो अपने से। जीतना है तो अपने को। बदलना है तो अपने को। होना है तो स्वय मे। सारा खेल तुम्हारे भीतर है।

'अविजित एक अपना आत्मा ही शत्रु है।'

अविजित, जो जीता नही गया, ऐसा अपना आत्मा ही शत्रु है।

एगप्पा अजिए सत्तु, कसाया इन्दियाणि य।
ते जिणित्तु जहानाय, विहरामि अह मुणी।।

'अविजित कसाय और इद्रिया ही शत्रु है। हे मुने। मै उन्हे जीतकर यथान्याय, धर्मानुसार विचरण करता हू।'

महावीर कहते है, जब तक तुम्हारी इद्रिया तुम्हारे बस मे नहीं, तुम्हे चलाती है और तुम उनके पीछे चलते हो, तब तक दुख होगा। होगा ही। अधे का सहारा लेकर जो चलेगा, वह गड्ढे मे गिरेगा। इद्रियो के पास कोई आख थोडे ही है। इद्रियो के पास कोई बोध थोड़े ही है। तुम्हारी जीभ कहती है, खाए जाओ। जीभ के पास बोध थोडे ही है, सिर्फ स्वाद है। कब रुकना है, कितना खाना है, कब नही खाना है, कब बिना खाए गुजार देना है, कब पेट भर गया, कब पेट खाली है। कब जरूरत है, कब जरूरत नहीं है—जीभ कैसे कहेगी ? जीभ के पास कोई बोध थोडे ही है। वह बोध तो तुम्हारे पास है। बोध को तो तुमने रख दिया है बाधकर एक तरफ। जीभ की मानकर चलते हो, उलझन होगी, अड़चन होगी।

जननेद्रिय के पास कोई बोध थोड़े ही है। जननेद्रिय की उत्तेजना अगर तुम्हे वासना मे ले जाती है, तो तुम अधे का हाथ पकड़कर चल रहे हो। अधो का हाथ पकडकर चलनेवाले गड्ढो मे गिरेगे।

सोचो। बोध तुम्हारे पास है। तो तुम घोड़े की मानकर मत चलो। लगाम हाथ मे रखो। घोड़ा बुरा नहीं है, शुभ है—लगाम तुम्हारे हाथ मे होनी चाहिए। लेकिन अकसर, लोग इतनी झझट नहीं लेते, क्योकि घोड़े को सिखाना पड़ेगा।

मैने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने गधे पर बैठकर कही जा रहा था। बड़े जोर से भागा जा रहा था। किसी ने पूछा, कहा जा रहे हो ? उसने कहा, गधे से पूछो। क्योकि मैने तो यह आशा ही छोड़ दी कि इसको चलाना सभव है। झझट खड़ी होती है। बीच बाजार मे फजीहत होती है। कई दफे इसको चलाने की कोशिश कर चुका—गधा है। मै कहता हू, बाए चल, वह दाए जा रहा है। बीच बाजार मे भीड़ लग जाती है, आखिर मे मुझे हारना पड़ता है। इससे मैने फिर एक तरकीब निकाल ली यह जहा जाता है वही हम जाते है। अब कम से कम फजीहत तो नही होती। कोई यह तो नहीं कह सकता कि गधा मेरी मानता नही। हालाकि मै जानता हू कि वह मानता नहीं है, वह अपनी तरफ से जाता है।

गधे की अपनी यात्रा है।

बहुत लोग ऐसी ही दशा मे है—अधिक लोग। जहा इद्रिया जाती है, तुम चले जाते हो, क्योकि कौन फजीहत करे, कौन झगड़ा-झासा करे। अगर इद्रियो को वहा ले जाना है जहा तुम्हे जाना है, तो बड़ा सयम चाहिए पड़ेगा, बडा अनुशासन, बड़ा प्रशिक्षण। इच-इच इद्रिया लड़ेगी। क्योकि कौन अपनी मालकियत इतनी आसानी से खोता है। इद्रिया जन्मो-जन्मो तक मालिक रही। गधे ने जन्मो-जन्मो तक तुम्हारी यात्रा तय की है। आज अचानक तुम कहने लगे कि मेरी मानकर चलो। गधा कहेगा, सोचो भी, क्या कह रहे हो ? किससे कह रहे हो ? होश है कुछ ? जो सदा से होता आया है, वही होगा। जद्दोजहद होगी। गधा सघर्ष देगा। इद्रिया लड़ेगी। लेकिन अगर तुम इद्रियो की मानकर चलने लगे, इसलिए कि कौन सघर्ष करे, तो तुम्हारी आत्मा कभी पैदा न हो पाएगी।

इसलिए मै कहता हू, महावीर का मार्ग सघर्ष का, सकल्प का, योद्धा का। इसीलिए तो उनको हमने महावीर कहा। साधारण वीर भी नहीं कहा, महावीर कहा। यह उनका नाम नही है, यह तो लोगो ने उनके सघर्ष को देखा। उनके दुर्धर्ष सघर्ष को देखा। उनके योद्धा के भाव को देखा। देखा कि उन्होने किसी चीज की कभी चिता न की, सघर्ष कितना ही लबा हो, लेकिन जब तक विजय निश्चित न होगी, तब तक वे रुके नही, तब तक वे लडते

ही रहे।

और एक बार जब इंद्रिया तुम्हारे वश मे आ जाती है, तो तुम्हारे जीवन मे एक प्रसाद पैदा होता है, एक सौंदर्य पैदा होता है—मालिक का सौंदर्य, सम्राट का सौंदर्य। तभी तो हमने फकीरो को पूजा और सम्राटो की फिक्र छोड़ दी। कौन जानता है आज, महावीर के समय मे कौन-कौन सम्राट थे? प्रसेनजित को कौन जानता है? बिंबिसार को कौन जानता है? अगर हम उनका नाम भी जानते है तो इसीलिए कि महावीर के जीवन मे कही-कही उनका उल्लेख है। कौन फिक्र करता है उनकी? चूकि बिंबिसार महावीर से मिलने आया था, इसलिए उसकी भी याद है, कि प्रसेनजित नमस्कार करने आया था, इसलिए उसकी भी याद है। जो नही आए, उनके तो नाम भी खो गए। क्या हुआ? फकीर इतने मूल्यवान कैसे हो गए? यह नगा आदमी, जिसके पास कुछ भी न था—जरूर इसके पास कुछ रहा होगा कि सम्राट फीके हो गए। एक दुर्धर्ष बल था। इसने चुनौती स्वीकार की थी। यह हारा नहीं, इसने अपने पुरुषत्व को सिद्ध किया था। इसने अपनी मालकियत की घोषणा कर दी थी। कुछ भी हो जाए, इसने एक बात जारी रखी कि मालिक मै हू।

होश मालिक है। और होश के अनुसार सब चलना चाहिए। यह बिलकुल ठीक गणित है जीवन का।

अमीरे-दो जहा बन जा, असीरे-खारो-खस कब तक?
नई सूरत से तरतीबे-बिनाए-आशिया कर ले।
—दो दुनियाओ के तुम मालिक बन सकते हो।
अमीरे-दो जहा बन जा, असीरे-खारो-खस कब तक?
—यह काटो मे, झाड़ियो मे कब तक उलझे रहना?

नई सूरत से तरतीबे-बिनाए-आशिया कर ले। लेकिन फिर तुम्हे एक नई दृष्टि और एक नई शैली खोजनी होगी—अपने घर को बनाने की। नई सूरत से तरतीबे-बिनाए-आशिया कर ले—फिर तुम्हें अपना नीड़ कुछ और ढग से बनाना होगा। अभी तुमने जो बनाया है, वह गलत है। इसमे गुलाम मालिक हो गया है, मालिक गुलाम हो गया है। इसमे नौकर सिंहासन पर बैठ गए है, सम्राट सोया है। उसे पता ही नही कि क्या हो रहा है। सम्राट को जगाना होगा।

सम्राट यानी तुम्हारा विवेक। जैसे ही विवेक जगता है उसके साथ-साथ वैराग्य की व्यवस्था आती है। विवेक सो जाता है, उसके साथ ही साथ राग का अधापन आता है। राग से मत लड़ो विवेक को जगाओ। जैसे-जैसे विवेक जगेगा—असली लड़ाई वही है, विवेक को जगाने की।

मुल्ला नसरुद्दीन चोरो से डरता है। नए मकान, नए पड़ोस मे रहने गया, तो एक कुत्ता खरीद लाया—उसने कहा बड़े से बड़ा कुत्ता जो मिल सकता था, मजबूत से मजबूत। दुकानदार से पूछा कि 'यह काम आएगा?' उसने कहा, 'काम से ज्यादा देखते हो इसको। सम्हालकर रहना। यह खतरनाक है।' लेकिन जिस दिन कुत्ता खरीदकर लाया, उसी रात चोरी हो गई। बड़ा परेशान हुआ। वापिस भागा हुआ दुकानदार के पास पहुचा कि यह क्या मामला है। उसने कहा कि इसमे क्या मामला है। यह कुत्ता इतना बडा है, इसको जगाने के लिए एक छोटा कुत्ता भी चाहिए। यह सोया रहा, इसको चोर-वोर यह कोई छोटा-मोटा कुत्ता है। एक छोटा कुत्ता और खरीदो। वह घबड़ाहट मे चीखेगा, चिल्लाएगा तो यह उठेगा, नही तो यह उठनेवाला भी नही है।

वह तुम्हारे भीतर का जो मालिक है, कितने जन्मो से घर्राटे ले रहा है, सो रहा है। साधना कुछ भी नही है, छोटे-छोटे उपाय है जिनसे वह सोया हुआ मालिक जगने लगे। इस भाति अगर तुम साधना को देखोगे तो बडे नए अर्थ खुलेगे।

महावीर ने महीनो तक उपवास किए है। वह कुछ भी नही, वह छोटा कुत्ता खरीदना है। उपवास मे जब तुम्हे भूख लगेगी, और तुम शरीर की न सुनोगे और शरीर कहेगा, भूख लगी, भूख लगी, भूख लगी और तुम शरीर की न सुनोगे, तो भूख धीरे-धीरे शरीर से उतरकर मन पर आएगी। फिर भी तुम न सुनोगे। मन चीखेगा, चिल्लाएगा, रोएगा, गिडगिडाएगा, हजार उपाय करेगा, समझाएगा कि मर जाओगे, ऐसे भूखे रहे तो क्या होगा तुम्हारा, यह शरीर जीर्ण-शीर्ण हुआ जाता है—तब भी तुम न सुनोगे तो भूख आत्मा तक पहुच जाएगी। और जब भूख आत्मा तक पहुचती है तो आत्मा जगती है। तुम शरीर को ही तृप्त कर देते हो, भूख मन तक ही नही पहुच पाती, आत्मा तक पहुचने का क्या सवाल है? यह तो चुभाना है तीर का—उस सीमा तक जहा तुम्हारा असली मालिक सोया है।

तो महावीर खडे ही खड़े साधना करते थे, बैठते नही थे, लेटते नही थे। क्योकि वैसे ही नीद गहरी है और अब बैठकर और

लेटकर, क्या उसे और गहरी करनी है? तो महावीर खड़े ही खडे साधना किये है, ताकि जागरण बना रहे। शरीर थक जाता है। एक घड़ी आती है, शरीर कहता है, अब बैठो, अब विश्राम करो। और महावीर कहते, 'छोड़ बकवास। हो गया बहुत विश्राम। अब नही करना विश्राम।' खड़े ही रहते, खड़े ही रहते, तब थकान मन मे उतरती। मन कहता, अब यह बहुत हो गया, अब तो गिर जाओगे। महावीर कहते कि सुनना नहीं है। जब तक कि भीतर की चेतना खडी न हो जाए, वे नहीं सुनते। धीरे-धीरे थकान वहा तक पहुच जाती है—उस गहरे तल तक कि आत्मा भी झिझककर खड़ी हो जाती है। क्योकि यह तो घड़ी मरने की आ गई।

महावीर ने हजार तरह से मौत की घड़ी को अपने पास लाए, क्योकि मौत की घड़ी ही जगा सकती है। जीवन तो जगा न पाया, जीवन ने तो खूब सुला दिया।

मौत का भी इलाज हो शायद,
जिदगी का कोई इलाज नही।

यह जिदगी तो बहुत सुला गई। यह जिदगी तो बहुत जिदगी सिद्ध न हुई, साथी-सगी सिद्ध न हुई। यह तो मूर्च्छित कर गई, बेहोश कर गई। तो महावीर ने मौत का उपयोग किया—जगाने के लिए। भूखे, प्यासे—खड़े रहे।

एक गाव मे खड़े थे गाव के बाहर। मौन लिये हुए थे। एक गडरिया कह गया कि ये जरा मेरी गायो को देखते रहना, मै अभी आया। वे तो कुछ बोलते न थे, इसलिए कुछ बोले नहीं। और वह जल्दी मे था, इसलिए उसने कुछ फिक्र भी न की। उसने समझा मौन सम्मति लक्षणम्। खड़ा है फकीर, देख लेगा। वह लौटकर आया, गाये तो सरक गई, इधर-उधर हो गई, जगल मे चली गई। वह बड़ा नाराज हुआ। वह चिल्लाया कि क्या हुआ, मेरी गाये कहा गई? तुम खड़े-खडे यहा क्या कर रहे हो? जरा रोक लेते, तुम्हारा क्या बिगड़ जाता? लेकिन उसने देखा, यह आदमी तो खड़ा ही है, यह तो बोलता ही नहीं, आख भी नहीं झपकता। जैसे इसने सुना ही नहीं। उसने कहा, क्या बहरे हो? मगर वह तब भी कुछ न बोला। तो यह सोचकर कि बहरा ही है, वह बेचारा भागा कि इससे फिजूल समय खराब करने मे कोई सार नहीं है। पागल है, या बहरा है, या क्या मामला है। आख भी नहीं झपकता। देखता ही चला जाता है। और देखता भी ऐसे है, जैसे देखता ही नहीं है। सुनता भी नहीं। हिलाया-डुलाया भी, लेकिन ओठ न हिले। उसने यह भी न कहा कि मै बहरा हू।

वह भागा। खोज-खोजकर जगल मे भटकता रहा, साझ होते-होते लौटा तो देखा कि गाये आकर महावीर के पास बैठी है। अरे। उसने कहा, यह तो बड़ा चालबाज है। होशियार है। कही छिपा रखा था, अब भागने की तैयारी कर रहा था। देखता था कि सूरज ढले, अधेरा हो जाए—ले भागे। उसने कहा कि इसने तो बडी चालबाजी की। इसलिए बना हुआ खड़ा है। वह क्रोध मे आ गया। उसने कहा, मै देखता हू, तेरा यह बहरापन नकली है। अब मै तुझे असली बहरा बनाए देता हू।

उसने दो लकड़ी की खूटिया दोनो कानो मे ठोक दी। महावीर खड़े रहे, तब भी कुछ न बोले।

कहानी बड़ी प्रीतिकर है। अब इतनी प्रीतिकर कहानिया घटती नही, क्योकि लोग काव्य की भाषा भूल गए है, गणित का गदा हिसाब सीख गए है।

कहानी बड़ी महत्वपूर्ण है। इद्र घबडा गया। देवता घबडा गए। क्योकि ऐसा देवपुरुष मुश्किल से होता है। वे भागे हुए आए और उन्होने कहा, 'आप हमे आज्ञा दे। आप बडे असुरक्षित है। ऐसे तो कोई भी मार डालेगा। हम साथ रहेगे। हम सुरक्षा रखेगे। यह दुबारा नही होना चाहिए।'

महावीर बोलते तो नही थे, लेकिन यह तो अतर की बात है, बाहर से तो कुछ कहा नही था, न बाहर से कुछ सुना गया था। महावीर ने भीतर से कहा कि जो हुआ है, ठीक हुआ है। यह तो देखो कि मुझे कितनी जाग मिली है। तुम यही देख रहे हो कि कान मे खीले ठोक दिए। कान तो जाते ही, आज नही कल अर्थी पर चढ़ते ही, जल ही जाते, टूट ही जाते, इनका क्या लेना-देना है। मिट्टी मिट्टी मे मिलती। तुम यह तो देखो, कितनी जाग दे गया वह आदमी। जब वह खीले ठोक रहा था, तब शरीर ने पूरी चेष्टा की थी कि बोल, रोक, लेकिन उस समय मै सयम साधे रहा। मैने कहा, 'क्या बोलना है? क्या रोकना है? जो मिटेगा वह मिट रहा है। जो कल मिटेगा, वह आज मिट रहा है। जो जलेगा अग्नि मे उसको बचाना क्या है? कौन बचा पाया है? इधर कान मे खीले ठुकते गए, वहा भीतर कोई जागने लगा। मै शरीर से अलग हो गया। उसकी कृपा बड़ी है। वह बड़ी दया कर गया है। सहायता करनी हो, उसकी करो, क्योकि वह मुझे

जगा गया है—जो मुझसे नही हो पाता था, वह कर गया है।'

बड़ा दुर्धर्ष योद्धा का रूप है महावीर का। सघर्ष उनका सूत्र है।

'अविजित एक अपना आत्मा ही शत्रु है। अविजित कसाय और इद्रिया ही शत्रु है। हे मुने। मै उन्हे जीतकर यथान्याय विचरण करता हू।'

यह वचन बड़ा बहुमूल्य है।

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इदियाणि य।

ते जिणित्तु जहानाय, विहरामि अह मुणी।।

उन्हे जीतकर मै उस परम धर्म के अनुसार आचरण करता हू।

इससे बड़ी गलती होती है। क्योकि अनुवाद या मूल भी गलत समझा जा सकता है। 'यथान्याय' धर्मानुसार विचरण करता हू तो अनुयायियो ने समझा कि धर्म के अनुसार विचरण करने से, यथान्याय आदमी विजेता हो जाता है। लेकिन महावीर बिलकुल उलटी बात कह रहे है। वे कह रहे है, 'हे मुने। मै उन्हे जीतकर ।' जीतना पहले है। जागना पहले है। ' यथान्याय धर्मानुसार आचरण करता हू।' जाग गया हू, अब धर्मानुसार आचरण हो रहा है। धर्म यानी स्वभाव। धर्म यानी विवेक जाग्रत, सुप्रतिष्ठित, तुम्हारी भीतर की ज्योति जलती हुई, तुम्हारा दीया बुझा हुआ नहीं, जलता हुआ, तुम्हारे प्राण चमकते हुए। फिर स्वभावत आचरण धर्म का होता है। फिर तुम जो भी करते हो वही नीति है। फिर तुम जो भी करते हो वही न्याय है। फिर तुम जो भी करते हो वही शुभ है।

ध्यान रखना, शुभ को साधने की चेष्टा नही की जा सकती। जागरण के साथ शुभ के फूल खिलते है।

एक ट्रेन मे एक आदमी ने पूछा कि क्या मै यहा सिगरेट पी सकता हू। जिस रेलवे कर्मचारी से पूछा था, उसने कहा, 'जी नहीं। यहा सिगरेट पीना सख्त मना है।'

'तो फिर यह सिगरेट के टुकड़े किसके पड़े है?' उस आदमी ने कहा।

'यह उन लोगो के है जो इजाजत नहीं मागते।'

यहां जो जिदगी है, इसमे मै अकसर देखता हू, लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते है, 'हम ईमानदार है, फिर भी जीवन मे कोई सुख नही, और बेईमान फल-फूल रहे है। ये भी बेईमान है। मगर ये इजाजत मागकर फस गए है। पीना तो ये भी चाहते थे। लेकिन इजाजत मागने मे उलझ गए। फिर जब 'नही' कह दिया गया तो ये हिम्मत न जुटा सके करने की। इन्होने शास्त्रो के आदेश सुन लिये, शास्ताओ की आवाज सुन ली। इन्होने मुनियो के वचन सुन लिये, सदगुरुओ की बात सुन ली। पूछ बैठे। अब तोड़े तो अपराध लगता है मन मे, न तोड़े तो पीड़ा होती है। और ये देखते है, दूसरे पीए जा रहे है। उन्होने पूछने की ही फिक्र न की।

अगर तुम धार्मिक जीवन जी रहे हो, तो तुम्हारे मन मे यह सवाल कभी भी न उठेगा कि अधार्मिक मजे मे है और मै दुख मे हू। अगर यह सवाल उठता है तो इसका अर्थ है कि तुम्हारा धार्मिक जीवन झूठा-झूठा, उच्छिष्ट, उधार, बासा। तुमने नियम पकडे है, बोध नहीं पकडा, अन्यथा यह असभव है कि धार्मिक आदमी और आनद मे न हो। मै यह नहीं कह रहा हू कि धार्मिक आदमी को महल मिल जाएगे। मिल भी सकते है, न भी मिले। मै यह नहीं कह रहा हू कि धार्मिक आदमी राष्ट्रपति या प्रधानमत्री हो जाएगा। मै यह नही कह रहा हू कि उसके आसपास सोने-चादी की वर्षा हो जाएगी। पर मै यह कह रहा हू कि धार्मिक आदमी के पास कुछ भी न हो तो भी जिनके पास सोने-चादी की वर्षा हो रही है, उनसे वह ज्यादा आनदित होगा। जो पदो पर है, उनसे वह ज्यादा प्रतिष्ठित होगा। जिनके पास सब है, उनसे ज्यादा होगा उसके पास, चाहे कुछ भी न हो। यह होना कुछ भीतरी है।

अगर तुम ईमानदार हो तो ईमानदारी काफी है आनद। ईमानदार होने का मजा इतना है कि फिर कौन फिक्र करता है, ईमानदारी से कुछ और मिला कि नही। कुछ और की फिक्र तो वही करता है जो ईमानदार नहीं है। यहा बेईमान भी अपने को ईमानदार समझते है। तुमने कभी कोई आदमी देखा जो तुमसे कहता हो कि मै बेईमान हू? कोई नहीं कहता।

एक अदालत में मजिस्ट्रेट ने एक चोर से पूछा कि तूने इस दुकान मे रात मे पाच बार प्रवेश किया, पूरी रात?

उसने कहा, 'क्या करूं मालिक। ईमानदार सगी-साथी मिलते ही नही। अकेले जमाना ऐसा खराब हो गया है।'

खटपट की आवाज से मुल्ला नसरुद्दीन की नीद उचट गई। सीढ़िया उतरकर उसने देखा कि चोर रसोई घर का सामान बोरे मे समेट रहा है। दरवाजा भेढ़कर उसने पीछे से ललकारा, 'सारा

सामान यहीं रख दो, नही तो तुम्हारी खैरियत नहीं।' बोरे मे चाय की छननी डालकर चोर बोला, 'अब इतने बेईमान मत बनो सरकार। इसमे आधा माल तो आपके पड़ोसी का है।'

चोर भी 'इतने बेईमान मत बनो सरकार।' यहा सभी बेईमानो को ईमानदार होने का खयाल है। कसौटी यह है कि अगर तुम्हारी ईमानदारी सुख न लाए, जब मै कहता हू, तुम्हारी ईमानदारी सुख न लाए, तो मेरा मतलब है जब तुम्हारी ईमानदारी ही सुख न हो जाए। भाषा मे तो हमे आगे-पीछे शब्द रखने पड़ते है, क्योकि एक साथ सभी शब्द नही बोले जा सकते, लेकिन जीवन मे ईमानदारी और सुख साथ-साथ घटता है। कहने मे तो कहना पडेगा, ईमानदारी सुख लाती है। क्योकि भाषा लाइन मे जमानी पड़ती है, पक्तिबद्ध, रेल के डब्बो की भाति, एक डब्बे के पीछे दूसरा डब्बा रखना पडता है। जीवन तो युगपत है, साइमल्टेनियस है।

इधर मै बोल रहा हू, उधर पक्षी गीत गा रहे है, इधर तुम सुन रहे हो, हवाए वृक्षो से घूम रही है—यह सब एक साथ हो रहा है। लेकिन अगर इसको भाषा मे रखना हो तो एक के पीछे दूसरे को रखना पड़ेगा, नही तो बडी गडमड हो जाएगी। फिर कुछ समझ मे न आएगा। इसलिए कहते है कि ईमानदारी सुख लाती है। लेकिन वह कहने की बात है। ईमानदारी सुख है। ईमानदारी सुख है, इसमे भी तो सुख को पीछे रखना पड़ रहा है। ईमानदारी के इतना भी पीछे नही है। ईमानदारी मे ही सुख है।

ईमानदारी का सुख उसके बाहर नही है। बेईमान का सुख उसके बाहर है। इसे समझ लो। कोई बेईमानी के लिए ही थोडी बेईमानी करता है, कुछ और पाने के लिए करता है। बेईमानी मे खुद थोड़ी साध्य है, साधन है। आदमी चोरी भी करता है तो चोर होने के लिए थोडे ही, हत्या भी करता है तो हत्यारा होने के लिए थोड़े ही—कुछ और आकाक्षा है। बेईमान की आकाक्षा बेईमानी के बाहर है।

इसलिए मै तुमसे कहता हू, अगर तुम्हारे जीवन की साधना मे तुम्हारे जीवन का सुख समाविष्ट न हो तो तुम बेईमान हो, अधार्मिक हो। अगर तुम कहो कि ध्यान करने से क्या मिलेगा तो तुम बेईमान हो, अधार्मिक हो। अगर तुम कहो, प्रेम करने से क्या मिलेगा, तो तुम दुकानदार हो, बेईमान हो।

प्रेम 'मिलना' है—आगे-पीछे क्या? प्रेम पर्याप्त है, कुछ और चाहिए नही।

तो जब महावीर कहते है, 'हे मुने। मै उन्हे जीतकर ' इद्रियो के ऊपर विवेक जाग गया है। इद्रियो की अधेरी रात पर विवेक का सूरज उग आया है, सूर्यास्त समाप्त हुआ है, सूर्योदय हुआ है।

'मै उन्हे जीतकर, धर्मानुसार यथान्याय आचरण करता हू।' इससे ऐसा मत समझना कि महावीर सोच-सोचकर आचरण करते है। हमे ऐसा ही लगता है। इससे सारा धर्म उलटा हो जाता है हमारी समझ मे। एक अधा आदमी टटोल-टटोलकर दरवाजा खोजता है, कहा से बाहर जाऊ। आखवाला आदमी निकल जाता है, सोचता थोडे ही है। इतना भी नही सोचता कि दरवाजा कहा है। आख है तो बस दरवाजा दिखाई पडता है। सोचता कौन है। पूछता भी नहीं दरवाजा कहा है। निकल जाता है। टटोलता भी नही।

ते जिणित्तु जहानाय, विहरामि अह मुणी।

—अब मै बिहार कर रहा हू, परम आनद मे। हे मुने। जीतकर इद्रियो को, अब सुख ही सुख है। बिहार। अब आनद ही आनद है।

मौजे-सहबा निगाह थी अपनी

रक्से-मस्ती कलाम था अपना।

अगर सूफियो की भाषा मे इसको कहे, तो शराब की लहरे अब अपनी आखो मे है।

मौजे-सहबा निगाह थी अपनी।

—शराब की लहरे आखे हो गयी है, या आखे शराब की लहरे हो गई है।

रक्से-मस्ती कलाम था अपना।

—और अब नृत्य की मस्ती ही हमारे भीतर का गीत है, कलाम है, कविता है।

जिसका भी विवेक जागा, उसकी मस्ती जागी।

जिसका विवेक जागा, उसका आनद जागा। आनद और मस्ती विवेक के अनुषग है। ध्यान के साथ मस्ती वैसे ही आती है, जैसे तुम्हारे साथ तुम्हारी छाया आती है। मस्ती गौण है, जैसे छाया गौण है। तुम आ गए तो छाया भी आ गई। अगर मै तुम्हे निमत्रण देने जाऊ और कहू कि आना, तो तुम्हारी छाया के लिए अलग से निमत्रण नहीं देता। तुम्हारी छाया अपने से आती है।

जो अपने से आती है, तुम्हारे आने के कारण आती है, वही छाया है। मस्ती छाया है।

'एक ओर से निवृत्ति और दूसरी ओर से प्रवृत्ति करना चाहिए। असयम से निवृत्ति और सयम मे प्रवृत्ति।' छाया को बहुत लोगो ने धर्म समझ लिया है। वे छाया को लाने की कोशिश मे लगे है। मूल की फिक्र ही भूल गई है। कोई उपवास कर रहा है और खयाल ही भूल गया है कि उपवास छाया है, विवेक मूल है। अगर विवेक को साधा तो उपवास घटेगा। घटता है। सधते-सधते विवेक के एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि शरीर की याद ही भूल जाती है। ऐसी महाघड़ी आती है, इतना आनद भीतर होता है कि कौन शरीर की याद करता है।

तुमने कभी खयाल किया, शरीर की याद दुख मे ही आती है। दुख के कारण ही आती है। पैर मे काटा गड़े तो पैर का पता चलता है। सिर मे दर्द हो तो सिर का पता चलता है। सिरदर्द गया तो सिर भी गया। जब शरीर पूरा स्वस्थ होता है तो पता ही नहीं चलता। और जब भीतर महाआनद की घटना घटती है, जब आत्मा स्वस्थ होती है—जरा उसकी कल्पना तो करो। उसे कहना ही मुश्किल है। तो शरीर की याद भूल जाती है। न भूख का पता चलता है, न प्यास का पता चलता है—ऐसा रम जाता है चित्त, ऐसा ठहर जाता है। समय रुक जाता है। क्षेत्र भूल जाता है।

मयाने-कल्ब-ओ-नजर एक मुकाम है उसका
मुकाम ? मरहला ? जो भी कुछ है नाम उसका
जमाले ताबिशेरू गर्मिए-खिराम नही
हजार ऐसी अदाए है जिनका नाम नही।
—वह एक ऐसी अदा है जिसका कोई नाम नही।
ध्यान भी एक पड़ाव है, वह भी अत नही।
मयाने-कल्ब-ओ-नजर एक मुकाम है उसका
—इन दोनो आखो के बीच मे एक पडाव है ध्यान का।
मुकाम ? मरहला ? जो भी कुछ है नाम उसका
—कोई भी नाम दो, पड़ाव कहो, मुकाम कहो।
जमाले ताबिशेरू गर्मिए-खिराम नही
—लेकिन उसे प्रगट करने का उपाय नही है।
हजार ऐसी अदाए है, जिनका नाम नही।

जिंदगी मे ऐसी हजार अदाए है, जिनके लिए कोई शब्द नही, जिनके लिए कोई नाम नही, जिनकी कोई अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। बस इशारे, बस इशारे, इगित।

तो महावीर कहते है, 'एक ओर से निवृत्ति, दूसरी ओर से प्रवृत्ति करना चाहिए।' यह बड़ा अनूठा सूत्र है। लोग है, जो कहते है, प्रवृत्ति करनी चाहिए। चार्वाक है, कहते है, प्रवृत्ति करो, प्रवृत्ति ही सब कुछ है, निवृत्ति की बकवास मे मत पड़ना। मौत आएगी, सब खो जाएगा, कुछ भी न बचेगा। भोग लो। आज जो है उसे भोग लो। कुछ भी छोड़ो मत, क्योकि जिसने छोड़ा वह व्यर्थ गया, उसने व्यर्थ समय गवाया, तो चार्वाक कहते है कि घी भी पीना पडे उधार लेकर तो पी लो। ऋण घृत्वा । कोई फिक्र नही, ले लो ऋण से, क्योकि कौन चुकाता है। कौन चुकाने के लिए बच जाता है। मौत सबको मिटा देती है, न कोई लेनेवाला है, न कोई देनेवाला है—सब हिसाब-किताब खतम हो जाता है। सब हिसाब-किताब यही की बातचीत है। न कोई कभी लौटता, इसलिए न कोई पुण्य है, न कोई पाप। वे कहते है, प्रवृत्ति।

फिर दूसरी तरफ उनके विपरीत लोग है। वे कहते है, त्याग। त्याग करो। भोगो मत। फस जाओगे। नर्क जाओगे। छोड़ो, क्योकि छोड़ने का मूल्य है परमात्मा की नजरो मे। वे प्रवृत्ति के दुश्मन है। तो भोगी है चार्वाक, फिर त्यागी है।

अब यह बडे मजे की बात है कि अगर जैन मुनियो को आज समझा जाए तो वे महावीर के अनुयायी सिद्ध न होगे। वे चार्वाक के दुश्मन सिद्ध होते है, लेकिन महावीर के अनुयायी सिद्ध नही होते। वे चार्वाक के विपरीत है, यह सच है, लेकिन महावीर के साथ नहीं है, यह भी सच है। वे कहते है, छोड़ो, छोड़ो, छोड़ना ही । एक कहता है, भोगो, भोगो, भोगना ही ।

महावीर बड़े सतुलित है। वे कहते है, 'एक ओर से निवृत्ति, दूसरी ओर से प्रवृत्ति करना चाहिए।' असयम से निवृत्ति और सयम मे प्रवृत्ति करनी चाहिए, वे कहते है, भोगो—सयम को भोगो। छोड़ो—असयम को छोड़ो। भोगो प्रकाश को, छोड़ो अधकार को। भोगो आत्मा को, छोड़ो शरीर को। भोगो विवेक को, वैराग्य को, बोध को, बुद्धत्व को। त्यागो मूर्च्छा को, मिथ्या दृष्टि को, असम्यकत्व को। छोड़ो।

लेकिन ध्यान रहे, महावीर कहते है, निवृत्ति-प्रवृत्ति दोनो दो पख की भाति है। पक्षी उड़ न पाएगा एक पंख से।

भोगी भी गिर जाता है, त्यागी भी गिर जाता है। ऐसे भोगो कि त्याग भी बना रहे। ऐसे त्यागो कि भोग भी बना रहे। यह जीवन की परम कला है।

एगओ विरइ कुजा, एगओ य पवत्तण।

असजमे नियत्तिं च, सजमे य पवत्तण।।

जीवन मे जो भी तुम्हारे पास है, कुछ भी छोड़ने योग्य नही। उसका उपयोग करना है। पत्थर है, सीढ़ी बना लो। अनगढ़ पत्थर है, छैनी उठा लो, प्रतिमा बना लो।

इसलिए तो मै कहता हू, कामवासना को ब्रह्मचर्य बना लो। क्रोध को करुणा बना लो। काटो मत। काटने की कोई जरूरत नही है, क्योकि जो तुमने काटा, तो तुम कभी पूरे न हो पाओगे। वह जो अश तुमने काट दिया है, उतनी जगह सदा-सदा खाली रह जाएगी। वह छेद की तरह तुम्हारे व्यक्तित्व मे रहेगी। तुम परिपूर्ण पुरुष न हो सकोगे।

कुछ भी मत छोड़ो। सबका उपयोग कर लो। बुद्धिमान वही है जो जीवन मे जो मिला है, उन सभी उपकरणो का ठीक सयोजन कर लेता है। अभी सब असबधित पडा है। तार है, वीणा है, सब टूटा-फूटा पड़ा है। ठीक से जोड़ो। इसी टूटे-फूटे तार, इसी टूटी-फूटी वीणा से महासगीत पैदा हो सकता है। कुछ भी छोडना नही है। तुम जैसे हो, इसका आयोजन बदलना है। चीजे गलत स्थानो पर रखी है, जहा होनी चाहिए वहा नही है। जो जहा होना चाहिए वहा नही है। कुछ कही रखा है, कुछ कही रखा है। लेकिन इसमे से कुछ भी छोडने योग्य नही है। क्योकि जो भी है, अकारण नही है। उसका कोई कारण है। तुम्हारी समझ मे न आए तो जल्दी मत करना। तोड़ने, काटने, हटाने की भाषा गलत है। सयोजन की, साधन की भाषा सही है।

'पापकर्म के प्रवर्तक राग और द्वेष, ये दो भाव है। जो भिक्षु इनका सदा निषेध करता है, वह मडल मे नही रुकता, मुक्त हो जाता है।'

ससार तो नही रुकेगा। ससार तो चलता ही रहेगा। ससार तो चक्र है। महावीर उसे मडल कहते है। वह तो घूमता रहेगा। गाड़ी का चाक घूमता रहेगा। जब तक गाड़ी मे बैठी हुई वासनाओ भरे लोग है, गाड़ी चलती रहेगी। तुम इसे रोकने की कोशिश मत करो। तुम चाहो तो गाड़ी से नीचे उतर सकते हो। तुम्हे कोई रोकनेवाला नही है।

अधिक लोग इस कोशिश मे रहते है कि ससार बदल जाए। मेरे पास आते है, वे कहते है कि 'इतना दुख है ससार मे, आप क्यो नही कुछ करते?' दुख ससार मे है। लोग दुख चाहते है। मै क्या करू? और अगर वे दुख चाहते है, तो यही उनका सुख होगा। उनके सुख मे बाधा देनेवाला मै कौन हू? यह गाड़ी पर जो लोग बैठे है, यह चाक जो लोग चला रहे है, वे चलाना चाहते है इसलिए चला रहे है। उन्हे उनके दुख से जबर्दस्ती थोडे ही छुड़ाया जा सकता है। हा, जिनकी समझ मे आ जाए वे गाड़ी से नीचे उतर जाए।

रुकता नही किसी के लिए कारवाने-वक्त

मजिल है जुस्तजू की न कोई मुकाम है।

इस ससार की न तो कोई मजिल है, न कोई मुकाम है। और यह जो कारवा है समय का, यह किसी के लिए रुकता नही। हा तुम चाहो तो उतर सकते हो। तुम चाहो तो रुक सकते हो। तुम्हे यह रोकता भी नही। इस बात को खूब गहरे हृदय मे बैठ जाने देना कि तुम ससार मे तभी तक रुके हो जब तक तुम रुकना चाहते हो। एक क्षण को भी, क्षण के अशमात्र को भी, ससार तुम्हे रोक नही सकता। तुम उतरने को राजी हो, तुम्हे कोई रोक नही सकता। और अगर तुम सोचते हो कोई और तुम्हे रोक रहा है, तो तुम अपने को धोखा दे रहे हो।

महावीर के समय की कथा है। एक युवक महावीर को सुनकर घर लौटा। नया-नया उसका विवाह हुआ था। स्नान करने बैठा। पुरानी कथा है, अब तो ऐसी बात होती नही। पत्नी उसके शरीर पर उबटन लगा रही थी। अब तो कौन पत्नी लगाती है। किसी तरह शरीर ही बचाकर घर से निकल गए तो बहुत है। वह उबटन लगा रही थी, स्नान करवा रही थी। स्नान-गृह मे वह बैठा था चौकी पर, पत्नी उबटन लगा रही थी, और पत्नी ने कहा, 'सुनो! तुम भी महावीर को सुनने गए। मेरा भाई भी कई वर्षो से सुनता है। और वह सोच रहा है सन्यास ले लेने की।' वह युवक हसने लगा। उसने कहा, 'सोच रहा है? सोचने का सन्यास से क्या सबध? लेना हो ले ले, न लेना हो न ले। सोचने से क्या मतलब? न लेना हो तो साफ समझे कि नही लेना है, लेना हो तो ले ले। कौन रोक रहा है?' उसकी पत्नी ने कहा कि 'क्या तुम सोचते हो, सन्यास इतनी आसान चीज है? आदमी को सोचना पड़ता है, विचार करना पडता है। तुम भी तो

सुनने गए थे, क्या तुम सन्यास तत्क्षण ले सकते हो?'

वह युवक उठकर खड़ा हो गया। पत्नी ने कहा, 'कहा जाते हो? यह तो बातचीत ही थी।' मगर वह तो दरवाजा खोलकर बाहर हो गया। पत्नी ने कहा, 'नग्न हो, कहा जाते हो?' उसने कहा, 'खतम हो गई बात। लेना है—ले लिया।' पत्नी ने कहा, 'अदर आओ। यह मजाक की बात थी।'

'सन्यास तो', उसने कहा, 'मजाक मे भी ले लिया जाए तो बात खतम।'

वह नग्न ही महावीर के पास पहुचा। सारे गाव की भीड़ लग गई। महावीर से उसने कहा कि ऐसा-ऐसा हुआ। उस क्षण मे मुझे लगा कि ठीक है, यह मै क्या कह रहा हू। दूसरे के लिए कह रहा हू कि सोचे न, सोच तो मै भी रहा था। मगर तत्क्षण मुझे बोध हुआ कि अगर लेना है तो ले लू। कौन रोक रहा है? कौन रोक सकता है?

जब मरते वक्त तुम्हे कोई न रोक सकेगा, तो सन्यास के वक्त कोई तुम्हे कैसे रोक सकता है? जो उतरना चाहता है, उतर जाता है। लेकिन हम बड़े बेईमान है। हम हजार बहाने करते है। हमारी बेईमानी यह है कि हम यह भी नही मान सकते कि हम सन्यास नही लेना चाहते, कि वैराग्य नहीं चाहते। हम यह भी दिखावा करना चाहते है कि चाहते है, लेकिन क्या करे। किंतु-परतु बहुत है।

'पापकर्म के प्रवर्तक राग और द्वेष ये दो भाव है। जो भिक्षु इनका निषेध करता है, वह मडल ससार मे नहीं रुकता, मुक्त हो जाता है।'

रागे दोसे य दो पावे, पावकम्म पवत्तणे।
जे भिक्खू रूभई निच्च, से न अच्छइ मडले।।

बस दो बाते है—राग और द्वेष, इन दो के सहारे चक्र चलता है। राग, कि कुछ मेरा है। राग, कि कोई अपना है। राग, कि किसी से सुख मिलता है। इसे सम्हालू, बचाऊ, सुरक्षा करू। द्वेष, कि कोई पराया है। द्वेष, कि कोई शत्रु है। द्वेष, कि किसी के कारण दुख मिलता है। द्वेष, कि इसे नष्ट करू, मिटाऊ, समाप्त करू। बाहर देखनेवाली नजर हर चीज को राग और द्वेष मे बदलती है।

तुमने कभी खयाल किया। राह से तुम गुजरते हो, किसी की तरफ राग से देखते हो, किसी कि तरफ द्वेष से देखते हो। कोई लगता है अपना है, प्यारा है, कोई लगता है पराया है, दुश्मन है। कोई लगता है आज अपना नहीं, तो कल अपना हो जाए, ऐसी आकाक्षा जगती है। कोई दूर है तो आकाक्षा होती है, पास आ जाए, गले लग जाए। और कोई पास भी खडा हो तो होता है, दूर हटे, विकर्षण पैदा होता है। तुम सारे ससार को राग-द्वेष मे बाटते चलते हो। जाने-अनजाने। इसे जरा होश से देखना, तो तुम पाओगे प्रतिपल अजनबी आदमी रास्ते पर आता है, तत्क्षण तुम निर्णय कर लेते हो भीतर, राग या द्वेष का, मित्र कि शत्रु, चाहत के योग्य कि नही, प्यारा लगता है कि दुश्मन, भला लगता है, पास आने योग्य कि दूर जाने योग्य। झलक भी मिली आदमी की राह पर और चाहे तुम्हे पता भी न चलता हो, तुमने भीतर निर्णय कर लिया—बडा सूक्ष्म राग का या द्वेष का। यह निर्णय ही तुम्हे ससार से बाधे रखता है।

एक कार गुजरी, गुजरते से ही एक झलक आख पर पडी, तुमने तय कर लिया ऐसी कार खरीदनी है कि नही खरीदनी है। लुभा गई मन को कि नही लुभा गई। कोई स्त्री पास से गुजरी। कोई बडा मकान दिखाई पडा। सुदर वस्त्र टगे दिखाई पड़े, वस्त्र के भडार मे। राग-द्वेष पूरे वक्त, तुम निर्णय करते चलते हो।

यह राग-द्वेष की सतत चलती प्रक्रिया ही तुम्हारे चाक को चलाए रखती है।

तुम मडल मे फसे रहते हो। फिर क्या उपाय है?

एक तीसरा सूत्र है। बुद्ध ने उसे उपेक्षा कहा है। वह बिलकुल ठीक शब्द है। महावीर इसको विवेक कहते है, बिलकुल ठीक शब्द है। वे कहते है, न राग न द्वेष, उपेक्षा का भाव। न कोई मेरा है, न कोई पराया है। न कोई अपना है, न कोई दूसरा है। न कोई सुख देता है, न कोई दुख देता है। चौबीस घटे भी एक दफा तुम उपेक्षा का प्रयोग करके देखो, चौबीस घटे मे कुछ हर्जा न हो जाएगा। चौबीस घटे एक धारा भीतर बनाकर देखो कि कुछ भी सामने आएगा, तुम उपेक्षा का भाव रखोगे, न इस तरफ न उस तरफ, न पक्ष न विपक्ष, न शत्रु न मित्र—तुम बाटोगे न, देखते रहोगे खाली नजरो से। चौबीस घटे मे ही तुम पाओगे एक अपूर्व शाति। क्योकि वह जो सतत क्रिया चाक को चला रही थी, वह चौबीस घटे के लिए भी रुक गई तो चाक ठहर जाता है।

ऐसा ही समझो कि तुम साइकल चलाते हो, तो पैडल मारते ही रहते हो। दोनो तरफ पैडल लगे है। दोनो पैडल एक-दूसरे के

विपरीत लगते है, मगर एक-दूसरे के विपरीत नही है, दोनो एक-दूसरे के सहयोगी है। एक पैडल ऊपर होता है तो दूसरा नीचे होता है। एक बाए तरफ है तो दूसरा दाए तरफ है। दोनो दुश्मन मालूम पड़ते है, लेकिन दोनो गहरे सयोग मे है, और दोनो के कारण ही चाक चल रहा है, गाडी चल रही है, साइकिल चल रही है। तुम पैडल रोक दो, तो हो सकता है, थोडी-बहुत दो-चार-दस कदम पुरानी गति के कारण साइकिल चल जाए, लेकिन सदा न चल पाएगी। पैडल रोकते ही गति क्षीण होने लगेगी, साइकिल लड़खडाने लगेगी। दो-चार-दस कदम के बाद तुम्हे साइकिल से नीचे उतरना पड़ेगा, नही तो साइकल तुम्हे नीचे उतार देगी।

राग और द्वेष पैडल की भाति है। विपरीत दिखाई पड़ते है, लेकिन उन दोनो के ही पैडल मारकर तुम जीवन के चके को सम्हाले हुए हो। उपेक्षा को साधो। उपेक्षा का अर्थ है पैडल मत मारो, बैठे रहो साइकिल पर, कोई हर्जा नही। कितनी देर बैठोगे? इसलिए तो मै कहता हू अपने सन्यासियो को, भागने की काई जरूरत नही, बैठे रहो जहा हो। साइकिल पर ही बैठना हैं, बैठे रहो। घर मे रहना है, घर मे रहो। दुकान पर रहना है, दुकान पर रहो। थोडा ध्यान सधने दो, साइकिल खुद ही गिराएगी तुम्हे, तुम्हे थोडे ही छोड़ना पडेगा। साइकल खुद ही छोड देगी। साइकिल कहेगी, अब बहुत हो गया, उतरो।

जरा उपेक्षा सधे, जरा विवेक सधे, जरा ध्यान सधे, जरा अमूर्च्छा थोडी उठे, कि जीवन मे अपने-आप क्राति घटित होनी शुरू हो जाती है। चौबीस घटे शायद तुम्हे लगे, बहुत मुश्किल है, शायद डर भी लगे कि कही ऐसा न हो कि साइकिल से गिर ही जाए, हाथ-पैर न टूट जाए, कही ऐसा न हो जाए कि फिर साइकिल पर दुबारा चढ ही न सके—तो ऐसा करो कि दिन मे एक घटा ही उपेक्षा साधो। लेकिन फिर एक घटा परिपूर्ण उपेक्षा साधो। वह एक घटा भी तुम्हे जीवन का दर्शन करा जाएगा। क्षणभर को भी अगर राग-द्वेष की बदलिया आखो मे न घिरी हो, तो जीवन का सत्य दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। तब न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। तब तुम्ही अपने मित्र हो, तुम्ही अपने शत्रु हो। सत्प्रवृत्ति मे मित्र हो, दुष्प्रवृत्ति मे शत्रु।

खुदी क्या है राजे-दुरूने-हयात
समदर है एक बूद पानी मे बद।

तुम्हारे भीतर समदर बद है।

समदर है एक बूद पानी मे बद। लेकिन भीतर नजर ही नही जाती तो समदर का दर्शन नही होता। तुम नाहक छोटे बने हो। तुम व्यर्थ ही अपने को क्षुद्र समझे हो। तुम अकारण ही हीन माने बैठे हो। और हीन मान लिया, इसलिए श्रेष्ठ बनने की कोशिश मे लगे हो। थोड़ी आख भीतर आए, थोड़ी उपेक्षा मे दृष्टि सम्हले, थोडी तुम्हारी ज्योति यहा-वहा न कपे, राग-द्वेष के झोके न आए, तो तुम अचानक पाओगे समदर है एक बूद पानी मे बद। तब तुम विराट हो जाओगे, विशाल हो जाओगे। यही तुम्हारा परमात्म-भाव है।

किरण चाद मे है शरर सग मे
यह बेरग है डूब कर रग मे
खुद ही का नशेमन तिरे दिल मे है
फलक जिस तरह आख के तिल मे है।

जैसे आख के छोटे-से तिल मे सारा आकाश समाया हुआ है आख खोलते हो आकाश को देखते हो, कितना विराट आकाश आख के छोटे से तिल मे समाया हुआ है।

खुदी का नशेमन तेरे दिल मे है
फलक जिस तरह आख के तिल मे है।

वह परमात्मा का घर भीतर है। वह तुम छोटे मालूम पडते हो आख का तिल कितना छोटा है, सारे आकाश को समा लेता है।

तुम छोटे मालूम पडते हो, हो नही। जिस दिन तुम्हारा भीतर का विस्फोट होगा, उस दिन तुम जानोगे कि तुम सदा-सदा से अनत को, निराकार को, निर्गुण को अपने भीतर लिये चलते थे।

समदर है एक बूद पानी मे बद।

लेकिन इसकी खोज नियम, मर्यादा, अनुशासन, नीति, सदाचार, इतने से ही न होगी। इतने से तुम अच्छे आदमी बन जाओगे—सभ्य। सभ्य शब्द बडा अच्छा है। इसका मतलब सभा मे बैठने योग्य। और कुछ खास मतलब नही है। जहा चार जन बैठे हो, वहा तुम बैठने योग्य हो जाओगे, सभ्य हो जाओगे। कोई तुम्हे दुतकारेगा नहीं कि हटो यहा से। नीति-नियम सीख जाओगे, शिष्टाचार। लेकिन उस परमात्मा के जगत मे इतने से काफी नही है। सभा मे बैठने योग्य हो जाने से, तुम अपने मे बैठने योग्य न बनोगे। जो तुम्हे सभा मे बैठने

योग्य बना दे, वह सभ्यता। जो तुम्हे अपने मे बैठने योग्य बना दे, वही सस्कृति।

शेख। मकतब के तरीको से कुशादे-दिल कहा
किस तरह किबरीज से रोशन हो बिजली का चिराग।

शेख। मकतब के तरीको से कुशादे-दिल कहा—यह उठने-बैठने के निमय और व्यवस्थाए और आचरण की पद्धतिया, मकतब के तरीके, इनसे दिल का विकास नहीं होता, इनसे आत्मा नही बढ़ती, इनसे आत्मा नहीं फलती-फूलती।

किस तरह किबरीज से रोशन हो बिजली का चिराग। यह तो ऐसे ही है, जैसे कोई तेल से या गधक से बिजली के बल्ब को जलाने की कोशिश करे। कोई सबध नही है। तेल भरना पडता है दीये मे। गधक के भी दीये बन सकते है। लेकिन बिजली की रोशनी को गधक और तेल की कोई भी जरूरत नही है।

किस तरह किबरीज से रोशन हो बिजली का चिराग। मकतब के तरीको से, जीवन के साधारण शिष्टाचार के नियमो को जिसने धर्म समझ लिया, वह ऐसे ही है जैसे एक बिजली के बल्ब को तेल भरकर जलाने की कोशिश कर रहा हो। वह व्यर्थ है।

जैसे ही थोड़ी-सी समझ को तुम उकसाओगे, वैसे ही तुम पाओगे तुम्हारे भीतर की रोशनी न तो तेल चाहती है न गधक, तुम्हारे भीतर की रोशनी ईंधन पर निर्भर नही है। तुम्हारे भीतर की रोशनी तुम्हारा स्वभाव है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त च दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ।।

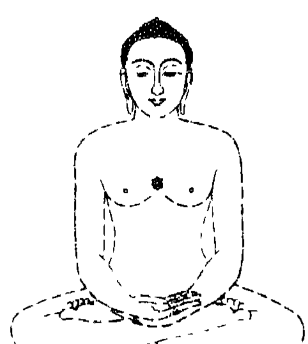
'आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता, विकर्ता, सत्प्रवृत्ति मे स्थित मित्र, दुष्प्रवृत्ति मे स्थित अपना ही शत्रु है।'

इस सत्य को तुम हृदयगम करो। इस सत्य को भीतर ले जाओ। इस सत्य का साक्षात्कार करो। इस सत्य को खोजो अपने जीवन मे, क्या ऐसा ही नहीं है? अगर तुम्हे भी ऐसा दिखाई पड़ने लगे—मेरे कहने से नही, महावीर के वक्तव्य से नहीं, ऐसा तुम्हे भी दिखाई पड़ने लगे, ऐसी तुम्हारी दृष्टि हो जाए—तो तुम 'जिन' होने की यात्रा पर निकल जाओगे। और जैन कभी होना मत चाहना। होना ही है तो जिन होना। होना ही है तो महावीर होना। अनुयायी होने से क्या होगा? अनुकरण नहीं, आत्म-अनुसधान। जैन बनकर धोखा मत देना। जैन बनने का मतलब है सीख गए ऊपर के मकतब के तरीके, आत्मा का नियम खिला नहीं, आत्मा के नियम मे बिहार न हुआ। ऊपर-ऊपर की व्यवस्था सीख गए—कैसे उठना, कैसे बैठना, कैसे मदिर जाना, कैसे पूजा करना, क्रियाकाड, वह सब सीख गए तो जैन हो गए, हिदू हो गए, मुसलमान हो गए, ईसाई हो गए। लेकिन जो होना था उससे बच गए।

और झूठे सिक्के बड़े खतरनाक होते है। क्योकि झूठे सिक्को का बोझ और उनकी खनन-खनन तुम्हे धोखा दे सकती है और ऐसा लग सकता है, असली सिक्के अपने पास है। असली सिक्का तो जिनत्व का है। जिन होना। अगर होना ही हो तो जिन होना। कुछ और होने से राजी मत होना। सस्ते मे अपने को मत बेच डालना। परमात्मा ही खरीदा जा सकता है इस जीवन से, इससे कम की आकाक्षा मत करना।

यह हो सकता है, क्योकि यह हुआ है। यह हो सकता है, क्योकि यह तुम जैसे ही मनुष्यो मे हुआ है। तुम इसके मालिक हो। यह तुम्हारा स्वभाव-सिद्ध अधिकार है।

आज इतना ही।





दसवां प्रवचन

जिंदगी नाम है रवानी का

प्रश्न-सार

लोग आपको धर्म-भ्रष्ट करनेवाला कहते है, विरोध करते है।
उनके साथ कैसे जीया जाए?

जो कुछ मुझे मिला है, वह कम नही—
फिर भी आखिर क्या पाकर मुझे सतोष होगा?

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मास।
दो नैना नहि खाइयो, पिया मिलन की आस।।

आप न जानो गुरुदेव मेरे, मै तुम्हे पुकारा करती हूं ।
एक बार हृदय मे छेद करो, वह क्षण मै निहारा करती हू।।

*प*हला प्रश्न मेरे घरवाले तथा दूसरे भी आपको धर्म को भ्रष्ट करने वाला कहते है। लेकिन मेरा मन कहता है

परवरदिगार आलम तेरा ही है सहारा
तेरे बिना जहा मे कोई नही हमारा।

कितु यह तो मेरा मत हुआ। रहना तो उन लोगो के साथ है जो आपके विरोध मे है। अत कृपापूर्वक बताए कि कैसे अपने सत्य की रक्षा करू ?

पहली बात, घरवाले ठीक ही कहते है। उनसे नाराज मत होना। जिसे वे धर्म कहते है, उसे निश्चित ही मै भ्रष्ट करता हू। उनकी बात मे कुछ भूल नही है। उनकी बात सीधी-साफ है। मेरे और उनके धर्म की परिभाषा अलग है। अगर तुम्हारी भी परिभाषा उनके धर्म की परिभाषा से अलग हो जाये, तो तुम नाराज न होओगे, तुम परेशान भी न होओगे। तुम्हारी परेशानी यह है कि तुम्हारी भी धर्म की परिभाषा वही है जो उनकी परिभाषा है। इसलिए उनकी बात चोट करती है, उनकी बात से पीड़ा होती है। तुम सिद्ध करना चाहते हो कि मै धर्म को नष्ट नही करता। तुम सिद्ध करना चाहते हो कि मै तो धर्म को, धर्म-चक्र को प्रवर्तित करता हू। लेकिन धर्म के सबध मे तुम्हारी भूल है।

उन्होने जो धर्म जाना है, वह है परपरा का धर्म। मै परपरा के विपरीत हू। क्योकि मैने जो धर्म जाना है, वह है नितनूतन, प्रतिक्षण नया, शाश्वत, लेकिन फिर भी नितनूतन। उन्होने जो धर्म जाना है, वह शास्त्र से आता है। मैने जो धर्म जाना है, वह स्वय से आता है।

निश्चित ही, शास्त्र भी कभी स्वय से आये थे। लेकिन वह घटना घटे बहुत देर हो गई। उस घटना पर बहुत राख जम गई समय की। उस घटना पर बहुत व्याख्याओ की पर्ते जम गई। जब कृष्ण ने बोला था तो उन्होने तो अतस्थल से बोला था। लेकिन गीता पर तो बहुत धूल जम गई। गीता के तो बहुत अर्थ हो गए। इतने अर्थ हो गए कि अनर्थ हो गया।

इसलिए जिन्होने शास्त्र मे धर्म को जाना है, उन्हे तो लगेगा, मै नष्ट करता हू। क्योकि मै कहता हू, शास्त्र से मुक्त हो जाओ। मेरी गीता मे उत्सुकता नही, कृष्ण के चैतन्य मे उत्सुकता है। गीता तो उस चैतन्य से निकला हुआ उच्छिष्ठ है। अगर होना ही है कुछ तो कृष्ण ही हो जाओ। लेकिन कृष्ण होने के लिए तो भीतर जाना पड़े। कृष्ण होने के लिए तो जीवन दाव पर लगाना पडे। कृष्ण होने के लिए तो मरना पड़े, तो ही पुनर्जन्म हो, तो ही नया जीवन हो। वह तो सौदा महगा है।

लोग सस्ता धर्म चाहते है। वे चाहते है, बिना कुछ किए मिल जाए, बिना कुछ किए धार्मिक होने का सुख मिलने लगे, बिना कुछ किए अहकार पर धर्म भी आभूषण की तरह सजावट दे, शृगार दे।

मै जो धर्म की बात कर रहा हू, वह तुम्हे जलाएगा, गलाएगा, मिटाएगा। यह सिर्फ थोड़े से लोगो के लिए हो सकता है।

भीड़ सदा ही शास्त्र को मानेगी। क्योकि भीड़ इतनी हिम्मतवर भी नहीं है कि कह दे कि हम अधार्मिक है, कह दे कि हम नास्तिक है। और इतनी हिम्मतवर भी नही है कि सत्य को स्वय

खोजने की यात्रा पर निकले। भीड समझौतावादी है। भीड कहती है, हम धार्मिक है। लेकिन धर्म ऐसा मरा लाश की तरह कि उससे दुर्गंध उठती है, कोई सुगध नही उठती।

निश्चित ही मै कहता हू, इस लाश को फेको। क्योकि इस लाश के कारण तुम मरे जा रहे हो। लाश के साथ रहोगे तो मरोगे। जो जिसके साथ रहेगा, वैसा हो जाता है। अगर तुम शास्त्र के साथ रहोगे तो धीरे-धीरे शब्द ही शब्द रह जायेगे, सत्य खो जाएगा। अगर तुम अतीत की परपरा के पीछे ही चलते रहोगे, तुम्हारी आखे धीरे-धीरे अधी हो जाएगी, उनके उपयोग की जरूरत ही न होगी। तुम सदा किसी के पीछे चलोगे।

जो अपने पैरो से चलता है, जो खुद खोजता है, जो खुद खोजने का खतरा लेता है, उसकी आखे सजग होती है। वह जागने लगता है। प्रतिपल चुनौती होती है। उसी चुनौती मे आविष्कार होता है।

जो परिवार के लोग, पास-पड़ोस के लोग, तुम्हारे मित्र, प्रियजन, जिसे धर्म कहते है, वह सप्रदाय है—हिदू, मुसलमान, ईसाई, जैन। मै जिस धर्म की बात कर रहा हू, वह न तो हिदू है न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है। मै उस धर्म की बात कर रहा हू, उस अगारे की, जो बुझकर कभी ईसाई हो गया, बुझकर कभी हिदू हो गया, बुझकर कभी जैन हो गया। लेकिन ये बुझे हुए अगारे है, राख के ढेर है।

मै उस धर्म की बात कर रहा हू, जो जीवत है। लेकिन जीते हुए अगारे को हाथ पर लेना, जीते हुए अगारे को हृदय पर लेना तो थोड़े से दुस्साहसियो का काम है। भीड वैसा न कर सकेगी। तुम भीड से वैसी अपेक्षा भी न करना।

वे ठीक ही कहते है। जब वे ऐसा कहते है तो वे अपनी रक्षा कर रहे है। तुम्हारे कारण खतरा पैदा हो गया। तुम्हारे कारण उनके जीवन मे पहली दफा खलल पडा। तुम्हारे कारण तरगे पैदा हुई है, उन्हे सोचने को मजबूर होना पडा है।

वे सब तरह से झझट करेगे। वे सब तरह से तुम्हे गलत सिद्ध करने की कोशिश करेगे। तुम्हे गलत सिद्ध करने मे उनकी उत्सुकता नही है, उनकी उत्सुकता यह है कि 'हमारी सुरक्षा तो मत छीनो। हम तो अब तक सोचते थे कि शास्त्र मे धर्म है, तुम कहते हो नहीं है, तो तुम हमारे पैर के नीचे की भूमि खीचे ले रहे हो। हमारा क्या होगा ?'

जब लोग विरोध करते है तो विरोध मे उनका रस नहीं है, आत्मरक्षा कर रहे है वे। तुम उन पर दया करना। उनका आक्रमण, उनकी आत्मरक्षा का उपाय है। वे कहेगे यह व्यक्ति धर्म भ्रष्ट करता है। ऐसा कहेगे, ऐसा मानेगे, तो मेरे पास आने से बच सकेगे। ऐसा न कहेगे, न मानेगे तो फिर किसी दिन मेरे पास आना पडे। वह सौदा करने की अभी उनकी तैयारी नहीं है।

तो पहली तो बात, वे ठीक ही कहते है। मैने तुम्हे धर्म की नई परिभाषा देनी शुरू की है। तुम उसे समझो। मै तुम्हे हिदू नही बना रहा हू, मुसलमान नही बना रहा हू, ईसाई नहीं बना रहा हू—मै तुम्हे सिर्फ धार्मिक बना रहा हू। मै तुम्हे कोई मदिर, मस्जिद नही दे रहा हू। मै तुम्हे आत्म-रूपातरण की प्रक्रिया दे रहा हू। मै तुम्हे परमात्मा से सीधा जोडना चाहता हू। बीच मे कोई मध्यस्थ नही दे रहा हू। क्योकि मै देखता हू कि मध्यस्थ पहुचानेवाले तो सिद्ध नही होते, रोकनेवाले सिद्ध हो जाते है। जिनको तुम बीच मे ले लेते हो, वे ही दीवारे बन जाते है।

मै तुम्हे ज्ञानी नही बना रहा हू, क्योकि सब ज्ञान अहकार को भर देते है। मै तुम्हे त्यागी नही बना रहा हू, क्योकि त्याग भी बडे सूक्ष्म अहकार को जन्माता है। मै तुम्हे सरल, सीधा, साफ प्रामाणिक बना रहा हू। मै तुम से कह रहा हू, आदमी हो जाना काफी है। अगर तुम आदमी ही हो जाओ तो परमात्मा आ जाए। इतना काफी है कि तुम सरल हो जाओ, सीधे-साफ हो जाओ। तुम जीवन जैसा तुम्हे मिला है, उसे अगीकार कर लो। और जीवन तुम्हे जो अनुभव देने के लिए द्वार खोला है, उन अनुभवो से गुजर जाओ, क्योकि उससे बडा कोई और विश्वविद्यालय नही है।

सबसे बड़ा विश्वविद्यालय अनुभव है
पर इसकी देनी पडती है फीस बडी।

लोग सस्ता अनुभव चाहते है, उधार चाहते है, कोई दे दे, खुद न लेना पड़े, खुद न गुजरना पड़े आग से। लेकिन न तो तुम्हारे लिए कोई जी सकता है, न तुम्हारे लिए कोई प्रेम कर सकता है, न तुम्हारी जगह कोई मर सकता है—तो तुम्हारी जगह कोई सत्य का अनुभव कैसे ले सकता है ?

निजी है जीवन मे जो भी श्रेष्ठ है। सप्रदाय का अर्थ होता है भीड़। सप्रदाय का अर्थ होता है सगठन। परमात्मा से भीड़ का और सगठन का कुछ लेना-देना नही। परमात्मा से सबध हमारा

निजी है, वैयक्तिक है। एक-एक जाता है उसकी तरफ, अकेला-अकेला जाता है। और जब भी कोई जाता है तो भीड़ को छोड़कर जाना पड़ता है, क्योकि भीड़ चलती है राजपथ पर, चौड़े सीमेट-पटे पथ पर, सुरक्षित। और परमात्मा बड़ा जगली है। परमात्मा अभी भी सभ्य नही हुआ, सौभाग्य है कि सभ्य नही हुआ। परमात्मा अभी भी सरल और प्राकृतिक है।

तो जिसे परमात्मा को खोजना है उसे सरल और प्राकृतिक होना पड़ता है। उसे उतरना पड़ता है राजपथ से, अपनी पगडडी खोजनी पड़ती है झाड़-झखाड़ मे, काटो-भरे रास्ते पर। न कोई मार्गदर्शक, न कोई हाथ मे नक्शा, न कोई किताब—अकेले, सिर्फ जीवन पर भरोसा।

मै तुम्हे जीवन पर भरोसा दे रहा हू और सारे भरोसे छीन रहा हू। तुम्हारे और सारे भरोसो ने तुम्हे नपुसक बना दिया है। तुम्हारा आत्मविश्वास खो गया है। जीवन पर तुम्हारी श्रद्धा खो गई है।

मै कहता हू, एक ही श्रद्धा करने योग्य है और वह जीवन की श्रद्धा है। तुम यह मानकर चलो कि जिसने तुम्हे जन्माया है, जो तुम्हारे भीतर जन्मा है, वह तुम्हे मजिल की तरफ भी ले जाएगा। तुम सुनो उसकी, गुनो उसकी। डरो मत। भीड़ को मत पकडो। जो तुम्हे यहा तक ले आया है, वह वहा भी पहुचा देगा। लेकिन डर के कारण हम भीड़ से चिपटते है। अगर तुम हिदू नही हो, जैन नही हो, मुसलमान नही हो तो तुम्हे डर लगेगा, तुम हो कौन। कोई सहारा चाहिए, कोई नाम-पट चाहिए, कोई व्याख्या-परिभाषा चाहिए। हिदू होने से लगता है, मै कुछ हू। मुसलमान होने से लगता है, मै कुछ हू। शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय होने से लगता है, मै कुछ हू। त्याग किया, मदिर गए, पूजा की—लगता है, मै कुछ हू।

मै तुम्हे यहा सिखा रहा हू कि तुम कुछ भी नही हो, परमात्मा है। तुम हो ही नही, तुम जगह दो। तुम जगह खाली करो। तुम सिहासन पर बहुत बैठ चुके हो, उतरो। तो मेरी पुकार तो केवल उनके लिए है, जो अतिदुस्साहसी होगे। धर्म आत्यतिक साहस है—कमजोरो का रास्ता नही। इसलिए कमजोर धर्म के नाम पर भी राजनीति चलाते है। हिदू है, मुसलमान है, जैन है, ईसाई है, ये सब राजनीतिया है। नाम धर्म के है, पताकाए धर्म की है—भीतर राजनीति है। चर्च है, मदिर है, पुजारी है, पडे-पुरोहित है—बाते धर्म की है, भीतर अगर थोड़ा गहरे उतरोगे, राजनीति पाओगे। ससार की दौड़ है, पद की, प्रतिष्ठा की, सपदा की, साम्राज्य की। ईसाइयत चाहती है, सारे ससार पर छा जाए। परमात्मा पाने मे उतना रस नहीं है, जितना ससार पर छाने मे रस है। इस्लाम चाहता है, सारी दुनिया को मुसलमान बना ले। तलवार के बल तो तलवार के बल सही। चाहे काटने पड़े लोग, लेकिन उनके हित मे उन्हे काटना ही पड़ेगा। जलाने पडे गाव, बस्तिया उजाड़नी पडे, लेकिन आदमी को मुसलमान बनाना ही पडेगा।

यह क्या पागलपन है? आदमी आदमी होने से पर्याप्त है। उसे हिदू और मुसलमान और ईसाई बनाने की कोई जरूरत नही है। लेकिन सब राजनीतिया है।

इधर हिदू परेशान रहते है। मेरे पास आ जाते है लोग। वे कहते है, 'आप कुछ करिए। ईसाई मिशनरी हिदुओ को ईसाई बना रहे है।' मै उनसे कहता हू, अगर वे जितने अच्छे आदमी पहले थे उससे अच्छे आदमी ईसाई होकर हो रहे है, तो क्या हर्जा है? हा, अगर जैसे पहले थे, उससे बुरे हो रहे है तो कुछ करे। अगर वे वैसे के वैसे ही रह रहे है, जैसे हिदू थे वैसे ईसाई होकर रहेगे, तो क्या चिता है? होने दो। इससे क्या फर्क पडता है?

नही, लेकिन वे कहते है, फर्क पडता है, हमारी सख्या कम होती जाती है। सख्या कम होती है तो राजनीति मे बल कम होता चला जाता है। सख्या कम होती है तो मत कम हो जाते है। अगर ऐसा ही होता रहा तो ईसाइयो का राज्य हो जाएगा। गौर से देखो तो धर्म के भीतर तुम राजनीति छुपी पाओगे। हिदू कहता है, हिदू धर्म को बचाना है। धर्म से कुछ लेना देना नही—हिदू राजनीति को बचाना है। ईसाई कहता है, ईसाइयत को फैलाना है। ईसाइयत से क्या लेना देना है? ईसा से क्या ईसाइयत का सबध रहा है। वह यह कह रहा है, अपनी राजनीति को फैलाना है, अपने साम्राज्य को, शक्ति को फैलाना है। कोई भी बहाना हो, आदमी राजनीति मे डूबा है।

ध्यान रखना, जहा तुम्हारा भीड मे रस हुआ, वहा राजनीति आई। तुम अपने मे रस लो। धर्म नितात वैयक्तिक घटना है। परमात्मा घटेगा तुम्हारे अतर्तम मे, तुम्हारे एकात मे। किसी को कानो-कान खबर भी न होगी। तुम्हारी पत्नी भी पास होगी, उसे भी पता न चलेगा। तुम्हारे बेटे को पता न चलेगा, जो तुम्हारा ही

खून, हड्डी, मास का हिस्सा है।

धर्म जब घटता है तो नितात वैयक्तिक है। राजनीति सामूहिक है। जहा धर्म समूह बनता है, वहा राजनीति हो जाती है। मेरी राजनीति मे कोई उत्सुकता नही। मेरी उत्सुकता व्यक्तियो मे है, समूहो मे नही।

यहा भी तुम बैठे हो, तो मै एक-एक से बात कर रहा हू, समूह से नहीं। मेरी नजर तुम पर है—एक-एक पर। तुम्हारी भीड से मेरा कुछ लेना-देना नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि 'सत्य साईबाबा की सभा मे हजारो लोग होते है। पाडुरग महाराज की सभा मे हजारो लोग होते है। डोगरे जी महाराज की सभा मे हजारो लोग होते है। आपकी सभा मे थोडे-से लोग क्यो होते है?'

मै आश्चर्यचकित होता हू कि इतने भी क्यो है। इतने भी होने नही चाहिए हिसाब से। जो मै कह रहा हू वह इतनो को भी पट जाता है, यह भी आश्चर्य की बात है। और ऐसा नही है कि भीड़ मेरे पास नही थी। भीड़ मेरे पास भी थी। मैने सारे रास्ते उसके लिए बद कर दिए। वे हजारो लोग मेरे पास भी थे। लेकिन मैने पाया, वह हजारो लोगो का मनोरजन होगा। उनके जीवन मे कोई क्राति की आकाक्षा न थी। जलसा था, तमाशा था। क्राति की आकाक्षा भीड मे नही है। भीड़ को मैने छोडा। अब तो हर तरह के मैने उपाय किए है कि भीड का आदमी पहुच ही न पाए। सब तरह के द्वार-दरवाजे बिठा दिए कि भीड़ को आने ही न दिया जाए। वे ही थोडे-से लोग जो सच मे रूपातरित होना चाहते है, मेरे पास तक पहुच पाए। अन्यो मे मेरा रस नही है।

इसलिए इतने तुम हो यहा, यह चमत्कार है। तुम गणित के सब नियमो को तोडकर यहा हो।

भीड को इकट्ठा कर लेने से सस्ता कोई काम दुनिया मे और है? भीड़ की मूढ़ता को समझो। जहा भीड़ है वहा एक बात पक्की हो जाती है कि कुछ गलत चल रहा होगा। ठीक के साथ तो भीड़ हो ही नही पाती। इतने लोग कहा कि जहा ठीक चलता हो वहा भीड़ हो जाए? इतने आदमी कहा? नाममात्र के आदमी है। रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हो तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। एक-दूसरे को गाली-गुफ्ता कर रहे हो तो भीड इकट्ठी हो जाती है। हजार जरूरी काम छोड़कर वहा खड़े हो जाते है। इस भीड़ को इकट्ठा करके भी क्या होगा?

लेकिन राजनीतिज्ञ इसी भीड़ मे उत्सुक है। और जिन्हे तुम धर्मगुरु कहते हो, वे भी इसी भीड़ मे उत्सुक है, क्योकि भीड़ मे बल है। जितनी बड़ी भीड़ तुम्हारे पास इकट्ठी होती है, उतने तुम बलशाली हो जाते हो। लेकिन बलशाली होने की आकाक्षा तो अहकार की ही यात्रा है।

निर्बल के बल राम। मै तो तुम्हे सिखाता हू निर्बल हो जाओ। कोई ताकत तुम्हारे पास न हो, न पद की, न धन की, न मत की। कोई सहारा तुम्हारे पास न हो, तुम बिलकुल बे-सहारे हो जाओ। जब तुम बिलकुल बे-सहारे हो तब तुम्हे परमात्मा का सहारा मिलता है। जब तक तुम्हारा अपना कोई सहारा है, परमात्मा को सहारा देने की जरूरत भी नही है।

सुना है मैने, कृष्ण भोजन को बैठे है बैकुठ मे। अचानक बीच थाली से उठ पडे। भागे द्वार की तरफ। रुकमणि ने कहा, 'कहा जाते है?' लेकिन इतनी जल्दी मे थे, जैसे घर मे आग लग गई हो, कि उत्तर भी न दिया, लेकिन फिर द्वार पर रुक गए, वापिस लौट आए। कुछ उदास मालूम पड़े। रुकमणि ने पूछा, 'क्या हुआ? कुछ समझ मे न पडा। अचानक भागे। कौर भी जो हाथ मे लिया था, पूरा न लिया, उसे भी छोड़ दिया। मैने पूछा तो जवाब न दिया। फिर लौट क्यो आए?'

कृष्ण ने कहा, 'मेरा एक प्यारा एक राजधानी से गुजर रहा है। मेरा एक फकीर एकतारा बजाता, गीत गाता। लोग उस पर पत्थर फेक रहे है। लहूलुहान, खून उसके माथे से बह रहा है। लेकिन उसका गीत बद नही होता। वह कृष्ण और कृष्ण की धुन लगाए जाता है। जाना जरूरी हो गया। इतना असहाय, उत्तर भी नही देता। पत्थर भी नही उठाता। वीणा भी बजे जा रही है। वह गीत भी गुनगुनाए जा रहा है, खून भी बहा जा रहा है। जिसने इतना मुझ पर छोड़ा, मै बैठकर भोजन करू? तो भागा।'

रुकमणि ने कहा, 'ठीक। यह समझ मे आता है। यह गणित साफ है। फिर लौट क्यो आए?' कृष्ण ने कहा, 'जाने की जरूरत न रही। जब तक मै द्वार तक पहुचा, उसने एकतारा तो फेक दिया है, पत्थर उठा लिया। अब वह खुद ही उत्तर दे रहा है, अब मुझे कुछ उत्तर देने की जरूरत न रही।'

धार्मिक व्यक्ति अपने को असहाय करता जाता है। असहाय हो जाने मे ही उसकी पूजा, उसकी प्रार्थना है। वह धीरे-धीरे अपने सब सहारे तोडता जाता है। वह अपने को एक ऐसे सागर

मे छोड़ देता है एक दिन, न नाव, न कोई कूल, न कोई किनारा। उस घड़ी मे ही परम आलबन मिलता है। उस घडी मे ही प्रभु का हाथ तुम्हारी तरफ आता है। उसका अर्थ यह हुआ जब तुमने सब अपने सहारे छोड दिए, उसका अर्थ यह हुआ कि अब तुम्हे भरोसा आया, अब तुम्हे श्रद्धा हुई। इसके पहले तुम्हारी श्रद्धा अपनी चीजो पर थी। धन पर थी, पद पर थी, मत पर थी, भीड पर थी, राज पर थी। तुम्हारी कोई श्रद्धा और थी। लेकिन जिस दिन तुमने अपनी और सारी श्रद्धाए छोड दीं, उसी दिन उस परमशून्य मे, उस श्रद्धा का जन्म होता है जिसको धर्म कहे। उस दिन परमात्मा के सिवाय तुम्हारा कोई सहारा न रहा। उस दिन उसी घडी मे, वह महाक्राति घटती है। उसी घड़ी मे तुम उठा लिए जाते हो। उसी घडी मे तुम्हारे भीतर जो कूड़ा-कर्कट है, जल जाता है, जो सोना है निखर जाता है।

इसलिए भीड मे मेरी उत्सुकता नही है। धर्म मेरे लिए अभिजात्य है, अरिस्टोक्रेटिक है। भीड का उससे कुछ लेना-देना नही है। कभी-कभी कोई आदमी इतने अभिजात्य को उपलब्ध होता है, ऐसी अतर्तम की अरिस्टोक्रेसी को ।

तुम समझो इसे। कोई कवि है। जितना श्रेष्ठतर कवि होगा, उतने ही कम लोग उसे सुनने जाएगे। क्योकि ज्यादा लोग सुनने तभी आ सकते है जब वह निकृष्ट हो, जब वह नीचा हो, जब वह उन्ही की भाषा मे बोल रहा हो जिस भाषा मे लोग समझ सकते है, जब वह उन्ही मनोवेगो को छेड रहा हो जिनको लोग समझ सकते है, जब वह कामवासना के गीत गा रहा हो। जहा लोग है, जब उसकी कविता भी वही हो, तभी लोग उसे समझ पाएगे, तभी लोग आदोलित होगे।

उपन्यास वही बिकेगा जो अत्यत सस्ता से सस्ता हो, दाम मे ही नही, जिसकी आत्मा ही सस्ती हो, जिसमे कुछ भी न हो विशेष। गीत वही गुनगुनाया जायेगा जो जितना क्षुद्र, निम्न हो, जितने नीचे तल पर पुकार हो। सगीत भी वही सुना जाएगा जिसमे आदमी की क्षुद्र वासनाओ की सतुष्टि हो। फिल्म भी वही चलेगी। फिल्म भी वही चलेगी जो लोगो की कामवासना को थिरकाती हो। हिसा हो, कामवासना हो, हत्या हो, तो फिल्म चलेगी, तो लोग खिचे हुए चले जाएगे। अब किसी फिल्म मे समाधि का दर्शन हो, कौन जाएगा? बुद्ध बैठे रहे, बैठे रहे वृक्ष के तले, समाधि के फूल खिले—कौन जाएगा? लोग ऊब जाएगे। लोग बीच फिल्म मे झगड़ा-फसाद करने को खड़े हो जाएगे, कि न मार-काट, न कोई हत्या, न कोई सनसनीखेज बात—यह मामला क्या है?

ऐसा हुआ है। सेमुअल बेकेट ने एक फिल्म बनाई। अनूठा आदमी था। छोटी-छोटी किताबे उसने लिखी है, बड़ी-बडी गहन-गभीर। उसने एक फिल्म भी बनाई। उस फिल्म मे कुछ भी नहीं है। एक आदमी घर लौटता है—कई वर्षो के बाद। घर भी खडहर जैसा हो गया है। पत्नी कहा गई, पता नहीं। बच्चे कहा गए, पता नही। उसका आना, घर मे उसका प्रवेश, अतीत को खोजती उसकी आखे। द्वार पर, दीवार पर, चित्र पर, केलेडर पर, फर्नीचर पर—सारा अतीत उसका छाया है। वह खोया है, स्तब्ध खड़ा है। वह एक-एक चीज को उठाकर देखने लगता है। एक शब्द नही बोला जाता, सिर्फ उसकी श्वास बढने लगती है। वह घबड़ा गया है। यह सारा अतीत है उसका। और सब सूत्र खो गए है। कहा है बेटा, कहा पत्नी—कुछ भी पता नही है। यह भी कुछ कहा नही जाता, यह भी देखनेवाले को समझना है। अभी तक एक शब्द बोला ही नही गया है—सिर्फ उसकी बढती हुई सास की आवाज है। वह एक-एक चीज को उठाता है, आख से आसू बहने लगते है। सिसकिया आ जाती है। उसके रोने की आवाज और गहन अधकार हो जाता है। फिल्म खतम हो जाती है।

जहा चली, वही झगडे हो गए। वही लोगो ने कुर्सिया तोड़ डाली, पर्दे तोड़ डाले। लोगो ने कहा, 'यह धोखा है। यह कोई फिल्म है?'

बड़ा सूक्ष्म चित्रण है। कुछ ऐसे भावो को उसकी आखो से प्रगट किया है जो शब्दो मे नही कहे जा सकते। उसके उठने मे, बैठने मे, उसकी श्वास की बढती हुई आवाज मे, उसकी आखो से टपकते हुए टप-टप आसुओ मे, फिर अधेरे मे खो गई उसकी सिसकियो मे—आदमी की पूरी जिदगी है। यही तो जिदगी है।

एक दिन तुम भी तो यही पाओगे कि जहा सब बसाया था वहा सिर्फ खडहर है। बेटे भी खो गए, पत्नी भी खो गई, पति भी खो गये—सब खो गये। अकेला रह जाता है आदमी। सास की आवाज बढ़ती जाती है और टूट जाती है। अधेरा। मौत। सिसकिया। हाथ खाली के खाली। और है क्या जिदगी मे? सारी जिदगी को उसमे रख दिया है, लेकिन कही भी फिल्म चल

न सकी। और जहा भी चली वही उपद्रव हुआ। जनता ने कहा, पैसे वापस।

नही, भीड़ को एकत्रित करना हो तो निकृष्ट होना जरूरी है। सत्य साईबाबा के पास भीड इकट्ठी होगी, क्योकि तुम्हारी जो क्षुद्रतम आकाक्षाए है उनकी तृप्ति का भरोसा है। भरोसा दिया जा रहा है, आश्वासन दिया जा रहा है। किसी को मुकदमा जीतना है। किसी को सुदर पत्नी पानी है। किसी को धन कमाना है। किसी को बीमारी मिटानी है। आदमी की जो सामान्य जीवन की चिताए है तो सत्य साईबाबा के पास लगता है कि पूरी होगी। चमत्कार घटते है। स्विस घड़िया हाथ मे आ जाती है। सूने आकाश से राख आ जाती है। वस्तुए निकल आती है। तो जो आदमी ऐसा चमत्कारी है उससे आशा बधती है कि जो शून्य से घड़िया निकाल देता है, उसे क्या असभव है। अगर उसकी कृपा हो जाए तो तुम्हारे ऊपर धन भी बरस सकता है। अगर उसकी कृपा हो जाए तो तुम मुकदमा भी जीत सकते हो। अगर उसकी कृपा हो जाए तो तुम्हारी बीमारी भी दूर हो सकती है। यह आश्वासन जगता है। यह मदारीगिरी है, तुम्हारे भीतर वह जो छुपी हुई वासनाए है, उनको सुगबुगाती है।

स्वभावत भीड़ इकट्ठी हो जाती है। क्योकि भीड बीमारो की है। भीड़ अदालतबाजो की है। भीड़ धन के पागल प्रेमियो की है। भीड़ पद के आकाक्षियो की है। तो राजनेता भी पहुच जाता है चरण छूने, क्योकि मुकदमा उसको भी लड़ना है, चुनाव उसको भी जीतना है। कोई आशीर्वाद, ईश्वर का भी सहारा मिल जाए उसे। वह भी ताबीज ले आता है। वह भी भभूत ले आता है, सभालकर रख लेता है।

दिल्ली मे ऐसा एक भी राजनीतिज्ञ नही है, जिसका गुरु न हो। और जब कोई राजनीतिज्ञ जीत जाता है, तब तो भूल भी जाए, लेकिन जब हार जाता है तो गुरुओ के चरणो मे जाने लगता है। कही से कोई आशा की किरण ।

स्वभावत मेरे पास तुम किसलिए आओगे?

न मै तुम्हारी बीमारी दूर करूगा, न मै तुम्हे मुकदमे जिताऊगा, न तुम्हारे लिए सुदर पत्नियो की तलाश करूगा, न तुम्हारे लिए धन का आयोजन करनेवाला हू—उलटे तुम्हारे पास जो होगा वह भी ले लूगा।

यहा तो तुम्हे कुछ छोड़ना होगा। यहा तो थोड़े-से हिम्मतवरो का काम है। जो मिटने को राजी हो, उनके लिए मेरा निमत्रण है। जिनको अभी जीवेषणा है, वे कही और जाए। और ठीक है कि वे यहा न आए, क्योकि यहा वे व्यर्थ का उपद्रव करते है।

मेरे पास भी कभी-कभी इतने बधनो के बाद भी लोग आ जाते है, इतने इतजाम के बाद भी आ जाते है। कहते है कि ध्यान के सबध मे समझना है। लेकिन जब पूछने मेरे पास पहुच जाते है, तो मै उनसे कहता हू, 'सच मे ही ध्यान के सबध मे समझना है?' अब वे कहते है, 'अब आप से क्या छिपाना सब तरह की कोशिश कर रहा हू, लेकिन दीनता नही मिटती, दारिद्र नही मिटता। कुछ आशीर्वाद दे दे।'

आते है ध्यान को पूछने। शायद उन्हे भी साफ नही है कि उनकी जो अशाति है, वह अशाति ध्यान के लिए नही है, वह अशाति धन के लिए है। धन नही है, इसलिए अशात है।

पूछते है मुझसे लोग कि 'ध्यान करेगे तो सफलता मिलेगी जीवन मे?' जीवन की सफलता के लिए ध्यान को साधन बनाना चाहते है। ध्यान तो उनके लिए है जिन्होने यह जान लिया कि जीवन का स्वभाव असफलता है—हारे को हरिनाम। जिन्होने जान लिया है कि जीवन मे तो हार ही हार है, यहा जीत होती ही नहीं।

मै तुम्हे किसी तरह के धोखे देने मे उत्सुक नही हू। कोई कारण भी नही है कि तुम्हे धोखा दू, क्योकि भीड़ मे मेरी कोई उत्सुकता नही है। मै इधर अकेला हू, तुम भी अगर अकेले होने के लिए राजी हो गए हो तो मेरे पास आओ।

तो ठीक ही है, लोग कहेगे कि मै धर्म को भ्रष्ट कर रहा हू। और निश्चित ही मै ऐसी बाते कह रहा हू, कि जो धर्म समझा जाता रहा है वह भ्रष्ट होगा। वह होना चाहिए। वह धर्म नही है। जो बाते मै कह रहा हू, वे अजनबी है।

शरहे-फिराक मदहे-लबे-मुश्कबू करे
गुरबतकदे मे किससे तेरी गुफ्तगू करे।

जैसे कोई परदेस मे खो गया, जहा न कोई अपनी भाषा समझता है, न अपनी कोई शैली समझता है—वहा अगर तुम अपने प्रेमी की चर्चा करने लगो और अपने प्रेमी की जुदाई की बात करने लगो, कौन समझेगा? और वहा अगर तुम अपने प्रेयसी और प्रेमी के सुगधित ओठो का वर्णन करने लगो, महिमा का गान करने लगो, कौन समझेगा?

शरहे-फिराक मदहे-लबे-मुश्कबू करे

—किससे कहे अपने प्रेमी के सुगधित ओठो की बात। इस बिछुड़न मे कैसे कहे।

गुरबतकदे मे किससे तेरी गुफ्तगू करे।

—इस परदेस मे किससे तेरी चर्चा करे।

तो मै तो दीवानो की तलाश मे हू, जो इस चर्चा को समझ सके। तुम्हारे कारण मै नीचे उतरने को राजी नही हू। हा, मेरे कारण तुम ऊपर चढ़ने को राजी हो तो मेरे द्वार खुले है। यह मेरा सगीत नीचे न उतरेगा, ताकि तुम जहा हो वहा तुम समझ सको। तुम्हे अगर मेरे सगीत को समझना है तो तुम्हे ही सीढिया चढनी पड़ेगी और वहा आना होगा जहा मै हू।

दो ही उपाय है मेरे और तुम्हारे मिलने के। एक तो यह है कि मै नीचे उतरू, जो कि असभव है, क्योकि कोई कभी ऊपर जाकर नीचे नही उतर सकता। जो नीचे उतरा हुआ मालूम पड़े, वह नीचे होगा ही, ऊपर गया नही है।

दूसरा उपाय है कि तुम मेरी तरफ चढ़ो, मेरी बात तुम्हे पकड ले, मेरे शब्द तुम्हारे प्राणो को जकड़ ले, मेरी पुकार तुम्हे सुनाई पड जाये, तुम्हारी निद्रा मे, तुम्हारे स्वप्न मे थोडी खलल पड जाए, एक धागा भी तुम मेरे शब्दो का पकडकर उठने लगो—तो धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम ऊपर उठोगे वैसे-वैसे मेरी बात साफ होगी। जैसे-जैसे तुम ऊपर उठोगे वैसे-वैसे तुम्हे लगेगा कि धर्म क्या है। अनुभव तुम्हारा गहरा होगा तो तुम पाओगे कि मै धर्म के खिलाफ बोल रहा था, क्योकि मै धर्म के पक्ष मे हू, चूकि मै शास्त्र के खिलाफ बोल रहा था, क्योकि मै शास्त्र के पक्ष मे हू। लेकिन मै जीवत अनुभव तुम्हे देना चाहता था। राख पर मेरा भरोसा नही है। अगारे मै अपनी झोली मे लिये बैठा हू, जो भी जलने को राजी हो।

तो घर के लोग ठीक ही कहते है। उनसे बेचैन मत होना। उनसे विवाद मत करना। उनसे नाहक माथा-पच्ची मत करना। क्योकि माथा-पच्ची मे तुम व्यर्थ ही अपना समय गवाओगे। कह देना कि हा ठीक कहते है आप, अब मै क्या करू, मै पागल हो गया हू। तुम पागल होकर अपने को बचा लेना। व्यर्थ के विवाद, व्यर्थ की चर्चा, व्यर्थ के सिद्धातो के विश्लेषण—और इस सब मे समय मत खोना। क्योकि उनका तो कुछ न खोएगा—उनके पास कुछ भी नही है—तुम्हारा कुछ खो जाएगा। तुम्हारे पास कुछ है, या उतर रहा है। तुम्हारी एक-एक घड़ी बहुमूल्य है। तुम बाजार मे खडे होकर दुकानो पर चर्चा करने मे मत समय व्यतीत करना। तुम्हारे पास ध्यान की सभावना है। तुम तो उनसे कह देना, आप ठीक कहते है, लेकिन कुछ हो गया, मै पागल हो गया। वे तुम्हे पागल भी समझ ले तो कुछ हर्ज नहीं।

तुम मेरी आखो की तरफ देखो। मै तुम्हे क्या समझता हू, इसकी फिक्र करो। और लोग तुम्हे क्या समझते है, इसकी चिता छोडो। अगर तुम्हे मुझ पर थोडा भी भरोसा है तो मै तुमसे कहता हू कि तुम उस राह पर हो, जहा पागल हो जाना भी बुद्धिमानी है। और दूसरे लोग, जो तुमसे कह रहे है कि तुम गलत राह पर गए हो, समझदार रहकर भी सिर्फ बुद्धिहीनता कर रहे है। और उन्हे समझाने का एक ही उपाय है कि तुम बदलो। तुम्हारी क्राति उन्हे छुएगी। तुम्हारे जीवन मे उठी नई ऊर्जा उन्हे प्रभावित करेगी। तुम्हारा प्रेम, तुम्हारा आनद। तुम्हारा तर्क नही। तुम्हारे शब्द नही। तुम्हारा अस्तित्व। तुम कुछ ऐसे हो जाओ, जो मै कह रहा हू वैसे हो जाओ। फिर तुम देखना, वे खुद ही तुमसे पूछने लगेगे, 'कहा से यह तृप्ति आई?' अधे थोडे ही है वे लोग। वे भी आखवाले है। हीरे दिखाई पडने लगे तो वे भी समझेगे, कितनी देर न समझेगे। तुम हीरा बनो। तुम्हारे भीतर चमक आए। वही तुम्हारा तर्क होगा।

मै तुमसे शाब्दिक विवाद मे पडने को नही कहता हू। और तुम इसकी बिलकुल फिक्र मत करना कि तुम्हे मेरी रक्षा करनी है। मेरी रक्षा की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरा होना न होना, लोग क्या कहते है, इस पर निर्भर नहीं है। मै हू। वे पक्ष मे हो कि विपक्ष मे, इससे कोई फर्क नही पडता। मेरे होने पर कोई रेखा नही पड़ती इससे। इसलिए तुम इसकी फिक्र ही मत करना।

मेरे शिष्यो को मुझे बचाने की चिता ही नहीं करनी चाहिए। क्योकि जिस गुरु को बचाने के लिए शिष्यो को चेष्टा करनी पड़ती हो, वह गुरु ही नहीं। जो शिष्यो के आधार पर बचता हो, वह बचाने योग्य भी नहीं। तुम इसकी फिक्र छोड दो।

तुम्हारे अहकार को चोट लगती है, वह मै जानता हू। जब तुम्हारे गुरु को कोई गाली देता है, तो तुम्ही को गाली देता है परोक्ष से। जब कोई कहता है कि तुम्हारा गुरु धर्म भ्रष्ट करने वाला है, तो वह तुमसे यह कह रहा है कि तुम धर्म भ्रष्ट हो रहे

हो। जब कोई कहता है, तुम्हारा गुरु गलत है, तो वह कहता है तुम गलत हो। तुम्हारे मन को चोट लगती है। शिष्य का मन होता है कि सारी दुनिया कहे कि तुम्हारा गुरु सबसे बड़ा गुरु। क्योकि तुम सबसे बड़े गुरु के शिष्य हो, तो सबसे बडे शिष्य हो गये। तुम्हारा अहकार तृप्त होगा। लोग मेरी पूजा मे थाल सजाए, लोग मेरा गुणगान करे, तो तुम्हारा भी गुणगान उसमे छिपा होगा। तुम भी मेरे हो। मेरी पूजा अनजाने तुम्हारी भी पूजा होगी। यह अहकार छोड़ो। यह बकवास बद करो। यही तो चलता रहा है।

जैनो से पूछो तो महावीर सबसे ऊपर, किसी को महावीर के ऊपर नही रख सकते। ऊपर रखने की तो बात छोडो, महावीर के साथ भी नही रख सकते। कृष्ण को तो नर्क मे डाल दिया है। राम ससारी है। बुद्ध से जरा अड़चन है, क्योकि न तो बुद्ध ससारी है, न कृष्ण जैसे किसी युद्ध मे खड़े है, न युद्ध करवाने वाले है—लेकिन फिर भी महावीर की ऊचाई पर तो नही रख सकते। तो महावीर को 'भगवान' कहते है, बुद्ध को 'महात्मा' कहते है।

एक जैन विचारक मेरे पास आते थे। कहते है अपने आपको, सहिष्णु हू, सभी धर्मो मे समभाव रखता हू। जैन है। उन्होने एक किताब लिखी है। भगवान बुद्ध तो नही लिखा महात्मा बुद्ध, और महावीर को 'भगवान' लिखा। 'भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध।' किताब मेरे पास लाए, कहा कि 'देखे, जैन हू, लेकिन मेरा सदभाव सब की तरफ है।' तो मैने कहा कि 'सदभाव ही था, इतनी कजूसी क्यो कर गए? इधर थोडी हिम्मत और बढ़ा लेते।'

महात्मा का अर्थ होता है जो भगवान होने की तरफ जा रहा है, अभी पहुचा नही। महात्मा का अर्थ होता है जो अतरमुखी है, अतरात्मा की तरफ जा रहा है। भगवान का अर्थ होता है जो पहुच गया। तो उन्होने कहा कि 'वह तो ठीक है, लेकिन बुद्ध अभी महात्मा ही है, तो मै क्या करू?'

बौद्धो से पूछो, तो बौद्धो ने जो मिथ्या दृष्टिया गिनाई है, उनमे एक महावीर की दृष्टि भी है। बौद्धो ने बड़ा मजाक उड़ाया महावीर का। क्योकि महावीर के शिष्य कहते थे कि महावीर सर्वज्ञ है, तीनो काल के ज्ञाता है। तो बौद्ध शास्त्रो मे बड़ा मजाक उडाया है कि महावीर एक घर के सामने भीख माग रहे है, और उन्हे यह भी पता नही कि घर मे कोई नहीं है, घर खाली है। और त्रिकालज्ञ है, तीनो काल के ज्ञाता है और इतना भी पता नहीं है कि जिस घर के सामने भिक्षापात्र लिये खडे है, वहा भीतर कोई भी नही। बाद मे पता चलता है, घर खाली है। राह से गुजरते है, सुबह का अधेरा है। राह पर सोए कुत्ते की पूछ पर पैर पड़ जाता है। जब कुत्ता भौकता है तब पता चलता है। त्रिकालज्ञ है।

बौद्ध मजाक उड़ा रहे है।

शिष्यो को हमेशा बड़ी तकलीफ होती है। शिष्यो की तकलीफ यह है कि हमारा गुरु श्रेष्ठतम होना ही चाहिए। नहीं तो हम चुनते? हम जैसे बुद्धिमान ने जिसे चुना, वह श्रेष्ठतम से कम हो सकता है, असभव।

तुम जरा ध्यान रखना, जब कोई मुझे गाली दे, कोई मेरा खडन करे, तब अपने अहकार का खयाल रखना, वह भी सहयोग कर रहा है। वह भी तुम्हारे अहकार को काट रहा है। उससे कहना, 'काट। ठीक से काट।' वह मेरे खिलाफ कुछ कह रहा है या नहीं कह रहा है, इससे क्या फर्क पडता है? मुझे क्या फर्क पडता है? तुम्हे फर्क पडता है। तुम्हे अडचन होती है। तुम लड़ने-मारने को, झगड़ने को उतारू हो जाते हो। तुम्हारे गुरु को कुछ कह दिया तो यह जीवन-मरण का सवाल हो गया।

देखना, यह सब अहकार का सवाल है, जीवन-मरण का इससे कुछ लेना-देना नहीं। और यहा मेरी पूरी शिक्षा है कि अहकार तोड देना है, गिरा देना है। तो ये भी तुम्हारे मित्र है। ये भी तुम्हारे अहकार को तोडने के लिए साथ दे रहे है। इनको भी धन्यवाद देना।

तो जैसे-जैसे तुम शात भाव से लोगो की बात सुनने लगोगे, उनकी बाते इतनी महत्वपूर्ण न मालूम पड़ेगी—सोये हुए लोगो की बकवास है। नीद मे बड़बड़ा रहे है। अपना उन्हे पता नही है, तुम्हारा क्या पता होगा, मेरा क्या पता होगा? उनकी बात को ज्यादा मूल्य मत देना।

जिदगी नाम है रवानी का
क्या थमेगा बहाव पानी का
जिदगी है कि बेताल्लुक-सा
एक टुकड़ा किसी कहानी का।

—अप्रासागिक, जैसे किसी कहानी का एक टुकड़ा उड़ता हुआ हवा मे, कागज का एक टुकड़ा तुम्हारे हाथ लग जाये, उसे

तुम पढ़ो, न कुछ प्रारभ का पता चले, न कुछ अत का पता चले।

जिदगी है कि बेताल्लुक-सा

एक टुकड़ा किसी कहानी का।

—अप्रासागिक, लोग कहे जा रहे है। लोग बोले जा रहे है। लोग होश मे नही है। तुम समय मत गवाना। तुम हर घडी को अपना होश साधने मे लगाना।

एक और मित्र ने पूछा है कि जब भी आपके पास आते है तो कुछ लोग है, वे कहते है, 'वहा जाने से क्या फायदा? क्या मिलेगा वहा? वहा कुछ भी नही है। सत्य साईबाबा के पास जाओ, अगर महिमा देखनी है।'

वे भी ठीक कहते है। यहा कुछ भी नही है। यहा मेरा सारा शिक्षण ही ना-कुछ होने के लिए है। वे बिलकुल ठीक कहते है। यहा तुम्हे देने का कोई सवाल ही नही है, तुम्हारे पास जो-जो होने की भ्राति है, उसे भी खडित करना है, तोड़ना है, मिटाना है, तुम्हे भी शून्य की तरफ ले आना है। इतना शून्य हो जाए तुम्हारे भीतर कि कहनेवाला भी कोई न बचे, देखनेवाला भी कोई न बचे तो ही समाधि फलित होगी।

वे बिलकुल ठीक कहते है। महिमा देखनी हो तो कही और जाना चाहिए। मै कोई मदारी नही हू। और तुम्हारी किन्ही वासनाओ को तृप्त करने मे मेरी कोई उत्सुकता नही है। तुम मुझे महिमावान समझो, ऐसी भी मेरी कोई आकाक्षा नही है। तुम्हारी आखो को मै दर्पण नही बनाना चाहता, जिसमे मै अपनी तस्वीर देखू। मैने अपने को देख लिया है, अब किसी दर्पण की मुझे कोई जरूरत नही है।

तो तुम जब मेरे पास आते हो तो यह जानकर ही आना कि खतरे मे जा रहे हो। मरने जा रहे हो। क्योकि जीवन का गहनतम राज मरने की कला मे छिपा है।

प्राचीन शास्त्र कहते है गुरु मृत्यु है। वे बिलकुल ठीक कहते है। कठोपनिषद मे पिता ने अपने बेटे को यम के पास भेज दिया—वह गुरु के पास भेजा है। मृत्यु के पास भेजा। क्योकि जब तक तुम मिटोगे न, तब तक तुम वह न हो सकोगे जो तुम्हे होना चाहिए। यह तुम जो अभी हो गए हो, यह जो गलत ढाचा तुम्हारे चारो तरफ इकट्ठा हो गया है, यह जो तुम समझते हो अभी मै हू—यह तुम्हारा वास्तविक होना नही है, यह तुम्हारा स्वभाव नही, यह तुम्हारा स्वरूप नही।

तो लोग ठीक कहते है। अगर महिमा देखनी हो, कही और जाना चाहिए। अगर महिमा वगैरह देखने से ऊब चुके हो, वैराग्य जगा है, देख ली कि जिदगी बेकार है, अब और खेल-तमाशा देखने की आकाक्षा नही रही है, अब सब खिलौनो से ऊब गए हो, तो मेरे पास आना। उस आखिरी घड़ी मे ही मेरे पास आने का कुछ सार है।

तो पहले तो तुम भटक लो। तुम सब के पास हो आओ। तुम सब जगह देख लो। अगर कही सत्य मिल जाए तो बहुत अच्छा। अगर न मिले तो फिर मेरे पास आना।

लोग ठीक ही कहते है। लोगो से नाराज होने की कोई जरूरत नही है।

क्या मैकदो मे है कि मदारिस मे वो नही

अलबत्ता एक वा दिले-बेमुद्दआ न था।

बडा मधुर वचन है। तथाकथित ज्ञानियो के स्कूलो मे कौन-सी चीज की कमी है? कुछ ऐसी चीज की कमी है जो कि मधुशाला मे भी है, लेकिन ज्ञानियो के स्कूलो मे नही है।

क्या मैकदो मे है कि मदारिस मे वो नही।

—मदरसे मे जो नही है, वह मधुशाला मे है। वह क्या है?

अलबत्ता एक वा दिले-बेमुद्दआ न था।

—निष्काम हृदय, आकाक्षा से रहित हृदय, वासना से शून्य हृदय, तत्वज्ञानियो के मदरसो मे भी नही है। वहा भी लोग वासना से ही जाते है। ईश्वर को भी खोजने जाते है ऐश्वर्य की तलाश मे। स्वर्ग को भी मागते है सुख की आकाक्षा मे। भगवान को भी भजते है भय के कारण। बेमुद्दआ न था। अभी उनके मन की फलाकाक्षा समाप्त नहीं हुई। फलाकाक्षा समाप्त हो, तो ही धर्म से तुम्हारा सबध जुडता है। फलाकाक्षा समाप्त हो, कुछ पाने जैसा न लगे, तो ही परमात्मा पाया जाता है। परमात्मा भी पाने जैसा न लगे, तो ही परमात्मा पाया जाता है। जब तुम परमात्मा को भी चाहने की उत्सुकता मे नही हो, तुम कहते हो, सब चाह व्यर्थ हो गई, देख ली सब चाहते और सभी चाहते व्यर्थ पायीं, चाह मात्र व्यर्थ हो गयी, अचाह पैदा हुई—बस उसी अचाह मे परमात्मा उपलब्ध होता है।

यहा जो महिमा है वह शून्य की है। यहा जो महिमा है वह मृत्यु की है, महामृत्यु की है। और जो मै तुम्हे सिखा रहा हू वह बहुत गहरे अर्थो मे आत्मघात है—तुम कैसे अपने को मिटा लो, पोछ

डालो ।

समझा था न समझा है, न समझेगा 'रजा' कुछ
दीवाना था, दीवाना है, दीवाना रहेगा।

यहा तो मैं पागलो को बुलाया हू। क्योकि जो बुद्धिमान नही पा सकते, वह पागल पा लेते है। जो ज्ञानी नही पा सकते, वह प्रेमी पा लेते है। जो ज्ञानियो के मदरसे मे न मिलेगा, वह मस्तो के मैकदे मे मिल जाता है।

यह तो एक मधुशाला है। यहा तो जो मेरे साथ उस आत्यतिक गहराई पर नाचने को उत्सुक है । वे गहराइया दिखाई भी नही पड़ती, उन गहराइयो के लिए शब्द भी नही है। वे निराकार की है। तो तुम जैसे-जैसे मेरे सरगम मे बैठोगे, जैसे-जैसे पास आओगे, जैसे-जैसे मेरे और तुम्हारे बीच उपनिषद का सबध बनेगा—उपनिषद यानी पास बैठने का। उपनिषद के वचन उन गुरुओ के वचन है, जिनके पास कुछ शिष्य बैठ गए। ये गुरुओ ने कहे कम है, शिष्यो ने पकड़े ज्यादा है।

जब मेरे और तुम्हारे बीच उपनिषद का सबध बनेगा, जब तुम पास आते-आते इतने पास आ जाओगे कि मेरे अतरराग से तुम्हारा राग मिल जायेगा, मेरी वीणा और तुम्हारी वीणा साथ-साथ कपित होने लगेगी, स्पदन सहयोग मे होने लगेगा, मेरी श्वासे और तुम्हारी श्वासे एक साथ चलने लगेगी, मेरा हृदय और तुम्हारा हृदय एक साथ धडकने लगेगा, मेरा होना और तुम्हारा होना दो अलग सीमाओ मे बटा हुआ न होगा, एक-दूसरे मे डूबने लगेगा—ऐसे मिलन मे उपनिषद का सबध बनता है। उस क्षण तुम्हे महिमा पता चलेगी, जो यहा हो रहा है उसकी। यहा हाथ से भभूत नही गिरायी जा रही है, न स्विस मेड घड़िया प्रगट की जा रही है। यहा कुछ और हो रहा है, जो उन्ही को दिखाई पड़ेगा जिन्हे आख बद करने की कला आ गई। यहा कुछ और घट रहा है जो उन्ही को दिखाई पडेगा, जिन्होने ससार को खूब देख लिया, खूब देख लिया और कुछ भी न पाया। अगर देखने की कुछ और महिमा की आकाक्षा रह गई हो तो भटक लेना, उसे पूरा कर लेना। हार जाओ सब भाति, तब मेरे पास आ जाना। हारे को हरिनाम।

मै दीवाना भला, मुझको मेरे सहरा मे पहुचा दो
कि मै पाबदे-आदाबे-गुलिस्ता हो नही सकता

मेरे पास आने का उनके लिये निमत्रण है जो बगीचे के नियमो मे ठीक-ठीक न बैठ पाये, जो समाज की व्यवस्था मे ठीक-ठीक न बैठ पाये। कि मै पाबदे-आदाबे-गुलिस्ता हो नही सकता—कि जो बगीचे की व्यवस्था और क्यारियो मे, बटाव मे, आयोजन मे, शिष्टाचार मे ठीक न बैठ पाये—जो जगली पौधे है, जो माली के काटने को बर्दाश्त नही करते, जिन्होने अपने होने की परिपूर्ण स्वतत्रता को स्वीकार किया है, जो वही होना चाहते है जो परमात्मा ने उन्हे होने के लिये भेजा है। अन्यथा नही। जो किसी और नीति-नियम, और किसी मर्यादा को नही मानते, जो जीवन पर परम श्रद्धालु है—उन्ही के लिए निमत्रण है। और वे ही आयेगे तो आ पायेगे। दूसरे आ भी जायेगे भूले-भटके तो मुझसे उनका कोई सबध न बन सकेगा। वे आयेगे, परदेशी रहेगे। वे मेरे अग न हो पायेगे। न मै उनका अग हो पाऊगा। वे आयेगे और मुझसे बिना परिचित हुए लौट जाएगे। बहुत आते है, लौट जाते है। सभी आते है, सभी का परिचय थोडे ही हो पाता है। हजार आते है तो दस रुक पाते है। दस रुकते है तो एक का परिचय हो पाता है।

'किंतु यह तो मेरा मत हुआ। रहना तो उन लोगो के साथ है, जो आपके विरोध मे है। अत कृपापूर्वक बताए कि कैसे अपने सत्य की रक्षा करू।'

सत्य अपनी रक्षा स्वय करता है। तुम डरे हो। तुमने अभी मेरे सत्य को जाना नही है। माना होगा, इसलिए डर है। इसलिए तुम्हे रक्षा करने का खयाल पैदा होता है। इसलिए तुम सोचते हो, कही वे खडन न कर दे। सत्य का कभी कोई खडन कर पाया?

मजनू प्रेम मे पड गया है लैला के। गाव के राजा ने उसे बुलाया और कहा, 'तू बिलकुल पागल है। यह लैला साधारण-सी बदशकल औरत है। तेरी दीवानगी और तेरा पागलपन देखकर मुझे भी दया आती है।' उसने अपने महल से बारह सुदरिया बुलवाई और कहा, तू कोई भी चुन ले। परम सुदरिया थी—राजा के महल की सुदरिया थी। मजनू ने गौर से देखा और उसने कहा, 'लेकिन लैला इनमे कोई भी नही।' राजा ने कहा, 'पागल हुआ है? लैला इनके पैर की धूल भी नही है।'

मजनू हसने लगा और उसने कहा, 'हो सकता है। लैला को आपने कभी देखा?'

राजा ने कहा, 'बिना देखे नही कह रहा हू। तेरी दीवानगी देखकर मै भी उत्सुक हो गया था कि कुछ होगा। तो मैने भी

लैला को देखा, कुछ भी नही है। पागल। अपने को होश मे ला ।' मजनू ने कहा कि फिर आपने देखा ही नही। असल मे लैला को देखने के लिए मजनू की आख चाहिए—मुझसे आखे उधार लेते तो ही देख सकते थे—तुम्हारी आखो से यह न हो सकेगा।

तो अगर तुमने मेरे प्रेम को पहचाना है, मेरे सत्य को पहचाना है, तो फिर रक्षा की फिक्र नही है। सत्य अपनी रक्षा स्वय कर लेता है। सत्य कितनी ही असुरक्षा मे हो, सुरक्षित है। तुम बस उसे जीने मे लग जाओ। मै जो तुमसे कह रहा हू, उसको तुम केवल शब्दो का विलास मत बनाओ—जीवन की तरगे बनने दो। तुम जीने मे लग जाओ। तुम उनकी मत सुनो, वे क्या कहते है। मैने जो कहा है, उसे गुनो और उसे जीवन मे उतारने लग जाओ। तुम जैसे-जैसे सत्यतर होने लगोगे, वैसे-वैसे ही तुम पाओगे, सत्य के लिए किसी सुरक्षा की कोई जरूरत नही। सत्य सूली पर भी लटका हो तो भी सिहासन पर ही होता है।

दूसरा प्रश्न आखिर मै क्या चाहता हू ? जो कुछ भी मुझे मिला है और मिल रहा है, वह कम नही। लेकिन मन मे एक बेचैनी बनी ही रहती है आखिर मै क्या पाकर सतुष्ट होऊगा ?

पाकर कभी कोई सतुष्ट हुआ ? बात ही गलत पूछ रहे हो। दिशा ही गलत पकडी है। जिसने ऐसा सोचा कि कुछ पाकर सतुष्ट होऊगा वह तो कभी सतुष्ट नही हुआ। सतुष्ट तो वही होता है, जो यह समझ लेता है कि पाने से सतोष का कोई सबध नही है। पाने मे ही तो असतोष छिपा है। दस हजार है तो लाख होने चाहिए लाख है तो दस लाख होने चाहिए। दस लाख है तो करोड़ होने चाहिए। वह दस गुने का फासला बना ही रहता है। जितना पाते चले जाते हो, उतनी ही पाने की आकाक्षा आगे हटती जाती है। कभी ऐसी घड़ी नही आती, जब तुम कह सको कि पा लिया।

हा, ऐसा नही है कि लोग सतुष्ट नही हुए है, लेकिन सतुष्ट वे हुए है जिन्होने यह असतोष का पागलपन ठीक से पहचाना, कि यह तो पूरा होनेवाला नही है। तुम कितना ही पा लो, तुम्हारी पाने की आकाक्षा और जो तुमने पाया है, उसमे कभी मेल नहीं होगा। तुम जो भी पाओगे, उससे श्रेष्ठतर की कल्पना कर सकते हो—बस खतम हो गई बात। और मनुष्य का यही तो सारा भव-जाल है कि वह श्रेष्ठतर की कल्पना कर सकता है।

सुदरतम स्त्री पा ली, लेकिन क्या ऐसी स्त्री तुम पा सकते हो जिसमे तुम भूल-चूक न खोज पाओगे ? क्या तुम ऐसी स्त्री पा सकते हो जिससे सुदर की कल्पना न कर पाओगे ? क्या तुम ऐसी स्त्री पा सकते हो जिससे सुदर का सपना न देख पाओगे ? फिर कैसे सतुष्ट होओगे ?

तुमने एक बड़ा मकान बना लिया, क्या तुम सोचते हो मकान ऐसा हो सकेगा जिसमे कोई तरमीम और सुधार न हो सके, जिससे बेहतर न हो सके ? अगर बेहतर हो सकता है, असतोष शुरू हो गया।

कल्पना श्रेष्ठ की तो कभी भी मौजूद रहेगी। सतोष कैसे होगा ? तुम कुछ भी हो जाओ, तुम कुछ भी पा लो—इससे तुम्हारे सतोष होने का कोई सबध नही है। फिर सतोष का किस बात से सबध है ? सबध है इस बात से कि तुम यह असतोष की प्रक्रिया समझ लो। इसे जान लो। इसे देख लो। इसके देखने और जानने मे ही यह पूरा जाल गिर जाता है अचानक तुम पाते हो कि असतुष्ट होने का कोई कारण ही नही है।

सतोष अभी और यही होने का ढग है। असतोष, कल बेहतर हो सकता है, उस आकाक्षा के पीछे दौड है। सतोष जो है, इससे बेहतर हो ही नही सकता, इस भावदशा का नाम है। इस क्षण जो है इससे बेहतर हो ही नही सकता। जो बेहतर से बेहतर हो सकता था वह हो गया है।

इसलिए ज्ञानियो ने कहा है, इस ससार से बेहतर ससार हो ही नही सकता।

उमरखैयाम का एक गीत है कि हे परमात्मा। अगर तू हमे एक मौका दे तो हम दुनिया को फिर से मिटाकर अपने हृदय के अनुकूल बना ले।

लेकिन क्या तुम अपने हृदय के अनुकूल दुनिया को कभी भी बना पाओगे ? यह मौका भी दिया जा सकता है। यह मौका ही तो दिया गया है। ससार और क्या है ? यह मौका ही है कि तुम अपने हृदय के अनुकूल बना लो। अपना घर, अपना बगीचा, धन-दौलत, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, अपनी प्रतिमा, पत्नी-बच्चे—तुम बना लो अपने हिसाब से।

लेकिन कौन कब तृप्त हो पाया है। सिकदर भी खाली हाथ

विदा होते है।

खाली हाथ हम आते है, खाली हाथ हम विदा होते है।

लेकिन अगर तुम महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट के वचन समझो, तो वे कहते है, भरे प्राण हम आते है, भरे प्राण हम रहते है, भरे प्राण हम जाते है। खाली हाथ पर नजर ही गलत है। हृदय पर ले जाओ नजर, हृदय भरा ही हुआ है। इसी क्षण जो होना था हुआ है।

इसी को मै आस्तिकता कहता हू कि इस क्षण जो हुआ है, परम है, आत्यतिक है। इससे श्रेष्ठ का कोई उपाय नही। फिर अचानक तुम सतुष्ट हो। फिर सब दौड खो गई। अभी और यहा हो जाना ही सतोष है।

किन जहागीर बहारो के तसव्वुर मे 'नदीम'
मौसमे-गुल मे उजड़ा हुआ लगता है तू ?

वसत आया हुआ है। फूल खिले हुए है। पक्षी गीत गुनगुना रहे है। सूरज निकला है। सब तरफ किरणो का जाल फैला है। *मौसमे-गुल मे उजड़ा हुआ लगता है तू।* लेकिन मामला क्या है ? वसत चारो तरफ बरस रहा है। और तुम क्यो उजडे-उजड़े खडे हो ?

किन जहागीर बहारो के तसव्वुर मे 'नदीम'
मौसमे-गुल मे उजडा हुआ लगता है तू ?

—तू किन सपनो मे खोया हुआ है ? किन सपनो की बहारो मे खोया हुआ है ? दुनिया को विजित कर लेने की, दुनिया को जीत लेने की, किन कल्पनाओ मे तू तल्लीन है कि वसत को देख नही पा रहा है जो चारो तरफ मौजूद है।

किन जहागीर बहारो के तसव्वुर मे 'नदीम'
मौसमे-गुल मे उजडा हुआ लगता है तू ?

वसत तो है। परमात्मा है। अब और क्या होना है ? जीयो। जीने की योजना मत बनाओ। गाओ। वसत तो आ गया, द्वार पर दस्तक दे रहा है। जागो। नाचो। उत्सव मनाओ। पाने को यहा कुछ भी नही है, जो पाने को है वह तुम्हे मिला ही हुआ है। उसे तुम लेकर ही जन्मे हो। वह तुम्हारा स्वभाव है। स्वभाव को देखते ही व्यक्ति सतुष्ट हो जाता है। सतोष स्वभाव के अनुभव की छाया है। स्वभाव के प्रतिकूल, स्वभाव से अन्य की योजना, कल्पना मे, भटकता हुआ आदमी असतुष्ट हो जाता है। असतोष, स्वभाव से अन्य होने की चेष्टा की छाया है।

मैने मासूम बहारो मे तुझे देखा है
मैने मौहूम सितारो मे तुझे देखा है
मेरे महबूब तेरी पर्दानशीनी की कसम
मैने अश्को की कतारो मे तुझे देखा है।

फूलो की तो बात और, आसुओ मे भी उसी के दर्शन होगे।

मैने अश्को की कतारो मे तुझे देखा है।

एक बार देखने की कला आ जाये, आख आ जाये, नजर आ जाये, तो ककड-पत्थर हीरे हो जाते है। साधारण-सा भोजन परम प्रसाद हो जाता है। साधारण-सा घर महलो को मात करने लगता है। हवा का जरा-सा झोका, अपरिसीम कृपा की वर्षा हो जाता है। नजर की बात है। नजर न हो तो हीरे-जवाहरात भी ककड-पत्थर, महल भी झोपडे, जीवन की परमधन्यता का कोई पता ही नही चलता। सब बासा-बासा लगता है। नजर की ही बात है। नजर को बदलो।

अगर लगता है असतोष है, तो किसी गलत नजर को पकडे बैठे हो।

पूछा है, 'आखिर मै क्या चाहता हू ?'

चाहने को कुछ है ही नही, मिला ही हुआ है। इसीलिए तो कितना ही चाहो, मुश्किल मे पडोगे। जो मिला ही हुआ है, उसे तुम खोज-खोजकर थोडे ही पा सकोगे। खोज छोडो, ताकि चैतन्य घर पर लौट आये। खोज छोड़ो। क्योकि खोज के कारण ही तुम अपने बाहर गए हो और उसे नही देख पा रहे हो जो तुम हो। रुको। परमात्मा को खोजना थोडे ही है। सब खोज छोड देनेवाला व्यक्ति अचानक पाता है, परमात्मा है। तुम्हारी हालत ऐसी है कि हीरा सामने पडा है, लेकिन तुम कही दूर आखे लगाए बैठे हो, चाद-तारो पर, कही दूर तुम्हारा सपना तुम्हे भटका रहा है। यहा तुम देखते ही नही, यहा तुम अधे हो जाते हो।

मेरे देखे, लोगो की एक ही बीमारी है—वह सब दूरदृष्टि है। दूर का तो देख पाते है, पास का नही देख पाते। निकट-दृष्टि नष्ट हो गई है। ऐसा होता है न कभी-कभी आखो मे, किसी की आख पर चश्मा होता है, जिसमे वह पास का देख पाता है। क्योकि पास का बिना चश्मे के नही देख पाता, किताब नही पढ़ सकता है, हालाकि चाद-तारे देख सकता है। दूर का दिखाई पडता है, लेकिन पास का नही दिखाई पड़ता। कुछ होते है जिन्हे पास का दिखाई पडता है, दूर का नही दिखाई पड़ता। तो दो तरह

के चश्मे होते है। लेकिन आध्यात्मिक जीवन मे एक ही तरह की बीमारी है। भीतर की आख की एक ही बीमारी है। वह बीमारी है कि पास जो है, वह दिखाई नहीं पड़ता है। जो दूर है, वह दिखाई पड़ता है। जो दूर है, वह दिखाई पड़ता है, इसलिए दूर की आकाक्षा होती है। दूर के ढोल सुहावने। तो मन भटकता है।

किन जहागीर बहारो के तसव्वुर मे 'नदीम'
मौसमे-गुल मे उजड़ा हुआ लगता है तू ?

पास देखने की दृष्टि का नाम धर्म है। जो मिला हुआ है, उससे पहचान बनाने का नाम धर्म है। जिसे कभी खोया ही नहीं है उसकी प्रत्यभिज्ञा, उसका ही नाम धर्म है।

'आखिर मै क्या चाहता हू ? जो कुछ भी मुझे मिला है और मिल रहा है, वह कम नही है।'

लेकिन कम तुम्हे लग रहा है। कम न होगा। कम नही है। लेकिन कम तुम्हे लग रहा है। क्योकि मन कहे जाता है और मिल सकता है, और मिल सकता है, और मिल सकता है।

परसो रात एक सन्यासिनी मुझसे चप्पल मागने लगी कि आपकी चप्पल दे। वह पहले भी आयी थी, तब भी उसने चप्पल मागी थी। मैने उसे कुछ दिया था, क्योकि सवाल, क्या देता हू, यह थोड़े ही है। मैने दिया। उसे कुछ दिया था, मैने कहा, यह ले जा। क्योकि चप्पल मागने का रोग बढ़ जाये तो मै मुसीबत मे पड़ जाता हू। कितनी चप्पले दू ? और एक के पास दिखती है तो दूसरा मागने आ जाता है, तीसरा मागने आ जाता है। फिर किसको मना करो। तो मैने उसे काष्ठ की एक छोटी डब्बी दी थी। इस बार वह फिर आई, उसने फिर मागा कि चप्पल। तो मैने उससे कहा, पहले मैने तुझे कुछ दिया था ? उसने कहा, कुछ नही, एक छोटी-सी डिब्बी दी थी। अब अगर इसे मै चप्पल भी दू तो अगले साल यह आकर कहेगी, 'क्या दिया था—चप्पल।' क्योकि सवाल ।

मै तुम्हारे हाथ मे खाली हाथ दू, तो भी कुछ दे रहा हू। देखने की आख चाहिए। और ऐसे मै उठकर तुम्हारे घर भी चला आऊ, तो भी तुम कहोगे, 'यह और एक मुसीबत कहा से घर आ गई। अब इनकी कौन साज-सम्हाल करे।'

दृष्टि की बात है। बहुत मिल रहा है, मगर तुम्हारे पास जो मन है, वह उसे देख ही नहीं पाता, जो है। मन की आदत अभाव को देखने की है।

कभी पता है, दात टूट जाता है तो जीभ वही-वही जाती है। जब तक था, कभी न गई। जब टूट जाता है तो वही-वहीं जाती है। खाली जगह। अभाव।

तुम लाख सरकाते हो वहा से कि क्या सार है, पता तो चल गया एक दफे कि दात टूट गया है—लेकिन फिर, भूले-चूके फिर तुम पाओगे, जीभ वही टटोल रही है। जैसे जीभ अभाव को टटोलती है, ऐसे ही मन जो नही है उसको टटोलता है। जो है, उसे देखने की मन की आदत ही नही है।

लोग मुझसे पूछते है कि परमात्मा दिखाई क्यो नही पड़ता। वह दिखाई इसीलिए नही पड़ता कि वह इतना ज्यादा है, इतना घना है, सब ओर से है, बाहर-भीतर है, देखनेवाला भी वही है, दिखाई पड़नेवाला भी वही है—इसीलिए चूके जा रहे है। इसलिए थोड़े ही कि वह कही दूर है, बहुत दूर है।

अगर बहुत दूर होता, हम पा ही लेते उसे। चाद पर पहुच गए, कितनी दूर होगा।

जब पहला रूसी अतरिक्ष-यात्री वापिस लौटा, तो कहते है खुश्चेव ने उससे पहली बात पूछी, 'ईश्वर मिला ?' तो उसने कहा कि नहीं, कोई ईश्वर नही मिला, चाद बिलकुल खाली है। तो रूस मे लेनिनग्राड मे उन्होने अतरिक्ष-यात्रा के लिए एक अनुसधानशाला बनाई है। उसके द्वार पर ये वचन लिख दिए गए है कि 'हमारे अतरिक्ष-यात्री चाद पर पहुच गए और उन्होने वहा पाया कि ईश्वर नही है।'

जिनको जमीन पर नही मिलता उनको चाद पर कैसे मिलेगा, यह भी तो थोडा सोचो। तुम तो तुम ही हो। देखने की नजर तुम्हारी ही है। मिलता होता तो यहा मिल जाता।

रवीद्रनाथ ने बुद्ध के सबध मे एक कविता लिखी है। कविता बड़ी मधुर है।

बुद्ध वापिस लौटे है, बारह वर्षो के बाद। यशोधरा ने उनसे पूछा है कि मै तुमसे एक ही प्रश्न पूछती हू, इस एक प्रश्न पूछने के लिए जीती रही हू, कि तुम्हे जो वहा मिला, वह यहा नही मिल सकता था ? जो तुम्हे जगल मे जाकर मिला, वह घर मे नही मिल सकता था ? बस एक ही प्रश्न मुझे पूछना है।

बुद्ध को कभी किसी प्रश्न के उत्तर मे ऐसा स्तब्ध नही रहते देखा गया, जैसे बुद्ध स्तब्ध खडे रह गए। यह तो वे भी न कह सकेगे कि यहा नही मिल सकता था। नजर की बात थी। अब

तो यहा भी है। एक दफा आख खुल गई, तो घर मे भी वही है, बाहर भी वही है। दुकान पर भी वही है, मदिर मे भी वही है। इसलिए असली सवाल आख का है।

तुम यह मत पूछो कि क्या चाहता हू। और यह भी मत पूछो कि मै क्या पाकर सतुष्ट होऊगा। कुछ भी पाकर सतुष्ट न होओगे। पानेवाला कभी सतुष्ट हुआ? पानेवाले का असतोष आगे सरकता जाता है, बड़ा होता चला जाता है, फैलता चला जाता है—गुब्बारे की तरह। इसलिए तो अमीर भी गरीब बना रहता है और सम्राट भी भिखारी बने रहते है।

फरीद अकबर के पास गया था। गाव के लोगो ने भेज दिया। कहा कि गाव मे एक मदरसा चाहिए। कह दो अकबर को। तुम्हे इतना मानता है। फरीद गया। अकबर प्रार्थना कर रहा था, सुबह की नमाज पढ रहा था। फरीद पीछे खडा रहा। अकबर ने अपने दोनो हाथ फैलाये, नमाज की पूर्णता पर और कहा, 'हे परमात्मा। और धन दे, और दौलत दे। तेरी कृपा की दृष्टि हो।' फरीद लौट पडा। अकबर उठा, देखा, फरीद सीढियो से नीचे जा रहा है। कहा, कैसे आए? क्योकि फरीद कभी आया भी न था। जब भी जाता था, अकबर ही उसके पास जाता था।

कैसे आए और कैसे चले? फरीद ने कहा, 'मैने सोचा था कि तुम सम्राट हो। यहा भी भिखारी को देखा, इसलिए लौट चला। और फिर मैने सोचा कि तुम जिससे माग रहे हो उसी से मै माग लूगा। बीच मे और यह एक एक दलाल बीच मे और क्यो। गाव के लोगो ने भेजा था कि एक मदरसा खोल दो, यह मागने आया था, लेकिन अब नही। इससे तुम्हारी दौलत मे थाडी कमी हो जाएगी। मै तुम्हे दरिद्र हुआ न देखना चाहूगा। मेरी तो एक ही आकाक्षा है, सभी समृद्ध हो। लेकिन तुम भिखारी हो।'

तुम्हारा सम्राट भी तो माग ही रहा है। और माग रहा है। ओर माग रहा है। जिनके पास है वे भी माग रहे है।

तो एक बात तय है कि मिलने से मागना नही मिटता—त्यागने से मागना मिटता है।

इसलिए तो एक अनूठी घटना इस पूरब मे घटी कि सम्राट तो हमने पाए कि भिखारी है और कभी-कभी हमने कुछ भिखारी पाए जो सम्राट । महावीर, बुद्ध भिखारी होकर खड़े हो गए, कुछ भी उनके पास न था। क्योकि उन्हे एक बात दिखाई पड गई कि दौड़े जाओ, दौड़े जाओ, दौड़े जाओ, पहुचोगे न। ठहरो, खड़े हो जाओ।

खड़े होते ही तुम्हारे सबध शाश्वत से जुड जाते है।

तो मै तुम से यह नही कह सकता कि क्या पाकर तुम सतुष्ट होओगे, मै तुमसे इतना ही कह सकता हू कि पाने से सतोष का कोई सबध नही है। तुम पाने की व्यर्थता देखो। उस व्यर्थता के दर्शन मे ही पाने की दौड गिर जायेगी। तुम अचानक अपने को खडा हुआ पाओगे, दौड़ते हुए नही। अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर की प्रज्ञा थिर हो गई, कपित नही हो रही। उस एक अकपन के क्षण मे ही तुम तृप्त हो जाओगे।

और एक बार तृप्ति की झलक मिल जाये तो राज हाथ आ गया, तो आख हाथ आ गई, तो देखने का ढग आ गया। परमात्मा तो है, देखने का ढग चाहिए।

हुस्न की दुनिया को आखो से न देख
अपनी एक तर्जे-नजर ईजाद कर।

यह जो परमात्मा के सौदर्य का जगत है, यह जो परम सौदर्य का जगत है, इसको साधारण आखो से देखने की कोशिश मत करो, अन्यथा असतुष्ट रहोगे, अभाव मे जीयोगे। भिखारी रहोगे।

हुस्न की दुनिया को आखो से न देख
अपनी एक तर्जे-नजर ईजाद कर।

एक नया ढग, एक नई शैली देखने की खोजो। सतुष्ट हो कर देखो। अभी तुमने असतुष्ट होकर देखा है। असतुष्ट हो कर देखा है तो असतोष बढ़ता चला गया है। तुम्हारी आख मे है तो फैलता चला गया है। सतुष्ट होकर देखो, सतोष आख मे होगा, तुम पाओगे सतोष फैलता जाता है।

तुम्हारे जीवन की दृष्टि ही तुम्हारे जीवन का सत्य हो जाती है। जो तुम विचारते हो वही वास्तविकता हो जाती है। अभी तक तुमने असतोष, असतोष, असतोष, इसको ही साजा-सवारा, इसके ही बीज बोए, इससे ही देखा—निश्चित ही, असतोष बढ़ता चला गया। जो बीज बोओगे, उसकी ही फसल तो काटोगे। यह छोटे-से गणित को पहचानो। थोडा सतोष से देखो। थोड़ा ऐसे देखो कि कोई असतोष नही है, सब है। भरी आख, प्रफुल्ल चित्त, कृतज्ञता से भरे, कृतज्ञता मे डूबे, पगे—ऐसा देखो। अचानक तुम पाओगे, कही तो कुछ कमी नही है। सब तो पूरा-पूरा है। सब तो भरा-भरा है। कही तो

कुछ खाली नही है। क्या है मागने को और ?

ऐसी झलके धीरे-धीरे आएगी, बढ़ती जाएगी। पहले थोड़े बीज खिलेगे, फिर और बीज खिलेगे, फिर और बीजो मे से फूल लगेगे, फूलो मे और और नए बीज लगेगे। एक दिन तुम पाओगे, वसत तुम्हारे चारो तरफ लहराने लगा। उस परम सौदर्य, उस वसत का नाम ही परमात्मा है। वही सतुष्टि है। वही परम तृप्ति है।

तीसरा प्रश्न तेरी दिव्य आग मे जल-जलकर राख हुआ जा रहा हू। अब तो सारे शब्द बद हो चुके—एक आस लिए जी रहा हू।

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मास।
दो नैना नही खाइयो, पिया मिलन की आस।।

नही, इन दो आखो से कोई उस प्यारे को मिलता नही। दो के कारण ही तो मिल नही पाता। उसको पाने के लिए तो एक आख चाहिए। इसलिए तो हम तीसरी आख की बात करते है।

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मास।
दो नैना नही खाइयो, पिया मिलन की आस।।

वचन प्यारा है, लेकिन कवि का है, ऋषि का नही। आकाक्षी का है, जाननेवाले का नही। इन दो आखो से तो जो प्यारा मिलता है, वह बाहर का है। प्रेयसी मिलती है, प्रियतम मिलता है, पति मिलता है, पत्नी मिलती है। इन दो आखो से तो जो मिलता है, वह बाहर का है। ये दो आखे तो बाहर से जोड़ने के द्वार है। नहीं, उससे मिलना हो तो एक तीसरी आख चाहिए। परम प्यारे से मिलना हो जो तुम्हारे भीतर ही घर बसाए बैठा है, तुम्हारी प्रतीक्षा करता है कि कब आओ, कब वापिस लौटो, कितने जन्म हो गये तुम्हे गए, कब घर आओगे; परदेश मे कैसे लुभा गए—उसे पाने के लिए तो एक आख ।

क्योकि दो आख से जो मिलता है, वह द्वैत, और एक से जो मिलेगा, वही अद्वैत।

दो आखे ही तो दो मे तोड देती है सारे ससार को। फिर ये दो आखे तो बाहर देखती है, भीतर नही देख सकती। इसलिए तो समस्त ध्यान की प्रक्रियाओ मे आख बद कर लेनी पड़ती है, ताकि यह दो आखो का ससार तो खो जाये, मिट जाये। एक तीसरी आख—इन दोनो आखो से बहती हुई ऊर्जा, एक तीसरी आख मे सघट हो जाये। दोनो भ्रू-मध्यो के बीच, इन दोनो आखो की ऊर्जा सगृहीत होती है, इकट्ठी होती है—और एक नई ही आख पैदा होती है, जो भीतर देखती है।

ठीक है, आकाक्षा बिलकुल ठीक है, ठीक दिशा मे है। और जलना होगा। राख होना होगा। यह भी सच है।

जिदगी यू भी गुजर ही जाती
क्यो तेरा राहगुजर याद आया ?

जो उस प्रेमी के द्वारा पुकारे गए है, उनको ऐसा ही लगा है जिदगी ऐसे ही गुजर जाती है, और एक मुसीबत आ गई कि तूने पुकारा है। ऐसे ही दुख कुछ कम थे ? अब तेरे विरह की आग जलाती है।

जिदगी यू भी गुजर ही जाती
क्यो तेरा राहगुजर याद आया ?

तेरी याद आ गई, फिर तेरी राह भी मिल गई, अब यह एक नयी पीड़ा का सूत्रपात हुआ।

ससार मे जो पीड़ा तुमने जानी है, वह विध्वसक पीड़ा है। उसमे सिर्फ तुम गलते हो, मिटते हो, पाते कुछ भी नही।

परमात्मा के मार्ग पर भी पीडा है, जलन है, पर बडी सृजनात्मक है। तुम गलते भी हो, मिटते भी हो, कुछ नया आविर्भूत होता है। मृत्यु अकेली नही है वहा। प्रत्येक मृत्यु के साथ नया जन्म है।

हजारो बार मर-मरकर भी न मर पाया प्रेमी कभी।
मरण हर बार आ-आकर नये ही प्राण देता है।।

उस रास्ते पर बहुत बार मरना होता है, प्रतिपल मरना होता है। क्योकि जैसे ही तुम थोडी देर के लिए न मरे अहकार इकट्ठा हो जाता है। इसे पल-पल जलाना होता है। इसे मिटाते ही जाना होता है। नहीं तो जरा ही तुम चूके कि धूल फिर जमी, फिर 'मै' खड़ा हुआ। यह 'मैं' इतना सूक्ष्म है, धन से खडा होता है, पद से खड़ा होता है, त्याग से खडा होता है—यहा तक कि विनम्रता के भाव से खडा हो जाता है कि मै तो ना-कुछ हू। उसमे भी खडा हो जाता है।

हजारो बार मर-मरकर भी न मर पाया प्रेमी कभी।
मरण हर बार आ-आकर नये ही प्राण देता है।।

यह सतत मरण की प्रक्रिया ही ध्यान है, प्रार्थना है, पूजा है,

अर्चना है।

'तेरी दिव्य आग मे जल-जलकर राख हुआ जा रहा हू।'

घबड़ाना मत। धन्यवाद देना उसे। सौभाग्य कि तुम्हे उसने इस योग्य समझा कि तुम्हे जलाये। धन्यभाग कि तुम पर उसकी नजर गई कि तुम्हे जलाए। क्योकि इस जलन मे ही, इस मिटने मे ही नये का सूत्रपात है। सूर्योदय होगा। घबड़ाना मत। पीड़ा भी हो तो रो लेना, आसू बहा लेना, पर यह आकाक्षा मत करना कि बद कर, रोक।

जीसस तक को ऐसी घड़ी आ गई थी। सूली पर लटके हुए, आखिरी क्षण मे, ऊपर की तरफ आख उठाकर उन्होने कहा कि 'हे परमात्मा, यह क्या दिखला रहा है? बद कर।' सूली पर किसको न लगेगा ऐसा। लेकिन फिर उनको होश आ गया, सम्हल गए, तत्क्षण बात बदल दी। वक्त पर बदल दी, ठीक क्षण मे बदल दी, अन्यथा चूक जाते। तत्क्षण फिर आखे ऊपर उठाई और कहा, 'हे परमात्मा, क्षमा कर। तेरी मर्जी पूरी हो। अगर तू जलाना चाहता है तो यही शुभ होगा। अगर तू मिटाना चाहता है, सूली देना चाहता है, तो जरूर यही मेरे हित मे होगा। मेरे कल्याण को तू मुझसे बेहतर जानता है। तेरी मर्जी पूरी हो।'

थक गई है जुबा तो चुप होकर
काम मे आसुओ को लाए है।

रो लेना। कहते न बने, कहना मुश्किल हो जाये, आसुओ से कह देना। मगर विपरीत की प्रार्थना मत करना। पीड़ा को भोग लेना। जलन को स्वीकार कर लेना।

लोग समझाएगे। लोग कहेगे, लौट आओ, भले-चगे थे। यह क्या झझट मोल ले ली?

मीरा को समझाया लोगो ने। चैतन्य को समझाया लोगो ने। बुद्ध को समझाया लोगो ने, 'लौट आओ। यह क्या पागलपन सवार हुआ है? अपनी बुद्धि को सम्हालो।' सारी दुनिया बुद्धिमान है।

तो तुम जब विरह मे रोओगे और जब उसकी आग तुम्हे जलाएगी, और जब तुम्हारा हृदय कटेगा इच-इच, हर कोई तुमसे पूछेगा, 'क्या हुआ है?' तुम न तो लोगो की सुनकर लौटना, न लोगो को समझाने लग जाना। क्योकि कुछ बाते है, जो समझने-समझाने की नही है।

सबब हर एक मुझसे पूछता है मेरे रोने का
इलाही सारी दुनिया को मै कैसे राजदा कर लू।

कैसे सभी को इस राज मे भागीदार बना लू। सभी पूछते है, 'क्यो रो रहे हो? क्यो गा रहे हो, क्यो नाच रहे हो?' 'क्यो' तो खड़ा ही है। जरा भी तुमने अन्यथा किया, लोगो से भिन्न किया कि लोगो ने पूछा, 'क्यो?' लोग चाहते है, तुम ठीक वैसे ही रहो जैसे वे है, रत्ती भर भेद न हो, तुम मूर्तिवत, यत्रवत चलते रहो भीड़ के साथ। जब तुम रोओगे, गाओगे, कभी मस्ती मे हसोगे—यह सब होगा, क्योकि भीतर की यात्रा तुम्हे सभी भावो मे से गुजारेगी। हर भाव का तीर्थ मिलेगा। कभी-कभी ऐसा भी होगा कि तुम बिलकुल पागल मालूम पड़ोगे—हसोगे भी, रोओगे भी, साथ-साथ।

सबब हर एक मुझसे पूछता है मेरे रोने का
इलाही सारी दुनिया को मै कैसे राजदा कर लू।
मैने पूछा कि है मजिले-मकसूद कहा
खिज्र ने राह बतलाई मुझे मयखाने की।

—पूछा मैने कि वह आखिरी मजिल कहा है, तो सदगुरु ने मुझे राह बताई मधुशाला की।

मैने पूछा कि है मजिले-मकसूद कहा
खिज्र ने राह बतलाई मुझे मयखाने की।

—मस्ती की, बेहोशी की, प्रेम की, प्रार्थना की।

खोओ अपने को। जब मै कहता हू, जलोगे, उसका इतना ही अर्थ है कि मिटोगे, डूबोगे। धीरे-धीरे तुम पाओगे, पुराने से सबध टूट गया और एक नई ही चेतना का जन्म हुआ है। इस चेतना मे मस्ती भी होगी, होश भी होगा। इस चेतना मे ऐसी मस्ती होगी कि जिसमे होश है। इस चेतना मे बेहोशी भी होगी, जैसा महावीर कहते है, निवृत्ति ससार से, प्रवृत्ति स्वय से। इस बेहोशी मे ससार के प्रति बेहोशी होगी, परमात्मा के प्रति होश होगा। 'पर' के प्रति बेहोशी होगी, 'स्व' के प्रति होश होगा। बाहर से तो तुम देखोगे, लुट गए, और भीतर से अनत धन तुम्हे उपलब्ध हो जाएगा, खजाने उपलब्ध हो जाएगे।

फिर नजर मे फूल महके दिल मे फिर शमए जली
फिर तसव्वुर ने लिया उस बज्म मे जाने का नाम।

परवाने को देखा है? जलता है। फिर शमा जलती है, फिर दीया जलता है, फिर परवाना आया। कितनी बार जल चुका है, लेकिन फिर-फिर आ जाता है, फिर शमा मे खो जाता है।

निश्चित ही परवानो मे तर्क, चितन, विचारवाले लोग नही, अन्यथा कहते, पागल है, दीवाना है। आदमी तो कहते ही है।

यह धर्म का प्रेमी भी परवाने की तरह है। हमे लगता है कि जलने चला, लेकिन परवाने से तो कोई पूछे, उसके भीतर हृदय से तो कोई पूछे।

फिर नजर मे फूल महके दिल मे फिर शमए जली
फिर तसव्वुर ने लिया उस बज्म मे जाने का नाम।

उसे तो याद आते ही अपने प्रेमी की, उसकी बैठक की धुन पडते ही चारो तरफ फूल खिल जाते है, चारो तरफ दीये जल जाते है।

परमात्मा प्रेम की खोज है। इसमे तुम हिसाब मत लाना। इसमे तुम पूरे के पूरे जाना। तुम यह भी मत कहना कि दो नैना नहि खाइयो, पिया मिलन की आस। तुम इतना भी मत कहना। तुम तो कहना, सब तरह डुबा दो। यह पिया मिलन की आस इतनी गहन हो जाए कि आस जैसी भी मालूम न पडे। आस करनेवाला कोई न बचे भीतर।

जैसे कोई मरुस्थल मे भटक गया हो कई दिनो से और जल न मिला हो, तो पहले प्यास लगती है। प्यास के साथ भीतर यह भाव भी होता है कि मै प्यासा हू। फिर प्यास बढ़ती जाती है, जल नही मिलता। फिर धीरे-धीरे प्यास इतनी सघन होने लगती है कि भीतर कभी-कभी ऐसा खयाल आता है कि मै प्यासा हू, अन्यथा प्यास ही प्यास मालूम पडती है। फिर और एक ऐसी घडी आती है, आखिरी घडी, जब सिर्फ प्यास ही रह जाती है, प्यासा भी नहीं रहता। इतनी भी अब शक्ति नही बचती कि अपने को अलग कर ले और कहे कि मै प्यास का देखनेवाला हू, कि मै प्यास का जाननेवाला हू। प्यास ही हो जाती है। सारा प्यासा प्यास मे रूपातरित हो जाता है। पूरे प्राण प्यास मे जल उठते हैं। उसी घड़ी मे मिलन होता है, जब तुम पूरे के पूरे डूब जाओगे। बचाने की आकाक्षा अपने को करना ही मत। दो आख भी बचाने की आकाक्षा मत करना। क्योकि सब बचाने की आकाक्षा मे तुम अपने को ही बचा लोगे। अपने को गवाना है, खोना है।

आखिरी प्रश्न
आप न जानो गुरुदेव मेरे।
नित तुम्हे पुकारा करती हू
एक बार हृदय मे छेद करो
वह क्षण मै निहारा करती हू
कृपा करो, बचाओ। जल जाऊ, ऐसी भीख दो।

'आप न जानो'—ऐसा कैसे होगा? जिन्होने मुझसे सबध जोड़ा है, कुछ भी उन्हे घटेगा, उसे मै जानूगा। सबध न जोडा हो तो बात अलग। जिन्होने मुझसे सबध जोड़ा है, जिन्होने इतनी हिम्मत की है मेरे साथ चलने की—क्योकि मेरे साथ चलकर मिलेगा क्या? न धन, न प्रतिष्ठा, न पद। होगी पद-प्रतिष्ठा, खो जायेगी। लोक-लाज खोनी पडेगी। गवाओगे ही मेरे साथ, कमाओगे क्या?

तो जिसने मेरे साथ चलने की हिम्मत की है और साहस किया है, उसके भीतर कुछ भी घटे, मुझे पता चलेगा। ततु जुड गए। उसी को तो मै सन्यास कहता हू—मुझ से जुड जाने का नाम। वहा तुम्हारे हृदय मे कुछ खटका होगा तो मुझे पता चलेगा। तुम्हे भी पता चलेगा, शायद उसके भी पहले पता चल जाए।

'आप न जानो'—ऐसा होगा नही। बस एक शर्त तुम पूरी कर देना—जुड़ने की—उसके बाद शेष मै सम्हाल लूगा। पहली ही शर्त पूरी न हुई तो फिर शेष नही सम्हाला जा सकता। और घबड़ाओ मत।

सबा ने फिर दरे-जिदा पे आ के दी दस्तक
सहर करीब है दिल से कहो न घबराये।

सुबह की हवा आ गई, कारागृह पर उसने फिर से दस्तक दी।

सबा ने फिर दरे-जिदा पे आ के दी दस्तक
सहर करीब है दिल से कहो न घबराए।

इधर मै आया हू, तुम्हारे हृदय पर दस्तक दी है। अगर तुम्हे सुनाई पड़ गई है—सहर करीब है, दिल से कहो न घबराए।

ये जो पीड़ा के क्षण होगे, किसी दिन तुम इनके लिए अपने को धन्यभागी समझोगे। आज तो पीडा होगी ही। राह पर पीडा होती है। मजिल पर पहुचकर यात्री को पता चलता है कि जो पीडा थी वह तो कुछ भी न थी, जो पाया है वह अनत गुना है।

खुशबुओ के सफर मे गुजरी है
चादनी के नगर मे गुजरी है
भीख है, बाकी जिदगी है वही

जो तेरी रहगुजर मे गुजरी है।

एक दफा पहुचकर पता चलता है कि और सब—

खुशबुओ के सफर मे गुजरी है

चादनी के नगर मे गुजरी है।

भीख है—और सब भीख है —चाहे खुशबुओ का रास्ता हो, चाहे चाद की नगरी हो।

बाकी जिंदगी है वही।

जो तेरी रहगुजर मे गुजरी है।

जो परमात्मा को खोजने मे गुजरी है, वही जिंदगी है। बाकी जिंदगी का नाममात्र है।

तो एक तरफ से तो तुमसे कहता हू, सब गवाना होगा। लेकिन धन्यभागी है वे जो गवाने को राजी है। क्योकि वे ही सभी कुछ पाने के अधिकारी हो जाते है। एक तरफ से तो लगेगा, तुम खोने लगे, दूसरी तरफ से तुम पाओगे, पाने लगे।

खोया हुआ-सा रहता हू अक्सर मै इश्क मे

या यू कहो कि होश मे आने लगा हू मै।

ससार छूटने लगेगा—सत्य मिलने लगेगा। जुआरी चाहिए। अपने को दाव पर लगानेवाले चाहिए। अगर तुमने अपने को दाव पर लगा दिया तो तुम फिक्र मत करो। तुमने अगर सबध बनाने की हिम्मत कर ली है तो कुछ उत्तरदायित्व मेरा भी है। जब तुम मुझसे जुड़ते हो, तुम अकेले ही थोडे ही जुड रहे हो, मै भी तुमसे जुड़ रहा हू। इतना ही खयाल रखना कि 'तुम मुझसे जुड़े हो?' कही ऊपर-ऊपर तो नही है बात? कही कहने भर की तो नही है बात? क्योकि बहुत लोग आ जाते है। कोई आता है, मुझसे कहता है, बस अब आपके चरणो मे सब समर्पण है। तो मै कहता हू, ठीक, तो अब सन्यास ले लो। वह कहता है, यह जरा मुश्किल है। सब समर्पण है। यह जरा कठिन है।

क्या कह रहे थे अभी क्षणभर पहले? सब समर्पण है। सब समर्पण का तो अर्थ यह था कि सन्यास की तो छोड़ो, अगर मै कहता कि जाओ, डूब मरो नदी मे, तो भी चले गए होते। अगर बचाना होता तो मै भागा हुआ आता। तुम्हे चिता की जरूरत न थी। लेकिन लोग शब्दो का उपयोग करते है, शायद अर्थ का भी उन्हे बोध नही। औपचारिक बाते लोग सीख गए है। उपचार निभाते है। सब समर्पण है। सब मे सन्यास समाविष्ट न था? सब मे तो मौत भी समाविष्ट थी।

बस इतना ही तुम खयाल रखना, तुम्हारी तरफ से पूरा हो, प्रामाणिक हो, तुम्हारी तरफ से हार्दिक हो—फिर यह न होगा कि मै न जानू। जो भी हो रहा है, मै जानता रहूगा।

तुम्हारी प्रार्थना जरूरी नही कि पूरी करू, क्योकि तुम तो जल्दी ही घबड़ा जाते हो। तुम कहते हो, अब मत रुलाओ, अब बहुत हो गया। तुम तो कहते हो, अब मत जलाओ, अब बहुत हो गया। तुम तो जल्दी ही उकता जाते हो, जल्दी ही घबडा जाते हो। मेरा उपयोग ही यही है तुम्हारे साथ कि तुम्हे हिम्मत बधाऊ, कि बस थोड़ी दूर और, ज्यादा नही चलना है।

बुद्ध एक बार एक गाव के पास से गुजरे, दूसरे गाव जा रहे थे। गाव मे लोगो से पूछा, कितनी दूर है? गाव के लोगो ने कहा, यही कोई दो कोस। फिर कोई दो कोस चल चुके जगल मे। लकडहारा आता था, उससे पूछा कि भई दूसरा गाव कितनी दूर? उसने कहा, बस यही कोई दो कोस। बुद्ध मुस्कुराए। आनद जरा क्रोध मे आ गया। उसने कहा, गाव के बदतमीज बेईमान लोग। दो कोस हम चल भी चुके और अभी भी दो कोस है, यह कहता है।

फिर कोई दो कोस चल चुके, अब तो साझ भी होने लगी, सूरज भी ढलने लगा और एक आदमी से पूछा, तो उसने कहा, यही कोई दो कोस, बस अब पहुचते ही है। आनद ने कहा कि इस तरह के झूठ बोलनेवाले लोग मैने कभी नही देखे। यात्रा करते जिंदगी हो गई।

बुद्ध ने कहा, ये झूठ बोलनेवाले लोग नही है, ये मेरे जैसे लोग है। ये बड़े अच्छे लोग है। ये हिम्मत बधाते है। ये कहते है, बस, जरा दो कोस। ये तुम्हे चलाए जा रहे है। देखो, छह कोस तो चला ही चुके।

अब मै भी तुमसे कहता हू, दो ही कोस है।

तुम कई बार थक जाते हो, बैठ जाना चाहते हो, तुमसे कहना पड़ता है, बस होने को ही है।

सबा ने फिर दरे-जिदा पे आ के दी दस्तक

सहर करीब है दिल से कहो न घबराए।

आज इतना ही।





ग्यारहवां प्रवचन

अध्यात्म प्रक्रिया है जागरण की

सूत्र

अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोव कसायथोव च।
न हु भे वीससियव्व, थोव पि हु त बहु होइ।।२६।।

कोहो पीइ पणसोइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो।।२७।।

उवसमेण हणे कोह, माण मद्दवया जिणे।
मायं चऽज्जवभावेण, लोभ सतोसओ जिणे।।२८।।

जहा कुम्मे सअगाई, सए देहे समाहरे।
एवं पावाइ मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे।।२९।।

से जाणमजाण वा, कट्टु आहम्मिअ पय।
सवरे खिप्पमप्पाणं, वीय तं न समायरे।।३०।।

सव्वगथविमुक्तो, सीईभूओ पसतचित्तो अ।
ज पावइ मुत्ति सुह, न चक्कवट्टी वि तं लहई।।३१।।

कुछ मिटे-से नक्से-पा भी है जुनू की राह मे
हमसे पहले कोई गुजरा है यहा होते हुए।

शास्त्र का सम्यक उपयोग भी है, असम्यक उपयोग भी। शास्त्र को जो अधे की तरह स्वीकार कर ले, शास्त्र उसके लिए बोझ हो जाता है। शास्त्र को जो समझे, शास्त्र को जो निष्पक्ष होकर विचार करे, शास्त्र को जो जागरूक होकर ध्यान करे, तो शास्त्र से बडी सुगध उठती है, बडी मुक्तिदायी सुगध उठती है।

शास्त्र को पकड़ना मत—सोचना। शास्त्र को अधे की तरह स्वीकार मत करना। अधे की तरह स्वीकार करने मे शास्त्र का अपमान है। आख खोलकर, शास्त्र मे उतरना, शास्त्र को स्वय मे उतरने देना—तो शास्त्र का सम्मान है।

कोई भी सदगुरु तुम्हे अधा नही बनाना चाहता है। क्योकि वस्तुत तो, तुम्हारी आख मे ही तुम्हारा गुरु छिपा है। तो सभी सदगुरु तुम्हारी आख खोलना चाहते है। उतनी ही देर तुम्हारे साथ होना चाहते है कि तुम्हारी आख खुल जाये, कि तुम्हे अपने भीतर का गुरु मिल जाये।

महावीर के ये वचन जैन पढते है, अधे की तरह। और अ-जैन तो पढेगे क्यो। गीता हिदू पढ़ते है, अधे की तरह। गैर-हिदू तो फिक्र क्यो करेगे। कुरान मुसलमान पढते है, दोहराते है तोते की तरह। गैर-मुसलमान तो फिक्र ही क्यो करेगा।

मेरे जाने, तुम शास्त्र को तभी समझ सकोगे जब तुम न हिदू हो, न मुसलमान हो, न जैन हो। क्योकि अगर पक्षपात पहले से ही तय है, अगर तुमने जन्म से ही तय कर रखा है कि क्या ठीक है, तो अब ठीक की खोज कैसे करोगे? मान ही लिया हो कि सत्य कहा है, तो आविष्कार का उपाय कहा रहा? तुमने जल्दी स्वीकार कर लिया, खोजे बिना स्वीकार कर लिया, तो तुम खोज से वचित रह जाओगे।

ये महापुरुषो के चरण-चिह्न तुम्हे बाध लेने को नही है, तुम्हे मुक्त करने को है। और ये चरण-चिह्न बडे मिटे-मिटे से है। काफी समय बीत गया, इन राहो पर और लोग भी गुजर चुके है। इन चरण-चिह्नो को अधे की तरह मत मानकर चलना, अन्यथा भटकोगे। जागना, खोजना। इन चरण-चिह्नो मे अपने चरणो की गति को खोजना है, अपनी चरणो की शक्ति को खोजना है।

कुछ मिटे-से नक्से-पा भी है जुनू की राह मे
हमसे पहले कोई गुजरा है यहा होते हुए।

और सौभाग्यशाली है हम कि हमसे पहले लोग यहा गुजरे है। वे जो कह गये है, उनके जीवन का अनुभव जो बिखेर गये है, उससे तुम बहुत कुछ पा सकते हो। लेकिन पाने के लिए बडी समझदारी चाहिए।

समझो। जीवन से बहुत कुछ पाया जा सकता है। लेकिन तुम तो जीवन से भी नही पाते हो। शास्त्र तो जीवन की छाया मात्र है, प्रतिफलन है। शास्त्र जीवन से निकलते है, जीवन शास्त्र से नही निकलता। तुम्हे जीवन मिला है, उससे तुम कुछ नही पाते, तो बहुत कठिन है कि तुम शास्त्र से कुछ पा सकोगे। क्योकि मूल से नही मिलता कुछ, छाया से क्या मिलेगा?

जो जानते है, जो जागकर जीते है, जो हिम्मत और साहस से जीते है, जिनके जीवन का आधार सुरक्षा, सुविधा नही है, साहस

है—वे जीवन से भी निचोड़ लेते है सत्य को। वे शास्त्र से भी निचोड़ लेते है सत्य को। जो जागकर जीते है वे तो छाया से भी मूल को खोज लेते है क्योकि छाया मे भी—'कुछ मिटे-से नक्से-पा' कुछ धुधले हो गये पैरो के चिह्न है।

अभागे है वे, जो जीवन से भी वचित रह जाते है। सौभाग्यशाली है वे, जो कि शास्त्रो से भी खोज लेते है।

इधर महावीर के वचनो पर हम चर्चा कर रहे है—इसलिए नही कि तुम उन्हे मान लो। मानने से कभी कुछ हुआ नही। मानना तो कमजोर की आदत है।

वह कहता है, 'कौन चले, कौन झझट करे। ठीक ही कहते होगे। हम पूजा करने को तैयार है। हम शास्त्र को फूल चढा देगे। कहो, शोभा-यात्रा निकाल देगे। लेकिन हमसे जीवन बदलने को मत कहो। वह जरा ज्यादा हो गया।'

पूजा हमारी तरकीब है शास्त्र से बचने की। मदिर तुम्हारे धर्म के प्रतीक नही, धर्म के साथ तुमने जो चालाकी की है, उसके प्रतीक है।

मन बडा चालाक है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने नौकर से कहा था कि मेरे जूतो पर पालिश कर दे।

'अरे फजलू, इतनी देर हो गई और अभी तक मेरे जूतो पर पालिश भी नही हो पायी ?'

'सरकार। यह दूसरा बूट हाथो मे है।'

'और पहला ?'

नौकर ने कहा, 'उसे इसके बाद हाथ मे लूगा सरकार।'

पहला। दूसरे के बाद।

मन बहुत चालाक है। बडी तरकीबे खोजता है। ऐसी तरकीबे खोजता है कि दूसरे तो धोखा खाते ही है, खुद भी धोखा खा जाता है। इस मन से थोडे जागना। मन ही तुम्हे मनन नही करने देता है। मन ही तुम्हे उतरने नही देता। जहा भी जाते हो, तुम्हारी गदी छाया पड़ जाती है। शास्त्र पढ़ते हो, तुम्हारी छाया मे शास्त्र दब जाता है। शब्द सुनते हो, तुम्हारे पास तक पहुचते-पहुचते उनका अर्थ रूपातरित हो जाता है।

ये महावीर के वचन बडे बहुमूल्य है। आज के सूत्र तुम्हारे जीवन को बदल देनेवाले हो सकते है। ये तथ्यगत है। महावीर का कोई रस सिद्धातो मे नही है। महावीर कोई दार्शनिक नही है। महावीर तो सीधे पथ के वैज्ञानिक खोजी है।

इन शब्दो को समझना, मनन करना। बन सके, थोड़ा-थोड़ा उतारना। क्योकि उतारोगे, तभी इनका अर्थ खुलेगा। इनका अर्थ इनके पढने और इनके सुन लेने मे नही है। इनका अर्थ इनके साथ थोडी देर जीने मे है। क्षणभर को भी अगर तुम इनके साथ जीये, तो तुम पाओगे इनकी सचाई, इनकी गहनता, इनकी गभीरता। और क्षणभर भी तुम जीये तो ये सत्य तुम्हारी धरोहर हो जायेगे, ये तुम्हारा हिस्सा हो जायेगे। ये तुम्हारे खून, हड्डी, मास-मज्जा मे समा जायेगे। इन्हे समाने देना।

पहला सूत्र 'ऋण को थोडा, घाव को छोटा, आग को तनिक और कसाय को अल्प मानकर मत बैठ जाना। क्योकि ये थोडे बढ़कर बडे हो जाते है।'

'ऋण को थोड़ा ।' जो भी आदमी ऋण लेता है, पहले थोडा ही मानकर लेता है और सोचता है 'चुका देगे। इतना-सा तो ऋण है। ब्याज भी कुछ ज्यादा नहीं है, चुका देगे।' जो भी ऋण लेते है, इसी आशा मे लेते है कि चुका देगे। ऋण चुकता नही मालूम होता फिर, बढ़ता जाता है। ब्याज घना होता जाता है। ब्याज ही नही चुकता, मूल का चुकाना तो बहुत दूर। और यह साधरण जीवन के ऋण की बात तो छोड दो, जो जीवन का बहुत गहरा ऋण है, वह तो कभी चुकता नही मालूम पडता। ले सभी लेते है, फस जाते है।

महावीर कहते है, सभी ले लेते है तो जरूर मन मे कोई कारण होगा ले लेने का। सभी सोचते है, थोडा है। थोड़ा श्रम कर लेगे, चुक जायेगा।

'ऋण को थोडा, घाव को छोटा ।' कितना ही छोटा घाव हो, यह सोच के कि छोटा है, क्या फिक्र करनी है, बैठ मत जाना, आश्वस्त मत हो जाना, क्योकि घाव प्रतिपल बड़ा हो रहा है, जैसे छोटा-सा बीज बडा वृक्ष हो जाता है। बीज को मिटा देना बडा आसान था, वृक्ष को काटना बहुत मुश्किल हो जायेगा। तो जो जानकार है, वे ऋण लेते ही नहीं। वे कहते है, गरीबी मे जी लेगे, लेकिन ऋण लेकर अमीर होने मे कुछ सार नही, क्योकि वह अमीरी ऊपर होगी, धोखे की होगी, भीतर जलन होगी और भीतर दरिद्रता होगी। रूखी रोटी खाकर सो लेगे, एक बार खा लेगे, पर ऋण न लेगे, क्योकि ऋण बढेगा। शायद पेट मे तो रोटी पड जायेगी, लेकिन प्राणो की शाति खो

जायेगी। शायद ऊपर-ऊपर से तो सब रौनक हो जायेगी, भीतर-भीतर अधेरा हो जायेगा।

महावीर साधारण ऋण की बात नही कर रहे है, वे तो उदाहरण है। लेकिन जीवन मे हम ऐसे बहुत ऋण लिये है। हमारा सारा जीवन ऋण से भरा है। महावीर तो कहते है, परमात्मा से भी मत लेना। लेने की आदत ही मत डालना। क्योकि आदत बढती है। बीज वृक्ष होता है। आज थोड़ा लोगे, कल और थोडा ज्यादा लोगे, परसो और थोडा ज्यादा लोगे—भिखमगे हो जाओगे। यहा तो सम्राट भी भिखमगे है, लेते चले जाते है।

महावीर कहते है, ऋण लेना ही मत। और जब बीज की तरह छोटा अकुर उठे, भीतर भाव उठे, पहली लहर उठे, तभी रोक देना। घाव को छोटा मत मानना, क्योकि छोटे-छोटे घाव बडे होकर नासूर हो जाते है। जो उन्हे प्रथम चरण मे रोक देता है, वही रोक पाता है।

महावीर कहते है, घाव बडा हो जाये, फिर चिकित्सा करने की चिता मे पडोगे, बडी आसानी से घाव को रोका जा सकता है, जब वह बहुत छोटा है, या जब अभी पैदा ही नही हुआ। पैदा होने के पहले ही मार देना।

क्रोध की लहर उठती है—एक घाव उठा आत्मा मे। तुम कहते हो, आज तो कर ले, कल से न करेगे। अब आज तो जो हो गया, हो जाने दो। क्रोध करके तुम पछताते हो, निर्णय भी लेते हो, कल न करेगे। लेकिन जब क्रोध उठता है, तब तो तुम कर ही लेते हो। और फिर तुम कहते हो, यह तो छोटा-सा क्रोध है, कोई युद्ध तो खड़ा नहीं किया, किसी की जान तो ली नही। दो कडे शब्द कह दिये तो क्या बिगड गया? और फिर, बिना कडे शब्द कहे कही काम चला है। कही ससार चला है। यहा अगर बुद्ध बनकर बैठ गये तो लोग बुद्धू समझेगे। यहा जोर-जबर्दस्ती की दुनिया है। यहा अगर हमला न किया तो दूसरे लोग हमला कर देगे। यहा अगर किसी ने आख दमकाई और उसको जवाब न दिया, तो सभी लोग आख दमकाने लगेगे। फिर तो जीना मुश्किल हो जायेगा।

तुम बहाने खोज लेते हो। तुम तरकीबे खोज लेते हो। फिर तुम कहते हो, इतना-सा तो है, इसमे क्या बिगड जायेगा? कौन महानर्क हुआ जा रहा है, कौन-सा महापाप हुआ जा रहा है। छोटा है, क्षमा माग लेगे, प्रार्थना कर लेगे, गगा-स्नान कर आयेगे, पूजा कर लेगे, दान कर देगे—कुछ कर लेगे, लेकिन अभी तो कर लो।

'घाव को छोटा, आग को तनिक ।'

छोटी-सी चिनगारी महलो को जला देती है।

'और कसाय को अल्प मान ।' क्रोध है, लोभ है, माया-मोह है—कसाय है। 'कसाय' शब्द महावीर का बड़ा बहुमूल्य है—जिससे तुम कसे हो, जिससे तुम बधे हो, जो तुम्हारा बधन है। जैसे हिंदू-शास्त्र मे 'पशु' शब्द है। जो पशु का अर्थ है वही जैन-शास्त्रो मे कसाय का अर्थ है। पशु का अर्थ होता है जो पाश मे बधा है। पशु यानी पाश मे बधा, बधन मे पडा। पशु का अर्थ सिर्फ जानवर नही है। पशु का अर्थ है जो बधा है, चारो तरफ जिसके जजीरे है। जो बधा है, वह पशु। जो मुक्त हुआ, वही मनुष्य है। तो सभी मनुष्य दिखाई पडनेवाले लोग मनुष्य नही है। काश! मनुष्यता इतनी सस्ती होती कि दिखाई पड़ने से मिल जाती।

नही, जिनके बधन गिर गये, जिन्होने अपनी पशुता काट दी, पाश काट डाले, जो मुक्त हुए—वही मनुष्य है। जो मनन को उपलब्ध हुए, वही मनुष्य है। जो मनु बने, वही मनुष्य है।

जैनो का शब्द 'कसाय' वही अर्थ रखता है—जो बाध ले, कस दे, जो बाधती चली जाये और तुम सिकुडते जाओ और छोटे होते जाओ, और बधन बोझिल होते चले जाये।

'कसाय' को अल्प मान, विश्वस्त होकर मत बैठ जाना। अल्पता तो धोखा है।

यह तो तरकीब है 'कसाय' की तुम्हारे भीतर प्रवेश की। यह तो बीमारी का उपाय है तुम्हारे भीतर घर बनाने का। यह तो बीज का ढग है पृथ्वी के गर्भ मे प्रवेश करने का।

तुम थोडा सोचो कि बीज बहुत बडा होता, असभव था वृक्षो का होना। उतना बडा बीज पृथ्वी मे प्रवेश कैसे करता? बीज बड़ा छोटा है, यह वृक्षो की तरकीब है। बडा छोटा बीज बनाते है। बड़े से बड़ा वृक्ष भी बडा छोटा-सा बीज बनाता है। कोई भी रध्र, कोई भी जरा-सा छेद पाकर घुस जायेगा पृथ्वी मे। पृथ्वी को पता भी न चलेगा। लेकिन अगर जितने बडे वृक्ष है, इतने ही बड़े उनके बीज होते, तो वृक्ष खो जाते। कहा से पृथ्वी मे प्रवेश होता? इतनी बडी रध्रे, इतने बडे छिद्र कहा खोजते?

बीज, वृक्ष कितना ही बडा हो, छोटे ही बनाता है। छोटे मे

तरकीब है। वृक्ष अपने को पुन पुन जन्माना चाहता है। कई तरकीबे करता है वृक्ष। फूल उगाता है सुदर, तितलियो को लुभाने के लिए। क्योकि तितलियो के पैरो मे लगकर, बीज के छोटे-छोटे कण-पराग, नर पौधे तक पहुच जायेगे, नारी पौधे तक पहुच जायेगे। मिलन हो जायेगा नर और मादा का। तो फूल जो है विज्ञापन है वृक्ष का, बुलावा है तितली को, कि आओ। तितली से प्रयोजन नही है, तितली के पैरो मे पराग लग जाये तो नर मादा को खोज ले, मादा नर को खोज ले, तो बीज-निर्माण हो, तो सतति आगे बढे।

सेमर के फूल देखे। बीज के पास रुई को पैदा करते है। क्योकि सेमर बड़ा वृक्ष है। अगर बीज नीचे ही गिरे तो वृक्ष की छाया के कारण बड़े न हो पायेगे। वृक्ष बड़ी होशियारी कर रहा है। वह साथ मे रुई पैदा कर रहा है। तुम्हारे तकियो के लिए नही, अपने बीज को हवा की यात्रा पर भेजने को, ताकि बीज दूर चला जाये, नीचे न गिरे। ठीक वृक्ष के नीचे गिर जायेगा तो मर जायेगा। इतने बडे वृक्ष की छाया मे कैसे पनपेगा, कैसे बडा होगा? धूप न मिलेगी। पानी न मिलेगा। क्योकि बडा वृक्ष सब पी जायेगा। पूरी भूमि को निचोड़ लेगा। ये छोटे-छोटे बीज तो मर जायेगे। इन बेटे-बेटियो के लिए वह थोडी-सी रुई पैदा करता है। वे रुई के बहाने हवा पर तिर जाते है, हवा के झोके मे दूर निकल जाते है। कही दूर जाकर जमीन खोज लेगे। फिर वहा वे भी बड़े होकर खड़े हो जायेगे।

काम, क्रोध, लोभ, मोह भी बीज की तरह तुम्हारे मन की भूमि मे आते है। इसलिए महावीर का सूत्र बडा बहुमूल्य है। वे यह कहते है, छोटे मानकर मत सोच लेना कि क्या, क्या बिगडता है। जरा-सा बच्चे पर क्रोध कर लिया, क्या हर्ज। अपना ही बच्चा है। उसके ही सुधार के लिए क्रोध कर रहे है। और फिर क्रोध जरा-सा है। एक चाटा भी मार दिया तो क्या, अपना ही तो है। ऐसे छोटे-छोटे बहाने खोजकर क्रोध प्रवेश करता है, माया प्रवेश करती है, मोह प्रवेश करता है, लोभ प्रवेश करता है। आदमी कहता है, कोई ज्यादा तो मै माग नही रहा, थोड़ा-सा ही माग रहा हू। इस ससार मे तो इतनी-इतनी वासनाओ भरे लोग है, मै तो कुछ मागता नही। परमात्मा, एक छोटा-सा मकान मागता हू, छोटी-सी घर-गृहस्थी हो, सुख-शाति हो।

छोटा मिल जायेगा तब तुम बड़ा मागना शुरू करोगे। क्योकि छोटा मिलते ही इतना छोटा हो जायेगा कि तुम्हारी वासना उसमे समा न सकेगी। फिर तुम कहोगे, 'और ।' फिर तुम कहोगे, 'और ।' बीज की तरह जो प्रवेश हुआ था, वह जल्दी ही वृक्ष की तरह पनपने लगेगा। और बीज की तरह जिसे मिटाना अति सुगम था, फिर वृक्ष को काटना मुश्किल हो जायेगा, क्योकि इस वृक्ष की शाखाये तुम्हारी आत्मा मे फैल जायेगी। फिर इस वृक्ष को उखाडने मे तुम्हे लगेगा, तुम्हारे प्राण उखडे। तुम जराजीर्ण होने लगोगे।

कभी खयाल किया, जो आदमी जिदगी भर क्रोध करता रहा है, वह कितना सोचता है क्रोध छोड़ दे। कौन नही सोचता। क्योकि क्रोध जलाता है, व्यर्थ की आग मे गिराता है, जहर से भरता है, जीवन से सारा सुख-चैन खो जाता है। कौन नही चाहता। लेकिन क्रोधी क्रोध छोड नही पाता। लाख सोचता है, छोड दे, छोड नही पाता। क्योकि अब उसे समझ म ही नही आता कि जडे उखाडे कहा से। अब तो उसे ऐसा भी डर लगने लगता है कि मैने सदा ही क्रोध ही तो किया है, क्रोध ही तो मेरा होना है। अगर क्रोध ही गया तो मै कहा बचूगा, मै क्या बचूगा। उसको अपनी प्रतिमा ही खोती मालूम पडती है। क्रोध के बिना वह अत्यत दीन मालूम पडेगा। क्रोध ही उसका बल था। क्रोध मे ही उसकी महिमा थी। क्रोध मे ही वह दूसरो की छाती पर चढ गया था। क्रोध मे ही उसने किसी को पराजित किया था। क्रोध मे ही बाजार मे प्रतियोगिता की थी, प्रतिस्पर्धा की थी। क्रोध मे ही उसने बडा मकान बना लिया था। क्रोध की ही तरगो पर चढ़कर उसने जीवन को जाना है। आज अचानक क्रोध छोड देने की बात उठती है, उठती है, उसी के मन मे उठती है, कोई न कहे तो भी उठती है—क्योकि क्रोध दुख देता है। लेकिन, क्रोध उसकी प्रतिमा मे इतना प्रविष्ट हो गया है रग-रेशे मे, जड़े फैल गई है छोटे-छोटे स्नायुओ मे, ततु-जाल हो गया है।

कभी किसी बडे वृक्ष को पृथ्वी से उखाड़कर देखा। कितने दूर-दूर तक जड़े फैल जाती है। दूसरे वृक्षो की जड़ो को भी अपने मे अटका लेती है। तुम्हारे मकान की भूमि मे चली जाती है। मकान की नीव मे प्रवेश कर जाती है। मकान की ईटो को जकड लेती है।

बैकाक के पास बुद्ध की एक प्रतिमा है, बड़ी मूल्यवान प्रतिमा है। एक वृक्ष उस प्रतिमा मे समाकर बैठ गया है। प्रतिमा

खड-खड हो गई है। वृक्ष ने प्रतिमा के कोने-कोने मे जड़े पहुचा दी है। तुम कहोगे, वृक्ष को अलग क्यो नही कर देते? लेकिन अब वृक्ष को अलग किया कि प्रतिमा गिरेगी। वृक्ष तोड़ रहा है प्रतिमा को, लेकिन वृक्ष ही जोड़े भी हुए है। उसकी ही जड़ो मे प्रतिमा अटकी है, खड-खड हो गई है, टुकड़े-टुकड़े हो गए है। नाक अलग है, लेकिन जड़ो मे अटकी है। हाथ टूट गया है, लेकिन जडो मे फसा है।

जब भी मै इस प्रतिमा को चित्रो मे देखा हू, तभी मुझे आदमी की याद आई। अब भक्त चाहते है कि इससे छुटकारा हो जाये। यह तो मिटाये डाल रही है। इतनी बहुमूल्य प्रतिमा को नष्ट कर डाला इस वृक्ष ने। लेकिन इस वृक्ष को पानी देते है, दुश्मन को पानी देते है। क्योकि जिस दिन इस वृक्ष को हटाया, उसी दिन प्रतिमा खड-खड होकर गिर जायेगी। तोडा भी इसी ने है, जोड़े भी यही है। यही अड़चन है।

क्रोध ही तुम्हे तोड रहा है, क्रोध ही तुम्हे जोडे भी है। लोभ ही तुम्हे तोड रहा है, लेकिन लोभ ही तुम्हे सम्हाले भी है। लोभ ही तुम्हे नर्क की तरफ ले जा रहा है, लेकिन लोभ ही तुम्हारी नाव भी है। अब तुम मुश्किल मे पड़ोगे। नाव छोडो तो डूबे। नाव मे बैठे तो नाव सरक रही है नर्क की तरफ। छोडना भी तुम चाहते हो, एक पैर उठा भी लेते हो, लेकिन छोड़ा तो डूबे।

इसलिए महावीर कहते है, सचेत हो जाना। सावधान हो जाना।

'ऋण को थोडा, घाव को छोटा, आग को तनिक और कसाय को अल्प मानकर विश्वस्त मत हो जाना।' ये छोटे जो आज है, कल बड़े हो जायेगे, क्योकि ये थोड़े ही बढकर बहुत हो जाते है।

मा के गर्भ मे जब पिता का बीज पड़ता है, तो क्या होता है? इतना छोटा होता है कि खाली आख से देखा भी नही जा सकता। इतना छोटा होता है कि दूरबीन चाहिए, खुर्दबीन चाहिए। एक सभोग मे कोई एक करोड़ जीवाणु पिता के वीर्य से मा मे प्रवेश करते है। एक करोड़! वीर्य की एक बूद मे लाखो होते है। इतने छोटे। फिर वही गर्भाधान मे बड़ा होने लगता है। वही बीज एक से दो होता है, दो से चार होता है, चार से आठ होता है—इस तरह बढ़ता है। अपने को ही तोड़ता है। एक होता है, बड़ा होता है, पोषण मिलता है, दो हो जाता है। टूटकर दो टुकड़े हो जाते है, चार हो जाते है, आठ हो जाते है, फैलता जाता है। फिर तुम्हारा पूरा शरीर उसी से निर्मित हुआ है।

कोई सात अरब जीवाणु तुम्हारे शरीर मे है। एक से शुरू हुए, सात अरब तक पहुच गए है। और बहुत जल्दी पहुच जाते है। दिन दूने, रात चौगुने होते चले जाते है। जो आख से नही दिखाई पड़ता था, वही आज तुम्हारा मित्र होगा, तुम्हारा भाई होगा, तुम्हारा बेटा होगा, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारी प्रेयसी। जो अदृश्य था, जिसको देखने के लिए खुर्दबीन चाहिए थी, इतना छोटा इतना बड़ा हो जाता है।

फैलाव प्रकृति का नियम है। यहा किसी भी चीज को जगह दी, वह फैलेगी। फैलना स्वभाव है। इसलिए तो हिदू विश्व को ब्रह्म कहते है। ब्रह्म यानी जो फैलता चला जाता है, जो जानता ही नही कैसे रुके, जो फैलता ही चला जाता है, अनत जिसका विस्तार है, जिसके फैलाव की कोई सीमा नही। यहा छोटी-सी चीज पकड़ो, जल्दी ही बड़ी होने लगती है। इन छोटी-छोटी बातो के कारण तुम भटकते चले जाते हो।

कभी-कभी तुम्हे खयाल भी नही होता। तुम जरूरी काम से जा रहे थे, मा बीमार पड़ी थी और तुम उसके लिए दवा लेने जा रहे थे और किसी आदमी ने रास्ते मे गाली दे दी—भूल गए मा, भूल गए दवा, भूल गए इलाज-चिकित्सा, उससे झगडने खडे हो गए, पहले इससे निपटारा कर लेना है। चाहे इसमे मा मर जाए, लौटकर घर आओ और पाओ कि मा जा चुकी, फिर चाहे पछताओ—लेकिन क्षुद्र भी, अति क्षुद्र भी, अति व्यर्थ भी, जब आता है तुम्हारी आखो मे, तो तुम्हे परिपूर्ण घेर लेता है। इसी तरह तो मजिल खोती चली गई है। तुम बिलकुल हवा की तरगो मे भटकते लकड़ी के टुकडे हो, जहा हवा आ जाती है, जहा पानी की तरग ले जाती है, वही चल पड़ते हो। तुम सायोगिक हो गये हो—ऐक्सीडेटल। तुम्हारे जीवन मे कोई दिशा नही है, कोई बढ़ाव, कोई विकास, कोई गतव्य, कोई मजिल। कहा तुम जा रहे हो, क्यो तुम जा रहे हो—कुछ भी नही है। आकस्मिक घटनाए, दुर्घटनाए, तुम्हारे जीवन की निर्णायक हो गई है। कुछ भी उठ आता है, जिससे तुम्हारी कोई सगति नही है, तुम वह करने मे लग जाते हो।

मै विश्वविद्यालय मे भर्ती होने गया, तो मै अपना फार्म भर रहा था। मेरे पास ही एक लडका खड़ा था, वह भी भर्ती होने आया था। उसने मेरे फार्म मे देखा। उसने कहा, 'तो आप दर्शनशास्त्र

ले रहे है? तो मै भी लूंगा।'

मैने कहा, 'तू रुक। तुझे इससे क्या प्रयोजन? यह भी बिलकुल सायोगिक है कि मै यहा खड़ा अपनी दर्खास्त भर रहा हू, तू भी भर रहा है, मेरी दर्खास्त को एक तो देखने की कोई जरूरत नहीं, देख भी ली तो तुझे कोई विषय इसलिए लेने की जरूरत नही । न तू मुझे जानता।' उसने कहा, 'यह भी आप ठीक कहते है। मैने यह सोचा ही नहीं।'

तुमने कभी जिंदगी मे देखा। इस तरह रोज हो रहा है। दुकान पर तुम गये थे, कुछ खरीदने गये थे, कुछ खरीद लाये। क्योकि दुकानदार बड़ा कुशल था। उसने बेच दिया कुछ। दुकान पर गये थे, दुकानदार ने कुशलता भी न की हो, लेकिन दुकान की खिड़की मे सजी हुई चीजो मे कुछ चीज जच गई, जिसकी तुम्हे क्षणभर पहले तक कोई भी जरूरत न थी, क्षणभर पहले तक तुम्हे सपना भी न आया था उसका, लेकिन बस आख मे पड गई, सरक गये तुम। शायद जरूरी काम छोड़कर, जो तुम लेने गये थे, कुछ और लेकर आ जाओ। तुम जो लेने जाते हो, वही लेकर लौटते हो?

पश्चिम मे मनोविज्ञान इस पर बड़ी खोज करता है कि लोग क्या खरीदते है। और उन्होने बड़ी तरकीबे खोजी है। और बड़े हैरानी के निष्कर्ष हाथ लगे है।

एक उपन्यास बिकता नही था, छप गया और बिका नही। विशेषज्ञो से सलाह ली तो उन्होने कहा, इस किताब का नाम बदल दो, नाम ठीक नही है, नाम खीचता नही है। नाम बदल दिया, किताब बिकी। ऐसी बिकी, लाखो की प्रतियो मे बिकी। सालभर से छपी पड़ी थी, कोई खरीदनेवाला न था। किताब वही की वही, सिर्फ नाम बदलने से कुछ भी नही बदला, एक शब्द भीतर नहीं बदला है, सिर्फ कवर, खोल बदल गई—और किताब बिकने लगी।

मनोवैज्ञानिको ने हिसाब लगाया है कि चीजे बेचते है तो डब्बे का रग क्या होना चाहिए। क्योकि उन्होने सब रगो के डब्बे रखकर देखे। स्त्रिया खरीदने आती है, तो वे हिसाब लगाते है कि कौन-से रग से ज्यादा आकर्षित होती है। कुछ रग है जिनकी तरफ कोई ध्यान ही नही देता। अगर उस रग का डब्बा तुमने अपनी चीज को बेचने के लिए बना लिया है तो तुम्हारा दिवाला निकलेगा। अब रग से भीतर की चीज का कोई भी सबध नही है, लेकिन लोग सायोगिक है। लोग एक्सीडेटल है। रग उन्हे पहले खीचता है। डब्बा खाली हो तो भी चलेगा, लेकिन रग, रग आख को खीच लेता है। कितनी ऊचाई पर दुकान पर डब्बा होना चाहिए, तब आख जल्दी पकड़ मे आती है। पाच फीट, तो ठीक आख की सीध मे होता है। लोग ऐसे अलाल है कि आख भी ऊपर उठाकर कौन देखता है। अगर जरा डब्बा ऊपर रखा हो, या डब्बा बहुत नीचे रखा हो तो अब तो विशेषज्ञ है इस सबध मे, जो बताते है कि तुम जब कोई चीज बनाकर बाजार मे बेचो तो डब्बे का रग क्या हो, कितने बड़े अक्षरो मे नाम हो, कितनी ऊचाई पर दुकान मे रखा जाये, कितनी दूरी पर ग्राहक खडा हो, तो काउटर कितने फासले पर बनाया जाये, बेचनेवाला क्या कहे, कैसे शब्दो का उपयोग करे, क्योकि जरा-जरा-सी बाते है ।

एक भिखमगा एक घर मे भीख मागने गया। सुदर है, स्वस्थ है, जवान है। महिला बाहर निकली और उसने कहा कि जवान हो, स्वस्थ सुदर हो, कोई काम क्यो नही करते? जिदगी मे सफल हो सकते हो, भीख मागने की जरूरत क्या है?

उस आदमी ने कहा, 'अब तुमसे क्या कहे। दुनिया मे बहुत स्त्रिया देखी, तुम जैसी सुदर स्त्री नही देखी। फिल्म अभिनेत्रिया है, लेकिन तुम्हारे मुकाबले कुछ भी नही। तुम इस घर मे क्या कर रही हो? तुम तो फिल्म अभिनेत्री हो सकती थी।' उस स्त्री ने कह, 'रुक, रुक। मै अभी तेरे लिए भोजन लाती हू।'

भिखमगे को भी समझना पड़ता है, क्या कहे, किन शब्दो का उपयोग करे। क्योकि लोग अधे है। लोगो को पता नहीं, वे क्या कर रहे है, क्यो कर रहे है। तुम से लोग करवा रहे है। तुमने सैकड़ो चीजे खरीद ली है जो बेचनेवालो को बेचनी थी, तुम्हे खरीदनी नही थीं।

पुराने अर्थशास्त्र का नियम था कि जहा-जहा माग होती है, वहा-वहा पूर्ति होती है। नये अर्थशास्त्र का नियम है जहा-जहा पूर्ति होती है वहा-वहा माग पैदा हो जाती है। तुम चीज तो बनाओ। इसकी तुम फिक्र ही मत करो कि इसकी कोई माग है या नही। माग पैदा कर ली जायेगी। लोग पागल है।

बर्नार्ड शा ने जब पहली दफा अपनी किताबे लिखी तो बिकी नही। क्योकि नाम बिकता है। कोई नाम तो था नही। कोई जानता तो था नही बर्नार्ड शा को। तो क्या किया उसने? वह

खुद ही चक्कर लगाकर किताबो की दुकानो पर जाता था पूछने—'जार्ज बर्नार्ड शा की किताब है?' दुकानदार पूछता, 'कौन जार्ज बर्नार्ड शा?'

' अरे। तुम्हे जार्ज बर्नार्ड शा का पता नही? क्या खाक किताबो का धधा करते हो? इस-इस नाम की किताब छपी है।' ऐसा वह खुद ही दुकानो पर चक्कर लगाता। पता बता आता उनको। तरकीब से समझा आता। और जब उसने अपने मित्रो को भी कह दिया कि तुम जब निकलो कही से, कोई विशेष रूप से जाने की जरूरत नही, लेकिन रास्ते मे अगर किताब की दुकान पड जाये, इतनी कृपा मुझ पर करना, पूछ लेना—जार्ज बर्नार्ड शा की फला-फला किताब है? कई ग्राहक आने लगे, रोज आने लगे—कि 'है कौन जार्ज बर्नार्ड शा?' दुकानदारो ने पता लगाया, किताबे खरीदकर लाये। जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा, ऐसे मेरी किताबो का बिकना शुरू हुआ।

चीज होनी चाहिए, फिर चीज के आसपास काटा, काटे के आसपास आटा होना चाहिए। फिर कोई न कोई फस जायेगा। ससार बड़ा मूढ है। तुम जरा जागो।

महावीर का इतना ही प्रयोजन है कि तुम जरा जागो, अन्यथा ऐसे तो यह रास्ता बडा ही होता चला जायेगा। इसका कोई अत न होगा।

अजल से गर्मे-सफर हू, मगर मुझे अब तक
बिछुड़ गया था मै जिससे वोह कारवा न मिला।

तुम अपने स्वभाव से छूट गये हो। सयोग मे उलझ गये हो।

बिछड़ गया था मै जिससे वोह कारवा न मिला।
अजल से गर्मे-सफर हू, मगर मुझे अब तक

—शुरू से, जगत के प्रारभ से खोज रहा हू अपने को—और मिल नही पाता हू। क्योकि और दूसरी चीजे बीच मे मिल जाती है जो अटका लेती है। कभी धन, कभी पद, कभी प्रतिष्ठा, कभी यश, कभी रूप, कभी रग, कभी शब्द, कभी गध—इद्रियो के हजार जाल है। कोई न कोई मिल जाता है। अपने घर तक पहुच ही नही पाते। कोई न कोई अटका लेता है।

ध्यान रखना, कोई तुम्हे अटकाता नहीं। तुम अटकने को तैयार ही बैठे हो। कोई न भी अटकाये, तो भी अटकने की कोई तरकीब खोज लोगे।

छोटे को छोटा मत मानना। सब चीजे बडी है। सत्य का खोजी जीवन की रत्ती-रत्ती का होश रखता है। सब चीजे बडी है। वही करता है जो करना जरूरी है। उसी तरफ जाता है जहा जाना जरूरी है। व्यर्थ को काटता है, ताकि सार्थक हो बचे। जो नहीं करना है, उसे नहीं ही करता है। खिलवाड नही करता जिदगी के साथ।

जिदगी उसकी एक साधना है, एक उपक्रम है, एक सोपान है। उसकी जिदगी मे एक दिशा है। वह कही जा रहा है।

अगर ऐसे तुम सब दिशाओ मे भागते रहे, तो तुम कही भी न पहुचोगे। अगर तुम कहीं नही पहुचे हो तो कारण तो खोजो। कारण यही है कि दो कदम चलते हो बाये तरफ, फिर दिल बदल गया, फिर दो कदम चलते हो दाये तरफ, तब तक फिर दिल बदल गया। तुम्हारा दिल है कि पारा है? छितर-छितर जाता है। जितना पकड़ो उतना ही छितरता जाता है। सब दिशाओ मे बिखर जाता है। ऐसे तुम बिखर गये हो। इस बिखरेपन के कारण ही आत्मा का तुम्हे कोई अनुभव नही होता।

महावीर कहते है, छोटे को छोटा मत जानना। छोटा बडा हो जाता है। इसलिए जिससे बचना हो, उसके बीजारोपण के पहले ही जागना।

'क्रोध प्रीति को नष्ट करता है। मान विनय को नष्ट करता है। माया मैत्री को नष्ट करती है। लोभ सब कुछ नष्ट करता है।'

कोहो पीइ पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो।।

'क्रोध प्रीति को नष्ट करता है ।'

अब लोग है, प्रेम चाहते है। कौन है जो नहीं चाहता। ऐसा आदमी खोजा, ऐसे प्राण तुमने कभी पाये जो प्रेम न मागते हो? सभी तो प्रेम के भूखे है। निरपवाद रूप से सभी प्रेम के लिए प्यासे है। फिर प्रेम खो कहा गया है? जहा सभी लोग प्रेम चाहते है और जहा सभी लोग सोचते है कि प्रेम दे, वहा प्रेम के फूल खिलते दिखायी नही पडते। प्रेम खो कहा गया है? तो महावीर कहते है, प्रेम प्रेम की बात करने से क्या होगा? क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है। तुम क्रोध के बीजो को तो जगह देते जाते हो और प्रेम की पुकार और गुहार मचाये रखते हो। चिल्लाते रहते हो, प्रेम, प्रेम, प्रेम—और क्रोध के बीज पनपाये जाते हो। बोते हो जहर, अमृत की माग करते रहते हो। फिर अगर जहर का झाड़-झखाड़ तुम्हारे जीवन को भर देता है और अमृत की

कोई वर्षा नहीं होती—तो कसूर किसका है, उत्तरदायित्व किसका है?

'क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है ।'

अगर तुम्हारे जीवन मे प्रेम नही है तो जानना कि क्रोध होगा—चाहे बहुत-बहुत करने की वजह से तुम्हे याद भी न आती हो अब, ऐसे रग-पग गये होओ क्रोध मे कि अब तुम्हे पहचान भी नहीं पड़ता कि क्रोध है। किसी क्रोधी को कहो। वह फौरन कहता है, 'कौन कहता है, मै क्रोध मे हू? मै क्रोध मे नही हू।' क्रोधी भी यही कहे चला जाता है, मै क्रोध मे नही हू। तुम भी जब क्रोध मे पकड़े जाते हो तो तुम स्वीकार नही करते कि मै क्रोध मे हू। क्रोध को कोई स्वीकार ही नही करता और प्रेम की लोग माग किये जाते है।

अगर क्रोध है तो स्वीकार करो, क्योकि स्वीकार निदान बनेगा। क्रोध है तो स्वीकार करो कि है, तो मिटाने का कोई उपाय हो सकता है। जिसे तुम स्वीकार ही न करोगे, उसे मिटाओगे कैसे? और अगर प्रेम न हो तो महावीर का सूत्र यह कह रहा है अगर तुम्हारे जीवन मे प्रेम न हो तो निश्चित जानना कि क्रोध है, चाहे तुम्हे पता चलता हो न पता चलता हो, पुरानी आदत हो, मजबूत आदत हो, खून मे घुल-मिल गई हो, क्रोध तुम्हारा स्वभाव जैसा हो गया हो कि अब तुम्हे याद भी न आता हो कि अक्रोध क्या है, तो भेद करना मुश्किल हो गया हो—लेकिन अगर जीवन मे प्रेम न हो तो क्रोध है।

'क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है। मान, विनय को नष्ट करता है ।'

अहकार, तुम्हारी विनम्रता को नष्ट कर देता है। और विनम्रता नष्ट होती है, बड़ा बहुमूल्य कुछ तुम्हारे भीतर समाप्त हो जाता है। सीखने की क्षमता खो जाती है। विनम्र सीखने मे सक्षम होता है। विनम्र खुला होता है। विनम्र तत्पर होता है। कुछ भी नया आये, उसके द्वार बद नहीं होते। और विनम्र जीवन के सत्य को पहचानता है कि मै एक खड मात्र हू इस विराट का।

अहकारी एक बड़ी भ्राति मे जीता है। अहकारी की भ्राति यह है कि जैसे मै केंद्र हू सारे विश्व का, जैसे सब मेरे लिए है और मै किसी के लिए नही, जैसे सब मेरे साधन है और मै साध्य हू।

अहकार को अगर हम ठीक से समझे तो उसका अर्थ होता है सारा जगत साधन है और मै साध्य हू। मेरे जीवन के लिए अगर सबको मरना भी पड़े तो भी उचित है। मेरे सुख के लिए अगर सबको दुखी भी होना पड़े तो भी ठीक है। क्योकि मै साध्य हू, और सब साधन है। सबके कधो पर मेरे पैर रखने पडे मुझे और सबके सिरो से मुझे सीढ़िया बनाकर चढ़ना पड़े राजमहलो तक, चढूगा। क्योकि और सब सीढ़िया होने को ही बने है।

अहकारी अपने को अस्तित्व का केंद्र मान रहा है। विनम्र का क्या अर्थ है? विनम्र कहता है मै कैसे केंद्र हो सकता हू? मै नही था, तब भी अस्तित्व था। मै नही हो जाऊगा, तब भी अस्तित्व होगा। मेरे होने न होने से क्या फर्क पड़ता है? एक तरग हू माना, मै भी एक लहर हू इस विराट की, पर बस एक लहर हू। विराट सत्य है। मेरा होना तो एक सपना है, रात देखा, सुबह खो जायेगा। यह मेरा होना कोई ठोस पत्थर की तरह नही है, पानी की लकीर है।

तो विनम्र सीख पाता है जीवन के सत्यो को। और अतत परमात्मा को भी सीख पाता है, क्योकि उसने पहली शर्त पूरी कर दी। उसने झूठ को अगीकार न किया। उसने सत्य से ही शुरुआत की। सत्य से शुरुआत हो तो सत्य पर अत होता है। असत्य से ही शुरुआत हो जाये, तो फिर सत्य कहा मिलेगा? फिर तो असत्य बढता चला जायेगा।

अहकारी धीरे-धीरे मद मे चूर होता जाता है। आखे देखने की क्षमता खो देती है। बोध विलुप्त हो जाता है। एक तद्रा और निद्रा मे जीता है।

'मान, विनय को नष्ट करता है ।' और अगर तुम्हारे जीवन मे विनम्रता न हो तो तुम जान लेना कि कहीं अहकार का शत्रु घात लगाये छिपा बैठा है।

'माया, मैत्री को नष्ट करती है ।' कपट, छल-छिद्र मैत्री को नष्ट करता है। मैत्री का अर्थ ही होता है कि तुम किसी के साथ ऐसे हो जैसे अपने साथ। मैत्री का अर्थ होता है तुम्हारे और मित्र के बीच कोई रहस्य नहीं, कोई छुपाव नहीं, कोई दुराव नहीं। मैत्री का अर्थ होता है तुम अपने को अपने मित्र के सामने बिलकुल नग्न करने मे समर्थ हो। तुम जानते हो, तुम्हे भरोसा है प्रेम का। तुम जानते हो कि तुम जैसे हो, तुम्हारा मित्र तुम्हे स्वीकार करेगा। उसका प्रेम बेशर्त है। अगर मित्र से भी तुम्हे कुछ छिपाना पड़ता हो, तो तुम मित्र को भी शत्रु मान रहे हो।

मैक्यावली ने लिखा है । ठीक महावीर से उलटा है

मैक्यावली। इसलिए महावीर को समझना हो तो मैक्यावली को भी समझना उपयोगी होता है। मैक्यावली ने लिखा है मित्र से भी ऐसी बात मत कहना जो तुम शत्रु से न कहना चाहते होओ, क्योकि कौन जाने, जो आज मित्र है कल शत्रु हो जाये। फिर तुम पछताओगे कि अच्छा होता, इससे यह बात न कही होती। मैक्यावली यह कह रहा है कि तुम मित्र के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करना, जैसा तुम शत्रु के साथ करते हो, क्योकि मित्र यहा शत्रु भी हो जाते है। महावीर से पूछो तो महावीर कहेगे मित्र की तो बात ही छोड़ो, तुम शत्रु के साथ भी ऐसा व्यवहार करना जैसा मित्र के साथ करते हो, क्योकि कौन जाने जो आज शत्रु है, कल मित्र हो जाये। तो ऐसी कुछ बाते मत कह देना जो कल फिर लौटाना बडी मुश्किल हो जाये। फिर थूके को चाटने जैसा होगा। जिससे दुश्मनी है, उसको हम ऐसी बाते कहने लगते है जो बिलकुल अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। कहते है, राक्षस है। कल तक नर मे छिपा नारायण था, आज राक्षस। लेकिन कल अगर यह मैत्री फिर बनी, तो फिर कहा मुह छुपाओगे? फिर कैसे लौटाओगे? फिर कैसे कहोगे कि यह नर मे नारायण, फिर राक्षस नही है।

महावीर कहते है मैत्री को तुम आधार मानकर चलना। जो आज मित्र है, वह तो मित्र है ही, जो आज नही है, वह भी हो सकता है कल मित्र हो जाये। जो आज शत्रु है वह भी मित्र हो सकता है। और महावीर की बात मानकर जो चलेगा, धीरे-धीरे पायेगा उसके शत्रु मित्र हो गये। और मैक्यावली की जो मानकर चलेगा, वह पायेगा उसके मित्र धीरे-धीरे शत्रु हो गये, क्योकि तुमने कभी उनसे मित्र जैसा व्यवहार ही नही किया। अगर मित्र से भी छिपाना पड़े, इसी को महावीर माया कहते है।

'माया, मैत्री को नष्ट करती है ।'

माया का अर्थ है सच न होना। माया का अर्थ है धोखे देना। माया का अर्थ है जो तुम नही हो, वैसे दिखाना। माया का अर्थ है प्रामाणिक न होना। माया का अर्थ है प्रवचना। माया का अर्थ है दिखावा, धोखा, आख मे आसू भरे थे, लेकिन मुस्कुराने लगे, तो यह मैत्री न हुई। मित्र के सामने तो हम रो भी सकते है। और किसके सामने रोओगे? अगर मित्र के सामने भी नही रो सकते तो फिर और कहा रोओगे? मित्र के सामने तो हम अपना दुख, पीड़ा, दैन्य, सभी कुछ प्रगट कर सकते है। मित्र के सामने तो हम अपना कलुष, अपना पाप, अपना अपराध, सभी प्रगट कर सकते है। क्योकि हम जानते है, प्रेम का भरोसा है। उस प्रेम की छाया मे सब स्वीकार है। क्योकि मित्र ने हमे चाहा है—किन्ही कारणो से नही, अकारण चाहा है। तो किन्ही कारणो से टूटेगी नही मैत्री। ऐसा नहीं है कि मित्र देख लेगा कि अरे, तुमने और ऐसा पाप किया। दोस्ती खतम। नही, मित्र तुम्हारे पाप के प्रति भी करुणा का भाव रखेगा। वह कहेगा, सभी से होता है, मनुष्य मात्र से होता है। मित्र तुम्हे समझने की कोशिश करेगा। मित्र तुम्हारी निदा नही करेगा। जरूरत होगी तो आलोचना करेगा, निदा नही। लेकिन आलोचना भी इस खयाल से करेगा कि श्रेष्ठतर का आगमन हो सके। आलोचना भी इस खयाल से करेगा कि तुम और बड़े होने को हो, तुम अभी और खुलने को हो, यह कली इतने ही होने को नही, तुम्हारी नियति और बड़ी है।

मित्र अगर तुम्हारी आलोचना भी करेगा तो उसमे गहन प्रेम होगा। और शत्रु अगर तुम्हारी प्रशसा भी करता है तो उसमे भी व्यग्य होता है, उसमे भी कही गहरी निदा का स्वर होता है, कही कटाक्ष होता है।

मैत्री तो सभव है तभी, जब माया बीच मे न हो। इसलिए दुनिया मे मैत्री धीरे-धीरे खोती गई है। लोग नाममात्र को मैत्री कहते है, उसे परिचय कहो, बस ठीक है, इससे ज्यादा नही। दुनिया से मैत्री का फूल तो करीब-करीब खो गया है। क्योकि मैत्री के फूल के लिए सरलता चाहिए, निष्कपटता चाहिए। कपट, माया अगर बीच मे आई तो मैत्री समाप्त हो जाती है। अगर गणित बीच मे आया तो मैत्री समाप्त हो जाती है। मैत्री तो एक काव्य है—गणित नही, तर्क नही। मित्र के सामने हम अपने को वैसा ही प्रगट कर देते है जैसे हम है। इसलिए तो मित्र के पास राहत मिलती है। कम से कम कोई तो है जिसके पास जाकर हमे झूठ नही होना पड़ता, नही तो चौबीस घटे झूठ। पत्नी है तो उसके सामने झूठ। दफ्तर है, मालिक है, तो उसके सामने झूठ। बाजार मे सगी-साथी है, उनके साथ झूठ। सब तरफ झूठ है। तो तुम कही खुलोगे कहा? तुम बद ही बद मर जाओगे। हवा का झोका, सूरज की किरणे तुममे कहा से प्रवेश करेगी? तुम कब्र बन गये। कही कोई तो हो कही, जहा तुम शिथिल होकर लेट जाओ, जहा तुम जैसे हो वैसे ही होने को

स्वतत्र होओ, जहा कोई माग नहीं है, जहा मित्र की आख यह नहीं कह रही है कि ऐसे नही, ऐसे होओ।

मैत्री बडी अनूठी घटना है। शब्द ही बचा है ससार मे। मैत्री के फूल बहुत कम खिलते है। क्योकि मैत्री के फूल के खिलने के लिए दो ऐसे व्यक्ति चाहिए जो निष्कपट हो, जिनके बीच माया न हो।

'माया, मैत्री को नष्ट करती है। और लोभ, सब कुछ नष्ट कर देता है।' अगर तुम्हारी जिदगी मे खडहर ही खडहर मालूम पडता हो, मरूद्यान का कहीं कोई पता न चलता हो, मरुस्थल ही मरुस्थल, तो एक बात जान लेना कि तुमने लोभ के ढग से ही जीना सीखा है, तुम और कुछ नही जान पाये। लोभ, सब कुछ नष्ट कर देता है।

यह महावीर निदान कर रहे है। वे यह कह रहे है, अगर तुम्हारी जिदगी मे कोई रस-वर्षा न होती हो, तो दोष मत देना किसी को—इतना ही जानना कि तुम लोभ मे बड़े गहरे उतर गये हो। तुमने लोभ की बडी गहरी सीढिया पार कर ली है। तुम लोभ के कुए मे डूब गये हो। तो ही ऐसा होता है कि सब नष्ट हो जाये।

उसने मशाए-इलाही को मुकम्मिल कर दिया
अपनी आखो पर जिसने लिये मुहब्बत के कदम।

जिसने मैत्री सीखी, जिसने प्रेम सीखा, जिसने मैत्री के लिए माया छोड़ी, जिसने प्रेम के लिए क्रोध छोडा, जिसने विनय के लिए मान छोड़ा, और जिसने जीवन को सृजनात्मक गति देने के लिए लोभ से विदा ली—उसने मशाए-इलाही को मुकम्मिल कर दिया, उसने परमात्मा की आकाक्षा पूरी कर दी।

अपनी आखो पर जिसने लिए मुहब्बत के कदम।

—फिर उसकी आखो पर मुहब्बत की छाया पडने लगी। फिर उसके हृदय मे मुहब्बत के कमल खिलने लगे।

प्रेम परम घटना है। अब इसे हम समझे।

महावीर कहते है, लोभ से सब नष्ट हो जाता है और प्रेम से सब उपलब्ध हो जाता है। महावीर कहते है, 'मित्ति मे सव्वभुएषु।' सबसे मैत्री, सबसे प्रेम, सर्वभृतो से। क्योकि महावीर कहते है, एक से ही प्रेम करने मे इतने कमल खिलते है, जरा सोचो, सबसे प्रेम। प्रेम तुम्हारा स्वभाव बन जाये। प्रेम सबध न रहे। ऐसा नहीं कि किसी से प्रेम और किसी से नही, क्योकि ऐसे प्रेम मे तो कुछ न कुछ कमी रह जायेगी। ऐसे प्रेम मे तो सीमा होगी। बस प्रेम। प्रेम, तुम्हारे होने का ढग। प्रेम, तुम्हारे होने की सुगध, सुरभि। प्रेम, तुम्हारे होने की व्यवस्था। कोई न भी हो, तुम अकेले कमरे मे बैठे हो तो भी प्रेम से भरे बैठे हो। उस शून्य मे ही प्रेम उडेल रहे हो। वृक्षो के पास बैठे हो तो वृक्षो से प्रेम-वार्ता चल रही है। चाद-तारो को देखा है तो वही प्रेम का आलिगन होने लगा। सरिता-सागर के पास गये हो तो वही मैत्री का सुर बजने लगा। अकेले कि भीड़ मे, अकेले कि साथ मे, सुख मे कि दुख मे—लेकिन प्रेम की वीणा बजती ही रहे, वह तुम्हारे भीतर श्वास हो जाये अहर्निश। पता हो न पता हो, श्वास जैसे चलती रहती है, ऐसा प्रेम भी डोलता रहे।

इस प्रेम की परम घटना के लिए महावीर ने अहिसा नाम दिया है। इस प्रेम को जीसस ने ईश्वर कहा है। प्रेम ईश्वर है।

लोभ, सब कुछ नष्ट कर देता है। 'लोहो सव्वविणासणो।'

लोभ और प्रेम विपरीत है। इसे समझो। लोभी व्यक्ति प्रेम नही कर पाता—कर ही नही सकता। क्योकि प्रेम मे बाटना पडता है, देना पडता है। लोभी कृपण होगा, बाटेगा कैसे? लोभ तो इकट्ठा करता है। लोभ तो जो इकट्ठा कर लेता है, उसकी रक्षा मे लग जाता है—उसमे से कोई एक पैसा खींच न ले। इसलिए तो इस देश मे कहावत है कि जब कोई लोभी मरता है, मरकर साप हो जाता है, मडली मारकर, कुडली मारकर, बैठ जाता है अपने खजाने पर। अब साप कोई सोने को भोग नही सकता—भोगने का सवाल भी नही है।

लोभी बडा अदभुत आदमी है। जरा उसको समझो। क्योकि वह सबके भीतर छिपा है, उसे समझना जरूरी है। लोभी बडा अनूठा आदमी है। साधारण घटना नही है लोभी। लोभी उतनी ही बडी असाधारण घटना है जितनी बडी असाधारण घटना प्रेमी है। दोनो छोर है, अतिया है। लोभी भोगता नही, सिर्फ भोग की आशा को भोगता है। धन इकट्ठा कर लेता है, उसे खर्च नही करता। खर्च मे तो कम होगा। धन इकट्ठा कर लेने मे ही उसका भोग है। धन तो सिर्फ सभावना है। तुम सोने की ईट रखकर बैठे रहो कि मिट्टी की ईट रखकर बैठ लो, कुछ फर्क न पडेगा। फर्क तो तब पड़ेगा जब तुम भोगने जाओगे, बिना भोगे तो मिट्टी की ईट और सोने की ईट बराबर है। तुम्हारे खीसे मे रुपया है या नही, इसका पता तो तभी चलेगा जब तुम भोगने जाओगे। जब बाजार मे कुछ खरीदने जाओगे, तब पता चलेगा कि रुपया है या

नहीं। अगर खरीदने कभी गये ही नहीं तो खीसे मे रुपया था या नही, बराबर है।

लोभी बड़ा अदभुत आदमी है। वह रुपया तो इकट्ठा करता है, लेकिन भोगता नहीं। तो लोभी के पास धन होकर भी लोभी निर्धन ही होता है, क्योकि धन का तो पता ही तब चलता है । रुपया धन थोड़े ही है। जिस क्षण तुम रुपये को खर्च करते हो, उस क्षण धन बनता है।

इसे थोड़ा समझना। तुम्हारे खीसे मे एक रुपया पड़ा है। इसमे कई चीजे छिपी है चाहो तो एक आदमी रातभर मालिश करे—इस एक रुपये मे छिपा पड़ा है। अब एक आदमी को खीसे मे रखकर चलो, बहुत वजन हो जायेगा, भारी पडेगा। चाहो तो गिलासभर दूध पी लो, इस रुपये मे वह छिपा पड़ा है। चाहो तो जाकर तीन घटे फिल्म मे बैठ जाओ। चाहो तो होटल मे भोजन कर लो। चाहो ता किसी को दान दे दो, किसी भूखे का पेट भर जाये। हजार सभावनाए है एक रुपये मे। यही तो रुपये की खूबी है।

रुपया बडा अदभुत साधन है। क्योकि अगर तुम्हे एक ही चीज पकड़नी हो तो तुम्हे एक आदमी से अगर मालिश करवानी है तो आदमी रख लो, लेकिन फिर उस आदमी का तुम दूसरा उपयोग न कर सकोगे। नाश्ता करना चाहो तो क्या करोगे? सिनेमा देखने जाना चाहा तो क्या करोगे? रुपया बड़ी अनूठी चीज है। मनुष्य की बडी गहरी ईजादो मे एक ईजाद है रुपया। इसमे सब चीजे समाई है। लेकिन अभी कोई भी चीज प्रत्यक्ष नही है, सब अप्रत्यक्ष है। अभी कोई भी चीज वास्तविक नहीं है, सिर्फ सभावना है। इसलिए तो अनत सभावनाए रुपये मे छिपी है। इसलिए तो लोग रुपये के लिए इतने पागल है, क्योकि रुपया तिजोड़ी मे है तो अनत सभावनाए हाथ मे है।

लेकिन रुपया बिलकुल खाली है, जब तक उसका उपयोग न करो—है ही नही रुपया। उसका कोई मतलब नही है। तिजोडी मे बद है तो व्यर्थ है। रुपये की सार्थकता तभी है, जब वह तुम्हारे हाथ से दूसरे हाथ मे जाता है। बीच मे रुपया धन होता है। देने मे धन है। भोगने मे धन है। रोकने मे तो धन मिट्टी हो जाता है।

और यह सारे जीवन के धन के सबध मे सही है। वही चीज तुम्हारे पास है जो तुम दे देते हो। यह बड़ा विरोधाभास लगेगा। जो तुम्हारे पास है और तुमने कभी भी न दी वह तुम्हारे पास थी ही नही, क्योकि हो कैसे सकती थी? चीज तो प्रगट तब होती है जब तुम देते हो। आदान-प्रदान मे धन प्रगट होता है। मुट्ठी मे बद, तो मर जाता है, होता ही नहीं। क्या फर्क पड़ता है कि तुम्हारे पास एक लाख रुपया तिजोड़ी मे था या नही था? तिजोड़ी बद रही, तुम जीये तिजोडी के बाहर, मरे तिजोड़ी के बाहर। लाख रुपया बद था कि नहीं था बद, क्या फर्क पडता है? कोई भी तो फर्क नही पड़ता। फर्क पड़ सकता था, अगर तुम बाटते। लोभी बाटता नही। बाहर के धन को ही नही, जब बाहर के धन को ही नही बाटता तो भीतर के धन को क्या खाक बाटेगा? जब क्षुद्र रुपये नही बाट सकता, तो जीवन की महिमा क्या बाटेगा? ठीकरे नही बाट सकता, तो हृदय कैसे लुटायेगा? और प्रेम के लिए तो चाहिए हृदय लुटानेवाला, बाटनेवाला, देनेवाला।

प्रेम है बाटने की कला। लोभ है इकट्ठा करने की कला। मगर तुम जो इकट्ठा करते हो, वह व्यर्थ है। इसलिए लोभी से ज्यादा दरिद्र कोई भी आदमी नही है। देखना, कभी देते वक्त उस पुलक को, उस उमग को। उस घडी को गौर से देखना, जब तुम कुछ देते हो। एक पैसा हो कि लाख रुपया हो, इससे कुछ फर्क नही पडता। वह रुपया न भी हो, इससे भी कोई फर्क नही पड़ता। तुमने किसी का हाथ ही प्रेम से हाथ मे ले लिया हो, तुम किसी के पास ही दो क्षण गहरी सहानुभूति से बैठ गये हो। तुम एक फूल, जगली फूल रास्ते के किनारे से तोडकर किसी को दे दिये हो—उस घड़ी जरा जागकर देखना, क्या घटता है। जब तुम कुछ देते हो, तब तुम्हारे भीतर कैसा आविर्भाव होता है। कैसा प्रसाद। कैसा बरसाव हो जाता है।

इसलिए ज्ञानियो ने कहा है, जब तुमसे कोई कुछ लेने को राजी हो जाये तो उसका धन्यवाद भी करना। उसे देना तो, साथ मे दक्षिणा भी देना। दक्षिणा यानी धन्यवाद मे भी कुछ देना। क्योकि अगर वह इनकार कर देता तो तुम्हारा धन, धन न हो पाता। तुमने एक पैसा जाकर किसी गरीब को दे दिया, उस गरीब ने लेकर तुम्हारे पैसे को पैसा बनाया, उसके पहले वह पैसा नहीं था। उस गरीब ने उसको धन बनाया। धन्यवाद कौन किसका करे?

पुराने शास्त्र कहते है कि तुम उसे धन्यवाद मे भी अब कुछ देना, कि तेरी बड़ी कृपा, तू इनकार भी कर सकता था, तू कहता, नही लेते—फिर?

प्रेम की दुनिया मे, जो लेनेवाला है वह भी कुछ दे रहा है। यही तो प्रेम का मजा है। जो लेनेवाला है वह भी कुछ दे रहा है। देनेवाला ही नही दे रहा है, लेनेवाला भी दे रहा है। दोनो दे रहे है। और कोई घाटे मे नही है। किसी ने धन दिया, किसी ने लिया, लेकर उसने उस धन को हुडी को स्वीकारा। अभी तक हुडी थी, अब धन हुई। उसने तुम्हे धनी बना दिया। तुम्हारी दया को स्वीकार करके तुम्हे दयालु बना दिया। तुम्हारे प्रेम को स्वीकार करके तुम्हे प्रेमी बना दिया। तुम्हारे हाथ से जब देने की घटना घटी, उस क्षण तुम्हारे हृदय मे कोई फूल खिल गया।

देकर आदमी धन्यभागी होता है।

लोभी प्रेम नही कर सकता। क्योकि प्रेम की यात्रा तो बिलकुल उलटी है, वह बाटने की है और देने की है। लोभी सिर्फ रोकता है। लोभ एक तरह की कब्जियत है, बीमारी है।

लो भी, दो भी—जीवन लेना-देना है।

अब एक और बात तुमसे कह देना चाहता हू कुछ लोगो को ऐसी भ्राति पकड जाती है—या तो वे कहते है कि हम देगे नही, या वे कहते है, हम लेगे नही। लोभी है पहले धन को पकडते थे, वे कहते थे कि हम देगे नही। फिर समझ मे आया कि यह धन तो सब मिट्टी हुआ जा रहा है, यह तो पकड से ही मिट्टी हुआ जा रहा है, तो वे कहते है, हम देगे, अब लेगे नही। तुम ऐसे आदमी को धार्मिक कहते हो। यह आदमी धार्मिक नही है। यह अधार्मिक आदमी है, क्योकि यह किसी दूसरे को मौका नही देता कि उसकी मिट्टी धन हो जाये। यह कैसी बात हुई? परम धार्मिक तो वह है जो लेने-देने मे कुशल है, दोनो मे कुशल है। यह तो धार्मिक न हुआ, अहकारी हुआ। यह कहता है, हम तो सिर्फ देगे, हम ले नही सकते—मै और लू।

एक बहुत बड़े धनी व्यक्ति है, मेरे मित्र है। एक दफा मेरे साथ यात्रा पर गये तो अपने दिल की बाते खोलने लगे। काफी समय तक साथ था, तो छिपा न सके, कुछ-कुछ बाते करने लगे। एक उन्होने अपने बडे दिल की, दुख की बात कही कि 'मैने अपनी जिदगी मे अपने सब रिश्तेदारो को खूब दिया, मित्रो को दिया।' और यह सच है, मै जानता हू, उन्होने दिया। 'लेकिन कैसा मेरा अभाग्य है कि जिनको भी मै देता हू, वे कोई भी मुझसे प्रसन्न नही।' और यह भी मै जानता हू कि जिनको भी उन्होने दिया है, वे सब उनसे नाराज है। और वे झूठ नही कह रहे है, उन्होने दिया है, खूब दिया है। उनके पास खूब था, खूब है। हर रिश्तेदार को उन्होने लखपति बना दिया है। हर मित्र को लखपति बना दिया है। जिसके साथ भी उनका सबध रहा है, वह जल्दी ही लखपति हो गया। लेकिन जिनने भी उनसे लिया, वे सब उनसे नाराज है। तो वे मुझसे कहने लगे, कि क्या हो गया। मेरा दुर्भाग्य कैसा है? मैने क्या कमी की, मेरा कसूर क्या है?

मैने कहा, कसूर तुम्हारा यह है, कि तुमने सिर्फ दिया और उनको तुमने देने का कभी मौका नही दिया। तुम थोडा उनको भी मौका देते। लेन-देन होता तो ठीक था। तुमने दिया ही दिया। और तुम अहकारी हो। और तुम लेने पर राजी नही हो। तुम दाता बने रहना चाहते हो।

तो अगर तुम दाता ही रहोगे तो जिसको तुमने दीन बना दिया देकर, वह अगर नाराज हो तो आश्चर्य क्या? वह अगर तुम्हे क्षमा न कर सके तो आश्चर्य क्या? वह तुमसे बदला लेगा। तुमने उसके अहकार को बडी चोट पहुचा दी।

मैने कहा, कभी उनको भी मौका दो। धन की तुम्हे जरूरत नही, लेकिन हजार और चीजो की जरूरत है। जिस मित्र को तुमने लाखो दिये है, कभी उससे इतना ही कह दिये कि आज मुझे जरा कार की जरूरत है, भेज दो। वह कार तुम्हारी ही दी हुई है, लेकिन उसे भी तो थाडा मौका दो कि तुम्हारे लिए कुछ कर सके।

पर वे कहने लगे, मुझे जरूरत ही नही है। मेरे पास ऐसे ही काफी है।

'कभी तुम बीमार पडते हो, किसी मित्र को फोन करके कहो कि आओ, मेरे पास बैठ जाओ, तुम्हारा होना मुझे सुख देगा। यह भी तुमने कभी नही किया। तुम कुछ तो करो। तुम्हारे बेटे की शादी हो तो अपने मित्रो को कहो कि आओ, तुम्हारे बिना शादी न हो सकेगी। कुछ तो करो। तुम बिलकुल पत्थर की तरह हो। तुम देते तो हो, लेकिन देना भी तुम्हारा अहकार से भरा है, क्योकि लेने के लिए तुम्हारा हाथ कभी नही फैलता। इसलिए जिसको तुम देते हो, वही तुम पर नाराज है। जिसको तुम देते हो, वही अनुभव कर रहा है कि तुमने उसे नीचे गिराया। तुमने हाथ सदा ऊपर रखा, दूसरो के हाथ सदा नीचे रखे।'

मेरे लिए धार्मिक आदमी वह है जो तुम्हे देता भी है और तुमसे लेता भी है—और लेन-देन बराबर रखता है। कोई क्षुद्र-सी चीज तुमसे ले लेता है। मगर तुम्हे मौका देता है देने का भी।

क्योकि तुम भी तो खिलो। अगर देने से ही लोग खिलते है तो तुम भी तो खिलो। कोई छोटी-मोटी चीज। चीजो के मूल्यो का कोई सवाल नही है। कोई तुमसे इतना ही कह दे कि वह जो पत्थर पड़ा है, मेरे लिए उठाकर ला दो, और तुम्हे धन्यवाद दे दे, तो भी तुम भर जाओगे। क्योकि जब भी तुम कुछ दे पाते हो, तभी तुम्हारी आत्मा भरती है और खिलती है।

तो मै तुम्हारी एक भ्राति को स्पष्ट कर देना चाहता हू। प्रेम सिर्फ देना ही देना नही है, नही तो वह तो अहकार हो जायेगा, वह प्रेम नही होगा। प्रेम तो लेने-देने की छूट है। प्रेम तो देता भी खूब है, लेता भी खूब है। प्रेम न तो इस तरफ कजूस है, न उस तरफ कजूस है। प्रेम अकड़ा हुआ नही है। प्रेम विनम्र है। वह कभी हाथ नीचे भी कर लेता है। वह कभी हाथ ऊपर भी कर देता है। प्रेम लेने और देने को खेल मानता है। इस आवागमन मे ऊर्जा के आने-जाने मे, जीवन ताजा रहता है। और खेल बड़ा महिमावान है, क्योकि दोनो इस लेने-देने मे निखरते है, दोनो बडे होते है, दोनो खिलते है, विकसित होते है।

सुनो। इसे गुनो। तुम त्यागियो जैसे अहकारी मत बना जाना, जो कहते है, हमने सब त्याग किया। ये लोभी है—शीर्षासन करते हुए—जो कहते है, हम कुछ न लेगे।

एक बड़ा अदभुत आदमी है बबई मे रमणीक जौहरी। वह मेरे पास आया। वह एक मोतियो का हार बना लाया था। उसकी आखो मे आसू थे। उसने मुझे हार पहनाया। उसने कहा कि आप मना मत करना। पर मैने कहा, तुम रो क्यो रहे हो? वह कहने लगे, मै खुशी से रो रहा हू। मैने कहा, 'तुम मुझे पूरी बात कहो।'

वे जैन है, तेरापथी जैन है। तो उसने कहा, मै आचार्य तुलसी का भक्त हू। उसी घर मे, उसी परपरा मे पैदा हुआ। उनको मै कुछ देना चाहता हू, लेकिन वे तो कुछ ले नही सकते। इसलिए मेरा कोई सबध ही नहीं बन पाता। सबध तो तब बनता है जब दोनो तरफ से कुछ आदान-प्रदान हो। वे मुझसे कुछ ले ही नही सकते, क्योकि वे कहते है, वे त्यागी है। इसलिए आपसे मैने प्रार्थना की। मै किसी को, जो मुझसे बड़ा हो, कुछ देना चाहता हू। क्योकि उस देने मे मै भी बड़ा हो जाऊगा, मै भी कुछ खिलूगा। आप मना मत करना।

उस दिन जो आसू उसकी आखो से बहे, वे बड़े बहुमूल्य थे। मोतियो का हार मुझे पहनाकर वे अति प्रसन्न हो लिया। वह बार-बार मुझे धन्यवाद देने लगा कि मै डरा हुआ था कि कही आप भी मना न कर दे। मैने कहा, मै किसी भी तरफ से कजूस नही हू। जो मेरे पास है, तुम्हे देता हू, जो तुम्हारे पास है, लेने को हमेशा तैयार हू। यह बात तो जरा गलत है और अहकार की है कि मै सिर्फ दूगा, लूगा नहीं। मै और लू। मै और इतना छोटा हो जाऊ कि तुमसे लू। क्षुद्र सासारिक पुरुषो से कुछ लू।

मैने कहा, तुम फिक्र छोड़ो, क्योकि मेरे लिए कोई क्षुद्र नही है। परमात्मा ही दोनो तरफ बैठा है। अगर तुम्हे कुछ लगा है कि मुझसे तुम्हे मिला है और तुम बेचैनी अनुभव करते हो बिना कुछ दिए—और ठीक है बेचैनी, अनुभव होनी चाहिए, जिसके भीतर भी धडकता हुआ दिल है, अनुभव होगी—तो तुम ले आना, तुम्हारे पास जो हो ले आना। मै न तो भोगी हू न त्यागी हू। मै कृपण हू ही नही। भोगी भी कृपण है, त्यागी भी कृपण है। एक ने भोग को पकडा है, एक ने त्याग को पकडा है। मै सिर्फ जीवत हू। आओ, जाओ। तुमने मेरे लिए हृदय खोला है, तो मेरा हृदय भी तुम्हारे लिए खुला है। और मै तुम्हारे आसू समझ सकता हू। तुम कुछ और बडा लाना चाहते थे, तुम जानते हो, ककड़-पत्थर लाये हो। लेकिन क्या करो, तुम्हारी मजबूरी है। जो तुम्हारे पास था वही तुम लाये हो। लाने के भाव का मूल्य है, क्या तुम ले आये हो, यह थोडे ही सवाल है।

खयाल रखना, मै तुमसे यह नही कह रहा हू कि प्रेम का अर्थ होता है बस दो। मै तुमसे यह कह रहा हू, प्रेम का अर्थ होता है तुम भी बड़े होओ, दूसरे को भी बड़ा होने दो, तुम भी फैलो दूसरे को भी फैलने दो। दो भी, लो भी। और तुम्हारे बीच लेने-देने मे एक सतुलन हो। ये दोनो पख तुम्हे उड़ाये खुले आकाश मे।

और जल्दी करो। लेन-देन कर लो। क्योकि बाजार जल्दी ही उठ जायेगा। दुकाने बद होने का वक्त भी आ गया। साझ होने लगी। लोग अपने-अपने पसारे इकट्ठा करने मे लगे है। ऐसा न हो कि पीछे तुम पछताओ—जब जा चुके बाजार, न कोई लेने को हो, न कोई देने को हो।

शराबे-जीस्त अभी सेर हो के पी भी नही
कि सुन रहा हू सदाए शिकस्त सागर की

—अभी जीवन की मदिरा को तुम पी भी तो नही पाये, लेकिन

देखो, मदिरा-पात्र के टूटने की आवाज आने लगी।

शराबे-जीस्त अभी सेर हो के पी भी नही

—अभी मन भरकर पी भी नही पाये जीवन के मधु को,

कि सुन रहा हू सदाए शिकस्त सागर की।

—और यह तो मधु-पात्र के टूटने की आवाज आने लगी।

जन्म के साथ ही तो मधु-पात्र के टूटने की आवाज आने लगती है। इसके पहले कि मधु-पात्र टूट जाये, पीयो, पिलाओ। लो, दो। मिलो-जुलो। फैलो, दूसरो को फैलने दो। गतिमान, गत्यात्मक हो तुम्हारा जीवन। कही भी जकड़ा न हो, न इस किनारे न उस किनारे। उठने दो लहरे इस किनारे से उस किनारे तक। आने दो लहरे उस किनारे से इस किनारे तक। तुम दोनो किनारो के बीच का फैलाव बनो। तब तुम्हारे जीवन मे सम्यक धर्म का उदय होता है।

'क्षमा से क्रोध को हरे, क्षमा से क्रोध का हनन करे, नम्रता से मान को जीते, ऋजुता से माया को, और सतोष से लोभ को।'

'क्षमा से क्रोध को ।' जब तुम क्रोध करते हो तो क्या कर रहे हो? क्रोध तुम्हारा एक दृष्टिकोण है। क्रोध तुम्हारा ऐसा दृष्टिकोण है जो तुमसे कहता है जो नही होना चाहिए था वह हुआ है। किसी ने कुछ कहा, क्रोध का अर्थ है तुम यह कहते हो कि नही यह कहना चाहिए था। तुम्हारी कुछ और अपेक्षा थी। क्रोध के पीछे अपेक्षा छिपी है। अगर एक कुत्ता आकर भौक जाये तो तुम नाराज नही होते, क्योकि तुम जानते हो कुत्ता है, भौकेगा। लेकिन आदमी आकर भौक जाये तो तुम नाराज हो जाते हो। आदमी है तो तुम्हारी बडी अपेक्षा थी।

क्षमा का अर्थ है तुम्हारी कोई अपेक्षा नही, जो दूसरा कर रहा है, वही कर सकता था, इसलिए कर रहा है। जो गाली दे सकता था, गाली दे रहा है। जो गीत गा सकता था, गीत गा रहा है। क्षमा एक दृष्टिकोण है। क्षमा का यह अर्थ है कि हमारी कोई अपेक्षा नही, हम है कौन, जो तुमसे अपेक्षा करे। मै हू कौन, जो तुमसे अपेक्षा करू कि तुम ऐसा व्यवहार करो तो ठीक, ऐसा न करोगे तो मै क्रोधित हो जाऊगा।

एक झेन फकीर राह से गुजर रहा था, एक आदमी आकर उसको लट्ठ मार दिया। घबड़ाहट मे वह आदमी भागने को था, उसकी लकड़ी भी हाथ से छूट गई, तो उस फकीर ने लकड़ी उठाकर उसको दे दी और कहा, भाई लकड़ी तो ले जा। फकीर के साथ एक युवक चल रहा था। उसने कहा, 'यह माजरा क्या है? इस आदमी ने तुम्हे चोट पहुचाई, तुम उलटे उसकी लकडी उसको उठाकर दे रहे हो? तुम कुछ कहे ही नही?'

उसने कहा, 'अब कहना क्या है? रास्ते से गुजर रहा हू, और एक वृक्ष से शाखा गिर पड़े और मेरा सिर तोड दे, तो क्या कहूगा? कुछ भी नही कहूगा। यह क्या कहने की बात है? सयोग की बात है कि वृक्ष की शाखा टूटने को थी और हम गुजरते थे। हो गया मिलन आकस्मिक, अब कहना क्या है? इस आदमी को मारना था किसी को, हम मिल गये। वृक्ष की शाखा टूटी, समय पर सिर पर पड गई। इससे कहना क्या है? और यह जो कर सकता था, वही इसने किया है, न कर सकता होता तो करता ही क्यो? जो इसके भीतर हो सकता था, हुआ है। मै कौन हू?'

यह ससार मेरी अपेक्षा से चले, इससे ही तो क्रोध पैदा होता है। जिस-जिस को तुमने अपनी अपेक्षा से चलाना चाहा, उसी पर क्रोध होता है। इसलिए जिनसे तुम्हारी जितनी ज्यादा अपेक्षा होती है, उनसे तुम्हारा उतना ही क्रोध होता है। पत्नी पति पर आग-बबूला हो जाती है, हर किसी पर नही होती। हर किसी पर होने का सवाल ही कहा है? अपेक्षा ही नहीं है। जिससे अपेक्षा है । बाप बेटे पर क्रोधित हो उठता है—अपेक्षा है। बड़ी आशाए बाधी है इस बेटे से और यह सब तोड़े दे रहा है। सोचा था, यह बनेगा, वह बनेगा, बडे सपने देखे थे—और यह सब उलटा ही हुआ जा रहा है।

जिससे तुम्हारी अपेक्षा है, ध्यान रखना वही-वही क्रोध पैदा होता है। जिनसे तुम्हारे कोई सबध नही है, कोई क्रोध पैदा नही होता। पडोसी का लड़का भी बर्बाद हो रहा है, वह भी शराब पीने लगा है—मगर इससे तुम्हे चिता नही होती।

सुना है मैने एक यहूदी अपने धर्मगुरु के पास गया और उसने कहा, 'मै बडी मुश्किल मे पड़ा हू। मेरा लड़का अमरीका गया था, लौटकर आया तो वह ईसाई हो गया। मेरा लड़का और ईसाई। और हम परपरा से बडे रूढ़िवादी यहूदी हैं। यह बर्दाश्त नही हो रहा। आत्महत्या करने का मन होता है।'

धर्मगुरु ने कहा, 'बहुत चिता न करो। मेरी तो सुनो। तुम्हारा तो एक लड़का है। हो गया, कोई बात नही है। फिर तुम कोई धर्मगुरु नही हो, मै धर्मगुरु हू। मेरे लड़के के साथ भी यही

हुआ। वह भी अमरीका गया, वहा से बिगड़कर आ गया। वह भी ईसाई हो गया। और मै धर्मगुरु हू। कम से कम मेरा लड़का तो होना ही नहीं चाहिए।'

तो उन दोनो ने कहा, अब क्या करे? उन्होने कहा, हम परमात्मा से प्रार्थना करे, और क्या कर सकते है। उन दोनो ने प्रार्थना की जाकर सिनागाग मे, कि हे प्रभु। यह क्या दिखला रहे हो? मेरा लडका मै प्राचीन परपरा से यहूदी हू, मेरा लड़का ईसाई हो गया। दूसरे ने कहा, मै धर्मगुरु हू। तुम्हारा प्रतिनिधि हू इस पृथ्वी पर। कम से कम मेरा तो कुछ खयाल रखते। मेरा लडका भी ईसाई हो गया।

और कहते है, ऊपर से आवाज आई कि 'तुम बकवास क्या कर रहे हो? मेरी तो सोचो। मेरा लडका ईसा मसीह मैने भेजा था, वह भी ।'

अपनी-अपनी अपेक्षाए है। 'और मै ईश्वर हू। तुम तो धर्मगुरु ही हो।'

जहा अपेक्षा है, वहा क्रोध है। क्षमा का अर्थ है तुमने अपेक्षा छोड दी। तुम हो कौन? माना, बेटा तुमसे पैदा हुआ है, लेकिन तुम हो कौन? तुम एक रास्ते थे जिससे बेटा आया। तुमने जगह दी आने की। तुमने बेटा बनाया थोडे ही है, बनानेवाला कोई और है। तुम तो केवल माध्यम थे, निमित्त थे। तुम निर्णायक थोड़े ही हो।

जो हो जाये, अपेक्षा-शून्य व्यक्ति स्वीकार कर लेता है। उसी स्वीकार मे क्षमा है।

अब इसे समझना।

साधारणत धर्मगुरु तुम्हे समझाते है—कुछ ऐसी बात समझाते है जिससे लगता है क्षमा क्रोध के उलटी है। वे ऐसा समझाते है कि तुम क्रोध मत करो, क्षमा कर दो इस आदमी को, इसने पाप किया, क्रोध मत करो, क्षमा कर दो। लेकिन मानते वे भी है कि इसने पाप किया, नही तो क्षमा क्या खाक करोगे? जब इसने कुछ गलती ही नही की तो क्षमा क्या करना है? क्षमा तो गलत हो गया, तभी की जाती है। तो फिर क्रोध और क्षमा मे एक बात तो समान रही कि इसने गलती की है। कोई क्रोध करता है गलती पर, कोई क्षमा करता है गलती पर, लेकिन गलती दोनो स्वीकार कर लेते है।

मेरी क्षमा का अर्थ और महावीर की क्षमा का अर्थ बिलकुल अलग है। महावीर जब कहते है, क्षमा करो, तो वे इतना ही कह रहे है समझो कि तुम हो कौन गलती और सही का निर्णय करनेवाले? अपेक्षा मत करो और क्षमा आ जायेगी।

क्षमा क्रोध के विपरीत नही है—क्षमा क्रोध का अभाव है। इसलिए क्षमा करनी नही पड़ती, अपेक्षा के गिरते ही हो जाती है।

'क्षमा से क्रोध का हनन करे, नम्रता से मान को जीते ।'

नम्रता का क्या अर्थ है?—अपनी स्थिति को जानना। यह कोई साधना नही है, सिर्फ अपने तथ्य को पहचानना क्या है मेरी स्थिति? सासो मे अटका हू। सास बद हो गई, समाप्त हो जाऊगा। स्थिति क्या है? आज हू, कल नही हो जाऊगा। अभी जमीन पर चल रहा हू, कल जमीन मेरे ऊपर होगी। अभी सबके सिर पर बैठने की कोशिश की है, कल इन्ही के चरण मेरे ऊपर पडेगे।

नम्रता का अर्थ है अपनी वास्तविक स्थिति को जानना कि हमारा होना ही क्या है? अहकार किस बलबूते पर? अपने को 'मै' कहना भी किस बलबूते पर? एक तरग है, आई-गई।

'नम्रता से मान को जीते, ऋजुता से माया को ।'

ऋजुता का अर्थ है सरलता, प्रामाणिकता, सीधा-सादापन। तुम्हारे साधु भी तिरछे है, वे भी ऋजु नही है। ऋजुता का तो अर्थ है बच्चे जैसा भोला-भालापन। साधु तो तुम्हारे बहुत अऋजु है, बहुत उलटे है। ऋजु नही है, इरछे-तिरछे है, बडे जटिल है। एक-एक बात को गणित से कर रहे है। अगर उपवास रखा है तो हिसाब भी रखा है साथ मे कि उपवास किया है। इस साल कितने उपवास किये, वह भी हिसाब है। यह परमात्मा के सामने पूरे खाते-बही लेकर मौजूद होगे। इनकी जिदगी मे सरलता नही है। इनकी जिदगी मे बड़ा गणित है। अगर क्रोध छोड़ा है, माया-मोह छोडा है, तो स्वर्ग पाने की आकाक्षा मे छोडा है, लेकिन कुछ पाने की आकाक्षा है। यह छोडना सीधा, साफ, सरल नही है।

ऋजुता बड़ा बहुमूल्य शब्द है—सीधी लकीर की तरह। दो बिदुओ के बीच जो निकटतम दूरी है, निकटतम दूरी है वह लकीर है। निकटतम। अगर जरा लबा किया तो इरछा-तिरछा हो जायेगा। दो व्यक्तियो के बीच जो निकटतम दूरी है, वह ऋजुता है। दो बिदुओ के बीच जो निकटतम दूरी है, वह लकीर

है, पक्ति है, रेखा है।

जब कोई व्यक्ति तुमसे कुछ पूछता है, तब तुम दो तरह का व्यवहार कर सकते हो या तो इरछे-तिरछे जाओ, गली-कूचो से घूमो, सीधे न जाओ, सीधी बात न करो, चालबाजी चलो, कुछ कहना चाहते हो, कुछ कहो, कुछ बताना चाहते हो, कुछ बताओ।

कहते है, मुल्ला नसरुद्दीन बचपन से ही उलटी खोपडी था। उलटी खोपड़ी यानी उससे जो भी कहो, वह उससे उलटा करेगा। तो मा-बाप समझ गये थे। क्या करोगे, अब उलटी खोपडी है । तो उसको वे वही कहते जो वे चाहते थे कि वह न करे। और जो वे चाहते कि वह करे, उससे उलटा कहते। जैसे अगर उनको चाहिए कि वह चुप बैठे तो वे कहते, 'बेटा। जरा शोरगुल कर।' तो वह चुप बैठ जाता। समझ गये एक दफे गणित, तो वे वैसे ही चलते।

एक दिन बाप बेटे के साथ लौट रहा था, नदी पार कर रहे थे। गधे पर शक्कर के बोरे लादे हुए थे। बीच नदी मे बाप ने देखा कि बोरे बाई तरफ झुके जा रहे है। नसरुद्दीन के गधे पर जो बोरे थे वे बाई तरफ झुके जा रहे है। तब वह चाहता था कि बेटा उन्हे दाई तरफ थोडा सरकाये। लेकिन वैसा कहो कि दाई तरफ सरकाओ तो तो वह कभी सरकायेगा नही। तो उसने कहा, 'बेटा, बोरो को जरा बाई तरफ सरका।' बाई तरफ वे खुद ही सरक रहे थे। मगर उस दिन चकित होकर बाप को देखना पडा कि बेटे ने उनको बाई तरफ ही सरका दिया। सब बोरे नदी मे गिर गये। बाप ने कहा, 'यह तेरा व्यवहार आज कुछ सगत नही।' उसने कहा, 'अट्ठारह साल का हो गया, अब मै भी समझने लगा तरकीब। अब तो तुम जो कहोगे, उसका उलटा न करूगा, अब तो तुम जो चाहते हो, उसके उलटा करूगा।'

लेकिन बाप भी आखिर नसरुद्दीन का बाप। उसने भी तरकीब निकाल ली। अब बात और भी तिरछी हा गई।

अगर बाप को चाहिए कि बोरे दाए तरफ सरकाये जाए, तो पहले तो वह कहता था कि बाए तरफ सरकाओ, अब अगर दाए तरफ ही सरकवाना हो तो कहना पड़ता है कि दाए तरफ सरकाओ। क्योंकि बेटा सोचेगा, यह बाए तरफ सरकवाना चाहता है, इसलिए दाए तरफ सरकवायेगा। अब और तिरछी हो गई बात। गणित और उलझ गया।

दो बिदुओ के बीच जो सीधी रेखा है, वही ऋजुता है। जो कहना है, जो करना है, जो चाहना है—वही कहो। जो कहते हो वही हो जाओ ऋजुता का अर्थ है। नही तो उलटा होता है। तुम जाते हो किसी के पास, तुम कहते हो । तुम हस रहे हो इस बात पर, लेकिन अगर खोजोगे तो इस उलटी खोपड़ी को हर खोपडी मे छिपा हुआ पाओगे। तुम किसी के पास जाते हो, तुम कहते हो कि आप के चरण की धूल हू, मै तो कुछ भी नही। तुम चाहते यह हो कि वह कहे, 'अरे आप और चरण की धूल। आप बड़े महापुरुष है।' अब समझो कि वह दूसरा आदमी कहे कि बिलकुल ठीक कह रहे है आप, चरण की धूल तो है ही, इसमे कहने का क्या है। तो आप नाराज हो जायेगे कि हद हो गई, इस आदमी को शिष्टाचार भी नही आता।

तुम जरा खयाल करना, तुम्हारी जिदगी मे यह उलटी खोपडी काफी समायी हुई है। तुम चाहते कुछ और हो, कहते कुछ और हो। यह धोखा फैला चला जाता है।

महावीर कहते है, 'ऋजुता से माया को ।' वह जो कपट है, तिरछापन है, उसको ऋजुता से जीत लो। क्योकि जितने तुम कपट से भरते जाओगे, उतनी जीवन मे उलझन होगी, उतना तुम्हारा जीवन पाखो मे कट जायेगा।

सरल व्यक्ति शात होता है। देखा तुमने। जब भी तुम झूठ बोलते हो, तभी अशाति होती है। क्योकि फिर याद रखना पडता है झूठ का कि किससे क्या बोले। जो आदमी झूठ ही बोलता रहता है सबसे, उसका जरा हिसाब तो समझो। एक बात तो माननी पडेगी, उसकी स्मृति की दाद देनी पड़ेगी। याददाश्त तो देखो। याद रखना पड़ता है। सत्य को याद रखने की कोई भी जरूरत नही है। जो व्यक्ति सचाई से जीता है, उसे याददाश्त की जरूरत ही नही है, क्योकि सच हमेशा वही का वही है। लेकिन तुमने एक से कुछ कहा, दूसरे से कुछ कहा, तीसरे से कुछ कहा—फिर हिसाब रखना पडता है, पहले से क्या कहा, दूसरे से क्या कहा, तीसरे से क्या कहा।

मुल्ला नसरुद्दीन दो स्त्रियो के प्रेम मे था। बहुत कम लोग है जो एक स्त्री के प्रेम मे हो। द्वैत हमारा सभी जगह होता है। तो एक स्त्री से कहता है कि तुझसे सुदर इस जगत मे कोई भी नही, दूसरी से भी यही कहता है कि तुझसे सुदर इस जगत मे कोई नहीं। दोनो बाते झूठ थी। कम से कम एक तो झूठ थी ही। एक

दिन सयोग की बात, दोनो स्त्रिया साथ मिल गई और दोनो को शक तो था ही। उन्होने नसरुद्दीन से पूछा, 'अब कहो कि कौन स्त्री दुनिया मे सबसे ज्यादा सुदर है?'

नसरुद्दीन थोड़ा झिझका। उसने कहा कि तुम एक-दूसरे से ज्यादा सुदर हो।

एक-दूसरे से ज्यादा सुदर। आदमी तरकीब निकाल ही लेता है। लेकिन हम झूठ बोलते चले जाते है। जाल उलझता चला जाता है। धीरे-धीरे तो बहुत बार झूठ बोलकर ऐसी हालत आ जाती है कि हमे भी लगता है कि शायद यही सच होगा, क्योकि इतने दिन से बोल रहे है, याद भी नही आती कि कब शुरू किया था। बहुत बार बोलने से, बहुत बार पुनरुक्त होने से झूठ स्वय को भी सच जैसा मालूम पडने लगता है। तब तुम अऋजु हो गये। तब तुम अर्जुन हो गये—अऋजु।

कृष्ण की पूरी चेष्टा गीता मे, इरछे-तिरछे अर्जुन को सीधा करने की है। नाम 'अर्जुन' का बडा सार्थक है। कृष्ण की पूरी चेष्टा यही है कि तू सीधा-साफ हो, क्षत्रिय है, क्षत्रिय की बात बोल। अचानक, यह अर्जुन कभी भी अहिसा की बात नही बोला था, आज अचानक अहिसा बोलने लगा। और अहिसा इसकी सच्ची नही है। क्योकि अगर ये इसके प्रियजन न होते, सबधी न होते, भाई-भतीजे, गुरु, पितामह, चचेरे, सब तरह के, मौसी, मामा के रिश्तेदार, सब इकट्ठे थे—अगर ये इसके अपने न होते, अपनो को देखकर यह जरा डरा। इसने कहा कि यह तो सब अपनो को ही मार डालूगा।

अब यह थोड़ा सोचने जैसा है। अर्जुन को सवाल उठा कि आदमी धन भी कमाता है, पद भी कमाता है, सिहासन पर भी बेठता है, तो मजा तो तभी आता है जब अपने देखने को मौजूद हो। तुम अगर दूसरे किसी गाव मे जहा तुम्हे कोई भी नही जानता, सम्मानित भी हो जाओ तो तुम्हे वह मजा न आएगा जो अपने गाव मे सम्मानित होकर आयेगा। दूसरे गाव मे जहा कोई जानता ही नहीं, वहा सम्मानित भी हो गये तो क्या खाक सम्मान। तुम्हारी इच्छा उस दूसरे गाव मे यह होगी कि अपने गाववालो को पता चल जाये कि कैसा सम्मान मिल रहा है, कैसी प्रतिष्ठा मिल रही है। अगर तुम्हे ऐसा कुछ हो कि तुम दुनिया के सम्राट हो जाओगे, लेकिन तुम्हे जाननेवाले सब मर जायेगे, तो तुम भी अर्जुन की हालत मे खडे हो जाओगे। तुम भी सोचोगे, सार क्या। अगर जगल मे जाकर राजा हो गये, जहा कोई आदमी नहीं, तो जगली जानवरो के बीच राजा होने का सार क्या। इससे तो डिप्टी कलेक्टर होना अच्छा, पुलिस इसपेक्टर होना अच्छा, पटवारी होना अच्छा—लेकिन कम से कम अपने गाव मे। जहा कोई जानता है, पहचानता है, वहीं अकड़ का मजा होता है। उन्ही के सामने तो हम सदा सिद्ध करना चाहते है कि देखो, तुम वहीं के वही रह गये, हम कहा पहुच गये, जिनके साथ हमने यात्रा शुरू की थी। अब अर्जुन इन्ही के साथ बडा हुआ, यही भाई-बधु, इन्ही के साथ जिदगी का दाव था, इन्ही के साथ सारी स्पर्धा थी बचपन से लेकर अब तक, यही सब खतम हो जायेगे—फिर सिहासन पर भी बैठ जाओगे, तो आसपास गिद्ध बैठे होगे, सियार आवाज कर रहे होगे और अजनबी साधरण-से लोग होगे जिनसे तुम्हारी कोई झझट ही न थी, कोई प्रतिस्पर्धा न थी, जिनका होना न होना बराबर होगा। तो अर्जुन के मन मे उठी तो है असल मे अहकार की बडी गहरी पकड, बडा मोह। इन्हीं के सामने तो सिद्ध करने का मजा है। दुर्योधन रहे, और हम जीते। भीष्म पितामह रहे, और देखे कि अर्जुन सिहासन पर है। और ये सारे कर्ण, और ये सारे सबधी पराजित खड़े हो, तो ही मजा है। नही तो मजा क्या है? उठा तो यह था, लेकिन बात उसने दूसरी की। उसने कहा कि मै मारना नही चाहता, हिसा तो बडा पाप है। आज तक हिसा ही करता रहा, मासाहारी, आज अचानक अहिसक हो गया। कृष्ण को धोखा देना सभव न था। वे अर्जुन को खीच-खीचकर सीधा करने लगे।

गीता पूरी की पूरी अर्जुन को ऋजु बनाने की चेष्टा है। वे उसको पकड-पकडकर सीधा कर रहे है कि जरा अकल ला, वापिस लौट, कहा की बाते कर रहा है? सन्यास तुझे सोहता नहीं। यह तेरे भीतर की बात नही। अन्यथा इतने दिन तक कौन तुझे रोकता था सन्यास लेने से? आज अचानक युद्ध के मैदान पर सन्यास की भाषा उठने लगी है। इस सन्यास मे कही कुछ और छिपा है।

तुम अपने भीतर ऋजुता को खोजना। जब भी तुम कुछ कहो तो जरा गौर से देखना, तुम यही कहना चाहते हो? यही तुम्हारी गहनतम आकाक्षा है या इससे विपरीत? तो जो सीधा-साफ हो, उसी को धीरे-धीरे साधना।

ऋजुता से जटिलता कट जाती है, माया हार जाती है। सतोष

से लोभ जीत लिया जाता है। जो तुम्हारे पास हो, उसमे आनदित, उसमे मग्न होना। सतोष का अर्थ है इतना मिला है, थोड़ा धन्यवाद तो दो। इतना मिला है, अनुग्रह तो मानो। आखे है कि तुम रोशनी देख सके, कि सूरज मे खिले फूल देख सके, कि वृक्षो की यह हरियाली देख सके। जरा सोचो तो, अधे भी है दुनिया मे, जिन्हे रग नही दिखाई पड़े। और जिन्होने रग न जाना, उन्होने क्या खाक दुनिया जानी। जिन्हे रूप न दिखाई पडा, जिन्हे चेहरा और आखो मे जो परमात्मा प्रगट होता है उसकी कोई झलक न मिली । तुम्हारे पास कान है, तुम गहनतम सगीत को सुनने मे समर्थ हो, पक्षियो का नाद, नदी की कलकल, सागर मे उठे तूफानो की दहाड, बादलो की गडगड़ाहट। जरा सोचो तो कि जिनके पास कान नही है, उनका जीवन कैसा खाली-खाली, सूना-सूना होगा। जहा कोई ध्वनि नही गूजी, कैसा मरुस्थल जैसा होगा। कितना तुम्हे मिला है। इन पाचो इद्रियो से कितनी वर्षा तुम पर हुई है। इस भीतर के बोध से कितने आनद के द्वार खुले है, खुलते रहे है। एक बद हुआ है तो दूसरा खुला है।

लेकिन नही, लोभी कहता है, इसमे क्या धरा है? तिजोडी। धन। जो मिला है उसकी तो फिक्र नही करता, जो नही मिला है उसकी दौड़ मे, आपाधापी मे नष्ट होता है।

महावीर कहते है, सतोष से लोभ को जीत लो। जरा देखो जो मिला है। उस पर नजर लाओ जो मिला है।

दुनिया मे दो तरह के लोग है। एक—जिनकी नजर उसको ही देखती है, जो नही मिला है। वे लोभी है। दूसरे—जिनकी नजर वही देखती है, जो मिला है। वे सतोषी है। और सतोषी को बहुत मिलता है। क्योकि मिलने पर उसकी नजर होती है, तो और मिलता है। और लोभी को कुछ भी नही मिलता, क्योकि न मिलने पर उसकी नजर होती है। न मिलना ही बढता जाता है। लोभ से और लोभ बढ़ता है। सतोष से और सतोष बढता है। जो थोड़ा सतोष मे डूबेगा वह पायेगा—

काफिले या मिट गए या बढ गए
अब गुबारे-राह भी उठता नही।

वे जो वासनाओ के, असतोष के, अतृप्तियो के, लोभ के, कामनाओ के काफिले थे—काफिले या मिट गए या बढ गए—या तो मिट गये, या कही और हट गये।

अब गुबारे-राह भी उठता नही।

—अब तो रास्ते पर गुबार भी नही है। काफिलो के बीत जाने के बाद जो थोडी गुबार उठती रहती है, वह भी नही है।

ध्यान रखना, भोग जब बीत जाता है तो त्याग की गुबार रह जाती है। भोग का काफिला तो निकल जाता है, तब त्याग की धूल रह जाती है। लेकिन परम शाति तभी मिलती है, जब भोग भी गया, त्याग भी गया।

काफिले या मिट गए या बढ़ गए
अब गुबारे-राह भी उठता नही।

तब एक परम तृप्ति, एक अहर्निश शाति की वर्षा होने लगती है। तब तुम पहली दफा पाते हो जीवन क्या है। और कितने अहोभागी है कि हम है। तब होना मात्र ही इतनी बडी सपदा है कि और कुछ चाहने की बात ही नादानी है।

'जैसे कछुआ अपने अगो को अपने शरीर मे समेट लेता है, वैसे ही मेधावी पुरुष पापो को अध्यात्म के द्वारा समेट लेता है।'

अध्यात्म यानी जागरण की प्रक्रिया, आत्मवान होने का शास्त्र। जैसे कछुआ सिकोड लेता है अपनी इद्रियो को, जहा-जहा पाता है भय है, जहा-जहा पाता है चिता है, वही भीतर सिकुड जाता है, अपनी गहरी सुरक्षा मे डूब जाता है—ऐसे ही जहा-जहा तुम्हे लगे भय है, दुख है, पीडा है, असतोष है, अभाव है, चिता है, सताप है, वहा-वहा से अपने चैतन्य को हटा लेना। और अतरात्मा की गहनता मे सब है जो तुम पाना चाहते हो।

यकीन रख कि यहा हर यकीन मे है फरेब
बका तो क्या है, फना का भी ऐतबार न कर।

होश को सम्हालो। यहा भरोसा मत करो। यहा बडे धोखे भरे पड़े है। यहा अब तक तुम जिन चीजो मे डोले हो, सभी मे धोखा है। यहा जिदगी की तो बात छोडो, मौत भी धोखा दे जाती है। क्योकि मौत भी कहा मौत सिद्ध होती है, फिर पैदा हो जाते हो।

यकीन रख कि यहा हर यकीन मे है फरेब
बका तो क्या है, फना का भी ऐतबार न कर।
यह सब फरेब है नजरे-इम्तियाज का
दुनिया मे वरना कोई भी अच्छा-बुरा नही।

न यहा कुछ अच्छा है, न बुरा है। अच्छा तुमने समझा कुछ—मोह पैदा हुआ, राग पैदा हुआ। बुरा समझा कुछ—द्वेष पैदा हुआ, विराग पैदा हुआ। यहा न कुछ अच्छा है, न बुरा है।

सब दृष्टि की बात है। तुम दृष्टि को भीतर मोड़ लो, एक गहन सतुलन पैदा होता है, जहा बुरा और अच्छा सब मिट जाता है, न कोई मित्र न कोई शत्रु।

'जान या अजान मे कोई अधर्मकार्य हो जाये तो अपनी आत्मा को तुरत उससे हटा लेना चाहिए। फिर दूसरी बार वह कर्म न किया जाये।'

जान या अजान मे अधर्मकार्य हो जाये तो तुरत, उसे पूरा भी मत करना। अगर क्रोध करने के क्षण मे आधा वचन बोले थे गाली का और याद आ जाये तो आधा ही बोलना और क्षमा माग लेना, उसे पूरा भी मत करना।

अगर वासना मे एक कदम उठ गया था और दूसरा उठने को था और याद आ जाये तो जो नही उठा है, उसे मत उठाना, जो उठ गया है, उसे वापिस मोड लेना।

बहुत सम्हलकर चलोगे तो ही पहुच पाओगे। रास्ता बडा कटकाकीर्ण है, चढाव भारी है—और तुम्हारी आदत उतरने की, फिसलने की है। तुम तो धर्म से भी फिसलने का उपाय खोज लेते हो।

एक व्यक्ति ने डाक्टर से पूछा, 'आखिर मुझे हुआ क्या है?'

'आप बहुत अधिक खाते है', कहा डाक्टर ने, 'बहुत शराब पीते है, और सुस्त है, महाकाहिल, महासुस्त है। यही आपकी बीमारी है।'

उस आदमी ने कहा, 'डाक्टर साहिब! कृपा करके इसे अपनी डाक्टरी भाषा मे लिख देगे, जिससे मै दफ्तर से एक महीने की छुट्टी प्राप्त कर सकू।'

सुस्त है, शराब पीता है, अतिशय खाता है—उसमे से भी एक महीने की छुट्टी निकालने की आशा रखता है, तो और सुस्ती बढ़ेगी, और खायेगा, और पीकर पड़ा रहेगा। लेकिन डाक्टरी भाषा मे लिख दे, क्योकि सुस्ती से तो बात चलेगी नही।

शास्त्र तुम्हारे लिए डाक्टरी भाषा सिद्ध होते है। तुम उनमे से अपना मतलब निकाल लेते हो। उनसे भी फिसल जाते हो।

जान या अजान मे कोई अधर्मकार्य हो जाये तो अपनी आत्मा को तुरत उससे हटा लेना चाहिए। फिर दूसरी बार वह कार्य न किया जाये। और एक बार जहा भूल दिखाई पड़ गई हो, आधे मे दिखाई पड़ी हो, तो वही से लौट आना चाहिए। और फिर दुबारा स्मरण रखना चाहिए कि इस यात्रा पर दुबारा कदम न उठे। ऐसा याद रखोगे, रखोगे, रखोगे, धीरे-धीरे याद पकेगी, मजबूत होगी। फिर बीज से ही वह जो गलत है, तुम्हारे भीतर प्रवेश न कर पायेगा।

उसके चक्कर मे दुबारा तो मै आने का नही
ढूढती फिरती है क्यो गर्दिशे-दौरा मुझको।

—अब ससार के चक्कर मे दुबारा आने का नही है। एक बार होश सम्हला, फिर कितना ही ढूढे ससार की विपत्तिया तुम्हे, फिर कितना ही लोभ के विषय तुम्हारे चारो तरफ खडे रहे, और कामवासना के लिए कितनी ही अप्सराए तुम्हे निमत्रण देती रहे—नही, फिर तुम न जा सकोगे। जो जागने लगता है, होश करने लगता है, अपने जीवन की स्थिति को जाचने-परखने लगता है, स्वाभाविक है कि जहा आग है वहा से हाथ खीच ले।

इश्क वाबस्तए-जजीरे-जुनू कब है 'रविश'
हुस्ने-खुदबी की तमन्ना है तो खुद होश मे आ।

तुम्हारी अतरात्मा, तुम्हारा गहन हृदय किसी जजीर मे बधा हुआ नही है। तुम्हारा प्रेम कारागृह मे बद नही है। सिर्फ तुम बेहोश हो। अगर वास्तविक सौदर्य का अनुभव करना है तो बस एक काम कर लो—

हुस्ने-खुदबी की तमन्ना है तो खुद होश मे आ।

—बस होश मे आ जाओ। बेहोशी ही तुम्हारा कारागृह है। वही तुम्हारी जजीरे है।

महावीर का सर्वाधिक जोर होश पर है। बेहोशी पाप है, होश पुण्य है।

'सपूर्ण परिग्रह से मुक्त, शातिभूत, शीतिभूत, प्रसन्नचित्त श्रमण जैसा मुक्ति-सुख पाता है, वैसा सुख चक्रवर्ती को भी नही मिलता।'

अगर तुम सम्राट भी हो जाओ सारे ससार के, छहो द्वीप के चक्रवर्ती हो जाओ, तो भी तुम उस सुख को न पा सकोगे जो उस भिक्षु को मिलता है, उस श्रमण को, या उस ब्राह्मण को, जो परिग्रह से मुक्त, लोभ से मुक्त, शीतिभूत, भीतर शात हुआ, शीतल हुआ, प्रसन्नचित्त।

ये सारे सूत्र बडे बहुमूल्य है। जीवन मे तुमने अभी गर्मी जानी है, शीत नही जानी। जीवन का तुमने एक ही काल जाना है—ऊष्ण, अभी शीतल क्षण नही जाने। अभी तुम उबले हो, जले हो, शात नही हुए, ठडे नही हुए। धीरे-धीरे अपने को

शीतल करो, शात करो। जो-जो चीज तुम्हे उबालती हो, ईधन बनती हो तुम्हारी वासना मे, तुम्हे जलाती हो, उससे धीरे-धीरे जागो और दूर हटो। तो तुम उस शाति को, उस मुक्ति-सुख को पाने मे समर्थ हो जाओगे, जो सारे ससार का मालिक भी कोई हो जाये तो नहीं पाता। अपने मालिक होकर ही पाया जाता है वह।

कहीं से ढूढ़ कर ला दे हमे भी ऐ गुलेतर।
वोह जिदगी, जो गुजर जाए मुस्कुराने मे।

लेकिन किसी से मागने से वह जिदगी न मिलेगी। वह जिदगी तो तुम खोजोगे तो ही, बनाओगे तो ही। तुम वही पाओगे, जो बना लोगे। आत्मा तुम्हारा निर्माण है, तुम्हारा सृजन है।

कौन कहता है ख्वाबे-रायगा है जिदगी
ऐ अमीने होश। कैफे-जाविदा है जिदगी
जादा पैमा, कारवा-दर-कारवा है जिदगी
जिदगी मौजे-रवा, जूए-रवा, बहरे-रवा

—किसने कहा कि जीवन व्यर्थ है।

कौन कहता है ख्वाबे-रायगा है जिदगी।

किसने कहा कि जिदगी सपना है। होशवाले। थोड़ा होश को सम्हाल। ऐ अमीने होश। कैफे-जाविदा है जिदगी। जिदगी तो परम आनद है, स्थायी आनद है।

जादा पैमा, कारवा-दर-कारवा है जिदगी।

यह तो एक यात्री-दल है जीवन-यात्रा पर निकला, प्रतिक्षण गतिमान।

जिदगी मौजे-रवा, जूए-रवा, बहरे-रवा।

जीवन आनद की लहर है। आनद की सरिता है। आनद का सागर है। लेकिन उनके लिए ही, जिन्होने अपने को कछुए की भाति सिकोड़ लिया, उनके लिए ही, जिन्होने अपने को जगा लिया। और जिनको जीने का यह ढग नही आता, वे जीवन के विपरीत बाते करने लगते है, उनसे सावधान रहना।

महावीर जीवन के विपरीत नही है। महावीर तुम्हारे तथाकथित जीवन के विपरीत है, ताकि तुम असली जीवन को पा सको।

न आया जिसे शेवए-जिदगी
वही जिदगी से खफा हो गया।

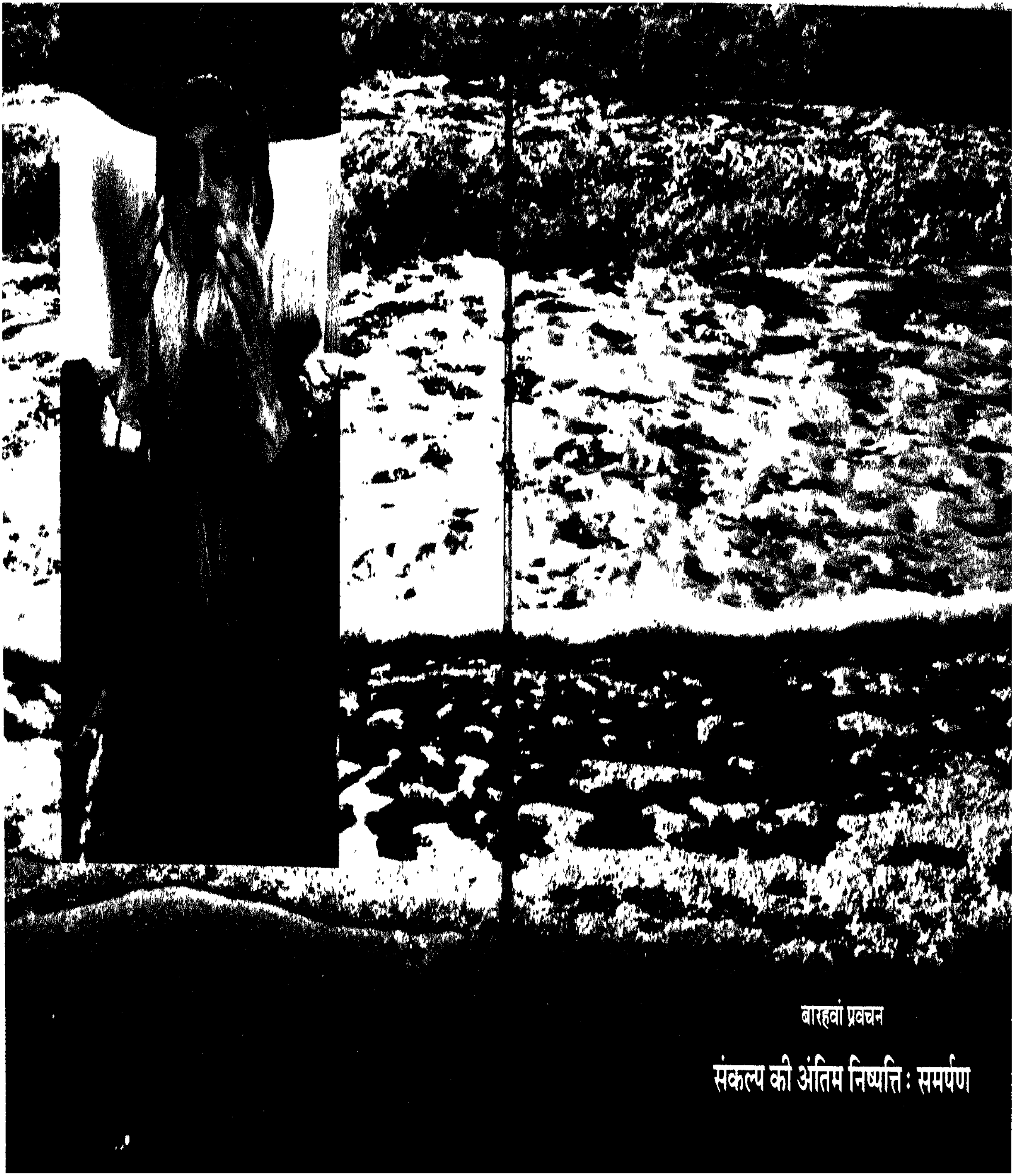
और जिसको भी जिदगी जीने का ढग न आया, वही नाराज हो गया। नाराजगी धर्म नही है—समझ, होश।

महावीर महासुख के पक्षपाती है। उस महासुख को ही वे मोक्ष कहते है। तो उन्होने जितनी जिदगी के खिलाफ बाते कही है, हमेशा याद रखना, तुम्हारी जिदगी के खिलाफ कही है। जिदगी जो कही गलत हो गई, जहर हो गई, जिदगी जो कही रोग हो गई, जिदगी जो कही विक्षिप्त हो गई—उसके खिलाफ कही है। और इसीलिए खिलाफ कही है, ताकि असली जिदगी की तलाश मे तुम निकल सको। इसीलिए कही है, ताकि तुम्हे अगर तुम्हारी जिदगी दुख मालूम पड़े, तो तुम जागो।

दुख जगाता है। दुख की याद आने लगे, समझ आने लगे, तो फिर सुख की दिशा की खोज पैदा होती है। महावीर जीवन-विपरीत नहीं, विरोध मे नही। महावीर महाजीवन के पक्षपाती है। खोटे सिक्को के विरोध मे है, क्योकि असली सिक्के मौजूद है और तुम खोटे सिक्को से अपने को भरमाये चले जाते हो। जागो।

आज इतना ही।





बारहवां प्रवचन

संकल्प की अंतिम निष्पत्ति: समर्पण

प्रश्न-सार

मुझसे न समर्पण होता है और न मुझमे सकल्प की शक्ति है।
और आपसे दूरी भी बरदाश्त नहीं होती। क्या करू ?

आपका कहना है कि प्यास है तो जल भी होगा ही,
और प्यासा ही जल को नही खोजता, जल भी प्यासे को खोजता है ?
मेरा मार्ग-निर्देश करे।

आश्चर्य है कि मै आपके प्रति अनाप-शनाप बकता हू,
कभी-कभी गाली भी देता हू।
यह क्या है ?

मेरी विचित्र धारणाओ के कारण आप मुझे भगवान जैसे नहीं लगते. ?

मेरी दिनचर्या आनदचर्या बन गयी है।
अब पिघलू और बहूं—बस यही कह दे।

पहला प्रश्न : *मुझ से न समर्पण होता है और न मुझमे सकल्प की शक्ति ही है, बीच मे उलझा हू। आपने तो मेरे लिए बड़ी झझट खडी कर दी है। हाल यह है कि आपसे दूरी भी बरदाश्त नही होती, क्या करू?*

बेइख्तियार माग ली तेरे सितम की खैर
उठते नही है हाथ अब दस्ते-दुआ के बाद।

सकल्प तो किया जाता है—समर्पण होता है। इसलिए ऐसा प्रश्न तुम उठा ही न सकोगे कि समर्पण नही होता। समर्पण तुम्हारी शक्ति की बात नही है। इसलिए ऐसा प्रश्न तो बुनियाद से ही गलत है कि समर्पण की मुझमे शक्ति नही है।

इसे ठीक से समझना।

समर्पण कोई कृत्य नहीं है, जो तुम कर सको। समर्पण तो ऐसी चित्त की दशा है, जहा तुम पाते हो कि अब मुझसे तो कुछ भी नही होता। जरा भी आशा बनी रही कि मुझसे कुछ हो सकता है तो समर्पण न होगा, तो तुम्हारा अहकार बचा है। तुम सोचते हो, अभी सभव है कि मै कुछ कर लू। लेकिन जब तुम्हारा अहकार सभी तरफ से जराजीर्ण होकर बिखर जाता है, जैसे कोई पुराना भवन गिर गया हो; जैसे कोई पुराना वृक्ष, जड़ टूट गई, उखड़ गया हो—जिस दिन तुम्हारा अहकार परिपूर्ण रूप से गिर जाता है और तुम्हे लगता है मेरे किये कुछ भी न होगा, क्योकि मेरे किये अब तक कुछ न हुआ। जब तुम्हारे करने ने बार-बार हार खायी, जब तुमने किया और हर बार असफलता हाथ लगी, जब कर-करके तुमने सिर्फ दुख ही पाया, और कुछ न पाया, कर-करके नर्क ही बनाया, और कुछ न बनाया—जब यह पीडा सघन होगी, जब तुम पूरे असहाय मालूम पड़ोगे, उस असहाय क्षण मे ही समर्पण घटित होता है। वह तुम्हारा कृत्य नहीं है। वह तुम्हारे कृत्य की पराजय है। हारे को हरिनाम। जब तुम्हारी हार इतनी प्रगाढ़ हो गई कि अब जीत की कोई आशा भी न बची, जब तुम्हारी हार अमावस की अधेरी रात हो गई कि अब एक किरण भी अहकार की शेष नही रही, अब तुम्हे लगता नही है कि तुम कुछ कर पाओगे—पराजय की परिपूर्णता मे समर्पण घटित होता है।

पूछा है कि 'मुझसे न समर्पण होता है, न सकल्प की शक्ति ही मुझमे है।' दूसरी बात तो ठीक हो सकती है कि सकल्प की शक्ति न हो, पहली बात ठीक नही हो सकती। और अगर पहली बात ठीक नही है तो दूसरी भी पूरी ठीक नही हो सकती। तुम कहते हो, संकल्प की मुझमे शक्ति नही—यह भी तुम कहते हो, मानते नही। ऐसा तुम जानते नही। कहीं भीतर अभी भी आशा बची है। कोई किरण तुम सम्हाले हुए हो। तुम सोचते हो, इस बार नही हुआ, अगली बार होगा, आज नही हुआ, कल हो जायेगा। आज हार गया, वह अपनी शक्ति की कमी के कारण नहीं, परिस्थिति अनुकूल न थी। आज हार गया, क्योकि भाग्य ने साथ न दिया। आज हार गया, क्योकि मैंने चेष्टा ही पूरी न की। यदि मै चेष्टा पूरी करता, ठीक सम्यक मुहूर्त चुनता, तो बराबर जीतता।

सभी हारे हुए हार को समझा लेते है। हार को स्वीकार कौन करता हू। हारा हुआ समझा लेता है कि लोग विरोध मे थे। हारा

हुआ समझा लेता है कि चेष्टा पूरी न हो सकी।

एक हाथी खड़ा था। और हाथी के पास, पैरो के पास, सुबह की धूप थी। सूरज निकला था। सर्दी के दिन थे। एक चूहा बैठा था, वह भी धूप ले रहा था। ऐसे साधारणत हाथियो को चूहे दिखायी नहीं पड़ते, लेकिन खाली खडा था हाथी, कुछ काम भी न था, इधर-उधर देख रहा था, सुबह की धूप ले रहा था—चूहा दिखाई पड़ा। उसने कहा, 'अरे। आश्चर्य। इतना छोटा प्राणी, कभी देखा नही।' चूहे ने कहा, 'आप गलत न समझे। मै जरा कुछ दिनो से बीमार हू।'

छोटा कौन है। थोड़े दिनो से बीमार हू। जरा तबियत नासाज है, इसलिए छोटा दिखाई पड रहा हू।

तुमने भी नही समझा लिया है हजारो बार अपने को? समझाना छोडो। उस समझाने मे ही, उस तर्क मे ही, तुम्हारा अहकार शेष रह जाता है। जिस दिन तुम अपनी हार को स्वभाव समझ लोगे कि मेरे किये होगा क्या नही कि मै आज कमजोर हू, कल बलशाली हो जाऊगा। नही कि मुझे ठीक विधि का पता नही है, कल पता चल जायेगा। नही कि आज भाग्य ने साथ न दिया, कल देगा। कोई हर्ज नही, एक बार हारे तो सदा थोड ही हारेगे। कभी तो भाग्य बरसेगा। कभी तो किस्मत साथ होगी। कभी तो परमात्मा भी दया करेगा। किये जाओ।

नहीं, अहकार नपुसक है स्वभाव से। उसके किये कुछ होता ही नहीं।

तो मै तुमसे कहूगा कि तुम सकल्प कर ही लो, जितना तुमसे बन सके कर लो। हारो पूरी तरह। हार मे विजय छुपी है। सकल्प की हार मे समर्पण उठता है। जीत गये तो ठीक। अगर सकल्प से जीत गये तो ठीक, कोई जरूरत न रही। कुछ लोग जीत गये है। इक्के-दुक्के जीते है। रास्ता बड़ा कठोर है, बडा दुर्गम है। लेकिन कुछ लोग जीते है। तो अपनी पूरी कोशिश कर लो। अगर जीत गये, अगर सकल्प से पा लिया तो पा ही लिया। अगर न जीते, तो भी पूरी कोशिश कर लेने के बाद हार समग्र होगी। तो पूरी तरह हार जाना। तो अनेको ने हारकर पाया है। और जीतकर पाने से हारकर पाने का मजा ज्यादा है।

यह प्रेम कुछ बात ऐसी है कि यहा हार, जीत है। तो हारने से घबड़ाना मत। मगर एक बार तुम्हे अपनी पूरी ताकत दाव पर लगा लेनी चाहिए। कही मन मे यह लुका-छिपा भाव न रह जाये कि कर सकते थे। अगर वह भाव रहा तो समर्पण न हो पायेगा। ऐसा ही दिखता है—

क्या शै है मुहब्बत भी कुहसार को ढाए है
तिरतो को डुबोये है, डूबो को तिराए है।

तुमने देखा, कभी कोई मर जाता है तो नदी पर तैर जाता है। जिंदा डूब गया था, मरकर तैर जाता है। मुर्दे को कोई तरकीब पता है जो जिदे को पता नही थी। अगर जिदा भी मुर्दे की भाति हो जाता तो नदी ने तैरा दिया होता, तो नदी डुबाती न। अगर जिंदा ने भी स्वीकार कर लिया होता कि चलो राजी है, डुबाओ, तो नदी डुबाती न। जो राजी है उसे कौन डुबाता है। वह जो डूबना नही चाहता, जो प्रतिरोध करता है, सघर्ष करता है, नदी उसी को डुबा देती है। तुम लडो मत।

मगर यह न लड़ने की घटना तभी घटेगी जब तुम्हारे लडने की वृत्ति पूरी तरह पराजित हो जाये, रत्ती मात्र भी आशा शेष न रहे। तुम गहन निराशा मे गिरो। वही से सुबह है समर्पण की। सकल्प जहा हारता है, वहा समर्पण है। जीत गये तो जीत गये, न जीते तो भी हारे नही, क्योकि फिर हार मे से जीत निकल आती है। इसलिए धर्म के मार्ग पर जानेवाला कभी, कभी भी हारता तो है ही नही, जीतता है तो जीतता है, हारता है तो जीतता है। परमात्मा की तरफ जानेवाला हर हालत मे पहुचता है। क्योकि सभी रास्ते उसकी तरफ जाते है।

जिन मित्र ने पूछा है, उनकी अडचन यह है कि सकल्प का पूरा प्रयोग नही किया, और उस कमी को समर्पण से पूरा करना चाहते है। सकल्प पूरा नही हुआ, तो समर्पण कैसे पूरा होगा? तुम्हारा अहकार पूरी तरह धूल मे गिर जाना चाहिए।

यही तो अजामे-जुस्तजू है
कि ठोकरे खाकर बुतकदो की
जबीने-रुसवा को रखकर अपनी
हरम की चौखट पे सो गया हू
जो काफिला इस तरफ से गुजरे,
वो एक ठोकर मुझे लगा दे,
'जमील' मै बीच रास्ते मे
इसी भरोसे पे सो गया हूं।

यही तो अजामे-जुस्तजू है—यही तो खोज का नतीजा है कि ठोकरे खाकर बुतकदो की—कि बहुत पूजागृहो की, मदिरो की,

मूर्तिगृहो की, ठोकरे खा-खाकर

जबीने-रुसवा को रखकर अपनी

हरम की चौखट पे सो गया हू

—अपने बदनाम मस्तक को अब तो तेरे भवन के सामने सीढियो पर रखकर सो गया हू। अब खोजता भी नहीं।

जबीने-रुसवा को रखकर अपनी

हरम की चौखट पे सो गया हू

जो काफिला इस तरफ से गुजरे

वो एक ठोकर मुझे लगा दे

'जमील' मै बीच रास्ते मे

इसी भरोसे पे सो गया हू।

समर्पण ऐसी घडी मे घटता है, जब तुम बिलकुल हारकर बीच रास्ते पर गिरकर सो गये कि अब ठीक है, तुझे उठाना हो उठा लेना। तुझे जिलाना हो जिला देना। तुझे मारना हो मार देना। न अपनी अब कोई खोज है, न अपनी अब कोई आकाक्षा है। जो तेरी मर्जी—वही पूरी होने दे। तब समर्पण उठता है।

समर्पण करने की बात नही है, होने की दशा है। इसलिए तुम यह तो पूछ ही नही सकते कि मुझमे समर्पण की शक्ति भी नही। समर्पण का शक्ति से क्या लेना? शक्ति की भाषा ही समर्पण के विपरीत है। समर्पण तो असहाय, बेसहारा, पराजित उससे उठता है। अभी तुम शक्ति की भाषा मे सोच रहे हो, इसलिए मै कहता हू, थोडा सकल्प कर लो। महावीर के रास्ते पर थोडा चलो। पहुच गये तो महावीर हो जाओगे, न पहुचे तो मीरा हो जाओगे। घबडाना क्या है? जो चलता है, मै कहता हू, पहुच ही जाता है।

महावीर और बुद्ध दोनो एक ही रास्ते से चले। दोनो का रास्ता सकल्प का रास्ता था। दोनो समसामयिक भी थे। थोड़े-से ही वर्ष का फासला था। महावीर बारह वर्षो तक जूझते रहे। जूझकर उन्होने पा लिया। बुद्ध छह वर्ष के बाद थक गये, हार गये। रास्ता वही था। इतने थक गये, इतने हार गये कि सब छोड़कर एक दिन वृक्ष के नीचे बैठ गये कि बस अब हो गया, न ससार मे कुछ पाने योग्य है, न आत्मा मे कुछ पाने योग्य है—पाने योग्य ही कुछ नही तो पाऊगा क्या।

उस साझ उन्होने सब छोड दिया। खोज भी छोड दी। उनके पाच शिष्य, जो उनके साथ थे सदा, यह देखकर कि बुद्ध भ्रष्ट हो गये, छोड़कर चले गये। उन्होने कहा, यह गौतम तो अब भ्रष्ट हो गया। इसने तो साधना का पथ ही छोड़ दिया। लेकिन उसी रात घटना घटी। उसी रात बुद्धत्व को बुद्ध उपलब्ध हुए। उसी रात दीया जल गया।

महावीर ने सकल्प से पाया, बुद्ध ने समर्पण से। गये दोनो सकल्प के रास्ते पर थे। इसलिए जैनो और बुद्धो मे बडा बुनियादी विरोध बना रहा है, क्योकि जैनो को लगता है, अगर बुद्ध भी ठीक है तो फिर महावीर के ठीक होने मे कठिनाई पडती है। क्योकि बुद्ध ने तो छोडकर पाया, प्रयास छोड़कर पाया, अप्रयास से पाया। खोज ही छोड दी, तब पाया। और फिर तो बुद्ध ने इसे नियम बना दिया कि तुम तब तक न पा सकोगे, जब तक तुम्हारा प्रयास समाप्त न हो जाये। क्योकि जिसे पाना है, वह पाया ही हुआ है, प्रयास छोडो तो दिखाई पड जाये। प्रयास की आपाधापी मे दिखाई नही पडता। तुम दौडते हो, चिल्लाते हो, भागते हो तो जो मौजूद है उससे चूक जाते हो।

महावीर ने सकल्प से पाया। इसलिए बौद्धो को महावीर प्रीतिकर नहीं लगते। क्योकि अगर महावीर ठीक है तो फिर बुद्ध का पाना कैसे हुआ?

मै तुमसे कहता हू दोनो ठीक है। सत्य कजूस नही। और परमात्मा का एक ही रास्ता नही। जितने लोग है, उतने रास्ते है। हर आदमी वही से तो चलेगा, जहा है। तुम वहा से चलोगे जहा तुम हो। दूसरा वहा से चलेगा जहा वह है। लेकिन सभी रास्ते उस तक पहुच जाते है। सत्य का अर्थ ही यह है कि सब द्वार उसी तक पहुचाते है। असत्य का बधा हुआ मार्ग होता है। सत्य का कोई बधा हुआ मार्ग नही होता। क्योकि असत्य की सीमा होती है, सत्य की कोई सीमा नही होती। अगर क्षुद्र के पास जाना हो तो सभी रास्तो से न पहुच सकोगे। अगर तुम्हे गगा जाना है तो सभी रास्तो से न पहुच सकोगे। लेकिन अगर महासमुद्र की तरफ जाना है तो कही से भी चलो, पहुच जाओगे। पूरब जाओ, पश्चिम जाओ, उत्तर जाओ, दक्षिण जाओ, देर-अबेर सागर तुम्हे मिल ही जायेगा। क्योकि सागर ने पृथ्वी को सब तरफ से घेरा है। कोई रास्ते से करीब मिलेगा, किसी से थोडी दूर मिलेगा। नाम शायद अलग होगे, कही हिद महासागर मिलेगा, कही प्रशात महासागर मिलेगा, कही अरब सागर मिलेगा—नाम ही अलग होगे, सागर का स्वाद एक है।

सत्य महासागर जैसा है, असत्य छोटे-छोटे डबरे है। अगर जरा भी इधर-उधर गये तो चूक जाओगे।

समर्पण घट सके, इसके लिए सकल्प पूरी तरह कर लो।

दोनों हालत मे सकल्प जरूरी है। सकल्प से पहुचना हो तो भी जरूरी है; समर्पण से पहुचना हो तो भी जरूरी है। सकल्प हर हाल आवश्यक है—और पूरा। क्योकि जो थोड़ा तुमने अधूरा किया, जो बच गया, वही तुम्हे सतायेगा, वही समर्पण को घटित न होने देगा।

और मै तुमसे यह नहीं कहता कि इसी मार्ग से चलोगे तो पहुचोगे। अगर तुम्हे पहुचना है तो ऐसा कोई भी मार्ग नही है जो तुम्हे रोक पाये। लेकिन पहुचने की एक शर्त है जो भी करो, समग्र भाव से करना। अब समर्पण तो किया नही जा सकता, इसलिए सकल्प ही करो। तो यहा भी मै इतने सकल्प के प्रयोग तुम्हे देता हू और समर्पण की बात किये चला जाता हू।

मेरे पास लोग आ जाते है, कभी-कभी वे कहते है, आप कहते है समर्पण, कुछ भी नही करना, सिर्फ बहना है। फिर क्यो ध्यान? फिर क्यो पाच-पाच ध्यान दिन मे? मै जानता हू कुछ भी नहीं करना, बहना है, लेकिन तुम जैसे हो, अभी बह न सकोगे। तुम तैरने लगोगे। तुम तडफड़ाने लगोगे।

मुर्दे की भाति नदी मे छूट जाने के लिए तैरने की बड़ी गहरी कुशलता चाहिए। बड़ा तैराक ही अपने को छोड़ सकता है नदी मे। क्योकि बड़ा तैराक ही भय से मुक्त हो जाता है। वह जानता है कि तैर लेगे जब जरूरत होगी। अगर कोई कठिनाई आ गई तो तैरना तो अपने पास है। जितना बड़ा तैराक हो, उतना ही अपने को निस्पद छोड़ देता है। हाथ-पैर भी नही हिलाता। क्योकि वह जानता है, डर क्या है। हाथ अपने पास है, मै सदा मौजूद हू—अगर कोई घड़ी ऐसी आई तो तैर लूगा। लेकिन ऐसी घड़ी का भय उसे नहीं सताता।

जिसने तैरना नहीं जाना, उससे मै कहू कि तू कूद जा नदी मे, छोड़ दे अपने को, वह कूद भी जाये किसी प्रेरणा मे, किसी उल्लास के क्षण मे, उत्साह मे, उत्तेजना मे, किसी मदहोशी मे, मेरी बात मे पड़ जाये, मेरा गीत उसे पकड़ ले, नशे मे आ जाये, कूद जाये—तो कूदते ही भूल जायेगा कि मैंने क्या कहा था। वह तत्क्षण हाथ-पैर फेकने लगेगा। वह हाथ-पैर फेकना अवश होगा। उसे रोक न सकेगा। क्योकि रोकने का मतलब होगा मौत। उसके सामने तो एक ही सवाल होगा अगर जीना है तो हाथ-पैर फेको, नहीं मरे। नदी तो भूल ही जायेगी, मौत और जीवन के बीच चुनाव होगा। कौन चिता करता है उस समय कि बहो। तैरना जो नही जानता है, वह हाथ-पैर तड़फड़ाने लगेगा। जो तैरने मे बहुत कुशल है, वही राजी होगा, वह कहेगा कि ठीक है, बहकर देख ले।

निर्भय चित्त से बहना सभव है। सकल्प तुम पूरा कर लो। उससे तुम तैरना सीख जाओगे। अगर पहुच गये तैरने से, तो ठीक है, पहुच ही गये। अगर न पहुचे, तो घबड़ाने की कोई बात नही। एक उपाय शेष रह जाता है—निरुपाय होने का उपाय, असहाय होने का उपाय।

भक्ति की वही भाषा है। प्रेमी की वही भाषा है। सूफियो की, नानक की, कबीर की, मीरा की, चैतन्य की, वही भाषा है छोड़ दो। लेकिन इसके पहले वे बड़े निष्णात हो चुके है तैरने मे। ऐसे ही, बिना तैरना जाने कौन कब छोड पाया है? तुम्हारे अचेतन से इतने जोर का भय उठेगा कि उस भय से तुम प्रभावित हो जाओगे, तड़फड़ाने लगोगे, चिल्लाने लगोगे बचाओ।

कहते है, जब कोई सगीतज्ञ परिपूर्ण रूप से पारगत हो जाता है, तो वीणा तोड़ देता है, क्योकि फिर वीणा से भी सूक्ष्म सगीत मे बाधा पड़ती है। वीणा भी तो कोलाहल ही पैदा करती है। मधुर कोलाहल, पर है तो कोलाहल ही। जब कोई और गहरे सगीत मे उतरने लगता है, जहा शून्य की ध्वनि बजती है, जहा शून्य का अनाहत नाद है, तो वीणा भी हटा देता है, वीणा भी छोड़ देता है। अब तो भीतर का अतरग बजने लगा, अब बाहर के सहारे कौन लेता है।

ऐसा ही मै तुमसे कहता हू। समर्पण मे जो उतरना चाहता हो, सकल्प मे कुशल हो जाना जरूरी है। इसलिए तो इन विपरीत मार्गो की तुमसे चर्चा करता रहता हू, ताकि कोई मार्ग तुम्हे पकड़ न ले। और इन विपरीत का उपयोग तुम रोज करते हो सामान्य जीवन मे, लेकिन परमात्मा की तरफ जाते वक्त भूल जाते हो। जरा व्यवहारिक बनो। चलते हो तुम, तो तुम्हारे दोनो पैर एक साथ नही चलते, एक पैर खड़ा रहता है तो दूसरा उठता है। दोनो विपरीत काम करते है एक खड़ा रहता है—अडिग, जमीन को पकड़कर, दूसरा उठता है, आगे जाता है। फिर दूसरा खड़ा हो जाता है तो पहला उठता है, आगे जाता है।

तुमने खयाल किया, इस वैपरीत्य मे ही तुम्हारी गति है। अगर दोनो पैर एक साथ उठा लो, गिरोगे, बुरी तरह गिरोगे, हाथ-पैर तोड़ लोगे। फिर कभी चल न पाओगे। अगर दोनो पैर जमाकर खड़े हो जाओ तो भी न चल पाओगे। चलना हो तो एक पैर समर्पण का, एक पैर सकल्प का। पक्षी उड़ता है, दो पख चाहिए—दोनो अलग-अलग दिशाओ मे फैले हुए। एक ही पख से तो पक्षी डूब जायेगा।

एक फकीर, सूफी फकीर को उसके शिष्य ने पूछा कि 'क्या अकेले सकल्प से पहुचना न हो सकेगा या अकेले समर्पण से?' वह फकीर नदी के किनारे खडा था। वे नदी के पार जाने की तैयारी कर रहे थे। उस फकीर ने कहा, आओ रास्ते मे उत्तर दे दूगा। नाव मे दोनो बैठ गये। साधारणत तो शिष्य ही नाव को चलाता था, लेकिन उस दिन गुरु ने कहा, मै ही नाव चलाता हू। उसने एक पतवार से नाव खेनी शुरू कर दी। अब नाव दो पतवार से चलती है। एक पतवार से तो नाव गोल-गोल घूमने लगी, वर्तुलाकार चक्कर मारने लगी। उसका शिष्य हसने लगा। उसने कहा, 'आप क्या मजाक कर रहे है? आपको मालूम नही चलाना, मुझे दे। कही एक पतवार से नाव चली है? ऐसे तो हम यही चक्कर खाते रहेगे।'

तो गुरु ने कहा, एक पतवार का नाम समर्पण है और दूसरी पतवार का नाम सकल्प। और जिसने एक से चलाने की कोशिश की, वह मुश्किल मे पड़ेगा।

अब तुम इसे ऐसा समझो—बड़ा विरोधाभास लगेगा—समर्पण करना हो तो भी तो मूलत सकल्प चाहिए। सकल्पहीन कैसे समर्पण करेगा? समर्पण कोई छोटी घटना है? किसी के चरणो मे अपने को छोड़ देना, कोई छोटा निर्णय है? इससे बड़ा और कोई निर्णय हो सकता है? हवाओ के सहारे सूखे पत्ते की भाति अपने को छोड़ देना, इससे बड़ा कोई और निर्णय हो सकता है? इतना अभय, इतना गैर-डावाडोल चित्त तो समर्पण का भी पहला कदम तो सकल्प है। और सकल्प की भी आत्यतिक परिपूर्णता समर्पण मे है। क्योकि करते-करते तो तुम थकोगे ही। कभी तो ऐसी घड़ी आनी चाहिए जब करने से छुटकारा हो—उसी को तो हम मोक्ष कहते है। करा, किया, बहुत किया, जन्मो-जन्मो तक किया, कर-करके ही तो हमने अपने जीवन को उलझा लिया है। इसलिए इस उलझाव के मूल आधार को हम कर्म कहते है। कर्म का अर्थ है जो किया। और हम कहते है, कर्म से कैसे छुटकारा हो?

लोग मुझसे पूछते भी है कभी-कभी आकर, कर्म से कैसे छुटकारा हो? लेकिन मुझे लगता है, उन्हे ठीक याद नहीं रहा कि कर्म का अर्थ क्या होता है—करने से कैसे छुटकारा हो? अकर्ता-भाव का कैसे जन्म हो? कब ऐसी घड़ी आयेगी जब मै सिर्फ हो सकू और करने की कोई रेखा न बचे?

करने को कुछ भी न रहे, होना परिपूर्ण हो जाये—उसको हम मोक्ष कहते है। मोक्ष का अर्थ है जहा तुम हो, विश्व के साथ ऐसी सगति मे, विश्व के साथ ऐसे तारतम्य मे, विश्व के साथ ऐसे सगीत मे लयबद्ध, कि तुम कुछ भी नही करते, विश्व ही करता है, तुम उसके साथ बहते हो।

सकल्प का भी अतिम परिणाम समर्पण है, और समर्पण की भी शुरुआत, प्रथम चरण सकल्प है। इसलिए मै तुमसे कहूगा, तुम अभी सकल्प की ही चिता कर लो।

दूसरा प्रश्न आपका कहना है कि प्यास है तो जल भी होगा ही। यही नही, प्यास इसलिए है कि कही जल है। और आपने तो यहा तक कहा कि प्यासा ही जल को नही खोजता, जल भी प्यासे को खोजता है। तब जानना चाहता हू कि प्यासे और पानी के बीच कभी-कभी इतनी दूरी मालूम देती है कि प्यासा पानी तक नही जा पाता, या कि प्यासा अधा और बहरा है कि न उसे जल दीखता है, न उसका कलकल नाद सुनाई देता है। और कभी-कभी तो जल के बीच रहकर भी आदमी प्यासा रह जाता है। मुझे अपने बारे मे कुछ ऐसा ही लगता है। कृपापूर्वक मुझे मार्ग-निर्देश दे।

निश्चित ही यह खोज एकतरफा नही है। एकतरफा हो तो कभी पूरी न होगी। अगर तुम्हीं सत्य को खोज रहे हो और सत्य तुम्हे न खोज रहा हो, तो मिलने की कोई सभावना नहीं है। अगर सत्य भी आतुर न हो तुमसे मिल जाने को, तो सत्य फिर अपने को छिपाये चला जायेगा। तुम उघाड़े जाओगे, वह छिपाये जायेगा। फिर तो ऐसा हो जायेगा जैसे द्रौपदी का चीर बढ़ता गया। वह उघड़ने को राजी न थी। वह उस दरबार मे नग्न होने को राजी न थी। नग्न करने की चेष्टा दरबारियो की थी, दुर्योधन

की थी, उसके मित्रो की थी—पर द्रौपदी सहयोगी न थी। चीर बढ़ता चला गया। वे उघाड़ते गये, चीर बढता चला गया, द्रौपदी ढकती चली गई।

यह कहानी बड़ी बहुमूल्य है, बड़ी प्रतीकात्मक है। लेकिन द्रौपदी जब किसी को प्रेम करती होगी, तब तो नग्न हो जाती होगी। तब तो भीतर गहन मे यह आकाक्षा होती होगी, कोई उघाड़ ले, किसी के सामने सब खोल दू, कुछ भी छिपाया हुआ न रह जाये।

अगर परमात्मा तुम से बच रहा है तो एक बात पक्की है—इस दौड़ मे तुम जीत न पाओगे—वह बचना चाह रहा है और तुम खोज रहे हो। वही जीतेगा। उसके पास विराट ऊर्जा है, बड़ी शक्ति है, तुम्हारे पास है क्या? अगर वह परम सत्य ही तुमसे बचना चाह रहा है तो फिर तुम जीत नही सकते, तुम्हारी हार निश्चित है। लेकिन आदमी जीते है। महावीर जीते, बुद्ध जीते, कृष्ण, क्राइस्ट जीते। आदमी जीते है। एक बात साफ है कि वह भी उघड़ने के लिए राजी है। वह घूघट मारकर बैठा हो, मगर चाहता है कि तुम घूघट उठाओ। बड़ी भीतर आकाक्षा है कि तुम पास आओ, खोजो।

इसलिए मै कहता हू कि पानी भी तुम्हारे द्वारा पीये जाने को प्यासा है। तुम्ही जल को नही खोज रहे हो, जल भी तुम्हे खोज रहा है।

गर न होती कैदे-रस्मो-राह की मजबूरिया
शमा खुद उडकर पहुचती अपने परवानो के पास।

—अगर जीवन के नियम न होते, व्यवस्था के सूत्र न होते । गर न होती कैदे-रस्मो-राह की मजबूरिया। हजार नियम है, व्यवस्था है। और कम से कम व्यवस्था जिसने बनाई है, वह तो पालेगा ही।

गर न होती कैदे-रस्मो-राह की मजबूरिया
शमा खुद उड़कर पहुचती अपने परवानो के पास।

—परमात्मा खुद तुम्हारे पास आ जाता। शायद आता भी है, तुम पहचान नही पाते। क्योकि जब तक तुम उस खोज पर न निकलो, तुम न पहचान पाओगे। यह खोज दोनो तरफ से हो, यह आग दोनो तरफ से लगी हो, तो ही परिणाम हो सकता है। अगर भक्त अकेला भगवान, भगवान, भगवान चिल्लाता रहे, भगवान बहरा हो, या सुनने को राजी न हो, या बचना चाहता हो, तो तुम्हारी चीख-पुकार सूने आकाश मे खो जायेगी। लेकिन नही, पुकार सुनी गई है। प्रार्थना कभी न कभी उस हृदय तक पहुच जाती है। अगर न पहुचती हो तो कारण यह नही है कि वह सुनने को उत्सुक नही है, कारण कुछ और होगे। या तो तुम गलत दिशा मे चिल्ला रहे हो, या तुम पूरे मन से बुला ही नही रहे हो, या बुलाने के साथ-साथ तुम भीतर डरे भी हो कि कही सुन ही न लेना।

मैने सुना है, एक आदमी लौटता था लकड़िया अपने सिर पर लेकर। थक गया है, बूढ़ा हो गया है सत्तर साल का। लकडी काटते-काटते जिदगी बडी ऊब हो गई है। जैसा कि अनेक बार लोग कहते है, ऐसा ही उसने कहा। मुहावरा था, कुछ मतलब न था। ऐसे ही कहा कि हे भगवान! अब कब तक और जिदगी घसिटवानी है? मौत को मुझे ही क्यो नही भेजता? जवानो को आ जाती है, मुझे क्यो लटकाये हुए है? अब तो भेज! अब तो मै मरने को राजी हू कि यह जीवन बहुत हो गया। यह सुबह से रोज लकडी काटना यह दिनभर लकडी इकट्ठी करना, साझ बेचकर किसी तरह रोटी पेट के लिए जुटानी, रात सो जाना, फिर सुबह यही! आखिर सार क्या है? अब तो भेज दे मौत को।

ऐसा होता नही अकसर कि इतनी जल्दी मौत आ जाये, पर उस दिन आ गई। मौत को सामने देखकर लकड़हारा घबडा गया। अपने गट्ठर को नीचे रखकर सुस्ता रहा था झाड़ के नीचे, मौत ने कहा, 'मै आ गई। बोलो, क्या काम है?'

उसने कहा, 'कुछ और नही है, यहा कोई दिखाई न पडता था, गट्ठर उठवाकर मेरे सिर पर रखना है। इतनी कृपा करो, इस गठरी को मेरे सिर पर वापस रख दो। बहुत धन्यवाद। और आगे बुलाऊ भी तो ऐसा कष्ट मत करना।'

तुम बुलाते भी हो तो तुम्हारा बुलावा पूरा है? हार्दिक है? तुम्हारा रोआ-रोआ उसमे सम्मिलित है कि एक पर्त इनकार किये चली जा रही है? एक पर्त कहती है, अभी कोई प्रार्थना के दिन है, अभी तो तुम जवान हो। ये तो बुढापे की बाते है। बुढापे की भी कहा, लोग जब मरने लगते है तभी। जब जीभ लडखड़ा जाती है, जब खुद बोलते भी नही बनता, तब किराए के पडित-पुरोहित कान मे राम-राम जप देते है। जिदा रहते-रहते तो आदमी और हजार वासनाओ मे उलझा रहता है, परमात्मा की वासना निर्मित कहा होती है?

जब सारी वासनाए उस एक वासना मे तिरोहित हो जाती है, जैसे सभी नदिया समुद्र मे गिर जाती है, ऐसे जब तुम्हारी सारी आकाक्षाए एकजुट परमात्मा की तरफ प्रवाहित होती है, अभीप्सा होती है, तब प्रार्थना पैदा होती है। फिर क्षणभर भी देर नही लगती। और मै तुमसे कहता हू कि फिर अगर परवाना न भी जाये तो शमा उड़कर उसके पास आ जाती है।

तुम्ही नही खोज रहे, वह भी खोज रहा है।

इजिप्त मे पुराना वचन है कि अगर उसने न खोजा होता तो तुम्हारे मन मे उसे खोजने की बात भी पैदा न होती। कहते है कि जो उसकी खोज पर निकलता है, वह वही है, जिसे परमात्मा ने खोज ही लिया। तुम प्यासे ही तब होते हो उसके लिए, जब किन्ही गहरे अर्थो मे, कही किसी गहरी गहराई पर उसने तुम्हारे हृदय पर हाथ रख दिया। सभी तो उसे खोजने नही निकलते। कभी-कभी कोई दीवाना हो उठता है। जरूर उसने अपने मधु-पात्र से कोई मदिरा तुम मे उडेल दी। शायद तुम्हे भी पता नही है, इतनी गहराई पर उड़ेली। शायद तुम्हारे प्राणो के प्राण, तम्हारे केद्र पर उडेली। वहा तो तुम कभी जाते नही, तुम तो बाहर-बाहर घूमते रहते हो। तुम तो घर कभी आते नही।

मेरे देखे भी ऐसा ही है। जो परमात्मा को चुनता है, वह इसकी खबर दे रहा है कि परमात्मा ने उसे चुन लिया।

तिब्बत मे भी ऐसी एक लोकोक्ति है कि शिष्य थोड़े ही गुरु को चुनता है, गुरु शिष्य को चुनता है। लगता यही है कि शिष्य ने चुना, क्योकि शिष्य का अहकार अभी 'मै' के आसपास जीता है। वह कहता है, मै दीक्षित हो रहा हू। वह कहता है, मैने इस गुरु को चुना। लेकिन जिन्होने तिब्बत मे यह लोकोक्ति बनाई होगी, वे जानते थे। तिब्बत मे गुरु-शिष्य की परपरा अति प्राचीन है, अति शुद्ध है। वे ठीक जानते है। वे ठीक कह रहे है कि गुरु शिष्य को चुनता है। कहता नही, क्योकि कहने से भी हो सकता है, शिष्य छिटक जाये। कहने से भी हो सकता है, शिष्य मे प्रतिरोध पैदा हो जाये। कहने से भी हो सकता है, उसके अहकार को चोट लग जाये, घाव बन जाये और जो पास आता था, दूर निकल जाये। गुरु कुछ कहता भी नही। वह यह भी स्वीकार कर लेता है कि तुमने मुझे चुना। लेकिन मै भी यही तुमसे कहता हू कि जब तक गुरु ने तुम्हे नही चुना है, तुममे चुनने का सवाल ही न उठेगा, तुम्हे यह भाव ही पैदा न होगा, यह हिम्मत ही न आयेगी, यह साहस ही न जन्मेगा।

तो अड़चन कहा होगी? तुम भी खोजते हो, परमात्मा भी खोजता है—अड़चन कहा है? मिलन होता क्यो नही?

पहली बात—तुम लगते हो कि खोजते हो, खोजते नही। दाव पर तुम कुछ भी नही लगाते। तुम परमात्मा को मुफ्त पाना चाहते हो। तुम क्षुद्र चीजो की तलाश मे भी जीवन दाव पर लगा देते हो। मजनू लैला को खोजता है, तो जैसा दाव पर लगा देता है, ऐसा तुमने परमात्मा की खोज मे अपने को दाव पर लगाया? नही, तुम परमात्मा को भी अपने जीवन मे थोड़ी जगह देते हो, चौबीस घटे मे पाच मिनट पूजा-प्रार्थना कर लेते हो। वह भी जल्दी-जल्दी निपटा देते हो। वह भी एक औपचारिकता है, जिसको कर लेना है, वह भी तुम्हारी चालाकी, होशियारी का हिसाब है कि पता नही, परमात्मा हो ही, तो यह कहने को तो रहेगा कि ध्यान रख, रोज पाच मिनट तेरी प्रार्थना करते थे, कितनी मालाए सरकाई, रोज गीता पढ़ते थे। कही मौत के बाद ऐसा हो ही कि परमात्मा हो, तो हमारे पास कुछ कहने को होगा, कुछ बैक-बैलेस होगा, हम खाली हाथ न होगे। न हुआ तो कुछ बिगड़ता नही है। पाच-दस मिनट खर्च भी हो गये तो क्या हर्ज है। हुआ तो काम आ जायेगी बात।

तुम होशियार हो। तुम दो नावो पर सवार रहते हो। तुम्हारी प्रार्थना भी तुम्हारा गणित है। वही तो प्रार्थना मर जाती है। क्योकि प्रार्थना गणित हो ही नही सकती। उन्माद है प्रार्थना। पागलपन है प्रार्थना। दीवानगी है प्रार्थना। एक नशा है। गणित नही, हिसाब-किताब नही।

तुम्हारी प्रार्थना जब पागल हो जायेगी, तो पूरी हो जायेगी। जब परमात्मा तुम्हे सब तरफ से घेर लेगा, सुबह भी उसकी, साझ भी उसकी, भर दोपहरी भी उसकी, तुम उठोगे-बैठोगे तो भी उसमे ही लीन रहोगे, बाजार भी जाओगे तो ऊपर-ऊपर बाजार होगा, भीतर-भीतर उसकी याद होगी, दुकान पर भी बैठोगे तो ऊपर-ऊपर से ग्राहक को देखोगे, भीतर-भीतर उसी का दर्शन होगा—जब तुम्हारा चौबीस घटे का जीवन अहर्निश, भीतर-बाहर आती श्वास-प्रश्वास की भाति उस पर समर्पित होगा—तो मिलन हो जायेगा।

तो पहली तो बात, तुम बाते करते हो मिलने की, दाव पर कुछ नही लगाते। और यह दाव कुछ ऐसा है कि पूरा ही पूरा

लगाओगे तो ही लगेगा, रत्तीभर भी बचाया तो चूक जाओगे। क्योकि उस बचाने मे ही अश्रद्धा आ गई। उस बचाने मे ही चालाकी आ गई, भोलापन खो गया। प्रार्थना तो निर्दोष भाव है। पूरा का पूरा कोई अपने को रख देता है, जरा भी बचाता नहीं। यह नहीं सोचता कि ऐसे कही ऐसा न हो कि दाव खतम हो जाये, नाहक, थोड़ा तो बचा लू।

इसलिए मै कहता हू प्रार्थना जुआरी कर सकता है, दुकानदार नहीं। दुकानदार तो सोच-समझकर चलता है, 'इतना लगाऊगा, कितना मिलेगा? अगर खोया भी तो बहुत ज्यादा तो न खो जायेगा? इतना खोये कि जिसकी पूर्ति हो सके।'

जुआरी सब दाव पर लगा देता है, कुछ बचाता नही। उतना साहस चाहिए और जुआरी तो वस्तुए दाव पर लगाता है, धन-पैसा दाव पर लगाता है, भक्त, प्रार्थी, अपने को दाव पर लगाता है। क्योकि परमात्मा को पाना हो तो स्वय को ही दाव पर लगाना पड़ेगा। स्वय की कीमत पर ही मिलता है।

तो पहली बात, तुम्हारी प्रार्थना झूठी है, मिथ्या है। तुम्हारी पूजा औपचारिक है, लोक-व्यवहार है, पूजा नही है। दूसरी बात, तुम परमात्मा को चाहते हो या परमात्मा के नाम पर कुछ और चाहते हो? प्रार्थना तुम्हारी झूठी है, परमात्मा भी तुम्हारा अतिम गतव्य नहीं है। लोग परमात्मा को चाहते है कि चलो, उसकी प्रार्थना से धन मिलेगा, पद मिलेगा, प्रतिष्ठा मिलेगी, तो वस्तुत तो पद, प्रतिष्ठा और धन चाहते है, परमात्मा का तो साधन की तरह उपयोग कर लेना चाहते है। वे तो परमात्मा को भी चाकर की तरह अपने काम मे लगा लेना चाहते है। लेकिन उनका असली लक्ष्य और है। अगर शैतान उन्हे धन दे, तो वे शैतान की पूजा करेगे। जो उन्हे धन दे, उसकी पूजा करेगे। जो उन्हे पद दे, उसकी पूजा करेगे। जो उन्हे पद दे, वही उनका परमात्मा हो जायेगा। परमात्मा गौण है, कुछ और मूल्यवान है, कुछ और पाने की तलाश है।

तो तुम परमात्मा को साधन नहीं बना सकते हो, बनाओगे तो चूक जाओगे। परमात्मा परम साध्य है। अपने को तुम उसका साधन बना लो, फिर मिलने में देर न होगी।

तीसरी बात, परमात्मा बहुत निकट है, निकट से भी निकट है। निकट कहना भी गलत है, क्योकि निकट मे भी थोड़ी दूरी आ जाती है। परमात्मा तुम्हारे रोए-रोए मे समाया है। वह इतने पास है कि तुम्हारे और उसके बीच स्थान नहीं है, जगह नही है। इसलिए भी चूकना होता रहता है। जब तुम इतने शात हो जाओगे, जब तुम इतने थिर हो जाओगे, जब तुम्हारे जीवन की लौ अकप हो जायेगी, तभी तुम देख पाओगे, जो निकट से भी निकट है।

मुहम्मद ने कहा है कि गर्दन मे जो प्राण को प्रवाहित करनेवाली नाड़ी है, जिसके काट देने से आदमी मर जाता है। वह भी दूर है, परमात्मा उससे भी ज्यादा पास है। लेकिन इतने पास को जानने के लिए तुम्हे भी पास आना पड़ेगा। तुम अपने से बहुत दूर निकल गये हो। तुम्हारी वासनाए जहा है, वही तुम हो। वासनाए तुम्हारी बडी दूर भविष्य मे फैली है। तुम पास आते ही नही। निर्वासना जब पैदा होती है, तो प्रार्थना पैदा होती है। तुम अपने पास आ जाते हो। पास जैसे-जैसे आने लगते हो, उसकी धुन बजने लगती है। जैसे-जैसे पास आते हो, उसकी सुगध आने लगती है। जैसे-जैसे पास आते हो, उसका कलकल-नाद सुनाई पडने लगता है, अनाहत सुनाई पड़ने लगता है। फिर तो तुम नाचने लगते हो। फिर तुम चलते नही। फिर नाचकर दौडते हो घर की तरफ। फिर तो तुम्हारे जीवन मे घूघर बध जाते है गीत बध जाते है। फिर तो तुम मस्ती मे तरोबोर हो जाते हो।

लेकिन अपने पास आओ। परमात्मा के पास आने का एक ही उपाय है अपने पास आओ। परमात्मा कोई दूसरा नही है, तुम्हारा ही परम अस्तित्व है, तुम्हारी नियति है। तुम अगर बीज हो तो परमात्मा वृक्ष है। तुम अगर कली हो तो वह फूल है। वह तुम्हारा ही पूरा-पूरा खिलाव है। पास आओ। करीब आओ। अपने मे थिर बनो।

मै सुन रहा हू तेरे दिल की धड़कने पैहम
है तेरा दिल मुतजस्सिस कही जरूर मेरा।

मै अपने हृदय मे भी तेरे ही दिल की धड़कने सुन रहा हू। मै सुन रहा हू तेरे दिल की धड़कने पैहम—लगातार, सतत, अनवरत। इस दिल की धड़कन मे भी उसकी ही धड़कन है। सुननेवाला चाहिए। तुम्हारे कान इतनी व्यर्थ की आवाजो से भरे है कि तुम्हे अपने दिल की धडकन सुनाई ही नही पड़ती।

पश्चिम के एक विचारक ने अपनी डायरी मे लिखा है—बड़ा सगीतज्ञ है—कि अमरीका मे एक प्रयोगशाला मे वह गया। गया था कुछ कारण से। उसे खबर मिली थी कि वहा एक

प्रयोगशाला बनाई गई है, जो परिपूर्ण रूप से साउड-प्रूफ है, सौ प्रतिशत। कोई आवाज, किसी तरह की आवाज भीतर नहीं आती। तो वह गया। वह जानना चाहता था कि परम सन्नाटा कैसा होता है। क्योकि सगीतज्ञ था और परम सन्नाटे से पहचान चाहता था। क्योकि सगीत भी उसी तरफ ले जाता है। वह भीतर गया तो वह बड़ा हैरान हुआ बिलकुल सन्नाटा था, लेकिन दो आवाजे आ रही थी। वह साफ-साफ सुन सका। उसने, जो आदमी उसे दिखा रहा था प्रयोगशाला, उससे पूछा कि तुम तो कहते हो कि यह सौ प्रतिशत साउड-प्रूफ है, ध्वनि किसी तरह की यहा नही आ सकती, लेकिन मै दो आवाजे सुन रहा हू। वह जो साथ था, हसने लगा। उसने कहा, वे दो आवाजे आपके भीतर है, वे बाहर से नही आ रही। एक आवाज है तुम्हारे हृदय की। इतने जोर से धक-धक हो रही थी कि उसे याद भी न रहा कि यह हृदय की आवाज हो सकती है। और दूसरी आवाज है तुम्हारे खून की गति की, रगो मे जो खून दौड़ रहा है, उसका कलकल-नाद। ये आवाजे बाहर से नही आ रही है।

लेकिन बाहर की आवाजे जब बिलकुल बद थी, तब ये सुनाई पडी। हो तो यह तुम्हे भी रही है, उसको भी हो रही थी, रोज चौबीस घटे चल रही है। लेकिन इतना शोरगुल है कि उसमे ये धीमी-धीमी आवाजे खो जाती है। हृदय की धड़कन, खून की गति, ये भी तुमसे बाहर है। एक और आवाज है जहा हृदय की धड़कन भी बद हो जाती है और खून की गति भी बद हो जाती है, तब सुनी जाती है। उसको हमने ओकार कहा है, अनाहत-नाद कहा है, प्रणव कहा है।

मै सुन रहा हू तेरे दिल की धड़कने पैहम
है तेरा दिल मुतजस्सिस कहीं जरूर मेरा।

—और इससे मुझे ऐसा लगता है कि मै ही तुझे नही खोज रहा, तेरा दिल भी मेरी तलाश कर रहा है—चूकि तेरी आवाज मै अपने हृदय मे सुनता हू। तुम्हारे भीतर उसी ने रूप धरा है। उसी ने तुम्हारे जीवन मे रग भरा है। जिसकी तुम तलाश कर रहे हो, वह तुम्हारे घर मे आकर बैठा है। तुम दरवाजे पर आख लगाये अतिथि की राह देख रहे हो—और अतिथि कभी घर के बाहर गया नही। तुम बाहर बैठे हो, आगन मे खड़े हो, राहगीरो को देख रहे हो कि कब आयेगा मेहमान, वह प्यारा कब आयेगा। हर राहगीर की आवाज मे तुम्हे भनक आती है, शायद आ गया। उड़ते पत्ते तुम्हे भ्रम दे जाते है कि शायद आ गया। हवा के झोके वृक्षो मे सरसराहट करते है और तुम्हे लगता है, शायद आ गया। तुम चौक-चौक उठते हो। तुम चौबीस घटे तने रहते हो कि शायद अब आये, अब आये, पता नही कब आये। और कहीं ऐसा न हो कि वह आये और तैयारी अधूरी हो। तो तुम राह पर खडे राह देखते रहते हो। वह तुम्हारे घर मे बैठा है। वह तुम्हारे होने से पहले तुम्हारे घर मे बैठा है। मेजबान के पहले मेहमान आ गया है। घर आओ। तुम उसे भीतर बैठा पाओगे।

बोधिधर्म जब ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो कहते है, वह बड़े जोर से खिलखिलाकर हसा। उसके आसपास और भी साधक थे। उन्होने पूछा, 'क्या हुआ?' उसने कहा, 'हद्द हो गई। मजाक की भी एक सीमा होती है। जिसकी हम तलाश करते थे, उसे घर मे बैठा पाया। जिसे हम खोजने निकले थे, वह खोजनेवाले मे ही छिपा था। खूब मजाक हो गई।' फिर बोधिधर्म कहते है, जिदगी भर हसता ही रहा। जब भी कोई परमात्मा की बात करता, वह हसने लगता। वह कहता, यह बात ही मत छेड़ो। यह बड़े मजाक की बात है। यह बडा गहरा व्यग्य है।

चूकोगे इसलिए नही कि वह दूर है—चूक रहे हो इसलिए कि वह बहुत-बहुत पास है, पास से भी पास है। लौटो। पहले घर मे तलाश कर ले, फिर बाहर निकले। क्योकि बाहर तो बड़ा विस्तार है। चाद-तारो तक कहा खोजते रहोगे? घर को तो पहले खोज लो। वहा न मिले तो फिर बाहर जाना। लेकिन जिसने भी घर मे खोजा है, उसे पा ही लिया है। इसका अपवाद कभी भी नही हुआ है।

तीसरा प्रश्न आप मुझे बहुत-बहुत अच्छे लगते है। मुझे आपके प्रेम मे रोने के अतिरिक्त कुछ नही सूझता। कैसे कहू उस प्रेम को। और आश्चर्य है कि मै अकसर आपके प्रति अनाप-शनाप भी बकता हू, कभी-कभी गाली भी देता हू। यह क्या है?

मै एक बार मुल्ला नसरुद्दीन के घर मेहमान था। वह अपने बेटे को समझा रहा था, डरा रहा था, क्योकि बेटा भद्दी गालिया पास-पड़ोस से सीखकर आ जाता था। तो उसने एक तख्ती पर लिखकर कमरे मे बेटे के टाग दिया था, कि अगर तूने

'बदमाश' शब्द का उपयोग किया तो पाच पैसा जुर्माना, अगर 'गधे' शब्द का उपयोग किया तो दस पैसे जुर्माना, अगर 'साला' शब्द का उपयोग किया तो बीस पैसे जुर्माना, अगर 'हरामजादा' शब्द का उपयोग किया तो चालीस पैसे जुर्माना। पचास पैसे वह अपने बेटे को जेब-खर्च के लिए रोज देता है।

बेटा हसने लगा। वह सुनता रहा और देखता रहा और हसने लगा। तो उसने पूछा, 'तू हसता क्यो है? बात क्या है?'

उसने कहा कि मुझे ऐसी भी गालिया आती है कि रुपया भी कम पडेगा।

गालिया तुम्हे आती है, तो तुम जिससे भी सबध बनाओगे उसी की तरफ बहने लगेगी। जो तुम्हे आता है वही तो बहेगा। गालिया ही तुमने जीवन मे सीखी है, तो तब जब तुम प्रेम मे भी पड़ते हो तो प्रेम मे भी तुम्हारी गालिया प्रवाहित होने लगती है। आखिर तुम्ही तो बहोगे न अपने प्रेम मे? तो तुमने जीवनभर मे जो दुर्गंध इकट्ठी की है, वह तुम्हारे प्रेमी पर भी तो पडेगी। आखिर प्रेम 'तुम' करोगे तो तुम्हारी गालिया कहा जायेगी?

इसे समझने की कोशिश करना। तुम शायद सोचते हो, तुम शत्रुओ को ही गाली देते हो—गलत। अगर गाली देना तुम्हारी आदत मे शुमार है, अगर गाली देने की तुम्हारी भीतर सभावना है, तो शत्रु को तुम प्रगट मे देते होओगे, मित्र को तुम अप्रगट मे देते होओगे—मगर दोगे जरूर। जो तुम्हारे पास है वह तो तुम बाटोगे। मित्र को शायद मजाक मे दोगे—मगर दोगे जरूर।

ऐसे लोग है कि जब तक उनमे गाली-गुफ्ता का सबध न हो तब तक वे मित्रता ही नही मानते। जब तक 'आइये', 'बैठिये', 'आप कैसे है' इत्यादि शब्दो का प्रयोग करना पडता है, तब तक मित्रता नही, परिचय है। जब गाली-गुफ्ता शुरू हो जाती है, तब मित्रता है।

इसे थोड़ा देखना। यह कैसी मित्रता हुई?

लेकिन तुम्हारी मजबूरी है। जो तुम्हारे पास है, वह तुम्हारी मित्रता पर भी छाया डालेगा।

दो तरह के लोग है। कुछ लोग है जो एक आदमी को मित्र बना लेते है और दूसरे को शत्रु बना लेते है। वे अपने को बाट लेते है। जो-जो बुरा है वह शत्रु की तरफ प्रवाहित करते है, नहर खोद लेते है, जो-जो अच्छा है, वह मित्र की तरफ प्रवाहित करते है, नहर खोद लेते है। लेकिन जब तुम मेरे प्रेम मे पड़ोगे तो पूरे के पूरे ही पड़ोगे। तब नहर खोदने से काम न चलेगा। तब तुम्हारी गाली भी मेरे पास आयेगी, तुम्हारी प्रार्थना भी मेरे पास आयेगी।

तुम्हे जागना होगा। और गालियो से निस्तार पाना होगा। अन्यथा तुम्हारा प्रेम भी कलुषित हो जायेगा, तुम्हारी प्रार्थना भी कलुषित हो जायेगी।

अच्छा है कि इस बहाने तुम्हे तुम्हारी गालिया दिखाई पड़ने लगी, अब धीरे-धीरे उन गालियो से अपने बधन को खोलो। अब धीरे-धीरे जागो। क्योकि वे गालिया तुम्हे उडने न देगी, वजनी है, पत्थर की तरह तुम्हारी गर्दन मे अटकी रह जायेगी। मेरे और तुम्हारे बीच पत्थरो की तरह अटकी रह जायेगी। प्रवाह ठीक से न हो पायेगा। तुम जब भी गाली दोगे, सिकुड जाओगे। जब भी गाली दोगे, तुम्हारे भीतर अपराध-भाव उठेगा। जब भी गाली दोगे, ग्लानि मालूम होगी।

अच्छा है कि प्रश्न पूछा, कम से कम ईमानदारी तो की। अब इतना और होश सम्हालो। गाली देना बद करने को नही कह रहा हू मै, क्योकि अगर तुमने जबर्दस्ती बद की तो तुम किसी ओर को देने लगोगे। तब तुम्हे एक और गुरु चाहिए पडेगा, जिसको तुम गाली दो और एक गुरु जिसकी तुम प्रशसा करो। यही तो लोग कर रहे है। अगर महावीर की प्रशसा करते है, तो बुद्ध को गाली देते है। गालिया कहा जाये? नहर खोदनी पडती है। अगर राम की प्रशसा करते है तो कृष्ण को गाली देते है। अगर कृष्ण की प्रशसा करते है तो राम को गाली देते है।

लेकिन थोडा जागो।

मैंने सुना है कि एक बहुत बडा आर्किटेक्ट, एक बडा शिल्पी समुद्र मे जहाज डूबने से, समुद्र मे तैरते-तैरते एक अनजान द्वीप पर लग गया। अकेला था। वहा द्वीप पर कोई भी न था। बडा कुशल शिल्पी था। और कोई काम भी न था उसे। बडे फल थे, वृक्ष लदे फलो से, तो भोजन की कोई कमी न थी। जगल मे लकडिया थी। सुदर पत्थर थे। उसने धीरे-धीरे बैठे-बैठे क्या करेगा, बनाना शुरू कर दिया। मकान बनाये। दुकाने बनाई। चर्च बनाये। वर्षो बाद, कोई बीस वर्ष बाद, जब उसका पूरा नगर आबाद हो गया, तब एक जहाज किनारे लगा आकर। तो उस शिल्पी ने कहा जहाज के यात्रियो को, कैप्टन को, कि इसके पहले कि हम छोड़े, इसके पहले कि मै जहाज पर सवार हो जाऊ, आओ, मैने जो बनाया है उसे तो देख लो। तो उसने

जाकर दिखाया। और सब तो ठीक था, लेकिन लोग बड़े हैरान हुए उसने दो चर्च बनाये। उन्होने कहा, दो चर्च का क्या करोगे? एक चर्च समझ मे आता है। तो उसने कहा, एक चर्च वह जिसमे मै जाता हू और एक चर्च वह जिसमे मै नही जाता हू।

थोडा सोचो। अकेले एक चर्च से काम न चलेगा, जिसमे तुम जाते हो। वह चर्च भी चाहिए, जिसमे तुम नही जाते। मदिर से काम न चलेगा, मस्जिद भी चाहिए जिसमे तुम नही जाते। गिरजे से ही काम नही चलेगा, गुरुद्वारा भी चाहिए जिसमे तुम नही जाते। मजा ही क्या है अगर अकेला वही चर्च हो जिसमे तुम जाते हो। तो फिर तुम्हारा गलत जो है वह तुम कहा रखोगे?

तो अकसर लोग दो गुरु चुनते है एक, जिसके पक्ष मे, और एक जिसके विपक्ष मे। दो प्रेमी चुनते है एक को मित्र कहते है, एक को शत्रु।

ध्यान से देखना, अगर तुम्हारा शत्रु मर जाये तो तुम्हे बडी कमी मालूम होगी। तुम बडे खाली-खाली मालूम पडोगे। अब तुम क्या करोगे? शत्रु के मरने से भी—जिसको तुम सदा चाहते थे कि मर जाये, जिसके लिए तुम प्रार्थना करते थे कि मर जाये—वह भी जब मरेगा तो तुम रोओगे भीतर। क्योकि तुमको लगेगा, अब तुम क्या करोगे? जो तुम शत्रु की तरफ बहा रहे थे, अब वह कहा जायेगा? फिर तुम्हे कोई शत्रु खोजना पडेगा।

लोग बिना शत्रु के नही रह सकते, क्योकि उनके भीतर बडी शत्रुता छिपी है।

तो दो उपाय है या तो तुम एक गुरु और खोज लो, एक चर्च और बनाओ जिसमे तुम नही जाते, जिसकी तुम नही सुनते, जिसके तुम दुश्मन हो, जो गलत है, पाखडी है। और दूसरा उपाय यह है कि तुम्हारे भीतर ये जो गालिया उठ रही है, इन्हे समझो, देखो, अपने भीतर के कलुष को पहचानो, अपने भीतर के कूडा-कर्कट को समझो-बूझो।

पहला उपाय सार्थक नही है, क्योकि उससे तुम बदलोगे न, तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे। उससे तो यही बेहतर है कि तुम मुझे प्रेम भी किये जाओ और गालिया भी दिये जाओ। क्योकि यह स्थिति ज्यादा दिन न चल सकेगी, तुम्हारा प्रेम ही भीतर सकुचाने लगा है, तुम्हारा प्रेम ही भीतर कष्ट पाने लगा है। अच्छा है, कोई फिक्र नही। ऐसे ही जीये जाओ। धीरे-धीरे तुम खुद ही सोचोगे, यह मै क्या कर रहा हू। एक हाथ से बनाता हू, दूसरे हाथ से मिटाता हू। यह भवन फिर कैसे बनेगा? एक हाथ से श्रद्धा की ईट रखता हू, दूसरे हाथ से अश्रद्धा का जहर डालता हू। एक हाथ से बीज बोता हू, दूसरे हाथ से अग्नि बरसाता हू। यह भवन, यह बगीचा निर्मित कैसे होगा?

तुम कुछ मेरा नुकसान कर रहे हो, ऐसा मत सोचना। तुम अपना ही नुकसान कर रहे हो। तुम अपने भोजन मे ही गदगी डाल रहे हो। वह तुम्हे ही भोजन करना है। वह तुम्हारे ही खून मे बहेगा। उससे तुम्हारी ही हड्डी बनेगी। गाली देने से उसका थोड़े ही नुकसान होता है जिसे गाली दी—गाली देनेवाले का नुकसान होता है। उसकी जीभ खराब हुई। उसका हृदय धूमिल हुआ। उसके प्राण क्षुद्र हुए।

पूछा है, 'यह क्या है?'

यह तुम्हारे भीतर का सीजोफ्रेनिया, तुम्हारे भीतर का विभक्त व्यक्तित्व। तुम दो हो, एक नही। इस 'दो' को हटाओ और एक को जन्माओ। अन्यथा तुम विक्षिप्त हो जाओगे—ऐसे जैसे तुम्हारे भीतर दो व्यक्ति है और तुम्हारे भीतर एकता नही है। जिसने पूछा है, उसे मै जानता हू। अगर वह ऐसे ही चलता रहा तो आज नही कल पागल-घर मे होगा, पागलखाने मे होगा। जैसे तुम्हारा एक पैर एक तरफ जाये, दूसरा पैर दूसरी तरफ जाये, एक आख कुछ देखे, दूसरी आख कुछ देखे—तो तुम धीरे-धीरे खडित हो जाओगे, तुम्हारे भीतर का सुर-सगीत खो जायेगा, सामजस्य, समन्वय टूट जायेगा।

यह एक तरह का पागलपन है। इससे जागो। और इसमे रस मत लो। क्योकि प्रश्नकर्ता के प्रश्न से ऐसा लगता है, जैसे वह कोई बड़ी बहुमूल्य बात कर रहा है। क्योकि उसने यह भी लिखा है पीछे कि जब मै इस तरह गालिया इत्यादि देता हू तो लोग मुझे 'नासमझ' कहते है और मुझे उन पर हसी आती है। ऐसा लगता है, तुम रस ले रहे हो। कोई हर्जा नही। अगर इससे ऊपर न उठ सको तो यह भी ठीक है। कम से कम गाली देते हो, तब भी मेरी याद तो कर ही लेते होओगे, मगर याद करने के बेहतर ढग हो सकते है। यह याद करने का तुमने बडा बेहूदा ढग चुना।

मै तुमसे कहता हू, अगर अनाप-शनाप बकना हो, गाली देना हो, तो प्रेम को हटा दो, कम से कम इकहरे इकट्ठे तो रहोगे। अगर प्रेम करना हो तो गाली-गलौज से छुटकारा पा लो। क्योकि मेरा सवाल नही है। मुझे गाली देने से मेरा क्या हर्ज है।

लेकिन तुम्हारी गाली तुम्हीं को तोड़ती जायेगी। तुम धीरे-धीरे अपने से ही अलग होने लगोगे। और इन दोनो छोरो को मिलाना मुश्किल हो जायेगा।

एक रात मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को सुलाकर अपने कमरे मे आ गया। एक घटे से ऊपर हो गया, मगर वह बेटा बार-बार चिल्लाये जा रहा था 'पापा। मुझे प्यास लगी है।'

'चुपचाप सो जाओ', मुल्ला ने जोर से चिल्लाकर कहा। 'अगर अब और तग किया तो उठूगा और थप्पड़ लगाऊगा।'

'पापा, जब थप्पड़ लगाने उठो तो एक गिलास पानी भी लेते आना', बेटे ने कहा।

ठीक कहा। कम से कम इतना तो कर ही लेना। उठोगे तो ही।

तो अगर कोई और उपाय न हो, और याद करने का यही ढग तुम्हे आता हो, कोई हर्जा नही। चलो, यह भी ठीक, गाली ही दे लेना। याद तो जारी रहेगी। लेकिन दोनो मे अगर चलते रहे तो तुम दो घोड़ो पर सवार हो, तुम बड़ी अड़चन मे पड़ोगे। या तो प्रेम को जाने दो। यह भी प्रेम क्या? या गाली को जाने दो।

एक स्वर बनो, तो ही शात हो सकोगे। अन्यथा शाति का कोई उपाय नही है। शाति कुछ भी नही है—एकस्वर हो गये आदमी की अवस्था है। अशाति कुछ भी नही है—दो स्वरो मे, अनेक स्वरो मे बटे और टूटे हुए आदमी की विक्षिप्तता है।

उन्ही मित्र ने दूसरा सवाल भी पूछा है भगवान के सबध मे मेरे मन मे जो पुरानी और विचित्र धारणाए जमी है, उनके कारण आप मुझे भगवान जैसे नही लगते, कितु आप जो मेरे लिए है, उसे मै कोई नाम देने मे असमर्थ पाता हू अपने को। आप इतने विराट और हम जैसे ही लगते है। कृपा कर इस पर कुछ प्रकाश डाले।

भगवान जैसा मै हू भी नही, तो लगूगा कैसे? 'भगवान जैसे' का अर्थ समझे कि जो भगवान नही है, भगवान जैसा है। मै तुमसे कहता हू, मै भगवान हू, भगवान जैसा नहीं। और तुमसे भी मै कहता हू, तुम भगवान हो, 'भगवान जैसे' नही। 'जैसे' शब्द मे तो बड़ा झूठ छिपा है, बड़ा असत्य छिपा है। 'जैसे' का तो अर्थ हुआ खोटा सिक्का, असली सिक्के जैसा लगता है, है नही।

रही भगवान की धारणा, तो क्या भगवान की तुम्हारी धारणा है, इस पर सब निर्भर करेगा, क्या तुम्हारी परिभाषा है। भगवान शब्द तो बडा साफ-सुथरा है। इसका मतलब केवल होता है भाग्यवान। उसका अर्थ होता है द ब्लेसिड वन। उसका इतना ही अर्थ होता है कि जिसने अपनी नियति को पा लिया, अपने भाग्य को उपलब्ध हो गया, जो होने को था, हो गया। बस इतना ही। जब कली फूल बन जाती है, तब भगवान है। जो हो सकती थी, हो गई। बीज मे पडी थी, तब भगवान न थी। वृक्ष मे छिपी थी, तब भगवान न थी। कली थी, तब भी भगवान न थी। भगवान होने के रास्ते पर थी। फिर फूल हो गई। भगवान हो गई। भाग्य खिल गया।

मेरे लिए तो 'भगवान' शब्द का इतना ही अर्थ है कि तुम जो होने को हो वही हो जाओ। निश्चित ही, प्रत्येक की भगवत्ता भिन्न होगी। कोई पिकासो होगा और उसके जीवन मे बडे चित्रकारी के फूल खिलेगे। कोई कालिदास होगा, उसके जीवन मे काव्य के बडे फूल खिलेगे। हर व्यक्ति की भगवत्ता उसकी अपनी निज होगी। क्योकि प्रत्येक व्यक्ति का बीज अनूठे-अनूठे ढग से खिलेगा।

इसलिए तो महावीर महावीर जैसे है, बुद्ध बुद्ध जैसे है, कृष्ण कृष्ण जैसे है। इनके लिए तुलना भी तो नहीं खोजी जा सकती कि किसके जैसे है। अब कृष्ण को महावीर से कैसे तौलोगे? और तुमने अगर भगवान का अर्थ बडा सीमित कर लिया कि कृष्ण भगवान है, तो फिर अडचन आ जायेगी, फिर राम भगवान न हो सकेगे। फिर तुम्हारा भगवान का दायरा बड़ा छोटा है। वह एक आदमी पर समाप्त हो गया। फिर बुद्ध भगवान न हो पायेगे। फिर महावीर को कहा रखोगे? फिर मुहम्मद को कहा रखोगे, क्राइस्ट को कहा रखोगे, मूसा को कहा रखोगे? फिर नानक और कबीर और दादू और रैदास ? नही, फिर तुम बड़ी मुश्किल मे पड जाओगे। फिर करोडो भगवान हुए है। जो भी खिल गया, वह भगवान हो गया, भाग्यवान हो गया। तो फिर तुम उनको कहा रखोगे? अगर तुमने फूल के खिलने की कोई ऐसी परिभाषा बना ली कि जैसा चपा का फूल खिलता है, वही खिलना है, तो फिर गुलाब के फूल को तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, 'यह कोई खिलना है? खिलता तो चपा का फूल है।' तो फिर तुम्हारा फूल शब्द बड़ा सीमित है। फिर तो चपा का ही

फूल फूल है, और गुलाब और कमल, फिर कोई फूल न रहे। लेकिन गुलाब भी फूल है, कमल भी फूल है, चपा भी फूल है, चमेली भी। एक ही फूल शब्द सबके लिए उपयोग करते हो। क्योकि न तो रग से फूल का कोई संबध है, न आकृति से कोई सबध है—फूल का सबध तो खिलने से है, फूलने से है, प्रफुल्ल होने से है, खुल जाने से। तो जो भी खुल जाता है, वही फूल है। गुलाब भी खुलता है, कमल भी खुलता है। गध अलग, रग अगल, रूप, ढग अलग—इससे कोई लेना-देना नही है। फूल का सबध है, खुल गया, पूरा हो गया, जो छिपा था वह प्रगट हुआ, जो गीत अनगाया पड़ा था, वह गाया गया, जो नाच अभिव्यक्त नही हुआ था, अभिव्यक्त हो गया।

बीजरूप से सभी भगवान है। फूलरूप से सभी भगवान हो सकते है। तुम्हारी परिभाषा पर निर्भर है। तुम्हारी परिभाषा अगर बहुत क्षुद्र और सकीर्ण है तो अच्छा ही है कि तुम मुझे उसके बाहर रखो, क्योकि उतनी सकीर्ण परिभाषा मे जीना मुझे रुचेगा नही तुम यही समझो कि यह आदमी भगवान नहीं है। लेकिन तुम ध्यान रखना, अगर परिभाषा तुम्हारी बहुत छोटी है, तो तुम भी भगवान न हो सकोगे। तुम्हारी परिभाषा मे अगर मै नही समा सकता तो तुम कैसे समाओगे?

मित्र ने पूछा है कि 'आप तो हमे हम जैसे ही लगते है।'

तो यही दोष है कि मैं तुम्हे तुम जैसा लगता हू। तो फिर तुम्हारा क्या होगा? तुम जैसे लगने के कारण भी परिभाषा मे नही समाता, तो तुम्हारी क्या गति होगी? तुम तो बिलकुल परिभाषा के बाहर पड जाओगे। मैने तो चाहा है कि तुम्हे याद आ जाये कि तुम भगवान हो, लेकिन तुम्हारी कोई धारणा होगी। उस धारणा से मै मेल न खाता होऊगा। तुम अगर हिंदू हो तो कृष्ण अगर जैन हो तो महावीर । निश्चित ही मै नग्न नहीं खड़ा हू, कपडे पहने हुए हू, तो महावीर तो हू ही नही। तो उस अर्थ मे भगवान नहीं हू। निश्चित ही मै बुद्ध जैसा नहीं हू। और न ही किसी बोधि-वृक्ष के नीचे बैठा हू। निश्चित ही बुद्ध नहीं हू। न कृष्ण जैसा हू, मोरमुकुट नहीं बाधा, बासुरी हाथ मे नही है, पीताबर नही पहना, तो कैसे कृष्ण जैसा हू? तो तुम्हारी परिभाषा मे तो मै न आऊगा।

लेकिन तुम याद रखना, कृष्ण के समय मे बहुत लोग थे जो कृष्ण को भगवान नहीं मान सकते थे। नही माना था उन्होने, क्योकि उनकी और पुरानी परिभाषाए थी जिसमे वे नही बैठते थे। नया भगवान कभी भी पुराने भगवान वाली परिभाषा मे नही बैठ सकता, क्योकि वह परिभाषा उसके लिए बनी न थी। वह परिभाषा किसी और के लिए बनी थी। अब जिन्होने राम को भगवान माना है, वे कृष्ण को कैसे भगवान माने? इधर राम है—एक पत्नीव्रता! इधर कृष्ण है—कहते है, सोलह हजार उनकी रानिया है। अनब्याही, दूसरो की ब्याही हुई स्त्रियो को भी उठा लाये है। यह कोई भगवान जैसी बात है? तो बहुतो को तो कृष्ण लपट ही मालूम होते है। बहुतो को राम भी कुछ बहुत ऊचाई पर नही मालूम होते।

तुम्हे मै समझाने की कोशिश मे कुछ उदाहरण दू। भगवान सभी को एक जैसा उपलब्ध है, जैसे सूरज का प्रकाश सब पर पड रहा है। लेकिन कोई वृक्ष हरा मालूम हो रहा है, कोई फूल लाल मालूम हो रहा है, कोई फूल सफेद है—और प्रकाश सब पर एक जैसा पड रहा है। भौतिकी, फिजिक्स के जानकारो का कहना है कि प्रकाश की किरण तो सब पर पड रही है। लेकिन जो पत्ते प्रकाश की हरी किरण को वापस लौटा देते है, वे हरे मालूम हो रहे है। जो चीजे प्रकाश की किरणो को पूरा पी जाती है, वे काली मालूम होती है। जो चीजे प्रकाश को पूरा का पूरा लौटा देती है, वे सफेद मालूम होती है। जो चीजे जिस किरण को लौटाती है, वे उसी किरण के रग की हो जाती है। अधेरे मे सभी वस्तुओ का रग खो जाता है—यह तुम जानकर हैरान होओगे। अधेरे मे तुम यह मत सोचना कि जो हरे वृक्ष थे, वे अभी भी हरे होगे—भूल मे मत पड़ना। फिजिक्स कहती है, वृक्ष हरे नही होते अधेरे मे। और यह मत सोचना कि जब अधेरा होता है तो गुलाब का फूल और चमेली का फूल अभी भी सफेद और लाल होगा। गलती मे हो तुम। रग के लिए प्रकाश चाहिए। जब अधेरा होता है तो सब रग खो जाते है, कोई वस्तु का कोई रग नहीं होता। न काली वस्तुए काली होती है, न सफेद वस्तुए सफेद होती है, क्योकि रग वस्तुओ मे नहीं है, रग तो वस्तुओ और प्रकाश के बीच के अतर्संबध मे है, जिस चीज मे भोग की गहन वृत्ति है ।

इसलिए हम राक्षसो को काला प्रतीक मानते रहे है। वह प्रतीक बिलकुल ठीक है। जरूरी नही है कि रावण काला रहा हो, लेकिन प्रतीक की तरह बिलकुल ठीक है। काले का अर्थ है जो

सब पी जाये, कुछ छोडे न, सब पर कुडली मारकर बैठ जाये, कुछ दान न करे, जिसके जीवन से प्रेम न उठता हो, जो सब चीजो के लिए कृपणता से इकट्ठा करता चला जाये। ठीक है कि रावण की लका सोने की थी, रही होगी। सारा सोना उसने इकट्ठा कर लिया होगा सारे ससार से। काला रग राक्षस, शैतान, असुर उसका रग है।

साधारणत हममे से अधिक लोग भगवान के साथ यही करते है। भगवान हम पर बरस रहा है। वह प्रकाश की भाति है। लेकिन हम उसे पीकर बैठ जाते है। हम उसे सिकोड लेते है। हम सब तरफ से उस पर कुडली मार लेते है। हम उसे बाटते नहीं। हम उसे लौटने नही देते। उसके कारण हम बेरग हो जाते है, काले हो जाते है।

बाटो। जितना तुम बाटोगे उतना तुम्हारे जीवन मे रग आने लगेगा। अगर तुमने एक किरण लौटा दी तो हरा रग आ जायेगा, अगर दूसरी किरण लौटा दी तो लाल रग आ जायेगा। अगर तुमने सब लौटा दिया तो तुम शुभ्र हो जाओगे। दुनिया के सारे धर्मशास्त्र शैतान को काला रगते है, राक्षस को काला रगते हैं। जरथुस्त्र अहरिमन को काला रगता है। ईसाई डेविल को, मुसलमान शैतान को, सब काले रगते है। वह काला बिलकुल प्रतीक है। वह जैसा भौतिक-शास्त्र का अग है, वैसे ही अध्यात्म-शास्त्र का भी अग है।

जब भी तुम किसी चीज को पीकर बैठ जाते हो, तुम काले हो जाते हो। तब तुम बीज की भाति हो, सब भीतर बद है और एक खोल ऊपर से चढ़ी है। जब तुम सब छोड़ देते हो, इसलिए सफेद त्याग का प्रतीक है।

जैनो ने सफेद वस्त्र चुने मुनियो के लिए—त्याग की वजह से। सब छोड़ देता है। सब त्याग कर देता है।

तो एक तरफ शैतान है। फिर जो सब छोड़ देता है, जैसे राम, जैसे महावीर, सब छोड़ देते है—शुभ्र है। तो राम मर्यादा पुरुषोत्तम है। उनका जीवन बड़े सयम, विवेक, सतुलन, अनुशासन का जीवन है। महावीर का जीवन परम त्याग का जीवन है, सब छोड़ दिया है, सब छोड़ दिया, कुछ भी नही रखा है—शुभ्र हो गये है।

जैनो के दो पथ है दिगबर और श्वेताबर। महावीर ने वस्त्र तो पहने नही, रहे तो वे नग्न ही, लेकिन फिर भी श्वेताबर दृष्टि मे भी सार है। यह कहना कि वे सफेद वस्त्रो मे ढके थे, बिलकुल सार्थक है। जैसे शैतान को काला रगने मे सार्थकता है, वैसे ही महावीर को शुभ्र वस्त्रो मे, श्वेताबर बनाने मे भी सार्थकता है। यद्यपि वे नग्न थे, लेकिन उनके जीवन का लक्षण सफेद, शुभ्र, श्वेत वस्त्र है—श्वेताबर है। सब उन्होने छोड़ दिया। यह दूसरा उपाय है।

अगर परमात्मा को तुम सिकोड़कर बैठ गये, तो तुम कुछ भी हो सकते हो पशु, पत्थर, आदमी। परमात्मा तुम्हारे भीतर सिकुडा पडा रहेगा।

बाटो। खोलो इन जालो को जो भीतर बधे है। तोडो खोल को, अकुर उठने दो। तुम पाओगे शुभ्र परमात्मा का उदय हुआ।

ये साधारण विभाजन है। फिर एक तीसरी भी स्थिति है। जैसे कि कोई पारदर्शी काच का टुकडा, वह किरणो को लौटाता नही है, पीता भी नही, पार हो जाने देता है, शुभ्र भी नही है, काला भी नही है। क्योंकि काला होने के लिए पी जाना जरूरी है। शुभ्र होने के लिए लौटा देना जरूरी है। काच का टुकडा पार हो जाने देता है, पारदर्शी है। सफेद दीवाल है, वह लौटा देती है। काला पत्थर है, वह पी जाता है। काच है, वह पार हो जाने देता है।

तो महावीर, बुद्ध, राम, मोजिज शुभ्र वस्त्रो की भाति है, शुभ्र दीवाल की भाति है। लाओत्सु पारदर्शी काच की भाति है। तो अगर काच पूरा पारदर्शी हो तो तुम्हे दिखाई ही नही पडेगा। उसके पार क्या है, वह दिखाई पड़ेगा, काच दिखाई नही पड़ेगा। अगर काच दिखाई पडता है तो उसका मतलब है, थोडी अशुद्धि रह गई। तो लाओत्सु अगर तुम्हारे पास भी बैठा रहे तो तुम्हे पता न चलेगा। अगर महावीर तुम्हारे पास बैठे, तो तुम्हारी आखे चमचमा जायेगी, शुभ्रता तुम्हे घेर लेगी। अगर रावण तुम्हारे पास बैठे तो तुम घबड़ाने लगोगे, वह तुम्हे चूसने लगेगा, खीचने लगेगा। वह तुम्हारी सीता को चुराने मे लग जायेगा। वह तुम्हे भी पी जाना चाहेगा। जरूरी नहीं है कि वह तुम्हे भोगे, क्योकि भोगने के लिए भी थोड़ा त्यागना पड़ता है। वह तो सिर्फ कुडली मारकर बैठ जायेगा।

इसलिए मै रामायण मे जो कथा है कि वह सीता को चुराकर ले गया, फिर उसने अशोक-वाटिका मे उन्हे रख दिया, उन्हे छुआ भी नही। असली कजूस छूता भी नही। धन को छूता भी नही, बस उसको रखकर तिजोड़ी मे बैठ जाता है। उसने सीता

को भोगा नही। उसमे प्रयोजन भी न था। बस सुदर स्त्री मेरे कब्जे मे आ गई, इतना काफी है। उसका रस कब्जे का रस है।

तो अगर रावण जैसा आदमी तुम्हारे पास बैठे तो तुम पाओगे, जैसे कोई अधकार तुम्हे खीचे लेता हो, पी जाना चाहता है। अगर राम और महावीर जैसे व्यक्ति तुम्हारे पास खड़े हो, तो तुम पाओगे कि तुम्हारी आखे किसी शुभ्रता मे झपकपाने लगी। उन्हे झेलना मुश्किल मालूम पड़ेगा।

लाओत्सु जैसा व्यक्ति अगर तुम्हारे पास भी बैठा हो तो तुम्हे पता न चलेगा कि कोई बैठा है या नही बैठा है। इसलिए तो लाओत्सु के पीछे कोई धर्म न बन सका। धर्म बने कैसे? धर्म बनने के लिए दिखाई पड़ना चाहिए। लाओत्सु तो ना-कुछ है, शून्यवत है। यह भी परमात्मा का एक रूप है।

परमात्मा का पहला रूप है शैतान—सबसे नीचा रूप। दूसरा रूप है शुभ्र। कुछ उस ढग से प्रगट होते है परमात्मा। फिर लाओत्सु है, वह भी एक रूप है परमात्मा का—पारदर्शी। फिर एक चौथा रूप भी है—दर्पण की भाति, किरणे लौटती ही नही सिर्फ, तुम्हारा प्रतिबिब भी बनाती है। तुम अगर दर्पण के पास जाओगे तो तुम्हारी तस्वीर तुम्हे दिखाई पड जायेगी। कुछ मे परमात्मा इस रूप मे भी प्रगट हुआ है—पतजलि। अगर पतजलि के पास जाओगे तो तुम्हे अपनी तस्वीर दिखाई पडने लगेगी। महावीर के पास न दिखाई पडेगी तुम्हे अपनी तस्वीर। सिर्फ तुम्हे उनकी शुभ्रता घेर लेगी, जैसे चादनी के फूल तुम पर बरस पड़े। लेकिन पतजलि के पास तुम्हे अपना ही रूप दिखाई पड़ जायेगा, तुम्हारी झलक बनेगी। और पतजलि तुम्हे आत्म-आविष्कार के लिए बड़ा सहयोगी हो सकेगा। लाओत्सु के साथ तो वे लोग चल सकेगे, बहुत मुश्किल, विरले, जिनके पास इतनी सूक्ष्म दृष्टि है कि पारदर्शी को भी देख सके। पतजलि के साथ बहुत लोग चल सकेगे। महावीर के साथ भी लोग चल सकेगे, राम के साथ भी चल सकेगे, लेकिन राम और महावीर से अभिभूत होगे, रूपातरित बहुत नही होगे। क्योकि खुद का दर्शन नही होगा। महावीर का दर्शन होगा अगर उनके पास जाओगे। पतजलि की खूबी और। उसके पास तुम्हे तुम्हारा दर्शन होगा। तुम्हारा चेहरा विकराल है तो विकराल दिखाई पडेगा, सुदर है तो सुदर दिखाई पडेगा। तुम जैसे हो, पतजलि के पास तुम वैसे ही प्रगट हो जाओगे। कुछ लोग पतजलि के पास से नाराज होकर लौटेगे, क्योकि उनका कुरूप चेहरा दिखाई पड़ेगा, उनकी वीभत्सता दिखाई पड़ेगी। ऐसे लोग महावीर से नाराज न होगे, क्योकि महावीर के पास सिर्फ महावीर के फूल दिखाई पड़ेगे। तुम महावीर की पूजा कर लोगे। महावीर के साथ पूजा पर्याप्त हो जायेगी। पतजलि के साथ साधना जरूरी होगी। लेकिन जो भी पतजलि के साथ जायेगा उसके जीवन मे क्राति निश्चित है।

फिर एक और पाचवा रूप है—प्रिज्म की भाति। किरण गुजरती है तिकोन काच के टुकडे से, तो इद्रधनुष पैदा हो जाता है। कृष्ण ऐसे है जैसे इद्रधनुष। किरण पार भी होती है, लेकिन लाओत्सु जैसी नही। प्रिज्म मे से पार होती है। सीधा-सरल काच का टुकडा नही है। बड़े कोणो वाला काच का टुकड़ा। बड़े पहलुओ वाला काच का टुकड़ा। कृष्ण बहुआयामी है, बडे पहलू है। और जब कृष्ण से किरण गुजरती है तो सात रगो मे टूट जाती है। बड़ा नृत्य, बड़ा गीत, बड़ा रास पैदा होता है। इसलिए मोर-मुकुट है। इसलिए मोर-पख बधे है। इसलिए हाथ मे बासुरी है। इसलिए पैर मे घुघर बधे है। इसलिए पीताबर वेश है। इसलिए सिल्क, शुद्धतम सिल्क के वस्त्र है। गले मे हार है। बाहुए आभूषणो से सजी है। करधनी बाधी हुई है। कृष्ण बडे रगीले है, बडे सजे है। परमात्मा बड़े शृगार मे प्रगट हुआ है। अगर नाचना हो तो कृष्ण के साथ। अगर गीत की धुन सुननी हो तो कृष्ण के पास।

कृष्ण पतजलि जैसे शिक्षक नही है, न महावीर जैसे है, अभिभूत कर ले, ऐसे है। न लाओत्सु जैसे कि शून्य मे खो गये हो, ऐसे है। कृष्ण के साथ महोत्सव है, उत्सव है। कृष्ण के साथ राग-रग है।

और सभी रूप परमात्मा के है। अब इसमे से जो किसी एक रूप से जकड गया उसको दूसरा रूप पहचान मे न आयेगा। अगर तुमने कृष्ण की रग-रेली देखी और उसको तुमने परमात्मा का रूप जाना, तो फिर महावीर तुम्हे सूखे-सूखे, रूखे-रूखे मालूम पड़ेगे। तुम कहोगे, 'ये कैसे भगवान है? बासुरी तो बजती ही नही, भगवत्ता कहा है? सगीत तो पैदा ही नही होता, गीत तो बरसते ही नही, ये कैसे भगवान?' बडे मरुस्थल जैसे मालूम होगे।

और अगर तुम महावीर से अभिभूत हो गये और तुमने कहा,

यही भगवान का रूप है तो कृष्ण मे तुमको लगेगा, कुछ गड़बड़ हो रही है। यह नाच कैसा? परम वीतराग पुरुष कही नाचता है? यह बासुरी कैसी? क्योकि सब बासुरी तो राग है। सब रास राग है। यह आसपास खड़ी हुई सुदर स्त्रिया, नाचतीं, डोलती, यह सब क्या हो रहा है? यह तो ससार है।

तुम्हारी परिभाषा पर निर्भर है। और मै धार्मिक व्यक्ति उसको कहता हू, जिसकी परमात्मा की कोई परिभाषा नही, जो परमात्मा को अपरिभाष्य मानता है, अनिर्वचनीय मानता है। और जिस रूप मे भी परमात्मा प्रगट होता है, पहचान लेता है, खोज लेता है, क्योकि रूप तो सब उसी के है। इसलिए धोखे का कोई उपाय नहीं है।

तामीरे-कायनात को गहरी नजर से देख
वह जर्रा कौन-सा है यहा जो अहम् नहीं।

जरा गहरी नजर से देखो सृष्टि को। यहा कण-कण महत्वपूर्ण है। उसकी महिमा से आपूरित है। उसकी ही विभूति है, उसका ही प्रसाद है। लेकिन तुम्हारा जितना बड़ा प्याला होगा, उतनी ही तुम क्षमता जुटा पाओगे परमात्मा के प्रसाद की। इसलिए छोटी-छोटी परिभाषाओ के प्याले लेकर मत चलो। जब प्याला ही लेना है तो बड़ा लो कि सागर समा जाये। नही तो आज नही कल, तुम पाओगे कि तुम्हारे प्याले मे बड़ा थोडा है। और थोड़ा तुम्हे कष्ट देगा। और कष्ट तुम्हारे प्याले के कारण हो रहा है। तुमने प्याला बड़ा चुना होता तो परमात्मा बड़े प्याले मे भी उतरने को राजी था।

अनिर्वचनीय को पकडो। अव्याख्य की व्याख्या मत करो। अव्याख्य को अव्याख्य रहने दो। नाम-रूप मत धरो उसके। तो फिर जिस रूप मे भी आयेगा, तुम पहचान लोगे। तुम हर रूप मे पहचान लोगे। तुम रावण मे भी देख लोगे, राम मे तो देख ही लोगे। वह भी उसी का रूप है, विपरीत चला गया, गलत हो गया, बेस्वाद हो गया—लेकिन उसी का स्वाद है।

साकिए-दौरा से शिकवा बेश-कम का है फिजूल
जर्फ जितना उसने देखा उतनी पैमाने मे है।

साकिए-दौरा से शिकवा बेश-कम का है फिजूल—साकी से कम-ज्यादा की शिकायत करनी व्यर्थ है। जर्फ जितना उसने देखा, उतनी पैमाने मे है। उसने देखा, कितनी तुम पचा सकोगे, उतनी तुम्हारे पैमाने मे है।

बड़ी करो परिभाषा। मेरी मानो तो परिभाषा को छोड़ो, इतनी बड़ी करो कि परिभाषा बचे न। तो तुम्हारा जर्फ बड़ा होगा, तुम्हारी क्षमता और पात्रता बड़ी होगी।

तब मै ही तुम्हे भगवान नही, तुम भी, तुम्हारा बेटा भी, तुम्हारी पत्नी भी—सभी तुम्हे भगवान दिखाई पड़ने लगेगे। कोई बीजरूप है, कोई वृक्षरूप हुआ, कोई कली बना, कोई फूल बना। और फूलो की हजारो-हजारो किस्मे है, ऐसे ही परमात्मा के हजार-हजार रूप है।

फिर जो मुझे भगवान कहते है, वे केवल अपना प्रेम प्रदर्शित करते है। जिससे प्रेम हो जाये, वही भगवान दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। वह प्रेम ही क्या जिसमे भगवान दिखाई न पडे? तुम मेरी तो छोडो, तुम अगर किसी स्त्री के प्रेम मे पड गये तो वहा भी दिव्यता की झलक दिखाई पडेगी। तुम अगर किसी पुरुष के प्रेम मे पड़ गये तो वहा भी अचानक पुरुष-भाव खो जायेगा, परमात्म-भाव प्रगट होगा।

शबाब आया, किसी बुत पर फिदा होने का वक्त आया
मेरी दुनिया मे बदे के खुदा होने का वक्त आया।

जब कोई जवान होता है, शबाब आया, जवानी आई, किसी बुत पर फिदा होने का वक्त आया। अब किसी प्रतिमा पर पागल हो जाने का समय आ गया।

मेरी दुनिया मे बदे के खुदा होने का वक्त आया।

अब कोई बदा खुदा जैसा दिखाई पडेगा।

यह तो साधारण प्रेम मे हो जाता है। यह तो मजनू को लैला मे दिखाई पड़ने लगता है। यह तो शीरी को फरिहाद मे दिखाई पड जाता है। तो आत्मिक प्रेम मे तो घटना और भी गहरी घटती है।

अब जिनका मुझसे प्रेम है, उन्हे भगवान दिखाई पड़ जायेगा। तुम्हारा हो या न हो, मेरा तुमसे है, मुझे तुम मे दिखाई पड़ता है। अगर तुम्हे न दिखाई पड़े तो तुम व्यर्थ ही वचित रह जाओगे।

और ध्यान रखना, अगर मै तुमसे कहू कि परमात्मा मुझ मे है और किसी मे नही, तो खतरनाक बात कह रहा हू। तुम भी यही सुनना चाहते हो, क्योकि फिर तुम्हारा अहकार मजे से रस ले सकेगा। लेकिन मै कहता हू, परमात्मा सबकी सामान्यता है। परमात्मा कोई विशेष बात नही है, कोई विशिष्टता नहीं है। परमात्मा सभी के होने का ढग है, सभी का स्वभाव है। जानो न जानो, तुम परमात्मा हो, जब तक न जानोगे, बंद रहोगे, जिस

दिन जान लोगे, खुल जाओगे।

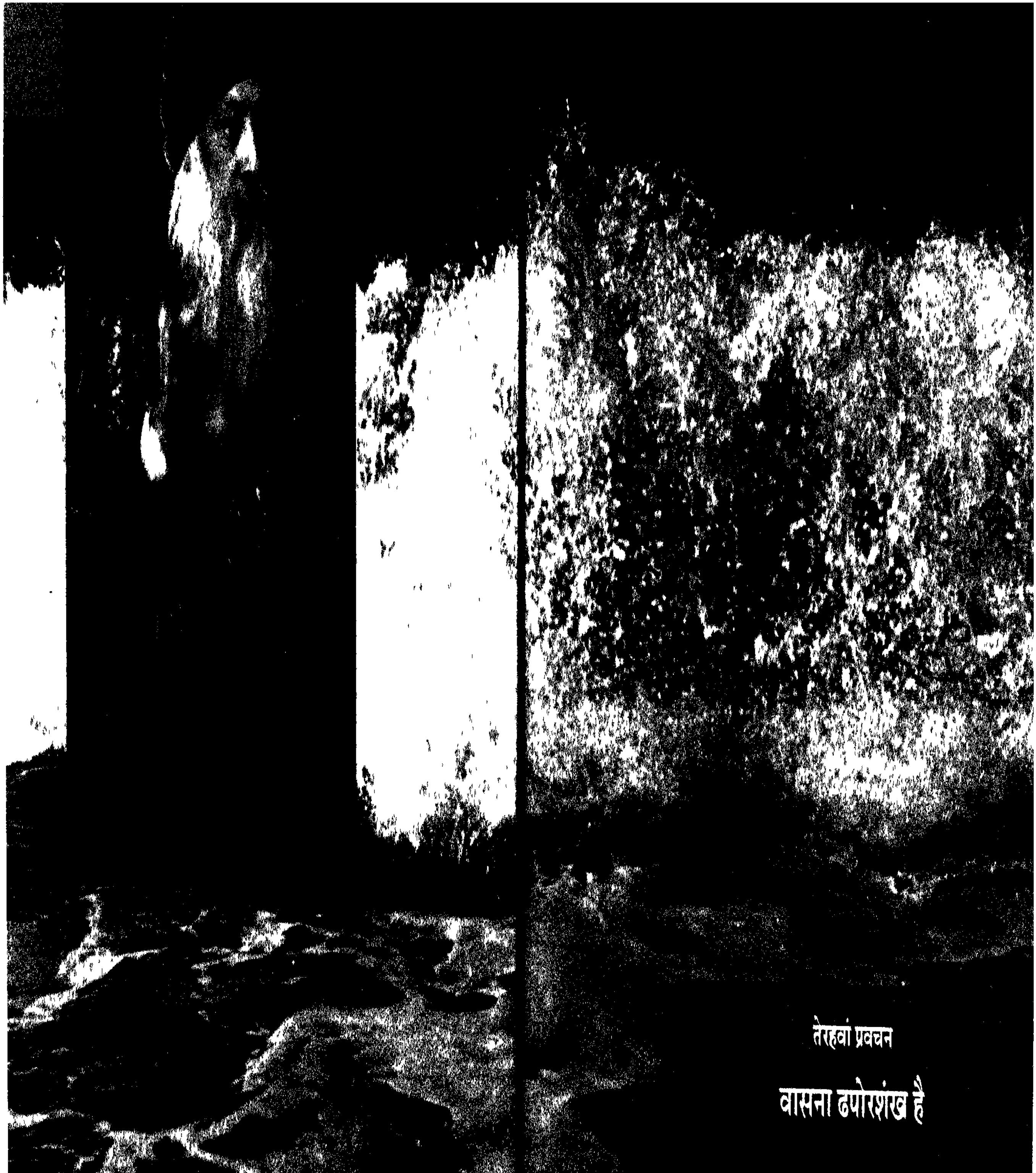
इसलिए कहीं अगर तुम्हे कोई फूल मिल जाये तो उसके पास थोड़े रह लेना, क्योकि सत्सग सक्रामक होता है। फूल के पास शायद तुम्हारी कली भी खुलने का ढग सीख जाये। बस इतना ही सत्सग का अर्थ होता है।

आखिरी प्रश्न कुछ कहना था, नही कह पा रहा हू। हृदय की पीड़ा प्रेम बनकर बिखर जाती है। मेरी दिनचर्या आनदचर्या बन चुकी है। मेरी आखे अब झपकने-सी लगी है, क्योकि आपकी आखो मे जादू है। अब पिघलू और बहू—बस यही कह दे।

तथास्तु।

आज इतना ही।





तेरहवां प्रवचन

वासना ढपोरशंख है

सूत्र

जीववहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ।
ता सव्वजीवहिसा, परिचत्ता अत्त कामेहि।।३२।।

तुम सि नाम स चेव, ज हंतव्व ति मन्नसि।
तुम सि नाम स चेव, ज अज्जावेयव्व ति मन्नसि।।३३।।

रागादीणमणुप्पासो, अहिसकत्तं त्ति देसिय समए।
तेसि चे उप्पत्ती, हिसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठा।।३४।।

अज्झवसिएण बंधो, सत्ते मारेज्ज मा थ मारेज्ज।
एसो बधसमासो, जीवाण णिच्छयणयस्स।।३५।।

हिसा दो अविरमण, वहपरिणामो य होइ हिसा हु।
तम्हा पमत्तजोगे, पाणव्ववरोवओ णिच्च।।३६।।

अत्ता चेव अहिसा, अत्ता हिसति णिच्छओ समए।
जो होदि अप्पमत्तो, अहिसगो हिसगो इदरो।।३७।।

तुगं न मंदराओ, आगासाओ विसालय नत्थि।
जह तह जयंमि जाणसु, धम्ममहिसासमं नत्थि।।३८।।

परमात्मा को अस्वीकार करनेवाले और लोग भी हुए है, लेकिन जैसी कुशलता से महावीर ने अस्वीकार किया, वैसा किसी ने भी नही किया। कुशलता से मेरा अर्थ है, परमात्मा को अस्वीकार भी किया और फिर भी परमात्मा को बचा लिया। इनकार भी किया, परमात्मा को खोने भी न दिया। मूर्ति-भजक बहुत हुए है, लेकिन मूर्ति तोड़ने मे ही परमात्मा भी टूट गया। महावीर ने मूर्ति तोडी, लेकिन उस अमूर्त को पूरा-पूरा बचा लिया। यही उनकी कुशलता है।

परमात्मा जब मूर्ति बन जाता है तो थोथा हो जाता है। परमात्मा जब तक अमूर्त अनुभव हो, तभी तक बहुमूल्य है। जैसे ही आकार दिया, वैसे ही परमात्मा से दूर होने लगे, क्योंकि परमात्मा निराकार है। जैसे ही पत्थर मे परमात्मा को देखना शुरू किया, वैसे ही आखे अधी होनी शुरू हो जाती है।

इस्लाम ने भी मूर्तिया तोड़ी। महावीर ने भी मूर्तिया तोड़ी। लेकिन महावीर ने बड़ी कुशलता से तोडी। महावीर ने बड़ी अहिसा से तोड़ीं, बड़े प्रेम से तोडीं। जरा-सा फासला है, लेकिन बड़ा भेद है। इस्लाम ने बड़े क्रोध से तोड़ दीं, बड़ी हिसा से तोड़ दी। हिसा और क्रोध मे, तोड़ने के आग्रह मे, एक बात साफ हो गई। जब हम आग्रह से कोई चीज तोड़ते है तो उसका अर्थ है, कही अचेतन मे हमारा लगाव है। तोड़ने योग्य मानते है, इतना श्रम उठाते है तोड़ने के लिए, तो जरूर हमे लगता है कि मूर्ति मे कोई मूल्य है। महावीर ने इस तरह न तोड़ा। तोड़ा भी, मूर्ति बिखेर भी दी, चोट भी न हुई, आवाज भी न हुई, और भीतर जो छिपा था, अमूर्त, उसे बचा भी लिया।

कारवा लग चुका है रस्ते पर
फिर कोई रहनुमा न आ जाए
बुत-ओ-बुतखाना तोडने वाले
इसी जद मे खुदा न आ जाए
देखो-देखो इन आसुओ पे 'जमील'
तुहमते-इल्तिजा न आ जाए।
बुत-ओ-बुतखाना तोड़ने वाले
इसी जद मे खुदा न आ जाए।

मूर्तियो और मदिर से छुटकारा उपयोगी है। लेकिन ध्यान रखना, इसी जद मे कही खुदा न आ जाए। कही ऐसा न हो कि मदिर और मूर्ति तोड़ने में खुदा भी टूट जाए।

उसे तो बचाना है, जो मदिर मे छिपा है। उसे तो बचाना है जो मूर्ति मे छिपा है। महावीर ने बडी कुशलता से बचाया है। इसे समझने की कोशिश करे।

'जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है। अत आत्म-हितैषी पुरुषो ने सभी तरह की जीव-हिसा का परित्याग किया है। जिसे तू हनन योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू आज्ञा मे रखने योग्य मानता है, वह तू ही है।'

यही तो उपनिषद कहते है। यही तो वेद कहते है। लेकिन उपनिषद और वेद परमात्मा के नाम से कहते है, महावीर ने आत्मा के नाम से कहा। बड़ा फर्क है। जैसे ही परमात्मा का विचार होता है, ऐसा लगता है ईश्वर कोई और, कही और। दूरी पैदा हो जाती है। महावीर ने आत्मा के नाम से वही कहा। आत्मा से दूरी पैदा नही होती। वह तुम्हारा स्वरूप है। वह

तुम्हारा होने का केंद्र है। तो दूसरे मे भी तुम्हे जब अपना केंद्र दिखाई पड़ने लगे, तब महावीर कहते है, तुम जागे।

अहिसा का पूरा शास्त्र दूसरे मे भी स्वय को देखने का ही शास्त्र है। लेकिन इस दूसरे को देखने को एक परमात्मा को महावीर नहीं मानते कि परमात्मा सब मे छाया हुआ है। महावीर मानते हैं, तुम्ही दूसरे से जुडे हो और दूसरा तुमसे जुडा है। जीवन एक अतरात्माओ का अतर्जाल है, अतरात्माओ का अतर्सबध है। जैसे मकडी का जाला होता है, एक धागे को हिला दो, पूरा जाला हिल जाता है—ऐसे ही एक व्यक्ति की चेतना को हिला दो, सारा अस्तित्व हिल जाता है। एक वृक्ष को चोट पहुचा दो, चोट सभी पर फैल जाती है। क्योकि हम अलग-थलग नही है। हम टूटे-टूटे नही है। मेरे और तुम्हारे बीच कोई दीवाल नही है। जो मुझे घटेगा, वह तुम्हे भी घटेगा। जो तुम्हे घटेगा, वह मुझ तक भी आ जाएगा। जैसे हम सागर मे एक ककड़ को फेक दे, लहरे उठती है, दूर-दिगत तक फैलती चली जाती है। अगर मैने तुम्हे चोट पहुचाई तो एक ककड़ फेका सागर मे। माना, तुम्हारी तरफ फेका था, लेकिन उसकी लहरे सभी को आदोलित करेगी। उन सभी मे मै भी सम्मिलित हू।

तो जो दुख देता है, वह अपने हाथ से अपने लिए दुख निर्मित करता है। जो सुख बाटता है, वह अपने हाथ से अपने लिए सुख निमत्रित करता है। तुम जो दोगे वही तुम्हे मिलेगा। जो तुमने दिया था पहले वही तुम पा रहे हो। किया तुमने दूसरे के साथ था, हो गया तुम्हारे साथ।

महावीर कहते है, तुम्हारे अतिरिक्त यहा कोई नही है। तो तुम जो भी करोगे, अपने ही साथ कर रहे हो।

हमारी हालत ऐसी है, जैसे तुमने उस शेखचिल्ली की कहानी सुनी होगी। वह बैठा था, शाति से राह चलते लोगो को देख रहा था। एक मक्खी उसे परेशान करने लगी, आकर नाक पर बैठने लगी। एक-दो दफे उसने झपट्टा मारा, लेकिन मक्खिया जिद्दी होती है। जैसे ही उसने झपट्टा मारा, मक्खी फिर आकर नाक पर बैठ गई। फिर उसे क्रोध आने लगा। यह छोटी-सी मक्खी और उसे सता रही है। उसका क्रोध बढता चला गया। उसने और झपट्टे जोर से मारे। फिर उसके बर्दाश्त के बाहर हो गया। पास मे ही पड़ी हुई छुरी थी, उठाकर छुरी उसने मक्खी को मारी। मक्खी तो उड गई, नाक कट गई।

तुमने जो चोट दूसरे को मारी है, वह क्रोध मे तुम्ही को लग गई है। महावीर का यह मूलभूत आधार है। अगर तुम दुखी हो तो तुमने किसी को दुख देना चाहा था, अन्यथा तुम दुखी न हो सकते थे। तुम पीड़ित हो, परेशान हो, चिताग्रस्त हो, संताप से भरे हो, चैन खो गया, शाति खो गई, जीवन की प्रफुल्लता खो गई है, तो जरूर यही तुमने जीवन के साथ किया है। जीवन के साथ तुम जो करते हो, उसी के प्रतिफल तुम्हे मिलते है।

हमारी हालत उलटी है। साधारणत हम ऐसा सोचते है कि दूसरे हमे दुखी कर रहे है। दूसरे तो केवल तुमने जो दिया था वापिस लौटा रहे है। तुम्हारी धरोहर तुम्हे सौप रहे है। और अगर तुमने ऐसा देखा कि दूसरे तुम्हे दुखी कर रहे है तो तुम्हारी पूरी जीवन-दिशा भ्रात हो जाएगी। तब तुम कभी सुखी न हो सकोगे। क्योकि दूसरो को तुम कैसे बदलोगे? अपने को ही बदलना इतना मुश्किल है, दूसरो को तुम कैसे बदलोगे? फिर दूसरा कोई एक थोडी है, अनत है। इस अनत को तुम कैसे बदलोगे? और इसको बदलने के लिए तो अनत काल लग जाएगा। अगर बदल भी पाए तो इतना समय लग जाएगा । एक तो बदलना असभव, बदल भी लिया तो अनत काल तुम दुख भोगते रहोगे।

यही मार्क्स और महावीर की दृष्टि मे भेद है। मार्क्स कहता है, *समाज जुम्मेवार है, अर्थव्यवस्था* जुम्मेवार है। इसे बदल दो, सब सुख हो जायेगा। परमात्मा को मनुष्य से अलग दूर ऊपर आकाश मे माननेवाले कहते है, प्रार्थना करो, पूजा करो, सब ठीक हो जायेगा। गगा-स्नान करो, सब ठीक हो जायेगा। वे भी बडी झूठी बाते हाथ मे दे रहे है।

महावीर सीधी बीमारी का निदान करते है। वे कहते है, न तो कोई परमात्मा ऊपर बैठकर तुम्हे दुख दे रहा है। इसलिए तुम्हे दुख नही दिया जा रहा है कि तुमने प्रार्थना नही की है, कि तुमने पूजा नही की है। ऐसा परमात्मा भी क्या परमात्मा होगा जो तुम्हारी पूजा की अपेक्षा और आकाक्षा रखता हो, और जो इसलिए नाराज हो जाता हो कि तुम ठीक से पूजा नही कर रहे, प्रार्थना नही कर रहे, तुम नियम और व्यवस्था से नहीं चल रहे। ऐसा परमात्मा तो बड़ा अहकारी होगा। ऐसा परमात्मा तो स्वय दुखी होगा, तुम्हे कैसे सुखी कर पाएगा? थोड़ा सोचो, अगर परमात्मा तुम्हारी प्रार्थनाओ से सुखी होता हो, तो मरा जाता

होगा, पागल हुआ जाता होगा। इतने लोग है, कौन प्रार्थना करता है? जो प्रार्थना करते है, वे भी परमात्मा के लिए प्रार्थना नही करते, वे भी कुछ और मागने के लिए करते है। जब काम निपट जाता है तो भूल जाते है। दुख मे याद आ जाती है, सुख मे विस्मरण हो जाता है। दुख मे विस्मरण नही होता, सुख मे विस्मरण हो जाता है। परमात्मा को तो वे भी याद नही करते है। तो परमात्मा तो पागल हुआ जा रहा होगा, अगर तुम्हारी प्रार्थनाओ से उसे प्रसन्न होने की अपेक्षा है तो।

महावीर कहते है, ऐसा कोई परमात्मा नही है। यह भी तुम्हारे भुलावे है। तुम सत्य को नहीं देखना चाहते कि तुमने दुख फैलाया, इसलिए दुख पा रहे हो, तो तुम कोई न कोई बहाना खोजते हो बाहर। कभी समाज-व्यवस्था मे, कभी भाग्य मे, कभी प्रकृति के दोषो मे, कभी त्रिगुणो मे, कभी परमात्मा की प्रार्थना-पूजा मे—लेकिन तुम बाहर कोई सहारा खोजते हो। तुम एक बात नही देखना चाहते कि तुम जुम्मेवार हो।

जीवन का सबसे बड़ा कठोर सत्य यही है—इसे स्वीकार कर लेना कि जो मुझे हो रहा है, उसके लिए मै जुम्मेवार हू। बडी उदासी आएगी। मै जुम्मेवार हू—अपने दुखो के लिए, अपनी चिताओ के लिए। दूसरे पर जुम्मा टाल के थोडी राहत मिलती है। कम से कम इतनी तो राहत मिलती है कि दूसरे कर रहे है, मै क्या करू। असहाय होने का मजा तो आ जाता है।

महावीर ने कहा, यह धोखाधडी अब और मत करो। यह तुमने किया था, वही लौट रहा है। यह तुमने दिया था, उसकी ही प्रतिध्वनि है। और अगर तुमने यह न देखा तो तुम फिर वही किए चले जा रहे हो जिसके कारण तुम दुखी हो। तो जाल फैलता ही चला जायेगा।

यह दुष्चक्र का अंत ही न होगा। चाक घूमता ही रहेगा।

'जीववहो अप्पवहो।' जीव का वध अपना ही वध है। जब भी तुमने किसी को मारा, अपने को ही काटा और मारा।

'जीवदया अप्पणो दया होइ।' और जीव पर जब भी तुमने दया की, किसी पर भी, तुमने अपने पर ही दया की।

'अत आत्महितैषी पुरुषो ने सभी तरह की जीव-हिसा का परित्याग किया है।' यह वचन समझना। 'आत्महितैषी' आत्मकाम—अत्त कामेहि। स्वार्थ का जो अर्थ होता है, वही। आत्महितैषी, अपना हित चाहनेवालो ने ।

यहा जैनो को भी कुछ बात समझ लेनी जैसी है। भ्रातिया हमारी ऐसी है कि सत्य भी हमारे हाथ लग जाए तो हम उन्हे विकृत कर लेते है। जैन सोचते है कि वे जीव-दया कर रहे है, दूसरे पर दया कर रहे है। महावीर कहते है, जिसने जीव पर दया की उसने अपने पर दया की। बस इतना ही। नहीं तो एक नया अहकार, एक नया भूत पैदा होता है कि मै जीव-दया कर रहा हू, कि मै अहिसक हू, कि मैने देखो कितने जीवो को बचाया। एक नई अकड पैदा होती है। इतना ही कहो कि तुमने अपने को दुख देने से स्वय को बचाया। तुमने स्वार्थ साधा। तुमने आत्महित साधा। इसमे घोषणा और विज्ञापन करने की कोई भी जरूरत नहीं है। तुम ऐसी तो घोषणा नहीं करते कि आज मैने अपना सिर दीवाल से नही तोड़ा। तुम ऐसा तो नहीं कहते कि आज मैने पैर मे छुरा नही मारा। तुम ऐसा कहोगे तो लोग हसेगे। लोग कहेगे, इसमे क्या बड़ा किया? यह तो सभी करते है।

अगर तुमने जीव-हिसा नही की, तो कुछ पुण्य किया, ऐसा मत सोचो। इतना ही कि अपने पर दया की। यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। नही तो एक नया पागलपन शुरू होगा। पहले तुम सोचते थे, दूसरे तुम्हे दुख दे रहे है, अब तुम सोचने लगोगे कि तुम दूसरो को सुख दे रहे हो। लेकिन अगर तुम दूसरो को सुख दे सकते हो तो दुख भी दे सकते हो। मूल भ्राति तो मौजूद रही। और अगर तुम दूसरो को सुख-दुख दे सकते हो तो दूसरे तुम्हे क्यो नही दे सकते? तर्क तो वही का वही रहा, कही हटा न।

महावीर चाहते है कि तुम इस गहन सत्य को एक बार प्रगाढता से अगीकार कर लो कि तुम जो करोगे, वह अपने ही साथ कर रहे हो। दूसरे निमित्त हो सकते है, बहाने हो सकते है। लेकिन अतत, अततोगत्वा, सभी किया हुआ अपने साथ किया हुआ सिद्ध होता है।

'जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है ।'

महावीर कहते है, धार्मिक व्यक्ति स्वार्थी व्यक्ति है। उसे समझ मे आ गया कि अपने साथ क्या करना है। उसने अपने साथ शिष्टाचार सीख लिया। अधार्मिक व्यक्ति अशिष्ट है, अपने साथ ही अशिष्टता कर रहा है। अधार्मिक व्यक्ति अज्ञानी है, अपने को ही काट रहा है, चोट पहुचा रहा है। सोचता है, दूसरे को चोट पहुचा रहे है। उस सोचने मे, उस सपने मे, अपने

को ही तोड़ता चला जाता है।

'आत्महितैषी पुरुषो ने सभी तरह की जीवहिसा का परित्याग किया है।' उन्होंने किसी भी तरह की हिंसा को अपने जीवन मे बचाया नहीं।

हिंसा का अर्थ होता है दूसरे को दुख देने की आकाक्षा। हिसा का अर्थ होता है दूसरे के दुख मे सुख लेने का भाव। हिसा का अर्थ है . परपीडन मे रस। जिसको आज आधुनिक मनोविज्ञान सैडिजम कहता है—दूसरे को पीड़ा देने मे रस—उसको ही महावीर हिसा कहते है।

महावीर की हिंसा का सिद्धात अति मनोवैज्ञानिक है। दुनिया मे दो तरह के लोग है। मनोवैज्ञानिक उनका विभाजन करते है। एक—जिनको वे सैडिस्ट कहते है, जो दूसरे को सताने मे रस लेते है।

एक बड़ा लेखक हुआ सादे। उसके नाम पर सैडिजम निर्मित हुआ। उसका एक ही रस था, दूसरो को सताने मे। वह प्रेम भी करता किसी स्त्री को तो द्वार-दरवाजे बद करके पहले तो उसकी पिटाई करता, कोड़े मारता, लहूलुहान कर देता। वह चिल्लाती और चीखती, भागती और वह कोडे मारता। और भागने का कोई उपाय न था, द्वार-दरवाजे बद थे। जब तक वह चीखती-चिल्लाती न, रोती-भागती न, तब तक उसकी कामोत्तेजना न जागती। ये कमोत्तेजना का उपाय था। जब वह स्त्री भागने, चीखने-चिल्लाने लगती और लहू बहने लगता, तब उसकी कामोत्तेजना जगती। तब वह उसे प्रेम करता। उसके नाम पर सैडिजम शब्द निर्मित हुआ। वह जेल मे मरा, क्योकि अनेक स्त्रियो के साथ उसने यही किया।

लेकिन एक बड़े आश्चर्य की बात पता चली कि जिन स्त्रियो ने भी दि सादे से प्रेम किया, उनको फिर किसी दूसरे का प्रेम कभी न जचा। माना कि वह दुबारा हिम्मत न की उसके पास जाने की, लेकिन फिर सब प्रेम फीके पड गए। यह भी थोड़ी हैरानी की बात हुई। जैसी उत्तेजना उसने जगाई, जैसा तूफान उसने खड़ा कर दिया, वैसा फिर कोई भी न कर पाया। दि सादे तो अपना बैग साथ मे लेकर चलता था—कहा कौन मिल जाये, क्या पता! उस बैग मे, जैसे डाक्टर लेकर चलता है, उसका सब साज-सामान होता था। कोड़े, काटे, चुभाने के सामान, सब सामान लेकर चलता था। कब कहा कोई स्त्री मिल जाए, किसी से प्रेम हो जाए, और सामान न हो तो कैसे प्रेम करे।

लेकिन स्त्रियो के अनुभव से भी यह पता चला कि उनको भी इसमे रस आया है। चाहे हिम्मत न रही दुबारा इस आदमी के पास जाने की, लेकिन इस आदमी को वे स्त्रिया कभी भूल न सकी। तो मनोवैज्ञानिको को पहली दफा एक सूत्र समझ मे आना शुरू हुआ कि स्त्रियो को स्वय को पीडा देने मे कुछ रस मालूम होता है, जैसे पुरुषो को दूसरो को पीड़ा देने मे कुछ रस मालूम होता है।

फिर एक दूसरा आदमी हुआ मैसोच। उसके नाम पर दूसरा शब्द बना मैसोचिजम। मैसोचिजम का अर्थ है स्वय को दुख देने मे रस लेना। वह खुद को सताता था। वह भी कोडे मारता था, लेकिन खुद को मारता था। और जब तक वह अपने को ठीक से पीटता, मारता और खुद चीखने-चिल्लाने न लगता, तब तक उसकी कामोत्तेजना न जगती थी। तो जो स्त्री उसके प्रेम मे पड जाती, वह स्त्री को कहता कि पहले मुझे मारो, पीटो, मेरी छाती पर नाचो। जैसे काली नाचती है शिव की छाती पर, ऐसा मैसोच कहता कि पहले मेरी छाती पर नाचो, मुझे रौदो। जब वह काफी पीटा जाता, और खून बहने लगता और सब तरफ कोडो के निशान बन जाते, तब कामोत्तेजना का ज्वार उठता। तब वह प्रेम कर पाता। ये भी उसके लिए कामोत्तेजना को जगाने का उपाय था। उसके नाम पर मनोवैज्ञानिको ने दूसरा शब्द बनाया मैसोचिजम।

तो दो तरह के लोग है दुनिया मे दूसरे के दुख मे रस लेनेवाले और स्वय के दुख मे रस लेनेवाले।

तुम जिनको त्यागी, महात्मा कहते हो, उनमे से अधिक तो मैसोचिस्ट है, बीमार है। वास्तविक स्वस्थ आदमी न तो दूसरे को दुख देने मे रस लेता है, न खुद को दुख देने मे रस लेता है। दुख मे रस नही लेता—स्वस्थ आदमी का लक्षण है। दुख मे रस लेने का अर्थ हुआ · परवर्शन, कुछ विकृति हो गई, कही कुछ गड़बड़ हो गई बात।

फूल मे कोई रस ले, यह समझ मे आता है लेकिन काटो मे कोई रस लेने लगे । फूल को कोई अपने हाथो पर रखे, आखो की पलको से छुआए, समझ मे आता है। फूल की माला बनाकर अपने गले मे डाल ले, समझ में आता है।

लेकिन काटो को कोई अपने मे चुभाने लगे और काटो का हार

बनाकर पहनने लगे, तो कुछ विकृति हो गई। कहीं स्वभाव से च्युत हो गया यह आदमी।

दुख मे रस, चाहे वह अपने दुख मे हो और चाहे दूसरे के दुख मे हो, हिसा है। इसलिए अगर तुम मुझ से पूछो तो महावीर के पीछे चलने वाले जैन मुनियो मे निन्यान्नबे प्रतिशत तो महावीर के दुश्मन है। वे हिसा में रस ले रहे है, यद्यपि उन्होने हिसा का रुख अपनी तरफ बदल लिया है।

यह भी थोड़ा सोचने जैसा है।

महावीर कहते है, दूसरे को भी दुख दो तो भी अपने पर लौटता है—जरा वर्तुल बड़ा होता है।

अगर तुमको मै कोडा मारू तो भी कोड़ा मेरी तरफ लौटेगा, थाड़ा समय लगेगा, क्योकि तुम तक की दूरी जाना, फिर लौटना। फिर हो सकता है, तुम भी सीधा-सीधा न भेजो, केयर आफ भेजो, तो लबी यात्रा होगी। कभी जन्म भी लग जाते है। कभी जन्मो के बाद लौटेगा कोड़ा। मै भी भूल चुका होऊगा कि कब तुम्हे दिया था—लेकिन आएगा।

फिर जिसको मेसोचिस्ट हम कहते है, वह ज्यादा कुशल है। वह कहता है, इतनी लबी यात्रा क्या करनी है, कोड़ा अपने हाथ म लेकर खुद ही को मार लेना उचित है। वह ज्यादा नगद है। मगर हर हालत मे कोड़ा अपने पर ही पडता है। तो दुख चाहे तुम दूसरे को दो, चाहे अपने को दो—तुम हिसक हो।

तुमने देखा होगा काशी के रास्तो पर काटो पर लेटे हुए त्यागियो को—वे मैसोचिस्ट है, वे हिसक है। वे रस ले रहे है खुद को सताने मे।

तुमने ऐसे साधुओ को देखा होगा, जो महीनो का उपवास कर रहे है। वे दुखवादी है। वे अपने को सता रहे है। वे हिसा मे मजा ले रहे है। तुमने ऐसे साधुओ के बाबत सुना होगा, जिन्होने अपनी आखे फोड़ ली। वे दुखवादी है। तुमने ऐसे साधुओ के सबध मे सुना होगा जिन्होने अपनी जननेद्रिया काट ली हैं। वे दुखवादी है।

आदमी दो हिस्सो मे बंटा है दूसरे को दुख दो या अपने को दुख दो, मगर दुख दो।

स्वस्थ आदमी सब भांति की हिसा का त्याग करता है। यह महावीर के स्वास्थ्य की परिभाषा है। स्वस्थ व्यक्ति अहिसक होता है। न वह दूसरे को दुख देता न स्वय को दुख देता, क्योकि दुख देने मे कुछ अर्थ ही नहीं है। दुख देना तो जीवन के अवसर को व्यर्थ करना है, खराब करना है। जहा सगीत उठ सकता था आनद का, उस ऊर्जा को तुमने दुख मे बदल लिया। जहा फूल खिल सकते थे, वहा काटे बिछा लिये।

'जीव का वध अपना वध है।' ऐसे महावीर परमात्मा की भावना को भीतर से ले आते हैं। मदिर गिरा देते है, परमात्मा को बचा लेते है। क्योकि जब मेरे देने से तुम तक दुख पहुचता है और फिर मुझ पर लौट आता है, तो इसका अर्थ एक ही हुआ कि मै और तुम जुडे है, कोई सेतु है। कुछ आवागमन हो रहा है। कुछ लेन-देन चल रहा है। हमारे फासले और फर्क ऊपर-ऊपर होगे, भीतर कही गहराई मे हम जुड़े है। तभी तो मै तुम्हे दुख दे पाता हू और फिर दुख मेरे पास लौट आता है। बीच मे कोई दीवाल होती, कोई खाई होती, खड्ड होता, सेतु न होता, हमे जोड़नेवाला कोई तत्व न होता, तो ठीक था, दुख कैसे लौटता ? जाता है, आता है। तरगे जाती है, लौट आती है। अर्थ हुआ कि कोई गहराई मे हम एक ही सागर के हिस्से है। उस सागर का नाम ही परमात्मा है।

लेकिन महावीर उसे बाहर स्थापित नहीं करते, तुम्हारे भीतर स्थापित करते है। क्योकि बाहर जैसे ही परमात्मा स्थापित किया जाता है, लोग पूजा और प्रार्थना मे लग जाते है। लोग जीवन का रूपातरण नही करते, पूजा-प्रार्थना करते है। वे परमात्मा से कहते है, हे प्रभु। जीवन को बदलो। बिगाडते जीवन को खुद है और आशा रखते है, कोई और बदलेगा। तो फिर ऐसा परमात्मा भी पुराने ढाचे को चलाने का ही आधार बन जाता है। क्योकि जब तक तुम न बदलोगे, कोई न बदलेगा। अगर कोई परमात्मा होता तो उसने कभी का बदल दिया होता। तुम कितने दिन से प्रार्थना कर रहे हो। तुम्हारे हाथ कब से जुड़े है नमाज मे। तुम कितने दिन से झुके बैठे हो मूर्तियो के समाने। कुछ भी तो नही होता। सदिया बीत गई, जनम-जनम तुमने प्रार्थना की है, पूजा की है—कुछ भी तो नही होता। तुम वही के वही हो।

देखो पूजा करनेवाले को। रोज चला जाता है मदिर, रोज लौट आता है—वही का वही है। कोई भी तो रूप बदलता नही। हा, एक और खतरा पैदा हो जाता है। अब वह आश्वस्त हो जाता है कि ठीक है, प्रभु खयाल रखेगा। और जो उसे करना है, किये चला जाता है। जो करता है, उससे जीवन निर्मित होगा, पूजा से

नहीं।

देखो-देखो इन आसुओ पे 'जमील'
तुहमते-इल्तिजा न आ जाए।

जमील ने कहा है कि ये जो आसू बह रहे है आनद के, कोई भूल से इन्हे प्रार्थना न समझ ले। कही इन पर प्रार्थना का आरोप न आ जाए।

महावीर ने कभी हाथ भी नहीं जोड़े, झुके भी नही—कहीं प्रार्थना का आरोप न आ जाए। कही कोई यह न कह दे कि यह आदमी प्रार्थना कर रहा है।

क्योंकि प्रार्थना का अर्थ हुआ मैंने किया है गलत, कोई और उसे ठीक कर दे। लेकिन यह तो गणित के बाहर होगा, जीवन के गणित के विपरीत होगा। मैंने किया गलत, मुझे ही ठीक करना होगा। जो घट रहा है मेरे पास, वह मेरे ही कर्मो का फल है। मुझे कर्म रूपातरित करने होगे। कठिन होगा मार्ग, लेकिन कोई उपाय नहीं। कठिन होगा मार्ग, पर बस एक ही मार्ग है। कठिन ही मार्ग है।

'जिसे तू हनन योग्य मानता है वह तू ही है।' जिसे तू मारने चला है, जिसे तूने मारने की योजना बनाई है, वह तू ही है। 'जिसे तू आज्ञा मे रखने योग्य मानता है, वह भी तू ही है।' जिसे तूने गुलाम बना लिया है वह भी तू है। जिसे तू मारने चला है वह भी तू है। यह एक ही आत्मा का विस्तार है। ठीक तेरे जैसा ही चैतन्य दूसरे मे भी है।

हजार मिट्टी के दीये हो, ज्योति एक है। ज्योति का स्वभाव एक है। मिट्टी के दीयो मे बडा फर्क हो सकता है—एक आकार, दूसरा आकार, हजार आकार हो सकते है, एक रग, दूसरा रग, हजार रग हो सकते है। छोटे दीये, बड़े दीये, लेकिन सबके भीतर जो ज्योति जलती है वह एक है।

जो मेरे भीतर है, उससे अन्यथा तुम्हारे भीतर नही है। मुझ मे और तुम मे जो फर्क और फासले है, वे मिट्टी के दीये के है। मेरी देह अलग, तुम्हारी देह अलग, रग-ढग अलग, शैली-व्यवस्था अलग—पर सब ऊपर-ऊपर की बात है। जैसे-जैसे भीतर उतरोगे, वैसे-वैसे ही भेद समाप्त होते जाते है। जब ठीक अतर्तम मे पहुचोगे तो पाओगे जो दीया यहा जल रहा है, जो ज्योति यहा जल रही है, वही ज्योति वहा भी जल रही है। ज्योति का स्वभाव एक है। इसलिए इस ज्योति को नुकसान पहुचाना अपने ही स्वभाव को नुकसान पहुचाना है।

'जिसे तू हनन योग्य मानता है वह तू ही है। और जिसे तू आज्ञा मे रखने योग्य मानता है, वह भी तू ही है। इसलिए न तो किसी को आज्ञा मे रख, न किसी को हनन योग्य मान।'

यहा सभी मालिक है, गुलाम होने को कोई भी नहीं है।

थोडा सोचना। तुम तो जिनसे प्रेम करते हो, उन्हे भी गुलाम बना लेते हो। पति पत्नी का मालिक हो जाता है। वह पत्नी से कहता है, मान कि मै परमात्मा हू। पति परमेश्वर हो जाता है। पत्नी यद्यपि लिखती है, 'तुम्हारी दासी' चिट्ठी-पत्री मे, बाकी वह असलियत नहीं है। दिल मे वह भी सोचती है कि तुम्हारी मालकिन। इसीलिए तो घर स्त्री का समझा जाता है, वह घरवाली समझी जाती है। कोई पति को थोडे ही घरवाला कहता है, पत्नी को। मालकियत उसकी है। और मुश्किल है ऐसा पति खोजना जो उसकी मालकियत मानकर न चलता हो। तो ऊपर-ऊपर पति बाजार मे दिखलाता रहता है कि मै मालिक हू, भीतर-भीतर पत्नी रोज उसे जतलाती रहती हैं सुबह से साझ तक, अनेक मौको पर कि मालिक कौन है, ठीक समझ लेना।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर उसके मित्र इकट्ठे थे एक दिन। कुछ झझट हो गई। पत्नी झपटी, जैसी उसकी आदत। तो वह भागकर बिस्तर के नीचे छिप गया। पत्नी झुक आयी और उसने कहा, 'निकल बाहर । निकलो बाहर।' तो मुल्ला और भीतर सरकता गया बिस्तर के। उसने कहा, 'निकलते हो कि नही ।' उसने कहा कि 'आज तय ही हो जाये कि मालिक कौन है। नही निकलते।'

यह कोई तय करने का ढग हुआ। लेकिन जिन्हे हम प्रेम करते है उनको भी हम गुलामी मे बाधते है। इसलिए तो प्रेम से भी लोग ऊब जाते है, प्रेम से भी छुटकारा चाहते है। बड़ी अजीब बात है। यहा इस जगत मे प्रेम भी दुख देता मालूम पड़ता है। क्योकि प्रेम हम कहते है, है कुछ और। नाम हम अच्छे चुनते है, सुदर चुनते है—लेकिन नाम ही सुदर और अच्छे है, भीतर कुछ और है।

तुम जरा गौर करना कि जब तुम किसी को कहते हो कि मुझे तुझसे प्रेम है, तो तुम जरा गौर करना, तुम्हारी असली आकाक्षा क्या है? असली आकाक्षा कुछ और होगी। प्रेम के नाम के नीचे कुछ और छिपा होगा—हिसा छिपी होगी, स्वामित्व का भाव

छिपा होगा, महत्वाकाक्षा छिपी होगी। एक आदमी को कब्जे मे ले लेने की आकाक्षा छिपी होगी। इसीलिए तो जिसको तुम कब्जे मे ले लेते हो, उसमे रस खो जाता है।

किस पति को पत्नी मे रस है? बड़ा रस था जब तक पाया न था। तब तक जान दाव पर लगा देने को तैयार थे। मिलते ही सब हाथ-पैर ढीले हो जाते है, बात खतम हो गई। क्योंकि जो रस था, वह जीतने मे था। जो रस था, वह चुनौती मे था। अब चुनौती दूसरी स्त्रियो से आती है, पत्नी से नही आती। पत्नी तो जीत ली। अब जीते हुए को क्या जीतना। कोई भी रास्ते से गुजरती स्त्री आकर्षण का कारण बन जाती है, क्योकि फिर, फिर कोई विजय की यात्रा के लिए एक निमत्रण मिला। प्रेम के नाम पर जीत की आकाक्षा होगी। जीत यानी अहकार। और फिर प्रेम के नाम पर कब्जियत की दौड़ चलती है, कौन कब्जा करे। कौन असली मालिक है, यह तय करने मे जिदगी खराब हो जाती है। हर छोटी-बडी बात पर झगडा चलता है। कलह, एक-दूसरे को आज्ञा मे रखने की चेष्टा। बाप बेटे से कहता है कि मेरी मानकर चल, क्योंकि मुझे तुझसे प्रेम है। मै जो कहता हू वैसा कर क्योकि मुझे तुझसे प्रेम है। मै जो कहता हू, उससे विपरीत मत करना, क्योकि मुझे तुझसे प्रेम है। मै तेरे हित मे कह रहा हू।

अपना हित साध नही पाये, दूसरे का हित तुम क्या साधोगे? खुद कोरे के कोरे रह गये, बेटे को उपदेश दिये जा रहे हो। बेटा भी सुन लेता है जब तक कमजोर है। वह भी देखता है कि ठहरो थोड़े, जल्दी ही मै भी शक्तिशाली हो जाऊगा। तो अगर बेटे जवान होकर बाप को सताने लगते है, यह कुछ आकस्मिक नही है। हर बाप ने बेटे को, जब वह छोटा था, सताया है—उसके ही हित मे सताया है, मगर सताया है। हित की बाते तो सब व्यर्थ की बकवास है—सताने का मजा ।

बूढे हो जाने पर बेटा उत्तर देने लगता है। जो दिया था, वह वापिस लौटने लगता है।

मैंने सुना है, एक घर मे शादी होकर, पत्नी आयी। तो बूढ़ा बाप, पति का बाप, उसे पसद नहीं पड़ता था। किसी को पसद नही पड़ता। वह चाहती थी कि किसी तरह इस बूढ़े से छुटकारा हो। एक बोझ । लेकिन कोई उपाय न था। कही जाने की कोई जगह न थी। बूढ़े को वहा रहना ही पड़ा। वह बहुत बूढ़ा हो गया था। उसके हाथ भी कपते थे। भोजन करता तो कभी-कभी चम्मच से बाहर सामान भी गिर जाता, कभी चम्मच भी गिर जाती, कभी उसके कपड़ो पर भी खाना गिर जाता। तो पत्नी बहुत नाराज होती थी। आखिर पत्नी ने एक दिन उसे उठा दिया कुर्सी से, खाने की टेबल पर से, कोने मे ले जाकर बिठा दिया और कहा कि चम्मच से अब खाना तुम बद करो। एक बर्तन मे इकट्ठा सब भोजन रख दिया और कहा कि इसी से तुम भोजन करो। उस दिन से बूढ़े को टेबल पर आने की मनाही हो गई। लेकिन बूढा बूढ़ा होता जा रहा था और हाथ-पैर उसके कपते थे और अब और कपने लगे। क्योकि अब घर मे यह स्थिति हो गई कि आदमी की आदमी की तरह गिनती न रही। एक दिन उसके हाथ से बर्तन भी छूट गया, तो उसकी बहू ने कहा कि 'अब बहुत हो गया। अब तुम्हे तो जानवरो जैसी व्यवस्था करनी पड़गी।' तो उसने एक बड़ी बालटी मे उसके सामने भोजन रखना शुरू कर दिया, जैसे गाय-भैस का रखते हो।

ऐसा कुछ दिन चला। इस युवती का छोटा बेटा था। वह यह सब देखता रहता था। एक दिन वह बाहर से, बढ़ई कुछ काम कर रहा था घर मे, लकड़ी के टुकड़े उठा लाया और उन्हे जोड़-जोड़कर कुछ बनाने लगा। तो उसकी मा ने और उसके पिता ने, दोनो टेबल पर बैठे थे, पूछा, 'क्या कर रहे हो?' तो उसने कहा कि मै भी आप दोनो के लिए, जब आप बूढे हो जाएगे, तो यह लकड़ी की बालटी बना रहा हू।

स्वभावत सब चीजे वर्तुल मे घूमती है। जो तुम अपने बाप के साथ कर रहे हो, याद रखना, बेटा तुम्हारे साथ करेगा। ध्यान रखना, जो बेटा तुम्हारे साथ कर रहा है, वह तुमने अपने बाप के साथ किया था। और ध्यान रखना, तुम जो बेटे के साथ अभी कर रहे हो, वह कल लौटायेगा। क्योकि जिदगी मे कोई भी चीज रुकती नही, लौटानी पड़ती है।

सोच-समझकर। प्रेम के नाम पर अधिकार, गुलामी मत थोपना। क्योकि प्रेम तो परम स्वतत्रता है। जिसको प्रेम है, वह अकारण है। वह कुछ भी थोपता नही। प्रेम का अर्थ ही होता है दूसरे को दूसरा होने देने की स्वतत्रता। दूसरा जैसा है उसको वैसा ही अगीकार कर लेने की क्षमता प्रेम है। न उसे बदलना है—बड़े-बड़े आदर्शो के नाम पर भी नही, क्योकि सब आदर्श मालकियत करने के ढग है। तुम बेटे से कहते हो, यह आदत गलत है, इसे छोड़ो। अब तुम आदत के बहाने बेटे की गर्दन पर

कब्जा कर रहे हो। आदत अगर गलत है तो निवेदन कर दो। आदत अगर गलत है तो जतला दो। लेकिन इसके बहाने मालकियत मत करो। इतना ही कहो कि मुझे गलत दिखाई पड़ती है आदत, फिर तुम्हारी मर्जी। फिर तुम अपने मालिक हो। फिर अगर तुमने गलत को भी चुना, तो चुनो।

कल रात मैं एक आधुनिक विचारक, 'साज' की एक किताब पढ़ रहा था। उसमे कुछ परिभाषाए दी है। उसमे जवान, प्रौढ आदमी की परिभाषा भी है। उसने लिखा है प्रौढ़ वह आदमी है, जिसे ठीक करने की तो आजादी है ही, गलत करने की भी आजादी है। अगर गलत करने की आजादी न हो तो आजादी क्या हुई? अगर ठीक ही करने की स्वतत्रता हो तो यह तो स्वतत्रता शब्द का बड़ा दुरुपयोग हुआ।

प्रेम स्वतत्र करता है। निश्चित, सावधान करता है, कि यहा-यहा मै गया हू और मैंने गड्ढे पाए, तुम सोच-समझ कर जाना, सम्हलकर जाना। अगर जाने का मन हो तो मेरा अनुभव ले लो, मेरे अनुभव के बाद जाना। जाने से नही रोकता हू, लेकिन मै गिर गया था, उसकी खबर तुम्हे दे देता हू। हो सकता है, तुम न भी गिरो। हो सकता है, तुम सम्हलकर जाओ और बचकर निकल आओ। लेकिन मै जल गया था। तो इतना तुम्हे कह देता हू कि वहा जलन है, फिर तुम सोचकर जाना। न जाओ, तुम्हारी मर्जी। जाओ तुम्हारी मर्जी।

अपना सत्य निवेदन कर देना पर्याप्त है। लेकिन गर्दन पर हम हावी हो जाते है। हम आदर्शों का उपयोग भी कारागृहो की तरह करते है, जजीरो की तरह करते है।

महावीर कहते है

'जिसे तू हनन योग्य मानता है, वह तू ही है। और जिसे तू आज्ञा मे रखने योग्य मानता है वह भी तू ही है।'

एक बड़ी महत्वपूर्ण बात इस सूत्र से निकलती है। अगर तुमने किसी को गुलाम बनाने की चेष्टा की तो वही व्यक्ति तुम्हे भी गुलाम बनाने की चेष्टा करेगा। क्योकि जिसे तुम आज्ञा मे रखना चाहते हो, वह तुम ही हो। भूल के किसी को गुलाम मत बनाना, अन्यथा तुम गुलाम बन जाओगे। और अगर तुम गुलाम बन गए हो तो खोजबीन करना, तुम पाओगे कि गुलाम बनाने की आकाक्षा का ही यह परिणाम है। परिपूर्ण स्वस्थ आदमी वही है, जो न तो किसी का गुलाम है और न किसी को गुलाम बनाना चाहता है। क्योकि जब तक गुलाम बनाने की चाह है तब तक गुलामी आती रहेगी।

ठीक तुम जैसे ही लोग है सब तरफ। जो तुम चाहते हो, वही वे भी चाहते है। जो तुम नही चाहते, वही वे भी नही चाहते। इस सत्य को ठीक से समझना।

जीसस से कोई पूछता है, एक युवक निकोदेमस, कि मै जल्दी मे हू, मुझे कुछ छोटा-सा सूत्र दे दे जो मेरा जीवन बदल दे। तो जीसस ने कहा, दूसरे के साथ वह मत करना, जो तुम चाहते हो, दूसरा तुम्हारे साथ न करे। उन्होने कहा, इतना काफी है। इतने से सारा धर्म निकल आता है। दूसरे के साथ वह मत करना, जो तुम नही चाहते कि दूसरा तुम्हारे साथ करे। बस काफी है।

यह एक वचन ही बाइबिल की पूरी कथा है, पूरा सार है। महावीर का भी पूरा सार यही है। वे समझा रहे है कि तुम्हे यह बात खयाल मे आ जाये कि दूसरा 'दूसरा' नही है—तुम्हारे जैसा ही चैतन्य, तुम्हारी जैसी ही आत्मा, ठीक तुम्हारे ही जैसे सुख और दुख का आकाक्षी, ठीक तुम जैसा ही मोक्ष का खोजी, स्वतत्रता का दीवाना है।

इतना खयाल रखना। इतना खयाल रखकर अगर चले तो न तो तुम किसी को बाधोगे और न तुम बधोगे।

बाधनेवाला भी बध जाता है। कारागृह का मालिक भी कारागृह को छोड़कर थोड़े ही जा सकता है। कैदी भीतर होगे, मालिक बाहर होगा—लेकिन बाहर जो है वह भी खड़ा रहता है कि कैदी भाग न जाये। उसे भी कैदियो कि साथ कैदी ही हो जाना पड़ता है।

'जिनो ने, जाग्रत पुरुषो ने कहा है, राग आदि की अनुत्पत्ति अहिसा, और उसकी उत्पत्ति हिसा है।'

'जागे हुए पुरुषो ने कहा है, राग आदि की उत्पत्ति हिसा और अनुत्पत्ति अहिसा है।'

यह अहिसा का बड़ा सूक्ष्मतम विश्लेषण है। दूसरे को चोट करने जाओ, यह तो दूर की बात है। यह तो फिर विचार का स्थूल होने की बात है। तुम्हारे मन मे राग उठा तभी हिसा उठ जाती है। फिर तुम करो या न करो, यह सवाल नही है। तुम्हारे मन मे जरा-सा राग उठा तुम राह से जाते थे, एक बड़ा मकान देखा, तुम्हारे मन मे हुआ 'ऐसा मकान मै भी बनाऊ।' हिसा हो गई। हिसा का बीज पड़ गया, क्योकि अब इस बड़े मकान

को बनाने के लिए धन चाहिए, इस बडे मकान को बनाने के लिए दूसरो से धन छीनना पड़ेगा। इस बड़े मकान को बनाने के लिए अब प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी। इस बड़े मकान को बनाने के लिए ईमानदारी, बेईमानी, सब मार्गो से खोजबीन करनी पडेगी—जैसे भी। इस बड़े मकान की आकाक्षा के उठते ही तुम्हारे भीतर हिसा का बीज पड़ गया। देर लगेगी वृक्ष बनने मे, लेकिन अगर बचना हो वृक्ष से तो बीज से ही बच जाना।

इसलिए महावीर कहते है, राग की उत्पत्ति—हिसा। ऐसा मत सोचना कि किसी की गर्दन काटोगे तब हिसा।

यही अपराध और पाप का भेद है। अपराध—जब पाप वास्तविक होकर प्रगट हो जाता है। जब पाप कानून की पकड़ मे आ जाता है तो अपराध। और जब तक पाप कानून की पकड़ मे नही आता तभी तक पाप। तुम अपने मन मे बैठे अगर दुनियाभर को भी मारने का विचार करते रहो, तो कोई अदालत तुम्हे दड नही दे सकती। पुलिस नही आ सकती पकडने कि तुम बहुत हिसा के विचार कर रहे हो। विचार की स्वतत्रता है तुम्हे। विचार को व्यक्त मत करना।

कानून इतनी ही फिक्र करता है कि तुम जो सोचते हो, करना मत, किया तो पकडे गये। अगर तुम सिर्फ सोचते रहो, तुम्हारी मौज। लेकिन धर्म इससे गहरे जाता है। धर्म कहता है, तुम सोचना मत। क्योकि जो तुमने सोचा, कितनी देर बचोगे करने से? विचार वस्तु बन जाता है। जो भाव है, वह कल घना होकर बरसेगा। आज जो बिलकुल छोटा-सा मालूम पडता था, वह कल बड़ा हो जायेगा, वह फैलता रहेगा। आज कही भी पता न चलता था, तुम बिलकुल शात बैठे थे।

महावीर के जीवन मे उल्लेख है कि उनका एक शिष्य था प्रसेनचद्र। वह सम्राट था पहले, फिर सन्यस्त हो गया, नग्न मुनि हो गया।

एक दिन प्रसेनचद्र का एक दूसरा मित्र बिंबिसार महावीर के दर्शन को आया। वह भी सम्राट था। उसने आकर महावीर को पूछा कि राह मे प्रसेनचद्र को खड़े देखा एक गुफा मे। धन्यभागी है प्रसेनचद्र! मेरा बचपन का साथी है। वह मुनित्व को उपलब्ध हो गया। वह दिगबर मुनि हो गया। एक मै हू अभागा, अभी भी सड-गल रहा हू ससार मे। एक प्रश्न मेरे मन मे उठा है, वह आप से पूछना है। जब मै प्रसेनचद्र के पास से गुजर रहा था और मेरे मन मे यह भाव उठा कि धन्यभागी है प्रसेनचद्र—मेरे साथ ही बड़ा हुआ, साथ हम पढ़े और लिखे और खेले और ये इतने बडे आतरिक साम्राज्य का मालिक हो गया और मै कुछ भी न कर पाया, मै बाहर की व्यर्थ की चीजे जुटाने मे लगा रहा, मेरी जिदगी यू ही गई—तो तब मेरे मन मे सवाल उठा था कि अगर प्रसेनचद्र की इसी समय मृत्यु हो जाये तो यह किस स्वर्ग मे या मोक्ष मे जन्मेगा, वह मै आप से पूछता हू।

महावीर ने कहा, उस समय अगर प्रसेनचद्र की मृत्यु हो जाती तो वह सातवे नर्क मे पडता।

बिबिसार ने कहा, आप क्या कहते है? सातवे नर्क मे? तो हमारी क्या गति होगी? वह सब छोड़कर खड़ा है।

महावीर ने कहा कि तुम आए, उसके पहले तुम्हारा फौज-फाटा आया, तुम्हारे वजीर निकले, सेनापति निकले, सिपाही निकले, उन सब ने भी प्रसेनचद्र को देखा। तुम्हारे दो वजीर उसके पास खड़े होकर बात करने लगे कि ये देखो, बुद्धू की तरह यहा खडा है। यह प्रसेनचद्र है। यह बडा सम्राट था। अगर आज लगा रहता अपने काम मे तो सारी जमीन का मालिक हो जाता। यहा बुद्धू की तरह खड़ा है नग्न। और ये अपने वजीरो के ऊपर सब छोड आया है। इसके बेटे छोटे है और वजीर सब लूटे ले रहे है। जब तक इसके बेटे बड़े होगे तब तक खजाने मे कुछ बचेगा ही नही।

उन दोनो वजीरो ने ऐसी बात की, प्रसेनचद्र ने सुनी। वह आख बद किये खड़ा था। लेकिन उसने सुनी। सुनते ही क्रोध आ गया। उसने कहा, 'अच्छा। तो मेरे वजीर समझते क्या है, क्या मै मर गया हू। मै अभी जिदा हू।' क्रोध मे, जैसी उसकी पुरानी आदत थी, हाथ उसका तलवार पर चला गया। तलवार अब नही थी, अब तो नगा खड़ा था। लेकिन पुरानी आदत । तलवार पर हाथ चला गया। जब तलवार पर उसका हाथ गया तो उसकी पुरानी एक और आदत भी थी कि जब भी वह बहुत क्रोध मे आ जाता और तलवार पर उसका हाथ जाता तो दूसरे हाथ से वह अपना मुकुट सम्हालता कि कही वह गिर न जाये क्रोध मे। अब मुकुट भी न था। दूसरा हाथ उसने मुकुट सम्हालने के लिए रखा, वहा कुछ भी न था। अपने ही माथे को छूकर उसे याद आयी कि अरे, यह मै क्या कर रहा हू। तत्क्षण उसने अपना तनाव छोड़ दिया, हिसा का भाव छोड दिया।

तो महावीर ने कहा, जब तुम गुजर रहे थे उसके पास से, तब उसका हाथ तलवार पर था। मरता तो सातवे नर्क जाता। लेकिन अब अगर मरे तो मोक्ष उसका है। घडी भर का ही फासला हुआ है। बाहर से देखने पर प्रसेनचद्र अब भी वैसा है। बाहर तो कोई भी फर्क न पड़ा, लेकिन भीतर की भाव-दशा बदल गई।

तुम्हारा होना, तुम्हारा भीतर, तुम्हारा आतरिक तत्व है। भाव तुम्हे भीतर बदलते है। विचार तुम्हे भीतर बदलते है। बाहर तो जब तुम विचारो को लाते हो तो समाज शुरू होता है। समाज जहा शुरू होता है वहा कानून शुरू होता है। लेकिन तुम जहा हो, वहा पाप और पुण्य का हिसाब है, वहा धर्म का हिसाब है।

'राग आदि की उत्पत्ति हिसा, अनुत्पत्ति अहिसा है।'

जान भी जिदगी पे देते है
जिदगी काबिले-यकी भी नही।
मै हू वोह जिससे चर्ख दबता था
अब तो गरदानती जमी भी नही।

आज नही कल, यह शरीर तो गिरेगा, मिट्टी मे मिल जायेगा। मै हू वोह जिससे चर्ख दबता था—कभी आकाश दबता था। अब तो गरदानती जमी भी नही—फिर जमीन भी कोई फिक्र न करेगी।

जान भी जिदगी पे देते है।
जिदगी काबिले-यकी भी नही।

और जिस जिदगी पर हम मरने-मारने को उतारू हो जाते है, वह जिदगी पानी का एक बबूला है—अब मिटा तब मिटा, एक सपने मे खीची गई लकीर है—खिची भी नही, सिर्फ खिचे होने का खयाल है।

जिस जिदगी के लिए हम मरने-मारने को उतारू हो जाते है उस जिदगी का मूल्य कितना है? जिस दिन व्यक्ति को अपने जीवन का मूल्य दिखाई पड़ना शुरू होता है कि इस जीवन का कोई भी मूल्य नही है, मिट्टी मे मिट्टी गिर जायेगी, तो मै व्यर्थ इस मिट्टी को बचाने के लिए जो उपाय करता हू, राग-द्वेष करता हू, उनका कोई सार नहीं है। जीवन की असारता दिखाई पड जाये तो सब राग-द्वेष की असारता दिखाई पड़ जाती है। उस असारता के अनुभव का नाम ही अहिसा है।

लेकिन हम झूठ मे ऐसे रगे-पगे है, कि जहा बार-बार आशा टूटती है वहा भी आशा किये चले जाते है, जहा कभी कुछ नही मिलता वहा भी खोजे चले जाते है।

एक सूफी फकीर के घर एक रात चोर घुस गए। सूफी सोया था, उठा और दीया जला लिया उसने। चोर बडे घबड़ा गए। उसने कहा, 'घबड़ाओ मत। मै तुम्हारा साथ दूगा।'

उन्होने कहा, 'मतलब? तुम पागल तो नही हो? होश मे हो? हम चोर है।'

उसने कहा, 'तुम फिक्र छोड़ो। इस घर मे मै तीस साल से रह रहा हू और खोज रहा हू कि कुछ मिल जाये, मिलता नहीं। मै तुम्हे साथ दूगा। अगर तुम खोज लो, आधा-आधा बाट लेगे। तो मै दीया जलाकर आया, भाग मत जाना।'

जिस जिदगी मे तुम रह रहे हो जन्मो से, उसमे कुछ पाया है? लेकिन उम्मीद नही छूटती। शायद मिले कल, ऐसे आशा के सहारे बधे जीते हो। अनुभव पर सदा तुम्हारी आशा जीत जाती है। यही जीवन का सबसे बडा रोग है अनुभव पर आशा की जीत। अनुभव तो कहता है, कुछ भी नही है। अनुभव तो हजार बार कह चुका कि कुछ भी नही है। अनुभव से तो सदा हाथ मे राख लगी है। लेकिन आशा कहती है, कौन जाने।

उम्मीद तो बध जाती, तस्कीन तो हो जाती
वादा न वफा करते, वादा तो किया होता।

उम्मीद तो बध जाती, तस्कीन तो हो जाती—एक भरोसा तो आ जाता, एक आशा तो बध जाती। वादा न वफा करते—कोई जरूरत न थी कि जो वायदा किया था वह पूरा करते। वादा तो किया होता।

आदमी इतने से ही जीये चला जाता है 'कहा तो होता। आशा तो बधा दी होती। सात्वना तो रखवा देते।'

तुमने कभी गौर किया? तुम उन चीजो पर भी भरोसा किये जाते हो जिनको तुम जानते हो कुछ परिणाम होने का नही। बहुत बार जान चुके हो कि कुछ मिलता नहीं। कितनी बार क्रोध किया। कितनी बार कामवासना मे जले, डूबे, क्या मिला? हाथ खाली के खाली रहे। लेकिन फिर भी ।

हजार बार भी वादा वफा न हो लेकिन
मै उनकी राह मे आखे बिछा के देख तो लू।

—न आये, कोई हर्जा नहीं। हजार बार न आये, कोई हर्जा नही। एक हजार एकवी बार शायद आ जाये। मै उनकी राह मे आखे बिछा के देख तो लू।

ऐसे ही सब बैठे है अपने दरवाजो पर, राह मे आखे बिछाए, उसकी, जो न कभी आया है और न कभी आएगा। बद करो दरवाजे। उठो, बहुत देख चुके यह राह। तुम जिसकी राह देख रहे हो, वह है ही नही। उसके आने का कोई सवाल नही है।

वासनाओ से जिसने आनद के आने की राह देखी है वह गलत की राह देख रहा है, जो आ ही नही सकता। वासना का स्वभाव आनद नही। सिर्फ आशा बधाती है। वासना ढपोरशख है।

तुमने कहानी सुनी है? एक आदमी ने शिव की बड़ी भक्ति की। जब उसकी भक्ति पूरी हो गई, शिव ने कहा, तू वरदान माग ले। उस आदमी ने कहा, 'मै क्या मागू। आप ही जो उचित हो, दे दे।' शिव ने उठाकर अपना शख दे दिया और कहा, यह शख है, इससे तू जो भी मागेगा मिल जायेगा। तू कहेगा कि एक मकान मिल जाये, एक मकान मिल जायेगा। तू कहेगा, धन की वर्षा हो जये, धन की वर्षा हो जायेगी।

उस आदमी ने तत्क्षण—शिव को तो भूल ही गया—प्रयोग किया कि हीरे-जवाहरात बरस जाए, बरस गए। घर, आगन, द्वार सब भर गए। यह खबर धीरे-धीरे आसपास फैलने लगी। क्योकि अचानक वह आदमी ऐसी शान से रहने लगा कि दूर-दूर तक उसकी सुगध फैल गई। एक सन्यासी उसके दर्शन को आया। वह रात ठहरा। सन्यासी ने कहा कि मुझे पता है कि तुम्हे शख मिल गया है, क्योकि मुझे भी मिल गया है। मैने भी शिव की भक्ति की थी। मगर तुम्हारा शख मुझे पता नही, मेरा शख तो महाशख है। इससे जितना मागो, दुगना देता है। कहो लाख मिल जाये दो लाख ।

तो उसने कहा, देखे तुम्हारा शख। लोभ बढ़ा। इतना सब मिल रहा था उसे, लेकिन फिर भी लोभ पकड़ा। उसने कहा, देखे तुम्हारा शख। उस सन्यासी ने शख दिखलाया और सन्यासी ने शख से कहा कि एक करोड रुपये चाहिए। शख बोला, एक क्या करोग, दो ले लो। वह भक्त तो कहा कि बस ठीक है। आप तो संन्यासी है, आपको क्या करना। छोटे शख से भी काम चल जायेगा, छोटा मेरे पास है। छोटा तो उसने सन्यासी को दे दिया। सन्यासी तो भाग गया उसी रात। उसने सुबह उठते ही से पूजा-प्रार्थना की, अपने महाशख को निकाला और कहा, 'हो जाये करोड़ रुपयो की वर्षा।' शख बोला, दो करोड़ की कर दू? मगर हुआ कुछ भी नहीं। उस आदमी ने कहा, 'अच्छा दो करोड़ की सही।' उसने कहा, अरे, चार की कर दू? मगर हुआ कुछ नहीं। वह आदमी थोडा घबड़ाया। उसने कहा कि भई करते क्यो नही चार ही सही। उसने कहा, 'अरे, आठ की कर दे न ।' ऐसा ही ढपोरशख था वह। उससे कुछ हुआ नहीं, वह दुगना करता जाता ।

वासना ढपोरशख है। राग ढपोरशख है। वह तुमसे कहता है कि होगा, होगा, जितना माग रहे हो उससे ज्यादा होगा। तुम्हारे सपने से भी बड़ा सपना पूरा कर के दिखला दूगा। क्या तुमने खाक आशा की है। जो तुम्हे दूगा, तुम चकित हो जाओगे। तुमने इसकी कभी आशा भी नही की थी, सोचा भी न था।

मगर ये सब बाते है। अनुभव तो कुछ और कहता है। अनुभव तो कहता है, न दो की वर्षा होती है, न चार की वर्षा होती है, न आठ की वर्षा होती है। लेकिन आशा बड़ी होती चली जाती है। आशा कहे चली जाती है, 'अरे। और कर दू। तुम घबडा क्यो रहे हो? अगर इतने दिन बेकार गये, कोई फिक्र नही, आगे देखो, भविष्य मे देखो। अतीत का हिसाब मत रखो। सूरज ऊगेगा। चदा चमकेगा। जग आगे देखो।'

आशा तुम्हे आगे खीचे लिये चली जाती है।

इसलिए महावीर कहते है, 'राग की उत्पत्ति ।' जहा से आशा का जन्म होता है, वही समझने की जरूरत है, वही जागने की जरूरत है। वही आशा को मत सहारा देना। कहना, 'ठीक ढपोरशख, तुझे जो कहना हो, कह। हम कुछ मागते ही नही। न हम लाख मागते न दो लाख मागते। हमने माग ही छोड दी।' थोड़े दिन मे तुम पाओगे कि जब तुम न मागोगे तो ढपोरशख दुगना न कर पाएगा। क्योकि वह दुगना तभी करता है, जब तुम मागते हो। तुम न मागो तो वह चुप हो जाएगा। तुम न मागो तो वासना आशा न बधाएगी। तुम मागते हो, इसलिए बधाती है। भूल तुम्हारे मागने मे हो जाती है। तुमने मागा कि तुम आशा के चक्कर मे पडे। आशा कहती है, दुगना दिला देगे।

जड से महावीर पकड़ते है।

'हिसा करने के अध्यवसाय से ही कर्म का बध होता है। फिर कोई जीव मरे या न मरे, जीवो के कर्म-बध का यही स्वरूप है।'

यह बड़ा बहुमूल्य सूत्र है। इस सूत्र को गीता के परिप्रेक्ष्य मे समझने की जरूरत है, क्योकि गीता का सारा सदेश यही है। कृष्ण अर्जुन को कहते है, न कोई मरता है न कोई मारता है, तो तू

बेफिक्री से मार। क्योंकि आत्मा तो अमर है। न हन्यते हन्यमाने शरीरे। शरीर के मारने से वह नही मरती। तू फिक्र छोड़। यह तो मिट्टी है, गिरेगी, गिर जायेगी। लेकिन जो इसके भीतर छिपा है, वह तो रहेगा और रहेगा।

कृष्ण बिलकुल ठीक कह रहे है, आत्मा मरती नही। महावीर कुछ और बात प्रवेश करते है। महावीर कहते है, हिसा करने के अध्यवसाय से हिसा करने के विचार से, भाव से, कर्म का बध होता है। फिर कोई जीव मरे या न मरे । किसी के मरने से हिंसा नही होती, तुमने मारना चाहा, इससे हिसा होती है।

कृष्ण बिलकुल ठीक कहते है कि काट डालो, कोई मरेगा नही, क्योकि आत्मा मरणधर्मा नही है। लेकिन महावीर कहते है, तुमने काट डालना चाहा। कटा कोई या नही कटा, यह सवाल नहीं है, तुमने काटना चाहा, तुम्हारी उस चाह मे हिसा है। फिर कोई मरा न मरा, यह बात अप्रासगिक है। तुमने मारना चाहा था, तुम फस गए। तुम्हारी मारने की चाह ने बीज बो दिया। तुम दुख पाओगे। तुम्हे दुख मिलेगा। इसलिए नही कि तुमने लोग मारे, क्योकि लोग तो मरे ही नही, लेकिन तुमने मारना चाहे। वस्तुत हिसा घटती है या नहीं घटती है, यह सवाल नहीं है। गहरा सवाल यही है कि तुम्हारी आकाक्षा मारने की थी। कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि तुम्हारी आकाक्षा कुछ थी, हो कुछ जाता है।

ऐसा हुआ, चीन मे कोई पाच हजार साल पहले इस तरह अकुपचर की विद्या का जन्म हुआ। एक आदमी को जिदगी भर से सिरदर्द था। वह बड़ा तकलीफ मे पडा था। वह बडा परेशान था। सब इलाज कर चुका था, कोई इलाज नही होता था। कोई दवा नहीं मिलती थी। कोई चिकित्सक ठीक नहीं कर पाता था। पत्थर के बोझ की तरह उसका सिर चौबीस घटे भारी था। और जैसे बिजली कौधती हो, ऐसे उसके सिर मे तडफन थी। वह न बैठ सकता था, न काम कर सकता था। जीना उसका दूभर हो गया था। आत्महत्या करने का उपाय किया था तो लोगो ने करने न दिया। कोई दुश्मन था उसका, किसी से झगड़ा हो गया, उस दुश्मन ने एक तीर उसे मारा। वह तीर उसके पैर मे लगा और पैर मे तीर के लगते ही सिरदर्द चला गया। वह चिकित्सको के पास गया। उसने कहा, 'यह हुआ क्या? यह तीर पैर मे लगा और उसी क्षण दर्द चला गया।' ऐसे अकुपचर का जन्म हुआ। तब लोगो ने खोजबीन करनी शुरू की कि ऐसा मालूम पड़ता है कि पैर मे लगने से सिर मे कोई परिणाम हुआ है। तो फिर सिरदर्द वाले लोगो को उसी पैर के स्थान पर तीर चुभाने से फायदा देखा गया। और सिरदर्द के बीमार भी ठीक हो गए उसी जगह तीर चुभाने से। तो फिर बिदु खोजे गए अकुपचर के, सात सौ बिदु शरीर मे। तो कुछ बिदु है जिनको दबाने से कुछ बीमारिया ठीक हो जाती है। कुछ बिदु है जिनको दबाने से कुछ और बीमारिया ठीक हो जाती है। तो शरीर विद्युत का मडल है। उसमे एक तरफ से विद्युत को दबाने से कही दूसरी तरफ विद्युत मे परिणाम होते है। बड़ा रहस्यमय है। लेकिन अकुपचर काम करता है।

अब सवाल यह है कि जिस आदमी ने तीर मारा था, उसने पाप किया या पुण्य? क्योकि जीवनभर का सिरदर्द चला गया। अगर हम फल को देखे, तब तो पुण्य किया। लेकिन अगर उसके भाव को देखे, तो तो पाप ही है। क्योकि वह तो मारना चाहता था। वह कोई इसका सिरदर्द ठीक करना नही चाहता था। उसने तो मारना चाहा था। इसलिए उसने तो हिसा की। यह बात अप्रासगिक है कि यह आदमी ठीक हो गया। इससे उसका कोई सबध नही है। यह तो दुर्घटना है।

तो तुम्हारा कृत्य फल के द्वारा निर्धारित नही होता कि पाप है या पुण्य है, तुम्हारे अभिप्राय के द्वारा निर्धारित होता है, इन्टेशन। कभी ऐसा भी हो सकता है, बुरे अभिप्राय से ठीक घट जाये, और कभी ऐसा भी हो सकता है कि ठीक अभिप्राय से बुरा घट जाये। लेकिन फल से निर्णय नही होता, निर्णय तुम्हारे अभिप्राय से होता है—तुम्हारे अतर्तम मे तुमने क्या चाहा था। कभी ऐसा भी हो सकता है कि तुम कुछ भला करने गए थे और बुरा हो गया। तो भी वह पाप नही है। कभी तुम बुरा करने गए थे और भला हो गया, तो भी वह पाप है।

महावीर का विश्लेषण फल पर नही ले जाता। कृष्ण और महावीर दोनो राजी है कि आत्मा मरती नहीं। फिर भी महावीर कहते है, मारने की आकाक्षा, मारने की आकाक्षा मे हिसा है। मारने की आकाक्षा ही बधन का कारण है।

धन नही बाधता। धन तुम्हारे चारो तरफ पड़ा रहे, लेकिन धन को पकडने की, परिग्रह की आकाक्षा बाधती है। पत्नी, स्त्री नही बाधती, भोगने की कामना बाधती है। ऐसा ठीक से देखोगे तो सारा जाल भीतर है, बाहर नहीं।

लोग मुझसे कहते है कि ससार छोड़ना है। जैसे ससार कहीं बाहर है! ससार से उनका मतलब है—दुकान, बाजार, पत्नी, बच्चे—इनको छोड़ना है। ससार भीतर है। ससार तुम्हारे अभिप्राय मे है। ससार तुम्हारी कामना और वासना मे है।

'हिसा करने के अध्यवसाय से ही कर्म का बध होता है। फिर कोई जीव मरे या न मरे, जीवो के कर्म-बध का यही स्वरूप है।'

आशा के स्वभाव को समझने की कोशिश करो। अनुभव को जिताओ, आशा को हराओ। जो तुमने जीवन के अनुभव से जाना है उसका भरोसा करो। जो तुम्हारा मन फैलाव करता है, सपनो के, उनका भरोसा मत करो।

यू तो नही कहता कि सचमुच करो इसाफ
झूठी भी तसल्ली हो तो जीता ही रहू मै।

तुम भी झूठी तसल्लियो मे जी रहे हो। तुम दूसरो से झूठी तसल्ली मागते हो।

पश्चिम से जब लोग पूरब आते है तो बडे हैरान होते है। क्योकि पूरब के आदमी झूठी तसल्लिया देने मे बड़े कुशल है। यहा इस मुल्क मे अगर तुम किसी के पास जाओ और कहो कि फला काम करना है, आप करवा देगे। वह कहता है, बिलकुल करवा देगे। पश्चिम मे ऐसा नही है। अगर वह करवा सकेगा तो ही कहेगा। फिर भी वह शर्त के साथ कहेगा कि मै कोशिश करूगा। होगा कि नही होगा, यह मुश्किल है। मै अपनी तरफ से कोशिश करूगा। अगर नही करवा सकेगा तो स्पष्ट 'नही' कहेगा कि नही, यह मुझसे न हो सकेगा, क्षमा करे। पूरब मे ऐसा नहीं है। तुम किसी से भी कहो, वह कहता है, हा करवा देगे। चाहे वह करवा सकता हो, चाहे उसकी क्षमता मे हो चाहे न हो, लेकिन वह यह कहता है कि क्यो नाहक तुम्हे दुखी करना। जब होगा तब होगा, अभी तो तसल्ली।

जब पश्चिम से लोग पूरब आते है, धधे और व्यवसाय के लिए, तो वे बड़े हैरान होते हैं। उनको समझ मे ही नही आता कि किसकी माने, किसकी न माने, क्योकि सभी 'हा' कहते है। 'नहीं' तो कोई मुश्किल से कहता है। 'नही' तो जैसे अशिष्टाचार है।

तुमने भी कभी खयाल किया? कोई तुम्हारे पास आता है कि नौकरी चाहिए, तुम कहते हो कि हा, कोशिश करेगे, दिलवा देगे। ऐसा कहते वक्त तुम क्षणभर को भी सोच नही रहे हो कि दिलवाने की कोई तुम्हारी आकाक्षा है। तुम टाल रहे हो कि झझट मिटाओ, जाओ। और तुम कह रहे हो कि ठीक है मलहम-पट्टी कर दी, अब तुम आशा मे जीयो।

पूरब मे यही शिष्टाचार है, सात्वना बधा दो। कोई मर गया, तुम पहुच जाते हो कहने कि कोई हर्जा नही, आत्मा तो अमर है। तुम्हे पता है। लेकिन तुम कहते हो, पता हो या न हो, अब यह तो कोई दुख मे पड़ा है, इसको तो सात्वना दो।

यू तो नही कहता कि सचमुच करो इसाफ
झूठी भी तसल्ली हो तो जीता ही रहू मै।

और ऐसी झूठी तसल्ली के धागे पर लोग जीते रहते है। यही तुम्हारे साधु-सन्यासी कर रहे है। वे तुम्हे झूठी तसल्ली बधाए जाते है। तुम उनके पास जाओ और तुम कहो कि मन मे बड़ी अशाति है, वह कहता है, 'कोई फिक्र न करो। यह राम-राम जपना, सब ठीक हो जायेगा।' अब राम-राम जपने से कोई भी सबध अशाति का नही है। अशाति तुम पैदा कर रहे हो, राम का इसमे कुछ हाथ नहीं है। अशाति तुम पैदा किये चले जाओगे, राम-राम भी जपोगे, क्या होगा? थोडी और अशाति बढ़ जाएगी, बस। उसने तुम्हारे मूल कारण को न पकड़ा। मूल कारण पकडना झझट की बात है, मुश्किल बात है, कठिन बात है। शायद उसको भी पता न हो, लेकिन तुम्हारी तसल्ली उसने बधा दी। तुम भी प्रसन्न लौटे। तुम भी आनदित हुए कि चलो। तुम गए कि आशीर्वाद दे दो कि शात हो जाये चित्त।

भारत मे साधु है, जो तैयार बैठे है, हाथ तैयार ही रखते है वे आशीर्वाद देने को। वे कहते है, यह लो आशीर्वाद। न कुछ लेना है, न कुछ देना है। न उनका कुछ हर्जा हो रहा है और न तुम्हे कुछ मिल रहा है, लेकिन बात हो गई, तसल्ली बध गई। तुम अपने घर लौट गए, जैसे के तैसे, जैसे आये थे। थोड़ी और आशा मजबूत लेकर लौट गए कि अब सब ठीक हो जायेगा।

अगर तुम ईमानदारी से जीवन का रूपातरण चाहते हो तो उनके पास जाना जो तसल्ली बधाते न हो, जो तुम्हारे जीवन का निदान सीधा कर के रख देते हो सामने—चाहे चोट भी लगती हो, चाहे तुम्हारा घाव भी छू जाता हो और तुम्हारी मलहम-पट्टी उखड जाती हो, चाहे तुम्हारे नासूर से मवाद निकल आती हो। लेकिन उनके पास जाना जो तसल्ली बधाने के आदी नही है, जो तुम्हारे जीवन के सत्य को वैसा का वैसा रख देते है जैसा है। पीड़ा होती

है। लेकिन जीवन-रूपातरण मे पीड़ा छुपी है। और अगर तुमने उनकी बात सुनी और समझने की कोशिश की और जीवन मे वैसा आचरण और व्यवहार किया तो तुम बदल जाओगे। तसल्ली उन्होने नहीं बधाई, लेकिन तुम्हारे जीवन को क्राति दे देगे वे। लेकिन तुम मुफ्त तसल्ली मे घूमते हो। फिर एक साधु चुक जाता है, क्योकि कई दफे तसल्ली बधा चुका, अब तुम्हे उसमे भरोसा नही रहा, फिर तुम दूसरा साधु खोज लेते हो। साधुओ की कोई कमी नही है। जिदगी बडी छोटी है, साधु बहुत है। तसल्ली, तसल्ली, तसल्ली। तुम घूमते फिरते हो।

बद करो। जीवन के सत्य को पकड़ो। जीवन का सत्य सुगम नही है, सात्वना नही है। जीवन का सत्य कठोर है। काटा चुभा है तुम्हारी छाती मे, उसे निकालने मे पीड़ा होगी। तुम चीखोगे, चिल्लाओगे। लेकिन वह चीख-चिल्लाहट जरूरी है। और तुम्हे जो उस पीड़ा से गुजारने मे साथी हो सके, उसे मित्र मानना।

सदगुरु तसल्ली नही देता। सदगुरु सत्य देता है, फिर चाहे कितना ही कड़वा हो। आखिर वैद्य अगर यह सोचने लगे कि मीठी ही दवा देनी है, तो चिकित्सा न होगी, मरीज चाहे प्रसन्न हो जाये क्षणभर को। शरबत पिला दे मरीज को, लेकिन इससे बीमारी ठीक न होगी, मरीज प्रसन्न होकर घर लौट जायेगा, लेकिन बीमारी और बढ़ जायेगी। नही, कड़वी दवा भी देनी पडती है, जहर जैसी दवा भी देनी पडती है। मरीज नाराज भी होता है, तो भी देनी पड़ती है।

आशा ने सारे ससार को भटकाया हुआ है। और आशाए मत खोजो। जहा आशा टूटती हो, जहा तसल्ली उखडती हो, जहा तुम्हारे सात्वना के सब जाल बिखरते हो, जहा तुम्हारा सारा व्यक्तित्व जो अब तक झूठ पर खड़ा था तहस-नहस होकर खडहर हो जाता हो—वहा जाना। दुर्धर्ष है मार्ग।

लोग कहते है मौत से बदतर है इतजार
मेरी तमाम उम्र कटी इतजार मे

सभी की कटती है। तुम कर क्या रहे हो सिवाय इतजार के?

सैमुअल बैकेट का एक छोटा नाटक है—वेटिग फार गोडोड, गोडोड की प्रतीक्षा। यह गोडोड कौन है? किसी ने सैमुअल बैकेट को पूछा कि आखिर यह गोडोड कौन है। क्योकि पूरा नाटक पढ़ जाओ, पता ही नहीं चलता कि गोडोड कौन है। सैमुअल बैकेट ने कहा कि अगर मुझे ही पता होता तो मैने नाटक मे लिख दिया होता। मुझे भी पता नही, गोडोड कौन है।

लोग प्रतीक्षा कर रहे है। ठीक से पूछो, किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? उनको भी पता नही है। गोडोड यानी वह, जिसका पता नही, लेकिन प्रतीक्षा कर रहे है। सभी लोग उत्सुकता से बैठे है दरवाजे खोले हुए—कोई आनेवाला है।

यह गोडोड की कहानी बडी प्यारी है। दो आदमी बैठे है। ऐसे नाटक शुरू होता है। और वे एक-दूसरे से पूछते है कि क्यो भई, क्या हाल है? वह कहता है, 'सब ठीक है। आज आयेगा, ऐसा मालूम पड़ता है।' कौन आयेगा, इसकी तो कोई बात ही नही—'आज आयेगा, ऐसा मालूम पड़ता है।' दूसरा कहता है, 'सोचता तो मै भी हू। आना चाहिए। कब से हम राह देख रहे है। और भरोसा बधवाया था। और आदमी ऐसा गैर-भरोसे का नही है। देखे शायद आज आए।' ऐसी बात चलती है। वे दोनो देखते रहते है रास्ते की तरफ, रास्ते के किनारे बैठे। कोई आता नही। दोपहर हो जाती है। साझ हो जाती है। वे कहते है, 'फिर नही आया। हद हो गयी बेईमानी की। आदमी ऐसा तो न था, कुछ अडचन आ गई होगी, कोई बीमार हो गया।' बाकी कौन है इसकी कोई बात नही चलती। कई दफे वे परेशान हो जाते है। वे कहते है, 'अब बहुत हो गया, बद करो जी इतजार।' मगर दोनो बैठे है। कभी-कभी कहते है 'अब मै चला। तुम ही करो।' एक कहता है कि बहुत हो गया, एक सीमा होती है। मगर जाता-करता कोई नही, क्योकि जाए भी कहा। कही और जाओगे, वहा भी इतजार करना पड़ेगा। रहते वहीं है। बैठे वही है। बात भी करते रहते है, कभी यह भी नही एक-दूसरे से पूछते कि किसका इतजार कर रहे हो? मान लिया है कि किसी का इतजार कर रहे है।

यह जो गोडोड है, यह सब को पकड़े हुए है।

तुमने कभी पूछा है, किसकी राह देख रहे हो? कौन आनेवाला है? किसके लिए द्वार खोले है? और किसके लिए घर सजाए बैठे हो? नहीं, तुम कहोगे यह तो हमे पक्का पता नही है, कौन आनेवाला है, लेकिन कोई आनेवाला है, ऐसा लगता है।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते है कि हम क्या खोज रहे है, हमे पता ही नहीं, मगर खोज रहे हैं। अब खोजोगे कैसे अगर यह ही पता नहीं कि क्या खोज रहे हो?

लोग मेरे पास आते है, वे कहते है, कुछ पूछना है, लेकिन हमे मालूम नही कि क्या पूछना है। और वे गलत नही कहते, बड़े ईमानदार लोग है। यही स्थिति है। लोग पूछना चाहते है, कुछ पूछना जरूर है। ऐसा आभास मालूम होता है। कहीं प्राणो मे ऐसी घुमड़ मालूम होती है, कुछ पूछना है—लेकिन क्या? कुछ पकड़ मे नही आता। कुछ रूप नही बनता। कुछ आकार नहीं बैठता। खोजना है—लेकिन क्या? यह गोडोड कौन है? किसी को मालूम नही।

इस इतजार से जागो। यह प्रतीक्षा बहुत हो चुकी। न कभी कोई आया है, न कभी कोई आयेगा। बद करो दरवाजे। अब तो उसको खोजो जो तुम हो। कभी धन मे प्रतीक्षा की, कभी पद मे प्रतीक्षा की, कभी लोगो की आखो मे सम्मान चाहा, कभी प्रार्थना की, आकाश की तरफ देखा, किसी परमात्मा को खोजा—लेकिन सब गोडोड। तुम्हे साफ नही, तुम क्या खोज रहे हो, तुम क्या माग रहे हो। अब तो उचित है कि अपने मे डूबो। उसे देखे जो हम है। किसी और की प्रतीक्षा करनी उचित नही है।

'हिसा मे विरत न होना, हिसा का परिणाम रखना हिसा ही है ।'

अगर तुमने हिसा का बोधपूर्वक त्याग नही किया है तो हिसा जारी रहेगी। महावीर और सूक्ष्म तल पर ले जाते है। वे कहते है, दूसरे को मारने का, दूसरे को दुख देने का भाव तो हिसा है ही, लेकिन अगर तुमने बोधपूर्वक दूसरे को दुख देने की समस्त सभावना का त्याग नहीं किया है, अगर तुमने अहिसा को बोधपूर्वक अपनी जीवनचर्या नही बनाया है, तो भी हिसा है।

हिसा मे विरत न होना, जागकर होशपूर्वक, निर्णयपूर्वक अपने सामने यह साफ न कर लेना कि मै हिसा से विरत हुआ, तो खतरा है। जिससे तुम विरत नहीं हुए हो, वह पैदा हो सकता है। किसी घड़ी, किसी असमय मे, किसी परिस्थिति मे, जिससे तुम विरत नही हुए हो, उसके पैदा होने की सभावना है। माना कि तुमने सोचा भी नही कि किसी को मारना है, लेकिन कोई छुरी लेकर सामने आ गया तो तुम भूल जाओगे। तुम्हारे पास अहिंसा की कोई शैली नही है। तुम हिसा की शैली को पकड़ लोगे, क्योकि वह पुरानी आदत है।

तो महावीर यह कह रहे है कि हिसा की शैली तो जन्मो-जन्मो की आदत है। अहिंसा की शैली को बोधपूर्वक स्वीकार करना पड़ेगा। उसे जीवन की साधना बनाना होगा। नही तो जब कोई हिंसा करने को तैयार हो जाएगा, तुम अचानक भूल जाओगे। तुमने सोचा भी न था हिसा करने के लिए, लेकिन हिसा होगी। पुरानी आदत है, पुराने सस्कार हैं। पुराने सस्करो को गिराने के लिए बोधपूर्वक निर्णय चाहिए। हिसा से विरत होने का निर्णय चाहिए।

'हिसा मे विरत न होना, हिसा का परिणाम रखना हिसा ही है ।'

सभावना भी बचा लेना हिसा है।

'इसलिए जहा प्रमाद है, वहा नित्य हिसा है ।'

यह गहरी से गहरी पकड है, जो हो सकती है।

'जहा प्रमाद है वहा नित्य हिसा है ।'

प्रमाद यानी मूर्च्छा। जहा सोया-सोयापन है, जहा चले जा रहे है नीद मे, आखे खुली है, लेकिन मन सोया, बेहोश है, जहा हम मूर्च्छा मे चल रहे है—वहा हिसा है। क्योकि मूर्च्छित व्यक्ति क्या करेगा? हजार परिस्थितिया रोज आती है हिंसा की, मूर्च्छित व्यक्ति क्या करेगा? होश तो है नही कि कुछ नया जीवन-उदबोध, कुछ नयी जीवन-उमग, कोई नई किरण फूट सके। बेहोश है तो पुरानी आदत से चलेगा, बेहोश आदमी आदत से चलता है। होशवाला आदमी प्रतिपल होश से चलता है, आदत से नही।

किसी ने गाली दी, तुम्हे याद भी न रहेगा कि तुम्हारा चेहरा तमतमा गया। यह तमतमा जाएगा, तब पता चलेगा कि अरे, फिर हो गया। यह एक क्षण मे हो जाता है, क्षण के खड मे हो जाता है। एक सुदर स्त्री पास से गुजरी, कोई चीज हिल गई भीतर। अभी खाली बैठे थे तो कुछ बात न थी। स्त्री का खयाल ही न था। अभी बैठे वृक्षो की हरियाली देखते थे, खिले फूलो को, आकाश के तारो को देखते थे—कुछ पता भी न था, लेकिन परिणाम तो भीतर पडा है। आदत तो पुरानी भीतर पड़ी है। एक स्त्री पास से गुजर गई, क्षणभर मे बिजली कौध गई। भीतर कुछ हिल गया। भीतर कोई तूफान उठ आया। भीतर कोई वासना सजग हो गई। बीज तो पड़े ही है, जब भी वर्षा हो जायेगी, अकुर हो जायेगे।

तो महावीर कहते है, 'वस्तुत मूर्च्छा ही हिसा है और अमूर्च्छा

अहिंसा है। आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिसा है। जब आत्मा मूर्च्छित है तो हिसा, जब आत्मा जाग्रत है तो अहिसा। यह सिद्धात का निश्चय है।'

अत्ता चेव अहिसा—आत्मा ही अहिसा, आत्मा ही हिसा। यह सिद्धात का निश्चय है।

'जो अप्रमत्त है वह अहिसक है।'

जो जागा हुआ है, जो होशपूर्वक जीता है, अवेयरनेस, सम्यक बोध, एक-एक कदम बोधपूर्वक रखता है, विवेकपूर्वक रखता है—वह अहिसक है।

'जो प्रमत्त है, वह हिसक है।' जो नशे मे जी रहा है, जिसे ठीक पता भी नही है—कहा जा रहे है, क्यो जा रहे है—चला जा रहा है। तुम अपने को पकडो। अपने को हिलाओ, डुलाओ, जगाओ। झटका दो।

सूफियो मे एक प्रक्रिया है—झटका देने की। सूफियो का एक वर्ग साधको को कहता है कि जब भी तुम्हे लगे कि तद्रा आ रही है, जोर से एक झटका शरीर को दो। जैसे कोई वृक्ष तूफान मे हिल जाता है, आधी मे कप जाता है, धूल-धवास गिर जाती है, ऐसा कभी अपने को झटका दो।

तुम कभी कोशिश करके देखना। क्षणभर को तुम पाओगे एक ताजगी, एक होश, अपनी याद, मै कौन हू। चैतन्य थोड़ी देर को प्रखर होगा, झलकेगा, फिर खो जायेगा। ऐसे झटके अपने को देते रहना।

कभी-कभी छोटी चीजे काम की हो जाती है। बहुत छोटी चीजे काम की हो जाती है। तो जब भी कोई गाली दे, एक झटका अपने को देना। इसको धीरे-धीरे अपने जीवन की व्यवस्था बना लेना। कोई गाली देगा, तुम अपने को झटका दोगे। झटका देकर तुम पाओगे कि आदत से सबध छूट गया। यही तो 'इलेक्ट्रो शाक ' मनोविज्ञान इसी को कहता है। आदमी पागल हो जाता है, कोई उपाय नहीं सूझता, कैसे ठीक करे, तो उसके मस्तिष्क मे बिजली दौड़ा देते है। होता क्या है? जब बिजली तेजी से दौड़ती है तो उसके मस्तिष्क मे एक झझावात आता है। एक झटका लगता है। उस झटके के कारण, वह जो पागलपन उस पर सवार था, उससे उसका सबध क्षणभर को टूट जाता है। क्षणभर को वह भूल जाता है कि मै पागल हू। सातत्य टूट जाता है, कटीन्यूटी टूट जाती है। फिर उसे याद नहीं रहती। फिर जब वापिस लौटता है झटके के बाद, तो उसे याद नही रहती कि वह अभी थोड़ी देर पहले पागल था, अब उसको पागल रहना है। आदत से सबध छूट गया। तो अकसर लाभ हो जाता है। अकसर पागल ठीक हो जाता है। लेकिन यह तुम खुद अपने लिए कर सकते हो।

और हम सब पागल है। और हमारा सारा व्यवहार सोया हुआ है। जिस भाति बन सके, जगाने की चेष्टा अपने को करनी है। कई तरह से झटके दिये जा सकते है। कोई भी छोटा स्मरण भी सहयोगी हो सकता है। तुम्हे मैने माला दी है। इसको ही एक नयी स्मरण की आदत बना लो कि जब कोई कामवासना उठने लगे, तत्क्षण माला को हाथ मे पकड़ लेना। किसी को पता भी न चलेगा। लेकिन उस माला को पकड़ना तुम्हे याद दिला देगा कि अरे। फिर गिरे, फिर गिरने को तैयार हुए। तुम्हे मैने गैरिक वस्त्र दिये है, वे याददाश्त के लिए है, अन्यथा गैरिक वस्त्रो से क्या होता जाता है।

एक आदमी शराबी है, वह सन्यास लेने आ गया था। वह कहने लगा कि मै शराबी हू, अब आपसे कैसे छिपाऊ। सन्यास भी लेना है। घबड़ाहट यही है कि गैरिक वस्त्रो मे फिर शराब-घर कैसे जाऊगा।

'वह तेरी फिक्र है। वह हमारी क्या फिक्र है? तू चिता करना। हमने अपना काम कर दिया, तुझे सन्यास दे दिया। अब इसमे हम क्या फिक्र करे, कहा तू जायेगा कहा नही। तेरे पीछे हम कोई चौबीस घटे घूमेगे नही। अब तू ही निपट लेना।'

उसने कहा कि झझट मे डाल रहे हो आप।

झझट तो है। क्योकि सोए-सोए जीते थे, जागना एक झझट है। पर वह हिम्मतवर आदमी है। साफ-सुथरा आदमी है। अन्यथा कहने की कोई जरूरत ही नहीं थी, छिपा जाता। शराब पीते है, कौन कहता है। लेकिन कुछ दिन बाद आया और उसने कहा कि मुश्किल हो गई। अब पैर रुकते है। ऐसा नही कि शराब पीने का मन अब नहीं होता, होता है, लेकिन अब ये गैरिक वस्त्र झझट का कारण है। वहा पहुच जाता हू तो लोग चौककर देखते है जैसे कि कोई अजूबा जानवर हू। सिनेमा-घर मे खड़ा था कतार मे, तो चारो तरफ लोग देखने लगे। दो आदमियो ने आकर पैर छू लिये तो मै भागा कि अब यहा जहा लोग पैर छू रहे है, अब यहा सिनेमा मे जाना योग्य नही है।

तुमने कहानी सुनी है पुरानी? एक चोर भागा। उसके पीछे लोग लगे थे। उसे कोई भागने का, बचने का उपाय नहीं दिखाई पडा। वह एक नदी के किनारे पहुचा। वहा कुछ राख का ढेर पडा था। उसने जल्दी से कपड़े उतारकर तो फेके नदी मे, नग्न हो गया, डुबकी मारी, राख ऊपर से डाल ली और झाड़ के नीचे आख बदकर के बैठ गया। पद्मासन लगा लिया। पकड़नेवाले आ गये, कोई वहा दिखाई नही पड़ता—एक साधु महाराज। उन्होने सबने पैर छुए। चोर ने कहा, 'अरे हद्द हो गई। मै झूठा साधु हू और मेरे लोग पैर छू रहे है।' लेकिन एक झटका लगा कि काश। मै सच्चा होता तो क्या न हो जाता। लेकिन उस झटके मे क्राति हो गई। लोग तो चले गए पैर छूकर, लेकिन वह सदा के लिए साधु हो गया। उसने कहा, जब झूठे तक को, जब झूठी साधुता तक को ऐसा सम्मान मिल गया, जब झूठे मे ऐसा रस, तो सच्चे की तो कहना क्या।

स्मरण के साधन है। गैरिक वस्त्र है तुम्हारा, किसी को मारने के लिए हाथ उठने लगेगा तो अपना गैरिक वस्त्र भी दिखाई पड़ जायेगा। बस उतना ही काफी होगा। हाथ को नीचे छोड देना। शराब का प्याला हाथ मे उठा लो, पास लाने लगो, तो गैरिक वस्त्र दिखाई पड जायेगा। फिर हाथ को वही वापिस लौटा देना। धीरे-धीरे तुम पाओगे, एक नए बोध की दशा तुम्हारे भीतर सघन होने लगी, जो पुरानी आदतो को काट देगी।

'जैसे जगत मे मेरू पर्वत से ऊचा और आकाश से विशाल कुछ भी नही है, वैसे ही अहिसा के समान कोई धर्म नही है।'

इसलिए महावीर ने अहिसा को परम धर्म कहा है। आकाश से विशाल, मेरुओ से भी ऊचा।

'अहिसा' शब्द सोचने जैसा है। महावीर ने प्रेम शब्द का उपयोग नही किया, यद्यपि ज्यादा उचित होता कि वे प्रेम शब्द का उपयोग करते। लेकिन उन्होने किया नहीं। उनके न करने के पीछे कारण है। क्योकि प्रेम शब्द से तुम कुछ समझे बैठे हो जो कि बिलकुल गलत है। उसी शब्द का उपयोग करने से कहीं ऐसा न हो, महावीर को डर रहा, कि तुम अपना ही प्रेम समझ लो कि तुम्हारे ही प्रेम की बात हो रही है। तो महावीर को एक नकारात्मक शब्द उपयोग करना पड़ा अहिसा, हिसा नही। लेकिन महावीर का मतलब प्रेम से है। सूफी जिसको 'इश्क' कहते है, जीसस ने जिसको प्रेम कहा है—वही महावीर की अहिसा है। लेकिन महावीर एक-एक शब्द को बहुत सोचकर बोले है, तुम्हारी तरफ देखकर बोले है। क्योकि प्रेम के साथ तुम्हारा पुराना एसोसिएशन है, पुराना सबध है। तुमने प्रेम से अब तक जो मतलब समझे है वे राग के है, काम के है। तुम्हारे लिए प्रेम का एक ही मतलब होता है वासना। तुमने प्रेम का दूसरा गहनतम अर्थ नही जाना।

प्रेम का वास्तविक अर्थ होता है इतने स्वस्थ हो जाना कि तुम न किसी को दुख पहुचाना चाहते हो, न स्वय को दुख पहुचाना चाहते हो। तुम अपने को भी प्रेम करते हो, दूसरे को भी प्रेम करते हो। और यह प्रेम अब कोई सबध नही है, तुम्हारी दशा है। कोई न भी हो तो भी तुम्हारे चारो तरफ प्रेम फैलता रहता है। जैसे अकेले मे खिले विजन मे फूल, तो भी तो सुगध बिखरती रहती है। दीया जले अकेले अधकार मे, अमावस की रात मे, तो भी तो प्रकाश फैलता रहता है। दीया यह थोडे ही सोचता है कि कोई यहा है ही नहीं, तो फायदा क्या। फूल यह थोड़े ही सोचता है, इस रास्ते से कोई गुजरता ही नही, कोई नासापुट आएगे ही नही यहा, तो किसके लिए गध बिखेरू। छोडो, क्या सार है। ऐसे ही प्रेम को जो उपलब्ध है, वह यह थोडे ही सोचता है कि कोई लेगा तब दू, या किसी खास को दू। प्रेम उसका स्वभाव है।

लेकिन महावीर ने अहिसा शब्द का उपयोग किया। उस शब्द के कारण उन्होने पुरानी एक भ्राति से बचाना चाहा आदमी को, ताकि लोग उनके ही प्रेम को न समझ ले कि महावीर उन्हीं के प्रेम का समर्थन कर रहे है। लेकिन एक दूसरी भ्राति शुरू हो गयी। आदमी इतना उलझा हुआ है कि तुम उसे बचा नही सकते। तब अहिसा शब्द के साथ एक नयी भ्राति शुरू हो गयी।

अब जैन मुनि है, उनके जीवन मे प्रेम दिखाई ही नही पडेगा। उनने अहिसा का ठीक-ठीक मतलब ले लिया, हिसा नही करनी, तो नकारात्मक, विधायक कुछ भी नही, पाजिटिव कुछ भी नही। चीटी नहीं मारनी, मगर चींटी के प्रति कोई प्रेम नही है। चीटी नही मारनी, क्योकि मारने से नर्क जाना पड़ता है। यह तो लोभ ही हुआ। किसी को नही मारना, किसी को गाली नही देना, क्योकि गाली देने से मोक्ष खोता है। यह तो लोभ ही हुआ, प्रेम नही। इस फर्क को समझना।

तो मै तुमसे यह कहना चाहता हू कि अहिसा का महावीर का अर्थ है प्रेम। तुम्हारा प्रेम नही, क्योकि एक और प्रेम है।

लेकिन जैन मुनियो की अहिंसा भी नहीं, क्योकि वह बिलकुल मुर्दा है। वह मर गयी। नकार मे कहीं कोई जी सकता है? सिर्फ नकार-नकार मे कोई जी सकता है? नकार मे कोई घर बना सकता है? कुछ विधायक चाहिए।

विधायक का अर्थ है कुछ ऊर्जा तुम्हारे भीतर जगनी चाहिए। सिकुड़ने से ही थोड़े ही काम चलेगा। किसी को मारो मत, बिलकुल ठीक, लेकिन क्यो न मारो किसी को? क्योकि तुम्हे प्रेम है, इसलिए। इसलिए नहीं कि मारोगे तो नर्क जाना पड़ेगा। यह कोई प्रेम हुआ? यह तो अपना ही लोभ हुआ। लोगो को मत मारो, क्योकि तुम्हारा प्रेम तुम्हे बताएगा कि दूसरे को मारना, दूसरे को दुख देना तो तुम कैसे आशा बाधते हो कि तुम्हारे जीवन मे प्रेम का फैलाव हो सकेगा?

प्रेम फैलता है, बढ़ता है। महावीर कहते है, 'आकाश जैसा। सुमेरू पर्वत से भी ऊचा, आकाश से भी विशाल।'

तो यह कुछ विधायक घड़ी हो तो ही बढ़ सकती है। कुछ हो तो बढ़ सकता है।

अहिसा का तो अर्थ है· हिसा का न होना। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे कि चिकित्सा-शास्त्र मे अगर पूछा जाये कि स्वास्थ्य क्या है, तो वे कहते है बीमारी का न होना। लेकिन मुर्दा भी बीमार नही होता, लेकिन उसको तुम स्वस्थ न कह सकोगे। वह स्वास्थ्य की परिभाषा पूरी करता है, क्योकि बीमार नहीं है। जिदा ही बीमार होता है, मुर्दा कैसे बीमार होगा? बीमार होने के लिए जिंदा होना जरूरी है। तो यह स्वास्थ्य की परिभाषा पर्याप्त नही है कि बीमार न होना। यह तो नकारात्मक हुई। हा, स्वस्थ आदमी बीमार नहीं होता, यह बात जरूर सच है। लेकिन स्वास्थ्य कुछ और भी है। बीमारी न होने से ज्यादा कुछ है, कुछ विधायक है। जब तुम स्वस्थ रहे हो, क्या तुमने अनुभव नहीं किया, क्या तुम इतना ही जानते हो कि न टी बी , न कैंसर, न और रोग? क्या जब तुम स्वस्थ होते हो, तब तुमको इनकी याद आती है कि देखो, कितना मजा आ रहा है, न टी बी है, न कैंसर है? ऐसा होता है? जब तुम स्वस्थ होते हो, न तो टी बी की याद आती है, न कैंसर की, न नकार की।

स्वास्थ्य का अपना ही रस है। स्वास्थ्य का अपना ही अहोभाव है। स्वास्थ्य की अपनी ही प्रफुल्लता है। स्वास्थ्य का झरना फूटता है। यह कोई बीमारी की बात नहीं है।

ऐसा समझो कि एक झरना है, उसके मार्ग पर पत्थर रखे है। तो हम कहते है, पत्थर हटा लो, तो झरना फूट जाये।

लेकिन पत्थर का हटा लेना ही झरना नहीं है। क्योकि कई जगह और जगह भी पत्थर पड़े है, वहा हटा लेना, तो झरना नहीं फूटेगा, तुम बैठे रहना कि पत्थर तो हटा लिये, बस झरना हो गया। पत्थर का हटाना झरने के लिए जरूरी हो सकता है, लेकिन पत्थर के हटने मे ही झरना नही है। झरना तो कुछ विधायक बात है। हो तो पत्थर के हटने पर प्रगट हो जायेगा, न हो तो तुम पत्थर हटाए बैठे रहना जैसे जैन मुनि बैठे हुए है। यह नहीं करते, वह नही करते—सब नही करने पर है। चोरी नहीं करते, लेकिन अचोर नहीं है। लोभ नही करते, लेकिन अलोभी नही है। हिंसा नही करते, लेकिन अहिसक नही है। क्योकि विधायक चूक रहा है।

जिदगी जिगारे-आईना है, आईना है इश्क।
सग है मामूरए-कौनेन और शोला है इश्क।
इल्म बरबत है, अमल मिजराब है, नग्मा है इश्क।
जर्रा-जर्रा कारवा है, इश्क खिज्रे-कारवा।

प्रेम स्वच्छ दर्पण है। और प्रेम के सिवाय जीवन मे जो कुछ है, वह दर्पण पर मैल है, धूल है। सासारिक वस्तुए तो पत्थर है। प्रेम प्रकाश है। ज्ञान वाद्य है। आचरण मिजराब है। प्रेम सगीत है। जीवन का कण-कण यात्री है। प्रेम यात्री-दल का पथ-प्रदर्शक है।

महावीर ने जिसे अहिसा कहा है, वह सूफियो का इश्क है। इस बात को अब दोहरा देने की जरूरत पड़ी है। क्योकि जैसी मुश्किल महावीर को मालूम पड़ी थी प्रेम के साथ, वैसी ही मुश्किल मुझे मालूम पड़ती है अहिसा के साथ। महावीर प्रेम शब्द का उपयोग न कर सके, क्योकि गलत धारणा लोगो के मन मे प्रेम की थी। आज मुझे अहिसा शब्द का उपयोग करने मे अड़चन होती है, क्योकि बडी गलत धारणा लोगो के मन मे है।

हमारे सभी शब्द हमारे कारण खराब हो जाते है, गदे हो जाते है; क्योकि हमारे शब्दो मे भी हमारी प्रतिध्वनि होती है। जब कामी प्रेम की बात करता है तो उसका प्रेम भी काम से भर जाता है' जब निषेधात्मक वृत्तियो का व्यक्ति अहिसा की बात करता है तो उसकी अहिंसा निषेधात्मक हो जाती है। अहिसा यानी प्रेम, परम प्रेम।

है अब जिंदगी सायए इश्क मे
जरा मौत दामन बचा कर चले
वह शोलो से अकसर रहे हमकिनार
जो फूलो से दामन बचा कर चले।

—जिंदगी अब प्रेम के साथ है, प्रेम की छाया मे है।

है अब जिंदगी सायए इश्क मे
जरा मौत दामन बचा कर चले।

—अब जरा मौत होशियारी से चले, क्योंकि जो प्रेम के साये मे आ गया उसकी कोई मौत नही। वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

और प्रेम फूल जैसा है। मौत अगार जैसी है। लेकिन इस जीवन की, अस्तित्व की यही महत्वपूर्ण राजभरी बात है कि अतत फूल जीतते है, अंगार हार जाते है। अतत कोमल जीतता है, कठोर हार जाता है। गिरता है पहाड़ से जल, कोमल जल, क्षीणदेह जलधार, बड़ी-बडी चट्टाने मार्ग मे पड़ी होती है—कौन सोचेगा कि ये चट्टाने कभी कट जायेगी। लेकिन एक दिन धीरे-धीरे धीरे-धीरे चट्टाने कटती जाती है और रेत होती जाती है। धार बड़ी कोमल है। चट्टाने बड़ी कठोर है। लेकिन कोमल सदा जीत जाता है। अतिम विजय कोमल की है।

वह शोलो से अकसर रहे हमकिनार
जो फूलो से दामन बचा कर चले।

और जिन्होंने अपने को फूलो से बचाया, कोमलता से बचाया, उनकी जिंदगी मे अगारे ही अगारे रहे, जलन ही जलन रही।

तुम फूल को कमजोर मत समझना। तुम फूल को महाशक्तिशाली समझना। पत्थर कमजोर है, यद्यपि दिखाई यही पड़ता है कि पत्थर बड़े मजबूत, बड़े शक्तिशाली है। लेकिन पत्थर मुर्दा है, शक्तिशाली हो कैसे सकते है? फूल जीवत है। उसके खिलने मे जीवन है। उसकी सुगंध मे जीवन है। उसकी कोमलता मे जीवन है।

अकसर हम हिंसा के लिए राजी हो जाते है, क्योंकि हिंसा लगती है ज्यादा मजबूत, शक्तिशाली। अहिसा, प्रेम लगता है कमजोर। हम जल्दी भरोसा कर लेते है हिंसा पर, अहिंसा पर भरोसा नहीं कर पाते, क्योंकि फूलो पर हमारा भरोसा उठ गया है। कोमल की शक्ति को हम भूल ही गये है। विनम्र की शक्ति को हम भूल गए है। प्रेम बलवान है, यह हमे याद भी न रहा है। हम तो सोचते है, क्रोध बलवान है। बस यही धार्मिक और अधार्मिक आदमी का अतर है।

अगर तुम मुझ से पूछो तो धार्मिक आदमी वह है जो यह जान गया कि कोमल अतत जीतता है, जिसका भरोसा फूल पर आ गया और पत्थर से जिसकी श्रद्धा उठ गई। और अधार्मिक आदमी वह है, जो भला फूल की प्रशसा करता हो, लेकिन जब समय आता है तो पत्थर पर भरोसा करता है।

महावीर की अहिसा अनुयायियो के हाथ मे पड़कर विकृत हो गयी, निषेध हो गयी है। वह बडा विधायक जीवन-स्रोत था। लेकिन हमारी अडचन है। जो भी हम सुनते है, उसका हम अर्थ अपने हिसाब से लगाते है। अगर कोई मर गया—किसी का प्रेमी मर गया, किसी की प्रेयसी मर गई—तो हम अपने हिसाब से अर्थ लगाते है। जिसकी प्रेयसी मर गई है या प्रेमी मर गया है, उसे अगर हम रोता नहीं देखते, आख मे आसू नही देखते, तो हम सोचते है, 'अरे। तो कुछ दर्द नहीं हुआ, दुख नही हुआ? रोई भी नही? तो कोई लगाव न रहा होगा। तो कोई चाहत न रही होगी। तो कोई प्रेम न रहा होगा।'

लेकिन तुम्हे पता है, अगर सच मे ही गहरी पीडा हो तो आसू आते नही। आसू भी रुक जाते है। और आसू बहुत गहरी पीड़ा के सबूत नही है—पीडा के सबूत है—बहुत गहरी पीड़ा के सबूत नहीं है। अब बड़ी कठिनाई है। आसू तब भी नही आते, जब पीड़ा नही होती, और आसू तब भी नहीं आते जब महान पीड़ा होती है। तो भूल-चूक की सभावना है। कभी यह भी हो सकता है कि रूखी आखो को देखकर तुम सोचो कि कोई पीड़ा नही हुई, और कभी यह भी हो सकता है, क्योंकि मै कहता हू रूखी आखो मे बड़ी गहरी पीडा है कि आसू भी नही बह रहे, तो फिर उसको भी तुम समझ लो कि बड़ी गहरी पीड़ा हो रही है जिसको कोई पीड़ा नही हुई। जिंदगी मे शब्द सीमित हो जाते है। अस्तित्व मे शब्दो की कोई सीमा नहीं है। वहा तो हमे प्रत्येक घटना को उसके निजी व्यक्तित्व मे देखना चाहिए। कोई पुरानी परिभाषा से नही चलना चाहिए।

शक न कर मेरी खुश्क आखो पर
यू भी आसू बहाए जाते है।

—यह भी एक ढग है।

तो तुम जल्दी से निर्णय मत लेना। महावीर ने प्रेम की ही बात

कही, लेकिन प्रेम शब्द का उपयोग नही किया। प्रेम शब्द का उपयोग न करने के कारण अतीत की भूल तो बचा ली, लेकिन भविष्य की भूल हो गयी। तो पीछे जो आये, उन्होने अहिसा को सिर्फ निषेध बना लिया। शब्द मे निषेध है। सारे शब्द निषेधात्मक है। अचौर्य, अपरिग्रह, अहिसा, अकाम, अप्रमाद—सारे शब्द निषेधात्मक है। तो ऐसा लगा उनको कि महावीर कहते है नही, नही, नही। हा की कोई जगह नही है। इसी कारण हिदुओ ने तो महावीर को नास्तिक ही कह दिया, क्योकि परमात्मा नही और फिर सारा शास्त्र 'नही' से भरा है। नहीं, लेकिन उस 'नही' के भीतर बडी गहरी 'हा' छिपी है। 'नहीं' का उपयोग करना पडा, क्योकि लोगो ने 'हा' वाले शब्दो का दुरुपयोग कर लिया था।

लेकिन भूल फिर हो गयी। महावीर का कोई कसूर नही है। शब्द का उपयोग करना ही पड़ेगा। और आदमी कुछ ऐसा है, तुम जो भी शब्द उसे दो वह उसका ही दुरुपयोग कर लेगा। क्योकि सुनते तुम वही हो जो तुम सुन सकते हो। तो महावीर के पीछे निषेधात्मक लोगो की कतार लग गई। इसलिए तो महावीर का धर्म फैल नही सका। कही निषेध के आधार पर कोई चीज फैलती है? महावीर का धर्म सिकुडकर रह गया। 'नही-नहीं' पर कोई जिदगी बनती है? 'नही-नही' से कोई जिदगी के गीत बनते है? तो सिकुड गया। लेकिन कुछ रुग्ण लोग, जो नकारात्मक थे, उनके पीछे इकट्ठे हो गये। उनकी कतार लगी है। उनका सारा हिसाब इतना है कि बस 'नही' कहते जाओ। जो भी चीज हो उसे इनकार करते जाओ। इनकार कर-कर के वे कटते जाते हैं, मरते जाते है। तो उनकी प्रक्रिया करीब-करीब आत्मघात जैसी हो गयी। इसलिए जैन मुनियो के पास जीवन का उत्सव न मिलेगा, जीवन का अहोभाव न मिलेगा। इसलिए जैन मुनियो के पास तुम्हे जीवन की सुरभि न मिलेगी। तुम्हे जैन मुनियो के पास कोई गीत और नृत्य न मिलेगा।

यह भी क्या धर्म हुआ, जिससे नृत्य पैदा न हो सके। यह भी क्या धर्म हुआ जिससे गीत का जन्म न हो सके, जिसमे फूल न खिले। यह सिकुड़ा हुआ धर्म हुआ। यह बीमारो को उत्सुक करेगा। निषेधात्मक और नकारात्मक लोगो को बुला लेगा। यह एक तरह का अस्पताल होगा, मदिर नहीं।

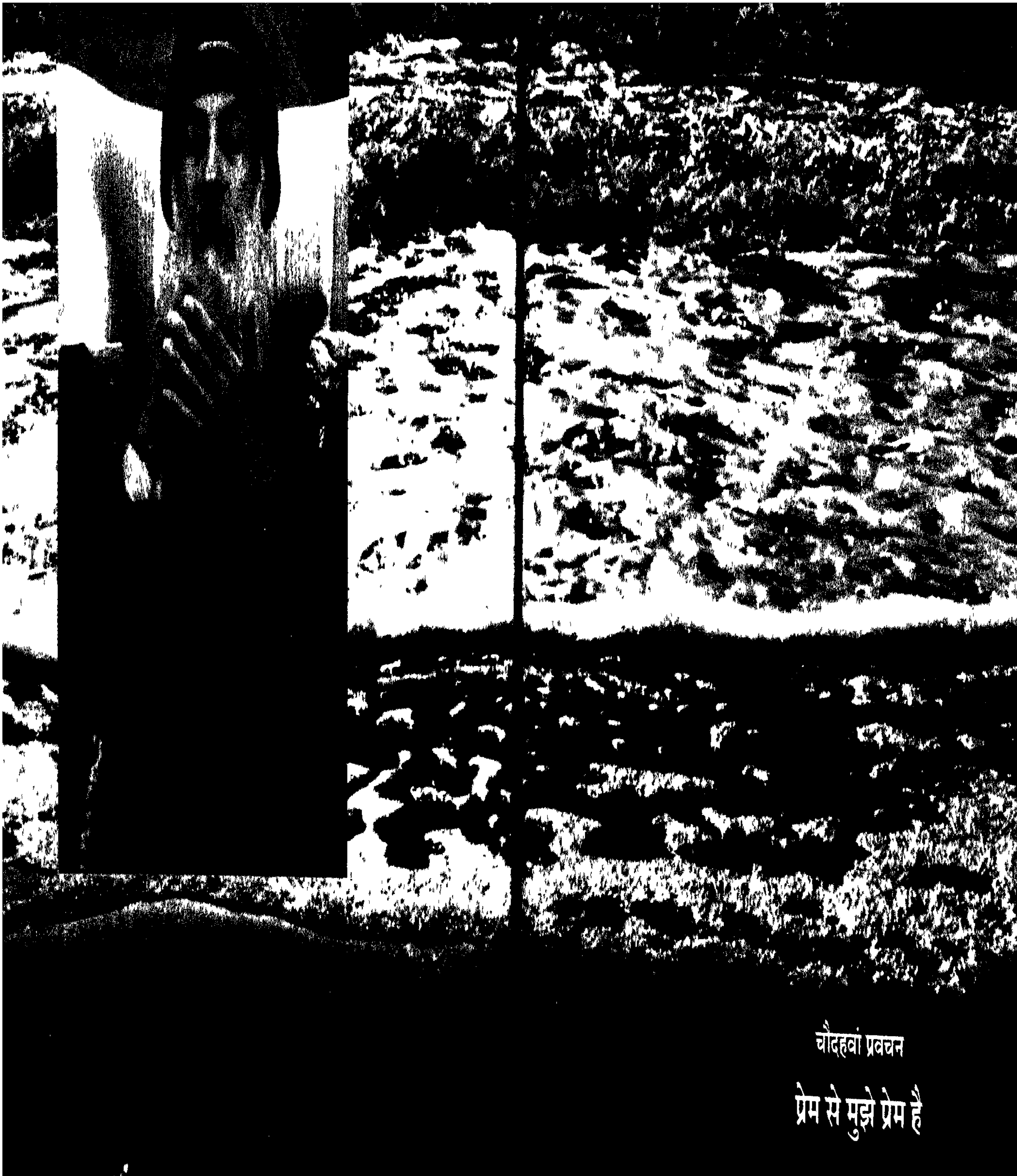
इसलिए मै तुमसे कह देना चाहता हू कि महावीर की अहिसा का ठीक-ठीक अर्थ प्रेम है। सूफी जिसे इश्क कहते है, उसी को महावीर अहिसा कहते है। जीसस ने कहा है, प्रेम परमात्मा है। उसी को महावीर ने कहा है

तुग न मदराओ, आगासाओ विसालय नत्थि।
जह तह जयमि जाणसु, धम्महिसासम नत्थि।।

'जैसे जगत मे मेरू पर्वत से ऊचा कोई और पर्वत नहीं, और आकाश से विशाल कोई और आकाश नहीं, वैसे ही अहिसा के समान कोई धर्म नही है।'

आज इतना ही।





चौदहवां प्रवचन

प्रेम से मुझे प्रेम है

प्रश्न-सार

परंपरा-भंजक महावीर ने स्वय को चौबीसवा तीर्थकर क्यो स्वीकार किया ?

महावीर का स्वयं सद्‌गुरु, तीर्थकर बनना व शिष्यो को दीक्षा देना—
क्या उनके ही सिद्धात के विपरीत नही है ?

वर्तमान शताब्दि मे आप हमे कौन-सा शब्द देना पसद करेगे ?

आपके सामने दिल खोलू कि नही खोलू—मुझे घबड़ाहट होती है।
और क्या मै कुछ भी नही कर पाती ?
मेरी हिम्मत अब टूटी जा रही है।

पहला प्रश्न परपरा-भजक महावीर ने स्वय को प्राचीनतम जिन-परपरा का चौबीसवा तीर्थकर क्योकर स्वीकार किया होगा ? कृपया समझाए।

परपरा की तो परपरा है ही, परपरा-भजन की भी परपरा है। परपरा तो प्राचीन है ही, क्राति भी कुछ नवीन नही। क्राति उतनी ही प्राचीन है जितनी परपरा।

इस पृथ्वी पर सब कुछ इतनी बार हो चुका है कि नया हो कैसे सकेगा ? जिसको तुम नया कहते हो, वह भी बड़ा पुराना है, जिसे पुराना कहते हो, वह तो है ही। जब से परपरावादी रहा है, तभी से क्रातिवादी भी रहा है। जब से रूढ़िवादी रहा है, तभी से रूढि को तोड़नेवाला भी रहा है। जब प्रतिमाए बनानेवाले लोग पैदा हुए, तभी से प्रतिमाओ को तोडनेवाले लोग भी पैदा हो गये। वे साथ-साथ है। वे अलग-अलग हो भी न सकेगे। वे दिन और रात की तरह साथ-साथ है।

क्राति और परपरा एक ही सिक्के के दो पहलू है। न परपरा जी सकती है बिना क्राति के, न क्राति जी सकती है बिना परपरा के। जिस दिन परपरा मर जायेगी, उसी दिन क्राति भी मर जायेगी।

इसे थोड़ा समझना, क्योकि साधारणत हम जीवन मे जहा भी विरोध देखते हैं—सोचते है, दोनो दुश्मन है। ऐसा देखना अधूरा है। जहां-जहा विरोध है, वहा गौर से खोजोगे तो गहराई मे पाओगे, दोनो परिपूरक है। विरोध भी एक भाति कि मैत्री है और शत्रुता भी एक ढग का प्रेम है। पुरुष है, स्त्रिया है उनमे प्रेम भी है, विरोध भी है। विरोध के कारण ही प्रेम है। क्योकि विरोध से भिन्नता पैदा होती है। विरोध से दूसरे को खोजने की आकाक्षा पैदा होती है। स्त्री-पुरुष लड़ते रहते है और प्रेम करते रहते है। लडाई और प्रेम कुछ इतने विपरीत नही है।

जिस पति-पत्नी मे लड़ाई बद हो चुकी हो, समझना कि प्रेम भी मर चुका। जब तक प्रेम की चिगार रहेगी, तब तक थोड़ा-बहुत झगडा, थोडी-बहुत कलह भी रहेगी। लड़ने से प्रेम नहीं मरता है। लड़ना प्रेम का ही अनिवार्य हिस्सा है।

जैनो की परपरा उतनी ही प्राचीन है जितनी हिदुओ की। जैनो के पहले तीर्थकर ऋषभ का नाम वेदो मे उपलब्ध है—बडे सम्मान से उपलब्ध है। उस जमाने के लोग बडे हिम्मतवर रहे होगे। अपने विरोधी को भी सम्मान से याद किया है।

जिस दिन दुनिया समझदार होती है, उस दिन ऐसा ही होगा। तुम अपने विरोधी को भी सम्मान से याद करोगे, क्योकि विरोधी के बिना तुम भी नहीं हो सकते हो। विरोधी तुम्हे परिभाषित करता है। उसकी मौजूदगी तुम्हे त्वरा देती है, तीव्रता देती है, गति देती है। उसका विरोध तुम्हे चुनौती देता है। उसके विरोध के ही आधार पर तुम अपने को निखारते हो, सम्हालते हो, मजबूत करते हो।

अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है जिस राष्ट्र को शक्तिशाली रहना हो, उसे शक्तिशाली दुश्मन खोज लेने चाहिए। अगर दुश्मन कमजोर होगा, तुम कमजोर हो जाओगे। जिससे लड़ोगे, वैसे ही हो जाओगे। अगर दुश्मन शक्तिशाली होगा तो उससे लडने मे तुम शक्तिशाली होने लगोगे। मित्र तो कैसे भी चुन लेना, लेकिन शत्रु जरा सोच-समझकर चुनना।

क्योकि मित्र अतत उतने निर्णायक नही है, जितना शत्रु निर्णायक है। वह तुम्हे परिभाषा देता है। वह तुम्हे जीवन की व्याख्या देता है। वह तुम्हे चुनौती देता है। वह तुम्हे बुलावा देता है, प्रतिस्पर्धा का अवसर देता है।

तो ऋग्वेद ने ऋषभ को बड़े सम्मान से याद किया है। ऋषभ जैनो के पहले तीर्थकर हैं।

जैनो का विरोध, जैनो की क्राति उतनी ही पुरानी है, जितनी हिंदुओ की परपरा। जैन वेद-विरोधी है। लेकिन वेद ने बड़ा सम्मान दिया है। जैन मूर्ति-विरोधी है, यज्ञ-विरोधी है, परमात्मा को भी स्वीकार नही करते, भक्ति का कोई उपाय नही मानते—मूलत व्यक्तिवादी है, अराजक है। समूह मे उनका भरोसा नहीं है, व्यक्ति मे भरोसा है। और एक-एक व्यक्ति अलग और अनूठा है। और एक-एक व्यक्ति को अपना ही मार्ग खोजना है। कृष्णमूर्ति जो कह रहे है, वह जैनो की प्राचीनतम परपरा है, वह कुछ नई बात नही है। यद्यपि जैन भी उनसे राजी न होगे, क्योकि अब तो जैन भी भूल गए है कि उनके प्राणो मे कभी क्राति का तत्व था, वह आग बुझ गई है, राख रह गई है। अब तो वे भी परपरावादी है।

लेकिन जैनो को समझना हो तो उनकी क्राति के रुख को समझना जरूरी होगा। इससे बड़ी क्या क्राति हो सकती है कि परमात्मा नही है, प्रार्थना नही है, पूजा-पूजागृह, सब व्यर्थ है। तुम किसी की अनुकपा के आसरे मत बैठे रहना, तुम्हे स्वय ही उठना है। तुम्हे कोई ले जा न सकेगा। महावीर यह भी नही कहते कि मै तुम्हे कहीं ले जा सकता हू, ज्यादा से ज्यादा इशारा करता हू, जाना तुम्हीं को पड़ेगा—अपने ही पैरो से।

महावीर तो आदेश भी नही देते कि जाओ। वे कहते है, आदेश में भी हिंसा हो जायेगी। मै कौन हू जो तुमसे कहू कि उठो और जाओ ? मै उपदेश दे सकता हू, आदेश नहीं।

इसलिए तीर्थकर उपदेश देते है, आदेश नही। उपदेश का मतलब है मात्र सलाह। मानो न मानो, तुम्हारी मर्जी। न मानो तो तुम कोई पाप कर रहे हो, ऐसी घोषणा न की जायेगी। मान लो, तो तुमने कोई महापुण्य किया, ऐसा भी कुछ सवाल नहीं है। मान लिया तो समझदारी, न मानी तो तुम्हारी नासमझी। लेकिन इसमे कुछ पाप-पुण्य नही है।

तीर्थंकर आदेश भी नही देते। वे कहते है कि आदेश देने का अर्थ हुआ कि तुम दूसरे के मालिक हो गए। तुमने कहा, ऐसा करो, अब अगर न करेगा दूसरा व्यक्ति तो उसके मन मे अपराध का भाव पैदा होगा, उसकी जिम्मेवारी तुम्हारी हो गई। अगर करेगा तो गुलामी अनुभव करेगा, तुम्हारी आज्ञा से चला। जैन कहते है, अगर आज्ञा मानकर किसी की तुम स्वर्ग भी पहुच गए तो वह स्वर्ग भी नर्क ही सिद्ध होगा, क्योकि दूसरे के द्वारा जबर्दस्ती पहुचाए गए।

सुख मे कभी कोई जबर्दस्ती पहुचाया जा सकता है ? सुख तो स्वेच्छा से निर्मित होता है। अगर नर्क भी तुम स्वय चुनोगे तो सुख मिलेगा, और स्वर्ग भी अगर धक्का देकर पहुचा दिया, पीछे कोई बदूक लेकर पड़ गया और दौड़ाकर तुम्हे स्वर्ग मे पहुचा दिया, तो वहा भी तुम्हे सुख न मिलेगा।

निज की स्वतत्रता मे स्वर्ग है। परतत्रता मे नर्क है।

इसलिए महावीर तो आदेश भी नहीं देते। क्राति उनकी बडी प्रगाढ है। और वे कहते है, तुम स्वय जिम्मेवार हो, कोई और नहीं। बडा बोझ रख देते है व्यक्ति के ऊपर। बड़ा भारी बोझ है। राहत का कोई उपाय नही। महावीर के पास कोई सात्वना नही है। वे सीधा-सीधा तुम्हारा निदान कर देते है कि यह तुम्हारी बीमारी है, अब तुम्हे सात्वना खोजनी हो तो कही और जाओ।

तो महावीर उस मूर्ति-भजक परपरा के अग है, जो उतनी ही प्राचीन है जितनी परपरा। इसलिए स्वभावत उस परपरा-विरोधी परपरा ने उन्हे अपना चौबीसवा तीर्थकर घोषित किया। वस्तुत उनके पहले के तेईस तीर्थकरो मे कोई भी उनकी महिमा का व्यक्ति नही था। वे बडे महिमाशाली व्यक्ति थे, लेकिन महावीर की प्रगाढ़ता बड़ी गहरी है। इसलिए धीरे-धीरे ऐसी हालत हो गई कि तेईस तीर्थंकरो को तो लोग भूल ही गए। पश्चिम से जब पहली दफे लोग जैन-धर्म का अध्ययन करने पूरब आये तो उन्होने यही समझा कि ये महावीर ही इस धर्म के जन्मदाता है। तो पुरानी सभी अग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच की किताबो मे महावीर को जैन-धर्म का स्थापक कहा गया है। वे स्थापक नही है। वे तो अतिम है, प्रथम तो है ही नहीं। लेकिन बाकी तेईस खो गए। महावीर की प्रतिभा ऐसी थी, ऐसी जाज्वल्यमान थी कि ऐसा लगने लगा, उन्हीं से जन्म हुआ है इस धर्म का। तेईस तो करीब-करीब पुराण-कथा हो गए; उनका कोई उल्लेख भी नही रहा। वे तो धूमिल कथा-कहानी के हिस्से हो गए, पुराण हो

गए, इतिहास न रहे। ऐसा कभी-कभी होता है, जब बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा होता है तो वह चाहे बीच मे पैदा हो, चाहे पहले हो, चाहे अत मे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता—सभी चीजे उसके आसपास वर्तुलाकार चक्कर काटने लगती है।

आज तुम जिस जैन-धर्म को जानते हो, पक्का नहीं है कि ऋषभ का वही रहा हो, पार्श्वनाथ का वही रहा हो, नेमीनाथ का वही रहा हो, जरूरी नहीं है। आज तो तुम जिस जैन-धर्म को जानते हो, उसकी सारी रूप-रेखा महावीर ने दी है। वह रूप-रेखा इतनी गहन हो गई कि अब तुम उसी बात को ऋषभ मे भी पढ लोगे, क्योकि महावीर को तुमने समझ लिया है।

समझो कि जो मै तुमसे कह रहा हू महावीर के सबध मे, जरूरी नही कि महावीर उससे राजी हो। लेकिन अगर तुमने मुझे ठीक से समझा, तो फिर मै तुम्हारा पीछा न छोड सकूगा, फिर तुम जब भी महावीर को पढोगे, तुम मुझे ही पढोगे। जो मै कह रहा हू, वह तुम्हे सुनाई पड़ने लगेगा। अर्थ तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जाये, तो बाहर के शब्दो मे वही अर्थ दिखाई पडने लगता है।

महावीर इस क्रातिकारी परपरा मे सबसे ज्यादा महिमावान, सबसे बड़े मेधावी व्यक्ति हुए। इसलिए उनके शब्द समझने जसे है, विचार करने जैसे है, क्रातिकारी तो अनूठे रहे होगे, क्योकि जैनो के दो सप्रदाय है—दिगबर और श्वेताबर। दिगबर तो मानते है, महावीर का कोई भी वचन बचा नही, कोई शास्त्र बचा नही। यह भी क्राति का हिस्सा है। वे कहते है, कोई शास्त्र महावीर का वचन नही। ये जो वचन है, यह श्वेताबरो के सग्रह से लिये गये है। दिगबरो के पास कोई सग्रह नही है। यह बडे आश्चर्य की बात है कि दिगबरो ने बचाया क्यो नही। यह भी उसी गहरी क्राति का हिस्सा है। क्योकि अगर बचाओ शब्दो को, तो आज नही कल वे शास्त्र बन जाएगे। बचाओ तो शास्त्र आज नही कल वेद बन जाएगे। इसलिए दिगबरो ने तो महावीर के वचन बचाए ही नही। यह शास्त्र के प्रति बगावत की बड़ी अनूठी कहानी है। मानते है महवीर को, लेकिन कुछ शास्त्र नही बचाया है। व्यक्तिगत, गुरु से शिष्य को कहकर जो बाते आयी है, बस वही, उनको लिखा नही है।

और इसलिए कोई भी शास्त्र महावीर के सबध मे दिगबरो के हिसाब से प्रामाणिक नहीं है। न शास्त्र बचाया कि कहीं उसके साथ परिग्रह न हो जाए, न इस तरह के कोई आश्वासन दिये कि महावीर को पूजोगे तो मोक्ष मिल जायेगा। स्वय को जानोगे तो मोक्ष मिलेगा, महावीर की पूजा से नही। स्वय को जगाओगे तो मोक्ष मिलेगा, महावीर की अनुकपा से नहीं। कोई गुरुप्रसाद की जगह जैनो के पास नहीं है। क्योकि वे कहते है, सत्य अगर किसी के प्रसाद से मिल जाये तो सस्ता हो गया। फिर तो सत्य भी वस्तु की तरह हो गया, किसी ने दे दिया, उधार हो गया। अपने जीवन को गलाओ। अपने जीवन को गला-गलाकर ही सत्य ढाला जायेगा। यह सत्य कही बाहर नही है कि कोई दे दे।

इसलिए यह समझ लेना जरूरी है कि महावीर को जब स्वीकार किया गया चौबीसवे तीर्थकर की तरह, तो इसीलिए स्वीकार किया गया कि उनसे ज्यादा बगावती आदमी उस समय मे कोई भी न था। और भी लोग थे। और भी दावेदार थे। क्योकि क्राति किसी की बपौती थोड़े ही है। जब महावीर जिदा थे तो बड़े तूफान के दिन थे भारत मे, बडी बौद्धिक जागृति का काल था, बड़े शिखर पर लोग, आकाश मे परिभ्रमण कर रहे थे। जैसे आज अगर विज्ञान समझना हो तो कही पश्चिम मे शरण लेनी पड़ेगी, उस दिन अगर धर्म का कोई भी रूप समझना था, तो भारत मे शरण लेनी पडती। भारत के पास सभी धर्म की परपराओ के बड़े जाग्रत पुरुष थे। और उन सभी के शिष्यो की आकाक्षा थी कि वे चौबीसवे तीर्थकर की तरह घोषित हो जाये। प्रबुद्ध कात्यायन था, मक्खली गोशाल था, सजय विलेट्ठीपुत्त था, और भी लोग थे। अजित केशकबली था। ये सभी बड़े महिमाशाली पुरुष थे। लेकिन इन सबके बीच से वह जो सर्वाधिक क्रातिकारी था, महावीर, वह श्रमणो की परपरा मे चौबीसवा तीर्थकर बना। बुद्ध भी थे।

बुद्ध की तो अलग ही परपरा बन गई, अलग ही धर्म का जन्म हुआ। लेकिन यह सोचने जैसा है कि बुद्ध की मौजूदगी मे भी क्रातिकारियो की धारा ने महावीर को चुना था। महावीर की क्राति बुद्ध से ज्यादा गहरी है। बहुत जगह बुद्ध थोड़ा समझौता करते मालूम पड़ते है, ज्यादा व्यवहारिक है। महावीर बिलकुल अव्यवहारिक है। क्रातिकारी सदा अव्यवहारिक रहा है। उसके पैर जमीन पर नही होते, आकाश मे होते है। वह आकाश मे उड़ता है।

कुछ उदाहरण के लिए समझना जरूरी है। बुद्ध के पास स्त्रिया आयी, दीक्षा के लिए, तो बुद्ध ने इनकार कर दिया। यह

समझौता था। यह थोड़ा भय था। यह इस बात का भय था कि ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि स्त्री और पुरुष साथ-साथ सन्यासी हो और साथ-साथ रहे। बुद्ध को भय लगा, इससे तो कही ऐसा न हो जाये कि धर्म नष्ट हो जाये। कही स्त्री-पुरुषो का साथ रहना कामवासना के ज्वार के पैदा होने का कारण न बन जाये। कहीं स्त्रिया पुरुषो को भ्रष्ट न कर दे। तो वह जो स्त्रियो के प्रति पुरुषो का पुराना भय है, कही न कही बुद्ध के मन मे उसकी छाया थी। उन्होने इनकार किया। वे वर्षो तक इनकार करते रहे कि स्त्री को मै सन्यास न दूगा, क्योकि स्त्री को सन्यास देने से खतरा है।

महावीर के सामने भी सवाल उठा। वे तत्क्षण सन्यास दे दिये। उन्होने एक बार भी यह सवाल न उठाया कि स्त्री को सन्यास देने से कोई खतरा तो न होगा। क्रातिकारी खतरे को मानता ही नही, बल्कि जहा खतरा हो वहा जानकर जाता है। उन्होने यह खतरा स्वीकार कर लिया। उन्होने कहा, जो होगा ठीक है। फिर बुद्ध ने मजबूरी मे, बहुत दवाब डाले जाने पर, वर्षो के बाद जब स्त्रियो को दीक्षा भी दी तो उन्होने तत्क्षण कहा कि अब मेरा धर्म पाच सौ वर्ष से ज्यादा न जीयेगा, यह मैने अपने हाथ से ही बीज बो दिया अपने धर्म के नष्ट होने का। और बुद्ध का धर्म पाच सौ वर्ष के बीच नष्ट भी हो गया भारत से। और कारण वही सिद्ध हुआ जो बुद्ध ने माना था, जो भय था वह सही साबित हुआ। क्योकि जब स्त्री-पुरुष पास-पास रहे तो विराग तो दूर हो गया, वैराग्य तो दूर हो गया, राग-रग शुरू हुआ। राग-रग ने नये रास्ते खोज लिये, नयी तर्क की व्यवस्थाए खोज ली। तत्र का जन्म हुआ। बुद्ध-धर्म समाप्त हो गया।

लेकिन महावीर का धर्म अब भी जीता है, अब भी जीता-जागता है। स्त्रियो को समाविष्ट कर लिया, धर्म नष्ट न हुआ। बडा क्रातिकारी भाव रहा होगा। महावीर नग्न खडे हो गए। कोई जैनो मे भी परपरा न थी नग्न होने की। आज तो तुम जाकर देखोगे दिगबर जैन मदिरो मे तो चौबीस ही जैनो की प्रतिमाए नग्न है। वह महावीर ने परिभाषा दे दी। वे तेईस नग्न थे नही, महावीर ही नग्न हुए थे। बाकी तेईस तो वस्त्रधारी ही थे। इसलिए अगर श्वेताबरो और दिगबरो के विवाद मे निर्णय करना हो तो बहुमत श्वेताबरो के पक्ष मे होगा, क्योकि चौबीस तीर्थकरो मे तेईस वस्त्रधारी थे, और एक ही निर्वस्त्र था। तो अगर निर्णय ही करना हो तो तेईस की तरफ ध्यान करके करना चाहिए, सीधा लोकतात्रिक हिसाब है। लेकिन महावीर का प्रभाव इतना महिमाशाली हुआ कि जिनके वस्त्र थे उनकी प्रतिमाओ से भी वस्त्र उतर गए। क्योकि फिर ऐसा लगने लगा, अगर महावीर नग्न है और पार्श्वनाथ वस्त्र पहने हुए है तो पार्श्वनाथ ओछे मालूम पडेगे, छोटे मालूम पड़ेगे इतना भी त्याग न कर पाये। नग्नता कसौटी हो गई।

ऐसा सदा हुआ है। जो सर्वाधिक महिमाशाली है वह कसौटी बन जाता है। फिर उसके पीछे इतिहास भी बदल जाता है। अतीत भी बदल जाता है, क्योकि अतीत के सबध मे हमारे दृष्टिकोण बदल जाते है। नग्न खडे हो जाना बड़ा क्रातिकारी मामला था, क्योकि नग्नता सिर्फ नग्नता नही है। इसका तुम अर्थ समझो।

नग्न होने का अर्थ है समाज का परिपूर्ण अस्वीकार, समाज की धारणाओ की परिपूर्ण उपेक्षा। तुम अगर चौरस्ते पर नग्न खडे हो जाओ तो उसका अर्थ यह होता है कि तुम दो कौड़ी कीमत नही देते कि लोग क्या सोचते है, कि लोग अच्छा सोचते है कि बुरा सोचते है, कि लोग तुम्हारे सबध मे क्या कहेगे। हमारे पास शब्द है भाषा मे—किसी को गाली देनी हो तो हम कहते है 'नगा-लुच्चा'—वह महावीर से पैदा हुआ। नग्न वे थे और बाल लोचते थे, इसलिए लुच्चा। पहली दफा महावीर को ही लोगो ने नगा-लुच्चा कहा, क्योकि वे नग्न खडे होते थे और बाल भी काटते न थे। जब बाल बढ़ जाते थे तो हाथ से उनका लोच करते थे।

तुमने कभी सोचा न होगा कि आखिर नगे को लुच्चा क्यो कहते है। लुच्चे का क्या सबध है? फिर तो धीरे-धीरे लुच्चा शब्द अलग भी उपयोग होता है। अब तुम कहते हो, फला आदमी बड़ा लुच्चा है। लेकिन तुम यह नहीं पूछते कि उसने लोचा क्या है। महावीर के साथ पैदा हुआ शब्द है—गाली की तरह पैदा हुआ, निश्चित ही समाज बहुत नाराज हुआ होगा, बहुत क्रुद्ध हुआ होगा। इस आदमी ने सारे हिसाब तोड दिये।

वस्त्र सिर्फ वस्त्र थोडे ही है, समाज की सारी धारणा है। वस्त्रो मे छिपे हुए समाज का सारा सस्कार, उपचार, शिष्टाचार, सभ्यता, सब है। नग्न को हम असभ्य कहते है। आदिवासी है, नग्न रहते है, उनको हम असभ्य कहते है, आदिम कहते है। क्यो? क्यो असभ्य? क्योकि अभी उन्हे इतनी भी समझ नही

कि अपने शरीर को ढाके, छिपाए, जानवरो की तरह हैं, पशुओ की तरह है। आदमी और जानवर मे जो बड़े-बड़े फर्क है, उनमे एक फर्क यह भी है कि आदमी कपड़े पहनता है। आदमी अकेला पशु है जो कपड़े पहनता है। बाकी सभी पशु नग्न है। तो महावीर जब नग्न हुए उन्होने कहा कि सस्कृति नही, प्रकृति को चुनता हू, सभ्यता को नहीं, आदिम-स्वभाव को चुनता हू। और जो भी दाव पर लगती हो इज्जत, पद-प्रतिष्ठा, वह सब दाव पर लगा देता हू। आज से पच्चीस सौ साल पहले वैसी हिम्मत बडी कठिन थी, आज भी कठिन है। आज भी नग्न खड़े होने पर अडचने खड़ी हो जायेगी, तत्क्षण पुलिस ले जायेगी, अदालत मे मुकदमा चलेगा।

दिगबर जैन मुनि को किसी गाव से गुजरना हो तो पुलिस को खबर करनी पडती है। और जब दिगबर जैन मुनि, नग्न मुनि गुजरता है, तो उसके शिष्यो को उसके चारो तरफ घेरा बनाकर चलना पडता है ताकि उसकी नग्नता कुछ तो ढकी रहे।

दिगबर जैन मुनि खोते चले गए है, एक दर्जन से ज्यादा नही है अब। क्योंकि बड़ा कठिन मामला है। वह नग्नता ही उपद्रव है। फिर सारे समाज की व्यवस्था को जड-मूल से इनकार करना, तो समाज भी प्रतिरोध करता है, बदला लेता है, नाराज हो जाता है।

प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख तो ऋग्वेद मे है, लेकिन महावीर का उल्लेख किसी हिदु-ग्रथ मे नहीं है। निश्चित ही महावीर अति क्रातिकारी रहे। इतने क्रातिकारी रहे कि उनका उल्लेख करने तक की हिम्मत हिदू-शास्त्रो ने नहीं की है। इस आदमी का नाम लेना भी खतरनाक मालूम हुआ है।

तो क्रातिकारियो की जो परपरा है, उस परपरा ने अगर महावीर को चौबीसवा तीर्थकर स्वीकार किया, स्वाभाविक था यह।

यह भी समझ लेना जरूरी है कि महावीर के पहले तक जैन-धर्म कोई अलग धर्म न था। वह चितको की एक धारा थी, लेकिन कोई अलग धर्म न था। महावीर के साथ ही चिंतको की धारा सघन हुई, उसने रूप लिया, सगठन बनी, सघ बनी और हिदू परपरा से अलग होकर चलने लगी।

पार्श्वनाथ या ऋषभदेव एक अर्थ मे हिंदू ही थे—वैसे ही जैसे जीसस यहूदी थे। महावीर भी जब जिदा थे तो करीब-करीब हिदु थे। लेकिन महावीर ने जो प्रगाढता से क्राति को रूप दिया, वह इतना प्रबल हो गया, इतना साफ हो गया कि उसे फिर हिदु-धारा मे सम्मिलित रखना मुश्किल हो गया। वह अलग ही टूट गई धारा।

यहा तुम सोचो, बुद्ध महावीर के समकालीन थे। बुद्ध को श्रमणो की परपरा ने अपना चौबीसवा तीर्थकर स्वीकार नहीं किया, महावीर को किया। हिदुओ ने बुद्ध को अपना दसवा अवतार स्वीकार किया, महावीर के नाम का उल्लेख भी नही किया। क्या मामला है? बुद्ध अभी भी स्वीकार किये जा सकते थे। थोडे बगावती थे, लेकिन डोर बिलकुल न तोड दी थी, फिर भी बधे थे। महावीर ने बिलकुल ही डोर तोड़ दी, खूटी उखाड ली, बाहर खड़े हो गए खुले आकाश मे।

महावीर सभी तरह से मनुष्य को विशाल करना चाहते है।

नजर को वुसअत नसीब होगी
हदो से निकलेगा जब तखैय्युल
हरम भी ऐ शेख! सतहे-बी, सुन
मकान है, ला-मका नही है।

तभी विशालता आत्मा को उपलब्ध होती है। जब कल्पना के ऊपर से भी सारी जर्जीरे हट जाती है। जब तुम्हारा सोच-विचार मुक्त होता है तभी तुम्हारी आत्मा भी विशाल होती है।

नजर को वुसअत नसीब होगी—तभी तुम्हारी दृष्टि विशाल बनेगी, जब उसके ऊपर किसी तरह के बधन न रह जाए—न शास्त्र के, न अतीत के, न सदगुरुओ के।

हरम भी ए शेख! सतहे-बी, सुन
मकान है, ला-मका नही है।

ये मदिर, ये मस्जिद, ये पूजागृह भी, सुन! ये भी सकीर्ण है। मकान है, ला-मका नहीं है।

और हमे एक ऐसी जगह चाहिए जहा कोई सीमा न हो, ला-मका, जहा कोई सीमा न रोकती हो। नजर को वुसअत नसीब होगी—और तब तेरी दृष्टि विशाल होगी।

तो महावीर ने अत्यत विशाल दृष्टि दी है। लेकिन जब अत्यत विशाल दृष्टि होगी, तो सभी की दृष्टियो के विपरीत पड़ जायेगी। सकीर्ण दृष्टि के साथी मिल जाएगे, विशाल दृष्टि के साथी नही मिलते। अब अगर मै कृष्ण की ही महिमा गाऊ तो हिदू मेरे साथ हो जाएगे, लेकिन उनकी शर्त है कि फिर महावीर की बात मत उठाना। अगर मै महावीर के ही गीत गुनगुनाऊ, तो जैन मेरे साथ हो जाएगे, लेकिन उनको शर्त है, अब कृष्ण को

बीच मे मत लाना।

अगर तुम सकीर्ण हो तो तुम्हे किसी न किसी का साथ मिल जायेगा, क्योकि सकीर्ण लोग चारो तरफ मौजूद है। मुझसे जैन भी नाराज हो जाता है, क्योकि मैंने कृष्ण की बात की, मुझसे हिदू भी नाराज हो जाता है, क्योकि मैने महावीर की बात की, मुझसे बौद्ध नाराज हो जाता है कि क्यो मैने महावीर की चर्चा की, मुझसे जैन नाराज हो जाता है कि बुद्ध की बात क्यो उठाई।

मुझसे तो साथ-सग वही दे सकता है जिसकी नजर सकीर्ण न हो। और मै तुमसे यह कहना चाहता हू कि मै परपरा के भी पक्ष मे हू और क्राति के भी पक्ष मे हू। तब और अड़चन हो जाती है। तब परपरावादी मुझसे नाराज हो जाता है कि क्राति की तुम बात करते हो, और क्रातिवादी नाराज हो जायेगा कि तुम परपरा की बात करते हो। लेकिन मै असल मे चाहता हू कि तुम्हारी नजर पर कोई भी सीमा न रह जाये, तुम्हारी सब सीमाए टूट जाए, तुम विशाल हो जाओ, तुम खुले आकाश के नीचे खडे हो जाओ, कोई घेरा न रहे। बड़े से बड़ा घेरा भी आखिर घेरा है। और आत्मा का तभी जन्म होता है जब तुम्हारी दृष्टि सभी दृष्टियो से मुक्त हो जाती है। उस अवस्था को महावीर ने सम्यक दृष्टि कहा है—जब कोई दृष्टि नही पकड़ती।

इसलिए महावीर ने अपने विचार-दर्शन को अनेकात कहा है। अनेकात का अर्थ होता है जिसने कोई एकातिक दृष्टि नही पकडी। महावीर ने जिस दर्शन को जन्म दिया, उसका नाम स्यातवाद है। तुम महावीर से कुछ पूछो तो वे सात भगियो मे उत्तर देते है। तुम उनसे पूछो, ईश्वर है? तो वे कहते है, है, और तत्क्षण कहते है, नही है। और वे कहते है, दोनो है, और कहते है दोनो नही है। और ऐसा उत्तर देते चले जाते है। सात दृष्टिया हो सकती है ईश्वर के बाबत, वे सातो दृष्टियो का एक साथ उपयोग करते है। वे तुम्हे कोई जगह नही देना चाहते। तुमने पूछा, ईश्वर है? महावीर कहते है, है। इसके पहले कि तुम उठो और सोचो कि बस फैसला हो गया, वे कहते है रुको, नही है। तुम सोचोगे, चलो यह भी ठीक है—नही है तो भी बात साफ हो गई। उठने लगे, वे कहते है, बैठो, दोनो है, है भी और नही भी। अब तुम जरा अड़चन मे पड़े। लेकिन वे अभी भी नही रुकते, वे बढते ही चले जाते है। कहते है, दोनो है। चौथा उनका उत्तर है, दोनो नही है। और ऐसा सात भगियो मे—सप्त-भग।

कौन राजी होगा इस आदमी से? क्योकि तुम चाहते हो, कुछ बधी हुई लकीर मिल जाये। लेकिन महावीर कहते है, सभी बधी लकीरे, सभी सकीर्णताए उस परम सत्य को प्रगट नही कर पातीं। एक अर्थ मे वह है और एक अर्थ मे नही है।

जैसे कोई तुमसे पूछे, शून्य है? क्या कहोगे? एक अर्थ मे है, अगर कहो कि नही है तो पूरा गणित गिर जायेगा। एक अर्थ मे है। और एक अर्थ मे नही है, क्योकि शून्य का मतलब ही होता है कि जो नही है। और अगर दोनो बाते एक साथ सच है तो फिर तीसरी बात भी ठीक है कि दोनो है। लेकिन दोनो बाते एक साथ सच कैसे हो सकती है? कोई चीज या तो होती है या नही होती। तो महावीर कहते है, दोनो असत्य भी है। ऐसा वे बढते चले जाते है। और प्रत्येक वक्तव्य के साथ वे स्यात लगाते है, परहैप्स। यह बडी अनूठी बात है। वे कहते है, स्यात।

तुम सुनने आते हो कोई मत। तुम अनिश्चित हो। तुम्हे पता नही, क्या है, क्या नही है। तुम चाहते हो, कोई आदमी जो टेबिल ठोककर कह दे कि हा, ईश्वर है। और इतने जोर से कहे कि तुम घबडा जाओ और मान लो। लेकिन महावीर कहते है, स्यात, वे तुम्हे सात्वना नही देते। वे कहते है, हो भी सकता है न भी हो। इसमे कोई झिझक नही है।

अनेको को ऐसा लगेगा, शायद महावीर को पता नही है। कहते है 'शायद'? लेकिन महावीर को पता है, इसलिए कहते है स्यात। क्योकि जो पता है वह इतना बड़ा है कि उसके सबध मे कोई भी वक्तव्य एकागी हो जाता है। उसके सबध मे सभी वक्तव्य एक साथ ही सार्थक हो सकते है। तब एक वक्तव्य दूसर वक्तव्य को काटता जाता है। तुम्हारे पास कुछ सिद्धात नही बचता, आखिर मे तुम ही बचते हो। तुम्हारी बुद्धि के पास कोई दृष्टिकोण नही बचता, केवल देखने की क्षमता बचती है।

इससे बड़ी क्राति कभी घटी नही। इसलिए क्रातिकारियो ने अगर महावीर को अपना चौबीसवा तीर्थकर स्वीकार किया तो कुछ आश्चर्य नही है। तुम्हे अड़चन होती है सोचने मे कि क्राति, मूर्ति- भजन और उसमे भी फिर चौबीसवे तीर्थकर। क्योकि तुमने सोचा है और समझा है अब तक कि क्राति कोई नई चीज है। क्राति और परपरा ऐसे है, जैसे तुम्हारे दो पैर। सभी क्रातिया अतत परपरा बन जाती है और सभी परपराए प्रारभ मे क्रातिया थी। क्राति परपरा का पहला कदम है और परपरा क्राति की

अतिम दशा है।

कृष्णमूर्ति कुछ कहते है, वचन क्रातिकारी है—परपरा बनने लगे। कृष्णमूर्तिवादी आदमी पैदा हो गया है। कृष्णमूर्ति कहते है, कोई गुरु नही। उनका माननेवाला भी कहता है, कोई गुरु नही। लेकिन मेरे पास उनके माननेवाले आ जाते है। वे कहते है, कोई गुरु नही। मैने कहा, तुमने यह सीखा कहा? वे कहते है, उनके चरणो मे बैठकर सीखा है। तो वे तुम्हारे गुरु हो गए। तुम यह स्वय के बोध से दोहरा रहे हो कि कोई गुरु नही? यह भी तुमने सीख लिया है। और जहा सीखना हो गया, वहा गुरु आ गया। कृष्णमूर्तिवादी भी अपने पक्ष की तर्कणा करता है, विचारणा करता है, सिद्ध करने के लिए प्रमाण देता है, वाद-विवाद करता है। बचना मुश्किल है।

क्राति ऐसे ही है जैसे जन्म—और जब जन्म हो गया तो मौत भी होगी। अब तुम लाख उपाय करो बचने के, अगर बचना था तो जन्मना ही नही था। वही भूल हो गई। अब कुछ किया नही जा सकता। मरना तो पड़ेगा ही।

आगे खयाल रखना, जन्मना मत। इसलिए जिसको मौत से बचना हो उसे जन्म से बचना चाहिए।

कहते है, डायोजनीज को किसी ने पूछा कि दुनिया मे सबसे बेहतर बात कौन-सी है। उसने कहा, बेहतर बात तो है पैदा न होना। उस आदमी ने कहा, खैर अब यह तो हो ही नही सकता, हम हो ही गए पैदा—नबर दो क्या? उसने कहा, नबर दो—जितनी जल्दी मर सको मर जाना। पैदा न होते, कोई झझट न होती, मर गए, फिर झझट मिट गई।

क्राति जन्म है। मगर जब क्राति हो गई तो मौत भी होगी। क्राति परपरा बनेगी। यही तो तुम देख रहे हो। ये जो सारे धर्म तुम्हे पृथ्वी पर दिखाई पडते है, क्या तुम सोचते हो, ये पहले ही क्षण से परपरा थे? पहले क्षण मे तो ये क्राति की तरह उठे थे। फिर सम्हल गए, सगठित हो गए, व्यवस्थित हो गए, अराजकता खो गई, ज्योति खो गई। फिर सब बात बद हो जाती है। फिर धीरे-धीरे सब समाप्त हो जाता है।

जैन-धर्म अब एक परपरा है। बुद्ध-धर्म एक परपरा है। सिक्ख-धर्म अब एक परपरा है। नानक के साथ क्राति थी, बड़ी बगावत थी। फिर खो गई बात। फिर धीरे-धीरे राख जम गई। सभी चीजो पर राख जम जायेगी, क्योकि यह जीवन का नियम है। इसलिए क्राति को फिर-फिर करते रहना पडता है और धर्म को पुन पुन जन्म देना पडता है। लेकिन कोई भी व्यक्ति धर्म को जन्म देते वक्त यह न सोचे कि उसका धर्म अपवाद होगा। असभव है। अपवाद कोई भी नहीं हो सकता। जो पैदा हो रहा है, वह मरेगा। फिर नये धर्मो की जरूरत रहेगी।

अब यहा भी थोड़ा सोचने जैसा है। जब धर्म क्रातिकारी होता है तब अलग तरह के लोगो को आकर्षित करता है—क्रातिकारियो को, बगावतियो को, विद्रोहियो को। फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे धर्म स्थापित होने लगता है, ऐस्टेब्लिश होने लगता है, फिर वह क्रातिकारियो को आकर्षित करना तो दूर, अगर वे पैदा हो जाये तो उन्हे निकाल बाहर करता है, क्योकि वे खतरा करने लगते है।

अब यह एक बड़ा विरोधाभास है। अगर जैन-धर्म मे फिर महावीर पैदा हो जाये तो जैनी उन्हें निकाल बाहर कर देगे, बर्दाश्त न करेगे। अगर जीसस फिर पैदा हो जाये ईसाई घर मे तो अब की बार फिर सूली लगेगी—अब की बार ईसाई लगाएगे। पिछली बार यहूदियो ने लगाई थी, क्योकि उन्होने यहूदी-घर मे पैदा होने की गलती की थी। किसी और ने नही लगाई, यहूदियो ने लगाई थी।

और यहूदी बड़े क्रातिकारी थे अपने प्रथम चरण मे। मूसा बडे क्रातिकारी है। यहूदियो की मुक्ति, इजिप्त से उनका छुटकारा, नए जीवन और जगत की खोज, नए समाज की पूरी की पूरी अतरचितना और उसकी नीव मूसा ने भरी।

लेकिन उसी घर मे, उसी कुल मे, उसी परपरा मे आता है जीसस, और जीसस वही करना चाहता है जो मूसा ने किया था, लेकिन मूसा के माननेवाले बरदाश्त न करेगे, क्योकि यह फिर उखाड डालेगा।

कही भी तुम पैदा हो जाओ, अगर तुमने नये धर्म की चितना की—और धर्म सदा ही नया है, क्राति उसकी शुरुआत है—तो तुम निकाल बाहर किये जाओगे। हा, तुम्हारे आसपास एक नया धर्म निर्मित हो जायेगा। जल्दी ही तुम्हारे बच्चे वहा भी क्राति न चलने देगे। वहा भी जब कोई क्रातिकारी पैदा होगा, उसे निकाल बाहर किया जायेगा। यह क्रातिकारी का भाग्य है कि सूली पर लटके। और यह सभी धर्मो की नियति है कि क्राति की तरह पैदा हो, परपरा की तरह सड़ जाए।

दूसरा प्रश्न कल आपने समझाया कि महावीर ने बड़ी कुशलता से, बड़ी अहिसा के साथ ईश्वर, पूजा, प्रार्थना, प्रेम आदि शब्दो का इनकार किया। उसके पहले भी आपने बताया था कि उन्होने शरण और भक्ति का भी इनकार किया। कृपया समझाए कि तब उनका स्वय एक सदगुरु, तीर्थकर बनना व शिष्यो को दीक्षा व आशीर्वाद देना क्या उनके ही सिद्धात के विपरीत नही है ?

पहली बात—महावीर तीर्थकर है, सदगुरु नही। सदगुरु भक्तो का शब्द है। इसलिए महावीर के लिए सदगुरु शब्द का उपयोग मत करना। और तीर्थकर का बडा अलग अर्थ होता है। सदगुरु का बडा अलग अर्थ होता है।

सदगुरु का अर्थ होता है जो तुम्हारा हाथ पकड ले, जैसे बाप बेटे का हाथ पकड लेता है और ले चलता है। और बेटा अपनी सारी श्रद्धा बाप को दे देता है, वह जानता है कि हम ठीक जा रहे है—चाहे बाप खतरे मे भी जा रहा हो, भयकर जगल से गुजर रहा हो। बाप डरता हो तो डरता रहे, बेटा मस्ती से चलता है। बाप के हाथ मे हाथ है, अब और क्या चाहिए। बेटा आनदित होकर देखता है जगल। वह हजार प्रश्न उठाता है। बाप कहता है, चुप रहो। बाप घबड़ा रहा है। बाप अकेला है। बेटे को क्या फिक्र है। जब बाप साथ है तो सब बात हो गई।

सदगुरु का अर्थ होता है समर्पण किसी के प्रति, उसके हाथ मे हाथ दे देना, बस। फिर भक्त कहता है, अब हम छोटे बच्चे की तरह हो गए, अब तुम्हे जहा ले चलना हो ले चलो, हम शिष्य हो गए।

तीर्थकर का बडा अलग अर्थ है। तीर्थकर तुम्हारे हाथ को अपने हाथ मे नही लेता। तीर्थकर तुम्हे सहारा नही देता। तीर्थकर शब्द का अर्थ होता है तीर्थ बनानेवाला, घाट बनानेवाला। नदी के किनारे घाट बना देता है, फिर जिसकी मौज हो उस घाट से उतर जाये। लेकिन वह तुम्हे इस नाव मे बिठाकर ले नही जाता। वह माझी नही है। वह तुम्हे नाव मे बिठाकर उस पार नही ले जाता, न वह तुम्हारा हाथ पकडकर नदी मे तैराता है। वह सिर्फ घाट बना देता है।

तीर्थ का अर्थ होता है घाट। तीर्थकर का अर्थ होता है जिन्होने घाट बनाये। तो सुगम कर देता है उतरना, लेकिन हाथ पकड़कर उतारता नही। ऊबड-खाबड़ जगल पहाड मे उतरना मुश्किल होता है। वह घाट बना देता है। वह सब व्यवस्थित कर देता है। ठीक जगह—जहा से दूसरा किनारा करीब से करीब है, ऐसी जगह, जहा जलधार बहुत खतरनाक नही है, ऐसी जगह, जहा जलधार छिछली है, तुम चलकर भी पार हो सकोगे, ऐसी जगह, जहा कम से कम डूबने का भय है—वह घाट बना देता है। वह घाट के ऊपर सारे नक्शे रख देता है कि बाए जाओ कि दाए जाओ, कि कितने कदम चलने पर पानी गहरा होगा और कितने कदम चलने पर दूसरा किनारा करीब आ जायेगा। वह दूसरे किनारे का वर्णन कर देता है। वह सारी बात कर देता है, घाट निर्मित कर देता है, सारे उपकरण यात्रा के मौजूद कर देता है—बस, वही छोड देता है। फिर तुम जाओ, यात्रा तुम्ही को करनी है।

तीर्थकर सदगुरु नही है। तीर्थकर से तुम्हारा कोई व्यक्तिगत सबध नही है। तीर्थकर से तुम्हारा बडा अव्यक्तिगत सबध है। महावीर के पास तुम जाओ तो तुम्हारा जो प्रेम महावीर के प्रति है वह एकतरफा है। तुम्हारा होगा। महावीर तो कहते है, उसे भी छोडो, क्योकि वह भी बधन बनेगा। महावीर का तो बिलकुल नही है। तुम भला अपनी कल्पना से सोचते होओ कि हम दीवाने है महावीर के, लेकिन महावीर तुम्हारे दीवाने नहीं है। तुम चले जाओगे तो वे बैठकर रोएगे नही कि कहा खो गया।

भक्त और सदगुरु की बात अलग है। जीसस ने कहा है सदगुरु ऐसा है वह धारणा है पैगबर की, सदगुरु की, कि जैसे गडरिये की कोई भेड भटक जाये। साझ हो गई, सारी भेडे आ गई, लेकिन एक भेड जगल मे भटक गई, तो सारी भेडो को खतरे मे छोडकर वह उस एक भेड की तलाश मे जाता है। वह जगल मे उतरता है फिर अधेरी रात मे, चिल्लाता है, पुकारता है। जब भेड़ को खोज लेता है तो उसे कधे पर रखकर लौटता है। भटकी भेड को कधे पर रखकर लौटता है। और भटकी भेड के लिए जो भेड़े साथ थी, उनको खतरे मे छोड़ जाता है। इस बीच जगली जानवर हमला भी कर सकते है।

यह ईसाइयो की मसीहा की धारणा है, सदगुरु की। उसका सबध वैयक्तिक है। वह तुम्हारी तरफ व्यक्तिगत ढग से सोचता-विचारता है। तीर्थकर निर्वैयक्तिक है। वह सिर्फ सिद्धात बता देता है। वह कहता है, दो और दो चार होते है, तुम

जोड लो। गणित बता दिया, नियम बता दिया, अब तुम कर लो हल। इससे ज्यादा उसका कोई सबध नहीं है।

अगर तुम चले जाओ, खो जाओ, तो तुम्हारे लिए बैठकर रोता नही और न बीहड़ मे तुम्हे चिल्लाता हुआ आता है। क्योकि तीर्थकरो की धारणा ऐसी है। वे कहते है, जिसे भटकना है वह भटकेगा। जब अपने ही भटकने से ऊब न जायेगा, तब तक भटकेगा। और अगर कोई भटकना ही चाहता है तो उसे न भटकने देना उचित नहीं है, उसकी स्वतत्रता मे बाधा है। अब इस बात का भी मूल्य है।

जीसस की बात भी समझ मे आती है कि जो जाग गया है, वह उसको सहारा दे जो सोया है। महावीर की बात भी समझ मे आती है। वे कहते है, सहारा देना एक बात है, लेकिन वह सहारा न चाहता हो तो उस पर सहारा थोपना बिलकुल दूसरी बात है। इसलिए वे उपदेश देते है, आदेश नही देते। वे मार्ग दिखा देते है, फिर यह भी नही कहते कि चलो, उठो। फिर तुम्हे झिझकारते नही है, तुम्हे सोए से उठाते नही, तुम्हारे सपने को तोडते नही। वे कहते है, अगर तुम्हारी यही मर्जी है तो तुम्हारी वैयक्तिक स्वतत्रता है। वे तुम्हारी वैयक्तिक स्वतत्रता को सम्मान देते है। अगर तुमने भटकना तय किया है तो यही तुम्हारी नियति है, अभी और भटको, जब तुम्हे समझ मे आ जाये तब लौट आना। इसका मतलब यह हुआ वे तुम्हे भेड-बकरी नही मानते, तुम्हे मनुष्य मानते है। तब तुम्हे समझ मे आयेगी बात कि उनकी बात का भी बल है। वे कहते है, तुम कोई भेड़ थोडे ही हो कि हम तुम्हे उठाकर कधे पर ले आए। तुम मनुष्य हो। तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। और अगर तुम्हारे परमात्मा ने यही अभी तय किया है कि अभी और थोडा झेलना है दुख, और थोड़ा जीना है नर्क, तो कौन तुम्हे रोक सकता है। तुम्हारे ऊपर कोई भी नही है, तुम अतिम हो। मुझे कुछ मिला है, वह मै कह देता हूं, उपयोग करना हो कर लेना, न करना हो न कर लेना। ऐसा निर्वैयक्तिक सबध है।

इसलिए पहली बात—तीर्थंकर सदगुरु नही है। दूसरी बात—तीर्थंकर दीक्षा तो देता है, आशीर्वाद नही देता। आशीर्वाद सदगुरु देता है। आशीर्वाद का अर्थ है मेरी शुभाकाक्षा तुम्हारे साथ है। न, महावीर बिलकुल निर्वैयक्तिक है। वे कहते है, मेरी शुभाकाक्षा क्या करेगी? नर्क का रास्ता शुभाकाक्षाओ से पटा पड़ा है। तुम्हारा होश काम आएगा, मेरी शुभाकाक्षा थोडे ही। और वे कहते है, कहीं तुम्हारे मन मे ऐसा भरोसा आने लगे जैसा कि काहिलो और सुस्तो को आ जाता है—किसी के आशीर्वाद से सब हो जायेगा—तो वे वैसे ही मर रहे थे और मर जाते। वे वैसे ही डूब रहे थे, वे और हाथ-पैर तडफड़ाना छोड देते है। वे कहते है, अब आशीर्वाद मिल गया, अब सब ठीक है।

महावीर कहते है, ऐसी झूठी बातो के लिए मेरे पास मत आना। दीक्षा देते है। दीक्षा का अर्थ है इनिसिएशन। दीक्षा का अर्थ है वे तुम्हे बता देते है, जो उन्हे हुआ है। वे कहते है, यह रहा रास्ता। ज्योति फेक देते है रास्ते पर। दीक्षा का तो अर्थ है, उदघाटन कर देते है एक द्वार का। जिस द्वार से वे प्रवेश किए है, वह द्वार तुम्हे भी इगित कर देते है, कि वो रहा। आशीर्वाद का अर्थ है कि वे तुम्हारे लिए प्रार्थना करते है। आशीर्वाद का अर्थ है कि वे मगल कामना करते है। आशीर्वाद का अर्थ है कि तुम्हारी यात्रा मे वह भी सम्मिलित है। नही, तीर्थंकर आशीर्वाद नही देते। ये अलग-अलग परपराओ के शब्द है, इनका अलग-अलग अर्थ समझ लेना जरूरी है, अन्यथा बड़ी भ्राति पैदा होती है।

पहली दफा मै बबई निमत्रित हुआ, कई वर्ष पहले—एक महावीर जयती पर। मेरे पहले, एक जैन मुनि बोले तो मै तो बहुत चकित हुआ, क्योकि उन्होने जो बाते कही, वे बिलकुल अ-जैन थी। उन्होने कहा महावीर का जन्म हुआ जगत के कल्याण के लिए। ऐसा जैनी मुनि कहते है। जैनी भी कहते है। उनको पता नही कि वे क्या कह रहे है। यह तो हिदू-भाषा है। कृष्ण का जन्म हुआ जगत के कल्याण के लिए। यह समझ मे आ जाता है। यदा-यदा हि धर्मस्य जब-जब होगी धर्म को अडचन, तब तब आऊगा युगे-युगे। यह ठीक है। अवतार की भाषा तो बिलकुल ठीक है कि जब जरूरत होगी मेरी, मै आऊगा, तुम फिक्र मत करना। जब अधेरा होगा तब आऊगा दीया लेकर। जब जाल फैलेगा घृणा का और हिसा का, तब आऊगा तुम्हे उठाने। और हमेशा-हमेशा, तुम भरोसा कर सकते हो।

लेकिन तीर्थंकर ऐसी भाषा नही बोलते। तीर्थंकर की भाषा ही अलग है। तीर्थंकर कहता है, कौन किसका कल्याण कर सकता है? महावीर पैदा हुए अपने पिछले जन्मो के कर्म-फल के

कारण। पैदा होना मजबूरी है। महावीर की कोई स्वेच्छा नही है। पैदा हुए, क्योकि पिछले जन्म मे जो कर्म-जाल पैदा किया है, वह खीच लाया। और जो चेष्टा उन्होने की, कोई जगत-कल्याण के लिए नही है। क्योकि महावीर का मानना ही है कि कोई दूसरा किसी दूसरे का कल्याण नही कर सकता। कल्याण तो सदा आत्म-कल्याण है।

तो जब मै बोला और मैने यह कहा तो मुनि तो बहुत नाराज हुए। बड़ी घबड़ाहट फैल गई। 'गुणा' यहा मौजूद है, वह उस सभा मे भी मौजूद थी। उसने बाद मे मुझे बताया, कई साल बाद, कि उसने तो 'ईश्वर भाई' को कहा कि अब हम यहा से निकल चले, यहा कुछ झगड़ा-फसाद होगा। यहा मारपीट होकर रहेगी अब। क्योकि सभी जैन नाराज हो गए, क्योकि मैने कहा, महावीर किसी के कल्याण के लिए पैदा नही हुए। लेकिन नाराजगी से क्या होता है? तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारी पूरी दृष्टि अलग है। और उस दृष्टि का अपना मूल्य है। इसलिए उसकी शुद्धता को बचाया जाना चाहिए। ऐसे तो सब वर्णसकर हो जाती है बाते।

महावीर कहते है, कल्याण आत्म-कल्याण है। इसलिए आशीर्वाद नही दे सकते। फिर उस दिन से जो जैन नाराज हुए तो नाराज ही है। क्योकि उनको लगा कि मैने उनके महावीर की कुछ प्रतिष्ठा छीन ली है। मै उनके महावीर को ठीक-ठीक प्रतिष्ठा दिया। मैने वही कहा जो महावीर कहते।

लेकिन साधारण आदमी साधारण आदमी है। वह खुद नही करना चाहता। वह चाहता है कि कोई के आशीर्वाद से हो जाये, मुफ्त मिल जाये। धन तो तुम खुद कमाते हो, धर्म तुम आशीर्वाद से चाहते हो। तुमने बेईमानी परखी? मकान बनाना हो, तुम खुद बनाते हो, मोक्ष आशीर्वाद से हो जाये। तुम जो करना नही चाहते, जो तुम कहते हो मुफ्त मिले तो ले लेगे, उसमे भी सोचने का समय मागोगे। अगर सच मे ही कोई देने आ जाये कि यह रहा मोक्ष, लेते हो? तुम कहोगे, अभी इत्ती जल्दी तो मत करो, थोड़ा सोचने दो, घर जाने दो, पत्नी भी है, बच्चे भी है, थोडा पूछ तो लू। जो तुम टालना चाहते हो, तुम बड़ी कुशलता से टालते हो। तुम कहते हो, जब होगी प्रभु की कृपा। मगर और चीजो के लिए तुम नही कहते। और के लिए तुम खूब आपा-धापी करते हो। तो साफ-साफ कहो न कि अभी चाहिए नही। यह बेईमानी तो मत करो। इतना ही कह दो कि हमे अभी कोई आकाक्षा नही पैदा हुई है। नहीं, लेकिन वह कहना जरा अभद्र मालूम पडता है। तुम शिष्टाचार को मानते हो, सभ्यता को मानते हो। तुम कहते हो, यह कहना जरा, साफ-साफ कहना ठीक नही। तुम जरा चोरी-छिपे, लुके-लुके कहते हो। तुम ढग से, सजाकर कहते हो, शृगार से कहते हो। तुम कहते हो, जब प्रभु की कृपा होगी, जब आशीर्वाद होगा सदगुरु का ।

मेरे पास लोग आते है। मै उनसे पूछता हू, कभी बहुत वर्ष से नही दिखाई पड़े। वे कहते है, आपने बुलाया ही नही। कितनी मजेदार बात कह रहे है वे। तो मैने कहा, अब कैसे आ गये? मैने तो अभी भी नही बुलाया था। वे कहते है, जरा पूने मे कुछ धधे का काम आ गया था। धधा का जब काम होता है तब वे अपने से आते है। अब रहा यह कि मै पूना मे हू तो मेरे पास भी चलो हो आओ। लेकिन मेरे पास आने के लिए जिम्मेवारी मुझ पर ही छोडत है कि आपने बुलाया ही नही। हालाकि वे सोचते होगे, बडी प्रेमपूर्ण बात कह रहे है, लेकिन बड़ी बेईमानी की बात कह रहे हो। आना हो तो तुम आ जाते हो, न आना हो तो कहते हो, जब आप बुलायेगे। कसूर जैसे मेरा है। तुम जब कहते हो, जब प्रभु की कृपा होगी इसका अर्थ हुआ कि प्रभु की कृपा नही हो रही है। तुम सोचते हो, ऐसा भी हो सकता है कि प्रभु की कृपा न होती हो? क्या तुम सोचते हो, प्रभु कुछ अडचन डाल रहा है कि दूसरो पर कृपा बरसा रहा है, तुम पर नही कर रहा है? अगर कोई कृपा जैसी चीज है तो वह सभी पर बरस रही है। लेकिन तुम जब लेना चाहोगे तभी ले सकोगे।

इसलिए महावीर कहते है, यह बात ही छोड़ दो आशीर्वाद की। इशारा मै कर देता हू, चलना तुम्हे है। और वे कोई व्यक्तिगत सबध नही बाधते। उनका जो सबसे बड़ा शिष्य था, गौतम, वह महावीर के जीते-जी समाधि का अनुभव न कर सका, 'केवल ज्ञान' उसे उपलब्ध न हो सका। जिस दिन महावीर की मृत्यु हुई, उस दिन वह गाव के बाहर उपदेश देने गया था, दूसरे गाव। जब वह लौटता था, रास्ते मे उसे खबर मिली की महावीर ने शरीर छोड़ दिया, उनका महापरिनिर्वाण हो गया। तो वह रोने लगा। उसने राहगीरो से पूछा कि यह तो हद हो गई, जिनके साथ मै जीवनभर रहा, आखिरी क्षण मे किस दुर्भाग्य के कारण मै दूसरे गाव चला गया। आखिरी क्षण तो उन्हे

देख लेता। और अब मेरा क्या होगा? उनके रहते-रहते मै मुक्त न हो सका, अब मेरा क्या होगा? अब तो गहन अधकार है और दीया भी बुझ गया। क्या उन्होने कुछ मेरे लिए सदेश छोड़ा है? तो राहगीरो ने कहा, हा। आखिरी समय मे उन्होने आख खोली, उन्होने कहा, गौतम यहा नही है, लौटे तो उसे इतनी बात कह देना कि तू पूरी नदी तो पार कर गया, अब किनारे को पकडकर क्यो रुक गया है?

कहते है, उसी क्षण गौतम ज्ञान को उपलब्ध हुआ। क्या कहा महावीर ने उसके लिए? क्या सदेश छोडा कि तू पूरी नदी तो पार कर गया—ससार छोड़ दिया, धन छोड़ दिया, पत्नी छोड दी, घर-द्वार छोड दिया, सब छोड दिया, सब तरफ से राग हटा लिया—अब तूने राग मुझ पर जमा लिया। किनारे को पकड लिया। अब तू कहता है, गुरु । यह भी छोड दे, नही तो नदी तो पार कर आया, अब किनारे को पकड़कर अटका है, तो बाहर कैसे निकलेगा? अब यह भी छोड। जब सब छोडा है तो सभी छोड। अब इतना भी अपवाद मत रख।

उसी क्षण गौतम को बोध आया कि अरे, मै महावीर को पकडने के कारण ही रुक गया हू। यह मोह छूटता नहीं, इसलिए रुक गया हू।

तो जैन भाषा अमोह की भाषा है। वहा आशीर्वाद नही है।

डूब जाये कि सलामत रहे किश्ती मेरी
न हाथ बढा कभी खिज्र के दामन की तरफ।

—चाहे डूब जाये, चाहे बचे नाव, लेकिन महावीर कहते है, किसी और की तरफ हाथ बढ़ाना मत। न हाथ बढ़ा कभी खिज्र के दामन की तरफ। किसी सदगुरु की तरफ हाथ मत बढ़ाना। आशीर्वाद मत मागना। डूब जाए तो भी ठीक है, पार हो जाये तो भी ठीक है, लेकिन भीख मत मागना।

महावीर का पथ सम्राटो का पथ है, भिखारियो का नहीं।

मेरी फितरत है तूफा और मै आशोबे-फितरत हू
तसव्वुर का भी दामन तर नही करता मै साहिल से।

—स्वभाव मेरा तूफान का है।

मेरी फितरत है तूफा और मै आशोबे-फितरत हू।

—और मै प्रकृति की मुक्त निगाह, मुक्त दृष्टि हू। तसव्वुर का भी दामन तर नहीं करता मै साहिल से—साहिल की तो बात ही नहीं करता, किनारे की तो बात ही नही करता। बात तो दूर, अपनी कल्पना को भी मै किनारे की बात से भ्रष्ट नहीं करता।

सहारे की बात ही गलत है। बे-सहारा। जब तक तुम इतने बे-सहारा न हो जाओ कि तुम्हे लगे अब अपने ही पैरो पर खड़ा होना होगा, और कोई पैर नही है, अब अपनी ही बुद्धि को जगाना होगा, और कोई सहारा नही है, और अपने ही प्राणो का उत्कर्ष करना होगा, कोई और आशीर्वाद, कोई और सात्वना नहीं है । तुमने कभी सोचा?

आस्कर वाइल्ड ने लिखा है कि जब नाव डूब जाती है किसी की और आदमी सागर मे तड़फडाता है तो जैसी उसकी दशा होती है, जब तक तुम्हारी न हो जाये तब तक तुम कुछ करोगे न। नाव डूब गई। सागर की उत्तग तरगे, किनारे का कोई पता नही—तब क्या दशा होती है? तब तुम सोचते हो कि आयेगा किसी का आशीर्वाद या उसको बचाना होगा बचायेगा? नहीं, तब तुम प्राणपण से, अपनी समग्र ऊर्जा से बचने की चेष्टा मे लग जाते हो, तुम सागर से लडने लगते हो। उस समय न तो विचार रह जाते है। कहा विचार की जगह है? सुविधा कहा है? फुर्सत किसे है उस समय विचार करने की? जीवन सकट मे है। न विचार रह जाते है। कितनी बार ध्यान किया था और न लगा था, उस दिन लग जाता है। अब कोई विचार नही रह जाते। न कोई कामना उठती, न कोई वासना उठती, न धन, न स्त्री, न ससार, कुछ भी नही, सब खो जाता है। सिर्फ एक स्वय को बचाने की—वह भी भाव की दशा होती है, विचार नही होता। और तुम जूझने लगते हो सागर से।

महावीर कहते है, ऐसी ही तुम्हारी स्थिति होनी चाहिए। ऐसी ही स्थिति है, लेकिन तुमने कल्पना की नावे बना रखी है और तुमने कल्पना के सहारे ले रखे है। उन सहारो के कारण तुम चेष्टा नहीं कर पाते जितनी कि कर सकते थे। इसलिए वे कहते है, हटा लो सारी सात्वनाए।

महावीर ने अपने साथ चलनेवालो के सब आश्रय छीन लिये। उनको बे-आसरा कर दिया, ताकि उनके भीतर जो सोए हुए प्राणो की ऊर्जा है वह इस चुनौती मे उठ जाये, ज्योतिर्मय हो उठे।

मुकाबिल मे तेरे लाखो खुदा इसने बनाए है
उन्हे पूजा है, उनकी बदगी के गीत गाए है।

आदमी ने असली परमात्मा की जगह न मालूम कितने परमात्मा बनाए है। उन्हे पूजा, उनकी बदगी के गीत गाए है।

महावीर कहते है, असली परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपा है। न तो बदगी से कुछ होगा, न गीतो से कुछ होगा, न पूजा-अर्चा के थालो से कुछ होगा। तुम जीवन के तथ्य को समझो। इस सत्य को समझो कि भवसागर मे पड़े हो और डूब रहे हो। स्थिति को ठीक से समझ लोगे तो तुम स्वय को बचाने मे लग जाओगे। और तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हे कोई और बचा नही सकता है। इसलिए महावीर कहते है, शरण-भावना से बचना, अशरण-भावना मे ध्यान करना। किसी की शरण जाने की बात मत सोचना। समर्पण नही, सकल्प।

तीसरा प्रश्न आपने कहा कि लोक-व्यवहार मे आकर प्रज्ञापुरुषो के शब्द अपना अर्थ खो बैठते है। और आपने बताया कि महावीर ने 'अहिसा', जीसस ने 'प्रेम' और सूफियो ने 'इश्क' शब्द अपनाए। भगवान। वर्तमान शताब्दि मे आप कौन-सा शब्द हमे देना पसद करेगे?

मै तो प्रेम के प्रेम मे हू। उस शब्द से बहुमूल्य मुझे कोई और दूसरा शब्द मालूम नही होता। लाख विकृतिया हो गई हो, फिर भी उस शब्द मे जादू है। अहिसा मरा-मरा शब्द लगता है। उससे औषधि की बास आती है। अहिसा—अस्पताल मे जैसी बास आती है, वैसी बास आती है। कुछ नही करना है, कुछ रोकना है, कुछ निषेध—प्रेम जैसे फूल नही खिलते। प्रेम शब्द हृदय मे कुछ और ही गूज लाता है, कोई कमल खिल जाते है, कोई द्वार खुलते है। अहिसा से ऐसा पता चलता है, कुछ मजबूरी, कुछ कर्तव्य—विधायकता नही है, पाजिटीविटी नही है। 'नही' मे होती भी नही।

प्रेम मे 'हा' है, स्वीकार है। प्रेम मे एक अहोभाव है, गीत है, नृत्य है। तो लाखो विकृतिया हो गई हो प्रेम मे, तो भी मै प्रेम को चुनता हू। क्योकि प्रेम जिदा है और उन विकृतियो को अलग करने की क्षमता है उसमे। अहिसा शब्द मे कोई प्राण नही है। तो भला उसमे महावीर ने जब प्रयोग किया तो कोई विकृतिया न रही हो, अब तो हजारो विकृतिया हो गई है। और तकलीफ यह है कि अहिसा मुर्दा शब्द है। इसलिए उन विकृतियो को छिटकाकर फेक नही सकता। प्रेम फेक सकता है। प्रेम जीवत है।

ऐसा ही समझो कि एक आदमी मरा हुआ पडा है, साफ-सुथरे वस्त्रो मे पडा है, बिलकुल धुले-धुलाए वस्त्र है, शुभ्र वस्त्र है, धूल का कण भी नही है। और एक जिदा आदमी बैठा है, पसीने से तरबतर है, धूल भी चिपक गई है, दिनभर मेहनत की है, स्नान की जरूरत है। और तुम अगर मुझसे पूछो कि किसको चुनोगे, तो मै कहूगा, मै जिदा को चुनता हू। पसीना है, नहाने से छूट जायेगा। धूल जम गई है वस्त्रो पर, साबुन उपलब्ध है। मगर आदमी जिदा है। यह मुर्दा आदमी, माना कि न इसमे पसीना निकलता है, न इस पर धूल जमी है, यह काच के ताबूत मे रखा रह सकता है, ऐसा ही साफ-सुथरा बना रहेगा—पर इसका करोगे क्या? इससे होगा क्या?

अहिसा मुर्दा शब्द है। प्रेम जीवत है। निश्चित ही प्रेम के साथ पसीना भी है। पसीने मे कभी-कभी बदबू भी आती है। पसीने पर धूल भी जम जाती है। आदमी गदा भी हो जाता है, लेकिन यह सब जिदगी के लक्षण है। जहा गदगी हो सकती है, वहा स्वच्छता लायी जा सकती है। ध्यान रखना, जहा गदगी हो ही नही सकती, वहा स्वच्छता कैसे लाओगे? वहा तो मौत आ चुकी। तुम उस बच्चे को पसद करोगे जो मुर्दे की तरह एक कोने मे बैठा रहता है। मा-बाप पसद करते है अकसर, क्योकि उनके लिए कम उपद्रव का कारण होता है। गोबर-गणेश। बैठे है। कभी-कभी पूजा करनी हो तो गणपति जी की पूजा कर लो, बाकी वे बैठे रहते है। मा-बाप को ठीक लगते है, लेकिन बाद मे पछताएगे। वे ऐसे ही बैठे रहेगे। फिर एक उपद्रवी, नटखटी बच्चा है, दौडता है, हाथ-पैर भी तोड लाता है, खून भी निकल आता है, कपडे भी गदे कर आता है, कीचड मे सना हुआ घर आ जाता है। मै तो इसी को चुनूगा। यह जिदा तो है। इससे कुछ होने की सभावना है।

अहिसा मे कुछ न हो, इसकी चेष्टा है। प्रेम मे कुछ हो, इसकी चेष्टा है। मै जीवन के पक्ष मे हू, मौत चाहे कितनी ही साफ-सुथरी हो। और मौत बड़ी साफ-सुथरी चीज है। झझटे तो जीवन मे है, मौत मे क्या झझट है? वह तो सब झझटो का अत है। तो भी मै मौत को न चुनूगा, मै जीवन को ही चुनूगा।

दयारे-रगो-निकहत मे गुजर क्या होशमदो का
यह पैगामे-बाहर आया तो दीवानो के नाम आया।

—वे जो बहुत होशियार है, गणित से जीते है, समझदारी-समझदारी ही जिनके जीवन मे है और दीवानगी

बिलकुल नही, जिन्होने पागल होने की सारी क्षमता को नष्ट कर दिया है—उनके जीवन मे कभी वसत का पैगाम नहीं आता।

दयारे-रगो-निकहत मे गुजर क्या होशमदो का।

—इस रग-रूप, फूलो से भरी दुनिया मे समझदारो की कहा जरूरत है?

यह पैगामे-बहार आया तो दीवानो के नाम आया।

और जब भी वसत की लहर आती है, सदेश आता है जीवन का, तो दीवानो के नाम आता है।

अहिसा तुम्हे होशियारी दे देगी, लेकिन दीवानगी कहा से लाओगे? अहिसा तुम्हे गलत करने से बचा लेगी, लेकिन सही करने का रग-रूप कहा से लाओगे? अहिसा तुम्हे गाली देने से रोक लेगी, लेकिन गीत कहा से जन्माओगे?

गाली देने से रुक जाना काफी है? तो जो आदमी गाली नही देता, बस पर्याप्त है?

यही तो जैन मुनियो की दशा हो गई है। वे गाली नहीं देते, गीत उनसे पैदा नही होता। बैठे है, गोबर-गणेश, उनकी पूजा कर लो। जनी जाते है सेवा को। उनसे बुराई तो उन्होने काट डाली, लेकिन कही कुछ भूल हो गई, कही कुछ बड़ी बुनियादी चूक हो गई। और वह चूक यह है कि उन्होने गलत को छोडने की आकाक्षा की, गलत से बचने की चेष्टा की, लेकिन सही को जन्माने के लिए उन्होने कोई प्रयास न किया। उनका खयाल है कि गलत हट जाए तो सही अपने से आ जायेगा। मेरा खयाल है कि सही आ जाये तो गलत अपने से हट जायेगा। और मै तुमसे कहता हू कि उनका खयाल गलत है। उनका खयाल ऐसे ही है जैसे कोई आदमी, अधेरा भरा हो कमरे मे, अधेरे को धक्का दे देकर निकालने लगे। नहीं, अधेरे को कोई धक्के देकर नहीं निकाल सकता—थकेगा, मरेगा, जिंदगी खराब हो जायेगी। दीया जलाओ। कुछ विधायक को जलाओ। अधेरा अपने से चला जाता है।

तो मै तुमसे नही कहता, क्रोध छोड़ो। मै कहता हू, करुणा जन्माओ। मै तुमसे नही कहता, ससार छोड़ो। मै कहता हू, आत्मा को जगाओ। मै तुमसे नही कहता, धन-दौलत छोड़ो। मै कहता हू, भीतर एक धन-दौलत है, उस खोजो। मेरा रुख विधायक है। और यह मेरा जानना है कि जिस दिन तुम्हे भीतर की धन-दौलत मिल जायेगी, तुम बाहर की धन-दौलत को पकड़ोगे? न पकडोगे न छोड़ोगे, क्योकि वह धन-दौलत ही न रही। छोड़ने लायक भी न रही, पकड़ने की तो बात दूर है। रखा ही क्या है वहा? जहा भीतर के हीरे दिखाई पडने लगे, वहा सब बाहर का ककड़-पत्थर हो जाता है। जब भीतर के सौदर्य मे जीने लगे तो बाहर सौदर्य दिखता ही नहीं। लेकिन अगर तुम बाहर के सौदर्य को छोडकर भागे और यही तुम्हारी जीवन की शैली हो गई, निषेध, इनकार, नेति-नेति, तो तुम मुश्किल मे पड़ोगे। फासी लगा लोगे अपने हाथ से गले मे। और जिसको तुम छोडकर भागे हो, उसकी बुरी तरह याद आएगी। आयेगी ही।

इसलिए जो छोडकर भागते है—स्त्रियो के सबध मे चितन चलता रहता है, धन के सबध मे चितन चलता रहता है। छिड़कते है, झिटकते है उस चितन को, हटाते है। जब-जब स्त्री की याद आ जाती है, जोर-जोर से राम-राम-राम-राम जपने लगते है कि किसी तरह । मगर तुम्हारे जपने से क्या होता है? राम-राम-राम ऊपर रह जाता है, काम-काम-काम-काम भीतर चलता जाता है। तुम्हारे हर दो राम के बीच मे से काम की खबर आने लगती है।

भागो मत। घबडाओ मत। डरो मत। परमात्मा जीवन का निषेध नही है, जीवन का परिपूर्ण अनुभव है। और धर्म पलायन नही है, जीवन का परिपूर्ण भोग है।

महावीर ने प्रेम के लिए अहिसा शब्द चुना, वहा भूल हो गई। पर भूल हो जाने के लिए कारण थे। क्योकि प्रेम शब्द उपनिषद और वेद प्रेम की चर्चा कर रहे थे। और प्रेम का सब तरफ जाल था। और प्रेम के नाम पर सब तरफ भ्रष्टाचार था। तो महावीर को लगा, अब प्रेम का शब्द उपयोग करना खतरे से खाली नही है। उन्होने इसी आशा मे अहिसा का उपयोग किया कि वे समझा लेगे तुम्हे कि अहिसा का अर्थ प्रेम ही है। लेकिन वे न समझा पाए। कसूर उनका नही है। कसूर उनका है जिन्होने सुना। उन्होने तत्क्षण अहिसा मे से प्रेम तो न निकाला, नकारात्मकता निकाल ली। तो महावीर का धर्म धीरे-धीरे ऐसा धर्म हो गया कि इसमे क्या-क्या नही करना है, वही महत्वपूर्ण हो गया।

जाहिद हद्दे-होशो-खिरद मे रहा 'असीर'

नादा ने जिदगी ही को जिदा बना दिया।

वह जो बुद्धि-बुद्धि से जी रहा है

जाहिद हद्दे-होशो-खिरद मे रहा 'असीर'

—जो सदा ही बुद्धि की सीमा मे ही घिरा रहा, छोडने-त्यागने की सीमा मे ही घिरा रहा

नादा ने जिदगी ही को जिदा बना दिया।

—उस ना-समझ ने अपने जीवन को ही एक कारागृह बना लिया। छोडो-छोड़ो, सिकुडते जाओ—धीरे-धीरे तुम पाओगे, फासी लग गई अपने ही हाथो। लेकिन, तुम समझ न पाओगे, क्योकि जितनी तुम्हारी फासी लगेगी उतने ही लोग तुम्हारे पैरो मे फूल चढ़ायेगे। वे कहेगे, कैसे महात्यागी। तो तुम्हे फासी मे भी रस आने लगेगा। क्योकि फासी जितनी तुम कसते जाओगे, उतना ही तुम्हे सम्मान मिलेगा। जितने ज्यादा उपवास करोगे, जितना अपने को तोडते जाओगे, उतना सम्मान मिलेगा। जितना अपने को मिटाओगे, अपना घात करोगे, उतना सम्मान मिलेगा। तो उस मुनि को ज्यादा सम्मान मिलता है जो ज्यादा त्याग करता है। उसको वे लोग कहते है, महामुनि। लोग सिर रखते हैं उसके चरणो मे। तो अहकार मजा लेता है।

तो जिन्होने भी निषेध की यात्रा की, उन्होने सिर्फ अहकार को भर लिया। उनके जीवन मे आत्मा खुली नही, खिली नही।

तो मै तो प्रेम को ही चुनता हू। मै प्रेम के प्रेम मे हू। मै तो तुमसे कहूगा, लाख खराबिया हो इस शब्द मे—महावीर से कुछ सीख लो। महावीर ने इस शब्द की खराबियो को देखकर अहिसा चुना, लेकिन जो परिणाम हुए वे और भी बदतर हुए। बीमारी तो बीमारी, औषधि भी बीमारी बन गई।

मै तो तुमसे कहूगा, प्रेम चुनो। और प्रेम इतना सबल है कि वह अपनी भूलो को पार करने की क्षमता रखता है। वह जिदा है, तो गदा भी हो जाये तो स्नान कर सकता है। अहिसा लाश है, गदी न होगी, लेकिन उसकी स्वच्छता का भी क्या मूल्य है? उसकी स्वच्छता मे जीवन की सुवास नहीं है। उसकी स्वच्छता क्लिनिकल है।

मुझे तो प्रेम शब्द मे रस है। क्योकि मेरे देखे, यह सारा जगत प्रेम से आदोलित है। यहा श्वास-श्वास प्रेम से चल रही है। यहा फूल-फूल प्रेम से खिल रहे है। और अभी तो वैज्ञानिक भी सोचने लगे है कि जब प्रेम से सारा जगत बधा हुआ है—स्त्री पुरुषो से बधी, पुरुष स्त्रियो से बधे, मा-बाप बेटो-बच्चो से बधे, बेटे-बच्चे मा-बाप से बधे, मित्र मित्रो से बधे—जहा सब कुछ बधा है प्रेम से, वहा हमे यह मानकर चलना पड़ेगा कि हम एक प्रेम के सागर मे जी रहे है।

जब अणु की पहली दफा खोज हुई और अणु का विस्फोट किया गया, तो रदरफोर्ड ने, जिसने पहली दफा अणु के सबध मे गहरी खोज की, उसको एक सवाल उठा कि अणु के जो परमाणु है—इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पाजिट्रान—ये आपस मे कैसे बधे है? इनको कौन-सी शक्ति बाधे हुए है? ये बिखर क्यो नही जाते?

तुमने कभी खयाल किया—एक पत्थर पड़ा है, सदियो से पडा है, बिखरता क्यो नही? तुम इसे तोड़ दो हथौड़े से, बिखर गया, फिर तुम इसे जोड़ो, फिर रख दो टुकडो को पास-पास, मगर अब न जुडेगा। बात क्या हो गई? इतने दिन तक कौन-सी चीज इसे जोडे थी? अगर वह चीज इतने दिन तक जोडे थी, फिर तुमने टुकड़े पास रख दिये, अब क्यो नही जोडती? कोई चीज तोड दी तुमने। पत्थर नही तोडा तुमने, कोई और चीज जो सूक्ष्म थी, तोड दी। पत्थर तो अब भी वही का वही है, उसका वजन भी वही है, टुकड़े भी उतने के उतने है—लेकिन पहले जुडे थे, अब टूट गए। अब तुम लाख उनको पास-पास बिठाओ, उनको लाख समझाओ कि अब फिर से जुड जाओ, पूजा-प्रार्थना करो, यज्ञ-हवन करो, वह सुनेगा नही। कोई चीज तुमने तोड़ दी, कोई बहुत सूक्ष्म चीज तोड दी।

रदरफोर्ड सोचने लगा, कौन-सी चीज जोड़े हुए है। बहुत-से सिद्धात प्रतिपादित किये गये है। उनमे एक सिद्धात प्रेम का भी है, यह आश्चर्य की बात है। वैज्ञानिक और प्रेम की बात करे। लेकिन आश्चर्यचकित होने की जरूरत नही है। अगर जीवन सब तरफ प्रेम से जुडा है, अगर वृक्ष फलो से प्रेम के कारण जुडे है, अगर वृक्ष फूलो से प्रेम के कारण जुडे है, अगर आदमी आदमी से प्रेम के कारण जुड़ा है तो फिर निश्चित ही जीवन की इकाइया भी, ईटे भी प्रेम से ही जुड़ी होंगी। चाहे तुम उसे मैग्नेटिज्म कहो, चाहे तुम उसे इलेक्ट्रिसिटी कहो—यह नाम का भेद है। लेकिन कोई चुबकीय शक्ति सारे जीवन को जोड़े हुए है। उस चुबकीय शक्ति को भक्तो ने भगवान कहा है, प्रेम कहा है, परमात्मा कहा है। महावीर उसे सत्य कहते है।

लेकिन फिर महावीर का 'सत्य' शब्द बड़ा तटस्थ है। उससे रसधार नहीं बहती। सत्य बडा रूखा-सूखा है, मरुस्थल जैसा है। प्रेम मरूद्यान है, बड़ी रसधार बहती है। उपनिषद कहते है,

रसो वै स। वह जो परमात्मा है, रस उसका स्वभाव है।

रस को मै भी जीवन का सत्य मानता हू। और तुम्हारे जीवन मे रस तभी होता है जब प्रेम होता है। जहा-जहा प्रेम, वहा-वहा रस। जहा-जहा प्रेम खोया, वहा-वहा रस सूखा। रस मे डूबो। तन डूबे, मन डूबे, सब डूबे। रस मे डूबो। और तब तुम्हारी दृष्टि मे एक अलग ही दृश्य दिखाई पड़ना शुरू हो जायेगा।

'जमील' अपनी असीरी पे क्यो न हो मगरूर
यह फख्र कम है कि सैय्याद ने पसद किया।

'जमील' अपनी असीरी पे क्यो न हो मगरूर। जमील ने कहा है, क्यो न हम अभिमान करे इस बात का कि परमात्मा ने हमे कैद करने योग्य समझा, बाधने योग्य समझा। यह फख्र कम है कि सैय्याद ने पसद किया।—कि उसने हमे पसद किया, कि भेजा, कि बनाया।

भक्त तो अपने दुख मे से भी सुख का गीत सुन लेता है। अपनी जजीरो मे भी रस पा लेता है। कहता है, परमात्मा ने ही बाधा है। छूटने की जल्दी भक्त को नही है। भक्त कहता है, तेरे बधन है—राजी है। और ऐसे भक्त छूट जाता है। क्योकि जिस बधन को तुमने सौभाग्य समझ लिया, वह बधन बाधेगा कैसे? बधन तभी तक बाधता है जब तक तुम छूटना चाहते हो। तुम्हारे छूटने की वृत्ति के विपरीत होने के कारण बधन मालूम होता है। जब तुम स्वीकार कर लिये, राजी हो गए, तुमने कहा कि ठीक ।

'जमील' अपनी असीरी पे क्यो न हो मगरूर
यह फख्र कम है कि सैय्याद ने पसद किया।

यह कोई कम गौरव की बात है कि परमात्मा ने चुना। जो बनाया, जैसा बनाया । वह हर जगह उसके प्रेम को खोज लेता है।

और तुम्हारा जीवन अगर हर जगह प्रेम को खोजने लगे—ऐसी जगह भी जहा खोजना बड़ा मुश्किल है—जिस दिन तुम सब जगह प्रेम के दर्शन करने लगो, उस दिन परमात्मा के दर्शन हो गए।

जीसस ने कहा है, परमात्मा प्रेम है। और मै कहता हू, प्रेम परमात्मा है।

पर ये रास्ते अलग-अलग हैं। महावीर का रास्ता भक्त का रास्ता नहीं है—होश का। भक्त का रास्ता है बेहोशी का। भक्त का रास्ता मधुशाला का है। वह कहता है, यह होश ही हमारी पीड़ा है।

तुझ पे कुर्बा मेरे दिल की हर एक बेखबरी
आ। इसी मजिले-एहसासे-फरामोश मे आ।

हे प्रभु। भक्त कहता है, तुझ पे कुर्बा मेरे दिल की हर एक बेखबरी—और तो मेरे पास कुछ भी नही है, बेहोशी है। यह मेरे दिल का पागलपन है, दीवानगी है। यह तुझ पर कुर्बान करता हू। यह तुझ पर न्योछावर करता हू। और तो मेरे पास कुछ भी नही है।

तुझ पे कुर्बा मेरे दिल की हर एक बेखबरी
आ। इसी मजिले-एहसासे-फरामोश मे आ।

और मै तुझे याद भी कर सकू, यह भी मेरी सामर्थ्य नही। तू मेरे विस्मरण के द्वार से ही आ।

आ। इसी मजिले-एहसासे-फरामोश मे आ। मेरी इस बेहोशी के रास्ते से ही तू आ।

भक्त का ढग और। भक्त भी पहुच जाते है। साधक भी पहुच जाते है। महावीर का मार्ग साधक का है। नारद का मार्ग भक्त का है। लेकिन अगर तुम मुझसे पूछते हो, तो मेरे देखे भक्त के मार्ग से अधिक लोग पहुच सकते है। हा, जिनको भक्ति असभव ही मालूम पड़ती हो, उनको साधक का मार्ग है। वह मजबूरी है। तुम्हारा प्रेम अगर इतना मर गया है और जड हो गया है कि उसमे से तुम परमात्मा को प्रगट नही कर सकते, तो फिर छोडो। फिर तुम साधक के मार्ग से चलो।

लेकिन साधक का मार्ग दोयम है, नबर दो है। वह उनके लिए है जिनके भीतर की आत्मा कुछ मुर्दा हो गई है और जिनके भीतर प्रेम के स्रोत सूख गए है, जिनके भीतर गीत-गान नही उठता, जिनके भीतर नृत्य-नाच नही उठता, जिनकी बासुरी खो गई है—उनके लिए है। अगर तुम्हारी बासुरी अभी भी तुम्हारे पास हो और तुम गुनगुना सको गीत, तो सौभाग्यशाली हो। अगर यह न हो, अगर कही सब खो चुके बासुरी दूर जीवन की यात्रा मे, कही प्रेम को कुठाराघात हो गया, कही सब जड हो गया तुम्हारा हृदय, अब उसमे कोई पुलक नही उठती—तो फिर साधक का मार्ग है। साधक का मार्ग उन थोड़े-से लोगो के लिए है, जिनके भीतर प्रेम की सब सभावनाए समाप्त हो गई है। लेकिन अगर प्रेम की जरा-सी भी सभावना हो और अकुरण हो

सकता हो, तो फिक्र छोड़ो। जब गीत गाकर और नाचकर उसके घर की तरफ जा सकते है, तो फिर लबे चेहरे, उदास चेहरे लेकर जाने की कोई जरूरत नहीं। जब स्वस्थ, प्रफुल्लित उसकी तरफ जा सकते है, तो नाहक की उदासी, नाहक का वैराग्य थोपने की कोई जरूरत नहीं।

महावीर के मार्ग से लोग पहुचे है, तुम भी पहुच सकते हो। लेकिन महावीर का मार्ग बहुत सकीर्ण है, बहुत थोड़े-से लोग पहुचते है, बहुत थोड़े-से लोग जा सकते है।

भक्ति का मार्ग बड़ा विस्तीर्ण है। उस पर जितने लोग जाना चाहे, जा सकते है। लेकिन कुछ लोगो को कठिनाई मे रस होता है। कुछ लोगो को जो चीज सुलभता से मिलती हो, वह जचती नहीं। कुछ लोगो को जितने ज्यादा उपद्रव और मुसीबतो मे से गुजरना पडे उतना ही उन्हे लगता है, कुछ कर रहे है। उनके लिए महावीर का मार्ग बिलकुल ठीक है।

आखिरी प्रश्न आपके पास कुछ भी लिखती हू तो आप नाराज हो जाते है। पीछे मुझे बहुत घबडाहट होती है कि आपके पास दिल खोलू कि नही खोलू। और क्या मै कुछ भी नही कर पाती ? कोशिश तो हर हाल करती हू कि आपकी बात समझ मे आए। भक्त को अहकार का कुछ भी पता नही। कैसे क्या करू ? मेरी हिम्मत अब टूटी जा रही है। कृपया एक बार फिर समझाए।

तरु का प्रश्न है।

'आपके पास कुछ भी लिखती हू तो आप नाराज हो जाते है।' बहुत बार ऐसा लगेगा कि मै नाराज हुआ हू, पर मेरी नाराजगी मे केवल इतनी ही अभिलाषा है कि शायद नाराज होकर कहू तो तुम सुन लो, शायद नाराज होकर कहू तो तुम्हारा सपना टूटे, शायद चोट देकर कहू तो तुम थोड़े तिलमिलाओ और जागो।

झेन फकीर तो डडा हाथ मे रखते है तरु। और उन्होने देखा कि जरा उनका कोई शिष्य झपकी खा रहा है कि उन्होने सिर फोड़ा। लेकिन कई बार ऐसा हुआ है कि झेन सदगुरु का डडा पड़ा है और उसी क्षण साधक समाधि को उपलब्ध हो गया है।

तुम्हारी नींद्र गहरी है, चोट करनी जरूरी है। तुम्हे धक्के देने जरूरी है। तुम्हे लोरी ही गाकर सुनाता रहू तो तुम और भी सो जाओगे। हालाकि लोरी तुम्हे अच्छी लगती है। मगर तुम्हारे अच्छे लगने को देखू ? तो तुम्हे तो नीद ही अच्छी लगती है। तुम्हे जगाना होगा। तुम्हे झकझोरना होगा।

और धीरे-धीरे तुमने अपने रोगो को भी अपने जीवन का हिस्सा मान लिया है। तुम धीरे-धीरे अपने रोगो के भी प्रेम मे पड़ गए हो।

एक छोटा बच्चा अपने नाना-नानी के घर आया था। रात जब नानी उसकी सुला गई उसे कमरे मे और बिजली की बत्ती बुझाई, तो वह बैठ गया और रोने लगा। उसने पूछा कि क्या हुआ तुझे। नानी ने पूछा, क्या हुआ तुझे ? उसने कहा कि मुझे अधेरे का बहुत डर लगता है। पर उसने कहा, 'अरे पागल। और तू अपने घर भी तो अधेरे मे ही सोता है और अलग ही कमरे मे सोता है, तो फिर क्या डर है ?' तो उसने कहा, नानी, वह बात अलग है। वह मेरा अधेरा है।

अपने-अपने अधेरे से भी लगाव हो जाता है। मेरा अधेरा, मेरी बीमारी, मेरा रोग, मेरी चिता, मेरा सताप— 'मेरा' उससे भी जुड जाता है। तभी तो हम अपने दुख को भी पकडे बैठे रहते है। दुख छोडने मे भी डर लगता है, क्योकि कही ऐसा न हो कि दुख भी छूट जाये और हाथ खाली हो जाये, और कुछ मिले न, कम से कम कुछ तो है, दुख ही सही, दर्द ही सही। होने का पता तो चलता है कि है।

तो कई बार तुमसे मुझे नाराज भी होना पड़ता है—सिर्फ इसीलिए कि तुम्हे प्रेम करता हू, अन्यथा कोई कारण नही है।

'और पीछे मुझे बहुत घबड़ाहट होती है कि आपके पास दिल खोलू कि नहीं खोलू।'

क्या तुम्हारे खोलने न खोलने से कुछ फर्क पडेगा ? खुला ही हुआ है। जिस दिन अपने को जाना, उसी दिन से सभी का दिल खुल गया है। अपना दिल खुले तो सब का दिल खुल जाता है। अब मुझसे छिपाने का उपाय नहीं है। न बताओ, कोई फर्क न पडेगा। क्योकि मनुष्य मात्र की पीडा एक है। विस्तार के फर्क होगे, थोड़े बहुत रग-ढग के फर्क होगे, लेकिन मनुष्य मात्र की पीड़ा एक है—कि जिससे हम जन्मे है उससे हम बिछुड़ गए है, कि जो हमारा मूल स्रोत है उससे हम खो गये है। और इसलिए सब खोजते है, लेकिन तृप्ति नही होती। बहुत दौड़ते है, लेकिन

पहुचते नहीं, क्योकि अपने घर का पता ही भूल गया है। विस्तार की बाते अलग है। वे हर एक व्यक्ति की अलग है। उसमे जाने से कोई सार भी नही है।

तुम अपना दिल खोलो या न खोलो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी आधारभूत पीड़ा का मुझे पता है।

वह पीड़ा यही है कि कैसे प्रभु से मिलन हो जाये। प्रभु नाम दो या न दो। कैसे उससे मिलन हो जाये, जिसे पाकर फिर कुछ और पाने को न बचे।

'और क्या मै कुछ भी नही कर पाती हू ?'

करती बहुत हो, लेकिन करने से वह मिलता नहीं। कर-करके हारने से मिलता है। जब तक करना जारी रहता है, तब तक तो थोडी न थोड़ी अस्मिता बनी ही रहती है। 'मै कर रहा हू', तो मै बचा रहता हू। कृत्य से तो अहकार कभी मरता नही। हा, कृत्य से अहकार सुदर हो जाता है, सुरुचिकर हो जाता है। कृत्य से अहकार मे सजावट आ जाती है, शृगार आ जाता है, मिटता नही। मिटता तो तभी है, जब तुम्हे पता चलता है, मेरे किए कुछ भी न होगा। आत्यतिक रूप से ऐसा पता चलता है कि मेरे किए कुछ भी न होगा। अतिम रूप से यह निर्णय आ जाता है कि मेरे किए कुछ भी न होगा। वही 'मै' गिरता है, जहा उसके किए कुछ भी नही होता।

तो तुम करते तो बहुत हो, लेकिन मै तुमसे कहे चला जाता हू, कुछ भी नही, यह भी कुछ नही, और करो, और करो। और जो जितना ज्यादा कर रहा है उससे मै और ज्यादा कहता हू, यह कुछ भी नही, और करो। क्योकि जो जितना ज्यादा कर रहा है, उससे उतनी ही आशा बधती है कि करीब पहुच रहा है उस सीमा के, जहा सब करना व्यर्थ हो जाएगा। तो और दौड़ाता हू। जो पिछड़ गए है, उनको न भी कहू, क्योंकि उनके दौड़ने से भी कुछ बहुत होनेवाला नहीं है। लेकिन जो दौड़ मे बहुत आगे है और बड़ी शक्ति से दौड़ रहे हैं उनको तो जरा भी शिथिलता खतरनाक होगी और महगी पड़ जायेगी।

ऐसा उल्लेख है, रवींद्रनाथ के चाचा थे अवनींद्रनाथ। बड़े चित्रकार थे। भारत मे ऐसे चित्रकार इस सदी मे एक-दो ही हुए। दूसरा जो बड़ा चित्रकार भारत मे पैदा हुआ, नदलाल, वह उनका शिष्य था। रवींद्रनाथ एक दिन बैठे थे अवनीद्रनाथ के साथ। और नंदलाल, जब वह युवक था और विद्यार्थी था, कृष्ण का एक चित्र बनाकर लाया। रवींद्रनाथ ने लिखा है कि ऐसा सुदर चित्र मैंने पहले कभी देखा न था, कृष्ण की ऐसी छवि कोई बना न पाया था। और मै तो भावविभोर हो गया, विमुग्ध हो गया, नाच उठने का मन हो गया, लेकिन मै चुप रहा। क्योकि अवनींद्रनाथ मौजूद थे, और वे चित्र को बड़े गौर से देख रहे थे। बड़ी देर सन्नाटा रहा।

रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मै घबड़ा गया कि बात क्या है, वे कुछ कहे। तोड़े इस खामोशी को, कुछ तो कहे। नदलाल भी थरथर काप रहा था। और आखिर उन्होने आखे ऊपर उठाई और उस चित्र को उठाकर बाहर फेक दिया अपनी बैठक से। और नदलाल से कहा, 'इसको तुम बड़ी कला मानते हो ? यह तो बगाल मे जो पटिये है, जो कृष्ण का चित्र बनाते है, दो-दो पैसे मे बेचते है, उनके लायक भी नहीं है। तुम जाओ पटियो से सीखो कि कृष्ण कैसे बनाये जाते है।'

नदलाल सिर झुकाकर, चरण छूकर लौट गया। रवीद्रनाथ को तो बड़ा आश्चर्य हुआ और क्रोध भी आया। लेकिन गुरु-शिष्य के बीच क्या बोलना, तो वे चुप रहे। जब नदलाल चला गया तब उन्होने कहा कि यह मेरी समझ के बाहर है। आपके भी चित्र मैने देखे, लेकिन मै कह सकता हू कि उन चित्रो मे भी मुझे कोई इतना नही भाया जितना यह कृष्ण का चित्र भाया। और आपने इसको उठाकर फेक दिया।

लेकिन अवनीद्रनाथ चुप। तो उन्होने आखे उठाकर देखा, आख से आसू बह रहे है। अवनीद्रनाथ ने कहा कि तुम समझे नही, इससे मुझे बड़ा भरोसा है, इससे अभी और खीचा जा सकता है। अभी यह और ऊचाइया छू सकता है। मै भी जानता हू कि ऐसा चित्र मैंने भी नहीं बनाया। मगर इसकी अभी और सभावना है। अगर मै कह दू कि बस, बहुत हो गया। मेरी प्रशसा का हाथ इसके सिर पर पड़ जाये, तो यही इसकी रुकावट हो जायेगी। मै इसका दुश्मन नहीं हू।

नदलाल तीन साल तक पता न चला, कहा चला गया। वह गाव-गाव बगाल मे घूमता रहा और जहा-जहा पटियो की खबर मिली, गाव के ग्रामीण कलाकारो की, उनसे जाकर कृष्ण के चित्र बनाना सीखता रहा। तीन साल बाद लौटा। रवीद्रनाथ को नदलाल ने आकर कहा कि उनकी बडी अनुकपा है। ऐसा बहुत कुछ सीखकर लौटा हू जो यहा बैठकर कभी सीख ही न पाता।

उन ग्रामीण सरल हृदय लोगो मे तकनीक तो नही है, तकनीक की उन्हे कोई शिक्षा नहीं मिली है, लेकिन भाव की बडी गहनता है। और असली चीज तो भाव है, तकनीक मे क्या रखा है?

तो जो यहा मेरे पास तीव्रता से काम मे लगे है, उनकी पीठ मै नहीं थपथपाता। उनसे तो मै कहता हू, यह क्या है? बगाल के पटिये भी इससे बेहतर कर लेते है। उनसे तो मै यही कहे चला जाऊगा, यह भी कुछ नही—और-और-और—उस घडी तक, जहा कि करने की पराकाष्ठा आ जाये। क्योकि जहा करने की पराकाष्ठा आती है वही अहकार की भी पराकाष्ठा आ जाती है। और जब करना-मात्र गिर जाता है, जब तुम्हे लगता है, अब आगे करने को कुछ भी नही बचा और तुम बैठ जाते हो, उस बैठने मे ही पहली दफा परमात्म-तत्व से सबध होता है। तुम नही होते, उस बैठने मे तुम नही होते, उस बैठने मे तुम्हारे भीतर परमात्मा ही होता है।

'क्या मै कुछ भी नही कर पाती हू? कोशिश तो हर हाल करती हू कि आपकी बात समझ मे आये। भक्त को अहकार का कुछ भी पता नही। कैसे क्या करू? मेरी हिम्मत अब टूटी जा रही है।'

बड़े शुभ लक्षण है। किए जाओ।

हिम्मत को टूट ही जाना है। तुम्हारी हिम्मत ही बाधा है—भक्त के लिए। समर्पण के मार्ग पर तुम्हारी हिम्मत और तुम्हारा बल ही बाधा है। निर्बल के बल राम। वहा तो जब तुम बिलकुल निर्बल हो जाओगे, सब टूट जायेगा, उसी क्षण, उसी पल अनिर्वचनीय से मिलन हो जाता है।

मुहब्बत मे तेरी गिरफ्त हो कर
हर एक रजो-गम से रिहा हो गए हम।

उसके प्रेम को तुम्हारे चारो तरफ बधने दो, उसके प्रेम को कसने दो। उसके प्रेम की फासी मे तुम्हारा अहकार मर जायेगा।

मुहब्बत मे तेरी गिरफ्त हो कर
हर एक रजो-गम से रिहा हो गए हम।

अब तुम छोडो अपना रज भी, अपना गम भी, जो तुम्हारे पास है उसके चरणो मे चढ़ा दो। कुछ और तो है नही, कहा से लाओगे फूल? जो है आसू सही। उसके चरणो मे रख दो। और उससे कहा दो कि—

मुहब्बत मे तेरी गिरफ्त हो कर
हर एक रजो-गम से रिहा हो गये हम।

अब तू जान।

कितने दीवाने मुहब्बत मे मिटे है 'सीमाब'
जमा की जाए जो खाक उनकी तो वीराना बने।

कितने प्रेमी उसके प्रेम मे मिट गए है। जमा की जाये जो खाक उनकी तो वीराना बने। एक मरुस्थल बन जाये, अगर उनकी राख इकट्ठी करे। उसी राख के मरुस्थल मे अपनी राख को भी मिला दो।

गर बाजी इश्क की बाजी है
जो चाहो लगा दो डर कैसा?
गर जीत गए तो क्या कहना
हारे भी तो बाजी मात नही।
गर जीत गए तो क्या कहना।

तो महावीर हो जाता है आदमी, अगर जीत गया।

हारे भी तो बाजी मात नही। हार गए तो मीरा पैदा हो जाती है। अड़चन नही है, बाधा नही है।

गर बाजी इश्क की बाजी है
जो चाहो लगा दो डर कैसा?
गर जीत गए तो क्या कहना
हारे भी तो बाजी मात नही।

यह कुछ रास्ता ऐसा है प्रभु का कि जो पहुचते है, वे तो पहुच ही जाते है, जो भटकते है वे भी पहुच जाते है। ससार के मार्ग पर उलटी ही कथा है जो पहुचते है, वे भी नही पहुचते, जो भटकते है, उनका तो कहना ही क्या। परमात्मा के मार्ग पर जो पहुचते है, वे तो पहुच ही जाते है, जो भटकते है, वे भी पहुच जाते है। इतना ही क्या कम है कि हम उसे खोजने मे भटके? इतना कम है कि हमने उसे खोजना चाहा? इतना कम है कि अधेरी रात मे हमने उस दीये की आशाए और सपने सजोए?

कैफियत उनके करम की कोई हमसे पूछे
जिससे खुश होते है दीवाना बना देते है।

परमात्मा का प्रेम जब तुम पर बरसेगा तो दीवानगी और बढ़ेगी, आसू और बहेगे, हृदय टूटेगा, बिखरेगा। राख हो जाओगे तुम उस बड़े मरुस्थल मे—जहा मीरा भी खो गई है, चैतन्य भी खो गए है, जहा राबिया खो गई है, जहा कबीर, नानक, रैदास खो गए है। उस विराट मरुस्थल मे तुम भी खो

जाओगे। लेकिन खोने के पहले एक शर्त पूरी कर देनी जरूरी है कि तुम जो कर सकते हो वह कर लो, अन्यथा तुम्हे ऐसा लगा रहेगा कुछ न कुछ कर लेते। अटके रहोगे। अहकार थोड़ी-सी जगह बनाए रखेगा।

प्रेम की आकाक्षा जिसने की है और भक्ति का मार्ग जिसने चुना है, उसने बडे असभव की आकाक्षा की है।

इसलिए महावीर गणित की तरह साफ है। वहा साफ-सुथरा विज्ञान है। इसलिए जैन-धर्म मे विज्ञान की भाषा है। मीरा और चैतन्य, नारद और कबीर—उनकी भाषा अटपटी है, मधुक्कडी, उलटबासी जैसी। वहा गगा गगोत्री की तरफ बहती है। बडी रहस्य से भरी, क्योकि उन्होने बड़े असभव की आकाक्षा की है। महावीर की बात चाहे कितनी ही कठोर मालूम पडती हो, लेकिन गणित के समझ मे आनेवाली है। और प्रेमियो की बात चाहे कितनी ही सरल मालूम पडती हो, बड़ी असाध्य मालूम होती है।

उस दर्द को मागा मेरी हिम्मत कोई देखे
जो दर्द भी नाकाबिले-दरमा नजर आया।

—प्रेम का दर्द ऐसा है कि असाध्य है, इसका कोई इलाज नही है।

उस दर्द को मागा, मेरी हिम्मत कोई देखे
जो दर्द भी नाकाबिले-दरमा नजर आया।

—जिसका कोई इलाज नही, असाध्य है, जिसकी कोई औषधि नही।

प्रेम एक ऐसी पीडा है, जिसका कोई इलाज नही। लेकिन जिसने उस पीड़ा को स्वीकार कर लिया है, वह धीरे-धीरे पायेगा पीड़ा मीठी होती जाती है, पीड़ा और मीठी होती जाती है। और एक दिन पता चलता है कि जिसे हमने पहले क्षण मे दर्द जाना था, वह दर्द न था, वह उस प्रभु के आने की खबर थी, उसके पगो की ध्वनि थी, आहट थी। हम परिचित न थे, इसलिए दर्द जैसा मालूम हुआ था, या प्रभु इतनी तीव्रता से करीब आया था कि हम झेल न सके थे, हमारी पात्रता न थी, जैसे कि आख मे सूरज एकदम से पड़ गया हो और आखे चौंधिया जाये और दर्द मालूम पड़े।

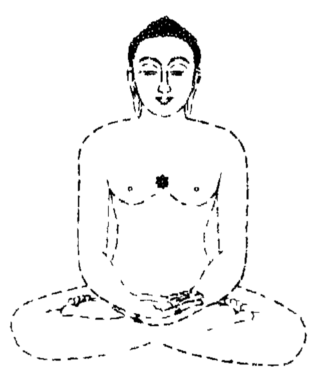
जब परमात्मा की तरफ कोई चल रहा है तो उसने एक ऐसी दीवानगी मागी है, जो असभव जैसी लगती है।

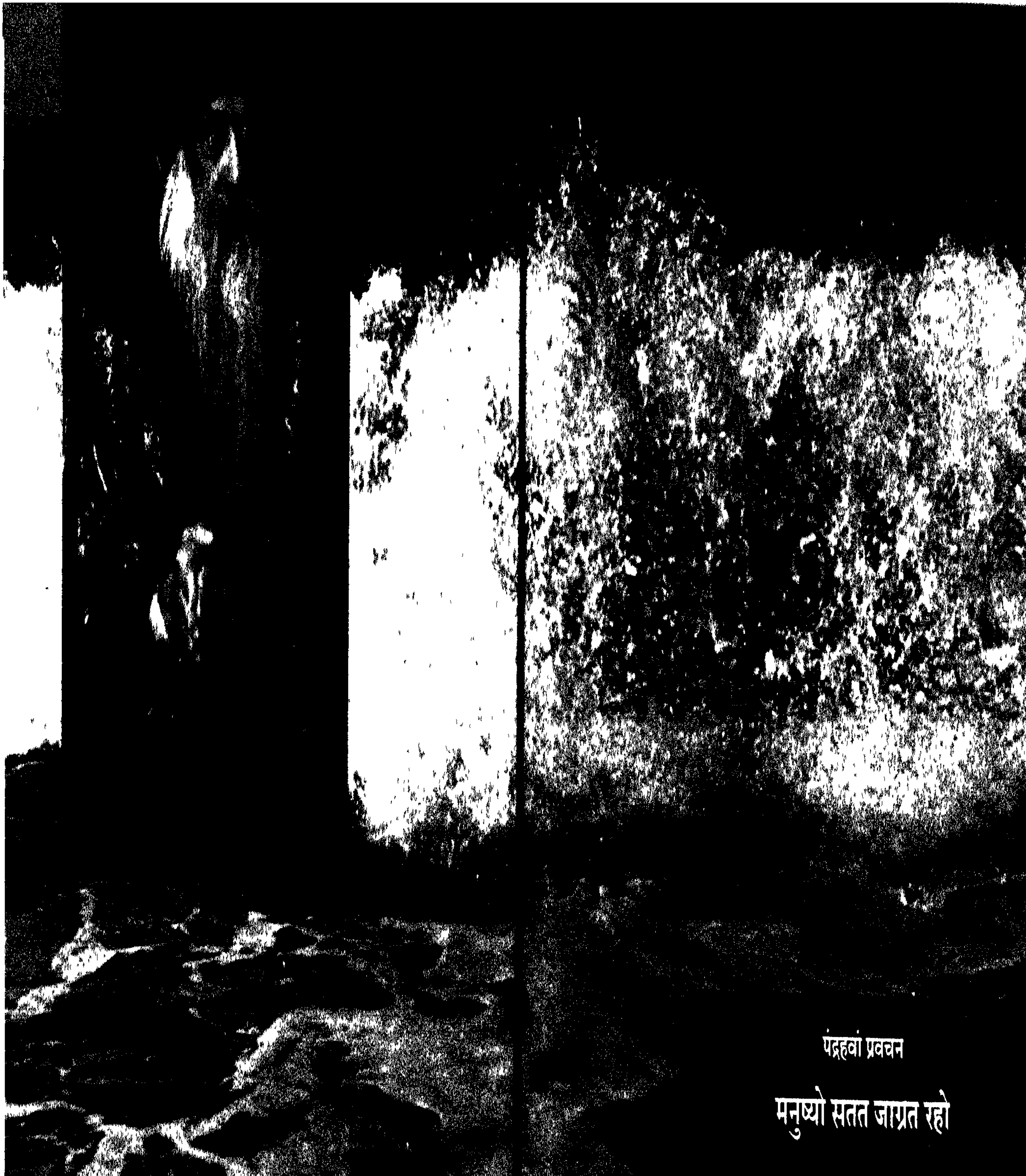
यहा ससार मे धन नही मिलता, यहा ससार मे प्रेमपात्र नही मिलता, यहा ससार मे कुछ भी नही मिलता—ऐसे ससार मे हमने परमात्मा को मागा है। जहा कुछ भी नही मिलता, जहा जो दिखाई पडनेवाली चीजे है, वे भी हाथ मे पकड़ मे नही आती—वहा हमने अदृश्य को पकडना मागा है। दृश्य पकड मे नही आता, सीमित पर हाथ नहीं बधते—वहा हमने असीम की अभीप्सा की है।

उस दर्द को मागा, मेरी हिम्मत कोई देखे
जो दर्द भी नाकाबिले-दरमा नजर आया।

राह बड़ी पीड़ा से भरी है, पर पीडा बडी मधुर है। उसके मार्ग पर लगे काटे भी अतत फूल बन जाते है।

आज इतना ही।





पंद्रहवां प्रवचन

मनुष्यो सतत जाग्रत रहो

सूत्र

सीतंति सुवताणं, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था।
तम्हा जागरमाणा, विधुणध पोराणय कम्म।।३९।।

जागरिया धम्मीण, अहम्मीण च सुत्तया सेया।
वच्छाहिवभगिणीए, अकहिसु जिणो जयतीए।।४०।।

पमायं कम्ममाहसु, अप्पमाय तहाऽवर।
तब्भावादेसओ वावि, बाल पडितमेव वा।।४१।।

न कम्मुणा कम्म खवेति वाला, अकम्मुणा कम्म खवेति धीरा।
मेघाविणो लोभमया ववीता, संतोसिणो नो पकरेति पाव।।४२।।

जागरह नरा! णिच्च, जागरमाणस्स बड्ढते बुद्धी।
जो सुवति ण सो धन्नो, जो जग्गति सो सया धन्नो।।४३।।

जह दीवा दीवसयं पइप्पए सो य दिप्पय दीवो।
दीवसमा आयरिया, दिप्पति पर च दीवेति।।४४।।

जिन-सूत्रो का सार आज के सूत्रो मे है—जिन साधना की मूल भित्ति, जिनत्व का अर्थ।

परमात्मा की खोज मे दो उपाय है। एक उपाय है उसमे ऐसे तल्लीन हो जाना कि तुम न बचो, उसमे ऐसे लीन हो जाना कि लीन होनेवाला बचे ही नहीं—जैसे सागर मे नमक की डगली डाल दे, खो जाती है, स्वाद फैल जाता है, लेकिन कोई बचता नही। दूसरा मार्ग है खोना जरा भी नही, जागना। इतने जागना कि जागरण ही शेष रह जाये, जागनेवाला न बचे।

पहला मार्ग बेहोशी का है, दूसरा मार्ग होश का है, लेकिन दोनो के भीतर सार बात एक है कि तुम न बचो। इसलिए तुम्हे रामकृष्ण जैसे उल्लेख महावीर और बुद्ध के जीवन मे न मिलेगे, कि रामकृष्ण परमात्मा का नाम लेते-लेते बेहोश हो गये, कि घटो बेहोश पड़े रहे। कभी-कभी दिनो होश मे न लौटते। और जब होश मे आते तो फिर रोने लगते और कहते कि मा। यह कहा मुझे बेहोशी की दुनिया मे भेज रही हो? वापिस बुला लो। उसी गहन बेहोशी मे मुझे वापिस बुला लो। मुझे ससार का होश नहीं चाहिए। मुझे तुम्हारी बेहोशी चाहिए।

ऐसा उल्लेख महावीर के जीवन मे असभव है, कल्पना में भी नहीं लाया जा सकता, महावीर की जीवन-सरणी मे बैठता नहीं। गिर पड़ना बेहोश होकर, यह तो दूर; महावीर एक पैर भी नही उठाते बेहोशी मे, हाथ भी नही हिलाते बेहोशी मे, आंख की पलक भी नही झपते बेहोशी मे।

लेकिन इन दोनो विपरीत दिखाई पड़नेवाले मार्गो के बीच मे कुछ सेतु है। वह सेतु स्मरण रखना। भक्त अपने को डुबा देता है—इतना डुबा देता है कि कोई बचता ही नही, पीछे लकीर भी नही छूट जाती है। साधक अपने को जगाता है—इतना जगाता है कि जागरण की ज्योति ही रह जाती है, कोई जागनेवाला नही बचता। हर हालत मे अहकार खो जाता है—चाहे परिपूर्ण रूप से तल्लीन होकर खो दो और चाहे परिपूर्ण रूप से जागकर खो दो। इन दो अतियो पर परिणाम एक ही होता है। इसलिए भक्त और ज्ञानी, प्रेमी और साधक सभी वही पहुच जाते है। मार्ग का बडा फर्क है, मजिल का जरा भी फर्क नहीं है।

राह जुदा, सफर जुदा, रहजनो-रहबर जुदा
मेरे जुनूने-शौक की मजिले-बेनिशा है और।

महावीर से पूछो तो वे कहेगे राह जुदा, सफर जुदा, रहजनो-रहबर जुदा। यह मेरी राह अलग, इस राह की यात्रा अलग, इतना ही नही, मेरी राह पर लूटनेवाले और पथ-प्रदर्शक भी अलग। लुटेरे भी मेरी राह के अलग है। स्वभावत होगे। क्योकि जहा होश साधना है, वहा लुटेरे अलग होगे। वहा वही लुटेरे बन जायेगे जो भक्ति के मार्ग पर पथ-प्रदर्शक होते है। जहा होश को गवा देना है, मस्ती मे डूब जाना है, जहा परमात्मा की शराब पी लेनी है—वहा जो सहयोगी है, वह महावीर के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा। महावीर के मार्ग पर जो सहयोगी है, वह महावीर के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा। महावीर के मार्ग पर जो सहयोगी है, पथ-प्रदर्शक है, राहबर है, वह भक्ति के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा।

ध्यान भक्ति के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा, वहा प्रार्थना पथ-प्रदर्शक है। महावीर के मार्ग पर प्रार्थना लुटेरा हो जायेगी,

वहा ध्यान पथ-प्रदर्शक है। लेकिन मजिल पर जाकर सब मिल जाते हैं। क्योंकि पहुचना उस जगह है जहा तुम अशेष भाव से, कुछ भी बचे न, परिपूर्ण रूप से मुक्त हो जाओ।

इसे भी खयाल मे ले लेना। साधारणत हम सोचते है, मै मुक्त हो जाऊगा, तो ऐसा लगता है कि मै तो बचूगा—मुक्त होकर बचूगा। लेकिन जो गहरे उतरने की कोशिश करेगे या जिन्होने सच मे ही समझना चाहा है—मै मुक्त हो जाऊगा, इसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि 'मै' से मुक्त हो जाऊगा। 'मै' भाव चला जायेगा। 'मै' भाव जहा तक है वहा तक मुक्ति नहीं है। जहा 'मै' भाव विसर्जित हो जाता है, वही मुक्ति है। 'मै' भाव को विसर्जित करने के दो उपाय है या तो डुबा दो, या जगा लो।

ऐसा समझो, पतजलि ने योग-सूत्रो मे मनुष्य के चित्त की तीन दशाये कहीं है। एक है सुषुप्त। एक है जाग्रत। एक है स्वप्न। जिस दशा मे हम साधारणत है, वह स्वप्न की दशा है, कामना की, विचारणा की, ऊहापोह की, हजार-हजार वासनाओ की। स्वप्न की दशा है। इस स्वप्न की दशा के दोनो तरफ एक-एक दशाये है एक सुषुप्ति की और एक जागृति की। इस स्वप्न की दशा से मुक्त होना है। इस स्वप्न की दशा मे ही तुमने स्वप्न देख लिया है कि तुम हो। यह तुम्हारा स्वप्न है। या तो सुषुप्ति मे खो जाओ, जहा स्वप्न न बचे, या जाग्रत हो जाओ, जहा स्वप्न के बाहर आ जाओ।

तो स्वप्न के बीच मे हम खड़े है। स्वप्न यानी ससार। इसलिए तो शकर उसे माया कहते है। वह स्वप्न की दशा है। वहा जो नही है, वह हम देख रहे है। और वहा जो है, वह हमे दिखाई नही पड़ रहा है। वहा हम जो देख रहे है, वह हमारा ही प्रक्षेपण है। वहा जिसमे हम जी रहे है, वह हमारी ही कामना, हमारी ही आशा, हमारी ही भावना है। सत्य से उसका कोई सबध नही। वह हमारी निर्मिति है।

तुमने स्वप्न मे देखा। स्वप्न देखते समय तो ऐसा ही लगता है कि सब सच है, ऐसा ही लगता है कि कुछ भी असत्य नहीं है। सुबह जागकर पता चलता है कि अरे, एक सपने मे खो गये थे, इतना सत्य मालूम पड़ा था।

रोज-रोज तुम सपना देखे हो, रोज-रोज सुबह पाया है कि असत्य है, फिर भी जब रात घनी होती है, फिर नीद मे डूब जाते हो, फिर सपना तरगित होने लगता है, फिर भूल जाते हो, वह याद काम नही आती।

स्वप्न की दशा से बाहर होने के दो उपाय है। या तो सुषुप्ति मे डूब जाओ। रामकृष्ण और भक्तो ने सुषुप्ति का उपयोग किया है स्वप्न से मुक्त होने के लिए। महावीर और बुद्ध और पतजलि ने जागृति का उपयोग किया है स्वप्न से मुक्त होने के लिए। लेकिन असली बात स्वप्न से मुक्त होना है। या इस किनारे या उस किनारे, यह मझधार मे न रह जाओ।

महावीर के ये सूत्र जागरण के सूत्र है। इनका सार-भाव है जागो।

मैने सुना है, एक आदमी भर-दुपहर भागा हुआ शराबघर मे आया। उसने कलारिन से कहा कि एक बात पूछने आया हू। बडा बेचैन और परेशान था। जैसे कुछ गवा बैठा हो, कुछ बहुत खो गया हो।

'एक बात पूछनी है क्या रात मै यहा आया था?'

'जरूर आये थ।'

'कई लोगो के साथ आया था?'

'कई लोगो के साथ आये थ।'

'सबको शराब पिलवाई थी, खुद भी पी थी?'

'जरूर पिलवाई थी और पी थी।'

वह आदमी बोला, 'शुक्र खुदा का। सौ रुपये चुकाये थे?'

उसने कहा, 'बिलकुल चुकाये थे।'

उसने कहा, 'तब कोई हर्जा नही।'

वह बड़ा प्रसन्न हो गया। उस कलारिन ने पूछा कि मै कुछ समझी नही, बात क्या है? उसने कहा, 'मै तो यही सोच रहा था कि सौ रुपये कही गवा बैठा। इसलिए ही परेशान था।'

बेहोश आदमी भी सोचता है कि कही गवा तो नहीं बैठा। लेकिन बेहोशी मे कमाओगे कैसे, गवाओगे ही। चाहे शराब पीने मे गवाये हो, चाहे किसी बगीचे की बैच पर भूल आये होओ। शायद बगीचे की बैच पर भूल आना ज्यादा बेहतर था, सौ रुपये ही गवाते, कम से कम होश तो न गंवाया होता। लुट जाना बेहतर था, यह तो लुट जाने से बदतर दशा है। पर वह आदमी बोला, 'शुक्र खुदा का। मै तो डर रहा था कि कही रुपये गवा तो नही बैठा।'

जिदगी के अत मे अधिक लोग ऐसी ही दशा मे पाते है। सोचते है, कही जिदगी गवा तो नही बैठे। लेकिन कितने ही बडे मकान

बनाकर छोड जाओ और कितने ही धन की राशिया लगा जाओ, इससे क्या फर्क पड़ता है?

जिंदगी तो गई और गई। जिदगी तो राख हो गई। मकान बना आये, खडहर बनेगे। बड़ी दौड-धूप की थी, बड़ी तिजोड़िया छोड आये—कोई और उनकी मालकियत करेगा। तुम्हारे हाथ तो खाली है। इससे तो बेहतर होता कि तुम बैठे ही रहते और तुमने कुछ न किया होता, तो कम से कम तुम उतने पवित्र तो रहते जितने जन्म के समय थे। यह तो सारी आपाधापी तुम्हे और भी अपवित्र कर गई। यह तो तुम और भी शराब से भरकर विदा हो रहे हो। यह तो तुम और जहर ले आये।

जिदगी से कमाया तो कुछ भी नही, एक नयी मौत और कमाई, फिर जन्मने की वासना कमाई। यह कोई कमाना हुआ? जिसे तुम जिदगी कहते हो, महावीर उसे स्वप्न कहते है। और जिसे तुम जागरण कहते हो, वह जागरण नही है, वह सिर्फ खुली आख देखा गया सपना है।

हम दो तरह के सपने देखते है एक, रात जब हम आख बदकर लेते है, और एक तब जब सुबह हम आख खोल लेते है। लेकिन हमारा सपना सतत चलता है। महावीर के हिसाब से सपने से तो तुम तभी मुक्त होते हो, जब तुम्हारा मन ऐसा निष्कलुष होता है कि उसमे एक भी विचार की तरग नही उठती। जब तक तरगे है, तब तक स्वप्न है। जब तक तुम्हारे भीतर कुछ चित्र घूम रहे है और तुम्हारे चित्त पर तरगे उठ रही है—'यह हो जाऊ, यह पा लू, यह कर लू, यह बन जाऊ'—तब तक तुम स्वप्नो से दबे हो। फिर तुम्हारी आख खुली है या बद, इससे बहुत फर्क नही पडता। तुम बेहोश हो। महावीर के लिए तो होश तभी है, जब तुम्हारा चित्त निर्विचार हो।

तो जागरण का अर्थ समझ लेना। जागरण का अर्थ तुम्हारा जागरण नही है। तुम्हारा जागरण तो नीद का ही एक ढग है। महावीर कहते है जागरण चित्त की उस दशा को, जब चैतन्य तो हो लेकिन विचार की कोई तरग मे छिपा न हो, कोई आवरण न रह जाये विचार का, शुद्ध चैतन्य हो; बस जागरण हो। तुम देख रहे हो और तुम्हारी आख मे एक भी बादल नही तैरता—किसी कामना का, किसी आकाक्षा का। तुम कुछ चाहते नही। तुम्हारा कोई असतोष नही है। तुम जैसे हो, उससे तुम परम राजी हो। एक क्षण को भी तुम्हारा यह राजीपन, तुम्हारा यह स्वीकार जग जाये और तुम जगत को खुली आख से देख लो—आख जिस पर सपनो की पर्त न हो, आख जिस पर सपनो की धूल न हो, ऐसे चैतन्य से दर्पण स्वच्छ हो और जो सत्य है वह झलक जाये—तो तुम्हारी जिदगी मे पहली दफा, वह यात्रा शुरू होगी जो जिनत्व की यात्रा है। तब तुम जीतने की तरफ चलने लगे। सपने मे तो हार ही हार है।

जिन यानी जीतने की कला। जिनत्व यानी स्वय के मालिक हो जाने की कला। हमने और सबके तो मालिक होना चाहा है—धन के, पत्नी के, पति के, बेटे के, राज्य के, साम्राज्य के—हमने और का तो मालिक होना चाहा है, एक बात हम भूल गये है, बुनियादी, कि हम अभी अपने मालिक नही हुए। और जो अपना मालिक नही है, वह किसका मालिक हो सकेगा। वह गुलामो का गुलाम हो जायेगा।

पहला सूत्र

सीतति सुवताण, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था।

'इस जगत मे ज्ञान सारभूत अर्थ है।'

इस जगत मे बोध सारभूत अर्थ है। अवेयरनेस।

सीतति सुवताण, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था।

तम्हा जागरमाणा, विधुणध पोराणय कम्म।।

'अत सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मो को प्रकपित करो। जो पुरुष सोते है, उनका अर्थ नष्ट हो जाता है।'

जीवन मे हमारे भी अर्थ है, कोई मीनिग है। हम भी कुछ पाना चाहते है। हा, हमारे भी कुछ बहाने है। अगर आज मौत आ जाये तो तुम कहोगे, 'ठहरो। कई काम अधूरे पड़े है। न मालूम कितनी यात्राए शुरू की थी, पूरी नही हुई। ऐसे बीच मे उठा लोगी तो अर्थ अधुरा रह जायेगा। अभी तो अर्थ भरा नही। अभी तो अभिप्राय पूरा नही हुआ। रुको।'

सिकदर, नेपोलियन साम्राज्य बनाने मे जीवन का अर्थ देख रहे है। कोई कुछ और करके जीवन का अर्थ देख रहा है। लेकिन महावीर कहते है इस जगत मे बोध सारभूत अर्थ है। और कुछ भी नही—न धन, न पद, न प्रतिष्ठा।

'जो पुरुष सोते है उनका यह अर्थ नष्ट हो जाता है।'

अर्थ तुम्हारे भीतर है और तुम्ही सो रहे हो तो अर्थ का जागरण कैसे होगा? तुम्हारे जागने मे ही तुम्हारे जीवन का अर्थ जागेगा।

मेरे पास अनेक लोग आते है। वे कहते है, जीवन का अर्थ

क्या है? जैसे कि अर्थ कोई बाहर रखी चीज है, जो कोई बता दे कि यह रहा। जैसे तुम पूछो, सूरज कहा है, कोई बता दे कि वह रहा आकाश मे।

लोग पूछते है, जीवन का अर्थ क्या है?

जैसे अर्थ कोई बनी-बनाई, रेडीमेड वस्तु है, जो कही रखी है और तुम्हे खोजनी है।

जीवन मे अर्थ नही है। अर्थ तुममे है। और तुम जागोगे तो जीवन मे अर्थ फैल जायेगा। और तुम सोये रहोगे तो जीवन निरर्थक हो जायेगा। फिर इस निरर्थकता के खालीपन से बड़ी घबड़ाहट होती है, तो आदमी झूठे-झूठे अर्थ कल्पित कर लेता है। वे सहारे है, सात्वनाए है। तो कोई कहता है, बच्चो को बड़े करना है। लगा रहता है, व्यस्त रहता है। क्योकि जब भी कोई अर्थ नही मालूम पड़े बाहर, तो भीतर की निरर्थकता मालूम होती है। बच्चो को बडे करना है। तुम्हारे पिता भी यही करते रहे, उनके पिता भी यही करते रहे। ये बच्चे बड़े किसलिए हो रहे है—ये भी यही करेगे। ये भी बच्चे बडे करेगे।

इसका मतलब क्या है? प्रयोजन क्या है? अगर तुम्हारे पिता तुमको बड़ा करते रहे और तुम अपने बच्चो को बड़ा करते रहोगे, तुम्हारे बच्चे उनके बच्चो को बड़ा करते रहेगे, तो इस बडे करने का प्रयोजन क्या है? इस सतत सक्रियता का अर्थ क्या है? इसमे कुछ अर्थ तो नही है। यह तो तुम्हे भी कभी-कभी झलक जाता है।

धन ही इकट्ठा कर लोगे तो क्या होगा? अतत आती है मौत। सब हाथ खाली हो जाते है। सब छिन जाता है। जो छिन ही जायेगा, उसे पकड-पकड़कर क्या होगा? लेकिन कम से कम बीच मे कुछ अर्थ है, प्रयोजन है—इस तरह की भ्राति तो पैदा हो जाती है।

लोग अजीब-अजीब अर्थ पैदा कर लेते है।

एक युवक मेरे पास आया। अपनी प्रेयसी को लेकर आया और उसने कहा कि मुझे विवाह करना है। मैने कहा कि अभी तेरी उम्र बीस साल से ज्यादा नही है, अभी इतनी जल्दी बोझ क्यो लेता है? अभी दो-चार-पाच साल और मुक्त रहकर गुजर सकते है। इतने उत्तरदायित्व लेने की अभी जरूरत कहा है? अभी तू स्कूल मे पढ़ता है। थोड़ा रुक। पढ लिख ले।

उसने कहा, 'उत्तरदायित्व लेने के लिये ही तो विवाह करना चाहता हू, अन्यथा खाली-खाली मालूम पड़ रहा है। मेरे ऊपर कोई उत्तरदायित्व नही है।' धनी घर का लड़का है। सब सुविधा है। 'खाली-खाली मालूम हो रहा हू। शादी कर लूगा तो कुछ भरापन हो जायेगा।'

अभी अमरीका मे एक आदमी पर मुकदमा चलता था, क्योकि उसने सात आदमियो को गोली मार दी थी—अकारण, अपरिचित अजनबियो को। ऐसे लोगो को जिनका चेहरा भी उसने नही देखा था, पीछे से। सागर-तट पर कोई बैठा था, उसने पीछे से आकर गोली मार दी। एक ही दिन मे सात आदमी मार डाले। बामुश्किल पकडा जा सका। पकडे जाने पर अदालत मे जब पूछा गया कि तूने किया क्यो? क्योकि इनसे तेरी कोई दुश्मनी न थी, दुश्मनी तो दूर, पहचान भी न थी।

तो उसने कहा कि मेरा जीवन बड़ा खाली-खाली है, मै कुछ काम चाहता था, किसी चीज से अपने को भर लेना चाहता था। मै चाहता हू कि लोगो का ध्यान मेरी तरफ आकर्षित हो। और वह काम हो गया। अब मुझे फिक्र नहीं, तुम फासी दे दो। लेकिन सब अखबारो मे मेरा फोटो भी छप गया, सभी अखबारो मे नाम भी छप गया। आज हजारो लोगो की जबान पर मेरा नाम है, यह तो देखो।

लोग कहते है, बदनाम हुए तो क्या, कुछ नाम तो होगा ही।

राजनीतिज्ञो मे और अपराधियो मे बहुत फर्क नही है। राजनीतिज्ञ समाज-सम्मत व्यवस्था के भीतर नाम को कमाने की चेष्टा करता है। अपराधी समाज-सम्मत व्यवस्था नहीं खोज पाता, समाज के विरोध मे भी कुछ करके नाम पाने की आकाक्षा करता है। इसलिए अगर कोई रातनीतिज्ञ बहुत दिनो तक राजनीति को न पा सके तो उपद्रवी हो जाता है, क्रिमिनल हो जाता है, अपराधी हो जाता है। क्योकि मूल आकाक्षा है लोगो का ध्यान आकर्षित करना। मूल आकाक्षा है लोगो को लगे कि मै कुछ हू, दुनिया कहे कि तुम कुछ हो, तुम्हारा कुछ अर्थ है। तुम ऐसे ही आये और चले नही गये, तुमने बड़ा शोर मचाया। तुम्हारा आना एक तूफान की तरह था। दुनिया को तुम्हारे ऊपर ध्यान देना पड़ा।

तुमने कभी खयाल किया? तुम वस्त्र भी इसीलिए पहनते हो ढग-ढग के कि ध्यान पड़े, कोई देखे। स्त्रिया देखीं, नयी साड़िया पहनकर आ जाती है तो बड़ी बेचैन रहती है, जब तक

कोई पूछ न ले, कहा खरीदी, जब तक कोई साडी का पोत न देखे और प्रशसा न कर दे।

तुमने वह कहानी तो सुनी होगी। बड़ी पुरानी कहानी है कि एक औरत ने अपने घर मे आग लगा ली थी और जब लोग आये तब वह हाथ ऊचे-ऊचे उठाकर चिल्लाने लगी कि हे परमात्मा। नष्ट हो गई, मर गई, लुट गई। तब किसी औरत ने पूछा, 'अरे। ये कगन तो हमने देखे ही नही, कब बनवाये ?' उसने कहा कि नासमझ, पहले ही पूछ लेती तो घर मे आग क्यो लगानी पडती। यह गाव भर की राह देखती रही, कगन बनाये है, कोई पूछेगा। किसी ने न पूछा।

जब झोपडे मे आग लगी और आग की रोशनी उठी और कगन चमकने लगे और वह हाथ उठाने का मौका आया कि अब चिल्ला-चिल्लाकर, हाथ हिला-हिलाकर वह कह सकती है ।

तुम जरा अपने पर गौर करना। हम सभी कगन दिखाने निकले है, चाहे घर मे आग लगाकर भी दिखाना पडे। लेकिन ऐसा न हो कि हम ऐसे ही विदा हो जाये, किसी को पता भी न चले कि कब आये, कब चले गये, कब उठे, कब बैठे, कब जन्मे। इस कगन दिखाने को लोग कहते है, अरे। कुछ नाम कर जाओ। कहते है, कुछ नाम छोड़ जाओ इतिहास मे। तो तैमूरलग और चगेज और नादिरशाह इतिहास मे नाम छोड जाते है, हजारो लोगो को आग लगवाकर, हजारो लोगो को काटकर।

कहते है, एक वेश्या तैमूर के शिविर मे नाचने आयी थी। जब वह रात जाने लगी तो वह डरती थी, क्योकि रास्ता अधेरा था। और कोई दस-बारह मील दूर उसका गाव था। तो तैमूर ने कहा, घबडा मत। उसने अपने सैनिको से कहा कि इसके रास्ते मे जितने गाव पड़े, आग लगा दो। थोड़े सैनिक भी झिझके कि यह जरा अतिशय मालूम पड़ता है। एक मशाल से ही इसको पहुचाया जा सकता है। लेकिन तैमूरलग ने कहा, 'इतिहास याद नही रखेगा मशाल से पहुचाओगे तो। पता रहना चाहिए आने वाले हजारो सालो को कि तैमूरलग की वेश्या थी, कोई साधारण वेश्या न थी। उसके द्वार मे, दरबार मे नाचने आयी थी।' कोई आठ-दस छोटे-छोटे गावो मे, जो रास्ते मे पड़ते थे, आग लगा दी गई। गाव मे लोग सो रहे थे, उनको पता भी नहीं था, आधी रात—ताकि रास्ता रोशन हो जाये। वेश्या उन जलती हुई लाशो के बीच से अपने गाव पहुच गई।

तुमने कभी खयाल किया है कि तुम कितने उपाय करते हो कि किसी तरह लोगो का ध्यान आकर्षित हो जाये। अर्थ नही है जीवन मे तो तुम झूठे अर्थ पैदा करने की कोशिश करते हो—कोई कह दे कि 'तुम बडे सार्थक हो। तुम जो कर रहे हो वह मूल्यवान है। तुम बड़ा ऊचा काम कर रहे हो।' तुमसे कोई कुछ भी करवा ले सकता है, बस तुमसे यह कहलवा दिया जाये कि तुम कोई बडा काम कर रहे हो, बड़ा ऊचा, बडा महत्वपूर्ण।

इस जगत मे बोध के अतिरिक्त और कोई अर्थ नही है। और जितने अर्थ तुम खोजते हो, उन सब से तुम्हारी बेहोशी घनी होती है, बढ़ती है, जागरण नही आता।

'जो पुरुष सोते है उनके अर्थ नष्ट हो जाते है। अत सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मो को प्रकपित करो।'

पुरानी आदते पड़ी है बहुत, उनको हिलाओ, डुलाओ, ताकि उनसे छुटकारा हो सके, वे ढीली हो जाये। बडा बहुमूल्य वचन है 'अत सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मो को प्रकपित करो।' हिलाओ—जैसे वृक्ष को कोई हिलाये और उसकी जड़े उखड़ जाये। अब पानी मत सीचो और। ऐसे ही क्या कम दुख भोगा है। ऐसे ही क्या कम भटके हो। पानी मत सीचो। लेकिन जो हमे जगाता है, वह दुश्मन मालूम पडता है, क्योकि वह हिलाता है।

आस्पेस्की ने अपनी किताब 'इन सर्च आफ द मिरेकुलस' अपने गुरु गुरजिएफ को समर्पित की है, तो उसमे लिखा है 'गुरजिएफ के लिए—जिसने मेरी नीद को तोड दिया।'

लेकिन जब कोई तुम्हारी नीद तोड़ता है तो सुखद नही मालूम होता। जब कोई तुम्हारी नीद तोडता है तो तुम्हे लगता है दुश्मन। इसलिए जगत मे नीद तोड़नेवाले सदा दुश्मन मालूम पडे। सुकरात को हमने ऐसे ही जहर नही पिला दिया था, और न जीसस को हमने ऐसे ही सूली पर लटका दिया, न हमने महावीर को ऐसे ही पत्थर मारे और कान मे खीले ठोके। यह अकारण नही था। ये लोग नीद तोड़ रहे थे। ये अलार्म की तरह थे। तुम जब मजे से सो रहे थे और सुबह का आखिरी सपना देख रहे थे, तब ये बीच मे आ गये और उन्होने उपद्रव मचा दिया कि जागो। तुम्हारा भाव तो इन दो पक्तियो मे प्रगट हुआ है।

न अजा हो, न सहर हो, न गजर हो शबे-वस्ल

क्या मजा हो जो किसी को न जगाए कोई।

न अजा हो—न तो मस्जिद मे कोई अजान पडे, न सहर हो—न सुबह हो, न सूरज ऊगे, न गजर हो—न कोई मदिर मे घटियो को बजाये, मिलन की रात। क्या मजा हो जो किसी को न जगाये कोई।

सोने मे हमारी बड़ी आतुरता है। जिसको हम सुख कहते है, अगर तुम गौर से पाओगे तो वह एक मधुर सपना देखने से ज्यादा नही है। जिसको हम सुखी जिदगी कहते है, वह ऐसी जिदगी है, जिसमे मधुर स्वप्नो का काफी जाल है। जिसको हम दुखद जिदगी कहते है, वह भी सपनो की ही जिदगी है, उसमे सपने दुख से भरे है, नाइटमेयर जैसे है।

लेकिन सपना तो सपना है। तुम सुखद सपने देखकर भी एक दिन मर जाओगे तो क्या होगा?

इसलिए महावीर कहते है, अर्थ बाहर नही है, अर्थ तो तुम्हारे भीतर की ज्योति के प्रज्वलित हो जाने मे है। तुम्हारी रोशनी तुम्हारे जीवन को भर दे और सपनो को तितर-बितर कर दे। ओर तुमने अब तक पूर्व जन्मो मे जो अर्जित कर्म किये है, जिनके कारण जड़े मजबूत हो गई है सपनो की, जिनके कारण सपने सत्य मालूम होते है, जिनके कारण जो नही है वह बहुत वास्तविक मालूम हो रहा है—उनको हिलाओ, प्रकपित करो। उन जड़ो को तोडो और उखाडो।

'धार्मिको का जागना श्रेयस्कर है और अधार्मिको का सोना श्रेयस्कर है।' बडा बहुमूल्य वचन है। महावीर कहते है, धार्मिको का जागना श्रेयस्कर है और अधार्मिको का सोना श्रेयस्कर है।

नादिरशाह के जीवन मे भी ऐसा उल्लेख है। उसने एक सूफी फकीर को पूछा, क्योंकि वह खुद बहुत आलसी था और सुबह दस बजे के पहले नही उठता था। रात देर तक नाच-गान चलता, शराब चलती, तो सुबह दस-बारह बजे उठता। उसने एक सूफी फकीर को पूछा कि मेरे दरबारी मुझ से कहते है कि इतना आलस्य ठीक नही है, तुम क्या कहते हो? उस सूफी फकीर ने महावीर का यह वचन दोहराया मालूम होता है, क्योकि बिलकुल यही वचन उसने दोहराया। उसने कहा, आप तो अगर बिलकुल सोये चौबीस घटे तो अच्छा है। नादिरशाह थोड़ा चौका। उसने कहा, 'तुम्हारा मतलब?' उसने कहा, 'आप जैसे व्यक्ति जितनी देर सोये, उतना ही उपद्रव कम। आप तो सोये ही रहे।'

महावीर कहते है, धार्मिको का जागना श्रेयस्कर है, अधार्मिको का सोना श्रेयस्कर है। क्योकि अगर अधार्मिक सक्रिय हो उठे, तो अधर्म ही करेगा। महावीर यह कह रहे है कि अधार्मिक का तो शक्तिहीन होना अच्छा है, धार्मिक का शक्तिशाली होना अच्छा है। महावीर यह कह रहे है, धार्मिक के पास बल हो तो धर्म घटेगा, अधार्मिक को पास बल होगा तो अधर्म घटेगा, वह कुछ न कुछ उपद्रव करेगा। राजनीतिज्ञ बीमार रहे तो अच्छा है, अस्पतालो मे रहे तो अच्छा है। ठीक हुए कि वे कुछ उपद्रव करेगे। बिना उपद्रव किये वे रह नही सकते है। उपद्रव के लिए अच्छे-अच्छे नाम देगे। उपद्रव को सजायेगे, शृगारेगे। उपद्रव को क्राति, स्वतत्रता, समानता, साम्यवाद, न मालूम क्या-क्या नाम देगे। लेकिन बहुत गहरे मे उपद्रव की आकाक्षा है। खाली वे बेठ नही सकते।

महावीर व्यग्य कर रहे है। वे यह कह रहे है, अधार्मिक सोये रहे तो ठीक, धार्मिक जागे।

इसलिए महावीर की पूरी प्रक्रिया यह है कि तुम जागो भी, साथ ही साथ तुम धार्मिक भी होते चलो, धार्मिक होते चलो और साथ ही साथ जागते भी चलो। अन्यथा शक्ति भी गलत हाथो मे पड़कर खतरनाक सिद्ध होती है। ऐसा ही तो हुआ है, विज्ञान ने शक्ति सोये हुए आदमियो के हाथ मे दे दी। ऐसा नहीं है कि पहली दफा वैज्ञानिको को अणु की शक्ति का पता चला है। महावीर भी अणुवादी थे। जैन-दर्शन दुनिया का सबसे प्राचीन अणुवादी दर्शन है। आइस्टीन और रदरफोर्ड ने जो इस सदी मे पाया है, वह जैन कोई पाच हजार साल से कहते रहे है कि पदार्थ अणुओ का समूह है, पदार्थ अणुओ से बना है।

अणु का सिद्धात जैनियो का प्राचीनतम सिद्धात है। और जैसे-जैसे विज्ञान साफ होता जा रहा है, वैसे-वैसे पुराने शास्त्रो के अर्थ साफ होते जा रहे है। ऐसा लगता है कि अणु-शक्ति को खोज लिया गया था। सभवत महाभारत का अत अणुशक्ति से ही हुआ। लेकिन फिर एक बात समझ मे पूरब को आ गई कि जब तक लोग सोये हुए है, इतनी शक्ति उनके हाथ मे होना खतरनाक है, उसका दुरुपयोग होगा। शक्ति उसके हाथ मे होनी चाहिए, जिसके भीतर सदभाव पहले आ गया हो तो फिर ठीक

है। नही तो शक्ति का तुम करोगे क्या? तुमने लार्ड बेकन का प्रसिद्ध वचन सुना होगा—पावर करप्ट्स एड करप्ट्स एब्सोल्यूटली—कि शक्ति जिनके हाथ मे है वह लोगो को व्यभिचारित कर देती है और परिपूर्ण रूप से व्यभिचारित कर देती है। लेकिन वह वचन सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नही है। शक्ति किसी को व्यभिचारित नहीं करती। शक्ति केवल तुम्हारे भीतर जो व्यभिचार पड़ा था, उसे प्रगट करती है।

तुम देखते हो, एक आदमी के पास कुछ भी नहीं है तो वह शराब नही पीता, वह शराब के खिलाफ है। फिर कल अचानक लाटरी हाथ लग जाती है, फिर वह शराब पीने लगता है। अब वह भूल जाता है सब शराब की खिलाफत। तो लोगो को ऐसा लगता है कि धन ने इसे भ्रष्ट किया। बात गलत है। धन न होने से यह अपने को समझाता था, अगूर खट्टे है। पीना भी चाहता तो पीता कहा से? तो नीति के, धर्म के वचन दोहराता था। अब जब धन हाथ मे आ गया, सब भूल गया।

इस देश मे ऐसा हुआ। स्वतत्रता-सग्राम के दिनो मे जो लोग बड़े त्यागी-तपस्वी मालूम पडते थे, वे कोई त्यागी-तपस्वी थे नही। क्योंकि परीक्षा तो तब है जब शक्ति हाथ मे आई। जब शक्ति हाथ मे न थी तब तो कोई भी त्यागी-तपस्वी होता है। जब शक्ति हाथ मे आई, राज्य रूपातरित हुआ और तथाकथित त्यागी-तपस्वी सत्ताधारी बने, तत्क्षण त्याग-तपश्चर्या सब समाप्त हो गई। लगेगा शायद सत्ता ने उन्हे भ्रष्ट किया। नहीं, सत्ता ने केवल अवसर दिया, तो जो भ्रष्ट होने के बीज भीतर पड़े थे उन पर वर्षा हुई। बीज तो थे ही। क्योकि तुम्हारा धन तुम्हे कैसे भ्रष्ट कर सकता है, अगर तुम्ही भ्रष्ट होने को पूर्व से तैयार न थे? तुम सिर्फ धन की प्रतीक्षा कर रहे थे। धन आ गया, सयोग मिल गया, अब रुकने की कोई जरूरत न रही। अब रुके, वह बिलकुल पागल है। अब तक रुके थे, वह तो कारण यह था कि अपनी पहुच के बाहर थे अगूर। इसलिए कहते थे, खट्टे है। अब नसेनी हाथ लग गई, अब कौन रुकेगा। अब रुकना असभव है।

सत्ता हाथ मे आते ही लोग भ्रष्ट हो जाते है—इसलिए नहीं कि सत्ता भ्रष्ट करती है, बल्कि इसलिए कि सत्ता अवसर देती है। तो जो तुम्हारे भीतर छिपा था वह प्रगट हो जाता है। अगर तुम्हारे भीतर काव्य छिपा था, हाथ मे सत्ता आते ही काव्य प्रगट होगा। क्योकि तुम कहोगे, अब सुविधा मिली, अब दौड-धूप न रही, धन हाथ आ गया—अब घर बैठकर गीत गुनगुना ले। अब तक तो मजदूरी करनी पड़ती थी, गड्ढा खोदना पड़ता था, समय व्यर्थ होता था, शक्ति व्यय होती थी—गीत गाने का अवसर कहा था। अब गीत गाने का अवसर मिला है।

तो धन अगर सम्यक हाथो मे पड़े तो शुभ है, असम्यक हाथो मे पड़ जाए तो अशुभ है। इसलिए तुम मेरी बात खयाल रखना। मै तुमसे यह नहीं कहता कि धन छोडो। धन मे क्या रखा है? तुम्हारे हाथ बदलने चाहिए। तो जो धन को छोड़कर भाग जाते है—तथाकथित त्यागी—वे केवल अवसर को छोडकर भाग रहे है, बीज का क्या होगा? बीज तो भीतर है। वह तो साथ ही चला जायेगा। फिर वे धन से डरने लगेगे, क्योकि उनको बात समझ मे आ जायेगी, तर्क साफ हो जायेगा कि धन हाथ आया कि उपद्रव शुरू होता है। लेकिन धन कही उपद्रव ला सकता है? चादी के ठीकरे उपद्रव ला सकते है? तब तो चादी के ठीकरे आत्मा से भी ज्यादा बलवान हो गये। चादी के ठीकरे उपद्रव नहीं ला सकते—उपद्रव तुम्हारे भीतर पड़ा है।

इसलिए मै कहता हू, वास्तविक त्यागी की परीक्षा ससार के भीतर है, बाहर नही। भगोडे की बात और है, लेकिन वास्तविक त्यागी की परीक्षा ससार के भीतर है। वही पता चलेगा। जो महल मे रहकर फकीर की तरह रह जाये—वही पता चलेगा। जो स्त्री-पुरुषो के बीच रहकर अकेला रह जाये—वहीं पता चलेगा। जहा सब साधन थे, लेकिन फिर भी जो अकपित रहे—वहीं पता चलेगा।

इसलिए अगर कोई मुझसे पूछे कि त्याग की अगर परम प्रतिमा बतानी हो, तो मै महावीर को न बताऊगा, मै कृष्ण को बताऊगा। महावीर परम त्यागी है, लेकिन परीक्षा की सीमा के बाहर है। परीक्षा कभी भी नहीं हुई। जहा उपद्रव खडा होता है, वहा से दूर है। लेकिन कृष्ण परीक्षा से भी गुजर गये है। मै जनक को बताऊगा। साम्राज्य है। सारा साम्राज्य का जाल है। और उसके बीच बाहर है।

तो मै तुमसे भागने को नही कहता। और महावीर का भी वचन तुम ठीक से समझो, तो वे भी जागने को कह रहे है, भागने को नहीं कह रहे है। हा, यह हो सकता है कि जागकर तुम्हे यहा रहना अर्थहीन मालूम पड़े, जैसा कि महावीर को मालूम पड़ा।

और तुम्हारी स्वाभाविक नियति तुम्हे दूर वनो और उपवनो मे ले जाये कि पहाड़ो मे ले जाये, तो ठीक है। लेकिन, तुम ससार को छोड़कर नहीं जा रहे हो। तुम्हारे छोड़ने मे कोई प्रयास नही है। तुम सहज अपने स्वभाव के अनुकूल, जो तुम्हे ठीक पड रहा है, उस तरफ जा रहे हो। इसमे फर्क है।

एक आदमी जो बाजार को छोडकर भागता है, जो बाजार से डरकर भागता है, उसका अभी बाजार मे अर्थ खोया नहीं है। अगर अर्थ खो जाये तो डर कैसा? और एक आदमी, जो बाजार मे अर्थ पाता ही नही, इसलिए चला जाता है। ये दोनो जाते हुए मालूम पड़ेगे, लेकिन दोनो के भीतर क्रातिकारी फर्क है।

ऐसा समझो कि एक रस्सी पड़ी है। तुम गुजरे पास से, तुमने साप समझ लिया और तुम भागे। तुम पूरब की तरफ जा रहे थे, तुम पूरब की तरफ ही भागे, लेकिन घबडाकर भागे। क्योकि साप मे तुम्हे भय मालूम पडा। फिर एक और आदमी आ रहा है। उसने भी गौर से देखा और उसे साप नहीं दिखाई पड़ा, रस्सी ही दिखाई पड़ी। उसको भी पूरब जाना है, वह भी पूरब जा रहा है। लेकिन जो घबडाकर भागा है उसमे और जो रस्सी को देखकर जा रहा है, बुनियादी फर्क है। दोनो एक ही दिशा मे जा रहे है। लेकिन जो भाग गया है उसके भागने के पीछे अभी अधकार है, अधेरा है, अज्ञान है। और जो जागकर जा रहा है, उसके जाने मे प्रकाश है, ज्योति है।

'इस जगत मे ज्ञान आदि सारभूत अर्थ है। जो पुरुष सोते है उनका अर्थ खो जाता है। सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मो को प्रकपित करो। धार्मिको का जागना श्रेयस्कर, अधार्मिको का सोना श्रेयस्कर है। ऐसा भगवान महावीर ने वत्स देश के राजा—शतानीक की बहन जयति से कहा था।'

'प्रमाद को कर्म (आस्रव) और अप्रमाद को अकर्म (सवर) कहा है। प्रमाद, होने से मनुष्य अज्ञानी होता है, प्रमाद के न होने से ज्ञानी होता है।'

'प्रमाद को कर्म ' प्रमाद यानी मूर्च्छा। प्रमाद यानी सोया-सोयापन। प्रमाद, जैसे कोई भीतरी नशे मे तुम पडे हो।

'प्रमाद को कर्म कहा है ।'

तुम जो भी कर रहे हो, उसका सवाल नही है—तुम क्यो कर रहे हो, उसका सवाल है।

यही करना और ढग से भी किया जा सकता है, जागकर भी किया जा सकता है—तब कर्म नही होगा।

समझो। तुम अपने बच्चो मे लिप्त हो, राग मे डूबे हो। तुमने बड़ी महत्वाकाक्षाए बच्चो के कधो पर रख दी है। तुम जो नही कर पाये जिदगी मे, चाहते हो तुम्हारे बच्चे कर लेगे। अगर मा-बाप बेपढ़े-लिखे हो तो बच्चो को बुरी तरह पढाते-लिखाते है। क्योकि उनकी एक कमी रह गई, वह खलती है। कम से कम अपने मे न हो सकी, अपने बच्चो मे पूरी हो जाये। जो मा-बाप जिदगी भर तडफते रहे, किसी बड़े पद पर न हो सके, वे अपने बच्चो को पहले से ही तैयार करते है कि हम तो चूक गये, तुम मत चूक जाना। अब तुम बच्चो को तैयार कर रहे हो जीवन के युद्ध के लिये। यह एक स्थिति है।

फिर एक दूसरा आदमी है। उसके भी बच्चे है। लेकिन जागा हुआ आदमी है। जागते ही 'मेरे है', यह तो खयाल समाप्त हो जाता है, 'बच्चे है', यह खयाल रह जाता है। 'मेरे है', यह तो प्रमाद का हिस्सा है, मूर्च्छा का हिस्सा है।

मेरा क्या है? खाली हाथ हम आते है, खाली हाथ हम जाते है। और बच्चे मेरे क्या हो सकते है? भला मेरे द्वारा आये हो, मै मार्ग बना होऊ, लेकिन आये तो कही अज्ञात से है। मेरे चौराहे से गुजरे होगे, इससे मेरे नही हो जाते। मेरे पास है, इससे मेरे नही हो जाते। मेरे शरीर का सहारा लेकर बडे हो रहे है, इसलिए मेरे नही हो जाते। मेरे जीवाणु के माध्यम से प्रगट हुए है, इसलिए भी मेरे नही हो जाते।

चैतन्य की अपनी यात्रा है। ये जो बच्चे तुम्हारे पास है, ये भी अपनी-अपनी यात्रा से आये है। इस जीवन मे सयोग तुमसे गुजरे है, तुम्हारे नहीं है।

तुमने कभी खयाल किया। बाल तुम्हारे शरीर से जुड़े है, काट देते हो, फिर तो तुम्हारे नही रह जाते। नाखून काट देते हो, फिर तो तुम्हारे नही रह जाते। बच्चा जैसे ही पैदा हो गया, मा की देह के बाहर आ गया—तुम्हारा क्या रह गया? 'मेरा'—भाव गिर जाये, ममत्व गिर जाये—फिर तुम बच्चो की फिक्र कर देते हो, उनकी साज-सवार कर देते हो, लेकिन इस साज-सवार मे अब कोई राग नही है। और इस साज-सवार के द्वारा तुम अपनी महत्वाकाक्षाओ को, अपने अहकार को, अपनी अतृप्त अभीप्साओ को पूरा नही करना चाहते। तुम बच्चो को साथ दे देते हो कि ठीक है, सयोग मिल गया, तुम असहाय हो, मुझसे

बन सकता है, मै कुछ कर देता हू। लेकिन तुम कहते हो, तुम्हे जो होना हो तुम वही होना, मेरी मत सुनना। मै तो असफल हुआ ही हुआ, अब मै तुम्हे और खराब न कर जाऊगा।

एक बात, अगर मा-बाप थोड़े भी जाग्रत हो, तो निश्चित करेगे—वे बच्चो को सजग कर देगे कि हमने तो जिदगी गवाई ही गवाई, तुम मत गवा देना। कृपा करके हम जैसे तो बनना ही मत और कुछ भी बन जाना, क्योकि यह तो हमने होकर देख लिया। इस होने से तो कुछ भी न पाया।

सोया हुआ बाप उलटी कोशिश करता है। वह कहता है, मेरे जैसे। बच्चे उससे थोडे भिन्न होने लगते है तो वह नाराज होता है। वे प्रतिकृति होने चाहिए। वे ठीक मेरी प्रतिमा होने चाहिए। 'मेरे' है, तो उनके माध्यम से किसी तरह का अमरत्व खोजा जाता है, कि मै तो मिट जाऊगा, लेकिन मेरी प्रतिमाए छूट जायेगी। कोई सिलसिला मेरा जारी रहेगा।

कर्म तो वही है। कबीर भी कपडा बुनते है, बाजार मे बेचने जाते है। गोरा कुम्हार मटकिया बनाता है, बाजार मे बेचता है। रैदास जिदगी भर जूते बनाते रहे। लेकिन कुछ फर्क हो गया। कबीर अब भी कपड़ा बनाते है, लेकिन अब इसमे कोई व्यवसाय नही है। अब इससे कुछ धन कमा लेकर धन के ऊपर साप बनकर बैठ जाने की आकाक्षा नही है। जरूरी है, रोटी के लिए, कपडे के लिए कर लेते है। आवश्यक है, कर लेते है। इसमे अब कोई वासना नही है।

जरूरत और वासना के भेद को समझना। जरूरते तो सभी की पूरी होनी चाहिए। जरूरते तो जीवन का अग है। वासनाए विक्षिप्तताए है। वे कभी पूरी नहीं होती। और उनका जीवन की किसी जरूरत से कोई सबध नही है। कोई आदमी सम्राट होना चाहता है, इसका जीवन की जरूरत से क्या सबध है? हा, भूखा रोटी मागता है, यह समझ मे आता है। नगा कपड़ा चाहता है, यह समझ मे आता है। लेकिन कोई आदमी सम्राट होना चाहता है। अब यह सम्राट होने से किसी भी जरूरत का कोई सबध नहीं है।

तुम्हे प्यास लगी है, पानी चाहिए। तुम धूप मे खड़े हो, छप्पर चाहिए—समझ मे आता है। लेकिन धन का एक ढेर लगा-लगाकर तुम उस धन के ढेर पर बैठे रहो, यह बात रुग्ण है, यह विक्षिप्त है। अरबो रुपये हो जाते है लोगो के पास, तब भी दौड़ नहीं रुकती। अब उन रुपयो का कुछ भी नही कर सकते। अब कुछ भी बचा नही है, जो उनसे खरीदा जा सके, जो भी खरीदा जा सकता था वह सब खरीद लिया, लेकिन फिर भी दौड़ जारी रहती है। यह कोई विक्षिप्त दौड है। यह कोई पागलपन है। इस पागलपन से जो मुक्त हो जाता है, उसके कर्म बाधते नहीं। उसके कर्म प्राकृतिक कर्म हो जाते है, नैसर्गिक कर्म हो जाते है।

प्रमाद को इसलिए महावीर कर्म कहते है। करने को कर्म नही कहते, करने मे जो बेहोशी है उसको कर्म कहते है। यह थोड़ा सोचने जैसा है। यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। तुम क्या करते हो, यह सवाल नही है—तुम होश मे रहकर करते हो कि बेहोश रहकर करते हो। यह तो कर्म की बड़ी अनूठी व्याख्या हुई। प्रमाद को कर्म, अप्रमाद को अकर्म।

'पमाय कम्ममाहसु, अप्पमाय तहाऽवर।'

तो जाग जाओ, कर्म तो तब भी जारी रहेगा। आखिर महावीर भी जाग गये, फिर भी तो कोई चालीस साल जीवित रहे, कर्म तो किया ही, उठे भी, सोये भी, भोजन भी किया, उपवास भी किया, ध्यान भी किया, मौन भी किया, बोले भी, चुप भी रहे—सब कर्म चलता रहा। लेकिन यह कर्म अब बाधता नही है। अब इस कर्म मे कोई तद्रा नही है, अब कोई मूर्च्छा नही है। अब यह सोये-सोये नही हो रहा है, यह जागकर हो रहा है।

जैसे ही तुम जागते हो, जीवन शुद्ध जरूरतो पर आ जाता है। जो गैर-जरूरी है, उसकी पकड़ नही रह जाती। ऐसा समझो कि आज अचानक तुम्हे खबर मिले कि पूना मे भूकप होने को है और तुम्हे थोड़ी-सी ही चीजे बचाकर निकलने का मौका है, और तुम सारा घर का सामान इकट्ठा कर लो, और सोचो कि क्या बचाये और क्या छोड़े। तुम चकित होओगे यह जानकर और यह विचार तुम्हारे मन मे जरूर आयेगा कि यह इतना व्यर्थ का सामान इकट्ठा क्यो किया। इसमे बहुत थोड़ा ही काम का होगा जो तुम ले जा सकोगे। और जब तुम चुनने लगोगे, तुम्हे खुद ही समझ मे आयेगा, दस मे से नौ चीजे तुम खुद ही छोड़े दे रहे हो। लेकिन इनको इकट्ठा करने मे बड़ा समय व्यतीत किया। इनको इकट्ठा करने मे पागल की तरह दौडे। इनको इकट्ठा करने मे जीवन की बड़ी सपदा खोयी और कूड़ा-कर्कट इकट्ठा किया। इसको ले जाने के क्षण मे, तुम खुद ही सोचोगे कि इसमे

बहुत-सा तो ऐसा है जो ले जाने योग्य नही है।

ऐस्कीमो की जीवन-व्यवस्था मे एक प्रक्रिया है, बडी बहुमूल्य है। काश, सारी दुनिया मे कभी हो जाये तो बड़े काम की हो। ऐस्कीमो, जैसे यहा वर्ष मे दीवाली आती है, ऐसा उनका एक दिन आता है—उत्सव का दिन। उस दिन उनके पास जो भी हो, जो व्यर्थ होता है, वह बाट देते है। इसका बड़ा परिणाम होता है। घर खाली, शुद्ध, साफ हो जाते है। और इसका दूसरा परिणाम यह होता है कि जब सालभर बाद व्यर्थ को बाट ही देना है तो वे व्यर्थ को इकट्ठा भी नही करते, क्योंकि वह फिजूल है, वह सालभर बाद बट जाना है। उसके लिए दौड-धूप कौन करे।

तो एस्कीमो का घर अत्यत जरूरत, अत्यत आवश्यक पर निर्भर है। और तुम ऐस्कीमो को जितना सतोषी पाओगे, किसी को न पाओगे। पर मौत के दिन तो सभी कुछ छूट जाना है, थोड़ा भी न ले जा सकोगे। अगर थोडा मौत का स्मरण बना रहे तो तुम व्यर्थ की दौड़-धूप छोड़ दोगे।

तुम अपने सौ कर्मो को जरा गौर से देखना, उसमे से नब्बे तो चुपचाप गिराये जा सकते है, जिनके लिए कोई कारण नही है।

दो छोटे बच्चे बात कर रहे थे। एक बच्चा कह रहा था कि मेरी मा अदभुत है। वह किसी भी विषय पर घटो बोल सकती है। दूसरा बोला, यह कुछ भी नही है। मेरी मा बिना विषय के घटो क्या, दिनो बोल सकती है। विषय के घटो क्या, विषय की कोई जरूरत ही नहीं है।

तुम जरा खयाल रखना, तुम जितना बोल रहे हो, उसमे से कितना जरूरी था, कितना तुम छोड सकते थे। तुम जो कर रहे हो, उसमे से कितना जरूरी था, कितना छोड़ा जा सकता था।

धीरे-धीरे अपने जीवन को व्यवस्था दो। होश लाओ। जहा चलकर पहुचा जा सकता है, वहा दौडकर क्यो पहुच रहे हो?

मै विश्वविद्यालय मे शिक्षक था, तो मैंने देखा कि परीक्षा मे विद्यार्थी लिखते तो हाथ से है, लेकिन पूरा शरीर खिचा है। तो मै उनसे कहता कि जब तुम हाथ से लिख रहे हो तो दो अगुलियो पर जोर पड़े, यह तो समझ मे आता है, लेकिन यह पूरा शरीर अगूठे से लेकर सिर तक तुम तने हुए क्यो हो? किन्ही-किन्ही विद्यार्थियो को बात समझ मे आई और वे शरीर को शिथिल छोड़कर लिखे। और बाद मे उन्होने मुझे कहा, यह आश्चर्य की बात है। हम नाहक शक्ति खो रहे थे और उसकी वजह से हडबडाहट पैदा होती थी।

तुम साइकिल चलाते हो, लेकिन शायद ही तुम किसी साइकिल चलानेवाले को ठीक चलाते देखो, क्योकि अगर ठीक कोई चला रहा हो तो पैर के पजे पर जोर देना काफी है। पूरे शरीर को तनाव देने की कोई जरूरत नही है। लेकिन साइकिल क्या चला रहे है, पूरा शरीर तना हुआ है। फिर थक जाते है। फिर ऊब जाते है।

जिदगी मे जरा गौर करो। जो काम जितने से हो सकता हो उतना तो जरूरी है, उससे रत्तीभर भी ज्यादा डालना मूर्च्छा के कारण हो रहा होगा। वह साइकिल सवार जानता ही नही कि क्या कर रहा है। उसे याद ही नही है कि वह क्या कर रहा है। जो काम रत्तीभर से हो सकता था, जो सुई से हो सकता था, वहा तलवार लिए बैठे हो। खुद को लहूलुहान कर लिया है, दूसरो को लहूलुहान कर रहे हो। और सुई तो सी देती कपडे को, तलवार और फाड देती है। जो काम सुई से होता है वह तलवार से हो नही सकता।

सम्यक जीवन चाहिए।

महावीर कहते है, 'प्रमाद को कर्म, अप्रमाद को अकर्म कहा है। प्रमाद के होने से मनुष्य अज्ञानी होता है। और प्रमाद के न होने से मनुष्य ज्ञानी हो जाता है।' सम्हालो थोड़ा। जीवन की गध का व्यर्थ गवाए दे रहे हो।

कही की रहेगी न आवारा हो कर
यह खुशबू जो फूलो ने काटो पे तौली।

बड़ी मुश्किल से खुशबू आती है। बड़ी मुश्किल से। बडी जद्दोजहद से। जरा देखो तो बीज से लेकर फूल तक की यात्रा, कितनी कठिन है। करीब-करीब असभव है।

कितनी अड़चने है। कितने अवरोध है। पहले तो बीज टूटे न टूटे, टूट जाये तो ठीक भूमि मिले न मिले, ठीक भूमि भी मिल जाये तो कोई पानी दे न दे, कोई पानी भी दे, सूरज की रोशनी पड़े न पड़े, कोई बच्चा उखाड़ दे पौधे को, कोई जानवर खा जाये या कोई कुत्ता अपना पेशाब-घर बना ले। करोगे क्या? हजार बाधाए है। तब कही वृक्ष खड़ा हो पाता। तब कहीं फूल आते। काटो पर तौल-तौलकर गध पैदा करनी पड़ती है।

कही की रहेगी न आवारा हो कर
यह खुशबू जो फूलो ने काटो पे तौली।

—और फिर होता क्या है परिणाम? सिर्फ आवारा होकर भटक जाती है।

मनुष्य होना बड़ी लबी यात्रा है। इस देश मे हम कहते रहे है, चौरासी करोड़ योनिया। अनत-अनत काल, यात्रा करते-करते, निखारते-निखारते यह फूल खिला है, जो मनुष्य है, जिसको हम मनुष्य कहते है। यह मनुष्यता का फूल खिला है। और अब तुम कर क्या रहे हो? यह गध आवारा हुई जा रही है। यह ऐसे ही व्यर्थ भटकी जा रही है और खोई जा रही है। इतने श्रम से जिसे पाया है, उसे तुम ऐसे चुपचाप बेहोशी मे गवाए दे रहे हो।

'अज्ञानी साधक कर्म-प्रवृत्ति के द्वारा कर्म का क्षय होना मानते है, कितु वे कर्म के द्वारा कर्म का क्षय नही कर सकते। धीर पुरुष अकर्म (सवर या निवृत्ति) के द्वारा कर्म का क्षय करते है। मेधावी पुरुष लोभ और मद से अतीत तथा सतोषी होकर पाप नही करते।'

'अज्ञानी साधक कर्मप्रवृत्ति के द्वारा ही कर्म का क्षय सोचते है ।' वे सोचते है, कर्म को काटना है तो और कर्म करो। ज्ञानी साधक कर्म के द्वारा कर्म का क्षय नही मानते।

अकर्म के द्वारा 'अकर्म का क्या अर्थ है? पहला—जो व्यर्थ कर्म है उन्हे जाने दो। त्याग करने को नही कह रहा हू—बोध से समझो कि व्यर्थ है, वे अपने से गिर जायेगे, चले जायेगे, विदा हो जायेगे। तुम्हारा लगाव टूट जायेगा। थोड़ा जागकर अपने जीवन-चर्या को गौर से देखते रहो सुबह से रात तक क्या कर रहे हो? उसमे क्या-क्या व्यर्थ है? तो पहले व्यर्थ को जाने दो। यह पहला कदम होगा कि धीरे-धीरे तुम व्यर्थ को हटा दो। और तुम नब्बे प्रतिशत व्यर्थ पाओगे। यह मै अतिशयोक्ति नही कर रहा हू। निन्यानबे प्रतिशत पाओगे। नब्बे प्रतिशत कह रहा हू, ताकि तुम एकदम से घबड़ा न जाओ।

एक मित्र को मैने कहा कि तुम दिन मे इस तरह बोलो, जैसे कि हर शब्द के लिए मूल्य चुकाना है, जैसे टेलीग्राम कर रहे हो, जैसे एक-एक शब्द के लिए मूल्य चुकाना पड़ेगा। उन्होने कुछ दिन प्रयोग किया और मुझे आकर कहा, यह बड़ी हैरानी की बात है। तब तो दस-बीस शब्दो से ही दिन मे काम हो जाता है। जहा 'हा' और 'ना' कहने से भी काम हो जाता है, वहा पहले मै कितना बोले जा रहा था। और इसके बड़े लाभ हुए, उन्होने कहा। क्योकि कुछ गलत बोलकर, कुछ व्यर्थ बोलकर हजार झझटे खड़ी हो जाती थीं।

तुम जरा सोचो। तुम्हारी जिंदगी की कितनी झझटे तुम्हारे बोलने के कारण खड़ी हो गई है। घर आये, कुछ बोल दिए पत्नी से। तब खयाल मे नही था कि यह बोलने का क्या परिणाम होगा। जब बोला था तो कोई भाव भी न था बुरा, लेकिन बोले, फसे। तुम भी बेहोश हो। तुम बेहोशी मे बोल गये। पत्नी ने बेहोशी मे सुना। उसने कुछ का कुछ सुना। लड़ने-झगडने पर खड़ी हो गई। अब तुम लाख समझाते हो कि यह मेरा मतलब न था, इससे क्या होता है? अब मतलब न था, यह समझाने के लिए तुम कुछ बोल रहे हो, उसमे से भी पत्नी कुछ पकडेगी। अब यह सिलसिला कहा अत होगा?

थोडा सोचो, तुम्हारी जिदगी की कितनी विपदाए कम न हो जाये, अगर तुम थोड़े चुप रहो। सोच के बोलो। अत्यत जरूरी हो तो बोलो। जैसे एक-एक शब्द के लिए मूल्य चुकाना पडेगा, इस तरह बोलो। तुम न केवल यह पाओगे कि तुम्हारे बोलने मे बल आ गया, तुम यह भी पाओगे कि तुम्हारे बोलने के कारण अड़चने कम हो गई, न तुम अपने लिए पैदा करते हो, न औरो के लिए अड़चने पैदा करते हो। और तुम्हारे जीवन मे एक प्रसाद अभिव्यक्त होना शुरू हो जायेगा। क्योकि जो चुप रहता है, उसके पास ऊर्जा इकट्ठी होती है। बोल-बोलकर तुम उसे चुकता कर लेते हो।

अकर्म की तरफ पहला कदम है व्यर्थ कर्म के प्रति जागो। फिर, जो सार्थक बच रहे—बचेगा, कुछ तो बचेगा, क्योकि जब तक जीवन है, कुछ कर्म रहेगा, जीवन कर्म है—फिर जो सार्थक बचे, उसके प्रति साक्षी-भाव रखकर करो, कर्ता रहकर मत करो। ऐसे करो जैसे तुम करनेवाले नही हो। भूख लगी है शरीर को, तुम आयोजन कर देते हो, लेकिन तुम भूख से भी दूर हो, आयोजन से भी दूर हो। न तो भूख तुम्हे लगी है और न आयोजन तुम करते हो। तुम अकर्ता-भाव मे डूबे रहते हो। तुम कहते हो, साक्षी हू, देखता हू। शरीर को भूख लगती है, रोटी जुटा देता हू। प्यास लगती है, सरोवर के पास चला जाता हू। लेकिन तुम अब कर्ता नही हो।

यह जो कर्ता-भाव का चला जाना है और साक्षी-भाव से, जागकर, अप्रमाद से कर्म को करना है—उसको महावीर अकर्म कहते है। अकर्म का मतलब तुम यह मत समझना कि कुछ न

करना, जैसा कि जैन मुनियो ने समझ लिया है। अकर्म का अर्थ यह नहीं है कि तुम बस बैठ गये। क्योकि तुम्हारे बैठने से भी क्या होगा?

एक सन्यासी मुझे मिलने आये। काश्मीर मे एक शिविर मैने लिया था। उसके पहले ही वे मुझसे मिलने आये थे, तो मैने उनसे कहा कि अच्छा हो काश्मीर आ जाये। उन्होने कहा, यह जरा मुश्किल है। चलो, मैने कहा, जाने दो। बबई मे जहा मै था, जहा वे मिलने आये थे, मैने कहा, कल सुबह फला-फला जगह, कुछ मित्र ध्यान करने को इकट्ठे हो रहे है, वहा आ जाओ। उसने कहा, यह भी बडा मुश्किल है। मैने कहा, मुश्किल क्या है? मै समझू। तो उन्होने कहा, मुश्किल यह है—उनके साथ एक सज्जन और थे—कि मै पैसा खुद नहीं रखता, पैसे को छूने का मैने त्याग कर दिया है। तो टैक्सी मे बैठना पड़े, तो पैसे की तो जरूरत पड़ेगी। ट्रेन मे बैठना पडे तो पैसे की जरूरत पड़ेगी। तो ये सज्जन को साथ रखना पडता है। जहा इनको सुविधा हो, वही मै आ सकता हू। और कल इनको सुविधा नही है। तो मैने कहा, यह भी बडा मजा हुआ। पैसा तुम इनकी जेब मे रखे हुए हो । यह तो उलझाव और बढ़ गया। तुम समझ रहे हो, तुम पैसा नही छूते। तुम सोच रहे हो, तुम पैसे से मुक्त हो गये। तुम पैसे से मुक्त नही हुए, इस आदमी से और बध गये। इससे तो पैसा ही ठीक था, अपने ही खीसे मे रख लेते, अपने ही हाथ से निकाल लेते। इसके हाथ से निकलवाया। काम तो तुम्हारा ही होना है। बिना पैसे के भी नही होता, यह भी तुम्हे पता है। तो यह किसको धोखा दे रहे हो तुम? यह तुम्हारे हाथ मे ऐसी कौन-सी खराबी है या तुम्हारे हाथ मे ऐसा कौन-सा गुण है, जिसके कारण अपने हाथ को बचा रहे हो, इसका हाथ डलवा रहे हो? तुम अगर पाप कर रहे हो तो कम से कम अकेले ही कर रहे थे, अब तुम इससे भी करवा रहे हो। तुम पर दोहरा जुर्म होगा। तुम फसोगे बुरी तरह। तुम यह मत सोचो कि तुम त्यागी हो।

अब जैन मुनि है। बैठ गया है दूर सिकुड़कर। वह कहता है, हम कुछ नही करते। लेकिन कोई उसके लिए रोटी कमायेगा। कोई उसके लिए वस्त्र कमायेगा।

जो बड़े जैन मुनि है, उनको लोग बुलाने मे गाव मे डरते है, क्योकि उनका गाव मे आने का मतलब है सारे श्रावको की मुसीबत। भारी खर्च का मामला है। तो बड़े मुनियो को छोटे गाव तो बुला ही नही सकते। कोई उपाय नहीं है। क्योकि उतना खर्च कौन उठायेगा?

अब यह थोडा सोचना। अगर तुम खाली बैठ गये तो तुम्हारी जरूरते कोई और पूरी करेगा। लेकिन जब तक जरूरते है—और तब तक जरूरते है जब तक जीवन है—तो कर्म तो जारी रहेगा। यह कर्म दूसरे के कधे पर रख देने से, यह दूसरे के कधे पर रखकर गोली चलाने से तुम बचोगे न। इसमे तुम पर दोहरा पाप लग रहा है। तुम जो कर रहे हो वह तो कर ही रहे हो और इस आदमी के कधे पर रख रहे हो। इस आदमी को भी तुम साधन बना रहे हो। यह भी गलत है।

जो करना है जरूरी, वह करना। फिर साक्षी-भाव रखना। शरीर की जरूरत पूरी कर देनी है। जरूरत से ज्यादा की आकाक्षा नही करनी है। मूल जरूरत पर रुक जाना है। और जो भी हो रहा है, उसके प्रति साक्षी-भाव रखना है।

'धीर पुरुष अकर्म के द्वारा कर्म का क्षय करते है। मेधावी पुरुष लोभ और मद से अतीत तथा सतोषी होकर पाप नही करते।'

मेधावी। महावीर उन्ही को मेधावी कहते है, इटेलीजेट, जो साक्षी होने मे समर्थ है। और मेधा मेधा नही। जिसको तुम मेधावी कहते हो, वह तुम जैसा ही है—मूर्च्छित। हो सकता है, किसी दिशा मे कुशल है। कोई तकनीक उसने सीख लिया है। तुम कहते हो, कोई चित्रकार है बडा मेधावी, क्योकि तुम जैसा चित्र बनाते हो, उससे बहुत अच्छा चित्र बनाता है। लेकिन जीवन का चित्र तो तुम जैसा बना रहे हो, वैसा ही वह भी बना रहा है। तुम कहते हो, कोई कवि है, बडा मेधावी। क्योकि जो तुम नहीं कह सकते, जो तुम नही गा सकते, वह गा देता है। ठीक है। लेकिन जीवन का अंतिम चित्र तो तुम्हारे जैसा ही वह बना रहा है। उसमे कोई फर्क नही है। क्रोध तुम्हे है, उसे है। लोभ तुम्हे है, उसे है। मत्सर तुम्हे घेरता है, उसे घेरता है।

महावीर कहते है, जिसने जीवन के चित्र को और जीवन के गीत को सम्हाल लिया, जिसने वहा बुद्धिमत्ता का उपयोग कर लिया, वही मेधावी है, बाकी सब मेधा तो कहने की मेधा है।

लज्जते-दर्द के ऐवज दौलते-दो जहा न लू
दिल का सकून और है, दौलते-दो जहा है और।

सारे ससार की सपत्ति भी मिलती हो उस आदमी को जिसने

थोड़े मन की शाति जानी, तो वह लेने को राजी न होगा। दो लोको की भी सपत्ति मिलती हो ।

लज्जते-दर्द के ऐवज दौलते-दो जहा न लू।

यह जो सत्य की खोज मे पीड़ा उठानी पडती है, इस पीड़ा के बदले भी अगर दुनिया की सारी सपत्ति मिलती हो, दोनो दुनिया की मिलती हो, तो भी न लू।

दिल का सकून और है, दौलते-दो जहा है और। वह दिल की शाति कुछ बात और है। वह कुछ सपदा और है। एक बार जिसके मन मे उसकी भनक पड गई, फिर सब फीका हो जाता है। मेधावी पुरुष लोभ के कारण धर्म नही करता। कोई स्वर्ग पाने के लिए धर्म नही करता, न भय के कारण, नर्क से बचने के लिए धर्म नही करता। मेधावी पुरुष तो पाता है कि जितना-जितना जागरण आता है, उतना-उतना आनद आता है। जागरण मे ही छिपा है आनद। आनद जागरण का फल नही है, आनद जागरण का स्वभाव है। ऐसा नही है कि पहले जागरण मिलता है, फिर आनद मिलता है—जागरण मे ही मिल जाता है। इधर तुम जागते चले जाते हो, उधर आनद की नई-नई पुलक, नई-नई किरण, नया-नया नृत्य भीतर होने लगता है।

इस अहद मे कमयाबिए-इन्सा है कुछ ऐसी
लाखो मे बामुश्किल कोई इन्सा नजर आया।

लाखो लोग है, आदमी कहा। लाखो आदमियो मे कभी एक-आध आदमी नजर आता है। क्योकि आदमी का जो बुनियादी लक्षण है, जागरण, वह दिखाई नही पड़ता। पशु है, उन्हे भी भूख लगती हे तो खोजते है, कामवासना जगती है तो कामवासना की तृप्ति करते है। पशुओ को भी लोभ दे दो तो राजी हो जाते है, भय दे दो तो राजी हो जाते है। कुत्ते को मारो-पीटो तो जैसा करतब करना हो, कर देगा। लोभ दो, रोटी के टुकड़े डालो, तो तुम्हारे पीछे जी-हजूरी करता फिरेगा। अगर मनुष्य भी ऐसे ही लोभ और भय के बीच ही आदोलित हो रहा है, तो फिर मनुष्य और पशु मे भेद क्या है?

मनुष्यता उसी दिन प्रारभ होती है जिस दिन तुम्हारी वृत्तियो से पीछे एक जागरण का स्वर, एक जागरण का स्रोत पैदा होता है। जागते ही तुम मनुष्य बनते हो, उसके पहले नहीं। और ऐसा भी नही है कि कभी-कभी तुम न जागते होओ। ऐसा भी नही है कि जागने के क्षण कभी-कभी अचानक न आ जाते हो। क्योकि जो तुम्हारा स्वरूप है, उसकी झलक कभी-कभी मिल ही जाती है। कितने ही आकाश मे बादल घिरे, आकाश कभी न कभी दो बादलो के बीच से दिखाई पड ही जाता है।

तो खयाल रखना, तुम भी कभी-कभी जागते हो, हालाकि तुम उसका कोई हिसाब नहीं रखते, क्योकि तुम प्रत्यभिज्ञा नही कर पाते कि यह क्या है। तुम उसे कुछ और-और नाम दे देते हो। कभी ऐसा होता है कि अचानक खडे हो तुम, सुबह का सूरज ऊगा, पक्षियो ने गीत गाया—और एक बडी गहरी शाति और सुकून तुम्हे मिला। तुम सोचते हो शायद सुबह के सौदर्य के कारण, सूरज के कारण, पक्षियो के गीत के कारण। नही। यद्यपि पक्षियो के गीत, सुबह के सूरज और खुले आकाश ने वातावरण दिया, उस वातावरण मे क्षणभर को तुम अवाक रह गये, क्षणभर को विचारधारा बद हो गई, क्षणभर को बादल यहा-वहा न हिले, बीच मे से थोड़ा-सा आकाश, भीतर का आकाश दिखाई पड गया।

कभी किसी के प्रेम मे मन शात हो गया। कभी सगीत सुनते समय। कोई कुशल वीणा-वादक वीणा बजाता हो और उसके तार बाहर कपते रहे और भीतर, तुम्हारे भीतर भी कुछ कपा, वीणा बद हुई, तुम्हारे भीतर भी कुछ क्षणभर को बद हो गया। एक गहन शाति तुम्हे अनुभव हुई।

लेकिन तुम सोचोगे, शायद यह वीणा-वादक की कुशलता के कारण है। यद्यपि उसने निमित्त का काम किया, लेकिन वस्तुत घटना तुम्हारे भीतर घटी।

ऐसे जीवन मे तुम्हे कई बार क्षण मिलते है, लेकिन तुम उनके कारण गलत समझ लेते हो।

जब भी तुम्हे शाति मिलती है तो भीतर कुछ प्रकाश पैदा होता है, उसके कारण ही मिलती है। एक बार यह समझ मे आ जाये तो फिर तुम बाहर के कारणो को नही जुटाते, फिर तुम भीतर की ही जागृति को सम्हालने मे लग जाते हो।

ऐ काश हो यह जज्बए-तामीर मुस्तकिल
चौके तो है खराबिए-ख्वाबे-गरा से हम।

काश। निर्माण का यह अवसर थोडा स्थायी हो जाये। गहरी नीद से चौके तो है, लेकिन फिर कही हम नीद मे न खो जाये।

ऐसा रोज होता है। तुम्हारी नीद भी टूटती है, लेकिन फिर तुम नींद मे खो जाते हो।

ऐ काश हो यह जज्बए-तामीर मुस्तकिल
चौंके तो है खराबिए-ख्वाबे-गरा से हम।

हो सकती है। यह निर्माण की क्षणभर को आई हुई दशा स्थायी हो सकती है।

लेकिन तुम्हे स्थायी करनी पड़े। इसे दोहराना पड़े। इसे बार-बार आमन्त्रित करना पडे। जब भी समय मिले, अवसर मिले, फिर-फिर इस भाव-दशा को जगाना पड़े—ताकि इससे पहचान होने लगे, ताकि इससे सबध जुड़ने लगे, ताकि धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर यह प्रकाश का स्तभ खडा हो जाये।

'मनुष्यो सतत जागते रहो। जो जागता है, उसकी बुद्धि बढती है। जो सोता है, वह धन्य नही है। धन्य वही है, जो सदा जागता है।'

जागरह नरा। णिच्च जागरमाणस्स बड्ढते बुद्धी।
जो सुवति ण सो धन्नो, जो जग्गति सो सया धन्नो।।

जो जागता है वह धन्य है। मनुष्यो, सतत जागते रहो। जो जागेगा उसकी मेधा बढती है। जो सोता है उसकी मेधा सो जाती है। जो जागता है उसका भाग्य भी जागता है। जो सोता है उसका भाग्य भी सो जाता है। जागरण की पराकाष्ठा ही भगवत्ता है। इसलिए मैंने कहा, भगवान का अर्थ है जिसका भाग्य पूरा जाग गया, जिसने अपने भीतर कोई कोना-किनारा सोया हुआ न छोड़ा, जिसने अधेरे की कोई जगह न छोडी।

उठ कि खुर्शीद का सामाने-सफर ताजा करे
नफसे-सोख्त-ए-शाम औ सहर ताजा करे।
उठ कि खुर्शीद का सामाने-सफर ताजा करे

उठो कि सूरज की यात्रा पर चले। यह सूरज कोई बाहर का सूरज नही—यह भीतर के जागरण का सूरज है।

'जैसे एक दीप से सैकड़ो दीप जल उठते है, और वह स्वय भी दीप्त रहता है, वैसे ही आचार्य दीपक के समान होते है। वे स्वय प्रकाशवान रहते है और दूसरो को भी प्रकाशित करते है।'

'जह दीवा दीवसय'—जैसे दीये से दीया जल जाता है, दीप से दीप जले, ऐसे किसी जाग्रत पुरुष को खोजो, जिसके पास तुम्हारे भीतर भी जागरण की आकाक्षा जगे, जिसके पास तुम्हारे भीतर भी जागने की परम वासना जगे, जिसके पास तुम्हारे भीतर भी सक्रामक हो जाये और तुम भी सोचने लगो, विचारने लगो, प्रयास करने लगो 'कैसे नीद को तोडे।' किसी जागे हुए का साथ चाहिए। शास्त्र से यह न हो सकेगा। किसी जागे हुए का साथ चाहिए। तुम सोये हो तो कोई जागा हुआ ही तुम्हे जगा सकता है। शास्त्र को तुम रखे रहो, तुम उसका तकिया बना लोगे। शास्त्र क्या करेगा, अगर तुम तकिया बना लोगे? तुम उस पर ही सिर टेककर और आराम से सो जाओगे, शास्त्र क्या करेगा? कोई तीर्थकर चाहिए।

महावीर कहते है वही है आचार्य जो जागा हुआ है, जिसका आचरण जागृति से निष्पन्न है। जैसे एक दीये से और दीप जल जाते है, सैकड़ो दीप जल जाते है, फिर भी जो दीप जल रहा था, वह तो दीप्त ही रहता है, उसका कुछ खोता थोडे ही है। यही तो आध्यात्मिक सपदा की महिमा है। बाटो, बटती नही। दिए चले जाओ, चुकती नही। जीवन की और सभी सपदाए बाटने से कम होती चली जाती है। इसलिए जीवन की और सभी सपदाए आदमी को कजूस बनाती है, कृपण बनाती है। सिर्फ आध्यात्मिक सपदा ऐसी सपदा है कि बाटो, बटती नही। एक दीये मे जलाये जाओ हजार दीये, कुछ ऐसा नही कि पहले दीये की जिसमे ज्योति जलाई थी, अब ज्योति कम हो गई। ज्योति का दान तुम्हे कम नही करता। ज्योति का दान एक ज्योतिर्मय सघ का निर्माण करता है।

ऐसे महावीर ने हजारो दीये जलाये, जिन-सघ का निर्माण हुआ। ऐसे बुद्ध ने हजारो दीये जलाये, बुद्ध-सघ का निर्माण हुआ। लेकिन फिर धीरे-धीरे जब जीवित पुरुष खो जाता है, वचन शास्त्र मे सगृहीत हो जाते है, लोग शास्त्रो का तकिया बना लेते है।

पड़ा था सूना सितार दिल का, हुई अचानक यह जाग तुमसे
जो जिदगी रोग बन चुकी थी, बन गई है आज राग तुमसे।

हजारो लोगो ने महावीर के पास ऐसा अनुभव किया।

जो जिदगी रोग बन चुकी थी, बन गई है आज राग तुमसे
पडा था सूना सितार दिल का, हुई अचानक यह जाग तुमसे।

ध्यान रखना, एक बड़ा गहरा सिद्धात इस सदी मे कार्ल गुस्ताव जुग ने खोजा। उसे उसने सिनक्रानिसिटी कहा है। कठिन है उसका अनुवाद। अर्थ यह है कि अगर एक व्यक्ति के भीतर कोई घटना घटे, एक व्यक्ति की वीणा बजे, तो उसके पास जो भी आयेगा, उसकी वीणा पर भी वैसी ही झनक शुरू हो जायेगी। उसे भी याद आ जायेगी किसी सोये हुए राग की। उसे

भी अपना स्मरण आना शुरू होगा। इसमे कार्य-कारण का सिद्धात नही है। ऐसा नही है कि महावीर की मौजूदगी के कारण तुम जागते हो। जागरण तो तुम्हारा स्वभाव है, महावीर की मौजूदगी के कारण भूला हुआ, बिसरा हुआ याद आ जाता है। जो होता है, वह तो तुम्हारे भीतर ही होता है, वह महावीर के बिना भी हो सकता था, लेकिन महावीर की मौजूदगी मे सरलता से हो जायेगा। जैसे एक दीया जला हो और दूसरा दीया जले हुए दीये को देखकर इस स्मरण से भर जाये कि मै भी दीया हू, मै भी जल सकता हू। जैसे एक बीज फूटा हो और दूसरे बीज के भीतर भी अकुलाहट पैदा हो जाये कि मै भी फूट सकता हू।

इसलिए सत्सग का पूरब मे बड़ा मूल्य रहा है। सत्सग कीमिया है, रसायन, अल्केमी। सत्सग का अर्थ है किसी ऐसे आदमी के पास होना, किसी ऐसे आदमी की उपस्थिति मे होना, जो जागा है। तो धीरे-धीरे बिना कुछ किये तुम्हारे भीतर भी कोई नया राग उठने लगेगा। तुम अचानक पाओगे, कोई नीद टूटने लगी, कोई पर्ते हिलने लगी।

मरहबा ऐ जज्बए-खुद ऐतबादी मरहबा
वो हिला तूफा का दिल, किश्ती रवा होने लगी।

किसी ऐसे व्यक्ति के पास तुम्हारे भीतर पडा हुआ आत्मविश्वास जिसे तुम भूल गये हो, जग आयेगा। शाबाश। आत्मविश्वास की दृढता, शाबाश।

मरहबा ऐ जज्बए-खुद ऐतबादी मरहबा।

शाबाश। तुम अपने भीतर ही अनुभव करोगे, कुछ सोया जगने लगा। तुम अपनी ही पीठ थप थपाओगे।

वो हिला तूफा का दिल, किश्ती रवां होने लगी।

और जरा-सा तुम्हारे भीतर तूफान हिल जाये कि नाव जो पड़ी है जन्मो-जन्मो से किनारे वह रवाना हो जाये, किश्ती चल पडे।

सत्सग मे गुरु कुछ करता नही, सिर्फ उसकी मौजूदगी । मौजूदगी भी कुछ करती नही—मौजूदगी से कुछ होता है। सूरज कुछ एक-एक फूल को पकड़कर खोलता थोड़े ही है, ऊगा इधर, फूल खिलने लगे।

वो हिला तूफा का दिल, किश्ती रवा होने लगी।

कुछ सूरज सुबह ऊगकर एक-एक पक्षी के द्वार पर दस्तक तो देता नही कि गाओ, प्रभात की बेला आ गई। गीत गुनगुनाओ। लेकिन सूरज ऊगा—वो हिला तूफा का दिल, किश्ती रवा होने लगी। कुछ पक्षियो के कठो मे कोई प्यास जग उठती है, कोई गीत अपने से फूटने लगता है।

सूरज की मौजूदगी ऐसी तीर्थकर की मौजूदगी, ऐसे अवतार की मौजूदगी, मसीहा की मौजूदगी, पैगबर की मौजूदगी, ऐसे किसी व्यक्ति की मौजूदगी जिसका दीया जल रहा है अकपित। ऐसा क्षण अगर कहीं मिलता हो तो उसे चूक मत जाना। तुम्हारा मन हजार तरकीबे खोजेगा चूकने की। इसी मन के कारण तो तुम महावीर को भी चूके, बुद्ध को भी चूके, कृष्ण को भी, क्राइस्ट को भी। तुम चूकते ही चले गये हो। चूकने की तुम्हारी आदत बन गई है। सब दाव पर लगा देना अगर कभी तुम्हे, कही भी किसी के सान्निध्य मे ऐसा लगे की यहा दीया जला है, तब सब दाव पर लगा देना। यह जुआरियो का काम है। यह अधेरे मे उतरना है। साहस और श्रद्धा। लेकिन दाव पर लगा देना।

क्यो? क्योकि अगर खोया तो क्या खोयेगा? तुम्हारे पास कुछ है ही नही खोने को। अगर मिल गया तो सब मिल जायेगा। अगर खोया तो कुछ भी खोया नही। लेकिन तुम्हारे पास जो है, तुम उसे अभी बहुत कुछ समझते हो।

मैने सुना है, शिवपुरी के पास एक विराट कवि सम्मेलन का आयोजन हो रहा था। कुछ कवि एक कार मे बैठकर वहा जा रहे थे। रास्ते मे डाकुओ ने घेर लिया।

कवियो मे से बोला एक, 'भैया। तुम्हारे गाव जा रहे है, कवि सम्मेलन मे भाग लेने। हमारे पास धरा क्या है? कुछ कविताए ही सुना सकते है। तो सुन लो।' डाकुओ ने उन्हे ग्यारह रुपये दिये और कहा, 'महाराज। कविता आप गाव मे ही सुनाना और जरा देर तक सुनाना तो ठीक रहेगा। हमे अभी दुनिया मे और भी काम करने है।

महावीर अगर तुम्हारे द्वार पर आकर तुम्हे गीत भी सुनाने को राजी हो जाये तो भी तुम कहोगे, 'महाराज। किसी और को खोज लो, अभी हमे दुनिया मे बहुत और काम करने है। ये ग्यारह रुपये दक्षिणा ले लो हमे छोडने की। यह कविता कही और सुना देना।'

महावीर के चरणो मे तुमने फूल चढ़ाये—वे ग्यारह रुपये है कि महाराज। आप शात रहो। हमे बख्शो। अभी हमे दुनिया मे और बहुत काम पड़े है।

लेकिन इस दुनिया मे जरा गौर से देखना, क्या काम तुम कर

रहे हो? और जिस दुनिया मे तुम इतने उलझे हो, वहा तुम क्या खोज रहे हो? मेरे देखे तो सभी लोग परमात्मा को खोज रहे है। कुछ लोग गलत जगह खोज रहे है, कुछ लोग ठीक जगह खोज रहे है। कुछ लोग ऐसे दरवाजो पर खोज रहे है जहा दीवाले है, दरवाजे नहीं है, कुछ लोग ठीक दरवाजो पर दस्तक मार रहे है।

मै तुमसे कहता हू, वेश्या के घर पर भी जो आदमी दस्तक देता है वह भी परमात्मा की खोज मे ही वहा गया है। क्योकि वेश्या के द्वार पर भी वह आनद की तलाश मे गया है—और आनद परमात्मा की तलाश है। जिसने शराबघर मे शराब पीकर बेहोश नालियो मे गिर पडा है, वह भी परमात्मा की ही तलाश मे गया था। क्योकि आनद की खोज परमात्मा की खोज है। लेकिन गलत जगह। कोई और मधुशाला खोजनी थी, जहा अदृश्य अगूरो की सुरा ढाली जाती है। कही और पियक्कड़ होना था, पियक्कड ही होना था तो। कही किसी रामकृष्ण के पास डूबना था पीकर।

कही भी तुम खोज रहे हो, तुम्हारी खोज कुछ भी हो, तुम्हारा बहाना कुछ भी हो, अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम पाओगे, आनद की तलाश मे निकले हो। अगर इतना तुम्हे समझ मे आ जाये तो बहुत कठिनाई न बचेगी। फिर तुम्हारे पास एक कसौटी हो गई कि 'जहा मै खोज रहा हू, वहा आनद मिल सकता है?' कितनी बार तो वहा गया हू, सदा खाली हाथ लौटा हू। कुछ खोकर लौटा हू, पाकर तो कुछ भी नही लौटा। कुछ और दीन होकर लौटा हू। कुछ और दरिद्र होकर लौटा हू। भिक्षा-पात्र बडा भला हो गया हो, हृदय का पात्र भरा तो नही।

आनद खोज रहे हो, यह स्पष्ट हो, तो कसौटी हाथ मे रहेगी। तो तुम जाच लेना। जैसे सोना जाचता है सुनार, पत्थर पर कस लेता है, आनद पर कसते जाना, कसते जाना। तुम पाओगे, जिदगी, जिसको तुम जिदगी कहते हो, कोई भी उस आनद के पत्थर पर सोना साबित नही होती। तभी तुम सुन सकोगे किसी जाग्रत पुरुष के वचन, किसी जिन-पुरुष के वचन।

लेकिन तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम मागते कुछ हो, मागना कुछ और चाहा था, करते कुछ हो, बताते कुछ हो। दूसरो को ही धोखा देते हो, ऐसा नही है, खुद को भी धोखा दे लेते हो।

मैने सुना है, एक यहूदी रबाई दूसरे दिन के सुबह के लिए अपना प्रवचन तैयार कर रहा था और बाहर कुछ आवारा बच्चे शोरगुल मचा रहे थे। तो वह उनसे परेशान था, बाधा पड रही थी। तो वह खिड़की पर गया। उसने कहा कि तुम यहा क्या कर रहे हो, पागलो। नदी की खबर है, एक बड़ा राक्षस आया है। बड़ा विकराल है। बडा भयकर है। ऐसा कभी देखा नही गया। तुम यहा क्या कर रहे हो?

उसका इतना कहना था कि वे बच्चे तो भागे सरपट नदी की तरफ। रबाई ने सोचा कि ठीक, झझट मिटी। वह अपना आकर फिर पढ़ाई-लिखाई मे लग गया। लेकिन थोडी ही देर मे उसने देखा, सारा गाव नदी की तरफ जा रहा है। उसने खिडकी पर खड़े होकर देखा, पूछा, 'भाइयो। कहा जा रहे हो?' लोगो ने कहा कि 'अरे तुम्हे पता नही अभी तक? नदी के किनारे एक राक्षस आया हुआ है। बड़ा विकराल है। हरे रग का है। बड़े-बडे दात है।' जो रबाई ने बताया भी नही था, वह भी सब उन्होने बताया। रबाई ने कहा, ठहरो। मै भी आया। रबाई ने अपने मन मे कहा कि अरे बात तो मैने ही गढी है। पर उसने कहा, कौन जाने, सच ही हो।

दूसरे को धोखा देते-देते आदमी खुद को भी धोखा दे लेता है। कौन जाने, सच ही हो। कुछ हर्जा भी क्या है जाने मे। देख ही लेना चाहिए।

तुम कहते कुछ और हो, चाहते कुछ और हो, सोचते कुछ और हो। तुम्हारा जीवन तुम्हारे ही हाथ से पैदा की गई उलझनो मे उलझ गया है।

एक भिखारी मुल्ला नसरुद्दीन को देखकर चिल्लाया, 'बडे मिया। भूखा हू, कुछ पैसे दे दो तो खाना खा लू।' मुल्ला ने दयावश बगल के हलवाई की दुकान पर ले जाकर उसे खाना खिलवा दिया। खाना खाकर भिखारी बडा नाराज होता बाहर निकला और बडबडाया, 'अजीब मजाक है। पिक्चर देखने के लिए तो दो रुपये चाहिए, वे तो जुटते नहीं, खाना सुबह से पाच लोग खिला चुके।'

मगर तुम मागते खाना हो, देखना पिक्चर है।

तुम जिदगी मे जरा गौर से देखना, तुम क्या माग रहे हो? क्योकि तुम जो माग रहे हो, वह मिल जायेगा। तब तुम पछताओगे। न मिला तो पछताओगे। मिल गया तो पछताओगे। क्योकि मागा तुमने कुछ और था और चाहा कुछ और था। फिर उस भिखारी को तो पता भी था अपनी चाह का,

तुम्हे अपनी चाह का भी कोई पता नही।

इस बेहोशी को तोड़ो। ठीक-ठीक साफ कर लो, क्या चाहना है, ठीक-ठीक दिशा खोज लो, कहा खोजना है? और दो ही दिशाये है, ज्यादा उलझन नहीं है। या तो आदमी बाहर की तरफ खोजता है या भीतर की तरफ खोजता है। बाहर की तरफ खोजकर तुमने देख भी लिया है। थोड़ा भीतर को भी मौका दो।

और ध्यान रखना, सासारिक आदमी को तो एक ही अनुभव है—बाहर की तरफ का, धार्मिक आदमी को दोनो अनुभव है—बाहर का भी, भीतर का भी। इसलिए धार्मिक आदमी की बात जरा गौर से सुन लेना। इसलिए महावीर की, कृष्ण की, बुद्ध की बात को जरा गौर से सुन लेना। तुम जहा खोज रहे हो वहा तो उन्होने भी खोजा था। नहीं पाया। फिर उन्होने वहा खोजा जहा तुमने अभी नही खोजा है। और वहा पाया।

तो एक बार थोडा-थोड़ा समय, थोड़ी-थोडी शक्ति निकालो। तेईस घटे ससार को दे दो, एक घटा स्वय के लिए बचा लो। जिस आदमी के पास अपने लिए एक घटा भी नही है, उससे बडा दरिद्र कोई भी नही है। उसे ध्यान कहो, प्रार्थना कहो, जो कहना हो कहो, लेकिन एक घटा अपने लिए बचा लो। तुम आखिर मे मरते वक्त पाओगे कि बाकी तेईस घटे व्यर्थ गये, वही एक घटा असली बचाया हुआ सिद्ध हुआ। और वह एक घटा तुम्हारे तेईस घटो को जीत लेगा, हरा देगा। क्योकि जब तुम्हे रस आने लगेगा, रसधार बहेगी, तो फिर तुम कैसे धोखा दोगे अपने को? जब असली सिक्के दिखाई पड़ने लगेगे तो नकली सिक्को के धोखे मे तुम आओगे कैसे?

तोड़ो इस बेहोशी को। और तुम्हारे बिना तोड़े कोई और तोड़ न सकेगा।

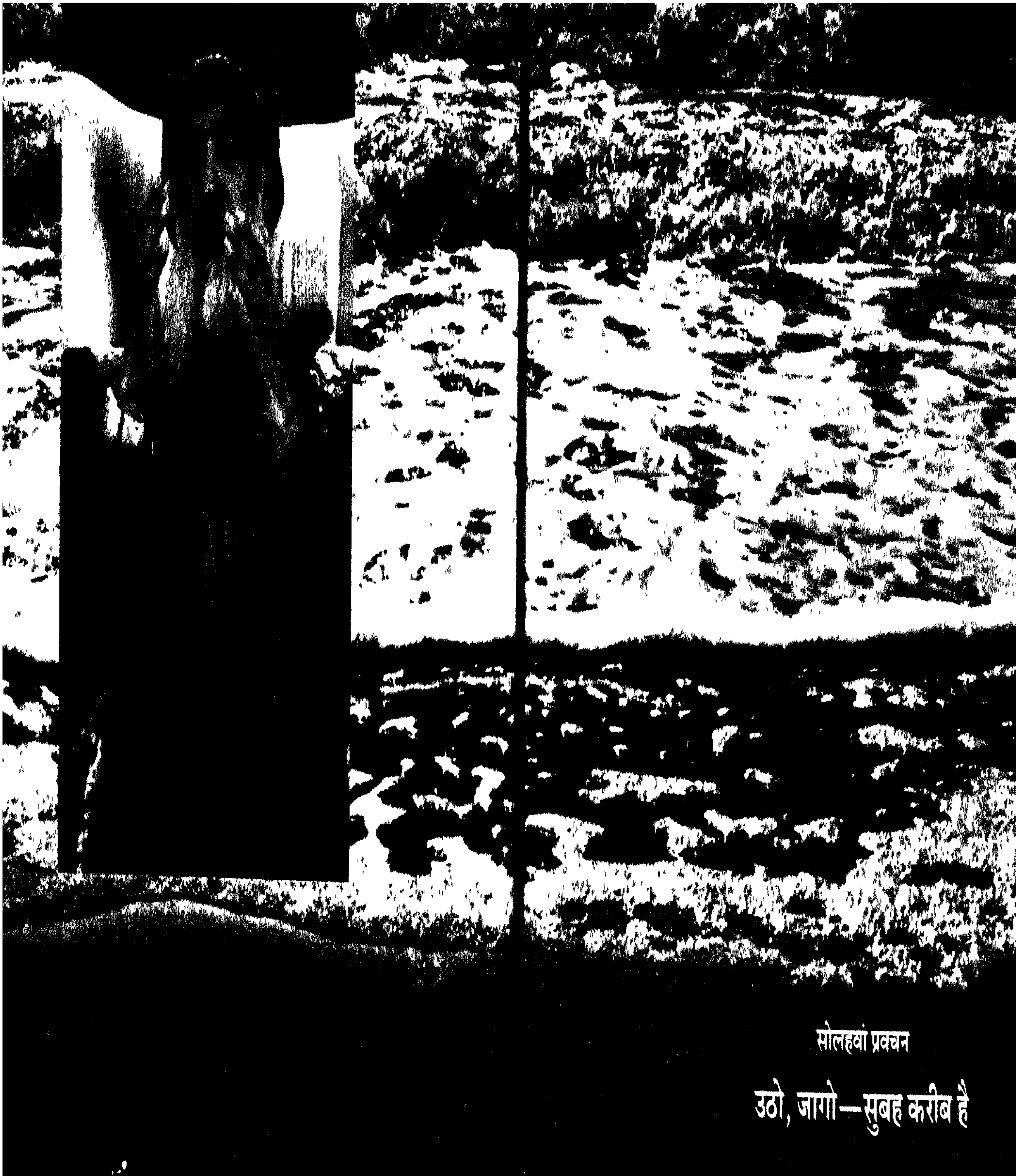
उठ कि खुर्शीद का सामाने-सफर ताजा करे।

—उठो। थोड़ा आत्मविश्वास जगाओ।

मरहबा ऐ जज्बए-खुद ऐतबादी मरहबा
वो हिला तूफा का दिल, किश्ती रवा होने लगी।

आज इतना ही।





सोलहवां प्रवचन

उठो, जागो—सुबह करीब है

प्रश्न-सार

जैसे महावीर के 'अहिसा' शब्द का गलत अर्थ लिया गया,
ऐसे ही क्या आपका 'प्रेम' शब्द खतरे से नही भरा है?

जो दीया तूफान से बुझ गया, उसे फिर जला के क्या करू?
जो परमात्मा घर से ही भटक गया, उसे घर वापस बुला के क्या करू?

तेरे गुस्से से भी प्यार, तेरी मार भी स्वीकार

पहला प्रश्न कल आपने बताया कि महावीर ने प्रेम शब्द का उपयोग नही किया, क्योकि लोग उसका गलत अर्थ लेते है—और यह कि आज लोग अहिसा का गलत अर्थ लेते है, इसलिए आप प्रेम शब्द का उपयोग करते है। पर जैसा लोग महावीर के समय मे प्रेम शब्द का गलत अर्थ करते थे, क्या आज भी वही स्थिति नही है? और आपके द्वारा सर्वाधिक उपयुक्त शब्द, प्रेम, क्या आज भी खतरे से भरा नही है?

शब्द-मात्र खतरे से भरा है। क्योकि जैसे ही बोला गया शब्द, बोलनेवाले की मालकियत उस पर समाप्त हो जाती है, सुननेवाला मालिक हो जाता है। कुछ मैने कहा, कहते ही मै मालिक नहीं रहा, सुनते ही तुम मालिक हो गये। अब तुम क्या अर्थ करोगे—तुम पर निर्भर है।

तो जो शब्दो से डरते हो, उन्हे तो बोलने का ही उपाय नही है। क्योकि अर्थ मै नही डाल सकता, अर्थ तो तुम डालोगे। मेरा अर्थ तो मेरे हृदय मे रह जायेगा, शब्द की खाली खोल तुम तक जायेगी, आत्मा फिर तुम उसमे डालोगे। तो अर्थ तो सदा तुम्हारा होगा। और चूकि तुम उपद्रव से ग्रस्त हो, तुम जो भी अर्थ डालोगे वह भी उपद्रव-ग्रस्त होगा। क्योकि तुम बडे भ्रात हो, तुम्हारे अर्थ भ्रात ही होगे। तुम गलत ही निकाल लोगे।

तो इसका तो यह अर्थ हुआ कि जिन्होने जाना है, वे चुप रह जाये। लेकिन चुप रह जाने का भी तुम अर्थ करोगे कि क्यो चुप रह गये। बुद्ध ने बहुत-से प्रश्नो के उत्तर नहीं दिये—सिर्फ इस कारण कि उन प्रश्नो के उत्तर लोगो को गलत अर्थो मे ले जाते है। तो बुद्ध के मरने के बाद जो सबसे बड़ा विवाद बुद्ध के अनुयायियो मे उठा, वह यह था कि बुद्ध इन प्रश्नो के सबध मे चुप क्यो रह गये। और बुद्ध-धर्म के जो खड-खड टुकड़े हुए, वह उनके चुप रह जाने की वजह से हुए। क्योकि किसी ने कहा कि वे चुप रह गये, क्योकि जो उन्होने जाना वह शब्द मे प्रगट करने योग्य न था। किसी ने कहा, वे चुप रह गये, क्योकि वहा जानने को ही कुछ नहीं है, प्रगट करने का सवाल ही नही है। किसी ने कहा, वे चुप रह गये, क्योकि उन्हे पता ही नही चला, तो बोलते क्या?

चुप्पी का भी तो तुम अर्थ करोगे। तो अर्थ से तो बचा नही जा सकता। तो उपाय क्या है? उपाय यही है कि जिसे जो शब्द ठीक लगे, वह उसका उपयोग करे और सब तरह से, हर दिशा से, उस शब्द को परिभाषित करे। जितने दूर तक सभव हो तुम्हे मौका न दे कि तुम अपना अर्थ प्रवेश कर पाओ। इस तरह की परिभाषा करे, सब तरफ से इस तरह का पहरा बिठाये शब्द पर, फिर भी अगर तुम गलत अर्थ करना चाहो तो करोगे ही।

लेकिन सत्य का गलत उपयोग होगा, इस डर से सत्य बोलने से नही रुका जा सकता। सौ मे निन्यानबे लोग गलत अर्थ कर लेगे, कोई हर्ज नहीं; वह जो एक ठीक अर्थ कर लेगा, तो भी सार्थक है बोलना। क्योकि वे जो निन्यानबे गलत अर्थ कर रहे है, न सुनते तो भी गलत होते, कुछ बिगड़ा नही है। वे गलत थे, इसलिए गलत अर्थ किया, गलत अर्थ के कारण गलत नही हो गये है। इसलिए अगर उन्होने गलत अर्थ किया तो उनकी जिदगी

मे कुछ और बिगाड नही आ जायेगा। वे बिगड़े थे, बिगड़े रहेगे। लेकिन वह जो सौ मे एक भी अगर सुन लेगा, राजी होगा, उठेगा, चलेगा, तो पर्याप्त है। सौ सुननेवालो मे अगर एक भी जग जाये, तो सार्थक हो गया श्रम ! निन्यानबे की फ्रिक करने की कोई जरूरत नही है।

महावीर ने अहिसा शब्द चुना, वह उनकी पसद थी। उनकी पसद के बहुत कारण है। एक कारण है कि प्रेम और भक्ति के नाम पर चलनेवाला सप्रदाय बिलकुल विकृत हो गया था। अब अगर प्रेम की ही वे बात करते तो उस सप्रदाय से पृथक, अलग खड़े होने की कोई सुविधा न थी। वे जिस क्राति की बात करना चाहते थे, वह क्राति पैदा न होती। उन्ही शब्दो के उन्ही पारिभाषिक शब्दो का उपयोग करने का परिणाम यह होता, वे भी पडितो और ब्राह्मणो के उसी समुदाय मे खो जाते जिसकी बडी भीड थी। उन्होने अहिसा शब्द का उपयोग किया। इस तरह उन्होने एक परिभाषा दी। इस तरह उन्होने अपने को पृथक किया। इस तरह भीड़ मे खोने से अपने को बचाया। उपयोगी था उनका उपयोग कर लेना अहिसा का।

लेकिन इन पच्चीस सौ सालो मे अहिसा शब्द को बड़ा मूल्य मिल गया है। उस मूल्य से फिर वैसी की वैसी स्थिति खडी हो गई है। अब अहिसा शब्द का उपयोग करने का अर्थ है अहिसा की कतार मे खडे हुए लोगो की भीड मे खो जाना।

तो जिस कारण से महावीर ने अहिसा शब्द का उपयोग किया, उसी कारण से मै अहिसा शब्द का उपयोग नही कर सकता हू। कारण वही है। मै प्रेम शब्द का उपयोग करना चाहूगा। इन पच्चीस सौ सालो मे प्रेम शब्द खो गया, उपयोग मे नही आया। जैसे किसी ने अपने खेत को कुछ वर्षो के लिए बजर छोड दिया हो, खेती न की हो, तो जिस खेत पर बार-बार खेती की गई है, उसका उपजाऊपन नष्ट हो जाता है। वह जो खाली पड़ा रहा खेत है वर्षो तक, उसने फिर उपजाऊ शक्ति को अर्जित कर लिया है। तो प्रेम शब्द फिर उपयोगी हो गया है। उस शब्द मे फिर प्राण डाले जा सकते है।

पच्चीस सौ साल के अतराल ने, इस पच्चीस सौ साल मे बुद्ध, महावीर और गाधी तक अहिसा शब्द की बड़ी महिमा गायी गई है। अहिसा शब्द पर काफी खेती हो चुकी, अब वहा कुछ भी पैदा नही होता। अब तो डर यह है कि जितने बीज तुम डालोगे, वे भी लौटेगे । इसलिए मै उस खेत की ओर नजर करता हू, उस खेत की तरफ, जिस पर इन पच्चीस सौ वर्षो मे खेती नही हुई।

प्रेम शब्द का आध्यात्मिक अर्थ उपयोग नही किया गया है। उसका उपयोग कर लेना जरूरी है। मै यह नही कहता हू कि सदा यह सार्थक रहेगा, जल्दी ही इस खेत मे से भी उपजाऊपन नष्ट हो जायेगा। तब नये-नये शब्द खोजने होगे। वह आनेवाले लोग चिता करे।

नये शब्द सदा जरूरी रहते है, क्योकि नये शब्दो के साथ मनुष्य मे नयी चेतना का सचार होता है। और कभी-कभी पुराने बहुत दिन तक उपयोग न किये गये शब्दो का पुन उपयोग उपयोगी होता है, क्योकि वे फिर नये हो गये होते है, इतने दिन तक पडे रहे खाली, बिना फसल बोये, फिर क्षमता को अर्जित कर लेते है। तो प्रेम शब्द ने क्षमता अर्जित कर ली है।

फिर कुछ और बाते है। अहिसा शब्द नकारात्मक है। उसमे 'नही' पर जोर है। महावीर का जोर 'नही' पर था। मेरा जोर 'नही' पर नही है। मेरे लिए आस्तिकता स्वीकार मे है। 'हा' के भाव मे है। 'नही' पर जीवन के स्तभ नही रखे जा सकते। और जिसने 'नही' के घर मे रहना शुरू किया वह सिकुड़ जाता है। और जैन धर्म अगर सिकुड़ गया तो उसका कोई और कारण नही है, 'नही' के घर ने मार डाला।

बुद्ध ने भी 'नही' शब्दो का उपयोग शुरू किया था। पाच सौ साल मे बुद्ध का धर्म नष्ट हो गया और तब बौद्ध भिक्षुओ को एक बात समझ मे आ गई कि 'नही' शब्दो ने जान ले ली। वे जो नकारात्मक शब्द है—निर्वाण—नही हो जाना—किसकी आकाक्षा है 'नही' होने की ? शब्द सुनकर ही लोग चौक जाते है। तो जब बौद्ध भिक्षु भारत के बाहर गये, बर्मा, लका, चीन तो उन्होने 'नही' शब्दो का त्याग कर दिया। एशिया में बुद्ध-धर्म फैला जब उसने 'हा' शब्दो का उपयोग किया—अकारात्मक, विधायक, जीवत। बौद्ध धर्म विराट धर्म हो गया। बुद्ध के शब्द अगर पकड़े रहते तो जो दशा जैनो की हुई, वही दशा बुद्ध-धर्म की होती। बुद्ध की मजबूरी थी 'नहीं' शब्दो का उपयोग करने की, वही मजबूरी थी जो महावीर की थी। ब्राह्मण परपरा 'हा' शब्दो से भरी है। आस्तिक शब्दो से भरी है। इस बड़ी परपरा से अगर अलग खड़े न करो तो यह परपरा लील जायेगी। इस

परपरा से अलग खड़ा होना जरूरी है। अलग खड़े होने के लिए 'नही' शब्दो का उपयोग करना पडा, ताकि सीमा-रेखा साफ हो जाये। और जब अल्पमत मे कोई होता है तो उसे बड़ी स्पष्टता से अपनी सीमा-रेखा बनानी पड़ती है, क्योकि बहुमत उसे लील जायेगा। हिंदुओ का विराट सागर था, जैनो, बौद्धो की नदी कहीं भी खो जाती इसमे, यह ताल-तलैया कहीं भी खो जाता, इसका कही पता भी न चलता। तो उस ताल-तलैया को बहुत सुरक्षित होकर अपनी व्यवस्था करनी पड़ी। उसने उन सारे शब्दो का उपयोग रोक दिया, जो हिदू उपयोग करते थे। वे शब्द अपने-आप मे बहुमूल्य थे, लेकिन मजबूरी थी, उन शब्दो के साथ सबध हिदुओ का था। अगर ब्रह्म शब्द का उपयोग करो—डूबे। अगर परमात्मा शब्द का उपयोग करो—डूबे। हिदुओ के पास लबी परपरा थी। उस परपरा के कारण सारे विधायक शब्द उपयोग कर लिये गये थे। हिदुओ का वही तो बल है। हिदू इतने आघातो के बाद जीते रहे है, उसका कारण कहा है? उसका कारण है उनकी विधायकता मे, स्वीकार मे, अगीकार मे।

अगर तुम वैदिक, उपनिषद के ऋषियो का स्मरण करो तो तुम्हे समझ मे आयेगा कि अब तुम जिसे साधु और सन्यासी कहते हो, उस हिसाब से वे साधु-सन्यासी न थे। मै जिस हिसाब से सन्यासी कहता हू, उस हिसाब से सन्यासी थे। घर मे थे, गृहस्थी मे थे, उनकी पत्निया थी, बच्चे थे, धन-दौलत थी। बड़ा विधायक रूप था।

सन्यास हिदुओ के लिए गृहस्थी के विपरीत नही था, गृहस्थी का ही आत्यतिक फल था। ऐसा नही था कि घर को छोड़कर जो चला गया, वह सन्यासी है, नही, जिसने घर पूरा कर लिया, वह सन्यासी है। जो घर मे पूरा-पूरा जी लिया और पार हो गया, जीवन के अनुभव एक-एक सोपान की तरह चढ गया—वह सन्यासी है। सन्यास हिदुओ के लिए जीवन का अतिम शिखर था। पहले ब्रह्मचर्य, फिर गार्हस्थ्य, फिर वानप्रस्थ, फिर सन्यास—ऐसी जीवन मे एक क्रमबद्धता थी, एक विकास था। बहुत वैज्ञानिक बात थी। पहले ससार को ठीक से अनुभव तो कर लो, भोग की पीड़ा तो जानो, ताकि तुम त्यागी हो सको। धन की व्यर्थता तो जानो ताकि विराग का जन्म हो सके। इस देह की नश्वरता को तो पहचानो। शास्त्रो से नही—जीवन, अनुभव । सभी को अनुभव हाथ आ जाता है।

तो हिदुओ के हिसाब से सन्यास जीवन-विरोधी न था, जीवन का नवनीत था। जिन्होने जीवन को जीया, वे उस नवनीत को उपलब्ध हुए। दूध है, उसे जमाओ, दही बनाओ, दही का मथन करो, मक्खन निकालो, मक्खन को गरमाओ, घी बनाओ—ऐसा सन्यास था। घी की तरह। फिर घी का तुम कुछ भी नही कर सकते।

तुमने कभी खयाल किया, घी के बाद कोई गति नही है। घी को तुम कुछ और नही बना सकते। दूध दही हो सकता है, दही मक्खन बन जाता है, मक्खन घी बन जाता है—लेकिन अब तुम घी को कुछ भी नहीं बना सकते। पराकाष्ठा।

अब अगर तुम चाहो, कि घी को पीछे भी लौटाये तो वह भी नही कर सकते। तुम चाहो कि अब घी का मक्खन बना ले, कि मक्खन का अब दही बना ले, कि दही से अब दूध मे उतर जाये—वह भी नही हो सकता।

तो हिदुओ के लिए तो सन्यास घी की तरह था, वह आखिरी बात थी—जिससे पीछे लौटना नही होता, जिसके आगे जाना नहीं है। और उस तक जिसे पहुचना है, उसे ये सारी सीढ़िया पार करनी होगी।

इस सनातन धर्म के बीच महावीर का आविर्भाव हुआ। यह परपरा सड़ गई थी, गल गई थी। सभी परपराए एक दिन सड जाती है, गल जाती है। यह जीवन का स्वाभाविक धर्म है। जैसे हर जवान बूढ़ा हो जाता है, फिर हर बूढ़ा मर जाता है, फिर एक दिन अस्थि लेकर हम जाकर जला आते है—ठीक ऐसी ही सस्कृतिया पैदा होती है, धर्म पैदा होते है, जवान होते है, बूढे होते है, मरते है। लेकिन जिस बात को हम सामान्यतया जीवन मे कर लेते है मा मर गई तो बहुत प्रेम था, फिर भी क्या करोगे? रोते हो, धोते हो, रोते जाते हो, अर्थी बाधते जाते हो—करोगे क्या? रोते जाते हो, अर्थी लेकर चल पडते हो। रोते जाते हो, जला आते हो। इतनी हिम्मत हम धर्मो के साथ न कर पाये कि वे भी जवान होते है, जब जवान होते है तब उनका मजा और। जब हिदू धर्म शिखर पर था तो उसने उपनिषद जैसे शास्त्रो को जन्म दिया, महाकाव्य पैदा हुआ। सब तरफ गीत गूज उठा हिदू धर्म का। प्राणो मे पुलक थी, उत्साह था, जवानी थी। फिर हिदू धर्म बूढ़ा हुआ। जब हिदू धर्म बूढ़ा हुआ और मर

गया या मरने के करीब था, मरणासन्न था, तब बुद्ध और महावीर का आविर्भाव हुआ। अब इस मरते आदमी के साथ उनको किसी भी तरह का सबध जोडना खतरनाक था। यह तो मर ही रहा था। इसके साथ सबध जोड़ने का अर्थ था, तुम पहले से ही मौत से जुड़ गये। स्वभावत उन्होने नये शब्द खोजे।

तुम देखो, जैनो ने सस्कृत भाषा तक का उपयोग न किया। शब्दो की तो बात अलग, उस भाषा मे भी बोलने मे खतरा था, क्योकि भाषा के सब सबध थे। अब अगर सस्कृत का महावीर उपयोग करते तो उपनिषदो से ऊचा गीत और क्या गा पाते? पराकाष्ठा हो गई थी। सस्कृत ने अपनी आखिरी ऊचाई पा ली थी। सस्कृत ने शिखर छू लिया था, अब इसके पार जाने का कोई उपाय न था। इस मदिर पर कलश चढ़ चुका था। तो महावीर ने सस्कृत का उपयोग न किया। महावीर ने प्राकृत का उपयोग किया। सस्कृत पडित की भाषा थी, सुसस्कृत की, अभिजात्य की। महावीर ने दीन की, गरीब की, लोकजन की भाषा का उपयोग किया।

ध्यान रखना, जब भी नया धर्म आता है तो उनके द्वारा आता है, जो पुराने धर्म के कारण दलित थे, पीडित थे। जो पुराने धर्म के कारण प्रतिष्ठित थे वे तो नये धर्म को क्यो चुनेगे? उनका तो पुराने धर्म के साथ बड़ा सबध है। उनके तो बडे स्वार्थ है। तो स्वभावत ब्राह्मण आदोलित होगा महावीर के विचारो से, यह तो सभव न था। क्षत्रिय आदोलित हो सकता था, वैश्य आदोलित हो सकता था, शूद्र आदोलित हो सकता था। क्षत्रिय भी बहुत आदोलित नही हुआ, क्योकि उसके भी सबध बहुत गहरे ब्राह्मण से जुड़े थे। ब्राह्मण सबके ऊपर था। लेकिन वस्तुत तो क्षत्रिय ही ऊपर था, जिसके हाथ मे तलवार है। क्षत्रिय के कारण और आज्ञा से ब्राह्मण ऊपर रह सकता था। नाममात्र को ब्राह्मण ऊपर था, वस्तुत तो क्षत्रिय ऊपर था। तुम कितनी ही बात करो कि सतो की महिमा थी, महिमा थी, लेकिन उस महिमा को भी जब तक राजा आकर चरण न छूता, कौन महिमा थी? राजा आकर चरण छूता था तो सत की महिमा थी। तो सत दीवाने रहते थे कि कितने राजा किसके पास आते है। तो क्षत्रिय भी प्रतिष्ठित था। इसलिए जैन धर्म अगर बनियो का धर्म हो गया, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। वैश्य सर्वाधिक प्रभावित हुए। शूद्र बहुत कम प्रभावित हुए, क्योकि प्रभावित होने की भी थोड़ी समझ तो चाहिए। क्षत्रिय के स्वार्थ थे, ब्राह्मण का तो कोई उपाय न था कि वह जैन बने, इस बनने मे कोई सार न था। अभी भी तुम देखते हो, हिदुस्तान मे जो लोग ईसाई बनते है, कोई बिरला, सिंघानिया, साहू कोई ईसाई बनते है? ईसाई बनता है शूद्र, गाव का गरीब, आदिवासी। जिनका निहित स्वार्थ है, वे किसलिए ईसाई बनेगे? ईसाई तो वह बनता है जो हिदू धर्म से पीड़ित है, परेशान है। जो हिदू धर्म उसे नही दे सका है, उसका आश्वासन ईसाइयत देती है।

तो महावीर और बुद्ध दोनो ने कहा, कोई वर्ण नही है। लेकिन शूद्र तो इतना दलित था कि उसे ये शब्द भी समझ मे न आ सकते थे, उसको तो शास्त्र पढ़ने की मनाही थी। उसको तो कोई शिक्षा भी न थी। इसलिए स्वभावत ब्राह्मण आ नहीं सकता था, क्षत्रिय को आने का कोई कारण न था—उसके हाथ मे तलवार और बल था। शूद्र समझ नही सकता था। और शूद्र का भीतर लाने मे खतरा भी था, क्योकि वह वैश्य नही घुसने देता था शूद्र को। क्योकि वह छिडकता था। उसकी भी धारणा तो हिदू की थी। अगर क्षत्रिय आता तो वैश्य स्वीकार कर लेता, वह ऊपर का था, ब्राह्मण आता तो भी स्वीकार कर लेता। शूद्र से उसे भी अडचन थी, वह उससे भी नीचे था। इसलिए वैश्य शूद्र को घुसने न देगा। इसलिए जैन धर्म वैश्यो का धर्म हो गया, दुकानदारो का धर्म हो गया। स्वभावत महावीर को इनकी भाषा का उपयोग करना पड़ा—लोक-भाषा का।

बुद्ध ने भी वही किया। उन्होने भी लोक-भाषा का उपयोग किया। उन्होने पाली चुनी। क्योकि वे प्राकृत चुनते तो महावीर के साथ बध जाते।

इसे थोड़ा सोचना चाहिए। महावीर बुद्ध से कोई तीस साल उम्र मे बडे थे। महावीर पहले आ गये थे। तीस साल वे काम कर चुके थे।

ब्राह्मण सस्कृत बोलते थे, महावीर ने प्राकृत चुनी थी, बुद्ध को दोनो उपाय न रहे थे। एक ही क्षेत्र मे थे दोनो, लेकिन बुद्ध ने पाली चुनी, ताकि साफ-साफ व्याख्या हो सके, भेद हो सके। भाषा से बडा भेद और किसी चीज से पैदा नहीं होता।

तुम जानते हो, जब कोई आदमी तुम्हारी भाषा नही समझता, तो तुम अजनबी हो गये, एकदम अजनबी हो गये। पास-पास बैठे हो और हजारो मील का फासला हो गया। क्योकि आदमी

जीता है भाषा से, जुड़ता है भाषा से।

सस्कृत का त्याग करने का परिणाम यह हुआ कि जैन हिंदू धर्म से बिलकुल साफ अलग टूट गये। पाली का प्रयोग करने के कारण बौद्ध जैनो से भी टूट गये, ब्राह्मणो से भी टूट गये।

दोनो ने वर्णो का विरोध किया, तो ही तो वे आकर्षित कर सके वैश्य को। यद्यपि वैश्य आकर्षित हो गया, लेकिन बडे मजे की बाते है, दुनिया मे सस्कार बड़ी मुश्किल से जाते है। अभी भी जैन मदिर मे शूद्र को प्रवेश नहीं है। और महावीर कहते है, न कोई शूद्र है, न कोई ब्राह्मण है, न कोई वैश्य है, न कोई क्षत्रिय है। उनकी सारी क्राति वर्ण-विरोधी है। लेकिन फिर भी वर्ण जाता नही।

तुमने देखा, अगर कोई ब्राह्मण ईसाई हो जाये, तो वह ईसाई होकर भी ब्राह्मण रहता है। ईसाइयो को मै जानता हू। उनमे कोई अगर ब्राह्मण के वर्ग से ईसाई हुआ है और कोई अगर शूद्र के वर्ग मे ईसाई हुआ है, तो वह जो ब्राह्मण ईसाई है, शूद्र ईसाई से ऊपर रहता है। ब्राह्मण ईसाई शूद्र ईसाई से विवाह नही करता। सस्कार बडे गहरे बैठ जाते है।

तो जब महावीर ने वर्णो की व्यवस्था तोड़ दी, तो उन्होने आश्रम की व्यवस्था भी तोड दी, क्योकि वह वर्णाश्रम एक ही प्रत्यय था—चार वर्ण, चार आश्रम। जब महावीर ने वर्ण की व्यवस्था तोड़ी तो उन्होने आश्रम की भी व्यवस्था तोड़ दी। यह तोडना जरूरी था, नही तो हिंदू ढाचा पकडे रहता, उससे छूटना मुश्किल था। जब तुम किसी एक सागर मे पैदा होते हो तो तुम्हे अपना द्वीप बनाना पड़ता है। तो उन्होने कहा कि न कोई ब्रह्मचर्य का सवाल है, न कोई गृहस्थ का सवाल है, न कोई वानप्रस्थ का, न कोई संन्यस्त का, और जब तुम सन्यस्त होना चाहते हो तभी हो सकते हो। इस तरह उन्होने दोनो ही व्यवस्थाए तोड़ दीं। फिर उन्होने नये शब्द खोजे, नयी भाषा खोजी।

प्रेम शब्द बहुत खतरनाक है। क्यो? क्योकि प्रेम के साथ ही तत्क्षण परमात्मा प्रवेश करता है। तुमने कभी देखा, एक साधारण स्त्री को भी तुम प्रेम करने लगो तो उसमे देवी का आविर्भाव हो जाता है। एक स्त्री एक साधारण-से पुरुष के प्रेम मे पड़ जाये तो उसे परमात्मा मानने लगती है। जहा प्रेम आता है, वहा पीछे से परमात्मा आ जाता है। साधारण जीवन मे, जहा कि तुम भलीभाति जानते हो कि यह आदमी परमात्मा नही है, लेकिन फिर भी उसकी प्रेयसी उसे परमात्मा मानने लगती है। तो अगर प्रेम शब्द का बहुत उपयोग करो तो परमात्मा को इनकार न कर सकोगे। क्योकि प्रेम शब्द का इशारा ही और की तरफ है। प्रेम तीर है, निशाना कहीं और है निकलेगा तुम्हारे हृदय से, लगेगा किसी और हृदय मे।

तो प्रेम तो खतरनाक है—ध्यान। प्रेम तो खतरनाक है—अहिसा। प्रेम तो खतरनाक है, क्योकि प्रेम के साथ परमात्मा आता है और परमात्मा के साथ हिदुओ की पूरी जीवन-चितना जुडी है। इसलिए महावीर को परमात्मा भी इनकार कर देना पड़ा, प्रेम भी इनकार कर देना पड़ा, प्रार्थना भी इनकार कर देनी पडी, पूजा, अर्चना, धूप-दीप सब इनकार कर देना पडा। सब भाति व्यक्ति अपने मे भीतर चला जाये, बाहर जाये ही नही। परमात्मा भी बहिर्यात्रा है। इस कारण महावीर ने अहिसा शब्द का उपयोग किया।

लेकिन अहिसा बहुत कमजोर शब्द है, प्रेम के सामने टिकता नही, बहुत लगड़ा है। उनकी जरूरत थी। उनकी मजबूरी थी। लेकिन प्रेम के पास पैर है।

तुम जरा किसी स्त्री से कहो कि मेरा तुझसे अहिसा का सबध हो गया है, तब तुम्हे पता चलेगा। वह दुबारा तुम्हारी शकल न देखेगी। किसी स्त्री से अहिसा का सबध। उसका मतलब इतना हुआ कि हम तुम्हे मारेगे भी नही, कष्ट भी न देगे। खतम, सबध पूरा हो गया। दोगे क्या? यह तो न देने की बात हुई। दुख न दोगे, समझ मे आया। मारोगे नही, यह भी समझ मे आया। लेकिन इतने पर कोई सबध निर्भर होते है?

अहिसा सबध तोड़ने की व्यवस्था है, जोड़ने की नही। इसलिए महावीर का अनुयायी टूट जाता है, सबसे टूट जाता है। अहिसा जोड़ ही नहीं सकती। अहिसा मे कोई सीमेंट नहीं है। अहिसा मे योग नहीं है।

अब तुम चकित होओगे, महावीर ने योग शब्द का उपयोग नही किया। और भी तुम हैरान होओगे कि महावीर ने 'अयोग' शब्द का उपयोग किया है। जुडना नही है, टूटना है, अयोग। तो जब महावीर का ज्ञानी परम अवस्था को उपलब्ध होता है तो उसको वे कहते है, 'अयोगी, केवली'। जो सब तरह से सबसे टूटकर अकेला हो गया अयोगी, केवली। योग पाप है, क्योकि योग मे तो बात ही जुड़ने की है। जुड़ना तो है ही नही, क्योकि

जुड़ना ही तो ससार है। ससार से टूट जाने मे असली बात है।

तो अहिंसा से सबध तोड़ा जा सकता है, जोड़ा तो नही जा सकता। अहिसा सिकोड सकती है, फैला तो नही सकती। अहिसा तुम्हे अपने मे बद कर देगी, खोलेगी तो नही। अहिसा मे कोई द्वार-दरवाजे नही है, दीवाल है। इसलिए जितने तुम अहिसा जैसे शब्दो से भरोगे, उतने ही तुम पाते जाओगे कि तुम सूखने लगे, तुम्हारे पत्ते कुम्हलाने लगे, शाखाए गिरने लगी, तुम सिकुडने लगे, तुम लौटने लगे। तुम्हारा फैलाव खो गया। तुम्हारे जीवन का अभियान खो गया।

तो अगर जैन सिकुड़ गये तो कुछ आकस्मिक नही है। फैलने का उपाय न था।

नकार को कभी जीवन की व्यवस्था मत बनाना, क्योकि जीवन का स्वभाव फैलाव है। यहा सब चीजे फैलती है। एक छोटे से बीज को डाल दो, एक बडा वृक्ष हो जाता है। उस वृक्ष मे फिर करोड़ो बीज लग जाते है। एक बीज करोड बीज हो जाता है। करोड़ बीजो को फैला दो, पूरी पृथ्वी वृक्षो से भर जायेगी। एक बीज से यह पूरी पृथ्वी हरी हो सकती है।

तुम जरा देखो तो जीवन का ढग। ईसाई कहते है, अदम और हव्वा, एक जोड़ा भगवान ने पैदा किया था, फिर उससे ये सारे चार अरब मनुष्य पैदा हुए। बस एक जोडा काफी था।

यहूदियो की कथा है कि परमात्मा बहुत नाराज हो गया था एक बार। लोग भ्रष्ट हो गये थे। तो उसने सारी पृथ्वी को महाप्रलय मे डुबा दिया। लेकिन एक भक्त था उसका नोह। उसने नोह स कहा कि तुझे हम बचा लेगे। लेकिन नोह ने प्रार्थना की कि माना कि लोग बुरे है, गलत हो गये है, लेकिन इतने नाराज न हो, कुछ तो बचा ले, बीज तो बचा लें। तो परमात्मा ने कहा, 'अच्छा। तू एक-एक पशुओ का एक-एक जोड़ा अपनी नाव मे रख लेना। वह नाव भर बचेगी।' बस एक जोडा काफी था। लेकिन बडी मधुर कहानी है। नोह और उसकी पत्नी दरवाजे पर खडे हो गये और नाव मे, उन्होने कहा, आ जाओ एक-एक जोडा। तो हाथी आया, ऊट आये, घोड़े आये, गधे आये—सब आये। फिर जब प्रलय समाप्त हो गया, सात दिन के बाद सारी पृथ्वी डूब गई, सिर्फ नोह की नाव बची। फिर पृथ्वी उभरी, फिर किनारे नाव लगी। फिर वे दोनो दरवाजे पर खडे हो गये, फिर एक-एक को निकाला। लेकिन वे बड़े हैरान हुए, चूहे कोई दस-पच्चीस निकले। तो नोह ने अपनी पत्नी से पूछा, 'यह मामला क्या है? मैने पहले कहा था कि दो-दो लेना, एक-एक लेना।' उसने कहा, 'लिये तो इतने ही थे, मगर इतने हो गए सात दिन मे।'

एक जोड़ा काफी है। उतने बचाने से सारी प्रकृति, सारी पृथ्वी बच गई।

जीवन का स्वभाव फैलाव है। प्रेम मे फैलाव है, अहिसा मे सिकुडाव है। इसलिए मै तो प्रेम शब्द को ही पसद करता हू। अहिसा प्रेम का एक छोटा-सा अग है। जिससे हम प्रेम करते है, उसे हम दुख नही देना चाहते—यह बात ही साफ है। जिससे हमारा प्रेम का सबध है, उससे हमारा अहिसा का सबध तो हो ही गया। लेकिन जिससे हमारा अहिसा का सबध है, उससे प्रेम का सबध हो गया—यह जरूरी नही है। प्रेम अहिसा से बड़ी बात है। जिससे हम प्रेम करते है, उसे हम कैसे दुख पहुचायेगे? उस दुख पहुचाकर तो अपने को ही दुख पहुच जाता है। भूल-चूक से अगर पहुच भी जाता हो, तो भी हम क्षमा-याची होते है, सुधार की कोशिश करते है। अहिसा अपने से सध आती है, जहा प्रेम आया, अहिसा पीछे से अपने आप आ जाती है।

तो मै तो कहता हू, प्रेम को बढाओ। वह व्यक्तियो पर सीमित न रहे, फैलता जाये, वृक्षो, पशु-पक्षियो का भी घेर ले।

और जब मै कहता हू, परमात्मा को प्रेम करो, तो मेरा इतना ही अर्थ है कि यह जो दिखाई पड रहा है—दृश्य—इसको इतना प्रेम करो कि इस सभी मे तुम्हे अदृश्य की प्रतीति होने लगे। पत्ते-पत्ते मे वह दिखाई पडने लगे।

अहिसा अपने से आ जायेगी। अहिसा के लिए अलग से शास्त्र बनाने की कोई जरूरत नही है।

माना कि प्रेम शब्द के अब भी गलत अर्थ लिये जायेगे, लेकिन फिर भी मै मानता हू कि प्रेम ज्यादा जीवत शब्द है। गलत भी अर्थ लिये जायेगे, तो भी चुनने योग्य है। गलत अर्थ तो अहिसा के भी लिये गये। और शब्द नकारात्मक था, मुर्दा था—तो गलत अर्थ मुर्दे पर इकट्ठे हुए। बडी सड़ाध पैदा हो गई। जीवत कोई शब्द हो तो थोड़ा-बहुत गलत अर्थ लेने मे बाधा डालेगा, इनकार करेगा। एक पत्थर पडा हो, उसको तुम छैनी उठाकर काटने लगो, तो वह कुछ बाधा न डालेगा। एक जिदा बच्चा हो तो उछलेगा-कूदेगा, चीखेगा-चिल्लायेगा। मोहल्ले-पड़ोस के लोगो को इकट्ठा कर लेगा अगर छैनी उठाओगे उसके ऊपर।

प्रेम जीवत है। अगर तुम उसे बदलोगे तो इतनी आसानी से न बदल पाओगे, शोरगुल मचायेगा। अहिसा बिलकुल मुर्दा है। तुम उसे बना लेना, अपने रग-ढग मे रग-लेप कर लेना। अहिसा के शब्द से आवाज भी न निकलेगी। तुम जो भी बना लोगे, वही बन जायेगी।

नकार हमेशा ही सावधान होने योग्य है। अभाव है नकार। अभाव पर इतना जोर मत देना, क्योकि अभाव से तुम धीरे-धीरे रसहीन हो जाओगे। अभाव को देखते-देखते तुम भी धीरे-धीरे बुझ जाओगे।

महावीर की मजबूरी थी, उन्होने चुना, लेकिन उनकी मजबूरी से मै बधा हुआ नही हू। उन्होने ठीक माना होगा। उनकी परिस्थिति मे जो उन्हे ठीक लगा होगा, किया होगा। लेकिन उनकी परिस्थिति मेरे ऊपर कोई बधन नही है। यही तो मुझे सुविधा है। मेरे ऊपर किसी का बधन नही है। अगर जैन महावीर पर बोलेगा तो उसको अडचन होगी। वह हिम्मत नही जुटा पाता। उसको महावीर का बधन मानकर चलना पड़ता है। जो महावीर ने कहा, वह हर हालत मे ठीक होना ही चाहिए। उस दिन के लिए भी ठीक होना चाहिए, आज भी ठीक होना चाहिए। मै कहता हू, उस दिन जरूर ठीक रहा होगा, क्योकि महावीर जैसा बुद्धिशाली व्यक्ति, जब इस शब्द को चुना था तो बहुत सोचकर चुना होगा। लेकिन महावीर कोई सदा के लिए आदमी को बाध नही गये। कौन बाध जाता है? कौन बाध सकता है? मेरे लिए कोई मजबूरी नही है। इसलिए मै पतजलि पर भी बोलता हू, तो भी मेरी कोई मजबूरी नही है। कोई बधन नही है। कोई ऐसा नहीं है कि पतजलि ने जो कहा है, वह ठीक ही कहा है। आज के लिए तो मै फिक्र नही करता। आज के लिए तो मैं जो कहूगा, मै मानता हू, ज्यादा ठीक है। उन्होने अपने समय के लिए कहा होगा। जैसे वे अपने समय के लिए कहने के हकदार थे, वैसे अपने समय के लिए कहने के लिए मै हकदार हूं।

निश्चित ही, मै यह नहीं कहता कि मै जो कह रहा हू, वह सदा-सदा सही रहेगा, कभी न कभी सड़ जायेगा, मरेगा। तब कोई न कोई उसे बदलेगा—बदलना ही चाहिए। इस जगत मे कोई भी व्यक्ति सभी के लिए सदा के लिए निर्णायक नहीं हो सकता, नहीं तो मनुष्य की स्वतत्रता, महिमा मर जायेगी।

गुनो, सुनो, समझो, लेकिन कभी भी अधी लकीरे मत पीटो। स्थिति तो करीब-करीब आज भी वही है। प्रेम शब्द गलत समझा जायेगा। लेकिन मेरे साथ भेद है। मै कोई नया धर्म खड़ा करने मे उत्सुक नहीं हू। नयी भाषा खड़ी करने मे उत्सुक नही हू। नया शास्त्र निर्मित करने मे उत्सुक नही हू। शास्त्र तो बहुत है। धर्म भी बहुत है। भाषाए भी बहुत है। अब तो हमे कुछ खोज करनी चाहिए कि सभी धर्मो के भीतर जो सार है, वह हमारी पकड़ मे आ जाये। तो मै यह नही मेरी चेष्टा वही नही है जो महावीर की थी। तो महावीर हिदू से डरे थे, मै डरा हुआ नही हू। बुद्ध, महावीर से भी डरे हुए थे, मै डरा हुआ नही हू। मै न ईसाई से डरा हुआ हू, न मुसलमान से डरा हुआ हू, न हिदू से, न जैन से, न बौद्ध से—किसी से डरे होने का कोई कारण नही है। हा, अगर मुझे कोई नया धर्म स्थापित करना हो तो भय आ जायेगा। क्योकि फिर मुझे खयाल रखना पड़ेगा। सारे बाजार का खयाल रखना पडेगा। मेरी चीज कुछ नयी होनी चाहिए, पृथक होनी चाहिए, उसमे गध, रग अलग होना चाहिए, ट्रेडमार्का अलग होना चाहिए, तो ही टिक पायेगी बाजार मे, अन्यथा खो जायेगी।

मेरी तो चेष्टा बड़ी भिन्न है। मेरी चेष्टा यह है कि जो अब तक जाना गया है—और काफी जान लिया गया है—अब उस जानने का सार-निचोड लोगो को मिलना शुरू हो जाये।

धर्मो का कोई भविष्य नही है। धर्म गये, अतीत की बात हो गये। जैसे विज्ञान एक है, ऐसा ही भविष्य मे कभी धर्म भी एक होगा। हिदू नही होगा, मुसलमान नही होगा, ईसाई नही होगा। इन सबने अपनी-अपनी धाराए धर्म के सागर मे डाल दी। अब सागर को हम गगा थोड़े ही कहते है, यमुना थोडे ही कहते है—कोई जरूरत नही कहने की। सागर यमुना से भी बडा है, गगा से भी बड़ा है, ब्रह्मपुत्र से भी बड़ा है—हजारो नदियो को लील जाता है, इचभर ऊपर नही उठता। हजारो नदिया बादलो मे उड जाती है, इचभर नीचे नही गिरता। अब धर्म का सागर बनना चाहिए, ताल, सरोवर बहुत हो चुके। अब उन्होने काफी बोध की सामग्री इकट्ठी कर दी है। अब कोई जरूरत नही है कि हिदू मुसलमान से लडे, कि जैन हिदू से लड़े। अब तो जरूरत है कि जैन, हिदु और मुसलमान और ईसाई और सिक्ख के बीच जो सारभूत है, वह प्रगट हो जाये, ताकि धर्म का विज्ञान बने।

अब विज्ञान विज्ञान है, न ईसाई है, न हिदू है, न मुसलमान

है। कोई ईसाई भी अगर वैज्ञानिक सत्य खोजता है तो उस सत्य को हम ईसाई तो नही कहते। आइस्टीन ने रिलेटिविटी का सिद्धात खोजा, सापेक्षता का सिद्धात खोजा। इसको हम ईसाई तो नही कहते, यहूदी तो नही कहते, मुसलमान तो नही कहते। मुसलमान खोजे तो भी वह विज्ञान, हिंदू खोजे तो भी विज्ञान, यहूदी खोजे तो भी विज्ञान। तो धर्म के सबध मे भी, कोई भी खोजे, वह उस एक ही परम सत्य की तरफ इशारे है। अगुलियो को छोड़ो अब, अब चाद को देखो।

मेरी चेष्टा है कि तुम्हे अगुलियो से छुड़ाऊ और चाद को दिखाऊ, क्योकि सभी अगुलिया उसी चाद की तरफ बता रही है। हा, किसी अगुली पर हीरे जड़ा हुआ शृगार है, कोई अगुली काली-कलूटी है, कोई दुर्बल है, कोई बड़ी सुदर है, युवा है, कोई बूढ़ी है, कोई अति प्राचीन है, कोई अभी छोटे बच्चे की तरह है, नये-नये पल्लव की भाति—मगर ये सारी अगुलिया जिस चाद की तरफ उठी है, वह एक है। हमने अगुलियो पर अब तक बहुत ध्यान दिया, अब अगुलियो को छोड़े और चाद पर ध्यान दे। इशारा समझे।

तो मै तो प्रेम शब्द का उपयोग जारी रखूगा। खतरा तो है, लेकिन खतरे से क्या घबड़ाना? खतरे से घबड़ा-घबड़ाकर ही तो आदमी नपुसक हो गया है। हर जगह खतरे से बच रहे है। धीरे-धीरे तुम पाओगे, जिदगी से भी बच गये, क्योकि जिदगी स्वय खतरा है। जो प्रेम से बचेगा, आज नही कल जिदगी से भी बचेगा। जिदगी मे भी खतरा है। मौत तो जिदगी मे ही घटेगी।

कभी तुमने सोचा ?

मेरी बूढ़ी नानी थी। वह सदा डरती थी कि मै हवाई जहाज मे न जाऊ। जब भी मै घर से निकलता, तब वह कहती, 'एक बात खयाल रखना—हवाई जहाज मे कभी नही।'

मैने उसको कहा कि तू डरती क्यो है हवाई जहाज से? उसने कहा कि अखबार मे खबर आती है कि गिर गया, लोग मर गये। मैने कहा, 'तुझे पता है, निन्यानबे प्रतिशत लोग तो खाट पर मरते हैं? तो क्या खाट पर सोना बद कर दू, बोल?' उसने कहा, यह बात तो ठीक है। उसको भी जची बात। उसने कहा, यह बात तो ठीक है। मरते तो खाट पर ही है निन्यानबे प्रतिशत लोग। तो अगर दुर्घटना कोई बचानी है तो खाट बचानी है। कभी-कभार कोई मरता है हवाई जहाज मे। उसने कहा, फिर जाओ, फिर कोई बात नहीं। खाट से, अब खाट से बचोगे तब तो फिर जीना ही मुश्किल हो जायेगा।

ईरान मे कहावत है, जमीन पर सोनेवाला खाट से कभी नहीं गिरता। बिलकुल ठीक है। जब जमीन पर ही सो रहे है तो खाट से गिरोगे कैसे? लेकिन ऐसे कहा तक बचते रहोगे? फिर जीओगे कैसे? फिर यह जीना तो एक पलायन हो जायेगा। यहा तो हर चीज मे खतरा है। यहा प्रेम करो, खतरा है। यहा घर से बाहर निकलो, खतरा है। यहा सास लो, खतरा है। इन्फैक्शन। यहा पानी पीयो, खतरा है। यहा भोजन करो, खतरा है। यहा खतरा ही खतरा है। यहा तो मरे हुए ही खतरे के बाहर है।

देखा तुमने, मरा हुआ आदमी बिलकुल खतरे के बाहर है। पहली तो बात, अब मर नही सकता। कोई बीमारी नही लग सकती, छूत की बीमारी नही लग सकती। दूसरे इससे बचते है, यह किसी से नहीं बचता। तो जिन लोगो ने भी खतरे, खतरे, खतरे को सोचा है, हिसाब रखा है, वे धीरे-धीरे मर गये। इस देश के मुर्दा हो जाने मे बडा हाथ है—इस धारणा का, कि इसमे खतरा है, इसमे खतरा है। तो सिकुड़ते जाओ, सिकुडते जाओ—जाओगे कहा?

मैंने सुना है, पुराने गाव की एक कहानी है कि गाव का जो मालगुजार था, उससे मिलने एक ब्राह्मण आया। तो जब ब्राह्मण आये तो मालगुजार को नीचे बैठना चाहिए। मालगुजार अपने तखत पर बैठा था। ब्राह्मण आया तो मालगुजार, वह नीचे ब्राह्मण बैठने लगा। मालगुजार ने कहा, 'यह ठीक नही है, नियम के विपरीत है। तुम ऊपर बैठो, मै नीचे बैठता हू।' उस ब्राह्मण ने कहा, 'लेकिन इसमे बड़ी झझट आयेगी।' जिद्दी था मालगुजार भी। उस ब्राह्मण ने कहा, 'ऐसा कहा तक करोगे? क्योकि अगर मैं नीचे बैठूगा, तुम क्या करोगे फिर?' उसने कहा, 'मै गड्ढा खोदकर उसमे नीचे बैठ जाऊगा।' उसने कहा, 'अगर मै गड्ढे मे आ गया, फिर? उसने कहा, 'मै और गड्ढा नीचे खोद लूगा।' उस ब्राह्मण ने कहा, 'मैने अगर और गड्ढा खोद लिया तो?' उस मालगुजार ने कहा, 'फिर गड्ढे को पूर के मै घर चला जाऊगा। फिर क्या करूगा? तुम मेरे पीछे ही लगे रहोगे, तो तुमको गड्ढे मे पूर के, मै घर चला जाऊंगा।'

ऐसे कहा तक भागते रहोगे? कही तो भय को गड्ढे मे दबाना पड़ेगा। कहीं तो उसको पूरना पड़ेगा।

यह मुझे पता है कि प्रेम खतरनाक शब्द है। सभी जीवत शब्द खतरनाक होते है।

अहिसा क्लीनिकल है। अहिंसा बिलकुल अस्पताल मे धोया, पोछा, साफ-सुथरा शब्द है। उसमे रोगाणु है ही नही। जीवाणु ही नही है तो रोगाणु कहा से होगे? वह बड़ा डाक्टरी शब्द है। उसमे काफी औषधिया छिड़की गई है। पर वह पीने योग्य भी नही रहा, जैसा बहुत पोटेशियम डाल दिया हो पानी मे।

प्रेम बड़ा जीवत शब्द है—होना ही चाहिए, क्योकि सारा जगत प्रेम से जीता है। तुम जन्मे हो प्रेम से। तुम जीओगे प्रेम मे। और काश, तुम मर भी सको प्रेम मे, तो धन्यभागी हो। जन्मते सभी है, जीते बहुत कम है, मरते तो कभी-कभी कोई है। जन्मते सभी प्रेम मे है।

इसलिए प्रेम की प्रबल आकाक्षा जीवन मे होती है—प्रेम मिले, प्रेम बटे, प्रेम दिया जाये, प्रेम लिया जाये। जीवन का सारा आदान-प्रदान प्रेम के सिक्को का है। प्रेम से मत भागना, क्योकि जो प्रेम से भागा, वह जीवन से भागा, और जो जीवन से भागा वह परमात्मा के मदिर को कभी भी खोज न पायेगा।

मछली की तरह तडपायेगा अहसास तुझे पायाबी का

जीना है तो अपने दरिया मे इमकाने-तलातुम रहने दे।

—घबडा मत तूफानो से। अगर जीना है

जीना है तो अपने दरिया मे इमकाने-तलातुम रहने दे

—रहने दे आधियो, तूफानो की सभावना। अगर आधी और तूफान की सारी सभावना काट दी, तो दरिया दरिया न रह जायेगा, छिछला हो जायेगा।

मछली की तरह तड़पायेगा अहसास तुझे पायाबी का—फिर उथला पानी तुझे मछली की तरह तड़पायेगा। तूफान रहने दो, क्योकि तूफानो से टक्कर लेकर ही जीवन निखरता है। तूफानो मे से गुजरकर ही जीवन का निखार आता है।

प्रेम को मै धर्म कहता हू। लेकिन कठिन है, क्योकि तुमने प्रेम को केवल वासना की तरह जाना है। इसलिए तुम्हारे डर को मै समझता हू। तुम घबड़ाये हो। प्रेम? प्रेम से तो तुमने केवल वासना जानी है। प्रेम से तो तुमने अपने बहुत निम्नतम रूप का ही सबध जोड़ा है। यह तुम्हारी भूल है, इसमे प्रेम का कोई कसूर नही। अब किसी आदमी के हाथ मे हीरा हो और वह उसको किसी के सिर मे मारकर सिर तोड़ डाले तो इसमे हीरे का कसूर है? कि तुम हीरे से बचोगे? हीरे का काम किसी का सिर तोड़ डालना नहीं है। यह तो छोटे-मोटे पत्थर से भी हो सकता था।

मनुष्य ने प्रेम का, प्रेम-ऊर्जा का बड़ा निम्नतम उपयोग किया है, क्षुद्रतम उपयोग किया है। वह उपयोग है—और सतति को पैदा करना। प्रेम का जो परम उपयोग है, वह स्वय को जन्म देना है। प्रेम का जो साधारण उपयोग है, वह दूसरे को जन्म देना है। प्रेम की जो आखिरी पराकाष्ठा है, वह अपने को जन्म देना है—आत्म-जन्म। प्रेम की जो आखिरी पराकाष्ठा है, वह बाहर दिखाई पड़नेवाली देहे, शरीर, रूप, रग, इन पर ही समाप्त नहीं हो जाती। रग मे जो छिपा है, रूप मे जो छिपा है, दृश्य मे जो छिपा है, जब वह दिखाई पड़ने लगे, तब तुम समझना कि तुमने प्रेम का पूरा उपयोग किया।

तुम्हारे पास रोशनी है, लेकिन रोशनी से अगर तुम जिंदगी की गदगी ही देखते फिरो तो रोशनी का कोई कसूर नही है। यह रोशनी तुम्हे जिदगी का परम रूप भी दिखा सकती थी।

है तेरा हुस्न जब से मेरा मरकजे-निगाह

हर शै है एतबारे-नजर से गिरी हुई।

और एक बार उसका रूप तुम्हे थोड़ा दिखाई पड़ने लगे, थोड़ी उसकी झलक आने लगे, उसके हुस्न की, उसके सौदर्य की, फूलो मे से कभी तुम्हे उसकी आख भी झाकती दिखाई पड़ने लगे, सागर की लहरो मे कभी तुम्हे उसकी भी लहर का अनुभव हो जाये

है तेरा हुस्न जब से मेरा मरकजे-निगाह।

तुम्हारी आख मे जरा उसके सौदर्य की छाया बनने लगे, प्रतिबिब, परछाई पडने लगे

हर शै है एतबारे-नजर से गिरी हुई।

उसी दिन से सब चीजे मूल्य खो देगी। उसी दिन से तुम धन, पद, प्रतिष्ठा, देह, वस्तुए, इन सब का मूल्य गिर जायेगा। महावीर कहते है, इन सब का मूल्य गिरा दो तो सत्य तुम्हे उपलब्ध हो जायेगा, मैं तुमसे कहता हू कि तुम परमात्मा का थोड़ा इशारा खोजने लगो, थोड़ा उसका हुस्न तुम्हारी आख मे उतरने लगे, थोड़ा उसका नशा तुम्हे मदमस्त करने लगे तो चीजे अपने-आप छूट जायेगी।

और ये दो ही रास्ते है या तो चीजे छोडो, तो सत्य का दर्शन होता है, या सत्य का दर्शन शुरू करो, तो चीजे छूट जाती है।

अब मैं तुमसे कहता हू कि पहला मार्ग बड़ा खतरनाक है। चीजे छोड़ो, पक्का नहीं है कि चीजे छूटने से उसका दर्शन हो जायेगा, कहीं ऐसा न हो कि चीजे छूटने मे तुम केवल सिकुड़कर रह जाओ और दर्शन की क्षमता भी खो जाये। ऐसा ही हुआ है। कभी कोई एक-आध महावीर अपवाद हो जाते है, बात अलग। नियम नहीं है वे। अधिक लोगो को तो मै यही देखता हू कि चीजे छोड़-छोड़कर उनको कुछ मिला नही है, कुछ छूटा जरूर, मिला कुछ भी नहीं है। मिलने से तो वे भयभीत हो गये है, डरते है। मै तो तुमसे कहूगा छोड़ना मत, जब तक कि श्रेष्ठ का अनुभव न हो जाये। श्रेष्ठ को पहले उतरने दो, आने दो रोशनी को, फिर अधेरा जायेगा।

तुम खेल रहे थे ककड-पत्थर से, फिर कोई हीरे दे गया था, ककड-पत्थर छूट जायेगे। हीरे जब सामने हो तो मुट्ठिया कौन ककड़-पत्थरो से भरेगा।

लेकिन जरूरी नही है कि तुम ककड़-पत्थर छोड दो तो कोई आकर हीरो से तुम्हारी मुट्ठिया भर दे।

अकसर तो मै देखा हू, जैन मुनि जब मेरे पास कभी आते है, तो उनकी बात सुनकर बड़ी व्यथा होती है।

तो वे यही कहते है कि हमने छोड तो सब दिया, लेकिन पाया तो कुछ भी नहीं। जिदगी हो गई छोड़ने मे, अब मौत करीब आने लगी। अब तो हाथ-पैर भी कपने लगे। अब डर भी समाने लगा। अब लौटकर भी उस ससार मे नही जा सकते जिसको छोड आये। अब थूककर चाटना ठीक भी नही मालूम होता। और समय भी न रहा, शक्ति भी न रही। लेकिन भीतर एक सदेह उठता है। न मालूम कितने जैन मुनियो ने मुझसे कहा है कि भीतर एक सदेह उठता है कि हमने छोड़कर ठीक किया? कहीं हमसे कुछ भूल तो नहीं हो गई?

कहीं ऐसा तो नहीं था कि यही ससार सब कुछ है और हम इसको भी छोड़ बैठे? दूसरा तो मिला नही, यह छूट गया।

तुम्हे उनकी पीड़ा का अदाज नही, क्योकि तुम केवल उनका प्रवचन सुनते हो। प्रवचन मे तो वे वही दोहराते है, जिसको सुनकर वे फस गये है। प्रवचन मे तो वे सत्य नहीं कहते।

अभी तक आदमी इस प्रामाणिकता को उपलब्ध नहीं हुआ कि प्रवचन मे सत्य कहे। प्रवचन मे तो वह वही कहता है जो तुम्हे रास आता है, भाता है। अब जैनो के बीच बोलते है तो जो जैनो को रास आता है, जो उनके शास्त्र के अनुकूल पड़ता है, वही बोलना पड़ता है। जब मेरे पास कभी आ जाते है, क्योकि अब तो उनके अनुयायी भी आने नहीं देते, पहले आ जाते थे, तो वे मुझसे कहते थे, अकेले मे बात करनी है। अपने अनुयायियो को बाहर कर देते। अकेले मे क्यो करनी है? वे कहते कि आप इनको तो बाहर जाने दे, इनके सामने सच न कहा जा सकेगा। अकेले मे उनके प्रश्न बुनियादी रूप से तीन मैने पाये। एक, कि उन्होने छोड़ दिया सब, लेकिन भीतर से रस नही गया है। दूसरा, जो-जो वासनाये उन्होने दबा ली है, जैसे-जैसे देह कमजोर होती जाती है, वे वासनाए प्रबल होकर उभर रही है। पैतालीस साल के बाद पता चलना शुरू होता है, जो-जो दबा लिया, वह मुश्किल मे डालता है। क्योकि दबाने की ताकत कमजोर हो जाती है। दबानेवाला दीन होने लगता है, क्षीण होने लगता है। और जो वासना दबाई है, अगार की तरह वह ताजी रहती है। और तीसरी बात, एक सदेह कि हमने जो किया है, वह ठीक किया? यह उचित हुआ? कही ऐसा तो नहीं है कि जो ससार मे है वही ठीक हो?

अब यह बड़ी दयनीय दशा है। यह तुमसे ज्यादा दयनीय दशा है। यह तुमसे ज्यादा मुश्किल और उलझन की दशा है। तुम्हारे पास कुछ तो है—ससार ही सही, ये हाथ बिलकुल खाली हो गये। इन खाली हाथो की दीनता देखो।

मै तुम्हे दीन नही बनाना चाहता। मै कहता हू, तुम परमात्मा को खोजो। वह जैसे-जैसे मिलता जायेगा, वैसे-वैसे ससार तिरोहित होता जायेगा। जैसे-जैसे तुम्हारे हाथ भरने लगेगे उससे, वैसे-वैसे तुम पाओगे ससार से हाथ हटने लगे। हटाना न पड़ेगे। हटाना पड़े तो दमन होता है। हट जाये, अपने से हट जाये तो उसका सौदर्य ही अनूठा है। फिर उसकी लकीर भी नही रह जाती भीतर, पीड़ा भी नहीं रह जाती।

जिस दिन से इश्क अपना हुआ मीरे-कारवा
आगे बढे हुए है हर इक कारवा से हम।

—और जिस दिन तुम अपनी बागडोर प्रेम के हाथ मे दे दोगे

जिस दिन से इश्क अपना हुआ मीरे-कारवा

—और जिस दिन से तुम्हारा पथ-प्रदर्शक, अगुआ प्रेम हो जायेगा

आगे बढ़े हुए है हर इक कारवा से हम।

—उसी दिन तुम पाओगे, तुम सबसे ज्यादा आगे बढ़ गये हो। प्रेम के अतिरिक्त कोई आगे बढ़ा नहीं है। प्रेम पथ-प्रदर्शक है। प्रेम प्रकाश का दीया है।

खतरे मुझे मालूम है कि प्रेम के है, क्योकि तुमने प्रेम का गलत रूप जाना है। लेकिन तुम्हारे गलत रूप जानने के कारण सत्य तुमसे न कहू, तो वह और भी खतरनाक होगा। मै वही कहूगा जो ठीक है। तुम्हे उसमे से गलत निकालना हो, निकाल लेना। वह तुम्हारी जिम्मेवारी है। लेकिन जिम्मेवार तुम्ही रहोगे। लेकिन इस कारण कि कही तुम कुछ गलती न कर लो, मै तुम्हे मारना नही चाहता। तुम्हारी जिदगी तो पूरी-पूरी ऊर्जा से भरी हुई होनी चाहिए। कोई हर्जा नही, आज गलत जाओगे, जिस ऊर्जा से गलत गये हो, उसी ऊर्जा से वापिस भी आ सकते हो।

लेकिन प्रेम को जरा कसना। रोज-रोज ऊपर उठाना। रोज-रोज देखना कि उसके और नये-नये सोपान है। मधुर-मधुर सोपान है। बडे प्रीति-भरे।

तुम तो जिसे प्रेम कहते हो, वह बड़ी मिश्रित अवस्था है, जैसे सोने मे बहुत कूडा-कर्कट मिला हो।

इसलिए तुम्हारे प्रेम मे घृणा भी मिली है। तुम जिसको प्रेम करते हो उसी को घृणा भी करते हो।

तुमने कभी जाचा अपने मन को कि जरा पत्नी नाराज हो जाती है कि तुम सोचते हो कि मर ही जाये तो बेहतर। सोचने लगते हो कि हे भगवान, इसको उठाओ। कहा फस गये इस चक्कर मे। बेटा तुम्हारे अनुकूल नही चलता तो मा कहने लगती है कि तुम पैदा ही न हुए होते जो अच्छा था। तुम्हारे प्रेम से घृणा बहुत दूर नहीं है। तुम्हारे आशीर्वाद से तुम्हारा अभिशाप बहुत दूर नहीं है, पास ही पास बैठे है। तुम्हारी मुस्कुराहट तुम्हारे आसुओ से बहुत ज्यादा दूर नही है।

थोड़ा जागो। इसे देखो। तुम्हारा प्रेम क्षण मे क्रोध बन जाता है, क्षणभर मे क्रोध बन जाता है। अभी जिसके लिए तुम जान देने को तैयार थे, क्षणभर मे उसी की जान लेने को तैयार हो जाते हो। जरा सोचो, जरा जागो और देखो।

यह प्रेम बहुत गदगियो से मिला हुआ है। इसमे क्रोध भी है। इसमे द्वेष भी है। इसमे ईर्ष्या भी है, मत्सर है, मोह है, राग है, घृणा है, हिसा है।

तुम जिसे प्रेम करते हो उसी की गर्दन दबाने लगते हो, इतनी हिंसा है। प्रेमी अकसर एक-दूसरे को मार डालते है। विवाह की तिथि अकसर मरण की तिथि सिद्ध होती है।

एक आदमी का विवाह हो रहा था। राह पर एक मित्र मिल गया। कल विवाह होनेवाला था। उस मित्र ने कहा, 'बड़ी बधाइया।' उस मित्र ने कहा, 'शायद तुम्हे पता नहीं है, अभी मेरा विवाह हुआ नहीं, कल होनेवाला है।' उसने कहा, इसीलिए तो बधाइया दे रहे है, फिर बधाइया देने का उपाय न रहेगा। एक दिन और बचा है, जी लो। चल लो मस्ती से, स्वतत्रता से।'

अगर राह पर तुम स्त्री-पुरुष को चलते देखो तो तुम तत्क्षण कह सकते हो कि ये पति-पत्नी है या नही। पति डरा-डरा चल रहा है, नीचे नजर रखकर चल रहा है, इधर-उधर देखता नही, क्योकि फिर झझट खड़ी हो जाये।

यह प्रेम गर्दन को काट जाता है।

मै एक ट्रेन मे सफर कर रहा था। एक महिला मेरे साथ उस डब्बे मे थी। उसका पति भी था, लेकिन वह किसी दूसरे डब्बे मे था। पर वह हर स्टेशन पर आता। तो मैने उससे पूछा कि मुझे शक होता है, ये पति हो नही सकते। उसने कहा, 'क्यो?' वह थोड़ी चौकी।

'कितने दिन हुए शादी हुए?'

उसने कहा, 'कोई सात-आठ साल हो गये।'

'यह बात उपन्यास मे हो सकती है। सात-आठ साल हो गये, और पति हर स्टेशन पर उतरकर आते है इस भीड़-भडक्का मे ।'

वह कहने लगी, 'आपने ठीक पहचाना। वे मेरे पति है नही, लगाव है।'

तब बात ठीक है। लगाव एक बात है। पत्नी तुम किसी और की होओगी। नहीं तो अपना पति हर स्टेशन पर उतरकर आये। एक दफे जो छूटा, तो वह आखिरी स्टेशन पर भी आ जाये तो काफी है।'

प्रेम मे बड़ा और बहुत कुछ मिला हुआ है। एक-दूसरे की गर्दन दबा देते है। हा, बहाने हम अच्छे खोजते है। लेकिन जिसको प्रेम कहे, वह अभी बडी दूर है। लेकिन जिसे तुम प्रेम कह रहे हो, उसमे भी वह पड़ा है। इसलिए मै यह न कहूगा, इस

सब को फेक देना। इसको निखारना है। इस सोने मे मिट्टी मिली है, माना, मिट्टी को काट डालना है, सोने को बचाना है। तो दुनिया मे कुछ लोग हैं जो इसी को प्रेम समझ रहे है। वे गलत। और दुनिया मे कुछ लोग है जो मिट्टी के कारण इस पूरे प्रेम को फेक देने को कहते है। वे भी गलत, पहले से भी ज्यादा गलत। क्योंकि मिट्टी के बहाने कही सोने को मत फेक देना।

अहिंसा की धारणा मे वही हो गया है। फेक ही दो इस प्रेम को, इसमे खतरा है, इसमे उपद्रव है, इसमे तनाव है, परेशानी है, अशाति है। फेक ही दो। लेकिन साथ ही सोना भी चला जाता है।

मै तुमसे कहता हू, ये दोनो अतिया है, इनसे बचना। इसमे से मिट्टी तो काटनी है—घृणा काटनी है, क्रोध काटना है, मत्सर, ईर्ष्या अलग करनी है—प्रेम को निखारना है।

जीवन एक प्रयोगशाला है प्रेम को निखार लेने की। और धन्यभागी है वे जो अपने प्रेम को पूरा निखार लेते है। उस प्रेम के निखरे रूप मे ही जगत जैसा दिखाई पड़ता है उसका नाम परमात्मा है। उस प्रेम के निखरे रूप मे ही तुम जिस नियति को उपलब्ध होते हो, उसका नाम आत्मा है।

दूसरा प्रश्न जो दीया तूफान से बुझ गया उसे फिर जलाकर क्या करू ? जो स्वभाव स्वप्न मे खो गया, उसे वापस जगाकर क्या करू ? आप कहते है तो मान लेता हू कि मै ही परमात्मा हू, लेकिन जो परमात्मा घर से ही भटक गया, उसे घर वापिस बुलाकर क्या करू ?

ऐसा प्रश्न बहुतो के मन मे उठता है, स्वाभाविक है। लेकिन तुम जीवन की जटिलता को नहीं समझ रहे हो। स्वभाव इसीलिए खो गया है, क्योंकि बिना खोये तुम उसे जान ही न सकोगे। वह जानने की प्रक्रिया है। जो तुम्हारे पास है, सदा से है, सदा से है, सदा से है, तुम उसके प्रति अधे हो जाते हो। उसे खोना जरूरी है, ताकि तुम पा सको। पाने के लिए खोना अनिवार्य है। खोकर भी तुम वस्तुत थोड़े ही खोते हो, क्योंकि स्वभाव तो वही है जो खोया न जा सके।

विस्मरण का नाम खोना है। तुम भूल गये हो। और यह भूलने की बात अत्यत आवश्यक है समझ लेनी। भूलने का अर्थ यह नही है कि तुम कुछ और हो गये हो जो तुम नही हो। भूलने का इतना ही अर्थ है कि तुमने कुछ और समझ लिया है। हो तो तुम वही जो हो। जैसे आज रात तुम यहा सोओ और सपने मे देखो, कलकत्ते मे हो, तो कोई कलकत्ते पहुच नही गये। कोई लौटने के लिए तुम्हे कोई हवाई जहाज नही पकड़ना पड़ेगा। कोई हिलाकर जगा देगा, तुम पूना मे जगोगे, कलकत्ते मे नही जगोगे। तुम यह न कहोगे कि यह क्या मुसीबत कर दी। तुम भागकर स्टेशन भी न जाओगे कि अब मै पकडू ट्रेन पूना जाने की, इस आदमी ने कलकत्ते मे जगा दिया। सपने मे कलकत्ते मे थे। यह सिर्फ खयाल था। असलियत मे तो तुम पूना मे ही हो।

परमात्मा को खोया जा नही सकता। हो तो तुम परमात्मा मे ही। सपने तुम कोई भी देख लो। और सपना तुम्हारी स्वतत्रता है। और सपने बडे मधुर है। और सपने एकदम बुरे भी नही है क्योकि इन्ही सपनो के माध्यम से तुम अपने से अपने को दूर कर लेते हो, फासला कर लेते हो। फिर मिलन का मजा आ जाता है। जैसे मछली सागर मे ही रहती है तो सागर को भूल ही जाती है, सागर का पता ही नही चलता। जरा फेक दो मछली को किनारे पर, तड़फती है, तब उसे पहली दफा याद आती है कि सागर क्या है।

तुम अपने सपनो के तट पर तड़फ रहे हो। यह तडफ तुम्हे फिर सागर मे ले जायेगी। अब तुम पूछते हो कि 'क्या फायदा जो दीया तूफान से बुझ गया ?' बुझा नही है। कोई तूफान तुम्हारे दीये को बुझा नही सकता, अन्यथा तूफान तो इतने है । कोई तूफान तुम्हारे दीये को नहीं बुझा सकता। किसको पता चल रहा है यह ? यह कौन कह रहा है कि क्या करू उस दीये को फिर से जलाकर जिसको तूफान ने बुझा दिया ? यह जो कह रहा है वही तो तुम्हारा दीया है—यह तुम्हारा जो चैतन्य-भाव है। यह कौन कह रहा है कि क्या फायदा उस परमात्मा को खोजने से जो घर से ही दूर चला गया ? मगर यह कौन है जो कह रहा है ?

यही तुम्हारा परमात्म-भाव है। यह साक्षी-भाव, यह चैतन्य, यह ज्ञान, यह बोध, यह ज्योति। दीया बुझता नही। यह दीया बुझनेवाला दीया नहीं है। और बुझ जाता तो इसके जलाने के फिर कोई उपाय न थे। बुझ जाता तो तुम होते ही न। बुझ जाता तो सोचनेवाला भी न होता कि कैसे इसे जलाऊ। तुम हो। तुम

परिपूर्ण हो। सिर्फ एक सपने ने तुम्हे घेर लिया है। एक बादल आ गया है। और सूरज को ढाक लिया है।

यह धूप-छाव का खेल बड़ा मधुर है। इसलिए हिंदुओ की परिभाषा बड़ी अनूठी है। वे कहते है, लीला है। तुम इसको बड़ा काम समझ रहे हो कि खो दिया, अब क्या फायदा। तुमने कभी बचपन मे छिया-छी नहीं खेली? दो बच्चे छिया-छी खेलते है, दोनो आख बद करके खड़े हो जाते है, छिप जाते है। पता है कि यही छिपे है, इसी कमरे मे छिपे है। कई बार चक्कर लगाते है, खोजते है कहा छिपा है, बड़ा शोरगुल मचाते है—और उन्हे पक्का पता है कहा छिपा है,क्योकि घर ही कौन बड़ा है, वही कमरे मे कही छिपा है, बिस्तर के नीचे चला गया है कि दीवाल की ओट मे खडा हो गया है। सब पता है। लेकिन फिर खेल का मजा चला जाता है, जब सब पता ही है तो। तो थोड़ा दौड़ते है, धामते है, खोजते है, इधर-उधर झाकते है, फिर पकड़ लेते है।

हिंदु कहते है, यह जगत छिया-छी है, लीला है। तुम्ही अपने को खोज रहे हो, तुम्ही अपने को छिपा रहे हो। तुम पूछोगे, 'क्यो? क्यो खेले छिया-छी?' मत खेलो। सारा धर्म वही तो कला सिखाता है तुम्हे कि जिनको छिया-छी नही खेलनी, वे ध्यान करे, वे छिया-छी के बाहर हो जाते है। ध्यान का मतलब कुल इतना ही है कि अगर थक गये, अब तुम्हे खेलना नहीं है, तो घोषणा कर दो कि अब हम खेल के बाहर होते है, अब हम जरा विश्राम करेगे, या अब हमे भूख लगी है, अब हम घर जाते है। जिनको अभी खेलने मे रस आ रहा है, वे खेले। जिनको खेलने मे अब थकान आने लगी है, वे घर लौट जाये।

परमात्मा की खोज का मतलब इतना ही है कि अब बहुत हो गई छिया-छी, अब थक गये। बस इतना ही स्मरण काफी है कि थक गये—विश्राम। जैसे दिनभर आदमी मेहनत करता है, रात सो जाता है। अब तुम यह तो नही कहते रात खड़े होकर कि अब क्यो सोये, जब दिनभर मेहनत की। तुम्हारी मर्जी, न सोना हो तो न सोओ, खड़े रहो। रातभर सोये रहे, अब सुबह तुम्हे कोई उठाने लगे तो तुम यह तो नहीं कहते कि नही उठेगे अब; रातभर सोये रहे, अब क्यो उठे? नही सोने के बाद जागना है; जागने के बाद सोना है। दिन के बाद रात है, रात के बाद दिन है।

ध्यान, ससार, परमात्मा, अरूप और उसके रूप, इन दोनो के बीच यात्रा है। यह खेल बड़ा मधुर है। बस खेलने की कला आनी चाहिए। और खेल मे 'क्यो' का तो सवाल मत उठाना। क्योकि 'क्यो' दुकानदार का शब्द है, खिलाडी का नही। अब दो आदमी फुटबाल खेल रहे है, तो तुम पूछते हो, 'यह क्या फायदा? इधर से गेद उधर मारी, उधर से इधर मारी, अरे एक जगह रखो, बैठ जाओ शाति से।' आदमी बालीबाल खेल रहे है, तुमने देखा कैसा पागलपन करते है। बीच मे एक जाली बाध रखी है, इधर से फेक रहे है उधर, उधर से फेक रहे है इधर। और इनकी तो छोडो ही, कई भीड़ लगाकर खड़े है देखने के लिए। इतना-सा काम हो रहा है, गेद इधर से उधर फेकी जा रही—यह तो दो मशीने लगाकर भी कर सकते हो। इसमे सार क्या है? अगर दुकानदार है तो पूछेगा, 'क्यो? इससे मिलेगा क्या?' लेकिन तब चूक गये बात। मिलने का सवाल नही है, खेल मे ही रस है। यह जो खेल की उमग है, इसमे ही रस है।

तिनके की तरह सैले-हवादिस लिये फिरा
तूफान लेकर आये थे हम जिदगी के साथ।

तूफान हमारे साथ आया है। जिदगी तूफान है। इसमे बडी लहरे उठती है, बड़ी आधिया आती है। फिर सन्नाटा भी छा जाता है। सन्नाटे के लिए आधी जरूरी है, आधी के लिए सन्नाटा जरूरी है—दोनो परिपूरक है। यहा मिलना भी है, खोना भी है, पाना भी है, बिछुडना भी है, याद भी है, विस्मृति भी है। ये दोनो पहलू है, दो पख है। इनसे ही जीवन के आकाश मे उडने का उपाय है।

ये हादसे कि जो इक-इक कदम पे हाइल है
खुद एक दिन तेरे कदमो का आसरा लेगे।
जमाना ची-ब-जबी है तो क्या बात है 'रविश'
हम इस अताब पे कुछ और मुस्कुरा लेगे।

ये हादसे, ये घटनाये जो हर कदम पर घट रही है, ये पत्थर जो हर कदम पर अडे हुए है, खुद एक दिन तेरे कदमो का आसरा लेगे। घबडाओ मत, ये पत्थर नही है, ये सीढिया बन जानेवाली है। यह भटकाव ही उसके पहुचने का रास्ता बन जाने वाला है। यह दूर हो जाना ही पास आने का उपाय है।

ये हादसे कि जो इक-इक कदम पे हाइल है

ये जो अडे है पत्थर, और घटनाए, और जीवन के उलझाव, और बाजार और दुकान और तृष्णा और मोह और हजार-हजार बाते है खुद एक दिन तेरे कदमो का आसरा लेगे। घबड़ाओ

मत, खेले चले जाओ। अभी तुम ठीक से खेल समझे नही, अभी खेल का गणित नही आया। गणित आ जायेगा तो रस आने लगेगा। और तब इन पत्थरो पर चढ़ने मे मजा आने लगेगा। तब तुम धन्यवाद दोगे इन पत्थरो को कि अच्छा किया कि तुम थे, अन्यथा कहा चढते। अच्छा हुआ कि तुम थे, अन्यथा जीवन को जाचने की सुविधा कहा मिलती, अवसर कहा मिलता।

जमाना चीं-ब-जबीं है तो क्या बात है 'रविश'

और अगर जमाना बहुत क्रोध से भरा है और चारो तरफ बडी अडचन और मुसीबत है तो बात क्या है 'रविश'

हम इस अताब पे कुछ और मुस्कुरा लेगे।

इस क्रोध पर थोड़ा और मुस्कुरा लेना।

यह जो जमाना इतने उपद्रव खड़ा करता है, इस पर थोड़ा मुस्कुराना सीखो।

परमात्मा का खोजी खेल मानकर चलता है। तुम बडी गभीरता से चल रहे हो, यह अडचन है। तुम्हारे तथाकथित धार्मिको ने तुम्हे बड़े गभीर चेहरे सिखा दिये है, जैसे कि प्रार्थना कोई काम है। प्रार्थना खेल है। प्रार्थना रस है, काम नही है। इसमे कुछ लाभ और लोभ थोडे ही है। इसमे तो होने का मजा है। इन पक्षियो से पूछो। ये जो झींगुर गुनगुनाये जा रहे है, इनसे पूछो—किसलिए? वे तुम्हारी बात पर ही आश्चर्य करेगे कि सवाल भी उठाने योग्य है? मजा आ रहा है।

तुम्हे जब तक ससार मे मजा आ रहा है, दौडे जाओ, जब तुम्हे परमात्मा मे मजा आने लगे, रुक जाना। मजे-मजे की बात है।

मै जो ससार मे है, उनके विरोध मे नही हू। मै कहता हू, उन्हे मजा आ रहा है तो मजा ले। तकलीफ तो कब खड़ी होती है कि तुम्हे मजा ससार मे आ रहा है और तुम किसी की बात मे पड गये और उसने कहा कि ससार मे क्या रखा है। तुम्हे मजा ससार मे आ रहा है। अब तुम एक उलझन मे पड़े, एक तनाव पैदा हुआ। किसी ने कह दिया, ससार मे क्या रखा है, यह तो सब धूल है, यह तो सब पड़ा रह जाएगा—यह ठाठ पडा रह जायेगा, जब बाध चलेगा बनजारा। उनका बनजारा बाधकर चल रहा हो, लेकिन तुम्हारा तो अभी बिलकुल खेल लग रहा था, तबू लग रहा था, व्यवस्था तुम जुटा रहे थे। यह बात तुम्हारे कान मे पड गई, अब तुम अडचन मे पड़े। अब तुम तबू भी गाड़े जा रहे हो और सोच रहे हो, सब ठाठ पड़ा रह जायेगा। अब अडचन आई। अब तुम इकहरे न रहे। तुम्हारा व्यक्तित्व खडो मे बट गया। तुम्हारे तथाकथित धर्मो ने तुम्हे विक्षिप्त बना दिया है।

मै तुमसे जो कह रहा हू वह यह नही कह रहा हू कि तुम छोडकर चल पड़ो। मै तुमसे कह रहा हू, ठीक से तबू गड़ा लो। भगवान से भटकने का मौका मिला है, ठीक से भटक जाओ। दूर जाने का क्षण आया है, दूर चले जाओ। इसमे भी क्या कजूसी करनी? क्योकि मेरे देखे जो जितनी दूर जाता है, जब उसे याद पकडती है तो उतनी ही तीव्रता से पास आता है। पास आने और दूर आने मे एक अनुपात है। खोने का तो कोई उपाय नही है, खेल है। रोकर खेलना हो रोकर खेल लो, हस के खेलना हो हसकर खेल लो। जो हसकर खेलता है, उसको मै धार्मिक कहता हू। जो रो-रोकर खेलने लगे, वह कोई खिलाडी नही है।

है रात तो इसके बाद सहर, अनवार भी लेकर आएगी
है सुबह तो शब तारो के चमकते हार भी लेकर आएगी।

है रात तो इसके बाद सहर—रात है तो सुबह होने के करीब है, घबडाओ मत। रात का मजा ले लो, सुबह तो हो ही जायेगी। सुबह के लिए रोओ, चिल्लाओ- चीखो मत। यह रात सुबह के रास्ते पर ही है। यह रात होनेवाली सुबह ही है। यह रात सुबह का ही छिपा हुआ रूप है।

है रात तो इसके बाद सहर अनवार भी लेकर आएगी।

सुबह प्रकाश भी लेकर आनेवाली है। अधेरे को ठीक से तो भोग लो। क्योकि अगर आखे अधेरे को ठीक से न भोग पाये तो तुम प्रकाश को भोगने के योग्य न बन पाओगे।

तुमने कभी खयाल किया? जब अधेरे के बाद तुम प्रकाश को देखते हो तो अधेरा तुम्हारी आखो को तैयार करता है, तुम प्रकाश को देखने मे समर्थ हो जाते हो। आख को विश्राम मिलता है अधेरे मे, आख ताजी हो जाती है। फिर से तुम देखने मे कुशल हो जाते हो। इसलिए तो आख झपकती रहती है। तुमने कभी पूछा कि आख झपकती क्यो रहती है? यह हर पल अधेरे को पैदा करती रहती है, ताकि ताजी बनी रहे। इसलिए तुमने देखा फिल्म जाते हो देखने, तो तीन घटे तुम आख का झपकना भूल जाते हो। उसी लिए आख थक जाती है। फिल्म के कारण नही, टेलीविजन देखने के कारण नही, तुम आख का झपकना

भूल जाते हो कि जो स्वाभाविक प्रक्रिया थी अंधेरे को बीच-बीच मे लाने की, वह भूल जाते हो। तुम इतने ज्यादा तन जाते हो कि आख फाड़े बैठे रहते हो। अब की बार जब सिनेमा जाओ या फिल्म देखने जाओ या टेलीविजन देखो, तो आख को झपकाते रहना, तुम पाओगे कोई थकान न आई। आख के झपकने मे राज है। अंधेरा प्रकाश का खेल है। धूप छाया का खेल है।

है रात तो इसके बाद सहर अनवार भी लेकर आएगी।

विश्राम तो कर लो थोड़ा रात मे।

ससार विश्राम है परमात्मा का। जल्दी ही सुबह होगी, परमात्मा भी आयेगा, प्रकाश भी लायेगा। भाग-दौड मत करो। व्यर्थ शीर्षासन इत्यादि लगाकर खडे न हो जाओ। इससे रात के जाने का कोई सबध नही। रात अपने से आती है, अपने से जाती है। तुम तो सिर्फ साक्षी रहो।

है सुबह तो शब तारो के चमकते हार भी लेकर आएगी।

और अगर सुबह है तो ध्यान रखना, रात भी आनेवाली है।

यह जीवन का चक्र है जो घूमता चला जाता है। इस चक्र मे जो खेलना सीख जाये—खेलना पहली शर्त—गभीरता से नही, खिलाडी के अहोभाव से, रस से—जो खेलना सीख जाय, यह पहली शर्त। और दूसरी बात धीरे-धीरे तुम्हारे खिलाडीपन से उठेगी, वह है साक्षी-भाव। जब तुम देखोगे, रात भी अपने से आती है, सुबह भी अपने से हो जाती है, फिर साझ आ जाती है, फिर तारे जगमगा उठते है—यह सब अपने से हो रहा है तो मै नाहक दौड-धूप क्यो करू, मै सिर्फ साक्षी रहू, देखू, जो होता है उसका मजा लू, रस लू। परमात्मा इतने रूप धरता है, इतने-इतने नाच करता है, मै द्रष्टा बनू। तो पहले खिलाड़ी बनो, फिर द्रष्टा बन जाओ, बस। यह दो बाते जिसके जीवन मे आ गई, उसने पा ही लिया।

शिकस्ते-दिल को शिकस्ते-हयात क्यो समझे?
है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने
बुलद नग्मए-आदम है बज्मे-अजुम मे
कब इक सितारए-नौ हस पडे खुदा जाने
हयात अभी है फकत इक हयात का परतब
अभी हयात को समझा ही क्या है दुनिया ने।
शिकस्ते-दिल को शिकस्ते-हयात क्यो समझे?

अगर तुम हार गये हो तो इसको जीवन की हार मत समझो। जीवन कभी नही हारता। तुम हार जाओगे तो विदा कर लिये जाओगे, बुला लिये जाओगे। जीवन चलता जाता है। एक लहर हार जाती है तो विलीन हो जाती है सागर मे।

शिकस्ते-दिल को शिकस्ते-हयात क्यो समझे?
है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने।

और अगर एक पैमाना टूट गया तो घबड़ाते क्यो हो, मधुशाला साबित है, तो हजार पैमाने भरे तैयार है।

यहा छोटी-छोटी चीजो से लोग घबड़ा जाते है। किसी की पत्नी मर गई, वैराग्य का उदय हो गया। है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने। इतनी जल्दी क्यो करते है? किसी की दुकान मे घाटा लग गया, दिवाला निकल गया—अरे, दीवाली बहुत मनाई, अब दिवाला भी मना लो। इतना घबड़ाना क्या?

है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने।

हारकर धर्म की तरफ, पराजय के भाव से, विफलता से, विषाद से कहीं कोई गया है। उदासी से तो रुग्णता आती है, जीवन का स्वास्थ्य नही। धर्म की तरफ उदासी से नही, प्रसन्नता से, प्रफुल्लता से गये हुए ही पहुचते है।

बुलद नग्मए-आदम है बज्मे-अजुम मे

—नक्षत्र मडल मे आदमी का गीत गूज रहा है।

कब इक सितारए-नौ हस पड़े खुदा जाने

—कब वर्षा हो जायेगी परम आनद की, पता नही कभी भी हो सकती है।

हयात अभी है फकत इक हयात का परतब

—जिसे तुमने अभी जिदगी समझा है, वह तो केवल जिदगी की छाया है।

हयात अभी है फकत इक हयात का परतब
अभी हयात को समझा ही क्या है दुनिया ने।

अभी तुमने जीवन का पूरा राज कहा सीखा? जल्दी मत करो। निर्णय मत लो कि 'क्या फायदा जो दीया बुझ गया, अब इसको जलाने से क्या फायदा। और जो घर छूट गया, उसको खोजने से क्या फायदा।' ऐसे तो तुम थककर गिर जाओगे। ऐसे तो तुम जीते-जी मुर्दा हो जाओगे।

उठो। जीवन की यात्रा प्रफुल्लता से करनी है।

और जब कुछ खोता हो, तब भी समझ रखना यह भी कुछ पाने का उपाय होगा।

आखिरी प्रश्न

तेरे गुस्से से भी प्यार, तेरी मार भी स्वीकार
चाहे खुशी दो कि दो गम, दे दो खुशी-खुशी करतार
तेरी धूप हो कि छाव, मुझको दोनो है स्वीकार
तेरा सब कुछ मुझे पसद, तेरा न भी नहीं इनकार।

शुभ है, ऐसी ही भाव की दशा भक्त की दशा है। और जिसको ऐसे स्वीकार का भाव आ गया, अस्वीकार को भी स्वीकार करने की क्षमता आ गई, 'नही' मे भी दश न रहा, हार मे भी काटे न चुभे, सुख आये कि दुख, दोनो को जिसने परमात्मा का उपहार समझकर स्वीकार कर लिया, उसका प्रसाद मान कर स्वीकार कर लिया—उसकी मजिल ज्यादा दूर नही है। उसके पैर मजिल के करीब आने लगे। उसका रास्ता पूरा होने के करीब आने लगा।

इस भाव-दशा को सम्हालना। इस भाव-दशा को धीरे-धीरे गहराना। यह तुम्हारे रोए-रोए मे समा जाये। यह तुम्हारी धड़कन-धड़कन मे बस जाये।

जिनको हर हालत मे खुश और शादमा पाता हू मै
उनके गुलशन मे बहारे-बेखिजा पाता हू मै।

जो हर हाल मे खुश है, उनके जीवन मे वसत आता है और पतझड़ कभी नहीं आती।

वाये वोह आख जिसे दीदए-मुश्ताक कहे
हाय वोह दिल जो गिरफ्तार मुहब्बत मे रहे।

अगर तुम्हारे पास ऐसी प्रेम की भाव-दशा उठ रही है, ऐसी पहली झलके आनी शुरू हुई है कि सुख और दुख दोनो को तुम प्रभु की अनुकपा मान लो, तो फिर जल्दी ही, तुम्हारे पास वैसे दिल का निर्माण हो जायेगा।

हाय वोह दिल जो गिरफ्तार मुहब्बत मे रहे।
वाये वोह आख जिसे दीदए-मुश्ताक कहे।

फिर तुम्हारी आख परमात्मा को देख ही लेगी। यही तो अभिलाषी की आख की परीक्षा है। सुख को तो सभी स्वीकार कर लेते है। उससे कुछ पता नही चलता। दुख को भी जो स्वीकार कर लेता है, उससे ही पता चलता है। फूल गिरे, सभी मान लेते है, और प्रसन्न हो लेते है। लेकिन जबे काटे जीवन मे आये तब भी जो मुस्कुराता रहता है

वाये वोह आख जिसे दीदए-मुश्ताक कहे।

आ गई वह आख, वह अभिलाषी नेत्र, प्रभु के दर्शन करने की क्षमता वाले नेत्र ।

हाय वोह दिल जो गिरफ्तार मुहब्बत मे रहे।

एक पागलपन आयेगा, घबडाना मत। यह पागलो की ही बात है। बुद्धिमान तो ठीक-ठीक को स्वीकार करते है। बुद्धिमान तो सुख को स्वीकार करते है, दुख को इनकार करते है, फूल चुनते है, काटे अलग करते है। यह तो दीवानो की बात है कि दोनो को स्वीकार कर लेते है।

और मै तुमसे कहता हू, दीवानगी से बड़ी कोई बुद्धिमत्ता नही है। क्योकि जो सुख को स्वीकार करते है, दुख को अस्वीकार, उनके जीवन मे दुख ही दुख भर जाता है। तुम्हारे अस्वीकार करने मे दुख थोडे ही जाता है, दुगना हो जाता है। काटा तो चुभा ही है, पीडा तो हो ही रही है—तुम अस्वीकार करते हो, उससे पीडा और सघन हो जाती है। काटा चुभा है और तुम स्वीकार कर लेते हो, तुम कहते हो, 'प्रभु की कोई मर्जी होगी। जरूर किसी कारण से चुभाया होगा।'

बायजीद निकलता था एक रास्ते से, पत्थर से चोट लग गई, वह गिर पड़ा, पैर से खून निकलने लगा। उसने हाथ उठाये आकाश की तरफ और प्रभु को धन्यवाद दिया कि 'धन्यवाद, मेरे मालिक। तू भी खूब खयाल रखता है।' उसके एक भक्त ने पूछा, 'यह जरा जरूरत से ज्यादा हो गई बात। अतिशयोक्ति हुई जा रही है। खून निकल रहा है, पत्थर की चोट लगी है—धन्यवाद का कारण कहा है?'

बायजीद ने कहा, 'पागलो, फासी भी हो सकती थी। उसका खयाल तो देखो। अपने फकीरो का खयाल रखता है। जरा-सी चोट से बचा दिया। मै जैसा आदमी हू, उसकी तो फासी भी हो जाये तो कम है। मेरे पाप, मेरे गुनाह तो देखो।'

तो पैर मे लगी चोट और बहता लहू भी अहोभाग्य हो गया।

बायजीद तीन दिन से भूखा था। एक गाव मे रुके। वह साझ प्रार्थना जब करता था तो रोज कहता था, 'प्रभु। जो भी मेरी जरूरत होती है, तू सदा पूरी कर देता है।' उस दिन भक्त जरा नाराज थे, तीन दिन से भूखे थे। किसी गाव मे ठहरने को जगह न मिली। लोगो ने रुकने न दिया। लोग विरोध मे थे। फिर भी उस रात उन्होने कहा, अब आज देखे, आज यह बायजीद क्या

कहता है। उसने फिर वही कहा कि हे प्रभु। तू भी खूब है। जब जो मेरी जरूरत होती है, पूरी कर देता है।

एक भक्त ने कहा, 'अब सुनो। तीन दिन से भूखे है। क्या खाक जरूरत पूरी कर देता है?'

बायजीद हसने लगा। उसने कहा, 'तुम समझे ही नहीं, तीन दिन से भूख मेरी जरूरत थी। तीन दिन उपवास मेरी जरूरत थी। उसने पूरी की।'

देखो, ऐसा आदमी दुख नहीं पा सकता। ऐसे आदमी को कैसे दुख दोगे? परमात्मा भी बडी उधेड-बुन मे पड़ जाता होगा ऐसे आदमी के साथ कि अब करो क्या। यह आदमी तो जीतने लगा। यह तो छिया-छी मे हाथ आगे मारने लगा। इसको दुखी करने का उपाय न रहा।

और सुख तभी उत्पन्न होता है जब दुखी होने का उपाय नही रह जाता। अगर तुमने सुख पकडा और दुख छोड़ा, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे, तुम्हारा सुख भी दुख हो जाता है। पकड़नेवाले का सुख भी दुख हो जाता है, क्योकि वह डरता है, कहीं छिन न जाये। छिनेगा तो ही। कौन सुख स्थायी होता है? आया है, जायेगा। पानी की लहर है। न दुख ठहरता, न सुख ठहरता। जिसने पकडा सुख को, वह दुखी होने लगा। पहले सुख की आकाक्षा मे दुखी था, अब इस भय से दुखी होगा कि छूटता, अब गया, अब गया, अब जायेगा। और जिसने दुख को स्वीकार कर लिया, वह तो दुख को भी रूपातरित कर लेता है। सुख तो सुख है ही, वह दुख को भी सुख बना लेता है। इस कीमिया को ही धर्म समझना।

जुनू हर रग मे मशरूरो-शादा
खिरद। हर हाल मे चीबर जबी है।

प्रेमोन्माद, जुनू हर रग मे मशरूरो-शादा

—वह जो पागलो की मस्ती है, दीवानो की मस्ती है, वह तो हर हाल मे खुश है।

खिरद। लेकिन अक्ल, बुद्धि, हर हाल मे चींबर जबी है। वह हर हाल मे त्यौरी चढ़ाये हुए है। कुछ भी हो जाये, तृप्ति नहीं होती। कुछ भी मिल जाये, असतोष बना रहता है।

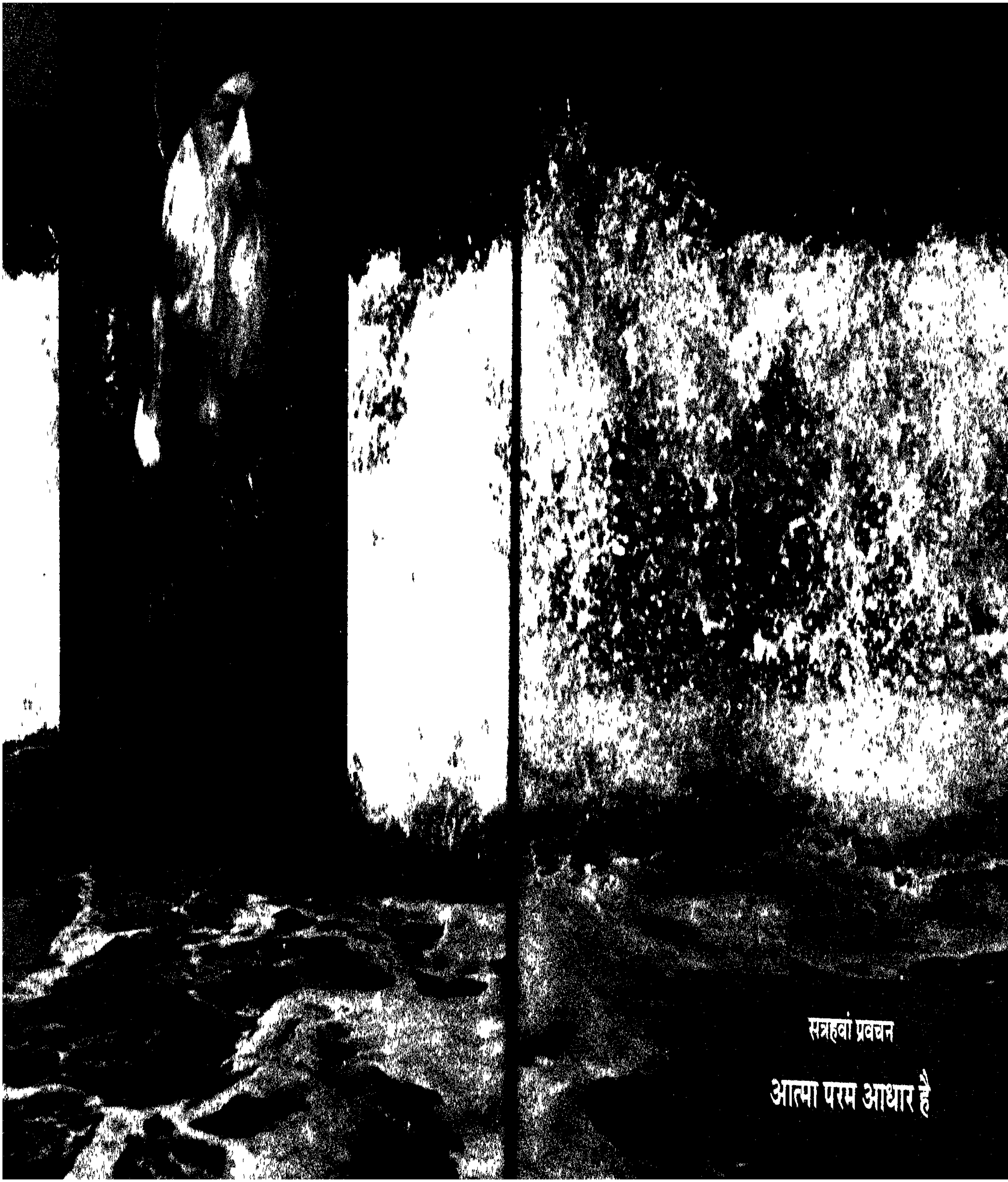
सौभाग्य है, अगर इस तरह की भाव-दशा मे रमते जाओ। यह सिर्फ तुम्हारी कविता न हो, तुम्हारा जीवन बने। यह तुमने सिर्फ होशियारी न की हो प्रश्न पूछकर, यह तुम्हारा भाव बने। सघन भाव। तो तुम पाओगे, सब तरफ से परमात्मा ने नये-नये द्वार खोल लिये, हर तरफ से उसकी हवाए तुम्हे छूने लगी।

हर एक जल्वा है मेरे लिए कशिश तेरी
हर एक सदा मुझे तेरा पयाम होती है।

फिर हर आवाज मे उसका सदेश और हर रूप मे उसका रग, हर फूल मे उसकी खुशबू । तुम तैयार हो जाओ। और यही तैयारी का ढग है। इसे तुम चौबीस घटे स्मरण रखो। जल्दी ही दुख भी आयेगे, स्मरण रखना। सुख भी आयेगे, स्मरण रखना। तुम हर हालत मे सभी कुछ उसी को समर्पण किये चले जाना। तुम कहना, सब तेरे है, सब तेरे भेजे है। और जल्दी ही तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन मे सुख-दुख की उधेड़-बुन खो गई और एक परम शाति विराजमान हो गई है—ऐसी शाति जो पृथ्वी की नही है, ऐसी शाति जो केवल स्वर्ग की है।

आज इतना ही।





सत्रहवां प्रवचन

आत्मा परम आधार है

सूत्र

आरुहवि अतरप्पा, बहिरप्पो छडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा, उवइट्ठ जिणवरिंदेहि।।४५।।

णिद्दण्डो णिद्दण्डो, णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो, णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा।।४६।।

णिग्गथो णीरागो, णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मूक्को।
णिक्कामो णिस्कोहो, णिम्माणो णिम्मदो अप्पा।।४७।।

अदम के तारीक रस्ते मे
कोई मुसाफिर न राह भूले
मै शमए-हस्ती बुझाके अपनी
चिरागे-तुरबत जला रहा हू।

जीवन के रास्ते पर जिन्होने अपने को परिपूर्ण मिटा दिया है, वे ही कवल ऐसा प्रकाश बन सके है जिनसे भूले-भटको को राह मिल जाये। जिसने अपने को बचाने की कोशिश की है, वह दूसरो को भटकाने का कारण बना है। और जिसने अपने को मिटा लिया, वह स्वय तो पहुचा ही है, लेकिन सहज ही, साथ-साथ, उसके प्रकाश मे बहुत और लोग भी पहुच गये है।

महावीर किसी को पहुचा नही सकते, लेकिन जो पहुचने के लिए आतुर हो वह उनकी रोशनी मे बड़ी दूर तक की यात्रा कर सकता है।

यात्री को स्वय निर्णय लेना पड़े। जाना है, तो प्रकाश के साथ सबध बनाने पड़े।

अभी हमने जीवन-जीवन, जन्मो-जन्मो अधेरे के साथ सबध बनाये है। धीरे-धीरे अधेरे के साथ हमारे सबध, सस्कार हो गये है, स्वभाव हो गए है। अधेरा हमे सहज ही आकर्षित कर लेता है। एक तो रोशनी हमे दिखाई ही नहीं पड़ती, शायद अधेरे मे रहने के कारण हमारी आखे रोशनी मे तिलमिला जाती है, या अगर दिखाई भी पड़ जाये तो भीतर बड़ा भय पैदा होता है। अपरिचित का भय। नये का भय। अनजान का भय।

तो हम तो बधी लकीर मे जीते है—कोल्हू के बैल की तरह जीते है। कोल्हू का बैल चलता बहुत है, दिनभर चलता है, पहुचता कही भी नही।

वर्तुलाकार जो घूमेगा, वह पहुचेगा कैसे?

इसलिए हमने जीवन को चक्र कहा है। गाडी के चाक की भाति, घूमता है, घूमता रहता है, कभी एक आरा ऊपर आता है, कभी दूसरा आरा नीचे चला जाता है—लेकिन वस्तुत कोई भेद नही पडता। कभी क्रोध ऊपर आया, कभी मोह ऊपर आया, कभी प्रेम झलका, कभी घृणा उठी, कभी ईर्ष्या से भरे, कभी बडी करुणा छा गई, कभी बादल घिरे, कभी सूरज निकला—ऐसी धूप-छाव चलती रहती है। एक आरा ऊपर, दूसरा आरा नीचे होता रहता है, और हम चाक की भाति घूमते रहते है। लेकिन हम है वही, जहा हम थे। हमारे जीवन मे यात्रा नही है। तीर्थयात्रा तो दूर, यात्रा ही नही है। बद डबरे की भाति है, जो सागर की तरफ जाता नही।

डबरा डरता है। सागर मे खो जाने का डर है। और डर सच है, क्योकि डबरा खोयेगा सागर मे। लेकिन उसे पता नही, उसके खोने मे ही सागर का हो जाना भी उसे मिलनेवाला है।

अदम के तारीक रस्ते मे कोई मुसाफिर न राह भूले

आदमी का रास्ता बड़ा अधेरा है।

अदम के तारीक रस्ते मे कोई मुसाफिर न राह भूले
मै शमए-हस्ती बुझाके अपनी चिरागे-तुरबत जला रहा हू।

—तो मैने अपने जीवन को, अपने होने को तो बुझा दिया है और अपनी मजार का दीया जला लिया है। चिरागे-तुरबत जला रहा हू।

जिसे कवि ने चिरागे-तुरबत कहा है, उसी को महावीर निर्वाण

कहते है।

जीवन को तो बुझा दिया है, मौत का दीया जला लिया है।

यह जरा कठिन लगेगा, क्योकि हम तो जीवन और जीवन की आकाक्षा से भरे है। जीवेषणा। किसी भी कीमत पर, मरते हो, सड़ते हो, गलते हो, लेकिन फिर भी जीना चाहते है। चाहे सब छीन लिया जाये, अधे हो जाये, सड़क पर भिखमगे की तरह घिसटते रहे, कुछ भी जीवन मे अर्थ न दिखाई पड़े, फिर भी जीवन को पकड़े रहते है। ऐसा लगता है, जैसे जीवन का कोई अपने आप मे ही अर्थ है।

दुख ही दुख मिलता हो, पीड़ा ही पीडा मिलती हो, तो भी आदमी जीवन को पकड़े रहता है। सारे स्वाभिमान को बेचना पड़े, आत्मा को बेचना पडे, सब भाति अपने को काट-काटकर बाजार मे रख देना पड़े, तो भी आदमी जीवन को पकडे रहता है।

महावीर का सारा शिक्षण जीवेषणा को बुझाने का शिक्षण है। जब तक, जिसे तुमने जीवन कहा है, तुम उसे न बुझाओगे, जब तक तुमने जिसे अब तक मृत्यु कहा है, उसे तुम अगीकार न कर लोगे—तब तक महाजीवन का द्वार न खुलेगा। क्योकि तुम जिसे जीवन कहते हो, वह मृत्यु है। और जिसे महावीर मृत्यु कहते है, वह महाजीवन है।

श्री अरविद ने कहा है 'जब खोजता था तो जिसे मैने दिन समझा था, प्रकाश समझा था—वह खोजने के बाद अधेरा साबित हुआ, रात साबित हुई। और जिसे मैने जीवन जाना था, वह मृत्यु सिद्ध हुई। और जिसे मैने अमृत समझकर पीया था, वह जहर था।'

जागने के बाद जीवन मे बडी गहरी उथल-पुथल हो जाती है, सारे मूल्य बदल जाते है—जैसे कोई आदमी सिर के बल खडा होकर देख रहा हो ससार को, और सारा ससार उसे उलटा मालूम पड़ता हो, और फिर वह पैर के बल खडा हो जाये, और तब सारा ससार उसे सीधा मालूम पड़े।

अभी जिसे हमने जीवन समझा है, वह हमारे चित्त की बड़ी विपरीत दशा है। टटोल-टटोलकर, अनुमान लगा-लगाकर, हमने कुछ सोच रखा है कि यह रहा जीवन। रोशनी आने पर, आख खुलने पर, जीवन कुछ और ही सिद्ध होता है।

आज के सूत्रो मे महावीर उस परम जीवन की तरफ इशारे कर रहे है। व्याख्या नहीं है यह, न ही परिभाषा है, यह सिर्फ वर्णन है। इसे भी समझ लेना, फिर हम सूत्रो मे प्रवेश करे।

व्याख्या तो परम सत्य की हो नही सकती, क्योकि व्याख्या उसी की हो सकती है जिसका विश्लेषण हो सके, जिसे तोड़ा जा सके, जिसे खड़ो मे बाटा जा सके। जैसे कि मकान है, इसकी व्याख्या हो सकती है कि यह ईटो का सग्रह है। ईटो को एक के ऊपर एक जमाया गया है, एक खास तरतीब मे बिठाया गया है, तो मकान बन गया है। एक-एक ईट को अलग कर लो, मकान खो जायेगा। तो ईटो की एक तरतीब से जमाई गई व्यवस्था का नाम मकान है। लेकिन आत्मा के टुकडे नही होते, खड नही होते। जैसे मकान ईटो से जमा है, ऐसा आत्मा किन्ही अशो से मिलकर नही बनी है।

सत्य का खड नही होता, टुकडे नही होते। सत्य तो बस है। तो उसकी व्याख्या नही हो सकती।

अगर वैज्ञानिक से पूछो, पानी की क्या व्याख्या है, वह कहता है, हाइड्रोजन आक्सीजन के मिलने से जो बनता है वह पानी है। लेकिन दो चीजो से मिलकर बनता है, इसलिए व्याख्या हो गई। उससे पूछो कि हाइड्रोजन की क्या व्याख्या है, तो वह कहता है, इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पाजिट्रान से मिलकर जो बनता है वह हाइड्रोजन है। लेकिन उससे पूछो, इलेक्ट्रान की क्या व्याख्या है, तब वह अटक जाता है, क्योकि अब खड समाप्त हो गये। वह कहता है, इलेक्ट्रान तो बस इलेक्ट्रान है। अब इसको समझाने का उपाय नही, क्योकि दो से मिलकर बनता नही।

दो से जो मिलकर बनता है, उसकी व्याख्या हो सकती है। क्योकि इन दो के सहारे पर हम इशारा कर सकते है।

लेकिन जहा एक ही स्वभाव हो, अखड, वहा निर्वचन के बाहर हो जाता है।

इसलिए इन सूत्रो मे महावीर आत्मा के सबध मे जो कहेगे—पहली बात—वह व्याख्या नहीं है। व्याख्या तो हो नही सकती। इशारा है, इगित है।

दूसरी बात—परिभाषा नहीं है। परिभाषा उस चीज की हो सकती है जिसकी सीमा हो। जिसकी सीमा न हो उसकी परिभाषा नही हो सकती। परिभाषा का अर्थ ही होता है सीमा को खीचना।

तुमसे कोई पूछे, तुम्हारा मकान कहा है, तो परिभाषा हो सकती है, क्योकि इस तरफ कोई पड़ोसी है, उस तरफ कोई पड़ोसी है,

इधर भी सीमा है, उधर भी सीमा है, इधर रास्ता है, उधर नदी है। कुछ सीमा हो सकती है। जहा-जहा सीमा हो सकती है, वहा परिभाषा हो सकती है। हम कह सकते है, इन सीमाओ के भीतर जो है, वह मेरा मकान है।

लेकिन आत्मा की या सत्य की तो कोई सीमा नही है। आत्मा कहा है—यह कहना तो कठिन है, क्योकि 'कहा' का तो मतलब होगा स्थान-निर्देश। और आत्मा स्थान मे नहीं है। आत्मा कब है—यह भी कहना सभव नही है, क्योकि 'कब' का तो अर्थ होगा समय मे निर्देश। आत्मा समय मे भी नही है। आत्मा कालातीत है, क्षेत्रातीत है। न वह समय के भीतर है न स्थान के भीतर है—और दो ही उपाय है जिसके द्वारा परिभाषा होती है।

जैसे अगर कोई पूछे कि तुम कब पैदा हुए, कहा पैदा हुए, तो परिभाषा हो जाती है। तुम कहते हो, फला गाव मे—स्थान बता दिया, फला घर मे, फला परिवार मे—स्थान बता दिया, फला तारीख को, सुबह या साझ या दुपहर, फला घडी-मुहूर्त मे—समय बता दिया। परिभाषा हो गई। समय और स्थान का ठीक-ठीक निर्देश कर दिया। तो जहा समय और स्थान एक-दूसरे को काटते है, दोनो की रेखाये जहा कटती है, वह बिदु तुम्हारी परिभाषा हो गई।

लेकिन आत्मा का न तो कभी जन्म हुआ, न कभी अत होता, न किसी स्थान मे आत्मा को कभी पाया गया है, न वह स्थान मे होती। टाइम-स्पेस, समय और स्थान दोनो के पार है, तो परिभाषा कैसे? आत्मा है—ऐसा कहा जा सकता है, लेकिन परिभाषा नही की जा सकती। वस्तुत तो 'आत्मा है', ऐसा कहने मे भी भूल हो जाती है, क्योकि 'है' अलग से जोड़ना ठीक नहीं है। आत्मा के होने मे ही सम्मिलित है 'है'।

जैसे हम कहे कुर्सी है, तो ठीक है, क्योकि एक दिन कुर्सी नहीं थी और एक दिन फिर नहीं हो जायेगी। दो 'नही' के बीच मे 'है' की सुविधा है। 'है' के होने के लिए दो 'नही' दोनो तरफ चाहिए। एक दिन कुर्सी नही थी, अब कुर्सी है, फिर एक दिन कुर्सी 'नही' हो जायेगी—तो 'है' कहने मे कुछ अर्थ है।

आत्मा को 'है' कहने मे क्या अर्थ है? सदा थी, सदा है, सदा रहेगी। जो कभी 'नहीं' हुई ही नहीं, उसे 'है' भी क्या कहना? तो आत्मा है, इसमे भी पुनरुक्ति है।

आत्मा मे ही 'है' पन छिपा है। वह उसका स्वभाव ही है। उसे बाहर से रखने की जरूरत नही। कुर्सी मे 'है' पन नही छिपा है। वह उसका स्वभाव नही है। एक बार शून्य से आई है, एक बार फिर शून्य मे चली जायेगी। आत्मा न आई है न गई है, तो परिभाषा नही हो सकती।

फिर आत्मा के सबध मे क्या हो सकता है? महावीर कहते है, वर्णन हो सकता है। वर्णन बड़ी अलग बात है। डिसक्रिप्शन, डेफिनीशन नही।

वर्णन का अर्थ होता है हम सिर्फ इशारे कर सकते है कि ऐसा है, ऐसा है, ऐसा है। जिन्होने जाना है, वे ही वर्णन कर सकते है। जिन्होने नहीं जाना है, वे जानने की यात्रा पर जा सकते है, लेकिन वर्णन को सुनकर ही उनकी समझ मे कुछ भी न आयेगा। वर्णन से प्यास पैदा हो सकती है।

तुम अधेरे मे हो, तो प्रकाश का मै वर्णन कर सकता हू उससे तुम्हारी समझ मे नही आयेगा कि प्रकाश क्या है। इतना ही समझ मे आयेगा—वह भी अगर तुम साहसी हो, दाव पर लगाने की हिम्मत रखते हो, जोखिम का बल है और अभियान पर निकलने की अभीप्सा है—तो इतना ही समझ मे आयेगा कि कुछ है जो मैने अब तक नही जाना, और यह आदमी जो इसे जान चुका है, बड़ा आनदित मालूम होता है, प्रसन्न मालूम होता है, मै भी जानू। और निश्चित ही यह आदमी इस अधेरे को भी जानता है, क्योकि मेरे पास बैठा है, और इस आदमी ने कुछ और भी जाना है जो अधेरे से ज्यादा है, भरोसा करू।

इसलिए श्रद्धा का बड़ा मूल्य है। विज्ञान मे श्रद्धा का कोई मूल्य नहीं है, क्योकि विज्ञान वर्णन नही करता, परिभाषा करता है, व्याख्या करता है। तो विज्ञान मे कोई श्रद्धा की जरूरत नही है। सदेह करो खूब, तो भी विज्ञान तुम्हे समझा देगा कि यह रही व्याख्या, यह रही परिभाषा, यह प्रयोगशाला—कर डालो।

धर्म के साथ कठिनाई है, प्रयोगशाला तो है, लेकिन भीतर है, बाहर नही है। मेरी प्रयोगशाला मे मै तुम्हे ले जा नही सकता। लाख चाहू, लाख पुकारू, लेकिन मेरी प्रयोगशाला मे तुम न आ सकोगे। तुम्हारी प्रयोगशाला मे मै नही आ सकता। यह प्रयोगशाला अत्यत निजी है।

विज्ञान की प्रयोगशालाए सामूहिक है। विज्ञान की टेबल पर रखकर कोई चीज जाची-परखी जाये तो सभी देख सकते है।

धर्म के जगत मे तो जो प्रयोग करता है, केवल वही देख पाता है। कह सकता है, गीत गुनगुना सकता है, उस आनद की खबर ला सकता है, नाच सकता है, या मौन खड़ा हो जाता है। या उसके जीवन की प्रभा को तुम पहचानो, उसके पास आओ, उसकी पुलक को छुओ, उसके पास शाति को अनुभव करो, उसके आनद की थोड़ी किरणे तुम पर भी पड़ने दो—तो शायद तुम्हे एक बात भर खयाल मे आ जाये कि जो मेरे जीवन मे अब तक हुआ है उससे शाति नहीं मिली, यह आदमी शात है, जो मेरे जीवन मे हुआ है उससे भय नही मिटा, इस आदमी का भय मिट गया है, जो मेरे जीवन मे हुआ है उससे अभी तक मृत्यु पर मेरी कोई विजय नही हुई, इस आदमी की मृत्यु पर विजय हो गई है, जो मैने जीवन मे जाना है उससे चिताए बढी है, इस आदमी की तिरोहित हो गई है, शायद इसे कुछ मिला है जो मै चूक रहा हू। थोडा चलू, हिम्मत करू। थोडा मै भी खोजू, अपनी सीमा, अपने घेरे के बाहर उठू।

अपनी सीमा और घेरे के बाहर उठना ही सन्यास है।

ससार तुम्हारी सीमा है। वहा सब तुम्हारा जाना-माना, परिचित है। सन्यास इस सीमा के जरा बाहर सिर उठाना है।

ये सूत्र वर्णन के सूत्र है। एक-एक शब्द बहुमूल्य है—और साथ ही साथ अर्थहीन भी।

जब मै कहता हू अर्थहीन, तो मेरा अर्थ है कि अर्थ तो तभी पैदा होगा जब तुम अनुभव करोगे। शब्द बडे प्यारे है, बडे अनूठे है। महावीर ने जब इनको कहा है तो सार्थक है, इसीलिए कहा है। मै जब तुमसे कह रहा हू तो सार्थक है, इसीलिए कह रहा हू। लेकिन मेरे कहने से ही अर्थ तुम्हारी पकड मे न आयेगा। अर्थ तो तुम्हे अपने अनुभव से डालना होगा। शब्द तुम्हे दे दूगा, जैसे शब्द की प्यालिया तुम्हे दे दी, लेकिन जो मदिरा तुम्हे ढालनी है वह तो तुम्हे भीतर ढालनी पड़े और इन प्यालियो मे भरनी पडे।

ये शब्द कोरे है, इनमे तुम प्राण डालोगे तो ये जीवत हो उठेगे। इन शब्दो को ही तुम अर्थ मत समझ लेना, जैसा कि पडितो ने समझ रखा है। तो फिर शब्द को ही लोग दोहराये चले जाते है। फिर वे आत्मा का वर्णन सीख लेते है, कठस्थ कर लेते है—तोतो की तरह। फिर उसी को दोहराते-दोहराते भूल ही जाते है कि हमने अभी जाना नही, यह तो हमने सुना था, यह तो श्रवण था, यह तो श्रुति थी। ज्यादा से ज्यादा स्मृति बन गई, लेकिन वेद का अभी जन्म नही हुआ। क्योकि वेद का जन्म तो तुम्हारे ही ध्यान की प्रक्रिया मे होगा।

तो शब्द ये सब बहुमूल्य है, महा गहन अर्थ से भरे है; लेकिन तुम्हारे पास पहुचते-पहुचते ये खाली कारतूसे रह जायेगे। तुम इन्हे अगर फिर से जीवत करना चाहो तो बड़े साहस, अदम्य साहस से और जोखिम उठाने की हिम्मत से ही यह हो सकेगा।

समझने की हम कोशिश करे।

आरुहवि अतरप्पा, बहिरप्पो छडिऊण तिविहेण।

झाइज्जइ परमप्पा, उवइट्ठ जिणवरिंदेहि।।

'जिनेश्वर देव का यह कथन है कि तुम मन, वचन और काया से बहिरात्मा को छोडकर, अतरात्मा मे आरोहण कर, परमात्मा का ध्यान करो।

'मन, वचन, काया से '

महावीर की साधना-प्रक्रिया मे ये तीन बाधाए है—मन, वचन, काया।

काया तो हमे दिखाई पडती है। काया के पीछे छिपी हुई विचारो की पर्ते है, सघन पर्ते है—उनका नाम वचन। तुम चाहे बोलो या न बोलो, तो भीतर तो बोलते ही रहते हो। चुप भी जो आदमी बैठा है, वह भी भीतर बोल रहा है। वचन जारी है।

तो शरीर की एक पर्त है—स्थूल, उसके भीतर छिपी हुई सूक्ष्म पर्त है विचार की, सस्कार की, धारणाओ की—वह घूम रही है। वह चौबीस घटे तुम्हे घेरे हुए है। रात सपने मे भी चल रही है। उठो, बैठो, चलो, कुछ भी करो, भीतर विचार की एक परिधि अपना घेरा बाधे रखती है।

उस विचार से भी गहरा मन है। अगर आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा मे कहे तो जिसको आधुनिक मनोविज्ञान 'काशस माइड' कहता है, उसी को महावीर वचन कहते है। और जिसको आधुनिक मनोविज्ञान 'अनकाशस माइड' कहता है, उसको महावीर मन कहते है।

मन का जो हिस्सा तुम्हारी चेतना मे प्रविष्ट हो गया है—वह है वचन। मन का जो हिस्सा विचार बन गया है और मन का जो हिस्सा अभी विचार नहीं बना है, विचार बनने की प्रक्रिया मे है—वह है मन।

मन है बीज की भाति, विचार अकुरित हो गये बीज है। और ये तीनो सयुक्त है। जो तुम्हारे मन मे है, वह आज नही कल

तुम्हारे विचार मे होगा। और जो तुम्हारे विचार मे है, वह आज नही कल तुम्हारे शरीर मे होगा। जो तुम्हारे शरीर मे है, वह आज नहीं कल तुम्हारे विचार मे था। और जो तुम्हारे विचार मे है, वह कल नही परसो तुम्हारे मन मे था।

शरीर से ही जो छूटना चाहता है, वह छूट न पायेगा, क्योकि शरीर के आधार तो विचार मे पडे है। विचार से ही जो छूटना चाहता है, वह भी न छूट पायेगा, क्योकि विचार से भी गहरी एक पर्त है मन की।

बहुत-सी साधना-प्रक्रियाए है जो सोचती है शरीर से ही छूटने स सब हो जायेगा। हठयोग है। हठयोग का सारा आग्रह शरीर पर है। शरीर को ही इस भाति जीत लेना है कि शरीर का हमारे ऊपर कोई बल न रह जाये। लेकिन महावीर कहते है जो जीतने चला है, वह जो विचार का भीतर भाव उठा है, वह भी तो सूक्ष्म शरीर है। वह कोई शरीर से भिन्न नही है। उससे एक नये तरह का शरीर निर्मित हो जायेगा, लेकिन शरीर जारी रहेगा।

फिर मत्रयोग है वह मानता है कि मन को ही बदल लेना, वाणी का, विचार को बदल लेना काफी है। मन के व्यक्त रूप को बदल लेना काफी है। तो मत्रो का उच्चार करो। मत्रो के गहन उच्चार से, मत्र के छद मे बद्ध होकर विचार सो जाते है। जो अकुरित हो गये थे वे भी गिरकर फिर बीज हो जाते है। लेकिन मन तो रहेगा। अभिव्यक्त मन समाप्त हो जायेगा, लेकिन छिपा हुआ गूढ़ मन, अनकाशस, अचेतन मन, वह तो बना रहेगा। वह फिर नये मन खड़े करेगा, फिर नये विचार उठायेगा। जब बीज बचा है तो कब तक उससे बचोगे? अकुरित होगा। फिर वर्षा आयेगी, फिर जरा भूल-चूक हो जायेगी, फिर मत्र याद न रहेगा—फिर अकुरण हो जायेगा।

तो महावीर कहते है, जिसे आत्मा तक जाना हो, उसे तीनो—मन, वचन, काया—तीनो के पार उठना होता है।

इसे तुम थोड़ा समझो, क्योकि यही हम सब है—इन तीन मे हम खड़े है। आत्मा का तो हमे कोई पता नहीं है। आत्मा तो इन तीन के पार है। ऐसा श्रद्धा से हम स्वीकार करते है कि होगी। महावीर कहते, बुद्ध कहते, कृष्ण कहते, पतजलि कहते—ठीक है, कहते है तो होगी। लेकिन हमने अब तक जो जाना है, वह ज्यादा से ज्यादा हमारी जानकारी शरीर तक है। तुम शरीर को ही मानते हो कि तुम हो। इसलिए शरीर को भूख लगती है तो तुम कहते हो, मुझे भूख लगी। और जब भी तुम दोहराते हो कि मुझे भूख लगी, तब तुम फिर शरीर-भाव को मजबूत करते हो, क्योकि यह विचार शरीर-भाव को मजबूत करनेवाला है। शरीर मे एक कामवासना की तरग उठती है, तुम कहते हो, मेरे मन मे कामोत्तेजना उठी। तुम शरीर से अपना तादात्म्य कर रहे हो। और जब तुम तादात्म्य करते हो, इसी तादात्म्य के कारण तो यह शरीर निर्मित हुआ है और इसी तादात्म्य के कारण तुम इसे सम्हाले हुए हो और इसी तादात्म्य के कारण तुम भविष्य मे भी शरीर निर्मित करते रहोगे। जैसे ही तुमने शरीर को कहा, 'मै', तुमने एक गहरा सबध जोड़ लिया।

साधारणत हम शरीर के तल पर ही जीते है। हम मे से जो थोड़े जागरूक होते है, वे सोचना शुरू करते है कि शरीर मै नही हो सकता। क्योकि उनको साफ दिखाई पड़ने लगता है कि मै जीता तो अतर्विचारो मे हू। कभी ऐसा भी हो जाता है कि तुम भूखे बैठे हो और विचारो मे तल्लीन हो तो भूख का पता नही चलता। कभी ऐसा हो जाता है कि शरीर थका हुआ है और तुम्हारा बेटा अचानक छत पर से गिर पड़ा, तुम विश्राम करने जा रहे थे, लेकिन अब शरीर मे अचानक ऊर्जा आ जाती है। तुम भागे अस्पताल की तरफ, भूल ही गये विश्राम, भूल ही गये कि तुम थके थे कि चार दिन से सोए नही थे, कि लबी यात्रा से लौटे थे। विचार जब पकड लेता है तो शरीर दूर रह जाता है।

खिलाडी है, मैदान पर खेलता है, फुटबाल या हाकी खेलता है, पैर मे चोट लग जाती है खेलते वक्त, खून बहने लगता है, दर्शको को दिखाई पडता है, उसे पता नही चलता। वह विचारो मे तल्लीन है। वह खेलने की धुन मे है। अभी फुरसत कहा! अभी ध्यान देने की सुविधा नही है उसे। अभी सारा ध्यान विचारो मे जुड़ा है। अभी शरीर दूर पड गया, बड़ा दूर पड गया। खेल बद हो जायेगा, अचानक वह शरीर मे लौटेगा—खून बहता हुआ मालूम पडेगा। वह चकित होगा इतनी देर तक मुझे पता कैसे न चला।

तुम्हे भी बहुत बार अनुभव हुआ होगा जब तुम विचार मे तल्लीन होते हो, शरीर से दूरी बढ जाती है। कभी-कभी विचार की तल्लीनता इतनी हो सकती है कि आपरेशन भी शरीर पर किया जाये और तुम्हे पता न चले।

काशी नरेश का ऐसा ही आपरेशन हुआ था। वे भक्त थे,

गीता के प्रेमी थे और गीता को बड़ी तल्लीनता से गुनगुनाते थे। उन्होने कहा कि मुझे कोई बेहोशी की दवा देने की जरूरत नही है। मुझे मेरी गीता गुनगुनाने दो, तुम आपरेशन कर लो। डाक्टर राजी न थे, क्योकि क्या भरोसा? लेकिन यह आदमी कोई बेहोशी की दवा लेने को राजी न था और आपेरशन एकदम जरूरी था, अन्यथा यह मरेगा। ऐसी हालत देखकर कि यह लेने को राजी नही है, मौत तो होने ही वाली है, प्रयोग कर लेना उचित है। डाक्टरो ने आज्ञा दी कि तुम अपनी गीता गुनगुनाओ। घटाभर आपरेशन मे लगा। वे अपनी गीता गुनगुनाते रहे, आपरेशन हो गया और उन्हे पता भी न चला।

विचार मे अगर तुम बहुत जोर से सयुक्त हो जाओ तो शरीर और तुम्हारे बीच सबध दूर का हो जाता है।

तो जिन्होने विचार के थोड़े-से प्रयोग किये है, वे इस निष्कर्ष पर पहुच जाते है कि हम शरीर नही है, विचार है। लेकिन विचार भी एक पर्त है। शरीर से गहरी है, लेकिन शरीर की ही है। विचार भी पदार्थ है।

महावीर का सिद्धात इस सबध मे बडा अजीब है। महावीर कहते है, विचार भी पदार्थ है, मैटिरियल है, पुदगल है। विचार के भी अणु होते है। शायद विज्ञान महावीर से जल्दी राजी हो जायेगा, क्योकि महावीर का बोध बड़ा साफ है। वे कहते है, विचार के भी अणु है। वह भी कोई अपार्थिव चीज नही है, वह भी पार्थिव है। बड़ी सूक्ष्म है, लेकिन पार्थिव है।

विचार से भी कुछ लोग नीचे उतरते है। ध्यान मे वैसी घडी आती है, जब तुम विचारो को शात कर लेते हो, जब विचारो की तरगे कम होते-होते होते-होते खो जाती है, झील बिलकुल शात हो जाती है, कोई विचार की तरग नही होती, वचन नही होता, भीतर शब्द नही उठते, शब्दो मे फल-फूल नही लगते, शब्द बिलकुल शात हो गये होते है।

उस निशब्द दशा मे मन के साथ तादात्म्य हो जाता है। तब आदमी सोचता है, यही मै हू। यह बड़ा प्यारा क्षण है—बड़ा शात, बडा मौन। और आदमी सोचता है, यही मै हू। लेकिन यह भी सूक्ष्मतम शरीर की दशा है।

आधुनिक मनोविज्ञान महावीर से राजी है। आधुनिक मनोविज्ञान कहता है, शरीर और मन दो चीजे नही है। शरीर और मन ऐसे दो शब्दो का प्रयोग भी आधुनिक मनोविज्ञान धीरे-धीरे बद कर रहा है। उसने एक नया शब्द गढ़ा है साइकोसोमेटिक, मनोशरीर। शरीर और मन, दो शब्द ठीक नही है, क्योकि उससे भ्राति होती है कि जैसे दो चीजे है—मन और शरीर।

मन और शरीर एक ही चीज है। शरीर स्थूलतम मन है, मन सूक्ष्मतम शरीर है। और दोनो के बीच मे विचारो की तरगो का जगत है। लेकिन यह इकट्ठा है। समाधि की दशा मे आदमी मन के बाहर होता है। ध्यान की दशा मे मन शात हो जाता है, समाधि की दशा मे मन के बाहर होता है। तब पहली दफे आत्मा का पता चलता है।

आरुहवि अतरप्पा ।

'तुम मन, वचन और काया मे बहिरात्मा को छोड़कर, अतरात्मा मे आरोहण कर, परमात्मा का ध्यान करो।'

बडा अनूठा सूत्र है। सारा योग इसमे आ गया।

गुरजिएफ के जीवन मे एक उल्लेख है। वह अमरीका गया था। उसे अपनी ध्यान-विद्यापीठ को चलाने के लिए पैसो की जरूरत थी, तो उसने न्यूयार्क के सारे बडे धनपतियो को निमत्रित किया था। न्यूयार्क की जो सबसे ऊची सोसाइटी, अभिजात वर्ग, उसके चुनदे प्रतिनिधि मौजूद थे। गुरजिएफ की खबर तो अमरीका मे पहुच गई थी। उस आदमी को देखने को लोग उत्सुक थे। कोई पचास-साठ मित्रो का समूह था, स्त्रिया थी, पुरुष थे। जिस व्यक्ति ने गुरजिएफ के सस्मरण लिखे है, उसने लिखा है कि गुरजिएफ ने मुझे बुलाया इन लोगो से मिलने के पहले और मुझसे कहा कि तुम्हे जितने भी गदे और अश्लील शब्द आते हो अग्रेजी के, मुझे बता दो। वह आदमी थोडा चौका। उसने कहा कि अश्लील शब्दो से क्या करना? क्योकि गुरजिएफ अग्रेजी ठीक से जानता नहीं था। उसने कहा, तुम फिक्र छोडो। तो जितने भी गदे अश्लील शब्द उसे आते थे, उसने बता दिये। गुरजिएफ ने वे लिख लिये और याद कर लिये। फिर गुरजिएफ जब बोलने गया उन मित्रो के बीच, तो थोडी देर उसने बाते की, फिर इसके बाद उसने कामवासना की बात शुरू की। फिर धीरे-धीरे तो कामवासना की बात को ऐसा गहरा ले गया कि सिर्फ अश्लील और अभद्र शब्दो का ही उपयोग करने लगा। और घड़ीभर मे—जिसने सस्मरण लिखे है उसने लिखा है—ऐसी हालत आ गई कि सारे लोग कामोत्तेजित हो गये। भूल ही गये। स्त्रिया पुरुषो के साथ खेल मे लग गई,

पुरुष स्त्रियो के साथ खेल मे लग गये, यह भूल ही गये कि गुरजिएफ को मिलने आये है। गुरजिएफ चुप होकर बैठ गया और वह सारी रासलीला चलने लगी। तब ठीक जब वे रासलीला मे बड़े डूबने के ही करीब थे, वह खडा हुआ। उसने कहा, 'सावधान। मेरी तरफ देखो। सिर्फ शब्दो के आधार पर मैने तुम्हारी बेहोशी को प्रगट कर दिया है। सिर्फ कुछ शब्द बोलकर मैने तुम्हारे मनो को तरगित कर दिया है। यह स्थिति देखो अपनी। तुम शब्दो के इतने गुलाम हो। और मैने सिर्फ तुम्हारी बेहोशी दिखाने के लिए ही यह प्रयोग किया है। और मै एक सस्था बना रहा हू, जहा मै होश सिखाना चाहता हू, उसके लिए रुपये चाहिए।'

उसने हजारो डालर इकट्ठे कर लिये उसी क्षण। यह बात तो इतनी साफ थी। लोग चौककर बैठ गये एकदम घबडाकर कि वे यह क्या कर रहे थे। भूल ही गये थे—शिष्टाचार, समाज, नीति, धर्म। इस आदमी ने सिर्फ शब्दो के जाल पर ।

तुमने कभी खयाल किया? पर्दे पर फिल्म मे कामोत्तेजना के चित्र आने शुरू होते है, तुम कामोत्तेजित हो जाते हो। तुमने कभी सोचा कि धूप-छाया का खेल है? लेकिन तुम इतने उद्विग्न हो जाते हो ।

शब्दो के आधार पर, वचनो के आधार पर हम जीते है। कोई तुमसे कह देता है, 'बडे प्यारे है आप', फूल खिल जाते है। कोई जरा घृणा से देख देता है, नर्क प्रगट हो जाता है। कोई जरा सम्मान से नहीं पूछता, मन उदास हो जाता है। कोई नमस्कार कर लेता है, उदास थे, उदासी खो जाती है।

तुमने कभी देखा कि तुम कितने शब्दो के हाथ मे हो?

शब्द तुम्हारी बेहोशी है। इसको महावीर कहते है वचन। इससे जागना जरूरी है। ऐसी घडी लानी जरूरी है कि कोई प्रशसा करे कि निदा, बराबर हो जाये। ऐसी घड़ी लानी जरूरी है कि शब्द इतने बलशाली न रह जाये कि तुम्हारे प्राणो को आदोलित कर दे, अन्यथा तुम्हारी आत्मा का क्या होगा?

विज्ञापन की कला में कुशल जो विशेषज्ञ है वे इस बात को समझ गये है कि आदमी शब्दो से जीता है, तो शब्दो को दोहराये चले जाते है। तुम्हारे मन पर पर्ते बना देते है। बिनाका टुथपेस्ट, बिनाका टुथपेस्ट दोहराये चले जाते है। तुम शायद सोचते भी नहीं कि तुम्हारा कुछ बिगड़ रहा है, लेकिन तुम्हे पता नही है, यह शब्द बैठता जाता है, यह बैठता जाता है। यह तुम्हारा वचन बन जाता है। फिर कल तुम जब बाजार मे खरीदने जाते हो और दुकानदार पूछता है, कौन-सा टुथपेस्ट, तो तुम्हे याद भी नहीं रहता कि तुम होश मे कह रहे हो कि बेहोशी मे। तुम कहते हो, बिनाका टुथपेस्ट। और तुम यही सोचते हो कि तुमने स्वय ही सोचकर तय किया है। तुमने सोचकर तय नहीं किया है, यह विज्ञापित है। अखबारो मे पढ़ा, दीवालो पर लिखा देखा, रेडियो पर सुना, टेलीविजन पर देखा, सुदर स्त्रियो की तस्वीरे देखीं, हसते हुए मोतियो की तरह उनके चमकते हुए दात देखे—और बिनाका टुथपेस्ट, और बिनाका टुथपेस्ट, और हर जगह सुदर स्त्रियो की तस्वीरे देखे विज्ञापनो मे। उन्होने कहा कि मेरे पति को कौन-सी दो चीजे पसद है?—'मै और बिनाका टुथपेस्ट।'

सब तरफ से शब्द की एक पर्त तुम्हारे भीतर बनायी जाती है। राजनीतिज्ञ वही करते है, दुकानदार वही करते है। एक शब्द बिठाया जाता है। बहुत बार दोहराने से तुम्हारे भीतर लकीरे खिच जाती है। समाजवाद, समाजवाद, समाजवाद। धीरे-धीरे धीरे-धीरे यह लकीर बैठ जाती है। जब लकीर मजबूत होकर बैठ जाती है तो वही लकीर तुम्हे आदोलित करने लगती है, तुम्हे गतिमान करने लगती है।

तुम समाज से बधे हो शब्दो के कारण। जरा शब्दो को हिला-डुलाकर देखो और तुम पाओगे, तुम समाज से मुक्त होने लगे। हिदू हू, मुसलमान हू, ईसाई हू—क्या है ये? ये सिर्फ शब्द है। जैन हू, बौद्ध हू—ये क्या है? सिर्फ शब्द है। लेकिन बचपन से दोहराया गया कि तुम जैन हो, इतनी बार दोहराया गया है कि अब तुम्हे याद भी नही आता कि कब शुरू किया गया था दोहराना। यह विज्ञापन, यह कडीशनिग, यह सस्कार ऐसा डाला गया है कि अब तुमसे कोई नींद मे भी पूछे, तो भी तुम कहोगे, जैन हू। शराब भी पीकर सडक पर गिर पड़े होओ और कोई हिलाकर पूछे कि कौन हो, तुम कहोगे, जैन। इतना गहरा चला गया है।

मगर यही शब्द तुम्हे आदोलित करता है। फिर अगर कोई कह देता है, 'इस्लाम खतरे मे है', तो तुम मरने-मारने को उतारू हो जाते हो। 'इस्लाम' एक शब्द है। शब्द सत्य नही है। कोई शब्द सत्य नही है।

शब्द के साथ सबध को शिथिल करो।

तो महावीर कहते है, शरीर के साथ सबध को शिथिल करो, शब्द के साथ, वचन के साथ सबध को शिथिल करो। और फिर धीरे-धीरे मन के साथ।

शरीर से शुरू करो, क्योकि वह स्थूलतम है, उस पर प्रयोग करना आसान होगा। इसलिए महावीर की पूरी प्रक्रिया शरीर से शुरू होती है, मन पर पूरी होती है।

जब तुम शरीर से मुक्त होने लगोगे तब तुम्हे दिखाई पड़ेगा भीतर का बधन—वचन का। जब तुम वचन से मुक्त होने लगोगे तब तुम्हारी आखे इतनी साफ होगी, पारदर्शी होगी कि तुम्हे मन का बधन दिखाई पड़ेगा। और इन तीनो के पार आत्मा है। और उस आत्मा मे परमात्मा छिपा है।

'जिनेश्वर देव का यह कथन है कि तुम मन, वचन और काया से बहिरात्मा को छोडकर, अतरात्मा मे आरोहण कर, परमात्मा का ध्यान करो।'

बाहर से भीतर और भीतर से और भीतर शरीर हमारा सेतु है बाहर से। वचन भी हमारा सेतु है बाहर से। मन भी हमारा सेतु है बाहर से। जुडे है हम इस तरह।

इसलिए तुमने देखा, गूगा आदमी जो बोल नहीं सकता, वह समाज का हिस्सा नही हो पाता। जडबुद्धि, जिसके पास मन की बहुत क्षमता नही है, वह अकेला रह जाता है। तुमने यह खयाल किया, इस समाज मे वे ही लोग सर्वाधिक मूल्यवान हो जाते है जो शब्दो का प्रयोग करने मे सर्वाधिक कुशल होते है। नेता हो, धर्मगुरु हो, कवि हो, लेखक हो—जिन लोगो की भी क्षमता वचन पर गहरी है, वे इस जगत मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाते है। जिनकी वचन पर पकड गहरी नही है, वे पिछड जाते है।

मनुष्य का असली समाज भाषा मे है। इसलिए जो बच्चा देर तक नहीं बोलता, मा-बाप चिंतित हो जाते है, घबडा जाते है कि अब बड़ा मुश्किल हुआ। क्योकि यह बच्चा कभी सभ्य न बन सकेगा। यह समाज का हिस्सा न बन सकेगा। यह अधूरा पडेगा, अकेला पडा रह जायेगा। इसकी कोई जीवन की यात्रा, गति न होगी।

ये सेतु है जो हमे बाहर से जोडे हुए है। इन सेतुओ से मुक्त हम होना सीखे तो हम भीतर से जुडेगे। इसका यह अर्थ नही है कि महावीर कहते है, तुम बोलो मत। इसका यह भी अर्थ नही है कि महावीर कहते है, शरीर की आत्महत्या कर डालो। इसका यह भी अर्थ नही है कि महावीर कहते है, मन को मार डालो। न, महावीर कहते है, तुम अपने को शिथिल कर लो इनसे। जब इनकी जरूरत हो, उपयोग कर लो। लेकिन जब इनकी जरूरत न हो तो इनकी जकड न रहे। चलना है, कहीं जाना है, तो शरीर का उपयोग करना पडेगा। किसी से कुछ बोलना है, कहना है, तो वचन का उपयोग करना पड़ेगा। कुछ सोचना है, चितन करना है, तो मन का, मनन का उपयोग करना पड़ेगा। लेकिन यह उपयोग हो। ऐसा न हो कि तुम यह भूल ही जाओ कि तुम इनसे अलग हो। और जब इनका उपयोग नही करना है तो तुम इनको बाधकर एक कोने मे रख सको। इतनी क्षमता बनी रहे।

तुमने देखा? लोग सिनेमा-घरो मे बैठे है, होटलो मे बैठे है और टागे हिला रहे है। उनसे पूछो कि टाग किसलिए हिला रहे हो? चलते, तब सब ठीक था, चलने मे टाग हिलनी चाहिए। मगर यहा कुर्सी पर बैठे-बैठे टाग क्यो हिला रहे हो? कहोगे तो वे चौककर रोक लेगे। वे कहेगे, हमे कुछ याद न था। लेकिन इसका यह मतलब हुआ कि शरीर के साथ सबध ऐसा हो गया है कि जब जरूरत नही होती तब भी टागे हिलती जाती है।

नीद मे लोग बडबड़ाते है। पूछो, 'किससे बात कर रहे हो? अब तो यहा कोई भी नही, अब तो चुप हो जाओ।' तो वे नीद मे बड़बडाते है। कोई न हो तो भी क्या हुआ, बोलने की आदत ऐसी पड गई है।

मनोवैज्ञानिक कहते है, अगर किसी आदमी को तीन महीने के लिए एकात-गृह मे छोड दिया जाये जहा सब सुविधा हो, उसे वक्त पर भोजन सरककर मिल जाये मशीन के द्वारा, कोई अड़चन न हो, लेकिन बोलने को कोई न हो—तो तीन सप्ताह के बाद उसके ओठ हिलने लगेगे। तीन सप्ताह तक वह भीतर-भीतर बात करेगा। तीन सप्ताह के बाद वह ओठ हिलाकर बात करने लगेगा। छह सप्ताह के बाद वाणी बाहर आने लगेगी। नौ सप्ताह के बाद वह बड़े खुलकर बोलेगा। अकेले। और अब इस तरह बोलेगा कि जैसे किसी से बात कर रहा है और कोई मौजूद है। बारहवे सप्ताह होते-होते वह बिलकुल पागल हो जायेगा।

तुमने पागलखाने मे लोग बैठे देखे है जो अपने से बाते कर रहे है? उनको हो क्या गया है? वाणी के साथ, वचन के साथ इतना ज्यादा तादात्म्य हो गया है कि अब दूसरे की मौजूदगी भी

जरूरी नहीं है। तुम्हे तो दूसरे को खोजना पड़ता है, क्योकि तुम्हे अभी थोड़ा-सा होश बाकी है कि बिना दूसरे के कैसे बात करो। उठे, चलो मित्र के घर जाये, होटल जाये, क्लब-घर जाये। क्योकि अभी तुम्हारी इतनी हिम्मत नहीं है कि अकेले ही बात करने लगो। हालाकि जब तुम दूसरे से भी बात करते हो, तो भी तुम अकेले ही बात कर रहे हो। वह दूसरा चाहे सुनने को राजी भी नही है। वह ऊबा हुआ है, जम्हाई लेता है, घडी देखता है। वह छिटकना चाहता है, लेकिन तुम उसको पकड़े हुए हो।

लोग हाथ तक पकड़कर बाते करते है कि कही निकल न जाओ। बिलकुल पास आ जाते है, बिलकुल चेहरे के पास चेहरा ले आते है कि कही छूटकर खिसक न जाओ। बामुश्किल तो मिले हो। वह तुम्हारी सुनना नही चाहता। वह हा-हू करता है। वह कहता है, ठीक है, सब ठीक है, मगर तुम अपना कहे चले जा रहे हो।

और तुमने कभी यह खयाल किया है कि दो लोग जब बाते करते है, तुम जरा चुप होकर शाति से बैठकर उन दोनो की बाते सुनो तो तुम हैरान होओगे वे दोनो एक-दूसरे से बात नही करते। एक को अपनी कहनी है, दूसरे को अपनी कहनी है। दोनो अपनी-अपनी कहते है। पति-पत्नी की बात सुनो तो बहुत साफ हो जायेगा, दोनो अपनी-अपनी कहते है। हा, इतना अभी होश है कि थोड़ा-थोड़ा एक-दूसरे की बातचीत मे तार जोडते जाते है, ताकि ऐसा न लगे कि ये बिलकुल पागल है।

दो प्रोफेसर पागल हो गये थे। वे एक पागलखाने मे थे। मनोवैज्ञानिक जो उनका अध्ययन कर रहा था, बड़ा हैरान हुआ, क्योकि वे दोनो बात करते, तो जब एक बात करता तो दूसरा चुप हो जाता। दोनो प्रोफेसर थे, सुशिक्षित थे। फिर जब दूसरा करता तो पहला चुप हो जाता। लेकिन दोनो की बातो मे कोई तार-तुक नही, कोई सगति नहीं। एक आकाश की हाक रहा है, दूसरा जमीन की हाक रहा है। उससे कोई लेना ही देना नही। कही तार जुडते ही नही, आसपास भी नहीं आते, जुडने की बात दूर। समानातर चल रही है रेखाए, कही मिलती नही। आखिर वह बडा हैरान हुआ कि इतने पागल है कि कुछ भी बकते है। लेकिन इतना खयाल रखते है, जब दूसरा बोलता है तो एक चुप हो जाता है। तो वह अदर गया। उसने पूछा कि यह बड़े रहस्य की बात है। जब एक बोलता है, दूसरा चुप क्यो हो जाता है? उसने कहा, 'क्या तुमने समझा है हम पागल है? हमको कैसे वार्तालाप करना, आता है। क्या तुमने समझा हम पागल है? जब एक बोलता है, दूसरे को चुप हो ही जाना चाहिए।' लेकिन दूसरा जब चुप है, अपने भीतर गुनतारा बिठा रहा है, जब यह चुप हो जायेगा, तब वह अपना शुरू कर देगा। ये दोनो धाराए अलग-अलग चल रही है, अपने-अपने भीतर चल रही है।

तुम थोड़ा वचन से जागो। वचन से जागे कि तुम समाज से छूटे—जगल भागने से कोई समाज से मुक्त नही होता। भाषा से हट जाने से समाज से मुक्त होता है। इसलिए वास्तविक एकात भाषा से मुक्ति है। हिमालय पर भी जाओगे तो भाषा से अगर मुक्त न हुए तो तुम पौधो से, वृक्षो से बात करने लगोगे, पक्षियो से बोलने लगोगे। बोलने के लिए कोई भी सहारा खोज लोगे। कुछ न होगा तो आकाश मे बैठे भगवान से चर्चा शुरू कर दोगे। देवी-देवता और अप्सराये प्रगट होने लगेगी। वे सब तुम्हारे कल्पना के जाल है। लेकिन तुम कुछ पैदा कर लोगे जिसके सहारे तुम बात कर सको।

भाषा से जो मुक्त हुआ, वही सन्यासी है। इसीलिए महावीर ने अपने सन्यासी को 'मुनि' कहा। मुनि का अर्थ है भाषा से जो मुक्त, मौन को जो उपलब्ध। सोचकर कहा।

मुनि का अर्थ नही है, ससार से भाग गया। मुनि का अर्थ नही है, घर से भाग गया। बड़ी गहरी बात कही भाषा से जाग गया, वचन का पुराना पागलपन न रहा। जरूरत होती है तो उपयोग कर लेता है, अन्यथा सरकाकर बगल मे रख देता है। जैसे तुम कार का उपयोग कर लेते हो, जब जाना है बैठ गये, कार चलाई, वापस गैरेज मे बद कर दी। ऐसे ही वह वाणी के यत्र का उपयोग कर लेता है, जब जरूरत हुई, फिर वापस गैरेज मे बद कर दी। ऐसे ज्यादातर वह मौन रहता है, मौन मे डूबता है, जरूरत के वक्त भाषा मे उतरता है। लेकिन भाषा उपकरण हो जाती है। अब यह भाषा का मालिक है।

जिस दिन भाषा उपकरण हो गई, उस दिन तुम मुनि हुए। तुमने घर छोडा या न छोड़ा, मुझे फिक्र नही है। लेकिन जिस दिन भाषा से तुम छूटे, भाषा का कारागृह तुम्हारे ऊपर वजनी न रहा, भारी न रहा, तुम समर्थ हुए जब चाहो तो बोलो, लेकिन बोलने की चाह तुम्हे पागल की तरह आदोलित नही करती—तो तुम मुनि हो गये।

'मन, वचन और काया से बहिरात्मा को छोड़कर, अतरात्मा मे आरोहण कर, परमात्मा का ध्यान करो।'

ये बाहर जाने के मार्ग है। शरीर बाहर से जोड़ता है। स्वभावत शरीर बाहर से आया है, मा से मिला, पिता से मिला। तुम इसे लेकर नहीं आये। यह बाहर के द्वारा दिया गया है, बाहर की भेट है। यह तुम्हारी मा का है, तुम्हारे पिता का है।

उनका भी है, कहना ठीक नहीं है, क्योकि उनके पास भी जो शरीर था वह उनके माता-पिता का था। उनका भी था, यह भी कहना ठीक नही।

इसलिए अगर इसकी पूरी गहराई मे जाओगे तो शरीर प्रकृति का है, बाहर से आया है, मिट्टी का है, जल का है, वायु का है, आकाश का है, पच महाभूतो का है, तुम्हारा नही है। जो बाहर से आया है वह बाहर की गुलामी मे है। स्वभावत तुम्हारे भीतर भी जो जल है वह बाहर के जल के ही नियमो का पालन करता है, तुम्हारे नियमो का पालन नही करता। कैसे करेगा? तुमसे उसका कुछ लेना-देना नही है। तुम्हारे भीतर जो मिट्टी है, वह मिट्टी के नियमो का पालन करती है, तुम्हारे नियमो का पालन नही करती। उस पर गुरुत्वाकर्षण का काम होता है। तुम्हारे भीतर जहा से जो आया है, उसी नियम का पालन करता है। वायु वायु का पालन करती है। अग्नि अग्नि का पालन करती है। इसे तुम खयाल रखना।

इसलिए अगर तुमको चाद, पूर्णिमा के चाद को देखकर बडी उमग उठती है, तो तुमने कभी सोचा न होगा, क्यो उठती है। यह वैसे ही उठती है उमग, जैसे सागर मे उमग उठती है। क्योकि सागर चाद से प्रभावित होता है, आदोलित होता है, ज्वार उठता है, नाचने लगता है। बडी लहरे, उत्तग लहरे उठती है, सागर पगला जाता है इसलिए चाद की रात मे ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो थोड़ा पगला न जाता हो। जो बहुत सवेदनशील है, बहुत ज्यादा पगला जाते है। इसलिए पागलो के लिए अग्रेजी मे शब्द है लूनाटिक। लूनाटिक का मतलब होता है चादमारा, चाद ने मारा इसे। हिंदी मे भी चादमारा पागल के लिए उपयोग करते है।

आदमी के शरीर के भीतर कोई अस्सी प्रतिशत जल है, थोड़ा नही है। और यह जल ठीक वैसा ही जल है जैसा सागर का। उतने ही लवण इस शरीर के जल मे भी है। हिंदू कहते है कि पहला अवतार मछली का। वैज्ञानिक भी कहते है कि मनुष्य का पहला अवतरण मछली मे। और मछली के भीतर जो जल का ढग है, वही आदमी के शरीर के भीतर भी है। अभी भी है। इसलिए जब सागर उत्तगित हो जाता है, तरगित हो जाता है, तो तुम भी तरगित हो जाते हो। चाद को देखकर कौन मोहित नही हो जाता। लेकिन यह तुम नही हो जो मोहित हो रहे हो, यह तुम्हारे भीतर का जल है, अस्सी प्रतिशत, जिसमे तरग उठी है बडी सूक्ष्म। अगर इसे तुम समझोगे तो चाद हो कि अमावस हो, सब बराबर हो गये। फिर कोई फर्क न रहा।

तुम जब एक स्त्री को देखकर आदोलित हो जाते हो, किंकर्तव्य विमूढ हो जाते हो, कोई वासना का ज्वार तुम्हे घेर लेता है, तो तुम यह मत सोचना कि तुम प्रभावित हो गये हो, ये तुम्हारे शरीर के भीतर पडे हुए स्त्री-हारमोन, ये तुम्हारे शरीर के भीतर पड़े हुए पुरुष-हारमोन, यह तुम्हारे शरीर की केमिस्ट्री है, रसायन है जो प्रभावित हो रही है। क्योकि तुम्हारा आधा शरीर स्त्री का है, आधा पुरुष का है। सभी अर्धनारीश्वर है। आधा मा से मिला है, आधा पिता से मिला है।

तो जब भी तुम किसी स्त्री को देखकर प्रभावित होते हो, तो तुम यह मत सोचना कि मै प्रभावित हुआ। वहा तुम भ्राति कर रहे हो। वहा शरीर के साथ तुमने तादात्म्य कर लिया। ये तो तुम्हारे शरीर के भीतर के द्रव्य है जो आदोलित हुए, क्योकि ये उसी नियम को मानकर चलते है जो पदार्थो का नियम है।

यह कर्षण, यह आकर्षण, यह चुबक पौदगलिक है, शारीरिक है। यह पदार्थगत है। यह होना भी चाहिए पदार्थगत।

इसलिए जैसे-जैसे व्यक्ति अनुभव करता है कि मै शरीर नही हू, वैसे-वैसे दूसरो के शरीर उसको कम प्रभावित करते है। जिस दिन व्यक्ति को यह पूरा अनुभव होने लगता है कि मैं शरीर हू ही नही, उसी दिन स्त्री-पुरुष के शरीर के प्रभाव समाप्त हो जाते है। फिर कौन पास से निकल जाता है, इससे कोई फर्क नही पड़ता। तुम्हारे भीतर कोई तरग नहीं उठती। फिर पूर्णिमा की रात हो कि अमावस की रात, सब बराबर हो जाता है। शरीर मे तरगे उठती रहेगी, इससे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। तुम दूर खडे द्रष्टा हो जाते हो।

मन भी मन के ही नियमो को मानकर चलता है, तुम्हारे नियम मानकर नही चलता। इसलिए तुमने कई दफे देखा होगा कि

अगर तुम दस आदमियो के पास गये मिलने और वे दसों प्रसन्न थे, आनदित थे, तुम उदास थे, लेकिन क्षणभर मे तुम भूल जाते हो कि तुम उदास हो। उन दस आदमियो की प्रसन्न-चित्तता मे तुम भी प्रसन्न हो जाते हो। तुम भी हसने लगते हो। घडीभर पहले आखे आसुओ से भरी थीं, क्या हो गया इतनी जल्दी? वह जो मन के सूक्ष्म परमाणु है दस आदमियो के परमाणु निश्चित ही तुमसे ज्यादा मजबूत है। तुम्हारा मन अल्पमत मे हो गया, बहुमत ने हावी कर दिया तुम्हे, इसलिए उदास आदमियो के पास जाओगे, उदास होने लगोगे।

तुम कभी गये हो अस्पताल किसी मरीज को देखने? जल्दी भागने का मन होता है। बीमार लोग है, अस्वस्थ लोग है, उदास लोग है, जराजीर्ण लोग है—उनके पास तुम भी जराजीर्ण होने लगते हो। घबडाहट होती है, अकुलाहट होती है, भाग जाने का मन होता है।

तुमने कभी खयाल किया कि डाक्टर कठोर हो जाता है। होना ही पडे, नहीं तो वह मर जाये। अगर डाक्टर कठोर न हो तो जीए कैसे? चौबीस घंटे उदास, बीमार, रुग्ण । उसे धीरे-धीरे इतनी कठोरता भीतर बना लेनी पड़ती है कि उसे पता ही नही चलता, कि कौन उदास है, कौन मर रहा है। ये सब घटनाए साधारण हो जाती है। कोई मरीज मर गया तो वह यह नही कहता कि कोई आदमी मर गया—कौन-सा बिस्तर खाली हो गया। कौन-सा नबर मर गया। आदमी की बात उठानी ठीक नही है, नबर ही मरते है अस्पताल मे। और डाक्टर को नबर पर ही ध्यान रखना जरूरी होता है। उतनी कठोरता जरूरी है, नहीं तो वह मर जायेगा। वह जी न सकेगा। उसकी हसी बिलकुल सूख जायेगी। उसके लिए जीने का कोई उपाय न रह जायेगा।

इसलिए अकसर जब कभी कोई युवक मेरे पास आ जाते है, वे कहते है कि मै अपनी एक डाक्टर साथिन के साथ विवाह कर रहा हू और युवक भी डाक्टर तो मै कहता हू, थोड़े सावधान। एक ही डाक्टर ठीक है। दोनो डाक्टर इतने कठोर होगे कि तुम पिघल न पाओगे, तुम एक-दूसरे से मिल न पाओगे। तो यह विवाह व्यवसायिक तो उपयोगी होगा, आर्थिक रूप से उपयोगी होगा, लेकिन जीवन से इसका कोई सबध न होगा।

ध्यान रखना, तुम्हारा मन प्रतिक्षण दूसरे के मनो से आदोलित हो रहा है। हिंदुओ की भीड़ चली जा रही है मुसलमानो की मस्जिद जलाने, या मुसलमानो की भीड़ चली आ रही है हिंदुओ का मदिर तोड़ने—तब एक भला-अच्छा आदमी भी जो नमाज पढ़ता है, सादा-सीधा है, कभी किसी की हिंसा करने की नहीं सोची, किसी का मकान जलाने की नही सोची—वह भी उस भीड मे चल पडता है।

तुमने कभी भीड मे देखा कि अचानक तुममे गति आ जाती है। भीड़ अगर उत्साह से है, तो तुम उत्साह से भर जाते हो। भीड़ अगर तेजी से चल रही है तो तुम तेजी से दौडने लगते हो। भीड़ अगर मकान मे आग लगा रही है तो तुम उसमे भी रस लेने लगते हो। बाद मे अगर कोई तुमसे पूछेगा, तो तुम कहोगे, 'पता नही कैसे यह हो गया। मैने क्यो साथ दिया।' अगर तुमसे कोई यह पूछे कि क्या अकेले तुम यह कर सकते थे, तो तुम निश्चित कहोगे कि नही कर सकता था। अकेले तो मैने कभी ऐसा नही किया। यह भीड मे हो गया। भीड़ मे तुम्हारा उत्तरदायित्व क्षीण हो जाता है। बहुमत हावी हो जाता है। मन की तरगे चारो तरफ से तुम्हे घेर लेती है, आदोलित कर देती है।

जो आदमी भीड से प्रभावित नहीं होता, वह मन के बाहर हो गया। जो आदमी भीड से प्रभावित होता है, वह मन के भीतर है। इसलिए तो राजनेता रैली निकालते है—अपना-अपना प्रभाव दिखाने के लिए, कि कितने लाख आदमी उनकी रैली मे सम्मिलित थे। उससे लोग प्रभावित होते है, निश्चित ही प्रभावित होते है। जिसकी रैली मे लाख थे और जिसकी रैली मे पाच लाख थे, वह जो जनता खडी देख रही है चारो तरफ वह पाच लाखवाले से प्रभावित होती है। इसमे कोई गणित नही बिठाना पडता। यह अनजान है। वह पाच लाख की भीड़ प्रभावित कर देती है।

अगर किसी राजनेता के चुनाव मे हारने की अफवाह भी फैल जाये तो वह हार जाता है, जीतने की अफवाह फैल जाये तो वह जीत जाता है।

अग्रेजी मे कहावत है नथिंग सक्सीड्स लाइक सक्सेस। सफलता से ज्यादा कोई चीज सफल नही होती। बड़ी ठीक है। क्योकि जब तुम सफल हो रहे होते हो तो तुम चारो तरफ परमाणु फेकते हो अपनी सफलता के। जब तुम असफल हो रहे होते हो तो तुम चारो तरफ परमाणु फेकते हो अपनी असफलता के। असफलता मे कौन साथ देता है। जीते के साथ सभी हो लेते है,

हारे के साथ कौन होता है। ऊगते सूरज के सभी साथी है, डूबते सूरज का कौन साथी है।

लेकिन भीड़ का राज क्या है? तुम भीड़ से इतने आदोलित क्यो होते हो? सारे दुनिया के धर्म अपनी भीड़ को बढाने के लिए इतने पागल क्यो रहते है? क्योकि भीड है तो और भीड़ को आकर्षित करने का उपाय है। जितनी बड़ी भीड़ है उतनी भीड को आकर्षित करने का उपाय है। हिदू अगर बीस करोड़ है, मुसलमान अगर साठ करोड़ है या ईसाई अगर एक अरब है, तो स्वभावत यह भीड़ सारे जगत के मन को आदोलित करती है। यह भीड़ परमाणु फेकती है।

ध्यान रखना, भीड़ से सावधान रहना। क्योकि जब तुम भीड से प्रभावित होते हो, तब तुम अपने ही मन से प्रभावित हो रहे हो—और तुम्हारा मन तुम्हे तरगित कर रहा है।

शरीर, वचन, मन—तीनो से पार साक्षी-भाव मे ठहरना है। और जो साक्षी-भाव मे ठहरता है, वही परमात्मा का अनुभव कर पाता है।

इलाही! वह नजर दे आशिया तक हो, कफस जिसको
न ऐसी कम निगाही, जो कफस को आशिया समझे।

हे प्रभु! ऐसी आख दे कि घर भी जेलखाना मालूम पड़े। ऐसी ओछी आख मत दे देना कि जेलखाना भी घर मालूम पड़ने लगे।

अभी तो जेलखाना घर मालूम पडता है। अभी तो तुम अपने शरीर को अपना जीवन समझे हो। यह तुम्हारा कारागृह है। अभी तो तुम अपनी भाषा की कुशलता को अपनी सामर्थ्य समझे हो। यह तुम्हारी गुलामी है। अभी तो तुमने मन को अपना बल समझा है।

मेरे पास लोग आते है, व कहते है, मन की शक्ति कैसे बढ, यह बताए। मन की शक्ति बढानी है कि मन से मुक्त होना है? वे कहते है, सकल्प थोडा कम है। विल पावर चाहिए।

विल पावर, सकल्प की शक्ति तो मन को ही बढायेगी।

मन से दूर होकर जो मिलता है वह आत्मबल है। मन से जो मिलता है वह कोई बल नही है, वह तो तुम्हारी निर्बलता है। वह तो धोखा है।

अर्श से आगे निकल जाए हवाए-शौक मे
कम-से-कम यह रफअते-परवाज होनी चाहिए।

आकाश से भी आगे जाना है।

अर्श से आगे निकल जाए हवाए-शौक मे
कम-से-कम यह रफअते-परवाज होनी चाहिए।

—उडान की ऐसी चाह, उडान की कम से कम ऐसी अभीप्सा, कि आकाश से भी पार हो जाये।

यह शरीर तो मिट्टी से बना है। इससे तो पार होना ही है। ये वचन, ये शब्द ये भी मिट्टी के ही सूक्ष्म अणु-परमाणु है, इनसे भी मुक्त होना है। यह मन, यह तो मन इस शरीर और वाणी का ही कोषागार है, सचित परमाणु है—इससे भी मुक्त होना है। वही अतर्आकाश शुरू होता है। और आकाश से भी आगे निकल जाये, वही परमात्मा है—जहा यह भी पता नही रहता कि मै आत्मा हू, जहा सिर्फ आत्मा ही रह जाती है, मै बिलकुल गिर जाता है ।

अब इसे थोड़ा समझना। हम कहते है, मेरा शरीर, मेरा मन, मेरे विचार—'मेरा'। पहले 'मेरा' को गिराना है। फिर हम कहेगे, 'मै', आत्मा। फिर 'मै' को गिराना है। जब 'मेरा' गिरता है तो आत्मा प्रगट होती है। जब 'मै' भी गिरता है तो परमात्मा प्रगट होता है।

'आत्मा, मन, वचन और कायारूप, त्रिदड से रहित, निर्द्वद्व—अकेला, निर्मम—ममत्वरहित, निष्कल—शरीर रहित, निरालब—परद्रव्यआलबन म रहित, वीतराग, निर्दोष, मोह-रहित तथा निर्भय है।'

वर्णन, यह कोई परिभाषा नही है। यह कोई व्याख्या नही है। ऐसा महावीर का अनुभव है। वे इसे कह देते है बड़ सूक्ष्म मे।

'मन, वचन और कायारूप, त्रिदड से रहित ।'

जहा न मन रह गया, न वचन रह गया, न काया रह गई। जहा शरीर बहुत दुर छूट गया, विचार की तरगे बहुत दूर छूट गई। जहा मन भी बहुत पीछे छूट गया। जहा इन सबसे तुम पार चले आये। जहा इन सबसे भीतर चले गये। जहा तुमने अतरगृह मे प्रवेश किया। मदिर की दीवाले दूर छूट गई। जिसमे तुम आवास बनाये हुए हो, वह सब दूर छूट गया। अब तुम वहा आ गये, जहा अतर्तम है, जहा अतर्तम का शून्य-गृह है, शून्याकाश है। तो निर्द्वद्व। उस घडी मे दो नही बचते, एक बचता है।

उपनिषदो मे कथा है एक जिज्ञासु ने याज्ञवल्क्य से पूछा, 'कितने देवता है?' याज्ञवल्क्य ने कहा, 'शास्त्र कहते है तैतीस हजार।' उस जिज्ञासु ने कहा, 'यह थोड़ा बहुत ज्यादा हो

गया। किस-किसकी पूजा करेगे? थोड़ी हमारी सामर्थ्य पर ध्यान दो। तो मै फिर से पूछता हू, कितने देवता हैं?' तो याज्ञवल्क्य ने कहा कि ऐसा है कि मुख्य तो तीन सौ तीस ही। उस आदमी ने कहा, 'मै बहुत समर्थ नहीं हू, तीन सौ तीस भी मुझे मुश्किल पड़ जायेगे। तुम जरा और सक्षिप्त करो।' याज्ञवल्क्य ने कहा, 'तो फिर तीन।' उस आदमी ने कहा, 'तीन से भी बड़ी झझट होगी। तीन तरफ खीचेगे। किसकी सुनूगा?' तो याज्ञवल्क्य ने कहा, 'अब तू बहुत गड़बड़ कर रहा है। डेढ़।' उस आदमी ने कहा कि अब चलो, अब तो आ ही गये करीब-करीब। अब सच्ची बात ही कह दो। अब सत्य ही कह दो। तो याज्ञवल्क्य ने कहा, 'सत्य तो एक है।'

सत्य तो एक, एक ही है सत्य। उसे एक कहना भी उचित नही है, क्योकि एक कहते से दो का खयाल पैदा होता है। एक अकेला तो हो ही नही सकता दो के बिना। इसलिए भारत मे सभी परम ज्ञानियो ने उसे एक भी नही कहा, क्योकि एक कहने से दो का तत्क्षण खयाल होता है। एक होगा कैसे अगर दो नही है? एक गणित की सख्या निर्मित ही तब होती है जब दो और तीन, और सारी सख्याए हो।

इसलिए वेदात कहता है अद्वैत, दो नहीं। एक नही कहता। महावीर कहते है निर्द्वद्व, दो नहीं, द्वद्व नही। और महावीर का निर्द्वद्व अद्वैत से भी मधुर है।

क्योकि अद्वैत का मतलब है दो नही है। महावीर का मतलब है द्वद्व नही है। दो मे तो ऐसा लगता है, चीजे ठहरी है, प्रक्रिया का बोध नही होता, थिरता का बोध होता है। निर्द्वद्व मे द्वद्व नही है, सघर्षण नही है, गति का बोध है।

और महावीर का गति पर बड़ा जोर है। महावीर तो कहते है जो गत्यात्मक है, वही सत्य है, जो निरतर गतिमान है। महावीर कहते है जहा गति नही है वहीं मृत्यु है। और जहा सतत गति है, ऊर्जा का सतत आरोहण है, वही जीवन है। इसलिए वे शब्द उपयोग करते है निर्द्वद्व, अकेला। अकेले से तुम खयाल रखना तुमने जो अकेलापन जाना है, वह महावीर का अर्थ नहीं हो सकता। क्योकि महावीर ने जो अकेलापन जाना है उसका तो तुम्हे कोई पता ही नहीं है। तुमने भी बहुत बार अकेलापन जाना है। पत्नी मायके चली गई और तुम अकेले हो गये, कि बच्चे सब हास्टल चले गये और तुम अकेले हो गये।

तुम्हारा अकेलापन दूसरे की गैर-मौजूदगी है। इसलिए तुम्हारा अकेलापन वस्तुत अकेलापन नही है। वहा तुम नहीं हो अकेलेपन मे, दूसरा गैर-मौजूद है, इसकी प्रतीति है। पत्नी मायके चली गई, इसलिए अकेलापन लगता है। यह अकेलापन नकारात्मक है। यह पत्नी से जुड़ा है। इसमे पत्नी के वापिस लौट आने की आकाक्षा छिपी है। यह पीडा है। इसलिए अकेलेपन शब्द मे ही उदासी हो गई है। क्योकि महावीर जैसा अकेलापन तो कभी-कभार किसी को मिलता है। तुम्हारा अकेलापन बहुत है, बहुमत को है।

कोई आदमी कहता है, बड़ा अकेलापन लगता है, तो तुम ऐसा नही मानते कि बडा प्रसन्न होकर कह रहा है, तो तुम समझते हो कि दुखी है, परेशान है, उदास है।

महावीर का अकेलापन दूसरे की अनुपस्थिति से नहीं बनता—अपनी उपस्थिति से बनता है।

इस फर्क को खयाल मे रखना।

अग्रेजी मे दो शब्द है। अलोननेस, लोनलीनेस। वे शब्द बडे अच्छे है। महावीर का जो अकेलापन है, वह अलोननेस। तुम्हारा जो अकेलापन है वह लोनलीनेस है। महावीर का जो अकेलापन है, वह एकात, अकेलापन नही। तुम्हारा जो अकेलापन है, वह एकाकीपन है, अकेलापन, उदासी, कुछ खोया-खोया, कुछ कम-कम, कुछ अभाव, कुछ होना चाहिए था, नहीं है। कमरे मे जाते है, पत्नी दिखाई नही पड़ती, बच्चे दिखाई नही पड़ते। तुम्हारी नजरे किसी दूसरे को खोज रही है और दूसरा मिलता नही। तुम्हारा अकेलापन यानी तन्हाई।

महावीर का अकेलापन जहा तक नजर जाती है, खुद ही को पाते है। सारा कमरा अपने से भरा है, सारा आकाश अपने से भरा है। अपने को ही छूते है, अपने को ही गुनगुनाते है। अपना होना इतना गहन हुआ है कि अब दूसरे की कोई जरूरत नहीं है। दूसरे की याद भी नही आती। दूसरा है भी, इसका पता नहीं चलता। निर्द्वद्व।

महावीर का अकेलापन बड़ा विधायक है, पाजिटिव है।

'निर्मम—ममत्व-रहित ।'

तुम्हारा 'निर्मम' अलग है। तुम्हारे निर्मम का अर्थ होता है कठोर। तुम उस आदमी को निर्मम कहते हो जो बडा कठोर है, दुष्ट है। महावीर—और दुष्ट। नही, हम अलग-अलग

भाषाओ के लोक मे जी रहे है। महावीर के लिए निर्मम वह है जिसे ममत्व नही, जिसके पास से 'मेरा' समाप्त हो गया, जिसके लिए अब कोई चीज 'मेरी' नही, बस। तुम्हे तो दोनो बाते एक लगती है, जैसे—

एक घर मे आग लगी। मालिक छाती पीटकर रोने लगा। किसी ने कहा, 'घबडाओ मत, चिल्लाओ मत, परेशान मत होओ। मैने तुम्हारे बेटे को कल ही तो किसी से बात करते देखा था। मकान बेचने का सब तय हो गया है। पैसे भी दे दिये गये है। यह तो मकान बिक चुका, तुम्हारा नही है।'

उस आदमी के आसू सूख गये। वह स्वस्थ हो गया। उसने कहा, 'अरे। मुझे इसका पता ही नही था।'

मकान जल रहा है। मकान वही का वही है, लेकिन 'मेरा' नही है तो अब क्या फिक्र। तभी बेटा आया घबडाया हुआ। उसने कहा कि ऐसे खडे हो, क्या कर रहे हो? यह मकान जला जा रहा है। बात हुई थी, लेकिन पैसे लिये-दिये नही गये थे। मकान अपना ही जल रहा है।

फिर बाप रोने लगा, फिर छाती पीटने लगा। मकान वही का वही है, 'मेरे' से जुड़ जाता है तो दुख ले आता है, 'मेरे' से छूट जाता है तो बात खत्म हो गई।

जिस-जिसको तुमने 'मेरा' माना है, वही-वही से दुख आता है। जिस-जिस से तुम्हारा कोई सबध नही है, वहा से कोई दुख नही आता। इसलिए जितना तुम्हारा 'मेरे' का जाल होगा, उतना ही तुम्हारा दुख होगा। जितना तुम्हारा मेरे का जाल टूट जायेगा, उतना ही तुम्हारा दुख समाप्त हो जायेगा।

जब महावीर कहते है 'निर्मम' तो वे कहते है, जिसका 'मेरा' भाव गिर गया। इसका यह अर्थ नही कि वह कठोर हो गया। सच तो यह है कि ऐसा आदमी ही करुणावान होता है। 'मेरे' के कारण तुम कठोर हो। क्योकि 'मेरे' के कारण तुम्हारी करुणा मुक्त नही हो पाती। अगर तुम्हारा बेटा गिरता है तो उठा लेते हो, दूसरे का बेटा गिरता है तो आख बचाकर निकल जाते हो।

'मेरे' के कारण तुम कठोर हो। तुम्हारा बेटा भूखा मरता है तो तुम परेशान होते हो, दूसरे का बेटा भूखा मरता है, तुम्हे क्या लेना-देना। तुम 'मेरे' के कारण कठोर हो।

महावीर का 'मेरा' विसर्जित हो जाता है करुणा मुक्त हो जाती है, अब मेरे की ही धाराओ मे नही बहती, अब तो बाढ़ की तरह सब तरफ बहने लगती है, अब कोई कूल-किनारा नही रह जाता। तो महावीर की निर्ममता मे करुणा है और हमारे ममत्व मे भी कठोरता है।

'शरीर-रहित, निरालब ।'

कोई आलबन नही है आत्मा का। कोई आधार नहीं है आत्मा का। आत्मा परम आधार है। उसके आगे फिर कोई आधार नही है। होना अपने कारण है, स्वयभू है।

तो जैसा उपनिषद ब्रह्म के लिए कहते है—परम आधार, निरालब—वैसा ही महावीर आत्मा के लिए कहते है। जिसको उपनिषदो ने ब्रह्म कहा है, उसी को महावीर ने आत्मा कहा है। ब्रह्म या आत्मा कहने से फर्क नही होता।

एक हमे मानना पडेगा जो निरालब है, जिसका कोई आधार नही, जो सबका आधार है, लेकिन जिसका कोई आधार नही। अन्यथा अस्तित्व बेबूझ हो जायेगा।

वैज्ञानिक कहता है पानी बना है हाइड्रोजन-आक्सीजन से, आक्सीजन बनी है इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पोजिट्रान से, इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पोजिट्रान बने है विद्युत से, विद्युत-ऊर्जा मे। विद्युत-ऊर्जा किससे बनी है? वे कहते है, बस विद्युत-ऊर्जा किसी से नही बनी है—तो विद्युत-ऊर्जा उनके लिए निरालब हो गई। कही तो जाकर आधार खोज लेना होगा, जिसके पार कुछ भी नही है।

महावीर उस आधार को आत्मा मे खोजते है। निश्चित ही विद्युत की बजाय आत्मा मे खोजना ज्यादा गहरा है। क्योकि विद्युत की खोज भी आत्मा ने की है। जब वैज्ञानिक कहता है, इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और पोजिट्रान, और ये सब विद्युत से बने है, तो उसकी चेतना इस गहराई तक पहुच जाती है। तो जिस गहराई तक हम पहुचते है, उस गहराई से ज्यादा गहराई हमारी होनी ही चाहिए, अन्यथा हम उस गहराई तक नही पहुच सकते।

वैज्ञानिक अपने को छोड़ देता है, बाहर रख लेता है। लेकिन कुछ भी हम खोज लेगे, खोजनेवाले से बड़ा वह नही होगा जो हम खोजेगे। इसे थोड़ा खयाल मे रखना। इसलिए महावीर परमात्मा से भी ज्यादा मूल्य आत्मा शब्द को देते है। वे कहते है, आत्मा ही तो खोजेगी न परमात्मा को। तो जो खोजनेवाला है वह जिसे खोज लेगा उससे बड़ा है। मै जिसे पा लू, उससे मै बड़ा हो गया। तुम जिसे पा लो, तुम उससे बड़े हो गये। अगर तुम

गौरीशकर पर खड़े हो गये तो तुम गौरीशकर से बड़े हो गये।

तो महावीर का विश्लेषण बड़ा महत्वपूर्ण है। महावीर कहते है, आत्मा से बड़ा कुछ भी नही है, क्योकि सभी कुछ अतत आत्मा ही पायेगी—मोक्ष, निर्वाण, ब्रह्म। तो जो पानेवाला है वही मालिक है, वही निरालब, वही परम आधार है।

'परद्रव्य-आलबन से रहित, वीतराग, निर्दोष, मोह-रहित तथा निर्भय है।'

और निर्भय समझनेवाला तत्व है। हम भयभीत है। हम कप रहे है, चौबीस घटे भयभीत है। यह भय क्या है? बहाने कुछ भी हो। और हम अपने को किसी भी तरह समझा लेते हो, कुछ तरकीबे खोज लेते हो—कभी भय है कि प्रियजन न खो जाये, कभी भय है बीमार न हो जाये, कभी भय है वृद्ध न हो जाये, बूढे न हो जाये, कभी भय है, धन न खो जाये, कभी भय है, पद न खो जाये, प्रतिष्ठा न खो जाये, नाम-यश न खो जाये, कुल-परपरा न खो जाये—हजार भय है, लेकिन सबके गहरे मे अगर खोजेगे तो मृत्यु का भय है कही मै न खो जाऊ।

धन को भी हम इसीलिए पकडते है कि धन के सहारे स्वय के होने मे सहायता मिलती है, अन्यथा धन के लिए कौन धन को पकडता है? कौन इतना पागल है? लेकिन धन हो तो थोड़ा बल होता है—बीमारी होगी, बुढ़ापा होगा तो धन रक्षा करेगा। कोई शत्रु होगा तो धन रक्षा करेगा। हम पद-प्रतिष्ठा को पकडते है, क्योकि उससे भी आत्म-रक्षा होती है। यश को पकडते है, कुल को पकड़ते है, समाज के अग बनते है, धर्म के अग बनते है, राजनीति के अग बनते है—उस सबमे बहुत गहरे मे आत्मरक्षा की भावना है। सब तरफ से मौत हमे पीडित किये है मरना होगा।

रोज कोई मरता है हमारे पैर और हिल जाते है। रोज कोई मरता है जड़े और उखड़ जाती है। रोज कोई धक्के दे जाता है। ये तूफान रोज आते ही है मौत के। आज कोई गया, कल कोई गया—परसो हमे भी जाना होगा, यह घबड़ाहट है।

तो आदमी इस अवस्था मे कभी अभय को उपलब्ध हो ही नही सकता। जिनको तुम बहादुर कहते हो, वे भी अभय को उपलब्ध नहीं होते। कायर नहीं है वे। इससे तुम यह मत समझना कि भयभीत नही है। कायर और बहादुर दोनो के भीतर भय है। कायर भय की मानकर भाग खड़ा होता है, बहादुर नही मानता, खड़ा रहता है—लेकिन भय दोनो के भीतर है। बहादुर भय के बावजूद भी चला जाता है युद्ध मे, कायर भय अनुभव होते ही भाग खड़ा होता है। एक आगे जाता है, एक पीछे जाता है, लेकिन भय दोनो मे है। भय से कोई बाहर नही है। भय से तो—महावीर कहते है—वही बाहर होता है, जो आत्मा को उपलब्ध हुआ, क्योकि आत्मा अमरत्व है। वहा फिर कोई मृत्यु नही। वहा पहुचते ही पता चलता है कि न तो यह मर सकती है चेतना, न कभी मरी है, न जन्मी है—अजन्मी, अनादि, अमृत। तब सारा भय शून्य हो जाता है। तब सारे भय गिर जाते है।

आत्मा को जाने बिना भय के बाहर जाने का कोई उपाय नही है। और भय के बाहर गये बिना कैसे दुख के बाहर जाओगे? कैसे भय के बाहर गये बिना चिता के बाहर जाओगे, सताप के बाहर जाओगे? कपते ही रहोगे।

आदमी का होना एक गहन कपन है। आत्मा को जानते ही कपन ठहर जाता है। स्थिति-प्रज्ञता पैदा होती है। ज्योति अकप हो जाती है, निर्धूम जलती है, जैसे ऐसे किसी घर मे हो जहा हवा के झोके न आते हो—अकप जलती है। तब पहली दफा जीवन मे वसत आता है। उसके पहले जो वसत जाने वे तो पतझड के ही आगमन के आने के उपाय थे। उसके पहले तो जवानी जो जानी वह बुढापे का ही चरण था। उसके पहले तो जो जन्म मिला, वह मौत की ही शुरुआत थी। आत्मा मे आकर, स्वय मे आकर, पहली दफे वसत आता है—ऐसा वसत, जिसके पीछे कोई पतझार नही।

नही यह नग्मए-शोरे-सलासिल
बहारे-नौ के कदमो की सदा है।
नही यह नग्मए-शोरे-सलासिल
बहारे-नौ के कदमो की सदा है।

अब बेड़ियो की झकार नही मालूम होती है वसत मे। यह तो वसत-आगमन की पगध्वनि है, बेड़ियो की झकार नही। इसके पहले तो वसत भी आया तो बाध गया था। इसके पहले तो प्रेम भी आया तो बधन बन गया था। इसके पहले तो जो भी आया था, कारागृह ही सिद्ध हुआ था। अब पहली दफा वसत आता है। ऐसे फूल खिलते है जो फिर कभी मुर्झाते नही। ऐसे फूल खिलते है जो मुर्झाने को नही खिलते।

'वह आत्मा निर्ग्रथ है, निराग है, निशल्य है, सर्वदोषो से

विमुक्त है, निष्काम है और निक्रोध, निर्मान और निर्मद है।'

'निराग, निर्ग्रंथ, निशल्य ।'

महावीर के अपने पारिभाषिक शब्द है। निर्ग्रंथ का अर्थ होता है जहा अब कोई ग्रथि न रही, कोई एढा-टेढ़ापन न रहा, कोई गाठ न रही, जिसको मनोवैज्ञानिक काम्प्लेक्स कहते है—ग्रथि। वैसी कोई ग्रथि न रही, आदमी सरल हुआ, चेतना पर कोई बाधाए, अवरोध न रहे, झरना बहने लगा, सब चट्टाने राह से हट गई। अगर चट्टाने पूरी हट जाये तो झरने का शोर भी बद हो जाता है। झरने के करण थोडे ही शोर होता है, शोर तो चट्टानो के कारण होता है, बीच मे पडे पत्थरो के कारण होता है। सब चट्टाने हट जाये तो झरना एकदम शात हो जाता है।

जीवन-ऊर्जा जब शात बहने लगती है, कोई ग्रथि नहीं होती. । अभी तो हमारे पास हजार-हजार ग्रथिया है। अभी तो हम सीधे बह ही नहीं पाते। अभी तो हमारे सारे कदम ऐसे पड़ते है जैसे शराबी चलता है—लड़खड़ाते, हर घड़ी गिरने-गिरने को। एक पाव इधर पड़ता है, दूसरा कहीं और पड़ता है। कही रखना चाहते है, कही पड जाता है। अभी तो हम कहते कुछ हैं, मतलब कुछ होता है, करना कुछ चाहते थे, कर कुछ जाते हैं। अभी जीवन एक सरल घटना नही है। और अभी हम इस सरलता को पा भी न सकेगे, क्योकि हम तो अपनी जटिलता को ही सरलता समझे बैठे है। हम तो अपनी जटिलता के लिए बड़े तर्क खोजते है।

अगर तुम्हे क्रोध आ जाता है तो तुम सीधा-सीधा थोड़े ही कहते हो कि मै क्रोधी आदमी हू। तुम कहते हो, क्रोध की जरूरत थी, अगर क्रोध न करेगे तो यह बेटा सुधरेगा कैसे? अब तुम ग्रथि को तो स्वीकार कर ही नही रहे हो कि तुम क्रोधी हो। तुम यह कह रहे हो कि यह तो बेटे को सुधारने के लिए करना पड़ रहा है। तुम बहाने मे टाले दे रहे हो, तो यह ग्रथि तो मजबूत होती चली जायेगी। यह ग्रथि तो घनी होती चली जायेगी।

दूसरा करता है, तो तुम कहते हो, अहकारी, तुम करते हो तो कहते हो, स्वाभिमान है। अगर तुम्हे कोई नई सूझ आती है तो तुम कहते हो, मौलिक चितन, अगर दूसरे को आती है, तुम कहते हो, झक्की है, दिमाग थोडा ढीला है, इस तरह की बाते इसके दिमाग मे उठती है।

तुम करते हो तो तुम कुछ और शब्द देते हो, दूसरा करता है ।

अगर एक ईसाई हिदू हो जाये तो ईसाई कहते है, गद्दार। अगर एक हिदू ईसाई हो जाये, तो वे कहते है, सुमार्ग पर आ गया। वह हिदू की बात है। हिदू अगर ईसाई हो जाये तो वो कहते है, गद्दार। अगर ईसाई हिदू हो जाये तो वे कहते है, सदबुद्धि का जन्म हुआ।

ग्रथियो को हम छिपाते है। तो फिर जिसको हम छिपाते है, वह बढ़ेगा। ग्रथियो को उघाड़ना पड़ेगा।

इसलिए तो महावीर नग्न हुए। वह 'नग्न' बडा पतीकात्मक है। उन्होने कहा, जैसा हू, जो हू, अब कोई वस्त्र न रखूगा, आवरण न रखूगा, अब सब उघाड़े देता हू। अब कोई ग्रथि जैसी भी है, बुरी है, भली है, लोग स्वीकार करे, न स्वीकार करे ।

लोगो ने किस-किस तरह का व्यवहार महावीर से किया, हैरानी होती है।

कल रात मै देख रहा था एक जैन-ग्रथ। लोगो ने पत्थर मारे, लकडियो से पीटा, जगली जानवर छोड़े, कुत्ते, खूखार कुत्ते छोडे, इतने से भी लोगो को न लगा तो लोग उठा उठाकर उनके शरीर के ऊपर फेकते थे, वे नीचे गिरते थे—चट्टानो पर। लोग बहुत नाराज थे। इस नाराजगी मे कारण था। कारण यह था कि हम है जटिल लोग। जब भी कोई सरल आदमी पैदा होता है, उसे हम बर्दाश्त नही कर पाते। वह बड़े गहरे मे हमे अपमानजनक मालूम पडता है। उसकी मौजूदगी हमे चुभती है, शूल की तरह चुभती है। बेईमान चाहते है, बाकी भी लोग बेईमान हो। अगर ईमानदार आदमी बेईमानो के बीच मे हो तो बेईमान उसे बर्दाश्त न करेगे। उनके लिए खतरा है वह ईमानदार आदमी, क्योकि उसकी ईमानदारी के कारण उनकी बेईमानी साफ हुई जाती है, उघड़ी जाती है। चोर चोर को पसद करते है। झूठ बोलनेवाले झूठ बोलनेवाले को पसद करते है। जैसे लोग होते है, वैसो को पसद करते है। महावीर जैसा निर्ग्रंथ आदमी, जिसकी कोई ग्रथि नहीं, कोई उलझाव नहीं, जैसा है सीधा-सरल नग्न खड़ा हो गया—लोगो को बड़ी कठिनाई हो गई। लोग इसे बर्दाश्त न कर सके। लोग उनको एक गाव से दूसरे गाव मे खदेड़ने लगे। लेकिन यह आदमी भी खूब था। इसने सब स्वीकार कर लिया। इसने कहा कि यह भी हो रहा है तो होने दो। इसने कुछ बदलने की कोशिश न की। जिस गाव से इसे भगाया

गया, अगर लोग खदेड़कर बाहर कर गये तो ये बाहर हो गये। लेकिन ऐसा भी नहीं कि दुबारा उस गाव मे न आए हो। फिर राह मे पड़ गया गाव तो फिर आ गये। जो सहज होने लगा वह होने दिया। सहज-स्फूर्त जीवन महावीर का मूलभूत स्वर है। उसमे जरा भी सजावट नही है, शृगार नही है। उसमे जरा भी अन्यथा दिखाई पड़ने का कोई आग्रह नहीं है—जैसे है, जो है।

कहते है, महावीर ने वर्षो तक स्नान नहीं किया, क्योकि उन्होने कहा कि अब शरीर है और यह तो दुर्गंध-भरा है ही, अब इसको धो-धोकर, पोछ-पोछकर भी क्या सार? किसको धोखा देना है? वर्षो तक उन्होने दतौन नही की। क्योकि उन्होने कहा कि मुह से तो बास आती ही है। अब किसको समझाना है कि बास नही आती?

तुमने कभी खयाल किया? तुम जो भी करते हो, दूसरो को दिखाने के लिए करते हो। अगर घर मे बैठे हो तो कैसे ही उल्टे-सीधे कपडे पहने बैठे रहते हो। बाहर जाना है कि हुए तैयार। वैसे ही क्यो नही निकल आते? बाहर जा रहे है। बाहर जाने का मतलब है अब लोगो की तरफ ध्यान रखना है, उनकी आख को क्या ठीक लगेगा, क्या ठीक नही लगेगा—अपनी प्रतिष्ठा का सवाल है। कुछ दिखलाना है। जैसे तुम नही हो, वैसे दिखलाना है। व्यवसाय शुरू हो गया।

स्त्रियो को देखा, घर मे कैसी बैठी रहती है। भैरवी के रूप मे। इसलिए अगर उनके पति उनसे घबडा जाते है तो कुछ आश्चर्य नही। बाहर निकली तो सब अप्सराये हो जाती है। इसलिए अगर दूसरे उन पर आकर्षित हो जाते है तो भी कुछ आश्चर्य नही। पतियो को तो भरोसा ही नही आता कि उनकी पत्नी को भी कोई रास्ते मे धक्का दे गया।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन पहुचा पागलखाने। जाकर दस्तक दी। अधिकारी ने पूछा, कैसे आये आधी रात? उसने कहा, मेरी पत्नी भाग गई है। उसने कहा, यहा आने का क्या कारण? उसने कहा, मै यह पूछने आया हू, कोई पागल तो नही निकल भागा यहा से? क्योकि मेरी पत्नी को कोई और ले भागे इस गाव मे, यह तो सभव नहीं है। कोई पागल तो नही छूटा है आज, यह मै पूछने आया हू।

एक हमारे होने के ढग है, एक हमारे दिखाने के ढग है। एक है दात हमारे खाने के, एक है दिखाने के।

महावीर ने बड़ा अनूठा प्रयोग किया। न दतौन, न स्नान। वर्षो तक पानी का उपयोग ही नही किया। वह तो भक्तो को दया आने लगी होगी। उनके प्रेमियो को दया आने लगी। इसलिए जैनियो मे अभिषेक शुरू हुआ। साल मे एक दिन वे बिठाकर महावीर को, उनके ऊपर पानी डाल देते है। अभी भी डालते हैं, मूर्ति पर डालते है अब वे। अभिषेक। भक्तो को भी घबडाहट होने लगी होगी कि इतना आदमी, इतना सरल हो जाना भी ठीक नही। इतना प्राकृतिक, जैसे पशु जीते है—निर्मल।

लेकिन तुमने खयाल किया? पशु गदे मालूम होते है? एक आदमी ही कुछ अजीब है, इतनी व्यवस्था के बाद भी गदा मालूम होता है। पशु सदा ताजे और स्वच्छ मालूम होते है। कहीं ऐसा तो नही है, ताजे स्वच्छ होने की चेष्टा मे ही हमने अपने को गदा कर लिया है? कही यह अति आग्रह, आरोपण, यह झूठ, अप्राकृतिक होने की चेष्टा, यह कृत्रिम जीवन—कही यही तो हमारी गदगी का कारण नही? क्योकि इस पूरी प्रकृति मे चारो तरफ जरा गौर से देखो, पक्षी है, पशु है—कौन गदा मालूम पडता है? कौन स्नान कर रहा है? कौन दतौन कर रहा है? लेकिन सब साफ-सुथरे मालूम होते है, सारी प्रकृति नहाई हुई मालूम होती है—एक आदमी को छोडकर।

महावीर ने बड़ा अनूठा प्रयोग किया—प्राकृतिक होने का। रूसो ने जो बहुत बाद मे कहा बेक टू नेचर, चलो प्रकृति की ओर वापिस। वह तो रूसो ने सिर्फ कहा है—महावीर ने किया। बड़ी दुर्धर्ष साधना थी। क्योकि सब भाति यह आकाक्षा छोड़ देनी कि दूसरे मेरे सबध मे क्या सोचते है, बडी कठिन है।

अभी जैन मुनि है, वे भी वैसा ही कुछ करने की कोशिश करते है, लेकिन वह सच नही है। क्योकि इस कोशिश मे बुनियादी बात खो गई है। वह भी इस फिक्र मे लगे है कि दूसरे क्या सोचते है। जैन मुनि है, वह देख रहा है कि जैन श्रमण की जो जीवन-धारा है, वह ऐसी होनी चाहिए, अनुशासन, यह व्यवस्था । महावीर ने सारी व्यवस्था तोडकर प्रकृति के हाथो मे छोड़ दी, जैन मुनि ने महावीर ने जो किया उसको अपनी व्यवस्था बना लिया है। इन दोनो मे बडा बुनियादी फर्क है। महावीर ने सारा अनुशासन छोड दिया, सारी सस्कृति, सस्कार, समाज, सभ्यता छोड़ दी, हो रहे प्रकृति के हाथ—जैसे पशु रहते है, ऐसे। जैन मुनि उसी मे से अपनी व्यवस्था निकाल

लिया।

महावीर दतौन नही करते तो जैन मुनि भी दतौन नहीं करता। कम से कम ऐसा पता तो नही चलने देता कि करता है। क्योकि मै जानता हू, वे करते है। मैने जैन साध्वियो के पास टुथपेस्ट भी छिपा हुआ देखा है।

एक जैन साध्वी मुझे मिलने आती थी। उसके मुह से मुझे बड़ी बास आती थी। वह दतौन नही करती रही होगी। तो मैने पूछा कि और साध्विया भी आती है, उनके मुह से बास नही आती। तो वह हसने लगी। उसने कहा, आपसे क्या छिपाना। वे सब टुथपेस्ट छिपाये रहती है। वे सब टुथपेस्ट करती है। दुबारा जब वह खुद भी आई तो उसके मुह से भी मुझे बास नहीं आ रही थी तो मैने पूछा, मामला क्या है? तो उसने कहा कि जब आपने कहा तो मुझे भी लगा कि यह तो बात ठीक नही है, तो मैंने भी करना शुरू कर दिया, मगर किसी से आप कहना मत।

बाहर से तो यही दिखाना पडता है कि नही। बाहर से न भी दिखाओ, अगर तुम भीतर से भी पालन करो तो फर्क समझ मे आया तुम्हे। महावीर ने सब चीजो का पालन छोड दिया। यह उनकी क्राति थी। अब तुम महावीर को देख-देखकर पालन करने के लिए नियम बना रहे हो। यह कोई क्राति न हुई, यह परपरा हुई। और महावीर के सबध मे कहा जाता है कि धीरे-धीरे उनकी देह से पसीने की बदबू आनी बद हो गई। जैन तो इसको और ढग से समझाते है। वह ढग मुझे ठीक नही मालूम पडता। वे तो कहते है, तीर्थकर के पसीने मे बास नही आती। यह बात तो बेतुकी मालूम होती है। पसीना तो पसीना है। इसमे तीर्थकर को बीच मे लाने की कोई जरूरत नही है। वे कहते है, तीर्थकर को पसीना ही नही आता। यह बात भी मेरी समझ मे नही आती। लेकिन पशु है, पक्षी है, प्रकृति की सहज धारा मे जीते है—कौन-सी बास आ रही है? जगली पशु-पक्षियो मे कौन-सी बास आ रही है? नही, मेरी तो दृष्टि यही है कि महावीर इतने सरल हो गये कि फिर पशुवत हो गये। 'पशुवत' को मै उपयोग कर रहा हू—बड़े बहुमूल्य अर्थो मे। इतने नैसर्गिक हो गये। जब दिखावे की आकाक्षा छूट गई तो शरीर मे एक क्राति घटित हुई। क्योकि वह दिखावे की जो आकाक्षा है, वह शरीर को एक स्थिति मे रखती है, जब दिखावे की आकाक्षा छूट जाती है तो शरीर मे एक क्राति घटित होती है। किसी को प्रभावित करने का खयाल ही न रहा, पसीना आता रहा होगा, लेकिन पसीने का गुण-धर्म बदल गया।

इसे तुम ऐसा समझो—चित्त की दशाये बदलती है तो शरीर की दशाये भी बदलती है। जब कोई स्त्री कामातुर होती है तो उसके पसीने मे एक अलग तरह की बास आने लगती है। इसलिए तो जानवर मादा को सूघते है, इसके पहले कि वे सभोग करे, मादा को सूघते है। क्योकि पसीना मादा की खबर देता है, वह राजी है या नही।

आदमी के जीवन मे भी ठीक वही नियम काम करते है, क्योकि देह के नियम तो वही के वही है। जब कोई स्त्री कामातुर होती है, उसके पसीने मे खास बदबू आनी शुरू होती है। और जब कोई व्यक्ति काम से परिपूर्ण मुक्त हो जाता है तब उसके पसीने की वह सारी बदबू जो कामातुरता से आती थी, विलीन हो जाती है। तब उसके पसीने मे एक और ही तरह की बास आती है, एक और ही तरह की गध होती है।

मुह से हम बोलते है। बोलने की जो प्रक्रिया है, उससे मुह मे एक खास तरह की बास आनी शुरू होती है, क्योकि घर्षण पैदा होता है। थूक मे और मुह के यत्र मे सतत घर्षण से एक तरह की बास आनी शुरू होती है।

अगर कोई मौन रह जाये, चुप रह जाये, बोले ही न, तो तुम पाओगे उसके मुह से वह बास आनी बद हो गई। क्योकि वह तो केवल घर्षण की वजह से पैदा हो रही थी।

महावीर महीनो तक भोजन नही करते। जब तक उन्हे ऐसा नही हो जाता कि अब शरीर की बिलकुल अपरिहार्य जरूरत आ गई, तभी भोजन करते है। और बडा अल्प भोजन करते है। उतने भोजन से शरीर चलता है। बस वह पूरा का पूरा भोजन पचा जाते है।

अभी पश्चिम मे चूकि कारो के चलने से, कारो मे जलनेवाले पेट्रोल के धुए के कारण वैज्ञानिक बड़े चितित हो गये है।

तो इस तरह की कारे निर्मित की जा रही है कि पेट्रोल पूरा का पूरा जल जाये, जरा भी बचे न, क्योकि जो बच जाता है, गैर-जला, उसकी वजह से ही गध और वायु-दूषण पैदा होता है। अगर पूरा जल जाये तो फिर कोई गध पैदा नही होती, वायु-दूषण पैदा नहीं होता।

तो महावीर कभी महीने मे एक दफा भोजन करते, कभी दो

दफा भोजन करते। शरीर की जरूरत इतनी होती और भोजन इतना कम होता कि वह पूरा का पूरा पचा जाते।

जैन कहते है, महावीर मल-मूत्र का त्याग नही करते, क्योकि तीर्थकरो को मल-मूत्र नही होता। मै यह नही कहता। मै यह कहता हू कि अगर तुम भी महीने मे एकाध बार भोजन करोगे तो मल-मूत्र की जरूरत न रह जायेगी। शरीर पूरा पचा जायेगा। शरीर के पचाने की जरूरत इतनी होगी कि तुमने जो लिया है उसमे से कुछ भी छोड़ने का उपाय न होगा। महावीर ने बारह वर्षो की साधना मे कहते है, मुश्किल से तीन सौ साठ दिन भोजन किया। तो हर बारह दिन मे एक दिन भोजन पड़ता है। वह भोजन इतना कम था, और वह भी एक बार और वह भी महावीर खडे-खडे करते, बैठते भी न थे। क्योकि महावीर कहते, बैठो तो थोड़ा ज्यादा भोजन आदमी कर लेता है। छोटी-छोटी चीजो से फर्क पडते है।

तुमने कभी खयाल किया? खड़े-खड़े भोजन करके देखो एक दफा। 'बफे' महावीर ने शुरू किया। ज्यादा मेहमान हो, भोजन कम हो, तो बफे। बिठालना मत, बिठालो तो फिर ज्यादा खाते है। खड़े-खड़े शरीर का आसन ऐसा होता है कि पेट तना होता है, बैठने से पेट शिथिल हो जाता है, ज्यादा जगह हो जाती है। अब किसी को कहो दौड़ते-दौड़ते भोजन करो तो और कम हो जायेगा, स्वभावत ।

महावीर खड़े-खडे भोजन करते। पात्र मे भोजन नही करते थे—करपात्री थे—हाथ मे ही भोजन करते थे। अब हाथ मे जरा भोजन करके देखो। दो-चार ग्रास के बाद ही तुम सोचोगे, अब बहुत हो गया। वह प्रक्रिया कोई ऐसी नहीं कि बहुत देर जारी रखने का सुख मालूम पड़े। धूप मे, सड़क पर खड़े हुए, हाथ मे, नग्न, जो थोडा-बहुत मिल गया, वे ले लेते। बैठते भी न। एक बार। वह भी दस-बारह दिन मे एक बार। यह पूरा का पूरा भोजन पच जाता। यह पूरा का पूरा भोजन शरीर मे लीन हो जाता। तो सभव है, मलमूत्र पैदा होने की जरूरत न रह जाये।

ऐसे नैसर्गिक ढग से जीना उन्होने शुरू किया कि मन से कोई बाधा न हो।

हम तो ऐसा उपाय करते है तुमने देखा, जब बहुत मित्रो को बुला लो घर पर, तो ज्यादा खाना हो जाता है। रेडियो चला दो, गीत-सगीत बजा दो, तो ज्यादा खाना हो जाता है। हम तो ऐसे उपाय करते है जिससे ज्यादा हो जाये। महावीर ने ऐसे उपाय किये कि उतना ही हो जितना प्रकृति की जरूरत है। मन से कुछ भी न जोड़ा जाये। तो स्वभावत धीरे-धीरे उनकी सारी ग्रथिया खुलती गई। वह छोटे बच्चे की भाति या पशु की भाति हो गये। उनमे सरलता का आविर्भाव हुआ। निर्ग्रथ होने का यही अर्थ है। वे ऐसे सरल हो गये कि उनमे एक भी तिरछी लकीर न बची।

दो बिदुओ के बीच जो निकटतम दूरी है, उसको कहते है सरल रेखा। और दो बिदुओ के बीच जो इरछी-तिरछी यात्रा करनी पडे, गोल, घुमावदार, वह है ग्रथि।

महावीर सीधी सरल रेखा की भाति है। हम बडे इरछे-तिरछे है। हम कहते कुछ, करते कुछ। हम करते कुछ और अपने को समझाते कुछ। हम दूसरे को ही धोखा देते हो, ऐसा नही है, हम अपने को भी धोखा देते है।

मै मुल्ला नसरुद्दीन के साथ लखनऊ मे ठहरा हुआ था। गर्मी के दिन और भरी दुपहरी मे बिजली चली गई, तो वह बहुत झल्लाया। उसे जो भी चुनी हुई गालिया आती थी, उसने दी। फिर वह भागा, नीचे गया, होटल के नीचे से एक पखा खरीद लाया। पखा उसने किया नही कि टूटा नहीं। दो टुकड़े हो गये। फिर तो जो वह बहुत ही नाराज हुआ। फिर तो वह गालिया विशेष रूप से सुरक्षित रखता है, वे भी उसने दी। फिर वह भागा, नीचे गया। यह सोचकर कि कही कोई झगडा-फसाद न हो, मै भी उसके पीछे गया कि अब यह कुछ । पर नीचे जो देखा, वह । अच्छा हुआ कि गया। पखेवाले ने उससे कहा कि इसमे क्या आश्चर्य की बात है, इसमे क्यो बौखलाये जा रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, एक ही बार किया और पखा टूट गया, और तुम कहते हो आश्चर्य की बात नही। उस पखेवाले ने लखनवी अदाज मे कहा, हुजूर। यह लखनऊ का नफासत, नजाकत का पखा है। आपको करना नही आता। आपने लट्टू की तरह घुमा दिया होगा। हुजूर। लखनऊ मे तो पखे को सामने रख लेते है और सिर को हिलाते है। फिर सिर भला टूट जाये, पखा कभी नहीं टूटता। आप जरा लज्जत सीखिये। लखनऊ मे आये है तो थोड़े लखनऊ का रिवाज भी सीखिये।

हम तरकीबे खोज लेते है। हम तर्क खोज लेते है। जीवन उलटा भी जा रहा हो तो भी हम उसे सीधा मानने के ढग खोज लेते है।

तुम न जागो तो कोई तुम्हे जगा न सकेगा। तुम्हे ही देखना पड़ेगा कि तुमने कहा-कहा अपनी ग्रथियो को मजबूत करने के लिए तर्क खोज रखे है। क्रोध करते हो तो तुम कहते हो, जरूरी है। मोह करते हो तो तुम कहते हो, जरूरी है। राग को तुम प्रेम कहते हो। अच्छा शब्द रख लेते हो, नीचे गदगी छिप जाती है। भय के कारण किसी के साथ हो लेते हो, लेकिन कहते हो, मैत्री है। लोभ के कारण किसी के साथ हाथ मे हाथ डाल लेते हो, लेकिन कहते हो, मैत्री है, मित्रता है। अहकार के कारण त्याग करते हो, लेकिन कहते हो, दान है। ऐसे तो फिर तुम ग्रथियो में उलझते चले जाओगे। फिर तो ग्रथियो के जगल मे खो जाओगे।

महावीर कहते है, सरल हो रहो। जैसे हो वैसा ही अपने को जानो। धीरे-धीरे ग्रथिया छूट जाती है और जीवन मे एक अलग तरह की ऊर्जा का आविर्भाव होता है। एक सहजता। एक सरलता। एक भोलापन। एक बच्चे के जैसा भाव।

'निराग, निशल्य ।'

और निश्चित ही जिस आदमी के जीवन मे कोई ग्रथि नही है, उसके जीवन मे कोई राग नहीं होता। उसके पास न बचाने को कुछ है, न छोडने को कुछ है। और जिस आदमी के जीवन मे निर्ग्रंथि है, उसके जीवन मे शल्य खो जाते है। शल्य यानी काटे। जो चुभते है, वह खो जाते है।

किसी ने तुम्हे गाली दी। तुम कहते हो, इसकी गाली चुभी। गाली के कारण गाली नहीं चुभती—तुम्हारे अहकार के कारण चुभती है। अहकार को जाने दो, फिर कोई गाली देता रहे, कोई फर्क न पडेगा। फिर गाली मे कोई शल्य न रह जायेगा।

'निशल्यता' महावीर का बडा प्यारा शब्द है। वे कहते है, भीतर से तुम काटो को पकडने को तैयार हो, वही असली शल्य है। तुमने मान चाहा, इसलिए अपमान का काटा चुभा। तुम मान ही न चाहते तो अपमान का काटा न चुभता। तुमने सफलता चाही, इसलिए विफलता का विषाद आया। तुम सफलता ही न मागते, विफलता का विषाद कभी न आता। तुमने प्रथम खड़े होना चाहा था, इसलिए तुम रो रहे हो कि तुम प्रथम खड़े न हो पाये। तुमने अतिम ही खड़े होने की आकाक्षा की होती, तो तुम्हे कौन हरा पाता? फिर तुम्हारा जीवन निशल्य हो जाता।

'सर्वदोषो से विमुक्त, निष्काम, निक्रोध, निर्मान और निर्मद ।'

ये आत्मा की तरफ इशारे है। ये इशारे जो आत्मा को उपलब्ध हो जाता है, उसे उपलब्ध होते है। और जो आत्मा को उपलब्ध नहीं हुआ है, उसके लिए ये इशारे मार्ग के सूचक है। ये दो बाते है इसमे। यह आत्मा की दशा का वर्णन है और आत्मा की तरफ पहुचने की व्यवस्था, उपाय भी। तो अगर तुम्हे उसे पाना है—उस आत्मा को, जहां कोई मद नहीं है, जहा कोई बेहोशी नही है, न मान का मद है, न पद का, न धन का, कोई मद नही है—अगर तुम्हे उस दशा को पाना है, तो मदो को छोडना शुरू कर दो। अकड़ो मत। तो अपने को हटाने लगो मद से। उस आत्मा की दशा मे कोई ग्रथि नही है। तो अगर तुम्हे उसे पाना है तो ग्रथियो को धीरे-धीरे छोड़ो, जितना बन सके उतना छोडो, जिस मात्रा मे बन सके उतना छोडो। कभी-कभी सच होना शुरू करो, सरल होना शुरू करो। कभी-कभी तो सचाई को करके भी देखो, जोखिम भी हो तो भी करके देखो। कभी सच भी बोलकर देखो, चाहे कुछ खोता हो तो भी बोलकर देखो। दाव लगाओ।

अगर आत्मा निशल्य है तो तुम अपने काटे जहा-जहा तुम्हे चुभते है उनको पहचानो। दूसरे को दोष मत दो। अपने भीतर घाव हैं, उनको भरो। जब तक तुम दूसरे को दोष देते रहोगे, वे घाव न भरेगे। और तब तक तुम बार-बार काटो से चुभते रहोगे और घाव को सजोते रहोगे।

अब कौन चाहता है कि गाली कोई दे। लेकिन तुम कैसे रोकोगे इस सारे ससार को कि कोई तुम्हे गाली न दे? उपाय एक है कि तुम भीतर से गाली जहा अटकती है, खटकती है, उस जगह को हटा दो। तुम उस घाव को भर लो, फिर सारा ससार गाली देता रहे तो भी तुम इसके बीच से गुजर जाओगे—निशल्य।

यह जो वर्णन है आत्मा का, यही पथ भी है पहुचने का।

दिल मे जौके-वस्लो-यादे-यार तक बाकी नही
आग इस घर को लगी ऐसी कि जो था जल गया।

ऐसी आग लगाओ इस घर को, इस बेहोशी को, कि जो भी है इसमे, जल जाये। ऐसी आग सुलगाओ कि ये सारी ग्रथियां, ये सारे शल्य, ये सारे घाव, यह तादात्म्य—शरीर का, मन का, विचार का, यह अहकार, यह मिट्टी के प्रति इतनी ज्यादा आकाक्षा, जल जाये।

दिल मे जौके-वस्लो-यादे-यार तक बाकी नही।

—कि इनकी याद भी न रह जाये।

आग इस घर को लगी ऐसी कि जो था जल गया।

ऐसी जलाओ। उस जलने के बाद ही तुम्हारा कुदन-रूप, तुम्हारा स्वर्ण शुद्ध होकर बाहर आयेगा।

तलाशे-यार मे क्या ढूढ़िए किसी का साथ
हमारा साया हमे नागबार राह मे है।

और यह जो महावीर की अतर्यात्रा है, इसमे कोई सगी-साथी न मिलेगा। यहा तो अपनी छाया भी भारी पड़ती है। यह अकेले का रास्ता है। यह एकाकी का रास्ता है। यह एकात।

तो धीरे-धीरे हटो भीड से। धीरे-धीरे हटो दूसरे से। धीरे-धीरे दूसरे का खयाल, दूसरे की धारणा छोड़ो। धीरे-धीरे द्वद्वो को हटाओ।

तलाशे-यार मे क्या ढूढिए किसी का साथ।
हमारा साया हमे नागबार राह मे है।

एक ऐसी घडी आती है कि तुम्हारी छाया भी तुम्हारे साथ नही होती, क्योकि छाया भी शरीर की बनती है, मन की बनती है, विचार की बनती है। छाया भी स्थूल की बनती है। आत्मा की कोई छाया नही बनती। अभी तो हालत ऐसी है कि आत्मा खो गई है, छाया ही रही है, फिर ऐसी हालत आती है, आत्मा बचती है, छाया तक खो जाती है।

महावीर को सुनकर, समझकर तुम कुछ कर पाओगे, ऐसा मै नही सोचता। जब तक कि तुम अपने जीवन मे भी महावीर जो कह रहे है, उसके आधार न खोज लोगे, जब तुम्हारे जीवन मे भी तुम्हे ऐसा न दिखाई पड़ने लगेगा कि महावीर ठीक कहते है—तब तक तुमने अगर ऊपर-ऊपर से उनकी बातो का आरोपण भी कर लिया, जैसा कि जैन कर रहे है, तो कुछ लाभ न होगा। उससे तुम और उलझन मे पड़ जाओगे। उससे जटिलता बढ़ेगी, ग्रथिया और बढ़ जायेगी। मेरे देखे कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि सामान्य गृहस्थ कही ज्यादा निर्ग्रथ मालूम होता है बजाय मुनि के। उसकी और ज्यादा ग्रथिया हो गई होती है। वह और तिरछा हो गया। उसने और नियमो के जाल खडे कर लिये। नैसर्गिक तो नहीं हुआ है। उसने और छोटी-छोटी बातो की इतनी व्यवस्था कर ली कि अब वो व्यवस्था ही जुटाने मे उसका समय नष्ट होता है। चौबीस घटे इसी मे व्यतीत होते हैं।

होती नहीं कबूल दुआ तर्के-इश्क की
दिल चाहता न हो तो जबा मे असर कहा।

और ध्यान रखना, अगर तुम्हारी अतरात्मा मे ही चाह न उठी हो तो ऐसा कोई व्रत-नियम ऊपर से मत ले लेना। नही तो व्रत-नियम तुम्हे और झूठा बनायेगा। लोग व्रत और नियम ले लेते है भीड़ के लिए। मदिर मे जाते है, इतने लोग देख रहे है लोग व्रत ले लेते है, कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेते है। यह ब्रह्मचर्य का व्रत उनके जीवन से नही आ रहा है। ये इतने लोग प्रशसा करेगे, ताली बजायेगे और कहेगे कि इस व्यक्ति ने ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर लिया है और हम अभागे, अभी तक ब्रह्मचर्य का व्रत धारण न कर पाये। इस कारण ब्रह्मचर्य का व्रत मत ले लेना, नही तो पछताओगे।

होती नहीं कबूल दुआ तर्के-इश्क की।

—अगर तुम प्रार्थना कर रहे हो कि हे प्रभु। मुझे राग से, मोह से ऊपर उठा लेकिन यह कबूल न होगी, यह प्रार्थना स्वीकार न होगी।

दिल चाहता न हो तो जबा मे असर कहा?

—और अगर तुम्हारा भीतर का दिल ही यह न चाहता हो तो कहने से क्या होगा? और अगर भीतर का दिल चाहता हो तो प्रार्थना की जरूरत ही नही। तुमने चाहा कि हुआ।

लोग ऐसे है कि दोनो ससार सम्हाले चले जाते है। इसी वजह से आदमी जटिल हो जाता है।

शब को मय खूब सी पी, सुबह को तौबा कर ली
रिंद के रिंद रहे, हाथ से जन्नत न गई।

रात शराब पी लेते है, सुबह पश्चाताप कर लेते है।

शब को मय खूब सी पी, सुबह को तौबा कर ली
रिंद के रिंद रहे, हाथ से जन्नत न गयी।

स्वर्ग भी सम्हाल लिया, ससार भी सम्हाल लिया। ऐसी बेईमानी मे मत पड़ना। जिसने दोनो सम्हाले, उसके दोनो गये। जिसने एक को सम्हाला, उसका सब सम्हल जाता है। और वह एक तुम्हारे भीतर छिपा है। वह एक तुम हो। उसे महावीर तुम्हारी अतरात्मा कहते है, तुम्हारा परमात्मा कहते है।

आज इतना ही।





अठारहवां प्रवचन

धर्म आविष्कार है—स्वयं का

प्रश्न-सार

कृष्ण कहते है कि मारो और महावीर कहते है कि हिसा का विचारमात्र हिसा है। दोनो मे श्रेष्ठ कौन है?

बहुत समय से मै आपके पास हू और मै बहुत अज्ञानी और निर्बुद्धि हू—
यह आप भलीभांति जानते है।
आपकी कही अनेक बाते मेरे सिर पर से गुजर जाती है।
परमात्मा की प्यास का मुझे कुछ पता नही।
फिर मै क्यो यहा हू और यह ध्यान-साधना वगैरह क्या कर रही हू?

जीवन व अस्तित्व के परम सत्यो की क्या निरपेक्ष अभिव्यक्ति सभव नही है?

किसी प्यासे को जब मै आपके पास लाती हू तो वह मुझसे दूर हो जाता है।
मुझे एक तड़प-सी होती है।
लेकिन 'तेरी जो मर्जी' कहकर गा पड़ती हू 'राम श्री राम जय जय राम।'

प *हला प्रश्न कृष्ण कहते है कि मारो और महावीर कहते है कि हिसा का विचार-मात्र हिसा है। कृपया बताये कि दोनो मे श्रेष्ठ कौन है?*

श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ के प्रश्न अत्यत अज्ञान से भरे हुए है। उस ऊचाई पर तुलना काम नही आती। और तुलना करने वाला मन न तो महावीर को समझ सकेगा और न कृष्ण को समझ सकेगा। क्योकि तुलना करने वाला मन दुकानदार का मन है, समझदार का नही।

ऐसा ही समझो कि जैसे एक गिलास मे आधा जल भरा हुआ रखा हो और कोई कहे कि आधा गिलास खाली है और कोई कहे कि आधा गिलास भरा है, और तुम मुझसे पूछो कि दोनो मे श्रेष्ठ कौन है, तो तुम बात समझे ही नही। जो आधा खाली है वह आधा भरा भी है। जो आधा भरा है वह आधा खाली भी है। दोनो ने कहने के अलग-अलग ढग चुने है। एक ने विधेय पर जोर दिया, एक ने निषेध पर जोर दिया। एक ने भरे हिस्से को देखा, एक ने खाली हिस्से को देखा। लेकिन दोनो ने ही सत्य की तरफ इशारा किया।

कृष्ण कहते है, कर्तृत्व तेरा नहीं है, परमात्मा का है। इसलिए मै करनेवाला हू, यह भाव ही छोड़ दे। यह भाव ही हिसा है। मै निमित्त-मात्र हू, वह जो करवायेगा, मै करूगा, मै बीच मे न खड़ा होऊगा। मै कोई बाधा न डालूगा।

मैं बास की पोगरी की तरह हो जाऊगा, वह जो गायेगा, जो गुनगुनायेगा, उसकी मर्जी।

अगर ठीक से समझो तो कृष्ण ने यह नही कहा है कि तू मार, कृष्ण ने तो इतना ही कहा है, वह तुझे निमित्त बनाये मारने मे तो मार। कृष्ण की गीता को इस दृष्टि से कभी देखा नही गया। सोचो कि अर्जुन की जगह कोई दूसरा व्यक्ति होता तो अतत यह निष्कर्ष भी ले सकता था कि मै सन्यास लेता हू क्योकि उसकी मर्जी सन्यास की है। अपने को सब भाति छोड देता और फिर कृष्ण से कहता कि क्षमा करे, अपने को सब भाति छोड रहा हू, तो एक ही भाव उठता है कि सन्यास ले लू। तो जब उसकी मर्जी सन्यास की है तो मै कैसे लडू? जब एक ही भाव सब श्वासो मे मेरे गूज रहा है कि छोड दू सब, चला जाऊ वन-प्रात मे, तो जाता हू। तो कृष्ण इनकार न करते कि तूने गलत किया। कृष्ण कहते, जो वह करवाये वही कर।

अर्जुन युद्ध किया, क्योकि अर्जुन का सारा व्यक्तित्व क्षत्रिय का था। अर्जुन जो सन्यास की बात कर रहा था, वह ऊपर-ऊपर थी, बौद्धिक थी, वह वास्तविक न थी। अगर वास्तविक होती तो कृष्ण की गीता से वह सन्यास का ही सार लेता।

कृष्ण की गीता मे ठीक-ठीक निर्देश नही है कि क्या करो, कृष्ण की गीता मे तो इतना ही निर्देश है कि तुम मत करो, उसे करने दो। फिर अगर उसने यही चुना है कि तुमसे हजारो लोगो को कटवा दे, तो उसकी मर्जी। तुम यह मत सोचना कि तुम कर रहे हो। तुम अपने को सब भाति समर्पित करो।

कृष्ण की भाषा समर्पण की भाषा है। तुम इस भाति शून्यवत खड़े हो जाओ कि जहा उसकी हवाए ले जाये वही चले जाओ। तुम तैरो मत—बहो।

जब अर्जुन ने अपने को छोड़ा तो तत्क्षण उसका सन्यास का भाव विदा हो गया। वह युद्ध के लिए तत्पर हो गया। उसने गाडीव फिर उठा लिया। क्योकि वह बासुरी बनी ही उसके लिए थी। वही गीत अर्जुन गा सकता था। अर्जुन योद्धा था, क्षत्रिय था। वह परमात्मा का सैनिक ही हो सकता था, परमात्मा का सन्यासी नहीं हो सकता था। वह उसकी नियति थी।

इसलिए तुम यह प्रश्न किसी जैन ने पूछा है, इसलिए वह कहता है, 'कृष्ण कहते है कि मारो।' कृष्ण कहते नहीं कि मारो। कृष्ण न कहते कि मत मारो। कृष्ण इतना ही कहते है, जो करवाये । तुम निर्णय न लो, उसी को निर्णय दो। बागडोर उसके हाथ मे दे दो। तुम शून्यवत खड़े हो जाओ। और जो अतर्तम से उठे, जो उसकी आवाज आये उसी दिशा मे चल पड़ो। कृष्ण का मार्ग समर्पण का है। अर्जुन युद्ध मे गया, क्योकि सब भाति अपने को शून्य करके उसने यही पाया कि यही आवाज आती है कि 'कर्तव्य को पूरा कर। अब फिर मै क्या कर सकता हू ?'

महावीर कहते है, हिसा का भाव-मात्र हिसा है। कृष्ण भी यही कहते हैं अगर तुम समझने की कोशिश करो। कृष्ण तो यह भी कहते है कि हिसा का भाव तो हिसा है ही, अहिसा तक का भाव कि मैं अहिसा करता हू, हिसा है। मै करता हू, इसमे हिसा है। जोर कृत्य पर नही है, कर्ता पर है। मै हू, यही हिसा है। 'मै' को हटा लो, अहिसा हो जाएगी।

अर्जुन युद्ध मे लड़कर भी अहिसक रहा, हिसक नही है। क्योकि जिसने अपना कर्तव्य ही हटा लिया, जिसने अपना कर्ता-भाव ही हटा लिया, उसको अब तुम कर्म के लिए दोषी न ठहरा सकोगे। दोनो एक ही बात कह रहे है। कृष्ण का जोर है कि कर्ता-भाव गिरा दो, और महावीर का जोर है कि कर्म को रूपातरित कर दो।

अब थोड़ा समझना। अगर तुम हिंसक कर्मो को छोड़ते चले जाओ तो तुम्हारा 'मै' गिरने लगेगा, क्योकि 'मै' बिना हिंसा के खड़ा नही रह सकता। 'मै' के लिए हिसा चाहिए—बडी सूक्ष्म हो, स्थूल हो, लेकिन हिंसा चाहिए।

पड़ोसी ने मकान बनाया, तुम बड़ा मकान बना लो—हिसा हो गई। क्योकि तुमने बड़ा मकान सिर्फ बनाया इसलिए कि अब पड़ोसी को नीचा दिखाना है। यह इसने इतनी हिम्मत कैसे की कि मेरे रहते इतना बड़ा मकान पड़ोस मे खड़ा कर दिया। अब चाहे सारा जीवन दाव पर लग जाये, बड़ा मकान बनाकर दिखाना है। तो तुमने बड़ा मकान बनाया, 'मै' को बड़ा किया—हिसा हो गई।

तुम किसी आदमी के पास से अकड़कर निकल गये—हिंसा हो गई। हिसा तुम्हारी जहा भी 'मै' की धारा गहरी होती है, वही हो जाती है।

तो महावीर ने कहा, कर्मो को छोड़ो, जिनसे हिसा होती है। जिनसे दूसरे को चोट लगती है, वह छोड़ो। जिनसे दूसरो को दुख होता है, वह छोडो। और तब तुम चकित होकर देखोगे कि जिससे दूसरे को चोट लगती है, उसी से तुम्हारा अहकार मजबूत होता है, और कोई उपाय नही है। भोजन ही अहकार का यही है कि दूसरे को चोट लगे। सास्कृतिक, सभ्य ढग से लगे कि असभ्य ढग से लगे, तुम किसी को गाली दो कि किसी का व्यग्य करो, तुम किसी को जिदगी के युद्ध मे पछाड़ दो, गिरा दो, या तुम त्याग के युद्ध मे किसी को हरा दो कि तुम किसी को अपने से छोटा त्यागी करके सिद्ध कर दो—कोई फर्क नही पड़ता। तुम कोई भी माध्यम चुनो, जिस माध्यम से भी दूसरे को दुख हो सकता है, वह माध्यम हिसा है। और हिसा से 'मै' मजबूत होता है।

तो महावीर कहते है, हिसा के सारे कृत्य छोड दो। हिसा का भाव तक छोड दो, कृत्य की तो बात अलग। क्योकि भाव भी काफी है, वह भी भोजन बन जायेगा, वह भी अहकार को मजबूत करेगा। जब तुमने हिसा के सब भाव, कृत्य छोड़ दिये, तुम अचानक पाओगे तुम्हारा 'मै' धूल-धूसरित हो गया, गिर पड़ा, समाप्त हो गया।

यह महावीर की प्रक्रिया है कर्म के विसर्जन से कर्ता का विसर्जन। निश्चित ही यह प्रक्रिया क्रमिक होगी। एक-एक कर्म को ध्यान रखकर, साधना साधनी होगी, एक-एक कर्म का हिसाब रखकर चलना होगा, क्योकि बडे सूक्ष्म है कर्म जरा-सी आख का इशारा और हिसा हो जाती है। तो बड़ी लबी प्रक्रिया है, सकल्प का मार्ग है। इच-इच लड़ना होगा, पहाड़ चढ़ना होगा।

कृष्ण कहते है, ऐसा एक-एक कर्म को छोड़ोगे फुटकर-फुटकर, लबा समय लग जायेगा। और फिर कृष्ण और

अर्जुन के बीच समय था भी नहीं। कृष्ण की जो गीता है, वह एक विशेष परिस्थिति मे कही गई है। महावीर अपने शिष्यो से बोल रहे थे चालीस साल तक। कृष्ण की गीता तो क्षणो मे हो गई। ये कोई साधारण क्षण न थे, बड़े असाधारण क्षण थे। बड़ी सकट की स्थिति थी। यहा अगर एक-एक कर्म को छोड़ने के लिए कृष्ण कहे, समय ही न था। युद्ध द्वार पर खडा था। युद्ध सामने खडा था। शख बज गये थे। युद्ध की घोषणा हो गई थी। योद्धा एक-दूसरे के सामने अड़े थे। अर्जुन ने भी कहा था, मेरे रथ को ले चलो बीच युद्ध मे। और कृष्ण युद्ध के बीच मे रथ को ले आये थे। ठीक उस क्षण मे जब युद्ध सामने था, क्षणभर की देर न थी, शख फूके जा रहे थे, युद्ध शुरू होने के करीब था, जल्दी ही मार-धाड होगी—तभी अर्जुन को दिखाई पड़ा, रोमाचित हो आया, एक पुलक हुई। उसे लगा, यह तो व्यर्थ है। इतना युद्ध, इतनी हिसा—क्या सार है? उसके हाथ ढीले पड गये, गात शिथिल हुए, गाडीव हाथ से छूट गया। वह थका-मादा, डरा हुआ रथ मे बैठ गया। उसने कृष्ण से कहा, मै तो सोचता हू कि सब छोड़कर चला जाऊ।

यह बडे सकट का क्षण था। यहा कोई ऐसी प्रक्रिया जिसमे जन्मो-जन्मो लगते, साधना करनी पड़ती हो, काम की नही हो सकती थी। तो कृष्ण ने जो कहा, वह ऐसा था कि तत्क्षण हो सके, एक छलाग मे हो सके।

सकल्प तो धीरे-धीरे होता है। सकल्प यात्रा है—सीढ़ी दर सीढ़ी, इच-इच, रत्ती-रत्ती। वह फुटकर काम है। समर्पण छलाग है—थोक, इकट्ठा। एक क्षण मे भी हो सकता है।

महावीर जिन शिष्यो को बोल रहे थे, वे युद्ध के स्थल पर न थे। इस विशेष परिस्थिति को खयाल मे रखना। तो कृष्ण यह तो कह नहीं सकते कि तू अपने कर्म बदल। कृष्ण यही कह सकते है कि अब ऐसी घड़ी मे तू अपने कर्ता को ही रख दे। और कर्ता को रखने से भी वही हो जाता है। क्योकि अतत कर्मो को बदलने से कर्ता ही गिरेगा, तो जब कर्ता को ही गिराना है तो सीधा ही गिरा दो। कर्ता को ही छोड़ दो।

समर्पण भक्त का मार्ग है। वह कहता है, परमात्मा के चरणो मे रख दो, कह दो कि मै कुछ हू नही, अब जो हो तेरी मर्जी। बुरा करवायेगा, बुरा करेगे, अच्छा करवायेगा, अच्छा करेगे। अब करना हमारा नही है।

लेकिन दोनो ही हालत मे एक ही घटना घटती है। अतिम परिणाम एक है। इसलिए जो ऐसा पूछता है कि दोनो मे कौन श्रेष्ठ है, वह गलत पूछता है। वह दोनो मे से किसी को भी नहीं समझा। तुम अगर महावीर को समझ लो, कृष्ण समझ मे आने ही चाहिए। अगर तुम कृष्ण को समझ लो और महावीर समझ मे न आये, तो कृष्ण समझ मे नहीं आये। मेरे देखे जिसने एक अनुभवी को समझ लिया, उसने सब अनुभवियो को समझ लिया। फिर उसे भाषा, ढग, अभिव्यक्ति, अभिव्यजना के प्रकार, उलझाव मे न डाल सकेगे। फिर कोई चीज उसकी आखो को धुधला न कर सकेगी। लेकिन मै देखता हू कि जो महावीर के पक्ष मे है, वे कृष्ण के विपक्ष मे है। जो कृष्ण के पक्ष मे है, वे महावीर के विपक्ष मे है। जो महावीर के पक्ष मे है, वह मुहम्मद के पक्ष मे तो हो ही कैसे सकता है? जो मुहम्मद के पक्ष मे है, वह कैसे महावीर की बात को बरदाश्त कर सकता है?

साफ है, इनमे से कोई भी समझा नही। इन्होने शब्द पकड लिये है। ये लड रहे है एक-दूसरे से; क्योकि एक कहता है गिलास आधा खाली है, और दूसरा कहता है गिलास आधा भरा है। ये सिर काटने-कटवाने को तैयार है। स्वभावत भाषा मे दोनो अलग-अलग मालूम पड़ते है। एक कहता है, आधा खाली है, तो जोर मालूम होता है खाली पर, एक कहता है आधा भरा है, तो जोर मालूम होता है भरे पर। अब खाली और भरा। विरोधाभासी हो गये। लेकिन जरा आधे का खयाल रखना। उस आधे मे ही सारा सार है।

मेरे देखे दोनो की बातो मे कोई गहरा अतर नही है—हो नही सकता। तुम्हे न दिखाई पड़े तो अपनी आखो पर थोड़े पानी के छींटे मारना। थोडा जागने की कोशिश करना।

जल्दी निर्णय मत लेना।

जब भी तुम्हे दो सत्पुरुषो मे कोई विरोध दिखाई पडे, तो पहली बात तो तुम यही सोचना कि मेरे देखने मे कही भूल हुई जा रही है। इसे तुम गाठ मे बाधकर रख लो। जब भी तुम्हे दो सत्पुरुषो मे कोई विरोध दिखाई पड़े, तो पहली बात तो तुम यही सोचना कि मुझसे कही भूल हुई जा रही है, कहीं मेरे देखने, समझने मे, कही मेरी चितना मे, परिभाषा मे, व्याख्या मे, चूक हुई जा रही है। क्योकि दो सत्पुरुष विपरीत बाते तो कह नही सकते—विपरीत कहे तो भी विपरीत कह नही सकते। उनकी

विपरीतता मे भी कही कोई तालमेल होगा। उनकी विपरीतता के बीच भी कोई सेतु होगा—होना ही चाहिए। इससे अन्यथा की कोई सुविधा नहीं है।

लेकिन तुम्हारा मन तो जैसे और ससार मे चीजो के बाबत विचार करता है, तुलना करता है—कौन अच्छा, कौन बुरा, कौन सुदर, कौन असुदर, कौन ज्ञानी, कौन अज्ञानी—इन्ही मूल्य-मापदडो को लेकर तुम उस परम लोक मे भी खड़े हो जाते हो। तो वहा भी कौन बडा, कौन छोटा, कौन आगे, कौन पीछे, किसने ज्यादा जाना, किसने कम जाना, किसका जानना ठीक, किसका गैर-ठीक—इस चितना मे पड़ जाते हो। और इस सब चितना के भीतर एक बात तुम कभी सोचते ही नहीं कि मैंने अभी कुछ भी देखा नही है। तो जिन दो देखनेवालो ने कुछ कहा है, मै न देखनेवाला, अधा, कैसे तय करू कि कौन ठीक कहता होगा? अगर तय ही करना हो तो देखकर ही तय करना—आख खोलकर रोशनी से भरकर। तब तुम हसोगे। ऐसा ही समझो कि इस बगीचे मे एक कवि आ जाये और लौटकर तुम उससे पूछो, क्या देखा, और वह एक गीत गुनगुनाये। अब सभी तो गीत न गुनगुना सकेगे। दूसरा भी कोई इस बगीचे मे आये, उसको भी यही फूल मिलेगे, यही वृक्ष होगे, यही हवाए होगी, यही पक्षियो के गीत होगे—लेकिन वह गीत गुनगुनाना नहीं जानता। वह भी जाकर कहेगा बाहर, क्या देखा। लेकिन स्वभावत कवि के वक्तव्य मे और उसके वक्तव्य मे भेद हो जायेगा। कोई तीसरा आदमी, लकडहारा आ जाये, तो वह यहा इस बगीचे मे सिर्फ लकडिया देखेगा—कौन-कौन-सी लकडिया काटी जा सकती है। कौन आयेगा, कैसी भाषा लेकर आयेगा—इस पर निर्भर करेगा। फिर जब वह जाकर अपना वक्तव्य देगा तो तुम यह मत सोच लेना कि ये अलग-अलग वक्तव्य, अलग-अलग बगीचो के सबध मे है। ये वक्तव्य बिलकुल अलग-अलग होगे, फिर भी ये एक ही बगीचे के सबध मे है।

सत्य एक है, जाननेवालो ने उसे बहुत ढग से कहा है। क्योकि जाननेवाला अपने ही ढग से कहेगा। अब महावीर और मीरा के वक्तव्य मे मेल नही हो सकता। मीरा है मदमस्त। मीरा है स्त्री, महावीर है पुरुष। मीरा कहेगी नाचकर, गुनगुनाकर। उसके पग के घूघर बजेगे। उस ढग से कहेगी। महावीर न नाचेगे, न पग मे घूघर होगे, न गीत होगा। महावीर के वक्तव्य बिलकुल वैज्ञानिक होगे, सूत्रबद्ध होगे। जितना सक्षिप्त हो सकता है, उतना सक्षिप्त होगा। और इन दोनो के वक्तव्य की व्यवस्था अलग-अलग होगी, इससे तुम चिंता मे पड़ जाओगे।

लेकिन तुमसे मै एक बात कह देता हू तुम तब तक निर्णय मत लेना जब तक तुम न जान लो।

फिर तुम पूछोगे, 'हम करे क्या? जाने कहा से?'

मै कहता हू, किसी को भी चुन लो। श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ का सवाल नही है। जो तुम्हे मौजू पड़ जाये, जो तुम्हे रास पड जाये, जिससे तुम्हारा मेल बैठ जाये—वही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है। नही तो तुम मुश्किल मे पड़ जाओगे। अगर तुम यह सोचने लगे कि तय ही नही करना है कि कौन श्रेष्ठ है, तो फिर हम चले किसके साथ। जब तुम तय करना चाहते हो कौन श्रेष्ठ है, तो कौन श्रेष्ठ है, यह तय करने के लिए मत करना। तुम तो इतना ही तय करना, मेरे लिए कौन। 'मेरे' का खयाल रखना। वह वक्तव्य तुम्हारी सापेक्षता मे है। नही अगर तुम तय न कर पाये तो तुम मुश्किल मे पडोगे—

काबे से दैर, दैर से काबा
मार डालेगी राह की गर्दिश।

फिर मदिर से मस्जिद, मस्जिद से मदिर—राह की धूल ही मार डालेगी। कुछ तो तय करना ही पड़ेगा—मदिर या मस्जिद। कही तो बैठकर प्रार्थना करनी है। कही तो पूजा करनी है।

तो अगर तुम ऐसे डावाडोल होने लगे तो मुश्किल हो जायेगा। अगर तुमने यह सवाल इसलिए पूछा है कि मेरे लिए कौन ठीक पड़ेगा, तब तो ठीक पूछा है। अगर महावीर और कृष्ण के बीच निर्णय करने को पूछा है, तो बिलकुल गलत पूछा है। हा, तुम्हारे लिए कोई एक ठीक पडेगा।

जिनको जीवन मे सकल्प मे रस है और जिनको समर्पण करना असभव है, उनके लिए महावीर ठीक है। जिनके लिए समर्पण सुगम है और सकल्प कठिन है, उनके लिए कृष्ण ठीक है।

कृष्ण कहते है, मामेक शरण व्रज। सब छोड। सर्व धर्मान् परित्यज्य, छोड़-छाड़ सब धर्म। मेरी शरण आ जा। यही धर्म है, यही परम धर्म है।

महावीर कहते है, शरण भूलकर किसी की मत जाना। शरण गये कि उलझे। शरण गये कि दास बने। शरण से कही मोक्ष

उपलब्ध होगा? यह शरण तो गुलामी है।

अशरण-भावना—महावीर का सूत्र है। अशरण-भावना। कोई शरण नही। कही कोई शरण नही है—अपने ही पैर पर खड़े होना है।

दोनो ठीक है। मगर दोनो एक साथ तुम्हारे लिए ठीक नही हो सकते। दोनो एक साथ मेरे लिए ठीक है। तुम्हे दो मे से कोई एक चुनना पडेगा। अन्यथा—

काबे से दैर, दैर से काबा
मार डालेगी राह की गर्दिश।

धुआ, धूल, राह की आपाधापी मे ही तुम नष्ट हो जाओगे समय ही न बचेगा मदिर मे प्रवेश करने का कि मस्जिद मे प्रवेश करने का। प्रार्थना करनी है तो कही तो चुनना ही होगा। लेकिन चुनाव का ध्यान रखना—'मेरे' कारण चुन रहा हू, उनमे कौन श्रेष्ठ है, इस कारण नही। सापेक्षता अपनी तरफ रखना। यह मै दोनो को साथ नही चुन सकता। इतना बडा मेरे पास हृदय नही। इतनी विराट मेरी दृष्टि नही कि दोनो को साथ-साथ सम्हालू। इतना मेरे घर मे स्थान नही कि दोनो को साथ-साथ मेहमान बना लू। यह मजबूरी मानकर चुनना कि घर छोटा है और एक को ही बुला सकता हू।

जिस दिन तुम जागोगे, उस दिन तो तुम पाओगे दोनो एक ही सत्य के दो भिन्न चेहरे है। लेकिन तब तक तुम्हे निर्णय करना जरूरी है। और यह निर्णय बहुत जागरूक रहकर करना। यह निर्णय जन्म पर मत छोड़ देना कि तुम जैन घर मे पैदा हुए तो महावीर तुम्हे श्रेष्ठ होने ही चाहिए। काश। चीजे इतनी आसान होती। कि तुम हिदू घर मे पैदा हुए, इसलिए कृष्ण तुम्हे श्रेष्ठ होने ही चाहिए। काश। जन्म ने इतना तय कर दिया होता तो मार्ग बड़ा सुगम हो जाता। लेकिन ऐसा कुछ भी तय नहीं होता। ऐसा कुछ भी तय होने का उपाय नही है।

जीसस यहूदी घर मे पैदा हुए लेकिन यहूदियो का मार्ग न जमा। मुहम्मद मूर्ति-पूजक घर मे पैदा हुए थे, लेकिन मूर्ति-पूजा का मार्ग न जमा। महावीर पैदा हुए थे तो राज-घर मे, क्षत्रिय थे, युद्ध का ही शिक्षण मिला था, लेकिन युद्ध की भाषा, राजमहल, क्षत्रिय, राजनीति, न जमी। छोड सब, सन्यासी हो गये।

क्या तुम्हे जमेगा? जन्म से मत पूछना कि कहा हम पैदा हुए। वहा पूछा तो भटकाव का डर है। क्या तुम्हे जमेगा? थोड़ा सम्हलकर अपनी वृत्तियो का परीक्षण-निरीक्षण करना, विश्लेषण करना। अपने रस की धार को पहचानना। ज्यादा देर न लगेगी, थोड़े प्रयोग करने से साफ हो जायेगा कि कौन-सी बात जमती है। कौन-सा भोजन तुम्हे रास आता है, यह तुम्हे जल्दी ही पता चल जायेगा। जो भोजन रास आयेगा, उसे पाकर प्रफुल्लता मालूम होगी। जो भोजन रास न आयेगा, उसे ले लेने के बाद बोझ मालूम होगा, जैसे पेट पर पत्थर डाल दिये, मतली होगी। शरीर उसे बाहर फेक देना चाहेगा। व्यवस्था उसे स्वीकार न करेगी।

ठीक ऐसा ही आत्मिक भोजन है। जब तुम्हे कोई मार्ग रास आ जाता है, तत्क्षण सब तरफ फूल खिलने लगते है। तुम प्रसन्न हो जाते हो। तुम प्रफुल्लित हो जाते हो। वह लक्षण है। अगर तुम सूख जाओ, उदास हो जाओ, दीन हो जाओ, तो बस बात खराब हो गई।

मैने सुना है, एक पादरी, एक ईसाई धर्मगुरु, एक रास्ते से गुजर रहा था। अचानक बादल उठे, जोर की आधी आई, बिजलिया चमकी, वर्षा मूसलाधार होने लगी। तो वह भागकर पास के एक झाड के नीचे खडा हो गया। घनी छाया थी। झाड के नीचे एक बूढ़ा भी बैठा हुआ था। वह बूढ़ा प्रार्थना कर रहा था। उस धर्मगुरु ने खुद भी जिदगीभर हजारो लोगो को प्रार्थना करवाई थी, खुद भी हजारो बार प्रार्थना की थी, लेकिन प्रार्थना मे कभी रस न पाया था। करता था एक औपचारिक क्रिया-काड। ईसाई घर मे पैदा हुआ था, फिर ईसाई पादरी की तरह शिक्षित हो गया, तो दूसरो को भी करवाता था, लेकिन मन मे कभी तरग न उठी थी। इस बूढे को डोलते देखा। इस बूढ़े के टूटे-फूटे शब्द। लेकिन उसकी आखो की मस्ती। उसके चेहरे पर एक आभामडल। उसे पहली दफे लगा अरे। तो प्रार्थना मैने अब तक जानी नहीं। ऐसी शात। ऐसी उपस्थिति। ऐसी पवित्र उपस्थिति उसने कभी अनुभव न की थी।

उस बूढे के चेहरे पर झुर्रिया पड़ गई थीं। बड़ा बूढ़ा था, काफी उम्र हो गई थी, नब्बे के करीब उम्र होगी। लकडहारा था, लकड़ियो का ढेर बगल मे रखा था। लौटता होगा शहर, वर्षा आ गई तो रुक गया। समय प्रार्थना का हो गया, तो प्रार्थना कर रहा था। जब प्रार्थना पूरी हो गई, तो पादरी ने बड़े अहोभाव से पूछा कि तुम्हारा ईश्वर से बड़ा प्रेम है। उस बूढ़े ने कहा, 'हा,

उसका भी मेरे प्रति बड़ा प्रेम है। सच कहू तो वह मुझे काफी चाहता है।'

उस पादरी का जीवन मै पढ़ रहा था। उसने लिखा है, प्रार्थना के सबध मे इससे अदभुत वचन मैने अपने जीवन मे कभी नही सुने थे। उस बूढ़े ने कहा कि अगर सच कहू, तो वह मुझे काफी चाहता है।

प्रार्थना रास आ जाये, तुम्हारे रुझान मे बैठ जाये, तो ऐसा ही नही कि तुम परमात्मा को चाहते हो, तत्क्षण तुम पाओगे वह भी तुम्हे चाहता है। चाहत कोई एक तरफ थोडे ही होती है। तुम उस तरफ से भी पाओगे सवाद आने लगे, सदेश आने लगे। तुम उस तरफ से भी पाओगे हजार-हजार रूपो मे उसका प्रेम तुम पर बरसने लगा।

हा, अगर प्रार्थना जमे न, तो तुम्ही करते रहोगे, दूसरी तरफ से कुछ भी न आयेगा। बोझ लगेगा। करना है, इसलिए कर लोगे। कर्तव्य है, इसलिए पूरा निपटा दोगे। सदा घर मे होती रही इसलिए करना है, तो कर देते है। लेकिन पुलक न होगी। अहोभाव न होगा। आनद न होगा।

और जिस प्रार्थना मे अहोभाव न हो, उस प्रार्थना से कैसे तुम्हारी भूख मिटेगी।

तो ध्यान रखना, अपनी भीतर की दशा को पहचानना ज्यादा जरूरी है। महावीर ठीक है, श्रेष्ठ है, कि कृष्ण—यह बात तो फिजूल। तुम्हे महावीर जमते है? सिर्फ इसलिए नही कि तुम जैन घर मे पैदा हुए हो। अगर सिर्फ इसलिए जमते है तो तुम भटकोगे। अगर सच मे जमते है, ऐसे जमते है कि अगर तुम मुसलमान घर मे भी पैदा होते तो भी तुम जैन मदिर मे ही प्रार्थना करने गये होते, ऐसे जमते है कि तुम चाहे हिदु घर मे पैदा होते, चाहे बचपन से गीता सुनी होती, लेकिन जिस दिन महावीर का शब्द तुम्हारे कान मे पडता, सब गीता-वीता भूल जाते और तुम महावीर के पीछे दौड पड़ते—ऐसे जमते है तो फिर महावीर तुम्हारे लिए मार्ग है। नही ऐसे जमते है, इतने जोर की पुकार नहीं तुम्हारे भीतर पैदा होती उनके नाम को सुनकर, उनके नाम को सुनकर तुम्हारे हृदय मे कोई घटिया नही बजती, सुन लेते हो कि ठीक है, अपना धर्म है—तो फिर कुछ सार नही। फिर तुम कही और खोजो। फिर किसी और मदिर के द्वार पर दस्तक दो।

धर्म हमेशा ही अपना चुना हुआ होता है, तो ही होता है। दुनिया अधार्मिक हो गई, क्योकि धर्म को हम जन्म से तय करते है। धर्म कोई वसीयत थोड़े ही है। और धर्म का कोई खून, हड्डी, मास-मज्जा से थोडे ही सबध है। धर्म कोई वाशिक 'हेरिडिटरी' थोड़े ही है कि तुम जैन घर मे पैदा हुए तो तुम्हारा खून जैन का है। तो डाक्टर से जाकर जाच करवाकर देख लो कि जैन और हिदू और मुसलमान के खून मे डाक्टर कुछ पता न बता सकेगा—कौन हिदू का है, कौन जैन का है, कौन मुसलमान का है। हड्डी कोई हिदू, जैन, मुसलमान नहीं होती। हिदू, जैन, मुसलमान, तो तुम्हे निर्णय करना होगा।

लेकिन लोग कमजोर है, सुस्त है, काहिल है, कायर है। कौन झझट मे पडे। इसलिए कोई भी बहाने से तय कर लेते हैं कि चलो ठीक है, जन्म से ही हो गया तय तो झझट मिटी। खुद तो खोजने से बचे। खुद तो विवेक करने से बचे। कौन विश्लेषण करता, कौन खोजता, कहा जाते, किसको पूछते, मुफ्त तय हो गया—चलो ठीक है।

यह तो ऐसे ही है, जैसे रुपये को तुम फेककर चित्त-पट्ट कर लो और सोचो कि इससे धर्म तय हो जायेगा। चित्त पडे तो महावीर, पट्ट पड जाये तो कृष्ण। जैसा वो बेहूदा और अप्रासागिक है, ऐसे ही जन्म भी बेहूदा और अप्रासागिक है। कहा तुम पैदा हुए हो, इससे तुम्हारी जीवन-चितना और धारा का कोई सबध नही है। तुम्हे अपना धर्म खोजना पड़े।

खोज से ही मिलता है धर्म। धर्म आविष्कार है। और जब कोई खुद खोजता है अपने धर्म को, तो उस खोज के कारण ही धर्म मे एक गैनक होती है। जो व्यक्ति पहली दफा महावीर को खोजते हुए आये थे, उन्होने जिस प्रकाश और महिमा का आनद उठाया, वो जैन घर मे पैदा हुए पच्चीस सौ साल बाद बच्चे थोड़े ही उठा रहे है।

जो महावीर को खोजते आये थे, जो दूर-दूर से प्यासे होकर आये थे, जिन्होने तीर्थयात्रा की थी, जिन्होने महावीर को चुना था सारे सकटो के बावजूद, जिन्हे महावीर की पुकार हृदय को छू गई थी, आदोलित कर गई थी, जिन्होने क्राइस्ट को चुना या मुहम्मद को चुना स्वेच्छा से, अतरग से तो उतना खयाल रखना। और इतने ईमानदार रहना। क्योकि अगर यहा बेईमानी हो गई, इस बुनियादी बात मे बेईमानी हो गई, तो तुम सदा के लिए भटक जाओगे।

दूसरा प्रश्न भी इससे सबधित है। 'गुणा' ने पूछा है

बहुत समय से मै आपके पास हू और मै बहुत अज्ञानी और निर्बुद्धि हू, यह आप भलीभाति जानते है। आपकी कही अनेक बाते मेरे सिर पर से गुजर जाती है। आप परमात्मा से बिछुड़न की जिस पीड़ा की बात करते है, वह पीड़ा मुझे कभी हुई नही। परमात्मा की प्यास का मुझे कुछ पता नही। फिर मै क्यो यहा हू और यह ध्यान-साधना वगैरह क्या कर रही हू?

'गुणा' की भी तकलीफ वही है जो मैने अभी तुमसे कही। वह जैन घर मे पैदा हुई है, इसलिए परमात्मा शब्द सार्थक नही है, प्यास शब्द भी सार्थक नही है। जैन घर की भाषा मे परमात्मा और प्रार्थना के लिए कोई स्थान नही है। सस्कार जैन के है, प्राण जैन के नही है। ऊपर से सारी धारा बौद्धिकता से तो जैन की है, और भीतर के प्राण तो एक अत्यत भावुक स्त्री के है।

कृष्ण से रग बैठ सकता था। कृष्ण के साथ नाच हो सकता था। महावीर के साथ नाच बैठता नही। नाचो तो उपद्रव मालूम होगा महावीर के साथ। वहा नाच की कोई सगति नही है। वहा गीत, वाद्य की कोई सगति नही है। यही कठिनाई है।

इसलिए जब मै कहता हू, परमात्मा की प्यास, तो जैन सुन लेता है, लेकिन उसके भीतर कुछ होता नही। उसके सारे सस्कारो की पर्ते—कैसा परमात्मा। कैसी प्यास। मुझसे थोड़ा लगाव है तो सुन लेता है, बर्दाश्त कर लेता है। लेकिन ऐसे उसकी पर्तो के भीतर बात नही उतरती।

ठीक वैसा ही जब मै कहता हू—अशरण-भावना, सकल्प, स्वय अपने पैरो पर खडे हो जाना—जब मै महावीर की बात करता हू तो हिंदू सुन लेता है, मुझसे लगाव है। लेकिन वह सोचता है, कही न कही यह तो बड़ी अहकार की ही बात हो रही है। अपने पैर पर खड़े होना—इसमे कुछ समर्पण तो है नहीं। सब परमात्मा पर छोड़ना है, और इसमे कोई समर्पण की बात नही है। मेल नहीं बैठता।

वही कठिनाई 'गुणा' की है। गुणा के पास एक भावुक हृदय है, जो नाच सकता है, गा सकता है, गुनगुना सकता है। उसको जरूरत थी किसी और भाषा की। जैन भाषा उसके काम की नही है। जैन भाषा मे फसी है। उस भाषा के बाहर आने की हिम्मत भी नहीं है।

कारागृह पत्थर की ईटो के ही नहीं होते, शब्दो की ईटो के भी होते है—और ज्यादा मजबूत होते है। बचपन से जो सुना है, बचपन से जो समझा है, जिसके सस्कार पड़े है, वह तुम्हारे चारो तरफ दीवाल बन जाती है। फिर बाद मे उस दीवाल के बाहर निकलने मे बड़ी घबडाहट होने लगती है। ऐसा लगता है, यह तो अधर्म हो जायेगा। इससे बाहर गये तो अधर्म हो जायेगा। इसके भीतर रहने मे ही धर्म है। और भीतर रहने मे प्राण अकुलाते है।

महावीर का ढग बड़ा भिन्न है।

मुझे तलाश रही है
नही, तलाश नही—
तलाश मे तो तलब
जुस्तजू-सी होती है
दबा-दबी ही सही
आरजू-सी होती है
न आरजू न तलब है
न जुस्तजू न तलाश
जरा-सी एक जराहत
जरा-सी एक खराश।
मुझे तलाश रही है
नही, तलाश नही।

खोज की भाषा ही ठीक नही है, क्योकि खोज का अर्थ ही होता है, बाहर खोजना। खोज का अर्थ ही होता है कि कही परमात्मा छिपा है और खोजना है।

मुझे तलाश रही है
नही, तलाश नही—
तलाश मे तो तलब

और फिर तलाश मे तो इच्छा पैदा हो जाती है, वासना आ जाती है। परमात्मा को खोजने की भी तो वासना है, आकाक्षा है, अभीप्सा है।

तलाश मे तो तलब
जुस्तजू-सी होती है।

और फिर इच्छा जल्दी ही आकुल इच्छा बन जाती है, तीव्र हो जाती है, फिर जलाने लगती है।

महावीर के मार्ग पर तो समस्त इच्छाओ के त्याग से रास्ता

खुलता है। समस्त इच्छाओ के त्याग मे मोक्ष की इच्छा भी सम्मिलित है।

इसे थोड़ा समझना। वह जो मोक्षवादी है, वह कहता है, मोक्ष की भी इच्छा छोड देनी है, तब मोक्ष मिलेगा। परमात्मा की भी इच्छा छोड देनी है, तभी। इच्छा मात्र बाधा है।

भक्तो से पूछो।

भक्त कहते हैं, अगर मोक्ष छोड़ना पडे, हम तैयार है, लेकिन तुम्हारी अभीप्सा बनी रहे। प्रभु को पाने की अकुलाहट बनी रहे। बैकुठ पर लात मारने को तैयार है। लेकिन कही ऐसा न हो कि तुम्हारे विरह मे जो मजा आ रहा है, वह खो जाये।

भक्त, परमात्मा के विरह को बचा लेना चाहता है। उसके मिलन की तो बात दूर, उसका विरह भी बडा प्यारा है। ज्ञानी, परमात्मा की आकाक्षा भी छोड़ देना चाहता है। विरह की तो बात दूर, उसके मिलन की भी आकाक्षा नहीं करता। क्योकि आकाक्षा मात्र उसे मोक्ष मे बाधा मालूम होती है।

ये अलग-अलग भाषाए है।

तलाश मे तो तलब
जुस्तजू-सी होती है
दबा-दबी ही सही
आरजू-सी होती है।

कितना ही दबाओ, कितना ही सम्हालो, सस्कारित करो, लेकिन आकाक्षा तो रहती है, आरजू तो रहती है।

इसलिए तो महावीर के मार्ग पर प्रार्थना शब्द गलत है। ध्यान। प्रार्थना की कोई जगह नहीं है। प्रार्थना मे तो आरजू-सी रहती है।

दबा-दबी ही सही
आरजू-सी होती है
न आरजू न तलब है

—न पाने की इच्छा है, न पाने की कोई याचना है।

न जुस्तजू न तलाश

—न खोज है, न खोज मे कोई पागलपन है। फिर है क्या?

भक्त बोलता है, परमात्मा की प्यास के कारण खोजने निकले है। ज्ञानी बोलता है, भीतर एक घाव है, पीडा है—उसको मिटाना है।

जरा-सी एक जराहत

—एक घाव है भीतर।

जरा-सी एक खराश

—और उस घाव मे पीड़ा है।

इस बात को समझने की कोशिश करो।

भक्त की पीडा भी प्यास है। वह कहता है, प्रभु पीड़ा दो। प्यासा करो, जलाओ।

ज्ञानी के लिए परमात्मा नही है, न कोई प्यास है, न कोई और बात है। सिर्फ अज्ञान की एक पीड़ा है, यह पीड़ा प्यास नही है, यह दुख है। यह काटे की तरह चुभ रही है। इसे निकालकर फेकना है।

ये दोनो भाषाए अलग है। और जब तक तुम्हे ठीक सम्यक भाषा न मिल जाये, जिससे तुम्हारे हृदय का तालमेल बैठे, तब तक ऐसी अड़चन होगी। मेरी बाते सिर पर से निकलती हुई मालूम होगी। कोई-कोई बात जो तुम्हारे सस्कार से मेल खा जायेगी, वो समझ मे आयेगी। लेकिन समझ मे आने से क्या होगा? अगर तुम्हारे हृदय से मेल न खायेगी तो समझ मे आ जायेगी, किसी काम मे न आयेगी। और जो बात तुम्हारे हृदय से मेल खाती थी, वह तुम्हारे सिर पर से निकल जायेगी, क्योकि सस्कार उसे भीतर प्रविष्ट न होने देगा। जो बात तुम समझ लोगे, वह तुम्हारे काम की न होगी। और जो तुम्हारे काम की थी, वह तुम्हारा मन तुम्हे समझने न देगा।

'गुणा' की तकलीफ, भावुक स्त्रैण हृदय की तकलीफ है।

जैन मार्ग पुरुष का मार्ग हे। और जब मै कहता हू, पुरुष का, तो मेरा मतलब यह नही कि स्त्रिया उस मार्ग से नही जा सकती। स्त्रिया भी जा सकती है, लेकिन पुरुष-धर्मा, जिनकी वृत्ति पुरुष की वृत्ति हो।

कृष्ण का मार्ग स्त्रैण मार्ग है। इसका यह मतलब नही कि पुरुष नही जा सकते, जा सकते है—लेकिन वे ही पुरुष, जिनकी भावदशा स्त्रैण हो। गोप भी जा सकते है, लेकिन गोप ऊपर-ऊपर से होगे, भीतर से गोपी का ही भाव होगा।

इसलिए कृष्ण का भक्त तो अपने को मानने लगता है, वह स्त्री है, उसकी, कृष्ण की गोपी है। वह अपने पुरुष-भाव को छोड देता है।

जैन साध्वी अपने सारे स्त्रैण भाव को धीरे-धीरे काटकर गिरा देती है, पुरुषवत हो जाती है। सारा राग, सारा रस, सब समाप्त कर देना है। मरुस्थल की तरह हो जाना है।

गलत और सही की बात नहीं है—तुम्हे जो रास पड़ जाये। ऐसी तकलीफ बनी ही रहेगी, जब तक तुम सस्कारो और अपने हृदय के बीच जो विरोध है उसको ठीक से पहचानकर साफ-साफ रास्ता न बना लोगे।

'गुणा' को अपने सस्कार छोड़ने पड़ेगे। उसे अपने हृदय की भाषा को पहचानना पड़ेगा। नही तो वह तकलीफ मे ही रहेगी।

जो न बन पायी तुम्हारे गीत की कोमल कड़ी
तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है?
तो अमर अस्तित्व का अभिमान क्या है?

तुम नही आए? न आओ, याद दे दो
फैसला छोड़ा, फकत फरियाद दे दो
मति नही कहती, चरण का स्वाद दे दो
बस प्रहारो का अनत प्रसाद दे दो

देख ले जग, सिसककर आराधना सूली चढी
जो न बन पायी तुम्हारे गीत की कोमल कड़ी
तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है?
तो अमर अस्तित्व का अभिमान क्या है?

अगर 'गुणा' जागती नही, समझती नही, तो व्यर्थ ही समाप्त होगी। किसी दिन जीवन के अतिम पहर मे उसे ऐसा ही कहना पडेगा—

जो न बन पायी तुम्हारे गीत की कोमल कड़ी
तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है?

—जीवन आया और गया। व्यर्थ ही गया।

गाओ, नाचो। ध्यान नही, प्रार्थना तुम्हारे लिए मार्ग होगा। मतवालापन। होश नही, बेहोशी तुम्हारी दवा है।

तुम नही आये? न आओ, याद दे दो
फैसला छोड़ा, फकत फरियाद दे दो
मति नही कहती

—बुद्धि और ज्ञान की आकाक्षा नही है।

मति नही कहती, चरण का स्वाद दे दो।
बस प्रहारो का अनत प्रसाद दे दो।

—तो तृप्ति होगी।

अपने को जिसने ठीक से पहचाना वह जल्दी ही अपनी तृप्ति का मार्ग खोज लेता है। मार्गों की फिक्र छोड़ो, अपनी फिक्र करो। मार्गो के लिए तुम नही बने हो, तुम्हारे लिए मार्ग है। शास्त्रो मे मत उलझो। शास्त्रो के लिए तुम नही हो कि तुम्हारी कुर्बानी उनके लिए हो जाये, जैसा कि हो रहा है। शास्त्रो पर कुर्बान है करोडो लोग। शास्त्र तुम्हारे लिए है। अगर शीत-सर्दी लगती हो, जला लो, ताप लो। शास्त्र तुम्हारे लिए है, नीद आती हो, तकिया बना लो। शास्त्र तुम्हारे लिए है, ओढ लो, सर्दी लगती हो तो। शास्त्र साधन है, मनुष्य साध्य है। इसे ध्यान मे रखो, तो जो अडचन मालूम हो रही है, वह मिट जायेगी।

'बहुत समय से आपके पास हू ' लेकिन वह सस्कार कहा पास होने देते है? बिलकुल पास है 'गुणा' काफी दिन से मेरे पास है। लेकिन सस्कार बीच मे एक बड़ी सख्त दीवाल है। टटोलता हू मै। मेरे हाथ तुम तक नहीं पहुच पाते। तुम्हारी दीवाल है। लगता है पास-पास खड़े है, क्योकि यह दीवाल पारदर्शी है, शब्दो की है। पत्थर की होती तो मै तुम्हे दिखाई भी न पड़ता। यही तो खूबी है शब्दो की दीवाल की पारदर्शी है, काच की है। आर-पार दिखाई पड़ता है, इसलिए लगता है बिलकुल पास खड़े है।

कभी तुमने खयाल किया? काच की खिडकी के उस तरफ इस तरफ खडे हो जाओ, जरा-सा काच का फासला है, मगर उतना फासला काफी है। हम पास है, एक-दूसरे से बहुत दूर हैं। अनत फासला है।

यह काच की दीवाल तोड़ो। और अकसर ऐसा हो जाता है जो बहुत दिन से पास है, वह इस भ्राति मे पड जाते है कि पास है। काच दिखाई ही नही पड़ता, धीरे-धीरे आर-पार दिखाई पडता है, बात भूल जाती है। पर काच अभी है।

'और मै बहुत अज्ञानी और निर्बुद्धि हू, यह आप भलीभाति जानते है।'

बिलकुल भलीभाति जानता हू। इसीलिए तो कह रहा हू अज्ञानी और निर्बुद्धि के लिए भक्ति मार्ग है, प्रेम मार्ग है।

मति नही, चरण का स्वाद दे दो
फैसला नही, फरियाद दे दो।

उतना काफी है।

'आपकी कही अनेक बाते मेरे सिर पर से गुजर जाती है।'

जो-जो तुम्हारे काम की है, वह सिर पर से गुजर रही है। मै

देखता हू उन्हे गुजरते, क्योकि तुम्हारा सिर उन्हे टिकने नही देता। जो बाते तुम्हारे काम की है और हृदय तक पहुचनी चाहिए थी, वह सिर उन्हे भीतर प्रवेश नहीं होने देता। वह द्वार से ही लौटा देता है, द्वारपाल ही उन्हे अलग कर देता है। और जिन्हे तुम्हारा सिर प्रवेश होने देता है वह तुम्हारे काम की नही। क्योकि तुम्हारे सिर के पास अपने सस्कार है।

अगर जैन मुझे सुनने आता है तो वह उतनी बातो को भीतर जाने देता है, जितनी उसके जैन धर्म से मेल खाती है, बाकी को बाहर रोक देता है कि ठहरो, कहा जा रहे हो? जैन नहीं हो। हिदू सुनने आता है, उतनी को भीतर जाने देता है जितनी हिदू धर्म से मेल खाती है, बाकी को कह देता है, भीतर मत आना।

तो तुम सुनते वही हो, जो तुम्हारा सिर तुम्हे आज्ञा देता है। तुम मुझे थोड़े ही सुनते हो। जो मुझे सुनता है, उसमे रूपातरण निश्चित है।

यह पहरेदार को विदा करो, इसे छुट्टी दे दो। तो जो अभी सिर के ऊपर से जा रही है, वह सिर की गहराई मे भी उतरेगी। और सिर मे ही न उतरे तो हृदय मे कैसे उतरेगी? सिर तो द्वार है। जब सिर मे कोई बात उतर जाती है तो धीरे-धीरे हृदय मे डूबती है, तलहटी मे बैठती है और वहा से क्राति घटित होती है।

'आप परमात्मा से बिछड़न की जिस पीड़ा की बात कहते है, वह पीड़ा मुझे कभी हुई नही।'

परमात्मा का खयाल ही नही है। पीडा तो तब हो न जब हमे खयाल हो कि परमात्मा है। परमात्मा की धारणा का ही खडन है। जब धारणा का ही खडन है तो प्यास तो कैसे उठेगी? उठेगी भी, तो तुम कोई और चीज ही समझोगे—किसी और चीज की प्यास है। परमात्मा की तो हो ही नही सकती। कभी सोचोगे धन की प्यास है, कभी सोचोगे प्रेम की प्यास है, कभी सोचोगे पद की प्यास है—लेकिन 'परमात्मा' शब्द है ही नही तुम्हारे पास, तो प्यास को परमात्मा की तरफ उन्मुख होने का उपाय नही है। और आत्मा की तरफ जाने के लिए जैसा पुरुषार्थ चाहिए, जैसा पौरुषिक उद्दाम सकल्प चाहिए, वह तुम्हारे पास नहीं है। कुछ हर्जा नहीं है। कुछ दुर्गुण नहीं है।

दुनिया मे आधे लोग सकल्प से ही पहुचेगे, आधे लोग समर्पण से ही पहुचेगे। लेकिन हमारी तकलीफ है हम सभी को एक ही घेरे मे बद कर देते है।

स्त्रियो को थोड़े भक्ति के रास्ते पर खोजबीन करनी चाहिए। पुरुषो को थोड़े सकल्प के रास्ते पर खोजबीन करनी चाहिए। तो पति हिदू हो, तो जरूरी नही है कि पत्नी भी हिदू हो। जिस दिन भली दुनिया होगी, उस दिन पत्नी अपना धर्म चुनेगी, पति अपना धर्म चुनेगा। और बेटे-बेटियो के लिए खुला अवसर छोड़ा जायेगा कि जब वह बडे हो जाये तो अपना धर्म चुने। अच्छी दुनिया होगी तो एक-एक घर मे करीब-करीब आठ-आठ दस-दस धर्म होगे, एक-एक परिवार मे। होने ही चाहिए, क्योकि जिसको जो रास पड जायेगा। कपडे मे तुम जिद्द नही करते, किसी को सफेद पहनना है, सफेद पहनता है, किसी को हरा पहनना है, हरा पहनता है। भोजन मे तुम जिद्द नही करते, किसी को चावल ठीक रास आते है, चावल खाता है, किसी को गेहू रास आते है, गेहू खाता है। धर्म के सबध मे क्यो जिद्द करते हो कि सभी पर एक ही धर्म थोपा जाये?

पत्नी को अगर भक्त होना हो, भक्त हो जाये, कृष्ण के मदिर मे पूजा चढाये। पति को अगर जैन रहना है, जैन रहे, महावीर के प्रकाश को लेकर चले। बेटे को अगर ठीक लगे कि बुद्ध हो जाना है, तो किसी को रोकने का कोई कारण नही होना चाहिए। क्योकि असली सवाल धार्मिक होने का है। अगर बुद्ध होने मे, बुद्ध के मार्ग पर चलने से कोई धार्मिक होता है तो शुभ है।

इस दुनिया मे निन्यानबे प्रतिशत लोग अधार्मिक है, क्योकि उनको ठीक धर्म चुनने का मौका नही मिला है। नास्तिको के कारण दुनिया अधार्मिक नही है, तथाकथित धार्मिको के कारण अधार्मिक है। जो मुझे रुचिकर है वह खाने न दिया जाये, तो जो मुझे खाने दिया जाता है उसे मै जबर्दस्ती ढोता हू, क्योकि उसमे मेरी कोई रुचि नही है।

धर्म स्वतत्रता है, स्वेच्छा का चुनाव है।

'परमात्मा की प्यास का मुझे कुछ पता नहीं है, फिर मै क्यो यहा हू? और यह ध्यान-साधना वगैरह क्या कर रही हू?'

अड़चन अपने हृदय को ढाक लेने की है, दबा लेने की है। सिर को हटाओ, हृदय को प्रगट करो। तब यह प्रश्न साफ हो जायेगा। स्थिति बिलकुल साफ हो जायेगी। द्वार खुल जायेगा।

गणित नही है जीवन। और जीवन किसी लक्ष्य की तरफ प्रेरित नही है। कोई ऐसा नही है कि जीवन किसी लक्ष्य की तरफ चला जा रहा है। यहा प्रतिपल प्रफुल्लता से होना लक्ष्य है। यहा

प्रतिपल आनद-भाव से जीना लक्ष्य है। यहा पल-पल आनद-निमग्न होना लक्ष्य है।

पूछो फूलो से, 'क्यो खिले हो?' क्या कहेगे बेचारे। पूछो आकाश के तारो से, 'क्यो ज्योतिर्मय हो?' क्या कहेगे। लेकिन सब तरफ एक अहोगीत चल रहा है। एक अहोभाव नाच रहा है। पल-पल, प्रतिपल।

धर्म इस ढग से जीने का मार्ग है कि तुम प्रतिक्षण से आनद को निचोड़ लो। प्रतिक्षण मे छिपा है स्वर्ग। तुम उसे चूस लो, निचोड़ लो, पी लो। प्रतिक्षण मे छिपी है रसधार।

अब यहा लोग आते है। वे कहते है, हम ध्यान क्यो कर रहे है? वे यह पूछ रहे है कि इससे क्या मिलेगा? ध्यान से कभी कुछ मिला है। ध्यान ही मिलना है। ध्यान मे आनद है। ध्यान मे प्रफुल्लता है, नृत्य है। ध्यान के क्षण मे सब कुछ है, अतर्निहित है। ध्यान के क्षण के बाहर कुछ भी नही है। लेकिन यह भक्त की भाषा है।

ज्ञानी की भाषा तो लक्ष्य की भाषा होती है। यह प्रेमी की भाषा है। प्रेमी कहता है, प्रेम मे सब कुछ है, प्रेम के बाहर क्या है। प्रेम किसी और चीज के लिए साधन थोडे ही है, साध्य है। ज्ञानी पूछता है साधन। यह साधन है, साध्य क्या है?

तो वह जो जैन बुद्धि मन मे बैठी है, वह पूछती है, 'क्या मिलेगा? उपवास करेगे तो यह मिलेगा। इतने उपवास करेगे तो यह मिलेगा। इतना त्याग करेगे, इतना तप करेगे, तो इतना पुण्य का अर्जन होगा। इससे स्वर्ग मिलेगा। यह ध्यान करके यहा क्या कर रहे हो? इससे क्या मिलेगा?' मैने कभी तुम्हे कहा भी नही कि इससे कुछ मिलेगा। मै तो तुमसे कहता हू, इसी मे मिलता है, इसी मे मिल रहा है। तुम इसके बाहर नजर ही मत ले जाओ। इसमे ही डूबो, डुबकी लगाओ। इसमे ही ऐसे पूर्ण भाव से डूब जाओ कि न कुछ खोज रह जाये, न कोई खोजनेवाला रह जाये। ऐसी तन्मयता, ऐसी तल्लीनता प्रगट हो, तो यही क्षण परमात्म-क्षण हो गया।

प्रतिक्षण परमात्मा तुम्हारे चारो तरफ बरस रहा है। परमात्मा एक उपस्थिति है आनद की। तुम जरा भीतर अपने साज को ठीक से बिठा लो। धुन बजने लगेगी। तुम्हारे भीतर से वैसे ही झरने फूटने लगेगे, जैसे पहाड़ो से फूटते है। और तुम्हारे भीतर वैसे ही फूल खिलने लगेगे, जैसे वृक्षो पर खिलते है।

धर्म मनुष्य के भीतर फूल उगाने की कला है। और फूल अतिम है, चरम है, इसके पार कुछ भी नहीं। प्रत्येक क्षण चरम है। जगत कही जा नही रहा है—जगत है। तुम भी इस 'है' मे डूब जाओ। लेकिन तुम्हारे पास अगर गणित की भाषा है, जो पूछती है कि हम यह तो करेगे, लेकिन किसलिए, तो चूक हो जायेगी।

मै जो भाषा बोल रहा हू, वह खेल की भाषा है, दुकान की नही। छोटे बच्चे खेल रहे है। तुम पहुच जाते हो, डाटने-डपटने लगते हो 'क्यो फिजूल समय खराब कर रहे हो, इससे क्या मिलेगा?' छोटे बच्चे हैरान होते है कि मिलने की बात ही उनकी समझ मे नही आती। मिलने का सवाल कहा है? कोई बैक मे बैलेस बढ जायेगा? खाते-बही मे ज्यादा पैसे इकट्ठे हो जायेगे? यह उनकी समझ मे ही नही आता। खेल रहे थे, मिल रहा था। नाच रहे थे, मिल रहा था। इसके पार थोडे ही कुछ मिलना है।

इसलिए भक्त कहता है, जीवन एक लीला है।

ज्ञानी कहता है, जीवन हिसाब-किताब है। कर्म का जाल है। इसमे साधन जुटाने है, साध्य पाना है।

मुझे तो भक्त की भाषा प्रीतिकर है। ज्ञानी की भाषा उतनी महिमापूर्ण नही है। गणित हो भी नही सकता उतना महिमापूर्ण जैसा काव्य होता है। और जब काव्य बन सकता हो जीवन, तो गणित क्यो बनाना? हा, जब काव्य न बन सकता हो, मजबूरी है, तब गणित बना लेना। जब तर्क के बिना नृत्य हो सकता हो तो तर्क को बीच मे क्यो लाना? हा, अगर नाच आता ही न हो, तर्क ही तर्क आता हो, तो फिर ठीक है, तर्क को ही जी लेना।

तीसरा प्रश्न जाग्रत पुरुषो ने देश-काल-परिस्थिति और लोगो की युगानुकूल मनोदशा का खयाल रखकर एक ही सत्य को बड़े भिन्न-भिन्न रूप से अभिव्यक्त किया है। यहा तक कि वे परस्पर बिलकुल विवादास्पद तथा विरोधाभासी तक बन गये है। जीवन व अस्तित्व के परम सत्यो की क्या निरपेक्ष अभिव्यक्ति सभव नही है? क्या सदा ही युग व लोक-दशा की सीमा सत्य पर आरोपित होती रहेगी?

अभिव्यक्ति तो सदा सीमित होगी। अभिव्यक्ति तो सदा

सापेक्ष होगी। बोलनेवाला, सुननेवाला, दोनो ही अभिव्यक्ति की सीमा बनायेगे।

मै वही बोलूगा जो बोला जा सकता है। तुम वही समझोगे जो समझा जा सकता है। सत्य तो विराट है।

अगर मै सागर के दर्शन करने जाऊ और तुम मुझसे कहो कि लौटते मे थोड़ा सागर लेते आना, तो पूरा सागर तो न ला पाऊगा। हो सकता है, थोडा-सा जल सागर का ले आऊ। लेकिन उस जल मे बहुत कुछ बाते नहीं होगी। सागर का तूफान न होगा, सागर की लहरे न होगी। वही तो असली सागर था। वह तुमुल नाद और घोर गर्जन। शिलाखडो पर टकराती हुई लहरे। वह उठती दूर-दुर मीलो तक फैले हुए विस्तार से भरी लहरे। वह उफान। वह सब तो न होगा। भरकर ले आऊगा एक बर्तन मे थोड़ा-सा सागर का जल। फिर भी थोड़ा तो होगा कुछ। स्वाद लोगे तो खारा होगा। सागर जैसा उस बर्तन मे क्या होगा? थोडा खारापन का स्वाद आ जायेगा, बस।

सत्य तो सागर से भी विराट है। जब हम उसे शब्दो की चुल्लुओ मे भरकर लाते है किसी को देने, असली तो खो जाता है। थोड़ा-सा स्वाद भी पहुच जाये, थोड़ा नमक भी तुम्हारी जीभ पर पड जाये, तो बहुत। इसलिए बोलनेवाला सीमा देगा, फिर सुननेवाला सीमा देगा। फिर युग-युग की भाषा होगी। युग-युग के भाषा की शैली होगी, प्रचलन होगा, मापदड होगे। वह सब सीमाए देगे। सत्य को जब भी जाना जाता है तब तो वह निरपेक्ष है, लेकिन जब कहा जाता है तब सापेक्ष हो जाता है। इसलिए सभी अभिव्यक्तिया सीमित होगी।

इसलिए महावीर कहते है, सभी अभिव्यक्तिया—स्यात। कोई अभिव्यक्ति पूर्ण नही। और कोई अभिव्यक्ति पूर्ण निश्चय से नही कही जा सकती, क्योकि पूर्ण निश्चय से कहने का तो अर्थ यह होगा कि इसके पार अब कहने को कुछ भी न बचा। प्रत्येक अभिव्यक्ति एक सीमा तक सच होगी और एक सीमा के आगे गलत हो जायेगी। इसलिए परम ज्ञानी बडे झिझककर बोलते है। जानते हुए बोलते है कि जो कह रहे है, वह बहुत सीमित है, जो कहना था, वह बहुत असीम था। जो जाना, वह बड़ा था, जो जता रहे है, वह बड़ा छोटा है।

फिर स्वभावत अलग-अलग ज्ञानी अलग-अलग ढग से जतलायेगे। और उनकी बाते विरोधाभासी भी मालूम पड़ेगी, क्योकि सत्य सभी विरोधो को अपने मे समाये हुए है। वहा रात भी है और दिन भी है। वहा जन्म भी है, मृत्यु भी है। तो कोई आदमी शायद सत्य की खबर लाये और जन्म के द्वारा समझाने की कोशिश करे। कोई सत्य की खबर लाये और मृत्यु के द्वारा समझाने की कोशिश करे। कोई सत्य की खबर लाये, राग के द्वारा समझाये, जैसा कि नारद ने किया परमात्मा का राग, परमात्मा का प्रेम, परमात्मा की भक्ति। कोई परमात्मा की खबर लाये, विराग के द्वारा समझाने की कोशिश करे, जैसा महावीर ने किया। दोनो उसमे है। बडा विराट आकाश है। उसमे सब समाया है।

तो जब भी कोई व्यक्ति अभिव्यक्त करेगा तो कुछ तो चुनेगा, कहा से अभिव्यक्त करे। तो अपनी-अपनी रुझान, अपनी-अपनी पसद, अपना-अपना ढग।

इसलिए सत्य की अभिव्यक्तिया विरोधाभासी भी होगी। लेकिन विरोधाभासी उन्ही को दिखाई पडती है, जिन्होने समझा नही। विवादास्पद उन्ही को मालूम पडती है, जिनकी अभी आखे केवल शब्दो से भरी है, और अर्थो का आविर्भाव नही हुआ।

भक्त तो भगवान के समाने जाकर अवाक हो जाता है। वाणी ठहर जाती है। कुछ सूझता नही। जब लौट आता है भगवान के उस जगत से, तब सब सूझने लगता है, लेकिन तब तक भगवान जा चुका। वह परम महत्ता जिसने घेर लिया था, अब नही है। तो स्मृति से पकडने की कोशिश करता है। कई बार भक्त सोचकर जाता है, अब की बार पूछ लेगे। उन्ही से पूछ लेगे, 'कैसे तुम्हारी खबर दे?'

बात भी आपके आगे न जुबा से निकली
लीजिए आए थे हम सोच के क्या क्या दिल मे।

और वहा जाकर ठिठककर खड़ा रह जाता है। साधारण प्रेम मे तक भाषा लगडाकर गिर जाती है, तो प्रार्थना की तो बात ही क्या। वहा कोरा अवाक, आश्चर्यचकित, सन्नाटा हो जाता है। हा, जब वह महिमा बीत जाती है, जब वह महाक्षण गुजर जाता है, धूल रह जाती है रथ की उड़ती हुई पीछे—तब होश आता है। तब बुद्धि लौटती है। तब थोड़ा सम्हालने की कोशिश करता है। लेकिन तब धूल पकड़ मे आती है, रथ तो जा चुका। फिर उसी धूल की खबर देता है। तो फिर जानता भी है कि यह भी क्या

खबर दे रहा हू, यह तो धूल है जो रथ के पहियो से उड़ी थी। यह कोई रथ तो नही है। और रथ मे विराजमान जो आया था, उसकी तो बात ही क्या करनी। उस क्षण तो मै बिलकुल मिट गया था। बुद्धि न थी, मै न था। तो एक चित्र भी तो न पकड पाया, एक छवि भी तो न खीच पाया कि लोगो को दिखा देता। फिर भी उसके चरण की धूल भी सही। उसके चरणो ने छुआ है, या उसके रथ के पहियो ने छुआ है, तो इस धूल मे भी कुछ स्वाद आ गया होगा। बस। उस धूल की बात है।

ज्ञानी है, वह जब ध्यान की परम दशा मे पहुचता है, सब विचार शात हो जाते है। जब अनुभव होता है, तब विचार नही होते। जब विचार लौटते है, तब अनुभव जा चुका होता है। तो विचार हमेशा पीछे-पीछे आते है। और कुछ टूटा-फूटा, कुछ जूठा, कुछ रेखाए पड़ी रह गई समय पर, उनको इकट्ठा कर लेते है। उन्हीं को हम अभिव्यक्ति बनाते है।

जो जाना गया है, वह कभी कहा नही गया। जो कहा गया है, वह वस्तुत वैसा कभी जाना नही गया था। इसलिए शब्दो को मत पकडना।

इसीलिए मै निरतर कहता हू कि शास्त्र सहयोगी नही हो पाते। क्योकि जब तुम किसी सदगुरु के पास होते हो, तब उसके शब्दो मे भी उसके निशब्द की ध्वनि आती है। तब उसकी अभिव्यक्ति मे भी तुम्हारे भीतर उसके फूल खिलने लगते है, जो अनभिव्यक्त रह गया है। तब उसके बोलने मे भी तुम उसके अबोल को सुन पाते हो। उसकी मौजूदगी, उसकी उपस्थिति, तुम्हे छूती है, तुम्हे स्पर्श करती है, तुम्हे नहला जाती है। वह जो शब्दो से कहता है, वह तो ठीक ही है, वह तो शास्त्र भी कह देगे, लेकिन जो उसकी मौजूदगी के स्पर्श मे तुम्हे अनुभव होता है, वह शास्त्र न कह पायेगे। इसलिए सदगुरु के सान्निध्य मे तो क्षणभर को तुम्हे ऐसा लगता है कि उसकी अभिव्यक्ति ने छू लिया। बात जतला दी, बता दी, इशारा हो गया। खिड़की खुली थी, देख लिया। ऐसा तुम्हे लगता है कि जो मै खुद भी कहना चाहता था और न कह पाता था, वह तुमने कह दिया।

देखना तकरीर की लज्जत कि जो उसने कहा
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल मे है।

बहुत बार तुम्हे लगेगा सदगुरु के पास कि ठीक, बिलकुल ठीक, यही तो मै कहना चाहता था, लेकिन शब्द न जुटा पाता था, असमर्थ था। जो मै कहना चाहता था, तुमने कह दिया। कई बार सदगुरु के सान्निध्य मे तुम्हारा हृदय ठीक उस जगह आ जायेगा, जहा कुछ अनुभव होता है। लेकिन वह अनुभव होता है उपस्थिति से। वह है सत्सग। शास्त्र मे तो राख रह जाती है। राख की भी राख। छाया की भी छाया।

तो अगर कोई जीवित व्यक्ति मिल सके, ऐसा सौभाग्य हो, तो हजार काम छोडकर उसके चरणो मे बैठने का अवसर मत छोड़ना। क्योकि जो शास्त्र नहीं कह पाते है, यद्यपि कहने की चेष्टा की गई है, वह उसकी मौजूदगी कहेगी। इसलिए जो लोग महावीर के पास थे, उन्होने जो जाना, जिन्होने कृष्ण के पास होने का सौभाग्य पाया, उन्होने जो जाना—वह तुम गीता पढकर थोडे ही जान सकोगे, वह तुम जिन-सूत्र पढकर थोड़े ही जान सकोगे। उसका कोई उपाय नही। साप तो जा चुका, केचुली पड़ी रह गई—वही शास्त्र है। केचुली जब साप पर चढी थी, तब भी केचुली ही थी, लेकिन तब जीवत थी। तब साप चलता था तो केचुली भी चलती थी। तब साप फुफकारता था तो केचुली भी फुफकारती थी। फिर साप तो जा चुका, केचुली पड़ी रह गई। अब हवा के झोके मे हिलती-डुलती है, लेकिन अब चलती नही, अब उसके पास अपने कोई प्राण नही है, जीवत आत्मा नहीं है।

सभी धर्म जब पैदा होते है तो किसी सदगुरु की मौजूदगी मे पैदा होते हैं। सदगुरु के विदा हो जाने पर साप की केचुलिया पडी रह जाती है अनत सदियो तक, और लोग उनकी पूजा करते रहते है। हा, सदगुरु न मिले तो मजबूरी है। तो फिर तुम शास्त्र को ही पूज लेना। लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि पृथ्वी पर सदगुरु न हो। सदा होते है। यद्यपि दुर्भाग्य यह है कि जब वह होते है, बहुत कम लोग पहचानते है। जब वह जा चुके होते है, तब मुर्दा केचुली को बहुत लोग पूजते है। लोगो का मरे से कुछ लगाव है, जिंदा से कुछ घबड़ाहट है। जीवन से कुछ डर है, मृत्यु की बडी पूजा है।

आखिरी प्रश्न जब कोई प्यासा या प्यारा मिल जाता है, तब मेरी दशा पूर पर आई नदी जैसी हो जाती है। मै आपको लेकर उस पर बरस पड़ती हू। जाने किस नगरी की आवाज निकल पड़ती है। मै दोनो सिरो पर जलती हुई मशाल जैसी हो जाती

हू। लेकिन आपके पास ला देने पर वह आदमी मुझसे दूर हो जाता है, जैसे बच्चा बड़ा होने पर मा से दूर निकल जाता है। और तब अपने घर वापिस होते समय मुझे एक तडप-सी होती है। लेकिन 'तेरी जो मर्जी' कहके गा पड़ती हू राम श्री राम, जय जय राम।

'प्रतिभा' ने पूछा है।

ऐसा होगा, स्वाभाविक है। जिन्होने मुझे थोडा पीया है, उनके मन मे यह भाव जगना स्वाभाविक है कि कोई और भी मुझे पीए। जिसे कोई सरोवर मिल गया है, राह पर किसी प्यासे को देखकर उसका हाथ पकड़ेगा, सरोवर तक ले आना चाहेगा। कभी-कभी तो जबर्दस्ती भी करता हुआ मालूम पड़ेगा। क्योकि वह जानता है, अभी तुम भला नाराज हो जाओ, सरोवर पर पहुचकर तुम भी कहोगे, अच्छा किया जबर्दस्ती की।

प्रेम बाटना चाहता है। जो भी मिलता है प्रेम को, बाटना चाहता है। कहीं अगर परमात्मा की खुशबू मिली है तो तुम बाटना चाहोगे। दोनो छोर से मशाल की तरह जलकर बाटना चाहोगे। इसलिए जहा भी कही कोई प्यासा मिल जायेगा, तुम्हारे जीवन मे एक पूर आ जायेगा। तुम सब कुछ उसमे उडेल देना चाहोगे। और स्वभावत तुम जब उसे मेरे पास ले आओगे, तो एक थोडी-सी कमी भी मालूम होगी। वह थोडी-सी जो अस्मिता बची है, उसके कारण मालूम होती है। क्योकि जब तुम उसे समझाकर मेरे पास ले आये, तब एक अर्थ मे वह तुम्हारे पीछे चल रहा था, तुम्हारी मानकर चला था। जब तुम उसे मेरे पास ला रहे थे तब वह तुमसे आदोलित और प्रभावित था। फिर जब तुम उसे मेरे पास ले आओगे, स्वभावत इसलिए तुम उसे लाये भी हो मेरे पास कि वह मुझसे जुड़ जाये, अब वह तुम्हारे पीछे न चलेगा। उसका मुझसे सीधा सबध हो जायेगा। यही तुमने चाहा भी था, यही तुम्हारी प्रार्थना भी थी। लेकिन फिर भी अस्मिता को थोडा-सा धक्का लगेगा कि अरे। इसको सरोवर मिल गया तो हमे भूल ही गया। इस अस्मिता को भी जाने देना और गीत बिलकुल ठीक है 'राम श्री राम, जय जय राम'। इसको गुनगुनाना। अस्मिता को इतना भी मत बचाना।

अच्छा अहकार भी होता है। ध्यान रखना। बुरा अहकार तो होता ही है, अच्छा अहकार भी होता है। पवित्र अस्मिता भी होती है—'पायस इगो'। जब तुम कोई अच्छा काम करते हो तो एक बडा सदभाव उठता है कि कुछ किया, कुछ अच्छा किया। उसे भी छोडना है। अतत उसे भी छोड़ना है। तो अभी जब किसी को ले आयी होगी 'प्रतिभा' और उसे लगा होगा कि वह तो सरोवर से जुड गया, अब उसकी कोई फिक्र नही करता, तो अभी जो 'राम श्री राम, जय जय राम' कहा है, वह थोड़ी मजबूरी मे कहा है, कि ठीक है, अब जो तेरी मर्जी। नहीं, इसको आनद-भाव से कहना। बड़ा फर्क पड़ जायेगा। अभी तो कहा है कि जो तेरी मर्जी। लेकिन जब हम कहते है 'जो तेरी मर्जी', तभी हम बता रहे है कि यह हमारी मर्जी न थी। जो तेरी मर्जी का मतलब ही यही होता है कि ठीक है। हमारी मर्जी तो न थी यह, लेकिन अब तुम्हारी है तो ठीक है। राम श्री राम, जय जय राम। मगर इसमे मजबूरी है।

नही, अब दुबारा जब किसी को लाओ, तो पहले से ही इस भाव से ही लाना है, जानकर ही लाना है, कि वह सरोवर मे डूब जाये और तुम्हे भूल जाये। क्योकि तुम्हे याद रखे तो सरोवर मे डूबने मे बाधा पडेगी। और जब वह सरोवर मे डूब जाये, तुम्हे भूल जाये, तो धन्यवाद देना। ऐसा मत कहना कि जो तेरी मर्जी। कहना, 'धन्यवाद। मेरी प्रार्थना पूरी हुई। इसीलिए तो लाई थी।' और तब फिर गुनगुनाना 'राम श्री राम, जय जय राम।' और तब उसका भाव बिलकुल अलग होगा। शब्द तो सभी वही होते है भाव बडे बदल जाते है। तब यह अहोभाव होगा। तब यह परमात्मा को धन्यवाद है कि ठीक। तूने बड़ी कृपा की कि मुझे इतनी भी अस्मिता न दी कि मै रुकावट बनू।

मेरे पास तुम जब मित्रो को लाओगे तो सभी को ऐसा होगा। मगर पहले से ही यह होशपूर्वक लाना है कि ला ही इसलिए रहे हो कि वे तुम्हे भूले।

और यह शिक्षण जरूरी है, क्योकि यही मुझे भी करना पड़ता है। एक दिन मुझे भी कहना पडता है राम श्री राम, जय जय राम। क्योकि मै जिसकी तरफ ले जा रहा हू, एक दिन वह गये तो यह प्रशिक्षण जरूरी है। यह जो 'प्रतिभा' ने कहा है, मेरा भी अनुभव है। मगर यही सारी चेष्टा है। यह सफल हो, यही सौभाग्य है।

इस कारण सकोच मत करना कि अब क्या लाना किसी को, जिसको ले जाओ वही दगा दे जाता है। इस कारण रोकना मत,

इस कारण अपने पर नियत्रण मत रखना। नहीं, जब पूर आये तो आने देना।

जब्त की काशिशे बजा लेकिन
क्या छुपे शौके-बेपनाह का राज
हर किसी को सुनाई देती है
मेरी आवाज मे तेरी आवाज।

जिन्होने मुझे चाहा है, प्रेम किया है, जो सच मे मेरे पास आये है, सारे आवरण छोडकर, वे अगर 'जब्त' भी करना चाहेगे, रोकना भी चाहेगे—

जब्त की कोशिशे बजा लेकिन

—वे अगर चाहेगे भी कि किसी को कैसे बताये, क्या बताये, सकोच भी करेगे तो भी कुछ फर्क न पड़ेगा।

क्या छुपे शौके-बेपनाह का राज।

—अथाह प्रेम प्रगट होने ही लगता है।

हर किसी को सुनाई देती है
मेरी आवाज मे तेरी आवाज।

जिन्होने मुझे चाहा है, उनकी आवाज मे मेरी आवाज सुनाई पडने ही लगेगी।

और हर स्थिति मे क्योकि यह तो एक स्थिति है जो 'प्रतिभा' ने पूछी है कि किसी को ले आती है, फिर वह डूब जाता है। मगर बहुत बार तो ऐसा होगा, तुम किसी को लाना चाहोगे और न ला पाओगे। तुम लाख कोशिश करोगे, तुम जितनी कोशिश करोगे उतना ही वह प्रतिरोध करेगा और न आयेगा। तब भी बेचैन मत होना। तब भी यह मत सोचना कि यह कुछ गलत हो रहा है। तब भी ठीक ही हो रहा है। अभी उसकी यही जरूरत होगी। उस पर नाराज मत होना और यह मत सोचना कि जिद्दी है, कि अहकारी है, कि अज्ञानी है, कि पापी है। क्योकि ऐसे जल्दी ही मन मे भाव उठते है। तुम्हारी कोई न माने तो नाराज होने की इच्छा हो जाती है। नर्क भेजने के भाव उठने मे देर नही लगती, कि तुम तो इतनी कोशिश कर रहे हो, इसके ही शुभ के लिए, और इस मूढ़ को देखो, मताध। सुनता ही नही, बहरा है। नहीं, तब समझना कि परमात्मा अभी यही चाहता है कि वह न आये। उसके राज सभी जाहिर नही होते। होने भी नही चाहिए। कभी किसी को प्रतिरोध की ही जरूरत होती है। कभी कोई तुमसे लड़ता है, वही उसका ढग है मेरे प्रेम मे पड़ने का, उसे लड़ने देना। वह लड-लडकर ही पडेगा। अपने-अपने ढग होते है, अपनी-अपनी शैली होती है।

चमक उसकी बिजली मे, तारे मे है
यह चादी मे, सोने मे, पारे मे है
उसी की बयाबा, उसी के बबूल
उसी के है काटे, उसी के है फूल।

तो अगर कोई काटा जैसा भी मालूम पड़े तो भी समझना, उसी का है, नाराज मत हो जाना। फूल पर बहुत प्रसन्न मत हो जाना, काटे पर बहुत नाराज मत हो जाना। एक बात स्मरण रखना कि तुमने निवेदन कर दिया था, बात समाप्त हो गई। तुमने छिपाया नही, तुम्हे कुछ पता था, कह दिया। जो तुम कहो, उसमे आग्रह भी मत रखना कि उसे मानना ही चाहिए। क्योकि आग्रह सत्य को नष्ट कर देता है, प्रेम को दूषित कर देता है, धूमिल कर देता है। तुम तो बिना किसी आग्रह के अनाग्रह भाव से कह देना कि कुछ हमे भी सुनाई पडी है आवाज, शायद तुम्हारे काम आ जाये, कही हम गये है, हमारी कुछ प्यास बुझी है—हो सकता है, यह जल तुम्हारी भी प्यास को तृप्त करने मे काम आ जाये। मगर कहना, 'हो सकता है, जरूरी नही। तुम्हारी प्यास अलग हो, तुम्हे किसी और जल की जरूरत हो। और शायद अभी तुम्हे प्यास ही न हो और जल की जरूरत ही न हो।' तो निवेदन कर देना और भूल जाना।

अगर तुमने अनाग्रहपूर्वक निवेदन किया है, तो बहुत लोगो को तुम खबर पहुचाने मे सफल हो जाओगे। यह खबर कुछ ऐसी है कि अत्यत विनम्रता मे, अत्यत प्रेम मे, अत्यत सरलता मे ही पहुचाई जा सकती है।

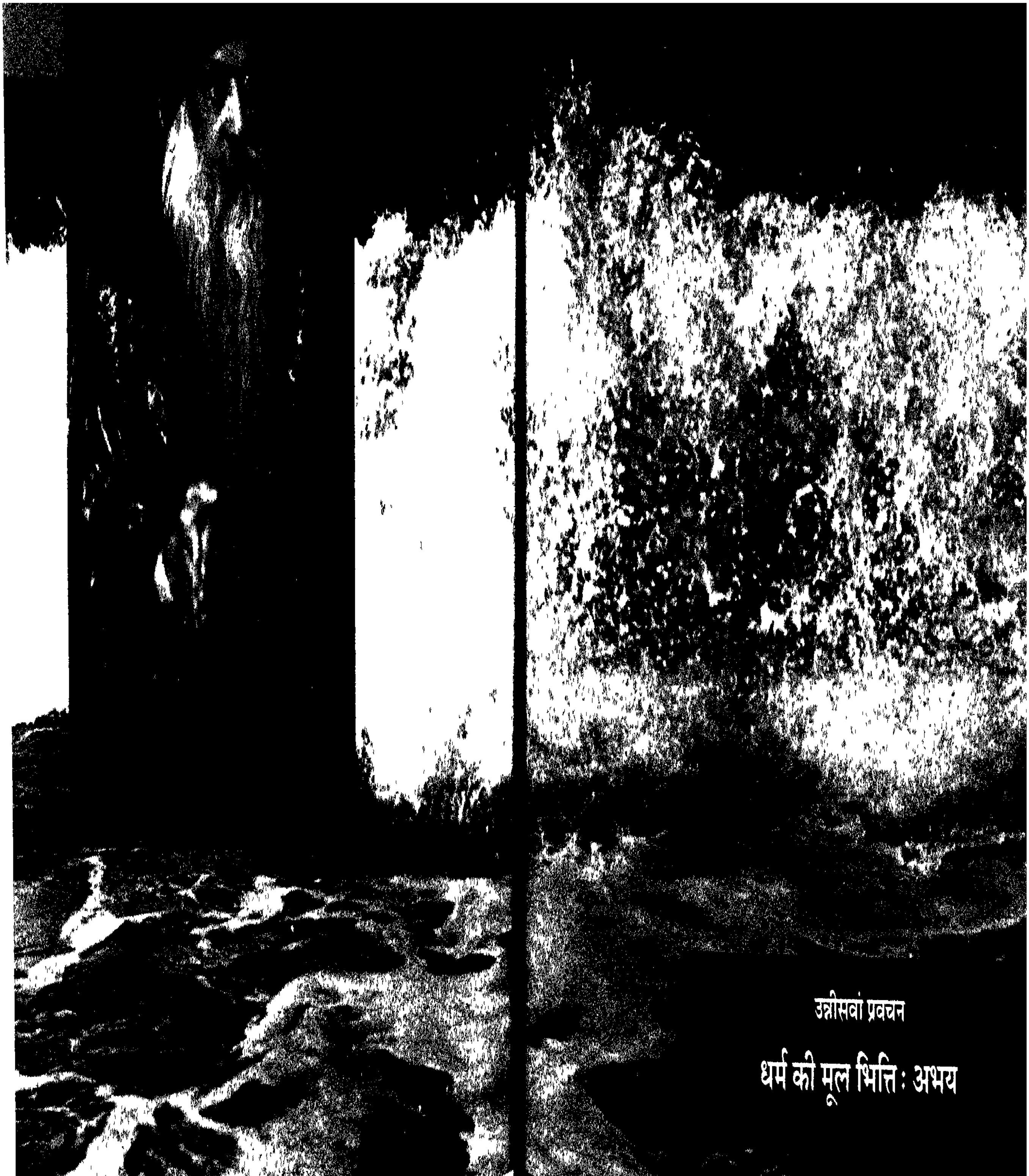
मेरे पास किसी को ले आना कोई मिशनरी काम नही है कि टूट पड़े उस पर और उसको तर्क देने लगे, और समझाने लगे, और सिद्ध करने लगे, और उसको गलत सिद्ध करने लगे। नही, यह कुछ काम इतना क्षुद्र नही है। धर्म मिशन तो बन ही नही सकता। मिशन तो सब राजनीति के होते है। तुम तो सिर्फ मेरी सुगध थोड़ी-सी फैला सको, फैला देना। वही सुगध अगर खीच सकेगी तो खीच लायेगी। और अगर उस आदमी के जीवन मे जरूरत आ गई होगी तो खिच आयेगा, या वह सुगध उसकी स्मृति मे पड़ी रह जायेगी, कभी जरूरत आयेगी तो उसे याद आ जायेगी। तुम्हारा काम पूरा हो गया।

तुम कजूस मत रहना, बस इतना काफी है। मिशनरी भूलकर मत बनना और कजूस मत होना। इन दोनो के बीच सतुलन। किसी को जबर्दस्ती समझाने-बुझाने की कोई भी जरूरत नही है। कोई जबर्दस्ती समझाये-बुझाये, समझा है, बूझा है?

यह बड़ा नाजुक काम है। ये धागे बडे रेशम के धागे है। ये जजीरे नही हैं लोहे की कि बाध दीं और घसीट लाये। ये रेशम के धागे है, बड़े कच्चे धागे। और कच्चे धागे से कोई खिचा आये तो ही ठीक है। लोहे की जजीरो से कोई खिचा भी आ गया तो उसका आना न आना बराबर है। बिना धागे के ही ला सको तो ही कुशलता है।

आज इतना ही।





उन्नीसवां प्रवचन

धर्म की मूल भित्तिः अभय

सूत्र

णवि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एव भणति सुद्धं, णाओ जो सो उ सो चेव।।४८।।

णाह देहो ण मणो, ण चेव वाणी ण कारण तेसि।
कत्ता ण ण कारयिदा, अणुमता णेव कत्तीण।।४९।।

को णाम भणिज्ज बुहो, णाउ सव्वे पराइए भावे।
मज्झमिण ति य वयण, जाणतो अप्पय सुद्धं।।५०।।

अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ णाणद सणसमग्गो।
तम्हि ठिओ तच्चित्तो, सव्वे एए खय णेमि।।५१।।

जीवन थोड़ी देर को है। सुबह हो गई तो जल्दी साझ भी होगी। जन्म हुआ तो मौत आने लगी ही तुम्हारे पास।

जन्म और मृत्यु के बीच मे ज्यादा समय नही है—अत्यल्प काल है। उसे सोये-सोये मत बिता देना। क्योकि जो उसे सोये-सोये बिता देता है, वह जान ही नही पाता कि कौन था, क्यो आया था, जीवन के सारे रहस्यो से अपरिचित रह जाता है। और प्राणो मे सिवाय आसुओ के, अतृप्त आकाक्षाओ के, असतोष के, विषाद के, कुछ भी लेकर न जा सकोगे।

जागा हुआ ही भरता है, सोया हुआ खाली रह जाता है। और जीवन इतना छोटा है कि अगर उद्दाम वेग से, अगर महत सकल्प से, अगर सारे जीवन को दाव पर लगा देने की आकाक्षा के बिना, जागना चाहा तो जाग न पाओगे।

बहुत तो ऐसे भी है जो सोये-सोये ही जागने का सपना देख लेते है और समझ लेते है कि जाग गये। सौ मे से निन्यानबे साधु-सन्यासी जागने का सपना देख रहे है, जागे नहीं। क्योकि जागने की जो प्रक्रिया है और उस प्रक्रिया के लिए जितने जोर से जीवन को दाव पर लगा देने की जरूरत है, वैसा साहस उनमे दिखाई नहीं पड़ता। अकसर तो ऐसा होता है कि साधु और सन्यासी भयभीत लोग होते है। साहस के कारण सन्यासी नहीं होते है, ससार के भय के कारण सन्यासी हो जाते है। और सन्यास का भय से क्या सबध हो सकता है?

इसके पहले कि हम सूत्रो मे प्रवेश करे, इस बात को खयाल मे ले लेना दुस्साहस चाहिए। ऐसा साहस—जो सब दाव पर लगा देने को तैयार हो। जोखिम उठाने की हिम्मत चाहिए। जुआरी का दिल चाहिए। होशियारी से न चल सकोगे इस रास्ते पर। होशियार भटक जाते है। ज्यादा समझदारी अतत नासमझी सिद्ध होती है, क्योकि समझदार रत्ती-रत्ती का हिसाब रखता है। रत्ती-रत्ती तो बचा लेता है, लेकिन जीवन का सारा खजाना खो जाता है। बूद-बूद बचा लेता है, सागर गवा देता है। ककड़-पत्थर जुटाने मे ही समय व्यतीत हो जाता है और साझ आने मे देर नही लगती। सुबह हो गई तो साझ होने लगी। सूरज ऊगा नही कि डूबना शुरू हो जाता है, पूरब से उठा नही कि पश्चिम की तरफ यात्रा शुरू हो गई।

इसके पहले कि सूरज डूब जाये, इसके पहले कि अधेरा तुम्हे पकड ले और खुद को खोजना मुश्किल हो जाये—और ऐसा बहुत बार हो चुका है—इसलिए तुम्हे चेता देना जरूरी है। अनेक-अनेक बार तुमने सूरज देखा है, सुबह देखी है।

और तुम्हारे जीवन की कथा पूरी भी नहीं हो पाती। कब किसकी होती है?

जमाना बड़े शौक से सुन रहा था
हमीं सो गये दासता कहते-कहते

कभी पूरी भी नहीं होती दासता। सभी बीच मे ही मर जाते है। क्योंकि आकाक्षाए अनत है और समय सीमित है। जीवन की प्याली मे इतनी आकाक्षाए भरी नही जा सकती।

तो अगर खाली हाथ जाना हो तो सासारिक का जीवन है। अगर भरे हाथ जाना हो तो धार्मिक का जीवन है। लेकिन धर्म का प्रारभ साहस से होता है।

दुनिया मे दो तरह के धार्मिक व्यक्ति है। एक—जो भय के कारण धार्मिक है। चोरी नही कर सकते, भय के कारण, इसलिए अचोर है। बेईमानी नही कर सकते, पकडे जाने के भय के कारण, इसलिए ईमानदार है। यह ईमानदारी कोई बहुत गहरी नही हो सकती। इस ईमानदारी मे बेईमानी छिपी है। यह ईमानदारी ऊपर-ऊपर है, भीतर बेईमानी वास बनाए है। झूठ नहीं बोलते, क्योकि पकड़े न जाये। अधर्म नही करते, क्योकि पाप का भय है, नर्क का भय है। नर्क की लपटे दिखाई पड़ती है। और हाथ-पैर उनके शिथिल हो जाते है।

दुनिया मे अधिक लोग धार्मिक है—भय के कारण दड के कारण। लेकिन जो भय के कारण धार्मिक है, वे तो धार्मिक हो ही नही सकते। उससे तो अधार्मिक बेहतर, कम से कम भयभीत तो नही है।

महावीर ने अभय को धर्म की मूल भित्ति कहा है। और है भी अभय धर्म कि मूल भित्ति। क्योकि ससार को तो गवाना है और कुछ ऐसी खोज करनी है जिसका हमे अभी पता भी नही। यह साहस के बिना कैसे होगा? जो सामने दिखाई पडता है उसे तो छोडना है और जो कभी दिखाई नही पडता, सदा अदृश्य है, अदृश्यो की गहरी पर्तो मे छिपा है, रहस्यो की पर्तो मे छिपा है—उसे खोजना है।

समझदार कहता है, हाथ की आधी भी भली। दूर की पूरी रोटी से हाथ की आधी रोटी भली। तो समझदार तो कहता है, जो है उसे भोग लो। चाहे उसमे कुछ भी न हो, लेकिन इसे दाव पर मत लगाओ, क्योकि कौन जानता है, जिसके लिए तुम दाव पर लगा रहे हो वह है भी या नही। जिस सत्य की, जिस आत्मा की, जिस परमात्मा की खोज पर निकलते हो—किसने देखा? इसलिए चार्वाक कहते है, 'ऋण कृत्वा घृत पिवेत।' पी लो घी ऋण लेकर भी—सामने तो है। किस स्वर्ग के लिए छोडते हो? ऋण न भी चुके तो फिक्र मत करो। लेकिन जो सामने है, उसे भोग लो।

धर्म का पहला कदम तब उठता है, जब तुम देखते हो जो सामने है वह भोगने योग्य ही नही। भोगा तो, न भोगा तो—सब बराबर है। इसे भोग भी लिया तो क्या भोगा? इसे पाकर भी क्या मिलेगा? हा, इसे पाने मे, इसे भोगने मे जो समय गया वह जीवन की सपदा गई।

महावीर ने तो आत्मा को नाम 'समय' दिया है। बड़ी महत्वपूर्ण बात है। महावीर आत्मा को कहते है 'समय'। समय को गवाते हो तो आत्मा को गवाते हो। समय को सम्हाल लिया तो आत्मा को सम्हाल लिया। जैसे वस्तुए स्थान घेरती है, वैसे आत्मा समय घेरती है। जैसे वस्तुए बाहर घटती है—क्षेत्र मे, वैसे आत्मा भीतर घटती है—समय मे।

आइस्टीन शायद महावीर से राजी होता, क्योकि उसने भी पाया कि जीवन को बनानेवाले दो ही तत्व है टाइम और स्पेस, समय और क्षेत्र।

क्षेत्र से वस्तुए बनती है, यह साफ है। मनुष्य की चेतना कहा है? क्षेत्र मे तो कही नही बता सकते। उगली से इशारा हो सके नही बता सकते। जहा भी हाथ रखोगे वही गलती हो जायेगी। आदमी की आत्मा कही समय मे है। शरीर क्षेत्र मे है, आत्मा समय मे है। वस्तुए क्षेत्र मे है, घटनाए समय मे है। अगर तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाये और कोई पूछे कहा है प्रेम, तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, प्रेम घटना है, वस्तु नही। जब तुम कहते हो, प्रेम घटना है, तो तुम यह कह रहे हो कि समय मे है, स्थान मे नही। इसलिए हम यह न बता सकेगे, कहा है। हम इतना ही कह सकते है, कब घटा। 'कहा' से कोई सबध भी नही है—कब, किस घडी मे, किस मुहूर्त मे।

समय को गवा सकते है हम क्षुद्र को इकट्ठा करने मे। क्षुद्र सामने है और जो विराट है वह छिपा है। इस क्षुद्र को इकट्ठा कर-करके भी तो कुछ पाया नही जाता। इसलिए महावीर कहते है, इस दाव पर लगा दो। यह कचरा ही है, इसको दाव पर लगाने मे कुछ खो नहीं रहे हो। और जो समय बच जायेगा, जो शुद्ध समय बच जायेगा, जिसको तुमने ससार मे नही गवाया, वही शुद्ध समय ध्यान बनता है।

ससार मे न गवाया गया समय ध्यान है। ससार की व्यस्तताओ मे कलुषित न किया गया समय ध्यान है।

इसलिए महावीर के लिए ध्यान के लिए जो शब्द है वह है 'सामायिक'। वह 'समय' से बना है।

महावीर बड़े वैज्ञानिक है, उनकी शब्दावली मे।

जो समय ससार मे नही लगा है, वही 'सामायिक'।

महावीर के पास परमात्मा तो है नही कि कह दे कि परमात्मा मे जो समय लगा है, वह ध्यान। नही, जो ससार मे नही लगा, जो

ससार से अछूता बच गया है, जिसे ससार दूषित नही कर पाया, जिस समय को ससार की कोई छाया नहीं पडी, कुआरा है—वही सामायिक।

जिसने समय को न बचाया और जिसने समय की शुद्धता न जानी, जो सामायिक मे न जीया—वह आया भी वसत मे और पतझड़ मे रहा। जीवन का प्रसाद बरसता था, लेकिन उसका पात्र उलटा पडा रहा। जीवन की अमृत-सरिता बहती थी, वह किनारे पर ही पीठ किए खड़ा रहा—कही और देखता रहा और प्यासा रहा, और कठ जलता रहा।

जिसमे तुम आज अपने को लगाये हो, आज नही कल तुम पाओगे व्यर्थ है। जो जितनी जल्दी पा ले, उतना बोध, उतनी बुद्धि, उतनी समझ उसमे है। कुछ है जो मरते दम तक नही पाते—मरकर भी नही पाते। कुछ हैं जो बुढ़ापा आते-आते थोडे चेतते है। इधर शरीर डगमगाने लगता है तो उधर आत्मा थोड़ी सम्हलती है। इधर रोग पकड़ने लगते है, बीमारिया घर करने लगती है, चोट पड़ती है। कुछ खयाल आता है कैसे जिदगी गवा दी। लेकिन जो और समझदार है, वे भरी जवानी मे जाग जाते है। जब कि सब तरफ लुभावना जगत था और सब तरफ आकर्षण थे, उनको भी वह गहरी आख से देख लेते है और उनके पीछे भी पाते है कुछ नही, सिवाय मन के भ्रमो के, अपनी ही कल्पनाओ, अपने ही सपनो का जाल है, अपने ही प्रक्षेपण है। भरी जवानी मे भी जाग जाते है। जो और भी प्रगाढ है, वह बचपन मे ही जाग जाते है।

कहते है, लाओत्सु पैदा ही हुआ जागा हुआ। हुआ होगा, क्योकि उससे उलटा तो हम देखते ही है, लोग मर ही जाते है सोये-सोये। अगर जिदगीभर लोग सोये-सोये मर सकते है, यह घटना घट सकती है, एक अति पर, तो दूसरी अति पर यह भी घट सकता है कि कोई पैदा होते से ही जाग जाये, किसी को सुबह के सूरज मे ही साझ दिख जाये, इधर दीया जला कि बुझने का खयाल आ जाये। जितनी तीव्र मेधा होती है, उतनी धार्मिक होती है।

आज वे मेरे गान कहा है ?
टूट गई मरकत की प्याली
लुप्त हुई मदिरा की लाली
मेरा व्याकुल मन बहलानेवाले
अब सामान कहा है ?
अब वे मेरे गान कहा है ?
जगती के नीरस मरुथल पर
हसता था मै जिनके बल पर
चिर वसत-सेवित सपनो के
मेरे वे उद्यान कहा है ?
अब वे मेरे गान कहा है ?

ऐसा कही तब न पता चले जब करने को कोई शक्ति हाथ मे न रह जाये। पता तो सभी को चलता है। एक न एक दिन वे सब गीत जो गुनगुना-गुनगुनाकर मन को समझाया था, वे सब व्यर्थ सिद्ध होते है। पानी पर खीची गई लकीरे, कि रेत पर किये गये हस्ताक्षर, कि तुम बना भी नही पाते कि पुछ जाते है और मिट जाते है। कि कागज की नावे कि तुमने छोडी नही कि डूब जाती है। कि ताश के पत्तो के घर कि हवा का जरा-सा झोका, और फिर उनकी कोई खोज-खबर नही मिलती।

आज वे मेरे गान कहा है ?
टूट गई मरकत की प्याली
लुप्त हुई मदिरा की लाली
मेरा व्याकुल मन बहलानेवाले
अब सामान कहा है ?
अब वे मेरे गान कहा है ?

लेकिन यह उस दिन याद न आये, जब आखो मे देखने की शक्ति भी न बचे, प्राणो मे जागने की ऊर्जा भी न बचे। यह उस दिन याद न आये जबकि पैर खडे होने मे असमर्थ हो जाये। यह अभी याद आ जाये तो कुछ हो सकता है।

महावीर कहते है, जगत का अनुभव तीन खडो मे तोड़ा जा सकता है। जो वस्तुए दिखाई पड़ती है, वे है ज्ञेय, 'द नोन'। जिन्हे हम जानते है, वे हमसे सबसे ज्यादा दूर है। जो आदमी धन के पीछे पड़ा है वह ज्ञेय के पीछे पडा है, स्थूल के पीछे पडा है। आब्जेक्टिव, ससार उसके लिए सब कुछ है। धन इकट्ठा करेगा, पद इकट्ठा करेगा, मकान बनायेगा—लेकिन वस्तुओ पर उसका आग्रह होगा। उससे थोड़ा जो भीतर की तरफ आता है, वह ज्ञेय को नहीं पकडता, ज्ञान को पकड़ता है। वहा वृक्ष है। तुम वृक्षो को देख रहे हो। वृक्ष ज्ञान की आखिरी परिधि है—ज्ञेय। फिर थोड़ा इधर को चलो तो वृक्षो और तुम्हारे बीच

एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना घट रही है—ज्ञान। वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं, हरे है, सुदर है, प्रीतिकर है। उनकी सुगध तुम्हारी नासापुटो को भर रही है। ताजी-ताजी भूमि से सुवास आ रही है। फूल खिले है। पक्षियो के गीत है। तुम्हारे और उनके बीच एक सेतु फैला है, एक ततु-जाल फैला है। उस ततु-जाल को हम कहते है ज्ञान। आख न होगी तो तुम हरियाली न देख सकोगे। तो हरियाली सिर्फ वृक्षो मे नही है—आख के बिना हो ही नहीं सकती। तो हरियाली तो वृक्ष और आख के बीच घटती है। वैज्ञानिक भी अब इस बात से राजी है। जब कोई देखनेवाला नहीं होता तो तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे बगीचे के वृक्ष हरे रहते है। जब कोई देखनेवाला नही रहता तो हरे हो ही नही सकते। क्योकि हरापन वृक्ष का गुण-धर्म नही है—हरापन वृक्ष और आख के बीच का नाता है। बिना आख के वृक्ष हरे नही होते—हो नही सकते। कोई उपाय नही है। जब आख ही नही है तो हरापन प्रगट ही नही होगा। वृक्ष होगे—रगहीन। गुलाब का फूल गुलाबी न होगा। गुलाब का फूल और तुम जब मिलते हो, तब गुलाबी होता है। 'गुलाबी' तुम्हारे और गुलाब के फूल के बीच का सबध है।

तो दूसरा जगत है ज्ञान। कुछ लोग है जो वस्तुओ के पीछे पड़े है, फूलो के पीछे पड़े है। उनसे कुछ जो ज्यादा समझदार है, वे फिर ज्ञान की खोज मे लगते है। वैज्ञानिक है, दार्शनिक है, कवि है, मनीषी है, विचारक है, चितक है—वे ज्ञान की पकड मे लगे है। वे ज्ञान को बढ़ाते है।

महावीर कहते है, यह भी थोडा बाहर है। इसके भीतर छिपा है तुम्हारा ज्ञायक स्वरूप, ज्ञाता। ये तीन त्रिभगिया है—ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान। जो परम रहस्य के खोजी है, वे ज्ञान की भी फिक्र नहीं करते, वे तो उसकी फिक्र करते है 'यह जाननेवाला कौन है।' जो सबसे दूर है ज्ञान की यात्रा पर, वे फिक्र करते है 'यह जानी जानेवाली चीज क्या है।' जो परम रहस्य के खोजी है, वह फिक्र करते है यह जाननेवाला कौन है। यह मै कौन हू, जो जान रहा है, जिसके लिए वृक्ष हरे है, जिसके लिए गुलाबी फूल गुलाबी है, जिसके लिए चाद-तारे सुदर है। यह मै कौन हू।

इन दोनो के बीच मे दार्शनिक है, वैज्ञानिक है, चितक है। महावीर की सारी खोज उस ज्ञाता-स्वरूप की खोज है, 'यह जाननेवाला कौन है।' क्योकि महावीर कहते है, अगर जाननेवाले को ही न जाना तो और जानकर करोगे क्या? अपने को ही न पहचाना तो और पहचान किस काम मे आयेगी? अपने से ही बिना परिचित हुए चल पड़े, तो कितनो से परिचय बनाया, उसका क्या सार होगा? दूसरो से परिचित होने मे ही मत गवा देना जीवन को। परिचय की प्रक्रिया को समझने मे ही मत गवा देना जीवन को। यह कौन है तुम्हारे भीतर, जिसके माध्यम से ज्ञान घटता है, जिसके माध्यम से ज्ञेय से सबध बनता है? यह ज्ञाता-भाव। यह चैतन्य। यह होश। यह बोध। इसकी खोज ही धर्म है।

पहला सूत्र

णवि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एव भणति सुद्ध, णाओ जो सो उ सो चेव।।

'आत्मा ज्ञायक है। आत्मा जाननेवाला है। आत्मा ज्ञाता है, द्रष्टा है। जो ज्ञायक है, वह न अप्रमत्त होता है, न प्रमत्त। जो अप्रमत्त और प्रमत्त नही होता, वही शुद्ध है। आत्मा ज्ञायक-रूप मे ही ज्ञात है और वह शुद्ध अर्थ मे ज्ञायक ही है। उसमे ज्ञेयकृत अशुद्धता नही है।'

यह बड़ा बारीक सूक्ष्म सूत्र है। समझने की चेष्टा करना। क्योकि महावीर के अतस्तल के बहुत करीब है। यही उनकी भित्ति है, जिस पर सारी जैन-साधना का मदिर खडा है।

आत्मा ज्ञायक है—यह तो पहली बात, यह पहली उदघोषणा, यह पहला वक्तव्य कि आत्मा ज्ञेय नहीं है, वस्तु नही है जान सको, ऐसी नही है। क्योकि जिसे भी हम जान लेते है, उसका ही रहस्य खो जाता है। इसलिए आत्मा कभी विज्ञान का विषय बन सकेगी, इसकी सभावना नही है। विज्ञान लाख उपाय करे, वह जो भी जानेगा वह आत्मा नहीं होगी। क्योकि आत्मा तो आत्यतिक रूप से जाननेवाली है, जानी नहीं जा सकती। उसे हम अपने सामने रख नहीं सकते। जिसके सामने हम सब रखते है, वही आत्मा है। तो आत्मा को स्वय तो हम कभी अपने सामने न रख सकेगे।

अगर महावीर की बात ठीक समझो तो महावीर यह कह रहे है 'आत्मज्ञान' शब्द ठीक नहीं है। वस्तुओ का ज्ञान हो सकता है, पर का ज्ञान हो सकता है, आत्मज्ञान कैसे होगा? आत्मज्ञान का तो मतलब हुआ कि तुमने आत्मा को भी दो हिस्सो मे तोड़ लिया—जाननेवाला और जाना जानेवाला। तो महावीर कहते है

जो जाननेवाला है, वही आत्मा है, जो जाना जा रहा है वह तो आत्मा नहीं है।

हम अपने शरीर को जानते है। पैर मे चोट लग गई, दर्द हुआ, तो महावीर कहते हैं, चूकि तुम जानते हो कि पैर मे दर्द हुआ, इसलिए एक बात तो निश्चित हो गई कि तुम यह दर्द नहीं, तुम यह पैर नहीं। क्योंकि जाननेवाला हमेशा पार है, अतिक्रमण कर जाता है, ट्रासेडेटल है। भूख लगी तो महावीर कहते है, एक बात पक्की हो गई तुम्हे पता चला भूख लगी, एक बात पक्की हो गई कि तुम भूख नही हो। तुम तो वह हो जिसे पता चला, जिसे प्रतीति हुई, जिसे अहसास हुआ कि भूख लगी, कि शरीर भूखा है कि रोटी की जरूरत है, कि प्यास लगी, पानी की जरूरत है, कि गर्मी हो रही है कि पसीने की धारे बही जा रही है, कोई शीतल स्थान खोजू, कोई छाया खोजू।

जो भी तुम जानते हो, जानने के कारण ही वह 'पर' हो गया। ज्ञान प्रत्येक वस्तु को 'पर' बना देता है। ज्ञान-मात्र 'पर' का है। तो आत्मज्ञान तो हो नही सकता। इस अर्थ मे नहीं हो सकता, जिस अर्थ मे हम और चीजो का ज्ञान करते है।

आत्मा ज्ञायक है, ज्ञेय नहीं। सदा जाननेवाला है। इसलिए जिन्हे आत्मा को खोजना है, उन्हे अपने भीतर निरतर उस जगह पहुचना चाहिए, जहा सिर्फ जाननेवाला ही शेष रह जाये और जानने को कुछ न बचे। उसे महावीर 'समाधि' कहते है—जहा शुद्ध जानना रह जाये और जानने के लिए कोई जगह न हो, दीया जलता हो, लेकिन प्रकाश उसका किसी पर पडता न हो। दीया जलता है अभी, दीवाल पर प्रकाश पड़ता है तो दीया तो ज्ञाता हुआ, दीवाल ज्ञेय हो गई और दोनो के बीच जो सबध जुड़ रहा है वह ज्ञान हो गया। ऐसी कल्पना करो कि दीया शून्य मे जलता हो, कि दीये की ज्योति किसी पर न पड़ती हो—ऐसी चित्त की दशा का नाम, महावीर कहते हैं, समाधि है। जहां शुद्ध-बुद्ध, मात्र ज्ञायक-स्वरूप शेष रह गया, कोई जाननेवाली चीज व्याघात उत्पन्न नहीं करती; कोई जाननेवाली चीज अशुद्धि उत्पन्न नही करती—अबाध—अनवरुद्ध चैतन्य का प्रवाह है, शुद्ध चैतन्य-मात्र है।

'आत्मा ज्ञायक है।' और ज्ञायक। 'जो ज्ञायक है वह न अप्रमत्त होता है न प्रमत्त।'

यह भी बड़ी विचार की बात है। क्योंकि महावीर कहते है, तुम अभी सोये हो। जागो। लेकिन फिर वह कहते है कि जागना भी उस आत्मा का स्वभाव नहीं है। क्योकि जब सोना उस आत्मा का स्वभाव नहीं है तो जागना कैसे उस आत्मा का स्वभाव होगा? जागना-सोना दोनो ही आत्मा के बाहर है। तो एक दिन ऐसा अनुभव आना शुरू होता है कि तुम जागने और सोने के भी पार हो। तुम तो वह हो जो जानता है कि जागे अब, अब सोये। सुबह जागकर तुम्हे पता चलता है कि अरे, जाग गये। तो तुम जागने से एक नही हो सकते। तुम्हे जागने का भी पता चलता है जाग गये। रातभर सोये रहे तो सुबह तुम कहते हो बड़ी गहरी नींद आई। उसका भी तुम्हे पता है। नींद का भी पता है। कभी नीद ठीक नही आती तो सुबह कहते हो, बड़े व्याघात पड़े, उच्छृखल थी रात, बडे दुखस्वप्न चले, ऊबड-खाबड रहा सब। शाति न मिली, चैन न मिला, थका-हारा उठा हू, रात नीद ठीक से न आई। तो रात तुम नींद को भी जानते हो, सुबह उठकर तुम जागने को भी जानते हो। तो निश्चित ही न तुम जागरण हो, न तुम निद्रा हो। तुम तो जागने और निद्रा के पार ज्ञायक-स्वरूप, ज्ञाता-स्वरूप आत्मा हो।

'जो ज्ञायक है, वह न अप्रमत्त होता है, न प्रमत्त।'

लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से सोये हुए को हम कहते है, जागो अगर आत्मा को जानना हो। जब वह जाग जायेगा तो उससे कहेगे, अब जागने से भी जागो। ससारी को कहते है, सन्यास ले लो। फिर सन्यासी को कहते है कि अब सन्यास भी छोडो। यह तो ऐसा ही है जैसे एक काटा पैर मे लगा, दूसरे काटे से खीचकर उसे बाहर निकाल लिया, फिर दोनो ही काटे फेक देते है। बीमारी थी, औषधि ले ली, फिर बीमारी चली गई तो औषधि की बोतल को कचरे-घर मे फेक देते हैं। तो जागरण की जो इतनी चेष्टा है, वह भी औषधि से ज्यादा नही है। बीमारी है, नीद मे पड़े हैं, सोये है—यह हमारी अवस्था है। इसे जगाने के लिए औषधि है ध्यान, जागरण, विवेक। लेकिन जब जाग गये तब तो यह भी पता चलता है कि हम तो जागने के भी पार है। यह सोना और जागना, यह भी शरीर और मन मे ही हो रहा है।

इसलिए तो कृष्ण गीता मे कहते है या निशा सर्वभूताना, तस्या जागर्ति सयमी।

जब सारे लोग सोये है, तब भी सयमी जागता है। इसका क्या अर्थ हुआ? क्या सयमी सोता नही? सयमी सोता है, लेकिन

जानता है कि यह जो सोया है, यह मै नही हू।

महावीर तो और भी गजब की बात कह रहे है। वह कह रहे है, सयमी जब जागता है तब भी जागरण के साथ अपना तादात्म्य नहीं करता—सोने के साथ तो वह करता ही नही, जैसा कृष्ण कहते है कि सब सोये रहते है, उनका तादात्म्य हो जाता है। वह कहते है, हम सोये है। सयमी कहता है, हम तो जागते रहे। महावीर कहते है कि इससे भी ऊपर उठना है। जागने मे भी तादात्म्य न हो जाये, सोने मे तो तोड़ना ही है तादात्म्य। मूर्च्छा तो तोड़नी ही है, अमूर्च्छा पकड़ नही लेनी है। राग तो तोडना ही है, विराग पकड नही लेना है।

इसलिए महावीर ने एक नये शब्द का उपयोग किया वीतराग। महावीर ने अपने परम सन्यासियो को विरागी न कहा, क्योकि 'विरागी' मे ऐसा लगता है राग के विपरीत। सोये थे, जाग गये। ससार मे थे, सन्यासी हो गये। राग था, विराग साध लिया। महावीर कहते है, वीतराग।

'वीतराग' शब्द बड़ा अदभुत है। वीतराग का अर्थ होता है न राग रहा, न विराग रहा। वीत पार हो गये, दोनो के पार हो गये। वह पूरी दुनिया ही गई। वह पूरा सिक्का ही छोड दिया। वह द्वद्व का जगत अब साथ न रहा। सोना और जागना भी द्वद्व है। राग और विराग भी द्वद्व है। ससार और सन्यास भी द्वद्व है। निर्द्वद्व हुए। सबके पार हुए।

'जो अप्रमत्त और प्रमत्त नही होता, वही शुद्ध है।'

यह शुद्धि की बड़ी अनूठी परिभाषा हुई। जो जागता नही, सोता नहीं, जो मूर्च्छित नही होता, अमूर्च्छित नही होता, जो न ससार मे खोता है, न सन्यास मे खोता है—जिसका कही तादात्म्य नही होता, वही शुद्ध है। जिसको गुरजिएफ कहता है आईडेटिफिकेशन, तादात्म्य। जो किसी चीज से अपने स्वभाव को नही जोड़ता। जो दूर-दूर, पार-पार बना रहता है। जो सदा जानता रहता है मै भिन्न हू, मै भिन्न हू। किसी भी चीज के साथ जो ऐसा भाव नही करता कि यह मै हू। क्योकि जहा ही यह भाव आया कि यह मै हू, वहीं अशुद्धि शुरू हो गई। क्योकि जिससे हम जुड़ते है, वह हमे प्रभावित करने लगता है।

तुमने कभी खयाल किया? लोग जिन चीजो से अपना तादात्म्य बनाते है, धीरे-धीरे वैसा ही रग-ढग उनके जीवन मे छा जाता है। अगर कोई कवि सौदर्य की अनुभूतियो के साथ अपना तादात्म्य बनाता है, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे वह सुदर होने लगा। उसके जीवन मे तुम्हे एक नये गुण का प्रादुर्भाव दिखायी पड़ेगा। वह सुदर होने लगेगा। जो आदमी अपने को योद्धा समझता है, लड़ाका समझता है, उसके चारो तरफ धीरे-धीरे तुम पाओगे योद्धा के लक्षण प्रगट होने लगे।

जिससे हम तादात्म्य करते है, वही हम हो जाते है। क्योकि धीरे-धीरे जिसे हमने अपने साथ जोड़ा वह हमे प्रभावित करता है, रूपातरित करता है।

सम्मोहनविद जानते है कि अगर किसी पुरुष को सम्मोहित करके कहा जाये कि तू पुरुष नही स्त्री है, तो गहरे सम्मोहन मे उसका तादात्म्य हो जाता है कि वह स्त्री है। फिर उससे कहा जाये, उठकर चलो, तो वह पुरुष जैसा नहीं चलता, स्त्री जैसा चलने लगता है—जो कि बडी कठिन बात है। क्योकि पुरुष के पास अलग तरह की हड्डिया है। और खासकर स्त्री की चाल पुरुष से भिन्न है, क्योकि स्त्री के शरीर मे गर्भ का स्थान है। उसी गर्भ के स्थान के कारण उसकी चाल मे एक गोलाई है, जो पुरुष की चाल मे नही हो सकती। लेकिन अगर सम्मोहित किया जाये किसी व्यक्ति को और कहा जाये कि तुम स्त्री हो तो वह चलेगा स्त्री की तरह। उससे कहा जाये बोलो तो वह बोलेगा स्त्री की तरह। आवाज भी बदल जायेगी। यह सम्मोहन की प्रक्रिया इतनी गहरी हो सकती है। कि अगर सम्मोहित व्यक्ति को कहा जाये कि यह हाथ पर हम तुम्हारे अगार रख रहे है और तुम सिर्फ एक साधारण ककड रख रहे हो, तो उसका हाथ जल जायेगा, फफोला आ जायेगा। साधारण ककड़ गर्म भी नही है, अगार की तो बात ही नहीं है, ठडा पत्थर हाथ पर रखते हो और कहते हो यह अगार है, वह छिटककर फेककर खड़ा हो जायेगा, चिल्लायेगा कि मार डाला, जला दिया। और उसके हाथ पर न केवल जलने का स्थान बनेगा, फफोला भी उठेगा।

अब क्या हुआ? अगार तो रखा नहीं था, लेकिन अगार रखा है, यह भाव से तादात्म्य हो गया। इसीलिए तो लोग अगारो पर भी चल लेते है—वह भी भाव-तादात्म्य है। मुसलमान फकीर या हिदू योगी अगारो पर चल लेते है। वह तादात्म्य की बात है। इस बात का पक्का तादात्म्य होना चाहिए कि हम चल लेगे, भगवान बचायेगा, कि कोई वली बचायेगा। बस इसका पक्का भरोसा होना चाहिए, फिर तुम न जलोगे। क्योकि तुम्हारा भरोसा

तुम्हारी सुरक्षा करेगा। वह तादात्म्य बन गया।

रामकृष्ण ने सभी धर्मो की साधना की। ऐसा प्रयोग उनके पहले कभी किसी ने किया न था। उस साधना के दौर मे उन्होने छह महीने तक बगाल मे प्रचलित कृष्ण-मार्गियो के एक सप्रदाय की साधना की—राधा सप्रदाय। उस सप्रदाय का साधक मानकर चलता है कि मै कृष्ण की गोपी हू, राधा हू। वह स्त्रियो के कपड़े पहनता है, कृष्ण की मूर्ति को लेकर रात सोता है। छह महीने तक रामकृष्ण ऐसा साधना करते थे। बड़ी हैरानी की घटना घटी—और वह घटना यह थी, उनके स्तन बड़े हो गये, स्त्रैण हो गये। रामकृष्ण जैसा व्यक्ति जब तादात्म्य करेगा तो वह कोई छोटा-मोटा तादात्म्य नही है। उन्होने पूरे प्राण इसमे उडेल दिये। उनकी आवाज स्त्रैण हो गई। वह चलने स्त्रियो की तरह लगे, लेकिन यही तक मामला रुकता तो ठीक था, उन्हे मासिक धर्म शुरू हो गया, जो कि एक आश्चर्यजनक घटना है। इतना तादात्म्य। फिर साधना के बाहर भी आ गये तो भी छह-आठ महीने लगे उनका स्त्री-रूप विदा होने मे।

सम्मोहन का शास्त्र बडी बाते खोलने के किनारे पहुच रहा है और किसी न किसी दिन सम्मोहन-शास्त्र जब अपने पूरे अध्ययन प्रगट कर चुकेगा तो धर्म की बहुत-सी बाते बड़ी सुगमता से समझ मे आ सकेगी।

तुम जो भी हो, यह तुम्हारा ही भाव है। अगर तुम अपने को दुखी मान रह हो तो तुम दुखी होते चले जाओगे। अगर तुम अपने को सुखी मान सकते हो, तुम सुखी होते चले जाओगे।

मुसलमान फकीर बायजीद से किसी ने पूछा कि तुम इतने प्रसन्न, सदा प्रसन्न—मामला क्या है? उसने कहा कि मैंने एक नियम बना लिया है कि सुबह जब मै उठता हू तो मेरे सामने दो विकल्प होते हैं कि आज दिन प्रसन्न होना कि नहीं प्रसन्न होना, आज दिन सुख मे बिताना कि दुख मे बिताना। और मैं अकसर हमेशा ही सुख का ही विकल्प चुनता हूं। क्यो चुनू दुख का विकल्प? सार क्या है? इसलिए मै प्रसन्न हू।

तुम जरा करके देखना। सुबह उठकर पहला निर्णय यही करना कि आज दिन प्रसन्न ही रहना है। और तुम अचानक पाओगे प्रसन्नता की बहुत-सी घटनाए घटने लगी। वह वैसे भी घटती, लेकिन तुमने अगर दुखी होने का निर्णय किया था जैसा निन्यानबे लोग किये बैठे है। निन्यानबे प्रतिशत लोग सोचते है कि सुखी तो तब होगे जब सुख की कोई घटना घटेगी। और दुखी तो रहेगे ही, क्योकि जब तक सुख की घटना नही घटती तो क्या कर सकते है। कोई लाटरी कभी-कभी खुलेगी, तब सुखी हो लेगे। और मै मानता हू कि वह तब भी सुखी न हो पायेगे, क्योकि दुख की आदत इतनी मजबूत हो जाती है, दुख इतना सघनीभूत हो जाता है कि अगर सुख की कोई घटना भी घटे तो तुम जानते ही नही कि अब सुखी कैसे हो। जो कभी नाचा ही नही है, नाचने का क्षण भी आ जाये तो कैसे नाचेगा? हाथ-पैर साथ न देगे।

महावीर कहते है, शुद्धि का अर्थ है जहा कोई तादात्म्य नहीं, न सुख का, न दुख का, न देह का, न मन का। जहा शुद्ध जाननेवाला बचा है और कोई चीज छाया नही डालती, उस छाया-शून्य जगत मे आत्मा शुद्ध होती है।

'आत्मा ज्ञायक-रूप मे ही ज्ञात है '

आत्मा का ज्ञेय की तरह जानने का कोई उपाय नही है। जाननेवाले की तरह ही आत्मा जानी जाती है, जानी गई वस्तु की तरह नही।

' और वह शुद्ध अर्थ मे ज्ञायक ही है। उसमे ज्ञेयकृत अशुद्धता नही है।'

इसे थोड़ा हम समझे। तुमने कभी खयाल किया? जब भी कोई आदमी तुम्हे गौर से देखता है तो तुम्हे थोड़ी-सी बेचैनी और अड़चन होती है। तो समाज मे एक स्वीकृत नियम है तीन क्षण से ज्यादा कोई आदमी किसी को गौर से नही देखता। देखे तो उसको हम लुच्चा कहते है। लुच्चे का अर्थ है गौर से देखनेवाला। लुच्चा बनता है लोचन से। आखे अड़ा दीं किसी पर तो लुच्चा। तीन सैकिंड तक ठीक है। उतना स्वीकृत है। राह चलते आदमी भी एक, एक क्षणभर को दूसरे को देख लेते है। तो ठीक है। लेकिन लौट-लौटकर देखने लगे, खडा ही हो जाये और देखने लगे, आखे गड़ा ले । तो तुमने कभी खयाल किया, कोई आदमी अगर तुम्हे आखे गड़ाकर देखे तो तुम्हे बेचैनी होती है। यहा तक कि अगर कोई आदमी तुम्हारे पीछे खड़ा हो और पीछे से भी आखे गड़ाकर तुम्हे देखे तो भी तुम्हे बेचैनी होगी, हालाकि तुम उसे देख नही रहे, लेकिन तुम्हे पता चल जायेगा कि वह आखे गडाये है।

तुम इसका प्रयोग करके देखना। ट्रेन मे, बस मे किसी के पीछे

खड़े हो, उसकी चेथी पर आखे गडाकर देखना जरा थोडी देर—एक दो तीन मिनट। वह फौरन लौटकर देखेगा और क्रोध से देखेगा। मनोवैज्ञानिक ने इस पर बहुत-से प्रयोग किये है।

क्या मामला है? आदमी किसी के गौर से देखने को, बेचैन क्यो हो जाता है, बर्दाश्त क्यो नही करता? क्योकि जब भी कोई तुम्हे गौर से देखता है, बहुत गौर से देखता है, तो वह तुम्हे वस्तु मे रूपातरित कर देता है। वह तुम्हारे ज्ञायक-स्वभाव को नष्ट करता है। वह तुम्हे ज्ञेय बना देता है, आब्जेक्ट। जैसे कुर्सी को कोई देख रहा है, मकान को कोई देख रहा है, वृक्ष को कोई देख रहा है—ऐसे ही जब तुम्हे कोई देखता है, तब तुम्हारा ज्ञायक-स्वरूप नष्ट होता है। तुम्हे ऐसा लगता है कि मुझे वस्तु समझा जा रहा है, जैसे मै कोई देखने की वस्तु हू।

हा, कोई तुम्हे बहुत प्रेम से देखे तो बेचैनी नही होती। जिससे तुम्हारा लगाव हो, तो बेचैनी नही होती। क्योकि तुम जानते हो, वह तुम्हारे शरीर को नही देख रहा। तुम जानते हो, वह तुम्हे वस्तु नही बना रहा। तुम जानते हो, उसकी आखे तुम्हारे ज्ञायक-स्वभाव को खोज रही है, तुम्हारी अतरात्मा को खोज रही है। उसकी आखे तुम्हारे भीतर जाकर तुम्हारी खोज मे है। तुम, जिसको कि विषय-वस्तु बनाया नही जा सकता, वह उसके साथ सग-साथ जोड़ने की आकाक्षा रखता है। इसलिए प्रेम के क्षण मे ही आख बेहूदी नही मालूम पडती। अन्यथा आख, अगर गौर से कोई देखता चला जाये तो हिसक हो जाती है, अभद्र मालूम होने लगती है, शिष्टाचार के बाहर हो जाती है।

जब भी किसी व्यक्ति को देखो तो उसे वस्तु बनाने की चेष्टा मत करना। अन्यथा तुम हिसा से देख रहे हो। किसी व्यक्ति को साधन की तरह मत देखना, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति साध्य है, परम साध्य है। किसी व्यक्ति को ऐसा मत देखना कि इसका क्या उपयोग है, कि यह आदमी पद पर है, काम पडेगा, जय राम जी कर लो, कि यह आदमी पद पर है, थोड़ी खुशामद करो, कि इस आदमी के पास धन है, कभी जरूरत पड़ सकती है, कि यह आदमी शक्तिशाली है, दोस्ती बनाना काम की बात होगी।

किसी व्यक्ति को जब तुम साधन की तरह देखते हो, तब भी तुम हिसा कर रहे हो। क्योकि वह ज्ञायक-स्वरूप जो भीतर छिपा है, साध्य है—आत्यतिक साध्य है। उसे साधन नही बनाया जा सकता।

'आत्मा ज्ञायक-रूप मे ही ज्ञात है और वह शुद्ध अर्थ मे ज्ञायक ही है। उसमे ज्ञेयकृत अशुद्धता नही है।'

यह बहुत मूलभूत बात है। इसको शाब्दिक जाल मे खो मत देना। इसको ज्ञान के दाव-पेचो मे मत खो देना। क्योकि इस पर बड़े दाव-पेच चलते रहे है। पडितो ने बडे अर्थ किये है, बडी व्याख्याए की है—पक्ष-विपक्ष मे। क्योकि पडितो का अपना हिसाब है। वे कहते है, ज्ञायक, बिना ज्ञेय के ज्ञायक अकेला हो कैसे सकता है? तर्कगत सदेह उठाते है, जब ज्ञेय नही है तो ज्ञायक कैसा? जब ज्ञान नही है तो ज्ञायक कैसे?

तो दार्शनिको का एक समूह रहा है जो कहता है, जब ज्ञेय और ज्ञान खो जायेगे, तो ज्ञायक भी खो जायेगा, अधकार छा जायेगा। शायद तर्क से उनकी बात ठीक भी लगती हो। लेकिन जो अनुभव है, वह तर्क के थोडे बाहर है। और महावीर को तर्क मे कोई रस नही है। वह सिर्फ वक्तव्य दे रहे है, जो उन्होने जाना है। मै भी तुमसे कहता हू, ज्ञायक बच रहता है। ज्ञान भी खो जाता है। ज्ञेय भी खो जाता है।

और इसलिए अगर खोजना हो तो तर्कजाल मे मत पड़ना। थोड़ी साधना की दिशा मे कदम उठाना।

अल्फाज के पेचो मे उलझता नही दाना
गव्वास को मतलब है सदफ से कि गुहर से

शब्दो की उलझनो मे समझदार नहीं उलझता।

अल्फाज के पेचो मे उलझता नही दाना।

—वह जो बुद्धिमान है, वह शब्दो के दाव-पेच मे नहीं उलझता।

गव्वास को मतलब है सदफ से कि गुहर से।

—वह जो गहरा गोता लगानेवाला है, उसे मतलब मोतियो से है या सीपियो से? वह मोती तलाशता है। जैसे मोती सीपी मे छिपे होते है, लेकिन सभी सीपियो में नहीं छिपे होते, कुछ सीपिया खाली होती है, कोई मोती नहीं होता—कुछ शब्द खाली होते है, उनमे कोई मोती नहीं होता। पंडितों के शब्द सीपियो की तरह है, उनमे कोई मोती नहीं होता। क्योकि मोती तो अनुभव से ढालना होता है। मोती तो प्राणो से ढालना होता है। ये महावीर के वचन सीपिया नही है। मोती है, और तुम इन मोतियो का अर्थ तभी समझ पाओगे, जब तुम भी इन्हे ढालने मे लगोगे।

मेरे देखे, जब तक तुम किसी अर्थ मे महावीर जैसे न होने लगो

तब तक तुम महावीर को न समझ पाओगे। समझने का एक ही उपाय है जिसे तुम समझने चले हो, उस जैसे होने लगो।

'मै आत्मा न शरीर हू, न मन हू, न वाणी हू, और न उसका कारण हू। मै न कर्ता हू, न करानेवाला हू और न कर्ता का अनुमोदक ही हू।'

णाह देहो ण मणो, ण चेव वाणी ण कारण तेसि।

कत्ता ण ण कारयिदा, अणुमता णेव कत्तीण।।

—न शरीर, न मन, न वाणी, न उनका कारण, न उनका कर्ता, न करानेवाला और न कर्ता का अनुमोदक ही हू।

कल हम गीता की बात करते थे। कृष्ण कहते है, तुम केवल उपकरण हो जाओ। महावीर कहते है, उपकरण भी नही। अगर तुम उपकरण भी हुए तो तुम कुछ तो हुए। सहारा तो दिया। साधन तो बने। तो महावीर कहते है, न तो तुम कर्ता, न करानेवाला हो, न कर्ता का अनुमोदक। उपकरण की तो बात दूसरी, तुम अनुमोदन भी मत करना। तुम यह भी मत कहना कि हा यह ठीक है। अगर कोई आदमी किसी की हत्या कर रहा है तो तुम यह भी मत कहना कि हा, यह ठीक है। अनुमोदन भी मत करना। कहने की बात नही है, मन मे भी मत सोचना कि हा, यह ठीक है। मन मे सोचने की बात भी नही है। तुम्हारे भीतर जरा-सा भी भाव उठे, जरा-सी भी लहर उठे कि नही, यह गलत तो नहीं है, यह जरूरी था—तो भी पाप हो गया।

कृष्ण कहते है, 'अधर्म के विनाश के लिए, पाप के विनाश के लिए अर्जुन। तू उपकरण बन।' लेकिन महावीर कहते है, उपकरण हिसा का बनना किसी भी कारण से घातक है। खतरनाक है। और आदमी के मन का भरोसा क्या? क्योकि अकसर तो यह होता है, तुम जो करना चाहते हो, उसको तुम परमात्मा के नाम से करने लगते हो।

आदमी बड़ा बेईमान है। इसलिए दुनिया मे इतने युद्ध होते है। दोनो पक्ष कहते है कि परमात्मा का काम कर रहे है। दोनो पक्ष कहते है, हम धर्म-युद्ध कर रहे है। अब यह तो हम चूकि महाभारत हुआ और पाडव जीते, इसलिए जो इतिहास हमारे पास है वह एकतरफा है।

सोचो थोड़ा, कौरव जीते होते तो क्या यह इतिहास यही होता? कौरव जीते होते तो उन्होने सिद्ध किया होता कि पाडव हारे क्यो, क्योकि वे अधार्मिक थे। और कौरव अगर जीते होते तो कृष्ण की गीता न होती, शायद भीष्म पितामह की कोई गीता होती तो होती।

अगर रावण जीता होता तो रामायण नहीं होती—हो नहीं सकती थी। कौन लिखता? हारे हुए के लिए कौन लिखता। जीते के सब सगी-साथी है, हारे के कौन साथ है? तब रामायण के विपरीत, बिलकुल विपरीत रावण की कोई कथा होती, जिसमे रावण तो धार्मिक होता और राम अधार्मिक होते।

तुम थोड़ा सोचो। विभीषण ने धोखा दिया है, गद्दारी की है, लेकिन राम-भक्त कहता है, 'भक्त विभीषण। राम का प्यारा विभीषण।' लेकिन अगर रावण जीतता और कथा लिखी गई होती, तो विभीषण गद्दारो का गद्दार सिद्ध होता, धोखेबाज, बेईमान, मीरजाफर का आदिगुरु सिद्ध होता।

कौन लिखता है कहानी, इस पर निर्भर करता है। और जो भी कहानी लिखेगा, वह यह मानकर चलेगा कि मैने जो किया वह परमात्मा चाहता था।

महावीर आदमी की बेईमानी को जानते है। आदमी बडा धोखेबाज है। वह जो खुद करना चाहता है परमात्मा के नाम पर थोप देता है। अगर हिटलर जीतता तो कथा बिलकुल और होती। चर्चिल जीता, कथा और हुई। कथा कौन लिखता है, इस पर निर्भर करती है।

महावीर कहते है, इन जालो मे मत पड़ना। तुम्हे क्या पता परमात्मा की क्या मर्जी है? तुम कैसे निर्णय करोगे कि यही परमात्मा की मर्जी है? अर्जुन जीते, अर्जुन का पक्ष जीते—यह परमात्मा की मर्जी है, तुम कैसे निर्णय करोगे?

हर आदमी जीतना चाहता है। और हर आदमी अपने जीतने के लिए सब कुछ करना चाहता है। और मान लेगा कि यही परमात्मा की मर्जी है, मुझे जिताना चाहता है।

पिछले महायुद्ध मे एक जर्मन और एक अग्रेज जनरल की बात हुई। जर्मन हारने शुरू हो गये थे और उस जनरल ने अग्रेज जनरल को पूछा कि तुम जीतना शुरू हो गये हो, कैसे जीते चले जा रहे हो, राज क्या है? उस जनरल ने कहा, 'राज साफ है। हम रोज युद्ध करने के पहले परमात्मा की प्रार्थना करते है। परमात्मा हमारे साथ है।'

उस जर्मन ने कहा, यह तो कोई बात जचती नहीं, क्योकि प्रार्थना तो हम भी करते है युद्ध के पहले, और हम भी मानते है

कि परमात्मा हमारे साथ है।

वह अग्रेज हसने लगा। उसने कहा कि तुम्हे एक बात समझनी चाहिए किसी ने कभी सुना कि परमात्मा जर्मन भाषा जानता है? किस भाषा मे करते हो प्रार्थना?

अग्रेज सोचता है, परमात्मा अग्रेजी जानता है। सस्कृत के पडित कहते है, सस्कृत देववाणी है। वह प्रभु की भाषा है। और बाकी सब भाषाए, वे देववाणिया नही है।

अपनी भाषा को देववाणी मान लेना बडा सुगम है। और अपनी आकाक्षा को परमात्मा की आकाक्षा मान लेना बहुत सुगम है। और अपने अहकार को परमात्मा की आड मे छिपा लेना बहुत सुगम है।

महावीर आदमी को कोई धोखे का उपाय नही देना चाहते। वे कहते है, तुम धोखेबाज हो, यह तो जाहिर है, क्योकि जन्मो-जन्मो से भटक रहे हो, अनेक तरह से अपने को धोखा दे लेते हो।

'मै न शरीर हू, न मन हू, न वाणी हू और न उनका कारण हू। मै न कर्ता हू, न करानेवाला हू, न कर्ता का अनुमोदक हू।'

जब तक इतनी प्रगाढ़ता से तुम अपने आत्यतिक स्वरूप को सभी तादात्म्यो से बाहर न कर लोगे, तब तक तुम उस शुद्ध-बुद्ध अवस्था को न पहुच सकोगे, जिसको महावीर 'जिनत्व' कहते है।

हमारी तो त्याग मे भी भोग की वासना बनी रहती है। और हम तो वासना भी छोड़ते है तो भी किसी वासना को पूरा करने के लिए ही छोडते है। हम तो दान भी करते है तो लोभ के कारण करते है। गगा के किनारे बैठे हुए पडित-पुरोहित लोगो को समझाते है 'यहा एक दो, एक करोड पाओगे वहा।' कोई हिसाब भी होता है। एक से एक करोड का कोई सबध बनता है? लेकिन जब लोभ को ही जगाना है तो अतिशयोक्ति करने मे हर्ज क्या है। एक पैसा यहा दान दो, एक करोड़ पाओगे। कुछ तो थोड़ा ब्याज का खयाल रखो। यह तो जरा अतिशयोक्ति हो गई। लेकिन मतलब एक करोड़ पाने से थोड़े ही है, तुमसे एक निकलवा लेने से है। और जानते है कि तुम लोभी हो, तुम तो दान भी लोभ के कारण करोगे। दान भी तुम करते हो तो पहले पूछ लेते हो, इससे मिलेगा क्या?

बोधिधर्म चीन पहुचा, तो चीन के सम्राट ने पूछा कि मैने हजारो बुद्ध-मदिर बनवाये, इससे क्या लाभ होगा? और मै लाखो बौद्ध भिक्षुओ को भिक्षा देता हू, राज्य उनका पालन करना है—इससे मुझे कितना पुण्य हुआ है? दूसरो से भी उसने पूछा था, लेकिन दूसरे तो दुकानदार थे, उन्होने कहा, महापुण्य हो रहा है, स्वर्ग मे तुम्हारे लिए विशेष इतजाम होगा। उन्होने हजार तरह की बाते समझाई होगी। सातवे स्वर्ग मे जाओगे। पुण्य की राशि लगी जा रही है। इद्र बनोगे। लेकिन यह बोधिधर्म थोडा उजड्ड, सीधा-साफ आदमी था।

उसने कहा, 'लाभ! दिमाग दुरुस्त है? यह तुमने पूछा इसक कारण पाप लगा। तुम नर्क मे पडोगे।' सम्राट वू थोडा घबडाया। उसने कहा कि नर्क मे! तो बोधिधर्म ने कहा, कि लाभ की आकाक्षा से किया गया दान, दान नही है। लाभ की जरा-सी भी रेखा बच गई तो दान विकृत हो गया।

फिर भी सम्राट वू ने कहा कि मैने जो किया है, क्या वह पवित्र नही है, धार्मिक नही है। बोधिधर्म ने कहा, धर्म का पवित्रता म क्या लेना-देना? धर्म तो पवित्रता से भी मुक्त है। वह अपवित्र और पवित्र, वह सब ससार की बाते है।

नाराज हुआ सम्राट, प्रसन्न न हुआ। क्योकि ऐसे आदमी म कौन प्रसन्न होता है। हम तो लोभ को ऐसा पकडे है कि अगर हमसे दान भी करवाना हो तो हमारे लोभ को फुसलाना पडता है। हम तो ऐसे भयभीत है कि हमे अगर निर्भय बनाना हो, तो भी हमारे भय को ही सुशिक्षित करना होता है। हमारा जीवन बड़ी उल्टी दशा मे है। जिदगी तो जिदगी, हम मर भी जाते है, तो भी हमारी आशाओ का ढाचा नही बदलता।

मेरी खाक पर साजे-इकतार लेकर
उम्मीद अब भी एक गीत-सा गा रही है

मर जाते है, कब्र बन जाती है, तो भी कब्र पर तुम बैठा हुआ पाओगे वही पुरानी आशा इकतारा बजा रही है—वही कामना वही वासना, वही लोभ, वही मोह।

'आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जाननेवाला तथा परकीय (आत्म-व्यतिरिक्त) भावो को जाननेवाला ऐसा कौन ज्ञानी होगा जो यह कहेगा, यह मेरा है?'

महावीर कहते है, अज्ञान का आधार है यह कहना कि 'यह मेरा है।' ममत्व, 'मै' को जोड़ लेना किसी भी चीज से, आत्मा का तादात्म्य बना लेना किसी चीज से—यही समस्त अधर्म का

आधार है। तो वह कहते है, शुद्ध स्वरूप को जाननेवाला ऐसा कौन ज्ञानी होगा, जो यह कहेगा 'यह मेरा है?' 'मेरा' अज्ञान है—घनीभूत अज्ञान। कहो, मेरा मकान। कहो, मेरी दुकान। या कहो, मेरा मदिर। या कहो, मेरा धर्म। कहो, मेरा बेटा। या कहो, मेरा गुरु। लेकिन जहा भी 'मेरा' है और जोर 'मेरे' पर है, वहा-वहा अज्ञान है। 'मेरे' का दावा ही अज्ञान का है।

कुछ भी तुम्हारा नही है—सिवाय तुम्हारे।

महावीर इस सबध मे बडे आत्यतिक है और साफ है। सिवाय तुम्हारे और कोई भी तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा होना ही बस तुम्हारा है। उसी को लेकर तुम आये, उसी को लेकर तुम जाओगे। बाकी तो खेल है। कोई पत्नी है, कोई पति है, कोई मित्र है, कोई शत्रु है, कोई अपना है, कोई पराया है—लेकिन बाकी सब खेल है। जहा तुम ठहरे हो, यहा 'मेरा' कुछ भी नही है।

धर्मशाला है, रात रुक गये, ठीक। सुबह चलना है, चल पडना है। तो महावीर कहते है, 'मेरा' जिसने छोड दिया उसका अज्ञान गिर जायेगा।

'मेरा' का अर्थ हुआ कि आत्मा को हम किसी चीज से जोड़ते है। जब तुम कहते हो, 'मेरा मकान', तो कौन-सी घटना घटती है। मकान को तो कुछ परिवर्तन नही होता, यह तो जाहिर है। तुम मर जाओगे, मकान रोयेगा नही। मकान गिर जायेगा तो तुम रोओगे। एक बात पक्की है, जब तुम कहते हो, 'मेरा मकान', तो कोई परिवर्तन तुममे होता है, मकान मे नही होता। मकान तो वैसा का वैसा बना रहता है।

एक सूफी फकीर अपने विद्यार्थियो को लेकर जा रहा था और राह पर उसने देखा कि एक आदमी गाय को रस्सी से बाधे खीचे लिये जा रहा है। तो उसने अपने विद्यार्थियो को कहा, घेर लो इस आदमी को, एक शिक्षा देनी है। वह आदमी भी थोड़ा चौंका, लेकिन अवाक खड़ा रह गया कि क्या मामला है, क्या शिक्षा है। वह सूफी फकीर ने अपने शिष्यो से कहा, 'मै तुमसे पूछता हू कि इनमे गुलाम कौन किसका है? यह आदमी इस गाय का गुलाम है कि गाय इस आदमी की गुलाम?' स्वभावत शिष्यो ने कहा कि गाय इस आदमी की गुलाम है, क्योकि इस आदमी के हाथ मे गाय की रस्सी है और यह जहा चाहे वहा ले जा सकता है। सूफी फकीर ने कहा, तुमने बहुत ऊपर से देखा। अब ऐसा समझो कि हम यह रस्सी बीच से काट दे तो गाय इस आदमी के पीछे जायेगी कि यह आदमी इस गाय के पीछे जायेगा? उन्होने कहा, अगर रस्सी काट दी तो गाय तो इस आदमी के पीछे जानेवाली नही, यह तो रस्सी मे भी मुश्किल से जाती मालूम पड़ रही है। यह आदमी ही गाय के पीछे जायेगा।

तो उस फकीर ने कहा, रस्सी के धोखे मे मत पड़ो। इस गाय को इस आदमी से कुछ लेना-देना नहीं है। इस गाय ने कोई तादात्म्य इस आदमी से नही बनाया है, इस आदमी ने तादात्म्य बनाया है गाय से। तो गुलाम यह आदमी है, गाय नही।

जब तुम कहते हो, 'यह मेरा मकान', तो तुम यह मत सोचना कि मकान भी कहता है कि 'तुम मेरे मालिक।' मकान ऐसी भूल-चूक नही करेगा। मकान इतने अज्ञानी नही है। मकान को मतलब ही नही है। अगर मकान को थोड़ा होश होता तो वह हसता। वह मुस्कुराता तुम्हारी नासमझी पर। वह शायद तुम्हे क्षमा कर देता कि ठीक है, अज्ञानी हो, चलेगा। लेकिन मकान को तुमसे कोई लेना-देना नही है। तुम नही थे, तब भी यह मकान बना रह सकता था। तुम नही रहोगे, तब भी बना रहेगा।

इब्राहीम सम्राट था बल्ख का। एक फकीर उसके द्वार पर आया और झझट करने लगा कि मुझे इस महल मे ठहरना है। लेकिन वह 'महल' नही कह रहा था। वह कहता था, यह 'सराय' मे मुझे ठहरना है। बडे जोर-जोर से लड रहा था वह पहरेदार से।

पहरेदार ने कहा, हजार दफे कह दिया यह धर्मशाला नही, सराय नहीं। सराय गाव मे दूसरी है। यह राजा का महल है। यह राजा का खुद का निवास है। तुम होश मे हो? तुम क्या बाते कर रहे हो? यह कोई ठहरने की जगह नही।

तो उसने कहा, फिर मै राजा को देखना चाहता हू। इब्राहीम भी भीतर से सुन रहा था—बड़े जोर से। और उस फकीर की आवाज मे कुछ जादू था, कुछ चोट थी। वह जिस ढग से कह रहा था, ऐसा नहीं लगता था कि सिर्फ जिद्दी, कोई पागल है। उसके कहने मे कुछ रहस्य मालूम होता था। उसने कहा, उसे बुलाओ भीतर। वह फकीर भीतर आया और उसने कहा, 'कौन राजा है? तुम।' वह सिहासन पर बैठा था, उसने कहा कि साफ है कि मै राजा हू। और यह मेरा निवास है और तुम व्यर्थ पहरेदार से झझट कर रहे हो।

उसने कहा, बड़ी हैरानी की बात है। मै पहले भी आया था,

तब एक दूसरा आदमी इस सिहासन पर बैठा था और वह भी यही कहता था।

उस राजा ने कहा, वे मेरे पिता थे, वे अब स्वर्गवासी हो गये।

उसने कहा, उनके पहले भी मै आया था, तब एक तीसरा ही आदमी बैठा था। और हर बार पहरेदार भी बदल जाते है। आदमी भी बदल जाते है। यह मकान वही है। और हर बार जब मै आता हू, तब यही झझट।

उसने कहा, वे हमारे पिता के पिता थे, वे भी स्वर्गवासी हो गये।

तो उसने इब्राहीम से पूछा, 'जब मै चौथी बार आऊगा, तुम मुझे यहा मिलोगे, इस सिहासन पर, कि फिर कोई और मिलेगा? जब इतने लोग यहा बदलते जाते है, इसलिए तो मै कहता हू यह सराय है, धर्मशाला है। तुम भी टिके हो थोडी देर, मेरे टिक जाने मे क्या बिगड़ रहा है? सुबह हुई, तुम भी चल पडोगे, हम भी चल पडेगे।

कहते है इब्राहीम को बोध हुआ। वह सिहासन से नीचे उतर आया और उसने कहा कि तूने मुझे जगा दिया। अब तू रुक, मै चला। अब यहा रुककर भी क्या करना है। जहा से सुबह जाना पड़ेगा, इतनी देर भी क्यो गवानी।

इब्राहीम ने छोड़ दिया राजमहल। इब्राहीम सूफियो का एक बड़ा फकीर हो गया।

मेरा मकान। मेरा बेटा। मेरा धन। मेरा धर्म। जहा-जहा तुम 'मेरे' को फैलाते हो, वहा-वहा तुम्हारा 'मै', झूठा 'मै' खडा होता है। जो 'मै' 'मेरे' के फैलाव से बनता है, उसीको महावीर अहकार कहते है। और जो 'मै' सब 'मेरे' के टूट जाने पर बचता है, उसको महावीर आत्मा कहते है। तो अभी तो तुमने जो अपना 'मै' जाना है, वह 'मै' नही है। वह तो तुम्हारी और गाय के बीच मे बधी हुई रस्सी है। वह तुम्हारी अतरात्मा नही है। वह तो तुम्हारे मकान पर लगी हुई तुम्हारे अहकार की छाप है।

इसलिए महावीर कहते है

को णाम भणिज्ज बुहो, णाउ सव्वे पराइए भावे।
मज्झमिण ति य वयण, जाणतो अप्पय सुद्ध।।

'ऐसा कौन है जाननेवाला, जो कहेगा यह मेरा है?'

तो जिसने यह जान लिया कि मेरा कुछ नही है, वही जाननेवाला है। और जिसने यह जान लिया कि मेरा कुछ भी नही है, उसी को पता चलेगा मै कौन हू।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते है कि कैसे पता चले कि मै कौन हू। सीधी प्रक्रिया है 'मेरे' को शिथिल करते जाओ। जहा-जहा 'मेरे' को पाओ, वहा-वहा रस्सी को काटते जाओ। कुछ छोडकर भाग जाने की भी जरूरत नही है कि तुम घर छोडकर भागो। क्योकि छोड़कर भागने मे तो ऐसा लगता है कि काट न पाये, डरकर भाग गये। डर लगा कि रहे तो कही 'मेरा' हो ही न जाये यह मकान। कही लगने न लगे कि मेरा है। तो जगल भाग गये, जगल मे क्या होगा? जिस झाड़ के नीचे बैठोगे, वही तुम्हारा हो जायेगा।

तुमने देखा, भिखारी भी जिस जगह पर बैठता है सडक के, वह उसकी हो जाती है। अगर दूसरा भिखारी वहा आ जाये झगड़ा हो जाता है, अब कुछ नही है। चलती सडक है, किसी की नही है, सार्वजनिक है। मगर भिखारियो के भी अड्डे होते है। जो भिखारी जिस जगह बैठता है, वह उसकी दुकान है।

एक आदमी एक भिखारी के सामने से गुजर रहा था। वह भिखारी चिल्लाया, 'बाबा। कुछ पैसे मिल जाये, सिनेमा देख आऊगा।' और सामने तख्ती लगा रखी थी कि मै अधा हू। उस आदमी ने पूछा, तुम अधे हो? तो उसने कहा कि नहीं, असल मे यह दुकान दूसरे भिखारी की है। वह आज छुट्टी पर है। मै अधा नहीं हू, मै लगड़ा हू। यह दुकान दूसरे की है, मै तो सिर्फ आज बैठा हू, क्योकि वह छुट्टी पर है। और मौके की दुकान है। तो जब वह छुट्टी पर होता है तो मुझे बिठा जाता है।

तुम अगर जाओ जगलो मे, हिमालय की गुफाओ मे, जहा ससार छोड़कर बैठे है सन्यासी, उनकी भी गुफाए है दूसरा न बैठे। अगर दूसरा बैठ जाये, झगड़ा मच जाता है। तो क्या फर्क पड़ेगा? मकान छूटेगा, गुफा अपनी हो जायेगी। गुफा छूटगी, सड़क के किनारे बैठ जाओगे तो वह टुकडा अपना हो जायेगा। तुम कहा अपने को लगाते हो, यह थोड़े ही सवाल है। कही भी तो चिपकाओगे उस 'मै' को। बस जहा चिपका दोगे, वही झझट हो जायेगी।

लोग धर्म से भी चिपका देते है। मेरा मदिर। हिदू कहते है, हमारा। मुसलमान की मस्जिद, वे कहते है, हमारी। हिदू को रस आता है मुसलमान की मस्जिद गिर जाये तो।

एक हिंदू पडित मे और एक मुसलमान मौलवी मे बड़ी दोस्ती थी। मौलवी नयी मस्जिद बनाने के लिये योजना कर रहा था और दान माग रहा था। उसने मित्रो को भी पत्र लिखे। उसने उस पडित को भी पत्र लिखा कि मस्जिद बनाने के लिए चेष्टा कर रहे है, कुछ दान। पडित ने पत्र लिखा कि यह तो असभव है, मै हिंदू हू और मस्जिद बनाने के लिए दान दू, यह तो सभव नहीं है। हा, पुरानी को गिराने के निमित्त सौ रुपये भेज रहा हू। पुरानी गिराओगे न, नयी बनाने के पहले। मेरा दान पुरानी को गिराने के लिये है। इसका उपयोग भर गिराने मे कर लेना। बनाने के लिए तो मै कैसे दे सकता हू।

मस्जिद गिर जाये, हिंदू प्रसन्न है। मदिर जल जाये, मुसलमान प्रसन्न है। किसी को परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है, अपना-अपना है। अगर तुम्हारे परमात्मा पिट रहे हो तो कोई बचाने भी न आयेगा। लोग खुश ही होगे कि अच्छा है, तुम्हारे ही पिट रहे है।

जबलपुर मे गणेश-उत्सव पर गणेशो का जुलूस निकलता है, शोभा-यात्रा निकलती है। और हर मुहल्ले के गणेशो की जगह बटी हुई है। तो पहले ब्राह्मणो के टोले का गणेश होता है, फिर दूसरे टोले। फिर ऐसे पीछे आखिर मे हरिजन टोले।

एक बार ब्राह्मणो का टोला आने मे थोड़ी देर हो गई और तेलियो के गणेश पहले आ गये। तो जब ब्राह्मणो के गणेश पहुचे, ब्राह्मणो ने कहा, 'हटाओ तेलियो के गणेश को। तेलियो का गणेश और आगे।'

हा, गणेश भी तेलियो के, ब्राह्मणो के अलग-अलग है। तेलियो का गणेश, हटाओ पीछे। यह तो बेइज्जती की बात हो गई। और तेलियो के गणेश को पीछे हटना पड़ा। हिंदू-मुसलमान के देवी-देवता तो छोड़ो, हिंदू के भी देवी-देवता। तेली और ब्राह्मण के अलग हो जाते है।

सब जगह आदमी अपने अहकार की पताका लिये खड़ा रहता है। इस पताका को जो गिरा देता है वही आत्मा को जानने मे समर्थ होता है।

छोड़ो इस मेरे-तेरे को। सपनो मे ज्यादा रस मत लो।

तर्क-ए-उमीद से ही मिलेगा सुकून-ए-दिल

दो दिन की जिदगी पर भरोसा किया तो क्या।

इतना ही देखते रहो कि यहा जो है, दो दिन के लिये है, क्षणभर के लिये है। इसकी क्षणभगुरता को गौर से देखते रहो, तो तुम इसे 'मेरा' न कहोगे।

तर्क-ए-उमीद से ही मिलेगा सुकून-ए-दिल।

और दिल की जो गहन शाति है, वह जो आत्म-शाति है, वासना के त्याग से ही मिलेगी, ममता के त्याग से ही मिलेगी।

दो दिन की जिदगी पर भरोसा किया तो क्या।

'मै एक हू, शुद्ध हू, ममता-रहित हू तथा ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हू। अपने इस शुद्ध स्वभाव मे स्थित और तन्मय होकर मै इन सब परकीय भावो का क्षय करता हू।'

अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ णाणद सणसमग्गो।

तम्हि ठिओ तच्चित्तो, सव्वे एए खय णेमि।।

'मै एक हू ।'

एक-एक शब्द समझना इस सूत्र का। महावीर कहते है, मै एक हू। तुम न कह सकोगे कि तुम एक हो। तुम तो अगर गौर करोगे, तो पाओगे तुम एक भीड हो। तुम अनेक हो। तुम तो एक बाजार हो। एक उपद्रव हो, जिसके भीतर कई स्वर है।

महावीर ने कहा, साधारणत मनुष्य 'बहुचित्तवान' है। इस शब्द का प्रयोग अकेले महावीर ने किया है पच्चीस सौ साल पहले। अब आधुनिक मनोविज्ञान इस शब्द का उपयोग करता है। वह कहता है मल्टीसाइकिक, बहुचित्तवान। एक-एक आदमी के पास एक-एक मन नही है, एक-एक आदमी के पास न मालूम कितने मन है।

तुम अकसर कहते हो कि यह मेरे मन को नही भाता। लेकिन तुमने कभी खयाल किया कि सुबह जो तुम्हारे मन को नही भाता। वही शाम को भाने लगता है। आज जो अच्छा लगता है, कल बुरा लगने लगता है। क्षणभर पहले जो प्रीतिकर था, अब शत्रु मालूम होने लगता है। तो तुम सोचते नहीं कि तुम्हारे भीतर बहुत मन है, एक मन नही है। अगर एक मन हो तो तुम्हारा प्रेम एकरस होगा। अगर एक मन हो तो तुम्हारा भाव थिर होगा। अगर एक मन हो तो बदलाहट न होगी। तुम्हारे भीतर शाश्वतता होगी, चिरतनता होगी।

लेकिन तुम तो एक भीड़ हो। गुरजिएफ कहता था, तुम एक ऐसे घर हो जिसका मालिक तो सोया है और नौकर पाली बाध लिये है। क्योकि सभी नौकर मालिक होना चाहते है। सभी एक साथ तो हो नही सकते। और मालिक सोया है, तो नौकरो ने

पाली बाध ली है। आधा-आधा घडी को एक-एक नौकर मालिक हो जाता है। जब, जो नौकर मालिक होता है, उस वक्त उसकी चलाता है। फिर वह किसी की नही सुनता।

ठीक कहता है गुरजिएफ। ऐसी ही आदमी की दशा है।

जब तुम क्रोध मे हो, तब क्रोध की चलती है। यह तुम्हारा एक नौकर है। और क्रोध मे तुम ऐसी बाते कर जाते हो कि घडीभर बाद जब क्रोध का राज्य जा चुका होगा, तब तुम पछताओगे। क्योकि तब दूसरा मालिक आ गया। वह मालिक कहेगा, 'यह क्या गलती कर ली ? बडी भूल हो गई।' क्षमा मागोगे। और इस दूसरे मालिक के प्रभाव मे तुम किसी को कह आओगे कि अब कभी क्रोध न करूगा।

फिर गलती कर रहे हो। क्योकि वह जो क्रोध करनेवाला है, जब मालकियत मे फिर आयेगा, तब यह पश्चात्ताप काम न आयेगा, यह आश्वासन काम न आयेगा। यह किसी और के द्वारा दिया गया आश्वासन क्रोध क्यो पूरा करेगा ?

कामवासना उठती है तो तुम उसके प्रभाव मे हो जाते हो। फिर सुबह उठकर मदिर चले जाते हो, ब्रह्मचर्य की कसम खाने लगते हो। भूल गये साझ। फिर आयेगी साझ। फिर कामवासना सिहासन पर बैठेगी। फिर तुम अडचन मे पडोगे।

समझने की कोशिश करो। इन मनो मे से कोई भी मन तुम्हारा नही है। तुम तो अभी सोये हो। इन मनो मे से किसी को चुनना नही है, क्योकि इनमे से चुना हुआ तो ठीक वैसा ही रहेगा जैसा लोकतात्रिक सरकार होती है—बहुमत की। लेकिन बहुमत का कोई भरोसा है ? आज जो इस पार्टी मे है, कल दूसरी पार्टी मे हो जाता है। आज जो मित्र है, कल शत्रु हो जाता है। वहा तो रूप-रग रोज बदलते रहते है। खेल चलता रहता है। जो सरकार बनी दिखाई पडती है, वह किसी भी क्षण गिर जाती है। जिनकी कभी आशा न थी, वे सरकार मे पहुच जाते है, मालिक बन जाते है। यह चलता रहता है। यह तो सागर मे उठती लहरो जैसा खेल है।

तो अगर तुमने कोई कसम खाकर किसी तरह बहुमत बना लिया, तो तुम मुश्किल मे रहोगे। वह अल्पमत सदा उपद्रव खड़ा करता रहेगा। वह आदोलन चलायेगा। वह झझट पैदा करेगा। वह बहुमत को खिसकायेगा। सयमी और ज्ञानी के जीवन मे यही फर्क है। सयमी अपने भीतर एक लोकतात्रिक सरकार निर्मित करने की कोशिश करता है।

की तर्के-मय तो मायले-पिदार हो गया
मै तौबा करके और गुनहगार हो गया।

और तुमने कभी किसी चीज को न करने की कसम खाई ?

कसम खाते ही उसमे और रस आने लगता है। खाकर कसम देखो। चाहे इसके पहले कोई रस भी न रहा हो। कसम खाकर देखो

की तर्के-मय तो मायले-पिदार हो गया।

—जैसे ही कोई चीज त्यागी कि तुम्हारी कल्पना घोड़ो पर सवार हो जाती है। और वह सोचती है, 'अरे भोग लो। पता नही कितना मजा है, नही तो दुनिया क्यो इसके खिलाफ है ? कुछ न कुछ राज तो होगा ही। नही तो इतने लोग समझानेवाले है, कोई छोड़ता नही।' कल्पना घोडे पर सवार हो जायेगी।

मै तौबा करके और गुनहगार हो गया।

पश्चात्ताप करो। तुम कहो, अब कभी न करेगे। और तत्क्षण तुम्हारे भीतर गुनाह उठने लगेगे। करने की आकाक्षा प्रबल होगी, जब भी तुम कहोगे अब न करेगे।

उपवास करके देखो। उस दिन जैसा भोजन मे रस लोगे, वैसा कभी न लिया था। उस दिन भोजन ही भोजन करोगे। रात-दिन सपने ही सपने आयेगे। जिस चीज को छोडोगे उसी की तरफ कल्पना रसलीन होने लगती है।

सयमी बडे अतर्युद्ध मे पड़ जाता है, गृहयुद्ध मे पड जाता है। ज्ञानी और सयमी मे फर्क है। महावीर का जोर ज्ञानी पर है।

महावीर कहते है, 'मै एक हू, शुद्ध हू, ममता-रहित हू तथा ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हू। अपने इस शुद्ध स्वभाव मे स्थित और तन्मय होकर मै इन सब परकीय भावो का क्षय करता हू।'

महावीर यह नहीं कहते कि मै परकीय भावो का क्षय करके अपने स्वभाव मे थिर होता हू। महावीर कहते है, अपने स्वभाव मे थिर होता हू, इसलिए परकीय भावो का क्षय होता।

'मै अपने स्वभाव मे स्थित और तन्मय होकर ।'

असली सवाल उस एक मे तन्मय हो जाने का है, ससार के त्याग का कम, सत्य के अनुभव, सत्य के रस का ज्यादा है, सत्य के स्वाद का ज्यादा है।

'मै एक हू ।'

कौन है तुम्हारे भीतर एक ? वासनाएं तो अनेक है ? विचार

अनेक है। देह भी एक नही है, क्योकि देह भी रोज बदलती है। बचपन मे एक थी, जवानी मे और है, बुढापे मे और होगी। और ये तो मोटे विभाजन है, अगर गौर से देखो तो रोज बदलती है। सुबह कुछ है साझ कुछ है। देह हजार बार बदलती है। मन तो करोड़ बार बदलता है। यह कोई भी एक नही है। इन सबके भीतर अगर तुम एक को खोज लो, वह एक ही साक्षी-भाव है—ज्ञायक-भाव जिसको महावीर कहते है ज्ञाता—वह एक है। बचपन मे भी वही था, जवानी मे भी वही, बुढापे मे भी वही। सुख मे, दुख मे, क्रोध मे, प्रेम मे, करुणा मे—सब मे वही। वह एक है।

उस एक को जिसने पकड लिया उसने जीवन का आधार खोज लिया। उस एक पर जो अपने भवन को खडा करेगा, उसके शिखर मोक्ष तक उठ जायेगे।

'मै एक, शुद्ध, ममता-रहित, ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण ।'

उस अतरात्मा का एक ही लक्षण है ज्ञान-दर्शन, जानने की, देखने की क्षमता। बस इतना उसका स्वभाव है। आत्मा का इतना ही स्वभाव है देखने-जानने की क्षमता। अगर जानो और देखो, इस क्षमता का उपयोग करो, तो ससार बन जाता है। अगर न जानो, न देखो, इस क्षमता को शुद्ध छोड दो, उपयोग मत करो, तो मुक्ति फलित हो जाती है।

'अपने इस शुद्ध स्वभाव मे स्थित और तन्मय होकर, मै इन सब परकीय भावो का क्षय करता हू।'

प्यास भटकी ही सदा, नीर की आशा न मिली
नदी को लहर मिली, तट की दिलासा न मिली
नयन मिले तो अधर पख थरथरा के रह गए
प्यार को जन्म मिला, प्यार को भाषा न मिली।

—जैसी जिदगी है, वहा सिर्फ प्यास है, तृप्ति नही है।

प्यास भटकी ही सदा, नीर की आशा न मिली।

जिसे तुम ससार कहते हो, वह प्यास और प्यास और प्यास, मरुस्थल। हा, दूर मरूद्यान दिखाई पड़ते है, पास पहुंचने पर मरूद्यान सिद्ध नही होते।

प्यास भटकी ही सदा, नीर की आशा न मिली।

दिखाई भी पड़े जल-स्रोत, तो भी सत्य सिद्ध न हुए। मन के ही स्वप्न थे।

नदी को लहर मिली, तट की दिलासा न मिली।

तरगे तो बहुत उठी, लहरे तो बहुत आई, लेकिन तट। वह जगह न मिली, जहा सब लहरे शात हो जाती है।

उफ। तूफान तो बहुत रहे, आधिया तो बहुत रहीं, लेकिन ऐसी कोई शरण न मिली, जहा सुख-चैन हो जाता है।

नदी को लहर मिली, तट की दिलासा न मिली
नयन मिले तो अधर पख थरथरा के रह गये

और सदा अधूरा-अधूरा रहा, कुछ मिला तो कुछ कम हो गया।

नयन मिले तो अधर पख थरथरा के रह गये
प्यार को जन्म मिला, प्यार को भाषा न मिली।

इस ससार मे प्यास तो है, प्यार तो है, लेकिन न भाषा मिलती, न माध्यम मिलता, न द्वार मिलता। भटकती है रूह रेगिस्तानो मे—प्यास के, अतृप्ति के, असतोष के।

जो बाहर जायेगा तो ऐसा ही होगा। भीतर आते ही किनारा मिलता है। बाहर प्यास ही प्यास है, भीतर तृप्ति ही तृप्ति। मुझे ऐसा कहने दो कि बाहर प्यास ही प्यास है और तृप्ति बिलकुल नही, और भीतर तृप्ति ही तृप्ति है, प्यास बिलकुल नहीं। तो असली सवाल भीतर आने का है।

आनद तुम्हारा स्वभाव है।

'मै एक हू, शुद्ध हू, ममता-रहित हू, ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हू। अपने इस शुद्ध स्वभाव मे स्थित और तन्मय होकर मै इन सब परकीय भावो का क्षय करता हू।'

वे सारी प्यासे, तडफड़ाहटे, दौड, आपाधापी, वह बाहर का सारा जाल, सूखे कठ, रोती आखे—उन सबका त्याग होता चला जाता है, क्षय होता चला जाता है।

उपनिषद ठीक महावीर की इस अतर्दृष्टि को प्रगट करते है।

अजो नित्य शाश्वतोऽय पुराणो।

मै सदा रहनेवाला, सनातन, सदा सदैव स्थिर रहनेवाला आत्मा हू।

अजो नित्य. शाश्वतोऽय पुराणो।

और जब तक कोई शाश्वत से न जुड जाये, क्षणभगुर से कैसे सुख पाया जा सकता है? पानी के बबूलो को सपदा बनाने मे लगे हो। हाथ मे नही आते, तब तक तो इद्रधनुष उन पर बनते है, हाथ मे आते ही फूट जाते है।

उपनिषद कहते है सता हि सत्य। सत्पुरुषो का स्वभाव ही

सत्यमय होता है।

सत्य कोई बाहर की बात नही—तुम्हारे स्वभाव की बात है।

सता ही सत्य। तस्मात्सत्यं रमन्ते।

और वे सदा उस भीतर के सत्य मे रमते है।

वही महावीर कह रहे है तन्मय होकर, स्वभाव मे स्थित, परकीय भावो का क्षय करता हू।

इसे थोड़ा प्रयोग मे लाना शुरू करो। उठते-बैठते एक धागा भीतर सम्हालते रहो, जीवन के सारे मनके इसी धागे मे पिरो लो। उठो तो याद रखो कि मै जाननेवाला हू, उठनेवाला नही। उठ तो शरीर रहा है। उठ तो मन रहा है। मै सिर्फ जाननेवाला हू। चलो रास्ते पर, तो जानते रहो चल तो शरीर रहा है, चल तो मन रहा है, मै तो सिर्फ जान रहा हू। जान रहा हू कि शरीर चल रहा, मन चल रहा। भोजन करो तो स्मरण रखो कि भोजन तो शरीर मे पड़ रहा है, कि शरीर तृप्त हो रहा है, कि मन तृप्त हो रहा है, लेकिन मै तो जाननेवाला हू।

इस जाननेवाले के सूत्र को तुम जीवन के सारे मनको मे पिरो दो। धीरे-धीरे यह तुम्हे स्वाभाविक होता जायेगा। तुम कुछ भी करोगे, भीतर एक अहर्निश नाद बजता रहेगा 'मै ज्ञाता हू।' उस ज्ञाता मे ही तुम एक हो जाओगे। उस ज्ञाता को जानते ही तुम ससार के पार हो जाओगे।

महावीर कहते है, जैसे कमल के पत्ते जल मे रहते भी जल को छूते नही, ऐसे ही फिर जो साक्षी-भाव को उपलब्ध हुआ, जल मे रहते हुए भी जल को छूता नही। तुम फिर कही भी हो, तुम ससार के बाहर हो। ससार के भीतर भी तुम बाहर हो। फिर तुम भीड़ मे खड़े भी अकेले हो। अभी तो तुम अकेले भी खडे भीड़ मे ही होते हो।

और ये जो वचन हैं महावीर के, ये किसी दार्शनिक के वक्तव्य नहीं हैं। ये किसी तत्वचिंतक की धारणाए नहीं है। ये तो एक महासाधक के अनुभव है। इन्हे तुम अनुभव बनाओ, तो ही इनका राज खुलेगा। इन्हे तुम प्रयोग बनाओ और इनके लिए तुम प्रयोगशाला बनो, तो ही ये सूत्र सत्य हो सकेंगे।

सता हि सत्य। तस्मात्सत्ये रमन्ते।

रमो इन सत्यो मे। इन सत्यो को तुम्हारा स्वभाव बनने दो। तब तुम्हारे जीवन मे 'उसकी' वर्षा हो जायेगी

अजो नित्य शाश्वतोऽय पुराणो।

उस शाश्वत की जो सदा से है और सदा रहेगा। और उस शाश्वत की वर्षा होते ही क्षणभगुर से छुटकारा हो जाता है। क्षणभगुर को छोड़ना नही पड़ता। पानी के बबूलो को कोई छोडता है? बोध आया—छूट गये। अज्ञान मे पकड़ता है, ज्ञान मे छूट जाता है। अज्ञान मे हम ससार को पकडते है, ज्ञान मे हम स्वय को पकड लेते है। और जिसने स्वय को पा लिया, उसने सब पा लिया। और जिसने स्वय को खोया, वह कुछ भी पा ले, तो भी उसका पा लिया हुआ कुछ सिद्ध न होगा। एक न एक दिन वह रोयेगा। उसकी आखे आसुओ से भरी होगी।

आज वे मेरे गान कहा है?
टूट गई मरकत की प्याली
लुप्त हुई मदिरा की लाली
मेरा व्याकुल मन बहलानेवाले
अब सामान कहा है?
अब वे मेरे गान कहा है?
जगती के नीरव मरुथल पर
हसता था मै जिनके बल पर
चिर वसत-सेवित सपनो के
मेरे वे उद्यान कहा है?
अब वे मेरे गान कहा है?

इसके पहले कि आखे आसुओ से भर जाये और हृदय केवल राख का एक ढेर रह जाये, जागो। इसके पहले कि जीवन हाथ से बह जाये, छिटक जाये, उठो। अवसर को मत खोओ।

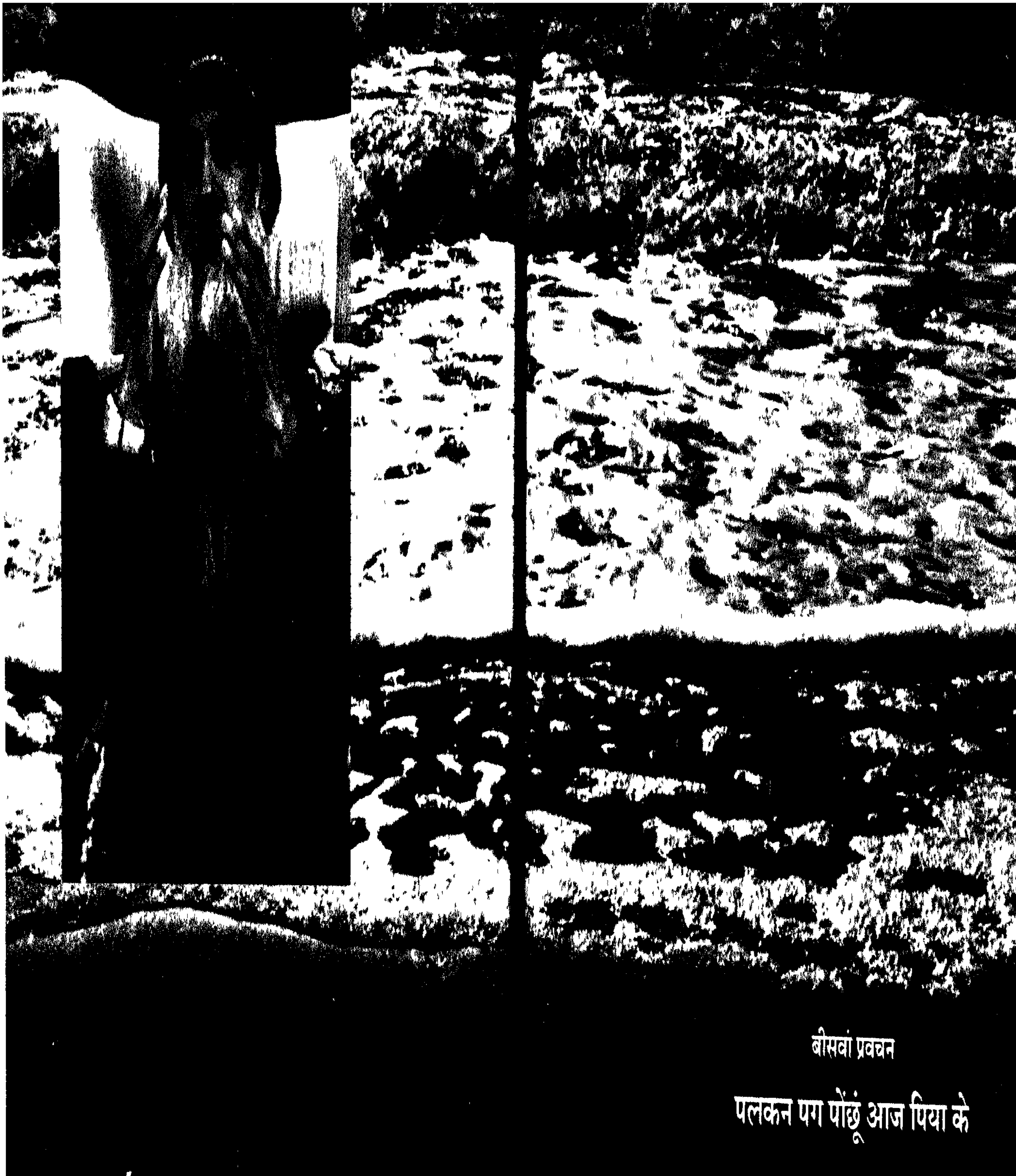
जीवन अल्प है। उसे व्यर्थ मे मत गवा दो। मदिर तुम्हारे भीतर है। अगर समय का तुम ठीक उपयोग करना सीख जाओ, सामायिक सीख जाओ—मदिर मे प्रवेश हो जाये।

समय को ससार मे लगाना और समय को ससार से मुक्त कर लेना—बस दो आयाम है।

समय को ससार से मुक्त करो। समय को ससार की व्यस्तता से मुक्त करो। सामायिक फलित होगी। अपने मे प्रवेश होगा। आत्मधन मिलेगा। आत्मगीत बजेगा। आत्मा का नर्तन। तन्मय होकर तुम डूबोगे।

आज इतना ही।





बीसवां प्रवचन

पलकन पग पोंछूं आज पिया के

प्रश्न-सार

आपको सुनने के बाद मुझे व्यवहारिक जीवन मे शिथिलता आती है।
लेकिन जब आप प्रेम और भक्ति पर बोलते है तो मन खिल जाता है।
कृपाकर मुझे मेरा मार्ग दे।

मेरे भीतर स्तब्धता, सन्नाटा-सा लग रहा है
और साथ ही अच्छे-बुरे विचारो का आक्रमण भी।
मै अपने को बहुत असहाय पा रही हू। भय लगता है।

आप महावीर की अहिसा पर, बुद्ध के शून्य पर, या कुछ भी बोलते है
तो उसमे अनिवार्यत· प्रेम जोड़ देते है।
क्या हम संन्यासियो मे प्रेम का अत्यत अभाव देखकर ही
प्रेम का पुन· पुन स्मरण कराते है?

मुझे समर्पण मे बहुत आनद आता है, ज्ञान से थोड़ा अहकार जगता है।
मै कौन-सा ध्यान करू—बताने की कृपा करे।

पहला प्रश्न आपको सुनने के बाद मुझे व्यवहारिक जीवन मे शिथिलता और उदासी का अनुभव होता है। लेकिन जब प्रेम और भक्ति, आनद और उत्सव पर आप बोलते है, तब मन खिल जाता है और आनद से भर जाता है। कृपापूर्वक मुझे मेरा मार्ग दे।

आनद कसौटी है। सत्य की चिता छोड़ो। जहा आनद है, उसी दिशा मे चल पड़ो। सत्य मिलेगा ही। असत्य की दिशा मे आनद हो ही नही सकता। इसीलिए तो हमने आनद को ब्रह्म की परिभाषा बनाया है। सच्चिदानद।

आनद कसौटी है। आनद पर कभी सदेह मत करना। अगर आनद न होगा तो जल्दी ही पता चल जायेगा। झूठा आनद ज्यादा देर टिकेगा नही।

डूबो। जहा से आनद की किरण आती है वही सूरज है सत्य का। तुम किरण को पकड़ लो और चल पड़ो। सत्य की चिंता ही छोड़ो। किरण पकड़ ली तो सूरज की दिशा पर चल पड़े। और आदमी के पास दूसरा कोई उपाय नहीं है। सत्य से ही पता चलेगा, क्या ठीक है। क्योकि जो ठीक है, वही जीवन को सगीत और आनद से भरता है।

और जब मै कहता हू, जो ठीक है, तो मेरा प्रयोजन व्यक्ति-व्यक्ति से है। जो तुम्हे ठीक है, जरूरी नही कि तुम्हारे पति को ठीक हो। जो तुम्हे ठीक है, जरूरी नही कि तुम्हारे बेटे को ठीक हो। जो तुम्हे ठीक है, जरूरी नहीं कि तुम्हारे भाई को ठीक हो, मित्र को ठीक हो, पड़ोसी को ठीक हो।

जो तुम्हारे लिए ठीक है, उसे भूलकर भी दूसरे पर आरोपित मत करना। वहीं हिसा शुरू हो जाती है। जो तुम्हारे लिए ठीक है, उसे जीना। और किसी को भी इतना अधिकार मत देना कि वह तुम्हारे ऊपर अपने ठीक को थोप पाये। क्योकि वही से गुलामी शुरू हो जाती है।

न किसी को गुलाम बनाना, न किसी के गुलाम बनना—तो ही तुम धार्मिक हो सकोगे।

और कसौटी एक ही है हाथ मे कि जहा तुम्हे आनद की पुलक मिले, वहा सरकते जाना। अगर झूठा होगा आनद—उस झूठे आनद को ही हम सुख कहते है।

सुख का अर्थ है जिसने धोखा दिया आनद का, लेकिन था नही। सुख का अर्थ है जाकर पता चला आनद नहीं है। दूर से ढोल सुहावना मालूम पड़ा था। मृगमरीचिका थी। दूर से कुछ और समझे थे, पास कुछ और सिद्ध हुआ। इसलिए मै तुमसे सुख से भी भागने को नही कहता, क्योकि अगर तुम भाग गये मृगमरीचिका को बिना देखे, तो सुख तुम्हारा सदा पीछा करेगा।

मै तुमसे कहता हू, सुख मे भी जाओ, ताकि वह दुख हो जाये। अगर वह दुख है तो दुख हो जायेगा, और अगर दुख नही है तो वहीं से तुम्हारी परमात्मा की सीढिया शुरू होगी।

लेकिन, मनुष्य के मन को आनद के लिए तैयार नही किया गया है। इसलिए प्रश्न उठता है। इसलिए तुम अपनी इस स्वाभाविक रुझान को भी समस्या बना लेते हो।

अगर वैराग्य की बाते तुम्हे रस नहीं देती—छोड़ो। तुम्हारे लिए न होगी। इसका यह अर्थ नही है कि वे बाते गलत है। वे

किसी और के लिए होगी। कोई महावीर उस रास्ते से चलकर पहुचेगा। कुछ प्रयोजन नही तुम्हे उनसे।

तुम्हारा हृदय तुम्हे प्रतिपल बताता है कि कौन-सी भूमि तुम्हारे फूल को खिलायेगी।

फिर हर वृक्ष के लिए अलग भूमि होती है। कोई वृक्ष रेत मे ही खड़ा होता है। कोई वृक्ष ककड-पत्थर चाहता है। कोई वृक्ष काली भूमि चाहता है कि जरा-भी ककड-पत्थर न हो। जो एक के लिए अमृत है, वह दूसरे के लिए जहर हो जाता है।

इसलिए सदा ध्यान रखना कोई वक्तव्य सत्य के सबध मे सार्वभौम नही है—व्यक्ति-सापेक्ष है।

वैराग्य की बात किसी को खिलाती होगी। असली सवाल खिल जाना है। किसी को मरुस्थल की रेत मे ही खिलने का सौभाग्य होता होगा। कैक्टस मरुस्थल मे ही खिलते है। उनका भी अपना सौदर्य है। गुलाब वहा न खिलेगे। गुलाब का अपना सौदर्य है।

तो अपने हृदय से कभी भी जबर्दस्ती मत करना। अगर व्यक्ति अपने हृदय की मानकर चलता रहे, और हृदय के अतिरिक्त, हृदय के विपरीत किसी की न माने, तो सत्य से तुम भटक न सकोगे, पहुच ही जाओगे।

जहा आनद न होगा और धोखा खाया, वहा धोखा कितनी देर चलेगा? प्यासे आदमी को कितनी देर झूठे पानी से समझाओगे, बुझाओगे? कितनी देर सात्वना दोगे? जल्दी ही उसे समझ मे आ जायेगा यहा कोई जलधार नही है। हा, लेकिन यह हो सकता है, उसे तुम इस झूठी जलधार के पास ही न पहुचने दो, तो कभी उसके अनुभव मे ही न आ सके कि मृगमरीचिका थी, वहा कुछ था नहीं। तो शायद उसके मन मे सपना अपने ताने-बाने बुनता रहे। शायद मन कहता रहे, वहा सुख था। वहा सुख था।

ऐसा ही मै तुम्हारे तथाकथित साधु-सन्यासियो मे देखता हू। ससार मे सुख नही है, ऐसा उनका अनुभव नहीं है। ऐसा किसी अनुभवी की बात को उन्होने मान लिया है। उनका स्वय का हृदय तो कह रहा था, सुख है। उस हृदय को तो इनकारा, अस्वीकार किया, किसी और को आरोपित कर लिया। अपने प्राणो की आवाज तो न सुनी, किसी और की आवाज पर चल पड़े। फिर उनका जीवन बड़े दुख से भर जाता है। क्योकि जहा उन्हे सुख दिखाई पड़ता था, वहा उन्हे अब भी दिखाई पडेगा।

आखे उधार नही मिलती और न दर्शन उधार मिलता है, मेरी आख से मै देख सकता हू। मेरी आख से तुम न देख सकोगे। मेरे लिए मै जी सकता हू, मेरे लिए तुम न जी सकोगे। और मेरे लिए मै ही मर सकता हू, तुम न मर सकोगे।

एक की जगह दूसरे के खड़े होने का कोई भी उपाय नही है। मगर वही हम धोखा देते है।

महावीर ने कहा है तो ठीक कहा होगा। ठीक ही कहा है। लेकिन तुम्हारे लिए कहा है, ऐसा महावीर को तुम्हारे हिसाब से बोलने का कोई कारण भी न था, तुम महावीर के सामने भी न थे। महावीर को तुम्हारा कोई पता भी नही है। महावीर ने तो अपना सत्य कहा है। इसे खयाल रखना।

यहा जो मै तुमसे कह रहा हू वह जरूरी नही है कि तुम्हारा सत्य हो। वह मेरा सत्य है, इतना जरूरी है। ऐसा मैने जाना। ऐसा तुम भी जानोगे, इसकी कोई अनिवार्यता नही है। जान भी सकते हो, न भी जानो।

मुझसे मेल खा जाओ, तुम्हारा व्यक्तित्व मुझसे मेल खाता हो, तो शायद जो मेरा सत्य है वह तुम्हारा भी अनुभव बन जाये। लेकिन अगर व्यक्तित्व मेल न खाता हो, तो मेरा सत्य तुम्हारे ऊपर-ऊपर रहेगा, भीतर-भीतर तो तुम्हारा ही सत्य रहेगा।

सभी दर्शन आत्म-कथाए है, 'आटो-बायोग्राफिकल' है। व व्यक्ति के सबध मे है।

जब महावीर कुछ कहते है, तो वह महावीर के सबध म सूचनाए है, जब बुद्ध कुछ कहते है तो बुद्ध के सबध मे। जब मीरा नाचती है और नाच से कुछ कहती है, तो अपने सबध मे कह रही है।

सत्य के सबध मे जितनी उदघोषणाए है, वह उन व्यक्तियो की उदघोषणाए है जिन्होने सत्य को जाना। उनके माध्यम से सत्य आया। सत्य ने एक रूप लिया। जरूरी नहीं है वही रूप तुम्हारे लिए ठीक हो। तुम कैसे समझोगे?

कुछ लोग है, जो इसलिए मान लेते है किसी की बात को, क्योकि और लोग उसकी बात को मानते है। अगर जीसस को एक अरब आदमी मानते है तो कुछ तो इसीलिए मान लेगे कि जिसको एक अरब मानते है, वह गलत कैसे हो सकता है?

लेकिन ध्यान रखना, यह भी सभव है कि एक अरब जिसे मानते हो वह तुम्हारे लिए न हो। वह एक अरब के लिए भी सही

हो और फिर भी तुम्हारे लिए सही न हो। क्योंकि परमात्मा एक-एक व्यक्ति को अनूठा रचता है, एक-एक व्यक्ति को अद्वितीय रचता है। यही तो मनुष्य की महिमा है।

मनुष्य की तो छोड़ दो फिक्र, एक पत्ते को इस बगीचे से तुम खोज लो, फिर वैसा पत्ता तुम सारी पृथ्वी पर खोजकर भी दूसरा न पा सकोगे।

एक ककड उठा लो मार्ग से, फिर अनत-अनत चाद-तारो पर भी खोजते रहो तो ठीक वैसा ककड़ तुम्हे दुबारा न मिलेगा।

परमात्मा कोई फोर्ड-कार बनानेवाली असेबली-लाइन नहीं है कि एक-सी कारे। परमात्मा कोई मैकेनिक नही है, तकनीशियन नही है—कलाकार है।

जितना बडा कवि होगा, उतना ही दुबारा किसी गीत को नही दोहराता। जितना बडा चित्रकार होगा, दुबारा फिर उसी चित्र को नही बनाता। दुबारा अगर बना भी ले वैसा चित्र तो आनद अनुभव नही करता।

ऐसा हुआ कि एक आदमी ने पिकासो का एक चित्र खरीदा। कई लाख रुपये का चित्र था। तो स्वभावत वह पता कर लेना चाहता था कि चित्र नकली तो नही है। तो वह पिकासो के पास ही उस चित्र को लेकर गया। और उसने पिकासो से कहा कि मै यह खरीद रहा हू, लाखो रुपये का मामला है, मै इतना पूछने आया हू कि यह असली है? तुम्हारा ही बनाया हुआ है, किसी की नकल तो नही?

पिकासो ने उस चित्र की तरफ बडी बेरुखी से देखा और कहा, नकली है, किसी और का बनाया है। पिकासो की प्रेयसी मौजूद थी और वह बडी चकित हुई, क्योंकि यह चित्र उस प्रेयसी के सामने ही बनाया गया था। और पिकासो ने ही बनाया था। उसने कहा कि शायद तुम भूल रहे हो, शायद तुम्हारी स्मृति तुम्हे धोखा दे रही है। यह चित्र तुमने मेरे सामने बनाया है। यह तुम्हारा ही बनाया हुआ है।

पिकासो ने कहा, मैंने बनाया है, लेकिन फिर भी नकली है। क्योकि इसे मै पहले भी बना चुका हू। इसको असली कहना ठीक नही है, आथैंटिक नहीं है। एक दफा जो बना चुके, बात पुरानी हो गई। अब उसे कोई दूसरा नकल करे या मै खुद ही उसकी नकल करू, इससे क्या फर्क पड़ता है? लेकिन यह चित्र मै पहले भी बना चुका हू। यह सिर्फ प्रतिध्वनि है, छाया है; असली नहीं है।

परमात्मा दोबारा कोई चीज बनाता नहीं। परम कलाकार है। ऐसा थोडे ही है कि जगत चुक गया है, कि अब उसे कुछ सूझता नही, कि फिर महावीर को बना दे, फिर राम को बना दे, फिर कृष्ण को बना दे।

देखा तुमने, न महावीर दुबारा, न कृष्ण दुबारा, न राम दुबारा। जो एक बार आता है, फिर दोबारा पर्दे पर आता ही नहीं। इसे स्मरण रखना।

तुम भी नये हो। सीख सबसे लेना, मानना अपनी। सुनना सबकी, अतिम निर्णय हृदय से लेना।

तो अगर वैराग्य की बाते सुनकर शिथिलता और उदासी आती है, हृदय का फूल खिलता नही, कुम्हलाता है, कली फूल नही बनती, उलटा फूल अपनी पखुड़िया बद कर लेता है—जैसे साझ सूरज के डूब जाने पर बहुत-से फूल अपनी पखुडिया बद कर लेते है—तो समझ लेना, यह सत्य तुम्हारा सूरज नही। यह होगा सत्य किसी और का, क्योकि कुछ फूल है जो सूरज के डूबने पर ही खिलते है। रातरानी है उसका होगा, तुम्हारे लिए नही है। तुम्हारा रास्ता फिर बिलकुल साफ है।

जहा तुम्हे आनद की झलक मिले, साहस करके वहा जाना। जरूरी नही है कि हर बार तुम वहा आनद पाओगे, यह मै नहीं कह रहा हू। बहुत बार तुम पाओगे वहा कुछ भी न था, राख का ढेर था। लेकिन तब भी अनुभव होगा। तब भी जीवन मे प्रौढता आयेगी। राख का ढेर देखकर समझ आयेगी। आगे राख के ढेर पहचानने की कला आयेगी। दुबारा धोखा मुश्किल होगा। तीसरी बार धोखा असभव हो जायेगा। फिर एक ऐसी घडी आ जायेगी कि कितना ही लोभक दृश्य हो, तुम दूर से भी पहचान पाओगे कि कहा राख है, कहा अगार है, कहा जीवन है, कहा सब बुझा-बुझा है।

भूल-भूल करके ही आदमी सीखता है। गलत को गलत जान लेना सही की तरफ जाने का उपाय है। भ्रात को भ्रात पहचान लेना, निर्भ्रात होने की व्यवस्था है।

तो मै तुमसे कहता नही कि तुम जल्दी भाग जाना, मेरी मानकर भाग जाना। तुम तो अपने ही अनुभव से जाना। होगा सुख, तो स्वर्ग का रास्ता बनेगा। नही होगा सुख, तो अनुभव जगेगा।

एडीसन एक प्रयोग कर रहा था। उसमे सात सौ बार हारा।

उसके सारे साथी-सहयोगी रुष्ट हो गये, परेशान हो गये। उसके विद्यार्थी तो घबड़ा गये कि अब यह कब खतम होगा, क्या पूरा जीवन यह एक ही प्रयोग मे करते रहना है, सात सौ बार। तीन साल खराब हो गये। एक दिन उसके सब सहयोगियो ने कहा, 'आप सुनिये। आप तो रोज सुबह फिर प्रसन्नचित्त आ जाते है और फिर काम शुरू कर देते है, लेकिन हमारा भी सोचिये। यह जिदगी इसी मे गवानी है? सात सौ दफे हार चुके, अब छोड़िये भी। कुछ और करिये।'

एडीसन ने कहा कि तुमसे किसने कहा कि मै सात सौ बार हार चुका? मै तो हर बार जीत के करीब आ रहा हू। समझो कि सात सौ एक दरवाजे है उसके, तो सात सौ दरवाजे तो हम खटखटा चुके, वहा नही था द्वार, दीवाल थी। वह दरवाजे झूठे थे। अब हम रोज-रोज करीब असली दरवाजे के आ रहे है। कितनी देर यह चलेगा। तो सात सौ बार हम असफल हुए, यह तुमसे किसने कहा? हर कदम हमे सफलता के करीब लाया है। हर विफलता सफलता के करीब लाती है। सात सौ बार के अनुभव ने हमे काफी प्रौढ़ बना दिया है। हमारी परख पैनी हो गई है। अब हमे वो सात सौ मार्ग भटका नही सकते। और निश्चित ही ठीक मार्ग के हम करीब आ रहे है। कितनी देर होगा, यह तो कहना मुश्किल है।

और कहते है, उसके कोई पद्रह दिन बाद ही एडीसन सफल हो गया। उसने बिजली का पहला बल्ब बना लिया। आज सारी दुनिया उसकी वजह से रोशन है।

जो बाहर के प्रकाश की खोज के सबध मे सही है, वही भीतर के प्रकाश की खोज के सबध मे भी सही है।

जहा सुख मिले—जाना।

मै यहा तुम्हे डराने को नहीं हू। डरकर कभी कोई जागा? मै तुम्हे घबड़ाता नही हू। मै तुमसे कहता हू, जाओ। साहस से, हिम्मत से। होगा सुख तो एक कदम और तुमने प्रभु की तरफ लिया। नहीं होगा सुख, तो भी एक कदम प्रभु की ओर लिया। एक द्वार बद हुआ। इस तरफ जाने मे कोई सार नही। एक रास्ता गलत हुआ। सही रास्ते के करीब आने लगे।

हृदय की सुनो। तो अगर भक्ति, प्रेम और उत्सव की बात सुनकर तुम्हारे हृदय मे कोई धुन बजती है, तुम्हारे हृदय की वीणा कपित होने लगती है, तो वही तुम्हारा मार्ग है। फिर वैराग्य की बातो को बीच-बीच मे मत डालना। क्योकि फिर तुम सब विकृत कर दोगे। एक बार साफ हो गया कि प्रेम की चर्चा तुम्हे उमग से भर देती है तो फिर तुम विरागियो की चर्चा की बात ही छोड़ देना। फिर वह रास्ता तुम्हारे लिए नहीं है। फिर उनकी बात तुम्हे झझट मे डाल देगी। प्रेमी की बात बड़ी अलग है।

इश्क हायल है तेरे मिलने मे
हमसे ये पर्दा हटाया न गया।

विरागी कहता है कि प्रेम को हटा लो तो परमात्मा से मिल जाओ। प्रेमी कहता है इश्क हायल है तेरे मिलने मे। लोग कहते है कि प्रेम के कारण हम तुझसे नहीं मिल रहे है, होगा यही सही। हमसे यह पर्दा हटाया न गया। लेकिन हम यह पर्दा न हटा सकेगे। हम तो, अगर प्रेम के कारण ही तू चूक रहा है तो चूके चले जायेगे, लेकिन यह प्रेम हमसे न हटाया जायेगा।

भक्त के लिए तो प्रेम ही परमात्मा है। ज्ञानी के लिए प्रेम बाधा है। वह प्रेम को कहता है, राग। हटाओ। वैराग्य को जगाओ। तो ही सत्य मिलेगा।

प्रेमी और भक्त कहता है, पर्दे को नहीं हटाना, अपने को मिटा देना है। प्रेम ही प्रेम रह जाये, तुम न बचो।

इश्क हायल है तेरे मिलने मे
हमसे यह पर्दा हटाया न गया।
तुझको देखा तो सेर चश्म हुए
तुझको चाहा तो और चाह न की।

—आखो की सारी भूख मिट गई तुझे देखते ही। तेरी झलक पाते ही।

तुझको देखा तो सेर चश्म हुए
तुझको चाहा तो और चाह न की।

विरागी कहता है, सब चाह छोड़ो तो परमात्मा मिलेगा। प्रेमी कहता है, उसकी चाह आ गई तो सब चाह अपने से छूट जाती है, छोड़ने की झझट प्रेमी को नहीं है। उसकी चाह काफी है।

तुझको देखा तो सेर चश्म हुए
तुझको चाहा तो और चाह न की।

फिर उसको चाहने के बाद कहीं कोई और चाह बचती है।

पर ये दोनो अलग-अलग मार्ग है। विरागी कहता है, सब चाह छोड़ो—इतना कि परमात्मा की चाह भी छूट जाये। वह भी एक रास्ता है। अचाह मे डूब जाओ। परमात्मा तक की चाह न

बचे—उतनी भी चाह की रेखा न रह जाये भीतर। परिपूर्ण अचाह में खड़े हो जाओ। जरा भी कपन न रह जाये चाह का, वासना का। उसी घड़ी मिलन।

प्रेमी कहता है, उसकी चाह मे ऐसे डूब जाओ कि तुम न बचो, तुम्हारी सारी जीवन-ऊर्जा बस उसकी चाहत, उसका प्रेम बन जाये। उसी घड़ी मिलन।

दोनो तरफ से मिलन हुआ है। दोनो मे कौन ठीक और गलत, इस तरह कहने की बात ही नासमझी है। इतना ही देख लेना, तुम्हारा हृदय किसके साथ खिलता है।

तन से तो सब भाति विलग तुम
लेकिन मन से दूर नही हो
जुड़े न पडित, सजी न वेदी
वचन हुए न मत्र उचारे
जनम-जनम को किंतु वधू यह
हाथ बिकी बेमोल तुम्हारे
झूठे-सच्चे, कच्चे-पक्के
रिश्ते जितने दुनियाभर के
सबसे तुम मुक्त, प्रेम
के वृदावन से दूर नही हो।
तन से तो सब भाति विलग तुम
लेकिन मन से दूर नही हो।

और सब नाते-रिश्ते होगे ससार के, लेकिन भक्त कहता है, प्रेम का नाता ससार का नही है। प्रेम तो वृदावन है। वह कोई नाता नहीं है। वह कोई बनने मिटनेवाली बात नहीं है। वह कोई सबध नहीं है। वह तो एक आनद की, अहोभाव की दशा है। वृदावन है।

झूठे-सच्चे, कच्चे-पक्के
रिश्ते जितने दुनियाभर के
सबसे तुम मुक्त, प्रेम
के वृदावन से दूर नहीं हो।

और सब होगा बाधा। प्रेम—और बाधा! भक्त को बाधा नही दिखाई पड़ती। भक्त तो प्रेम से ही उसके पास पहुचता है। प्रेम मे डूबकर ही उसमे डूबता है।

ये विरागी की और प्रेमी की अलग-अलग भाषाए है। इनमे जो भाषा तुम्हारे हृदय मे रम जाये, जिस भाषा की वर्षा में तुम्हारे भीतर के बीज फूटने लगे, जिस भाषा के सपर्क मे तुम्हारा व्यक्तित्व निखार लेने लगे, रस जगे, गीत जगे, नृत्य उठे—तो फिर समझना कि हृदय साफ-साफ इशारा कर रहा है किस तरफ चलो। फिर और सारी चिंताए छोड़ देना—किस घर मे पैदा हुए, किस धर्म मे पैदा हुए, कौन-सा सिखावन, कौन-सी शिक्षा दी गई, कौन-सा शास्त्र पकड़ाया गया, फिर सब गौण है। हृदय से परमात्मा ने बोल दिया कि तुम्हारे लिए जाने का रास्ता कौन है।

लेकिन ऐसा सभी को न होगा।

यहा कुछ है जिनको प्रेम की बात सुनकर बेचैनी शुरू हो जाती है, घबड़ाहट शुरू हो जाती है। विराग की बात सुनकर वह शात बैठ जाते है, कि अब चलो ठीक बात हुई। वह भी गलत नहीं है। उनको जो रुचता है, उनको जो पचता है। वे शायद जीवन मे काफी जले है। और जैसा दूध का जला छाछ भी फूक-फूककर पीने लगता है, प्रेम ने शायद उन्हे काफी जलाया है। यद्यपि जो प्रेम उन्होने अब तक जाना था, वह बिलकुल ही क्षुद्र था, व्यर्थ था, नाममात्र को था। लेकिन उसने इतना जला दिया है कि अब तो वह परमात्मा की भक्ति की बात या प्रेम की बात सुनकर भी चौक जाते है। वे छाछ को भी फूक-फूककर पीते है। मगर ठीक, अगर विराग से उनके हृदय का भाव खुलता है, शाति मिलती है और एक सुख की दशा पैदा होती है, तो वही ठीक। उसी से वे चले।

और जिस बात पर मै जोर देना चाहता हू, वह यह कि कभी भूलकर भी किसी को तुम अपनी भाति चलाने की चेष्टा मत करना। यह चेष्टा हम सबके मन मे पैदा होती है। यह हमारे अहंकार का बड़ा गहरा हिस्सा है। हम दूसरे को अपनी प्रतिछवि में बनाना चाहते हैं। बाप अपने बेटे को ढालना चाहता है ठीक अपने जैसा। मा अपनी बेटी को ढालना चाहती है ठीक अपने जैसी। मित्र मित्र को ढालने में लग जाता है। हम सब इस चेष्टा में होते हैं कि अगर हमारा बस चले तो सारी दुनिया को हम अपनी प्रतिछवि मे ढाल दे। इससे अहकार को बडी तृप्ति मिलती है। इससे मैं तो हो जाता हूं आदर्श, और सभी हो जाते है मेरी छायाए। इससे मै तो हो जाता हू सभी जीवन का मापदड। इस भ्राति से थोड़े सजग होना।

तुम्हे अपना सत्य खोजना है। और सभी सत्य निजी सत्य है। दूसरे पर थोपना नहीं है। तो न तो थोपना और न किसी को थोपने

देना। अगर इन दो बातो से तुम बच गये—क्योकि बड़ा खतरा यह है कि जो नही थोपते, वे दूसरो को थोप लेने देते है। जो दूसरे को नहीं थोपने देते, वे खुद दूसरो पर थोप देते है।

इस दुनिया मे वस्तुत समझपूर्वक जीना बड़ा कठिन है। समझ के दोनो तरफ नासमझी की अतिया है।

मैक्यावली ने कहा है, इसके पहले कि कोई तुम पर आक्रमण करे, तुम आक्रमण कर देना। क्योकि यही सुरक्षा का सर्वोत्तम उपाय है। तो यहा प्रत्येक व्यक्ति यही कोशिश कर रहा है कि इसके पहले कि कोई तुम्हारी गर्दन पकड़े, तुम पकड़ लो। इसके पहले कि तुम्हे कोई बदले, तुम बदल दो। इसके पहले कि तुम्हारी कोई परिभाषा करे, तुम परिभाषा कर दो।

तुमने देखा, पूरे जीवन हम एक-दूसरे को परिभाषित कर रहे है, हम हजार-हजार तरकीबो से एक-दूसरे की परिभाषा करते है। पति खडा है, कार मे हार्न बजा रहा है, पत्नी देर लगाती है—वह यह घोषणा कर रही है देर लगाकर कि खडे रहो, मालिक कौन है, जाहिर हो जाना चाहिए। वह पति को परिभाषा दे रही है।

ध्यान रखना, जो जिसको प्रतीक्षा करवा सकता है, वह उसकी परिभाषा कर देता है। तुम दफ्तर मे गये किसी से मिलने तो मैनेजर तुम्हे बिठा रखेगा थोडी देर, चाहे उसको कोई काम न हो। क्लर्क भी तुम्हे बड़ी देर बाद देखेगा, चाहे वह कुछ भी न कर रहा हो। वह वैसे ही अपने रजिस्टर उलटने लगेगा, क्योकि वह तुम्हे परिभाषा देना चाहता है कि साफ हो जाना चाहिए कि यहा कौन मालिक है।

मै तुमको प्रतीक्षा करवा सकता हू, तो मै मालिक हू।

जो प्रतीक्षा करवा सकता है वह ऊपर है। तो पति भी साझ को क्लब-घर मे देर तक बैठा ताश खेलता रहता है, पत्नी को राह दिखवाता है कि घर बैठी रहो, करती रहो प्रतीक्षा खाने के लिए। जरा देर करके ही आयेगा। वह यह साफ बता देना चाहता है कि कौन मालिक है।

तुमने देखा, बड़े नेता सभा मे आये तो हमेशा देर से आयेगे। बड़ा नेता, और वक्त पर आ जाये। यह बात हो ही नही सकती। जितना बड़ा नेता, उतनी देर करके आयेगा। उतनी लोगो को प्रतीक्षा करवा देगा। उनको जाहिर करवा देगा कि तुम कौन हो, तुम्हे साफ हो जाना चाहिए।

जीवनभर हम एक-दूसरे को दबाने की चेष्टा करते है—जाने-अनजाने उपायो से। बाप बेटे को बदलना चाहता है। बदलने की चेष्टा मे सिर्फ वह यह कहना चाहता है कि मालिक मै हू। बेटा भी बडा होकर इस बूढे बाप को बदलने की चेष्टा करेगा, क्योकि तब बाप कमजोर होने लगेगा। तब बेटा इसको समझाने लगेगा कि क्या करना उचित है और क्या करना उचित नही है, कि तुम सठिया गये हो, कि तुम्हारी बुद्धि तुमने खो दी, कि तुम्हे इस दुनिया का पता नही है जो आज है, तुम जिस दुनिया की बाते कर रहे हो, वह गई-गुजरी हो चुकी, अब तुम मेरी सुनो।

इस जगत मे इन दोनो अतियो से बचना बड़ा कठिन है। मगर जो बच जाये वही साधक है। न तो तुम दूसरे को दबाने की कोशिश करना और न किसी को अवसर देना कि तुम्हे दबा दे। एक बात तुम माफ कर देना कि चाहे कोई भी कीमत हो, कितनी ही जोखिम हो, मै अपने हृदय की मानकर चलूगा। चाहे सब खोना पडे। इसी को मै सन्यास की भाव-दशा कहता हू।

सन्यास कोई बाह्य कृत्य नही है—एक भीतरी अतर्घोषणा है कि अब से मै अपने हृदय की मानकर चलूगा, चाहे इसके लिए मुझे सब गवाना पड़े, चाहे इसके लिए मुझे दीन-दरिद्र हो जाना पडे, चाहे राह का भिखारी हो जाना पडे। राह के भिखारी होने की जरूरत नही है, लेकिन अगर यह भी होना पडे तो मेरी तैयारी है, लेकिन अब एक बात मैने तय कर ली कि अपने हृदय के अतिरिक्त और किसी की मानकर न चलूगा। अब मेरा हृदय ही मेरा वेद होगा। और मेरा हृदय ही मेरी भगवदगीता होगी। हृदय ही मेरा कुरान और मेरी बाइबिल होगी।

और तुम चकित होओगे कि जिस दिन तुम हृदय की सुनने लगोगे, उस दिन तुम्हारे जीवन मे गति आ जायेगी। कुछ अड़चने आयेगी समाज की तरफ से, दूसरो की तरफ से, क्योकि कल तक जिनकी तुमने मानी थी, अचानक वे इतने जल्दी राजी न हो जायेगे। वे इतनी जल्दी स्वीकार न कर लेगे। लेकिन भीतर तुम पाओगे उमग आ गई। तरग आ गई। एक ज्वार आ गया शक्ति का। भीतर तुम पाओगे कि अब तुम दीन-दरिद्र नही हो, तुम सम्राट हो गये।

तो जो तुम्हे रुचे। विराग तो विराग। उससे भी लोग परमात्मा तक पहुचे है। भक्ति तो भक्ति।

दूसरा प्रश्न मेरे भीतर जैसे स्तब्धता, सन्नाटा-सा लग रहा है। खाली-खाली, शून्यता जैसे छा गई हो। और साथ ही अच्छे-बुरे विचारो का आक्रमण भी हावी होता रहता है। मै क्या करू? मै बावरी-सी हो गई हू। मै अपने को बहुत असहाय, अकेली और असुरक्षित पा रही हू। भय लगता है।

'सरोज' का प्रश्न है।

ऐसा होता है। ऐसा होना स्वाभाविक है। क्योकि जैसे ही हम भीतर जाते है, हम अकेले हो जाते है। इसीलिए तो लोग भीतर जाने से डरते है।

बाहर है और लोग, भीतर तो कोई भी नहीं। भीतर तो तुम हो और बस तुम हो। बाहर अनत लोग है, चहल-पहल है। भीतर तो सन्नाटा है। बाहर बहुत भरावट है, भीतर तो शून्य है। और जन्मो-जन्मो तक हम बाहर जीए, सबधो मे जीए, औरो के साथ जीए, भीड-बाजार, घर-गृहस्थी—हजार व्यस्तताए।

तो जब भीतर चलना शुरू करोगे तो अचानक अनुभव मे आना शुरू हो गया, वह सब तो दूर छूट गया और इस भीतर तो तुम्हारा निकटतम प्रियजन भी नही आ सकता। यह तो तुम्हारा नितात एकात है। यह तो इतना निजी है, इतना प्राइवेट है कि तुम अपने प्रेमी को भी इसमे निमत्रित न कर सकोगे। यहा तो बस तुम हो और तुम हो।

तो शुरू-शुरू मे बड़ी निस्तब्धता, सन्नाटा, सूनापन नकारात्मक मालूम होगा।

राह देखी नही और दूर है मजिल मेरी
कोई साकी नहीं, मै हू, मेरी तन्हाई है।

घबडाहट भी होगी, क्योकि राह देखी नहीं, मजिल का कोई पक्का पता नहीं कहा है, कहा जा रहे है, क्या हो रहा है। मील के पत्थर भी नहीं है भीतर। कौन लगायेगा मील का पत्थर? कोई नक्शा भी नहीं है भीतर का। कौन देगा नक्शा? वहा कोई हाथ लेकर चलानेवाला भी नही है। तो अचानक आदमी असहाय मालूम होता है।

इस असहाय अवस्था से अगर गुजर गये, अगर इस असहाय अवस्था को शाति से पार कर लिया, तो तुम्हारे जीवन मे पहली दफा आत्मबल का जन्म होगा। लेकिन उसके पहले असहाय अवस्था से गुजर जाना जरूरी है। जब झूठी चीजे हाथ से छूटती है, तो हाथ खाली हो जाते है। हाथो का खाली हो जाना सत्य के उतरने के लिए अत्यत जरूरी है। लेकिन व्यर्थ के जाने और सत्य के आने के बीच मे थोड़ा अतराल है। उस अतराल मे बड़ी पीड़ा होती है। उस अतराल को जो पार नही कर पाता, वह घबड़ाकर फिर बाहर निकल आता है।

इसीलिए 'सरोज' ने पूछा है 'एक तरफ खाली-खालीपन और शून्यता छा गई है और दूसरी तरफ अच्छे-बुरे विचारो का आक्रमण भी होता रहता है।'

वह आक्रमण इसीलिए हो रहा है। वह आक्रमण हो रहा है, ऐसा नहीं, बल्कि तुम चेष्टा कर-करके अच्छे-बुरे विचारो को पकड़ रही हो, ताकि भीतर जो निस्तब्धता है वह एकदम भयावनी न हो जाये। कुछ तो सहारा रहे। विचार ही सही, कुछ तो तरगे उठती रहे, तो कुछ व्यस्तता बनी रहे।

लोग खाली होने की बजाय दुखी होना भी पसद करते है, क्योकि कम से कम दुख तो है। कुछ तो है हाथ मे। हाथ बिलकुल खाली तो नहीं। ककड़-पत्थर सही, न हुए हीरे-जवाहरात। लेकिन कोई यह तो नही कह सकता कि कुछ भी नही है।

अधिक लोग दुख को भी नही छोडते, क्योकि उनको डर लगता है—छोड दिया इतने दिनो का सग-साथ, तो अकेले हो जायेगे।

तुमने कभी खयाल किया, बहुत दिन बीमार रहने के बाद अगर तुम बिस्तर से उठो तो बडी बेचैनी मालूम पड़ती है अब कहा जाये। अब तो बिस्तर पर होना जीवन की शैली हो गयी थी। अगर दो-चार साल बिस्तर पर रह गये, तो जो आदमी दो-चार साल बिस्तर पर रह जाता है, फिर वह उठता ही नही, इसलिए नही कि बीमारी ठीक नही होती, बीमारी ठीक भी हो जाये तो अब वह बीमारी को पकड लेता है। चिकित्सक इस घटना से भलीभाति परिचित है कि अगर बीमारी ज्यादा दिन रह जाए तो बीमार को फिर ठीक करना मुश्किल हो जाता है। क्योकि उसकी बीमारी आदत का हिस्सा हो जाती है। अब बीमारी को वह अपने जीवन के ढग मे समा लेता है। अब इस ढग को छोडने मे अडचन होगी।

अगर तुम एक दुख के आदी हो गये हो तो तुम उस दुख को सम्हाले रहोगे।

इसलिए अकसर मै देखता हू कि लोग दुख की सीमाए और स्थितियो को भी छोड़ते नहीं। अगर किसी पत्नी से तुम्हारा जीवन सतत कलह मे गुजर रहा है तो भी तुम अलग नहीं होते। या किसी पति के साथ जीवन एक नारकीय स्थिति बन गई है, तो भी अलग नहीं होते। क्यो? हजार बहाने तुम खोजते हो, लेकिन वह सब बहाने है। मौलिक बात यह है कि अब इस दुख की भी आदत हो गई है।

और एक बड़ा अनुभव पश्चिम मे आना शुरू हुआ है, जहा कि लोग काफी पति-पत्निया तीव्रता से बदलते है। एक अनुभव आना शुरू हुआ है कि जो आदमी एक पत्नी को छोड़कर दूसरी पत्नी को खोजता है, वह फिर करीब-करीब वैसी ही स्त्री को खोज लेता है जैसी उसने छोड़ी। उसी तरह की कर्कशा या उसी तरह की उपद्रवी। छोड़ा नही है अभी एक को, और वह दूसरी को फिर वैसा का वैसा खोज लेता है। क्या कारण होगा? अब तो उसको उसी तरह की स्त्री मे रस आने लगा। तो अब वह फिर खोज लेता है। उसकी चाह का ढग रुग्ण हो गया। अब वह गलत की तरफ उत्सुक हो जाता है। वह फिर वैसी ही व्यक्तित्ववाली स्त्री को खोज लायेगा, जो फिर कहानी को दोहरायेगी। फिर त्याग करेगा।

एक आदमी के बाबत मनोवैज्ञानिको ने अध्ययन किया। उसने आठ तलाक किये और हर बार वैसी ही पत्नी खोज लाया।

आदमी तो वही है—खोजनेवाला वही है—तो फिर वही खोज लायेगा।

तुम जरा खयाल करना अपने जीवन मे, तुमने बहुत-से दुख पकड़ तो नहीं रखे है जो कि जाना चाहते हैं, लेकिन तुम नहीं जाने दे रहे हो।

तो जब व्यक्ति को सन्नाटा होगा तो वह पुराने विचारो को आमत्रित करेगा, बुलायेगा। वह आक्रमण नही है, तुम्हारा बुलावा है। क्योंकि उस भाति थोड़ी देर को भीतर की रिक्तता भर जाती है। उथल-पुथल मच जाती है।

विचार है, क्रोध है, झगड़ा है, कोई सपना है, कोई योजना है—उतनी देर को तुम अपने भीतर के आकाश को भर लेते हो। उतनी देर को शून्य भूल जाता है।

शून्य मे रस लो, तो धीरे-धीरे ये विचार समाप्त हो जायेगे। यह शून्य बडा महिमाशाली है। शून्य को ही तो ध्यान कहा है। सौभाग्य से मिलता है। अब मिल गया है तो इसे खराब मत करो। अब तो इस शून्य मे डूबो। यद्यपि प्राथमिक चरण पर डूबना ऐसा ही लगेगा, जैसा मरे, मौत हुई।

और एक अर्थ मे ठीक भी है, तुम तो मरोगे ही। तुम जैसे अब तक रहे हो, इस शून्य मे डूबोगे, मिट जाओगे। नये का जन्म होगा, आविर्भाव होगा।

'क्या करू? मै बावरी-सी हो गई हू।'

पागलपन जैसा ही लगेगा। भीतर जाओ तो शून्यता, बाहर आओ तो व्यर्थ के विचारो का ऊहापोह है। बाहर आओ तो कोई सार नही है और भीतर जाओ तो घबड़ाहट। एक अनत शून्य मुह-बाए खडा है। तो पागलपन मालूम पडेगा। यह पागलपन तभी तक मालूम होगा जब तक शून्य से रस नही बैठता।

शून्य मे रस लो, पहचान बनाओ। शून्य को गुनगुनाओ। शून्य को नाचो। जब शून्य आ जाये तो अहोभाव अनुभव करो। परमात्मा को धन्यवाद दो। यह उसकी अनुकपा है।

शून्य इस जगत मे परमात्मा की सबसे बड़ी देन है, प्रसाद है। थोड़े-से सौभाग्यशाली लोगो को मिलता है। और जिनको मिलता है, वे भी सभी सम्हाल नही पाते। बहुत-से तो उसे नष्ट कर देते है। क्योकि वह देन इतनी बड़ी है कि तुम्हारी पात्रता छोटी पड जाती है।

'मै अपने को बहुत असहाय, अकेली, असुरक्षित पा रही हू ।'

कोई हर्जा नही। मन कहेगा, कोई सुरक्षा खोज लो। मन कहेगा, किसी तरह किसी को अपने इस एकात मे ले आओ। वह अगर भूल की तो शून्य की शुद्धता नष्ट हो जायेगी। फिर ससार निर्मित हो जायेगा। ऐसे ही तो हम बहुत बार वापिस कोल्हू के बैल बन जाते है।

अब यह एक खिड़की खुली है, इसे बद मत कर देना। असहाय मालूम होते हो, असहाय सही। स्वीकार करो। असुरक्षित मालूम होते हो, असुरक्षित सही। स्वीकार करो। यह जो तथ्य सामने प्रगट हो रहा है, इसे इनकार मत करो और बदलने की चेष्टा मत करो। इसे भरपूर नजर देखो, अहोभाव से दखो, कृतज्ञता से देखो। कहो कि प्रभु ने यही चाहा कि शून्य होना है, जरूर शून्य से ही जन्म होता होगा। यह मेरी राह शून्य के मदिर से ही गुजरती है, तो इससे गुजर जाना है।

जल्दी ही इस शून्य का चेहरा बदलना शुरू हो जायेगा। अगर तुमने इसे स्वीकार किया तो इस शून्य मे तुम्हे सौदर्य दिखाई पड़ने लगेगा। जिसे हम स्वीकार करते है, उसमे सौदर्य दिखाई पड़ने लगता है। इसलिए तो अपनी मा किसी को असुदर नही मालूम होती। अपना बेटा किसी को असुदर नही मालूम होता। जिसे हम स्वीकार करते है, वहा सौदर्य का आविर्भाव हो जाता है। सौदर्य हमारे स्वीकार से पैदा होता है।

सौदर्य कही बाहर कोई गुण नहीं है—हमारे स्वीकार की छाया है। स्वीकार करो—और सौदर्य पूर्ण बनने लगेगा। स्वीकार करो—और सौदर्य मे बडा आनद आने लगेगा। स्वीकार करो—और शून्य शाति, और परम शाति का धाम बन जायेगा। अगर अस्वीकार किया तो दौड़कर बाहर जाने के अतिरिक्त कोई उपाय नही है। और बाहर से ही तो थककर भीतर आ रहे थे। फिर बड़ी विक्षिप्तता पैदा होगी।

शून्य परमात्मा का पहला अनुभव है। पूर्ण परमात्मा का अतिम अनुभव है। शून्य की तरह परमात्मा आता है, पूर्ण की तरह विराजमान होता है। शून्य की तरह आता है, क्योकि हमारा मिटना जरूरी है। शून्य की तरह आता है, क्योकि हम सिर्फ कूडा-कर्कट का ढेर है। हमे आग देना जरूरी है, ताकि हम जल जाये और वही बचे जो कुदन है। सिर्फ शुद्ध स्वर्ण बचे और कचरा जल जाये।

तो जब सुनार सोने को आग मे डालता है तो सोना भी घबड़ाता होगा, चितित होता होगा, बच जाना चाहता होगा, अगीठी के बाहर आ जाना चाहता होगा। लेकिन उसे पता नहीं कि सुनार की आकाक्षा क्या है। सुनार सोने को नही जलाना चाहता। और सुनार भलीभाति जानता है कि सोना जलता नही। जो जल जाये वह सोना नहीं है। वह डाल ही रहा है आग मे इसलिए कि जो सोना नही है, उससे सोना अलग हो जाये।

शून्य आग है। और परमात्मा उन्हीं को डालता है जिन पर उसकी अनुकपा है।

पात्रता से ही शून्य उत्पन्न होता है। घबड़ाना मत। छलाग लगाकर अगीठी के बाहर मत गिर जाना। नहीं तो पहले से भी ज्यादा कूड़ा-कर्कट सगृहीत हो जायेगा। स्वीकार करना।

भीतर की यात्रा पर शून्य मिला—यह पहली खबर मिली कि तुम पात्र होने लगे। कम से कम तुम इतने पात्र हुए कि परमात्मा तुम्हे आग मे डाले। बड़ी जलन होगी, बड़ी पीड़ा होगी। उस पीड़ा के बिना कोई भी जन्मा नही है। उस पीड़ा के बिना किसी को नये जन्म का आविर्भाव नहीं हुआ है।

हुए होश गुम तेरे आने से पहले
हमीं खो गये तुझको पाने से पहले
हुए तुझ बिन बसर क्या बताऊ
किसे होश था तेरे आने से पहले।
हुए होश गुम तेरे आने से पहले।

उसके आने के पहले तुम्हारा होश भी खो जायेगा, तुम भी खो जाओगे। क्योकि तुमने जिसे अब तक समझा है 'मै', वह सिर्फ कूड़ा-कर्कट है। वही तो बाधा है।

हमी खो गये तुमको पाने से पहले।

एक बड़ी महत्वपूर्ण बात याद रखना आदमी कभी परमात्मा से मिलता नहीं। जब तक आदमी है तब तक परमात्मा नहीं। और जब परमात्मा प्रगट होता है, आदमी खो चुका होता है। आदमी तो बीमारी है। मिट जाने पर उस परम धन्यता का आविर्भाव होता है। तुम जब खाली कर देते हो सिहासन, तभी परमात्मा उस पर विराज पाता है। तुम जब तक बैठे हो, तब तक विराज नही पाता।

ये पक्तिया बड़ी मधुर है

हुए होश गुम तेरे आने से पहले
हमी खो गये तुझको पाने से पहले
हुए तुझ बिन बसर क्या बताऊ
—दिन तेरे आने के पहले कैसे बीते, यह भी कैसे बताऊ।
किसे होश था तेरे आने से पहले।

न तो तेरे आने के पहले होश था, क्योकि हम बेहोश थे ससार मे, न तेरे आने के बाद होश रहा, क्योकि हम बेहोश हुए तुझमे।

तो यह जो इन दोनो बेहोशियो के बीच—ससार की बेहोशी और परमात्मा की बेहोशी, ससार की शराब और परमात्मा की शराब—इन दोनो मधुशालाओ के बीच जो थोड़ी-सी यात्रा है वहीं थोड़ा-सा होश रहता है। लोग या तो धन मे खोये है, पद मे खोये है, मद से भरे है, और या फिर लोग परमात्मा मे खो जाते है। दोनो के बीच मे, दो मधुशालाओ के बीच मे जो थोडा-सा फासला है, वही थोड़ा-सा होश रहता है।

'सरोज' अभी उसी यात्रा पर है—दो मधुशालाओ के बीच

मे। अगर भीतर गई तो भी होश खो जायेगे। अगर घबडाकर बाहर आ गई तो फिर होश खो जायेगे। और जब दो मधुशालाओ मे ही चुनना हो, जब दो शराबो मे ही चुनना हो तो फिर परमात्मा की ही शराब चुन लेना। ससार की तो बहुत चखी, बहुत स्वाद लिया—कुछ पाया नही। अब इस अपरिचित, अनजान का भी एक स्वाद ले ले। हिम्मत करना। बावलापन तो उठेगा।

बगाल मे सतो का एक सप्रदाय है, उसका नाम ही 'बाउल' है—बावरे, पागल। बडे अदभुत सत हुए बाउल। नाचते है—आनद-मग्न। उस भीतर की शराब मे मस्त, मदहोश। धीरे-धीरे उनका नाम ही 'बावरा' हो गया। लेकिन जिसे तुम समझदारी कहते हो, उससे वह लाख गुना कीमती है।

तुम्हारी समझदारी भी हाथ मे क्या लाती है? कुछ ठीकरे इकट्ठे हो जाते है, जो मौत छीन लेती है। कुछ नाम-धाम हो जाता है, जो तुम्हारे जाते ही पोछ दिया जाता है, दूसरो के लिए जगह बनानी पडती है।

दुनिया का होश है न कुछ अपनी खबर मुझे
बेखुद बना दिया है यू तेरे जमाल ने।

उसमे डूबो। बेखुदी खुदा को पाने का उपाय है। मिटना—होने की एकमात्र सभावना।

यह शून्य डरायेगा, घबडायेगा। जैसे कोई पक्षी अब तक घोसले मे रहा हो और आज अचानक खुले आकाश मे घबडायेगा। चिंतित होगा, बेचैन होगा। लौट-लौट पडेगा मन कि चल पडो अपने घोसले की तरफ, कहा इन तूफानो मे उलझने लगे? कहा ये हवाए और आकाश और बादल, और कहा ये सूरज और ये चाद-तारे। और यह कितना विराट है। भागो। अपने घोसले मे छिप जाओ। ठीक वैसी दशा है। मन बहुत करेगा घोसले मे उतर आने का।

लेकिन अब लौटना मत। अब उसको पुकारा है तो पुकारे ही चले जाना। और अब सुख आये कि दुख, पीडा हो कि जलन—अगीकार कर लेना, क्योकि हमे पता नही है शायद यही हमारे जीवन-निर्माण के लिए जरूरी है।

छैनी से जब कोई पत्थर को तोड़ने लगता है, तो पत्थर भी तो रोता होगा। लेकिन छैनी से टूट-टूटकर ही पत्थर प्रतिमा बनता है। जो राह के किनारे पड़ा था, वह मदिर के अतर्गर्भ मे विराजमान हो जाता है। जिसको लोग सिर्फ पैर की ठोकरे मारकर निकल जाते थे, उसी के चरणो मे लोग आकर सिर झुकाने लगते है, फूल चढ़ाने लगते है।

कसम तुम्हारी बहुत गम उठा चुका हू मै
गलत था दावा-ए-सब्रो-शकेब, आ जाओ
करारे-खातिरे बेताब-थक गया हू मै।
कसम तुम्हारी बहुत गम उठा चुका हू मै।

चाहे कितनी ही पीडा हो, जाना उसी की तरफ।

कसम तुम्हारी बहुत गम उठा चुका हू मै।

कहना भी हो, शिकायत भी करनी हो, तो उसी से करना। बाहर मत लौटना। यह तो कसम खा लेना कि अब बाहर नही लौटना है। क्योकि बाहर को देख तो चुके बहुत, पाया क्या? अब लौटकर भी क्या पायेगे?

कसम तुम्हारी बहुत गम उठा चुका हू मै
गलत था दावा-ए-सब्रो-शकेब

और मैने जो धैर्य और सहनशक्ति के बहुत दावे किये थे, वह सब गलत थे। तुम उन पर ज्यादा अब भरोसा मत करो, आ जाओ।

आदमी ने अपने अहकार मे बहुत दफा सोचा है कि मै सहनशक्ति रखता हू, शाति रखता हू, धैर्य रखता हू, मेरा धैर्य अडिग है।

गलत था दावा-ए-सब्रो-शकेब

—वे सब दावे जो मैने किये थे—आत्मबल के, धैर्य के सहनशक्ति के—सब गलत थे। क्षमा करो मुझे।

गलत था दावा-ए-सब्रो-शकेब, आ जाओ
करारे-खातिरे-बेताब थक गया हू मै।

और अब तो मै थक गया हू।

'सरोज' पूछती है कि असहाय, बेसहारा ।

तो अब बाहर मत लौटना। अब उसी से कहना कि थक गई हू बहुत और अब मुझसे नहीं सहा जाता। लेकिन भीतर की तरफ से आख मत हटाना। कठिन होगे ये क्षण। लेकिन जो गुजर जाता है इन क्षणो से, वह एक बिलकुल नये अभिनव जीवन को उपलब्ध हो जाता है। ये क्षण क्राति के क्षण है।

सौ मे से निन्यानबे लोग तो कभी इस दशा को पहुचते नही। फिर जो सौ लोग पहुचते है उनमे से निन्यानबे बाहर वापस लौट

आते है। इसलिए शास्त्र कहते है, बड़ा दुर्गम है मार्ग। पहुच-पहुचकर छूट जाता है। हाथ मे आते-आते मजिल हजारो कोस के फासले पर हो जाती है।

तीसरा प्रश्न आप महावीर की अहिसा पर बोलते है तो प्रेम जोड देते है, बुद्ध के शून्य पर बोलते है तो प्रेम जोड़ देते है। आप कुछ भी बोलते है तो प्रेम उसमे अनिवार्यत जोड देते है। क्या हम सन्यासियो मे प्रेम का अत्यत अभाव देखकर ही आप प्रेम का पुन पुन स्मरण कराते है। कृपाकर कहे।

जोडता नही, उघाडता हू। अहिसा नाम की मजूषा मे प्रेम का ही धन छिपा है। खोलता हू मजूषा को। तुमसे कहता हू, इसके भीतर तो देखो। यह मजूषा बाहर से भी बडी सुदर है। बडी नक्काशी है इस पर। बड़े कारीगरो ने मेहनत की है। लेकिन मजूषा कितनी ही सुदर हो, मजूषा है, भीतर तो देखो।

अहिसा तो शब्द है, सार तो प्रेम है। और अगर सार मर जाये तो फिर अहिसा पर तुम कितनी ही नक्काशी करते रहो, फिर मजूषा को तुम ढोते रहो सदियो-सदियो तक—उससे जीवन, उससे अमृत, उससे आनद का आविर्भाव न होगा। फिर अहिसा तार्किको के हाथ मे पड़ जायेगी। फिर वे शब्द की ही बाल की खाल निकालते रहेगे।

महावीर ने अहिसा शब्द का उपयोग किया प्रेम के लिए। मै कहता हू कि अहिसा को हटाओ और भीतर झाककर देखो। खोलो इस मजूषा को।

जोड़ता नही हू, उघाडता हू।

अहिसा हो ही कैसे सकती है बिना प्रेम के? दूसरे को दुख न दो—यह हो ही कैसे सकता है जब तक कि दूसरे के प्रति प्रेम का आविर्भाव न हुआ हो? और अगर तुमने इसे नियम और औपचारिक व्यवस्था की तरह मान लिया कि दूसरे को दुख नहीं देना है, क्योकि दूसरे को दुख देने से नर्क मिलता है—प्रेम के कारण नही, भय के कारण दूसरे को दुख नही देना है—तो तुम्हारी अहिसा मे बहुत अहिंसा न होगी। तुम्हारी अहिसा मे भी हिसा प्रगट होगी। तुम्हारी अहिसा मे फिर प्रेम के फूल न खिलेगे। तुम्हारी अहिंसा निर्जीव होगी।

ऐसा हुआ है, जैनो की अहिंसा निर्जीव हो गई है। उसमे से प्राण तो खो ही गये है, लाश रह गई है। हा, लाश को भी ठीक से रासायनिक द्रव्य लगाकर रखो तो सुदर मालूम हो सकती है। लेकिन लाश लाश है। सुदरतम व्यक्ति की भी लाश लाश है। प्राण ही खो गये। प्राण तो विधायक तत्व है।

प्रेम विधायक तत्व है। प्रेम का अर्थ है कुछ तुम्हारे भीतर है। अहिसा का तो कुल इतना ही अर्थ है कि दूसरे के साथ बुरा मत करना।

और यह मै तुमसे कहना चाहता हू जब तक तुम दूसरे के साथ भला करने मे न लग जाओ, तुम बुरा करने से न बच सकोगे। तुम कुछ तो करोगे। जीवन कृत्य है, कर्म है। अगर मै तुम्हारे रास्ते पर फूल न बिछाऊगा तो मै काटे बिछाऊगा। और ऐसा आदमी तुम न पाओगे जो कहे कि मै सिर्फ काटे नही बिछाता तुम्हारे रास्ते पर, फूल से मुझे क्या लेना-देना। तुम पाओगे कि यह आदमी या तो इतना सिकुड जायेगा, जैसे जैन मुनि सिकुड गये है कि फिर यह डरने लगेगा जीवन मे उतरने से, क्योकि उतरा कि कुछ कृत्य हुआ, कृत्य हुआ तो या तो काटे बिछाओ या फूल बिछाओ। और इसकी सारी शिक्षण की व्यवस्था यह हो गई काटे मत बिछाना। फूल बिछाने की तो इसने हिम्मत खो दी। फूल बिछाने का तो खयाल ही छोड दिया। काटे नही बिछाना है।

तुम अगर किसी व्यक्ति की बीमारिया भर अलग करना चाहते हो और उसके जीवन मे स्वास्थ्य की आकाक्षा नही करते तो तुम उसे स्वास्थ्य न दे पाओगे और बीमारिया भी अलग न कर पाओगे। क्योकि बीमारी का अलग होना और उसके भीतर स्वास्थ्य का जन्म होना, एक ही सिक्के के दो पहलू है।

दूसरे को दुख न दू, यह गौण बात है। दूसरे को मेरे जीवन से सुख मिले—यह मूल बात है।

प्रेम का इतना ही अर्थ है कि तुम दूसरे की प्रसन्नता मे प्रसन्न होने लगे। क्या है प्रेम का अर्थ? तुम कहते हो, मुझे अपनी पत्नी से प्रेम है या बेटे से प्रेम है या मित्र से प्रेम है—क्या मतलब है? इतना ही मतलब है कि जब तुम्हारा बेटा प्रसन्न होता है, तब तुम प्रसन्न होते हो। जब दूसरे की प्रसन्नता तुम्हे प्रसन्न करने लगती है, तो प्रेम। और जब दूसरे की प्रसन्नता तुम्हे अप्रसन्न करने लगती है, तो घृणा। जब दूसरे की अप्रसन्नता तुम्हे प्रसन्न करने लगती है तो क्रोध, घृणा, वैमनस्य, शत्रुता, हिसा। और जब

दूसरे की प्रफुल्लता तुम्हे छूने लगती है और प्रसन्न करने लगती है, तो प्रेम।

अहिसा का मेरे लिए अर्थ है कि तुम्हे सबकी प्रसन्नता प्रसन्न करने लगे। तो तुम्हारे ऊपर कितनी विराट वर्षा न हो जायेगी। धर्म-मेघ-समाधि। तुम्हारे ऊपर धर्म के मेघ बरस उठेगे। सब तरफ से किसी की भी प्रसन्नता तुम्हे प्रसन्न करने लगे। एक वृक्ष मे फूल खिले और तुम प्रसन्न हो जाओ। सुबह सूरज ऊगे और तुम प्रसन्न हो जाओ। एक बच्चा मुस्कुराये और तुम प्रसन्न हो जाओ। यहा कही भी मुस्कुराहट हो और तुम्हारे भीतर भी आनद प्रविष्ट हो जाये। तो सारा जगत तुम्हे प्रसन्न करने लगेगा। ऐसी प्रसन्न दशा का नाम ही सन्यास है।

और, अगर हर एक की प्रसन्नता तुम्हे दुखी करती है, जैसा कि ससार मे होता है—उसी दुख का नाम ससार है। तुम किसी को हसते नहीं देख सकते। हसते देखते ही ईर्ष्या पैदा होती है। तुम किसी का बड़ा मकान बनते नही देख सकते। बडा मकान बनते ही तुम्हारे भीतर अप्रसन्नता पैदा होती है—स्पर्धा, प्रतियोगिता, हिसा, ईर्ष्या। तुम अगर दूसरे की हसी मे हसते भी हो तो थोथी हसी हसते हो, ऊपर-ऊपर हसते हो, लोकचार, उपचार। सामाजिक शिष्टाचार है।

'अहिसा' शब्द ने बडा खतरा किया है। वह नकारात्मक है। मै उसके भीतर छिपे हुए अकारात्मक विधायक प्रेम को उघाडना चाहता हू। जोड़ता नही हू, उघाड रहा हू।

बुद्ध ने जिसे शून्य कहा है, निर्वाण कहा है, कहा है कि तुम मिट जाओ, जब तुम मिट जाते हो तो तुम्हारे भीतर जो बचता है, वही प्रेम है। जितना अहकार होगा उतना ही प्रेम कम होगा। जब कोई अहकार नही रह जाता तो प्रेम ही प्रेम, प्रेम का सागर है।

और, इसे भी स्मरण रखना कि जब मै बुद्ध पर बोलता हू तो अपने पर ही बोलूगा। बुद्ध तो खूटी हो सकते है ज्यादा से ज्यादा। महावीर पर बोलता हू तो महावीर खूटी हो सकते है, टागूगा तो मै अपने को ही, और कोई उपाय नही है। और कोई उपाय हो भी नही सकता। तो जब मै महावीर पर बोल रहा हू तो तुम यह मत समझ लेना कि मै सिर्फ महावीर पर बोल रहा हू। मै कोई यत्र नहीं हू। मेरी अपनी दृष्टि है। तो महावीर के शब्द हाथ मे लूगा, लेकिन रग तो मेरा ही उन पर पडेगा। उनके शास्त्र को उलटूगा-पलटूगा, लेकिन अर्थ तो मेरा होगा।

इसे तुम कभी भूलना मत। मै कोई उनकी व्याख्या नहीं कर रहा हू। उनके शब्द प्यारे है, पुनरुज्जीवित करने जैसे है। उन पर धूल जम गई बहुत, उनकी धूल झाड देने जैसी है। लेकिन जो मै तुमसे कह रहा हू, महावीर तो उसमे बहाना है, कह तो मै तुमसे वही रहा हू जो मै कह सकता हू।

ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है कि अहिसा का मूल प्राण प्रेम है। ऐसा मुझे दिखाई पडता है कि जब व्यक्ति निर्वाण को उपलब्ध होता है, सब भाति अहकार-शून्य हो जाता है, तब जो शेष रह जाता है, वही प्रेम का विराट आकाश है। लेकिन यह मेरी दृष्टि है। और अगर मुझे चुनना हो महावीर मे और अपने मे, तो मै अपने को चुनता हू, महावीर को नही चुनता। और मै तुमसे भी यही कहता हू, तुम्हे अगर चुनना हो मुझमे और अपने मे तो अपने को चुनना, मेरी चिता मत करना। क्योकि आत्यतिक चुनाव तो स्वय का है।

प्रेम, मेरे लिए धर्म का सार है। और मेरे देखे धर्म नष्ट हुआ, सड़ गया जहा-जहा से प्रेम अलग हो गया धर्म से, वही-वही धर्म लाश हो गया।

तुम भी थोड़ा सोचो, तुम्हारे जीवन मे जब प्रेम न रह जाये, तो तुम जिदा लाश होओगे। जब तक प्रेम है तभी तक धडकन है। चाहे उस प्रेम का कोई भी रूप हो, चाहे वह कामवासना हो और चाहे प्रभु-वासना हो, चाहे धन का हो, चाहे धर्म का हो, चाहे देह का हो, चाहे आत्मा का हो, क्षुद्र से क्षुद्र प्रेम हो या विराट से विराट प्रेम हो—लेकिन प्रेम के बिना तुम एकदम खाली हो जाओगे। अचानक तुम पाओगे तुम जी रहे हो, लेकिन जीवन बचा नही। निकल गया। पक्षी उड चुका है, पिजड़ा पडा रह गया है।

निराले है अदाज दुनिया से अपने
कि तकलीद को खुदकुशी जानते है
कोई कैद समझे मगर हम तो ए दिल
मुहब्बत को आजादगी जानते है।
निराले है अदाज दुनिया से अपने
कि तकलीद को खुदकुशी जानते है।

दूसरे के पीछे जो अधा होकर चल रहा है वह आत्मघात कर रहा है।

कि तकलीद को खुदकुशी जानते है

कोई कैद समझे मगर हम तो ऐ दिल
मुहब्बत को आजादगी जानते है।

कोई कहता हो कि कैद है । अगर प्रेम कैद है तो वह प्रेम प्रेम ही नहीं। कही कुछ भूल हो रही है। तुमने कुछ को कुछ समझ रखा है। क्योकि प्रेम ने तो सदा मुक्त किया। प्रेम ने तो इतना मुक्त किया कि तुम्हारा परमात्मा पूरा-पूरा निखार को उपलब्ध हो जाता है। जो प्रेम बाध ले वह प्रेम नही, जो मुक्त करे, वही प्रेम है। जो तुम्हारे स्वत्व को प्रगट करे, वही प्रेम है। जो तुम्हारे सत्व को निखारे, शुद्ध करे, वही प्रेम है।

प्रेम ने कभी किसी को बाधा नही।

तो जिन लोगो ने कहा है कि प्रेम बधन है, उन्होने प्रेम के कुछ गलत रूप जाने होगे। और जिन्होने सोचा कि प्रेम को छोडकर हम मुक्त हुए, उन्होने जिदगी को गवाने को जीवन समझ लिया होगा। वे सिकुडनेवाले लोग रहे होगे।

मेरे देखे, फैलो तो ही तुम परमात्मा तक पहुचोगे। जितने फैलो, जितने विस्तीर्ण होने लगो, उतना शुभ है।

अलम-नसीबो, जिगर-फिगारो
अलम-नसीबो, जिगर-फिगारो
की सुबह अफलाक पर नही है।

—जो दुखी है, जो कारागृह मे पडे है, जिनके हृदय घायल है, उनकी सुबह कही दूर किसी आकाश पर नही है।

जहा पे हम तुम खडे है दोनो
सहर का रौशन उफक यही है।

—और जहा हम दोनो खड़े है, ठीक इसी जगह सुबह का सूरज ऊगेगा। जहा हम है वही सूरज ऊगेगा।

यही पे गम के शरार मिलकर
शफक का गुलजार बन गये है।
यहीं पे कातिल दुखो के तेशे
कतार अदर कतार किरनो
के आतिशीं हार बन गए है।

जहा हम है, जैसे हम है, वहीं ठीक हमारी ही मौजूदगी और हमारी आज की इस स्थिति मे, द्वार खुल सकता है। वह द्वार प्रेम का है।

तुम परमात्मा को आकाश मे मत खोजना, अन्यथा भटकोगे व्यर्थ। तुम तो परमात्मा को हृदय के प्रेम मे खोजना, तो द्वार खुलेगा। और अगर प्रेम सध जाये तो सब सध जाता है। तो किरणो के भीतर किरणो के द्वार खुलते जाते है।

सत अगस्तीन से किसी ने पूछा कि मुझे एक शब्द मे सारा शास्त्र समझा दे, ताकि मै सदा याद रख सकू। तो अगस्तीन ने बहुत सोचा और कहा कि फिर अगर ऐसा ही कोई शब्द चाहते हो, तो प्रेम। इस एक शब्द को याद रखना। इसके विपरीत मत जाना। और सदा इसके अनुकूल व्यवहार करना, शेष सब अपने से सुधर जायेगा।

तुम जरा सोचो। तुम्हारे जीवन मे प्रेम आ जाये, मदिर न भी गये तो तुम मदिर पहुच जाओगे। तुम्हारे जीवन मे प्रेम आ जाये और तुमने शास्त्र न भी पढ़े तो तुम शास्त्र पढ़ लोगे। ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पडित होय। प्रेम सम्हल जाये तो कुछ बडी दार्शनिक चर्चाओ मे पड़ने की जरूरत नहीं है।

प्रेम अस्तित्वगत धर्म है। 'एक्जीसटेशियल'। बाकी सब बकवास है।

चौथा प्रश्न मुझे समर्पण मे बहुत आनद आता है। मेरी प्रार्थना शब्दो-शब्द परमात्मा या आपके लिए होती है। ज्ञान का शब्द अच्छा लगता है, मगर थोड़ा अहकार जगता है। मेरा प्रतिपल ध्यान मे जा रहा है, ऐसा भाव सदा रहता है। तो मै कौन-सा ध्यान करू—यह बताने की कृपा करे।

समर्पण जिसे सध रहा हो—ध्यान हो गया। और अन्यथा ध्यान करने की कोई भी जरूरत नही है। जिसे शरणागति मे मजा आ रहा हो, बस इसी मजे के सहारे को पकड़कर और-और गहरे मजे मे उतरते जाओ। रोओ, आसू बहाओ—आनद से, प्रफुल्लता से।

एक मित्र परसो आकर कह रहे थे कि थोड़ी घबड़ाहट होती है, क्योकि जब भी ध्यान करने बैठता हू, मस्ती आती है तो आसू आने लगते है और शरीर कपने लगता है और रोमाच हो जाता है। तो मैंने पूछा, क्या करते हो ? तो उन्होने कहा, मै रोक लेता हू जबर्दस्ती। सुशिक्षित व्यक्ति है—अब रोए। और काफी उम्र हो गई है। वृद्ध है, कोई पैंसठ के करीब उम्र हो गई है। जिदगीभर कभी रोए नही, आख कभी गीली न की। रोमाच हो जाता है। शरीर कपने लगता है। कोई समझेगा कि क्या

पागलपन हो गया कि बीमारी हो गई कुछ, तो रोक लेते है।

मैने उनको कहा कि अब यह खतरनाक कर रहे हो। एक तरफ तो पैदा कर रहे हो—प्रार्थना, पूजा, ध्यान से—और फिर रोक रहे हो। यह तो विरोधाभासी कृत्य हो जायेगा। यह तो तुम्हारी जीवन-ऊर्जा मे विरोध, सकट पैदा हो जायेगा। यह तो खरतनाक है। प्रसन्न होओ, आसुओ को आनद से बहने दो।

आनद के लक्षण है आसू। लेकिन हमने एक ही ढग के आसू जाने है—वे दुख के आसू है।

आदमी ने कई महत्वपूर्ण चीजो के अनुभव खो दिये, उनमे एक महत्वपूर्ण आसू भी है। आसू को सीमित कर लिया है, जब दुखी होते है, तभी रोते है। आसू का दुख से कुछ लेना-देना नही है। आसू का सबध तो अतिरेक से है। दुख ज्यादा हो जाये तो आसू की जरूरत आ जाती है। आनद ज्यादा हो जाये तो आसू की जरूरत आ जाती है। जो इतना ज्यादा हो जाये कि प्याली के ऊपर से बहने लगे, तो आसू आते है। आसू का कोई सबध न दुख से है न सुख से है—अतिरेक से है।

तो तुम कभी आनद मे रोये या नही? अगर आनद मे नही रोये तो तुमने आसुओ की जो सबसे ऊची चरम अनुभूति थी वह चूक गये। तब तुमने बहुत साधारण-सी अनुभूति दुख की जानी। और दुख के कारण, लोग कहते है कि हिम्मत रखो, रोओ मत। और लोग कहते है, मर्द बनो, रोओ मत। यह क्या बच्चो के जैसे या स्त्रियो जैसे रोने लगे?

आसू का जो एक और अनूठा रूप है—आनद का, अहोभाव का—उससे मनुष्यता वचित ही हो गई है।

नारद ने अपने सूत्रो मे कहा है भक्त रोमाचित होता। आसुओ से भर जाता। गदगद हो जाता। कपित होने लगती उसकी देह। रोआ-रोआ पुलकित हो जाता।

तो जिसको समर्पण मे, शरणागति मे, आनद आ रहा है, वह ध्यान की फिक्र न करे। प्रार्थना। जलाये धूप-दीप। नाचे। रोये। पुलकित हो। थोड़े क्षणो को पागल होने की कला सीखे। थोडे क्षणो को भूले समझदारी और ससार। थोडी देर को मीरा बने। लोक-लाज खोई।

ध्यान की कोई जरूरत नही है—प्रार्थना की जरूरत है। ध्यान है सकल्प के मार्ग पर। प्रार्थना है समर्पण के मार्ग पर। इसके पहले कि परमात्मा आये, प्रार्थना खूब कर लो, आखो को खूब निखार लो, रो लो। कहीं ऐसा न हो कि वह आ जाये और तुम्हारी आखे गीली न हो।

है खबर गर्म उनके आने की
आज ही घर मे बोरिया न हुआ।

बिछाने को आसन घर मे नही है और उनके आने की खबर आ गई है।

कोई फिक्र नही, बिना आसन के चल जायेगा। लेकिन और भी कुछ ज्यादा महत्वपूर्ण जरूरी चीजे है।

पलकन पग पोछू आज पिया के
असुअन पूछू हाल हिया के।

बोरिया न हुआ, चलेगा। लेकिन कही ऐसा न हो कि पैर पोछने के लिए पलके न हो। कहीं ऐसा न हो कि हाल हिया के पूछने के लिए आसू न हो।

पलकन पग पोछू आज पिया के
असुअन पूछू हाल हिया के।

उसकी तैयारी करो। निमत्रण भेज दिया, तो आता ही होगा। बुलाया है तो आयेगा ही। अब तुम उसके आने की चिता न करके, अपनी तैयारी करो।

और बडी से बड़ी तैयारी है कि तुम हृदय भरकर रो सको, कि तुम परिपूर्ण डूबकर नाच सको, कि अवाक, आश्चर्यचकित घड़िया बीत जाये और तुम ठगे-से रह सको।

तुम मिले, प्राण मे रागिनी छा गई।
भूलती सी जवानी नई हो उठी
जिस दिवस प्राण मे नेह बसी बजी
बालपन की रवानी नई हो उठी
कि रसहीन सारे बरस रस भरे
हो गए, जब तुम्हारी छटा भा गई
तुम मिले, प्राण मे रागिनी छा गई।

भक्त तो यह मानकर ही चलता है कि तुम चल ही पडे होओगे। खबर मिल ही गई होगी तुम्हे।

वह तैयारी मे जुट जाता है।

साधक तो भगवान को खोजता है, भक्त तो भगवान को मानता है। साधक को तो अभी तय करना है कि भगवान है या नही। भक्त को उतना तो तय है कि भगवान है, अब इतना ही देखना है कि मेरी पात्रता है या नहीं। इस भेद को स्मरण रखना।

साधक सत्य को खोजने के लिए अपनी पात्रता इकट्ठी करता है। भक्त, सत्य तो है ही, प्रभु तो है ही, अब मै उसके योग्य बनू, इसके लिए अपनी पात्रता इकट्ठी करता है। दोनो की दिशाओ मे बड़ा फर्क है।

सत्य का खोजी विचार-निर्विचार के पखो से चलता है। भक्त—न विचार, न निर्विचार, भाव, भक्ति, पूजा, प्रार्थना। एक तो तय ही है बात कि परमात्मा है, इसलिए खोजने का उसके पास सवाल नही है। वह खोजने की झझट मे नही पडता। उसे तो अपने होने की वजह से इतना पर्याप्त प्रमाण मिल गया है कि जीवन है, जीवन का स्रोत भी है। अपनी किरण को देखकर ही समझ गया कि सूरज भी है, अन्यथा किरण कैसे होती? मै हू, इतना काफी है। तू भी है। अब कैसे मै अपने को तैयार कर लू?

तो अत्यत प्रेम से भरकर प्रतीक्षा करो। उसकी पग-ध्वनि सुनो। आता ही होगा। द्वार पर कान लगाकर बैठ जाओ। उसके विरह मे, जब तक नही आया है, उसकी अनुपस्थिति मे, उसके अभाव मे भी, उसके भाव को अनुभव करो। उसका अभाव भी प्यारा है। इसे समझना।

ससार की चीजे मिल भी जाये तो कुछ नही मिलता, और परमात्मा न भी मिले, सिर्फ उसकी याद भी मिल जाये तो सब मिल जाता है।

आखिरी प्रश्न आपको सुनने के पूर्व मै कालेज की हसती-खेलती छात्रा रही, सुनने के बाद न जाने क्या हुआ कि कही भी रुचि नही लगती —सुख-भोग मे भी नही। सत्सग मे आती भी हू और आने से कतराती भी हूं। कृपापूर्वक मार्ग-दर्शन दे।

जो हंसना-खेलना इतनी सरलता से खो जाये, उसका कोई मूल्य नहीं। मै तुम्हें ऐसा हंसना-खेलना सिखाऊगा जो फिर खो न सके।

एक तो बचपन है, जिसमे बच्चे प्रसन्न होते है। उस प्रसन्नता का कोई बहुत मूल्य नहीं है—जिदगी उसे नष्ट कर देगी। फिर एक और बचपन है, जो जीवन की चरम प्रौढता से उपलब्ध होता है। सत फिर छोटे बच्चो जैसे हो जाते है। फिर एक हसना और खेलना पैदा होता है, उसे फिर कोई भी न छीन सकेगा।

तो ऐसा हुआ होगा।

बहुत युवक मुझे सुनने आ जाते है, युवतिया सुनने आ जाती है। यह शुभ लक्षण है। क्योकि बूढ़े धर्म की बात सुनने आये, यह अशुभ लक्षण है। बूढ़े तो धर्म की बात सुनने तभी आते हैं जब जिदगी मे उनके सब उपाय व्यर्थ हो गये, मौत करीब आने लगी! मौत के भय से। और जब बूढे ही मदिर, मस्जिदो मे आने लगते है और जवान वहा से खो जाते है, तो वे मदिर-मस्जिद भी कब्रो जैसे हो जाते है, मुर्दा हो जाते हैं। शुभ है कि युवा और युवतिया भी धर्म को समझने की कोशिश करे, क्योकि उनके कारण धर्म भी युवा रहता है। जब भी धर्म जवान होता है, तब उसमे वृद्ध तो आते ही है, युवा भी आते है।

और यह फर्क समझ लेना। मुझे तो जो वृद्ध भी सुनने आते है, वे भी तभी आ सकते है जब वे किसी गहरे अर्थ मे अभी भी युवा हो। और मदिर-मस्जिदो मे अगर कभी कोई जवान भी पहुच जाता है तो तभी पहुचता है जब वह किसी गहरे अर्थ मे बूढा हो चुका, वह जिदा नही है अब, रुग्ण है। क्योकि मै जो कह रहा हू, वह जीवन-विरोधी नही है। मै जो कह रहा हू, वह महाजीवन की खोज है।

तो अनेक बार ऐसा हो जायेगा कि युवा-युवती आ जायेगे सुनने, सुनकर उनको कई रूपातरण होगे। जिसे उन्होने कल तक हसी-खुशी समझा था, वह हसी-खुशी मालूम न होगी। अच्छा है, कुछ बोध जगना शुरू हुआ। क्योकि अब तक जिसे हसी-खुशी जाना था, वह केवल नासमझी थी, वह केवल बचपना था। अभी खिलौनो से खेलते रहे थे। मेरे पास आकर उनको दिखाई पड़ जायेगा, ये तो खिलौने है। रस खो जायेगा।

असली जीवन की शुरुआत के पहले खिलौनो मे रस खो जाना जरूरी है।

फिर आने में डर भी लगेगा। आने का मन भी होगा। आने से बचना भी सभव नहीं है और डर भी लगेगा। डर लगेगा कि कही ऐसा न हो कि सारा जीवन का रस खो जाये। और आने से रुकना भी असंभव होगा, क्योकि कोई रस पैदा होगा जो पुकारेगा और बुलायेगा। एक दुविधा पैदा होगी। यह भी शुभ लक्षण है। यह सोच-विचारशील व्यक्ति का लक्षण है।

सोच-विचारशील व्यक्ति को जीवन मे हजार ऐसे मौके आते है, जहा उसे तय करना पड़ता है, जहा आधा मन कहता है मत

जाओ, आधा कहता है जाओ। कायर आदमी उस आधे मन की मान लेता है, जो कहता है मत जाओ। साहसी व्यक्ति उस आधे मन की मानता है जो कहता है, करो अभियान। खोजो नये को। अपरिचित राह को चुनो।

पश्चिम के एक बहुत बड़े कवि से किसी ने पूछा कि तुम्हारे जीवन मे सबसे महत्वपूर्ण बात जिसने तुम्हारे जीवन के अर्थ को निर्णीत किया, कौन-सी थी? तो उसने कहा कि जब मेरे पिता मर रहे थे तो उन्होने मुझे पास बुलाया और कहा कि सुन, जीवन के हर कदम पर दो रास्ते खुलते है। एक रास्ता जाना-माना, जिस पर तुम चलते रहे हो, और एक रास्ता अपरिचित अनजाना, जिस पर तुम कभी नहीं चले हो। मन सदा कहेगा, जाने-माने को चुन लो, क्योकि मन बहुत आर्थोडाक्स है। जाने-माने को कभी मत चुनना, क्योकि जिस पर चलते ही रहे हो, अब और चलकर क्या होगा? अनजाने को चुन लेना।

और जिंदगी के हर रास्ते पर दो कदम खुलते है। दो रास्ते खुलते है। सदा अनजाने को चुनते रहना।

उस कवि ने कहा, मैंने पिता की बात मान ली। बड़ी कठिन थी। और कई बार भूला। कई बार चूका। लेकिन फिर भी उस सूत्र को सम्हाले रहा। इसी तरह मेरे जीवन मे रोज-रोज सत्य की नयी-नयी सुबह हुई, सत्य का नया-नया सूरज निकला।

अपरिचित, अनजान, अज्ञात—उसे जो चुनता है, उसने परमात्मा को चुना।

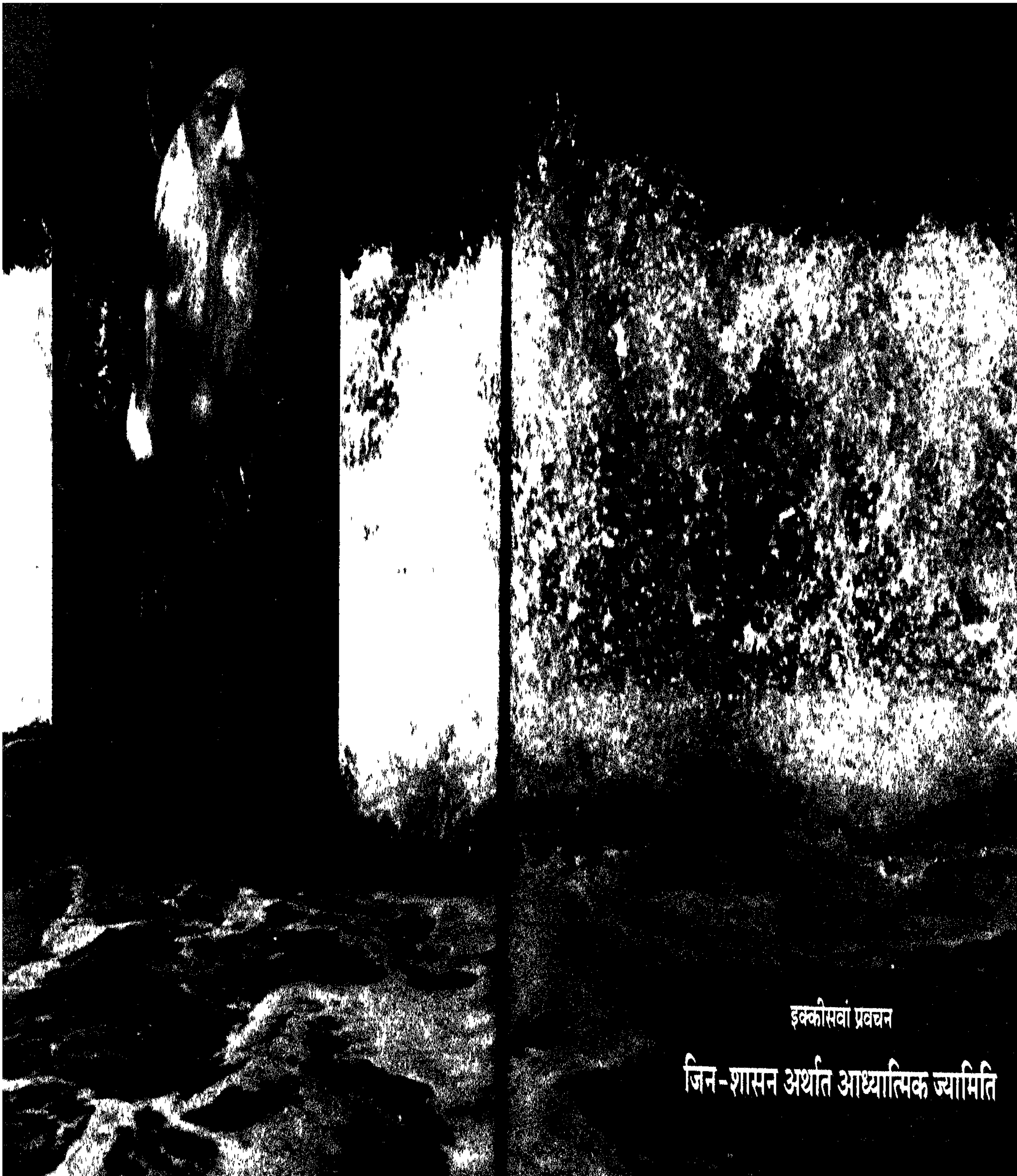
तो डर लगेगा यहा आने मे। क्योकि मै तुम्हे रोज अनजान की तरफ, अपरिचित की तरफ धक्के दूगा। मन कहेगा, रुक जाओ, मत जाओ।

इलाहाबाद मे मै बोल रहा था कई वर्षो पहले। जिन मित्र ने मुझे बुलाया था, वे हिंदी के एक कवि और लेखक है। वे सामने ही बैठे थे। कोई दस-पद्रह मिनट मैने देखा कि उनकी आखो से आसू गिरते रहे, फिर वे एकदम से उठे और भवन के बाहर निकल गये। उन्होने ही मुझे बुलाया था। फिर तीन दिन उनका कोई पता ही न चला। जब विदा का दिन आया तो वह मुझे स्टेशन छोड़ने आये। मैने पूछा कि कहा चल दिये। उन्होने कहा कि पद्रह मिनट तो मै सुनता रहा, फिर मै डरा। फिर मुझे लगा कि यह आदमी खतरे मे ले जायेगा। तो मैने कहा कि इसके पहले कि कोई झझट शुरू हो, यहा से निकल जाना चाहिए। तो मै निकल गया।

यह स्थिति सभी के सामने आयेगी। मेरे साथ चलना है तो बहुत कुछ जो तुम्हारी जिदगी मे तुम्हे कल तक मूल्यवान मालूम होता रहा, मूल्यहीन हो जायेगा। लेकिन मै तुमसे कहता हू, अज्ञात के लिए सदा अपने द्वार खुले रखना। क्योकि वही द्वार है, जिससे परमात्मा प्रवेश करता है।

आज इतना ही।




इक्कीसवां प्रवचन
जिन-शासन अर्थात आध्यात्मिक ज्यामिति

सूत्र

मग्गो मग्गफल ति य, द्रविहं जिणसासणे समक्खाद।
मग्गो खलु सम्मतं मग्गफल होइ निव्वाण।।५२।।

दंसणाणचरित्ताणि, मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहि इद भणिद, तेहि दु बंधो व मोक्खो वा।।५३।।

आण्णाणादो पाणी, जदि मण्णादि सुद्धसपओगादो।
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो।।५४।।

जिन-दर्शन गणित, विज्ञान जैसा दर्शन है। काव्य की उसमे कोई जगह नही है।

वही उसकी विशिष्टता है।

दो और दो जैसे चार होते है, ऐसे ही महावीर के वक्तव्य है। उन्हे समझने के लिए ठीक वैज्ञानिक की बुद्धि चाहिए। जैसे सौ डिग्री तक हम पानी को गर्म करे, तो वह भाप बन जाता है। सौ डिग्री तक पानी गर्म हुआ कि भाप बनेगा ही। इस भाप को बनाने के लिए न तो किसी की प्रार्थना करनी जरूरी है, न किसी का आशीर्वाद लेना जरूरी है। और अगर सौ डिग्री तक पानी गर्म न हुआ, तो लाख प्रार्थना करो, लाख आशीर्वाद लो, पानी पानी ही रहेगा, भाप न बनेगा।

जैसे विज्ञान कहता है, परमात्मा की कोई जरूरत नही है, प्रकृति के नियम काफी है, पर्याप्त है, परमात्मा के होने से उन नियमो मे कुछ जुडेगा नही। विज्ञान की एक मूलभूत धारणा है—और वह है न्यूनतम सिद्धात। जितने कम सिद्धातो से काम चल सके उतना उचित है। चेष्टा तो विज्ञान की यही है कि अतत एक ही सिद्धात मिल जाये जिससे जीवन की सारी पहेली सुलझ सके। इसलिए गैर-अनिवार्य को बिलकुल जगह नहीं देना है।

अगर सौ डिग्री गर्म करने से पानी भाप बन जाता है तो फिर पानी को भाप बनाने के लिए और किसी परमात्मा की जरूरत नहीं है। और किसी की प्रार्थना भी व्यर्थ है। इस नियम को जिसने जान लिया, वह अगर पानी को भाप बनाना चाहेगा तो बना लेगा।

विज्ञान के हिसाब से परमात्मा हमारे अज्ञान का हिस्सा है। क्योकि हम जानते नहीं जीवन के नियम को, इसलिए हम परमात्मा का नाम लेते है। तुमने देखा भी होगा, जब भी तुम कहते हो 'परमात्मा जाने' तो तुम्हारा मतलब यह होता है कि कोई नही जानता। 'परमात्मा जाने' का यह अर्थ नहीं होता कि परमात्मा जानता है—इतना ही अर्थ होता है कि तुम भी नही जानते, कोई भी नहीं जानता। जहा तुम्हे अपने अज्ञान को प्रगट करना होता है वहा तुम परमात्मा को ले आते हो। लेकिन इस ढग से प्रगट करते हो कि लगता है जैसे कोई जानता है। 'परमात्मा जाने', इसमे तुमने यह भी छिपा लिया कि मै नही जानता। और दूसरे के सामने यह बात ढाक दी, अज्ञान को छिपा लिया, प्रगट न होने दिया।

विज्ञान कहता है जैसे-जैसे ज्ञान बढता है, परमात्मा हटता जाता है। जिस दिन ज्ञान पूरा हो जायेगा, परमात्मा शून्य हो जायेगा।

महावीर की भी ऐसी ही दृष्टि है। इसलिए महावीर ने परमात्मा को इनकार किया, प्रार्थना को इनकार किया—शुद्ध जीवन के गणित को समझने की कोशिश की।

आदमी बधन मे है, तो कारण होगे। अगर आदमी को बधन-मुक्त होना है तो उन कारणो को अलग करना होगा। बस, इतना सीधा-साफ। और सब आकाक्षाए, अपेक्षाए अपने-आपको भुलाने के उपाय है।

कोई तुम्हे बधन मे डाला नही है, कोई तुम्हे मुक्त करने न आयेगा। जीवन के सीधे नियम का तुम उपयोग नही किये, इसलिए बधन मे पड़ गये हो। उपयोग कर लोगे, बधन के बाहर

हो जाओगे।

जैसे कोई आदमी सम्हलकर चलता हो तो गिरता नही। जो आदमी गिर जाता है, उससे हम कहते है, सम्हलकर चलो।

सम्हलकर चलने का क्या अर्थ होता है ? सम्हलकर चलने का अर्थ होता है जमीन की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति है, उसका ध्यान रखकर चलो। अगर इरछे-तिरछे चले—गिरोगे। वही गुरुत्वाकर्षण का नियम जो तुम्हे चलाता है, सम्हालता है, जिसके बिना चल न सकोगे, अगर उसके विपरीत गये तो गिरोगे, हाथ-पैर तोड़ लोगे, फिर कभी चल न पाओगे। तो गुरुत्वाकर्षण के निमय को समझ लो और अपने और उस नियम के बीच एक सगीत का सबध बना लो। इतना ही धर्म है।

महावीर धर्म की परिभाषा करते है जीवन के स्वभाव सूत्र को समझ लेना धर्म है। जीवन के स्वभाव को पहचान लेना धर्म है। स्वभाव ही धर्म है।

ये सूत्र ऐसे ही सीधे-साफ है।

पहला सूत्र

मग्गो मग्गफल ति य, द्रविह जिणसासणे समक्खाद।

मग्गो खलु सम्मत मग्गफल होइ निव्वाण।।

'जिन-शासन मे मार्ग तथा मार्ग-फल, इन दो प्रकारो से कथन किया गया है। मार्ग है मोक्ष का उपाय और फल है निर्वाण।'

मार्ग और मार्ग-फल। बस महावीर के सारे वचन इन दो हिस्सो मे बाटे जा सकते है कारण और कार्य। ऐसा करो तो ऐसा होगा। बस इतनी दो सरणियो मे महावीर के पूरे कथन बाटे जा सकते है। कुछ कथन हे जो बताते है क्या करो और कुछ कथन है जो बताते है कि फिर क्या होगा। अगर जहर पी लो तो मृत्यु होगी। अगर अमृत को खोज लो तो अमरत्व को उपलब्ध हो जाओगे।

परिणाम कारण के पीछे ऐसे ही चला आता है जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया चली आती है। तो करना क्या है ? न प्रार्थना, न पूजा, न मदिर, न पाठ, क्योकि इनसे कुछ भी न होगा। इनसे कारण का कोई सबध नही है।

यह तो ऐसे ही है जैसे वर्षा नही हो रही और कोई यज्ञ कर रहा है। इसका कुछ लेना-देना नही है। यज्ञ से कोई कार्य-कारण का सबध नही है वर्षा से। कि कोई बीमार पड़ा है और तुम ताबीज बाध रहे हो, ताबीज से और बीमारी का कोई कार्य-कारण का सबध नही है। इलाज करो। बीमारी के रोगाणु है, उनसे मुक्त होने की व्यवस्था करो। ताबीज से रोगाणु डरेगे न और न मुक्त होगे और न तुम उनसे मुक्त हो सकोगे।

महावीर कहते है, जीवन मे दुख है तो तुम ठीक-ठीक कारण खोजो। दुख से तुम बचना चाहते हो, यह तो हमे मालूम है, लेकिन सिर्फ बचने की आकाक्षा से बच न सकोगे। और दुख से तुम बचना चाहते हो, इसलिए कोई भी कुछ बता देता है, वही करने लगते हो—इससे भी न बच सकोगे। हो सकता है बतानेवाले की भी आकाक्षा शुभ हो, खोजनेवाले की भी आकाक्षा शुभ हो, लेकिन आकाक्षाओ से थोडे ही जीवन चलना है। जीवन चलता है सत्यो से, नियमो से। तो नियम को खोज लो। नियम के खोजते ही जीवन मे क्राति घटित होती है।

उस नियम की खोज को महावीर कहते है मार्ग। वही मार्ग पकड मे आ जाये तो फिर परिणाम के लिए प्रार्थना भी करनी जरूरी नही है, उतना भी समय खराब मत करना। क्योकि जब तुमने आग जला दी और पानी गर्म होने लगा तो अब बैठकर प्रार्थना मत करना कि हे परमात्मा, इसको भाप बना। अब किसी परमात्मा को बीच मे लाने की जरूरत नही है। अब तो पानी भाप बनेगा। ईधन पूरा है, आग जल उठी है—पानी भाप बनेगा। अब इसे कोई रोक भी न सकेगा। इस नियम के विपरीत कुछ घट न सकेगा।

महावीर चमत्कार मे नही मानते। कोई वैज्ञानिक बुद्धि का व्यक्ति नही मानता। चमत्कार कही न कही धोखा होगा, क्योकि नियमो का कोई अपवाद नही होता। अगर कोई आदमी हाथ से राख निकाल देता है तो कही न कहीं कोई मदारीगिरी होगी, क्योकि जीवन के नियम किसी का अपवाद नहीं मानते। जीवन के नियम व्यक्तियो की चिता नहीं करते—निर्वैयक्तिक है, सार्वभौम है। उनसे अन्यथा होने का उपाय नही।

अगर कोई आदमी साठ डिग्री पर पानी को भाप बना दे तो या तो थर्मामीटर से धोखा दे रहा है या किसी तरह का आयोजन कर रहा है, जिससे तुम्हे यह भ्रम पैदा होता है कि साठ डिग्री पर पानी भाप बन रहा है।

पानी तो सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा। उसने किसी तरह का भ्रमजाल रचा है। लेकिन चमत्कार जगत मे नहीं होते।

चमत्कार का तो अर्थ यह होता है कि जगत के नियम पक्षपात

करते है। किसी एक आदमी की मानकर कुछ उलटा भी कर देते है। किसी दूसरे की मानकर नियम मे शिथिलता कर देते है। किसी तीसरे पर नाराज हो जाते है। जिस पर प्रसन्न है, साठ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है, जिस पर नाराज है, उसके लिए डेढ़ सौ डिग्री पर भी भाप नही बनता।

मगर महावीर कहते है, पानी सौ डिग्री पर भाप बनता है। नियम न नाराज होते न प्रसन्न होते। नियम निर्वैयक्तिक है। इसको खयाल मे लेना। परमात्मा व्यक्ति है।

तो जब भी हम परमात्मा की बात करते है, हमारे मन मे सभावनाए उठने लगती है कि अगर खूब प्रार्थना करे, खूब स्तुति करे, खूब समझा-बुझा ले, तो जो दूसरे के लिए नही हुआ है वह हमारे लिए हो जायेगा। क्योकि व्यक्ति के आते ही लगता है फुसला लेगे, राजी कर लेगे, समझा लेगे, रोयेगे, गिड़गिड़ायेगे, सहानुभूति पैदा कर लेगे, करुणा मागेगे। आखिर परमात्मा दयालु है, तो खूब रोयेगे तो दया उठेगी।

लेकिन महावीर कहते है, ऐसे तुम किसी और को धोखा नही दे रहे, अपने को ही धोखा दे रहे हो।

एसी चेष्टाए व्यर्थ है और उनमे गवाया गया समय तुमने व्यर्थ ही गवाया। मार्ग को खोज लो।

महावीर का जोर मार्ग पर है, परमात्मा के सहारे पर नही, परमात्मा के आलबन पर नही। यही तो सारे विज्ञान की दृष्टि है। विज्ञान कहता है, कहीं कुछ घट रहा है। हमे आज पता न हो क्यो घट रहा है, लेकिन जिस दिन पता चल जायेगा उस दिन फिर घटाने की शक्ति हमारे हाथ मे आ जायेगी।

और जब तक हमे पता नही है तब तक बेहतर है कि हम कहे कि हमे मालूम नही।

तो महावीर के अधिक वचन तो मार्ग-सूचक है। और कुछ वचन फल-सूचक है। ऐसा पूरा जिन-शासन दो हिस्सो मे विभाजित है।

आइस्टीन भी इससे राजी होगा। प्लाक भी इससे राजी होगा। रसेल भी इसमे भूल-चूक न निकाल पायेगा। इसलिए महावीर के वचनो मे या जैन शास्त्रो मे तुम्हे कहीं काव्य न मिलेगा, काव्य का चमत्कार न मिलेगा। पढ़ोगे तो रूखे-सूखे लगेगे। ठीक गणित की किताबे है—ज्यामिति, आध्यात्मिक ज्यामिति। अतरात्मा के सबध मे ज्यामेट्री खड़ी की है।

तो उपनिषदो मे जैसा सौदर्य है, कृष्ण के वचनो मे जैसा रस है वैसा महावीर के वचनो मे नही है।

गणित को गाया नहीं जा सकता। गणित को गाओ तो गणित बिगड़ जाता है। क्योकि गाने के लिए कुछ गैर-गणित भीतर लाना पड़ता है।

इसलिए तो हम कवि से कभी तार्किक होने की अपेक्षा नही करते। और कवि अगर सपनो की बात करे तो हम उसे क्षमा करते है। और कवि अगर मनगढत बातो मे घूमे तो हम कहते है, कवि है, कविता है।

लेकिन गणितज्ञ से हम दूसरी अपेक्षा करते है। गणितज्ञ से हम चाहते है सीधी-साफ रेखा हो, शुद्ध रेखा हो, जिसमे कुछ भी गणितज्ञ ने अपने भाव के कारण न डाला हो। केवल सत्य का प्रतिफलन हो। शुद्ध सत्य का प्रतिफलन हो। सजावट न हो, शृगार न हो।

इसलिए महावीर के वचन, जैसे महावीर नग्न है वैसे ही महावीर के वचन भी नग्न है। उनमे कोई सजावट नही है। जैसा है वैसा कहा है। और जिनके पास वैज्ञानिक बुद्धि है उनको महावीर पर बडी श्रद्धा पैदा होगी। उनको महावीर के साथ बड़ा सबध जुड़ जायेगा।

'मार्ग तथा मार्ग-फल, इन दो प्रकार से कथन किया है। मार्ग मोक्ष का उपाय है और उसका फल मोक्ष या निर्वाण '

मोक्ष या निर्वाण शब्द को समझ लेना चाहिए।

'मोक्ष' शब्द बड़ा अनूठा है। भारत के बाहर की किन्ही भाषाओ मे मोक्ष के पर्यायवाची कोई शब्द नही है। स्वर्ग है सभी भाषाओ मे, लेकिन मोक्ष भारत के बाहर की किन्ही भाषाओ मे नहीं है। क्योकि मोक्ष की धारणा ही किसी और देश मे पैदा नही हुई। उतनी ऊचाई तक, उतनी गहराई तक मनुष्य की चितना और ध्यान गया नही कहीं और।

मोक्ष का अर्थ होता है जहा सुख भी नही, दुख भी नही।

स्वर्ग का अर्थ होता है जहा सुख है, भरपूर सुख है। स्वर्ग का अर्थ होता है जो हम चाहते है वही है, जैसा हम चाहते है वैसा है। हमारी चाह का परिपूरक है। हमारी चाह को भरता है। हमारी चाहत के अनुकूल जहा सब हो रहा है वहा स्वर्ग है। तो जहा हमारी चाह पूरी होती है वहा क्षणभर को हम भी स्वर्ग मे हो जाते है।

नर्क का अर्थ है जहा सब हमारी चाह के विपरीत हो रहा है, जो हम चाहते है ठीक उससे उलटा हो रहा है, जिस-जिससे हम बचना चाहते है वही-वही हो रहा है।

नर्क और स्वर्ग सारी दुनिया की भाषाओ मे है।

'मोक्ष' बड़ा अनूठा शब्द है। मोक्ष का अर्थ है न तो हमारी अब कोई चाह है, न हमारी कोई पसद है। क्योकि महावीर कहते है, जब तक चाह है तब तक बधन रहेगा। हा, यह भी हो सकता है कि तुम सोने के बधन बना लो, लोहे की जजीरे तोड डालो और सोने की जजीरे ढाल लो। और यह भी हो सकता है उन जजीरो पर हीरे-मोती जड़ दो। वे प्यारे लगने लगे। वे इतने प्यारे हो जाये कि आभूषण मालूम पड़े।

बहुत-से आभूषण, जिन्हे तुम आभूषण समझते हो, जजीरे सिद्ध होते है, और बहुत-सी जजीरे जिनकी तुम्हे याद भी नही आती कि जजीरे हैं, आभूषणो मे छिप गई है।

तो महावीर कहते है, सुख की आकाक्षा या सुख का मिलना भी जजीर है—सोने की जजीर है। दुख का मिलना लोहे की जजीर है। लेकिन दोनो बाधते है। तुमने खयाल किया? कभी तुम्हे एकाध क्षण को भी ऐसी चैतन्य की घड़ी आई, जब न सुख की आकाक्षा है न दुख की? तब तुमने देखा, कैसी मुक्ति अनुभव होती है। सब सीमाए समाप्त हो जाती है। सब कारागृह विलुप्त हो जाते है। क्षणभर को तुम्हारे चेतना के आकाश मे एक भी बादल नही रह जाता। निरभ्र आकाश। अनत आकाश। जैसे ही उठी आकाक्षा, बादल घिरे, अधेरा छाया। आकाश तो खो गया, बदलिया रह गई। धुए के बादल रह गये।

कभी क्षणभर को भी अगर तुम्हारे जीवन मे ऐसा हो जाता हो, जब न सुख की इच्छा है, न दुख की, कोई इच्छा नहीं है, तुम अनिच्छा मे बैठे हो—उसी घडी को महावीर 'सामायिक' कहते है। तुम ससार के बाहर हो। क्योकि महावीर के हिसाब मे ससार का अर्थ है चाह के भीतर होना।

चाह से भरे होना ससार मे होना है। फिर तुम चाह कोई भी करो। चाहे पृथ्वी के धन की हो, चाहे स्वर्ग के धन की हो, चाहे तुम पुण्य की आकाक्षा करो, लेकिन कोई भी आकाक्षा है, चाहत जारी है—और तुम ससार मे हो।

ऐसी भी घड़िया हैं चैतन्य की, जब कोई चाह नहीं, जब तुम हो—निपट अकेले। शुद्ध। कोई धुए की रेखा भी भीतर नहीं। उस क्षण मे तुम कहा होते हो? उस क्षण मे तुम शरीर के भीतर होते हो? नही, उस क्षण मे शरीर की स्मृति खो जाती है। तुम विदेह हो जाते हो। क्योकि शरीर से हमारा सबध चाह का सबध है। उस क्षण मे तुम शरीर मे नही होते। उस क्षण में तुम पृथ्वी पर नही होते। उस क्षण मे तुम स्थान मे नही होते। उस क्षण मे तुम समय मे भी नही होते। उस क्षण मे तुम अचानक किसी दूसरे ही लोक मे प्रवेश कर गये—पार का लोक। जल्दी ही तुम लौट आओगे। क्योकि उस पार के लोक मे जीने की, उस ऊचाई पर जीने की तुम्हारी क्षमता नही है। उस ऊचाई पर श्वास लेने की तुम्हारी कुशलता नहीं है। उन ऊचाइयो पर उडने की अभी तुमने आदत नही डाली, अभ्यास नहीं किया है।

इसलिए कभी-कभी क्षणभर को जब चाह छूट जाती है, तब तुम एकदम मुक्ति अनुभव करते हो।

ऐसे ही तो पहली दफा आदमी को मोक्ष का खयाल उठा होगा कि जो क्षणभर को हो सकता है वह सदा को क्यो न हो। जो एक क्षण को चेतना मे कभी-कभी झलक जाता है, वह सदा के लिए चेतना का स्वभाव क्यो न बन जाये।

मोक्ष का अर्थ है जहा चेतना की कोई चाह नही। जहा चाह नहीं वहा ससार मे कोई राह नही।

चाह राह बनाती है, ससार मे ले आती है। क्योकि जहा चाह आई, वहा वस्तुओ का ससार आया। तुमने कुछ चाहा, तुम्हारी आख दूर गई, 'पर' पर पड़ी—तुम बधे। तुम उलझन मे पड़े।

और जिसने सुख चाहा—उसे दुख मिला।

यह तो हमारा सबका अनुभव है। सभी ने सुख चाहा है—मिला कहा? चाहा तो सभी ने सुख है, पाया सभी ने दुख है। इसे तुम कब देखोगे? कब जागोगे कि चाह तो कुछ और होती है, मिलता कुछ और है।

तो महावीर कहते है, यह जीवन का आधारभूत नियम है कि जो सुख चाहेगा वह दुख पायेगा। सुख की चाह मे ही दुख छिपा है। इसे समझो।

पहला, सुख वही चाहता है जो दुखी है—एक बात। क्योकि तुम वही चाहते हो जो तुम्हारे पास नहीं है। जो तुम्हारे पास है, तुम क्यो चाहोगे? जो तुम्हारे पास है ही, उसकी तो चाह खो जाती है, जो नही है उसकी ही चाह पैदा होती है। अभाव चाह को जन्माता है। अभाव जन्मदाता है।

तो जिस आदमी ने सुख चाहा, एक बात तो उसने यह बतायी कि वह दुखी है। फिर जिस आदमी ने सुख चाहा, उसने दूसरी बात भी बतायी कि अगर यह न मिला तो मै और दुखी हो जाऊगा, विषाद घेरेगा, असफलता हाथ लगेगी। और जैसे ही उसे यह खयाल आया कि अगर यह न मिला तो मै और दुखी हो जाऊगा, विषाद होगा मेरे जीवन मे, उद्विग्न हो जाऊगा, हारा हुआ, थका हुआ, पराजित—भय समाया। भय आया। यह आदमी वैसे ही दुखी था, इसने सुख की चाह करके और दुख बुला लिया, और भयभीत हो गया। अब यह डगमगाते कदमो से सुख की तरफ चलता है।

और, सुख हम सदा बाहर मागते है किसी स्त्री से मिलेगा, किसी पुरुष से मिलेगा, धन से मिलेगा, पद से मिलेगा। लेकिन पद से सुख का क्या सबध है? तुम कितनी ऊची कुर्सी पर बैठते हो, इससे सुख का क्या सबध? तुम कितने बड़े मकान मे हो, इससे क्या सुख का सबध है?

सुख का मकान के बड़े और छोटे होने से कही भी तो कोई सबध नही है। क्योकि सड़क पर खड़े भिखारी भी कभी सुखी दखे गये है। महावीर खुद ही ऐसे भिखारी थे। और कभी महलो मे सम्राट भी दुखी देखे गये है।

तो दुख और सुख का सबध स्थितियो से तो मालूम नही पड़ता, परिस्थितियो से तो मालूम नही पड़ता—कुछ भीतरी दशाओ से जुड़ा है। तो जब भी तुमने बाहर मागा, गलत जगह मागा। और माग मात्र बाहर की होती है। भीतर तो मागोगे किससे, मागोगे क्या? वहा तो कुछ भी नहीं है—शून्य आकाश है। वहा तो कोरापन है। वहा तो तुम मुट्ठी बाधना चाहोगे तो बधेगी नही; बध भी जायेगी तो हाथ मे कुछ न आयेगा। आकाश को कौन मुट्ठी मे बाध सका है! आत्मा को भी कोई नही बाध सका है।

तो भीतर तो कुछ पकड़ मे आता नहीं, बाहर पकड़ मे चीजे आ जाती है, तो हम सोचते है बाहर होगा। ऐसे बाहर दौड़ते हैं जहा नही है। फिर एक न एक दिन स्वप्न टूटता है और पता चलता है यहा नहीं है; हम महादुखी हो जाते है। उस महादुख से और बडे सुख की आकाक्षा पैदा होती है। क्योकि जितने हम दुखी होते है उतनी ही तीव्र आकाक्षा होती है कि जल्दी करो, मौत करीब आयी जाती है, सुखी होना है। ऐसा एक दुष्टचक्र है। दुख मे से सुख की आकांक्षा निकलती है, सुख की आकाक्षा मे से और बड़ा दुख निकलता है।

तो महावीर कहते है, जिसने छोडा है, उसने सिर्फ दुख को ही नहीं छोड़ा, उसने सुख को भी छोड़ा है। उसने नर्क का ही त्याग नही किया । वह तो सभी करते है, उसमे कौन-सी कुशलता है? उसमे कौन-सी मेधा है? दुख से कौन नहीं बचना चाहता—सभी बचते है। उसमे कौन-सी बुद्धिमानी है? उसमे कौन-सी विशेषता है। लेकिन जिसने गौर से देखा, समझा, जीवन की पर्तों को उघाड़ा, रहस्य को पहचाना, गणित का सूत्र समझ मे आ गया उसे कि दुख की सारी चाल यही है कि वह तुम्हे सुख का आश्वासन देता है और भरमा लेता है। तुम सुख के आश्वासन मे दुख के पीछे चले जाते हो, भटक जाते हो। मिलता दुख है, चाहते सदा सुख हो।

जो जागा इस अनुभव मे, उसने सुख नहीं चाहा। और जिसने सुख नहीं चाहा, उसके जीवन से दुख विदा होने लगे। क्योकि बिना सुख की चाह के दुख निर्मित नही हो सकता।

थोड़ा सोचो।

जिस आदमी ने सफलता नहीं चाही, उसे तुम विफल कैसे करोगे? और जिसने कभी जीतना नहीं चाहा, उसे तुम हराओगे कैसे? और जिसने कभी धनी होने के पागलपन मे अपने को नहीं लगाया, उसे तुम निर्धन कैसे कर पाओगे? और जिसने तुमसे सम्मान नहीं मागा, तुम उसका अपमान कैसे करोगे? करोगे कैसे? उपाय कहा है? उसने तुम्हे सुविधा कहा दी?

जिसने सम्मान चाहा, उसे तुम अपमानित कर सकते हो। जिसने धन चाहा, उसकी चाह मे ही वह निर्धन हो गया। जिसने जीत चाही, उसने पराजय के ढेर लगा लिये।

इसलिए महावीर कहते है मोक्ष का अर्थ है इस अनुभव को तुम्हारे जीवन की स्थिर दशा बना लेना कि न सुख की चाह न दुख की चाह, न नर्क न स्वर्ग, कोई चाह नहीं।

अचाह की दशा मोक्ष है।

तो यह तो परिणाम है मोक्ष। मोक्ष यहां घट सकता है। ऐसा मत सोचना जैसा कि साधारणत लोग समझते है कि मोक्ष मरने के बाद घटता है। जिसको जीते-जी नहीं घटा उसे मरने के बाद भी नही घटेगा। पहले तो मोक्ष जीवन मे उतरता है। इसलिए व्यक्ति पहले जीवन-मुक्त होता है—जीते-जी मुक्त होता है। फिर जो जीते-जी मुक्त हो गया, वह तो मरने के बाद भी मुक्त

रहेगा। मुक्ति एकमात्र सपदा है जिसे मृत्यु नही छीन पाती। और सारी सपदाए मृत्यु छीन लेती है।

इसलिए महावीर कहते है अगर तुम थोड़े भी बुद्धिमान हो, थोड़ा हिसाब तो करो, गणित तो बिठाओ। तुम जो इकट्ठा कर रहे हो वह सब मौत छीन लेगी। पहले तो कर न पाओगे। कौन कब कर पाया? और अगर किसी तरह कर भी लिया तो जब तक तुम कर पाओगे, मौत द्वार पर आ जायेगी। करोगे तुम, छीन लेगी मौत। यह कैसी नासमझी कर रहे हो? उसे कमा लो, जिसे मौत न छीन सकती हो मुक्त दशा। चैतन्य की अचाह की दशा। चैतन्य का निरभ्र आकाश, जिसमे कोई चाह के बादल नही। फिर मौत कुछ भी न कर पायेगी।

मौत एक जगह जाकर हारती है—वह मोक्ष है। और सभी चीजो पर जीत जाती है। अब इसे समझना।

हमारी जीवन की भी आकाक्षा है, इसलिए मौत जीत जाती है। जीवेषणा। हम जीना चाहते है—हर हाल जीना चाहते है। हर शर्त पूरी करने को राजी है, लेकिन जीना चाहते है। सड़ते हो, गलते हो, मरते हो, खाट पर पडे हो, अस्पतालो मे लटके हो, उल्टे-सीधे हाथ-पैर बधे हो—लेकिन जीना चाहते है। मरना नहीं चाहते। कैसी भी हालत मे आदमी पड़ा हो और उससे पूछो, 'मरना चाहते हो?' वह इनकार करेगा। तुम चकित होओगे, बहुत-से लोग कहते है कि 'अब तो भगवान उठा लो।' वह भी मरना नहीं चाहते। वह भी कहने की बाते कर रहे है।

मेरा एक मित्र मरना चाहता था, आत्महत्या करना चाहता था। उसके पिता बहुत घबड़ा गये। इकलौता बेटा था और अकेले मुझसे ही उसकी दोस्ती थी, तो वे मुझे बुलाने आये। तो मैने कहा, 'घबडाओ मत। मै उसे भलीभांति जानता हू। चिता न करो।' पर वे बोले कि चिता होती है, उसने दरवाजा बद कर लिया है। और अगर दरवाजे पर खटका भी करो तो वह चिल्लाता है, कि 'मै मर जाऊगा, दरवाजा नही खोलूगा।' वह कुछ कर न ले, सिर न तोड दे। कुछ छुरी वगैरह न छिपा रखी हो, कुछ जहर वगैरह न रखे हो, कोई गोलिया न ले आया हो। और पिता वैद्य है तो और भी डरे कि वह जहर तो हमारे घर मे रहता ही है, गोलिया भी है, दवाइया भी है, वह कुछ ले न गया हो उठाकर!

तो मैं गया। भीड़ लगी थी, मुहल्ला इकट्ठा था। मैने दरवाजे पर जाकर कहा कि सुनो, मरना है तो इतना शोरगुल क्यो कर रहे हो? शोरगुल जिसको जिदा रहना है उसको शोभा देता है। अब जिसको मरना ही है तो यह इतना क्या विज्ञापन? दरवाजा खोलो और मेरे साथ चलो। तुम्हे मरने की कोई ढग से व्यवस्था जुटा देगे, यह कोई ढग चुना? अब जब मरना ही है ।

तब वह मुझे तो धमकी दे नहीं सका कि मर जाऊगा। अब उसे कुछ समझ मे न आया तो उसने दरवाजा खोल दिया। मैंने कहा, 'तुम मेरे साथ आओ—नर्मदा पर चलेगे। 'धुआधार' ले चलेगे। वहा से तुम कूद जाना। चाद की रात है, जलप्रपात है, जब मर ही रहे हो—जिदगी मे तो कुछ नहीं मिला, कम से कम मौत को ही सुदर बना लो।'

उसने मेरी तरफ बडी गौर से और हैरानी से देखा, क्योकि जो भी आये थे, वह सब समझा रहे थे दरवाजे के बाहर से कि बेटा मरना मत। ऐसा मत करना, वैसा मत करना।

एक लड़की से उसका प्रेम था। उस लडकी ने विवाह करने मे इनकार कर दिया था। तो लोग समझा रहे थे 'उससे अच्छी लडकिया मिल जायेगी, उसमे रखा क्या है? तू घबड़ाता क्यो है?' मगर वह जिद्द पकडे हुए था।

मै उसे घर ले आया और मैंने कहा कि रात तुझे जो भी करना हो, क्योकि यह आखिरी रात है—कोई फिल्म देखनी है? कोई मिठाई खानी है? कुछ आखिरी पत्र वगैरह लिखना? कुछ भी तुझे करना हो तो बोल, क्योकि फिर मौका नहीं रहेगा। और दो बजे रात हम उठेगे और चल पड़ेगे। तू कूद जाना, हम विदा कर आयेगे। मित्र का कर्तव्य है कि जो असमय मे काम आये वही मित्र है। अब इस वक्त तेरे कोई काम नहीं आ सकता।

वह सुनता था मेरी बात, बड़े क्रोध से देखता था। बोलता भी नही था कुछ। दो बजे रात का अलार्म भर दिया। दोनो हम सो गये। बीच मे अलार्म-घड़ी रख ली। जैसे ही दो बजे अलार्म बजा, उसने जल्दी से अलार्म बद किया। मैंने उसका हाथ घडी पर पकड़ा। मैंने कहा, अलार्म बद नहीं कर सकते। वह एकदम बैठ गया और चिल्लाया कि तुम मेरे दुश्मन हो कि मेरे दोस्त? तुम मुझे क्यो मारने मे लगे हो? क्या मुझे मरना ही पड़ेगा?

' मेरा कोई प्रयोजन नही है। तुम मरना चाहो तो मै साथ देता हू। तुम जीना चाहो तो मै साथ देने को तैयार हू—मेरा काम साथ देने का है—तुम अगर मरने मे सुख पाते हो तो मै क्यो

बाधा दू! तुम फिर सोच लो, सुबह कही तुम बदल मत जाना—सूरज ऊगा देखकर, फिर लोग, भीड़ देखकर—फिर तुम मौत की बात मत कर लेना। अब तुम तय कर लो। अगर मरना हो तो मर जाओ। अगर जिदा रहना है तो जिदा रहो, फिर मरने की बात मत करो।'

वह आदमी अभी भी जिदा है। वह मुझ पर बहुत नाराज है। उसने शादी भी कर ली किसी दूसरी स्त्री से। अब तो बच्चे भी है उसके। और कभी मै गया उस गाव दुबारा तो उसको बुलाता हू तो वह बड़ी नाराजगी मे आता है। वह प्रसन्न नही है। जैसे मैने उसका कोई अहित किया। और मै वही कर रहा था जो वह करना चाहता था।

लोग कहते है कि मर जाये अब तो। वे यह नही कह रहे है कि मरना चाहते है। भूल मत समझ लेना। वे तो सिर्फ यही कह रहे है कि जिदगी थोड़ी बेहतर होनी चाहिए। यह कोई जिदगी है।

इस मरने की चाह मे ही जीवन की आकाक्षा है। इस मरने की चाह मे भी और जीवन को चूस लेने का भाव है। वे यह कह रहे है कि अब जिदगी मे कुछ सार तो नही मालूम पडता, क्या फायदा जीने से। लेकिन फिर भी भीतर जीने की आकाक्षा है। अन्यथा कौन किसको मरने से रोक सका है? कौन कब रोक सकता है?

दुनिया के सरकारी कानूनो मे अगर सबसे मूढतापूर्ण कोई है तो वह आत्महत्या के विपरीत कानून है। वह कुछ समझ के बाहर है। सरकारो को ऐसे कानून नही बनाने चाहिए जिनको वह पूरा न करवा सकती हो। आत्महत्या का कानून कोई सरकार पूरा नही करवा सकती। जिसको मरना है, उसे कोई कैसे रोक सकता है, थोड़ा सोचो तो। सौ मे निन्यानबे लोग जो मरने की चेष्टा करते है, वे सिर्फ दिखावा करते है, मरना नहीं चाहते सौ मे से निन्यानबे मरने की चेष्टा करके बच जाते है। वे बचने का पहले ही इतजाम कर लेते है। आकाक्षा जीने की इतनी प्रगाढ़ है। और वह जो एक आदमी मर जाता है, वह भी मरना चाहता था, इसमे सदेह है। मर गया, यह दूसरी बात है। कुछ जरा जरूरत से ज्यादा इतजाम कर गया। कुछ समझ न पाया। दस गोलिया लेनी थी, बीस ले ली। कुछ भूल-चूक गणित मे हो गई। सोचती थी पत्नी कि पति साझ घर आ जायेगे, वे दो दिन तक नहीं आये और वह रात पड़ी-पड़ी मर गई।

जो सौ मे से एक मर जाता है, वह भी ऐसा लगता है कि भूल-चूक से सफल हो गया। निन्यानबे तो सफल नही होते, क्योकि वह असफलता का इतजाम पहले से कर लेते है। मरने की चेष्टा, उनकी कुछ घोषणा है जीवन के बाबत। वे किसी और तरह का जीवन चाहते है लेकिन जीवन नही चाहते, ऐसा नही है। जीवन तो चाहते ही है—और तरह का जीवन चाहते है। इस जीवन से तृप्ति नही हो रही है। तो वे इस जीवन के प्रति शिकायत कर रहे है मरने की कोशिश मे।

लेकिन कौन किसको रोक सकता है? मरना कोई चाहता नही, इसलिए कानून चलता है। अन्यथा मै नही देखता कोई उपाय है कि तुम कैसे किसी आदमी को रोक सकोगे मरने से। जिसको मरना है वह राह खोज लेगा।

मौत तो व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसको कोई राज्य छीन नही सकता।

लेकिन कोई मरना ही नही चाहता, छीनने का सवाल ही नही है। कभी-कभी कोई भूल-चूक से सफल हो जाता है। वह भी पछताता होगा मरकर कि 'अरे, यह मैने क्या कर लिया। यह जरा मै अति कर गया। जरा दो कदम ज्यादा उठा लिये, जरा दो कदम कम उठाने थे।' प्रेत होकर वह भी पछताता होगा।

महावीर कहते है चूकि जीवेषणा है, इसलिए मौत तुमसे कुछ छीन पाती है। जिस व्यक्ति की जीवन की आकाक्षा भी न रही । इसका यह अर्थ नही है कि उसको मरने की आकाक्षा पैदा हो जाती है। क्योकि जिसको जीवन की आकाक्षा न रही, उसे मरने की आकाक्षा कैसे पैदा होगी? वह तो जो है उसे स्वीकार कर लेता है। जीवन तो जीवन, मौत तो मौत। उसने अपनी आकाक्षाओ को आरोपित करना बद कर दिया। जो तथ्य है, स्वीकार कर लेता है। अभी जी रहा है, तो जी रहा है, क्षणभर बाद सास बद हो गई तो वह चुपचाप बद कर लेगा। वह एक दफा ज्यादा सास लेने की चेष्टा न करेगा। हा। मरने के महले मरेगा भी नही, क्योकि उसमे भी जीवेषणा, आकाक्षा, चाह का हिस्सा होता है

मुक्तपुरुष वही है जिसके भीतर से अब जीवन की भी आकाक्षा नही रही। फिर मौत कोई परिणाम नही ला पाती।

और जहा मौत व्यर्थ हो जाती है, वही कसौटी है कि तुमने परम जीवन को जाना। उस परम जीवन का नाम महावीर मोक्ष रखते है

या निर्वाण।

लेकिन बुद्ध और महावीर दोनो ने निर्वाण शब्द का उपयोग अलग-अलग अर्थों मे किया है। बुद्ध के निर्वाण का ठीक वही अर्थ होता है जो दीये के बुझने का होता है। दीये को फूककर बुझा देते हैं, उसको हम कहते है दीये का निर्वाण हो गया। महावीर के निर्वाण शब्द का अर्थ अलग है, क्योंकि उनकी जीवन-दृष्टि अलग है। महावीर कहते है, दीया नहीं बुझता। दीया तो बुझेगा ही नहीं कभी, यह ज्योति तो सदा रहनेवाली है। सिर्फ दीये की ज्योति से धुआ नहीं उठता।

'वाण' का अर्थ होता है वासना। 'निब्बाण' का अर्थ होता है वासनारहित हो जाना। तुमने देखा, ईधन जलाते हो लपटे भी उठती है, धुआ भी उठता है। अगर ईधन गीला हो तो धुआ बहुत उठता है, अगर ईंधन सूखा हो तो कम उठता है। अगर ईधन बिलकुल सूखा हो तो धुआ उठ ही नहीं सकता, क्योंकि धुआ आग के कारण नहीं उठता, लकड़ी के गीलेपन के कारण उठता है, लकड़ी के कारण नही उठता, वह जो लकड़ी मे पानी छिपा है, उसके कारण उठता है।

तो महावीर कहते है कि जब ऐसी सूखे ईधन जैसी व्यक्ति की चेतना हो जाती है, जिसमे वासना का कोई गीलापन नही रहा, सूख गई पोर-पोर, वासना-मात्र सूख गई, हरी वासना जरा भी न रही—तब लपट तो उठती है, लेकिन धुआ नही उठता।

उस निर्धूम लपट का नाम निर्वाण है। वासना के गिर जाने का नाम निर्वाण।

बुद्ध के हिसाब से तो आत्मा के मिट जाने का नाम निर्वाण, महावीर के हिसाब से वासना के मिट जाने का नाम निर्वाण।

'मार्ग है उपाय, मोक्ष है फल।' और इन दो बातो मे, महावीर कहते है, सारी बात हो गई।

'दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य तथा तप को जिनेद्रदेव ने मोक्ष का मार्ग कहा है। शुभ और अशुभ भाव मोक्ष के मार्ग नहीं है। इन भावो से तो नियमत कर्म-बध होता है।'

फिर मार्ग क्या है?

'दसणाणचरित्ताणि '

दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप—ये शब्द बड़े बहुमूल्य है। महावीर का सारा नवनीत इन तीन शब्दो मे, त्रिरत्न—दर्शन, ज्ञान, चरित्र—मे समाया हुआ है।

'दर्शन' का अर्थ है देखने की क्षमता, द्रष्टा, साक्षी। 'ज्ञान' का अर्थ है साक्षी को जो दिखाई पड़ता है, द्रष्टा के जो अनुभव मे आता है। और 'चारित्र्य' का अर्थ है जो जागा, जिसने देखा, जिसने जाना—उस जानने के कारण जो जीवन मे उतर आता है।

तो पहली तो घटना घटती है साक्षी-भाव मे दर्शन की। दूसरी घटना घटती है बोध की, ज्ञान की—समझ मे आया। तीसरी घटना घटती है चारित्र्य की। क्योंकि जो समझ मे आ गया, उससे विपरीत करोगे कैसे?

अगर तुम जैन मुनियो से पूछो तो वे अकसर उलटी व्याख्या कर रहे है। वे चरित्र को पहले रखते है जबकि किसी सूत्र मे महावीर ने चरित्र को पहले नहीं रखा, चरित्र को अतिम रखा है। पहला दर्शन, फिर ज्ञान, फिर चरित्र। अगर जैन मुनि से पूछो तो वह कहता है 'चरित्र। पहले चरित्र को सुधारो। जब चरित्र सुधरेगा तो ज्ञान होगा। चरित्रहीन को कहीं ज्ञान हुआ है? और जब ज्ञान होगा तब कहीं दर्शन उपलब्ध होगा।' उसने सारी बात उलटी कर ली।

लेकिन महावीर के शब्दो मे कही भी चरित्र पहले नहीं आता—आ नही सकता। पहले तो मूर्च्छा तोड़नी जरूरी है। दर्शन यानी मूर्च्छा का टूट जाना, देखने की क्षमता आ जाना, आख का खुल जाना। आख खुली कि अनुभव मे आना शुरू होता है कि क्या है सत्य। वह जो 'क्या है सत्य', उसकी अनुभूति है, उसका नाम ज्ञान है।

तो ज्ञान शास्त्र से नही मिल सकता।

इसलिए महावीर ने ज्ञान को दर्शन के बाद रखा है। ज्ञान तो मिल सकता है केवल ध्यान से, शास्त्र से नहीं। और चारित्र्य कभी भी अभ्यास करने से नहीं पैदा हो सकता। अभ्यास से तो जो पैदा होता है, वह आदत है।

चारित्र्य तो तब पैदा होता है जब तुम्हारे भीतर दृष्टि इतनी सघन होती है कि तुम उसके विपरीत नहीं चल पाते।

मैंने सुना है, एक बिच्छू ने एक केकड़े से कहा कि मुझे नदी के उस पार जाना है, मित्र। पार करवा दो। उस केकड़े ने कहा, 'तुमने मुझे नासमझ समझा है? बीच रास्ते में मेरी पीठ पर बैठे डक मार दोगे, डूब जाऊगा, मर जाऊगा।'

बिच्छू ने कहा, 'मालूम होता है तर्क मे तुम बहुत कमजोर हो।

तुमने ठीक तर्क-शास्त्र का शिक्षण नहीं लिया। अरे नासमझ। जब मै पीठ पर तेरी बैठा हू और डक मारूगा तो तू डूबेगा वह तो ठीक, मै भी तो डूबूगा। मै भी तो मरूगा। तो यह बात तर्क के विपरीत है। ऐसा मै कैसे कर सकूगा? तेरी ही मौत होती होती तो समझ मे आ सकता था, तेरी मौत तो मेरी मौत भी बनेगी। इसलिए यह बात तर्क के अनुकूल नही है।' केकड़े ने कहा, 'बात तो ठीक है। तर्क के बिलकुल अनुकूल नहीं है। आओ बैठ जाओ।' बैठ गया पीठ पर बिच्छू, चल पड़े दोनो और बीच मझधार मे जो होना था हुआ। बिच्छू ने डक मारा। जब डक मारा और दोनो डूबने लगे तो मरते-मरते केकड़े ने पूछा कि महानुभाव, तर्क का क्या हुआ? उस बिच्छू ने कहा, 'तर्क का इससे क्या सबध है? यह मेरा चरित्र है।'

लोग जैसा जी रहे है वैसा जीने को मजबूर है। उनके पास दृष्टि ही वैसी जीने की है। तुम सोचते हो, कोई आदमी शराब पीता है, इसलिए मूर्च्छित है। असलियत और है। वह मूर्च्छित है, इसलिए शराब पीता है। तुम सोचते हो, एक आदमी मासाहार करता है, इसलिए हिसक है। तुम गलत सोचते हो। वह आदमी हिसक है, इसलिए मासाहार करता है। अगर तुमने ऐसा सोचा कि मासाहार करने के कारण हिसक है तो तुम्हारी चेष्टा यह होगी कि मासाहार छुड़ा दो। मासाहार तो छूट जायेगा, लेकिन अगर वह हिसक होने के कारण मासाहारी था, तो हिसा नही छूटेगी। फिर हिसा नये मार्ग खोज लेगी। किसी और तरफ से हिसक हो जायेगा वह। किसी और बहाने से हिसा करेगा।

ध्यान रखना, हम जैसे है वह हमारे भीतरी चित्त की अवस्था के कारण है।

बाहर से भीतर को नही बदला जा सकता। आचरण से अतस नहीं बदला जा सकता। लेकिन अतस बदल जाये तो आचरण तत्क्षण बदलना शुरू हो जाता है।

महावीर का सूत्र बिलकुल साफ है दर्शन, ज्ञान, चरित्र। इन तीन को जैनो ने त्रिरत्न कहा है। ये उनकी तीन मणिया है, जिन पर मोक्ष का भवन निर्मित होता है। ये आधार है। और ये तीन रत्न जिसके पास है उसके पास सब आ गया—सारी सपदा सारे जगत की। त्रिलोक की सारी सपदा उसके पास आ गई।

दर्शन उपलब्ध होता है—जागरण से, अप्रमत्तता से, होश से। दर्शन का अर्थ तुम जैन दर्शन, हिदू दर्शन, बौद्ध दर्शन, ऐसा मत समझ लेना। दर्शन का अर्थ फिलासफी नही है। दर्शन का अर्थ है देखने की क्षमता, तुम्हारी आखो का निष्कलुष हो जाना, तुम ऐसे देख सको कि देखने मे तुम अपने भावो को मिश्रित न करो, तुम निर्भाव से देख सको, तटस्थ, निष्पक्ष, निर्विकार, तुम अपने को बीच मे न डालो, तुम अपने को बिना डाले देख सको। तो फिर तुम्हारे जीवन मे दर्शन उपलब्ध होगा।

क्रोध आये, क्रोध को गौर से देखना। क्रोध को रोककर चरित्र निर्मित करने की कोशिश मत करना। क्रोध को गौर से देखना। इतने गौर से देखना कि तुम्हे क्रोध का सारा अर्थ समझ मे आ जाये। इतने गौर से देखना कि तुम क्रोध से पृथक और अलग साक्षी हो, यह तुम्हारी अनुभूति मे आ जाये। इतने गौर से देखना कि क्रोध वहा पड़ा रह जाये वस्तु की तरह, तुम यहा द्रष्टा की तरह खड़े रह जाओ, तुम्हारे दोनो के बीच का सेतु टूट जाये।

दर्शन का अर्थ होता है सारे सेतुओ का टूट जाना। व्यक्ति अलिप्त खड़ा होकर देखता है—क्रोध है तो क्रोध को, काम है तो काम को, हिंसा है तो हिसा को, प्रेम है तो प्रेम को, राग है तो राग को अलिप्त भाव से देखता है, सिर्फ देखता है। जिसको कृष्णमूर्ति अवेयरनेस कहते है, होश, जिसको बुद्ध ने सम्यक स्मृति कहा है, ठीक-ठीक स्मृति, जिसको गुरजिएफ ने सेल्फ-रिमेबरिंग कहा है, आत्म-बोध, उसी को महावीर दर्शन कहते है। इधर दर्शन की क्षमता घनी होगी कि दर्शन से जो-जो तुम्हे दिखाई पड़ेगा, वह जो दर्शन का सार इकट्ठा होने लगेगा वह है ज्ञान। तो एक तो ज्ञान है जो शास्त्र से मिलता है और एक ज्ञान है जो जीवन के साक्षी-भाव से मिलता है। उसको महावीर ज्ञान कहते है। पढ़ लोगे शास्त्र मे, उससे क्या होगा? अकसर ऐसा हुआ है

अहले-दानिश आम है, कमयाब है अहले-नजर
क्या तअज्जुब कि खाली रह गया तेरा अयाग।

अहले-दानिश आम है—शास्त्रो के जानकार बहुत है। तथाकथित बुद्धिमान बहुत है। तथाकथित बुद्धिशाली बहुत है।

कमयाब है अहले-नजर—लेकिन जिनके पास द्रष्टा की दृष्टि है, अहले-नजर, जिनके पास शुद्ध आख है, देखने की क्षमता है, ऐसे बहुत-बहुत विरले है।

अहले-दानिश आम है, कमयाब है अहले-नजर
क्या तअज्जुब कि खाली रह गया तेरा अयाग।

अगर तुम्हारे जीवन की प्याली अमृत से बिना भरी रह गई तो कुछ आश्चर्य नही, क्योकि तुमने शास्त्रो से ही जीवन की प्याली को भरना चाहा। शास्त्रो से ही तुमने सोचा कि तुम बुद्धिमान हो जाओगे। तो अहले-दानिश हो गये, तथाकथित बुद्धिमान हो गये। कठस्थ हो गये सत्य। लेकिन कठस्थ सत्य, सत्य नही है—मात्र थोथे सिद्धात है। प्राण कौन डालेगा उनमे? प्राण तो व्यक्ति को स्वय डालने होते है। इसे याद रखना।

जिसे तुम पाओ वही सत्य है। जिसे तुमने नही पाया वह सत्य नही हो सकता, वह सत्य के सबध मे कोई सिद्धात होगा। ऐसा ही समझो कि पाक-शास्त्र पढते रहो, पढते रहो, इससे न तो भूख मिटेगी, न जीवन पुष्ट होगा। रोटी पकानी पडेगी। आटा गूथना पडेगा। चूल्हा जलाना पड़ेगा। इतना ही नही, फिर रोटी पचानी पड़ेगी। रोटी भी बन जाये तो भी कुछ काम नही आती, जब तक कि पचाने की क्षमता न हो, जब तक रोटी पचे न और लहू मे रूपातरित न हो जाये, हड्डी, मास-मज्जा न बने, तब तक किस काम की?

दर्शन की भट्टी मे ज्ञान की रोटी पकती है। और ज्ञान की रोटी को जब तुम पचाते हो और ज्ञान की रोटी जब तुम्हारा खून, मास-मज्जा बन जाती है, तो चारित्र्य। चरित्र आखिरी बात है। सबसे पहले तो शून्य आकाश मे दर्शन घटता है। फिर दर्शन उतरता है तुम्हारी अतरात्मा मे, ज्ञान बनता है। फिर ज्ञान तुम्हारे जीवन मे अनस्यूत हो जाता है। तब चारित्र्य बनता है। ये त्रिरत्न और तप।

'तप' शब्द भी समझने जैसा है। तप का अर्थ अपने को दुख देना नही होता। तपस्वी का अर्थ अपने को सतानेवाला नही है, मेसोचिस्ट नही है। तप का अर्थ होता है दुख आये तो उसे सहिष्णुता से स्वीकार करना। तप का अर्थ है दुख आये तो उसे दुश्मन की तरह दुत्कारना नही, उसे भी मित्र की तरह स्वीकार कर लेना। साधारणत हम सुख को तो बुलाते है, दुख को दुत्कारते है। तप का अर्थ होता है सुख को तो बुलाना मत, आ गये दुख को स्वीकार कर लेना।

तप हमसे ठीक उलटी व्यवस्था है। अभी हम कहते है, सुख आये, चिट्ठिया लिखते है सुख को कि आओ, निमत्रण भेजते है। और दुख को, बिना बुलाया भी आ जाये—बिना बुलाया ही आता है, क्योकि कौन दुख को बुलाता है—उसे हम धक्का देते है, बाहर निकालते है।

तपश्चर्या का अर्थ है इस जीवन-दृष्टि का ठीक उलटा हो जाना। सुख को बुलाना नही, कोई निमत्रण नही लिखना और दुख आ जाये तो जो आ गया बिना बुलाये, अतिथि देव है, उसको स्वीकार कर लेना।

तो तप का अर्थ दुख पैदा करना नही है, लेकिन दुख जो तुमने जन्मो-जन्मो मे अर्जित किया है, वह आयेगा। उसके साथ क्या रुख अपनाओगे? तप एक रुख है, दृष्टि है। तप यह कहता है, मैंने दुख के बीज बोये थे, अब फसल काटने का वक्त आ गया तो मै काटूगा। यह फसल कौन काटेगा? दुख के बीज मैने बोये थे तो फसल भी मुझे ही काटनी है। तो अब रो-राकर क्या काटनी। अब स्वीकार-भाव से काट लेनी है।

इसे खयाल रखना, नही तो भ्राति क्या है कि जो लोग तपस्वी बनते है, वे सोचते हैं, अभी सुख को लिखते थे चिट्ठिया, अब दुख को लिखो। मगर चिट्ठिया लिखना जारी रहता है। बुलावा भेजते ही रहते है। पहले सुख को पकड़ते थे, अब वे सोचते है, दुख को पकडो। पहले सुख को न जाने देते थे, अब दुख जाने लगे तो वे कहते है, 'मत जाओ। तुम्हारे बिना हम कैसे रहेगे।' लेकिन यह तो विकृति हो गई। यह तो रोग हो गया। यह तो पुराना रोग बदला तो नया रोग पकड गया।

तप का सिर्फ इतना ही अर्थ है कि जो आये दुख तो निश्चित हमने कमाया होगा, बिना कमाये कुछ भी आता नही। तो हमने किसी न किसी रूप मे उसे बुलाया होगा। बिना बुलाये कुछ भी आता नही। हमने सुख मानकर ही बुलाया होगा, लेकिन वह हमारी मान्यता भ्रात थी। जिसको हमने सुख कहकर पुकारा था, वह दुख का नाम था। आ गया दुख, अब इसे स्वीकार कर लेना। इसे धक्के नही देना, इनकार नही करना। इसका भी साक्षी-भाव रखना है।

'दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप जिनेंद्रदेव ने मोक्ष के मार्ग कहे। शुभ और अशुभ भाव मोक्ष के मार्ग नहीं है ।'

यह बड़ी क्रातिकारी बात है 'शुभ और अशुभ भाव मोक्ष के मार्ग नहीं है। इन भावो से तो नियमत कर्म-बध होता है।'

अच्छा करू, बुरा न करू, पुण्य करू, पाप न करू—ये शुभ भाव हैं। किसी को दुख न दू, सुख दू—ये शुभ भाव है। मुझसे हिसा न हो, अहिसा हो, लोभ न हो, दान हो, क्रोध न हो, दया

हो, करुणा हो—ये शुभ भाव है। लेकिन महावीर कहते है, मुझसे कुछ हो, इसमे ही बधन है। बुरे का तो बधन होता ही है, भले का भी बधन हो जाता है। लोभी तो बधता ही है, दानी भी बध जाता है। और पापी तो बधता ही है, पुण्यात्मा भी बध जाता है, यद्यपि पुण्यात्मा की जजीरे सोने की होती है।

इसलिए महावीर कहते है, शुभ और अशुभ भाव मोक्ष का मार्ग नही है। दोनो से मुक्त होना है। अशुभ को तो छोड़ना ही है, शुभ को भी छोड़ना है। असाधु को तो छोडना ही है, साधु के भी पार जाना है। एक ऐसी दशा चाहिए, जो सभी दशाओ का अतिक्रमण कर जाती हो। एक ऐसी दशा, जिसका लगाव, आग्रह किसी भी बात मे न हो।

'इन भावो से तो नियमत कर्म-बध होता है।'

दोस्तो के इस कदर सदमे उठाए जान पर

दिल से दुश्मन की शिकायत का गिला जाता रहा।

अगर तुम गौर से देखो तो मित्रो ने इतने कष्ट दिये है कि अब दुश्मनो की क्या शिकायत करनी। महावीर कहते है, अगर गौर मे देखो तो शुभ आकाक्षाओ से ही पटा पड़ा है नर्क का मार्ग। अशुभ आकाक्षाओ की तो बात ही छोडो, उनकी तो शिकायत क्या करनी। अगर कोई क्रोधी बधन मे पड़ा है तो यह तो स्वाभाविक है, लेकिन चेष्टा करके जो दया कर रहा है, वह भी बधन मे पड़ जाता है। वहा भी अहकार निर्मित होता है

दोस्तो के इस कदर सदमे उठाए जान पर

दिल से दुश्मन की शिकायत का गिला जाता रहा।

शुभ ने ही इस बुरी तरह सताया है, अशुभ की तो शिकायत क्या करे। अपनो ने इस तरह सताया है कि परायो की तो बात ही क्या करे। उनकी शिकायत करने जैसी भी नही रही।

तुमने देखा, तुम्हारे शुभ भावो ने ही तुम्हे कितना सताया है। प्रेम ने कितना सताया है, यह तो देखो। फिर घृणा की सोचना। तुम किसी के लिए अच्छा करना चाहते थे, उसके कारण कितनी झझट मे पड़े हो। फिर तुम किसी के लिए बुरा करना चाहते थे, उसकी सोचो।

महावीर कहते है, तुम अच्छा-बुरा दोनो ही करनेवाले नही हो, ऐसे साक्षी बन जाओ। वहा से मोक्ष का द्वार खुलता है। अच्छा और बुरा तो कर्म का ही मार्ग है। और कर्म तो बाधता है। न शुभ न अशुभ—दोनो के मध्य मे सतुलित।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।

छुरे की तीक्ष्ण धारा की भाति, जैसे कोई पतले छुरे की धार पर चलता हो, ऐसा मार्ग है। शुभ को भी एक तरफ छोड़ देना, अशुभ को भी दूसरी तरफ छोड देना। सयमी का अर्थ है जो दोनो के मध्य चलने मे कुशल हो गया, जो चुनाव नही करता, च्वायसलेस, विकल्परहित, निर्विकल्प चलता है, जो मध्य मे सम्हलकर चलता हे।

हिदू शास्त्र कहते है मध्य अभयम्। जो मध्य मे है उसे कोई भय नही। इधर-उधर हुए कि भय शुरू हुआ। जरा भी झुके बाये, जरा भी झुके दाये, तो भय शुरू हुआ। न तो वामपथी और न दक्षिणपथी, ठीक मध्य मे, जो अपने को सम्हाल ले।

कठिन लगेगा, क्योकि हमे आसान लगता है अशुभ छोडना है, कोई हर्जा नही है, शुभ को पकड लेगे। क्रोध छोडना है, छोड देगे, करुणा को पकड लेगे। लेकिन कुछ पकडने को तो होगा। पकडने की हमारी पुरानी आदत है।

महावीर कहते है, पकड ही ससार है। और सारी पकड़ का छूट जाना, मुट्ठी का खुल जाना ही मोक्ष है।

'अज्ञानवश यदि ज्ञानी भी ऐसा मानने लगे कि शुद्ध सम्प्रयोग अर्थात, भक्ति आदि शुभ भाव से दुख-मुक्ति होती है तो वह भी राग का अश होने से पर-समयरत होता है।'

महावीर भक्ति को भी बधन का कारण कह रहे है। यह भी अज्ञानवश तथाकथित बुद्धिमान आदमी भी ऐसा मानने लगे कि शुद्ध सम्प्रयोग, शुद्ध भक्ति, तो क्यो बाधेगी, तो वह भी गलत है। शुभ भक्ति से भी राग का ही अश निर्मित होता है।

महावीर का मार्ग सकल्प का मार्ग है। वहा भक्ति के लिए भी जगह नहीं है।

भगवान के लिए जगह नही है, भक्ति के लिए तो जगह कैसे हो सकती है।

ऋग्वेद मे ऋषि ने पूछा है

कस्मै देवाय हविषा विधेम।

किस देवता को हम अपनी पूजा-अर्चना चढाये, किस देवता की उपासना करे? लेकिन महावीर कहते है, जहा तक उपासना है वहा तक तो किसी दूसरे से बधन हो जायेगा। पर-समयरत, दूसरे पर निर्भर हो जाओगे। परमात्मा होगा तो परतत्रता होगी। और परतत्रता होगी तो बधन निर्मित रहेगा। तुम स्वतत्र कैसे हो

जाओगे? तुम परिपूर्ण मुक्त कैसे हो सकोगे?

महावीर के हिसाब मे परमात्मा का होना मोक्ष के विपरीत है। या तो मोक्ष हो सकता है या परमात्मा हो सकता है। अगर परमात्मा है तो मोक्ष नहीं हो सकता, क्योकि परमात्मा तो निरकुश होगा। वह तो नियम के ऊपर होगा। महावीर कहते है, नियम के ऊपर किसी का भी होना खतरनाक है, क्योकि फिर उसकी मर्जी। जैसा हिदू कहते है, परमात्मा की लीला, इच्छा। उसने ससार बनाया। यह महावीर को बर्दाश्त के बाहर है।

महावीर कहते है, इसका तो अर्थ हुआ कि जो लोग मुक्त हो गये, अगर परमात्मा की लीला हो जाये, इच्छा हो जाये तो उनको वापस ससार मे भेजा जा सकता है। तो ऐसे मोक्ष का तो कोई मूल्य न रहा। अगर परमात्मा की मर्जी से ससार निर्मित होता है तो मोक्ष लेकर भी हम क्या करेगे? उसकी मर्जी जिस दिन बदल जाये, आज्ञा दे दे कि चलो मोक्ष खाली करो, ससार वापस लौटो। अगर खेल ही है और वह निरकुश है और वह नियम के ऊपर है, तो फिर व्यर्थ बात हो गई।

महावीर पूछते है कि परमात्मा नियम के ऊपर है, या नियम परमात्मा के ऊपर है? अगर नियम परमात्मा के ऊपर है तो परमात्मा परमात्मा नहीं। फिर नियम ही परमात्मा है। और अगर परमात्मा नियम के ऊपर है तो नियम सब बकवास है। फिर नियम का क्या अर्थ? उसकी निरकुश इच्छा है, जब वह जैसा चाहे कर दे।

इसलिए महावीर कहते है, अगर जगत मे व्यवस्था चाहिए अब तुम चकित होओगे कि दृष्टिया कितनी मौलिक रूप से भिन्न हो सकती है। हिदू कहते है, अगर जगत मे व्यवस्था चाहिए तो परमात्मा चाहिए। क्योकि बिना परमात्मा के कौन व्यवस्था करेगा? अराजकता हो जायेगी। और महावीर कहते है, अगर परमात्मा हुआ तो अराजकता हो जायेगी। क्योकि फिर व्यवस्था कैसे सम्हलेगी? अगर नियम के ऊपर कोई बैठा है जो नियम को भी तोड़-मरोड़ कर सकता है तो अव्यवस्था हो जायेगी। महावीर परमात्मा को उसी कारण से इनकार करते है जिस कारण से हिदू स्वीकार करते है।

और मोक्ष का अर्थ ही है कि एक ऐसी चित्त की दशा, एक ऐसे चैतन्य की दशा जिसको फिर वापस न लौटाया जा सके। अन्यथा इतने श्रम, इतनी तपश्चर्या, इतनी चेष्टा से जो उपलब्ध हुआ है, वह किसी परमात्मा के खेल की बात बन जाये तो थोड़ी ज्यादती हो गई। जन्मो-जन्मो की चेष्टाओ के बाद जिसे पाया जाता है, उसे पाकर अगर जरा-सी उसकी मर्जी के बदलने से खोना पड़े, तो वह उपलब्धि उपलब्धि के योग्य न रही। फिर जगत एक पागलपन है।

'शुद्ध सम्प्रयोग अर्थात भक्ति आदि शुभ भाव से दुख मुक्ति होती है, ऐसा अगर कोई मानता हो तो वह गलत मानता है, क्योकि वह भी राग का अश है।'

अगर भक्तो की बात सुने तो लगता भी है कि राग का अश। शुद्ध राग है, बडा श्रेष्ठ राग है, जरा भी दूषित नही है ससार से—लेकिन फिर भी राग तो है ही।

उसके मजकूर के सिवा 'बेदार'
और कुछ बात खुश नही आती।

भक्त कहता है, भगवान की याद के सिवाय और कुछ बात मे मजा नहीं आता। लेकिन इसका अर्थ तो साफ हुआ कि मजा अभी अपना नही है—उसकी याद। तो कही निर्भर है, पर है, अपने से बाहर है।

शाम से आ रही है याद तेरी
जाम छलका रही है याद तेरी
झनझना-सा रहा है साजे-खयाल
गीत-से गा रही है याद तेरी।

लेकिन भक्त वैसे ही शब्दो का उपयोग करता है परमात्मा के लिए जो वह प्रेयसी के लिए करता है या प्रेमी के लिए करता है। फर्क नही मालूम पडता। ऐसा लगता है कि जो हमारा राग मनुष्यो के प्रति था, उसी राग को हम परमात्मा की तरफ आरोपित कर देते है।

शाम से आ रही है याद तेरी
जाम छलका रही है याद तेरी
झनझना-सा रहा है साजे-खयाल
गीत-से गा रही है याद तेरी।

यह हम प्रेयसी के लिए भी कह सकते है और परमात्मा के लिए भी कह सकते है।

इसलिए सूफियो के वचन दोहरे अर्थ किये जा सकते है। या तो तुम उनका अर्थ कर लो सासारिक, तो प्रेयसी के लिए कहे गये है, या अर्थ कर लो आध्यात्मिक, तो परमात्मा के लिए कहे गये

है। लेकिन शब्द वही के वही है। उमर खैयाम की रुबाइया इसी तरह भ्रष्ट हुई। जिस व्यक्ति ने पहली दफा अनुवाद किया फिटजराल्ड ने, अग्रेजी मे, उसने समझा कि ये मधु-गीत है, शराब की प्रशसा मे गाये गए गीत है। लेकिन उमर खैयाम शराब कहता है परमात्मा की याद को, उसकी स्मृति को, जिक्र को। और जिन साकियो की वह बात करता है, वह वही परमात्मा है। ओर जिस मधु के ढालने की बात कर रहा है, वह जीवन-रस है। लेकिन इससे क्या फर्क पडता है? फिटजराल्ड ने अनुवाद दिया। उसने समझा कि यह सब प्रेयसी, साकी, मधुशाला—ये सब ससार की ही चीजे है।

दोनो के लिए उपयोग हो सकते है।

चलो छिया-छी हो अतर मे
तुम चदा
मै रात सुहागन
चमक-चमक उट्ठे आगन मे
चलो छिया-छी हो अतर मे

भक्त जो भाषा बोलते है—मीरा की भाषा, चैतन्य की भाषा या कबीर की—उसमे कठिनाई मालूम होगी।

कबीर कहते है, मै राम की दुलहन हो गया। आखिर भाषा तो इसी जगत के रागात्मक शब्दो का उपयोग कर रही है। मीरा कहती है, 'सेज को तैयार किया है, तुम कब आओगे?' 'सेज को तैयार किया है'—यह तो सुहागरात की ही बात हो गई।

तो महावीर के कहने मे सार्थकता भी है कि कितना ही शुद्ध राग हो जाये, कितना ही शुद्ध सम्प्रयोग, कितनी ही शुद्ध भक्ति हो, लेकिन उसमे स्वर तो ससार का ही होगा।

सहर के वक्त मय पीने से मुझको रोक मत नासेह
कि सिजदे के लिए दिल मे जरा-सा सिद्क लाना है।

सूफी कहते है कि हमे प्रार्थना के वक्त पीने से मत रोको, क्योकि प्रार्थना के लिए थोड़ी सचाई लानी है। और बिना पीए कहीं सचाई हुई? बिना पीए तो आदमी झूठ और धोखे दिये चला जाता है। इसलिए तो शराबी की बाते सुनो, वह ज्यादा ईमानदारी की होती है। वह सच बोलने लगता है। फिक्र ही न रही झूठ बोलने की। झूठ याद कौन रखे। फायदा, हानि, लाभ—कुछ भी न रहा।

सहर के वक्त मय पीने से मुझको रोक मत नासेह।

—हे धर्मगुरु। मुझे प्रार्थना के समय शराब पीने से मत रोक।

कि सिजदे के लिए दिल मे जरा-सा सिद्क लाना है।

—थोड़ी-सी सचाई तो होनी चाहिए, नहीं तो प्रार्थना झूठी हो जायेगी।

अब या तो हम समझ ले कि यह बाहर की शराब है या हम समझ ले कि किसी भीतर की शराब है। लेकिन महावीर कहते है, शराब शराब है। तुम इसे कितना ही ऊचा उठाओ, और कितने ही शुद्ध अगूरो से निचोड़ो, शराब शराब है। और नशा नशा है। यह किसी की सुदर सूरत को देखकर छा जाये या यह परमात्मा के फूल और पक्षियो के गीत सुनकर आ जाये, इससे क्या फर्क पडता है? लेकिन तुम्हारा राग अभी भी बाहर है। सुदर स्त्री बाहर है, सुदर पुरुष बाहर है, सुदर फूल भी बाहर है—और सुदर परमात्मा का आकाश और चाद तारे भी बाहर है।

'राग का अश होने से भक्ति भी पर-समयरत है।'

वह दूसरे मे लगी। दूसरे मे उत्सुक है। अपनी तरफ नही लौट रही है। दूसरे की तरफ बह रही है। और दूसरा बधन है।

इसलिए महावीर भक्ति को भी जगह न देगे। और अगर हम भक्तो की बाते सुने तो महावीर की बात मे सचाई भी मालूम पड़ती है, निश्चित सचाई मालूम पडती है। क्योकि भक्त भगवान से ऐसी बाते करता है। जैसे प्रेमी एक-दूसरे से बाते करते है। मान-मनौवल भी चलती है। रूठना-मनाना भी चलता है। शिकवा-शिकायत भी चलती है।

मुझको इस तर्जे-तगाफुल पे खफा होना था
उल्टे तुम मुझ पे खफा हो यह तमाशा क्या है?

भक्त भगवान से कहता है

मुझको इस तर्जे-तगाफुल पे खफा होना था—तुम्हारे उपेक्षा-भाव पर मुझे नाराज होना चाहिए, चिल्लाता रहता हू, तुम्हारा कोई उत्तर भी नही पाता

मुझको इस तर्जे-तगाफुल पे खफा होना था
उल्टे तुम मुझ पे खफा हो यह तमाशा क्या है?

भक्त तो बात करता है, प्रार्थना करता है, बोलता है, रोता है कभी, कभी भगवान पर नाराज भी हो जाता है। खफा भी हो जाता है, दो-चार दिन प्रार्थना भी नही करता, बद कर देता है द्वार-दरवाजे कि पडे रहो। फिर मना भी लेता है।

लेकिन महावीर कहेगे, यह सारा खेल तो कल्पना का है। यह तो राग का ही है। इसमे तो दूसरा अभी भी मौजूद है। माना कि शुद्ध हुआ, शुभ हुआ, किसी को हानि नही हो रही है इससे, लाभ ही हो रहा है—लेकिन फिर भी, जहा तक लाभ हो रहा है वहा तक हानि भी जुडी है। इसके भी पार जाना है।

महावीर के लिए भाव भी बधन है। इसलिए महावीर का मार्ग शुद्ध निर्भाव का मार्ग है। जैन भी जैन मदिरो मे जो कर रहे है, महावीर लौटे तो नाराज होगे। कहेगे, 'तुम यह क्या कर रहे हो? यही सब तो मैने मना किया था।' महावीर की ही मूर्ति के सामने बैठे है साज-शृगार लगाकर, कि हे प्रभु। महावीर से ही बाते चल रही है। महावीर से बात चलाने का उपाय नही है। अगर महावीर की मानते हो, अगर महावीर के मार्ग को शुद्ध रखना है, तो महावीर से बाते चलाने का उपाय नही है। सच तो पूजा भी जैन धर्म मे सभव नही हो सकती, प्रार्थना की कोई गुजाइश नही है, भक्ति का कोई मार्ग नही है। लेकिन मदिर बनते है, पूजा होती है, प्रतिमा खडी होती है।

बात असल ऐसी है कि जिन्हे भक्त होना चाहिए था, वह अगर जैन घरो मे पैदा हो जाते है तो वह क्या करे। खुद तो भक्त होने का उपाय नहीं है, महावीर को ही भ्रष्ट कर लेते है।

दुनिया के सभी धर्म भ्रष्ट हो गये है, सकर हो गये है, क्योकि लोग जन्मो के कारण धर्मो मे है। और यह बड़ी खतरनाक बात है। मै तो चाहूगा, महावीर का धर्म शुद्ध हो। क्योकि शुद्ध हो तो कुछ थोडे-से लोग जो सकल्प से पहुच सकते है, उनका रास्ता सीधा-साफ हो। लेकिन वह शुद्ध तभी हो सकता है, जब लोग उसे स्वय चुने, जन्म के कारण धर्म आरोपित न हो। तो कृष्ण के मार्ग पर ऐसे लोग मिल जायेगे जिनको महावीर के मार्ग पर होना चाहिए था। वे वहा सब खराब कर रहे है। वे प्रार्थना भी करते है, लेकिन उनको आसू नही बहते। वे कहते है, 'कैसे प्रार्थना करे, हृदय मे कोई रसधार आती ही नहीं।' इधर महावीर के मार्ग पर ऐसे लोग है जो कृष्ण के मार्ग पर होते तो सुगमता से पहुच जाते। उनकी आखें लबालब भरी है। उनकी प्याली छलकी जा रही है। लेकिन महावीर के वचन है कि राग का अश है भक्ति, तो रोके हुए है। आसुओ को सुखाने की कोशिश कर रहे है।

अड़चन पैदा होती है अगर तुम अपने से विपरीत चले गये।

किसी ने पीछे पूछा था कि क्या ऐसा नही हो सकता कि हम समर्पण और सकल्प मे समन्वय स्थापित कर ले? वही तो तुमने किया है। हो सकता है, यह सवाल ही नही है—वही हुआ है। लेकिन समन्वय हो नही सकता। सिर्फ समझौता हो जाता है। तो तुम दोनो बातो का तालमेल बिठा लेते हो। लेकिन उस तालमेल बिठालने मे दोनो मार्ग भ्रष्ट हो जाते है।

ऐसा ही समझो, बैलगाडी से कोई यात्रा करता है, कोई कार से यात्रा करता है, कोई रेलगाडी से, कोई हवाई जहाज से—सब पहुच जाते है। सबके मार्ग अलग है। रेलगाड़ी रेल की पटरियो पर दौडती है। बैलगाडी को पटरियो पर दौडने की कोई जरूरत नही है, ऊबड-खाबड जगली पथ से भी गुजर जाती है। कार वहा से न गुजर सकेगी। अब ये सब रास्ते और ये सब वाहन ठीक है। लेकिन तुमने अगर कहा, समन्वय स्थापित कर ले कि चलो बैलो को लेकर कार मे जोत दे, कि कार का इजिन बैलगाडी मे रख दे, कि रेल के चक्के बैलगाडी मे ठोक दे और बैलगाडी के चक्के रेल मे ठोक दे—तो समन्वय स्थापित नही होगा सिर्फ इतना ही होगा कि कोई भी वाहन चलाने मे, पहुचाने मे समर्थ न रह जायेगा। यह समन्वय नही हुआ। यह तुमने रास्ते ही खराब कर लिए, वाहन ही नष्ट कर दिए।

प्रत्येक मार्ग पर सुनिश्चित चिह्न है और प्रत्येक मार्ग की अपनी सुनिश्चित दिशा है। तो जब मै महावीर के मार्ग पर बोल रहा हू तो तुम खयाल रखना मै चाहता हू कि शुद्ध महावीर की बात तुम्हारी समझ मे आ जाये, फिर जिसको वह यात्रा सुगम मालूम पड वह चल सके। वहा भक्ति को भूल ही जाना। वहा सूफियो से कुछ लेना-देना नही। वहा तो तुम शुद्ध निर्भाव होने की चेष्टा करना, क्योकि वही निर्भाव ही वहा गाड़ी का चाक है।

लेकिन अकसर लोग ऐसा करते है महावीर के मार्ग पर भाव ले आयेंगे और जब नारद को पढ़ेगे तब उनकी बुद्धि मे निर्भाव उठने लगेगा। ये तरकीबे है न पहुचने की। ये बहाने है ताकि तुम पहुच न पाओ। ऐसे उलझाव खड़े करते हो।

अतत समन्वय है, लेकिन वह है गतव्य पर पहुचकर। जहा से मै खड़े होकर देख रहा हू, वे सभी रास्ते यहीं आ जाते है। लेकिन हर रास्ते की व्यवस्था अलग है। कोई पहाड़ से गुजरता है, कोई रेगिस्तानो से गुजरता है, कोई हरियाली से भरे उपवन से गुजरता है। किसी रास्ते पर कोयल की कुहू-कुहू है और किसी रास्ते पर बिलकुल सन्नाटा है, पक्षी है ही नहीं।

रास्तो की अलग-अलग व्यवस्था है। और प्रत्येक ने चेष्टा की है कि उसका रास्ता शुद्ध रहे।

तो महावीर साफ किये दे रहे है

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णादि सुद्ध सपओगादो

हवदि त्ति दुक्खमोक्ख, परसमयरदो हवदि जीवो।।

भक्ति भी दुख-मुक्ति की तरफ नही ले जायेगी।

ध्यान रखना, जब महावीर कहते है, भक्ति दुख-मुक्ति की तरफ नही ले जायेगी, तो यह सार्थक है वचन महावीर के मार्ग पर। यह वचन आत्यतिक नही है। इस वचन से नारद गलत नही होते। इस वचन से सिर्फ इतना ही साफ होता है कि महावीर के मार्ग पर भक्ति की कोयल की कुहू-कुहू नही है। और अगर महावीर के मार्ग पर भक्ति की कोयल की कुहू-कुहू सुनाई पड़े, तो तुम भटक गये हो, तुम मार्ग पर हो नही। वहा भाव बधन है, क्योकि वहा दूसरे की मौजूदगी परतत्रता है।

धिगस्तु परवश्यताम्।

—धिक्कार है परवशता को, परतत्रता को।

वहा परमात्मा प्रीतिकर नहीं है। उसकी मौजूदगी ही अपनी गुलामी का सबूत है।

महावीर अपने मार्ग की बात कर रहे है। अब यह तुम्हे बड़ा कठिन लगता है। तुम्हे लगता है, अगर महावीर सही है तो नारद गलत होने चाहिए। वहा तुम भूल कर रहे हो। तुम्हे लगता है, अगर नारद सही है तो महावीर गलत होने चाहिए। तुम बडी जल्दी कर रहे हो। तुम जीवन की विराटता को नही देख पाते। जीवन इतना विराट है कि सब विरोधी मार्गो को अपने मे समाए हुए है। यहा महावीर भी सही है और नारद भी सही है। और नारद के मार्ग पर चलकर भी लोग पहुच गये है और महावीर के मार्ग पर भी चलकर लोग पहुंच गये है।

लेकिन एक बात तय है जो भी चले है वे पहुचे है। कुछ लोग है जो मार्गो के किनारे बैठकर विचार कर रहे है कौन सही है। जीवन ऐसे ही बीता चला जाता है सोचने मे, कौन सही है। सही का भी कैसे पता चलेगा जब तक चलोगे नही? चलने से ही पता चलेगा कौन सही है। क्योकि जब करीब आने लगोगे जलस्रोत के, तो ठडी हवाए छूने लगेगी। जब करीब आने लगोगे मजिल के तो जीवन मे आलोक आने लगेगा। जब करीब आने लगोगे तो दर्शन ज्ञान बनेगा, ज्ञान चरित्र बनेगा। जैसे-जैसे करीब-करीब आओगे, वैसे पाओगे तुम रूपातरित हुए, बदले, नये हुए, नया जन्म हुआ।

एक-एक कदम पर जन्म है। एक-एक पल नये का आविर्भाव है। उस आविर्भाव से ही प्रमाण मिलता है कि मै जो चल रहा हू तो ठीक चल रहा हू। लेकिन जो बैठे है उनके पास कोई उपाय नहीं है कि जाने कौन ठीक है। तर्क जुटायेगे, चिंतन करेगे, शास्त्रो का मेल-ताल बिठायेगे।

और तर्क वेश्या जैसा है। उसका कोई मूल्य नहीं है। तुम जैसा उसका उपयोग करना चाहो वैसा कर ले सकते हो। अब महावीर कहते है, व्यवस्था के कारण परमात्मा को स्वीकार नही किया जा सकता। हिदू कहते है, व्यवस्था के लिए परमात्मा की जरूरत है, अन्यथा व्यवस्था कौन करेगा? विपरीत तर्क, लेकिन दोनो ठीक मालूम होते है अपनी-अपनी जगह। तुम सोच-सोचकर बैठ-बैठकर, विचार कर-करके कभी न पहुच पाओगे। उठो और चलो।

महावीर का मार्ग शुद्धतम मार्गो मे से एक है। लेकिन उसे शुद्ध रखना। महावीर के मार्ग पर पूजा को मत ले आना, प्रार्थना को मत ले आना।

अगर पूजा-प्रार्थना मे ही रस है तो पूजा-प्रार्थना के मार्ग है। बजाय इसके कि तुम मार्ग को खराब करो, तुम्ही उतरकर दूसरे मार्ग पर चले जाना।

दुनिया बडी धार्मिक हो जायेगी उस दिन, जिस दिन लोग सुलभता से एक मार्ग से दूसरे मार्ग पर जा सकेगे, न उन्हे कोई रोकेगा, न कोई बाधा डालेगा, न उन्हे कोई जबर्दस्ती अपने मार्ग पर खींचेगा, न कोई कन्वर्ट करने को उत्सुक होगा और न कोई रोक लेने को उत्सुक होगा। अगर किसी के मन मे उमग उठी है आनद की, रस की, भाव की, तो वह मार्ग खोज लेगा भाव का। कोई बाधा नही डालेगा, न कोई उसे प्रभावित करेगा कि इस मार्ग पर आओ। क्योकि कभी-कभी प्रभाव मे तुम गलत मार्ग पर जा सकते हो। कभी-कभी रोकने की वजह से गलत मार्ग पर रुक सकते हो।

जीवन एक मुक्त हलन-चलन, रूपातरण, बदलाहट की सुविधा होनी चाहिए।

महावीर का मार्ग अपने-आप मे पूर्ण सही है। पर उससे कोई और गलत नही होता। उससे विपरीत दिखाई पड़नेवाले भी

गलत नही होते। इतना तुम्हें स्मरण रहे तो तुम्हारे भीतर सप्रदाय का भाव पैदा नही होगा।

सप्रदाय का भाव इस तरह पैदा होता है। इन सूत्रो को जो पढ़ेगा । जैन पढते रहे है। तो जब वे देखते है किसी को मदिर की तरफ जाते कृष्ण के, तब उनको लगता है, बेचारा भटका। उनको याद आता है महावीर का सूत्र कि राग का अश है भक्ति। और यह आदमी राग मे पडा है।

नही, यह तुम सोचना ही मत। तुमने अपने लिए सोच लिया, काफी है। तुम्हे दूसरे की अतर्व्यवस्था का कुछ भी पता नही है। तुम बस अपने लिए निर्णय कर लो, उतना बहुत। और वह निर्णय भी चलने के लिए हो, बैठे-बैठे सोचने के लिए नही।

महावीर तुम्हे वहा ले जाना चाहते है जहा न कोई विचार रह जाता, न कोई भाव रह जाता, न कोई चाह रह जाती, न कोई परमात्मा रह जाता—जहा बस तुम एकात अकेले अपनी परिपूर्णता शुद्धता मे बच रहते हो।

निर्धूम जलती है तुम्हारी चेतना।

हर मजर-ए-बुलद भी अब पस्त हो चुका
ऐ अर्श किस फजा मे उड़ा जा रहा हू मै।

ऊचाइया भी जहा नीचे छूट जाती है।

हर मजर-ए-बुलद भी अब पस्त हो चुका

ऊचाइया भी पीछे छूट गई। ऊचाइया भी। नीचाइया तो छूट ही गई, ऊचाइया भी छूट गई। अशुभ तो छूट ही गया, शुभ भी छूट गया। पाप तो छूटा, पुण्य भी छूटा।

हर मजर-ए-बुलद भी अब पस्त हो चुका
ऐ अर्श किस फजा मे उड़ा जा रहा हू मै।

—और मै किस आकाश मे उड़ रहा हू।

महावीर उस आकाश को आत्मा कहते है। अतर्आकाश। परम आनद है वहा। परम शाति।

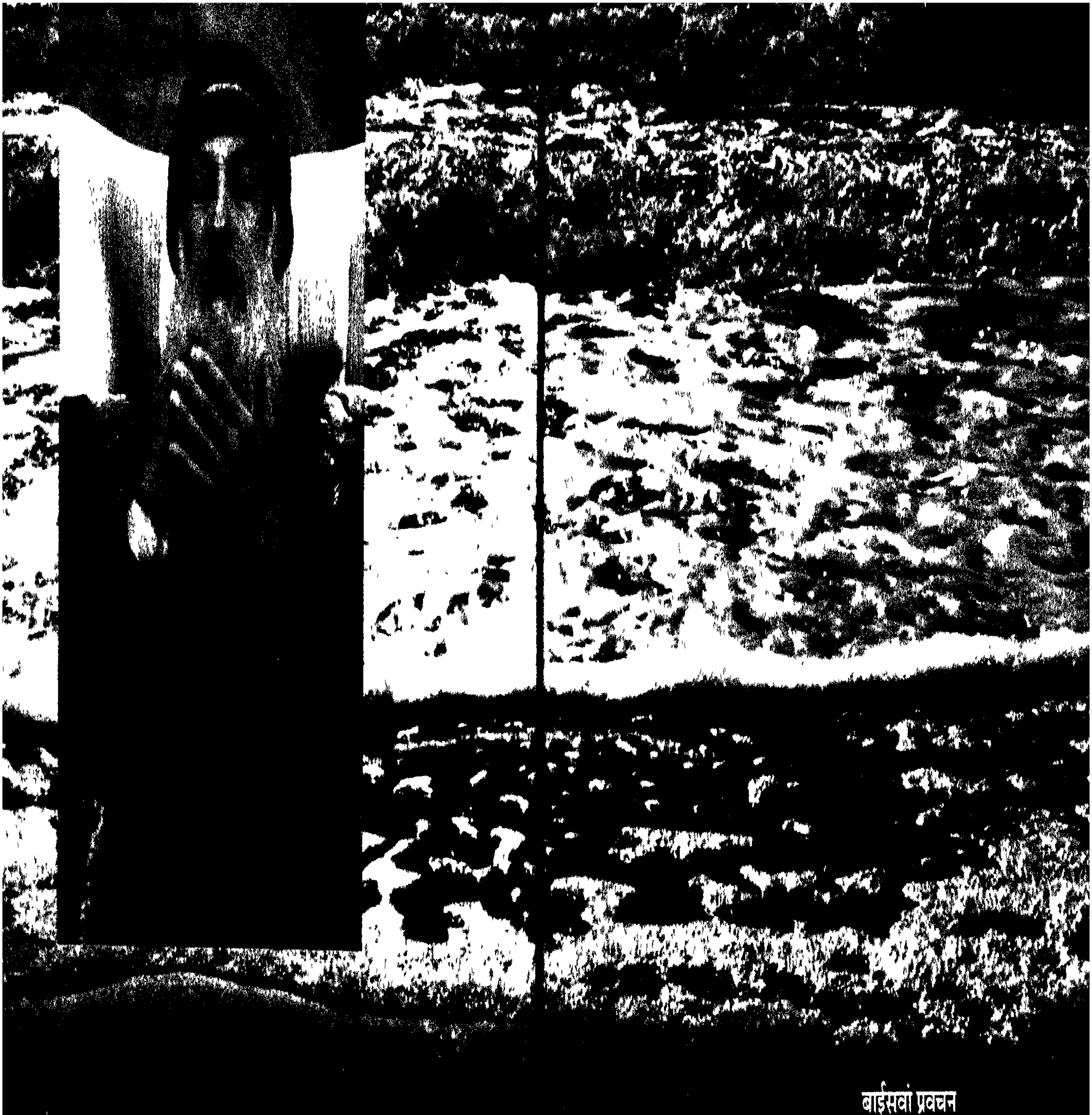
महावीर उस परम दशा को ही परमात्म-दशा कहते है।

परमात्मा एक नहीं है महावीर के लिए, वरन प्रत्येक व्यक्ति की नियति है। हर व्यक्ति परमात्मा होने के मार्ग पर है। हर व्यक्ति परमात्मा हो रहा है, देर-अबेर होता चला जा रहा है।

परमात्मा सृष्टि के प्रथम क्षण मे नही है—परमात्मा प्रत्येक व्यक्ति की अतिम उपलब्धि मे है। उतने ही परमात्मा है जितनी आत्माए है। फिर ये आत्माए बहिर्मुखी हो तो परमात्मा बाहर की तरफ देख रहा है, अतर्मुखी हो तो अदर की तरफ देख रहा है। बहिर्मुख, अतर्मुख, दोनो से मुक्त हो तो परमात्मा स्थित हुआ, स्वस्थ हुआ, अपने मे लौट आया। इस अवस्था को महावीर मोक्ष कहते है।

आज इतना ही।





बाईसवां प्रवचन

परमात्मा के मंदिर का द्वार : प्रेम

प्रश्न-सार

इस जगत मे न पकड़ने-योग्य कुछ है न छोडने-योग्य।
लेकिन एक बात पकडने और छोडने के बीच बेचैन कर गयी
प्रेम-वासना—मेरे जीवन की एकमात्र समस्या।

आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक
कौन जीता है तेरे जुल्फ के सर होने तक
हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन
खाक हो जाएगे हम तुमको खबर होने तक।

आपके प्रवचन के समय बडी मीठी और गहरी नीद आती है। क्या कारण है ?

सन्यास के शुरू के कुछ साल संन्यासिनी होने का भ्रम रहा।
लेकिन सन्यास के फूल की जो आप बात करते है, अपने को उसके योग्य नही
पाती। जमीन से पैर उखड़ गए है, लेकिन पख अभी तक नही उगे।
यह कैसी अवस्था है ?

प हला प्रश्न इस जगत मे न पकड़ने-योग्य कुछ है, न छोड़ने-योग्य—ऐसा आपने कहा। और मैंने तटस्थता मे शाति का अनुभव भी पाया। लेकिन एक बात पकड़ने और छोडने के बीच बेचैन कर गई—वह है प्रेम-वासना। मेरे जीवन का वही एक प्रश्न है, समस्या है।

प्रेम समस्या नही है—बनाना चाहो तो समस्या बन सकती है।

प्रेम है जीवन का समाधान। लेकिन तुम्हारे देखने मे कही कोई भूल-चूक हो रही है। तुमने प्रेम को निष्पक्ष भाव से नहीं देखा। जिन्होने प्रेम के विपरीत जीवन का ढाचा निर्मित किया है, या जो जीवन-विरोधी है, तुमने उनकी आख से प्रेम को देखा है। तुम्हारी आखे किन्ही खयालो से भरी है, उन खयालो के कारण प्रेम समस्या बन जाता है। फिर तो कोई भी चीज समस्या बनाई जा सकती है। समस्या ही बनाना हो तो फिर इस जगत मे ऐसी कोई बात नही, जो समस्या न बन जाये। कोई भोजन को समस्या बना लेता है। कोई शरीर को समस्या बना लेता है। कोई वस्त्रो को समस्या बना लेता है। प्रेम को भी समस्या बनाना चाहो तो बन सकता है। यह तुम पर निर्भर है। कहीं देखने मे कुछ भूल हो रही है।

प्रेम को सदा ही तथाकथित धार्मिको ने निदित किया है। क्योकि जीवन के विधायक को स्वीकार करनेवाले धर्म अब तक पैदा नहीं हुए, या पैदा भी हुए तो उनकी झलके आई और खो गई। कभी किसी कृष्ण ने बासुरी बजाई, लेकिन वे स्वर ज्यादा दिन तक गूजते न रह सके—क्योकि आदमी रुग्ण है, क्योकि आदमी बीमार है, और आदमी से कृष्ण की बासुरी के स्वरो का सबध नही बैठता।

आदमी दुखी है और इसलिए दुख के कारण वह जीवन के सुख-रूप को नही देख पाता। वह अपने दुख को ही जीवन मे देखता है। इसलिए जब भी कोई तुमसे कहेगा, जीवन व्यर्थ है, असार है, तुम्हे तत्क्षण बात समझ मे आ जायेगी। क्योकि तुम्हे भी ऐसा ही लग रहा है।

जिन्हे भी जीने का ढग न आया, वे जीवन से नाराज हो जाते है। अपने से तो कोई यह देखने को राजी नही है कि मेरी शैली गलत, मेरे जीवन को पहचानने का रास्ता गलत, जीवन की तरफ पहुचने की मेरी व्यवस्था गलत। ऐसा तो कोई नहीं देखता, क्योकि उसमे तो फिर 'मै' गलत हो जाऊगा।

हम, अगर अहकार और जीवन मे चुनना हो, तो अहकार को चुन लेते है, जीवन को नही। मै तो गलत कैसे हो सकता हू, जीवन ही गलत होना चाहिए। मै तो गलत कैसे हो सकता हू, प्रेम ही गलत होना चाहिए।

तो जब भी हमे चुनना होता है, हम 'मै' को चुन लेते है कि मै तो ठीक हू ही। एक बात तो सुनिश्चित है कि मै ठीक हू। और फिर भी जीवन मे दुख है तो कही न कहीं गलती का सूत्रपात होता होगा, कहीं न कही भूल के बीज होगे। तो हम चारो तरफ देखते है भूल के बीज खोजने को। कोई धन मे देखता है, धन छोडकर भाग जाता है। लोभ मे नही देखता, धन मे देख लेता है, तो धन को छोड़कर भाग जाता है। अपने भीतर नहीं देखता, तृष्णा मे

नहीं देखता। लेकिन धन को छोड़कर कहा जाओगे? धन तो बाहर था, बाहर ही रहेगा। तुम कहीं भी भाग जाओ, तुम्हारे भीतर की लोभ-दशा कैसे बदलेगी? कोई देखता है, पद मे उपद्रव है, अशाति है—पद छोड़कर हट जाता है।

न तो अशाति पद मे है, न धन मे है।

कोई देखता है, प्रेम मे उलझाव है। प्रेम मे उलझाव नहीं है। उलझाव तो तुम्हारी प्रेम न कर पाने की स्थिति मे है। तुमने प्रेम के नाम पर कुछ और किया है, इसलिए उलझाव है।

थोड़ा समझो। इधर मै देखता हू, सैकड़ो लोग अपनी प्रेम की समस्या लेकर मेरे पास आते है। तो पहली बात तो यह है कि प्रेम तो उन्होने किया ही नहीं है, समस्या है। प्रेम के नाम पर कुछ और किया है। प्रेम के नाम पर ईर्ष्या की है। प्रेम के नाम पर दूसरे पर मालकियत साधनी चाही है। प्रेम के नाम पर राजनीति की है। प्रेम के नाम पर किसी को दबाना चाहा है, सताना चाहा है। प्रेम के नाम पर किसी के सिर पर बैठ जाना चाहा है। यह नाम प्रेम का है, भीतर छिपा कुछ और है।

तुम जिस स्त्री से कहते हो, मैने प्रेम किया, तुमने प्रेम किया? तुम जिस पुरुष को कहते हो, मैने प्रेम किया, तुमने प्रेम किया? जिस बेटे को तुम कहते हो, मैने प्रेम किया, प्रेम किया? बेटे मे तुमने महत्वाकाक्षा की है कि तुम जो नही कर पाये, बेटा पूरा करेगा। तुम जो अधूरा छोड़ जाओगे, बेटा पूरा करेगा। बेटे के माध्यम से तुमने एक तरह का अमरत्व साधना चाहा। तुम तो मरोगे, तुम्हारा अश तुम्हारे बेटे मे जीयेगा। चलो इतना ही सही, पूरे न बचोगे, एक अश बचेगा। वृक्ष न बचेगा, लेकिन बीज तो बचेगा। चलो यही सही। इतना तो इतजाम कर ले।

कौन अपने बेटे को प्रेम करता है। बेटे के माध्यम से कुछ और चीजे है, कुछ अहकार की एषणाए है जिन्हे तुम पूरा करना चाहते हो। तुम नही बन पाये प्रधानमत्री, बेटा बन जायेगा। तुम नही हो पाये बड़े धन कुबेर, बेटा हो जायेगा। नाम तो रहेगा। नाम तो तुम्हारा है, बेटा तो तुम्हारा है।

इसलिए दुनिया मे इतने मा-बाप कहते है कि हम अपने बच्चो को प्रेम करते है, लेकिन दुनिया मे कहीं प्रेम दिखाई नही पड़ता। सभी बच्चे तो मा-बाप से पैदा होते है। अगर सच मे ही मा-बाप प्रेम करते है तो सभी बच्चे प्रेम से पैदा हो और उनके जीवन मे प्रेम की सुगध हो। लेकिन वह सुगध तो कही दिखाई नहीं पड़ती। दिखाई तो पड़ती है घृणा की दुर्गंध। दिखाई तो पड़ता है युद्ध, वैमनस्य, हत्या, हिसा, क्रोध, और सभी प्रेम के स्रोत से आते है। तो जरूर प्रेम के स्रोत मे कही कोई जहर मिला है। क्योकि अतिम परिणाम बताते है। फल से पता चलता है वृक्ष का। तो तुम्हारे बेटे के जीवन मे अगर प्रेम फले तो ही पता चलेगा कि तुमने प्रेम किया था, तुमने प्रेम की खाद डाली थी। लेकिन किसी बेटे के जीवन से पता नही चलता।

पत्नी है, पति है, एक-दूसरे को कहते है कि प्रेम करते है। लेकिन कभी तुमने देखा, गौर से समझा—यह प्रेम है या कुछ और? प्रेम के नाम से धोखा दे रहा है। फिर समस्याए खड़ी होती है। तुम्हारी पत्नी किसी दूसरे की तरफ गौर से भी देख ले तो अडचन शुरू हो जाती है। तुम्हारे अतिरिक्त भी सौदर्य है जगत मे। तुमने कुछ सौदर्य की मोनोपाली, एकाधिकार नही कर लिया है। तुम्हारे अतिरिक्त भी सौदर्य है जगत मे। तुममे भी सौदर्य है, क्योकि जगत मे सौदर्य है, अन्यथा तुममे भी न होता। तो अगर पत्नी किसी की तरफ भरनजर देख लेती है, तुम घबडा क्यो गये हो? इतने परेशान क्यो हो गये हो? घबड़ाहट है।

प्रेम कही घबड़ाता है? अगर प्रेम हो तो तुम चुपचाप पूछोगे, 'सुदर लगा यह व्यक्ति? मुझे भी सुदर लगा। सुदर है।' न तो पत्नी को यह छिपाना पड़ेगा कि यह व्यक्ति सुदर लगा, न तुम्हे इसके लिए कोई सघर्ष करना पड़ेगा कि तुम पत्नी को दबाओ, कि पत्नी की आख को हटाओ, कि पत्नी पर नियत्रण करो। कहा क्या बुरा हुआ है?

पति अगर किसी और स्त्री से हसकर बोल ले, मुस्कुराकर बोल ले तो पत्नी बेचैन है, परेशान है। यह कैसा प्रेम है? यह कैसा प्रेम है जो पति को मुस्कुराते नहीं देख सकता? पत्नी कहती है, मुस्कुराना तो बस मेरे पास। यह तो ऐसे हुआ, जैसे कि तुम कहो कि सास लेना तो बस मेरे पास। बाकी चौबीस घटे और कहीं श्वास मत लेना।

मुस्कुराहट भी श्वास है। प्रेम भी श्वास है। और जैसे बिना भोजन के आदमी मर जाता है—बिना प्रेम के आदमी मर जाता है। बिना भोजन के शरीर मरता है—बिना प्रेम के आत्मा मर जाती है। तो बिना भोजन के तो तुम जी भी लो—थोड़े दिन, बिना प्रेम के तो तुम क्षणभर नहीं जी सकते। क्योकि प्रेम ही तुम्हारी आत्मा की श्वास है। जैसे शरीर को आक्सीजन चाहिए

प्रतिपल, ऐसे ही प्राणो को प्रेम चाहिए प्रतिपल। लेकिन तुम घर के बाहर जाते हो तो भी डरे हो। किसी से प्रेम से बात भी करते हो तो भीतर एक भय खड़ा है कि कही पत्नी को पता न चल जाये। यह कैसा प्रेम हुआ, जो तुम्हारी प्रसन्नता के विपरीत आ रहा है? यह कैसा प्रेम हुआ, जो तुम्हे दुखी देखना चाहता है, प्रसन्न नही देखना चाहता? यह कैसा प्रेम हुआ जो तुम्हे बाधता है, मुक्त नही करता? नही, यह प्रेम का नाम है। इसके पीछे कुछ और है—मालकियत है, पजेसिवनेस है, एकाधिकार है। इसमे प्रेम कम, अर्थशास्त्र ज्यादा है।

पत्नी डरी है कि अगर कही तुम किसी दूसरे मे उत्सुक हो गये तो मेरी व्यवस्था का, धन का, मेरे बच्चो का, घर का क्या होगा। तुममे कोई उत्सुकता नही है—आर्थिक व्यवस्था का सवाल है। अर्थ के नियोजन मे गड़बड़ पड जायेगी। न तुम पत्नी मे उत्सुक हो। कुछ और बाते है, जिनके कारण तुम उत्सुक हो। प्रतिष्ठा है। समाज मे आदर-सम्मान है। लोग कहते है कि ऐसा एक पत्नी-व्रती कोई दूसरा देखा नही। राम के बाद बस तुम्ही हुए हो। तो एक रिस्पेक्टेबिलिटी है, एक सम्मान है। अगर यहा-वहा नजर गई, सम्मान बिखर जायेगा। प्रतिष्ठा दाव पर लगेगी। बाजार मे नाम नीचा गिरेगा। दुकान कम चलेगी। सब गड़बड़ हो जायेगी। हजार और बाते है।

फिर इन्हीं बातो के कारण अडचन होती है। तो तुम कहते हो, प्रेम के कारण समस्या खड़ी हो रही है।

अब तक मैने ऐसी कोई घटना नही देखी और हजारो लोगो के चित्त के निरीक्षण से तुमसे कहता हू कि जब प्रेम ने समस्या खड़ी की हो, समस्या किसी और चीज ने खड़ी की है। लेकिन बुनियादी भूल तो तुम यह मानकर चलते हो कि वही प्रेम था। फिर जब समस्या खड़ी होती है तो प्रेम पर ही दोष थोप देते हो। प्रेम ने तो लोगो को मुक्त किया है। प्रेम ने तो जीवन मे स्वाद दिया है परमात्मा का। प्रेम के माध्यम से ही लोग धीरे-धीरे प्रार्थना की तरफ सरके है, आकर्षित हुए है। प्रार्थना मे स्वाद मिला है अनत का, अज्ञात का। प्रेम ने बल दिया है। प्रेम ने अभियान दिया है, साहस दिया है। लेकिन प्रेम ने समस्या कभी भी नही दी।

अगर प्रेम समस्या देता होता तो जीसस कैसे कहते कि परमात्मा प्रेम है? तो तो फिर भक्ति-शास्त्र का सारा का सारा आधार गिर जाता। प्रेम से तो भक्तो ने भगवान को ही खोजा है। और तुम कहते हो, प्रेम मे समस्या है। तो तुम जरा फिर से विचार करना। प्रेम मे कुछ और मिश्रित होगा। उस मिश्रित के कारण समस्या खड़ी होगी। उस मिश्रित को गिरा दो।

ईर्ष्या मत करो प्रेम के माध्यम से और महत्वाकाक्षा मत करो। और प्रेम के माध्यम से किसी की मालकियत मत करो। और प्रेम के माध्यम से किसी तरह की गुलामी मत थोपो। प्रेम पर्याप्त है। प्रेम से कुछ और मत चाहो। प्रेम अपने मे साध्य है, उसे साधन मत बनाओ। फिर तुम देखोगे कि जीवन बड़ी शाति से विकसित होने लगा। और शाति से ही नही, क्योकि सिर्फ शाति भी थोड़ी मुर्दा मालूम होती है।

मै तुम्हे तुम्हारे जीवन को शाति-मात्र का लक्ष्य नहीं देता हू, क्योकि जिस शाति मे आनद की पुलक न हो, वह शाति पर्याप्त नही। जिसमे आनद की लहरे भी उठती हो, वही शाति ठीक है। नही तो शाति का अर्थ केवल इतना होगा कि अशाति नहीं है। कुछ होगा नही, कुछ नहीं है, इस पर जोर होगा। फिर तुम्हारी शाति अहिसा जैसी होगी। फिर तुम्हारी शाति उपद्रव का अभाव होगी, जैसे कि रास्ता न चलता हो, रेलगाड़ी न गुजरती हो, हवाई जहाज न निकलता हो। या तुम दूर हिमालय पर चले गये तो वहा एक तरह की शाति है, सन्नाटा है। लेकिन उस सन्नाटे मे बहुत मूल्य नही है, क्योकि वह सिर्फ अभाव है।

फिर एक और शाति है, जो सगीत की तरह है तुम्हारे चारो तरफ वीणा बजने लगे, बाहर-भीतर एक नृत्य होने लगे, शाति गाये भी नाचे भी, उमग से भरी हो, हर्षोन्माद हो तो ही, तो ही ठीक है।

तो इतना ही काफी नही कि तुम शात हो जाओ। इसे समझना।

जो लोग प्रेम के जीवन को छोड़कर हट जायेगे, इस खयाल से कि वहा समस्या थी, वे शात तो हो जायेगे, लेकिन आनदित न हो पायेंगे। उनकी आखो मे चिता के बादल तो न होगे, लेकिन आनद-अश्रुओ की वर्षा भी न होगी। उनकी आखो मे तनाव, बेचैनी, परेशानी, चिता—इसकी धूल-धवास तो न होगी, लेकिन उनकी आखो मे तुम किसी अनत का नृत्य न देख पाओगे। उनकी आखे झरोखे न बनेगी परमात्मा की। उनकी आखे रूखी-रूखी, सूखी-सूखी, मुर्दा-मुर्दा होगी।

जीवन को शाति का लक्ष्य मत देना। शाति जरूरी है, काफी

नहीं। जीवन और बड़े द्वार खोलता है आनद के। आनद के पीछे शाति तो अनिवार्य होती है, लेकिन शाति के साथ जरूरी रूप से आनद नहीं होता। तुम ऐसा मत सोचना कि बीमार न हुए तो स्वस्थ हो गये। बीमार न होना स्वस्थ होने के लिए जरूरी है, लेकिन काफी नहीं। क्योकि यह भी हो सकता है कि बीमार तुम नही हो, लेकिन स्वास्थ्य की कोई पुलक नही है। स्वास्थ्य बड़ी अलग बात है। जब कभी तुम स्वस्थ हुए हो, तो तुम्हे पता है कि वह बीमारी न होने का ही नाम नहीं है, कुछ विधायक ऊर्जा तुम्हारे भीतर तरगे लेती है। यह जरूरी है कि बीमारी न हो तो स्वास्थ्य के उतरने मे सहायता आती है। लेकिन जिसने यह समझ लिया कि बीमारियो का अभाव ही स्वास्थ्य है, उसने जीवन के सबध मे बडी भूल कर ली।

तो मै तुमसे कहूगा, प्रेम पर फिर से विचार करना, ध्यान करना। और प्रेम से भयभीत मत होना। भय है। उसी भय के कारण बहुत लोग भाग गये है। भय है।

और भय क्या है?

जब भी तुम किसी व्यक्ति के प्रेम मे उतरते हो, दूसरा व्यक्ति तुम्हारे लिए दर्पण बन जाता है और तुम्हारा चेहरा उसमे दिखाई पड़ने लगता है। दर्पण से लोग डरते है, क्योकि दर्पण मे वे बाते दिखाई पडने लगती है जो तुम नही देखना चाहते। अकेले थे तो क्रोध का पता न चलता था, किसी के प्रेम मे पड़े तो क्रोध का पता चलेगा। दूसरा दर्पण बन गया। और दूसरा चुनौती बन गया। और चारो तरफ स्थितिया खड़ी होगी, जिनमे तुम्हारा क्रोध प्रगट होने लगेगा, तुम्हारे धोखे जाहिर होने लगेगे। तुम्हारे झूठे चेहरे कभी-कभी खिसक जायेगे और गिर जायेगे। कुछ ऐसी स्थितिया बनने लगेगी जिसमे तुम निर्वस्त्र हो जाओगे। तुम्हारे भीतर की नग्नता झाकने लगेगी। डर लगता है।

अकेले मे आदमी अपने को ढाककर बैठा रहता है। सबध बड़े सूचक होते है। सबधो मे ही पता चलता है तुम कौन हो। क्योकि दूसरे की आख मे तुम्हारी जो छवि बनती है, उसी को तो तुम देख पाते हो, खुद की तो कोई छवि देखने का सीधा उपाय नहीं है। तुम सीधे तो अपने को देख ही न सकोगे। देखने के लिए दर्पण चाहिए। और दर्पण तो मुर्दा है—सबधो का दर्पण जीवंत है। जब दूसरे की आख मे तुम्हारी छवि बनती है, तब तुम्हारा सत्य प्रगट होने लगता है। इसे थोड़ा समझो।

जब तुम अकेले हो तो तुम बेईमान नही हो सकते, न ईमानदार हो सकते हो, क्योकि अकेले मे क्या बेईमानी और क्या ईमानदारी। दूसरा चाहिए। तो अकेले आदमी को ऐसा भ्रम हो सकता है कि मै ईमानदार हू। इसलिए तो लोग जगलो मे भाग गये, गुफाओ मे छिप गये।

अकेले मे बड़ी सुविधा है, क्योकि न बेईमानी है, तो साफ हो गया कि ईमानदार है। लोगो ने अभाव को परिभाषा बना लिया। लेकिन तुम ईमानदार भी नही हो जब तुम अकेले मे हो। क्योकि अकेले मे किसके साथ ईमानदारी, कैसी ईमानदारी?

आओ वापस सबधो मे करीब लोगो के। वहा तत्क्षण पता चलेगा, तुम ईमानदार हो कि बेईमान, तुम झूठ बोलते हो कि सच। यह अकेले मे कैसे पता चलेगा? किससे बोलोगे? तुम करुणावान हो या कठोर, यह कैसे पता चलेगा? करीब आओ। किसी जीवन को निकट आने दो।

और तत्क्षण तुम्हारे भीतर कुछ घटने लगेगा, जिससे साफ होगा कि तुम मे कठोरता है या करुणा है।

अब तुम देखो, जैन मुनि है। अहिसा और करुणा उनके जीवन का मूल आधार होना चाहिए, लेकिन है नही। क्योकि जब तुम अपने को जीवन से तोड़ लोगे तो करुणा का पता कैसे चलेगा? किस हिसाब से तुम्हारे भीतर करुणा प्रगट होगी? कोई उपाय नही है। जैन मुनि रास्ते से गुजरता हो तो अगर एक भिखमगा उसके सामने हाथ फैला दे, तो उसके पास देने को भी कुछ नहीं है। तो तुम यह तो न कहोगे, यह कृपण है। तुम कहोगे, यह तो त्यागी है, इसके पास कुछ है ही नही, देने को ही कुछ नहीं है तो देने का सवाल नही उठता। लेकिन क्या जरूरी है कि इसके पास देने को कुछ नही है, लेकिन यह देना चाहता था? कैसे पता चलेगा कि देना चाहता था? कहीं ऐसा तो नही है इस त्याग मे कृपणता ही छिपी हो?

अकसर मैने देखा है, कृपण त्यागी हो जाते है। त्याग से बढिया उपाय नही है कृपणता को छिपाने का। क्योकि जब कुछ है ही नही तो देने का सवाल ही समाप्त हो गया। जैन मुनि से तुम अपेक्षा तो न रखोगे कि गरीब को कुछ दे, भिखमगे को कुछ दे, बीमार को कुछ दे। देने की छोड़ो, तुम यह भी अपेक्षा नहीं रखते कि बीमार का पैर दबा दे या बीमार को पानी भरकर ला दे। क्योकि जैन मुनि कहता है, उसमे तो राग है।

जैनो का एक पथ है—तेरापथ—आचार्य तुलसी का पथ। वे तो यहा तक कहते हैं कि अगर राह के किनारे कोई मर रहा हो तो तुम चुपचाप अपने राह से चले जाना। क्योकि क्या पता, तुम उस प्यासे मरते आदमी को पानी पिला दो, और वह कल हत्यारा हो जाये, तो तुमने हत्या मे भाग लिया। ठीक है, वह मर जाता अगर तुम पानी न पिलाते, मर जाता तो हत्या न कर पाता। तुमने पानी पिलाया तो वह जी गया। जी गया, उसने कल जाकर हत्या की, तो तुम यह मत समझना कि तुम बच गये। तुमने ही तो हाथ दिया। इसलिए तुम अपने रास्ते पर चुपचाप चले जाना।

अब यह लगेगा विराग, त्याग। और ऐसी कठोर अवस्था मे आदमी अपने भीतर बद हो जाता है खोल के भीतर। इसकी पहचान ही मुश्किल हो जाती है कि यह कौन है, क्योकि दर्पण तोड़ देता है।

सबधो से जो डरता है, वह दर्पण से डर रहा है। और प्रेम से बड़ा स्वच्छ कोई दर्पण नही है। जितने तुम्हारे जीवन मे प्रेम के सबध होगे, उतनी ही तुम्हारी सचाई जगह-जगह प्रगट होगी—उठते, बैठते, चलते। मै तुमसे कहता हू, अपनी सचाई को जानना जरूरी है, तो ही अपनी आत्मा को रूपातरित किया जा सकता है।

इसलिए घबड़ाओ मत। और प्रेम को समस्या मत बनाओ। इतना डर क्या है? इतनी घबडाहट क्या है? अनुभव से उतरो, गुजरो।

जीवन जैसा है, अगर हम उसे वैसा का वैसा जीने को राजी हो जाये और जीवन जो शिक्षाए देता है उन शिक्षाओ को सीखने को तत्पर रहे, तो इस जीवन मे कुछ भी छोड़ने जैसा नही है। जो छोड़ने जैसा है, छूट जायेगा; जो बचने जैसा है, बच जायेगा। न तुम्हे छोड़ना पड़ेगा, न तुम्हें बचाना पडेगा।

इसलिए मैं कहता हू, न यहां कुछ छोड़ने योग्य है, न पकड़ने योग्य। मेरा मतलब समझ लेना। मेरा मतलब यह है कि यहा तो तुम गुजर जाओ जीवन की गहनता से : जो छूटने योग्य है छूट जायेगा, जो पकड़ने योग्य है बच जायेगा, तुम्हे न कुछ छोड़ना है, तुम्हे न कुछ पकड़ना है। तुम इस राह से गुजर जाओ। लेकिन राह से भागना मत, भगोड़े मत बनना।

दो तरह के लोग है। एक है : पकड़नेवाले, जिनको हम भोगी कहते हैं। दीवाने है। वे उसको भी पकड़ लेते है, जो पकड़ने योग्य न था। क्योकि उनका कुल जोर पकड़ने पर है, जो भी मिले पकड़ लो, सम्हालकर रख लो। कूड़ा-कर्कट हो तो भी रख लो, कौन जाने कल कुछ काम आ जाये। छोडने की उनकी हिम्मत नही है। फिर इनके विपरीत दूसरे लोग है, जिनको हम त्यागी कहते है। वे भोगियो जैसे ही हैं, सिर्फ शीर्षासन कर रहे है, उलटे खड़े हो गये हैं। वे कहते है, सब छोड़ दो। सर्वस्व त्याग। पहला आदमी भूल कर रहा था सब पकड़ लो, यह दूसरा आदमी कहता है सब छोड़ दो। मै तुमसे कहता हू जीवन मे कुछ छोड़ने योग्य है, वह अपने से छूट जाता है, कुछ पकड़ने योग्य है, वह अपने से बच जाता है। और ये दोनो अतिया है। और दोनो अतिया खतरनाक है।

प्रेम के नाम से कुछ चल रहा है, जो छूटना चाहिए लेकिन वह प्रेम के अनुभव से ही छूटेगा। प्रेम की पीड़ा से गुजरोगे, समझोगे कहा-कहा काटे है, तो उनको छोड़ दोगे। और प्रेम मे कुछ है जो बचाने योग्य है, क्योकि प्रेम मे परमात्मा की झलक है। कही पूरा प्रेम मत छोड़ बैठना, नहीं तो तुमने टब के पानी के साथ बच्चे को भी फेक दिया। तुमने कूडा-कर्कट के साथ सोना भी फेक दिया। तुमने असार के साथ सार भी फेक दिया। यह तो कुछ समझदारी न हुई। यह तो कुछ विवेक न हुआ।

दो तरह के अविवेकी है—भोगी और त्यागी। भोगी का अविवेक है कि वह कहता है, कि जो भी है पकड लो, असार को भी पकड़ लो। वह बच्चे को तो बचाता ही है, गदे पानी को भी बचा लेता है, उसको भी सम्हालकर रख लेता है। फिर त्यागी का अविवेक है। वह गदे पानी को तो फेकता ही है, बच्चे को भी साथ फेक देता है। यह दोनो असयम है।

मेरे देखे, संयम तो ऐसी चित्त की दशा है, ऐसी जागरूक दशा, जिसमे जो बचने योग्य है बचना चाहिए, बचता है, जो न बचने योग्य है, छोड़ने योग्य है, छूटता है। इसको ही हमने परमहस-दशा कहा है। हस की भाति, कि दूध और पानी को अलग-अलग कर ले।

मै तुमसे कहता हू, यहा पानी बहुत है, यहा दूध भी बहुत है। इस ससार मे पदार्थ भी है, परमात्मा भी है। यहा रोग भी है और स्वास्थ्य भी है। यहा समस्याए भी है और समाधान भी है। तुम ये दो भूलो से बचना। सब पकड़ने मे गलत भी बच रहता है, सब छोड़ने मे सही भी छूट जाता है। हसा तो मोती चुगे।

ककड़-ककड़ छोड़ देना, मोती-मोती चुन लेना। प्रेम मे बड़े मोती है।

इसलिए तुमसे फिर-फिर कहता हू, उसे समस्या मत बनाना। हा, उसमे कुछ ककड़ पड़े है, उन्हे निकालना जरूरी है।

जैसे-जैसे प्रेम का अनुभव गहन होता है—प्रेम का गुण बदलता है।

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न, मगर क्या कीजे
और भी दुख है जमाने मे मुहब्बत के सिवा
राहते और भी है वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग।

जब कोई व्यक्ति पहली दफा प्रेम मे उतरता है, तो प्रेम होता है एक स्वप्न जैसा, जैसे और सब व्यर्थ हो जाता है, प्रेम ही सार्थक हो जाता है।

लेकिन जैसे-जैसे प्रेम का अनुभव गहन होता है, प्रेम की पीड़ा साफ होती है, और भी दुख दिखाई पडने शुरू होते है।

और भी दुख है जमाने मे मुहब्बत के सिवा
राहते और भी है वस्ल की राहत के सिवा
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न, मगर क्या कीजे
मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माग।

और प्रेम बहुत कुछ सिखाता है। प्रेम से बड़ी कोई पाठशाला नही है। क्योकि प्रेम से ज्यादा तुम किसी मनुष्य के निकट और किसी ढग से आते नही हो। जितने तुम निकट आते हो, उतने ही मनुष्य की अतरात्मा प्रगट होने लगती है। तुम भी झलकते हो, दूसरा भी झलकता है। जितने तुम करीब आते हो, तुम भी उघड़ते हो, दूसरा भी उघड़ता है।

एक तो विज्ञान का ढग है—दूर खड़े होकर देख लेने का ढग, बाहर से देख लेने का ढग। फिर एक कवि का ढग है भीतर गहरे उतरकर, प्रेम करके देखने का ढग। अब अगर तुम्हे वृक्ष को देखना है, चट्टान को देखना है, तो शायद बाहर से भी देख लो। मै कहता हू शायद, क्योकि जिन्होने बहुत गहरा देखा है, वे तो कहते है, चट्टान को भी बाहर से देखना अधूरा देखना है। क्योकि चट्टान का भी अतस्तल है। तो बाहर-बाहर से तुम चट्टान की परिक्रमा कर आओगे, देख लोगे—उस देखने को तुम देखना मत मान लेना। बर्ट्रेड रसेल ने कहा है, वह परिचय है—एक्वेटेस। उसे ज्ञान मत कहना।

फिर एक ज्ञान है कि तुम किसी व्यक्ति के अतस्तल मे उतरते हो, हृदय से हृदय की गाठ बांधते हो, एक-दूसरे के लिए अपना द्वार-दरवाजा खुला छोड़ते हो।

प्रेम का क्या अर्थ होता है? यही अर्थ होता है कि किसी व्यक्ति के लिए तुमने अब अपने जीवन के सब दरवाजे खुले छोड़ दिये, और किसी व्यक्ति ने तुम्हारे लिए अपने जीवन के सब दरवाजे खुले छोड़ दिये। प्रेम का यही अर्थ होता है कि दो व्यक्तियो के बीच अब छुपाने योग्य कोई राज न रहा। प्रेम का यही अर्थ होता है कि अब दो व्यक्तियो के बीच ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे छिपाया जाये, सब उघाड़ा, दो हृदय अपने आवरण के बाहर आये, दो हृदयो ने एक-दूसरे को नग्नता मे देखा, और दो हृदय एक-दूसरे मे प्रविष्ट हुए। और यह प्रेम के द्वारा ही सभव है।

अगर तुम बाहर खड़े रहो, जैसा कि वैज्ञानिक खड़ा रहता है, तटस्थ भाव से दर्शक की तरह देखते रहो, प्रेम मे डूबो न, तो तुम कभी जान ही न पाओगे। आत्मा को तो न जान पाओगे। इसलिए विज्ञान आत्मा को नहीं जान पाता। विज्ञान कभी भी नही जान पायेगा कि आदमी मे आत्मा है। क्योकि आत्मा का पता तो प्रेम के अतिरिक्त और किसी ढग से चलता ही नहीं। यह कोई चीर-फाड करके पता नही चलेगा। यह कोई डिसेक्शन, सर्जरी करके पता नही चलेगा। यह कोई औजारो को आदमी के भीतर ले जाकर पहचान नहीं हो सकती कि आत्मा है। तब तो कुछ भी न मिलेगा। हड्डी, मास-मज्जा मिलेगी। जो बाहर-बाहर है, वही पकड मे आयेगा। जो भीतर-भीतर है, वह छूट जायेगा।

तुमने खयाल किया कि जिसे तुम प्रेम करते हो, वह हड्डी, मास-मज्जा नहीं रह जाता। जिसे तुम प्रेम नहीं करते, वह हड्डी, मास-मज्जा रह जाता है। जिसे तुम प्रेम नहीं करते, वह मात्र शरीर है। जिसे तुम प्रेम करते हो, उसमे पहली दफा आत्मा का बोध होना शुरू होता है।

इसलिए जिन्होने खूब प्रेम किया, अटूट प्रेम किया, उन्हे सब जगह आत्मा दिखाई पड़ गई। अगर महावीर को पत्थरो मे भी दिखाई पड़ गई तो उसका कारण यह नहीं है कि वे दूर खड़े वैज्ञानिक की तरह देखते रहे, वे गहरे मे अतस्तल मे सबधित हुए, उतरे। तो वृक्ष मे भी आत्मा दिख गई। तो महावीर वृक्ष का पत्ता तोड़ने मे भी चिंता अनुभव करते है।

यह चिंता जैन मुनि की चिंता नहीं है। जैन मुनि चिंता करता है, वृक्ष का पत्ता नहीं तोड़ना है, क्योंकि उसे स्वर्ग जाना है। पशु को नहीं मारना है, क्योकि नर्क से बचना है। यह दुकानदार का हिसाब है। महावीर वृक्ष को चोट नहीं पहुचाते, क्योकि उन्हे दिखाई पड़ा कि वृक्ष सिर्फ वृक्ष नही है, जीवत आत्मा है। न केवल इतना दिखाई पड़ा कि वृक्ष जीवत आत्मा है, यह भी दिखाई पड़ा कि ठीक मेरे जैसी ही आत्मा है—उसी राह पर जिस पर मै हू, थोड़े पीछे सही, आज नही कल मनुष्य हो जायेगा।

इसलिए महावीर ने सारे जीवन को पाच हिस्सो मे बाट दिया। एकेद्रिय जीव। पृथ्वी को उन्होने कहा, एक-इद्रिय जीव। पृथ्वी भी। महावीर जमीन पर भी चलते है तो बहुत क्षमा मागते हुए चलते है। वह भी जीवन है। एक ही उसकी इद्रिय है—केवल काया, केवल देह।

जिसको वैज्ञानिक अब कहते है, अमीबा—महावीर को उसकी पकड़ आ गई थी। वैज्ञानिक कहते है, अमीबा पहला प्राण-स्पदन है, उसके पास केवल देह होती है, न हड्डी, न मस्तिष्क, न आख, न कान, कुछ भी नहीं, कोई इद्रिय नही, सिर्फ शरीर होता है। वह अपने शरीर को ही अपने भोजन के पास ले आता है। अपने भोजन के ऊपर बैठ जाता है और शरीर और उसका भोजन मिलकर विलीन हो जाते है, एक-दूसरे मे लीन हो जाते है। उसके पास कोई मुह भी नही है। फिर उसका शरीर जब बड़ा होने लगता है—इतना बड़ा हो जाता है कि सम्हालना मुश्किल हो जाता है, तो शरीर दो हिस्सो मे टूट जाता है और दो अमीबा हो जाते है। इसी तरह उसकी सतति होती है। लेकिन वह जीवन का पहला रूप है।

महावीर ने कहा, एक-इद्रिय, सिर्फ शरीर जीवन का पहला रूप है। मनुष्य है पचेद्रिय। उसके पास पाच इद्रिया हैं। वह सबसे विकसित रूप है। लेकिन वृक्ष, पशु-पौधे, सब उसी कतार में हैं, चले आ रहे है बढ़ते। हम भी कभी वृक्ष थे और वृक्ष कभी हम जैसे हो जायेंगे।

तो महावीर ने जीवन का एक सागर खोज लिया, जिसमे सभी जीवन की घटनाए है। यह महा प्रेम में घटा है। यह कोई तार्किक विश्लेषण नहीं है। यह महावीर को अनुभव हुआ है। यह तेजस्विता जीवन की उनको प्रतीत हुई। यह बहुत प्रेम मे ही हो सकती है।

इसलिए मै कहता हू, अहिंसा का मौलिक अर्थ प्रेम है।

तुम घबड़ाना मत। प्रेम तुम्हे बहुत कुछ सिखायेगा। प्रेम तुम्हे तुम्हारे अहकार का नर्क बतायेगा, तुम उसे छोड़ देना। और प्रेम तुम्हे तुम्हारे हृदय का स्वर्ग भी दिखायेगा, तो उसे पकड़ लेना।

आजिजी सीखी, गरीबो की हिमायत सीखी
यासी हिरमान के दुख-दर्द के मानी सीखे
जेरदस्तो के मुशाइब को समझना सीखा
सर्द आहो के रुखे-जर्द के मानी सीखे।

प्रेम तुम्हे बहुत कुछ सिखायेगा। प्रेम के अतिरिक्त कोई और सिखा ही नहीं सकता। इसलिए अगर प्रेम मे कुछ अड़चन मालूम होती है तो उसे प्रेम की अड़चन मत कहना। तुमने अभी प्रेम के पाठ पूरे नही सीखे, इसलिए अडचन आ रही है। जैसे कोई आदमी नया-नया पानी मे तैरना शुरू करता है तो हाथ-पैर तड़फड़ाता है, घबड़ाता है, बेचैनी होती है। यह कोई तैरना तैरने का स्वरूप नहीं है, यह तो न तैरने की वजह से हो रहा है।

तुम अगर मुझसे पूछो तो मै ऐसा कहूगा, कि प्रेम मे जो समस्या है, वह अप्रेम की वजह से पैदा हो रही है। जब यह आदमी तैरना सीख जायेगा तो तैरने मे एक प्रसाद आ जाता, तब कोई चेष्टा नहीं करनी होती। तब ठीक-ठीक तैराक तो नदी पर छोड़ देता है अपने को। हाथ-पैर भी नही चलाता। नदी ही सम्हाल लेती है। ऐसी कुशलता आ जाती है कि कुछ भी करना नही पडता, होना काफी रहता है और नदी सम्हाल लेती है।

प्रेम भी चैतन्य के सागर मे तैरना है, दूसरे के सागर मे डुबकी लगानी है। पहले-पहले हाथ-पैर तड़फडायेगे, घबडाहट होगी, सास रुधेगी, लगेगा मरे, डूबे, चिल्लाहट होगी कि बचाओ। लेकिन जल्दी ही, इस बचाव की आवाज के कारण निकलकर भाग मत खड़े होना। यह तो तुम्हारी अकुशलता के कारण है। यह तो धीरे-धीरे चली जायेगी। रफ्ता-रफ्ता, आहिस्ता-आहिस्ता अभ्यास गहरा होता जायेगा।

तो प्रेम मत छोड़ो, प्रेम मे जागरण को सम्मिलित करो। प्रेम मत छोड़ो; प्रेम के साथ धर्म को, ध्यान को जोड़ो। प्रेम + ध्यान, बस इतना करो और समस्या विदा हो जायेगी। और समस्या की जगह तुम पाओगे प्रेम एक अदभुत रहस्य है—और पहला रहस्य जहा से परमात्मा की खबर मिलती है। शुरू-शुरू मे घबड़ाहट स्वाभाविक है।

न घबरा जवानी की बेहरखी से
यह दरिया बना लेगा खुद ही किनारा
वही तक खुदी है, वही से खुदा है
जहा बेकसी ढूढ़ती हो सहारा।

घबड़ाओ मत। यह आज जो जवानी का तूफान है, यह जो राग-मोह की उठी आधी है, यह अपने से ही विदा हो जायेगी। तुम जरा पैर को सम्हालकर चलते रहो।

न घबड़ा जवानी की बेहरखी से
यह दरिया बना लेगा खुद ही किनारा।

हा, जल्दी अगर भाग खड़े हुए तो मुश्किल मे पड जाओगे। तब न यहा के रहोगे न वहा के।

जो प्रेम से भाग गया उसके पास अहकार के सिवाय कुछ भी नहीं बचता। यद्यपि अगर तुम बहुत दूर भाग गये तो तुम्हे पता भी न चलेगा अहकार का, क्योंकि उसका पता भी साथ-सग मे चलता है, समूह मे चलता है।

तुमने खयाल किया, आदमी का बच्चा पैदा होता है, अगर उसे सग-साथ न मिले, मा-पिता परिवार न मिले, समूह-समाज न मिले, तो बच नहीं सकता, मर जायेगा। तुम कोई कल्पना कर सकते हो कि आदमी का बच्चा बच जाये बिना समूह, सग-साथ के ? हा कभी-कभी ऐसा हुआ है कि भेडिये आदमी के बच्चे को ले गये, लेकिन वह भी समूह था, सग-साथ था। भेड़ियो ने बचा लिया। लेकिन अकेला तो आज तक कोई मनुष्य का बच्चा बचा नहीं है। जो मनुष्य के शरीर के सबध मे सच है, वही मै तुमसे कहता हू, आदमी की आत्मा के सबध मे भी सच है। उसका जन्म भी समूह मे होता है—सग-साथ मे, परिवार मे। आदमी की आत्मा भी अकेले मे नही जन्मती। हा, अकेले का तुम उपयोग कर सकते हो। कभी-कभी अकेले हो जाने मे भी रस है। कभी-कभी दूसरे से दूर हट जाने मे भी रस है। लेकिन वह फायदा भी दूसरे से दूर हटने के कारण होता है। खयाल करना, वह फायदा भी अकेले होने के कारण नहीं होता, दूसरे से दूर हटने के कारण होता है। उसका लाभ भी दूसरे मे ही है।

ऐसा समझो कि एक हजार रुपये का ढेर लगा है और एक दस रुपये की ढेरी लगी है। जब हम हजार रुपये की ढेरी हटाते है, और दस रुपये की ढेरी हटाते है, तो दस रुपये का अभाव भी वैसा ही मालूम पड़ता है जैसे हजार रुपये का अभाव मालूम पड़ता है। अब तो न हजार रुपये है न दस रुपये है। हजार रुपये का जब ढेर था, तो हजार रुपये की कीमत थी उसकी। पाच रुपये का ढेर था, दस रुपये का ढेर था, तो दस रुपये की कीमत थी, लेकिन दोनो हटा लिये तो जो शून्य पीछे रह जाता है, वह तो लगता है एक ही मूल्य का है। दस रुपये का शून्य भी उतना ही बड़ा है, हजार रुपये का शून्य भी उतना ही बडा है। तो तुम गलती कर रहे हो। जीवन मे ऐसा नही है। जो आदमी जितना गहरा जीया है, जब वह एकात मे जाता है तो उसके एकात की गहराई भी उतनी ही गहरी होती है। जो आदमी समूह मे जीया ही नहीं है, वह एकात मे चला जाता है, तो उसके एकात की कोई गहराई ही नहीं होती। इसे तुम अनुभव कर सकते हो कि जो आदमी जगल मे ही जीया है, उसे जगल मे कोई सौदर्य नही होता। जो भीड मे, समूह मे, बाजार मे बैठा रहा है, जब कभी जगल जाता है तो जो उसे जगल मे दिखाई पड़ता है, वह जगल के आदमी को दिखाई नही पड़ता।

वानगाग के जीवन मे ऐसा स्मरण है कि वानगाग एक समुद्र तट पर, फ्रास के, अपने चित्र बना रहा था। वह सूरज के पीछे दीवाना था। सूर्योदय, सूर्यास्त—उन पर उसने बडी मेहनत की। समुद्र के किनारे वह एक दिन सूर्यास्त का चित्र बना रहा था। उसके चित्र को देख रही थी एक समुद्र के तट की मछुआ की औरत। वह गौर से देखती रही, गौर से देखती रही। वह फिर दूसरे दिन देखने आई, फिर तीसरे दिन देखने आई। और सातवे दिन धीरे-धीरे वानगाग से परिचय भी हो गया। तो जब सूरज डूबने के करीब आया तो उसने कहा कि आप रुकना, मै जरा अपने पति को, अपने बच्चो को भी ले आऊ। तो वानगाग ने पूछा, किसलिए ? तो उसने कहा कि वे भी सूर्यास्त देख ले। तो उसने कहा कि वे तो यहीं रहते ही है इस समुद्र तट पर, उन्होने सूर्यास्त नहीं देखा ? उस स्त्री ने कहा, नही मैंने भी नहीं देखा था, जब तक आप न आये थे। यह तो इतना स्वाभाविक था हमारे जीवन का हिस्सा कि इसका हमे कभी बोध न हुआ था। तुम्हारे आने से हमे पता चला सूर्यास्त का सौदर्य।

अब यह वानगाग जहा से आ रहा है, वहां सूर्यास्त मुश्किल है देखना, सूर्योदय देखना मुश्किल, कुहासा घिरा रहता है। इसके लिए सूर्योदय और सूर्यास्त बड़े महिमापूर्ण है।

पश्चिम मे सडे, सूर्य का दिन छुट्टी का दिन है। क्योंकि सूर्य

ऐसा प्रगाढ़ होकर दिखाई नहीं देता जैसा पूरब मे दिखाई पडता है, ऐसी महिमा नहीं है सूरज की, सूरज ढका-ढका है, छिपा-छिपा है।

तो सूरज का दिन छुट्टी का दिन होना ही चाहिए। लोग उत्सव मनाये सूरज निकला है, सूरज का दिन है।

एकात मे उतनी ही गुणवत्ता होगी जितना गहरा तुम्हारे सबधो का जगत था। जिस आदमी ने खूब भरपूर प्रेम किया है, वह जब हिमालय पर जाकर बैठ जाता है तो उसके हृदय की गहरई पूछो मत। लेकिन जिसने कभी प्रेम ही नही किया, वह भी हिमालय की पहाडी पर जाकर बैठ जाता है, उसका छिछलापन छिछलापन ही रहनेवाला है।

मै तुमसे यह कह रहा हू कि तुम्हारे एकात का भी तभी मूल्य है जब तुम्हारे सबधो की गहराई हो। अगर हजार रुपये की गहराई थी तो तुम्हारा एकात हजार रुपये के मूल्य का होगा। अगर दस रुपये की गहराई थी तो दस रुपये के मूल्य का होगा।

जीवन का गणित मुर्दा गणित नही है। यहा तुमने कितनी तीव्रता से, त्वरा से जीवन को जीया है, उतनी ही अनूठी अनुभूतिया एकात मे उठेगी। इसलिए मै कहता हू जाओ प्रेम मे, क्योकि तुम्हारे ध्यान की गहराई भी तुम्हारे प्रेम की गहराई पर निर्भर होगी। दूसरे के साथ तो जीकर देख लो, ताकि तुम अपने साथ जीने का राज सीख जाओ।

दूसरे के माध्यम से हम अपने पास आते है। दूसरा सेतु है, जिसके द्वारा हम अपने पर वापस आते है।

दो व्यक्तियो के बीच निकटतम दूरी का नाम प्रेम है। जैसे दो बिदुओ के बीच निकटतम दूरी का नाम रेखा, ऐसे दो व्यक्तियो के बीच निकटतम दूरी का नाम प्रेम है। अगर थोड़े इरछे-तिरछे चलकर जाते हो तो यह प्रेम नही है। सीधे-सीधे।

प्रेम सिखायेगा सरलता। प्रेम सिखायेगा विनम्रता। प्रेम सिखायेगा निरहकार। प्रेम सिखायेगा त्याग।

इसे तुम खयाल रखना, जिसने कभी प्रेम नहीं किया उसका त्याग कृपण का त्याग होता है, वह त्याग नहीं है। वह कजूस है। इसलिए मै सुनता हू साधुओ को समझाते कि छोड दो धन-दौलत, मौत सब छीन लेगी। अब यह जरा सोचने जैसी बात है कि मौत छीन लेगी, इसलिए छोड़ने को कह रहे हो। मतलब, यह डर छीने जाने का है। इसलिए बेहतर है, छोड़ ही दो। लेकिन प्रेमी कहता है, छोड़ो, क्योकि जिसने छोड़ा है उसीने भोगा। तेन त्यक्तेन भुजीथा। जिसने दिया उसीने पाया। प्रेमी कहता है, दे दो, क्योकि बिना दिये पा न सकोगे।

प्रेम की बड़ी अनूठी कीमिया है तुम्हारे पास वही होता है जो तुम दे देते हो। जो तुम बचा लेते हो, वह तुम्हारे पास कभी नहीं होता। दिखता है तुम्हारे पास है, लेकिन तुम उसके मालिक नही होते। मालिक तुम उसी के हो जो तुम दे देते हो। जो बाट दिया, उसी के मालिक हो। मालकियत कब घटती है, तुमने सोचा? जब तुम्हारे हाथ से कोई चीज किसी दूसरे हाथ मे जाती है, उस क्षण। जब तुम्हारे हाथ से हटती है चीज, तुम मालिक होते हो। अगर तुम्हारी मुट्ठी मे बद रहे, तुम मालिक नही होते, ज्यादा से ज्यादा पहरेदार। तिजोड़ी पर बैठे है लट्ठ लिये, बदूक लिये—पर पहरेदार।

जिस क्षण तुम देते हो, देने से ही पता चलता है कि तुम्हारे पास था। देने से ही तुम्हे भी पता चलता है कि मै दे सका—मेरा था। वही है तुम्हारा जो तुमने दिया। और उसी को तुमने भोगा, जो तुमने बाटा।

साझेदारी बढाओ। प्रेम का अर्थ इतना ही होता है साझेदारी करो। किसी को दो। किसी को बाटो। और धन्यवाद देना उसे, जो तुम्हारे जीवन मे इस भाति आये कि तुम उससे कुछ बाट सको। धन्यवाद देना।

प्रेम की बड़ी कुशलता यह है कि यहा लेनेवाला भी कुछ देता है और देनेवाला भी कुछ देता है। जब तुम किसी को कुछ देते हो और वह स्वीकार कर लेता है तो उसने भी तुम्हे कुछ दिया—उसकी स्वीकृति से दिया। उसने तुम्हे मालिक बना दिया। उसने तुम्हे दाता बना दिया। अब और क्या चाहते हो? तुमने जो दिया वह कुछ नही था। उसने जो दिया वह बहुत ज्यादा है। इसलिए हिंदुस्तान मे हमारी व्यवस्था है कि पहले दान दो, फिर दक्षिणा दो। दक्षिणा का अर्थ है उसने दान स्वीकार किया, इसका धन्यवाद भी दो। अकेले दान से काम न चलेगा। पहले तो दो, लेकिन यह जरूरी थोड़े ही है कि वह ले ले। कोई इनकार कर दे, फिर? कोई कह दे नहीं चाहिए, फिर?

प्रेम का अर्थ है ऐसा भरोसा कि तुम जिसे देने जा रहे हो, वह ले लेगा, इनकार न करेगा। बहुत-से लोग इनकार के कारण ही देने से डरते है कि हम देने गये और किसी ने कह दिया, नही,

द्वार बद कर लिया, फिर? रिजेक्शन, अस्वीकार पैदा हुआ? तो बड़ी घबडाहट लगती है।

अनेक लोग मुझसे आकर कहते है कि प्रेम मे एक ही डर मालूम पड़ता है हम तो निवेदन करे और इनकार हो जाये। हम तो अपने हृदय के द्वार खोले, पलक-पावड़े बिछाये और दूसरा पीठ किये चला जाये, न आये, हम तो स्वागतम द्वार पर बाधे, फूल-पत्तिया लटकाये और कोई बिना देखे गुजर जाये—तो फिर बड़ी पीड़ा होगी। इससे तो बेहतर, अपना द्वार-दरवाजा बद ही रखना। क्योंकि जैसे ही तुम किसी को बुलाते हो, दूसरे को तुमने बल दिया, शक्ति दी, जीवन दिया। अब दूसरे के हाथ मे उपाय है, वह स्वीकार कर ले, अस्वीकार कर दे।

प्रेम का पहला कदम ही जोखिम से भरा है। इसलिए स्त्रिया कभी प्रेम-निवेदन नहीं करतीं। इतनी जोखिम स्त्रिया नही उठातीं। वे राह देखती है—तुम्ही प्रेम-निवेदन करो। वे प्रतीक्षा करती हैं। कि कितनी जोखिम पुरुष उठाता है। जोखिम बड़ी है, क्योंकि दूसरा कह सकता है, नही। दूसरा द्वार को बद कर दे सकता है, तो फिर क्या होगा? फिर बड़ी पीड़ा और तड़फ होगी। तुम इस योग्य न समझे गये कि स्वीकार किये जाओ।

इसलिए बहुत-से लोग अपना प्रेम ऐसी चीजो से लगाते है जहा से अस्वीकार हो ही नही सकता। एक कार खरीद ली, उसी से प्रेम करने लगे। अमरीका मे करीब-करीब स्त्री के बाद कार का नबर दो है। कार मे एक सुविधा है, इनकार नही कर सकती, खरीद लाये तो तुम्हारी। इसलिए हजारो साल तक आदमी स्त्री को भी खरीद के लाता रहा, प्रेम करके नही, क्योंकि प्रेम मे खतरा था। इसलिए विवाह पैदा हुआ।

विवाह होशियारी है, जोखिम से बचने की व्यवस्था है। मा-बाप इंतजाम करते हैं, पडित-पुरोहित कुडली मिलाते हैं। तुम्हे सीधा निवेदन नहीं करना पड़ता। जैसे तुम किसी के भाई हो, किसी की बहन हो—ऐसे एक दिन किसी के पति या पत्नी हो जाते हो। अचानक तुम पाते हो—हो गये। उसके लिए तुम्हे खोज नहीं करनी पड़ती, तुम्हे पहली जोखिम नहीं उठानी पड़ती। लेकिन जब पहली जोखिम नहीं उठाई तो सारा जीवन गलत हो जाता है। वह दुस्साहस जरूरी है।

तो विवाह ईजाद हुआ, ताकि प्रेम से बचा जा सके। लोग सोचते है, प्रेम के लिए विवाह है, प्रेम वस्तुत बचने का उपाय है। तो लोग पत्नियो को भी खरीदकर लाते रहे, दहेज दे-देकर लाते रहे। वह भी खरीद-फरोख्त थी।

अब यह मुश्किल होता जा रहा है, तो लोगो का ध्यान वस्तुओ की तरफ जा रहा है, या पशुओ की तरफ जा रहा है। एक कुत्ता रख लिया, जब भी घर आये, वह पूछ हिलाता है। वह कभी भी ऐसा नहीं कह सकता कि नहीं हिलायेगे पूछ। तुम जब भी आये, तभी तुम्हे गौरव देता है।

कुत्ते बड़े राजनीतिज्ञ है। वे समझ गये एक राजनीति कि आदमी पूछ हिलाने से बड़ा प्रसन्न होता है। उधर उसकी पूछ मुस्कुराने लगी, इधर तुम मुस्कुराने लगे। उसने एक कला सीख ली। पर देखा तुमने, कुत्ते भी देखते है। अगर अजनबी आदमी आता है तो भौकते भी है, पूछ भी हिलाते है। यह, यह राजनीति न हुई, यह कूटनीति, डिप्लोमेसी है। वे यह देख रहे है कि जाच तो कर लो, आदमी अपनावाला है कि नही है, पराया है, मित्र है कि शत्रु है। तो भौकते भी है कि अगर शत्रु हुआ तो पूछ रोक लेगे, भौंकते चले जायेगे, अगर मित्र हुआ तो भौकना बद कर देगे, पूछ पर पूरी ताकत लगा देगे—असदिग्ध जब हो जायेगे। अभी सदेह है। नया-नया आदमी आ रहा है, पता नहीं मालिक का मित्र हो कि दुश्मन हो।

पश्चिम मे लोग जानवरो के पीछे—कुत्ते-बिल्लिया पालने मे लगे है, या वस्तुओ के पीछे है—कार है, मकान है, और हजार तरह के उपकरण विज्ञान ने खोज दिये है, उनमे अपना प्रेम लगा रहे है।

यह वस्तुत प्रेम से बचने का उपाय है, क्योंकि प्रेम की सबसे पहली जोखिम यह है कि जब तुम दूसरे को देने जाते हो अपना हृदय, तो इनकार भी हो सकता है। और अगर दूसरे ने स्वीकार किया तो तुमने ही कुछ नहीं दिया, दूसरे ने स्वीकार करके तुम्हे कुछ दे दिया। प्रेम मे लेनेवाला भी देनेवाला है—देनेवाला तो देनेवाला है ही।

प्रेम की बड़ी अपूर्व महिमा है। वहा दोनो दाता हो जाते है। इससे बड़ा जादू और कहीं भी घटित नहीं होता। सब गणित के नियम टूट जाते है। क्योंकि दोनो दाता हो नहीं सकते गणित के नियम से, एक दाता होगा तो एक लेनेवाला होगा। एक का हाथ ऊपर होगा, दूसरे का हाथ नीचे होगा। लेकिन प्रेम दोनो हाथो को समान स्तर पर ला देता है, दोनो दाता बन जाते है। देनेवाला

तो है ही, लेनेवाला भी दाता बन जाता है। और लेनेवाला जो देता है, वह देनेवाले से भी बड़ा है।

इसलिए प्रेम गणित की सीमा के बाहर पड़ता है, हिसाब के बाहर पड़ता है, अर्थशास्त्र के बाहर पड़ता है, रहस्यमय है।

घबड़ाना न। कृपण मत बनना। कायर मत बनना। प्रेम के द्वार पर दस्तक देना। क्योंकि वही द्वार एक दिन परमात्मा का मंदिर भी सिद्ध होता है।

दूसरा प्रश्न

आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक
कौन जीता है तेरे जुल्फ के सर होने तक
हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन
खाक हो जायेगे हम तुमको खबर होने तक।

प्रेम का रास्ता ही मिटने का रास्ता है। वहा खाक हो जाना ही उपलब्धि है। वहा खो जाना ही पा लेना है। वहा बचाने की चेष्टा से ही बाधा होती है। वहा तो धीरे-धीरे अपने को गलाते जाना है और एक ऐसी घडी लानी है, जहा प्रेमी तो बचे ही न—बस प्रेम का ही सागर लहरे लेता रह जाये। उसी क्षण परमात्मा अवतरित होता है। जहा तुम मिटे वही परमात्मा का प्रवेश है।

इब्तिदा मे ही मर गये सब यार
कौन इश्क की इतिहा लाया।

प्रेम के प्रारभ मे ही लोग मर जाते है। अत तक जाने की तो सुविधा कहा है, बचता कौन है? प्रेम की कोई आज तक गहराई नही छू सका।

रामकृष्ण कहते थे, एक मेला भरा था और लोग सागर के तट पर विचार करते थे कि सागर की गहराई कितनी है। एक नमक का पुतला भी आया था।

उसने कहा, 'ठहरो। ऐसे विचार करने से क्या होगा? मै डुबकी लगाता हू। मै अभी पता ला देता हू।' उसने डुबकी लगा ली, लेकिन लौटा नहीं, लौटा नहीं, लौटा नही। सांझ हो गयी, दूसरा दिन हो गया, मेला उजड़ने का वक्त भी आ गया, लोग राह देखते रहे, लेकिन वह कभी लौटा नहीं। वह लौटता कैसे? वह नमक का पुतला था, सागर मे उतरा तो गलने लगा। जैसे-जैसे गहरा गया, वैसे-वैसे पिघलता गया। गहरे नहीं गया, ऐसा नहीं, खूब गहरे गया। और ऐसा भी नहीं कि उसने गहराई न छू ली, उसने पूर सागर का अतस्तल छू लिया। लेकिन तब तक खुद खो चुका था, लौटनेवाला न बचा था।

नमक का पुतला जैसा ही आदमी है—प्रेम का पुतला। वह प्रेम से पैदा हुआ है, प्रेम से बना है। तुम्हारा रोआ-रोआ, तुम्हारी रत्ती-रत्ती प्रेम से बनी है। तो जब तुम परमात्मा के सागर मे डुबकी लगाओगे नहीं कि तुम पता न लगा लोगे, पता लगा लोगे, लेकिन पता लगाने मे खो जाओगे।

इब्तिदा मे ही मर गये सब यार
कौन इश्क की इतिहा लाया।

इसलिए खाक होने की तैयारी रखो। और माना कि बहुत बार ऐसा लगेगा कि बड़ी देर हुई जा रही है और बहुत बार तड़फ होगी कि अब जल्दी हो, और बहुत बार ऐसी शिकायत उठेगी कि अब और पीडा क्यो, फिर भी—

क्या उसके बगैर जिदगानी?
माना वह हजार दिलशिकन है।

—बहुत दिल को दुखानेवाला है, लेकिन उसके बिना जिदगी का कोई अर्थ भी नहीं।

धन्यभागी है वे जो परमात्मा के रास्ते पर दुखी और पीड़ित होते है। अभागे है वे जो परमात्मा के विपरीत रास्ते पर सुखी और प्रसन्न है। क्योकि परमात्मा के विपरीत रास्ते पर सुख और प्रसन्न भी राख हो जायेगा। और परमात्मा के रास्ते पर राख हो जाना भी स्वर्ण हो जाने का उपाय, व्यवस्था है।

एक तर्जे-तगाफुल है सो वह उनको मुबारक
एक अर्जे-तमन्ना है सो हम करते रहेगे।

—एक उपेक्षा है सो परमात्मा को छोड़ दिया, वह करता रहे।

एक तर्जे-तगाफुल है सो वह उनको मुबारक
एक अर्जे-तमन्ना है सो हम करते रहेगे।

—एक अभीप्सा है, प्रार्थना है, वह हम करते रहेगे। एक उपेक्षा है, तू करते रहना।

भक्त कहता है, तू उपेक्षा करना, हम अभीप्सा करेगे, देखे कौन जीतता है।

एक तर्जे-तगाफुल है सो वह उनको मुबारक
एक अर्जे-तमन्ना है सो हम करते रहेगे।

परमात्मा दूर है, ऐसा तो सोचना ही नही। क्योकि जो दूर हो सकता है, वह तो परमात्मा न होगा। परमात्मा तो वही है जिसने तुम्हे सब तरफ से घेरा है, बाहर और भीतर सब तरफ से भरा है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नही है। परमात्मा सर्वस्व है। परमात्मा सब कुछ का नाम है। परमात्मा कोई व्यक्ति नही है, परमात्मा समष्टि है। इसलिए उससे दूर तो हम नही है, लेकिन जरा हम बेहोश है।

अल्ला रे बेखुदी कि तेरे पास बैठकर
तेरा ही इतजार किया है कभी-कभी।

हम बेहोश है, बस इतनी ही बात है। और हम बेहोश तब तक रहेगे, जब तक हम है। हमारा होना हमारा बेहोश होना है। तो खाक तो होना पडेगा। जलना तो पडेगा। राख तो होना पडेगा। मगर यही वास्तविक होने का उपाय है।

अभी तो हम नाममात्र को है, कहने मात्र को है। अभी हमारे होने मे क्या है? कोई सत्व नही, कोई सार नही।

तो घबड़ाओ मत। और यह भी माना कि—

'आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक
कौन जीता है तेरे जुल्फ के सर होने तक
हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन
खाक हो जायेगे हम तुमको खबर होने तक।'

हो जाओ।

तमाम उम्र तेरा इतजार कर लेगे
मगर ये रज रहेगा कि जिदगी कम है।

करो। उम्र छोटी पड जाये, इतजार बडा हो जाये। अनेक उम्रे समा जाये, इतजार इतना बड़ा हो जाये। प्रतीक्षा ऐसी घनी हो जाये कि जन्म और जीवन पलक के झपने जैसे बीतने लगे। लेकिन इतजार का सिलसिला जारी रहे। शरीर बदले, जीवन बदले, योनि बदले, रूप बदले, रग बदले, नाम बदले, सब बदलता जाये—लेकिन भीतर की प्रतीक्षा का एक सूत्र अनस्यूत रहे, एक धागा पिरोया रहे सारे मनको मे।

घटना तो इस क्षण भी घट सकती है, लेकिन प्रतीक्षा अनत चाहिए। और घटना बहुत देर होगी घटने के लिए, अगर प्रतीक्षा मे थोड़ी कमी रही। जल्दबाजी न करना।

नये युग ने बड़ी जल्दबाजी की है। इसलिए प्रतीक्षा के गहरे रूप खो गये है। कोई प्रतीक्षा करने को राजी नही है। पश्चिम से एक बड़ा बुखार सारे जगत मे फैला है—तेजी, जल्दी, स्पीड। तो जैसे इस्टेट काफी, ऐसा सारा जीवन, सभी कुछ अभी हो जाये, इसी क्षण हो जाये, आज ही हो जाये। तो मनुष्य के जीवन की कुछ गहराइया खो ही गयी, क्योकि कुछ चीजे धीरे-धीरे होती है। कुछ चीजे मौसमी फूलो की तरह होती है—आज लगायी, तीन सप्ताह मे पौधे हो जायेगे, छह सप्ताह मे फूल आ जायेगे—लेकिन आये नहीं कि गये भी नही। लेकिन देवदार और चीड के वृक्ष वर्षो लेगे, वर्षों लगेगे, बड़े धीरे-धीरे बढेगे। और यह तो परमात्मा की खोज तो शाश्वत वृक्ष है, इसको रोपना अपने हृदय मे, तो बड़ी अनत प्रक्रिया है। अब यह अभी इसी क्षण नही हो सकता।

कल मै एक किताब पढ रहा था। उसमे एक अमरीकी प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! सुनते है धीरज की बड़ी जरूरत है, तो धीरज दे—लेकिन अभी और यही। धीरज की बड़ी जरूरत है। तो दे, धीरज दे—लेकिन अभी और यही।

जीवन मे कुछ चीजे समय मागती है—और जितनी महत्वपूर्ण हो उतना ज्यादा समय मागती है। अगर किसी व्यक्ति से केवल वासना का सबध बनाना हो तो अभी और यही बन सकता है, प्रेम का बनाना हो तो समय लगेगा। और प्रार्थना का बनाना हो तो अनत काल लग जायेगे। और परमात्मा का बनाना हो तो शाश्वतता चाहिए। इसका यह मतलब नही है कि तुम्हे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी शाश्वतता तक। क्योकि शाश्वतता ने अभी और यहा भी तुम तक अपना हाथ पहुचाया है। तुम शाश्वत के लिए तैयार हुए कि अभी और यही भी घट सकता है। इसमे जरा विरोधाभास लगेगा। इसे स्पष्ट करके कहू।

अगर तुम शाश्वत प्रतीक्षा करने को राजी हो तो अभी और यही घट सकता है, क्योकि शाश्वत प्रतीक्षा का अर्थ हुआ अब कोई जल्दी नहीं, तुम शात हुए, शिथिल तुमने छोड़ा, तनाव हटा। अब तुम्हारी कोई माग नहीं है—हो, जब हो। अब कोई जल्दी न रही। बस इस शिथिल और शात मन मे अभी और यहीं घट सकता है।

तुमने मागा अभी और यहीं घट जाये तो तुम इतने तन गये, इतने परेशान हो गये कि कही न घटा और समय बीत गया तो कही समय फिजूल न चला जाये। तुम्हारे तनाव के कारण ही न घट पायेगा। माग मे तनाव है। यही अभीप्सा शब्द की खूबी है।

वासना का अर्थ है माग है, तनावपूर्ण। अभीप्सा का अर्थ है माग है, तनावशून्य। मागते भी है, जल्दी भी नहीं है, देना, जब तुझे देना हो। तेरी मर्जी। न देना हो, उसके लिए भी राजी है।

तीसरा प्रश्न आपके प्रवचन के समय मैने सन्यासियो के चेहरे का अवलोकन किया है। ऐसा लगता है कि वे गहरी नीद मे पहुच गये है। और मेरा अपना अनुभव भी यही है कि जैसी मीठी, गहरी और लुभावनी नीद प्रवचन के समय लगती है वैसी और कभी अनुभव मे नही आती। क्या कारण है?

अलग-अलग लोगो के अलग-अलग कारण होगे। एक कारण तो बताया नही जा सकता, क्योकि यहा बहुत लोग है। लेकिन फिर भी प्रश्न विचारणीय है।

पहली बात, कुछ लोग तो निश्चित ही सभी धर्म-सभाओ मे सो जाते है। यह बचने की एक तरकीब है। यह मन की एक बडी सूक्ष्म व्यवस्था है। जिससे तुम बचना चाहते हो तो बीच मे एक नीद का पर्दा डाल लेते हो। सुना ही नही, तो अपने साथ ही कूटनीतिक खेल खेल गये। सुनने भी गये तो रस भी ले लिया कि धार्मिक व्यक्ति है और सो भी गये तो सुना भी नही। तो दुनिया को दिखाई भी पडा कि धार्मिक है और झझट भी न हुई। धार्मिक होने की झझट मे भी न पड़े।

तो एक तो वर्ग ऐसे लोगो का है, जो धर्म की बात पडी नही उनके कान मे कि उन्हे नीद आई नही। यह उनके भीतर करीब-करीब यात्रिक हो गया है। मदिरो मे, चर्चो मे तुम उन्हे सोता हुआ पाओगे।

एक पादरी पूछ रहा था अपने एक भक्त को, क्योकि पादरी देखता था, जब भी वह आता है, सोया ही रहता है चर्च मे। उसने उससे एक दिन पूछा कि क्या रात नीद ठीक से नहीं होती? उस आदमी ने कहा, रात तो नीद लगती ही नही। हजार चिताए है ससार की, मगर उसकी कोई चिता नही। जब आपका प्रवचन सुनता हू तो खूब गहरी नींद लग जाती है।

ससार की तो चिंता है, परमात्मा की तो कोई चिता है नही। ससार के तो विचार है, परमात्मा का तो कोई विचार है नही। ससार की तो भाग-दौड़ है, तो नींद को खलल डालती है। परमात्मा की कोई भाग-दौड़ तो है नही। तो परमात्मा की बात सुनकर कोई महत्वाकाक्षा तो जगती नही कि पाना है, उठना है, जागना है। तो जब जहा कोई महत्वाकाक्षा नही उठती तो आदमी सो जाता है, करेगे भी क्या और?

तुमने देखा, जब तुम्हारे पास कुछ भी करने को नहीं होता, तब तुम सो जाते हो। करोगे क्या और? जब तक कुछ करने को होता है, तब तक तुम करते रहते हो। और तुमने यह भी देखा होगा जब तुम्हारे पास करने को इतना कुछ होता है कि तुम बिस्तर पर भी पड़ जाते हो, लेकिन मन मे काम जारी रहता है, तो नीद नही आती। तो जहा काम है वहा नीद मे बाधा है। परमात्मा तुम्हारा कोई काम तो है नही। वहा कुछ करने को तो है नही। तुम्हारे भीतर कोई अभीप्सा तो है नही, उसे पाने की कोई आकाक्षा तो है नही। सुन लिया, नीद आ गयी।

तो एक तो ऐसे लोग है। दूसरे ऐसे लोग है जो वस्तुत नीद मे चले जाते है आकाक्षा के रहते भी। परमात्मा को पाने की प्यास भी है, किसी को धोखा देने नहीं आये है, लेकिन फिर भी नीद मे चले जाते है। अपने को भी धोखा नही दे रहे है, लेकिन नीद बरबस पकड लेती है। उसका कारण है—जन्मो-जन्मो की मन की आदत। जिस दिशा मे मन कभी गया नही है, उस दिशा मे जाने से मन इनकार करता है, जिस दिशा मे मन को कभी ले नही गये हो पहले, अनभ्यस्त है, रास्ता अपरिचित है, वह वहा जाने से बिलकुल इनकार कर देता है। वह जमीन पर ही बैठ जाता है। वह आख ही बद कर लेता है। वह कहता है, हम सो ही जायेगे। यह मन का इनकार है।

तो दूसरा वर्ग है जो निष्ठापूर्वक समझना चाहता है, लेकिन उसका मन इनकार कर रहा है।

फिर एक तीसरा वर्ग है, जिसकी नीद बड़े और कारण से पैदा हो रही है। अगर तुम हृदयपूर्वक मेरी बातो को सुन रहे हो तो एक तरह की तद्रा उतर ही आयेगी। पर वह नीद नही है। उसको योग अलग नाम देता है—तद्रा। वह नीद जैसी है, निद्रा जैसी है, लेकिन निद्रा नही है। वह तद्रा है। तद्रा का अर्थ है जब तुम कोई मधुर सगीत सुनते हो तो एक ताल बध जाती है भीतर, एक सुर बध जाता है, एक सन्नाटा खिच जाता है, विचार शात हो जाते है। एक बडी झपकी, जिसको तुम जागना भी नही कह सकते, सोना भी नहीं कह सकते, जो दोनो के मध्य है—तद्रा—ऐसी घड़ी आ जाती है। न बाहर न भीतर, देहली

पर खड़े हो जाते हो, मध्य मे खडे हो जाते हो। तुम यह भी नही कह सकते कि सो गये थे, क्योकि तुम मेरी बात पूरी तरह सुनते रहोगे। और तुम यह भी नही कह सकते कि तुम जागे हुए थे, क्योकि एक बड़ी राहत, जैसी कि नींद मे भी नहीं मिलती, एक बड़ी विश्राति, तुम्हे उस तद्रा से मिल जाएगी।

तो तीसरा वर्ग है, जिसकी निद्रा तद्रा के जैसी है।

इसमे पहले वर्ग मे अगर तुम हो तो अच्छा हो, आना बद कर देना। अगर दूसरे वर्ग मे तुम हो तो सघर्ष करना, क्योकि वह निद्रा तुम्हारे मन की पुरानी आदत है, उसे तोड़ना पडेगा। अगर तीसरे वर्ग मे तुम हो तो सौभाग्यशाली समझना और इस तद्रा से लडना मत, इस तद्रा मे चुपचाप अपने को छोड देना। क्योकि जो भी मै कह रहा हू, तद्रा मे कुछ भी चूकेगा नही, वह तुम्हारे पास पहुच ही जायेगा। यह हो सकता है कि शायद तुम बाद मे याद न रख सको, क्योकि याद बहुत ऊपर-ऊपर है, वह और भी गहरे पहुच जायेगा। तद्रा मे अगर तुमने सुना तो वह सुनना बड़ा गहरा है। वह तुम्हारे प्राण-प्राण मे उतर जायेगा। अगर तुम्हारी तद्रा की स्थिति हो तो उसे तोड़ने की कोशिश मत करना। तब तो आख बद करके शाति से उसमे डूब जाना। क्योकि मै तुमसे जो कह रहा हू, वह सिर्फ वचन ही नहीं है, मै तुमसे जो कह रहा हू, उन वचनो मे कुछ तुम्हे दे भी रहा हू। कुछ ऊर्जा का सचरण हो रहा है। कोई ऊर्जा का सवाद हो रहा है। अगर तुम जागे रहे तो तुम्हारे मन के विचार चलते रहेगे। अगर तुम सो गये तो तुम सुन न सकोगे। अगर तद्रा मे रहे तो जागने के विचार भी न चलेगे और नीद भी न होगी। बीच मे खडे देहली पर तुम मेरे बहुत करीब आ जाओगे। तुम्हारा हृदय मेरे हृदय के बहुत करीब धड़कने लगेगा।

तो सोच लेना, तुम्हारी जैसी दशा हो । अगर तीसरी हो तो बड़ी सौभाग्य की। तद्रा तो ध्यान की अवस्था है। इसी को तो सूफियो ने मस्ती कहा है। एक नशा चढ़ जाता है। एक नशे जैसा है। और लगता है, जिसने पूछा है, उसकी स्थिति तद्रा की ही होगी, क्योकि मेरा अपना अनुभव यही है, उसने कहा है, कि जैसी मीठी, गहरी और लुभावनी ।

तद्रा की स्थिति मीठी है, गहरी है, लुभावनी है। लेकिन तुम्हारे लिए नयी होगी, इसलिए तुम उसे निद्रा समझ रहे हो। थोड़ी उसके साथ और पहचान बढेगी तो तुम साफ-साफ देख लोगे कि जागरण अलग, निद्रा अलग, तद्रा बिलकुल अलग है। तद्रा तो एक मादक स्थिति है।

नमाजे-इश्क का आता भी है, जो होश कभी
तो बेखुदी मेरी बढ़कर इमाम होती है।

—कभी-कभी जब प्रार्थना मे डूबने की इच्छा भी होती है तो तत्क्षण तल्लीनता मेरा नेतृत्व करने लगती है।

नमाजे-इश्क का आता भी है, जो होश कभी
तो बेखुदी मेरी बढकर इमाम होती है।

—तो तत्क्षण मेरी तल्लीनता आगे आ जाती है और मार्गदर्शक हो जाती है। यह तद्रा वही तल्लीनता है जो मार्गदर्शक बन जाती है। फिर फिक्र मत करना। अगर तीसरी तरह की तद्रा हो तो यह भी मत सोचना कि लोग क्या कहेगे। यह भी मत सोचना कि यह कही कोई नियम का उल्लघन तो नही हो रहा है। यह भी मत सोचना कि यह कही बुरा तो नही है कि मै बोल रहा हू, और तुम सो रहे हो। नही, यह नीद है ही नही। यह तो प्रेम की एक बड़ी गहरी दशा है। मेरे शब्द तुम्हारे लिए एक गहरा सगीत लेकर आ रहे है। तुमने शब्दो को ही नही सुना है, सगीत को भी पीना शुरू कर दिया है।

मोहब्बत मे नियाज और हुस्ने-महवे-नाज क्या मानी
मै इस दस्तूर को तरमीम के काबिल समझता हू।

और जहा प्रेम है, वहा नियम-उल्लघन हो सकता है। क्योकि प्रेम इतना परम नियम है कि फिर किसी और नियम की कोई जरूरत नही है। तो तुम केवल शिष्टाचार के कारण सम्हालकर और आख खोलकर मत बैठे रहना। अगर तद्रा तुम्हे अनुभव होती हो तो

मोहब्बत मे नियाज और हुस्ने-महवे-नाज क्या मानी?

तो फिर प्रेम मे नम्रता और अहकार तक का कोई मूल्य नहीं।

मै इस दस्तूर को तरमीम के काबिल समझता हू।

फिर तो सभी दस्तूर तरमीम के काबिल है। फिर तो शिष्टाचार की फिक्र छोड़ो। प्रेमी के लिए कोई नियम नही है। मगर बहुत गौर से देखना। कहीं ऐसा न हो कि नींद पहले तरह की हो। अगर पहले तरह की हो तो अपने को सम्हालना। या तो आना बद करो ।

एक चर्च मे ऐसा हुआ एक बूढ़ा आदमी, लेकिन करोड़पति, सामने ही बैठता था। और जब पादरी बोलता तो न केवल वह

सोता, बल्कि घुर्राता भी। तो उससे और चर्च के लोगो को भी अड़चन होती। उससे कुछ कहा भी नही जा सकता था, क्योकि वह करोड़पति था और उसके दान पर चर्च चलता था। उसे यह भी नहीं बताया जा सकता कि तुम घुर्राते हो।

तो पादरी ने एक तरकीब खोज ली। उसके साथ एक छोटा बच्चा भी आता था, उसका वह नाती-पोता। उसने छोटे बच्चे को एक दिन बुलाया और कहा कि देख तू अपने दादा को जब वे घुर्राने लगे, हिला दिया कर। मै तुझे चार आने दिया करूगा रोज। उसने कहा, ठीक। तो वह बच्चा, जब भी उसका दादा घुर्राने लगता, उसको तो बच्चे को कोई मतलब भी नहीं था प्रवचन से, वह अपने दादा ही पर नजर रखता, उनको हिला देता। ऐसा दो-तीन दिन तो चला, लेकिन चौथे दिन देखा कि बच्चे ने हिलाया नही। तो, पादरी ने उसे बुलाया कि क्यो, क्या हुआ? उसने कहा, मेरे दादा ने कहा कि देख, अगर तू मुझे नही हिलायेगा तो मै एक रुपया । अब आप सोच लो उसने कहा, रुपया मिल रहा है।

अगर पहली, ऐसी दशा हो तो कोई जरूरत नही है। कोई प्रयोजन नही है। जाना क्यो ऐसी जगह जहा नींद आती हो? घर ही सोया जा सकता है, सुगमता से, सुविधा से। यहा बैठकर सख्त पत्थर पर, नीद भी मुश्किल होती होगी। तुम तो कष्ट दोगे, पाप मुझको भी लगेगा।

अगर दूसरी तरह की नीद हो तो फिर कोई फिक्र नहीं। फिर अपने को जगाने की कोशिश करना। अगर दूसरी तरह की नीद हो कि मन की पुरानी आदत के कारण आ जाती हो, तो मन की आदते तो तोड़नी है, उनसे तो सघर्ष करना होगा। और जब पहली और दूसरी तरह की नीद विदा हो जायेगी तो तीसरी तरह की नींद की सभावना शुरू होती है। और जब तीसरी आ जाये तो डरना मत, फिर उसमे लीन होना, डूबना।

आखिरी प्रश्न सन्यास के शुरू के कुछ साल इस भ्रम मे जीती रही कि मै सन्यासिनी हू। वे बड़े सुख और आनद के दिन थे। कितु अब जो आप सन्यास के फूल की बात करते है तो मै अपने को बहुत अयोग्य पाती हू। जमीन से पैर उखड गये, लेकिन पख अभी तक नहीं उगे। यह कैसी अवस्था है कि एक ओर कीर्तन, नाच और भक्ति मे लीन होती हू, तो दूसरी ओर ध्यान और होश भी पकड़ता है। और यह ससार उफ कब तक चलेगा?

'सन्यास के शुरू के कुछ साल इस भ्रम मे जीती रही कि मै सन्यासिनी हू। वे बड़े सुख और आनद के दिन थे।'

भ्रम के दिन सदा ही सुख और आनंद के दिन होते है। लेकिन भ्रम के साथ एक ही खतरा है कि वह सदा नही चल सकता, वह एक दिन टूटता ही है। और जब टूटता है तो पीडा होती है। लेकिन उसका टूट जाना शुभ है। और अब जब मै कह रहा हू कि सन्यास केवल लेने की बात नहीं है लेने से तो शुरुआत होती है, अत नही। सन्यासी बनने का जब तुम निर्णय करते हो, सकल्प करते हो, समर्पण करते हो, तो वह तो यात्रा का पहला कदम है। वहीं बैठकर प्रसन्न मत होते रहना। नही तो मजिल कभी घर न आयेगी, तुम कभी मजिल तक न पहुचोगे। उचित है कि पहला कदम भी उठाया। यह भी सौभाग्य था। इसके लिए गुनगुनाना, गीत गाना, नाच लेना, प्रसन्न होना, लेकिन यात्रा जारी रखनी है। आगे जाना है। रोज आगे जाना है। और जितने तुम आगे जाने लगोगे, उतने मै तुम्हे और आगे की यात्रा के इशारे देने लगूगा।

तो पहले तुमसे कहता हू, सन्यास सिर्फ एक भाव-भगिमा है। वह तो तुम्हे फुसलाने के लिए। वह तो तुम्हे राजी कर लेने के लिए। तुमसे कहता हू, यहीं पास रहा, दो कदम जाना है। जब तुम दो कदम उठा लेते हो, तब मै कहता हू कि अब दो कदम और। ऐसे दो-दो कदम तुम्हे बढ़ाकर हजारो कदम उठवाये जा सकते है। अगर मै तुमसे कहू हजार कदम पहले से, तो शायद तुम पहला कदम भी न उठाओ।

तुमने हिम्मत इतनी खो दी है, आत्मविश्वास इतना खो दिया है। तुम बड़ी क्षुद्र बातो से प्रभावित होते हो। हजार कदम, तो शायद हजार कदम की बात रुकावट ही बन जाये। इसलिए मैने सन्यास को इतना सरल बना दिया है जितना सरल हो सकता है। सिर्फ सन्यास लेने की आकाक्षा को मै कहता हू काफी है, बस, और कोई पात्रता नहीं। लेकिन एक बार तुम सन्यासी होने का पहला कदम उठाये, तो यात्रा शुरू हुई। फिर मै पात्रता की बात भी करूगा। फिर कैसे जीवन के फूल खिले, उनकी दिशा मे तुम्हे सलग्न भी करूगा। और एक बार तुम मेरे साथ आ गये, चल

पड़े, तो मैं जानता हू वापस लौटना आसान नहीं। एक बार इतनी भी हिम्मत कर ली कि मेरे रग मे रगे, कि गैरिक वस्त्रो मे डूबे, कि फिर तुम भाग न सकोगे। अगुली पकड़ ली तो फिर पहुचा भी पकड लूगा। एक बार अगुली हाथ मे लेता हू, तुम सोचते हो, क्या हर्जा है, अगुली ही तो है कोई, जब चाहेगे तब छुड़ा लेगे। तुमसे मै कहता हू, अगुली काफी है, इतने से काम हो जायेगा। इतने से काम न होगा। इतने से काम शुरू होता है।

तो स्वभावत देर-अबेर प्रत्येक को ऐसा लगेगा कि यह तो बड़ी मुश्किल हुई। हम तो सोचे थे सरल है, यह तो कठिन होने लगी बात। यह तो मार्ग ऊचाइयो पर चढने लगा। हम तो सोचे थे, समतल है। हम तो सोचे थे, राजपथ है, ये तो पगडडिया फूटने लगी, और जगल मे अकेले की यात्रा होने लगी।

लेकिन उस तक पहुचने के लिए बहुत कुछ चुकाना पडता है। अपने पूरे जीवन की ही आहुति देनी पडती है। तो अडचन से घबड़ाना मत।

और अयोग्यता का बोध पैदा हो रहा हो तो इसे शुभ मानना, क्योकि अयोग्यता का बोध केवल उन्ही को होता है, जिनके भीतर थोडी बुद्धिमत्ता है। मूढ़ तो अपने को योग्य ही समझते है। उन्हे अयोग्यता का तो पता ही नही चलता। अज्ञानी तो अपने को ज्ञानी ही मानते है। यह तो सिर्फ ज्ञानियो को पता चलता है कि हम अज्ञानी है। इसलिए अगर अयोग्यता का बोध हो रहा है तो दुखी मत होना। यह तो पहली सूरज की किरण फूटी। यह तो पहला दीया जला। अब इसी दीये से योग्यता पैदा होगी। अयोग्यता का पता चल गया तो अयोग्यता से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। अयोग्यता का पता ही न चलता हो तो फिर कैसे मुक्त हो सकोगे?

'जमीन से पैर उखड गये है, लेकिन पख अभी तक नही उगे है ।'

ठीक है। जहा तुम जा रहे थे वहा से तुम्हे खीच लिया है। वह दिशा समाप्त हुई। उस तरफ रस बद हुआ। लेकिन जहा तुम्हे ले जाना है, उस दिशा मे लगाने के लिए तुम्हारे भीतर पात्रता लानी होगी। पुराने रास्ते पर चलने की तुम्हारे पास कुशलता है। पुराना रास्ता तो हटा दिया, नये रास्ते पर तुम्हे लगा दिया, लेकिन नये रास्ते की कुशलता सीखनी होगी। जड़े तो टूट गयीं, ठीक हुआ, जमीन से पैर उखड़ गये, ठीक हुआ। यह पहला कदम तो हुआ आकाश मे उड़ने का, लेकिन पख पैदा करने होगे। या होगे मौजूद तो जन्मो-जन्मो से उनका उपयोग नही किया, उनका उपयोग सीखना पड़ेगा। लेकिन शुभ है कि कम से कम आधा तो हुआ। जमीन से पैर तो उखड़ गये। अब जमीन पर खडे होने की तो जगह न रही। अब तो पख खोजने ही पड़ेगे।

और ध्यान रखना, जब तक कि जीवन सकट मे न पड़ जाये, जीवन नये की खोज नही करता। नये की खोज सकट मे होती है। जब इतना सकट आ जाता है कि कुछ करना ही होगा, तभी नये की खोज होती है, अन्यथा मन बड़ा आलसी है।

तो अगर तुम्हारी जमीन मैने छीन ली तो अब तुम तडफडाओगे, फेकोगे हाथ-पैर। उन्ही हाथ-पैर क फेकने से पखो का जन्म होगा। पख तो है, तुम भूल ही गये हो, तुम्हे याद ही न रही।

शुरू-शुरू मे तडफडाहट करोगे तो एकदम से उड़ना न आ जायेगा। उड़ने के लिए बडी कुशलता चाहिए। वह कुशलता धीरे-धीरे पैदा होगी। लेकिन तुम उड़ सकोगे। क्योकि आकाश ही, अनत आकाश ही—कहो उसे परमात्मा, मोक्ष, निर्वाण—तुम्हारी नियति है। और जो पक्षी उस आकाश मे नही उड़ा, घोसले मे ही बैठा रह गया, उसके अभाग्य को क्या कहे। पैदा हुआ था कि उडे आकाश मे। लेकिन पैदा तो घोसले मे होना पड़ता है, आकाश मे तो कोई भी पक्षी का अडा रखा नही जा सकता। अडा तो रखना पड़ता है घोसले मे। लेकिन अडा फूट जाये और पक्षी वही बैठा रहे घोसले मे और डरे और डर उसका स्वाभाविक है, कभी उडा नही पहले ।

तो मैने तुमसे तुम्हारा घोसला तो छीन लिया, अब बैठने की तो कोई जगह नहीं है। उडना ही पड़ेगा। और तुम उडोगे।

तुमने देखा, जो लोग तैरना सिखाते है, वे करते क्या है? वे नये व्यक्ति को पानी मे फेक देते है। और कुछ भी नही करते। लेकिन पानी मे गिरकर कोई भी हाथ-पैर फेकेगा ही, अपने को बचाने के लिए फेकेगा। वही तैरने का पहला चरण है। फिर धीरे-धीरे कुशलता आ जाती है। फिर वह देखता है, कैसे ढग से फेकना, कैसे कम शक्ति लगे और फेकना। फिर धीरे-धीरे तो बिना फेके भी तैरने लगता है।

ऐसा ही आत्मिक जगत भी है। और इसमे ध्यान रखना, ऐसा एक बार होगा, ऐसा नही, बहुत बार होगा। क्योकि फिर तुम

एक ऊंचाई पर अपना घर बना लोगे, फिर मै उसे उखाड दूगा, ताकि नयी ऊंचाई पर तुम उठो।

गुरु का काम ही इतना है कि वह उस समय तक तुम्हे धक्का दिये चला जाये, जब तक तुम वहा न पहुच जाओ, जिसके आगे फिर कोई ऊंचाई नहीं। परमात्मा तक जब तक तुम्हे न पहुचा दे, तब तक तुम्हारे पीछे लगा ही रहे, तब तक तुम्हे परेशान करता ही रहे, तब तक जैसे भी हो—कभी तुम्हे सुख देकर, कभी तुम्हे दुख देकर, कभी तुम्हारी पीठ थपथपाकर और कभी तुम्हारी लानत-मनामत करके, कभी तुम पर क्रोध जाहिर करके और कभी तुम पर प्रेम जाहिर करके—लेकिन तुम्हे धकाता ही रहे। क्योकि तुम्हारा मन तो कहेगा, बस यही रुक जाये। तुम तो हर जगह रुक जाने को तत्पर हो, क्योकि रुक जाने मे विश्राम है। चलने मे श्रम है।

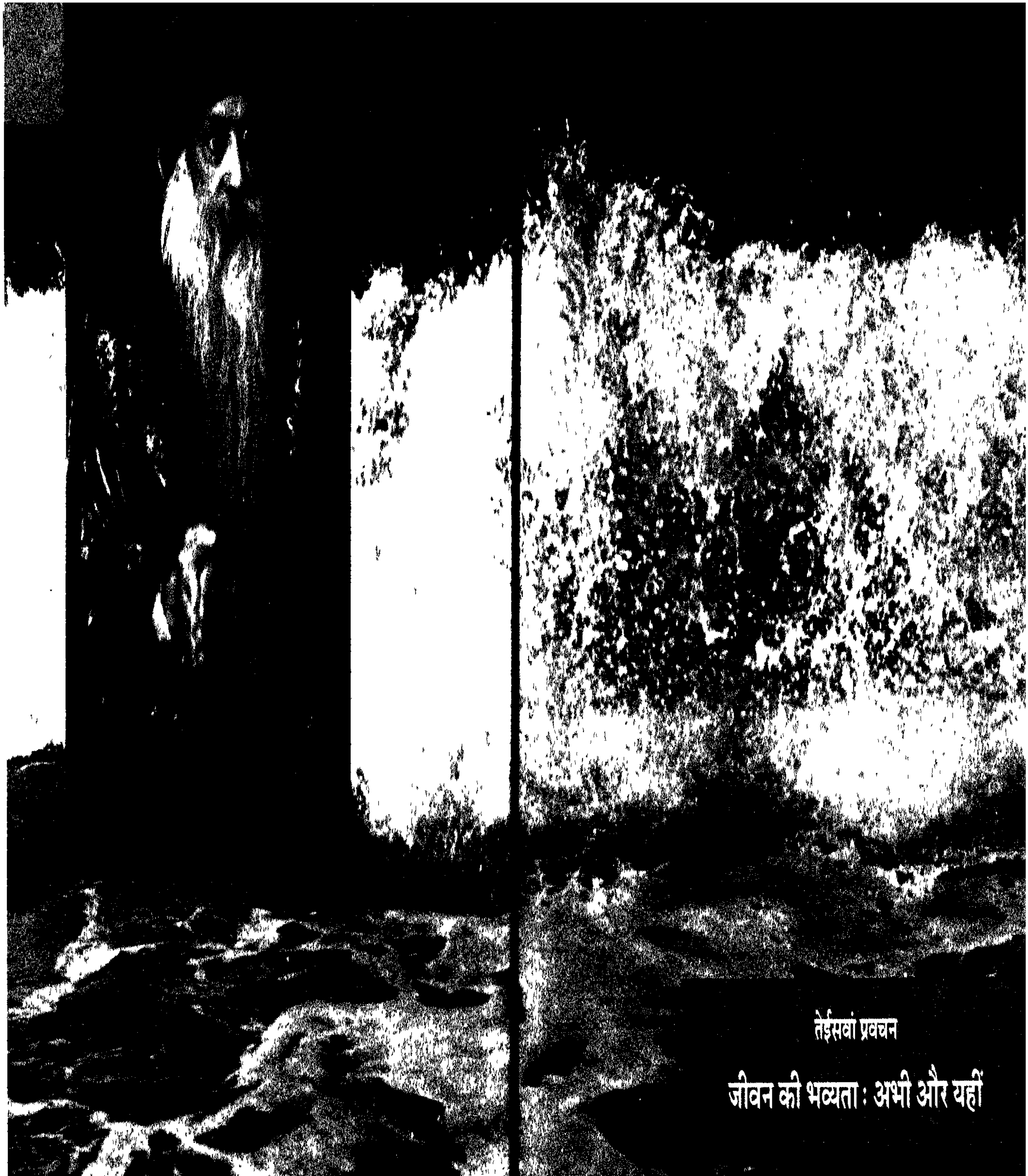
लेकिन मै तुम्हे उस क्षण तक चलाता रहूगा, जब तक कि परम विश्राम न आ जाये। परम विश्राम यानी परमात्मा। परम विश्राम यानी मोक्ष। जिससे फिर पीछे गिरना नही होता और जिसके पार फिर कुछ और शेष नही है—ऐसे परम सत्य को पाने के पहले बहुत बार तुम मुझसे नाराज भी होने लगोगे। क्योकि तुम सस्ता चाहते हो। क्योकि तुम सदा चाहते हो कि मुफ्त मे मिल जाये। तुम सदा चाहते हो कि तुम्हारे बिना कुछ किये मिल जाये। तो तुम भाग ही न जाओ, इसलिए मै कभी-कभी ऐसा भी कहता हू, बिना किये कुछ मिल जायेगा। तो तुम रुके भी रहते हो कि शायद अब मिलता हो। लेकिन बिना किये कुछ भी नही मिलता। तो तुम्हे रोकने के लिए कह देता हू, बिना किये भी मिल जायेगा, प्रभु के प्रसाद से भी मिल जायेगा। तो तुम रुके रहते हो आशा मे। और यहा तुम्हारे साथ मै चेष्टा मे लगा रहता हू कि तुम कुछ करने लगो। क्योकि उसका प्रसाद भी उन्ही को मिलता है जो कुछ करते है।

तो घबड़ाना मत, बेचैन मत होना। यह शुभ है कि अयोग्यता दिखाई पड़ी। यह शुभ है कि वह सस्ती प्रसन्नता जो सन्यास लेने से ही आ गयी थी, खो गयी। अब असली सन्यासी बनना।

थोड़ा सोचो। मात्र वस्त्र बदलने से प्रसन्न हो गये थे, जिस दिन आत्मा बदलेगी तो क्या होगा।

आज इतना ही।





तेईसवां प्रवचन

जीवन की भव्यता : अभी और यहीं

सूत्र

सदहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्म भोगनिमित्त, ण दु सो कम्मक्खयणिमित्त।।५५।।

सुहपरिणामो पुण्ण, असुहो पाव ति भणियमन्नेसु।
परिणामो णन्नगदो, दुक्खक्खयकारण समये।।५६।।

पुण्ण पि जो समिच्छदि, ससारो तेण ईहिदो होदि।
पुण्ण सुगईहेदु, पुण्णखएणेव णिव्वाणं।।५७।।

कम्ममसुह कुसील, सुहकम्म चावि जाण व सुसील
कह त होदि सुसीलं, जं ससार पवेसेदि।।५८।।

सोवण्णिय पि णियल, बधदि काल्गायस पि जह पुरिस।
बधदि एव जीव, सुहमसुह वा कद कम्मं।।५९।।

तम्हा दु कुसीलेहि य, राय मा कुणह मा व ससग्ग।
साहीणो हि विणासो, कुसीलससग्गरायेण।।६०।।

वरं वयतवेहि सग्गो, मा दुक्ख होउ णिरई इयरेहि।
छायातवट्ठियाणं, पडिवालताण गुरुभेयं।।६१।।

पहला सूत्र 'अभव्य जीव यद्यपि धर्म मे श्रद्धा रखता है, उसकी प्रतीति करता है, उसमे रुचि रखता है, उसका पालन भी करता है, किंतु यह सब वह धर्म को भोग का निमित्त समझकर करता है, कर्मक्षय का कारण समझकर नही।'

ससार की आदत आसानी से नही जाती। जन्मो-जन्मो तक जिसे पाला है, सवारा है, वह आदत ससार को छोडने भी चलो तो भी साथ चलती है।

इसे समझे, क्योकि इसे बिना समझे कोई कभी धार्मिक न हो पायेगा। बहुत है जिन्होने ससार छोड दिया। बाहर दिखायी पड़नेवाला ससार छोड देना कठिन भी नही। आश्चर्य तो यही है कि बाहर दिखायी पडनेवाले ससार को लोग कैसे पकड़े रहते है। इतना व्यर्थ है, इतना असार है कि किसी भी थोड़ी-सी प्रज्ञावान चेतना को छोड़ने का खयाल आ जाये तो कुछ आश्चर्यचकित होने की बात नही। कुछ भी मिलता हुआ दिखायी नही पड़ता, तो छोडने का मन आ जाता है।

लेकिन बाहर के ससार से भी ज्यादा भीतर एक ससार है। वह ससार है कि अगर हम छोड़ते भी है कुछ, तो कुछ पाने के लिए ही छोड़ते है। वह पाने की वृत्ति नही जाती। तो लोग ससार छोड़ देते है तो सोचते है, मोक्ष पाने के लिए, धन छोड़ देते है तो सोचते है, पुण्य पाने के लिए। लेकिन पाने की वासना भीतर खड़ी रहती है।

महावीर इन सूत्रो मे यही बात साफ करना चाहते है कि असली ससार 'पाने की वासना' मे है। पाने की वासना के कारण बाहर का ससार है। बाहर के ससार के कारण पाने की वासना नही है।

तो तुम ससार को छोड भी दो और तुम्हारे भीतर की वासना की आग सुलगती रह जाये तो कुछ अतर न हुआ।

महावीर कहते है ऐसे धार्मिक व्यक्ति को—'अभव्य जीव।' वह सिर्फ भव्य दिखायी पडता है, लेकिन उसकी भव्यता बाहर-बाहर है, भीतर उसके राग खडा है, भीतर लोभ खड़ा है।

तुमने ऐसा धार्मिक व्यक्ति देखा, जिसके भीतर लोभ न हो? तुमने ऐसा धार्मिक व्यक्ति देखा जो धार्मिक हो, धार्मिक होने के आनद के कारण, जो यह नही कहता हो कि धार्मिक श्रम, पुरुषार्थ से मै कुछ भविष्य मे कमाने जा रहा हू? तुमने ऐसा धार्मिक व्यक्ति देखा जिसके मन मे भविष्य की कोई आकाक्षा न हो, फलाकाक्षा न हो?

तो तुम अगर अपने धार्मिक गुरुओ से, साधुओ से जाकर पूछो कि आप ये पुण्य, तपश्चर्या, साधना, ध्यान, सामायिक, उपवास, व्रत, नियम, इन सबका पालन कर रहे है—किसलिए? और अगर वे बता सके कि किसलिए तो समझना कि वे अभव्य जीव है। अभी उनमे भव्यता का जन्म नही हुआ। और वे सभी बता सकेगे कि पुण्य के लिए, स्वर्ग के लिए, भविष्य मे उच्च योनिया मिले, देवलोक मिले—इसलिए या उनमे जो बहुत ज्यादा तर्ककुशल है, वे कहेगे, मोक्ष के लिए, सबसे छुटकारा हो जाये, इसलिए।

लेकिन जो आदमी छूटना चाहता है, उसका छुटकारा हो नही सकता, क्योकि अभी कोई चाह बची—छूटने की चाह बची। तो सब चाहे निमज्जित हो जाए छूटने की चाह मे, तो छूटने की

चाह एक मजबूत रस्से की तरह हो जायेगी। छोटी-छोटी चाहे तो थोड़े-थोड़े धागे है, उन सबको एक ही रस्से मे इकट्ठा कर लिया—छूटने की चाह, मोक्ष की आकाक्षा। तो जैसा छोटी-छोटी वासनाओ ने बाधा था, उससे भी ज्यादा यह मोक्ष की रस्सी बाध लेगी।

महावीर कहते है, अगर तुमने कुछ पाने के लिए छोड़ा तो छोडा ही नहीं। धोखा किसको दिया ? अपने को दे लिया।

उपनिषदो मे एक बड़ा अदभुत सूत्र है कृपणा फलहेतव। जो व्यक्ति फल की आकाक्षा से कुछ काम करता है वह कृपण है, वह कजूस है। उसे जीवन की कला ही न आयी। उसने जीवन का सत्य ही न जाना।

महावीर का यह सूत्र भी यही कह रहा है कि अगर तुमने कुछ पाने की आकाक्षा से—भला वह आकाक्षा मोक्ष की ही हो—धर्म किया तो धर्म किया ही नही, धर्म का धोखा किया। अभव्य जीव यद्यपि धर्म मे श्रद्धा रखता है लेकिन उसकी श्रद्धा मे 'यद्यपि' जुड़ा हुआ है। उसकी प्रतीति भी करता है। उसमे रुचि भी रखता है, उसका यथाशक्य पालन भी करता है—फिर भी वह धर्म को निमित्त समझकर करता है, साध्य समझकर नही। धर्म का भी साधन बनाता है। धर्म से भी कुछ पाना है, इसलिए करता है। अगर धर्म के बिना जो वह पाना चाहता है मिल जाये तो वह धर्म को कूड़े-कर्कट मे फेक देगा। अगर तुम्हारे साधु-सन्यासियो और मुनि महाराजो को पता चल जाये कि स्वर्ग पहुचने का कोई शार्टकट भी है तो वे सब अपने पीछी-कमडल छोडकर भाग खड़े होगे, क्योकि उसी के लिए तो वे इस लबे रास्ते से जा रहे थे। अगर कोई पास का रास्ता मिल गया है, कोई सुगम रास्ता मिल गया है, तो कौन कष्ट उठायेगा।

पास का रास्ता मिल जाने पर भी जो धर्म के रास्ते पर खडा रहे, उसे ही जानना कि वह धार्मिक है। क्यो ? क्योकि उसके लिए धर्म साध्य है, साधन नहीं।

ये दो शब्द बड़े विचारणीय है। धर्म साधन नही, साध्य है। तो जल्दी क्या है ? तो जाना कहा है ?

वास्तविक धार्मिक व्यक्ति का प्रत्येक पल मोक्ष है। वह ध्यान करता है क्योकि ध्यान मे परम आनद है। इसलिए नहीं कि आनद मिलेगा। धार्मिक व्यक्ति के लिए 'इसलिए' जैसी कोई बात ही नहीं। वह सामायिक मे बैठता है। क्योकि सामायिक आनद है, सामायिक परम शाति है।

भेद समझ लेना, क्योकि दोनो की बाते एक-सी लगती है। धार्मिक कहता है, शाति के लिए सामायिक मे बैठता हू। तो महावीर कहेगे अभव्य है, अभी कृपण है, अभी वासना लगी है। अभी सामायिक को भी यह साधन बना रहा है। तो कभी इसने धन को साधन बनाया था—सोचा था, धन से सुख मिलेगा, कभी इसने पद को साधन बनाया था—सोचा था पद-प्रतिष्ठा से सुख मिलेगा, कभी यह सेनापति हो गया था, दुर्धर्ष युद्ध मे उतरा था, हजारो की गर्दने काट दी थी—सोचा था इससे सुख मिलेगा। लेकिन एक बात अभी भी कायम है कि सुख को पाना होगा किसी साधन से। कभी धन साधन, कभी पद साधन, कभी तलवार साधन, अब व्रत, उपवास, नियम—साधन, योग, ध्यान, सामायिक—साधन। लेकिन मूल गणित वही है। जो भी कर रहा है, अधार्मिक व्यक्ति उसमे रस नही लेता। उसका रस हमेशा फल मे है। गीता मे कृष्ण जो कहते है फलाकाक्षा। वह देख रहा है आगे यह मिलेगा, यह मिलेगा, यह मिलेगा—इसलिए कर रहा है। अगर पता चल जाये नही मिलेगा तो उसका करना अभी रुक जाये। तो वह पूछेगा, फिर कैसे मिलेगा ?

महावीर कहते है, जिस व्यक्ति को धर्म मे साध्य दिखायी पड़ने लगा वही व्यक्ति भव्य है। तो तुम मदिर जाओ, मस्जिद जाओ, कुरान पढ़ो, गीता पढो, पूजा करो, प्रार्थना करो—एक बात भीतर खोजते रहना ये तुम साधन की तरह कर रहे हो, निमित्त की तरह ? तो महावीर की दृष्टि मे अभव्य हो। अभी तुम्हारे भीतर उस पवित्र उन्मेष का जन्म नही हुआ जो तुम्हे दिव्य बना दे, भव्य बना दे।

'भव्य' शब्द महावीर का अपना है। दिव्य शब्द का वे उपयोग नही कर सकते, क्योकि दिव्य से तो देवता और अतत परमात्मा का खयाल आ जाता है। इसलिए महावीर की भाषा मे भव्य का वही अर्थ है जो समस्त अन्य धर्मों की भाषा मे दिव्य का है। भव्य का अर्थ है जिसका जीवन प्रतिपल साध्य हुआ। भव्य का अर्थ है जो कृपण न रहा। कृपणा फलहेतव। अब जिसके लिए फल का कोई सवाल ही नही है। अब जिसकी सारी कृपणता मिटी, कजूसी मिटी। अब जो जिदगी मे चाह के ढग से नहीं जीता—अचाह का मजा ले रहा है, अचाह मे डूबता है, रस

लेता है।

एक क्षण को भी तुम्हे पता चल जाये कि ऐसा भी जीने का ढग है जिसमे भविष्य की कोई जरूरत नही, वही भव्यता उतरती है।

'भविष्य' शब्द भी सोचने जैसा है, क्योंकि उसकी भी मूल धातु भव्य की ही है।

जिससे भव्य बना है, उसी से भविष्य बना है। दोनो शब्दो का मूलस्रोत एक ही है। यह बडे सोचने जैसी बात है। हम भविष्य को भव्य क्यो कहते है? अतीत तो किसी तरह काट लिया, वर्तमान भी किसी तरह गुजार रहे है, सारी आशा भविष्य मे लगी है। तो हम भविष्य को तो भव्य बनाते है। उटोपिया। जो नही हुआ है वह भविष्य मे होगा। इसलिए भव्य भविष्य को हम मानते है कि भविष्य भव्य है। हमारी सारी आकाक्षाओ का सार-निचोड भविष्य मे है। जो होना था और नही हो पाया, वह भविष्य मे होगा, कल होगा। जो हमे बनना था और नही बन पाये वह हम कल बनेगे। जो वर्षा हमारे जीवन मे घटनी थी और नही घट पायी, सूखे रह गये, वह कल होगी।

इसलिए सभी लोगो के मन मे भविष्य तो भव्य होता है। दीन से दीन, दुखी से दुखी, पीड़ित से पीडित व्यक्ति के मन मे भी भविष्य भव्य होता है—इसीलिए उसे भविष्य कहते है।

लेकिन महावीर कहते है, भव्य वह है जिसका कोई भविष्य नही, जो 'अभी और यही' बिना किसी चाह के जीने लगे।

जब तक भविष्य है तब तक तुम अभव्य हो। भविष्य है ही तरकीब झुठलाने की, जीवन मे प्रवचना की। ऐसे कल्पनाओ का जाल बुन-बुनकर तुम अपने को समझा लेते हो, सात्वना दे लेते हो। कभी धन के माध्यम से दी थी, अब धर्म के माध्यम से देते हो। महावीर कहते है, बहुत फर्क नही है। चाहे कितनी ही तुम श्रद्धा दिखाओ, कितनी ही प्रतीति जतलाओ, कितनी ही रुचि प्रगट करो, पालन भी कर लो—लेकिन तुम्हारे पालन करने मे भी अभव्यता रहेगी, क्योंकि तुम्हारी नजर भविष्य पर लगी रहेगी। तुम करोगे, लेकिन व्यवसायी की तरह करोगे। धर्म तुम्हारा कृत्य ही रहेगा, तुम्हारे जीवन की लीला न हो पायेगी। और जब धर्म जीवन की लीला बन जाये ।

अगर तुम्हे कभी कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाये जो कहे कि ध्यान मे आनद है, इसलिए ध्यान कर रहा हू, ध्यान से आनद मिलेगा, इसलिए नहीं—ध्यान ही आनद है। दान कर रहा हू, इसलिए नही कि दान से स्वर्ग मिलेगा—दान मे स्वर्ग है। देता हू, क्योंकि देने मे ही फूल खिल रहे है। फूल कल नही है, भविष्य मे नही हैं—अभी खिल रहे है, यही खिल रहे है। यहा देने का खयाल नही उठा कि वहा फूल खिलने लगे। यहा शात बैठने का खयाल नही उठा कि शाति होने लगी। यहा आनदित होने की उमग उठी कि आनद आ गया।

युगपत साधन और साध्य मिल जाते है—एक ही क्षण मे, एक ही पल मे।

गुरजिएफ के एक शिष्य बैनेट ने एक अनूठा सस्मरण लिखा है। बैनेट गुरजिएफ का सबसे लबे समय तक शिष्य रहा। पश्चिम से जो व्यक्ति सबसे पहले गुरजिएफ के पास पहुचा वह बैनेट था। और अत तक जो गुरजिएफ के साथ लगा रहा वह भी बैनेट था। कोई पैतालीस साल का सबध था। बैनेट ने लिखा है कि गुरजिएफ के साथ काम करते हुए, एक दिन गुरजिएफ ने उसे कहा था वह गड्ढे खोदता रहे, तो दिनभर गड्ढे खोदता रहा। वह इतना थक गया था । वह गुरजिएफ की एक प्रक्रिया थी थका देना, इतना थका देना कि हाथ हिलाने की भी स्थिति न रह जाये। क्योंकि गुरजिएफ कहता था कि जब तुम इतने थक जाते हो कि हाथ हिलाने की भी स्थिति नही रह जाती तभी तुम्हारा परम शक्ति से सबध जुड़ता है। जब तक तुममे शक्ति होती है तब तक परम शक्ति तुममे प्रवाहित नही होती। तो उसे थका दिया था। वह दिनभर से थक गया था। तीन रात से सोया भी न था। वह गिरा-गिरा हो रहा था। खोद रहा था, लेकिन अब उसे समझ मे नही आ रहा था कि अगली बार कुदाली उठा सकेगा कि नही। कुदाली उठाये-उठाये झपकी खा रहा था। तब गुरजिएफ आया और उसने कहा कि यह क्या कर रहे हो? इतने जल्दी नही, अभी तो जगल जाना है और कुछ लकडिया काटकर लानी है।

तो गुरजिएफ की शर्तो मे एक शर्त थी कि वह जो कहे, करना ही होगा। क्योंकि उसी माध्यम से वह सोयी हुई चेतना को जगा सकता है। तो बैनेट की बिलकुल इच्छा नही थी। जाने का जगल तो सवाल ही नही था। अपने कमरे तक कैसे लौटेगा—यह चिता थी। कही बीच मे गिरकर सो तो नही जायेगा। लेकिन जब गुरजिएफ ने कहा तो गया। जगल गया, लकड़िया काटीं। जब वह लकडिया काट रहा था, तब अचानक घटना घटी। अचानक उसे लगा सारी सुस्ती खो गयी और एक

बड़ी ऊर्जा का जैसे बाध टूट गया। यहा बिलकुल खाली हो गया था शक्ति से, जगह, स्थान निर्मित हो गया था। भीतर जहा ऊर्जा भरी है, वहा से टूट पड़ी। बही गड्ढे की तरफ। गड्ढा बन गया था थकान के कारण। ऊर्जा बही और सारा शरीर, रोआ-रोआ ऐसी शक्ति से भर गया जैसा कभी भी न हुआ था। उसने कभी ऐसी शक्ति जानी ही न थी। उस क्षण उसे लगा, इस समय मै जो चाहू वह हो सकता है। इतनी शक्ति थी। तो उसने सोचा, क्या चाहू? जिदगीभर सोचा था आनदित तो उसने कहा, मै आनदित होना चाहता हू। ऐसा भाव करना था कि वह एकदम आनदित हो गया। उसे भरोसा ही न आया कि आदमी के बस मे है क्या आनदित होना। चाहते तो सभी है—होता कौन है। उसने सोचा कि आनदित हो जाऊ यह तो सिर्फ खेल कर रहा था शक्ति को देखकर। इतनी शक्ति नाच रही थी चारो तरफ, रोआ-रोआ ऐसा भरा-पूरा था कि उसको लगा इस क्षण मे तो अगर मै जो भी चाहूगा हो जायेगा तो क्या चाहू। 'आनदित।' ऐसा सोचना था, यह शब्द का उठना था—आनद—कि उसकी पुलक-पुलक नाच उठी। उसे बस भरोसा न आया। उसने कहा कोई धोखा तो नहीं खा रहा हू, कोई सपना तो नही देख रहा हू, कोई मजाक तो नही की जा रही है मेरे साथ। तो उसने सोचा कि उलटा करके देख लू दुखी हो जाऊ। ऐसा सोचना था कि 'दुखी हो जाऊ' कि एकदम गिर पड़ा। चारो तरफ जैसे अधेरा छा गया। जैसे अचानक सूरज डूब गया। जैसे सब तरफ दुख ही दुख और दुख की तरगे उठने लगी। वह घबराया कि यह तो मै नर्क मे गिरने लगा। यह हो क्या रहा है। उसने कहा, मै शात हो जाऊ, वह तत्क्षण शात हो गया।

उसने सब मनोभाव उठाकर देखे। फिर तो एक-एक पर प्रयोग करके देखा—क्रोध, घृणा, प्रेम—और जो भाव उसने उठाया वही भाव परिपूर्ण रूप से प्रगट हुआ।

वह भागा हुआ आया। उसने गुरजिएफ को कहा कि चकित हो गया हू। उसने कहा, अब चकित होने की जरूरत नही, चुपचाप सो जा। अब जो हुआ है इसे चुपचाप सभालकर रख और याद रखना, कभी भूलना मत कि अगर आदमी ठीक स्थिति मे हो तो जो चाहता है, वही हो जाता है। गैर-ठीक स्थिति मे तुम चाहते रहो, चाहते रहो, कुछ भी नही होता। ठीक स्थिति मे जब भीतर के तार मिलते है तो साधन और साध्य की दूरी खो जाती है। इसको ही हिदुओ ने कल्पवृक्ष की अवस्था कहा है।

कल्पवृक्ष स्वर्ग मे लगा हुआ कोई वृक्ष नही है। कल्पवृक्ष तुम्हारे भीतर की एक चैतन्य अवस्था है।

बैनेट के उल्लेख से तुम समझ सकते हो कल्पवृक्ष का क्या अर्थ होगा। कल्पवृक्ष का अर्थ होगा कि जहा साधन और साध्य का फासला न रहा, जहा दोनो के बीच कोई दूरी न रही। यहा साधन हुआ नहीं कि साध्य आ ही गया। एक साथ, युगपत। क्षणभर का भी, क्षण के खड का भी हिस्सा नही है—यही कल्पवृक्ष की धारणा है।

कल्पवृक्ष की धारणा है कि जिस वृक्ष के नीचे तुम बैठे, इधर तुमने मागा उधर मिला। ऐसे कोई वृक्ष कही नही है, लेकिन ऐसे वृक्ष तुम बन सकते हो। और उस बनने की दिशा मे जो पहला कदम है वह यह कि साधन और साध्य की दूरी कम करो। क्योकि जहा साधन और साध्य मिलते है, वही वह घटना घटती है कल्पवृक्ष की।

और तुमने खूब दूरी बना रखी है। तुम तो सदा दूरी निर्मित करते चले जाते हो। तुम कहते हो, कल मिले। तुम्हे यह भरोसा ही नही आता कि आज मिल सकता है, अभी मिल सकता है, इसी क्षण मिल सकता है।

तुमने आत्मबल खो दिया है। तुमने जन्मो-जन्मो तक वासना के चक्कर मे पडकर वासना का चक्कर ही यही है साध्य और साधन की दूरी यानी वासना, साध्य और साधन का मिलन यानी आत्मा। तो तुमने इतनी दूरी बना ली है कि इस जन्म मे भी तुम्हे भरोसा नही आता कि मिलेगा, तो तुम कहते हो, अगले जन्म मे। अगले जन्म पर भी भरोसा नही आता, क्योकि तुम जानते हो अपने आपको भलीभाति कि कितने जन्मो से तो भटक रहे हो कुछ मिलता तो नही। तो तुम कहते हो, स्वर्ग मे, परलोक मे, इस लोक मे नहीं तो परलोक मे। तुम दूर हटाये जा रहे हो। तुम साध्य और साधन के बीच समय की बड़ी दूरी बनाये जा रहे हो। यह समय को हटा दो और गिरा दो।

कृष्ण कहते है, फलाकाक्षा छोड दो। उपनिषद कहते है, कजूस मत बनो। महावीर कहते है, भव्य हो जाओ। भविष्य के पीछे क्यो पड़े हो? तुम भव्य हो सकते हो। तुमने भविष्य को भव्यता दे रखी है।

भव्य का अर्थ हुआ ऐसी घड़ी जहा तुम्हे पाने को कुछ भी

नही, जहा सब मिला हुआ है। ऐसी परितृप्ति, ऐसा परितोष।

तो फिर भी तुम्हारे जीवन से धर्म होता है, लेकिन अब धर्म खेल की तरह है। जैसे कोई सगीतज्ञ अपनी वीणा पर धुन उठाता है—नही कि कुछ पाना है, बल्कि इसलिए कि इतना मिला है, इसे गुनगुनाए, इसे गाए, इसका स्वाद लेता है, कि कोई नर्तक नाचता है—नही कि कोई देखे, कोई देख ले, यह उसका सौभाग्य है, न देखे उसका दुर्भाग्य है।

वानगाग के चित्रो को देखने एक आदमी आया। उसे कुछ समझ मे न आया कि इन चित्रो मे क्या है। उसने इधर-उधर देखा और फिर वह जाने लगा तो उसने वानगाग को कहा कि मेरी कुछ समझ मे नहीं आता। मै तो यह भी तय नही कर सकता कि चित्र सीधे लटके है कि उलटे लटके है। इनमे है क्या ?

वानगाग की आख मे, कहते है आसू आ गये। उस आदमी ने कहा कि क्या मैने आपको दुख पहुचाया ? वानगाग ने कहा, नही। लेकिन मै परमात्मा से प्रार्थना करता हू काश, तुम्हारे पास मेरे जैसी देखनेवाली आखे होती। तुम बिलकुल अधे हो, इसलिए आख मे आसू आ गये, और कोई कारण नही।

जो व्यक्ति धार्मिक है, उसके पास एक आख है, जो अधार्मिक के पास नहीं है। उसके पास एक तीसरा नेत्र है। उसके पास दिव्य चक्षु है। और वह दिव्य चक्षु प्रत्येक चीज को भव्य कर देता है, सुदर कर देता है। वह जहा भी आख डालता है, वहीं मिट्टी सोना हो जाती है। वह जहा हाथ रखता है, वही मिट्टी सोने मे बदल जाती है। वह जिस तरफ उठता है, बैठता है, उसी तरफ कल्पवृक्ष निर्मित होने लगता है।

यह तुम्हारे बस मे है कि तुम भव्य हो जाओ। लेकिन भव्य होने का एक ही उपाय है कि भविष्य गिर जाए। भविष्य से ले लो वापस, तुमने जो भव्यता उसे दी है। और उस भविष्य से छीनी गयी भव्यता को अपने हृदय मे आरोपित करो।

'अभव्य जीव धर्म को भोग का निमित्त समझकर करता है, कर्मक्षय का कारण समझकर नही।'

वह तो धर्म से भी कर्म का जाल ही फैलाता है, कर्म का क्षय नहीं होता। वह तो धर्म के नाम पर ही इस ससार की ही वृत्तियो को फिर-फिर आरोपित कर लेता है।

हविश को आ गया है गुल खिलाना
जरा ए जिदगी। दामन बचाना।

वह जो वासना है, उसको भी बड़े फूल खिलाना आता है। तुम अगर भागे ससार से तो वह धर्म के फूल खिलाने लगती है। तुम अगर भागे विचार से तो वह ध्यान के फूल खिलाने लगती है।

हविश को आ गया है गुल खिलाना
जरा ए जिदगी। दामन बचाना।

जरा सावधान रहना। तुम्हारी तृष्णा बड़े-बड़े रूप रख लेती है। तृष्णा बडी बहुरूपिया है। तुम जैसा रूप चाहते हो वह वैसा ही रखकर नाचने लगती है। वह कहती है, चलो यही सही। लेकिन जब तक तुम उसको ठीक से पहचान न लोगे, उसके सब रूपो मे, जब तुम एक बुनियादी बात न पहचान लोगे कि तृष्णा साधन और साध्य की दूरी है फिर जहा भी साधन और साध्य की दूरी हो, समझना कि तृष्णा ने रूप धरा। सावधान हो जाना।

जरा ए जिदगी। दामन बचाना।

तब तुम सावधान हो जाना कि फिर आया भविष्य, कही से तृष्णा ने द्वार खटखटाया। फिर तुमने कहा, कल—तृष्णा आ गयी। फिर तुमने कहा, ऐसा हो जाये, ऐसा होता, और उसका तुम आयोजन करने लगे—बस तृष्णा आ गयी। जिस घडी तुम बैठे हो या चल रहे हो या उठे हो, खड़े हो, और उस घडी मे कोई तृष्णा नही है—तुम बैठे हो तो बस बैठे हो आनदित, खड़े हो तो खड़े हो आनदित, चल रहे हो तो चल रहे आनदित—जीवन के ये छोटे-छोटे कर्म भव्य हो जाते है।

झेन फकीर कहते है, जिसने साधारण मे असाधारण को खोज लिया, उसी ने खोजा। जो असाधारण के चक्कर मे लगा है, वह तो साधारण ही रह जायेगा। क्योकि असाधारण का चक्कर तृष्णा का चक्कर है।

एक झेन फकीर से किसी ने पूछा कि जब तुम ज्ञान को उपलब्ध नही हुए थे, तब तुम क्या करते थे ? उसने कहा, लकडी काटता था, कुए से पानी भरकर लाता था। और उसने पूछा, अब जब कि तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गये हो, अब क्या करते हो ? उसने कहा, अब भी लकड़ी काटता हू, अब भी कुए से पानी भरकर लाता हू। तो उसने कहा, फिर फर्क क्या है ? फर्क बहुत बडा है। पहले भी कुए से पानी भरकर लाता था, लेकिन कुछ पाने की आकाक्षा थी उसके द्वारा, पहले भी लकडी काटता था, लेकिन वासना कही भविष्य मे थी।

अब भी लकड़ी काटता है, अब भी पानी भरकर लाता

है—करोगे भी क्या? जीवन तो इन्ही छोटी-छोटी चीजो से मिलकर बना है। लकड़ी भी काटोगे, पानी भी भरकर लाओगे, घर मे बुहारी लगाओगे, खाना बनाओगे, कपड़े धोओगे, स्नान करोगे, भोजन करोगे, सोओगे, उठोगे, बैठोगे, चलोगे—जीवन इन्हीं छोटे-छोटे अणुओ से बना है।

लेकिन फर्क एक आ जायेगा।

कृत्य भव्य हो जाता है जब उसमे कोई तृष्णा नही होती। जैसे ही तृष्णा से छूटा कि कृत्य पवित्र हुआ।

लेकिन हम तो ऐसे उलझ गये है तृष्णा मे कि कभी-कभी जहा उलझे है वहा से भाग भी खड़े होते है—तो और सब तो छोड़ जाते है लेकिन तृष्णा हमारे साथ चली जाती है।

ये न जाना था इस महफिल मे दिल रह जायेगा
हम ये समझे थे चले आयेगे दमभर देखकर।

लेकिन लगाव कुछ ऐसा बन जाता है कि दिल महफिल मे रह जाता है और महफिल दिल मे समा जाती है। फिर तुम भागते फिरते हो, लेकिन कुछ अतर नही पड़ता। तुम जहा जाते हो फिर वहा एक ससार खडा हो जाता है, क्योकि ससार का जो 'ब्लू-प्रिंट' है, उसका जो बुनियादी नक्शा है, वह तुम्हारी तृष्णा मे है।

'वह अभव्य जीव नही जानता कि पर-द्रव्य मे प्रवृत्त शुभ परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है। धर्म अनन्यगत अर्थात स्व-द्रव्य मे प्रवृत्त परिणाम है, जो यथासमय दुखो के क्षय का कारण होता है।'

'पर-द्रव्य मे प्रवृत्त शुभ परिणाम पुण्य है।' पुण्य की परिभाषा महावीर कर रहे है। दूसरे के साथ शुभ परिणाम का सबध पुण्य है। अन्य के साथ शुभ परिणाम का सबध पुण्य है।

तुमने किसी को दान दिया—एक सबध निर्मित हुआ। लेकिन पुण्य का सबध है—तुमने दिया। तुमने किसी से छीन लिया, चोरी की, तो फिर एक सबध बना—तुमने किसी से छीना। दोनो अलग-अलग है। किसी को दिया—छीनने से बिलकुल उलटा है। छीनना देने से बिलकुल उलटा है। देना पुण्य है, तो छीनना पाप है।

लेकिन दोनो हालत मे एक बात है समान—दूसरा मौजूद है। दिया तो दूसरे को, छीना तो दूसरे से। दूसरा तो है ही।

तो महावीर कहते है, पर-द्रव्य मे प्रवृत्त शुभ परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है। फिर धर्म क्या है? धर्म पाप और पुण्य से मुक्ति है—न दिया और न छीना। धर्म अनन्यगत, दूसरे से मुक्त हो जाना है।

'अर्थात स्व-द्रव्य मे प्रवृत्त परिणाम है, जो यथासमय दुखो के क्षय का कारण होता है।'

ये महावीर के मूल आधार-सूत्र है, 'स्व-द्रव्य मे प्रवृत्त परिणाम।' ये उनके पारिभाषिक शब्द है।

जो अपने मे ही रमण कर रहा है

तुम बैठे हो, कुछ भी नही कर रहे हो, सिर्फ बैठे हो अपने मे ही रमण हो रहा है। तुम अपने मे ही डूबे हो, लीन हो, तल्लीन हो। मन कही जा ही नही रहा है। न भविष्य मे जा रहा है, न दूसरे मे जा रहा है। क्योकि दूसरे मे भी जाना भविष्य मे जाना है। तुम दूसरे का कोई चितन ही नही कर रहे—सारा चितन रुक गया है। तुम विचार ही नही कर रहे हो, क्योकि सभी विचार दूसरे के है। तुम सिर्फ हो।

यह स्व-द्रव्य मे होना—तुम मात्र हो, कुछ भी नही हो रहा है। तुम कोई सबध निर्मित नही कर रहे। तुम कोई सेतु नही बना रहे। दूसरे के पास जाने की कोई आकाक्षा नही। दूसरे से दूर जाने की भी कोई आकाक्षा नही। दूसरा तुम्हारी कल्पना के लोक मे है ही नही। बस अकेले तुम अपने से भरे हो। अपने से भरपूर, लबालब, कही जाते हुए नही। तरग भी नही, लहर भी नही। क्योकि लहर भी कही जाती है। तुम बस यहीं हो। ऐसी घडी को महावीर कहते है धर्म।

लहर उठी—और अगर लहर दूसरे के हित मे हुई तो पुण्य, अहित मे हुई तो पाप। लहर ही न उठी, तुम स्व-द्रव्य मे लीन बैठे रहे—तो धर्म। तो धर्म पुण्य और पाप के पार है।

जो पुण्य और पाप के पार है उसका भविष्य नही हो सकता। तुम अपने मे तो बस अभी और यहीं हो सकते हो—यही वर्तमान के क्षण मे। तुम अपनी आत्म-सत्ता का अनुभव कर सकते हो, क्योकि सत्ता उपलब्ध ही है। उसके लिए कल तक रुकने की जरूरत नही, यह कहने की जरूरत नहीं कि कल अपने मे प्रवेश करूगा। हा, दूसरे मे प्रवेश करना हो तो कल तक रुकना पड़ेगा, दूसरे को राजी करना होगा, समझाना-बुझाना पड़ेगा। लेकिन अपने मे प्रवेश करना हो तो इसके लिए तो कल तक छोड़ने की जरूरत नही। इसके लिए तो कोई भी साधन जरूरी

नही है। क्योकि वहा तो तुम हो ही, सिर्फ थोड़ा विस्मरण हुआ है। स्मरण आते ही तुम अचानक पाते हो कि तुम सदा अपने घर मे थे। यह अपने घर मे होना धर्म है।

पाप तो बाधता ही है, पुण्य भी बाध लेता है। इसलिए महावीर कहते है, जिसने पुण्य को धर्म समझा, उसने अभी धर्म को नही समझा। उसने अपनी पाप की वृत्ति को ही सजा लिया, सुदर बना लिया, लेकिन पाप को जाना नहीं कि पाप क्या था। पाप यही था कि अपने से बाहर चले गये थे। दूसरे की हत्या करने गये थे कि दूसरे को बचाने गये थे, दोनो बाते बराबर है। अपने से बाहर चले गये थे। वहीं मौलिक पाप हो गया।

सितम है ऐ रोशनी सितम है कि वह भी अब धूप की है जद मे
जरा-सा साया जो रह गया था घने दरख्तो की तीरगी मे।

तुम बैठे हो छिपे, दरख्तो के नीचे, थोडी-सी छाया है, भरी दोपहरी मे—लेकिन धीरे-धीरे धूप वहा भी पहुच जाती है। धीरे-धीरे धूप उसे भी छीन लेती है।

सितम है ऐ रोशनी। सितम है कि वह भी है अब धूप की जद मे—वह भी आ गया अब धूप के घेरे मे—जरा-सा साया जो रह गया था घने दरख्तो की तीरगी मे।

तो पहले आदमी पाप से बचता है और पुण्य की छाया मे बैठना चाहता है। लेकिन ज्यादा देर नही लगती कि पता चलता है पुण्य भी पाप का ही विस्तार है। ज्यादा देर नहीं लगती कि पता चलता है कि पुण्य भी सजायी हुई बेडी है, जजीर है। जल्दी ही पता चलता है कि यह भी डूब गया पाप मे।

जिस दिन पुण्य भी पाप जैसा दिखायी पड़ने लगता है, उस दिन व्यक्ति धर्म को उपलब्ध होता है।

महावीर की धर्म की परिभाषा बड़ी पराकाष्ठा की है, आत्यतिक है, उससे ज्यादा शुद्ध परिभाषा खोजनी मुश्किल है।

'धर्म है अनन्यगत अर्थात स्व-द्रव्य मे प्रवृत्त परिणाम और तब यथासमय दुखो के क्षय का कारण होता है।'

वह तुम्हे सोचना नही है कि दुख क्षय हो या दुख के कारणो का क्षय हो। वह तो यथासमय हो जाता है। यह यथासमय की बात भी समझ लेनी चाहिए।

महावीर कहते है, हमने पाप किये जन्मो-जन्मो, बीज बोए, वृक्ष लगाए। यथासमय फल पकेगे और गिर जायेगे। उसमे जल्दी नहीं की जा सकती। इतना ही किया जा सकता है कि दुबारा बीज मत बोना। जो लग गए है फल वह तो पकेगे और गिरेगे—पककर ही गिरेगे, परिपक्व होकर ही गिरेगे।

उन्हे चुपचाप स्वीकार कर लेना। बड़ा दुख होगा, उसे स्वीकार कर लेना। उसी को महावीर तप कहते है। जो दुख हमने बोये थे और अब पक गए है, अब उन दुखो को हमे भोगना होगा। उन्हे चुपचाप भोग लेना। उनके प्रति कोई भी प्रतिक्रिया न करना। यह भी मत कहना कि यह बुरा है। उन्हे हटाने की कोशिश मत करना। उनसे बचने और भागने की कोशिश मत करना। क्योकि तुम्हारी सब कोशिश विलब करेगी।

तुम तो अहोभाव से स्वीकार कर लेना कि अहो, जो दुख बोये थे उनके फल पक गये और दुख भोगने का क्षण आ गया। धन्यभागी हू, छुटकारा हुआ।

सद चाक हुआ गो जाम-ए-तन मजबूरी थी सीना ही पडा
मरने का वक्त मुकर्रर था, मरने के लिए जीना ही पड़ा।

महावीर कहते है, जीना ऐसे जैसे कि मरने का वक्त तो तय है। तो क्या करे, जीना पड़ेगा। और जीवन के लिए व्यवस्था ऐसे ही जुटा लेना जैसे कि अब जीना है, फटे वस्त्र है तो सी लेता है आदमी। सद चाक हुआ गो जाम-ए-तन मजबूरी थी सीना ही पडा—हजार-हजार बार कपडे फट गये, लेकिन मजबूरी थी, विवशता थी—सीना ही पडा। मरने का वक्त मुकर्रर था, मरने के लिए जीना ही पडा।

चुपचाप, हर हाल उस समय तक प्रतीक्षा करनी होगी जब पाप के फल पक जाए और गिर जाए—यथासमय। महावीर कहते है, वह अपने-आप। जैसे फलो के पकने का समय है, मौसम है, ऐसे सारे जीवन के कर्मो के पकने का समय है। वह अपने-आप पक जाते है, तुम्हे उनकी चिता नहीं करनी। तुम भविष्य की चिता छोड़ो। तुम वर्तमान मे, स्वय मे, स्व-परिणाम मे लीन होना सीखो। धीरे-धीरे बाकी सब अपने से आप यथासमय हो जायेगा। उसका तुम्हे हिसाब भी नहीं रखना। जब पाप का फल आये और दुख हो, पीड़ा हो, तो उसे स्वीकार कर लेना। वही तप है।

'जो पुण्य की इच्छा करता है, वह भी ससार की ही इच्छा करता है। पुण्य सुगति का हेतु अवश्य है। किंतु निर्वाण तो पुण्य के क्षय से ही होता है।'

महावीर कहते है, शुभ है पुण्य की इच्छा करना, लेकिन है

ससार की ही इच्छा। इसलिए पुण्य की इच्छा पर ही मत रुक जाना। पुण्य की इच्छा करना ताकि पाप से छुटकारा हो सके। एक काटा लग जाए, दूसरे से निकाल लेते है—ऐसे ही पुण्य की इच्छा करना ताकि पाप निकल जाये। लेकिन जब एक काटा निकल जाये तो दूसरे को घाव मे मत रख लेना। दूसरा भी उतना ही काटा है; माना कि पहले को निकालने मे सहयोगी हुआ। धन्यवाद दे देना और दोनो को फेक देना। पाप जब निकल जाये तो पुण्य को मत सम्हालने लगना, अन्यथा ससार ही सम्हाला जाता है।

'जो पुण्य की इच्छा करता है वह भी ससार की ही इच्छा करता है। पुण्य सुगति का हेतु है, किंतु निर्वाण तो पुण्य के क्षय से ही होता है।'

इधर अधेरे की लानते है, उधर उजाले की जहमते है
तेरे मुसाफिर लगाए बिस्तर कहा पे सहराए-जिदगी मे?

बडी कठिनाई है। इधर अधेरे की लानते है—यहा अधेरे की तकलीफे है। उधर उजाले की जहमते है—उधर प्रकाश की भी झझटे है। इधर पाप सताता है, उधर पुण्य भी सताता है। तेरे मुसाफिर लगाए बिस्तर कहा पे सहराए-जिदगी मे? यह जो जिदगी का मरुस्थल है, इस पर कहा विश्राम करे? इस जिदगी के मरुस्थल मे विश्राम की कोई जगह नही। विश्राम की जगह तो मुसाफिर के भीतर है। यहा बाहर बिस्तर लगाया तो भटके। यहा तो भीतर बिस्तर लगाना होगा। उस भीतर बिस्तर लगाने को महावीर कहते है, 'अनन्यगत, स्व-द्रव्य मे प्रवृत्त परिणाम।' लगा लिया भीतर बिस्तर।

देखा विष्णु को, सो रहे है क्षीर-सागर मे। लगाया बिस्तर क्षीर-सागर मे। कथा प्रीतिकर है।

क्षीर-सागर का अर्थ है अमृत का सागर, जिसका कोई अत नही आता। उस पर बिस्तर लगा है। और बिस्तर किसका है? शेषनाग का। उसने कुडली मारी है।

नाग प्रतीक है तुम्हारी ऊर्जा का, कुडलिनी का, तुम्हारे भीतर छिपी हुई ऊर्जा का। उसी ऊर्जा की कुडली मारकर अनत के सागर पर जो बिस्तर लगाकर लेट गया है । लक्ष्मी उसके पैर दबाती है। सारे सुख उसके पैर दबाने लगते है। सब वैभव सहज ही उसे उपलब्ध हो जाते हैं। नहीं कि वह उनकी चेष्टा करता है। जब तक चेष्टा है तब तक दुख ही पैर दबाता है। जब तक चेष्टा है, वासना है, तब तक पीड़ा ही हाथ आती है। जब तक मागना है, तब तक परम सपदा नही मिलती।

यहा मागने से भीख नही मिलती, परम सपदा कहा मिलेगी। परम सपदा मिलती है सम्राटो को, जिन्होने भीतर के क्षीर-सागर पर अपनी ही ऊर्जा के शेषनाग की कुडलिनियो पर विश्राम लगा दिया है, बिस्तर लगा दिया है।

नही, बाहर कोई जगह नही है इस जीवन के मरुस्थल मे जहा विश्राम मिल सके। यहा तो दौडना ही दौड़ना होगा। यहा तो हर बिंदु जो विश्राम का मालूम पड़ता है, केवल नयी दौड का प्रारभ सिद्ध होता है। सोचकर आते है कि अब, अब विश्राम का क्षण आया, पहुचते-पहुचते विश्राम का क्षितिज और आगे सरक जाता है।

वासना मे कभी किसी ने विश्राम नहीं जाना। विश्राम वहा नही है। विराम वहा नही है, राम वहा नही है। विश्राम तो भीतर है जहा तृष्णा शून्य हो जाती है।

'अशुभ कर्म को कुशील और शुभ कर्म को सुशील जानो।'

इस वचन को गौर से सुनना।

'अशुभ कर्म को कुशील और शुभ कर्म को सुशील जानो। किंतु उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है, जो ससार मे प्रविष्ट कराता है?'

पहले महावीर कहते है, अशुभ कर्म को कुशील, शुभ कर्म को सुशील जानो। तत्क्षण दूसरे वाक्य मे खडन करते है। कहते है, किंतु उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है जो ससार मे प्रविष्ट कराता है? तर्क से भरी हुई बुद्धि को लगेगा, यह क्या मामला है। यह तो वक्तव्य तत्क्षण विपरीत हो गया। एक वाक्य पहले ही कहा कि अशुभ को कुशील, शुभ को सुशील जानो—और फिर कहते है कि सुशील कैसे जाना जा सकता है शुभ को, क्योकि वह संसार मे प्रवेश कराता है।

यह दो तलो के लोगो के लिए कहा गया वक्तव्य है। महावीर जैसे व्यक्तियो के वक्तव्यो मे अगर असगति मिले तो इतना ही समझना कि वह वक्तव्य कई तलो पर दिये गये है। पहले वे कह रहे है उससे, जो पाप मे रत है। उससे वे कह रहे है कि अशुभ कर्म को कुशील जान, शुभ कर्म को सुशील। फिर जब वह पाप से मुक्त हो गया है, तो वे उससे कहते है, 'लेकिन सुन। उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है जो ससार मे प्रविष्ट कराता है?

यह भी सुशील नहीं है। यह तो कामचलाऊ बात थी, व्यवहारिक थी।

महावीर ने कहा है, वक्तव्य उनके दो आधारो पर है—व्यवहारिक-नय और निश्चय-नय। एक वक्तव्य ऐसा है जो व्यवहारिक है। एक काटे को दूसरे काटे से निकालना है, इसलिए वे कहते है, यह काटा बड़ा शुभ है, इससे तुम लगे हुए काटे को निकाल लो। जब काटा निकल जाता है तब वे निश्चय वक्तव्य देते है। वे कहते है, अब दोनो काटो को फेक दो क्योकि कोई काटा सुशील कैसे हो सकता है। काटा तो दुशील ही है, कुशील ही है।

तो महावीर की सारी वाणी दो तलो पर है। एक तल है जहा तुम खड़े हो, तुमसे बोल रहे है। और दूसरा तल है जब तुम उनकी सुन लोगे, समझ लोगे, मान लोगे, तब तत्क्षण वे तुमसे कहेगे, अब इस काटे को पकडकर पूजा मत करने लगना।

पुण्य अच्छा है कामचलाऊ दृष्टि से, क्योकि पाप से छुटकारा दिलाने मे सहयोगी है। लेकिन इसको पकड़कर मत बैठ जाना। पुण्य ही तुम्हारे जीवन की अतिम दिशा न बन जाये। अन्यथा बीमारी से छूटे, औषधि से पकड गये। औषधि शुभ है, बीमारी से छुटा देने को, लेकिन औषधि की पूजा मत करना। पुण्य के गुणगान मत गाना।

लेकिन यही होता है। एक आदमी जरा-सा दान कर देता है तो उसकी चर्चा करता है। न केवल चर्चा करता है, आयोजन करता है कि लोग जाने कि इसने दान किया, अखबार मे खबर छपे, फोटो छपे कि इसने दान किया।

महावीर कहते है, दान किया, यह तो ऐसा ही था कि पाप किया था, उसका प्रक्षालन किया, पाप किया था, उसका पश्चात्ताप किया—इसमे शोरगुल क्या मचा रहे हो? किसी आदमी को टी बी हो गयी थी, उसने दवा ली, ठीक हो गया—तो वह कोई अखबारो मे खबर देने जाता है कि देखो, मै कैसा महापुरुष, कि दवा ली और ठीक हो गया। तो हम उसे पागल कहेगे।

महावीर कहते है, खूब पाप किया है, थोड़ा-थोड़ा पुण्य करके उसे छाटते हो, तो इसमे शोरगुल मचाने की कोई जरूरत नहीं। तो वास्तविक पुण्यात्मा व्यक्ति तो ऐसे करेगा पुण्य कि एक हाथ से करे और दूसरे हाथ को पता न चले। चुपचाप करेगा। पता ही नही चले किसी को, क्योकि पुण्य तो पश्चात्ताप है, इसमे पता चलाने जैसा क्या है? वह तो मजबूरी से कर रहा है कि खूब पाप किए है, अब उनको धोना है, खूब गदगी इकट्ठी कर ली है, अब स्नान करना है। तो तुम स्नान-घर अपना मकान के सामने थोड़े ही बनाते हो—कि खड़े है बीच सड़क पर और स्नान कर रहे है, कि सारा गाव देख ले कि कैसे स्वच्छ हो रहे है। स्नान-घर मे तो तुम छिपकर चुपचाप स्नान कर लेते हो। तुम्हारा पुण्य का गृह भी ऐसा ही छुपा होना चाहिए। क्योकि अगर तुमने इससे प्रशसा पायी तो यह एक नया उपद्रव बन जायेगा। तो फिर तुम प्रशसा पाने का जो मजा है उसके लिए पुण्य करने लगोगे। फिर भव्य न रहे, अभव्य हो गए।

तो पुण्य को जो चुपचाप करे वही भव्य है। पुण्य की जो घोषणा करके करे वह अभव्य है। लेकिन हम तो पुण्य करते ही इसलिए है ताकि घोषणा हो। हम तो पुण्य करने के लिए राजी ही इसीलिए होते है, पुण्य के लिए थोड़े ही, घोषणा के लिए।

जो लोग दान इकट्ठा करते है वे भलीभाति जानते है। वे गाव के दो-चार धनी-मानी व्यक्तियो से पहले लिस्ट पर नाम लिखवा लाते है। वे कहते है, न देना आप दस हजार, देना हजार, लेकिन लिख तो दो दस हजार, ताकि दूसरे लोगो को देखकर लगे कि फला ने दस हजार दिये, ईर्ष्या जगे, स्पर्धा पैदा हो 'अच्छा तो यह अपने को समझता क्या है। दस हजार दिये तो लिखो ग्यारह हजार।'

दान के लिए भी अहकार को ही फुसलाना पड़ता है। पुण्य के लिए भी बीमारी को ही खुजलाना पड़ता है। फिर जब दान हो जाए तो दानी प्रतीक्षा करता है अब प्रतिफल। शोभा-यात्रा निकले। बैड-बाजे बजे। सारे गाव मे चर्चा हो। दूर-दूरदिगत तक उसकी खबर पहुचे।

एक सज्जन मुझे मिलने आये थे। पत्नी भी साथ थी। तो पत्नी ने मुझसे कहा कि शायद आपको मेरे पति का परिचय नही है। पत्नी मुझे एक-दो बार आकर मिल गयी थी। मैने कहा कि ये पहली दफे आये है। उसने कहा, 'ये बड़े दानी है। एक लाख रुपया अब तक दान कर चुके है।'

पति ने तत्क्षण पत्नी का पैर दबाया और कहा, 'एक लाख नहीं एक लाख दस हजार।' वह दस हजार भी कम बोल रही है तो पति को कष्ट हो गया, सुधार किया।

दानी दान से मान इकट्ठा नही कर सकता। दानी मानी नहीं हो

सकता। क्योकि जो मानी है वह दानी कैसे हो सकेगा?

तो महावीर कहते है, 'अशुभ कर्म को कुशील और शुभ को सुशील जानो कितु उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है जो ससार मे प्रविष्ट करा दे?' नही वह भी कुशील है अतत। अगर पाप की दृष्टि से सोचो तो पुण्य सुशील है। अगर मोक्ष की दृष्टि से सोचो तो पुण्य कुशील है।

इसलिए महावीर के सभी वक्तव्य दृष्टि-वक्तव्य है। इसको महावीर की परिभाषा मे 'नय' कहते है—देखने का एक ढग। महावीर कहते है, कोई भी वक्तव्य निरपेक्ष नही है, सापेक्ष है।

तुम कहते हो, फला आदमी बहुत लबा। इसका कोई मतलब नही होता, क्योकि कोई ऊट से लबा नही होगा, पहाड से लबा नही होगा, झाड़ से लबा नही होगा। तुम जब कहते हो फला आदमी लबा, तो तुम मानकर चलते हो कि आदमी की एक सामान्य ऊचाई है, छह फीट, वह सात फीट है। लेकिन पहाड के नीचे है।

कहते है, ऊट पहाड़ के पास जाने से डरते है। डरते होगे, क्योकि जब रेगिस्तान मे चलते रहते है तो वही पहाड है। जब पहाड़ करीब आने लगता है तो दीनता प्रगट होती है।

हमारे सभी वक्तव्य सापेक्ष है। एक दृष्टि से ठीक होगे, तत्क्षण दूसरी दृष्टि से गलत हो जायेगे।

आइस्टीन ने तो बहुत बाद मे, ढाई हजार साल बाद महावीर के, विज्ञान के जगत मे सापेक्षता का नियम सिद्ध किया। पर महावीर ने ढाई हजार साल पहले धर्म के जगत मे वही नियम सिद्ध किया था।

महावीर और आइस्टीन बडे एक साथ खडे है। जो दान महावीर का धर्म के जगत मे है, वही दान आइस्टीन का विज्ञान के जगत मे है। आइस्टीन ने डावाडोल कर दिया विज्ञान का सारा जगत। सारी चीजे सापेक्ष हो गयी। निरपेक्ष कोई वक्तव्य न रहा। कोई ऐसा वक्तव्य नही है जो तुम बिना किसी शर्त के कह सको। सभी वक्तव्यो के पीछे शर्त है।

महावीर ने भी कहा, सभी वक्तव्यो के पीछे शर्त है। इसलिए इसमे तुम विरोध मत देखना और विसगति मत देखना। यह दो दृष्टियो से कही गयी बात है।

कितनी ही चेष्टा करो, पुण्य के द्वारा तुम्हारा परम रूप प्रगट न हो सकेगा। पुण्य बीच की मजिल हो सकती है। पाप से हटकर थोड़ी देर पुण्य मे विश्राम कर लेना—लेकिन जाना है मोक्ष।

ये मय छलक के भी उस हुस्न को पहुच न सकी
ये फूल खिलके भी तेरा शबाब हो न सका।

पुण्य को कितना ही छलकाओ, पुण्य को कितना ही प्रदर्शित करो, इससे तुम्हारा भव्य रूप प्रगट न होगा। शुभ रूप प्रगट होगा, भव्य रूप नही क्योकि भव्य तो शुभ से भी उतना ही दूर है जितना शुभ अशुभ से दूर है। भव्य तो बडा लोकतीत है।

ये मय छलक के भी उस हुस्न को पहुच न सकी
ये फूल खिलके भी तेरा शबाब हो न सका।

वह जो तुम्हारा परम सौदर्य है, जो अतर्सौदर्य है, उसको पुण्य भी नही छू सकता। क्योकि पुण्य भी कृत्य है। कृत्य कितना ही बडा हो, आत्मा से छोटा होता है। कृत्य कितना ही बड़ा हो, कर्ता से छोटा होता है। तुमने जो किया है वह तुमसे बडा नही हो सकता। करनेवाला सदा ही बडा है।

यह बडा मूलभूत दृष्टिकोण है कि कर्ता कृत्य से बडा है। जिस जीवन की ऊर्जा से छोटी-छोटी लहरे पुण्य की उठती है, वे लहरे उस जीवन-ऊर्जा से बडी नही हो सकती। सागर मे कितनी ही बड़ी लहर उठती हो, सागर से बड़ी नही हो सकती।

तुम सोच सकते हो सागर मे ऐसी कोई लहर कभी उठ सकती है जो सागर मे बडी हो? असभव। कितनी ही बडी लहर उठे, एक बात तय रहेगी कि सागर से छोटी रहेगी। अब तुम कोई चाय की प्याली मे थोडे ही सागर की लहर उठा सकते हो। चाय की प्याली मे चाय की प्याली की ही लहर उठेगी। वह चाय की प्याली से छोटी रहेगी।

महावीर कहते है कि जो हमारी अतरात्मा है वह विराट है। कृत्य तो छोटी-छोटी तरगे है। उन छोटी-छोटी तरगो को तुम सब कुछ मत मान लेना। वे पुण्य की भी हो तरगे तो भी तुम्हारे परम सौदर्य को न छू पायेगी। और कितने ही पुण्य के फूल खिलते जाए तो भी तुम्हारे परम सौदर्य के सामने चरणो मे चढाने के योग्य भी न हो पायेगे।

इस ससार मे तो हम जो भी करते है वह कृत्य है। पुण्य करे, पाप करे, अच्छा करे, बुरा करे—जो भी हम बाहर करते है वह कृत्य है। जो भीतर बैठा है, करने के पार, साक्षी—वह इस ससार का हिस्सा नही है।

वही है हमारा परम सौदर्य। वही है मुक्ति, मोक्ष।

मेरी रगते न निखर सकीं, मेरी निहकते न बिखर सकी
मै वह फूल हू कि जो इस चमन मे गिला-गुजारे सबा रहा।

तुम कितनी ही लाख चेष्टाए करो, तुम्हारे कृत्यो के कारण तुम्हारा रग न निखरेगा। पाप से तो निखरेगा ही कैसे। और कालिख लग जायेगी। पुण्य से भी न निखरेगा। कितना ही सोना चढा लो अपने ऊपर, तो भी न निखरेगा।

मेरी रगते न निखर सकी, मेरी निहकते न बिखर सकी

और न तुम्हारी सुगध बिखर सकेगी तुम्हारे कृत्यो से। क्योकि तुम अपने कृत्यों से बहुत बड़े हो।

मै वह फूल हू कि जो इस चमन मे गिला-गुजारे सबा रहा।

तुम्हारी शिकायत बनी ही रहेगी—तुम कितने ही बुरे कर्म करो, तुम नादिर हो जाओ, चगेज हो जाओ, तैमूर, हिटलर हो जाओ, या तुम कितने ही पुण्य-कर्म करो। तुम सम्राट अशोक हो जाओ कि सम्राट वू हो जाओ, तुम कितने ही पुण्य-कर्म करो तो भी तुम्हारा अतिम निखार कृत्य से आनेवाला नही है।

तुम कृत्य से बड़े हो। ऐसे लहरो को निखार-निखारकर कही सागर निखरेगा?

सागर तो निखरेगा साक्षी-भाव मे। सागर तो निखरेगा अनन्य भाव से स्व-द्रव्य मे लीन हो जाने से।

उपनिषदो मे बड़े बहुमूल्य वक्तव्य है 'यो वै भूमा तत्सुख'—विशाल मे है सुख। विराट मे है सुख। 'नाल्पे सुखमस्ति'—लघु मे सुख कहा। छोटे मे सुख कहा। 'भूमैव सुख'—निश्चय ही विराट मे ही सुख है। 'भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य।' इसलिए उस एक विराट को ही जानने को आकाक्षा कर। विराट। जहा कोई सीमा नही, जिसकी कोई परिभाषा नही।

महावीर कहते है, वह विराट तुम्हारे भीतर छुपा है। तुम्हारे कृत्य तो छोटी-छोटी ऊर्मिया है—शुभ और अशुभ—लेकिन सभी ऊर्मिया है। दूसरे के किनारे की तरफ चल पड़ती है। जब सागर मे कोई ऊर्मि नहीं होती तो सागर बे-किनारा होता है, क्योकि किनारे की तरफ कुछ भी नही जा रहा है। जब सागर मे कोई ऊर्मिया नहीं होती तो सागर किनारे से टूटा होता है—तटहीन। तब सागर विराट होता है।

'यो वै भूमा तत्सुख'—विराट मे सुख है। 'नाल्पे सुखमस्ति'—छोटे मे कहा सुख। 'भूमैव सुख'—विराट को खोज, विराट मे ही सुख है।

'बेड़ी सोने की हो चाहे लोहे की, पुरुष को दोनो ही बेड़िया बाधती है। इस प्रकार जीव को उसके शुभ-अशुभ कर्म बाधते है ।'

महावीर कहते है, बेड़ी सोने की या लोहे की, दोनो बाध लेती है। तुम इससे प्रसन्न मत हो जाना कि तुम कारागृह मे बडे खास कैदी हो। तुम्हारे हाथ मे सोने की जजीरे पडी है, दूसरे साधारण कैदी है, लोहे से बधे है—इससे तुम बहुत ज्यादा प्रसन्न मत हो जाना। भिखारी बधा होगा लोहे की जजीरो मे, सम्राट बधा है सोने की जजीरो मे। लेकिन असली सवाल तो बधे होने का है। तो जो बुरा कर्म करता है, वह भी बधा हुआ है। पापी तो बधा ही होता है, पुण्यात्मा भी बधा होता है। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि पुण्यात्मा पापी से भी ज्यादा बधा होता है। क्योकि पापी तो लोहे की बेड़िया छोड़ना चाहता है, पुण्यात्मा सोने की बेडिया बचाना चाहता है।

तो कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि अपराधी भी छूटने को उत्सुक होता है, लेकिन साधु छूटने को उत्सुक नही होता। क्योकि उससे तुम कैसे छूटने को उत्सुक होओगे जिससे बड़ा सुख मिल रहा है और जिसके कारण बडा सम्मान मिल रहा है, जिसके कारण अहकार भरता है, फलता-फूलता है।

तो कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि वे लोग अभागे है जिनके हाथ मे सोने की जजीरे पड़ी है, वे उनको बचाने लगते है, वे उनको आभूषण समझने लगते है।

'अत परमार्थत दोनो ही प्रकार के कर्मो को कुशील जानकर उनके साथ न राग करना चाहिए और न उनका ससर्ग। क्योकि कुशील कर्मो के प्रति राग और ससर्ग करने से स्वाधीनता नष्ट होती है।'

और स्वाधीनता महावीर के लिए परम मूल्य है—अल्टीमेट वैल्यू। उसके पार कुछ भी नही। जब तुम परिपूर्ण स्वाधीन हो, जब तुम्हारी स्वाधीनता पर कोई सीमा नहीं, जब तुम्हारी स्वाधीनता पर कोई बाधा नहीं, अनवरुद्ध तुम्हारी स्वतत्रता है—तभी तुम विराट हो, तभी तुम भूमा हो। तब तुम छोटे न रहे। और स्वतत्रता तो दोनो से ही नष्ट हो जाती है। इसलिए न पाप को पकडना न पुण्य को, न ससार को पकड़ना, न त्याग को। ससार को मत पकड़ना, सन्यास को मत पकड़ना। ससार

छोड़ने के लिए सन्यास का उपयोग कर लेना, बस। फिर उससे भी पार हो जाना।

यहा कारागृह से थक जाना तो जरूरी है, जिसको हम घर कहते है, अपना घर कहते है, आशिया कहते है—उससे भी थक जाना जरूरी है।

वोह बिजलियो की चश्मके-पैहम कि कुछ न पूछ
तग आ गए है जिदगीए-आशिया से हम।

अगर कोई गौर से देखे उथल-पुथल आधियो की, तो तुम कारागृह से थोडे ही थकोगे, घर से भी थक जाओगे।

वोह बिजलियो की चश्मके-पैहम कि कुछ न पूछ
तग आ गए है जिदगीए-आशिया से हम।

तब तुम जिदगी के घर से भी थक जाओगे। जहा सुरक्षा मिलती है, शरण मिलती है, उससे भी थक जाओगे। जहा सहारा मिलता है, आसरा मिलता है, उससे भी थक जाओगे। शत्रु से तो थकोगे ही, मित्र से भी थक जाओगे। पराये से तो थकोगे ही अपने से भी थक जाओगे, क्योकि वस्तुत तो अपना भी पराया है।

तथापि, फिर महावीर कहते है, 'परमार्थत दोनो प्रकार के कर्मो को कुशील जानकर उनसे राग न करना चाहिए। क्योकि उनका ससर्ग कुशील कर्मो के प्रति राग और ससर्ग करने से स्वाधीनता नष्ट होती है।'

'तथापि, व्रत व तपादि के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति उत्तम है। इनके न करने पर नर्कादि के दुख उठाना ठीक नही। क्योकि कष्ट सहते हुए धूप मे खडे रहने की अपेक्षा छाया मे खडे रहना कही बेहतर, कहीं अच्छा है।'

महावीर जब कह रहे है कि छोड़ दो सब—पुण्य भी, पाप भी—तब तत्क्षण उन्हे खयाल आया होगा कि आदमी बडा बेईमान है। उससे कहो, छोड़ दो पुण्य भी, पाप भी, तो पाप तो शायद न छोडेगा, पुण्य छोड़ देगा। वह कहेगा, बिलकुल ठीक। अभी मैने कहा कि छोड़ दो ससार, छोड़ दो सन्यास। तुम मे से कई के मन मे उठा होगा अरे, यह तो बिलकुल बेहतर, तो छोड़ दो सन्यास।

हम अपने मतलब की सुन लेते है।

एक मित्र ने सन्यास लिया और मुझसे पूछा कि 'अतत तो सब छोड़ ही देना है?' मैने कहा, 'अभी तुम लिये भी नही, अभी लेने को आये हो, अभी जल्दी मत करो।' पर उन्होने कहा, अगर अतत छोड ही देना है तो लेने से सार क्या? माना कि औषधि अतत छोड़ देनी होगी—लेकिन तब जब बीमारी जा चुकी हो। तुम यह तो नही कहते चिकित्सक को कि औषधि लेने से फायदा क्या, अतत तो छोड ही देनी है। अगर न लोगे तो बीमारी मे अटके रह जाओगे। औषधि तो लेनी होगी और छोड़नी भी होगी। सीढ़िया चढनी भी होगी और छोडनी भी होगी। तुमने कहा, जब छोड ही देनी है तो चढना क्या, तो फिर तुम नीचे ही रह जाओगे।

महावीर को तत्क्षण खयाल उठा होगा, यह जो मैने कहा कि पाप भी छोड दो, पुण्य भी छोड दो, क्योकि दोनो बधन है—तो शायद आदमी चोरी तो नही छोडेगा, दान करना छोड़ देगा 'क्या फायदा। इतना ही बधन काफी है चोरी का ही, अब और दान का बधन क्यो सिर पर लेना। ससार का बधन ही काफी है, अब सन्यास का बधन और क्यो सिर पर लेना। एक ही बधन बहुत है—हाथ मे लोहे की जजीरे पड़ी है, अब सोने की और क्या डालना।'

तो महावीर को तत्क्षण कहना पडा, 'व्रत व तपादि के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति उत्तम है। इनके न करने पर नर्कादि के दुख उठाना ठीक नहीं ।'

औषधि कड़वी भी हो तो भी उसका कड़वापन झेल लेना उचित है। क्योकि उसके बिना फिर बीमारी का नर्क है।

' क्योकि कष्ट सहते हुए धूप मे खडे रहने की अपेक्षा छाया मे खडे रहने कही अच्छा है।'

सन्यास की एक छाया है। आत्यतिक छाया नही, आखिरी छाया नही—आखिरी छाया तो आत्मा की है। सन्यास की एक सुरक्षा है, अतिम सुरक्षा नही, बीच का पड़ाव है। लबी यात्रा मे बीच मे पड़ी धर्मशाला है। वहा विश्राम करके सुबह चल पडना। लेकिन यह मत सोचना कि जब सुबह चल ही पडना है तो रात विश्राम क्या करना, चलते ही रहो। तो फिर तुम ज्यादा न चल पाओगे। तो फिर तुम बहुत दूर न पहुच पाओगे।

महावीर जैसे व्यक्तियो को निरतर एक अड़चन खड़ी रहती है जब भी वे बोलते है तो एक तो वे बोलते है जो उन्हे लगता है ठीक है, और तत्क्षण उन्हे तुम्हारा भी ध्यान रखना पड़ता है, तब वे वह भी बोलते है जो तुम कही गलत न समझ लो। तो वे कहते है,

'कोई फिक्र मत करना। कहा मैने, माना कि सोने की जजीर है पुण्य, लेकिन अभी जल्दी मत करना, पहले लोहे की जजीर को सोने से बदल लेना। इतना तो करो। सोने की जजीर थोड़ी हलकी होगी, लोहे की जजीर जैसी भारी न होगी। सोने की जजीर थोड़ी प्रीतिकर होगी। तुम उतने कुरूप न मालूम पड़ोगे जितने लोहे की जजीर मे मालूम पड़ते थे।'

ससार को थोडा बदलो सन्यास मे। और जो दूसरा आत्यतिक वक्तव्य है—पारमार्थिक चरम—वह तभी सार्थक है जब सन्यास फल जाए। जब पहला काटा निकल जाए और दूसरा काटा व्यर्थ हो जाए, तब उसे फेक देना।

जीवन को ऐसे गुजारो जैसे पिछले किये हुए कर्मो का फल है। तटस्थता से, बड़ी दूरी के भाव से, उपेक्षा से, बिना प्रतिक्रिया किये, बिना छोटी-छोटी बातो मे उलझे—ऐसे गुजर जाओ जैसे राह की धूल जब गुजरते हो तो पड़ती है। जब राह से चलते हो कुत्ते भी भौकते है, जब राह से चलते हो, धूप भी पड़ती है—सबको तुम गुजार देते हो। जन्मो-जन्मो तक जो निर्मित किया है उसे धीरे-धीरे इसी तरह छोडने का उपाय—उपेक्षा। दुख आये तो उसे भी ठहर जाने देना। उसके साथ भी शत्रुता मत बाधना। न हो, ऐसा मत कहना।

है और कितनी दूर तेरी मजिले-कयाम
रह-रहके पूछते है यह उम्रे-रवा से हम।

साधक यही पूछता रहता है अपने भीतर 'और, और कितनी यात्रा है?' अपनी जाती हुई, उम्र से पूछता है 'और कितना, और कितना?' लेकिन जो घटता है, उसे स्वीकार कर लेता है। जो घटता है, उसे स्वीकार करके बैठ नही जाता। जो घटता है, उसे स्वीकार कर लेता है और यात्रा जारी रखता है।

है और कितनी दूर तेरी मजिले-कयाम—और भीतर खयाल रखता है कि तेरा अतिम लक्ष्य और कितनी दूर है? रह-रहके पूछते है यह उम्रे-रवा से हम—जाती हुई उम्र से पूछता रहता है कि और कितनी दूर है? और अपने को सम्हाले रखता है। विषाद मे नही गिरने देता।

ऐ शमा! सुबह होती है रोती है किसलिए
थोड़ी-सी रह गयी है इसे भी गुजार दे।

जैसे सुबह होने के करीब है, रात गहरी अधेरी हो जाती है। सुबह होने के करीब रात सर्वाधिक अधेरी हो जाती है। वह सुबह होने की खबर है।

इसलिए जिस व्यक्ति का मोक्ष और निर्वाण करीब आ रहा है, उसके दुख बड़े सघन हो जाते है। सभी फल अनत-अनत जन्मो के इकट्ठे पकने लगते है। यथासमय। आ गई घड़ी।

महावीर बड़ी बुरी तरह बीमार हुए। बुद्ध का शरीर भी विषाक्त हो गया था। रामकृष्ण कैसर से विदा हुए, रमण भी।

बहुतो के मन मे सवाल उठता है कि क्यो ऐसे सदपुरुष, और क्यो ऐसा दुखद अत?

हमे समझ मे नही आता है। हमे जीवन के गणित का पता नही है। जिनकी आखिरी घड़ी करीब आ गयी है, तो जन्मो-जन्मो के, अनत-अनत फल शीघ्रता से पकने शुरू हो जाते है, क्योकि वे विदा होगे जब, पूरी तरह से विदा होगे, फिर दुबारा उनका आना नही है—तो सारा निपटारा, सारा कर्मक्षय त्वरा से होता है, तीव्रता से होता है। सब तरह की पीड़ाए जिनको अब तक दबाकर बैठे रहे थे, उभरकर सामने आती है। और आ जाना जरूरी है। वह न केवल पुराने कर्मो का फल है बल्कि भविष्य की तैयारी भी। उनको वे कितनी शाति से देख लेते है, कितने सहज भाव से उनको गुजर जाने देते है—उससे उनकी अतिम तैयारी होती है, अतिम पाथेय निर्मित होता है।

ऐ शमा! सुबह होती है रोती है किसलिए
थोड़ी-सी रह गयी है इसे भी गुजार दे।

ससार को छोड़ना है, क्योकि ससार मे जो वसत दिखायी पड़ता है वह झूठा है, इसलिए ससार को छोड़ते वक्त व्यक्ति के जीवन मे सारे फूल गिर जायेगे, पतझड़ हो जायेगी, पत्ते भी गिर जायेगे, रूखे, नगे वृक्ष खड़े रह जायेगे। लेकिन यह कोई अतिम अवस्था नही है। यह भी बीच का ही पडाव है। जिसने इस पतझड़ को भी पूरे भाव से स्वीकार कर लिया, उसके भीतर फिर एक और तरह का वसत उठता है जिसकी कोई पतझड़ नही। जिसने इस पतझड़ को भी पूरे आत्मभाव से अगीकार कर लिया, स्वागत से, और जरा भी ना-नुच न की, इनकार न किया—तप यही अर्थ रखता है—तो उसके जीवन मे फिर फूल खिलते है। वे फूल विराट के है। वे फूल परम सागर के है, परम सत्य के है।

इन्ही बजते हुए पत्तो से गुलशन फूट निकलेगे
बहारो का यह मातम सिर्फ अजामे-खिजा तक है।

तो तुम ऐसा मत देखना कि त्यागी दुखी है। ऊपर से शायद

दिखायी भी पड़े। तुम ऐसा मत सोचना कि त्यागी दुखवादी है। ऊपर से शायद दिखायी भी पड़े। क्योंकि तुम जिसे सुख मानते हो उसे वह छोड़ रहा है, तो तुम्हे लगेगा दुखवादी है। लेकिन त्यागी दुखवादी नही है। त्यागी ही परम भोग की तरफ जा रहा है। क्योंकि जिसे तुम सुख कहते हो वह सुख नही है। जिसे तुम दुख कहते हो वह दुख नही है। जिसे तुम सुख कहते हो वह केवल तुम्हारी आकाक्षा है, आशा है, तृष्णा है।

हविश को आ गया है गुल खिलाना,
जरा ए जिदगी! दामन बचाना।

जिसे तुम सुख कहते हो वह तो केवल हविश है, वह तो एक तृष्णा है, जो कभी भरती नही, दुष्पूर है। और जिसे तुम दुख कहते हो, वह तुम्हारे अतीत मे चाहे गए सुखो के फल है।

तो त्यागी वह है जो तुम्हारे सुख को सुख नही देखता, सिर्फ तुम्हारा सपना मानता है, और तुम्हारे दुख को वास्तविक मानता है, क्योकि वह अतीत जन्मो मे किये गये कर्मो का फल है। तो तुम्हारे सुख को तो वह बिलकुल छोड देता है, क्योकि कल्पना को छोड़ने मे देर क्या लगती है। कल्पना ही है, छोडने को कुछ है भी नही। कल्पना ही छोड़नी है, थी ही नही, सिर्फ विचार था। तो तुम्हारे सुख को तो तत्क्षण छोड देता है।

जो तुम्हारे सुख को छोड देता है, वही सन्यासी है। लेकिन दुख को इतनी आसानी से नही छोड़ा जा सकता। क्योकि दुख अब कल्पना नही है। तुम्हारी अनत-अनत कल्पनाओ ने जो घाव तुम पर छोड़ दिये है, दुख उनका नाम है। तो दुख को वह स्वीकार करता है।

कल्पना का त्याग सन्यास, दुख का स्वीकार सन्यास। सुख तो यू छूट जाता है क्योकि सुख है कहा? छोडने-योग्य कुछ है ही नही, मुट्ठी खाली है।

दो पागल बात कर रहे थे—पागलखाने मे बैठे। एक पागल ने मुट्ठी बाध ली तो उसने कहा कि अनुमान लगाओ, मेरी मुट्ठी मे क्या है? तो पहले पागल ने कहा कि कुछ थोड़े सकेत तो दो। उसने कहा, कोई सकेत नहीं। तीन मौके तुम्हे। तो पहले पागल ने कहा कि हवाई जहाज। दूसरे पागल ने कहा कि नही। तो पहले पागल ने कहा, हाथी। तो दूसरे पागल ने कहा, नहीं। तो पहले पागल ने कहा, रेलगाड़ी। तो उसने कहा, ठहर भाई, जरा मुझे देख लेने दे। उसने धीरे-से अपनी मुट्ठी खोलकर देखा और कहा कि मालूम होता है तूने झाक लिया।

वहा कुछ है नही। न रेलगाड़ी है, न हवाई जहाज, न हाथी है। मुट्ठी खोलने पर मुट्ठी खाली है। अगर मुट्ठी मे कुछ है तो वह सिर्फ पागलपन के कारण है। वह पागलपन की धारणा है।

तो तुम्हारे सुख को छोडने मे तो क्षणभर की देर नही लगती। सुख है ही नही। मुट्ठी खाली है।

इसलिए तो लोग मुट्ठी खोलकर नही देखते कि कही पता न चल जाये कि कुछ भी नही है। मुट्ठी बाधे रहो। कहते है, बधी लाख की। मै भी मानता हू बधी लाख की, खुली खाक की। क्योकि है ही नही कुछ वहा। बधी है, इसलिए लाख मालूम होते है। बाधे रखो मुट्ठी, तिजोड़ी पर ताले डाले रखो। खोलकर मत देखना, अन्यथा खाली हाथ पाओगे।

तो सुख तो यू ही छोडा जा सकता है। तत्क्षण छोड़ा जा सकता है। जरा-सा साक्षी-भाव—सुख गया। लेकिन दुख? दुख थोडा समय लेगा। अनत-अनत जन्मो मे वह जो गलत-गलत धारणाओ के घाव छूट गये है, लकीरें छूट गयी है ।

तो सुख का त्याग और दुख का स्वीकार—यही महावीर का सन्यास है। और इस सन्यास का जो परम फल है, वह अपने आप घटता है। वह परम फल निर्वाण है। वह परम फल सुख नही है, पुण्य नही है, स्वर्ग नही है। वह परम फल मोक्ष है, परम स्वतत्रता है।

स्वतत्रता का इतना बडा उपदेष्टा कभी नही हुआ। और भी स्वतत्रता की बात करनेवाले लोग हुए है, लेकिन महावीर की स्वतत्रता के साथ ऐसी पकड़ है, ऐसी गहरी पकड़ है कि स्वतत्रता को बचाने के लिए वे परमात्मा तक को स्वतत्रता की वेदी पर आहुति दे देते है। लेकिन स्वतत्रता की आहुति परमात्मा की वेदी पर नही देते। वे कहते है, परमात्मा रहेगा तो स्वतत्रता पूरी न रहेगी। इसलिए परमात्मा नही है। स्वतत्रता परिपूर्ण है। और इस परम स्वतत्रता को पा लेने की ही सारी दौड, सारी यात्रा, सारा धर्म, जन्मो-जन्मो के भटकाव।

कैसे इसे हम पाये?

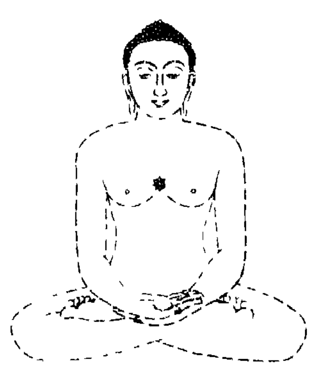
धीरे-धीरे तुम स्वतत्रता के सूत्रो को अपने जीवन मे जगह देने लगो। जो-जो बाधता हो, उस-उससे जागने लगो। पहले पाप से जागोगे, क्योकि वह बाधता है, इस बीच के उपाय मे पुण्य का सहारा ले लेना। कही तो हाथ रखने के लिए जगह चाहिए। पाप

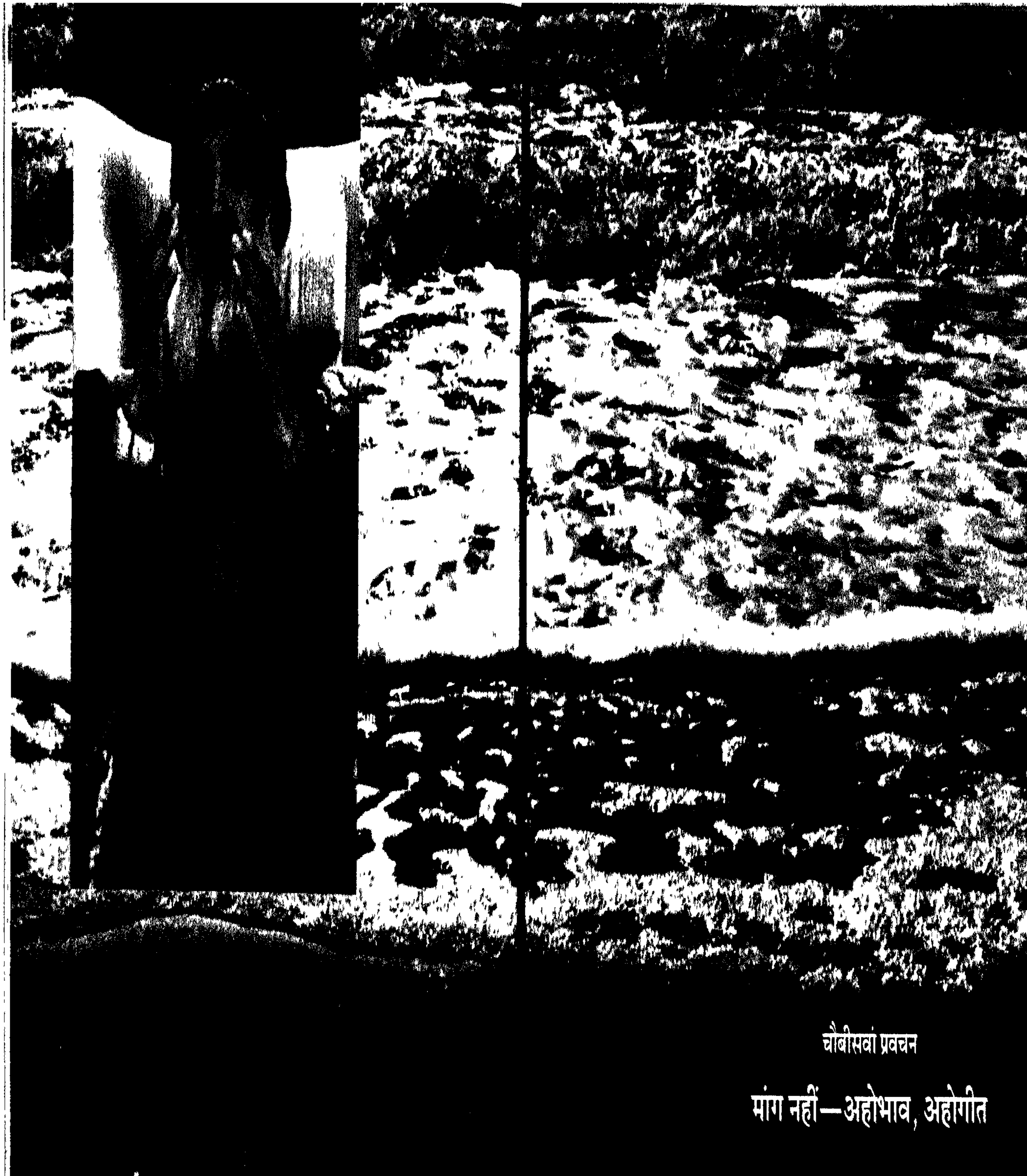
से हटोगे तो पुण्य की भूमि चाहिए। उस पर खडे हो जाना। लेकिन उस पर इतनी ज्यादा देर खड़े मत रहना कि फिर वहा घर बना लो। जैसे ही पाप समाप्त हो जाए, पुण्य से भी छलाग लगा जाना। तब सब किनारे खो जाते है।

'यो वै भूमा तत्सुख'—और तब है सुख विराट मे। 'नाल्पे सुखमस्ति'—लघु मे सुख कहा। 'भूमैव सुख'—उस भूमा मे ही सुख है।

उस भूमा की ही हम जिज्ञासा करे, उस भूमा को ही हम खोजे। वह भूमा हममे छुपा है। वह स्वतत्रता हमारा स्वभाव है।

आज इतना ही।





चौबीसवां प्रवचन

मांग नहीं—अहोभाव, अहोगीत

प्रश्न-सार

बैठे-बैठे दिले-नादा ये खयाल आया है
हम नही आए यहा कोई हमे लाया है
किसने नन्हा-सा मुहब्बत का ये जला के दिया
दिले-वीरा के अंधेरे पे तरस खाया है।
पर दीया तो जलता नजर नही आता . ?

भगवान, तुम्हारे चरणो में शत-शत प्रणाम।

कल जिस क्षण आपने कहा कि महावीर ने स्वाधीनता को आत्यतिक मूल्य दिया, उस क्षण मै आपको निहारता ही रहा। क्या कर दिया आपने ?

मुझे इतना कुछ मिल रहा था कि अतर मे समाता नही—
और प्यास भी इतनी ही है।...प्रभु। यह सब क्या हो रहा है ?

पहला प्रश्न
बैठे-बैठे दिले-नादा ये खयाल आया है
हम नही आए यहा कोई हमे लाया है
किसने नन्हा-सा मुहब्बत का ये जला के दिया
दिले-वीरा के अधेरे पे तरस खाया है।
पर दीया तो जलता नजर नही आता ?

कविता उधार है। किसी और का दीया जला होगा, उसने गायी है। अपने काव्य को जन्माना होगा।

दीया तो सभी का जल सकता है। दीया है तो जलने के लिए है। दीया है तो जलने की सभावना है। लेकिन कोई दूसरा तुम्हारा दीया जला नही सकता। तुम्हारी स्वतत्रता परम है। तुम न जलाना चाहो तो दीया जलाया नही जा सकता और तुम जलाना चाहो तो कोई तुम्हे रोक न सकेगा। तुमने चाहा नही है कि दीया जले। अभी अधेरे मे तुम्हारे बड़े लगाव है।

अकसर मै लोगो को देखता हू। वे चाहते है, अधेरा भी बना रहे और दीया भी जल जाये। ऐसी उलझन है। क्योकि अधेरे मे बड़े स्वार्थ है।

जैसे एक आदमी चोरी करने गया हो, तो कई बार टकरा जाये, दीवाल-दरवाजे से ठोकर खा जाये, तो सोचने लगे मन मे कि दीया होता तो ठीक था—लेकिन दीया हो और रोशनी हो जाये तो चोरी न कर सकेगा। तो अगर कोई कहे कि यह रहा दीया, ले लो तो वह कहेगा, पागल तो नही समझा है मुझे ?

तो तुम्हारी दिक्कत यह है कि तुम्हारा जीवन दोहरा है। एक तरफ अधेरा है, अधेरे मे लगा स्वार्थ है। दूसरी-तरफ अधेरे की तकलीफे है। दीये का खयाल पैदा होता है। जब तक तुम अधेरे के स्वार्थ न तोड़ लोगे, तब तक तुम दीया जला न सकोगे। यह सीधा गणित है। तो दीये जलाने की तो फिक्र छोडो, पहले यह देख लो कि 'अधेरे मे हमारा स्वार्थ है ? हम अधेरे को चाहते है कि बना रहे ? अधेरे से कुछ मिलने की आशा है ? अधेरे मे मन को लगाया है ? भविष्य को अधेरे मे छिपाया है, सपने देखे है ?' अगर अधेरे से कुछ भी मिलने का, कही भी थोड़ा-सा खयाल है तो तुम दीया कैसे जलने दोगे ? कोई जला भी दे तो उसे बुझा दोगे। जो दीया जलाये वह दुश्मन मालूम होगा।

अधेरे मे तुम्हारा बड़ा न्यस्त स्वार्थ है।

इसलिए दीया नही जल रहा है। तुम्हारे अधेरे पर कोई कितना ही तरस खाये, तो भी अगर तुम अधेरे मे रहना चाहते हो तो इस तरस से कुछ भी न होगा।

महावीर आते है, बुद्ध आते है, कृष्ण आते है, क्राइस्ट आते है। तरस की कुछ कमी नहीं है। करुणा बडी है। महाकरुणा के स्रोत आते है। स्वय सूर्य तुम्हारे द्वार पर आकर दस्तक देते है। लेकिन तुम अपने अधेरे मे छिपे बैठे हो। तुम सोचते हो कि प्रकाश भी जल जाये। लेकिन कभी तुमने भीतर का द्वद्व देखा ? कि प्रकाश के जलने के साथ ही अधेरे के सभी स्वार्थ नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगे। तो अधेरे से पाने की तुमने जो-जो आशाए बाधी है, वह सभी धूल-धूसरित हो जायेगी। उस अधेरे से भरी आशाओ को ही तो हम ससार कहते है।

तो जब तक ससार मे थोड़ा भी ऐसा लग रहा है कि कुछ मिल

सकता है, मिलेगा—तब तक तुम स्थगित करोगे, दीये को जलने न दोगे। तब तक तुम रोशनी से डरोगे। अगर रोशनी आ जाये तो तुम पीठ कर लोगे। तुम हजार तर्क, विचार खोज लोगे रोशनी से बचने के। तुम कहोगे, यह तो रोशनी आखो को तिलमिलाती है, कि यह रोशनी तो हमारी सारी व्यवस्था को डगमगाये देती है, कि यह रोशनी तो असुरक्षित कर देगी। हम भले, हमारा अधेरा भला।

लेकिन बेईमानी ऐसी है कि तुम अगर इसे भी साफ देख लो तो भी रास्ता बन जाये। तुम साफ कह दो कि 'हम अधेरे मे ही जीयेगे। बद करो प्रकाश की बातचीत। हमे कुछ लेना-देना नही है।' लेकिन तुम उतने ईमानदार भी नही हो।

जब कोई प्रकाश की बात करता है तो तुम इतने स्पष्ट भी नही हो कि कह सको कि 'बद। यह बात से हमे कुछ लेना-देना नही है। हम अधेरे मे जीना चाहते है और अधेरे मे ही जीयेगे। और अधेरा हमारा सुख है।'

यह भी तुम नही कह पाते। तुम यह भी दिखलाना चाहते हो कि तुम प्रकाश के प्रेमी हो। तुम यह भी दिखलाना चाहते हो कि तुम शुभ के पक्षपाती हो।

एक बहरा आदमी रोज सुबह चर्च जाता था। रविवार को वह सबसे पहले पहुच जाता था और पहली पक्ति मे बैठता था। वह बज्र बधिर था। उसे न तो प्रवचन मे कुछ सुनायी पडता न समझ मे आता। न सगीत चर्च मे होता, वह उसको सुनायी पडता। एक दिन एक आदमी ने पूछा कि 'तुम इतने जल्दी आते किसलिए हो? रोज तुम चर्च चले आते हो, मीलो चलकर। तुम्हे कुछ सुनायी तो पड़ता नही। न तुम सगीत सुन सकते हो, न तुम प्रवचन सुन सकते हो, तो तुम आते किसलिए हो?'

वह आदमी हसने लगा। उसने कहा कि मै जतलाने आता हू कि सारी दुनिया देख ले कि मै किस पक्ष मे हू। और परमात्मा भी नोट कर ले कि मै कोई सासारिक आदमी नही हू। धार्मिक हू।

तो तुम यह मोह भी नहीं छोड़ पाते कि तुम धार्मिक हो। धर्म के साथ बड़ी प्रतिष्ठा जुड़ी है। धर्म के साथ बड़ा बल जुडा है, प्रभुत्व जुड़ा है। वस्तुत तुम जितने बेईमान होते हो उतने ही धार्मिक दिखलाने की चेष्टा करते हो। क्योकि बेईमानी को छिपाने का इससे अच्छा कोई उपाय नही। प्रकाश की आकाक्षा करके अधेरे को ढाकते हो, छिपाते हो।

तुम्हारे प्रकाश की आकाक्षा अधेरे के विपरीत नही है—अधेरे को छिपाने का उपाय और व्यवस्था है।

तुम प्रकाश का खूब शोरगुल मचाते हो, आसू बहाते हो, चिल्लाते हो, 'प्रकाश चाहिए', ताकि सारी दुनिया देख ले कि अगर अधेरा है तो तुम जिम्मेवार नही हो। तुम तो प्रकाश का कितना गुणगान कर रहे हो।

बर्ट्रेड रसेल ने लिखा है, जगत मे बड़ी अजीब विडबना है यहा जो आदमी जितना अनैतिक होगा, उतनी ही नीति की चर्चा करेगा। क्योकि नीति की चर्चा से वह एक हवा पैदा करता है, जिससे पता चल जाये कि और कोई हो अनैतिक, मै तो कम मे कम नही हू।

यहा अभी किसी की जेब कट जाये तो जो आदमी जेब काटे, अगर उसमे थोडी भी अकल हो तो उसको बड़ा शोरगुल मचाना चाहिए कि जेब कट गयी, पकडो चोर को। दौड-धूप करनी चाहिए। एक बात निश्चित है, उसको कोई भी न पकड़ेगा। क्योकि उसने अगर चोरी की होती और जेब काटी होता तो वह तो भाग गया होता। वह तो यहा बीच मे खडा रहेगा। वह तो चोरी के खिलाफ बोलने लगेगा।

दो आदमी मछली मार रहे थे। और तभी उस सरोवर का निरीक्षक आ गया। एक आदमी भाग खड़ा हुआ। तो वह उसके पीछे भागा। कोई दो मील जाकर हाफते-हाफते उसको पकड पाया। और जब पकड पाया तो उसने जल्दी से खीसे से निकालकर लाइसेस बता दिया। उसको मछली मारने का हक था। तो उस आदमी ने कहा कि 'अरे नासमझ। तो फिर भागा क्यो?' तो उसने कहा कि इसीलिए कि दूसरे के पास लाइसेस नहीं है।

लोग बड़ी होशियारी से चल रहे है।

तुम प्रकाश की खूब बातचीत करते हो ताकि एक बात तो निश्चित हो जाये कि तुम प्रकाश के आकाक्षी, अभीप्सु। तो तुम्हे कोई सोच भी न सकेगा कि तुम और अंधेरे का व्यवसाय करते होओगे। आसानी से लोग फस जायेगे तुम्हारे व्यवसाय मे। तुम जेबे ज्यादा सुगमता मे काट सकोगे। बेईमान होने के लिए धार्मिक होना जरूरी है। दुकान ठीक चलानी हो तो मदिर जाना जरूरी है। मदिर जाना दुकान के ठीक चलने का हिस्सा है। दुकानदार भी खाते-बही लिखता है तो ऊपर लिखता है, 'श्री

गणेशाय नम' 'लाभ-शुभ।' ईश्वर का स्मरण करके किताब बाजार की शुरू करता है। ईश्वर का स्मरण—उस किताब मे सहयोगी होने को। वह यह कह रहा है, 'बाधा मत डालना। हम तो तुम्हारे भक्त है।'

जैसा मै देखता हू, सैकड़ो लोग चाहते है ध्यान। लेकिन ध्यान जिन शर्तो से घट सकता है, वह शर्ते पूरी करने को राजी नही। कोई शर्त पूरी करने को राजी नहीं। सिर्फ बेशर्त, मुफ्त। और मै तुमसे कहता हू कि अगर यह सभव होता कि ध्यान मुफ्त दिया जा सकता—चूकि सभव नही है, इसलिए तुम मजे से मागते रहते हो। कोई खतरा नहीं है—अगर यह सभव होता कि ध्यान मैं तुम्हे उठाकर दे देता, तो मै जानता हू तुम मागते भी नहीं। तुम भागते। तुम कहते, 'अभी नही। अभी बच्चे बड़े हो रहे है। अभी थोडा और जीवन को सम्हाल लेने दो। अभी ध्यान। अभी नही।' क्योकि ध्यान कही सब अस्त-व्यस्त न कर दे। और ध्यान महाक्राति है, अस्त-व्यस्त तो करेगा।

तुम जैसे हो, तुमने उसी ढग की दुनिया अपने चारो तरफ बना ली है। तुम्हारे चारो तरफ तुम्हारी दुनिया है। तुम बदलोगे, तुम्हारी दुनिया गिर जायेगी। क्योकि वह आदमी ही बीच से हट गया जिसकी दुनिया थी। वह केद्र गिर गया जिसके सहारे चाक घूमता था। एक नयी दुनिया निर्मित होगी।

तो अगर तुम धन की दौड़ मे लगे हो तो तुम ध्यान न कर सकोगे।

एक बड़े राजनीतिज्ञ मेरे पास आते थे। वह मुझसे कहते, कुछ शाति का उपाय बताइए। मैने कहा, अशाति तुम करते हो, शाति का उपाय मुझसे पूछते हो? छोड़ो महत्वाकाक्षा। महत्वाकाक्षा से तो अशाति पैदा होगी। जहा भी रहोगे, पीड़ित और परेशान रहोगे। जहा भी रहोगे, असतुष्ट रहोगे। शाति कैसे होगी?

उन्होने कहा कि आप वह मत कहिये, मैं तो आपके पास इसीलिए आया कि थोड़ी शाति हो तो थोड़ा ढग से प्रतिस्पर्धा कर सकू। अशाति के कारण प्रतिस्पर्धा नही कर पा रहा हू। रात नींद नही आती। बेचैनी रहती है। तो मुझसे पीछे आनेवाले लोग मुख्यमत्री हो गये और मैं मत्री-पद पर ही अटका हू। जितनी दौड़-धूप वे लोग कर लेते है, मै नहीं कर पाता। इसीलिए तो आपके चरणो मे आया हू कि थोड़ी शाति दो, ताकि दौड़-धूप ठीक से कर सकू।

अब मतलब समझे? वे शाति चाहते है ताकि ठीक से अशात हो सके। और अशाति को छोड़ने की तैयारी नहीं है। शाति की माग भी अशाति को ही चलाये रखने के लिए है।

तो मैने उनसे कहा कि फिर कही और जाओ, क्योकि असभव मै न कर सकूगा। शात तुम्हे कोई भी नही कर सकता, जब तक तुम न समझ लो कि अशात करने के उपाय बद करने होगे। जहा-जहा से अशाति आती है, वहा-वहा से हाथ खीच लेना होगा। शाति के लिए कुछ भी नही करना पड़ता—सिर्फ अशाति से हाथ खींच लेते ही शाति निर्मित हो जाती है। शाति तो अशाति का अभाव है। शाति के लिए सीधा कुछ भी नही करना है।

तुमने अधेरे मे अपनी बड़ी आकाक्षाए जोड़ रखी है, उनको हटा लो। दीया तो जल जायेगा। दीया तो जलने को तत्पर है, प्रतिपल तत्पर है, क्योकि दीया जलने के लिए है। दीया तो जलने की सभावना लेकर आया है और रो रहा है। तुम्हारे दीये से टपकते आसू मै देखता हू कि कब जलाओगे, क्या मुझे ऐसे ही बुझा-बुझा ही विदा कर दोगे? क्योकि ऐसे ही बहुत जन्मो मे तुमने उसे विदा कर दिया। जन्म मिला, लेकिन जीवन न मिला।

जन्म के साथ ही जीवन थोडे ही मिलता है। जन्म तो केवल सभावना है। जीवन अर्जित करना होता है। जरूरी नही है कि तुम जन्म गये तो तुमने जीवन पा लिया हो। जन्म के साथ तो बुझा दीया मिलता है। फिर उसे जलाना पड़ता है।

गहन सघर्ष से जीवन की ज्योति प्रगट होती है। जैसे दो लकड़ियो के घर्षण से आग पैदा हो जाती है, दो पत्थरो के घर्षण से आग पैदा हो जाती है—ऐसे तुम जब जीवन की सारी चुनौतियो से सघर्ष लेते हो, तब तुम्हारे भीतर का दीया जलता है। और कोई उपाय नही है। उधार जल नही सकता।

यह कविता किसी और की है। और जरूरी नहीं कि जिसने गायी हो उसका भी दीया जला हो। क्योकि अकसर ता ऐसा होता है, लोग कविताए गाकर सोच लेते है कि जल गया दीया। जिनके जीवन मे प्रेम नहीं है, वे प्रेम के गीत गाकर सात्वना कर लेते है।

मै बहुत कवियो को जानता हू। तुम्हारी और उनकी परेशानी मे मैने जरा भी भेद नहीं पाया। शायद तुमसे बदतर उनकी परेशानी है। फर्क है तो इतना कि वे सपने सजाने मे कुशल है। तुम इतने कुशल नही हो सपनो को रग देने मे। वे इतने कुशल है कि बुझे

दीये को भी जले दीये की तरह मानकर जी सकते है, गीत गुनगुना सकते है।

अकसर ऐसा होता है जो तुम्हारे पास नही है उसकी सात्वना तुम अनेक रूपो से अपने पास जुटा लेते हो। प्रेम जिसके पास नही है, वह प्रेम के बहुत गीत गाकर धीरे-धीरे भरोसा कर लेता है कि प्रेम हो गया। यह बड़ी विडबना है। प्रेम के गीत जितने लोगो ने गाये है उनमे से निन्यानबे ने प्रेम को जाना ही न था। जो नहीं जान पाए जीवन मे, जो यथार्थत न घट पाया, उसे उन्होने सपनो मे घटा लिया। सपने परिपूरक है।

आधुनिक मनोविज्ञान इस सत्य को स्वीकार करता है कि सपने परिपूरक है। जो तुम जीवन मे नही कर पाते हो वह तुम सपने मे करके अपने को समझा लेते हो। दिन मे उपवास करो, रात सपने मे भोजन कर लोगे। दिन मे ब्रह्मचर्य साधो, रात सपने मे सुदर स्त्रिया, सुदर पुरुष तुम्हारे आसपास नाचने लगेगे। तुम्हारे ऋषि-मुनियो के आसपास अप्सराए यू ही नही नाची थी। कोई वस्तुत अप्सराए कही से आती नही। किस इद्र को पड़ी है? कहा कौन इद्र है? वह तो ऋषि-मुनि ने ही जो दबा लिया था, दमन कर लिया था, वह जिसको प्रगट नही किया था जीवन मे—वह सन्नाटे मे रात के, तद्रा के क्षण मे, निद्रा के क्षण मे प्रगट होने लगा। और अगर बहुत दबाया तो आख बद करने की भी जरूरत नहीं, अप्सरा खुली आख प्रगट हो जायेगी। यह निर्भर करता है कि तुमने दमन कितना गहरा किया। अगर दमन बहुत गहरा कर लिया। इतना गहरा कर लिया कि अब दमन को बर्दाश्त नही किया जा सकता। तो खुली आख भी तुम सपने देखने लगोगे। खुली आख और बद आख मे दमन की गहराई का ही फर्क है। तुम बद आख से देखते हो। तुमने पागल आदमी देखे? वे खुली आख से देख रहे है।

एक पागलखाने मे एक आदमी दावा करता था कि वह ईश्वर का भेजा हुआ पैगबर है। जिस मुसलमान खलीफा ने उसे कैदखाने मे डलवा दिया था, वह उससे मिलने आया। कहा था कि तीन सप्ताह तू फिर से सोच ले। वह जब उससे मिलने आया तो वह एक खभे से बधा था। उसको कोड़े मारे गये थे, तीन सप्ताह भूखा रखा गया था। और जब उसने उस आदमी से पूछा कि क्या खयाल है, क्या अब भी तेरा खयाल है कि तुझे परमात्मा ने पैगबर बनाकर भेजा है, इसके पहले कि वह बोले, एक दूसरा आदमी जो दूसरे खभे से बधा था, उसने कहा, 'इसकी बातो मे मत पडना, मैने इसे कभी भेजा ही नही। यह सरासर झूठा है।' लेकिन जो पैगबर की तरह बधा था, उसने क्या कहा? वह मुस्कुराया। उसने कहा, 'यह तो लिखा ही है शास्त्रो मे कि उसके पैगबरो को सदा तकलीफे झेलनी पड़ेगी। तुम्हारे कोड़ो से कुछ भी सिद्ध नही होता है—इतना ही सिद्ध होता है कि शास्त्र सही हैं।'

पागल आदमी का अर्थ क्या होता है? इतना ही कि जिसने अब खुली आख सपने देखने शुरू कर दिये, जो अपने सपनो मे भरोसा करने लगा है—इतना कि यथार्थ झूठा पड जाता है, सपने ज्यादा सच मालूम होते है।

तो तुम्हारे कवि और पागलो मे कोई बहुत अतर नही होता है। कवि थोडे कुशल पागल है, जिनके पास कुछ प्रतिभा है, सुदर गीत रच सकते है, कि सुदर चित्र बना सकते है। अकसर तो तुम कवियो के पास मत जाना—उनके गीत का सौदर्य देखकर, अन्यथा वहा एक कुरूप आदमी पाओगे। गीत को सुन लेना। गीत मे बडा सौदर्य हो सकता है। कभी-कभी तो बडी आकाश की ऊचाई कवि छू लेते हैं।

सपनो को बाधा क्या है? सपनो को कोई सीमा नही है। जहा तक सपना देखना हो, देख सकते हो। न पहाड रोकते है, न आकाश रोकते है। लेकिन सपने तुम जो देखते हो वह खबर देते है कि जिस चीज की कमी रह गयी, उसको सपने मे पूरा कर रहे हो। भिखमगा सपने देखता है सम्राट होने के। और अकसर सम्राटो ने भिखमगे होने के सपने देखे। देखे ही नही, पूरे किये। महावीर, बुद्ध सम्राट थे। लेकिन भिखारी होने का सपना पैदा हो गया। न केवल सपना देखा, उसे पूरा किया।

भिखारी सम्राट होने के सपने देखते है। जो नही हो रहा है, जो नहीं है पास उसको सपने मे देखना पडता है।

तो जरूरी नही है कि जिसने ये पक्तिया लिखी हो ये पक्तिया प्यारी है, सार्थक है।

बैठे-बैठे दिले-नादा ये खयाल आया है
हम नही आये यहा कोई हमे लाया है।

खयाल तो दुरुस्त है। लेकिन यह खयाल ही नही है, यह सत्य है। तुम यहा आये कहा? कोई लाया है। तुमने न तो आने का निर्णय किया था, न तुमने आने की आकाक्षा की थी। न तुमसे

किसी ने पूछा था कि तुम ससार जाना चाहते, जीवन मे उतरना चाहते? कोई तुम्हे उतार गया है। एक दिन अचानक तुमने जागकर पाया कि तुम यहा हो। हमने सदा अपने को जिदगी के बीच मे पाया है। जिदगी के प्रारभ मे तो किसी ने नही पाया। जरूर कोई लाया है। कोई आख पर पट्टिया बाधकर इस बगीचे मे छोड गया है।

बैठे-बैठे दिले-नादा ये खयाल आया है।
हम नही आये यहा, कोई हमे लाया है।

और अगर यह खयाल ही रहा तो ज्यादा देर न टिकेगा, चला जायेगा। खयाल आते है, जाते है। खयाल बसते थोडे ही है। खयाल का कोई बडा भरोसा थोडे ही है। जब तक कि यह खयाल ध्यान न बन जाये, तब तक इस पर भरोसा मत करना। यह तो आयी है तरग, चली जायेगी। अभी आयी है, अभी भूल जाओगे। क्षणभर मे उतर जायेगा खयाल।

जिस दिन यह खयाल ध्यान बन जाये, यह तुम्हारी स्थिर चित्त की भाव-दशा बन जाये कि कोई लाया है—क्या परिणाम होगे? परिणाम बडे दूरगामी होगे। अगर कोई लाया है तो तुम्हारे अहकार के लिए कोई जगह न रह जायेगी। जन्म किसी ने दिया, जीवन किसी ने दिया। तुम क्यो अकड़े फिरते हो? तुम नाहक बोझ ढो रहे हो इस 'मै' का। न तुम आये, न तुम हो, न तुम जाओगे। कोई लाया, कोई रखे है, कोई ले जायेगा।

हिदू पुराण बड़ी मधुर कथा कहते है। जो लाया वह ब्रह्मा। जो सम्हाले वह विष्णु। जो ले जायेगा वह शिव। तुम पर कुछ छोड़ते नही। काम ही नही छोड़ते कुछ। ब्रह्मा ले आया है, विष्णु सम्हाले है, शिव ले जायेगे। मतलब केवल इतना है कि विराट ने तुम मे एक तरग ली है।

वही विराट जब चाहेगा तो तरग समा जायेगी।

तुम अपने को बीच मे मत लाओ। जब इतनी विराट चीजे भी तुम्हारे बिना हो गयीं, तो तुम छोटी-छोटी बातो का हिसाब मत रखो कि मैने मकान बनाया है। जब तुमने अपने को ही नही बनाया है तो तुम मकान भी क्या बनाओगे? यह तो जिसने तुम्हे बनाया है, उसी ने बनवा लिया होगा। उसी ने तुमसे यह मकान भी बनवा लिया होगा।

एक कहानी मैं पढ़ रहा था। एक नास्तिक बोल रहा था। ईश्वर के विपरीत प्रमाण दे रहा था। और अतत उसने बडे नाटकीय ढग से घूसा मारकर टेबल पर कहा कि अगर ईश्वर हो तो मै चुनौती देता हू, इसी वक्त अपने किसी देवदूत को भेजो ताकि मुझे एक चाटा मारे—चाटा सुना जा सके, देखा जा सके। ऐसे कोई देवदूत तो आते नहीं, ईश्वर ऐसी चुनौतिया लेता नही। ऐसा ले तो मुश्किल मे पड़ जाये। इतने लोग है, इतनी चुनौतिया है। लेकिन एक आदमी बीच मे से उठा, उसने आकर एक चाटा मारा। उसने कहा, यह क्या करते हो? उसने कहा कि ईश्वर ने मुझे भेजा है। ईश्वर ने कहा कि तुम इस योग्य नही कि देवदूत भेजे जाये, मै ही काफी हू।

मकान तुमसे बनवा लेता है। दुकान तुमसे चलवा लेता है। काम तुमसे हजार करवा लेता है। लेकिन तुमको ही जब उसने बनाया—और तुम्हारी नियति मे, तुम्हारी प्रकृति मे बीज डाले वासनाओ के, इच्छाओ के। उन्ही इच्छाओ के बीजो का फिर रूपातरण होता है, वृक्ष बनते है।

तुम जरा पक्षियो को देखो? उन्होने तो कोई आर्किटेक्चर का कोई शिक्षण नही लिया। कैसे प्यारे घोसले बना लेते है। ऐसे भी पक्षी है कि उनको जन्म देने के बाद माता और पिता तो उड़ जाते है। अडा ही छोड़कर उड़ जाते है। अडा बाद मे फूटता है। तो पक्षियो को अपने मा-बाप से मिलने का मौका भी नही आता। इसलिए शिक्षण का कोई उपाय भी नही है, कोई स्कूल नही। लेकिन जब वे पक्षी बड़े होते है, फिर घोसला बनाते है। और घोसला ठीक वैसा ही होता है जैसा उनके मा-बाप ने बनाया था। वे भी उड़ जायेगे अडे को रखकर। अडा फूटेगा तब मा-बाप पास न होगे। पुन सदियो-सदियो अनत काल तक ऐसा सिलसिला चलता रहेगा।

वैज्ञानिक बड़े चकित थे कि यह घोसला बन कैसे जाता है। और घोसला कोई छोटी प्रक्रिया नही है। एक पक्षी का घोसला उतारकर बनाने की कोशिश करो। तुम बड़ी मुश्किल मे पड जाओगे। तिनको से, धागो से, पखो से पक्षी ऐसे सुदर घोसले बनाते है। कभी-कभी तो बड़े जटिल घोसले बनाते है।

कोई बनवा लेता है। जिसने पक्षियो को बनाया है, उसी ने शायद पक्षियो के द्वारा घोसले बनाने की योजना भी उनके भीतर कर रखी है। बिना शिक्षण के करवा लेता है।

तुम कहते हो मैने प्रेम किया, कि मै एक स्त्री के प्रेम मे गिर गया। यह तुमने किया? या कि जिसने तुम्हे जन्म दिया, उसने

ही यह प्रेम भी तुम्हे दिया ?

जीवन को थोड़ा परखो। फिर से छानो। फिर से विश्लेषण करो। तुम पाओगे कोई करवा रहा है।

यह खयाल तो बड़ा अच्छा है अगर ध्यान बन जाये। और ध्यान से मेरा अर्थ है, अगर यह खयाल स्थिर भाव बन जाये, तुम्हारा बोध बन जाये।

बैठे-बैठे दिले-नादा ये खयाल आया है,
हम नही आये यहा, कोई हमे लाया है।

इतने पर ही सारा धर्म पूरा हो जाता है—अगर तुम्हे ये समझ मे आ जाये कि कोई हमे लाया है, कोई हमे ले जायेगा, कोई हमारे भीतर श्वास ले रहा है, कोई हमारे भीतर जी रहा है। तो तुम अकर्ता भाव को उपलब्ध हो गये। फिर तुम कर्ता नही हो।

और जब तुम कर्ता नही हो तो तुम्हारी सारी जीवन-ऊर्जा साक्षी बन जायेगी। कर्ता मे नियोजित है जीवन-ऊर्जा, करने मे लगी है। अगर करने से तुम्हारा हाथ अलग हो जाये ऐसा नही कि कर्म बद हो जायेगा, कर्म तो चलेगा—और सुडौल चलेगा, और शुभ चलेगा। भूल-चूक कम हो जायेगी, क्योकि तुम्हारे कारण जो बाधा पड़ती थी वह भी मिट जायेगी। अबाध उसकी धारा तुमसे बहने लगेगी। कर्म तो चलता रहेगा। वह तो उस चलानेवाले पर है। वह तो पूर्ण पर है। लेकिन तुम, तुम्हारी ऊर्जा बचेगी। वही ऊर्जा सगृहीत होकर साक्षी-भाव बनती है। वही ऊर्जा समाधि बनती है।

किसने नन्हा-सा मुहब्बत का ये जलाकर दिया
दिले-वीरा के अधेरे पे तरस खाया है।

और वही ऊर्जा, वही समाधि दीया बनेगी। वही जलेगी तो तुम प्रकाशित होओगे। जब तक ध्यान की ज्योति न जले भीतर, तुम प्रकाशित न हो सकोगे। और ध्यान की ज्योति बाहर से भीतर नहीं डाली जा सकती—अतर्तम मे ही खिलती है।

जैसे वृक्षो मे फूल लगते है तो वृक्ष मे रसधार बहती है—उसी रसधार के आखिरी छोर पर रगीन फूलो का जन्म होता है। ऐसे ही तुम्हारे जीवन के वृक्ष मे रसधार बह रही है। वही रसधार जब ध्यान की तरह पकती है, समाधि के फूल खिलते है। तब तुम्हारे भीतर दीया जलेगा।

कविताओ को गुनगुनाकर भूल मे मत पड़ जाना। कविताए प्यारी है। लेकिन जब तुम्हारा जीवन का काव्य निर्मित होगा तब तुम पाओगे सब कविताए फीकी है।

जिस दिन तुम्हारा जीवन गीत गुनगुनाएगा, उस दिन तुम पाओगे सब कविताए कूड़ा-कर्कट है।

और घबड़ाना मत।

दीया अगर बुझा है तो इसे इस तरह देखना कि यह जलने के लिए प्रतीक्षा है। बुझे को निराशा मत बना लेना। ऐसा मत सोचना 'अब क्या करे ? अधेरा सघन है। दीया बुझा है।' हाथ-पैर रोककर गिर मत पडना। थक मत जाना।

हम जिसको मौत समझते है पैगामे-हयाते-जदीद है वोह
ये फूल चमन मे जितने है, फिर खिलने को मुझति है।

जिसको हम मौत कहते है, वह भी मौत नहीं। वह भी नये जीवन का सदेश है।

हम जिसको मौत समझते है, पैगामे-हयाते-जदीद है वोह
ये फूल चमन मे जितने है, फिर खिलने को मुझति है।

जो फूल मुर्झा गया, उसमे तुम नये खिलनेवाले फूल की छवि देखना। यहा सब फिर से खिलने को मुर्झाता है। अगर दीया बुझा है तो जलने को ही प्रतीक्षा कर रहा है कि जले।

इसे निराश होने का कारण मत बना लेना। वस्तुत यही तो आशा की किरण है, कि तुम्हारा दीया अभी बुझा है। जल सकता है। कुछ होने को बाकी है। यही तो आशा की किरण है कि सब हो नही गया है। जो हुआ है वह क्षुद्र है। जो नही हुआ है वह विराट है। वह विराट अभी प्रतीक्षा कर रहा है। वह होने को है। यही तो जीवन की सभावना, उत्फुल्लता है, प्रसाद है, कि कुछ होने को है।

तो पैर मे तुम घुघर बाध सकते हो और नाच सकते हो। और जो होने को है वह सबसे बड़ा है। जो हो चुका है, जो हुआ है जन्म, जो हुआ है देह का मिलना, जो हुआ है धन-सपत्ति, पद-प्रतिष्ठा—वह सब छोटा है। जो होने को है—ध्यान, समाधि, मोक्ष—वह विराट है। जो हुआ है वह ना-कुछ है। जो होने को है वह सब कुछ है। इसे आशा का सचार समझना। इसे समझना जीवन का सदेश।

और एक बार तुम्हारे भीतर आशा पैदा हो जाये और तुम निराश न रह जाओ, हताश न बैठ जाओ, तुम्हारी जीवन ऊर्जा उठ बैठे, आशा से भरपूर—तो रसधार बहने लगी। फूल खिलेगे। दीये भी जलेगे।

यह तेरा तसव्वुर है या तेरी तमन्नाए
दिल मे कोई रह-रहके दीपक-से जलाए है।
यह तेरा तसव्वुर है या तेरी तमन्नाए
दिल मे कोई रह रहके दीपके-से जलाए है।

जरा तुम्हारे भीतर आशा उठे तो उसका तसव्वुर, उसकी तमन्ना, उसकी खोज के लिए पैर आगे बढने लगे। उसकी खोज करनी है जिसने तुम्हे भेजा है। उसकी खोज करनी है जहा से तुम आये हो। अगर हिदुओ की भाषा का उपयोग करना हो तो कहो उसकी खोज करनी है, जिसने तुम्हे भेजा है। अगर जैनो की भाषा का उपयोग करना है तो कहो उसकी खोज करनी है, जहा से तुम आये हो। मूल-स्रोत की। जीवन के मूल-बिदु की, जहा से सारा विस्तार हुआ है।

जरा-सा भी तुम्हारे भीतर उसकी खोज का अकुर पड़ जाये—दिल मे कोई रह-रहकर दीपक-से जलाए है। तो पल-पल दीये पर दीये, दीयो की पक्तिया, दीप-मालाए जल उठेगी। तुम्हारा रास्ता ज्योतिर्मय हो जायेगा।

लेकिन इस ज्योतिर्मय के पहले जोखिम उठानी पडेगी। अगर जोखिम न उठायी तो कवि रह जाओगे, अगर जोखिम उठायी तो ऋषि हो जाओगे। जोखिम उठानी पड़ेगी। जोखिम है उस सब को खोने की, जो अधेरे मे ही मिलता है—और अधेरे मे ही मिल सकता है। अधेरे के सारे के सारे व्यवसाय को खोने की जोखिम शर्त है—दीये के जलने की।

दीया जल सकता है। कीमत चुकाने को राजी हो जाओ। मुफ्त वह दीया नहीं जलेगा। और अच्छा है कि मुफ्त नही जलता। क्योकि मुफ्त जल जाता तो कोई रस न होता। मुफ्त जल जाता तो तुम धन्यवाद भी अनुभव न करते। मुफ्त जल जाता तो तुम प्रौढ़ ही न हो पाते। मुफ्त जल जाता तो तुम जाग ही न पाते। तो दीया भी जलता रहता और तुम कमरे मे अधेरे मे ही रहते। तुम आख बद किये सोये रहते।

दीये के जलने से ही थोड़े ही रोशनी हो जाती है—आख भी तो खुली होनी चाहिए। सूरज भी निकल आये और तुम आख बद किये पड़े रहो तो तुम अधेरे मे रहोगे। छोटी-सी दो पलके इतने बड़े सूरज को नकार देती है।

तो चुनौती स्वीकार करो। दीया जल सकता है—इस आशा से उद्वेलित होओ। उठो।

कठिन होगा। सघर्षण होगा। लेकिन उसी सघर्षण मे तुम जागोगे, आख खुलेगी।

और अच्छा है कि आख खुलते-खुलते ही दीया भी जले। कोई दूसरा जला दे दीया तो तुम आख न खोलोगे।

ऐसा मैने सुना है, एक पुरानी चीनी कथा है, एक किसान ने परमात्मा से बड़े दिनो तक प्रार्थना की कि 'हे प्रभु। तुझे खेती-बाडी का कुछ पता नही। जब पानी चाहिए तब पानी नही, जब पानी नहीं चाहिए, तब बेतहाशा पानी। बाढ भेज देता है। तुझे कुछ समझ नही। तूने कभी खेती-बाड़ी नही की। ओलो की क्या जरूरत है? जब धूप चाहिए तब धूप नही।'

आखिर परेशान हो गया परमात्मा भी सुन-सुनकर। उसने कहा, 'आखिर तू चाहता क्या है?' उस किसान ने कहा कि एक साल मुझे मौका दे। आखिर जिदगी हो गयी खेती-बाडी करते हुए। मुझे पता है, तूने कभी खेती-बाडी की भी नही। एक साल जो मै चाहू, वैसा हो।'

परमात्मा ने कहा, 'चल यही सही।'

एक साल ऐसा हुआ कि किसान जब धूप चाहता तब धूप, जब पानी चाहता तब पानी। बडी फसल उठी। ऐसी कभी न उठी थी। गेहू की बाले इतनी बड़ी-बड़ी हुई कि किसान ने कहा, 'अब देखो। सालभर के बाद दिखलाऊगा कि क्या तुम अब तक परेशान करते रहे ससार को।' आदमियो के सिरो के ऊपर चली गयी। फिर वक्त आया फसल काटने का। फसल काटी गयी। बाले तो बहुत बडी-बड़ी थी, लेकिन गेहृ उनमे न थे। वह किसान बड़ा हैरान हुआ कि यह मामला क्या हुआ। उसने प्रभु को कहा, 'हे प्रभु। समझे नही—धूप जब चाहिए तब धूप दी। वर्षा जब चाहिए तब वर्षा दी। वर्षभर ठीक मेरे हिसाब से सब चला। और बाले इतनी ऊची गयी, कभी न गयी थी। किसी ने देखी न थी इतनी ऊची बाले। लेकिन मामला क्या है? अदर कोई गेहू नही है।'

तो परमात्मा हसा और उसने कहा, 'तूने सिर्फ धूप मागी, पानी मागा, ओले नहीं मागे, तूफान नही मागा, आधी नही मागी। आधी और तूफान के बिना भीतर का सत्व सगृहीत नही होता। तो बाले बड़ी हो गयी लेकिन भीतर प्राण सगृहीत न हुए।'

सघर्ष के बिना कही प्राण सगृहीत हुए है?

तो अगर तुम्हे मुफ्त मिल जाता होता भीतर का दीया भी तो

तुम्हारे भीतर आत्मा पैदा न होती। तुम बाल हो जाते बडी लबी, मगर भीतर गेहू का दाना न होता।

इस जीवन मे जैसा है, सब वैसा ही जरूरी है। जो चेष्टा से मिलना चाहिए, वह चेष्टा से ही मिलता है। क्योकि बिना चेष्टा के वह मिल ही नही सकता, वह पैदा ही नही होता, तुम्हारी पात्रता ही निर्मित नहीं होती।

दूसरा प्रश्न भगवान, तुम्हारे चरणो मे शत-शत प्रणाम।

'दर्शन' ने पूछा है।

प्रश्न तो है ही नही। 'दर्शन' की वृत्ति भी प्रश्न पूछने की नहीं है। उसने सिर्फ अपना अहोभाव प्रगट किया है।

इसे समझना।

जो पूछते है, जरूरी नहीं कि समझ पायेगे। पूछने के कारण ही बहुत बार तुम समझने से वचित रह जाते हो। क्योकि जब तुम पूछते हो तो प्रश्न को तुम इतना-इतना भारी समझ लेते हो, और तुम प्रश्न मे इतने व्यस्त हो जाते हो कि उत्तर के लिए जगह ही नहीं मिलती तुम्हारे भीतर प्रवेश पाने की। तुम उत्तर के लिए दरवाजा नहीं छोड़ते।

समझ तो वे ही सकते हैं जो पूछते नही। न पूछना ठीक-ठीक उत्तर को समझ लेने का अनिवार्य चरण है।

तो 'दर्शन' ने न तो कभी कुछ पूछा है—सिर्फ एक बार को छोडकर। पहली बार जब वह मुझे मिलने आयी थी, वर्षो पहले, तब विवाद करने आयी थी। कोई बात उसे जची न थी तो तर्क करने आयी थी। मैने उसी दिन देख लिया था कि वह उलझ गयी, अब लौट न सकेगी। आयी थी तर्क करने, रह गयी सदा को। उसके बाद उसने कभी कुछ पूछा नहीं। वर्षों बीत गये। और इन वर्षो मे बहुत लोग आये-गये, वह फिर मेरे साथ रही। रास्ता ऊबड़-खाबड़ था तो भी, कंटकाकीर्ण था तो भी। अब तो मै धीरे-धीरे आश्वस्त हो गया हू कि लौटकर पीछे देखूगा तो कोई भी न हो, तो भी 'दर्शन' होगी।

वह छाया की तरह पीछे रही है। पहले ही दिन विवाद उसने छोड दिया। सवाद शुरू होता है तभी, जब हम विवाद छोडते है। उत्तर पहुचने लगता है तभी जब हम प्रश्न छोड़ देते है। उसने कुछ पूछा नहीं, इतना सिर्फ कहा है, तुम्हारे चरणो मे शत-शत प्रणाम। यह भी पहली दफे कहा है।

नागुफ्तनी हदीसे-मुहब्बत नही मगर
जो दिल की बात वह कहे क्या जबा से हम ?

—प्रेम कोई छिपाने की बात नही।

नागुफ्तनी हदीसे-मुहब्बत नहीं मगर

—प्रेम कोई न कहने की बात नही।

जो दिल की बात वह कहे क्या जबा से हम ?

लेकिन जो दिल की बात है उसे कैसे जबान से कहा जाये। कहना भी चाहे तो भी कही नहीं जा सकती। जो भी कहा जा सकता है, वह बुद्धि का होता है। जो नहीं कहा जा सकता, वही हृदय का है।

तो उसे मैने रोते देखा है, हसते देखा है, प्रसन्न देखा है, उदास देखा है। लेकिन कभी उसने कुछ कहा नही। इस न कहने के कारण उसे बहुत कुछ मिला है, जो उनको नही मिल पाया जो बहुत कहने मे लगे है।

लेकिन, फिर भी खामोश भी रहो, चुप भी रहो तो भी हृदय कुछ कहना चाहता है। नही कह सकता, असमर्थ पाता है—फिर भी कुछ कहना चाहता है। कहने मे, अभिव्यक्त होने मे सबधित होना चाहता है।

मै हजार जब्त करू तो क्या, मै हजार कुछ न कहू तो क्या ?
कि दयारे-नाजे-हबीब मे, मेरी खामुशी भी सवाल है।

उस प्रेमी के दरबार मे, उस प्रेमी की महफिल मे, मै हजार जब्त करू तो क्या, मै हजार कुछ न कहू तो क्या—न कहो, सम्हालो तो भी दयारे-नाजे-हबीब मे, मेरी खामुशी भी सवाल है।

लेकिन चुप रहना भी तो अभिव्यक्ति हो जाती है। न कुछ कहकर भी तो कुछ कह दिया जाता है। मौन भी तो अपनी एक मुखरता रखता है।

तो यद्यपि 'दर्शन' ने कभी कुछ कहा नहीं, लेकिन बहुत कुछ वह कहती रही है—अपनी चुप्पी से, अपने शात मौन से। अनेक बार मैने उससे पूछा भी है, लेकिन फिर भी वह बचा गयी, उसने कुछ कहा नहीं है।

ऐसी भाव दशा जल्दी ही परम फूलो को उपलब्ध होती है। और आज उसने पहली दफा लिखा है। एक बार और उसने पत्र लिखा था—वह भी खाली कागज भेजा था, उसमे कुछ लिखा नहीं था। उत्तर मै उसका भी दिया था। क्योकि खाली कागज मे

भी तो कोई बड़ी अतर्तम से उठी हुई प्रश्नावली है। कुछ जो नहीं कहा जा सकता, जिसे शायद वह खुद भी नहीं तय कर पाती कि कैसे कहे, उसको खाली कागज मे लिखकर भेज दिया है। अपने शून्य को। आज उसने धन्यवाद दिया है। कुछ लिखा है। तुम्हारे चरणो मे शत-शत प्रणाम। उसके भीतर कुछ हो रहा है, वह बडी पीड़ा से गुजर रही है। पुराना ससार टूट रहा है। नये का अभ्युदय हो रहा है। इन पीड़ा के क्षणो मे अत्यत जरूरी है कि वह जो होने जा रहा है, उसके प्रति अहोभाव से भरी रहे। अन्यथा, पुराना ससार काफी वजनी है। उसका जाल-जजाल गहरा है। उसमे बार-बार उतर जाने की, उलझ जाने की सभावना है। लेकिन उसके सौभाग्य से वह जाल खुद ही टूटा जा रहा है। वह जाल खुद ही पीछे हटा जा रहा है।

सदा ही ऐसा होता है। जिस दिन तुम तैयार हो, उसी दिन ससार तुम्हे छोडने को तैयार हो जाता है। तुम लाख कहते हो कि क्या करे, कैसे छोड़े, ससार नही छोड़ रहा है। गलत कहते हो। जिस दिन तुम छोड़ना चाहते हो, उस दिन ससार क्षणभर को नहीं पकड़ता है, क्योकि ससार ने तुम्हे कभी पकड़ा ही न था। इधर तुम छोड़ने लगे, उधर ससार अपने आप छोड़ने लगता है।

ऐसी ही घड़ी से वह गुजर रही है। ऐसी घड़ी मे प्रणाम करने का खयाल, सौभाग्य है क्योकि ऐसे समय मे तो शिकायत करने का मन होता है। अगर वह शिकायत लिख भेजती आज तो मै समझता कि ठीक था, तर्कयुक्त था, क्योकि पीड़ा से गुजर रही है, घनी पीड़ा से गुजर रही है। आज वह मुझ पर नाराज होती तो समझ मे आनेवाली बात थी। क्योकि यह बिलकुल स्वाभाविक है कि जब पीड़ा से कोई गुजरे तो कहीं न कही, किसी न किसी को दोष दे। और मुझसे ज्यादा करीब उसके कोई भी नहीं। तो जो भी करीब हो, उसी को हम दोष देते है।

आज इस दुख की घड़ी मे स्वाभाविक था कि वह कहती कि 'तुम्हीं' ने सब खराब कर दिया। सब उजड गया। सब धागे टूटे जा रहे है। लेकिन इस घड़ी मे उसका चरणो मे प्रणाम भेजना बहुत बहुमूल्य है। इस किरण के सहारे ही वह पार हो जायेगी।

हजारो तूर उसी की हसरते-दीदार पर कुर्बां,
कि जिसकी जिदगी ही हसरते-दीदार हो जाए।

हजारो सूरज भी उसकी आखो पर कुर्बान है; उसकी देखने की अभिलाषा पर कुर्बान है—जिसके जीवन का लक्ष्य ही उस परम प्रिय को देखना रह गया हो।

हजारो तूर उसी की हसरते-दीदार पर कुर्बां,
कि जिसकी जिदगी ही हसरते-दीदार हो जाए।

उसे मैने 'दर्शन' नाम दिया है। 'दर्शन' का अर्थ होता है 'हसरते-दीदार', देखने की अभिलाषा। और उसकी देखने की अभिलाषा गहन होती चली गयी है। अब तो यहा बैठती भी है तो आखे बद करके ही बैठती है। जैसे-जैसे देखने की अभिलाषा गहन होती है, वैसे-वैसे आख भी बद होने लगती है। क्योकि आख से तो वही देखा जा सकता है जो रूप है, आकार है, नाम है। आख बद करके उसे देखा जा सकता है—जो अरूप है, निराकार है, अनाम है।

हजारो तूर उसी की हसरते-दीदार पर कुर्बां,
कि जिसकी जिदगी ही हसरते-दीदार हो जाए।

और 'दर्शन' की जिदगी अब उस दिशा मे प्रवाहित हो रही है, उसकी नाव, जहा उस परम प्यारे के सिवाय कोई और न बचेगा।

कठिन होगी यात्रा। सब छूटेगा। लेकिन सब छूटने के मूल्य पर ही सब मिलता है। एक ही बात खयाल रखना—

हरम हो, बुतकदा हो, दैर हो, कुछ हो, कही ले चल
जहा वह हुस्न-लामहदूद हो, ऐ दिल। वही ले चल।

—जहा वह परम सौदर्य हो, अब वही चलेगे।

हरम हो, बुतकदा हो, दैर हो, कुछ हो, कही ले चल

—मदिर हो, मस्जिद हो, काबा हो, काशी हो, कुछ भी हो।

हरम हो, बुतकदा हो, दैर हो, कुछ हो, कहीं ले चल
जहा वह हुस्न-लामहदूद हो, ऐ दिल। वही ले चल।

जहा वह असीम सौदर्य हो। जहा उस परम प्रिय का दर्शन हो।

उसके लिए सब निछावर करने की तैयारी रखना। वह आखिरी दम तक परीक्षा लेता है। वह आखिरी-आखिरी घड़ी तक परीक्षा लेता है। आखिरी-आखिरी घड़ी तक पीड़ा देता है। लेकिन जो उस पीड़ा से गुजर जाता है, वह उस महापात्रता को उपलब्ध हो जाता है—जहा तुम्हे परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ता, परमात्मा तुम्हे खोजता आता है।

और अगर, अहोभाव हो तो घड़ी दूर नही। शिकायत से लोग दूर होते है परमात्मा से, धन्यवाद से पास होते है। जितना धन्यवाद गहन होता जाता है उतनी दूरी कम होती जाती है। अगर अहोभाव परिपूर्ण हो जाये तो दूरी समाप्त हो जाती है। अहोभाव

के क्षण मे अचानक तुम पाते हो वही है मौजूद। उसने ही तुम्हे सब तरफ से घेरा है। उसके अतिरिक्त और कोई भी नही। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नही है।

गुल मे, शफक मे, दामने-अब्रे-बहार मे
देखा जो मैने आए नजर तुम जगह-जगह।

सध्या की लाली मे देखा, कि वसतो की वर्षा मे देखा।

गुल मे, शफक मे, दामने-अब्रे-बहार मे
देखा जो मैने आए नजर तुम जगह-जगह।

वही दिखायी पडने लगेगा। ऐसा अहोभाव हो कि कही मन के कोने-कातर मे भी सरकती कोई शिकायत न रह जाये, उसके दुख भी स्वीकार हो, उसकी पीडा भी स्वीकार हो। उसने दी पीडा, इस योग्य समझा। यही क्या कम है। ऐसे भाव मे मदिर निर्मित होता है। ऐसे भाव की दशा मे भक्त निर्मित होता है।

और 'दर्शन' जल्दी ही उस दशा को उपलब्ध हो सकती है। लेकिन जितने हम करीब पहुचते है, उतना ही खतरा भी बढता है। जो जमीन पर चलते है, समतल जमीन पर, उनके गिरने का कोई भी डर नही। लेकिन जो पहाड की ऊचाइयो पर चढते है, गिरने का डर भी उसी के साथ-साथ बढ़ता जाता है। गिरे तो बुरी तरह गिरेगे। इसलिए जितनी ऊचाई आती है, उतने ही सम्हलकर और सावधान होकर चलने के क्षण आते है। जमीन पर गिरे भी तो क्या गिरे, फिर उठकर खड़े हो जायेगे।

मैने सुना है, बायजीद एक गाव के पास से गुजर रहा था। उसने एक शराबी को देखा, जो डगमगाता चल रहा था। बायजीद ने उसे पकड़ा और कहा कि, 'सुन पागल। कितनी पी रखी है? कुछ होश सम्हाल। गिर पड़ेगा तो कीचड मची है, सब कपड़े खराब हो जायेगे।'

उस शराबी ने आख खोली और हसने लगा। उसने कहा, 'बायजीद। हम अगर गिरे तो कपड़े ही खराब होगे, तुम अगर गिरे तो ?'

बायजीद बडा सूफी फकीर था, बड़ा सत था।

'तुम अगर गिरे तो ?'

तो कहते है, बायजीद ने उसके चरण छुए और कहा कि ठीक समय पर तूने मुझे चेताया। अगर हम गिरे तो कपड़े तो दूर, आत्मा तक खराब हो जायेगी। तू गिरा तो सुबह नहा-धोकर ठीक हो जायेगा, यह भी सच है। अगर हम गिरे तो जन्म-जन्म लग जायेगे।

'दर्शन' वहा है जहा सम्हालकर चलना होगा प्रतिपल। और रोज-रोज सम्हालने को ज्यादा सम्हालना होगा। ज्यादा सावधानी, सावचेती।

इन पीड़ा के क्षणो को अगर ठीक से पार कर लिया तो मदिर ज्यादा दूर नही है, पास ही है—कुहासे मे ढका है।

तीसरा प्रश्न कल जिस क्षण आपने कहा कि 'महावीर ने स्वाधीनता को आत्यतिक मूल्य दिया, वह मूल्य किसी और ने नही दिया' उस क्षण मै आपको निहारता ही रहा। क्या कर दिया आपने ? मै अपनी अभव्यता देखता रहू, अल्पता देखता रहू, और आपको निहारता रहू, शीश नवाता रहू।

सुना यदि शात मन से तो कभी-कभी ऐसे झरोखे खुलेगे।

महावीर ने तो कहा है कि अगर कोई ठीक से सुन ले तो मात्र श्रवण से भी पार हो जाता है। इसलिए महावीर ने कहा कि मेरे चार तीर्थ है, चार घाट है जिनसे लोग उस पार जा सकते है श्रावक, श्राविका, साध्वी, साधु।

श्रावक-श्राविका का अर्थ होता है जिन्होने ठीक से सुना, श्रवण किया। सिर्फ सुनकर कोई पार जा सकता है? निश्चित ही। लेकिन सिर्फ सुनने को कोई छोटी घटना मत समझना। सिर्फ सुनना बड़ी घटना है—करने से भी बडी घटना है। करना तो आसान है, सुनना कठिन है। क्योकि ठीक सुनने का अर्थ है जब तुम्हारे भीतर कोई विचार की तरग न हो, तभी तुम वह सुन पाओगे जो कहा जा रहा है। अगर विचारो की तरगे है तो तुम वही सुन लोगे जो तुम्हारी विचार की तरगे व्याख्या करेगी।

मै यहा बोल रहा हू। तुम वहा सोच भी रहे हो। तो मिश्रित होगा सुनना। मेरे कहे पर तुम्हारे विचारो की खोल चढ़ जायेगी। मेरे कहे पर तुम्हारे विचारो का रग बिखर जायेगा। तुम वही समझ लोगे जो तुम समझ सकते थे, वह नहीं जो मैने कहा था।

तो कभी-कभी ऐसी घड़ी घटेगी सुनते-सुनते कि तुम उस जगह पहुच जाओगे जिसको महावीर श्रावक का तीर्थ कहते है। श्रवण के घाट पर पहुच जाओगे। अचानक। तब क्या मै कह रहा हू, यह सवाल नहीं है—कोई भी शब्द, भाव-भगिमा मात्र, तुम्हारे भीतर कोई झरोखा खोल देगी। कोई द्वार जो बद पड़ा था

जन्मो से, हवा के एक झोके मे खुल जायेगा। कोई दृश्य जो तुमने कभी न देखा था, दिखायी पड जायेगा। ऐसा ही कुछ हुआ है।

'कल जिस क्षण आपने कहा, महावीर ने स्वाधीनता को आत्यतिक मूल्य दिया, वह किसी और ने नहीं दिया, उस क्षण मै आपको निहारता ही रहा। क्या कर दिया आपने ?'

मैने कुछ भी नही किया। मेरे किये क्या हो सकता है ? तुमने कुछ होने दिया। मैने कुछ किया नही। तुमने कुछ होने दिया। इस फर्क को ठीक से समझ लेना।

अगर तुमने ऐसा सोचा कि मैने कुछ कर दिया, तो यह तो परतत्रता की नयी जजीर शुरू हो जायेगी। तब तुम राह देखोगे कि मै कुछ करू तो हो।

इस भ्राति मे मत पडना। यह भ्राति होती है।

तुम एक राह से गुजर रहे हो। एक सुदर स्त्री दिखायी पड़ी। कुछ हो गया। अब तुम कहते हो, 'इस स्त्री ने कुछ कर दिया।' इस स्त्री ने कुछ भी नही किया। तुम्हारे भीतर ही कुछ हुआ। इसकी मौजूदगी ने सहारा दे दिया। इसने कोई जादू नही किया, कोई वशीकरण नही किया, जैसा लोग समझते है। शायद इसे तो खयाल भी न हो। तुम्हे कुछ हुआ, यह पक्का है। इसकी मौजूदगी ने कैटेलेटिक एजेट का काम किया। शायद इसकी मौजूदगी मे न हो पाता, देर-अबेर होता, लेकिन इसकी मौजूदगी मे कोई चीज तुम्हारे भीतर झलक गयी, लेकिन जो झलकी है वह तुम्हारी ही अतर-दशा है। इसकी मौजूदगी मे तुमको झलक मिली प्रेम की, लेकिन प्रेम तुम्हारी भाव-दशा है। तुम्हारे भीतर पड़ा हुआ प्रेम फूट पडा। इसकी मौजूदगी अवसर बनी। इसने कुछ किया नही। इसकी मौजूदगी निष्क्रिय अवसर है।

ठीक वैसे ही बुद्धपुरुषो की मौजूदगी निष्क्रिय अवसर है। बुद्ध या महावीर तुम्हारे भीतर कुछ करते नहीं। नही, इतनी हिसा भी वे न कर सकेगे। यह भी हिसा हो जायेगी। असमय मे कुछ कर देना ऐसा ही होगा जैसे गर्भपात हो जाये समय के पहले। नही वे प्रतीक्षा करेगे।

सुकरात कहता था मेरा काम दाई का काम है, मिडवाइफ। दाई का काम यह है कि जब बच्चा पैदा होने के करीब हो तब वह जरा सहारा दे दे। बिना सहारे के भी पैदा हो जायेगा बच्चा। थोड़ा सहारा दे दे। थोडी ढाढ़स बधा दे। थोड़ी हिम्मत बधा दो। लेकिन समय के पहले बच्चे को बहार न निकाल दे, अन्यथा बच्चा मृत होगा या अर्ध-जीवित होगा।

तो जो भी यहा घटेगा मेरे निकट तुम्हारे भीतर, तुम उसे घटने दे रहे हो—इतना याद रखना। भूलकर भी यह मत सोचना कि मैने कुछ किया। तुमने कुछ होने दिया। अगर यह तुम्हे खयाल रहे तो तुम मालिक रहोगे। तुम जब होने देना चाहोगे तभी हो जायेगा। अगर तुम सतत होने देना चाहोगे तो सतत होता रहेगा। लेकिन मालकियत मेरे हाथ मे मत दे देना।

ऐसी भूल अकसर हो जाती है। अकसर, जीवन मे हमारा सारा तर्क यही है कोई तुम्हारे पास से गुजरा और तुम्हे नमस्कार न किया—क्रोध आ गया। अब तुम कहते हो, इस आदमी ने क्रोधित कर दिया। इस आदमी ने कुछ भी नही किया। यह उसकी मर्जी नमस्कार करे न करे। हा, एक मौजूदगी बनी, एक अवसर बना। उसने नमस्कार नही किया। क्रोध तो तुमने होने दिया। इसे दोष दूसरे पर मत देना।

तुम्हारे भीतर कोई दूसरा कुछ करता नही। ऐसा ही समझो कि एक सूखा कुआ हो और हम उसमे एक बालटी डाले, खूब खडखड़ाए, खूब डुबकी लगवाए बालटी की, लेकिन कुछ भी न हो, क्योकि कुआ सूखा है। बालटी खाली की खाली वापस आ जाए। फिर भरे कुए मे हम बालटी डाले, तो भरकर आ जाये।

तुम अगर प्रेम से भरे हो तो परिस्थितिया अनुकूल बन जायेगी जिनमे तुम्हारा प्रेम उभरकर आ जायेगा। तुम अगर क्रोध से भरे हो तो परिस्थितिया अनुकूल बन जायेगी, जिनमे क्रोध उभरकर आ जायेगा।

यह ससार सभी परिस्थितियो का समागम है। यहा सभी परिस्थितिया मौजूद है। तुम जिससे भरे हो वही प्रगट होने लगेगा। अगर तुम थोडे शात, मौन से भर जाओ, तो तुम्हारे भीतर बहुत कुछ घटेगा, बहुत-से वातायन खुलेगे।

लेकिन भूलकर भी यह मत कहना कि मैने कुछ किया। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहना कि मेरी मौजूदगी मे तुमने कुछ होने दिया। और फिर ये भी कोशिश करना कि मेरी मौजूदगी के बिना भी वह हो जाये, ताकि तुम उसके मालिक बन सको।

मुझे सुन रहे थे, कुछ हुआ—अचानक तुम चौक गये, अवाक रह गए, चकित।

अब ऐसा ही सुबह बैठ जाना, सूरज ऊगते ही, सूरज को देखना। फिर वैसे ही शात, मौन उसे देखते रहना। तुम अचानक

पाओगे किसी दिन सूरज के ऊगने से भी वैसा हो जायेगा।

फिर पक्षियो के कोलाहल को सुनना। उनके कलरव को सुनना। किसी दिन तुम पाओगे सुनते-सुनते-सुनते फिर तार मिल गए। फिर हो गया। तब तो एक बात पक्की हो जायेगी कि तुम जहा भी होने देते हो वहीं हो जाता है।

फिर किसी दिन बीच बाजार मे, जहा होने की कोई आशा नही दिखायी पडती, वहा तुम बाजार के शोरगुल को मौन भाव से सुनना और तुम चकित होओगे वहा भी हो जाता है।

तब तुम मालिक होने लगे। तब तुम अपने पैरो पर खडे होने लगे। तब मै तुम्हारे लिए बैसाखी न बना, वरन मेरी मौजूदगी ने तुम्हारे पैरो को बल दिया।

ध्यान रखना, तुम्हारी आकाक्षा मुझे बैसाखी बना लेने की है। लेकिन बैसाखी मिल जाए तो भी तुम लगड़े ही रहोगे।

किसी गुरु को बैसाखी मत बनाना। और जो गुरु स्वय को तुम्हारी बैसाखी बनने दे वह तुम्हारा मित्र नहीं, शत्रु है, क्योकि वह तुम्हारे लगड़ेपन के लिए शाश्वतता दे रहा है। अब तुम सदा के लिए लगड़े रह जाओगे।

यही बात अकसर घटती है। तुम किन्हीं लोगो के पास जाकर कहोगे, कि आपकी मौजूदगी ने, आपने ऐसा कुछ कर दिया।

सदगुरु और असदगुरु की पहचान यही है। असदगुरु कहेगा, 'हा, मेरी शक्ति से ऐसा हुआ।' सदगुरु कहेगा, 'किसी की शक्ति का कोई सवाल नही। तुमने होने दिया', और तुम अगर होने दो तो कोयल की कुहू-कुहू से भी हो जायेगा। पानी के झरने की आवाज से भी हो जायेगा। सागर के तुमुल नाद से भी हो जायेगा। फिर तो बीच बाजार मे भी हो जायेगा। भीड़, कोलाहल, चलते हुए लोग, हजार तरह की बाते, शोरगुल—उससे भी हो जायेगा। क्योकि असली बात बाहर से भीतर नही आ रही है—असली बात भीतर से बाहर जा रही है। असली बात है कि तुम शात होकर सुनने मे समर्थ हो गए, तुमने कोई प्रतिक्रिया न की।

निश्चित ही, पहली दफा उसी व्यक्ति के पास हो सकेगा। जिससे तुम्हारा बड़ा श्रद्धा का लगाव है। पहली दफा। वहा आसान होगा, जहा बड़ा प्रेम का लेन-देन है, जहा दो हृदय साथ-साथ धड़कते है।

जब तुमने मेरी यह बात सुनी तब किसी कारण से, सयोगवशात तुम चुप थे। मन मे सन्नाटा था। सुनने को आतुर थे, इसलिए बोल नही रहे थे। उस आतुरता मे भी कोई ऐसी घड़ी आयी होगी जहा मेरे श्वास के और तुम्हारे श्वास के बीच एक लयबद्धता आ गयी, एक तालमेल हो गया। तो जिस तरह, जिस जगत मे मै स्पदित हो रहा हू, क्षणभर को तुम मेरे साथ नाच लिये, स्पदित हो गए। कुछ हुआ। कुछ—जिससे तुम चकित होओ। कुछ—जिस पर तुम भरोसा नहीं कर सकते। कुछ—जिसको तुम चाहोगे कि मै कहू कि मैने किया। क्योकि तुम्हे अपने पर आत्मविश्वास नही कि तुमसे ऐसा हो सकेगा।

फिर भी मै तुमसे कहता हू, तुम्ही से हुआ है। और बार-बार तुमसे यही कहूगा कि जब भी हो, स्मरण रखना तुम्ही से हो रहा है। मेरी परिस्थिति का उपयोग कर लो। मेरी मौजूदगी का उपयोग कर लो। मेरी मौजूदगी तुम्हे तुम्हारे भीतर की सपदा के प्रति थोड़ा जागरूक कर दे, फिर तुम मुझे भूलो। क्योकि मै बाहर हू। फिर तुम अपनी तरफ चलो।

बुद्ध ने कहा बुद्ध-पुरुष इशारा करते है, चलना तुम्हे पडता है। महावीर ने कहा है मै सिर्फ उपदेश करता हू, आदेश नही। मै वही बोल देता हू, जो है। तुम अगर सुनने को राजी हो सुन लो। जीसस ने कहा है अगर तुम्हारे पास आखे हो तो देख लो, मै मौजूद हू। तुम्हारे पास कान हो तो सुन लो, मै बोल रहा हू। तुम्हारे पास हृदय हो तो धड़क लो मेरे साथ।

ऐसा ही समझो कि थोड़ी, क्षणभर को, तुम मेरे साथ धडक लिये, श्वास से श्वास मेल खा गयी, धड़कन से धड़कन मेल खा गयी। एक क्षण को एक आरोह हुआ। तुम्हारे भीतर एक तरग उठी, उसने आकाश छू लिया। लेकिन इसे मै चाहता हू कि तुम सदा स्मरण रखना कि वह तुम्हारे ही कारण हुआ। क्योकि अगर मेरे कारण हुआ तो तुम मुझसे बधे। फिर बाजार मे न हो सकेगा। फिर पक्षियो के कलरव मे न हो सकेगा। फिर सागर के तुमुल नाद मे न हो सकेगा। फिर तुम बधे मुझसे। फिर तो मै तुम्हारा नशा हो गया। फिर तुम्हे मेरी तलफ लगेगी, कि जाए वहा, सुने वहीं, फिर सत्सग करे।

नहीं, सत्सग का अर्थ ही यह है कि तुम्हारी ऐसी घड़ी आ जाये कि सब जगह, जहा तुम हो वही सत्सग होने लगे। नहीं कहता कि यहा मत आना, लेकिन वह आना तुम्हारा रोग न बन जाए, वह शराबी की लत न बन जाए।

तुम आना और प्रसन्न होना। और तुम आना और खुलना। और तुम आना और प्रसाद को उपलब्ध होना। लेकिन स्मरण रखना कि सब तुम्हारे भीतर हो रहा है। और जब तुम यहा से जाओ, तो जो हुआ है उसे सभालकर अपने साथ ले जाना, उसे यहा मत छोड़ जाना। और धीरे-धीरे विपरीत परिस्थितियो मे भी उसकी झलक को पाने की कोशिश करना। जहा कोई सभावना न दिखायी पड़ती हो, जहा दुख ही दुख, पीड़ा ही पीड़ा हो—फिर तुम आख बद करके उसी भावदशा को, उसी तरग को अपने भीतर लाना। तुम चकित होओगे कि धीरे-धीरे वह तरग उठने लगी, मालकियत हाथ मे आने लगी।

तब कही भी, आगन कितना ही तिरछा हो, तुम्हे नाच आ गया तो तुम नाच सकोगे। ज्यादा से ज्यादा यहा मै इतना ही कर रहा हू कि तुम्हे चौकोर आगन दे रहा हू। इससे ज्यादा नही। जो जगा है वह तुम्हारे भीतर ही सोया था।

फिर ये कैसी कसकसी है दिल मे,
तुझको मुद्दत हुई कि भूल चुका।

वह जो कसकसी फिर से मालूम हुई, वह कुछ बाहर से नही आयी है। वह उसी की याददाश्त है जिसे तुम मुद्दत हुई भूल चुके। वह तुम्हारे मूलस्रोत का स्मरण है।

फिर ये कैसी कसकसी है दिल मे
तुझको मुद्दत हुई कि भूल चुका।

इतने भूल चूके हो कि अब यह भी याद नही कि भूल चुके। भूल चुके है, यह भी याद रहे तो बिलकुल भूले नही, याद है। लेकिन हम इतने भूल गये है कि यह भी अब याद नहीं कि भूल चुके।

तुम मेरे करीब, वह मुद्दत हुई जिसे तुम भूल चुके, जनम-जनम का घेरा, बहुत दूर रह गयी वह बात जो तुम्हारा मूलस्रोत थी और जो तुम्हारी, अतिम जीवन की नियति है, प्रथम जो थी और अतिम जो है, वह बात भूल गयी है—यहा तुम्हे याद आ जाये, थोड़ी सुरति आ जाये। बस इतना काफी है।

और इस बात को तुम हर किसी से कहते मत फिरना। नही तो लोग हसेगे। यह बात तो दीवानो से ही करने की है।

अगर तुमने यह किसी और को कहा कि मैं यह बोल रहा था कि 'महावीर ने स्वाधीनता को आत्यतिक मूल्य दिया, वह मूल्य किसी और ने नहीं दिया', उस क्षण मे तुम्हारे भीतर कुछ अनहोना घट गया, तो लोग कहेगे, इस बोलने मे क्या रखा है? ये शब्द तो साधारण है।

'महावीर ने स्वाधीनता को आत्यतिक मूल्य दिया, वह मूल्य किसी और ने नहीं दिया'—इन शब्दो से क्या घट सकता है?

तुम दूसरे को मत समझाना। ये बाते तो दीवानो की है। हा किसी और को हुआ हो तो उससे बात कर लेना। नहीं तो खतरा क्या है? खतरा यह है कि अगर तुम औरो से यह कहोगे तो वे समझेगे, कि कुछ गडबड़, तुम्हारा दिमाग खराब हो रहा है, किसी सम्मोहन मे पड़ गये हो। और डर यह है कि वे कही तुम्हारा आत्म-अविश्वास न जगा दे। अगर आत्म-अविश्वास जग गया तो दुबारा यह न होगा।

तो ऐसी घटना कभी भी घटती हो, मुझे कह देना या गैरिक रग के बहुत पागल यहा है, उनसे कह देना, मगर समझदारो से मत कहना, नही तो वे तुम्हे नुकसान पहुचा सकते है। अतत जब तुम्हारे जीवन मे सब साफ हो जायेगा, फिर तो कोई नुकसान नही पहुचा सकता। लेकिन अभी जब अकुर बड़ा कोमल होता है, अभी जब बीज टूटा ही होता है, तब हर खतरा प्राणघाती हो सकता है।

जब दिल पे न हो काबू अपना, क्या जब्त करे क्या सब्र करे।
मुझ जैसे काश वह हो जाए जो आ-आकर समझाते है।

कई लोग तुम्हे समझायेगे कि 'क्या पागलपन कर रहे हो? होश मे आओ। बुद्धि सम्हालो। यह तुम किन बातो मे पड़े जा रहे हो?'

जब दिल पे न हो काबू अपना, क्या जब्त करे क्या सब्र करे।
मुझ जैसे काश वह हो जाए जो आ-आकर समझाते है।

लेकिन वह तुम्हारे जैसे न होगे। और डर यह है कि वह तुम्हे अपने जैसा बना सकते है, क्योकि वे ज्यादा है।

भीड़ है। और हम भीड़ पर बड़ा भरोसा करते है। हमारी धारणा ही यह है कि जिस बात को बहुत लोग मानते है, वह ठीक होनी चाहिए। अकसर तो उलटा होता है। जिसको बहुत लोग मानते है वह बात अकसर तो गलत होती है। क्योकि बहुत लोग गलत है। अकसर तो ऐसा होता है, ठीक बात को कभी कोई एक-आध मानता है। भीड़ तो सदा गलत को ही मानती है। इसलिए सत्य के जगत मे कोई लोकतत्र नही है, कोई मत नही है, कि नब्बे प्रतिशत लोगो ने साथ दे दिया तो सत्य होना चाहिए।

अकसर तो ऐसा हुआ है जब महावीर ने कहा तो वे अकेले, जब बुद्ध ने कहा तो वे अकेले।

धर्म को छोड दे, विज्ञान् को ले। गैलीलियो ने कहा, कोपरनिकस ने कहा तो अकेले। आइस्टीन न कहा तो अकेले।

सारी दुनिया मानती थी सदियो से कि जमीन चपटी है। और जब गैलीलियो ने कहा कि जमीन गोल है तो वह अकेला था। सारी दुनिया मानती थी सदियो से कि सूरज ऊगता है, डूबता है। अब भी सभी भाषाए यही कहती है सूर्यास्त, सूर्योदय, सनराइज, सनसेट। गैलीलियो हो चुका, इससे भाषा मे अभी फर्क नही पडा है। तीन सौ साल हो गये, लेकिन भाषा अब भी गलत बोली जा रही है।

गैलीलियो ने कहा, न सूरज ऊगता है न डूबता है—सूरज चलता ही नही। खयाल यह था कि सूरज पृथ्वी के चारो तरफ चक्कर लगाता है। दिखता है लगाता हुआ, इसमे कोई शक नही। अब भी खाली आख से देखो तो लगता है कि चक्कर लगा रहा है।

असलियत बिलकुल उलटी है पृथ्वी चक्कर लगा रही है। सूरज खडा है। लेकिन हम पृथ्वी पर बैठे है तो हमको पृथ्वी का चक्कर लगाना तो दिखायी पड नही सकता। इसलिए सूरज चक्कर लगाता हुआ दिखायी मालूम पड़ता है।

कभी तुमने खयाल किया? ट्रेन मे तुम बैठे हो और दूसरी ट्रेन बगल मे खड़ी है। तुम्हारी ट्रेन चलती है तो लगता है दूसरी ट्रेन चल पड़ी। चौककर तुम्हे लगता है दूसरी ट्रेन चल रही है। चलती तुम्हारी हे, लेकिन तुम तो अपनी ट्रेन मे बैठे हो। तुम भी उसके साथ चल पडे, इसलिए पता नही चलता। दोनो की गति बराबर है। लेकिन पास की ट्रेन खड़ी है। वह चलती हुई मालूम पड़ती है।

गैलीलियो ने कहा है कि सूरज खडा है, पृथ्वी चलती है। हजारो-हजारो साल से आदमी मानता था पृथ्वी खडी है, सूरज चलता है। लेकिन इससे कुछ फर्क नही पड़ता।

गैलीलियो को अदालत मे ले जाया गया था। क्योकि पोप खिलाफ था, क्योकि बाइबिल मे तो लिखा है कि पृथ्वी खड़ी है। और धर्मगुरु सदा डरते रहे है कि अगर शास्त्र की एक भी बात गलत हो जाये तो लोगो मे शक पैदा होगा। लोग सोचेगे जब एक गलत हो सकती है तो बाकी भी गलत हो सकती है।

तो पोप को समझ मे भी आ रहा था, लेकिन फिर भी उसने गैलीलियो को कहा कि तुम क्षमा मागो। अदालत मे घुटने टेककर गैलीलियो ने क्षमा मागी लेकिन वह आदमी भी बडा गजब का था। उसने कहा कि मै क्षमा चाहता हू। आप कहते है, शास्त्र कहते है तो सूरज ही चक्कर लगाता होगा, पृथ्वी खडी होगी। लेकिन एक बात मै कहे देता हू, मेरे कहने से कुछ भी नही होता। लगा तो पृथ्वी ही चक्कर रही है। मेरे कहने से क्या होगा? मै क्षमा मागता हू। मेरा इसमे कुछ हाथ ही नहीं है। मै थोडे ही पृथ्वी को चलवा रहा हू? तो मै झझट मे नही पडना चाहता। लेकिन एक बात मै कहे देता हू कि मै क्षमा मागू या न मागू, मै कहू या न कहू—इससे क्या फर्क पड़ता हे? आदमियत माने या न माने, इससे क्या फर्क पडता है? सूरज खडा है पृथ्वी चक्कर लगा रही है।

दुनिया मे सत्य को जाननेवाले तो कभी-कभी होते है। भीड तो असत्य को मानती है। लेकिन हमारे मन मे एक धारणा है कि जिसको बहुत लोग मानते है वह ठीक होना चाहिए। इतने लोग मानते है। और हमारा कोई आत्मविश्वास तो है नही।

तो दूसरो से मत कहना। अन्यथा वे हसेगे। उनकी हसी तुम्हारे जीवन मे जहर हो सकती है। वे तुम्हे पागल समझेगे। उनका समझना तुम्हे डगमगा सकता है।

इसलिए ये बाते तो ऐसी है कि जो तुम्हारे ही रास्ते पर चल रहे है और जिन्हे कुछ ऐसा होना शुरू हुआ हो, उनसे कर लेना, तो तुम एक दूसरे के लिए सहयोगी बनोगे, सहारा बनोग, बल दोगे, आत्मबल विकसित होगा। और जितना आत्मबल बढ़ेगा उतनी और घटनाए सभव हो जायेगी।

आखिरी प्रश्न मुझे इतना कुछ मिल रहा था कि उसका आनद अतर मे समाता नही था। इतना आनद, इतनी खुशी कहा रखू, कैसे सम्हालू—समझ मे नही आता। और प्यास भी उतनी ही है। जिनकी कृपा से जीवन की सध्या मे मुझे यह सब मिल रहा है, उनसे पास होते हुए भी दूर हू। इन दो बातो के लिए पागल-सी जी रही थी। कुछ दिनो से सब चुप होने लगा है। घटो बैठी रहती हू या लेटी रहती हू। कुछ करने का मन नही होता। न कुछ बुरा लगता है और न अच्छा। प्रभु, यह सब क्या हो रहा है?

शुभ हो रहा है। प्यास थिर हो रही है। प्यास गहरी हो रही है।

नदी जब उथली होती है तो शोरगुल करती है। नदी जब गहरी होती है तो शात हो जाती है। इतनी शात हो जाती है कि पता ही नही चलना कि चलती भी है या नहीं।

गहरी नदी को देखा? थिर मालूम होती है। बस ऐसा ही हो रहा है। जो प्यास अब तक थोड़ी तरगे भी पैदा करती थी, वह और गहराई पर जा रही है। अब सब चुप हो रहा है।

कुछ रोज ये भी रग रहा इतजार का,

आख उठ गयी जिधर बस उधर देखते रहे।

आख हटाना भी भूल जायेगा। विचार करना भी भूल जायेगा। ठगे-ठगे से। बैठे-बैठे।

कुछ रोज ये भी रग रहा इतजार का,

आख उठ गयी जिधर बस उधर देखते रहे।

ऐसी दीवानगी आयेगी, आ रही है। स्वागत करना उसका। पलक पावड़े बिछाना उसके लिए। घबड़ा मत जाना। क्योकि पहले-पहले जब शाति उतरती है तो लगती है उदासी है। क्योकि हम उदासी से परिचित है, शाति से परिचित नहीं है। दोनो के चेहरे मे थोड़ा तालमेल है।

तो जब पहली दफे शाति आती है तो ऐसा लगता है कही ये तो नही कि हम उदास हुए जा रहे है। पहले-पहले आनद भी बाजे बजाता है। फिर धीरे-धीरे बाजे शात होने लगते है, क्योकि बाजो का शोरगुल भी आनद मे बाधा है। फिर आनद की एक ऐसी घड़ी आती है जब उत्सव भी शात हो जाता है। भीतर-भीतर, भीतर-भीतर रग-रोए मे समा जाता है। नाच भी नहीं होगा—नाच इतना गहरा हो जाता है। कोई क्रिया ऊपर दिखायी न पड़ेगी।

पहले तो शौके-दीद मे सब कुछ भुला दिया

अब मैं नजर को ढूढ़ रहा हू, नजर मुझे।

ऐसी घड़ी आती है कि अपना ही पता नहीं चलता।

पहले तो शौके-दीद मे सब कुछ भुला दिया—पहले तो उस परमात्मा को देखने की आकाक्षा मे सब भुला बैठे। लेकिन उस सब भुलाने मे नजर भी खो जाती है। अब मै नजर को ढूढ़ रहा हू, नजर मुझे। अब कुछ समझ मे नही आता कौन कहा है, कौन कौन है?

आखिरी घड़ी मे कुछ भी पता नही चलता भेद का कौन भक्त है, कौन भगवान है।

रामकृष्ण अपने ऊपर ही फूल डाल लेते थे। भगवान को चढ़ाने जाते, खुद ही पर डाल लेते। भगवान को भोग लगाते, खुद ही के मुह मे डाल लेते। लोगो ने शिकायत की कि यह तो कोई पूजा न हुई। ये तो पूजा का उल्लघन है।

रामकृष्ण ने कहा, 'करू क्या? भेद ही नहीं मालूम होता। यह मुह भी अब उसी का। यह सिर भी उसी का। ये हाथ भी उसी के। ये फूल भी उसी के।'

कौन कौन है, पक्का पता नही चलता।

इक तेरी तमन्ना ने कुछ ऐसा नवाजा है,

मागी ही नही जाती अब कोई दुआ हमसे।

अब यह जो घडी आ रही है, इस घडी मे कुछ भी मागना मत। अब तो सिर्फ धन्यवाद, सिर्फ अहोभाव। उसे धन्यवाद देना। जो भी वह दे, धन्यवाद देना। उदासी मालूम पडे तो भी धन्यवाद देना, जल्दी उदासी शाति मे परिणित हो जायेगी। ऐसा लगे, उत्सव खो रहा है तो भी धन्यवाद देना। एक नया उत्सव शुरू हो रहा है जो अभिव्यक्ति का नही है, जो अनभिव्यक्त है, जो शात है और मौन है।

मै तुमसे कहता हू, महावीर भी नाचे है, मीरा ही नही नाची। लेकिन मीरा का नाच बाहर भी आया, महावीर का नाच भीतर ही भीतर रह गया। इतना गहन है।

जैसे देखा नील नदी है, इजिप्त मे। कई मीलो तक जमीन के नीचे ही बहती है, दिखायी नही पडती। फिर प्रगट होती है। तो सदिया हो गयी, लोगो को पता ही न था कि इसका जन्म-स्रोत कहा है, यह उदगम कहा है। क्योकि कई मीलो तक तो वह जमीन के नीचे ही बहती है तो उदगम का पता कैसे चले?

मीरा ऐसी है जैसे नील नदी प्रगट हो गयी। और महावीर ऐसे है जैसे नील नदी अभी जमीन के नीचे बहती है। नाच तो है ही—लेकिन नाच बड़ा मौन है, चुप है, बड़ा गुरु-गभीर है।

कठिनाई होगी। ये प्रतीक्षा के पल पीड़ा के पल भी होगे। कभी-कभी तो ऐसा लगेगा, कुछ खो तो नही गया। पहले तो बड़े आनदित मालूम हो रहे थे, वह आनद भी चला गया। पहले तो बडे नाचे-नाचे मालूम पडते थे, वह पुलक चली गयी। कही कुछ खो तो नही गया।

शबे-इतजार की कशमकश न पूछ कैसे सहर हुई

कभी इक चिराग जला दिया, कभी इक चिराग बुझा दिया।

मिलन की रात की कशमकश न पूछ और यह मत पूछ कि कैसे सुबह हुई। बड़ी मुश्किल हुई। कभी एक चिराग जला लिया, फिर बुझा दिया, फिर जला लिया, फिर बुझा दिया। ऐसी उधेड़-बुन हुई।

शबे-इतजार की कशमकश न पूछ कैसे सहर हुई

कभी इक चिराग जला दिया, कभी इक चिराग बुझा दिया।

ऐसी कशमकश आएगी। घबड़ाना मत। बस एक ही खयाल रखना कि जो भी हो रहा है, जो भी होता है—शुभ है। यही तुम्हारी प्रार्थना हो अब कि जो भी हो रहा है, शुभ है। और तब शुभ के नये-नये द्वार खुलते जायेगे।

दिल से मिलती तो है एक राह कही से आकर,

सोचता हू ये तेरी राहगुजर है कि नही।

इस चिता मे मत पड़ना क्योकि अब जल्दी ही दिल के पास जो परमात्मा का रास्ता गुजरता है वह दिखायी पडेगा। सोच-विचार मे मत पड़ना। जब सब सन्नाटा हो जाता है, उत्सव भी चला जाता है, आनद भी चला जाता है और सब शात हो जाता है और आदमी ठगा-ठगा रह जाता है—तभी हृदय के पास से जिसका रास्ता गुजरता है उसके दर्शन होते है। हम अपने करीब आये, असग हुए, निसग हुए। यही सन्यास की पराकाष्ठा है। ससार और बाहर का सब भूल गया। भीतर, भीतर, भीतर उतरते गये। अपने केद्र पर आये। वहा से गुजरती है राह परमात्मा की। तब सदेह मे मत पड़ जाना क्योकि ये मन मे विचार, आखिरी विचार यही आता है कि कहीं यह रास्ता सही है कि गलत।

दिल से मिलती तो है एक राह कही से आकर,

सोचता हू ये तेरी राहगुजर है कि नही।

यह मत सोचना। यह विचार करना ही मत। अब तो विचार को पूरा का पूरा ही त्याग दो। अब तो निर्विचार हो रहो। और जो भी हो, उसको स्वीकार करते जाओ। धीरे-धीरे उसी रास्ते पर उसका रथ भी आयेगा। और जब वह रथ से उतरे और तुम्हारे सामने अपनी झोली फैला दे तो कजूसी मत करना। सब डाल देना। स्वाहा। सब डाल देना।

रवींद्रनाथ का एक गीत है। एक भिखारी सुबह-सुबह उठा। अपनी झोली को कधे पर टागकर भीख मागने निकला। जैसा कि भिखारी करते है, उसने भी किया। थोडे-से चावल के दाने अपनी झोली मे घर से डाल लिए। देनेवालो के लिए थोड़ी हिम्मत होती है कि चलो इसको औरो ने भी दिया है। तो भिखारी थोड़े-से पैसे अपनी थाली मे डालकर बैठ जाता है। तो निकलनेवाले को थोडा साहस रहता है कि कोई हम ही नहीं फस रहे है, और लोगो ने भी दिया है। तो थोड़ी लज्जत भी आती है, तो थोडी लज्जा भी लगती है, थोड़ा शर्म भी, सकोच भी लगता है कि अब और दे चुके है तो हम कोई इतने गये-बीते तो नहीं, चलो एक पैसा दे दो। तो थोड़े-से चावल के दाने डालकर झोली मे भिखारी चला। राह पर आया, कभी सोचा भी न था। सपना भी न देखा था—राह पर आ रहा है उस महाराजा का रथ—स्वर्ण रथ, सूर्य की किरणो मे चमकता हुआ। उसने सोचा, आज मेरे धन्यभाग, आज मेरे भाग्य खुल गये। आज तो झोली पसार दूगा और माग लूगा। अब राजा ही सामने आ रहा है, द्वार से कभी भीतर जाने का मौका मिलता न था। द्वारपाल द्वार से ही भगा देते थे। अब आप तो रास्ते पर मिल गये।

तो वह बीच मे खडा हो गया। रथ रुका। राजा न केवल उसे अपने पास बुलाया, खुद उतरकर नीचे आया। लेकिन राजा को पास देखकर वह घबडा गया। कभी राजा की सन्निधि नहीं की। याद ही न रही, अवाक ठगा रह गया। देखता रहा राजा के मुह की तरफ। और इसके पहले कि वह अपनी झोली फैलाये, राजा ने अपनी झोली फैला दी। और उसने कहा, मना मत करना, इनकार मत करना, क्योकि मेरे ज्योतिषियो ने कहा है कि आज मै भीख मागू तो राज्य बचेगा, अन्यथा राज्य पर खतरा है।

अब कठिनाई हम सोच सकते है भिखारी जिसने कभी दिया नही, सदा मागा। देने की कोई आदत ही नहीं। देने का कोई सस्कार ही नही। वह बहुत घबड़ाया, लेकिन अब इनकार भी न कर सका, क्योकि राजा ने कहा, 'इनकार मत करना, पूरे राज्य पर खतरा है। कुछ भी दे दो, उसने हाथ भीतर डाला झोली के। मुट्ठी बाधता है, खोलता है। कभी दिया तो है नहीं, देने की आदत ही नही। बामुश्किल एक चावल का दाना निकालकर उसने राजा की झोली मे डाल दिया। रथ आया-गया हो गया, धूल उड़ती रह गयी। वह तो खड़ा रह गया। उसने कहा, 'यह तो हद्द हो गयी। और गरीब कर गया। एक दाना और पास था, वह भी ले गया।'

फिर साझ घर लौटा भीख मागकर। उस दिन खूब भीख

मिली। ऐसी कभी न मिली थी। जो देता है उसे मिलती भी है। उस दिन घर लौटा। प्रसन्न होना चाहिए था, लेकिन थोड़ा उदास था। वह एक दाना कम था। घर आकर पत्नी ने पूछा, 'इतने उदास?' तो उसने कहा, 'क्या करूं? हद हो गयी। मिलने की आशा बाधी थी, वह तो दूर, और हमसे, हाथ से ले गया। भाग्य की विडबना, मजाक तो देखो, व्यग्य।'

उसने झोली बडी उदासी से उड़ेली। देखकर चकित हुआ, एक दाना सोने का हो गया था। जो दिया था, वह सोने का हो गया था। छाती पीट-पीटकर रोने लगा। पत्नी तो कुछ समझी नही। उसने कहा, 'हुआ क्या है? माजरा क्या है?'

'लुट गये', उसने कहा, 'लुट गये। सारे दाने दे दिये होते, तो सारे दाने सोने के हो जाते। लेकिन अवसर आया, गया।'

तो इतना ही कहता हू, यह जो घड़ी पक रही है, इसको पकने देना। जल्दी ही हृदय के पास से उसकी राह मिलेगी। राह ही नही, उसका रथ भी आता है, स्वर्ण-रथ, सूर्य-किरणो मे चमकता। उस वक्त मागने का मन होगा, क्योकि हम सदा भिखमगे रहे है। मागना मत।

और अगर वह झोली तुम्हारे सामने फैलाये, जैसी कि उसने सदा ही फैलायी है, तो दे देना। तब ऐसा मत करना कृपणता, कजूसी कि एक दाना डाल देना, अन्यथा फिर रोओगे जन्मो-जन्मो तक। क्योकि फिर कब दुबारा उसका रथ मिलेगा कहना मुश्किल है। सब दे डालना। झोली और तुम स्वय भी छलाग लगा जाना, ताकि सब स्वर्णमय हो जाये।

सब स्वर्णमय हो सकता है। होना चाहिए। हम बाधा न दे तो हो जाये, अभी हो जाये। चिता-विचार न करना।

शुभ हो रहा है। सब शात होता जा रहा है। जल्दी ही रथ आने के करीब है। उस घड़ी की अहोभाव से प्रतीक्षा।

कठिन होगी प्रतीक्षा। दीया जलेगा, बुझेगा। जलाओगे, बुझाओगे। गुजार देना रात। घबड़ाना मत। जितनी प्रतीक्षा पीड़ादायी होगी, उतना ही मिलन आनददायी है।

आज इतना ही।





पच्चीसवां प्रवचन

दर्शन, ज्ञान, चरित्र—और मोक्ष

सूत्र

नाणेण जाणई भावे, दसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई।।६२।।

नादसणिस्स नाण, नाणेण विणा न हुति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण।।६३।।

हय नाण कियाहीण, हया अण्णाणओ किया।
पासंतो पगुलो दड्ढो, धावमाणो य अधओ।।६४।।

सजोअसिद्धीइ फल वयति, न हु एगचक्केण रहो पयाइ।
अधो य पगु य वणे समिच्चा, ते सपडत्ता नगर पविट्ठा।।६५।।

नाणेण जाणई भावे—ज्ञान से मनुष्य जानता है।
दसणेण य सद्दहे—दर्शन से श्रद्धा उत्पन्न होती है।
चरित्तेण निगिण्हाइ—चरित्र से निरोध होता है, निषेध होता है।

तवेण परिमुज्झई—और तप से मनुष्य विशुद्ध होता है।

ज्ञान से हम जानते है। लेकिन जानना काफी नही है। जानना बहुत ऊपर-ऊपर है। मात्र जान लेने से श्रद्धा पैदा नही होती। जब तक कि स्वय दर्शन न हो जाये, जब तक कि खुद की आखो से हम न देख ले—तब तक श्रद्धा नही होती।

महावीर ने देखा, हमने सुना। जो सुनकर जान लिया, उससे श्रद्धा पैदा नही होगी। कृष्ण ने कहा, हमने सुना। मान लिया सुनकर। उससे श्रद्धा पैदा नही होगी। और अगर तुमने श्रद्धा किसी भाति आरोपित कर ली तो तुम भटक जाओगे। क्योकि झूठी श्रद्धा जीवन को रूपातरित नही करती। वही लक्षण है झूठी श्रद्धा का, कि जीवन तो कही और जाता है, श्रद्धा कुछ और कहती है। श्रद्धा कहती है, त्याग, और जीवन धन को इकट्ठा करता चला जाता है। तो श्रद्धा झूठी है, मिथ्या है।

जब जीवन और श्रद्धा साथ-साथ चलने लगे, जब जीवन श्रद्धा के पीछे छाया की भाति चलने लगे, तभी जानना की श्रद्धा सच्ची है।

तो महावीर कहते है, श्रद्धा मौलिक है। श्रद्धा से जो ज्ञान आविर्भूत हो, वही ज्ञान है। और जब श्रद्धा से ज्ञान आविर्भूत होगा तो ज्ञान से चारित्र्य अपने-आप निष्पन्न होता है।

जीवन का आधार ज्ञान पर मत रखना—दृष्टि पर, दर्शन पर रखना। अधिक लोगो ने जीवन के आधार ज्ञान पर रख लिए है। तर्क से, विचार से, बुद्धि से जो बात ठीक लगी है—सोचा, उसे स्वीकार कर ले। लेकिन जो तर्क से ठीक लगा है वह हृदय तक न जा सकेगा, क्योकि तर्क की पहुच हृदय तक नही। तर्क तो सिर्फ खोपडी की खुजलाहट है, बहुत ऊपर ऊपर है। प्राणो को आदोलित नही करता तर्क।

तर्क के लिए कभी किसी ने प्राण दिये? तर्क के लिए कभी कोई शहीद हुआ? तुम जिसके लिए मर सको, वही तुम्हारी श्रद्धा है। तुम जिसके बिना जी न सको, वही तुम्हारी श्रद्धा है। तुम कहो जीयेगे तो इसके साथ, इसके बिना तो मृत्यु हो जायेगी—वही श्रद्धा है। जो जीवन से भी बडी है, वही श्रद्धा है। जिसके लिए जीवन भी निछावर किया जा सकता है, वही श्रद्धा है।

तर्क के लिए तुमने कभी किसी को जीवन निछावर करते देखा? दो और दो चार होते है—इस सत्य का अगर कोई प्रतिपादन करता हो और तुम तलवार लेकर खडे हो जाओ, तो क्या वह सत्य की रक्षा के लिए अपने जीवन को देना चाहेगा? मूढतापूर्ण मालूम पड़ेगा।

दो और दो चार होते है, इसके लिए मरने मे कोई सार न मालूम होगा। वह कहेगा कि तुम्हारी मर्जी, दो और दो पाच कर लो कि दो और दो तीन कर लो, लेकिन दो और दो चार कोई ऐसी बात नही जिसके लिए मै जीवन को गवा दू।

प्रेम के लिए कोई जीवन को गवा सकता है। इसलिए श्रद्धा प्रेम की भाति है। महावीर कहते है, श्रद्धा पर जीवन को खड़ा

करना। महावीर की श्रद्धा को समझ लेना। उनका विशेष शब्द है श्रद्धान। यह तुम जिसे साधारणत श्रद्धा कहते हो उससे महावीर का कोई प्रयोजन नही है। लोग कहते है, हमारी तो ईश्वर मे बड़ी श्रद्धा है। जिसे तुमने देखा नही, श्रद्धा होगी कैसे? श्रद्धा कान से नही होती, श्रद्धा आख से होती है।

इसलिए श्रद्धान का दूसरा नाम महावीर 'दर्शन' कहते है। श्रद्धान और दर्शन महावीर की भाषा मे पर्यायवाची है, एक ही अर्थ रखते है, उनमे जरा भी फर्क नही है।

इसलिए तुम कहते हो, ईश्वर मे हमारी श्रद्धा है। देखा? अनुभव किया? स्पर्श हुआ? जीये उसमे? तुम्हारा हृदय उसके साथ धडका? तुम नाचे उसके साथ? कोई पहचान है? नही, तुम कहते हो मान्यता है। और लोग कहते है, बडे बुजुर्ग कहते है, सनातन से चली आयी बात, परपरा मे है। लेकिन इससे श्रद्धा पैदा न होगी। यह तुम्हारा विश्वास है, श्रद्धा नही।

विश्वास और श्रद्धा का भेद यही है। विश्वास उधार, श्रद्धा अपनी। श्रद्धा होती है निज की, विश्वास ऐसा है जैसे बाजार से खरीद लाए कागज या प्लास्टिक के फूल और घर को सजा लिया। श्रद्धा ऐसे है जैसे बीज बोया, वृक्ष को सम्हाला, पानी दिया, खाद दी—फिर एक दिन फूल आये और हवाए सुगध से भर गयी।

श्रद्धा के फूल तुम्हारे जीवन मे लगते है—उधार और बासे नही, किसी और से नही, मागे हुए नही।

विश्वास बड़ा सस्ता है। इतने सस्ते तुम सत्य को न पा सकोगे। सत्य जो सर्वोपरि है, उसे तुम विश्वास से न पा सकोगे। उधार कब किसने सत्य को जाना है।

उपनिषद कहते है सत्यम् पर, पर सत्यम्, सत्य सर्वोत्कृष्ट है और जो सर्वोत्कृष्ट है वही सत्य है। सर्वोत्कृष्ट को इतने सस्ते कैसे पा सकोगे? अपने को दाव पर लगाना होगा। इसलिए मै कहता हू, दुकानदार सत्य तक नही पहुचते, जुआरी पहुचते है। क्योकि सत्य की पहली शर्त यह है अपने को गवाओ तो मिलेगा, दाव पर लगाओ तो मिलेगा। यह बिलकुल जुए जैसा है। मिलेगा कि नही, यह पक्का नही है। तुम तो गवा दोगे अपने को, तब मिलेगा। गवाने के पहले कोई सुनिश्चित नही कर सकता कि मिलेगा ही।

इसलिए दुकानदार, गणित, तर्क बिठानेवाले लोग विश्वास से राजी हो जाते है। विश्वास मरा हुआ है, लाश है।

हा, महावीर को दिखायी पड़ा होगा। जो उन्होने कहा वह उनकी श्रद्धा थी, जो तुमने सुना वह तुम्हारा विश्वास है।

इसलिए खयाल रखना, अगर मै कुछ कह रहा हू तो वह मेरी श्रद्धा है। और तुमने अगर सुनकर मान लिया तो तुम धोखे मे पड गये। तुम्हारे लिए वह विश्वास होगा। चूकि मेरे लिए श्रद्धा है, इसलिए तुम्हारे लिए श्रद्धा न हो जायेगी। जैसा मैने देखा, तुम भी देखो।

तो मै तुम्हे श्रद्धा नही दे सकता, मै तुम्हे सिर्फ कुछ इशारे दे सकता हू, जिनसे तुम भी आख खोलो और देखो। जब तुम देख लोगे तभी श्रद्धा होगी। फिर तुम्हारे देखे को कोई छीन न सकेगा। क्योकि देखते ही हृदय मे विराजमान हो जाता है।

इसलिए महावीर ने श्रुतियो को, स्मृतियो को, सभी को इनकार कर दिया, वेद को इनकार कर दिया। यह शब्द विचारणीय है।

हिदू कहते है, वेद उपनिषद श्रुतिया है। सुना ऐसा हमने, ऐसा सदपुरुषो ने कहा, ऐसा जो जागे, उनका बोध है—श्रुति। फिर हमने उसे याद रखा, सदियो सदियो तक सम्हाला धरोहर की तरह—स्मृति। सभी शास्त्र पहले श्रुति बनते, फिर स्मृति बन जाते। महावीर ने कहा, न श्रुति न स्मृति—श्रद्धा।

शास्त्र को तुम्हे स्वय ही निर्मित करना होगा। तुम्हारा शास्त्र तुम्हे जन्म देना होगा। ऐसे गोद लिए शास्त्र काम न पड़ेगे।

फर्क देखा। एक स्त्री मा बनती है—गोद लेकर मा बन जाती है। ऐसा मा बनने का धोखा देती है। न तो गर्भ रहा, न गर्भ की पीड़ा सही, न नौ महीने के लबे कष्ट भोगे, न वमन हुआ, न दर्द उठा, न मितली आयी, न बोझ सहा, फिर प्रसव की पीड़ा भी न सही, कि जैसे प्राण सकट मे पड़े, कि बचेगे कि न बचेगे। उस अज्ञात जीवन के लिए जो पेट मे है अपने ज्ञात जीवन को दाव पर लगाया—उस अनजान के लिए जो अभी आया नही, कौन है, कैसा है, कुछ पता नही है, जो ज्ञात है, परिचित है, पहचाना है, उसको खतरे मे डाला, अपने प्राण जोखिम मे डाले।

तो एक तो मा बनती है गर्भ को धारण करके। फिर होशियार लोग है। वे कहते हैं, 'इतनी परेशानी मे क्या पड़ना। बच्चे तो गोद भी लिए जा सकते है।' गोद ले लो। लेकिन गोद लेने मे और गर्भ लेने मे बडा फर्क है। कामचलाऊ मा पैदा हो जायेगी,

लेकिन असली मा पैदा न होगी। क्योकि असली मा तो तभी पैदा होती है जब बच्चा पैदा होता है।

जब बच्चा पैदा होता है तो दो चीजो का जन्म होता है—बच्चे का और मा का। एक तरफ बच्चा पैदा होता है, दूसरी तरफ मा पैदा होती है। अभी कल तक जो एक साधारण स्त्री थी, अचानक मा बन जाती है। बच्चे को तुमने गोद मे ले लिया तो बच्चा तो कभी पैदा नही हुआ, तुमसे तो पैदा नही हुआ। तो मा बनने का धोखा पैदा होता है।

विश्वास ऐसा ही है—गोद लिया हुआ सत्य। श्रद्धान, श्रद्धा ऐसे है—जन्म दिया हुआ सत्य। और कोई दूसरा तुम्हारे सत्य को कैसे जन्म दे सकेगा।

बडी पुरानी कहानी है सोलोमन के जीवन मे। दो स्त्रिया सोलोमन की अदालत मे आयी। वे दोनो दावा कर रही थी एक ही बच्चे का कि वह उसकी मा है। बड़ी कठिनाई थी। कैसे तय किया जाये? सोलोमन ने कहा, ठीक है। एक-एक को पास बुलाया और कान मे कहा कि सुन, तय करना तो मुश्किल हो रहा है। कोई गवाह नही, कोई चश्मदीद गवाह नही है। तो उचित यही है कि आधा-आधा बच्चा बाट देते है। तो जिसका बच्चा था वह तो चीख मारकर रो उठी। उसने कहा कि नही, ऐसा मत करना, फिर पूरा ही उसे दे दो। लेकिन जिसका बच्चा नही था, उसने कहा कि ठीक है, न्याययुक्त है, तर्कयुक्त है—आधा-आधा बाट दो। जो चीख उठी थी। और जिसने तर्क का सहारा न लिया था, हृदय का सहारा लिया था, उसने कहा कि नही-नही, फिर उसे ही दे दो, मेरा नही है, उसी का है।

सोलोमन ने उसी को बेटा दे दिया। हृदय ने गवाही दे दी, किसका है।

यह तो कहानी पुरानी हो गयी।

एक मनोवैज्ञानिक का जीवन मै पढ रहा था। उसने इस कहानी के बाबत चर्चा की है। और उसने लिखा है अगर आज अमरीका की किसी अदालत मे यह मामला आये और जज तय न कर पाये, तो वह मनोवैज्ञानिक को बुलायेगा। क्योकि अब तो अमरीका मे मनोवैज्ञानिक से पूछा जाता है कि क्या करना, ये दोनो स्त्रिया दावा करती है, इनमे कौन झूठी है? और मनोवैज्ञानिक सोलोमन की तरकीब का उपयोग करे, तो जो स्त्री कहे, कि 'लूगी तो पूरा, नही तो पूरा दे दूगी', वह थोड़ा रुग्ण चित्त की मालूम पडेगी। जिद्दी। हठाग्रही। एकातवादी। समझदार आदमी तो समझौतावादी होता है। बुद्धिमान तो सभी समझौतावादी होते है। वे कहते है, जहा पूरा न मिलता हो वहा आधा ले लो। तो मनोवैज्ञानिक उस स्त्री को—जो कहेगी कि ठीक है, मै आधा लेने को राजी हू—कहेगा स्वस्थ है, नार्मल है। और यह स्त्री तो आब्सैस्ड है, जो कहती है पूरा लूगी, नही तो पूरा दे दूगी, यह तो पागलपन से भरी है।

तो उस मनोवैज्ञानिक ने कहा है, अगर आज यह घटना घटे तो अमरीका की अदालत बच्चा उसको दे देगी जो आधा लेने को राजी थी, क्योकि वह पागल नही है। तर्कयुक्त है उसका उत्तर, विचारपूर्ण है। यह कौन-सी समझदारी है कि अगर पूरा न मिलता हो तो आधा भी छोड़ दो। जितना मिलता हो उतना तो ले लो। मध्यमार्ग चुनो। अति पर तो मत जाओ।

जो लोग बुद्धि से चलते है, वे होशियारी से चलते है। जो श्रद्धान से चलते है, वे दीवाने होते है। इसलिए तो बुद्धि के लिए प्रेम सदा अधा मालूम होता है। बुद्धि कहती है, थोडा सोचो, समझो, विचारो, हिसाब बिठाओ।

महावीर कह रहे है कि ज्ञान से तो मनुष्य केवल जानता है। जानना यानी परिचय बाहर-बाहर। हृदय तक बिधती नही बात। श्रद्धा से, दर्शन से बिधती है हृदय तक—रोए-रोए मे समा जाती है, श्वास-श्वास मे प्रविष्ट हो जाती है। इसलिए तुम ज्ञान को पकड़कर मत बैठे रह जाना। नाणेण जाणई भावे—ज्ञान से तो बस जानना मात्र होता है। 'एक्वेटेन्स'। ऐसा परिचय बन जाता है।

जैसे तुमने हिमालय के सबध मे कुछ बाते भूगोल की किताब मे पढी है—क्या यह जानना वही है जो उसके लिए प्रगट होता है, जिसने हिमालय के दर्शन किए, जिसकी आखो ने हिमालय की शीतलता को पीया, जिसकी आखो ने हिमालय के सौदर्य को अपने मे प्रविष्ट होने दिया, जो हिमालय की घाटियो और शिखरो पर घूमा, जिसने हिमालय का स्पर्श किया? क्या यह जानना वही है जो भूगोल की किताब से मिल जाता है? भूगोल की किताब मे तो कोरे कागजो पर स्याही के काले चिह्न है और कुछ भी नही। कहा वे स्वर्ण-शिखर। कहा वे बर्फ से ढके हुए शीतल अछूते, कुवारे लोक।

आखे—आखे ही केवल सत्य को देख सकेगी। कही-सुनी

पर बहुत ध्यान मत देना। देखा-देखी बात। देखो तो ही कुछ बात हुई। लिखा-लिखी की है नही, देखा-देखी बात।

नाणेण जाणई भावे, दसणेण य सद्दहे।

'दर्शन से ही श्रद्धा उत्पन्न होती है।'

श्रद्धा का अर्थ है, जुड़ गये तार तुम्हारे हृदय से, बात बुद्धि की न रही, बात केवल मत न रही, 'ओपिनियन' न रही। अब ऐसा नहीं कि ऐसा हम सोचते है—ऐसा है। श्रद्धा का अर्थ हुआ ऐसा है। ऐसा नही कि हम सोचते है, ऐसा नही कि और लोग कहते है, ऐसा नही कि जाननेवालो ने कहा है, ऐसा नही कि हमने सुना है—ऐसा है।

विवेकानद परमात्मा की खोज मे भटकते थे। अनेक गुरुओ के पास गये। पूछा, ईश्वर है? विवेकानद की निष्ठा और विवेकानद की जलती हुई खोज। जिससे पूछते वह घबडा जाता। वे बलशाली व्यक्ति थे। वे ऐसे पूछते कि अगर उत्तर ठीक न मिला तो शायद चढ़ पडेगे, शायद गर्दन दबा देगे। रामकृष्ण के पास भी गये। औरो ने ईश्वर के बाबत चर्चा की थी। उसमे कई बडे-बडे लोग थे। उसमे रवीद्रनाथ के दादा थे, वे महर्षि समझे जाते थे। उनके पास भी विवेकानद पहुच गये थे। वे एक बजरे मे रहते थे नाव मे। आधी रात तैरकर नाव मे चढ गए। पूरी नाव कप गयी। वे ध्यान कर रहे थे अदर। दरवाजा धक्का देकर तोड दिया। भीतर पहुच गये पागल की तरह। आधी रात। पानी मे सरोबोर। पूछा, 'क्या बात है युवक। कैसे आये?' तो विवेकानद ने कहा, 'ईश्वर है?' तो उन्होने कहा, 'बैठो मै तुम्हे समझाऊगा।' विवेकानद ने कहा, 'मै समझने नही आया। मै यह जानना चाहता हू, ईश्वर है? ऐसा तुम्हे अनुभव हुआ है?'

झिझके महर्षि। विवेकानद छलाग लगाकर नदी मे कूद गये। बुलाया कि 'सुनो, आये चले?' विवेकानद ने कहा, झिझक ने सब कह दिया। समझने मै आया नही, जानने मै आया नही। मै तो यह पूछने आया हू कि तुमने देखा है? मै किसी ऐसे आदमी की तलाश मे हू, जिसका हाथ ईश्वर के हाथ मे हो। शास्त्र तो मै भी पढ लूगा। शास्त्र ही समझना हो तो तुमसे क्या समझेगे, खुद ही पढ़ लेगे।

फिर रामकृष्ण के पास भी वही सवाल किया था, कि ईश्वर है? तो रामकृष्ण ने क्या उत्तर दिया? रामकृष्ण ने कहा, तुम्हे जानना है? विवेकानद झिझके। 'अभी जानना है कि थोड़ी देर रुकोगे?' विवेकानद ने कहा, मैने सोचा नहीं। यह तो मैने सोचा ही न था कि कोई इस तरह पूछेगा जैसे कि पास के कमरे मे है ईश्वर, दरवाजा खोला कि दिखा देगे।

रामकृष्ण ने कहा, उस कमरे से भी पास है। तुम्हारे भीतर है। मेरे भीतर है। तुम कहो तो मै दिखा दू। और तुमने अभी तैयारी न की हो तो सोचकर आ जाना।

और इसके पहले कि विवेकानद कुछ कहे—रामकृष्ण तो थोड़े पागल-से आदमी थे—उन्होने विवेकानद की छाती पर पैर लगा दिया। विवेकानद धड़ाम से गिर पडे। बेहोश हो गये। घटेभर बाद जब होश मे आये तो कप रहे थे पत्ते की तरह तूफान मे। रोने लगे। क्योकि जो दिखाया, जो प्रतीति हुई उस घडी मे, उसने सारा, सारा जीवन बदल दिया। फिर रामकृष्ण से बहुत भागने की कोशिश की, बहुत भागने की कोशिश की, सब उपाय किए—लेकिन भाग न सके। इस आदमी ने विवेकानद की आखे किसी तरफ खोल दी।

अब यह सवाल ज्ञान का न रहा। इसको महावीर श्रद्धान कहते है। श्रद्धा हुई। यह गैर पढ़ा-लिखा आदमी रामकृष्ण, महर्षि देवेद्रनाथ को हरा दिया। वे बड़े ज्ञानी थे, बडे पडित थे, ब्रह्म-समाज के जन्मदाताओ मे एक थे। लेकिन श्रुति थी, स्मृति थी—श्रद्धान न था।

महावीर कहते है, ज्ञान से जाना जाता है, दर्शन से श्रद्धा होती है। और जब श्रद्धा होती है तो चरित्र का जन्म होता है। क्योकि जिस पर श्रद्धा ही नहीं है वह तुम्हारे चरित्र मे कभी न उतर सकेगा। उतार लोगे तो पाखड होगा। ऊपर-ऊपर होगा। किसी और को दिखाने को होगा। अतर्तम मे तुम विपरीत रहोगे, भिन्न रहोगे। बाहर के दरवाजे से एक, भीतर के दरवाजे से दूसरे रहोगे। कहोगे कुछ, करोगे कुछ। वह तुम्हारे चरित्र मे न आ सकेगा। चरित्र मे तो कोई बात तभी आती है जब श्रद्धा की भूमि मे बीज पड़ता है।

जीसस ने कहा है, किसान बीज फेकता है। कुछ रास्ते पर पड जाते है, जहा पथरीली जगह है, कभी उगते नही। कुछ रास्ते के किनारे पड जाते है, जहा जमीन तो ठीक है, लेकिन लोग गुजरते है, पैरो मे दब जाते है, उग भी आते है तो मर जाते है। कुछ उस भूमि मे पडते है, गीली, कोमल—जहा पैदा भी होते है, सुरक्षित

भी रह जाते है।

तो जब तक कोई ज्ञान तुम्हारी श्रद्धा न बन जाये, जब तक हृदय की भूमि मे कोई बीज न पड़े, जब तक तुम्हारी दृष्टि मे कोई बात सत्य की तरह अनुभव मे न आ जाये—तब तक चारित्र्य का, चरित्र का, आचरण का कोई रूपातरण नही होता। हा, तुम चेष्टा करके रूपातरण कर सकते हो। बहुतो ने यही किया है।

ज्ञान से सीधा चरित्र निर्मित किया जा सकता है—लेकिन वही चरित्र पाखडी, हिपोक्रेट का चरित्र है। जो ज्ञान से सीधा चरित्र पर चला गया, वह अपने ऊपर एक तरह का आरोपण कर लेगा। वह सत्य बोलेगा, लेकिन झूठ से उसकी मुक्ति न होगी। झूठ भीतर-भीतर उबलेगा, सत्य ऊपर-ऊपर थोपेगा। वह अहिसक हो जायेगा, लेकिन हिसा भीतर दावानल की तरह जलती रहेगी। वह ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेगा, लेकिन कामवासना रोए-रोए मे मौजूद रहेगी। उसके व्रत ऊपर-ऊपर होगे, जैसे वस्त्र है ऐसे होगे, हड्डी, मास, मज्जा न बनेगे।

जब ज्ञान श्रद्धा के माध्यम से गुजरकर चरित्र तक पहुचता है, तब सम्यक चारित्र्य पैदा होता है।

चरित्र से, जो व्यर्थ है उसका निरोध हो जाता है। चरित्र का इतना ही अर्थ है। महावीर के हिसाब से चरित्र का अर्थ है व्यर्थ का निरोध। इसे खयाल मे लेना, क्योकि महावीर की नकारात्मक दृष्टि का बुनियादी हिस्सा है। महावीर यह नही कहते कि तुम्हे ब्रह्मचर्य आरोपित करना है। ब्रह्मचर्य तो आत्मा का स्वभाव है, आरोपित करना नही। आरोपित तो इसलिए करना पड़ता है कि श्रद्धा से कभी वासना का सत्य, वासना की व्यर्थता तुम्हे दिखायी नहीं पड़ी। सुना किसी को, ब्रह्मचर्य की बाते मधुर लगी, तुम्हारे अनुभव से भी थोड़ी मेल खाती लगीं। जीवन के दुख से भी तुम ऊब गये हो, परेशान हो गये हो। तो लगा कि ठीक ही है, उचित ही है। ऐसा उचित मानकर तुमने ब्रह्मचर्य आरोपण करना शुरू किया। तो ब्रह्मचर्य को विधायक रूप से आरोपित करना होगा, पाजिटिव रूप से आरोपित करना होगा। तुम्हे चेष्टा करके ब्रह्मचारी बनना होगा।

महावीर का कहना यह है, अगर तुम्हे दिखायी पड़ गया कि वासना व्यर्थ है तो ब्रह्मचर्य आरोपित नहीं करना पड़ता, वासना गिर जाती है, जो शेष रह जाता है वही ब्रह्मचर्य। इस भेद को खूब गहराई से समझ लेना।

असत्य गिरता है, सत्य तो—जो शेष रह जाता है, असत्य के गिर जाने पर जो शेष रह जाता है, तुम्हारा स्वभाव, वही सत्य है।

इसलिए महावीर कहते है, चरित्र से सिर्फ निरोध होता है, नकार होता है, व्यर्थ छूट जाता है। सार्थक तो है ही भीतर, व्यर्थ से जुड गया है। सार्थक को लाना नही है। आयोजन करके, निमत्रण देकर, अभ्यास करके लाना नही है—सिर्फ व्यर्थ को देख लेना है। व्यर्थ को व्यर्थ की तरह देख लेना पर्याप्त है। व्यर्थ व्यर्थ की तरह दिखा कि हाथ से छूटा, गिरा। फिर तुम उसे दुबारा न उठा सकोगे। और तुम जो उसके बिना रह जाओगे, वही सत्य है, वही स्वभाव है। वह तुम सदा से थे।

इसका अर्थ यह हुआ कि तुम ठीक तो हो ही, कुछ गलत से तुम्हारा सबध जुड गया है। ठीक होना तो सदा से ही है, गलत से सबध जुड गया है। गलत से सबध छूट जाये, तुम ठीक तो थे ही। ऐसा नही है कि तुम गलत हो गए हो और तुम्हे ठीक होना है, ऐसा ही है कि सोने के ऊपर मिट्टी की तह बैठ गयी, धूल जम गयी, दर्पण के ऊपर धूल बैठ गयी—बस धूल को हटा देना है, पोछ देना है, दर्पण तो दर्पण है ही। धूल के भीतर शुद्ध दर्पण मौजूद है। धूल ने दर्पण को खराब थोडे ही किया है। धूल से दर्पण नष्ट थोडे ही हुआ है। ढक गया है—उघाडना है।

इसलिए महावीर के लिए आत्मा एक आविष्कार है। सिर्फ उघाडना है। जैसे राख मे अगारा छिपा हो—फूक मारी, राख गिर गयी, अगारा रह गया। ऐसे ही दृष्टि की फूक जब लग जाती है, राख झड़ जाती है, जो शेष रह जाता है, वही चरित्र है।

'चरित्र से निरोध होता है और तप से विशुद्धि होती है।'

तप का मैने तुम्हे कल अर्थ कहा, वह खयाल रखना। तप का अर्थ है जो दुख आये उन्हे चुपचाप, बिना ना-नुच किये, बिना अस्वीकार किए स्वीकार कर लेना।

तप का भी अर्थ इतना ही है कि पिछले-पिछले जन्मो मे, दूर की लबी यात्रा मे, हमने जो दुख के बीज बोए थे उनके फल पक गये है। उन्हे कौन भोगेगा? उन्हे भोगना ही होगा। तो जिसे भोगना ही है, उसे दुख से भोगना गलत है। जिसे भोगना ही है उसे सहज स्वभाव से, सरलता से, शाति से भोग लेना उचित है। क्योकि अगर तुमने उसे दुख से भोगा तो तुमने फिर दुख के बीज बोये। तुमने प्रतिक्रिया की। तुम कहते रहे कि चाहता नही था, यह क्या हो रहा है? इनकार करते रहे। तो तुमने चाह की

फिर प्रदर्शना की। तुम्हारी चाह भीतर बनी ही रही। तुम सुख चाहते थे और दुख मिल रहा है—तो तुम नाराज रहे, तुम क्रोधित रहे। दुख तो भोगना ही पडा। लेकिन ये क्रोध और नाराजगी के नये बीज बो लिये। इनका दुख फिर भोगना पड़ेगा।

महावीर कहते है, तुम चुपचाप, बिना कोई प्रतिक्रिया किये, दुख आये तो उसे भोग लो। जैसे दर्पण के सामने सुदर व्यक्ति आ जाये कि कुरूप व्यक्ति आ जाये, दर्पण कोई इनकार नहीं करता, दोनो को झलका देता है। फिर दोनो चले जाते है, दर्पण खाली रह जाता है। तो महावीर कहते है, सुख आये तो पकड़ना मत, दुख आये तो धकाना मत। सुख आये तो समझना, किये हुए पुण्य-कर्मो का फल है। दुख आये तो समझना कि किये हुए पाप-कर्मों का फल है। निष्पक्ष, तटस्थ दर्पण की भाति खडे रहना दोनो आये है, दोनो चले जायेगे। जो आता है वह जाने को ही आता है। जो आया है वह जाने के रास्ते पर ही है। सुबह हो गयी, साझ हो जायेगी। साझ हो गयी, सुबह हो जायेगी। सूरज ऊगा, सूर्यास्त होने लगा। इसलिए घबड़ाना मत। तुम सिर्फ चुपचाप खडे रहना। तुम्हारी दृष्टि कोरी रहे, दर्पण की तरह रहे—बिना किसी पक्षपात के, बिना किसी विकल्प के। कोई धारणा मत बनाना। इस अवस्था का नाम तप है।

तप से आदमी शुद्ध होता है। क्यो? क्योकि तप से जो अतीत है, उससे छुटकारा हो जाता है। अतीत है अशुद्धि अतीत से छुटकारा है विशुद्धि। अतीत से दबे रहना है अशुद्धि।

कचरा, कूड़ा-कर्कट न-मालूम कितने जन्मो का छाती पर रखे हम बैठे है। यह है अशुद्धि। इससे छुटकारा पा जाना है शुद्धि। और जैसे ही कोई शुद्ध हुआ, वैसे ही महावीर कहते है जो है, हमारा स्वरूप, स्वभाव, उसकी छवि उभरने लगती है, उसका रूप स्पष्ट होने लगता है। और एक से दूसरी चीज जुडी है। लेकिन शुरुआत श्रद्धा से।

दर्शन, ज्ञान, चरित्र—इनको महावीर ने मोक्ष का मार्ग कहा है। जीवन बड़ा सयुक्त है बीज से पौधा, पौधे से वृक्ष, वृक्ष मे फलो का लग जाना, फूलो का लग जाना।

कहीं बीच से शुरू मत करना। प्रारभ से ही प्रारभ करना। बहुत लोग जल्दबाजी मे होते है। वे सोचते है, 'फूल तो बाजार मे मिल जाते है। क्यो इतनी परेशानी उठानी? क्यो इतनी झझट लेनी? जो सस्ते मे मिल जाता है, वह सस्ते मे ले लिया जाये।'

अभी पश्चिम मे वैज्ञानिक कहते है, जल्दी ही टेस्ट-ट्यूब में बच्चे होने लगेगे, ताकि स्त्रियो को इतनी झझट न उठानी पड़े। यह होगा। यह बीस वर्षो के भीतर होगा। यह तुम्हारे सामने होगा। क्योकि स्त्रियो को एक बार पता हो गया कि बच्चे टेस्ट-ट्यूब मे पैदा हो सकते है, तो जैसे ही मा के पेट मे गर्भाधारण होगा, उसके अडे को निकालकर टेस्ट-ट्यूब मे रख दिया जायेगा। फिर वैज्ञानिक उसकी फिक्र कर लेगे अस्पताल मे। यह मा को नौ महीने की उपद्रव, परेशानी, कठिनाई, पीड़ा यह सब बच जायेगी। यह सब तो बच जायेगी, लेकिन मा भी पैदा न होगी।

जरा सोचो। तुम्हारा बच्चा टेस्ट-ट्यूब मे पैदा हुआ, तो वह तुम्हारा है या किसी दूसरे का है, क्या फर्क पडता है? टेस्ट-ट्यूब अगर बदल गयी हो भूल-चूक से क्लर्को की, तो तुम्हे कभी पता भी न चलेगा कि तुम्हारा है या किसी और का है। भेद ही क्या है?

फिर गणित का ऐसे विस्तार होता है। फिर वैज्ञानिक कहते है कि जरूरी क्यो हो कि तुम्हारे ही वीर्याणु से तुम्हारा बच्चा पैदा हो। अच्छे वीर्याणु मिल सकते है। यह बात सच है। आदमी जब बीज बोता है, खेती करता है, फूल लगाता है, तो अच्छे से अच्छे बीज चुनता है। तुम अपना बच्चा पैदा करना चाहते हो, अच्छे से अच्छे बीज चुनो। तुमसे बेहतर बीज मिल सकते हैं। तो जल्दी ही, आज नही कल जैसे फूलो की दुकानो पर बीज पैकेट मे मिलते है, वैसे आज नही कल वैज्ञानिक बच्चो के वीर्याणु पैकेटो मे बेचने लगेगे। उसकी पूरी योजनाए तैयार है। इतना ही नही, जैसे फूल के पैकेट पर फूल की तस्वीर बनी होती है कि कैसा फूल होगा जब फूल होगा, बच्चे की तस्वीर भी बनी होगी कि कैसा बच्चा होगा। तो तुम चुनाव कर सकते हो कैसी आख चाहिए, कैसे बाल चाहिए, कैसा चेहरा चाहिए, कितनी ऊचाई चाहिए, लड़का चाहिए, लड़की चाहिए, वैज्ञानिक, कवि—तुम क्या चाहते हो? लेकिन तब एक बात पक्की है सब ठीक हो जायेगा, बच्चा तुम्हारा नहीं होगा। मा बनने से, पिता बनने से, तुम वचित रह जाओगे।

यह होनेवाला है, क्योकि आदमी तकलीफो से बहुत डरने लगा है। तो जहा-जहा सुविधा मिले, सब स्वीकार कर लेता है। अगर सुविधा के कारण जीवन भी गवा दे तो भी हर्ज नही,

लेकिन सुविधा चाहिए।

तप का अर्थ है जीवन सघर्षो से गुजरता है, तूफान भी आते है, कठिनाइया भी है—उनको स्वीकार करना। उनको शात भाव से स्वीकार कर लेना, तो तुम्हारे जीवन मे धीरे-धीरे शुद्धि निखरेगी। आत्मा प्रगाढ होगी। तुम केंद्रित बनोगे, आत्मवान बनोगे। और एक से दूसरी चीज जुड़ी है। श्रद्धा से शुरू करना। हृदय से शुरू करना। क्योकि वहीं तुम्हारे प्राणो का प्राण छिपा है। वही तुम्हारा मदिर है। और फिर ज्ञान अपने-आप चला आता है।

आया ही था खयाल कि आखे छलक पडी
आसू किसी की याद से कितने करीब थे।

आया ही था खयाल की आखे छलक पड़ी। खयाल ही उठता है, याद ही आती है कि आखो मे आसू भर जाते है।

आसू किसी की याद से कितने करीब थे। जैसे याद के करीब आसू है और हृदय मे किसी की याद उठी तो आखे डबडबा आती है—ऐसा ही, जहा दर्शन घटा, वहा ज्ञान घटता है। बहुत करीब है ज्ञान दर्शन के। और जहा ज्ञान घटा, वहा चारित्र्य घटना शुरू हो जाता है। अगर एक ही बात सध जाये—दर्शन—तो सब सध जाता है।

महावीर ने तीन की बाते कही, ताकि तुम्हे पूरा विश्लेषण साफ हो जाये, अन्यथा दर्शन कहने से भी काम चल जाता। जब तुम्हे दिखायी पड जाता है कि दरवाजा कहा है, तो फिर तुम दीवाल से नही निकलते। और जब तुम्हे दिखायी पड जाता है कि आग हाथ को जला देती है, अनुभव मे आ जाता है, तो फिर तुम हाथ आग मे नही डालते। आग की तो बात दूर, आग की तस्वीर भी रखी हो तो तुम जरा बचकर चलते हो।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन पहली दफा समुद्र की यात्रा पर गया। इसके पहले कभी समुद्र की यात्रा न की थी, जहाज मे बैठा न था। बस के अलावा और किसी वाहन मे बैठा ही न था। जहाज मे थोड़ी देर बैठा। उठा, कैप्टन के कमरे मे जाकर बोला, 'पेट्रोल-वेट्रोल तो भर लिया है?' तो उसने कहा, 'सब भर लिया है, तुम फिक्र न करो। बैठो अपनी जगह पर।' थोड़ी देर बैठा रहा, फिर उठकर पहुचा, और कहा, 'सुनो जी। इजिन-विंजिन तो ठीक है?' कैप्टन थोड़ा झल्लाया। उसने कहा कि सब ठीक है, आप अपनी जगह पर बैठिये। लेकिन वह फिर थोड़ी देर बाद आया। उसे देखकर ही वह कैप्टन थोड़ा परेशान होने लगा। उसने कहा कि 'फिर आ गए। अब क्या मामला है?' तो मुल्ला ने कहा, 'और सब तो ठीक-ठाक है? और कोई गड़बड़ तो नही है?' उस कैप्टन ने कहा कि इससे तुम्हे मतलब क्या है? मुल्ला ने कहा, 'मतलब? फिर बीच मे मत कहना, जब रुक जाये कि उतरकर धक्के लगाओ।'

बस मे बैठने के आदी। आदमी दूध से जल जाये तो छाछ भी फूक-फूककर पीने लगता है। तुम्हे दिखायी पडे, आग जलाती है, अनुभव मे आ जाये ।

तो तुमने खयाल किया है। अगर कहीं थियेटर मे बैठे हो और लोग इतना ही चिल्ला दे, 'आग।' कि भगदड़ मच जाती है। किसी को आग दिखायी नही पड रही है, किसी ने हो सकता है मजाक ही की हो, लेकिन लोग इतना ही चिल्ला दे, 'आग।' कि भगदड़ मच जाती है। फिर तुम लाख समझाओ कि रुको, कोई सुननेवाला नही है। आग शब्द भी घबडा देता है। जीवत अनुभव का इतना परिणाम है।

तो अगर वासना जला दे तो वासना की तो बात दूर, वासना शब्द भी तुम हाथ मे न ले सकोगे। अगर कामवासना ने तुम्हारे जीवन को दग्ध किया और घाव बना दिये तो कामवासना की तो दूर, कामवासना की जहा चर्चा भी होती है वहा तुम न बैठ सकोगे। कोई अर्थ न रहा। व्यर्थ के लिए कौन बैठता है। और व्यर्थ की ही बात नही, जले जीवन के दुखद अनुभव हुए, घाव बने—कौन घावो को मागने जाता है।

लेकिन तुम सुनते हो ब्रह्मचर्य की चर्चा, लोभ पैदा होता है। वासना की आग अभी दिखाई नही पड़ी और ब्रह्मचर्य की चर्चा से लोभ जगने लगता है—इससे अड़चन खडी होती है। इससे जीवन मे एक भ्राति आती है।

महावीर कहते है, शुरू करना दर्शन से। दर्शन, ज्ञान, चरित्र—यह सम्यक सरणि है। और जीवन को अगर ठीक से पहचानना हो तो जीवन को प्रतिपल जागकर देखते रहना। उसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। जो भी है—अगर क्रोध हो रहा है तो क्रोध को जागकर देखना—वही दर्शन बनेगा। करुणा का शास्त्र मत पढ़ना, क्रोध को गौर से देखना उसी से करुणा किसी दिन पैदा होगी।

मै हकीकत-आश्ना हू हस्तिए-मोहूम का

देखता हू गौर से फूलो को मुरझाने के बाद।

ऐसे गौर से देखने से कुछ लाभ न होगा। जब फूल मुर्झा गए, फिर देखने से कुछ सार नही।

बुढापे मे लोग कामवासना के सबध मे विचार शुरू करते है। जब फूल मुर्झा गए, जब जीवन मे ऊर्जा खो गयी, जब थक गये, जब जीवन जवाब देने लगा, जब जिदगी खुद ही उन्हे छोडने लगी और रद्दी के ढेर पर फेकने लगी—तब वे त्यागने की बात सोचते है।

इसलिए महावीर ने एक बहुत अनूठा सूत्र भारत को दिया—और वह था जब तुम जवान हो, जब जीवन की ऊर्जा भरी-पूरी है, तभी अगर तुम जीवन के दुख को देख लो और उससे छूट जाओ, भरी जवानी मे त्याग का फल लग जाये, तो बडा शुभ है। क्योकि तब ऊर्जा है। तो जिस ऊर्जा से तुम ससार की तरफ जाते थे, वही ऊर्जा तुम्हे मोक्ष की तरफ ले जाने का साधन बन जायेगी। ऊर्जा तो वही है। लेकिन जब ऊर्जा जा चुकी, थक गये, हाथ-पैर कमजोर पड गये, उठते नही बनता, बैठते नही बनता—तब तुम त्याग का सोचने लगे। यह त्याग न हुआ, यह तो अपने को धोखा देना हुआ। जिदगी खुद ही तुम्हे त्यागे दे रही है। अब तुम्हारे त्याग का कोई अर्थ नही है। यह तो ऐसे ही हुआ कि जब दात टूट गये तब तुमने बहुत-सी चीजे खाने का त्याग कर दिया। अब तुम उन्हे खा ही नही सकते।

ध्यान रखना, जो बीत रहा है अभी, आज, यहा, उसके प्रति जागना। दर्शन की क्षमता को वहा सजग करना। जैसे-जैसे दर्शन जागता जायेगा—क्रोध मे, काम मे, लोभ मे, मोह मे—वैसे-वैसे तुम पाओगे मोह, काम, क्रोध, लोभ गिरने लगे, और एक नयी ऊर्जा का भीतर आविर्भाव हुआ। क्योकि जो ऊर्जा क्रोध मे लगी है वही मुक्त होकर करुणा बन जाती है। दर्शन के माध्यम से क्रोध करुणा बन जाता है। और काम की यात्रा राम की यात्रा बन जाती है।

'सम्यक दर्शन के बिना ज्ञान नही।'

नादसणिस्स नाण।

'ज्ञान के बिना चारित्र्य नही।'

नाणेण विणा न हुति चरणगुणा।

'चरित्रगुण के बिना मोक्ष नही।'

अगुणिस्स नत्यि मोक्खो

'और मोक्ष के बिना आनद कहा, निर्वाण कहा।'

नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण।

बड़े सीधे-सरल, लेकिन बडे वैज्ञानिक सूत्र है।

'दर्शन के बिना ज्ञान नही।'

इसलिए और कैसा भी ज्ञान तुमने इकट्ठा किया हो, उसे ज्ञान मत समझना। और कितना ही ज्ञान तुम्हारे पास हो, उसे तुम अज्ञान का आभूषण ही समझना, उससे अज्ञान ही सज गया है, सवर गया है, ज्ञान पैदा नही हुआ। उससे अज्ञान ढक गया है, ज्ञान पैदा नही हुआ।

'ज्ञान के बिना चरित्र नही।'

दर्शन, ज्ञान, चरित्र। और ज्ञान की परीक्षा यही है कि वह तुम्हारे आचरण मे उतर आये।

मैने सुना है, प्रसिद्ध शहीद चद्रशेखर आजाद को तीन ही गालिया आती थी। और जब वह बहुत क्रोध मे भी आ जाते तो उन्ही तीन गालियो को बार-बार दोहराने लगते। गधा, नालायक, उल्लू के पट्ठे—बस तीन ही गालिया आती थी। किसी मित्र ने कहा कि अगर तुम्हे गालिया देने मे ऐसा रस आता है और क्रोध के वक्त गालिया कम पड जाती है तो और क्यो नही सीख लेते? कोई गालियो की कमी है? कि गधा, नालायक, उल्लू के पट्ठे, फिर गधा, नालायक, उल्लू के पट्ठे—बार-बार वही दोहराने लगते हो, अच्छा भी नही मालूम होता। जैसे टूटा हुआ रिकार्ड दोहराने लगता है।

तो चद्रशेखर आजाद ने कहा, 'चौथी गाली की जरूरत नही है।' कोट के खीसे से पिस्तौल निकाली और कहा, 'गाली, फिर गोली। तीन गाली काफी है। फिर इसके बाद गोली।' कहा कि मै इस सूत्र को मानकर चलता हू कि विचार आचरण मे लाने चाहिए। तो गाली तो केवल विचार है, गोली आचरण है।

मगर मजा यह है कि अगर गाली है तो गोली अपने-आप आ जायेगी। गाली कब तक देते रहोगे? अगर क्रोध है तो हिसा पैदा होगी। उससे बच न सकोगे। क्योकि जिसको हम विचार मे सम्हालते है, वह आज नहीं कल आचरण मे झलक जाता है। क्योकि आचरण कुछ भी नही है—निरतर विचार, पर्त-पर्त विचार का ही जम जाना है। विचार ही तो वस्तुए बन जाते है। जो तुमने सोचा है, कल वही तुम्हारा आचरण बन जायेगा। जो तुम्हारा आज विचार है वह कल आचरण होगा। और जो आज

तुम्हारा आचरण है वह कल तुम्हारा विचार था।

विचार और आचरण एक ही यात्रा के हिस्से है। विचार पहला कदम है, आचरण अतिम। अगर कोई विचार आचरण न बनता हो तो इस बात का एक ही अर्थ होता है कि वह विचार तुम्हारा नही है। इसलिए कैसे आचरण बने ?

चिकित्सको से पूछो। अगर तुम्हारे शरीर मे खून की कमी हो जाये तो हर किसी का खून तुम्हारे काम न पडेगा। तुम्हारा ही टाइप चाहिए। मतलब हुआ कि तुम्हारा खून ही तुम्हारा शरीर स्वीकार करता है, और किसी तरह का खून स्वीकार नही करता। अगर तुम्हारे चेहरे पर प्लास्टिक सर्जन कुछ आपरेशन करे और चमडी बदलनी हो तो तुम्हारे ही पैर या जाघ की चमड़ी निकालकर लगानी पड़ती है। क्योकि दूसरी किसी की चमड़ी तुम्हारा शरीर स्वीकार नहीं करता।

जो शरीर के सबध मे सही है वह आत्मा के सबध मे और भी ज्यादा सही है। तुम्हारा ही हो अनुभव तो ही तुम्हारी आत्मा स्वीकार करती है, अन्यथा नही स्वीकार करती। तुम्हारे ही प्राणो मे पगा हो तो ही तुम्हारी आत्मा उसे अपने भीतर लेती है, अन्यथा बाहर फेक देती है। जैसे हर किसी के खून को तुम्हारे भीतर नही डाला जा सकता और जैसे हर किसी की चमड़ी तुम्हारे पैर पर या तुम्हारे चेहरे पर नही चिपकायी जा सकती—शरीर तो बाहर है, आत्मा तो बहुत गहरे है, तुम्हारा आखिरी, आत्यतिक अस्तित्व है। वहा तो केवल तुम ही तुम हो। तुम्हारा ही जो है, वही वहा पाएगा जगह, शेष सब अस्वीकृत हो जाता है।

इसलिए महावीर कहते है, सम्यक दर्शन के बिना ज्ञान नही। ज्ञान के बिना चारित्र्य नही। चारित्र्य के बिना मोक्ष नही।

और जो अभी चरित्र मे शुद्ध नही हुआ, उसकी मुक्ति कहा। क्योकि मोक्ष तो जो गलत है उससे छूट जाने का नाम है, बधन के टूट जाने का नाम है।

और मोक्ष के बिना निर्वाण कहा, आनद कहा ?

तो तुम अगर दुखी हो तो आकस्मिक नही। तुम दुखी रहोगे ही, क्योकि आनद तक जाने की तुम यात्रा नही कर रहे हो। और अगर कभी तुम उत्सुक भी होते हो तो तुम जल्दबाजी मे हो, अधैर्य है बहुत। तो तुम सोचते हो, दो-चार कदम एक साथ उठ जाये कि दो-चार सीढ़िया एक साथ छलाग लग जाये, कि जल्दी कुछ हो जाये। कुछ है जो ज्ञान से शुरू करते है। कुछ, जो और भी ज्यादा जल्दबाजी मे है, वे चरित्र से शुरू कर देते है। जब भी तुम्हे खयाल उठता है, तुम सोचने लगते हो चरित्र को कैसे बदले। तुम आखिरी बात पहले लाना चाहते हो ? तुम भ्राति मे पड रहे हो। तुम सिर के बल खडे हो जाओगे।

इसलिए मै कहता हू, जैन मुनि सौ मे निन्यानबे सिर के बल खडे है। उन्होने चरित्र से शुरुआत कर दी। और महावीर के बड़े सीधे-साफ सूत्र है। इनको समझने के लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता नही चाहिए। इनमे उलझाव कुछ भी नही है। महावीर की उलझाने की आदत नहीं है, चीजो को बिलकुल साफ-साफ रख देने की आदत है। अब इससे ज्यादा साफ सूत्र क्या होगा 'दर्शन के बिना ज्ञान नही। ज्ञान के बिना चरित्र नही। चरित्र के बिना मोक्ष नही।'

लेकिन जैन मुनि क्या कर रहा है ? वह चरित्र को साध रहा है। वह कहता है, जब चरित्र शुद्ध होगा तो ज्ञान शुद्ध होगा। जब ज्ञान शुद्ध होगा तो दर्शन शुद्ध होगा। उसने सारी प्रक्रिया उलटी कर ली है। वह सिर के बल खडा हो गया है। इसलिए न तो दर्शन उत्पन्न होता, न ज्ञान उत्पन्न होता, न चरित्र उत्पन्न होता। सब बासा है। सब उधार है। सब मुर्दा और लाश की भाति है। कोई उत्सव नही है सत्य का। कोई परमात्मा की जीवत अनुभूति नही है।

'क्रिया-विहीन ज्ञान व्यर्थ है।' हय नाण कियाहीण। 'और अज्ञानियो की क्रिया भी व्यर्थ है।'

ये सूत्र बडे बहुमूल्य है।

'हया अण्णाणओ किया।'

'क्रियाविहीन ज्ञान व्यर्थ है।' अगर ऐसा कोई ज्ञान तुम्हारे पास है जो जीवन मे आचरित नही हो रहा है, अपने-आप जीवन मे उतर नही रहा है तो व्यर्थ है, गलत है। और अगर तुम अज्ञानी हो और क्रिया मे लग गये हो, चरित्र बनाने मे लग गये हो, तो वह भी व्यर्थ है।

क्रियाहीन ज्ञान तो व्यर्थ है, क्योकि जानते तुम हो, लेकिन जीवन मे काम मे नही लाते हो। यह तो ऐसे ही है कि भोजन रखा है और तुम भूखे बैठे हो। यह भोजन व्यर्थ है। हो या न हो, बराबर है। यह सर्दी पड रही है, कबल सामने रखे बैठे हो, ओढते नही हो—कि धूप निकली है, तुम सर्दी मे कप रहे हो, जाकर धूप मे नही बैठ जाते हो कि थोडा धूप का आनद ले लो

और शरीर को गरमा लो। यह ज्ञान तो व्यर्थ है जो आचरण मे न उतर आये। इस भोजन का क्या करोगे?

जीसस के जीवन मे उल्लेख है कि जीसस ने चमत्कार किया और पत्थरो को रोटी बना दिया। एक ईसाई मेरे पास आया था। वह कहने लगा, आप इसमे मानते है या नही? मैने कहा, मै मानता हू क्योकि इससे भी बड़ा चमत्कार दूसरे लोग कर रहे है। उन्होने रोटियो को पत्थर बना दिया है। तो यह कोई बड़ी बात नही कि ईसा ने अगर पत्थर को रोटी बना दिया, यह तो मै रोज देख रहा हू कि करोडो-करोड़ो लोगो ने रोटी को पत्थर बना दिया है। चमत्कार तो वही है।

ज्ञान रखा है, किसी काम नही आता। तुमने ज्ञान का कभी उपयोग किया है? तुम कर ही नही सकते उपयोग, क्योकि वह दर्शन से पैदा नही हुआ है। वह तुम्हारा है ही नही। भीतर गहरे मन मे तुम जानते ही हो कि वह ठीक नही है। ऊपर-ऊपर से कहे जाते हो, ठीक है। लोकोपचार, समाज, परपरा।

तुम्हारा ज्ञान एक शिष्टाचार मात्र है। लेकिन भीतर तुम्हे उस पर भरोसा नहीं है। जिस पर भरोसा नही उसे तुम कैसे जीवन मे उतारोगे? जिस भोजन पर तुम्हे भरोसा नही है, उसे तुम कैसे करोगे? उसे तुम कैसे पचाओगे? उसे तुम क्यो चबाओगे? ऊपर से तुम कहते हो, भोजन है, भीतर तो तुम्हे दिखायी पडता है पत्थर, मिट्टी है। इसलिए ज्ञान पडा रह जाता है।

'क्रियाविहीन ज्ञान व्यर्थ है और अज्ञानियो की क्रिया भी व्यर्थ है।' और अगर अज्ञानी चरित्रवान होने की कोशिश मे लग जाये तो वह भी व्यर्थ है, क्योकि वह कितना ही आरोपित कर ले चरित्र, वह कभी उसके प्राणो का स्पदन नही बनेगा। वह उसके जीवन का गीत न होगा। वह बस ऊपर-ऊपर होगा। जरा खरोच दो—और असली मवाद बाहर निकल आएगा।

तो तुम तथाकथित चरित्रवानो को खरोचना मत, अन्यथा चमडी से भी कम गहरा उनका चरित्र है। बिना खरोचा रहे तो सब ठीक चल जाता है। जरा-सी खरोच—और कठिनाई हो जाती है। इसलिए तो तुम्हारे चरित्रवान जीवन को छोड़कर भाग जाते है, क्योकि जीवन मे लगती है खरोचे।

रवींद्रनाथ से किसी ने पूछा, 'आपने शातिनिकेतन बोलपुर मे क्यो बनाया?' तो उन्होने कहा, 'क्या ढोलपुर मे बनाऊ? यहा कम से कम बोल तो सकते है। बोलपुर।' और मै तुमसे कहता हू, जब तक तुम ढोलपुर मे न बोल सको, तक तक तुम्हारे बोलपुर मे बोलने का कोई मतलब नही है। शाति तो वहा घनीभूत होनी चाहिए जहा चारो तरफ अशांति है। ढोलपुर।

बीच बाजार मे अगर तुम मुक्त न हो सको तो तुम्हारी मुक्ति दो कौड़ी की है। अगर हिमालय की चोटियो पर बैठकर तुम मुक्त हो जाओ तो उस मुक्ति का कोई मूल्य नही है। क्योकि उतरते ही पहाड़ से नीचे तुम पाओगे, वह मुक्ति पहाड पर ही छूट गयी। बाजार मे खरोचे लगेगी।

तुम अपने मुनियो को थोडा बाजार मे लाओ। वहा पता चल जायेगा, क्योकि वहा चारो तरफ धक्कम-धुक्की है।

मैने सुना है, एक सन्यासी तीस वर्ष तक हिमालय मे रहा। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। लोग उसकी पहाड़ी गुफा तक आने लगे, उसके चरण छूने। आखिर कुभ का मेला भरा था, तो लोगो ने कहा, 'महाराज। अब तो नीचे उतरो।' तो उसको भी अब तो भरोसा आ गया था। तीस साल। एक दफा क्रोध नहीं हुआ। एक दफा नाराज नही हुआ। एक दफा कोई विकृति नही उठी। उसने कहा, आता हू। वह आया। अब कुभ का मेला। वहा कौन किसकी फिक्र करता है। धक्कम-धुक्की। वह नीचे उतरा तो धक्कम-धुक्की होने लगी। एक आदमी का पैर उसके पैर पर पड गया। वह भूल ही गया तीस साल का हिमालय का वास, शाति, ध्यान। झपटकर उसकी गर्दन पकड़ ली और कहा, 'तूने समझा क्या है? किसके ऊपर पैर रख रहा है? होश से चल।' लेकिन तभी उसे खयाल आया, अरे। तीस साल मिट्टी हो गये।

पर हिमालय मे तुम बैठे थे, एकात मे, न किसी का पैर पैर पर पडता था, न मौके थे, न अवसर थे। खरोच जरा-सी लग जाये, मुश्किल मे पड़ जाओगे।

साधु अगर सम्यक चरित्र को उपलब्ध हो तो भगोड़ा नही होगा। भगोडे होने की कोई जरूरत नहीं है। उसके होने मे साधुता होगी। उसने कुछ छोड़ा नहीं है, जो गलत था वह छूट गया है। और उसने कुछ थोपा नहीं है, जो ठीक था वह प्रगट हुआ है। उसका चरित्र उसकी आतरिक आत्मा का ही प्रतिबिब होगा। उसके जीवन मे तुम विरोध न पाओगे। उसके भीतर कोई दोहरी पर्ते नही है। उसके व्यक्तित्व मे तुम डबल-माइड न पाओगे। ऐसा नहीं है कि वह कुछ भीतर है और कुछ होने की

चेष्टा कर रहा है। वह जो भीतर है, वैसा ही बाहर प्रगट हो रहा है। इसलिए महावीर नग्न खड़े हुए।

नग्न खड़े होना बड़ा प्रतीकात्मक है, कि जैसा मै भीतर हू वैसा बाहर। कपड़े भी क्यो पहनू ? मै वैसा क्यो दिखलाऊ जैसा कि मै नही हू ?

तुमने देखा। कपडे के पीछे सिर्फ शरीर को ढाकने की ही आकाक्षा थोडे ही है। अगर सिर्फ शरीर को ढाकने की आकाक्षा हो तो ठीक। कपड़े के पीछे शरीर को वैसा दिखाने की आकाक्षा है जैसा वह नही है। तो महावीर का नग्न खडे हो जाना कपडो का विरोध नही है, लेकिन तुम्हारी गहरी आकाक्षा का विरोध है।

देखा स्त्रिया या पुरुष। पुरुष कोट बनवाते है तो कधो पर रुई भरवा लेते है, क्योकि छाती उभरी हुई दिखायी पडे। रुई सही, मगर कौन देख रहा है भीतर आकर। बाहर से चलते तो छाती उभरी दिखायी पडती है।

स्त्रिया स्तनो को हजार तरह से उभारकर दिखलाने की कोशिश मे लगी रहती है। न मालूम कितने तरह के इतजाम कर रखे है। जेसा नही है वैसा दिखाने की चेष्टा चल रही है।

महावीर नग्न खडे हुए—सिर्फ इस अर्थ मे। यह प्रतीकात्मक है कि जैसा हू, ठीक हू। अब इसको अन्यथा दिखाने की क्या जरूरत, अन्यथा दिखाने से अन्यथा हो तो न जाऊगा। किसको धोखा देना है और क्या सार है ?

दर्शन हो तो ज्ञान होता, ज्ञान हो तो एक चरित्र आना शुरू होता। लेकिन वह चरित्र बड़ा नैसर्गिक होता। उसमे आरोपण, चेष्टा, श्रम जरा भी नही होता। एक नैसर्गिक दशा होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर मै मेहमान था। सुबह-सुबह उसकी पत्नी से किसी बात पर झझट हो गयी। तो मुझे देखकर उसने थोड़ा ज्यादा रौब बाधना चाहा पत्नी पर। और उसने कहा कि देखो, मौलवी के सामने, समाज के सामने तुमने कसम नही खायी थी कि सदा मेरी आज्ञा का पालन करोगी ?

मै मौजूद था तो उसने सोचा कि शायद पत्नी थोड़ी झुकेगी और झझट ज्यादा न करेगी।

लेकिन पत्नी ने कहा, 'हा, खायी थी, मुझे याद है। लेकिन वह सिर्फ इसीलिए खायी थी कि मै उस वक्त पहली-पहली मुलाकात मे तमाशा खडा नही करना चाहती थी।'

अब ऐसी कसम का क्या अर्थ, जो इसीलिए खायी गई हो कि पहली मुलाकात मे क्या तमाशा खड़ा करे ? और भीड लगी है, मौलवी है, समाज है, विवाह हो रहा है, गठबधन डाला जा रहा है—अब इसमे कहा तमाशा खड़ा करो बीच मे—इसलिए।

जिदगी मे तुम्हारी कसमे, तुम्हारे व्रत, तुम्हारे चरित्र, अगर किसी कारण से है तो ऊपर-ऊपर होगे।

पत्नी बहुत नाराज हो गयी—यह मौलवी की और विवाह की बात उठते देखकर। और उसने कहा कि मेरे मन मे कई दफे ऐसा लगता है कि तुम बार-बार सोचते होओगे कि मै अगर किसी और को ब्याही गई होती तो अच्छा था।

मुल्ला ने कहा, 'नहीं, कभी नही! मै किसी का भला किसी का बुरा क्यो चाहने लगा। हा, यह भावना जरूर मन मे कभी-कभी उठती है कि तुम अगर जनम भर कुवारी रहती तो बडा अच्छा होता।'

हम छिपाये जाते है। जहा प्रेम नही है, वहा प्रेम दिखलाए जाते है। जहा सदभाव नही है, वहा सदभाव दिखलाए चले जाते है। और जैसे हम नहीं है वैसा हम अपने चारो तरफ रूप खडा करते रहते है। धीरे-धीरे दूसरे तो धोखे मे आते ही है, हम भी धोखे मे आ जाते है। अपने ही प्रचारित असत्य अपने को ही सत्य मालूम होने लगते है। तब एक बड़ी दुविधा पैदा होती है। उसी दुविधा मे लोग फसे है।

महावीर कहते है, क्रियाविहीन ज्ञान व्यर्थ, अज्ञानियो की क्रिया व्यर्थ। तो न तो आचरण करना जबर्दस्ती। क्योकि जो तुम्हारे ज्ञान मे न उतरा हो वह तुम्हे पाखडित करेगा, तुम्हे पाखडी बनाएगा। और अगर कोई तुम्हारे ज्ञान मे उतरा हो तो उसकी परीक्षा यही है कि वह आचरण मे उतरे। इससे तुम गलत अर्थ मत लेना, जैसा कि आमतौर से जैन अनुयायी लेते है। वे सोचते है कि जो ज्ञान मे आ गया, अब इसको आचरण मे उतारना है। नही, यह तो सिर्फ परीक्षा, कसौटी है। महावीर यह कह रहे है कि जो ज्ञान मे आ गया है, वह आचरण मे आना ही चाहिए। अगर ज्ञान मे आ गया है तो आचरण मे आने से बच नही सकता। लेकिन एक शर्त है कि ज्ञान मे दर्शन के माध्यम से आया हो। अगर दर्शन के माध्यम से न आया हो तो ज्ञान की तरह पड़ा रहेगा—तुमसे दूर, सबध न जुड़ेगा, तुम्हारे हृदय और तुम्हारे ज्ञान मे कोई सेतु न होगा।

'जैसे पगु व्यक्ति वन मे लगी आग को देखते हुए भी भागने मे

असमर्थ होने से जल मरता है और अधा व्यक्ति दौड़ते हुए भी देखने मे असमर्थ होने से जल मरता है।'

जगल मे आग लगी हो और एक अधा आदमी हो जगल मे, वह दौड़ सकता है, लेकिन उसे दिखायी नही पडता कि आग कहा है, लपटे कहा है। वह दौड़कर भी जल मरता है। और एक लगड़ा हो, उसे दिखायी पड़ता है कि आग कहा लगी है, कहा से भागू, कहा से निकलू, लेकिन पैर नही है, तो भी जल मरता है।

जिस व्यक्ति के पास ज्ञान तो है, लेकिन आचरण नही, वह जल मरेगा। वह लगड़ा है। जिस व्यक्ति के पास आचरण तो है, लेकिन बोध नही, वह भी जल मरेगा। उसके पास पैर तो थे, लेकिन आख नही है।

'कहा जाता है कि ज्ञान और क्रिया के सयोग से ही फल की प्राप्ति होती है, जैसे कि वन मे पगु और अधे के मिलने पर पारस्परिक सप्रयोग से वन से निकलकर दोनो नगर मे प्रविष्ट हो जाते है। एक पहिए से रथ नही चलता।'

पासतो पगुलो दड्ढो, धावमाणो य अधओ।

अधा भी मर जाता है। पैर थे, बच सकता था। पगु भी मर जाता है। आखे थी, बच सकता था।

लेकिन दोनो का मिलन चाहिए।

सजो असिद्धीइ फल वयति, न हु एग चक्केण रहो पयाइ।
अधो य पगु य वणे समिच्चा, ते सपउत्ता नगर पविट्ठा।।

अगर दोनो साथ हो जाए, अगर अधा और लगडा एक समझौते पर आ जाये, एक मैत्री कर ले, एक सबध बना ले—सबध कि लगड़ा कहे कि मुझे तुम अपने कधो पर बिठा लो, ताकि मै तुम्हारी आख का काम करने लगू, सबध कि अधा कहे, तुम मेरे कधो पर बैठ जाओ, ताकि मै तुम्हारे पैर बन जाऊ। अधा और लगड़ा उस वन मे जहा आग लगी है, बचकर निकल सकते है अगर एक व्यक्ति हो जाये, अगर दो न रहे। अगर लगड़ा अधे के कधे पर बैठ जाये, अधे के लिए देखे और अधा लगडे के लिए चले, दोनो जुड़ जाये, यह सयोग अगर बैठ जाये, तो बचकर निकल सकते हैं, तो सोने मे सुगध आ जाये।

महावीर कहते है, एक पहिये से रथ नही चलता। और ऐसी ही व्यक्ति के जीवन की दशा है। जीवन मे तो आग लगी है। यह जीवन का वन तो जल रहा है। इससे निकलने का उपाय? अकेला जिनके पास चरित्र है और जिनके पास बोध नहीं, वे भी न निकल सकेगे। और जिनके पास ज्ञान है लेकिन चरित्र नही, वे भी न निकल सकेगे। तुम्हारे भीतर एक रसायन घटे, एक अल्केमिकल परिवर्तन हो, एक कीमिया से तुम गुजर जाओ कि तुम्हारा ज्ञान दर्शन बने, तुम्हारी आख बन जाये और तुम्हारा ज्ञान तुम्हारा चरित्र बन जाये। दो तरफ ज्ञान मे घटनाए घटे, एक तरफ ज्ञान दर्शन बने और दूसरी तरफ ज्ञान चरित्र बने, तो पक्षी के दोनो पख उपलब्ध हो गए। अब तुम उड़ सकते हो इस विराट के आकाश मे।

है अधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?
कल्पना के हाथ से
कमनीय जो मदिर बना था
भावना के हाथ से जिसमे
वितानो को तना था,
स्वप्न ने अपने करो से
था जिसे रुचि से सवारा
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रगो से,
रसो से जो सना था
ढह गया वह तो जुटाकर
ईट, पत्थर, ककडो को
एक अपनी शाति की
कुटिया बनाना कब मना है?
है अधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?

जिस दिन तुम दर्शन को उपलब्ध होओगे, उस दिन तुम्हारा पुराना भवन—सपनो का, स्वर्ग के रगो का, इद्रधनुषों का गिरेगा—धूल मे गिरेगा। खडहर भी न बचेगे। क्योकि सपने के कही कोई खडहर बचते है। बस तिरोहित हो जायेगा, जैसे कभी न था। हाथ मे राख भी न रह जायेगी।

दर्शन को उपलब्ध होते ही, जीवन को गौर से देखते ही एक बात साफ हो जाती है कि जीवन है, तुम हो—और बीच मे तुमने जो सपने बनाए थे वे झूठे थे। वे तुम्हारी मूर्च्छा से उठे थे। वे तुम्हारी बद आखो से उठे थे। जैसे सुबह एक आदमी जागता है, आख खोलता है—सारे सपने तिरोहित हो गए।

दर्शन का अर्थ है, ऐसे ही तुम जीवन के प्रति आख खोलो,

जागो और देखो। तो कितने-कितने तुमने सजाए है, सवारे है स्वप्न, कितने रग भरे है। वे सब अचानक तिरोहित हो जायेगे। कितने ही रगीन हो, सपने सपने है। उनके तिरोहित हो जाने से घबड़ा मत जाना। ईट-पत्थर से भी छोटी-सी कुटिया बनायी जा सकती है। सत्य से भी शाति की छोटी-सी कुटिया बनायी जा सकती है। झूठे सपनो के बड़े महलो से कुछ सार नही, उनमे कोई कभी रहा नही। लोगो ने सिर्फ सोचा है कि रहेगे। वह सिर्फ बातचीत है। वह बातचीत कितनी ही सुदर मालूम पडे, वह सिर्फ लफ्फाजी है।

मैने सुना है, मिर्जा गालिब के पास कोई आदमी रुपये उधार मागने आया। उन्होंने बड़ी मीठी बाते कही। कवि थे। जो आदमी रुपये उधार मागने आया था, उसने भी कविता मे ही बात की। कहा—

काका। बड़े बे-वक्त आ गए
व्यर्थ ही रास्ता नापा
और आपको देखके मेरा मन कापा
और आपने समय ठीक नही भापा
मेरे शेर मारने गये है डाका
अभी तो चल रहा है फाका
लौटकर आने दो मेरे काका
आपका बन जायेगा खाका
अभी हाका करो, वर्ना
बीबी बना देगी आपका साका
और मै करूगा ताका
मेरे आका। अभी न करना इधर नाका
नही तो बीबी न छोडेगी एक बाल बाका।

इतनी लबी कविता कही। लेकिन लेना-देना कुछ भी नही है। वह आदमी कविता से ही घबड़ाकर भाग गया होगा। फिर दुबारा न आया होगा।

तुम्हारे शब्द कितने ही रगीन हो, और कितने ही काव्य के रग तुमने भरे हो, और कितनी ही तुकबदी बाधी हो, कितने ही शब्दो का सौदर्य बिठाया हो—लेकिन भुलावे है। और जितने जल्दी जाग जाओ उतना अच्छा है।

दर्शन का क्या अर्थ? दर्शन का इतना ही अर्थ है आखे सपनो से खाली हो जाये।

और दर्शन मूल भित्ति है। अगर दर्शन को न समझ पाए तो पूरे महावीर बेबूझ रह जायेगे। दर्शन का अर्थ है आख स्वप्न से खाली हो, आख मे कोई सपना न हो, कोई चाह न हो, कोई तृष्णा न हो। आख उसको देखने को राजी हो जो है, आख उसकी माग न करे जो होना चाहिए।

फिर से दोहरा दू। जब भी तुम कहते हो ऐसा होना चाहिए, तभी तुम उसे देखने मे असमर्थ हो जाते हो—जो है। तब तुम उसे देखने लगते हो किसी गहरे तल पर—जो नही है और होना चाहिए। तब तुमने सपना बनाना शुरू कर दिया। तुमने यथार्थ को न देखा। तुमने आदर्श को मागा। तुमने वह न देखा जो मौजूद था। तुम उसकी चाह करने लगे जो होना चाहिए। तुम आशा को बीच मे ले आए। तुम कल्पना बीच मे ले आए। फिर कल्पना ने ताने-बाने बुने। फिर सब चीजे गलत हो गयी। फिर कल्पना के माध्यम से तुम जो देखते हो वह सत्य नही है। ऐसा तुम चाहते थे।

तुमने देखा, जब दो व्यक्ति एक-दूसरे के प्रेम मे पड जाते है तो एक-दूसरे मे ऐसी चीजे देखने लगते है जो है ही नही। स्त्री पुरुष मे ऐसा देखने लगती है कि ऐसा महावीर कभी हुआ ही नही। पुरुष स्त्री मे देखने लगता है जगत का सारा सौदर्य। ऐसी बाते करने लगते है कि जिसका हिसाब नही। चाद-तारो को देखने लगते है—एक-दूसरे के चेहरो मे, आखो मे। अनत फूलो की गध एक-दूसरे के पसीने से आने लगती है। ये सपने है। ऐसा वे चाहते है। फिर अगर सुहागरात पूरी होते-होते ये सब सपने टूट जाते है तो आश्चर्य नही। आश्चर्य तो यह था कि तुम इतनी देर भी कैसे देख सके।

फिर प्रेमी सोचते है कि दूसरे ने मुझे धोखा दिया। कोई किसी को धोखा नही दे रहा—तुम ही धोखा खा रहे हो। फिर प्रेमी सोचता है, यह प्रेयसी तो गलत साबित हुई। यह तो मैने जो फूल की गध देखी थी वह निकली न। यह क्या मुझे धोखा दे गई। यह तो बड़ी कर्कशा निकली। और मैने तो सारे सगीत, सारा साज इसके कठ मे सुना था। मैने तो कोयल को कूकते सुना था। मैने तो कोकिला जानी थी। और यह तो घर आते-आते स्वर कर्कश हो गया। तो क्या इसने मुझे धोखा दिया था? क्या उस क्षण इसने बनावट की थी? वह जो माधुर्य इससे मैने पाया था, तो वह सब प्रवचना थी? तो वह जाल था? वह मुझे फसाने के

लिए था? और प्रेयसी भी यही सोचने लगती है कि इस आदमी मे जो भगवत्ता देखी थी वह कहा गई। इसके चरणो मे सिर रखने का मन हुआ था—तो वे चरण सब बनावटी थे। वह सब पाखड था?

जल्दी ही काटे उभर आते है, फूल विदा हो जाते है। जल्दी ही यथार्थ प्रगट होता है और सपने हट जाते है।

और ऐसा प्रेमी और प्रेयसी के बीच होता है, ऐसा नही—ऐसा हमारे हर सबध मे होता है। ऐसे जीवन के हर मोड पर हम उन चीजो को देख लेते है जो है नही। हम उन इद्रधनुषो को तान लेते है जो कही भी नही है। और फिर जब इद्रधनुष नही पाते है तो रोते है, चीखते है, विषाद से भरते है, दुखी होते है, चिंतित होते है।

दर्शन का अर्थ है जो है उसे बिना किसी आशा से सम्मिश्रित किए, बिना किसी कल्पना मे डुबाये, बिना कैसा होना चाहिए उसको बीच मे लाये, देख लेने की कला।

आख साफ हो तो तुम कभी उलझोगे न। आख साफ हो तो यथार्थ से सबध रहेगा, अयथार्थ तुम्हे बाधेगा न। और आख साफ हो, तो साफ आख से जो बोध सगृहीत होता है उसका नाम ज्ञान। साफ आख से सगृहीत बोध का अतिम जो परिणाम होता है, उसका नाम चारित्र्य। और चारित्र्य का जो आत्यतिक फल है वह मोक्ष।

है अधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?

रात अधेरी है। यथार्थ कठोर है। लेकिन दीये के जलाने की कोई मनाही नहीं है।

है अधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?

—आख के दीये को जलाओ। दर्शन को जगाओ।

कल्पना के हाथ से कमनीय
जो मदिर बना था
भावना के हाथ ने जिसमे
वितानो को तना था
स्वप्न ने अपने करो से
था जिसे रुचि से सवारा
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रगो से,
रसो से जो सना था
ढह गया वह तो जुटाकर
ईट, पत्थर, ककड़ो को
एक अपनी शाति की
कुटिया बनाना कब मना है?

शुद्ध दर्शन से जो दिखायी पड़ता है, यथार्थ, उस यथार्थ से ही अपनी जीवन की कुटिया को बना लेने का नाम चारित्र्य है।

स्वप्न से जीवन को बनाना और सत्य से जीवन को बनाना—बस यही जीवन को बनाने के दो ढग है।

ढह गया वह तो जुटाकर
ईट, पत्थर, ककड़ो को
एक अपनी शाति की
कुटिया बनाना कब मना है?
है अधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?

लेकिन यह किसी बाहर के दीये के जलाने की बात नही है—भीतर के दीये को जलाने की बात है। और यह दीया जलने लगता है जैसे-जैसे तुम आख को साफ करके देखने लगते हो। तो क्या करो?

महावीर का शब्द है—सामायिक। पतजलि का शब्द है—ध्यान। बुद्ध का शब्द है—सम्यक स्मृति। जीवन को जागरण से भरो। जो भी करते हो, करते समय स्मरण रखो कि सपनो को हटाते चलो। पुरानी आदते है, वे बार-बार बीच मे आ जायेगी। उनको हटाते चलो।

तेरी दुआ है कि हो तेरी आरजू पूरी
मेरी दुआ है कि तेरी आरजू बदल जाए।

तुम तो चाहते हो कि तुम्हारी आकाक्षाए पूरी हो जाये, लेकिन महावीर, बुद्ध, कृष्ण चाहते है तुम्हारी आकाक्षाए बदल जाये। आकाक्षाए पूरी करना चाहोगे तो सपनो मे रहोगे। आकाक्षा बदल जाए, आकाक्षा न हो जाए, शून्य हो जाए—तो आकाक्षा के नीचे से जो शक्ति बचेगी, जो आकाक्षा मे नियोजित थी, मुक्त होगी, वह तुम्हारे जीवन मे विस्फोट हो जायेगा, जैसे अणु को हम तोड़ते है, तो छोटे-से अणु मे जो आख से भी दिखायी नही पडता, इतनी ऊर्जा प्रगट होती है। अणु के जो परमाणु है वह एक-दूसरे को बाधे हुए है। जब उन्हे हम अलग करते है तो जो शक्ति उनको बाधे थी, वह मुक्त होती है। उस मुक्त शक्ति का

परिणाम हिरोशिमा मे देखा, नागासाकी मे देखा एक लाख आदमी क्षणभर मे राख हो गए। एक छोटे-से परमाणु को जिसको अब तक किसी ने देखा नहीं है, इतने क्षुद्र के भीतर इतनी ऊर्जा छिपी है। तो आत्मा के भीतर कितनी ऊर्जा न छिपी होगी। जरा आत्मा के बधन को हटाना जरूरी है। जैसे अणु के बधन को हटाया तो इतनी विराट ऊर्जा प्रगट हुई—आत्मा के बधन हट जाये तो जो परम ऊर्जा प्रगट होती है उसी का नाम महावीर ने परमात्मा कहा है। वह आत्म-विस्फोट है।

बधन हटाने है। बधन आकाक्षाओ के, आशाओ के है। बधन मूर्च्छा के है। तो मूर्च्छा को तोड़ने मे लग जाओ।

सारे विचार का महावीर का एक सक्षिप्त भाव है मूर्च्छा को तोडने मे लग जाओ। जो भी करो अपने को जगाकर करो। राह पर चलो तो जागकर चलो। भोजन करो तो जागकर करो। किसी का हाथ हाथ मे लो तो जागकर लो। और सदा ध्यान रखो कि बीच मे सपना न आए। थोडे दिन सपनो को ऐसे छाटते रहे, हटाते रहे, हटाते रहे तो जल्दी ही तुम पाओगे कभी-कभी क्षणभर को सपने नही होते और झलक मिलती है। वही झलक ज्ञान बनेगी। फिर उन झलको को इकट्ठी करते जाना। वह अपने आप इकट्ठी होती चली जाती है। ज्ञान एक दफा हो तो कोई भूल नही सकता। वह तो हमे, दूसरो की बाते है, इसलिए याद रखनी पडती है। जो अपने मे घटता है उसे विस्मरण करने का उपाय नही है। वह तो सगृहीत होता चला जाता है, सघन होता चला जाता है। और जैसे बूद-बूद गिरकर सागर बन जाता है, ऐसे बूद-बूद ज्ञान की गिरकर आचरण निर्मित होता है।

नाणेण जाणई भावे, दसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई।।

'ज्ञान से जानना होता है, दर्शन से श्रद्धा, श्रद्धा से चरित्र, चरित्र से शुद्धि '

नादसणिस्स नाण—दर्शन के बिना ज्ञान नहीं।

नाणेण विणा न हुति चरणगुणा—ज्ञान के बिना चरित्र नही।

अगुणिस्स नत्थि मोक्खो—चरित्र के बिना मोक्ष कहा ?

नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण—और मोक्ष के बिना आनद कहा ?

उस परमानंद को चाहते हो तो दर्शन के बीज बोओ। दर्शन के बीज बोओ—ज्ञान की फसल काटोगे। उस ज्ञान की फसल को पचाओगे, पुष्ट होओगे, तो चारित्र्य उत्पन्न होगा।

और मोक्ष चारित्र्य की प्रभा है। चरित्रवान मुक्त है। चरित्रहीन बधा है। चरित्रवान की जजीरे गिर गयीं।

लेकिन अभी तो तुमने जो चरित्रवान देखे है, तुम उनको पाओगे कि उन्होने नयी जजीरे बना ली है। तो तुम्हारे चरित्रहीन भी बधे है, तुम्हारे चरित्रवान भी बधे है। और अकसर तो बड़ा व्यग्य और बड़ी उलटी बात दिखायी पड़ती है चरित्रहीनो से ज्यादा बधे तुम्हारे चरित्रवान है। चरित्रहीनो से भी बधे। चरित्रहीन मे भी थोड़ी-बहुत स्वतत्रता मालूम पड़ती है। चरित्रवान तो बैठा है मदिर मे, स्थानक मे, पूजागृह मे बद। ऐसा घबड़ाया, डरा। लेकिन कही चूक हो गयी है। चरित्र की प्रभा मोक्ष है। जो मुक्त न कर जाये, वह चरित्र नही।

तुम दर्शन से शुरू करना किसी दिन मोक्ष की प्रभा उपलब्ध होती है। निश्चित होती है। यह जीवन का ठीक गणित है।

और महावीर जो भी कह रहे है, वह वैज्ञानिक सगति का सत्य है। उसमे एक-एक कदम वैज्ञानिक है। जैसे सौ डिग्री पानी गरम करो, भाप बन जाता है—ऐसे महावीर के वचन है दर्शन से ज्ञान, ज्ञान से चरित्र, चरित्र से मोक्ष।

आज इतना ही।





छब्बीसवां प्रवचन

तुम्हारी संपदा—तुम हो

प्रश्न-सार

न मालूम खोपडी मे कहा से कहा चला गया।
शक्ति और प्रभुता की खोज मे था, यहा शाति और शून्यता सीखने को मिली।
अब न आगे जा सकता हू और न पीछे। मन विक्षिप्त हुआ जाता है।
कृपया मार्गदर्शन दे।

दर्शन के तत्क्षण बाद घटी घटना को ही क्या भजन कहते है ?

जो दिन आपके साथ प्रेमपूर्वक बिताए उनको मै कैसे भूलू ?
अतीत को भूलना मेरे बस की बात नही। आप वीतराग है।
अब इन आसुओ के सिवा मेरे पास कुछ भी नही है।
मन बार-बार कहता है, आप कब आएगे ?

पहला प्रश्न न मालूम खोपड़ी मे कहा से कहा चला गया। चाहता था योग से शक्ति, यहा समझने को मिली शाति। चाहता था धर्म से प्रभुता, यहा समझने को मिली शून्यता। कुछ निर्णय नहीं कर पाता हू। मन विक्षिप्त हुआ जाता है। यह यात्रा न मालूम कहा जाकर रुकेगी। पुराना विश्वास बिखर चुका है, नये का जन्म नही हो रहा। अब न पीछे जा सकता हू और न आगे ही बढ पाता हू। कृपया मार्गदर्शन दे।*

धर्म की खोज मे निकलनेवाले लोग अकसर किसी और चीज की खोज मे निकलते है—उस खोज को धर्म का नाम दे देते है।

शक्ति की खोज धर्म की खोज नही है। शक्ति की खोज तो अहकार की ही खोज है। शक्तिशाली होने की आकाक्षा धर्म-विरोधी है।

लेकिन अधिक लोग धर्म की यात्रा पर किन्ही गलत कारणो से निकलते है, जो ससार मे नही मिल सका, उसी को खोजने परमात्मा मे जाते है।

जो ससार मे नही मिल सका, उसे खोजने परमात्मा मे मत जाना। क्योकि जो ससार मे ही नहीं है, वह परमात्मा मे तो हो ही नही सकता। जिसे तुम ससार मे न पा सके, उसे तो समझ लेना कि पाने का कोई उपाय ही नही है।

लेकिन स्वाभाविक है। ससार मे हम जीये है अब तक जन्मो-जन्मो तक। वही एक भाषा परिचित है—पद की, धन की, प्रभुता की, शक्ति की। ससार असफल हुआ तो सोचते है चलो, उन्हीं आकाक्षाओ को प्रभु के मार्ग पर सफल कर लेगे। तो फिर तुम्हे असफलता हाथ लगेगी। और भी गहन असफलता हाथ लगेगी। जैसे ससार के मार्ग पर लगी, उससे भी ज्यादा। तुम उजड़े-उजड़े हो जाओगे। लेकिन कारण धर्म का पथ नही है, कारण तुम्हारी गलत आकाक्षा है।

जब कोई चाहता है शक्ति मिल जाये, तो किसके खिलाफ चाहता है? क्योकि शक्ति तो सदा किसी के खिलाफ होती है। शक्ति का अर्थ ही हिसा है।

शक्ति हम चाहते ही इसीलिए है कि किसी दूसरे से बलशाली हो जाये, कि किसी दूसरे की छाती पर बैठ जाये, कि किसी दूसरे को दबा ले, कि किसी दूसरे को छोटा कर दे। शक्ति का अर्थ ही महत्वाकाक्षा है। वह अहकार का ज्वर है।

धर्म तो शाति की खोज है। शाति का अर्थ है शक्ति की खोज व्यर्थ है, इस बात का बोध, और शक्ति की खोज से मै सदा बीमार रहूगा, स्वस्थ न हो पाऊगा।

शाति की खोज बिलकुल विपरीत है। शाति की खोज का अर्थ है मै इस 'मै' को भी गिराता हू, जिसमे शक्ति की आकाक्षा पैदा होती है, मै इस बीज को दग्ध करता हू। इसने मुझे तडफाया, जन्मो-जन्मो तक भटकाया।

बुद्ध ने, जब उन्हे परम ज्ञान हुआ तो आकाश की तरफ आखे उठाकर कहा, 'हे गृहकारक। हे तृष्णा के गृहकारक। अब तुझे मेरे लिए और कोई घर न बनाना पड़ेगा। बहुत तूने घर बनाए मेरे लिए, लेकिन अब मै आखिरी जाल से मुक्त हो गया हू। अब और मेरे लिए जन्म न होगे।'

जहा महत्वाकाक्षा न रही, तृष्णा न रही, वहा और जन्म न रहे। जहा महत्वाकाक्षा न रही, वहा भविष्य न रहा, समय न रहा, वहा हम शाश्वत मे प्रवेश करते है।

शाश्वत मे प्रवेश होने से जो अनुभव होता है उसी का नाम शाति है। समय मे दौडने से जो अनुभव होता है उसी का नाम अशाति है। आज से कल, कल से परसो। जहा हम होते है वहा कभी नही होते अशाति का यही अर्थ है। जो हम होते है उससे हम कभी राजी नहीं होते—कुछ और होना चाहिए। हमारी माग का पात्र कभी भरता नहीं। हमारा भिक्षापात्र खाली का खाली रहता है कुछ और। कुछ और। कुछ और।

तृप्ति तो असभव है, क्योकि जो भी मिलेगा उससे ज्यादा मिलने की कल्पना तो हम कर ही सकते है। जो भी मिल जायेगा उससे ज्यादा भी हो सकता है, इसकी वासना तो हम जगा ही सकते है।

क्या तुम सोचते हो ऐसी कोई घडी हो सकती है वासना के जगत मे, जहा तुम ज्यादा की कल्पना न कर सको? ऐसी तो कोई घडी नहीं हो सकती। सारा ससार मिल जाए तो भी मन कहेगा और चाद-तारे पडे है।

कहते है, सिकदर जब डायोजनीज को मिला तो डायोजनीज ने एक बड़ा मजाक किया। उसने कहा, 'सिकदर। यह भी तो सोच कि अगर तू सारी दुनिया जीत लेगा तो बड़ी मुश्किल मे पड़ जायेगा।' सिकदर ने कहा, 'क्यो?' तो डायोजनीज ने कहा, 'फिर इसके बाद दूसरी कोई दुनिया नहीं है।' और कहते है, यह सोचकर ही सिकदर उदास हो गया। उसने कहा, 'मैने इस पर कभी विचार नहीं किया। लेकिन तुम ठीक कहते हो। सारी दुनिया जीतकर फिर मै क्या करूगा! फिर तो वासना अधर मे लटकी रह जायेगी। फिर तो अतृप्ति अधर मे लटकी रह जायेगी। फिर तो छाती पर अतृप्ति का पत्थर सदा के लिए रखा रह जायेगा। क्योंकि और तो कुछ पाने को नहीं है, लेकिन पाने की आकाक्षा थोड़े ही समाप्त होती है।'

तुम कुछ भी पा लो, कितनी ही शक्ति, कितनी ही प्रभुता, कितनी ही प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा—ज्यादा की कल्पना सदा सभव है। तुम तृप्त न हो पाओगे। तुम्हारी तिजोड़ी कितनी ही बड़ी हो, और भी बड़ी हो सकती है, उसमे कुछ जोड़ा जा सकता है। तुम्हारा सौदर्य कितना ही हो, उसमे कुछ जोड़ा जा सकता है। और जब तक जोड़ा जा सकता है तब तक तुम अतृप्त रहोगे। यह दौड़ तो कभी पूरी न होगी।

इसलिए बुद्ध ने कहा है, तृष्णा दुष्पूर है। इसे कोई कभी भर नही पाया। नही कि ससार मे भरने के साधन नही है, पर तृष्णा का स्वभाव दुष्पूर है। इस तृष्णा को जब हम थका-थका पाते है ससार मे और भर नही पाते तो हम प्रभु की ओर मुड़ते है। प्रभु की ओर मुड़ना तो ठीक, लेकिन मुड़ने का कारण गलत होता है।

प्रभु की ओर मुडकर धीरे-धीरे तुम्हे समझ मे पड़ेगा कि तुम्हारी आखो मे तो पुरानी वासना ही भरी है। तुम परमात्मा से भी वही माग रहे हो जो तुमने ससार से मागा था। तो तुम मुडे तो जरूर, शरीर तो मुड गया, एक सौ अस्सी डिग्री मुड गया—लेकिन आत्मा नही मुड़ी।

यही अड़चन प्रश्नकर्ता को मालूम हो रही है 'न मालूम कहा से कहा चला गया। चाहता था शक्ति, यहा समझने को मिली शाति ।' इससे उलझन पैदा हो रही है। इससे उलझन सुलझनी चाहिए।

समझ को थोडा जगाओ। साफ-सुथरा करो। अगर शक्ति मिल जायेगी तो क्या करोगे? और शक्ति पाने मे नियोजित करोगे। लोग धन कमाते है, क्या करते है? और धन कमाने मे लगाते है। और कमाकर क्या करेगे? और कमाने मे लगाते है। भोगोगे कब? जो मिलता है, उसे और आगे के लिये लगा देना पडता है। ऐसे जिदगी हाथ से निकल जाती है। एक दिन मौत सामने खड़ी हो जाती है, जिसके आगे फिर कुछ भी नही है। तब तुम चौकते हो, लेकिन तब बडी देर हो चुकी।

मेरे पास आने का एक ही उपयोग हो सकता है कि जो मौत करेगी वह मै तुम्हारे लिए अभी करू। इसलिए तुम घबड़ाओगे। इसलिए तुम भागोगे, बचोगे, तुम उपाय करोगे। जानता हू, तुम कुछ और खोजने आए हो। लेकिन तुम जो खोजने आए हो वह मैं तुम्हे नहीं दे सकता। वह देना तो तुम्हारी दुश्मनी होगी। मै तो तुम्हे वही दे सकता हू जो देना चाहिए। मै तुम्हे शाति की दिशा मे ही अग्रसर करूगा।

इसलिए एक महत्वपूर्ण बात समझ लेनी जरूरी है शिष्य और गुरु के बीच जो सबध है वह बड़ा बेबूझ है। शिष्य कुछ और ही मागता है, गुरु कुछ और ही देता है। शिष्य जो मागता है, अगर गुरु दे दे तो वह गुरु गुरु नहीं, वह दुश्मन है। गुरु जो देना

चाहता है, उसे लेने को शिष्य राजी हो जाए तो ही शिष्य है।

तुम अपनी माग लेकर मेरे पास मत रहना। अन्यथा तुम्हारी माग मेरे और तुम्हारे बीच दीवाल की तरह खड़ी रहेगी। जब मेरे पास ही हो तो यही कह दो कि अब तुम ही यह भी तय करो कि क्या ठीक है। इसका नाम ही समर्पण है।

समर्पण का यह अर्थ नही है कि तुम कुछ मागने आये हो, समर्पण करने से मिलेगा, इसलिए समर्पण करते हो। नही, समर्पण का अर्थ है तुम अपनी माग, तुम अपना मन सब समर्पण करते हो।

तुम कहते हो, 'अब मेरी कोई माग नही, अब मेरा कोई मन नही, अब जो मर्जी हो। अब जो उस पूर्ण की मर्जी हो, वह होने दो। अब मै यह न कहूगा कि मेरी मर्जी पूरी हो।'

मेरी मर्जी पूरी हो, यही अधार्मिक आदमी का लक्षण है।

गुरजिएफ कहता था, तथाकथित धार्मिक लोग अकसर तो धर्म-विरोधी है। उसने तो यहा तक कहा कि जिनको तुम धर्म कहते हो वह सभी ईश्वर-विरोधी है। क्योकि उनके पीछे वही आकाक्षाए है, अपनी मर्जी पूरी करने के इरादे है।

तुम ईश्वर को भी सचालित करना चाहते हो—अपनी मर्जी से। तुम उसे अपने पीछे चलाना चाहते हो। और ईश्वर केवल उन्ही के साथ चल पाता है जो उसके पीछे चलने को राजी है।

सत्य को अपने पीछे खड़ा करने के लिए तो बहुत से लोग उत्सुक है। सत्य के पीछे खड़ा होने को जो उत्सुक होता है वही शिष्य है। उसने ही सीखना शुरू किया।

तो अब आ ही गए हो तो तुम जो कुछ सीखकर आये हो जिदगी से, वह तुम्हारे काम नही पड़ेगा। जिदगी मे ही काम न पड़ा। जो नाव नदी-नाले मे काम न आयी उसको लेकर तुम सागर मे उतर रहे हो? जो नाव नदी-नालो मे डुबाने लगी थी, उसको लेकर तुम सागर मे उतरने का आयोजन कर रहे हो? फिर डूबो, तो परेशान मत होना।

निश्चित ही डूबोगे, क्योकि सागर के विराट का तुम्हें बोध नहीं। सागर मे शक्ति की नाव मत चलाना, वह कागज की नाव है। वह अहकार की नाव है, बुरी तरफ डूबोगे। कूल-किनारा न मिलेगा। बहुत तड़फोगे, परेशान होओगे। वहा तो शाति की नाव चलाना। क्योकि शक्ति की सीमा होती है। शाति की कोई सीमा नही। शक्ति को छीना जा सकता है, शाति को छीना नहीं जा सकता है।

खयाल किया तुमने। बड़े से बडे शक्तिशाली की शक्ति छिन सकती है—छीनी जा सकती है।

नेपोलियन हार गया अत मे तो उसे सेट हेलेना के एक छोटे-से द्वीप मे कारागृह मे डाल दिया गया। सम्राट था। सारे जगत को जीतने चला था। आखिरी नतीजा यह हुआ कि कारागृह मे पड़ा। द्वीप पर उसे चलने-फिरने की स्वतत्रता थी। छोटा-सा द्वीप था। वह पूरा द्वीप ही कारागृह था। इसलिए कहीं भागने का तो कोई उपाय न था। पहले ही दिन वह सुबह-सुबह घूमने निकला। एक पगडडी से गुजर रहा है। एक स्त्री घास का गट्ठर लिए सिर पर आती है। तो नेपोलियन का जो चिकित्सक है—उसे एक चिकित्सक दिया गया था क्योकि वह बीमार था, परेशान था, उसकी रक्षा के लिए—वह चिकित्सक चिल्लाकर कहता है उस घसियारिन से कि 'हट, तुझे पता है कौन आ रहा है। रास्ता छोड़।' लेकिन नेपोलियन स्वय रास्ता छोड़कर किनारे खडा हो गया और उसने कहा कि तुम भूल करते हो। वे दिन गये जब नेपोलियन के लिए पहाड हट जाते थे। अब तो घसियारिन भी न हटेगी। अब तो मुझे ही हट जाना उचित है। घसियारिन कम से कम स्वतत्र तो है, मै कैदी हू। मेरी कोई हैसियत नही उसके सामने।

नेपोलियन की शक्ति छिन जाती है। सम्राट दीन और दरिद्र हो जाते है। जो छिन जाती है, जिस पर दूसरो का कब्जा हो सकता है, जो परतत्र है—उसका क्या मूल्य? वह नाव बड़ी छोटी है।

तुमने खयाल किया शक्ति के लिए दूसरो की जरूरत है। अगर नेपोलियन को जगल मे अकेला छोड दो, उसके पास कोई शक्ति नहीं है। प्रधानमत्रियो को, राष्ट्रपतियो को जगल मे अकेला छोड़ दो, उनके पास कोई शक्ति नहीं है। शक्ति के लिए भीड़ चाहिए। शक्ति के लिए वे लोग चाहिए जिन पर शक्ति आरोपित की जा सके। लेकिन शाति तो अकेले मे भी तुम्हारी है, अकेले मे और भी ज्यादा तुम्हारी है। उसे तुमसे कोई छीन नही सकता, क्योकि वह किसी पर निर्भर नही है। ठेठ हिमालय के एकात मे भी शाति तुम्हारी होगी, तुम्हारे साथ जाएगी।

जो एकात मे भी तुम्हरे साथ हो, वही तुम्हारी सपदा है। और जो दूसरो पर निर्भर होती हो, उसे तुम एकात मे न ले जा सको, तो मृत्यु के पार कैसे ले जा सकोगे? वहा तो तुम अकेले जाओगे।

न मित्र होगे, न सगी-साथी, न पति-पत्नी, न बेटे-बेटिया, कोई भी न होगा। मौत मे तो तुम अकेले प्रवेश करोगे। सब छूट जायेगा जो दूसरो पर निर्भर था। जो दूसरो ने दिया था वह दूसरे वापिस ले लेगे। तुम कोरे के कोरे रह जाओगे। बुरी तरह डूबेगी यह नाव।

इसलिए मै शक्ति की कोई शिक्षण, शक्ति का कोई स्वरूप, शक्ति की कोई रूप-रेखा तुम्हे नहीं देता हू। शाति। वही पाने योग्य है। जो खोया न जा सके, बस वही पाने योग्य है।

पर तुम्हे अड़चन हुई है, यह भी मै समझता हू। तुम अगर शक्ति ही खोजने आये थे जैसा लोग आते है। लोग तो सत्पुरुषो के पास भी चमत्कार के लिए ही जाते है। लोग तो वहा भी शक्ति का ही कोई तमाशा देखना चाहते है। लोगो की आखे बाजार से इतनी भर गयी है कि जब वे मदिर मे भी आते है तो बाजार को अपने साथ ले आते है।

नहीं, यहा तो उन लोगो के लिए ही सुविधा है जो बाजार से सब भाति जागकर आये है। कम से कम इतनी जाग तो लेकर आये है कि यह शक्ति की दौड़ व्यर्थ है। अब चलो, दूसरी यात्रा पर निकले। शाति की यात्रा।

ससार की पूरी यात्रा शक्ति की यात्रा है—बहाने कुछ भी हो। कोई धन इकट्ठा करता है। उससे भी पूछो, धन क्यो इकट्ठा करता है? धन से शक्ति आती है। एक-एक रुपये मे भरी है शक्ति। कोई ज्ञान इकट्ठा करता है। उससे पूछो, क्यो? तो ज्ञान से शक्ति आती है। कोई राज-पदो पर पहुचने के लिए आतुर है, उससे शक्ति आती है। ससार मे हम वही करते है जिससे शक्ति आती है।

तो अगर सक्षिप्त में कहे, तो ससार है शक्ति की दौड़। बहाने अलग-अलग होगे। फिर शक्ति की दौड़ से जो जागने लगा, जिसने उसकी व्यर्थता देखी, वही धर्म की यात्रा पर निकलता है। यह यात्रा अंतर्यात्रा है और यहा शात होते जाना है।

शक्ति की दौड़ का एक ही परिणाम होता है—अशाति। अब तुमसे मै एक बड़ी विरोधाभासी बात कहना चाहता हू शक्ति की दौड़ का एक ही परिणाम होता है—अशाति, और शाति की दौड़ का एक ही परिणाम है—शक्ति। लेकिन वह तुम्हारी कामना के कारण नहीं। शात व्यक्ति शक्तिशाली हो जाता है। पर यह शक्ति बडी और है। यह शक्ति उद्विग्नता नहीं है—स्वभाव है। यह नैसर्गिक जीवन का हिस्सा है। यह किसी से ली नही गयी, किसी से छीनी नही गई, किसी को दी नही जा सकती। जब तुम अपने घर लौट आते हो और परम शाति मे लीन होते हो, तो अचानक तुम पाते हो शक्ति का आविर्भाव हुआ है। लेकिन यह शक्ति तुम्हारी नही है। क्योकि तुम तो अशाति के साथ ही चले गये। यह शक्ति परमात्मा की है।

तुम मुझे ऐसा कहने दो परमात्मा के अतिरिक्त और कोई शक्तिशाली नही है। और परमात्मा के अतिरिक्त और कोई शक्तिशाली हो भी नहीं सकता। वस्तुत परमात्मा के अतिरिक्त किसी को स्वय को 'मै' कहने का अधिकार नहीं है। यह तो कामचलाऊ है। हम उपयोग करते है 'मै', लेकिन 'मै' तो वही कह सकता है जो शाश्वत है। हमारे 'मै' का भरोसा क्या? घड़ीभर तो टिकता नही। क्षणभर तो टिकता नही। अभी कुछ, अभी कुछ। पानी पर खीची लकीर है।

तुम जब मिटते हो और तुम उसी समय मिट जाते हो जब तुम अशाति के रास्ते पर चलना छोड़ देते हो, अर्थात जब तुम शक्ति की खोज छोड देते हो, तुम बिखरने लगते हो। इसीलिए बेचैनी है।

'खोपडी बडी उद्विग्न है', प्रश्नकर्ता ने पूछा है। 'परेशान हू। आया था शक्ति खोजने, यहा मिली शाति। चाहता था प्रभुता, यहा मिली शून्यता।'

शून्यता द्वार है प्रभु का। तुम अगर शून्य होने को राजी हो गये तो तुम्हे प्रभु होने से कोई भी रोक न सकेगा। और अगर तुम शून्य होने को राजी न हुए और तुमने प्रभुता की तलाश की, तो तुम भिखमगे रहोगे, तुम सूने के सूने रहोगे, खाली के खाली रहोगे। इस विरोधाभास को अपने हृदय मे बहुत गहरे बैठ जाने देना, क्योकि यह जीवन का आत्यतिक गणित है।

जीसस ने कहा है जो अपने को बचाएंगे वह मिट जायेगे, और जो अपने को मिटाने को राजी है उन्हे कोई भी मिटा नही सकता। लाओत्सु ने कहा है जो जीतने की यात्रा पर निकलेगे, एक दिन हारे हुए पाये जाएगे, और जो हारने को राजी है, उसे कोई हरानेवाला नहीं।

गुचा फिर लगा खिलने
आज हमने अपना दिल
खूं किया हुआ देखा

गुम किया हुआ पाया।

जब उस शाति की वर्षा होती है तो कली फिर खिलने लगती है। गुचा फिर लगा खिलने। जो कली आखो से बिलकुल ओझल हो गयी थी, जिसका पता भी न रहा था, जो बीज होकर कही भूमि मे खो गयी थी—वह फिर अकुरित हो आती है।

गुचा फिर लगा खिलने
आज हमने अपना दिल
खू किया हुआ देखा।

और जिसको हम समझते थे मर चुका, जिसका खून हो चुका, वह दिल फिर धडकने लगा।

आज हमने अपना दिल
खू किया हुआ देखा
गुम किया हुआ पाया।

और जो खो चुका था, गुम हो चुका था, वह फिर मिला।

तो अगर तुम राजी हो अपने को मिटाने को, तो एक दिन तुम पाओगे आज हमने अपना दिल खू किया हुआ देखा। जिसको हम सोचे थे कि मर ही चुका, जिसे हम छोड ही आए थे दूर कही राह पर, जिस की हमने अर्थी सजा दी थी, जिसे हम दफना आये थे, या जिसे हमने सूली पर चढ़ा दिया था, जिसे हम जला चुके थे—अचानक वह दिल फिर लहलहाया, फिर हरा हुआ, फिर कली खुली। गुम किया हुआ पाया। और जो खो गया था वह फिर मिला।

प्रभुता छोडो प्रभुता मिलेगी। अहकार छोड़ो आत्मा मिलेगी। अपने को खो दो, मिट जाने दो, शून्य हो जाओ पूर्ण के तुम पात्र हो जाओगे। पूर्ण तुममे उतरेगा। तुम्हारे शून्य मे ही उतर सकता है। जगह चाहिए न। और पूर्ण जैसे मेहमान के लिए जगह बनानी हो, तो शून्य से कम जगह न पड़ेगी, जरूरी होगी। इतनी ही जगह चाहिए। पूरा शून्य चाहिए, तभी पूर्ण उतर सकता है। पूर्ण, शून्य मे बिलकुल बैठ जाता है।

पूर्ण की भी कोई सीमा नही है, शून्य की भी कोई सीमा नही है। असीम को बुलाओगे तो असीम होना ही पड़ेगा। जिस अतिथि को तुमने पुकारा है, उसके आतिथेय भी तो बनना होगा। मेजबान तो बनना होगा। जगह तो खाली करनी होगी। सिहासन पर स्थान तो रिक्त करना होगा।

इसलिए कहता हू शाति। फिक्र छोड़ो शक्ति की। शक्ति खोजनेवाले शक्ति को कभी नही पाते, केवल अशाति पाते है, और शाति खोजनेवाले शक्ति को उपलब्ध हो जाते है।

फिर डरो मत।

उसका, उसको ही लौटा देने मे इतना सकोच क्या? उसका उसके ही चरणो मे चढ़ा देने मे इतनी कजूसी क्या?

जान दी, दी हुई उसी की थी
हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।

उसी की दी हुई थी, उसी को वापस लौटा दी, उसी को दे दी। एक लहर उछली सागर मे, वापस सागर मे गिर गई।

जान दी, दी हुई उसी की थी
हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।

सच तो यह है कि कर्तव्य-पालन न हो पाया। यह क्या खाक बात हुई, क्या दिया। जो उसका था उसी को लौटा दिया, इसमे कौन-सा कर्तव्य पालन हुआ?

लेकिन हम बडे कजूस है। जिससे पाया है, उसी को लौटाने मे बेईमानी कर जाते है। जिसने बनाया है, उससे भी छिपा लेते है। जिससे पाया है उससे भी चोरी कर जाते है।

क्या है तुम्हारे पास अपना? सास उसकी। बहता हुआ तुम्हारे शरीर मे जल उसका। देह मे मिट्टी के कण उसके। देह मे समाया आकाश उसका। देह मे जीवन की धारा अग्नि उसकी। और चैतन्य, वह उसी का अश। जैसे तुम्हारे आगन मे आकाश समाया है—बाहर फैले आकाश का ही एक हिस्सा—ऐसे ही तुममे चैतन्य समाया है। विराट चैतन्य का एक छोटा-सा कोना, एक छोटा आगन। सब उसका है।

शून्य होने से डरते क्यो हो, घबड़ाते क्यो हो? बूद की तरह डरो मत सागर के किनारे खडे होकर, क्योकि बूद अगर सागर मे गिर जाये तो सागर हो जायेगी। अगर किनारे पर पडी रह गयी तो बूद ही रह जायेगी। सीमा तड़फायेगी तुम्हे। सीमा दुख देगी। असीम के साथ ही सुख हो सकता है। भूमा के साथ ही सुख हो सकता है। अल्प मे कहा सुख, कैसा सुख?

और घबड़ाओ मत। तुमने छोड़ दिया सब, तो तुम यह मत सोचना कि उसने तुम्हे छोड़ दिया। तुम शून्य हुए तो यह मत सोचना कि वह तुम्हे खाली समझकर तुम्हारे घर मे प्रवेश न करेगा। खाली होओगे, तभी प्रवेश करेगा। तुमने सब छोडा, तभी तुमने पात्रता अर्जित कर ली। तुमने सब छोड़ा—अशेष

भाव से। कुछ भी बचाना मत। रत्तीभर भी मत बचाना। अन्यथा बचाया हुआ ही बाधा हो जायेगी।

तुम स्वय के और सत्य के बीच कुछ भी रहस्य मत रखना, छिपाना मत। तुम सब भाति नग्न हो जाना। तुम सब भाति छोड देना, फिर चिता की बात नही।

मै, और बज्मे-मै से यू तिश्नाकाम जाऊ
गर मैने की थी तौबा, साकी को क्या हुआ था?

साधारण मधुशालाओ मे तो यह हो जाता है।

मै, और बज्मे-मै से यू तिश्नाकाम जाऊ, कि मै ऐसा प्यासा का प्यासा लौट जाऊ मधुशाला से।

गर मैने की थी तौबा, साकी को क्या हुआ था? मैने अगर कसम खायी थी कि न पीऊगा तो साकी तो भर ही दे सकता था पात्र को। साकी तो पिलाने का आग्रह कर सकता था। मेरे तौबा कर लेने से, मेरे कसम खा लेने से, उसने तो कसम न खायी थी, वह तो मुझे मना, समझा-बुझा सकता था और जबर्दस्ती करता तो हम पी ही लेते।

साधारण मधुशाला मे तो ऐसा हो जायेगा कि तुमने अगर तौबा की है तो तुम तिश्नाकाम ही वापस जाओगे, प्यासे ही वापस लौटोगे। लेकिन उस परम की मधुशाला मे जिसने छोड दिया सब, वह कभी तिश्नाकाम नही जाता। जिसने पकड़ा सब, वही तिश्नाकाम जाता है। जिसने सब पकड़ा वह प्यासा रह जाता है। तुम पकडनेवालो की तरफ तो देखो। कैसे प्यासे और कैसे उदास और कैसे थके और हारे रह गये है। तुम जरा छोड़े हुओ की तरफ तो देखो। महावीर, बुद्ध—तुम उनको तो देखो, कैसे भर गए है। प्यास सदा के लिए मिट गयी है, ऐसी गहन तृप्ति हुई है।

उसकी मधुशाला से तुम वापिस न आओगे। अगर तुमने सब छोड़ा तो वह तुम्हे बहुत मनाएगा, बहुत तुम्हे पिलाने का आग्रह करेगा। तुम अगर सब उस पर छोड़ दो तो सब हो जाये।

इसलिए मै कहता हू, शून्य हो जाओ। शून्य होने से मेरा अर्थ यह नही है कि तुम ना-कुछ हो जाओ। तुम ना-कुछ हो। शून्य मे तुम्हारा यह ना-कुछपन मिट जायेगा। धूल जम गयी है, उसे तुमने सपदा समझा है। शून्य होने मे यह धूल हट जाएगी और तुम्हारे भीतर की सपदा प्रगट हो जायेगी। शून्य होकर ही तुम पूर्ण को पाओगे। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

कहा है, 'पुराना विश्वास बिखर चुका, नये का जन्म नही हुआ। अब न पीछे जा सकता हू न आगे ही बढ़ पाता हू।'

कही मत जाओ। पुराना विश्वास बिखर चुका, अब तुम जल्दी मत करना नये विश्वास को बनाने की। क्योकि डर यह है कि सौ मे से निन्यानबे व्यक्ति, जब उनका पुराना विश्वास बिखरता है तो नए को फिर पुराने के ही ढाचे मे बना लेते है। पुराने से परिचय होता है। पुराने से पहचान होती है। पुराने के रग-ढग पता होते है। पुराने की रूप-रेखा उनके हाथ मे होती है। फिर नये विश्वास को वह पुराने के ढाचे मे ही बना लेते है।

पुराना विश्वास बिखर गया है, डरो मत। तुम मत ढालना नये विश्वास को, अन्यथा तुम फिर पुराने साचे मे ढाल लोगे। वही साचा तुम जानते हो। तुम चुप रहो। तुम इस बीच की बडी बेचैन अवस्था मे राजी रहो। और तब तुममे श्रद्धा का जन्म होगा। वह विश्वास नही होगी। वह तुम्हारी ढाली हुई न होगी। यही मै फर्क करता हू विश्वास और श्रद्धा मे। विश्वास है तुम्हारा ढाला हुआ, क्योकि तुम खाली रहने को राजी नही, कुछ न कुछ भरने को चाहिए। सत्य न सही तो झूठ ही सही। अपना न सही तो और का ही सही। देखा हुआ न सही तो सुना हुआ ही सही।

तुम विश्वास को ढालोगे तो तुम्हारा ही ढाला हुआ विश्वास होगा। न, यह गृह उद्योग सत्य के जगत मे काम न आयेगा।

पुराना गिर गया, सौभाग्य। धन्यभागी हो। अब जल्दी मत करो नये को बनाने की। अगर तुम इस खालीपन मे थोड़ी देर रह गए तो नया उतरेगा, वह तुम्हारा बनाया हुआ न होगा। धीरे-धीरे तुम पाओगे, तुम्हारे शून्य को किसी प्रकाश ने उतरकर भर दिया। तुम तो गर्भ जैसे हो गए और कोई जीवन आया और तुम्हारे गर्भ मे प्रविष्ट हो गया। यह तुम्हारा बनाया हुआ पुतला नही है—यह परमात्मा से आया हुआ जीवन है।

श्रद्धा आती है, विश्वास लाया जाता है। विश्वास जबर्दस्ती है, श्रद्धा नैसर्गिक है, श्रद्धा सहज है। जो आदमी विश्वास के बिना रहने के लिए राजी है, उसके जीवन मे श्रद्धा उतरती है।

विश्वास का न होना अविश्वास नही है। क्योकि अविश्वास तो फिर एक तरह का विश्वास है। कोई मानता है, ईश्वर है—यह भी विश्वास, कोई मानता है ईश्वर नहीं है—यह भी विश्वास। 'नहीं' लगा देने से कही फर्क पड़ता है? जो आदमी मानता है ईश्वर नहीं है—यह उसकी धारणा, उसका शास्त्र। कोई महावीर को मानता है, कोई मुहम्मद को—कोई मार्क्स को

मानता है। कोई गीता को पूजता है, कोई कुरान को—कोई कैपिटल को पूजता है। फर्क कुछ भी नही है।

वहा सोवियत रूस मे पुराने देवता तो विदा हो गये, पुराने धर्म खो गये, पुराने चर्च खो गये, लेकिन कम्युनिज्म का नया चर्च निर्मित हो गया है। कम्युनिस्ट नेताओ की नयी प्रतिमाए निर्मित हो गयी है। ईश्वर नही है, यही सिद्धात हो गया है विश्वास का। बच्चो को रटाया जाता है। जैसे ईसाई रटाते है बच्चो को, जैसे मुसलमान रटाते है, हिदू, जैन रटाते है बच्चो को, अपनी-अपनी धारणा—वैसे ही कम्युनिज्म अपनी धारणा रटाता है। लेकिन दोनो ही विश्वास है।

विश्वास का अर्थ यही है जो तुमने चेष्टा से करके पैदा कर लिया है। मनुष्य निर्मित का नाम है विश्वास। और जब मनुष्य कुछ निर्माण नही करता, न विश्वास न अविश्वास, न पक्ष न विपक्ष, खाली खडा रह जाता है, वह कहता है, जब तेरी मर्जी हो तब भर देना, अगर न भरेगा तो भी हम राजी है—तब एक दिन तुम्हारे शून्य मे उस पूर्ण का आगमन होता है। तब तुम्हारी अधेरी रात मे जलता है उसका दीया। और यह तुम्हारा जलाया नही होता, क्योकि तुम्हारा जलाया तुमसे बडा नही हो सकता। तुम्हारा जलाया तुम्हारा ही हिस्सा होगा। तुम्हारा जलाया तुम्हारा ही निर्माण होगा। तुम परमात्मा को मौका दो। तुम थोड़े बीच मे दखलदाजी न करो। तुम खड़े देखते रहो।

यह शुभ घड़ी है कि पुराना विश्वास बिखर चुका और नया पैदा नहीं हो रहा है। करना भी मत। तुम जल्दी करोगे, क्योकि खाली जगह अखरती है। जैसे दात टूट जाता है तो जीभ वही-वही जाती है—ऐसा जब पुराना विश्वास हट जाता है तो बार-बार मन वही-वही लौटता है कि जल्दी विश्वास बनाओ। घर खाली-खाली लगता है, बेचैनी मालूम होती है। इस बेचैनी को झेल लेना। लेकिन विश्वास अब मत बनाना। बहुत तुमने बनाए, कोई काम न आये। कितने-कितने धर्मो मे तुम जी नही चुके हो। कितने-कितने शास्त्रो को तुम पूज नही चुके हो। कितने-कितने परमात्मा तुमने निर्मित नही किये है। कितनी प्रतिमाए तुम्हारी अर्चना और पूजा को स्वीकार नही कर चुकी है। लेकिन क्या हुआ? अब तुम कह दो कि अब मै न बनाऊगा। अब जब प्रकृति ही उपजाएगी । अब कागज और प्लास्टिक के फूल नहीं, अब तो जब असली फूल आएगे तभी। मैं राजी हू, प्रतीक्षा करूगा।

प्रार्थना करो, प्रतीक्षा करो, लेकिन विश्वास को निर्मित मत करो। होगा। धीरज रखो। और अगर धीरज से हुआ, अपने-आप हुआ और तुम सिर्फ साक्षी रहे, गवाह, बनानेवाले नहीं, तुमने सिर्फ जगते देखा श्रद्धा को, तुमने श्रद्धा का वृक्ष बढ़ते देखा, तुमने श्रद्धा मे फूल-फल लगते देखे, तुम सिर्फ साक्षी रहे—तो तुम पाओगे यह श्रद्धा मुक्तिदायी है।

इस श्रद्धा को ही महावीर ने दर्शन कहा है। दर्शन यानी जिसको तुमने देखा, बनाया नही। श्रद्धा तुम्हारा कर्म नही है, दर्शन है। श्रद्धा तुम्हारा कृत्य नही है, तुम्हारा दर्शन है। जिसको तुमने उठते देखा, फैलते देखा, पूरे आकाश को भरते देखा, तुम साक्षी रहे जिसके—तब विराट से आयी श्रद्धा। और जो विराट से आती है वह विराट कर जाती है। जो क्षुद्र की है वह क्षुद्र है।

'अब न पीछे जा सकता हू, न आगे ही बढ सकता हू।'

कोई जरूरत नही कही जाने की। तुम जहा हो, वही डूबने की जरूरत है। आगे-पीछे की भाषा मन की है। आगे-पीछे की भाषा महत्वाकाक्षा की है। आगे-पीछे की भाषा प्रगति हो रही कि नही, गति हो रही कि नही, कही जा रहा हू कि नही। जाना कहा है? जो हो, वही ठहर जाना है। जो हो, उसमे ही लवलीन हो जाना है। जो हो, उसमे ही तल्लीन हो जाना है। अपने मे डूबना है, जाना कहा है? सब जाना बाहर है। घर आना है।

और तुम यह मत सोचना कि घर आने के लिए भी कही जाना होगा। घर तो तुम हो ही। जरा बेचैनी छोड़ो, विचार छोडो, तो अचानक तुम पाओगे कि इस घर को तुमने कभी छोडा ही नही, तुम सदा ही इसमे थे। खयालो मे ही छोडा था वस्तुत कभी नही छोड़ा था।

बोधिधर्म जब जाग्रत हुआ तो हसने लगा, खूब हसने लगा। उसके आसपास के और भिक्षुओ ने पूछा कि तुम पागल तो नही हो गये हो, हुआ क्या है? उसने कहा, मै इसलिए हस रहा हू कि जिसको मै खोजता था जन्मो-जन्मो से, उसे कभी खोया नही था। खूब मजाक रही।

तुम्हीं सोचो कि वर्षो तक तुम खोजते रहे किसी चीज को और आखिर मे खीसे मे हाथ डाला और वहा पायी। और खीसे मे तुमने खोजा ही नही अब तक, क्योकि यह खयाल ही नही उठा कि खीसे मे भी हो सकती है।

तुम्हारी सपदा तुम हो। तुम्हारी सपदा तुम्हारे भीतर इसी क्षण मौजूद है। कही न जाओ—न आगे न पीछे, न उत्तर न दक्षिण, न पश्चिम न पूरब, न नीचे न ऊपर—दसो दिशाओ को छोड दो। दसो दिशाओ को छोड़कर जो खड़ा हो जाता है, उस अवस्था को महावीर कहते है समाधि। वह आ गया घर। वापसी हो गयी। उसने जान लिया उसे—जिसका विस्मरण हो गया था।

यह भी खयाल रख लेना तुम चाहते हो मुझे कि मै तुम्हे कुछ चलाऊ, दौड़ाऊ, कही पहुचाऊ, तुम्हे कोई ज्वर दू, तुम्हे कोई तड़फ दू, उत्साह दू।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते है, जरा हमे उत्साह दे—उत्साह ढीला पड़ा जा रहा है। उत्साह किसलिए? तुम कोई सैनिक नही हो कि कही युद्ध पर जा रहे हो। तुम सन्यासी हो, अपने घर आ रहे हो—उत्साह कैसा?

लेकिन लोगो को उत्साह चाहिए, दौडने के लिए उत्साह जरूरी है, रुकने के लिए उत्साह की जरूरत है? रुकने के लिए तो उत्साह बाधा भी बन सकता है। क्योकि वह तुम्हे दौड़ाए रखेगा। शात बैठ जाना है—कैसा उत्साह? कही जाना नही, ऊर्जा का कोई उपयोग नही करना है। जैसे शात झील हो, ऐसे हो जाना है—जिसमे तरग नही उठती, लहर नही उठती।

लेकिन तुम डरते हो। तुमने अब तक तो जिसको जीवन जाना है, वह दौड-धूप है, आपा-धापी है। तुमने उसके अतिरिक्त कोई जीवन नही जाना। तुमसे अगर कोई बैठने को कहे तो लगता है, यह तो मरने जैसा हो गया, इसमे जीवन कहा है? लेकिन मै तुमसे कहता हू, जीवन तुम्हारे भीतर है। उसे दौड-धूप करके तुम न पा सकोगे। जब दौड-धूप से थक जाओगे, बैठ जाओगे, और कहोगे, अब कही जाने की कोई इच्छा न रही—तत्क्षण तुम पाओगे कि वह मिल गया।

दूसरा प्रश्न दर्शन के तत्क्षण बाद घटी घटना को ही क्या भजन कहते है? कृपा करके समझाए।

'दर्शन' महावीर की साधना-पद्धति का शब्द है, 'भजन' उनकी साधना-पद्धति का शब्द नही। दर्शन के बाद तो महावीर कहते है, ज्ञान घटता है। ज्ञान के बाद चारित्र्य घटता है। भजन की कोई जगह महावीर की विचार-शृखला मे नहीं है। भजन भक्तो की परपरा का शब्द है। दोनो को जोड़ने की कोशिश मत करो, अन्यथा तुम और उलझ जाओगे। दोनो को अलग-अलग ही रखो। दोनो सही है, पर अलग-अलग सही है, अलग-अलग यत्रो के अग है।

महावीर के मार्ग पर भजन जैसी कोई जगह नहीं है। क्योकि भजन का अर्थ होता है उत्सव। भजन का अर्थ होता है प्रभु-नाम-स्मरण। भजन का अर्थ होता है तल्लीनता। भजन का अर्थ होता है बेहोशी, बेखुदी। भजन तो ऐसा है जैसे कोई भीतर की शराब, पीये और मस्त हो गये। भजन तो नृत्य है, गुनगुनाना है, गीत है।

महावीर के मार्ग पर भजन जैसी कोई चीज नही है। वह मार्ग बिलकुल भजन-शून्य है।

इसलिए अगर महावीर के मार्ग के शब्द 'दर्शन' का उपयोग कर रहे हो तो भजन को भूल जाओ। महावीर कहते है, दर्शन मे होगा ज्ञान, बोध। भजन तो है अबोध। महावीर कहते है, होगा ज्ञान। महावीर कहते है, आयेगी जागृति। भजन तो है गहरी आत्म-विस्मृति, तल्लीनता। और महावीर कहते है, ज्ञान से चारित्र्य रूपातरित होगा।

भजन है भक्तो का शब्द। उसे भी समझ लेना जरूरी है। भजन के लिए दर्शन जरूरी नही। भजन के लिए भाव जरूरी है। महावीर का 'दर्शन' पाना हो तो निर्भाव होना जरूरी है। वे विपरीत रास्ते है। वहा सारे भाव का त्याग कर देना है। वहा तो भाव राग है। वहा तो प्रेम भी बधन है। भक्त के मार्ग पर भाव प्रारभ है भाव, भजन, भगवान। वहा न ज्ञान, न दर्शन, न चारित्र्य। भक्त को चरित्र इत्यादि की चिता ही नही। वह कहता है, 'चरित्र उसका, हमारा क्या? उसकी जैसी मर्जी। वह जैसा नाच नचाये।' भक्त तो कहता है, 'हम तो कठपुतली की भाति है, धागे उसके हाथ मे है। वह जो बनाये हम बन जाते है। लीला उसकी है। सारा नाटक उसका रचा हुआ है। हम तो केवल पात्र है नाटक मे—राम बना देता है, राम बन जाते है, रावण बना देता है, रावण बन जाते है।'

भक्त की भाव-दशा बड़ी अलग है। तो भक्त प्रेम से चलता है, भाव से चलता है। भाव ही सघन होकर भक्ति बनती है। और भक्ति जब प्रगट होती है फूलो की तरह, तो भजन।

भाव से शुरुआत है। जब भाव बहुत गहन होने लगता है,

इतना गहन होने लगता है कि भाव करनेवाला धीरे-धीरे भाव मे डूब जाता है, अलग नहीं रह जाता—तो भक्ति। और भक्ति जब इतनी सघन होती है कि स्वय का तो दिखायी पड़ना बिलकुल बद हो जाता है, स्वय की जगह परमात्मा की प्रतीति होने लगती है, चारो तरफ उसका दर्शन होने लगता है—तो भगवान। और भगवान को पा लेने की जो खुशी है, वह भजन है। उसको पा लेने से जो नाच पैदा होता है कि मिल गया।

आर्किमिडीज के जीवन मे एक कथा है कि वह एक वैज्ञानिक खोज कर रहा था। अपने टब मे बैठा था स्नान करने, तब उसको सूझ आ गयी। तो नग्न बैठा था स्नानागार मे, छलाग लगाकर उठा। भूल ही गया कि नग्न हू। भूल ही गया कि स्नानागार है। खोज का मजा ऐसा था कि दौडा सडको पर और चिल्लाया 'इरेका। मिल गया।' राजमहल पहुच गया नगा, भीड लग गयी। सम्राट ने भी कहा कि 'तुम पागल हो गये हो। मिल भी गया तो इतने पागल होने की क्या बात है ? नग्न क्यो हो ?' तब उसे याद आया। उसने कहा, 'क्षमा करे। मिलने का क्षण इतना गहन था कि मै भूल ही गया, अपना मुझे होश ही न रहा।'

तो भजन तो ऐसा क्षण हैं इरेका। मिल गया।

जब भगवान की पहली दफा झलक मिलती है, जब उसकी छवि पहली दफा दिखाई पड़ती है, जब उसका रूप पहली दफा प्रगट होता है, जब उसकी सुगध नासापुटो मे पहली बार भरती है—इरेका।—तो भक्त नाच उठता है, गुनगुना उठता है, आसुओ की धार बह जाती है—आनद के आसुओ की। सम्हाले नही सम्हलता। मस्ती भर जाती है। प्याला छलकने लगता है।—तो भजन।

भजन बिलकुल दूसरी धारा का हिस्सा है। दोनो धाराए पहुचा देती हैं, लेकिन दोनो के रास्ते बडे अलग-अलग हैं।

शेख काबे से गया उस तक बिरहमन दैर से
एक थी दोनो की मजिल फेर था कुछ राह का।

लेकिन वह कुछ फर्क बड़ा फर्क है। कोई मस्जिद से गया, कोई मदिर से गया, कोई तप से गया, कोई भाव से गया—थोड़ा-सा फर्क है, लेकिन थोड़ा-सा फर्क भी बहुत बड़ा फर्क है। पहुचकर तो सब रास्ते उसी पर मिल जाते है। लेकिन बीच मे बड़े-बड़े अतर है। और बीच मे तुम दो रास्तो के बीच अपने को डावाडोल मत करना। दो नावो पर कभी सवार मत होना। यद्यपि दोनो नावे उसी किनारे पहुचा देगी, लेकिन दो नावो पर सवार आदमी मुश्किल मे पड़ जाता है। एक ही नाव पर सवार हुआ जा सकता है। इसका यह भी अर्थ नही है कि तुम यह घोषणा करो और चिल्लाओ और मानो कि मेरी ही नाव पहुचाती है। वह भी पागलपन है। वह भी कमजोरी है। जो आदमी कहता है मेरी ही नाव पहुचाती है, उस आदमी को सदेह है अभी। उसे अपनी नाव पहुचाएगी, इसमे सदेह है। चिल्ला-चिल्लाकर वह विश्वास जगा रहा है। वह कहता है, 'कहा जा रहे हो दूसरी नाव मे ? यह कभी न पहुचाएगी। आओ, मेरी ही नाव पहुचाती है।' वह डरा है अपने से कि कही दूसरी भी नाव पहुचाती हो तो उसका खुद का इस नाव मे बैठना मुश्किल हो जाएगा।

तुम हैरान होओगे। जो लोग दूसरो को कनवर्ट करने चलते है—जैसे ईसाई हिदुओ को ईसाई बनाने मे लगे रहते है, आर्य समाजी ईसाइयो को हिदू बनाने मे लगे रहते है—ये सब सदिग्ध लोग है, इनको अपनी नाव पर भरोसा नही है। ये जब तक दूसरे की नाव खाली न करवा ले तब तक इन्हे भरोसा नही। ये कहते है, दूसरी भी नावे है, इनमे भी लोग जा रहे है—कही ये लोग पहुच तो नही जाते। ये खुद तो पहुचे नही है अभी। इनकी नाव कही जाती नही मालूम हो रही है इनको। दूसरे। तो दो ही उपाय है या तो ये सही है, या हम सही है। अगर ये सही है तो हमको अपनी नाव मे से उतरना पडेगा। अगर हम सही है तो इनको इनकी नाव से उतार ले।

सारी दुनिया मे धर्मो के बीच जो सघर्ष चलता है वह स्वय की नाव पर विश्वास नही है, इसलिए चलता है। दूसरे को जब तुम समझाने जाते हो तब तुम गौर करना कही तुम दूसरे के बहाने अपने को ही तो नही समझा रहे हो ? कही दूसरे के बहाने अपने ही सदेहो को तो शात नहीं कर रहे हो ? जब तुम दूसरे को समझाने मे राजी हो जाते हो कि तुम सही हो, तो तुम्हे बडा हलकापन मालूम होता है, तुमने खयाल किया। क्यो ? एक बोझ था भीतर कौन जाने हम गलत हो। दूसरे को समझा लिया, चलो एक आदमी और राजी हो गया। अपने पर तो भरोसा नही था, अब एक और राजी हो गया, शायद ठीक हो। दो राजी हो गये, तीन राजी हो गये, भीड इकट्ठी हो गयी, तो भरोसा पक्का हो गया कि नही, हम गलत कैसे हो सकते है। इतने लोग कैसे राजी हो जाते। हो सकता था हम भूल मे होते,

लेकिन इतने लोग। इतने लोग तो भूल मे नहीं हो सकते।

दूसरे को कनवर्ट करने की चेष्टा मे अपने ही अविश्वासो को, सदेहो को शात करने की चेष्टा छिपी है। इसलिए लोग चिल्लाते है कि बस यही मार्ग।

महावीर के मार्ग पर बहुत लोग नही गये, क्योकि महावीर ने कहा सभी मार्ग सही है।

जैन अब हिम्मत नही करते यह कहने की कि सभी मार्ग सही है। वह हिम्मत छोड दी उन्होने। अब तो वे कहते है यही मार्ग सही है। और कभी-कभी कैसी विडबना हो जाती है।

मै एक जैन मुनि से बात कर रहा था। तो मैने उनसे कहा कि जैन धर्म तो स्यादवाद को मानता है। जैन धर्म तो कहता है, और भी सही हैं। जैन धर्म का तो यह कहना है, 'यही सही है', यह दृष्टि गलत है। 'यह भी सही है', यह दृष्टि सही है। वह भी सही है, यह भी सही है। यह ही सही है, ऐसे आग्रह मे तो दूसरे सब गलत हो जाते है। उन्होने कहा कि निश्चित, स्यादवाद का यही अर्थ है। फिर थोड़ी बात चलती रही। इधर-उधर की मैने उनसे बात की, फिर थोड़े भूल गये वे तो मैंने उनसे कहा कि स्यादवाद के विपरीत अगर कोई हो, उसके लिए क्या कहियेगा? वह भी सही है? 'कभी नही,' उन्होने कहा, 'ऐसा कैसे हो सकता है? स्यादवाद के जो विपरीत है वह कभी सही नहीं हो सकता।'

स्यादवाद का मूल आधार ही यही है कि जो मेरे विपरीत है वह भी सही हो सकता है। महावीर का आकाश बडा विराट है। वे कहते है, इतना बड़ा विराट आकाश है तो इतनी छोटी-छोटी पगडडियो पर तुम चिल्लाते हो, यही सही है? तुम पगडडी के नाप को आकाश का नाप बना देते हो? तुम पहुचने के सकीर्ण मार्ग को मजिल बना देते हो? मजिल बहुत बड़ी है। सब तरह के मार्ग वहा समाविष्ट हो जाते है।

ऐसा समझो कि गगा बह रही है, नर्मदा भी बह रही है। गगा बह रही है पूरब की तरफ, नर्मदा बह रही है पश्चिम की तरफ। अगर दोनो का रास्ते मे मिलना हो जाये तो बडी मुश्किल हो जाये। क्योकि गगा कहे, मै सागर की तरफ जाती हू, तू पागल कहा जा रही है उलटी, और नर्मदा भी कहे, मै भी सागर की तरफ जाती हू, तुम्हे कुछ अड़चन हो गयी है

मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन मे सवार हुआ। वह अपना बिस्तर वगैरह लगाकर ऊपर की बर्थ पर लेटने ही जा रहा था कि कुछ याद आ गयी तो उसने नीचे की सीट पर लेटे आदमी से पूछा, भाई साहब! आप कहा जा रहे है? तो उस आदमी ने कहा, कलकत्ते जा रहा हू। मुल्ला बोला, हद हो गयी। हम तो बबई जा रहे है। विज्ञान का चमत्कार तो देखो कि एक सीट कलकत्ता जा रही है, एक सीट बबई जा रही है।

अब गगा और नर्मदा का अगर मिलन हो जाये तो बड़ी मुश्किल हो गयी। दोनो सागर की तरफ जा रही है और दोनो सागर मे ही जा रही है। सब जाना सागर की तरफ है।

मै तो तुमसे कहता हू, जो ससार की तरफ जा रहा है वह भी जरा लबे रास्ते से परमात्मा की ही तरफ जा रहा है। क्योकि सब जाना उसकी तरफ है—देर-अबेर। मै तो तुमसे कहता हू, जिसने वेश्या के द्वार पर दस्तक दी है, उसने भी अनजाने मदिर के द्वार पर ही दस्तक दी है—थोड़ी दूर से दस्तक दी है। लेकिन वेश्या के पास भी वह मदिर को ही खोजने गया है, क्योकि प्रेम खोजने गया है। मिले न मिले, दूसरी बात। लेकिन आकाक्षा तो उसी की है। खुद भी परिचित न हो, यह भी हो सकता है। गलत दिशा मे टटोलता हो, यह भी हो सकता है। लेकिन भीतर जो खोज चल रही है, वह तो उसी की चल रही है। सभी सागर की तरफ जा रहे है। और सभी पहुच जाते है, क्योकि सागर ने सब दिशाओ से घेरा है। सागर की कोई दिशा नही है। ऐसे परमात्मा की कोई दिशा नही है।

तो ध्यान रखना, भजन से भी लोग पहुचते हैं, भाव से भी पहुचते है। पर भाव की नाव अलग है। उसकी चाल अलग है। उसकी पतवार अलग है। उसका रग-ढग अलग है। वह बडी सजी-सवरी है।

महावीर की नाव बड़ी भिन्न है। जरा भी सजी-सवरी नही है। वहा भाव को कोई जगह नहीं है। वहा शुद्ध विचार और ध्यान है। वहा भूलना नहीं है, स्मरण रखना है। भाव मे भूलना है, स्मरण नहीं रखना है। भाव मे आत्मविस्मृति करनी है। और महावीर के मार्ग पर आत्मस्मृति जगानी है। बड़े विपरीत है। एक पूरब जा रहा है, एक पश्चिम जा रहा है—एक नर्मदा, एक गगा—लेकिन दोनो सागर मे पहुच जाते है। और सागर मे पहुचकर दोनो सागर हो जाते है।

भजन विधायक जीवन-दृष्टि है, दर्शन नकारात्मक

जीवन-दृष्टि है।

तू और तेरी चचल सखिया, जब पानी भरने जाती है
तब साये धानी होते है, तब धूप गुलाबी होती है।

वह जो भक्त है, वह प्रत्येक खेल मे परमात्मा को देख रहा है।

तू और तेरी चचल सखिया जब पानी भरने जाती है
तब साये धानी होते है, तब धूप गुलाबी होती है।

धूप भी गुलाबी हो जाती है, साये भी धानी हो जाते है। और जो भी जा रहा है पनघट की तरफ, वह वही है—उसकी चचल सखिया है।

सारा जगत अनेक-अनेक रूपो मे उसी की लीला है। जिसने उसे पहचानना शुरू कर दिया, वह हर जगह उसे पहचान लेगा।

मोहतसिब की खैर ऊचा है उसी के फैज से
रिद का, साकी का, मय का, खुम का, पैमाने का नाम।

भक्त तो कहता है, भगवान है रसाध्यक्ष उस मधुशाला का। इस जीवन की मधुशाला का रसाध्यक्ष। और उसी की कृपा का फल है।

रिद का, साकी का, मय का, खुम का, पैमाने का नाम

—इन सबके नामो की महिमा उसी के कारण है।

मोहतसिब की खैर ऊचा है उसी के फैज से।

—उस रसाध्यक्ष की अनुकपा कि उसी की अनुकपा से रिद का, पियक्कड का ।

भक्त तो पियक्कड़ है। वह तो भगवान की शराब पी रहा है। जीवन को तो उसने मधुसिक्त भाव से देखा है। 'प्यारे' को पहचानने की तरह उसने जीवन की खोज की है। वह सत्य की खोज मे नही है—'प्यारे' की खोज मे है। महावीर सत्य की खोज मे है। 'प्यारा' शब्द उनके ओठ से निकलेगा भी नही।

मोहतसिब की खैर ऊचा है उसी के फैज से
रिद का, साकी का, मय का, खुम का, पैमाने का नाम।

जिस गागर मे सागर भरी, जिस गागर मे मधु का सागर भरा है, जिस पात्र मे मधु पड़ा है, जो पिलानेवाला है, जो पीनेवाला है—इन सबकी महिमा उसी के कारण है—उसकी ही अनुकपा से है।

भक्त की भाषा सुरा की, सुगध की, सगीत की भाषा है। भक्त की भाषा प्रेम की, प्रियतम की, प्रियतमा की भाषा है। भक्त की भाषा रास की, रस की भाषा है।

भजन का अर्थ है जो डूबा। भजन का अर्थ है जिसने अपने को खोया। भजन का अर्थ है जिसने अपने को छोड़ा उसके हाथ मे। भजन का अर्थ है जो उसके आसपास नाचा और रास मे सम्मिलित हुआ। भक्त को तो लगता है यह सारा खेल, यह सारी लीला, चाहे कैसा ही ढग रखती हो—यह कोयल की कुहू-कुहू, ये वर्षा के बादल, यह वर्षा की रिमझिम टाप—यह सब अनेक-अनेक रूपो मे उसी का आगमन है। यह उसी के पैरो मे बधे हुए घुघरुओ की आवाज है।

भक्त ससार को सिर्फ ससार की तरह नही देखता—परमात्मा की अभिव्यक्ति की तरह देखता है। यह उसका प्रगट रूप है। यह उसी चित्रकार का चित्र है। ये रग उसी के हाथ ने फैलाए है। ये गीत उसी ने रचे है। वेद कहते है यह काव्य उसी का है। यह वही गुनगुनाया है। वही गुनगुना रहा है।

साधक के मार्ग पर ससार और सत्य विपरीत है। ससार से हटना है अगर सत्य मे जाना हो।

भक्त के मार्ग पर ससार सत्य का ही परिधान है, उसी की वेषभूषा है। ये जो मोर नाच रहे है, ये मोर-पख उसी के मुकुट पर लगे है। यह जो बासुरी बज रही है, चाहे तुम्हे उसके ओठ दिखायी पडते हो न दिखायी पडते हो, यह बासुरी उसी के ओठो पर रखी है, नही तो कभी की बजनी बद हो जाती।

मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नही
जी मे आता है लगा दे आग मयखाने को हम।

और अगर तुम्हे दिखायी न पडे वह, तो फिर ऐसा लगेगा कि ससार मे आग ही लगा दो।

मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नही—सब है लेकिन पिलानेवाला नही है, ढालनेवाला नही, साकी नही है।

जी मे आता है लगा दे आग मयखाने को हम।

तो फिर यह सब व्यर्थ है। लेकिन अगर उसके हाथ तुम्हे दिखायी पड जाये कि उसी ने ढाली है सुरा, तो फिर सुरा भी अमृत है। अगर उसके हाथ दिखायी पड़ जाये तो जहर भी अमृत है। क्योकि उसके हाथो मे जहर हो ही कैसे सकता है।

भक्त की दृष्टि बडी अलग है। भक्त की दृष्टि को तुम साधक की दृष्टि के साथ गडमगड्ड न करना। उन्हे अलग-अलग रखना, साफ-सुथरा रखना। फिर तुम्हे जो प्रीतिकर लगे, उस पर चले जाना, मगर मन मे कभी भी यह खयाल मत रखना कि

दूसरा गलत है। अगर तुमने यह सोचा कि दूसरा गलत है तो मै तुमसे कहूगा तुम्हे अपने मार्ग पर सदेह है। दूसरे से तुम्हे क्या लेना-देना? होगा, वह भी ठीक होगा। और अगर उसे वही से आनद के द्वार खुल रहे है, तो तुम कौन हो रोकनेवाले? और अगर उसे वही से परमात्मा की पहचान आ रही है, तो तुम कौन हो बाधा डालनेवाले?

सत्य के एकाधिकारी, मोनोपोलिस्ट मत बनना। इसी तरह दुनिया मे धर्म नष्ट हुआ, क्योकि सभी धर्म सत्य के एकाधिकारी बन गये। और जब भी धर्म सत्य का एकाधिकारी बनता है, भ्रष्ट हो जाता है, सप्रदाय रह जाता है, धर्म मर जाता है, लाश रह जाती है। सत्य पर किसी की बपौती नही है। यही महावीर का स्यादवाद है। सत्य सबका है, सब ढगो से पाया जा सकता है, सब मार्गो से पाया जा सकता है। ऐसा अगर तुम कह पाओ तो उसका अर्थ हुआ कि तुम्हे अपने मार्ग पर श्रद्धा है, श्रद्धान है। इसलिए तुम्हे दूसरे के मार्ग को गाली देने की जरूरत नही। तुम्हे अपने मार्ग पर इतना भरोसा है कि इस भरोसे को दूसरे को गाली दे दे कर बढ़ाने की जरूरत नही है। तुम अपने मार्ग के प्रति इतने आश्वस्त हो कि अगर सारी दुनिया भी तुम्हारे मार्ग को छोड दे तो तुम अकेले ही गीत गुनगुनाते चले जाओगे। इससे कुछ फर्क न पडेगा। तुम्हे भीड की अपेक्षा नही है, जरूरत नहीं है।

कमजोर आदमी को भीड की जरूरत है। भरोसे की कमी हम भीड़ से पूरा कर लेते है। कमजोर आदमी को परपरा की जरूरत है। तो हम कहते है, पाच हजार साल पुरानी है हमारी परपरा। इस तरह भीड को हम पाच हजार साल पुराना बना देते है।

भीड दो तरह से हो सकती है—या तो अभी हो, जैसी ईसाइयो के पास है। एक अरब आदमी। तो वे जरा अतीत की बात नही करते, क्योकि अतीत की कोई जरूरत नही—भीड़ अभी है। फिर भीड़ को बढ़ाने का दूसरा ढग यह है कि हिदू कहते है हमारा धर्म सनातन है। माना कि हम बीस ही करोड़ है, इससे क्या होता है, लेकिन हम सनातन से है। तो उन सारे लोगो को जोड़ लो जो अब तक हिदू रहे, तब तुम्हे पता चलेगा कि हिदुओ की भीड़ कितनी है।

जिनके पास ये दोनो उपाय नही, वे कहते है, 'भविष्य। अभी छोड़ो—अतीत।' नये-नये धर्म जब पैदा होते है, तो वे भविष्य की बात करते है। वे कहते है, भविष्य हमारा है। अतीत रहा होगा तुम्हारा। लेकिन अतीत की सीमा है। जो हो चुका उसकी सीमा है। जो अभी नही हुआ, वह असीम है। हमारी भीड़ कल देखना। तुम तो गये-गुजरे हो। सूर्यास्त हो रहा है। डूबते सूरज को कौन नमस्कार करता है। तुम इस नये सूरज को देखो।

तो नये धर्म जब पैदा होते है तो वे भविष्य की बात करते है। क्योकि वह ही एक रास्ता है भीड को बढाने का। उनके पास न अतीत है, न भीड आज मौजूद है।

लेकिन मै धार्मिक आदमी उसको कहता हू, जिसे भीड़ की जरूरत नही—किसी भी रूप मे, अभी, कल या कभी। जो कहता है, अकेला काफी हू। अकेला भी चला तो भी पहुच जाऊगा। उसके और परमात्मा के बीच सीधा सबध है, भीड के माध्यम से नही है।

और अच्छा ही है कि इतने मार्ग है क्योकि इतने प्रकार के मनुष्य है। एक-एक व्यक्ति इतना भिन्न है कि यह बडा कठिन हो जाता कि एक ही मार्ग होता। तो कुछ लोग तो जाते, कुछ और लोग इसलिए ही न जा पाते क्योकि वह उस मार्ग पर ठीक न बैठते।

तुमने खयाल किया। स्कूल मे बच्चे पढते है। चूकि हमने मान रखा है कि जो बच्चा गणित मे होशियार है वही होशियार। तो जो बच्चा गणित मे होशियार नही वह गधा हो जाता है। तुम जरा एक दूसरी दुनिया सोचो। जल्दी ही वह दुनिया आयेगी, जबकि गणित की बहुत जरूरत न रह जायेगी। कप्यूटर पैदा हो गये है। आनेवाली सदी मे छोटे-छोटे बच्चे भी कप्यूटर अपनी जेब मे रख सकेंगे। गणित का बडे से बडा सवाल कप्यूटर क्षण मे पूरा कर देगा। उसके लिए करने की जरूरत न रह जायेगी। तो गणित की प्रतिभा समाप्त हो जायेगी। तब हम कहेगे, जो बच्चा काव्य मे गुणवान है वह प्रतिभा-सपन्न है। तब सारा नक्शा बदल जायेगा।

अभी जो बच्चा गधा है वह भविष्य मे गुणवान हो सकता है, और अभी जो गुणवान है, भविष्य मे व्यर्थ हो सकता है। जब मूल्य बदलते है तो लोगो की स्थिति बदल जाती है।

तुमने देखा। जैसे-जैसे मूल्य बदलते जाते है, वैसे-वैसे स्थिति बदलती जाती है। अगर धर्म भी ऐसा हो कि किन्हीं खास लोगो के पहुचने के लिए हो जाये तो उतनी ही सकीर्ण हो जायेगी धारा, फिर बहुतो का क्या होगा, जो उस तरह से नहीं जा सकते? उनकी तो सोचो। अगर महावीर का ही अकेला मार्ग हो, तो जो

बिना नाचे नहीं जा सकते, उनका क्या होगा? यह तो बड़ी कजूसी हो जायेगी सत्य के ऊपर। यह तो सत्य का बड़ा सकीर्ण रूप हो जायेगा। जो नाचकर पहुच सकते है, उनकी भी तो जगह होनी चाहिए। अगर नाचकर ही पहुचने की जगह हो और चुपचाप शात बैठनेवालो के लिए जगह न रह जाये तो भी बात जरा अशोभन हो जायेगी।

निकलकर दैरो-काबा से अगर मिलता न मयखाना
तो ठुकराए हुए इन्सा खुदा जाने कहा जाते।

अगर मदिर और मस्जिद से जिनका मन नही बैठता, अगर शास्त्र से, परपरा से जिनका मन नही बैठता, उनके लिए अगर कोई और मार्ग न होता अगर मिलता न मयखाना, तो ठुकराए हुए इन्सा खुदा जाने कहा जाते।

नही, लेकिन सभी के लिए मार्ग है। उसने तुम्हे बनाया, उसी दिन तुम्हारा मार्ग भी तुम्हारे भीतर रख दिया है। जरा पहचानो। चल-चलकर थोड़ा देखो। अपनी चाल पहचानो। वही मौलिक है। फिर उस चाल से जिस धर्म का मेल बैठ जाता हो, वही तुम्हारा धर्म है। फिर जन्म की फिक्र छोड़ो, परपरा की फिक्र छोड़ो, भीड की फिक्र छोड़ो, सस्कार की फिक्र छोडो। जिससे तुम्हारी लय बैठ जाती हो, जिसके साथ तुम्हारी सास लयबद्ध हो जाती हो, बस वही तुम्हारा धर्म है, उसी से चल पडो। और भूलकर भी यह न कहना कि दूसरे नही पहुचते, क्योकि वह अधार्मिक की दृष्टि है।

महावीर का मार्ग है जीतनेवाले का मार्ग। सघर्ष। सकल्प। भक्त का मार्ग है हारनेवाले का मार्ग। क्योकि प्रेम हार-हारकर जीतता है। हार ही प्रेम की कला है।

मुश्किल था कुछ तो इश्क की बाजी को जीतना
कुछ जीतने के खौफ से हारे चले गये।
मुश्किल था कुछ तो इश्क की बाजी को जीतना

प्रेम की बाजी कौन कब जीता है। कोई कभी नहीं जीता। यह बाजी जीतनेवाले के लिए है ही नही। यहा जिसने जीतने की कोशिश की वह प्रेम को नष्ट ही कर देता है, मार ही डालता है। यहा जीतने की चेष्टा मे तो प्रेम मर ही जाता है, कुचल जाता है।

मुश्किल था कुछ तो इश्क की बाजी को जीतना
कुछ जीतने के खौफ से हारे चले गये।

मगर यहा जो हारता है वही जीतता है। भक्त हारने के मार्ग पर चल रहा है। वह कहता है किसी भाति मुझे इस योग्य बना दो कि तुम्हारे चरणो मे सब भाति बिसर जाऊ, भूल जाऊ। मुझे ऐसी पिला दो कि फिर मुझे दुबारा होश न आये। मुझे मिटा डालो। यह तुम्हारे तीर को मेरे हृदय के बिलकुल आर-पार हो जाने दो। मुझ पर दया करो, मुझे समाप्त करो। करुणा करो और मुझे बिलकुल जला दो। राख भी न बचे।

भक्त मिटने के मार्ग पर है। मिटकर वह सत्य को पाता है। क्योकि जो मिटता है, वह वही है जो मिट सकता है। कुछ है कि जो मिट ही नहीं सकता।

तो जब भक्त अपने को जलने के लिए छोड देता है तो राख, कूड़ा-कर्कट जल जाता है, सोना बच जाता है।

महावीर का मार्ग जीतनेवाले का मार्ग है। कोई समर्पण नही, सघर्ष करना है। सघर्ष कर-करके छाटना है, गलत को छोड़ना है। तो उसमे भी वही घटता है। धीरे-धीरे कूडा-कर्कट छूट जाता है, सोना बच जाता है।

महावीर फुटकर-फुटकर चलते है, एक-एक इच लडते है। भक्त बड़ा थोक है। वह इकट्ठा अपने को समर्पण कर देता है।

भक्ति छलाग है, महावीर यात्रा है। पर अपनी-अपनी मौज है। किन्ही को छलाग मे रस न होगा। वे कहेगे, 'आहिस्ता चलेगे, सारा दृश्य देखते चलेगे। धीरे-धीरे बढेगे, जल्दी क्या है? अनत काल तो पडा है।' किन्ही को छलाग मे रस है। वे कहते है, जब पहुचना ही है तो यह क्या धीरे-धीरे, यह क्या सुस्त चाल, यह क्या सीढी-सीढी। कूद ही जाते है।

अपने-अपने रस, अपनी-अपनी रुचि, अपने-अपने रुझान की बात है।

लेकिन एक बात सदा स्मरण रखना भक्त और साधक के मार्ग अलग है और उनका अलग रखना। तुम्हे जो रुचे उस पर चल जाना। ऐसा मत करना, ऐसा लोभ मत करना कि दोनो मे से कुछ-कुछ बचा ले और दोनो मे से कुछ-कुछ इकट्ठा कर ले। ऐसे लोभी भी है। लेकिन लोभी की बड़ी दुर्गति होती है। ससार मे ही हो जाती है तो परमात्मा के मार्ग पर तो बहुत दुर्गति होती है। लोभ मत करना। ऐसा मत सोचना कि थोड़ा इसमे से भी ले ले जो सुखद लगे और थोड़ा दूसरे मे से भी ले ले जो सुखद लगे। तो फिर तुम बैलगाड़ी और कार को मिलाकर जो इतजाम कर लोगे, वह चलनेवाला नहीं है। वह तुम्हे किसी गड्ढे मे गिरायेगा।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के बेटो ने ऐसा कबाड़खाने से सामान ला-लाकर एक कार बना ली। जब बन गयी कार तो उन्होने मुल्ला को भी निमंत्रित किया। मुल्ला बैठ गया। वह कोई दस-पाच कदम ही गये होगे कि कार गिरी एक खाई मे, खेत मे। मुल्ला चारो खाने चित्त पड़ा है। बेटो ने कहा, कि पापा डाक्टर को बुला लाए? उसने आख खाली। उसने कहा, 'डाक्टर को बुलाने की कोई जरूरत नही, पशुओ के डाक्टर को बुला लाओ।' तो उन्होने पूछा, 'आपको होश है? आप क्या कह रहे है? पशुओ के डाक्टर की क्या जरूरत है?' तो उसने कहा, 'अगर मै आदमी होता तो तुम्हारी इस कार मे बैठता? अगर मुझमे इतनी अकल होती । तुम तो वैटनरी डाक्टर को बुला लाओ।'

लोभ तुमसे कह सकता है कि थोडा भक्ति से चुन लो, थोडे नारद के सूत्र बड़े प्यारे है, थोड़ा महावीर से चुन लो, महावीर के सूत्र बड़े प्यारे है। लेकिन 'तुम' चुननेवाले होओगे और 'तुम' जिन सूत्रो को चुन लोगे वह तुम्हारे अनुकूल होगे। और तुम उन्हे छोड़ दोगे जो तुम्हारे अनुकूल नही मालूम होते। सभावना इसकी है कि जिन्हे तुम छोड़ोगे उनसे ही तुम्हारा रूपातरण होता। और जो तुम चुनकर एक कृत्रिम ढाचा बना लोगे कृत्रिम, याद रखना। अग्रेजी मे एक शब्द है आर्गनिक। एक तो ढाचा होता है सावयव। जैसे एक वृक्ष है, वृक्ष एक सावयव ढाचा है, आर्गनिक है। जैसे तुम हो, तुम्हारा शरीर एक आर्गनिक ढाचा है। अगर तुम्हारे हाथ को तोड दे तो हाथ अलग से न जी पायेगा, तुम्हारे साथ ही जी सकता था। उसका प्राण तुम्हारी सावयव एकता मे था, अलग होकर मुर्दा हो जायेगा। तुम्हारी आख को बाहर निकाल ले, फिर न देख पायेगी।

मुल्ला नसरुद्दीन की एक आख काच की है। वह मजदूरो से काम लेता है तो वहा खड़ा रहता है। एक दिन जरूरी था उसको जाना। वह रहता है मौजूद, देखता रहता है तो मजदूर काम करते है, चला जाता है तो काम छोड देते है। तो उसने एक चमत्कार किया । उसने कहा कि देखो। आख खींचकर उसने बाहर निकाल ली और उसने कहा, 'यह आख रखे जा रहा हू टेबल पर, यह तुम्हे देखती रहेगी। धोखा देने की कोशिश मत करना।' मजदूर सकते मे भी आ गये, क्योकि कभी किसी आदमी को उन्होने इस तरह आख निकालते देखा नही था। और जब जो इतना बड़ा चमत्कार कर सकता है आख निकालने का, तो हो सकता है आख देखे। तो वे बेचारे बड़ी देर तक काम मे लगे रहे और देखते रहे, वह टेबल पर से आख देख रही थी। फिर एक आदमी को होश आया। उसने जाकर एक टोकरी उसके ऊपर रख दी और फिर वह आराम करने लगे। उन्होने कहा, अब तो कोई झझट नही।

मगर आख देख ही नही सकती, आख सावयव इकाई है, अलग होते ही व्यर्थ हो जाती है। हाथ अलग होते ही व्यर्थ हो जाता है।

यात्रिक एकता एक बात है। अगर तुम कार के एक यत्र को बाहर निकाल लो, तो भी वह सार्थक है, बाजार मे बिक सकता है। क्योकि वह यत्र का हिस्सा काम आ सकता है। उसका कोई उपयोग हो सकता है। हाथ को काटकर बाजार मे बेचने जाओ, कोई न खरीदेगा, उसका कोई उपयोग नहीं। उसकी इकाई टूट गयी। वह निष्प्राण है।

महावीर का मार्ग आर्गनिक है, सावयव है। उसमे से एक टुकडा मत निकालना, वह काम मे न आयेगा। वह मुर्दा है। नारद का मार्ग भी सावयव है। सभी मार्ग सावयव है। उनमे से कुछ निकालना मत।

इसलिए तो मैं गाधी के प्रयोग का बहुत पक्षपाती नही हू अल्लाह ईश्वर तेरे नाम। इसका मै पक्षपाती नही हू। क्योकि अल्लाह किसी और सावयव इकाई का हिस्सा है, ईश्वर किसी और इकाई का हिस्सा है। अल्लाह और ईश्वर को जोड़ देने से न तो आदमी हिदू रह जाता, न मुसलमान रह जाता—आदमी बड़ी अड़चन और दुविधा मे पड़ जाता है। क्योकि अल्लाह का अपना पूरा मार्ग है, उसे हिदू मार्ग से कुछ लेने की जरूरत नही है। वह पूरा है अपने मे—सपूर्ण है। हिंदू मार्ग अपने मे पूरा है, उसे अल्लाह और मुसलमान से कुछ लेने की जरूरत नहीं है। सभी मार्ग अपने मे पूर्ण है। सभी मार्ग पहुचा देते है।

इसलिए मै तुमसे समझौतावादी बनने को नही कहता। अनेक समझौतावादी अपने को समन्वयवादी कहकर घोषित करते है, कि उन्होने सबका समन्वय कर लिया है। डाक्टर भगवानदास ने एक किताब लिखी है सब धर्मो के समन्वय पर द इसेसियल युनिटी आफ आल रिलिजन्स। इस तरह की व्यर्थ किताबे बहुत लिखी गई है। वह सब तरफ से कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर लेते है।

लेकिन वह सब मुर्दा है। किसी की आख ले आये, किसी का कान काट लाये, किसी की नाक ले आये, किसी के पैर ले आये, किसी तरह जमा-जमाकर नक्शा खडा कर दिया—इसको कहते है 'इसेसियल युनिटी आफ आल रिलिजन्स।' यह सब धर्मो की एकता हो गयी। यह मरा हुआ आदमी है। इसमे कुछ भी जिदा नही है। नाक जिदा होती है किसी जिदा आदमी के साथ, काट ली कि मुर्दा। आख जिदा होती है किसी जिदा आदमी के साथ, अलग कर ली कि मुर्दा। फिर तुम अस्थि पजर पर जमाकर बिलकुल खडा कर दो, तो शायद बच्चो के डराने के काम आ जाये, या रात मे दरवाजे पर खड़ा कर दो तो चोर इत्यादि पास न आये, या खेत मे खड़ा कर दो तो पशु-पक्षियो को डराए—लेकिन और किसी ज्यादा काम का नही है।

बहुत लोगो को सवाल उठता है। इस सदी मे अनेक लोगो ने सब धर्मो के बीच समन्वय स्थापित करने की कोशिश की है। इस तरह की कोशिश पहले क्यो नही की गयी? क्या महावीर, बुद्ध, कृष्ण, और क्राइस्ट नासमझ थे? क्या डाक्टर भगवानदास और महात्मा गाधी और विनोबा ज्यादा समझदार है? इस सदी मे यह समन्वय की जो कोशिश की गयी है, इसके गहरे मे आधार राजनैतिक है। महावीर और बुद्ध को एक बात साफ थी कि प्रत्येक मार्ग अपने मे सपूर्ण है, जीवत है। उसमे से कुछ भी अलग किया, मर जायेगा।

तो तुम भक्ति के मार्ग पर चलना चाहो तो भक्ति के मार्ग पर चलना, लेकिन समग्ररूपेण। और कुछ छोड़ना मत उसमे से, क्योकि जो छोड़ा जा सकता था वह नारद ने ही छोड़ दिया है। जो नही छोड़ा जा सकता था, बस उतना ही बचाया है। अगर महावीर का मार्ग ठीक लगे तो महावीर के मार्ग पर चलना, छोड़ना मत उसमे से कुछ, क्योकि जो छोड़ सकते तो महावीर खुद ही छोड़ देते। कुछ भी व्यर्थ नही है, बिलकुल मूलभूत, सारभूत जो है, वही बचाया है। इसमे से कुछ भी काटा नही जा सकता। और न कुछ जोड़ना, क्योकि जो जोड़ा जा सकता था वह उन्होने जोड़ दिया है। कुछ और जोड़ने की जरूरत नही है।

प्रत्येक धर्म बड़ी सावयव इकाई है, जीवंत इकाई है, यत्रवत नही। इतना स्मरण रहे तो फिर तुम्हारी जहा रुचि हो, जहा रुझान हो, तुम चल पड़ना। तुम पहुच जाओगे। सभी नदिया सागर की तरफ जा रही है।

आखिरी प्रश्न बार-बार मन को समझाती हू, पर समझा नही पाती हू। जो दिन आपके साथ प्रेमपूर्वक बिताए, उन्हे मै कैसे भूलू। बार-बार आपका प्रेम याद आता रहता है। आप कहते हैं कि अतीत को भूल जाऊ, मगर यह मेरे बस की बात नही। आप वीतराग हो गये। अब इन आसुओ के सिवा मेरे पास कुछ भी नही है। जितना प्रेम आपने दिया उतना तो किसी ने भी नही दिया। और मन बार-बार कहता है, आप कब आएगे?

'सोहन' का प्रश्न है।

समझाने से तो उलझन बढेगी। समझाने की कोई जरूरत नही, समझाने से समझ आती भी नही। और 'सोहन' के लिए समझदारी रास्ता भी नही हो सकती। नासमझी मे जीना। और याद आती है तो उसे हटाने की कोशिश भी मत करना। याद मे पूरी तरह डूबना। याद से पीडा हो तो पीडा को होने देना, रोना, जार-जार रोना, आसुओ को बहने देना। वे आसू पवित्र करेगे।

प्रेम के रास्ते पर बहे आसू पवित्र करते है। और वैसी याद चिता नही है। वैसी याद तो हृदय की उदभावना है।

अडचन इसलिए पैदा हो रही है कि मन समझा रहा है कि छोड़ो भी, याद से तो पीडा होती है। प्रेम के स्मरण से पीडा होती है। यह बुद्धि है जो बीच-बीच मे बाधा डाल रही है।

इस बुद्धि की मानकर चलने से कुछ भी हल न होगा। क्योकि बुद्धि कभी हृदय को नही जीत पाती, अगर हृदय बलशाली हो। और सोहन के पास बलशाली हृदय है। बुद्धि भौकती रहेगी, हृदय अपने रास्ते पर चलता जायेगा। अगर बुद्धि की सुनी तो बड़ी अडचन पैदा होगी। क्योकि हृदय बलशाली है और बुद्धि उसे बदल नही सकती।

हृदय की ही सुनो। बुद्धि की छोडो। बुद्धि से कहो, 'छोड भौकना। तू भी याद मे लग। तू भी रो। तू भी हृदय की अनुषग बन जा, हृदय की छाया बन जा।'

'सोहन' के लिए कोई महावीर का रास्ता पहुचानेवाला नहीं है, उसे तो भक्ति का ही कोई रास्ता पहुचाएगा। तो प्रेम को भक्ति बनाओ, भाव को भक्ति बनाओ। और बेहोशी को, बेखुदी को रास्ता समझो डूब गये, रोये, नाचे, गाये।

इसलिए धीरे-धीरे दूर हट गया हू। क्योकि अगर मै पास होऊ

तो तुम रोओगे कैसे? अगर मै पास होऊ और तुम्हे जब चाहिए तब मिल जाऊ, तो फिर आसू कब बहाओगे? याद कैसे करोगे? यह भी उपाय है।

बहुतो को मैने अपने प्रेम मे डाला और फिर धीरे-धीरे दूर हट गया। दूर हट जाना उपाय है। क्योकि प्रेम अगर दूर हट जाने से मर जाये तो प्रेम न था। और दूर हट जाने से अगर प्रेम और गहन हो जाये तो भक्ति बनने मे ज्यादा देर नही।

भगवान दिखाई नही पडता, न तुम उसे छू सकते हो, न उससे बोल सकते हो। प्रेमी दिखायी पडता है, छुआ जा सकता है, बोला जा सकता है। अगर मै तुम्हारे पास ही रहू तो तुम्हारा प्रेम, प्रेम ही रह जायेगा। मुझे तुमसे दूर हटना होगा। इतना दूर हटना होगा कि मै भी करीब-करीब अदृश्य हो जाऊ। अगर प्रेम फिर भी बच सका तो तुम पाओगे कि प्रेम ने धीरे-धीरे एक रूपातरण लिया। वह अदृश्य का, अज्ञात का प्रेम बनने लगा। वही भक्ति है। धीरे-धीरे मेरी याद, मेरी याद न रह जायेगी। धीरे-धीरे मै भी एक बहाना हो जाऊगा। उस बहाने से परमात्मा की ही याद तुममे प्रवाहित होने लगेगी।

प्रेम का दिन भी होता है, प्रेम की रात भी होती है। अगर प्रेम का दिन ही दिन हो, सुख ही सुख हो और प्रेम की पीड़ा न हो, तो प्रेम छिछला रह जाता है, गहरा नही होता। पीड़ा के बिना कोई भी चीज जगत मे गहरी नही होती।

सुख बडा ऊपर-ऊपर है, दुख बडा गहरा है। सुख की कही गहराई होती है? वह तो पानी के ऊपर-ऊपर की लहरे है। दुख की गहराई होती है। इसलिए दुख तुम्हारे हृदय को जितना गहरा छूता है उतना सुख कभी नही छू पाता। सुखी आदमी को तुम हमेशा छिछला पाओगे। दुखी आदमी के जीवन मे एक गहराई होती है।

और धन्यभागी है वे, जो प्रेम के कारण दुखी है। क्योकि कारण पर बहुत कुछ निर्भर करेगा। कोई इसलिए दुखी है कि धन नही मिला। धन मिलकर ही बहुत गहराई नही मिलती, तो धन के न मिलने से क्या खाक गहराई मिलेगी? उसका दुख व्यर्थ के लिए है। कोई इसलिए रो रहा है कि पद नहीं मिला। धन्यभागी है वे जो इसलिए रो रहे है कि प्रेम एक खाली जगह छोड गया है। उस खाली जगह को अपना पूजागृह बनाओ। प्रेम ने जहा हृदय को छुआ है और पीड़ा को जगाया है, उस पीड़ा को अपने से विपरीत मत समझो—उसके साथ बहो, उसको स्वीकार करो। वह पीडा तुम्हे माजेगी। वह पीड़ा तुम्हे निखारेगी। वह पीड़ा अग्नि की तरह सिद्ध होगी और तुम्हारा स्वर्ण कुदन बनेगा।

सुबह तेरी है तो ऐ खालिके-सुबह।
रात है किसकी करम फर्माई?

—हे परमात्मा, अगर सुबह तूने बनायी तो फिर रात किसकी अनुकपा का फल है?

अगर प्रेम से सुख मिलता है तो प्रेम से दुख भी मिलेगा। प्रेम के दुख को स्वीकार करना। जिसने सिर्फ प्रेम के सुख को स्वीकार किया उसने आधे को स्वीकार किया, उसके पूरे प्राणो पर प्रेम का विस्तार न हो सकेगा। प्रेम का दिन स्वीकारा, प्रेम की रात भी स्वीकारना। और अगर दोनो स्वीकार हो गये ता ज्यादा देर न लगेगी कि परमात्मा सब तरफ दिखायी पडने लगे। दुख भी उसी का है, इसलिए सौभाग्य है।

तू मेरे दिल मे ही नही सारी कायनात मे है
तू दिन की तरह निहा इस अधेरी रात मे है।

—फिर धीरे-धीरे दिन की भाति रात मे भी वही छिपा मालूम पडेगा।

तू दिन की तरह निहा इस अधेरी रात मे है।

अधेरा भी फिर उसका ही स्पर्श देगा।

अनुपस्थिति भी जब उसकी उपस्थिति बन जाये तो प्रेम भक्ति बनती है। अनुपस्थिति भी जब उसकी उपस्थिति मालूम पड़ने लगे क्योकि अनुपस्थिति भी उसी की है न। उसी से जुडी है। तो अनुपस्थिति भी फिर परमात्मा की ही हो गयी, प्रभु की हो गयी, प्रेम की हो गयी। तो अनुपस्थिति को भरने की कोशिश मत करना। उसको जीना।

तू मेरे दिल मे ही नही सारी कायनात मे है।

और फिर धीरे-धीरे जब दिल मे दुख और सुख दोनो क्षणो मे वह दिखायी पडने लगे तो सारे ससार मे भी दिखायी पडने लगेगा।

प्रेमी चाहता क्या है? प्रेमी चाहता है कि प्रेमी मे लीन हो जाये। भक्त चाहता क्या है?—कि भगवान मे डूब जाये।

तू है मुहीते-बेकरा मै हू जरा-सी आबे-जू
या मुझे हमकिनार कर, या मुझे बे-किनार कर।

तू है मुहीते-बेकरा—तू है बड़ा सागर। मै हू जरा-सी

आबे-जू—मै हू एक छोटा-सा झरना। या मुझे हमकिनार कर—या तो मुझे अपने साथ ले ले या मुझे बेकिनार कर—या मुझे मेरे किनारो से मुक्त कर दे।

लेकिन दोनो ही बातो का एक ही अर्थ होता है। या तो तू मुझे अपने साथ ले ले, सागर बना ले, और या फिर मुझे बेकिनारा कर दे। मेरे किनारे मुझ से छीन ले। या तो मुझे डुबा ले या मेरे किनारे मुझसे छीन ले। लेकिन दोनो हालत मे वह जो छोटा-सा झरना है, सागर हो जायेगा।

तड़फ क्या है? पीड़ा क्या है? पीड़ा प्रेमी के मिलने से थोड़े ही पूरी होती है—पीडा प्रेमी मे खो जाने से पूरी होती है। यही तो भक्त और प्रेमी का फर्क है।

अगर तुम्हारे जीवन मे मेरे प्रति प्रेम है और प्रेम अगर भक्ति मे न रूपातरित हुआ, तो यह प्रेम भी बधन बन जायेगा। फर्क समझ लो। प्रेमी चाहता है, जिससे प्रेम किया वह मिल जाये। भक्त चाहता है, जिससे प्रेम किया उसमे हम खो जाये। प्रेमी प्रेम-पात्र को पास लाना चाहता है। भक्त प्रेम-पात्र के पास जाना चाहता है। बड़ा फर्क है। प्रेमी चाहता है, जिससे प्रेम किया उस पर कब्जा हो जाये। भक्त चाहता है, जिसे प्रेम किया उसका मुझ पर कब्जा हो जाये।

ध्यान रखना, प्रेमी तो हारेगा, क्योकि यह कब्जा सभव नही है। भक्त जीतेगा, क्योकि भक्त कब्जा करना ही नही चाहता, सिर्फ कब्जा देना चाहता है।

तू है मुहीते-बेकरा, मै हू जरा-सी आबे-जू
या मुझे हमकिनार कर, या मुझे बेकिनार कर।

यह जो दुख 'सोहन' को प्रतीत हो रहा है, गहरा उसे प्रतीत हो रहा है, इस दुख को सुख मे बदला जा सकता है। इस पीड़ा से बड़े फूल खिल सकते है। लेकिन थोड़ी समझ मे क्राति लानी जरूरी है।

हासिले-जीस्त मसर्रत को समझनेवाले
एक नफस गम भी की दमभर तो खुदा याद रहे।

थोड़ा-सा दुख भी चाहिए, दमभर तो खुदा याद रहे। अगर सुख ही सुख हो तो याद भूल जाती है। इसीलिए तो लोग सुख मे याद नहीं करते, दुख मे याद करते है। और जिसने यह सार समझ लिया कि दुख मे याद गहन होती है, वह फिर दुख से न छूटना चाहेगा, वह तो दुख को भी सौभाग्य समझेगा। और अगर दुख को सौभाग्य समझ लिया तो सब घट गया। क्योकि वहीं तो मनुष्य की उलझन है दुख का अस्वीकार, सुख का स्वीकार। जब दुख का भी स्वीकार हो गया तो दुख दुख न रहा।

ऐसा समझो कि जिस दुख को हम स्वीकार कर लेते है वह सुख हो जाता है। स्वीकार करते ही सुख हो जाता है। दुख का होना हमारे अस्वीकार मे है। स्वीकार होते ही दुख का गुणधर्म बदल जाता है।

मुझे खयाल मे है। जिन-जिनसे भी प्रेम किया है, उनसे मै धीरे-धीरे अपने को दूर हटाऊगा ही। प्रेम तो शुरुआत है। वही रुक नही जाना है। दूर हटूगा तो प्रेम भक्ति मे बदल सकता है। अगर होगा तो भक्ति मे बदल जायेगा। अगर नही होगा तो नाराजगी मे बदल जायेगा। तो कुछ है जो मेरे पास से नाराज होकर हट जाते है। 'सोहन' उनमे से नही है, हटनेवाली नही है। लाख हटाने की चेष्टा करू, वह हटनेवाली नही है। तो फिर उसकी हार भी जीत मे बदल जायेगी।

गुलशन मे सबा को जुस्तजू तेरी है
बुलबुल की जबा पे गुफ्तगू तेरी है
हर रग मे जलवा है तेरी कुदरत का
जिस फूल को सूघता हू, बू तेरी है।

तो जो प्रेम मेरे प्रति है, उसे और फैलाओ। उसे इतना फैलाओ कि उस प्रेम के लिए कोई पता ठिकाना न रह जाये। मुझसे सीखो, लेकिन मुझ पर रुको मत। मुझसे चलो, लेकिन मुझ पर ठहरो मत।

जैनो का शब्द तीर्थंकर बड़ा बहुमूल्य है। तीर्थंकर का अर्थ होता है घाट बनानेवाला। घाट बना दिया, घाट बैठने के लिए नही है, दूर जाने के लिए है, दूसरे घाट जाने के लिए है।

तो मै अगर तुम्हारा घाट बन जाऊ और फिर तुम वहीं रुक जाओ और वही खील ठोक दो, और वहीं नाव को अटका लो, तो यह तो काम का न हुआ। मै तुम्हे मेरे किनारे पर कील ठोककर रुकने न दूगा। तुम लाख ठोको, मै उखाड़ता रहूगा। एक न एक दिन तुम्हे दूसरे किनारे की तरफ जाने की तैयारी करनी होगी। उस यात्रा के लिए तैयार रहो। निश्चित ही दूसरी तरफ जाने मे यह किनारा दूर होता हुआ मालूम होगा। लेकिन घबड़ाओ मत, मै दूसरे पर मिल जाऊगा—बहुत बडा होकर।

पूछा है, 'आप कब आएगे?'

दूसरे किनारे पर। अब इस किनारे पर नही। और दूसरे किनारे पर जिस रूप मे आऊगा, वह रूप शायद एकदम से पहचान मे भी न आयेगा। दूसरे किनारे पर जिस ढग से आऊगा शायद वह ढग एकदम से समझ मे भी न आयेगा।

गुलशन मे सबा को जुस्तजू तेरी है
बुलबुल की जबा पे गुफ्तगू तेरी है
हर रग मे जलवा है तेरी कुदरत का
जिस फूल को सूघता हू, बू तेरी है।

वह पहचान तो विराट की पहचान होगी। उसे अभी से पहचानने लगो। थोडे दिन यह देह होगी, फिर यह देह भी जायेगी, तब मै तुमसे और भी दूर हो जाऊगा। ऐसे धीरे-धीरे एक-एक कदम तुमसे दूर होता जाऊगा। थोडी देर बाद यह देह भी खो जायेगी। फिर तुम मुझे किसी तरफ न देख सकोगे। सब तरफ देख पाओगे तो ही देख सकोगे। उसकी तैयारी करवा रहा हू। उसका धीरे-धीरे तुम्हे अभ्यास करवा रहा हू।

ये क्षण बहुमूल्य है। इन क्षणो मे मिले हुए सुख मे तो सुखी होओ ही, इन क्षणो मे मिले दुख मे भी सुखी होओ। और बुद्धि की मत सुनो। हृदय की सुनो। आऊगा जरूर, लेकिन दूसरे किनारे पर। आना सुनिश्चित है, लेकिन तुम इस किनारे पर मत रुके रह जाना, अन्यथा मै उस किनारे प्रतीक्षा करू और तुम इसी किनारे बने रहो। इस किनारे से तो मेरे भी जाने के दिन करीब आयेगे। इसके पहले कि मै इस किनारे से विदा होऊ, तुम अपनी खूटी उखाड़ लेना, तुम अपनी नाव को चला देना।

दूसरा किनारा दूर है और दिखाई भी नही पड़ता। लेकिन जिस नदी का एक किनारा है उसका दूसरा भी है ही, दिखाई पड़े न दिखाई पडे। कही एक किनारे की कोई नदी हुई है?

तो प्रेम का एक रूप जाना, एक किनारा जाना—दूसरा भी है। वही भक्ति है।

मनुष्य को प्रेम किया, शुभ है। लेकिन वहा रुक मत जाना। वह प्रेम धीरे-धीरे उठे लपट की तरह और परमात्मा के प्रेम मे रूपातरित हो। मेरा प्रेम तुम्हे मुक्त करे, तुम्हे मोक्ष दे, तो ही मेरा प्रेम है, बाध ले, अटका दे, तो फिर मेरा प्रेम नही।

प्रेम सदा ही मोक्ष का द्वार है।

आज इतना ही।





सत्ताईसवां प्रवचन

साधु का सेवन : आत्मसेवन

सूत्र

सम्मदसणणाण, एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्खरहिदो, भणिदो जो सो समयसारो।।६६।।

दसणाणचरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि, अप्पाण जाण णिच्छयदो।।६७।।

णिच्छयणयेण भणिदो, तिहि तेहि समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किचि वि अन्न, ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति।।६८।।

अप्पा अप्पम्मि रओ, सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ त सण्णाण, चरदिह चारित्तमग्गु त्ति।।६९।।

आया हु मह नाणे, आया मे दसणे चरित्ते य।
आया पच्चक्खाणे, आया मे संजमे जोगे।।७०।।

हिमाच्छादित गौरीशकर के शिखर करीब आने लगे। महावीर क्रमश ऊचाइयो और ऊचाइयो पर उड रहे है। समझना क्रमश कठिन होता जायेगा। क्योकि जिन ऊचाइयो की हमे आदत नही है, उन ऊचाइयो को समझना तो दूर, उन ऊचाइयो पर श्वास लेना भी कठिन हो जाता है। और जिन ऊचाइयो का हमे कोई अनुभव नही, उनके सबध मे शब्द भला हमे सुनायी पड जाये, अर्थ का विस्फोट नही होता है। गुजर जाते है शब्द हमारे पास से। अगर बहुत बार सुने हुए है तो ऐसी भ्राति भी होती है कि समझ मे आ गये।

इसे स्मरण रखना कि महावीर जो कह रहे है, वह अगर समझ मे न आये तो स्वाभाविक है, समझ मे आ जाये तो सदेह करना, क्योकि वही अस्वाभाविक है।

अनुभव से ही समझ मे आयेगा। उसके पहले ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि अनुभव के लिए एक प्यास प्रज्वलित हो जाये, कि अनुभव की आकाक्षा पैदा हो, कि काश, ऐसी ऊचाइयो पर हम भी उड़ सकते। जिन दूर की बातो को महावीर पास ला रहे है, काश हमारे भी जीवन की सपदा उन्हीं स्वर्ण-रत्नो से बन सकती।

प्यास उठ आये, बस इतना काफी है। तो समझ मे न आये, तो धैर्य रखना। घबड़ाना मत। और ऐसा मत सोच लेना कि हमारी समझ मे आएगा ही नही। और ऐसा तो भूलकर भी मत सोच लेना कि यह बात समझने योग्य ही नही है। क्योकि हमारा मन इस तरह के बहुत उपाय करता है। अहकारी मन हो तो वह कह देता है, इन बातो मे कुछ सार नही। इस तरह हम अपने अहकार को सुरक्षित कर लेते है। इस तरह ऊचाई पास आती थी तो हम उससे दूर हट जाते है। क्योकि ऊचाई के पास हमे अपनी नीचाई मालूम पडने लगती है।

ऊचाइयो से दूर मत हटना। उन्हे बुलाना। उनकी खोज करना। तुम्हे जितने बड़े शिखर मिल जाये, उतना ही शुभ है। क्योकि जितने तुम्हे शिखर मिले, उतने ही अहकार के विसर्जन की सभावना बढेगी, उतना ही तुम छोड़ पाओगे यह 'मै' का खयाल। इसीलिए तो तीर्थकरो, प्रबुद्ध पुरुषो को हमने बहुत स्वागत से कभी स्वीकार नही किया। उनकी मौजूदगी हमे हीन करती मालूम पडने लगी। उनके सामने हम खडे हुए तो छोटे मालूम होने लगे। उनके पास हम आये, तो हम जैसे जमीन पर चीटिया रेगती हो, ऐसे रेगते हुए मालूम होने लगे। तो दो ही उपाय थे—या तो हम भी उनके साथ उडना सीखे और या हम उन्हे इनकार ही कर दे कि यह सब कल्पना-जाल है, कि ये दूर की बाते सब काव्य-शास्त्र है, कि ये बाते कही है नही, ये सब बाते है। या हम यह कहकर हट जाये कि ये बाते हमारी समझ मे नही पड़ती, तो जो समझ मे ही नहीं पड़ती है उन बातो को मानकर हम चले कैसे? वहा भी भूल हो जायेगी।

ध्यान रखना जो तुम्हारे समझ मे नहीं पडता वह इसलिए समझ मे नही पड़ता कि उसका कोई अनुभव नहीं हुआ है। अनुभव के बिना समझ कैसे होगी? अनुभव के बिना कोई अडरस्टैंडिंग, कोई प्रज्ञा का प्रादुर्भाव नही होता। तो तुम यह मत कहना कि जब समझ मे ही नही आता तो हम चले कैसे? क्योकि चलोगे, तो ही समझ मे आयेगा। यह तो तुमने अगर

ऐसा मान लिया तो अपने जीवन मे एक ऐसे पत्थर को रख लिया कि उसको पार करना फिर असभव हो जायेगा।

कोई प्रेम को जानता नही, प्रेम करता है तब जानता है। और न ही कोई परमात्मा को जानता है, जब तक उतरता नही उस गहराई मे। और न ही कोई आत्मा को जानता है, जब तक डूबता नही अपने आत्यतिक केद्र पर।

तो समझ नहीं है, इसको पत्थर की तरह उपयोग मत कर लेना। समझ आयेगी ही अनुभव से। इसलिए समझ से भी ज्यादा जरूरी है साहस। इसे मै फिर से दोहराऊ अध्यात्म के मार्ग पर समझ से भी ज्यादा जरूरी है साहस। क्योकि साहस हो तो आदमी अनुभव मे उतरता है, अनुभव मे उतरे तो समझ आती है। इसलिए जिनको तुम समझदार कहते हो वह वचित ही रह जाते है। क्योकि समझदार यह कहेगा, यह अपनी समझ मे नही आती। जो समझ मे नही आती, चलू कैसे? पता नही कोई भटकाव न हो जाये। पता नही जो हाथ मे है, कही वह भी न खो जाये। ये बड़ी दूर की बाते, आकाश की बाते, कहीं मेरी पृथ्वी को उजाड न दे। एक छोटा घर बनाया है—वासना का, तृष्णा का—एक छोटा ससार रचाया है। ये कही परमात्मा और आत्मा के खयाल, यह दिव्य प्यास, कही मेरी सारी घर-गृहस्थी को डावाडोल न कर दे।

तो समझदार आदमी कहता है, जब समझ मे आयेगी तब करेगे। साहसी कहता है, समझ मे नही आती तो करेगे और देखेगे और समझेगे।

साहस। वस्तुत दुस्साहस चाहिए। इसलिए तो महावीर को हमने महावीर नाम दिया। उन्होने बड़ा दुस्साहस किया। वह समझ के लिए न रुके। वह अनुभव मे उतर गये। जुआरी की हिम्मत। सब दाव पर लगा दिया। फिर समझ भी आयी। क्योकि समझ अनुभव की छाया की तरह आती है।

तो दुनिया मे दो तरह की समझ है। एक तो समझदारो की, जिनको तुम समझदार कहते हो—उनकी समझ अनुभव से नहीं आती, उनकी समझ सिर्फ बौद्धिक है, सिर्फ बुद्धि की है। वह शब्दो को समझ लेते है, शब्दो का सयोजन समझ लेते है, शब्दो का व्याकरण समझ लेते है, शब्दो का अर्थ भी बिठा लेते हैं—लेकिन बस सब खेल शब्दो का होता है।

शब्दो को हटा लो तो उनके पीछे कोई समझ बचेगी नहीं, शब्द के हटते ही सारी समझ हट जायेगी। तो समझ उनकी शब्दो का ही जोड़ है।

और एक ज्ञानी की समझ है, तुम उससे सब शब्द छीन लो तो भी उसकी समझ न छीन सकोगे। क्योकि उसकी समझ अनुभव की है, शब्दो की नही। अगर शब्दो का उसने उपयोग भी किया है तो अपनी समझ को तुम तक पहुचाने के लिए किया है। शब्दो के उपयोग से उसने समझ को पाया नही है। वह बौद्धिक नहीं है—अस्तित्वगत है, एक्जीसटेशियल है। उसने जाना है, जीया है। तो तुम उसके सारे शब्द छीन लो, तब भी तुम उसकी समझ न छीन पाओगे। उसकी समझ शब्दो से बहुत गहरी है। उसने मौन मे समझ पायी है। उसने तो खुद ही शब्द छोड़ दिये थे, तब समझ आयी है।

तो इसे खयाल रखना। और एक खतरा है कि कुछ लोग ऐसे भी है जो इन वचनो को समझ लेगे, समझते मालूम पड़ेगे क्योकि ये वचन कोई बहुत दुरूह नही है। इनकी दुरूहता अगर कही है तो अनुभव मे है, वचनो मे नही है। वचन तो बडे सीधे-साफ है। महावीर ने एक भी जटिल विचार का उपयोग नही किया—कोई ज्ञानी पुरुष कभी नहीं किया है। जटिल विचारो का उपयोग तो वे लोग करते है जिनके पास कुछ भी नही है, और केवल बडे-बड़े शब्दो की छाया मे अपने अधकार को छिपा लेना चाहते है।

दार्शनिक बड़े-बड़े शब्दो का उपयोग करते है, बडे-बड़े लबे वचनो का उपयोग करते है। तुम उनके वचनो के बीहड़ मे ही खो जाओगे। तुम्हे यह पक्का हो ही न पायेगा कि वे क्या कहना चाहते थे। उनके पास कहने को कुछ था भी नहीं। लेकिन जो नही था उनके पास कहने को, उसको उन्होने इस ढग से फैलाया कि शब्द-जाल ऐसा बड़ा हो गया कि तुम समझ ही न पाये। न समझने के कारण कई बार तुम्हे लगता है, बड़ी गहरी बात है।

महावीर जैसे पुरुष सुलझाने को है, उलझाने को नहीं। उनके वचन सीधे-साफ है, दो टूक है, गणित की तरह स्पष्ट है। दो और दो चार—बस ऐसे ही उनके वचन है।

तो खतरा यह भी है कि तुम्हे वचन सुनकर ऐसा लगे कि अरे, समझ गये। वहा मत रुक जाना। वह समझ कुछ काम न आयेगी। अगर तुम महावीर के वचनो को सुनकर समझ गये तो फिर महावीर ने बारह वर्ष मौन और ध्यान साधा, तो बहुत कम

बुद्धि के आदमी रहे होगे। तुम सुनकर समझ गये। महावीर को बारह वर्ष लगे, कठोर तपश्चर्या के, गहन सघर्ष के, रत्ती-रत्ती अपने को छाटा और काटा और जलाया, निखारा, जब अतरज्योति पूरी शुद्ध हो गयी तब उन्हे यह समझ पैदा हुई। तुम्हारा धुए से भरा हुआ मन, ईधन गीला, लपट कहीं दिखायी नही पड़ती, बस धुआ ही धुआ फैलता मालूम होता है—इसमे ये शब्द तुम्हे याद हो सकते है। बहुत से पडितो को याद है। इन शब्दो को तुम तोते की तरह कठस्थ कर ले सकते हो। उस याददाश्त को तुम प्रज्ञा मत समझ लेना।

तो दो बाते स्मरण रखना समझ मे न आये तो इनकार मत करना, और समझ मे आ जाये तो भी वहीं मत रुक जाना। इन दोनो के बीच मे मार्ग है। इतना समझ मे आ जाये कि कुछ पाने योग्य है। इतना ज्यादा भी समझ मे न आ जाये कि पा लिया। इतना समझ मे आ जाये कि कुछ पाने योग्य है। प्यास जग जाये और यात्रा शुरू हो जाये। तो किसी दिन अनुभव भी घटेगा। तुम भी उड़ोगे उन आकाश की ऊचाइयो मे। तुम्हे भी पख लगेगे।

'जो सब नय-पक्षो से रहित है, वही समयसार है। उसी को सम्यक दर्शन और सम्यकज्ञान की सज्ञा दी है।'

सम्मदसणणाण, ऐसो लहदि त्ति णवरि ववदेस।

सव्वणयपक्खरहिदो, भणिदो जो सो समयसारो।।

'सव्वणयपक्खरहिदो'—जिसका मन सभी पक्षो से रहित है, जो सब नय-पक्षो से शून्य है, वही समयसार है। समयसार का अर्थ होता है वही आत्मा की सार स्थिति है। वही अस्तित्व का निचोड़ है। वही तुम हो, वहीं तुम्हारी आत्मा है—जहा न कोई नय है, न कोई पक्ष है। इसे समझे।

साधारणत तो हम नय-पक्षो से भरे है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है। जब तक तुम हिंदू हो, जैन हो, ईसाई हो, तब तक तुम्हे समयसार का पता न चलेगा। आत्मा का रस तुम्हे उपलब्ध न होगा। क्योकि आत्मा न हिंदू, न मुसलमान, न जैन है।

जब तक तुम कहते हो, 'मेरी ऐसी मान्यता है', तब तक तुम सत्य को न जान सकोगे, क्योकि सभी मान्यताए सत्य को जानने मे बाधा बन जाती है। मान्यता का अर्थ है कि बिना जाने तुम जानते हो। तो जिसने बिना जाने जान लिया है, वह जान कैसे सकेगा फिर? मान्यता-शून्य होने का अर्थ है मुझे पता नही, इसलिए मै किसी मान्यता को कैसे पकड़ू? मैं कैसे कहू कि क्या ठीक है? मुझे कुछ भी पता नहीं है।

तो ऐसा जो अज्ञान मे खड़ा हो जाता है शात चित्त से, जबर्दस्ती ज्ञान को नहीं पकड़ लेता, छिपाता नही ज्ञान के आवरण मे अपने को, ज्ञान के वस्त्रो मे अपने को ढाकता नही, जो अपने अज्ञान को स्वीकार कर लेता है—वही व्यक्ति ज्ञान की तरफ पहला कदम उठाता है। यह बड़ा विरोधाभासी लगेगा। ज्ञान की तरफ पहला कदम अपने अज्ञान के साथ ईमानदारी से खड़े हो जाना है। हम मे से बहुत कम लोग ही ईमानदारी से खड़े होते है अज्ञान के साथ। अज्ञान को स्वीकार करने मे अहकार को चोट लगती है। अहकार चाहता है दावा करना कि मै जानता हू। तो हम शास्त्र से, परपरा से, अन्यो से, शिक्षको से, गुरुओ से, कही न कही से इकट्ठा कर लेते हैं ज्ञान।

तुम्हारा ज्ञान सभी कुछ नय-पक्ष है। वह तुमने इकट्ठा किया है, जाना नही है। पक्षपात से भरे हो तुम। हर चीज के सबध मे तुमने कुछ तय कर लिया है। तुम तय करके बैठे हो। तुम तय करके बैठे हो, इसलिए तुम्हारी आख खाली नही है, पक्ष से आख दबी है। पक्ष की ककडी तुम्हारी आख मे पड़ी है। तो ककडी जब आख मे पड़ी हो तो फिर कुछ नही दिखाई पडता।

महावीर कहते है, आख खाली चाहिए, निर्मल चाहिए। आख ऐसी चाहिए कि सिर्फ देखती हो और आख मे कुछ न पडा हो। क्योकि अगर आख मे कुछ भी पडा हो तो जो तुम देखोगे वह विकृत हो जायेगा।

सोचो अगर तुम जैन हो, पढ़ो गीता—तुम्हे समझ मे आ जायेगा। तुम गीता पढ़ ही न पाओगे, तुम्हे रस ही न आयेगा। घडी-घडी तुम्हारा जैन धर्म बीच मे खडा हो जायेगा। तुम्हे ऐसा लगेगा, ये कृष्ण तो अर्जुन को भ्रष्ट करने लगे। ऐसा तुम कहो या न कहो, तुम्हारे भीतर यह पक्ष खडा रहेगा। आज तक किसी जैन ने गीता पर कोई वक्तव्य नही दिया, कोई महत्वपूर्ण बात नही कही। गीता को किनारे हटा दिया है।

हिंदू से कहो कि महावीर के वचन सुने, पढे? पढ़ भी ले तो मुर्दा भाव से पढ जायेगा। क्योकि भीतर तो वह जानता ही है कि सब गलत है। हिंदू से कहो कुरान को पढ़े, तो भीतर तो वह मानता ही है कि 'क्या रखा है। कहा वेद, कहा उपनिषद। क्या रखा है कुरान मे? वही कुरान के माननेवाले की स्थिति है। वही

बाइबिल को माननेवाले की स्थिति है। बाइबिल को माननेवाला जब वेद पढ़ता है तो उसे लगता है, बस गाव के ग्रामीण गडरियो के गीत है, इससे ज्यादा नही। जब वेद को माननेवाला आर्यसमाजी पडित बाइबिल को पढता है तो उसमे से कुछ भी सार नहीं पाता, उसमे से सब कचरा-कूड़ा इकट्ठा कर लेता है।

अगर तुम्हे इस दृष्टि की, पक्षपात से भरी दृष्टि की, ठीक-ठीक उपमा चाहिए हो तो दयानद का ग्रथ 'सत्यार्थ प्रकाश' पढना चाहिए। वह पक्षपात से भरी आख का, उससे ज्वलत प्रमाण कहीं खोजना मुश्किल है। तो सभी मे भूले निकाल ली है उन्होने—और बेहूदी भूले, जो कि निकालनेवाले के मन मे छिपी है, जो कहीं भी नही है। लेकिन निकालनेवाला पहले से मानकर बैठा है।

जो तुम मानकर बैठ जाते हो वह तुम खोज भी लोगे। अगर तुम्हीं मानकर बैठे हो तो फिर मुश्किल है। तुमने जानने के पहले अगर धारणा तय कर रखी है, तो तुम सत्य को कभी भी न जान पाओगे, तुम सत्य को कभी मौका न दोगे कि तुम्हारे सामने प्रगट हो जाये।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने एक मित्र दर्जी से कपडे बनवाये। जब वह कपड़े पहनने गया, उठाने गया, दर्जी ने उसे पहनाकर बताया। उसे कपड़े जचे नही, कुछ बेहूदे थे, कुछ अटपटे थे। कुछ शरीर पर बैठते भी न थे। लेकिन दर्जी प्रशसा मारे जा रहा था। वह गुणगान किए जा रहा था। वह कह रहा था, 'देखो तो जरा दाहिने आईने मे। तुम्हारे मित्र भी तुम्हे पहचान न पायेगे। तुम्हारी पत्नी भी शायद ही तुमको पहचान पाए। इतने सुदर मालूम हो रहे हो । जरा तुम बाहर तो जाओ, जरा सडक पर चक्कर लगाकर आओ।'

मुल्ला बाहर गया—सकोच से भरा हुआ, क्योकि बड़ा अटपटा-सा लग रहा था उसे उन कपडो मे। जल्दी ही भीतर आ गया। जब वह भीतर आया तो दर्जी, जो उसका पुराना मित्र, बोला, 'आइये राजकपूर साहब। बहुत दिनो बाद आये।'

अब दर्जी मानकर ही बैठा है कि गजब के कपड़े उसने सी दिये। जो तुम मानकर बैठे हो, तुम उसे सिद्ध करने की चेष्टा मे लग जाते हो, जाने-अनजाने। तुम सब तरह से प्रमाण जुटाते हो। विपरीत प्रमाणो को तुम देखते ही नही। तुम्हारी आखे चुनाव करने लगती है। जो पक्ष मे पड़ता है तुम्हारे पक्ष के, वह तुम चुन लेते हो, जो विपक्ष मे पड़ता है, वह तुम छोड़ देते हो।

सत्य को जानने का यह ढग न हुआ। यह तो असत्य मे जीने का ढग हुआ। तो महावीर कहते है

सम्मदसणणाण, एसो लहदि त्ति णवरि ववदेस।
सव्वणयपक्खरहिदो, भणिदो जो सो समयसारो।।

जो सब नय-पक्षो से रहित है, जिसकी कोई धारणा नही, मान्यता नही, जिसका कोई विश्वास-अविश्वास नही, जो नग्न चित्त है, जो दिगबर है, जिसके ऊपर कोई आवरण नही, आकाश ही जिसका आवरण है, विराट ही जिसका आवरण है, इससे कम को जिसने स्वीकार नही किया है—ऐसा नग्न चित्त, शात मन, निष्पक्ष व्यक्ति—वही समयसार है। वह जान लेगा आत्मा का सारभूत, आत्मा का सत्य, उसे अस्तित्व की पहचान मिलेगी। वह अस्तित्व के मदिर मे प्रवेश पा सकेगा। पात्रता, पक्षपात रहित हो जाना है।

महावीर के पास लोग आते, प्रश्न पूछते, तो महावीर कहते, 'तुम कुछ पहले से ही मानते तो नही हो? अगर मानते हो तो बात व्यर्थ, फिर सवाद न हो सकेगा।'

जब कोई मानकर ही चलता है तो विवाद हो सकता है, सवाद नही हो सकता। जब कुछ मानकर कोई भी नही चलता, जब कोई तैयार है सत्य के साथ जहा ले जाये, जब कोई इतना हिम्मतवर है कि सत्य जो दिखाएगा उसे स्वीकार करूगा—तभी, महावीर कहते है, सवाद हो सकता है। तब महावीर कहते है, ज्यादा कुछ कहने को भी नही है। क्योकि सत्य को कहा तो नहीं जा सकता। मै कुछ इशारे कर देता हू, तुम इनका पालन कर लो। इन इशारो के पालन करने से धीरे-धीरे तुम्हे भी वही अनुभव होने लगेगा जो मुझे हो रहा है। जिस द्वार मे खडे होकर मै देख रहा हू जीवन को, तुम भी देख सकोगे मेरे करीब आ जाओ। लेकिन अगर तुम मानते हो कि तुम्हे द्वार मिल ही गया है, तो फिर तुम मेरे करीब न आओगे और व्यर्थ खीचा-तानी होगी।

दुनिया मे जहा भी जितनी बातचीत हो रही है, तुम अगर गौर करोगे तो बातचीत तो कही मुश्किल से होती है। सवाद कहा है? विवाद है। चाहे प्रगट हो, चाहे अप्रगट हो। जब भी दो व्यक्ति बात करते है तो खुलते कहा है? अपनी-अपनी चेष्टा मे रत रहते है।

महावीर ने कोई शास्त्रार्थ नहीं किया, किसी से कोई विवाद नहीं किया। महावीर शकराचार्य की तरह मुल्क मे नहीं घूमे विवाद करते। महावीर की पकड़ बड़ी गहरी है। महावीर कहते है, विवाद से क्या होगा? अगर कोई पहले से मानकर बैठा है तो उसे मनाया नहीं जा सकता। और अगर जबर्दस्ती उसे चुप करा दिया जाये, तर्क से हो सकता है, तो भी उसका हृदय थोड़े ही राजी होता है। कभी-कभी ऐसा हुआ है कि तर्क मे तुम किसी से हार गये हो, तो भी दिल मे तो तुम घाव लिए रहे हो हो कि ठीक है, देखेगे, आज जरा मुश्किल हो गयी, हम तर्क ठीक न खोज पाये। चुप कर दिये गये हो तुम, लेकिन तुम्हारा हृदय रूपातरित तो नही हुआ। जबर्दस्ती तुम्हारी जबान रोक दी गयी है। यह हो सकता है, कोई तुमसे ज्यादा कुशल हो तर्क मे।

तो तर्क मे जो जीत जाता है, जरूरी नहीं कि उसके पास सत्य हो। और तर्क मे जो हार जाता है जरूरी नहीं कि उसके पास सत्य न हो। यह भी हो सकता है, जिसके पास सत्य है उसके पास सत्य को सिद्ध करने का तर्क न हो। यह भी हो सकता है, जिसके पास सत्य को सिद्ध करने के तर्क है उसके पास कोई सत्य न हो। और जो कोई तर्क के द्वारा तुम्हे पराजित कर देता है वह केवल इतना ही सिद्ध कर रहा है कि वह तुमसे ज्यादा कुशल है, तुमसे ज्यादा अनुभवी है, इतना। उससे कुछ सिद्ध नही होता। और यह भी हो सकता है कि वह तुम्हारे पीछे चलने लगे, हार जाये तो तुम्हारे पीछे चले, तुम्हे मान ले। कल कुछ और मानता था, आज तुम्हे मान ले—लेकिन मान्यता तो मान्यता है। कल मानता था, ईश्वर नहीं है, आज तुमने तर्क दे-देकर सिद्ध कर दिया और उसने मान लिया कि ईश्वर है। कल एक मान्यता से भरा था, आज दूसरी मान्यता से भर गया है—विपरीत मान्यता से, लेकिन मान्यता तो दोनो ही मान्यताए है। ज्ञान का जन्म न हुआ।

महावीर कहते है, एक पक्ष को दूसरे मे नही बदलना है—पक्ष को गिरा देना है, तुम्हे निष्पक्ष होना है। इसलिए जैन भी महावीर के अनुयायी नहीं है। क्योंकि जैन होने मे ही खराबी हो गयी। महावीर जैन न थे। महावीर के पास जैन होने का उपाय नहीं है। क्योंकि महावीर की मौलिक दृष्टि यही है कि सभी पक्ष भ्रष्ट कर देते है। अब जैन तो पहले से मानकर बैठ गया है कि महावीर ठीक है, इसीलिए वचित हो गया है। पहले से मानकर बैठ गया कि महावीर जो कहते है, वह सही ही कहते है, इसीलिए महावीर से दूर हो गया है।

महावीर के साथ तो केवल वही खड़ा हो सकता है जो निष्पक्ष है—इतना निष्पक्ष कि यह भी नहीं कहता कि महावीर ठीक है। इतना ही कहता है कि मुझे पता नहीं, मै खोजने को तैयार हू। सूरज की कहीं से भी किरण आये, मै पीछे जाने को तैयार हू। मै अनत की यात्रा के लिए तैयार हू।

और बिना मान्यता के यात्रा पर निकलना बड़ा दूभर है। क्योकि तुम कहते हो कि जब कोई मान्यता ही नही है, तो हम यात्रा पर कैसे निकले। वैज्ञानिक तक प्रयोग करने के पहले हाईपोथिसिस निर्मित करता है। हाईपोथिसिस का मतलब है, पक्ष तय करता है। तय करता है कि यह हो सकता है कम से कम। फिर यात्रा पर निकलता है।

महावीर का विज्ञान वैज्ञानिक के विज्ञान से भी ज्यादा गहरा है। महावीर कहते है, उतना पक्षपात भी खतरनाक है। क्योकि उसी पक्षपात के कारण तुम वह देख लोगे जो नहीं था। ओर यह बात अब वैज्ञानिको को भी समझ मे आने लगी।

पोल्यानी ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी है पर्सनल नालेज। तीन सौ वर्ष की वैज्ञानिक खोज के बाद वैज्ञानिको को भी यह सिद्ध हो गया है कि हमारा जो ज्ञान है वह इम्पर्सनल नही है, अवैयक्तिक नही है, वह भी वैयक्तिक है। क्योकि जो वैज्ञानिक खोज करने जाता है, उसकी धारणा वह जो खोज करता है उस पर आरोपित हो जाती है, उसको रग देती है। इसलिए हम जो भी जानते है, वह वस्तुत ऐसा है, कहना मुश्किल है। खोजनेवाला उस पर हावी हो जाता है।

तो पहले तो हम सोचते थे अभी एक बीस वर्ष पहले तक वैज्ञानिक यही सोचते थे कि विज्ञान निष्पक्ष है। अगर कोई आदमी किसी स्त्री के सबध मे कहता है, बडी सुदर और तुम्हे सुदर नही लगती, तो तुम कहते हो, पसद-पसद की बात है। इसमे कोई झगड़ा खड़ा नही होता।

तुम कहते हो, 'चाहत की बात है। अपने रुझान की बात है। तुम्हे सुदर मालूम पड़ती है, मुझे सुदर नही मालूम पडती।' झगडा खडा नही होता। क्योकि जो आदमी कहता है, यह स्त्री सुदर है, वह इतना ही कह रहा है कि मुझे सुदर मालूम पड़ती है। यह पर्सनल, वैयक्तिक बात है, इसमे झगडा नही है। एक

आदमी को एक तरह की सिगरेट पसद पडती है, दूसरे आदमी को दूसरी तरह की पड़ती है। एक आदमी को एक तरह का साबुन पसंद है, दूसरे को दूसरी तरह का पसद है। एक आदमी को एक तरह का फूल लुभाता है, दूसरे को दूसरी तरह का लुभाता है। कोई कहता है सुबह बडी सुदर है, कोई कहता है मुझे जचती नही—तो कोई झगडा खड़ा नही होता, विवाद का कोई कारण नही, यह व्यक्तिगत रुझान है। लेकिन अगर कोई आदमी कहे, यह स्त्री सुदर है, यह वैज्ञानिक सत्य है, तो फिर झगडा खड़ा होगा। वैज्ञानिक सत्य कहने का अर्थ यह हुआ कि यह सभी के लिए सुदर है। तो फिर अडचन आयेगी।

अब तक वैज्ञानिक मानते थे कि उनका सत्य वैज्ञानिक है और बाकी जो वक्तव्य है वे कवियो के है। लेकिन पोल्यानी की किताब ने और पोल्यानी की खोजो ने जीवनभर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि विज्ञान भी वैयक्तिक है। आइस्टीन जो कह रहा है, वह आइस्टीन कह रहा है। न्यूनट जो कह रहा है, वह न्यूटन कह रहा है। यद्यपि आइस्टीन जो कह रहा है वह इतने प्रबल तर्क से कह रहा है कि अभी हम उसका विरोध न कर पायेगे जब तक कि प्रबलतर आइस्टीन न आ जाये। और यह तीन सौ साल मे निरतर हुआ। न्यूटन ने जो कहा वह आइस्टीन ने गलत कर दिया। ऐसी-ऐसी चीजे जिनके बाबत हम सोचत थे बिलकुल सही है, वह भी सही न रही। ज्यामति जैसा शास्त्र भी सही न रहा। इकलेट ने जो सिद्ध किया था, वह गलत हो गया। दूसरे लोगो ने उससे विपरीत मान्यताए सिद्ध कर दीं। गणित जैसा विषय भी अब वैज्ञानिक नही रहा। क्योकि गणित की सामान्य मान्यताओ के विपरीत भी मान्यताए लोगो ने सिद्ध कर दी और नये गणित विकसित हो गय। तो अब तो दिखायी पडता है कि सारा ज्ञान व्यक्तिगत है, रुझान है। वह आदमी के ऊपर निर्भर है।

महावीर कहते है, जो परम सत्य को मानने चला है, मान्यता तो दूर, हाइपोथिसिस, परिकल्पना भी ठीक नही, नय भी ठीक नहीं। नय का अर्थ होता है बडी सूक्ष्म-सी रेखा दृष्टि की, कोई दृष्टिकोण, कोई हाइपोथिसिस। वह भी ठीक नहीं। उसे खाली जाना चाहिए—कोरा। तुम्हारे मन के कागज पर कुछ भी न लिखा हो, अन्यथा जो लिखा है उसका प्रक्षेपण हो जायेगा। तुम्हारा मन का कागज बिलकुल कोरा हो। इसका अर्थ हुआ, तुम्हारा मन सक्रिय रूप से भाग न ले ज्ञान की खोज मे, निष्क्रिय रहे, एक्टिव न हो, पैसिव रहे। स्त्रैण हो तुम्हारा चित्त। सिर्फ जो हो रहा है उसको स्वीकार करे, लेकिन कैसा होना चाहिए, कैसा होता, ऐसी कोई धारणा प्रक्षेपण न करे। इसे खयाल मे लेना।

जगत मे खोज के दो उपाय है—एक निष्क्रिय, एक सक्रिय। सक्रिय मे तुम चेष्टा करते हो कुछ खोजने की, निष्क्रिय मे तुम केवल निष्पक्ष भाव से खड़े होते हो। सक्रिय चेष्टा विचार बन जाती है, निष्क्रिय चेष्टा ध्यान बन जाती है। जब तुम सक्रिय होकर खोज मे लग जाते हो तो तुम विचारो से भर जाते हो, क्योकि विचार मन के सक्रिय होने का अग है। मन जब सक्रिय होता है तो विचार से भर जाता है। मन जब निष्क्रिय होता है तो कोरा रह जाता है। आकाश मे बादल हो तो सक्रिय, आकाश मे कोई बादल न हो तो निष्क्रिय, कोई क्रिया नही हो रही।

महावीर कहते है, मन की सारी क्रिया शून्य हो जाये, नय-पक्षरहित हो जाय—सव्वणयपक्खरहिदो—तो जो शेष रह जाता है उस निष्क्रिय चित्त की दशा मे जिसको लाओत्से न वू-वेइ कहा है—ऐसी निष्क्रियता, दर्पण जैसी निष्क्रियता, जैसे दर्पण 'जो है' उसको झलका देता है। अगर दर्पण कुछ जोडता है, घटाता है, तो सक्रिय हो गया जैसा है वैसा का वैसा, तैसा का तैसा झलका देता है। उस स्थिति को महावीर कहते है, उपलब्ध हो जाओ तो वही समयसार है। वही अध्यात्म का निचोड है। वही से तुम्हे अनुभव का जगत शुरू होगा। उसी का सम्यक दर्शन और उसी को सम्यक ज्ञान की सज्ञा दी है।

महावीर कहते है, ओर सब तो शब्द है, मगर असली बात वही है। सम्यक ज्ञान कहो, सम्यक दर्शन कहो या कुछ और कहना हो—ध्यान, समाधि, निर्विकल्प दशा जो भी कहना हो कहो। लेकिन एक बात तय है कि वह निष्क्रिय दशा है। जिसमे तुम कुछ भी हिस्सा नही बटाते, तुम सिर्फ खड़े रह जाते हो। इस थोड़ा अभ्यास करना शुरू करो। यह मेरे कहने भर से साफ न हो जायेगा—इसका थोड़ा अभ्यास करना शुरू करो। कभी इसकी झलक मिलेगी। नाच उठोगे तुम, जब इसकी पहली झलक मिलेगी। तुम भरोसा न कर पाओगे कि अरे, मै अब तक यह क्या करता रहा। तुम्हारा सारा जीवन तब एक नयी रूप-रेखा मे भर जायेगा। थोड़ा अभ्यास करो।

शात बैठकर वृक्ष को देखते हो तो देखते ही रहो। सक्रिय मत

बनो। इतना भी मत कहो कि यह पीपल का वृक्ष है। यह भी मत कहो कि यह गुलाब की झाडी है। यह भी मत कहो कि गुलाब कितने सुदर है। यह भी मत कहो कि अहा, कितने प्यारे फूल खिले है। ऐसा मन मे कुछ भी मत कहो। क्योकि ये सब नय-पक्ष है, ये सब तुम्हारी मान्यताए है।

गुलाब का फूल तो बस गुलाब का फूल है—न सुदर, न असुदर। सुबह तो बस सुबह है। सब वक्तव्य तुम्हारे है, सुबह तो अवक्तव्य है। उसके बाबत तो कोई वक्तव्य नही हो सकता। अनिर्वचनीय है। सब वचन तुम्हारे है। तुम अपने को हटा लो। तुम कुछ कहो ही मत। तुम सक्रिय बनो ही मत। तुम सिर्फ सुबह को देखते रह जाओ। ऊगता है सूरज, ऊगने दो। वृक्षो मे हवा सरसराती है, सरसराने दो। तुम शब्द न दो। तुम शब्द को मत बनाओ। तुम शब्द से रिक्त और शून्य देखते रहो, देखते रहो। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे-धीरे अभ्यास घना होगा। कभी ऐसा क्षण आ जायेगा, एक क्षण को भी, कि तुम सिर्फ देखते रहे और तुम्हारे भीतर डालने को कुछ भी न था। तुमने कुछ भी न डाला अस्तित्व मे, तुम सिर्फ खडे देखते रहे, दर्शक, द्रष्टा-मात्र, जिसको महावीर कहते है ज्ञायक-मात्र—सिर्फ देखते रहे। उस घड़ी मे एक झरोखा खुलता है। पहली दफा अस्तित्व तुम्हारे सामने अपने रूप को प्रगट करता है। पहली बार तुम उसे देखते हो, जो है। क्योकि पहली बार तुम कुछ जोडते नही, मिलाते नही, तुम कुछ डालते नही। तुम भी शुद्ध होते हो उस घड़ी मे और अस्तित्व भी शुद्ध होता है। दो शुद्धिया एक-दूसरे का साक्षात्कार करती है। इसे महावीर कहते है समयसार।

तुमने कभी खयाल किया। दूधवाला दूध मे पानी मिला लाता है, तुम कहते हो अशुद्ध कर दिया। तुमने इस पर कभी विचार किया कि उसने शुद्ध पानी मिलाया हो तो? अशुद्ध क्यो कह रहे हो? वह कहेगा कि हमने तो दोहरा शुद्ध कर दिया—शुद्ध पानी शुद्ध दूध, दोनो को मिलाया, अशुद्धि तो कुछ मिलायी नही है। पानी भी शुद्ध था, प्राशुक था। दूध भी शुद्ध था। अशुद्धि कैसे कह रहे हो, किस कारण कह रहे हो? फिर भी तुम कहोगे, दूध अशुद्ध है।

अशुद्धि का कारण यह नही कि तुमने अशुद्धि मिलायी। दो शुद्धिया भी मिला दो तो अशुद्धि का परिणाम आता है। अशुद्ध कहने का इतना ही अर्थ है कि दूध अब दूध न रहा और पानी पानी न रहा। तुम खयाल रखना, दूध ही अशुद्ध नही होता, पानी भी अशुद्ध हो गया। तुम दूध को कहते हो अशुद्ध हो गया, पानी को नही कहते, क्योकि पानी तो मुफ्त मिलता है, इसलिए कोई चिता नही है, कोई आर्थिक सवाल नहीं उठता। तुम कहते हो, दूध अशुद्ध हो गया। लेकिन दूसरी बात भी खयाल रखना, पानी भी अशुद्ध हो गया है। अगर किसी क्षण शुद्ध पानी की जरूरत हो, तब तुम समझोगे कि अरे, यह तो पानी भी अशुद्ध हो गया, दूध मिला दिया। मिलावट अशुद्धि है।

तो जब तुम अस्तित्व मे मिलावट करते हो, जब तुम कुछ डालते हो, उडेलते हो, जब तुम दूध मे पानी डाल देते हो, तब सब अशुद्ध हो जाता है—तुम भी, अस्तित्व भी। जब तुम खड़े रह जाते हो—तटस्थ, साक्षी, यहा अस्तित्व, यहा तुम, दो दर्पण एक-दूसरे के सामने, बिना कुछ डाले हुए—तब दो शुद्धियो का साक्षात्कार होता है।

इस साक्षात्कार की अवस्था को महावीर कहते है समयसार। और जब तक यह न हो जाये तब तक तुम्हारी जिदगी नाममात्र को जिदगी है, अशुद्ध है, कुनकुनी जिदगी है। इसमे ज्वाला न होगी। इसमे प्रकाश यह ज्योतिर्मय न होगी। इसमे आनद के फूल न लगेगे, न प्रसाद होगा।

जीस्त है किसी मुफलिस का चिरागखाना
उसने सीखा ही नही खुलके फुरोजा होना।

नही, जिदगी तो किसी गरीब का चिराग नही है। लेकिन हम सबने जिदगी को गरीब का चिराग बना दिया है। यह खिलकर जल ही नही पाता, यह खुल के प्रज्वलित नही हो पाता। यह इसकी ज्योति ज्योति ही नही बन पाती—बुझी-बुझी, बुझी-बुझी, टिमटिमाती।

जीस्त है किसी मुफलिस का चिरागखाना
उसने सीखा ही नही खुलके फुरोजा होना

नही, जिदगी तो किसी गरीब का चिराग नही है। लेकिन हम सबने जिदगी को गरीब का चिराग बना दिया है। क्योकि हमने जिदगी को मौका ही नही दिया। हमने जिदगी पर इतनी शर्ते लगा दी है। हमने जिदगी पर इतने अवरोध खड़े कर दिये है, हमने जिदगी की ज्योति के आसपास इतने पक्ष-विपक्ष, धारणाए, मान्यताए, विचार, ऐसा घेरा बाध दिया है, किला खड़ा कर दिया है, ईट पर ईट रख दी हे विचारो और पक्षो की, कि जिदगी की

लपट उठे कैसे, प्रगट कैसे हो?

जिसे तुम अभी टिमटिमाता हुआ दीया जानते हो, वही महावीर मे प्रज्वलित सूर्य होकर जला है। वही जीवन। वही कबीर ने कहा है कि एक सूरज, एक सूरज कहने से न हो सकेगा, जिस दिन मै जागा, हजार-हजार सूरज मेरे भीतर एक साथ जल उठे। उस प्रकाशमयी दशा के लिए कोई उपमा खोजना मुश्किल है। हजार-हजार सूरज भी कम पड़ते है, क्योकि सूरज तो एक न एक दिन चुक जाएगे। सभी सूरज चुक जाते है। यह हमारा सूरज भी, वैज्ञानिक कहते है, चार हजार सालो मे ठडा हो जायेगा। इसका ईधन चुकता जा रहा है। आखिर कब तक जलता रहेगा? सब ईंधन की सीमा है। कितना ही बडा हो, करोडो साल जले तो भी एक सीमा आती है और चुक जायेगा। साझ दीया जलाया, सुबह बुझ जायेगा, फिर रात कितनी ही लबी हो लेकिन भीतर का दीया कुछ ऐसा है कि वह ज्योति शाश्वत है। हजारो सूरज जलते है और बुझ जाते है—और उस भीतर की ज्योति का कभी बुझना नही होता। इसलिए हजार सूरज का प्रतिमान भी छोटा है। लेकिन छोडो सूरज की तो बात दूर, हम तो अपने भीतर के दीये को टिमटिमाता दीया भी नही कह सकते। ज्योति मालूम ही नही पडती।

अनेक लोग सुनकर सुकरात की बात, कि महावीर की बात, कि बुद्ध की, कि कृष्ण की बात भीतर जाने की चेष्टा करते है। क्योकि ये सभी लोग कहते है, जानो अपने को। आख बद करके भीतर जाने की कोशिश करते है, जल्दी से बाहर लौट आते है, क्योकि अधेरा ही अधेरा मालूम पड़ता है। और ये सब तो कहते है, बड़ा ज्योतिर्मय लोक है।

नहीं, अभी तुम भीतर न जा सकोगे। अभी तो तुमने बाहर को भी शुद्ध आख से नही देखा। अभी तो तुमने क ख ग भी नहीं पढ़ा जीवन के सत्य का।

इसलिए महावीर का पहला सूत्र कहता है जो सब नय-पक्षो से रहित वही समयसार है। और अगर ऐसा न किया तो एक पक्ष मे से दूसरा पक्ष निकलता जाता है। जैसे एक वृक्ष मे अनेक शाखाए निकलती है। फिर एक शाखा मे अनेक उपशाखाए निकलती है ऐसा तुमने अगर एक पक्ष बनाया तो जल्दी ही तुम पाओगे, तुम बहुत पक्षो से घिर गये। एक मेहमान को घर लाओगे, जल्दी ही पाओगे मेहमानो की भीड लग गई, क्योकि एक मेहमान के पीछे दूसरा चला आता है। रिश्तेदारो के रिश्तेदार।

मैने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक दफा एक आदमी आया पास के गाव से और एक बतख दे गया। कहा कि गांव के तुम्हारे मित्र ने भेजी है। मुल्ला बड़ा खुश हुआ। उसने बतख उसने कहा कि रुको, शोरबा तो पीते जाना। उसने शोरबा बनवाया, मित्र को पिलाया और कहा कि कभी भी आओ तो जरूर आना। कोई दो-तीन दिन बाद एक दूसरा आदमी आया। मुल्ला ने पूछा, आप कौन हो? उसने कहा, कि जो बतख लाया था उसका मै मित्र हू। कोई बात नही, मित्र के मित्र हो तो भी मित्र हो। उसको भी उसने भोजन करवाया, खिलवाया-पिलवाया। यह तो सिलसिला अतहीन होने लगा। फिर दो-तीन दिन बाद एक आदमी आ गया। उसने कहा, मित्र के मित्र का मित्र। ऐसे यह सख्या बढ़ने लगी। तो मुल्ला बहुत घबडा गया। दो-तीन महीने मे तो मुल्ला बहुत घबड़ा गया कि यह तो एक बतख क्या भेजी, यह तो सारा गाव आये जा रहा है। उसने कहा, कुछ करना पडेगा। फिर एक आदमी आ गया दो-चार दिन बाद। अब तो बहुत सख्या आगे हो गयी थी—मित्र के मित्र, मित्र के मित्र। काफी लबी शृखला हो गयी थी। उसने कहा, अब कुछ बताने की जरूरत नहीं, ठीक है। उसने पत्नी से कहा, सिर्फ गर्म पानी बना दे, कुछ और बनाना मत। गर्म पानी लेकर उसको पीने को दिया। कहा, बतख का शोरबा है। उसने चखा, उसने कहा, यह तो सिर्फ गर्म पानी मालूम होता है, इसमे बतख तो कहीं दिखाई नही पड़ती। उसने कहा कि खाक दिखाई पड़ेगी, यह शोरबे के शोरबा का शोरबा का शोरबा सिर्फ पानी बचा है अब।

विचार से और विचार निकल आते है। पहला विचार ही व्यर्थ था, दूसरा और भी व्यर्थ होता है। तीसरा और भी व्यर्थ होता है। अत मे तुम्हारे पास विचारो की भीड़ लग जाती है, जिनमे सार्थकता कुछ भी नहीं होती।

मिलते गये है मोड़ नए हर मुकाम पर
बढ़ती गई है दूरी-ए-मजिल जगह-जगह।

और एक-एक मोड़ नए मोड़ ले आता है और तुम बढ़ते जाते हो, और मजिल दूर होती जाती है। और जितने तुम चलते जाते हो विचारो मे उतने ही तुम अपने से दूर होते जाते हो, क्योकि वही

मंजिल है।

अगर उस स्वयं को पाना हो तो लौटो उलटे, चलो गंगोत्री की तरफ। छोड़ो एक-एक विचार को। और जब तुम आखिरी विचार पर आओगे, तब तुम्हे पता चलेगा यह मेरा पक्षपात था, जिससे सारी यात्रा शुरू हुई। उस पक्षपात को भी गिरा दो। निर्विचार तुम्हारे भीतर उठेगा। उस निर्विचार मे ही समयसार है।

और जब तक वैसी शुद्ध दर्पण की दशा न आ जाये, तब तक तुम जिंदगी को तो जानोगे ही नही, न अपने को जानोगे। क्योंकि तुम चूकते ही रहोगे। जिंदगी है प्रतिपल अभी और यहा—और विचार तुम्हे उससे मिलने नहीं देता, क्योंकि विचार सदा कही और है—या तो भविष्य मे या अतीत मे। या तो अतीत की स्मृतियो से जुड़ा है विचार, जो कल हो चुका, परसो बीत चुका—उसका सब सग्रह। उसकी तुम उधेड़-बुन मे लगे रहते हो। और या भविष्य ।

मुल्ला नसरुद्दीन को नीद न आती थी। एक डाक्टर ने कहा कि तू ऐसा कर भेड़े गिन, भेड़े गिनने से बडा लाभ होता है, गिनते-गिनते नीद आ जाती है। गिनते गए, एक, दो, तीन, हजार, दस हजार, लाख, जहा तक बस चलते गए, चलते गए। एक ऐसी घड़ी आयेगी कि थककर तू नींद मे गिर जाएगा। मुल्ला ने कहा, ठीक। उसने भेड़े गिननी शुरू की। वह कई लाख पर पहुच गया। उसने कहा, ऐसे तो बढ़ते गये तो ये तो करोड़ो अरबो हो जायेगी। फिर करेगे क्या इनका? तो उसने सोचा, अब बेहतर है कि अब इनका ऊन निकालना शुरू करे, बजाय इसके कि गिनते ही जाने से। उसने ऊन निकालना शुरू किया। अब वह लाखो भेड़ो का ऊन, गाठो पर गाठे लग गयी। उसने सोचा, ऐसे अगर ऊन इकट्ठा करते गए तो कहा, रखेगे कहा? गोदाम मिलते कहा आजकल? रखने की जगह कहा है? वर्षा सिर पर आ रही है। यह तो मुश्किल है। इसके कोट-कपड़े बनवाना शुरू कर दो। तो कबल, कोट, कपड़े लेकिन इतना ढेर हो गया कि वह एकदम घबड़ाया कि बाजार की हालत तो वैसे ही खराब है, खरीददार तो मिलता नही, मारे गये। तो वह आधी रात मे चिल्लाया बचाओ, बचाओ। तो उसकी पत्नी घबड़ाकर उठी। उसने कहा, हुआ क्या? उसने कहा, हुआ क्या मर गये, लुट गये। पत्नी ने कहा, क्या, हुआ क्या? कोई सपना देखा, उसने कहा, सपना क्या, नीद तो आयी नहीं अभी। यह तो वह जो डाक्टर ने कहा था, भेड गिनो कहा का नासमझ आदमी। भेड़े गिनी, ऊन काटा, कपड़े बनाये, बाजार मे बेचने खड़े हो गये खरीददार नहीं है। और इतना सब बना लिया है कि बरबाद हो जायेगे।

विचार एक के बाद एक चलते चले जाते है—या तो अतीत के होते हैं या भविष्य के होते है। तो या तो स्मृति पैदा करते हैं वे और स्मृति के घावो को उघाड़ते है, या फिर कल्पना पैदा करते है और कल्पना से वासना को उकसाते है। तो या तो तुम अपने घावो को कुरेदते रहते हो, जो कि बड़ी व्यर्थ प्रक्रिया है और खतरनाक भी, क्योंकि उनसे घाव हरे बने रहते है। लौट-लौटकर, किसी ने गाली दी थी, तुम सोचने लगते हो, लौट-लौटकर क्रोधित होने लगते हो।

कभी तुमने खयाल किया। अगर तुम विचार करने बैठ जाओ और ठीक से स्मृति को जगाओ तो जब तुम्हे किसी ने गाली दी थी और अपमान किया था, तो उसकी स्मृति ही न आएगी, तुम अचानक पाओगे, फिर तुम्हारे रग-रेशे मे क्रोध आ गया, तुम्हारे रोए-रोए मे फिर क्रोध दौड गया। तुम फिर कुछ करने को उतारू हो गये। फिर घाव हरा हो गया।

या तो तुम घाव कुरेदते हो और या तुम भविष्य मे कामना को उकसाते हो।

दोनो खतरनाक है। क्योंकि सभी कामनाए आज नही कल विषाद मे रूपातरित हो जाएगी। सभी कामनाए आज नही कल घाव बन जायेगी। जो अभी भविष्य है, कल अतीत हो जायेगा।

अगर कोई विचार न हो चित्त मे तो तुम यहा होते हो—अभी। न कोई अतीत, न कोई भविष्य—यह वर्तमान का क्षण तुम्हे समग्रता से घेर लेता है।

गए है हम भी गुलिस्ता मे बारहा लेकिन
कभी बहार से पहले, कभी बहार के बाद
—बगीचे मे जाने से सार क्या?
गए है हम भी गुलिस्ता मे बारहा लेकिन,
—बहुत बार गए है, अनेक बार गए है।
कभी बहार से पहले, कभी बहार के बाद
—या तो वसत के पहले जाते है या वसत जब बीत जाता है तब जाते है। हर हालत मे पतझड़ हाथ लगता है।

तो अस्तित्व का जो बगीचा है वह तो अभी और यहा है।

वर्तमान उसका ढग है। तुम जाते हो—या तो जब बीत चुकी बहार या अभी जब आयी नही, या तो अतीत के ढग से या भविष्य के ढग से।

निर्विचार मे जो खड़ा है वह वर्तमान से जुड़ता है। उसका सीधा-सीधा सबध हो जाता है। वह आमने-सामने खडा होता है। यह प्रतीति, यह साक्षात्कार, महावीर कहते है, समयसार।

'साधु को नित्य दर्शन, ज्ञान और चरित्र का पालन करना चाहिए। निश्चय-नय से इन तीनो को आत्मा ही समझना चाहिए। ये तीनो आत्मरूप ही है। अत निश्चय से आत्मा का सेवन ही उचित है।'

दसणाणचरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्च।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि, अप्पाण जाण णिच्छयदो।।

इस वचन के जो भी अनुवाद किए गए है, उनमे थोडा-सा फर्क मालूम होता है। और फर्क बहुमूल्य है। जिन्होने अनुवाद किये है—जैन साधु, मुनि अनुवाद करते है। अनुवाद मे उनका व्यक्तिगत पक्षपात उतर जाता है। जैसे दसणाणचरित्ताणि दर्शन, ज्ञान और चरित्र, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्च इनका नित्य सेवन, यही साधु का लक्षण है। लेकिन अनुवाद क्या किया जाता है साधु को नित्य दर्शन, ज्ञान और चरित्र का पालन करना चाहिए। चाहिए कही मूल सूत्र मे नही है। मूल सूत्र मे तो सिर्फ व्याख्या है कि साधु कौन। साधु का कर्तव्य नही गिनाया है, साधु की परिभाषा है। साधु कौन? जो नित्य दर्शन, ज्ञान और चरित्र का सेवन करता है—पालन भी नही। मूल शब्द है सेविदव्वाणि—जो सेवन करता है, पालन नही, जो भोजन करता है, जो उपभोग करता है, जो भोगता है। साधु है वह जो दर्शन, ज्ञान और चरित्र का नित्य भोग करता है।

अब बात साफ हो सकती है। पहल तो नित्य, प्रतिपल, वर्तमान मे; न तो बीते कल मे न आनेवाले कल मे—अभी और यहा भोग करता है। असाधु या तो अतीत मे भोगता है या भविष्य मे।

गये है हम भी गुलिस्ता मे बारहा लेकिन
कभी बहार से पहले कभी बहार के बाद।

—वह असाधु। साधु वह जो अभी और यही के द्वार से अस्तित्व मे प्रवेश करता है, जो 'अब' के द्वार से अस्तित्व मे प्रवेश करता है, जो यहा और ठीक अभी साक्षात्कार करता है अस्तित्व का।

सेवन 'सेवन' बड़ा प्यारा शब्द है। इसका भोग करता है। जैन मुनि 'भोग' शब्द को लाने मे अड़चन अनुभव किए होगे। 'सेवन करता है' उनको लगा होगा, इसे 'करना चाहिए' मे बदलो।

यह हमारे सारे शास्त्रो के साथ होता है। जहा 'है' की सूचना है वहा 'होना चाहिए', हम अनुवाद करते है। जहा केवल 'है' की सूचना है—जैसे कि आग जलाती है, यह तो ठीक है, लेकिन आग को जलाना चाहिए, तब अडचन हो गयी। कोई ऐसा अनुवाद न करेगा कि आग को जलाना चाहिए, क्योकि आग इस तरह की बकवास को मानती ही नही। वह तो जलाती है। 'चाहिए'—वासना, कामना आ गयी, भविष्य आ गया। 'चाहिए' का अर्थ ही हुआ कि कल हो सकेगा, आज नही हो सकता। 'चाहिए' का मतलब ही यह हुआ कि जो है नही, कोशिश करके लाना होगा। तो कोशिश मे तो समय लगेगा। दिन लग सकते है, वर्ष लग सकते है, जन्म लग सकते है। कौन जाने कितना समय लगेगा तब हो पायेगा।

लेकिन साधारणत दूसरे सुननेवाले भी इस अनुवाद से राजी होते है, क्योकि उनको भी सुविधा मिल जाती है। वे भी कहते है 'चाहिए' ठीक है। कल पर स्थगित करने का उपाय है। तो कल कर लेगे। साधुता कल, असाधुता आज।

तुमने देखा, अगर दान देना हो तो तुम कहते हो देगे, क्रोध करना हो तो तुम नही कहते, करेगे। तुम कहते हो, करते है अभी। क्रोध होता है। और करुणा? करनी चाहिए। यह बड़े मजे की बात है। अगर दान देना है, तो तुम कहते हो, करेगे।

एक मित्र सन्यास लेने आये थे, वे कहने लगे, सोचता हू। बहुत दिन से सोच रहा हू। अभी भी विचार कर रहा हू, अभी भी पक्का नही कर पाता।

मैंने उनसे पूछा, क्रोध के सबध मे सोचते हो कि बिना ही सोचे पक्का कर लेते हो? वे कहने लगे कि क्रोध के सबध मे तो हालत उलटी है सोचते है कि न करे और होता है। और सन्यास के सबध मे हालत यह है कि सोचते है कि लें, और नही होता।

हमने शुभ को, श्रेष्ठ को, सत्य को, शिवम् को टालने के उपाय किए है। तो इसलिए इन अनुवादो पर कोई एतराज भी नही करता। यह सिर्फ सूचक है।

महावीर कह रहे है

दसणाणचरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्च।

वही है साधु, वही है साहु, जो नित्य सेवन कर रहा है दर्शन, ज्ञान, चरित्र का। जो कल पर नही छोड़ रहा है, जो अभी और यही जी रहा है, जिसने भविष्य के साथ नाते तोड़ लिए। भविष्य के साथ जिसका नाता है, वही गृहस्थ। क्योंकि गृहस्थ का अर्थ है वासना, कामना, कल भोगेगे। और गृहस्थ की भूल यही है कि कल आएगी मौत, तुम भोग न पाओगे। तुम कल पर टालते जाओगे, एक दिन मौत आ जायेगी। तुम्हारा सब टाला हुआ, टाला हुआ रह जायेगा।

महावीर इतना ही कह रहे है कि शुभ को टालना मत, स्थगित मत करना, जब शुभ का भाव उठे, तत्क्षण भोग लेना।

अशुभ को टालना, क्योंकि टल जाये तो अच्छा। अशुभ को कल पर छोड़ना।

मेरे देखे ऐसा है कि अगर तुम अशुभ को कल पर छोड़ो तो उसी तरह अशुभ न हो पायेगा जैसे अभी शुभ नही हो पा रहा है। कल पर छोड़ा, होता ही नही। तुम जरा करके देखो। कोई तुम्हे गाली दे, तुम कहो कि चौबीस घटे बाद क्रोध करेगे। अगर तुम कर लो चौबीस घटे बाद क्रोध तो चमत्कार है। हो नही सकता। चौबीस घटे। चौबीस क्षण तो रुको, क्रोध असभव हो जायेगा।

अब्राहम लिंकन के जीवन मे उल्लेख है, एक आदमी, मित्र उनका, बड़ा क्रोधित आया। किसी ने उसको पत्र लिखा था और बड़ी ऊलजलूल बाते लिखी थी। लिंकन ने कहा, 'बैठो इसी वक्त जवाब दो। और दिल खोलकर जवाब दो। डरने की जरूरत नही है। मै तुम्हारा मित्र भी हू, तुम्हारा वकील भी हू। यह हद हो गयी। लिखो दिल खोलकर। जो भी गालिया तुम्हे लिखनी है, लिख डालो पूरा।' वह आदमी भी थोड़ा चौका। ऐसा उसने सोचा ही न था कि लिंकन यह कहेगे। पर वह बैठ गया लिखने। दिल तो भरा था। दिल खोलकर उसने गालिया दी। लिंकन उसे उकसाता था, उकसावा देते रहे कि तू डर मत, लिख, सब लिख डाल। सब मवाद निकाल दे। कागज पर कागज, उसने गालिया और ऊलजलूल बातो के सब उत्तर दे डाले। और जब वह पूरा लिखकर उसने हलकी सास ली, लिंकन ने कहा, ला अब यह पत्र मुझे दे दे। उसने कहा, पता तो लिख देने दो। तो उसने कहा, पता लिखने की कोई जरूरत नहीं। भेजने की कोई जरूरत नहीं। भेजेगे सात दिन बाद। सात दिन बाद तू आना, फिर इसको पढ़ लेना। अगर तू सात दिन बाद कहे कि भेजना है तो भेज देगे। उस आदमी ने कहा, ठीक है। कोई हर्जा नही। वह सात दिन बाद आया, उसने पत्र देखा। उसे भरोसा ही न आया कि मै और ऐसा पत्र लिख सकता हू।

सात दिन मे आग सब ठडी हो गयी, अगारे बुझ गये। दी गयी गालिया उतनी महत्वपूर्ण न मालूम पड़ी। उत्तर व्यर्थ मालूम पडे। वह आदमी तो पागल मालूम ही पडा। अपना पत्र देखा तो उसने कहा, यह मेरा भी दिमाग खराब है। इसको जवाब नही देना, मेरे दिमाग के लिए कुछ उपाय बताओ, इस तरह की बाते मेरे मन मे उठती है। अच्छा ही हुआ, उस आदमी ने कहा कि उसने यह पत्र लिखा। उसके पत्र के बहाने मुझे मेरी आत्मा के दर्शन तो हो गये थोड़े कि यह सब मेरे भीतर भरा पड़ा है।

मै तुमसे कहता हू अगर क्रोध को तुम कल पर टाल दो तो उसी तरह टल जायेगा, जैसे करुणा अभी तक टलती आयी है।

अशुभ को अगर तुम कहो, करेगे भविष्य मे, तो अशुभ भी उसी तरह विदा हो जायेगा तुम्हारे जीवन से जैसे शुभ विदा हो गया है।

महावीर कहते है, साधु वह है जो दर्शन, ज्ञान और चरित्र का अभी पालन कर रहा है, अभी सेवन कर रहा है। ओर 'पालन' से 'सेवन' शब्द ज्यादा बेहतर है, क्योंकि पालन मे ऐसा लगता है कि कुछ चेष्टा करके आयोजन करके अपने को बाध रहा है, कोई अनुशासन। 'सेवन मे ऐसा लगता है कुछ अनुभव मे आ रहा है, उसको भोजन बना रहा है, उसको अपने रक्त, मास-मज्जा मे मिला रहा है।

'निश्चय-नय से इन तीनो को आत्मा ही समझना चाहिए। ये तीनो आत्मरूप ही है।'

ये अलग-अलग नही है। यह जैनो की त्रिवेणी है या त्रिमूर्ति। क्योंकि ईश्वर का तो कोई भाव जैनो के पास नही है। सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन, सम्यक चारित्र्य—ये उनके शिव, ब्रह्मा, विष्णु है। यह उनकी त्रिमूर्ति है। यह उनकी ट्रिनिटी है। और ये तीनो आत्मा के ही तीन रूप है। ये तुम्हारे होने की शुद्धता मे प्रगट होते है। ये आत्मा ही है।

'अत निश्चय से आत्मा का सेवन ही उचित है।'

यह बड़ा अदभुत वचन है। अपना ही भोजन उचित है। अपना

ही भोग उचित है। अपने को ही पीयो, अपने को ही भोगो।

हम साधारणत जीवन मे दूसरे को भोगने का आयोजन करते है। 'पर' का हम सेवन करना चाहते हैं।

महावीर कहते है, 'पर' का सेवन करते-करते तो तुम ससार मे भटक गये हो। अब तुम अपना ही सेवन करो। तुम अकेले अपने एकात को ही भोगो। तुम अपने स्वभाव मे डूबो। तुम्हारे भीतर जो छिपा है, इसके साथ नाचो, इसी को सगी-साथी बनाओ। भीतर होने दो रास।

तुमने अपने साथ सबध ही नही जोडे। तुम अपने से कभी आलिगन नहीं किए। तुमने अपने को कभी चूमा नहीं, अपना कभी भोजन नही किया। अपना सेवन करो।

सीने का दाग है वह नाला कि लब तक न गया
खाक का रिज्क है वह कतरा कि दरिया न हुआ।

और जब तक बूद सागर न हो जाये, तब तक मिट्टी है। और जब तक हृदय मे छिपा हुआ गीत प्रगट न हो जाये, तब तक वह हृदय का घाव है।

सीने का दाग है वह नाला कि लब तक न गया
खाक का रिज्क है वह कतरा कि दरिया न हुआ।

हमारे जीवन मे जो इतनी पीड़ा है, यह पीड़ा सिर्फ इसीलिए है कि हमारे भीतर जो पडा है, छिपा है, वह प्रगट नही हो पाया। जो गीत दबा पडा है हमारे प्राणो मे, वह गाया नही गया। जो नाच हम छिपाये चल रहे है, वह नाचा नहीं गया। जो भोग हमारा स्वभाव है, वह भोगा नही गया। हमने अपने को अभिव्यजना नहीं दी है। हमारा सितार ऐसा ही पड़ा है, उस पर हमने अगुलिया नही नचायीं। वह सितार ऐसे ही धूल जमा पडा है। उससे विराट सगीत पैदा हो सकता था, उस तरफ हमने कोई ध्यान ही न दिया। हमारी नजरे दूसरे को तलाशती रही। हम दूसरे के सगीत मे डूबने को आतुर रहे—और अपना घर भूल गये, अपना सगीत भूल गये। हमने और सब भोगा और हाथ सदा खाली पाए, और हमन उसे न भोगा जो हमारा था और जिसे भोगने से जीवन भर जाता।

कई बार इसका दामन भर दिया हुस्ने-दो-आलम से
मगर दिल है कि इसकी खाना-वीरानी नही जाती।

कितनी बार नही तुमने दोनो दुनियाओ को लूटकर अपने हृदय को भर देने की चेष्टा की है।

कई बार इसका दामन भर दिया हुस्ने-दो-आलम से
मगर दिल है कि इसकी खाना-वीरानी नही जाती।

लेकिन दिल है कि वह गरीब का गरीब, दीन का दीन, भिखारी का भिखारी, खडहर का खडहर, वहा कभी महल बन नहीं पाता—बनेगा भी नही। क्योकि बाहर की तुम सारी दुनियाए लूटकर ले आओ, तो भी कुछ न होगा, जब तक कि भीतर की दुनिया न लूटो। और भीतर की दुनिया कुछ ऐसी है—ऐसी अनत कि भोगो और भोग के नये द्वार खुलते चले जाते है, रस लो, और नई रसधार बहती है। रसधार बडी होती जाती है, बडी होती जाती है। और कतरा एक दिन दरिया बन जाता है। बूद एक दिन सागर हो जाती है।

तुम जब तक प्रगट न हो जाओगे अपनी परिपूर्ण महिमा मे, तब तक दुखी रहोगे, घाव रहेगा। गीत गाना ही पड़ेगा। वह हमारी नियति है। अभिव्यजित होना ही होगा, गुजना ही होगा—एक परम सगीत मे। एक दिव्य विभा से मडित होना ही होगा।

अपनी महिमा को छिपाओ मत, भोगो।

हिदू शास्त्रो मे बड़े प्रसिद्ध वचन है

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि।
सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति।
स्मृतिलाभे सर्वग्रथीना विप्रमोक्ष।

आहार शुद्धि से सत्व शुद्धि, सत्व शुद्धि से स्मृति का लाभ, और स्मृति-लाभ से ग्रथियो का खुलना, और समस्त उलझनो का अत, समाप्ति, विप्रमोक्ष।

साधारणत लोग यही अर्थ करते है, आहार शुद्धि से सत्व शुद्धि। यही अर्थ करते है शुद्ध आहार। ब्राह्मण के हाथ का बनाया हुआ आहार। इसका गहरा अर्थ खयाल मे नही आता शुद्ध का आहार। परम शुद्ध का आहार। सत्व का आहार। वह जो तुम्हारे भीतर छिपा है, उसका आहार।

महावीर वर्षो तक उपवास किए, महीनो उपवास किए, दिनो उपवास किए। लेकिन उन्होने अपने इस उपवास को उपवास कहा, निराहार न कहा, अनशन न कहा, उपवास कहा। उपवास का अर्थ है अपने पास होते जाना, अपने निकट होते जाना। जो उपनिषद का अर्थ है, वही उपवास का अर्थ है। अपने पास, अपने पास, और पास होते चले जाना। निराहार न कहा अपने उपवास को, क्योकि वह गलत जोर होता। भोजन नही

किया, यह तो गौण बात है। अपना भोजन किया, यह महत्वपूर्ण बात है। आत्म-आहार किया। और आत्म-आहार से ऐसे भर गये कि भोजन कि जरूरत न रही। वह गौण बात है।

तुमने कभी खयाल किया। प्रेम के बहुत गहरे क्षणो मे भूख नहीं लगेगी। कभी-कभी तुम चकित होओगे एक महिला ने मुझे कहा मै यह बात कर रहा था। उसने सुनी, वह मुझसे मिलने आयी। उसने कहा कि एक बात आपसे कहनी है, मेरे जीवन मे अटकी रही है सदा से। उसकी सास की मृत्यु हुई साझ के वक्त। जैनो की 'अथऊ' का समय। सूरज ढल गया, फिर भोजन तो हो नहीं सकता। सास मर गई बेवक्त। सासो के ढग । अब वह कोई ढग का वक्त भी चुन सकती थी। दोपहर मे मरती, रात मरती ठीक, अथऊ के वक्त मर गई। तो भोजन तो हो नही सका, पड़ा रह गया। और ऐसा भी नही कि इस बहू का अपनी सास से कुछ विरोध रहा हो—बडा लगाव था। तो उस समय तो कुछ खयाल नही आया, लेकिन जैसे रात बढ़ने लगी, उसकी भूख बढ़ने लगी। इधर रो भी रही। सास ने उसे अपनी बेटी की तरह रखा था, बहुत गौरव से रखा था। वह मर गयी तो दुख स्वाभाविक था। रो रही है, दुखी हो रही है। लेकिन पेट मे भूख लग रही है। और आधी रात भूख इतनी ज्यादा बढ़ गयी कि वह महिला चकित हुई। भूख इतनी बढ गयी कि उसे जाकर चोरी से अपने चौके मे कुछ भोजन करना पडा। उसकी ग्लानि उसके मन मे रह गयी।

और यह जो महिला, जिसने मुझे यह कहा, वह आठ-आठ दस-दस दिन के उपवास कर लेती है, इसलिए उसे भी बडा चक्कर मालूम हुआ कि 'यह हुआ क्या। मै आठ-आठ दस-दस दिन उपवास कर लेती हू और कभी भूख ने मुझे ऐसा नहीं सताया कि उपवास तोड़ना पडा हो। और यह सास का मरना और इतना मेरा लगाव। तो एक अपराध-भाव उसके मन मे अटका रह गया। किसी को भी उसने कहा नहीं—अपने पति को भी नहीं कहा, क्योकि वह भी दुखी होगे यह बात सोचकर कि मेरी मा मर गयी और तूने रात चोरी से भोजन किया। उसने मुझे कहा और कहा कि आप किसी को कहना मत। मुझे यह उलझन रह गयी है।

मैने उससे कहा कि इससे विपरीत भी तुझे कभी हुआ? कभी आनद के क्षण में, भूख न लगी हो? उसने कहा, 'हा, यह भी मुझे हुआ। आप भी जब मेरे घर मे आते हो तो मै भोजन नहीं कर पाती। मैं इतनी प्रसन्न हो जाती हू कि वर्ष मे आप दो दिन के लिए आते हो, कि दो दिन मै भोजन नहीं कर पाती, बस ऐसे ही चाय इत्यादि से काम चल जाता है। भूख ही नहीं लगती, ऐसा कुछ भरापन मालूम होता है।'

जब भी तुम आनदित होओगे, तुम हैरान हो जाओगे कि पेट भरा है। तुम इतने भरे हो, इतने भीतर भरे हो कि पेट का खालीपन पता न चलेगा। प्रेम के बहुत गहरे क्षणो मे भूख न लगेगी। दुख के क्षणो मे भूख लगेगी। दुख मे तुम एकदम खाली हो जाओगे। दुख मे न केवल पेट खाली हो जायेगा, आत्मा भी खाली हो जायेगी।

इसलिए अकसर जिसने तुम्हारे जीवन को बहुत गहराई से भरा था, अगर वह मर जायेगा तो तुम्हे तत्क्षण भूख लगेगी। बेचैनी होगी तुम्हे यह सोचकर कि यह कोई वक्त है भूख लगने का। क्योकि भोजन को तो हम उत्सव मानते है। दुख मे तो कोई भोजन करता नही। पास-पडोस के लोगो को भोजन बनाकर लाना पड़ता है खिलाने अगर कोई मर जाये किसी के घर मे, क्योकि वह अपना चूल्हा जलाये तो वह भी तो अशुभ मालूम पड़ता है। यह कोई वक्त है। किसी का पति जल गया हो और वह चूल्हा जलाकर भोजन बना रही। चूल्हा नही जलता दिनो तक। लेकिन जब कोई निकटतम तुम्हारा मर जायेगा, तो न केवल तुम्हारा शरीर खाली हो गया, उसने तुम्हारी आत्मा के भी एक हिस्से को घेरा था, वह भी खाली हो गया। और खालीपन ऐसा मालूम होगा कि लगेगा कुछ भोजन कर लो।

कल ही एक सन्यासी ने मुझे कहा, कि विपस्सना का दस दिन प्रयोग करने के बाद, दसवे दिन, आखिरी दिन, उसे ऐसा लगा कि शरीर से आत्मा अलग हो गयी है। कोई आधी रात के वक्त, वह घबड़ा गया। यह अनुभव इतना प्रगाढ था और इतना साफ था कि मै आत्मा से अलग हू, कि उसे लगा कि अब मौत होने के करीब है। और जो पहली बात उसे याद आयी वह यह कि कुछ खाओ, जल्दी कुछ खाओ। जो कुछ भी उसे मिल सका आधी रात होटल मे रहता है आधी रात जो कुछ भी मिल सकता है जगाकर, कुछ भी, उसने जल्दी अपना पेट भर लिया। उसने कल मुझे कहा कि यह मैने कुछ गलत तो नहीं किया है? क्योकि करने के बाद मुझे ऐसा लगा कि कुछ भूल हो गयी। क्योकि वह

अनुभव तत्क्षण खो गया। लेकिन उस क्षण मे मुझे इतने जोर की भूख लगी, जैसी मुझे कभी लगी न थी।

शरीर आत्मा से अलग होता हुआ मालमू पडे, एक खालीपन मालूम होगा। और भरने का हम एक ही उपाय जानते है—पेट को भर लो, और हमे कोई उपाय नही मालूम। अगर इस क्षण मे यह युवक अपने को प्रेम से भर लेता या आनद से भर लेता तो यह अनुभव और ऊचे शिखर पर पहुच जाता। इसने शरीर से भर लिया। इसने इस क्षण मे शरीर का सेवन कर लिया। भोजन मतलब शरीर। भोजन—जो शरीर बन जायेगा, अभी भोजन है, कल शरीर बन जायेगा। भोजन यानी बीज रूप से शरीर। इसने शरीर से भर लिया। यह क्षण था जब इसे आत्मा से भरना था। नाच उठता। गीत गाता। आदोलित हो उठता आनद से। प्रेम को जगाता। आत्मा से भरता। आत्मा का सेवन करता। तो यह घडी बड़ी गहरी हो जाती। यह अनुभव चिरस्थायी हो जाता। चूक हो गयी।

महावीर कहते है, 'आत्मा मे ही आत्मा का सेवन उचित है।'

आत्मा से आत्मा का भोजन, आत्मा से आत्मा का भोग ही उचित है।

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि।

—आहार के शुद्ध होने से सत्व शुद्ध हो जाता है।

यह आहार की शुद्धि को तुम ब्राह्मण के द्वारा बनाया गया आहार मत समझना। इसे तो तुम समझना ब्रह्म के द्वारा बनाया गया आहार—वह जो तुम्हारे भीतर की अतर्आत्मा है, जिस पर ब्रह्म के हस्ताक्षर है।

सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति।

—और जिसने उस आत्मा का आहार कर लिया उसकी स्मृति ध्रुव हो जाती है। उसका बोध थिर हो जाता है। यही तो मैंने उस सन्यासी को कहा कि उस क्षण मे आत्मा का आहार कर लिया होता, तो स्मृति ध्रुव हो जाती।

स्मृति का अर्थ यहा याददाश्त नही है। यहा स्मृति का अर्थ है परमात्मा का स्मरण, या आत्मा का स्मरण।

जिसको महावीर सम्यक दर्शन कह रहे है, वह थिर हो जाता है, उसकी लकीर खिच जाती अमिट। फिर भूले न भूलती। फिर मिटाये न मिटती।

सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति।

—और आत्मा के शुद्ध आहार से जब भीतर का सत्व शुद्ध होता है तो स्मृति ध्रुव हो जाती है।

स्मृतिलाभे सर्वग्रथीना विप्रमोक्ष।

—और स्मृति से, स्मृति के लाभ से सारी ग्रथिया खुल जाती है—जिसको महावीर कहते है निर्ग्रथ दशा—सब गाठे खुल जाती है। और जो शेष रह जाता है—वही मोक्ष, वही समाधान, समाधि, विप्रमोक्ष। फिर कुछ और करने को शेष नहीं रह जाता।

'जो आत्मा इन तीनो से समाहित हो जाता है और अन्य कुछ नही करता है, और न कुछ छोडता है उसी को निश्चय-नय से मोक्ष-मार्ग कहा है।'

णिच्छयणयेण भणिदो, तिहि तेहि समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचि वि अन्न, ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति।।

बडी अदभुत बात महावीर कह रहे है। जो आत्मा इन तीनो से समाहित हो जाता है—सम्यक ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य मे समाहित। समाहित का अर्थ है, जिसके लिए ये ऊपर से थोप गये नियम नही—जो इन्हे पचा गया, जो इसको इस भाति पी गया, इस भाति कि मास-मज्जा बन गयी, समाहित हो गया। अब ऐसा नही कि वह चेष्टा करता है चारित्र्य की, कि मै ठीक करू और गैर-ठीक न करू। ऐसा भी नही कि वह चेष्टा करता है ज्ञान को पकडने की, दर्शन को पकडने की। नही, ये सब समाहित हो गए।

तुमने भोजन किया तो भोजन की दो घटनाए घट सकती है। तुमने भोजन किया—या तो भोजन समाहित हो जायेगा और या अपच हो जायेगी। अपच होगी तो भोजन बिना पचा शरीर के बाहर फेक देना होगा। वमन से निकले, मल-मूत्र से निकले—लेकिन अगर अपच हुआ तो उसे शरीर से बाहर फेक देना होगा वैसा का वैसा। उसमे जो छिपा हुआ सत्व है, तुम्हारा हिस्सा न बन पाएगा। समाहित का अर्थ है पच जाये। तो जो कूड़ा-कचरा है वह बाहर निकल जायेगा, जो सार-सार है वह तुम्हारे खून मे, लहू मे बहने लगेगा। वह तुम्हारे हृदय मे धड़केगा, तुम्हारी आखो से देखेगा, तुम्हारे मस्तिष्क से सोचेगा। वह तुम्हारे भीतर का हिस्सा हो जायेगा।

एक बार जो अन्न पच गया, फिर तुम्हे उसकी चिता नहीं करनी होती कि अब वह क्या कर रहा है, खून ठीक चल रहा है कि नही, मस्तिष्क सोच रहा है या नहीं, हड्डी, मास-मज्जा बन रही

है या नहीं। तुम तो गले के नीचे उतार लेते हो भोजन को, फिर बात खतम हो गयी। अगर न पचे तो अड़चन होती है।

पडित है ऐसा व्यक्ति जिसका ज्ञान समाहित नही हुआ। ज्ञानी है ऐसा व्यक्ति जिसका ज्ञान समाहित हो गया।

पडित है ऐसा व्यक्ति जिसको अपच हो जाता है। भर लेता है ज्ञान को, लेकिन वह ज्ञान कहीं उसके जीवन की धारा का अग नहीं होता, वह धारा मे ककड़-पत्थर की तरह पड़ा रहता है, धारा के साथ बहता नही।

समाहित का अर्थ है जिसे तुम भूल जाओ, फिर भी तुम्हारे साथ हो, जिसकी तुम्हे चेष्टा न करनी पड़े सहज तुम्हारे साथ हो। सहज-स्फूर्त यानी समाहित।

'जो आत्मा इन तीनो से समाहित हो जाता है और अन्य कुछ भी नहीं करता '

अन्य कुछ की कोई जरूरत नही, ये तीन काफी हैं। इन तीन मे सब हो जाता है। और न कुछ छोड़ता है। यह जैन मुनियो को बड़ी तकलीफ होगी सोचकर न कुछ करता न कुछ छोडता, क्योंकि छोड़ना भी कृत्य है। छोडने मे भी कर्ता आ जाता है और अहकार आ जाता है। न तो पकड़ता और न छोड़ता, चुपचाप साक्षी-भाव से जीता है।

'उसी को निश्चय-नय से मोक्ष-मार्ग कहा है।'

वही है मुक्ति का मार्ग।

जो छोड़ने-पकड़ने मे पडा वह अडचन मे पड़ेगा। वह यहा से वहा डोलेगा।

कभू तो दैर मे हू, कभू हू काबे मे
कहा-कहा लिए फिरता है शौक उस दर का।

वह उसके दरवाजे को कभी मदिर मे खोजेगा, कभी मस्जिद मे खोजेगा, कभी यहा कभी वहा, और एक दरवाजा जहा कि वह छिपा है—स्वय का—अनखुला रह जायेगा।

चमक सूरज मे क्या रहेगी
अगर बेजार हो अपनी किरण से ?

और जो व्यक्ति छोड़ने-पकड़ने मे लग जायेगा, वह बेजार हो जायेगा। छोड़ने का मतलब है निदा करनी होगी अपने कुछ अगो की, शरीर की निदा करनी होगी, धन की निदा करनी होगी, कामवासना की निदा करनी होगी, सबकी निंदा करनी होगी।

चमक सूरज मे क्या रहेगी
अगर बेजार हो अपनी किरण से ?

और ये अपनी ही किरणे है। अगर इनसे हम बेजार हो गये, और इनकी निदा करने लगे और छोड़ने के चक्कर मे पड़े गये, तो हम तोड़ते जायेंगे अपने को। लेकिन जीवन का अहोभाग्य इस दिशा से नही आता। जीवन का अहोभाग्य तो तब आता है जब जो भी हमे मिला है उसे हम रूपातरित करने मे कुशल हो जाये, समाहित करने मे कुशल हो जाये।

कामवासना समाहित होकर ब्रह्मचर्य बन जाती है। क्रोध समाहित होकर करुणा बन जाता है। राग समाहित होकर प्रेम बन जाता है। हिसा समाहित होकर अहिसा बन जाती है। पचा लो। बेजार मत हो जाना। छोड़ने के उपद्रव मे मत पड़ जाना। क्योंकि जो-जो तुम छोड़ दोगे, उस उसका रूपातरण असभव हो जायेगा। अगर क्रोध छोड दिया तो यह तो हो सकता है तुम अक्रोधी हो जाओ, लेकिन करुणावान न हो सकोगे। अगर कामवासना छोड दी, तो यह तो हो सकता है कि तुम काम-रहित हो जाओ, लेकिन ब्रह्मचर्य उपलब्ध न हो सकेगा। यह काम-रहितता वैसे ही होगी जैसे हम साड को बैल बना देते है, ग्रथि काट देते है, यत्र को नष्ट कर देते है।

और तुम ऐसा मत सोचना कि यह जो मै दृष्टात दे रहा हू, बड़े दूर का है। यह दूर का नही है। साधुओ ने यह सब किया है। रूस मे साधुओ की एक जमात थी जो जननेद्रिय काट लेती थी। काट देने से, एक अर्थ मे तो हल हो जाता था। जब जननेद्रिय ही न रही तो कोई उपाय न रहा। लेकिन ब्रह्मचर्य इस तरह उपलब्ध नही होता। ब्रह्मचर्य उपलब्ध तो तब होता है जब यह जीवत ऊर्जा काम की समाहित होती है, जब तुम इसे बाहर नही फेकते, भीतर पचा जाते हो, जब तुम इसे उछालते नही फिरते, जब यह ऊर्जा तुम्हारे भीतर ऊर्ध्वगमन बन जाती है।

क्रोध को काट देने से, कसम खा लेने से कि क्रोध न करूगा, यह हो सकता है तुम दबा लो, दबाते जाओ, ऐसी घड़ी आ जाये कि किसी को भी पता न चले कि तुममे क्रोध है, लेकिन तुम्हे तो चलता ही रहेगा पता। तुम तो उसी के ऊपर बैठे हो। तुम तो ज्वालामुखी पर बैठे हो जो कभी भी फूट सकता है।

नहीं, करुणा पैदा न हो पायेगी। क्योंकि करुणा तो उसी ऊर्जा से निर्मित होती है जिससे क्रोध निर्मित होता है। ऊर्जा का दमन नही—ऊर्जा का रूपातरण।

'इस दृष्टि से आत्मा मे लीन आत्मा ही सम्यक दृष्टि होता है ।'

तो महावीर कह रहे है, फिर व्याख्या क्या होगी सम्यक दृष्टि की? जिसको गीता मे स्थितिप्रज्ञ कहते है, उसी को महावीर सम्यक दृष्टि कहते है। स्थितिप्रज्ञ—जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गयी, सम्यक दृष्टि—जिसका दर्शन स्थिर हो गया है। एक ही बात है।

'आत्मा मे लीन आत्मा ही सम्यक दृष्टि है। जो आत्मा को यथार्थ रूप से जानता है वही सम्यक ज्ञान है और उसमे स्थिर रहना ही सम्यक चारित्र्य है।'

बडी अदभुत बात । महावीर चरित्र यह नही कह रहे है जो तुम करते हो—उसमे चरित्र नही है। तुम जो हो । साधारणत हम सोचते है चरित्र का अर्थ है, जो हम करते है। अगर हमने क्रोध नही किया तो हम चरित्रवान है। अगर क्रोध किया तो हम चरित्रहीन है। अगर हमने कामवासना का सबध बनाया तो हम चरित्रहीन है। अगर कोई कामवासना का सबध न बनाया तो हम चरित्रवान है।

महावीर राजी न होगे। महावीर कहेगे, क्रोध किया या नही, यह सवाल नहीं—क्रोध है या नही? यह हो सकता है क्रोध किसी से भी न किया हो और क्रोध भीतर हो। तो भी वह कहते है, तुम सम्यक चारित्र्य को उपलब्ध न हुए।

'उसमे स्थित रहना ही सम्यक चारित्र्य है।' आत्मा मे स्थित रहना ही । अपने मे ऐसे खड़े हो जाना कि वहा से डावाडोल न किए जा सको। वहा से तुम्हे कोई बाहर न ले जा सके—क्रोध या काम, कोई भी स्थिति 'अप्पा अप्पम्मि रओ'—अपने मे ही रमो। अपने मे ही रम जाओ। अप्पा अप्पम्मि रओ। रमो अपने मे। आपे मे। कहीं और न जाओ। कही और न भटको।

सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।

—और यही है सम्यक दृष्टि हो जाने का मार्ग।

जाणइ त सण्णाण, चरदिह चारित्तमग्गु त्ति।

यही है जानना, यही है देखना, यही है दर्शन, यही है चारित्र्य।

अप्पा अप्पम्मि रओ। 'अपने मे रम जाओ।'

हमारे पास जो शब्द है 'स्वास्थ्य', वह यही अर्थ रखता है अप्पा अप्पम्मि रओ। स्वास्थ्य का अर्थ है स्वय मे स्थित हो जाना। जब तुम बीमार होते हो तो तुम स्वय मे डावाडोल हो जाते हो। सिर मे दर्द है तो चेतना सिर के कारण डावाडोल हो जाती है। पैर मे काटा लगा है तो काटे के कारण चेतना डावाडोल हो जाती है। जब तुम बिलकुल डावाडोल नही होते—न सिर बुलाता, न पैर बुलाता, न पेट बुलाता—जब शरीर को तुम बिलकुल भूले रहते हो, ऐसा जैसा विदेह, है ही नहीं—तब तुम 'स्वस्थ।' यही तो आत्म-स्थिति की दशा है, जब तुम इतने अपने मे लीन हो कि कोई गाली दे तो तुम बाहर नही आते। तुम वही अपने भीतर से सुन लेते हो, कोई परिणाम नही होता। तुम्हारी दशा मे कोई भद नही पडता। तुम वही रहते हो जैसा गाली देने के पहले थे, वैसे ही गाली देने के बाद रहते हो। गाली दी या न दी, बराबर। तुम पर कोई रेखा नही खिचती, कोई खरोच नही लगती। किसी ने सम्मान किया, तुम फूल नही जाते। तुम्हारे अहकार का गुब्बारा बडा नही होने लगता। तुम वैसे ही रहते हो जैसे थे, कोई अतर नही पडता।

रवीद्रनाथ को जब नोबल प्राइज मिली और वे वापिस कलकत्ता लौटे, तो कलकत्ते मे बड़ा सकट था। अनेक लोगो को बडी चोट लगी थी कि रवीद्रनाथ को नोबल प्राइज मिल गयी। तो बगाली बडे नाराज भी थे। एक सपादक अखबार का जूतो की माला लेकर पहुच गया स्वागत करने के लिए। तो सोचा था उसने कि रवीद्रनाथ खिन्न होगे, नाराज होगे, लेकिन रवीद्रनाथ के 'कवि' मे कुछ 'ऋषि' का अग था। इसलिए उनकी गीताजलि मे उपनिषदो की झलक है। कुछ उड़ाने उन्होंने उस आकाश मे भी भरी थी जहा ऋषि ही प्रवेश करते है। वे सिर्फ सामान्य कवि नही थे। उस आदमी का जूतो की माला लिए देखकर वे उसके पास गये, क्योकि वह भीड़ मे पीछे खड़ा था। थोड़ा सकोच भी लग रहा था। दूसरे फूलमाला लाए थे, वह जूतो की माला लाया था। उसको सकोच मे देखकर उनको थोड़ा अच्छा भी न लगा। वे फूलो की माला छोड़कर उसके पास गये, और कहा कि अब ले ही आये हो तो पहना दो। वह आदमी और लज्जा से भर गया। वह जूते की माला पटककर भाग खड़ा हुआ। तो रवीद्रनाथ ने उसमे से एक जोड़ी चुन ली अपने पहनने के लायक, पैर के लायक जो जोडी थी वह पहन ली और वे चल पडे घर की तरफ। उन्होने कहा कि ठीक किया, मेरे जूते रास्ते मे खो भी गए थे। यह आदमी भी वक्त पर ले आया। और जूते की दुकान पर जाने की झझट से बचा दिया। और माला लाया तो काफी जूते लाया था,

तो दो उनके नाप के मिल भी गये।

जब तुम्हे बाहर का सम्मान और असम्मान कुछ अतर न लाता हो, तुम्हारी मुस्कुराहट न तो जरा फीकी पड़ती हो, न जरा गहरी होती हो, तुम वैसे ही रह जाते हो जैसे तुम हो—स्वभाव मे स्थिर। अप्पा अप्पम्मि रओ। तो तुम स्वस्थ। तो तुम आत्मज्ञान को उपलब्ध। तो यही है सम्यक दृष्टि हो जाना। और यही सम्यक चारित्र्य है—इसमे स्थिर होना ही।

तो चारित्र्य का अर्थ दूसरे से सबध नही है। अगर चारित्र्य का अर्थ दूसरे से ही सबध है तो हिमालय की किसी एकात गुफा मे बैठे हुए तुम चारित्र्यवान न हो सकोगे।

इसलिए ये दो शब्द एक जैसे है—चरित्र और चारित्र्य। इनका फर्क समझ लेना। चरित्र का अर्थ है जिसका सबध दूसरे से है। और चारित्र्य का अर्थ है स्वय मे स्थित। तुमने गाली दी तो मैने क्रोध किया—यह चरित्र। तुमने प्रशसा की तो मैने धन्यवाद दिया—यह चरित्र। तुमने गाली दी कि प्रशसा की, मैने कुछ भी न किया, मै वैसा ही रहा जेसा था—यह चारित्र्य।

तो अगर तुम हिमालय की गुफा मे बैठ जाओ तो चरित्र तो समाप्त हो जायेगा, क्योकि चरित्र तो दूसरे के बिना हो ही नहीं सकता, लेकिन चारित्र्य चारित्र्य प्रगट होगा। एकात मे भी प्रगट होगा, जैसा एकात मे फूल खिलता है। कोई नही निकलता पास से तो भी उसकी गध हवाओ मे फैलती है। रात सब सो गये होते है, तब भी तारा आकाश मे चमकता रहता है। वह चारित्र्य है। उसका दूसरे से कुछ लेना-देना नही।

तुम बैठे हो अपने कमरे मे, अकेले, और कोई आया, दरवाजे पर दस्तक दी—तुम तत्क्षण बदल जाते हो, कोट-टाई ठीक करके बैठ जाते हो। यह चरित्र।

तुम स्नानगृह मे स्नान कर रहे हो। आईने के सामने मुह भी बना-बिचका रहे हो। तत्क्षण तुम्हे खयाल होता है कि बच्चा तुम्हारा ताली के छेद मे से देख रहा है। तुम समझ जाते हो कि यह बाप के लिए योग्य नहीं कि मुह बिचकाए, बनाए, कि नाचे-कूदे, स्नानागृह मे। यह चरित्र। यह दूसरे के देखते ही बदल जाता है।

जिसका दूसरे से कोई सबध नही, जिसका तुमसे ही बस सबध है—**वह है चारित्र्य।**

अप्पा अप्पम्मि रओ।

'आत्मा ही मेरा ज्ञान है। आत्मा ही दर्शन है। आत्मा ही चारित्र्य है। आत्मा ही प्रत्याख्यान है और आत्मा ही सयम और योग है। अर्थात ये सब आत्मरूप ही है।'

आया हु मह नाणे

'ज्ञान, आत्मा ही मेरा ज्ञान है।'

आया हु मह नाणे, आया मे दसणे चरित्ते य।

'और दर्शन और चरित्र भी मेरी आत्मा ।'

आया पच्चक्खाणे, आया मे सजमे जोगे।

'और आत्मा ही प्रत्याख्यान। और आत्मा ही व्रत-नियम, आत्मा ही सयम और योग अर्थात ये सब आत्मरूप ही है।'

महावीर के लिए आत्मा शब्द परम है। और जिसने उसमे थिरता पाली, सब पा लिया।

अगर तुमने त्याग किया दूसरो को दिखाने के लिए तो वह चरित्र हो गया, चारित्र्य नही। अगर तुमने त्याग किया भीतर के परम आनद से, तो चारित्र्य। अगर तुम्हारा ज्ञान दूसरो से आया है तो वह ज्ञान नही। अगर तुम्हारा ज्ञान भीतर से आविर्भूत हुआ है तो ज्ञान। जो गीत तुमने दूसरो की नकल पर गुनगुनाया है, वह गीत नही। जो गीत सद्य स्नात, अभी ताजा नहाया हुआ तुम्हारी अतरात्मा से उठा है, अलौकिक, अद्वितीय, नितनूतन, यद्यपि सनातन—वही गीत। वही गीत वेद बन जाता है। वही गीत ऋचाए। वही गीत उपनिषद बन जाते है।

महावीर का सारा जोर एक बात पर है कि तुम किसी तरह अपने घर लौट आओ। आपे मे आ जाओ। अपने मे आ जाओ। दूसरे मे बहुत भटक लिए—दूसरे मे होना ही ससार है। तो जो तुमने दूसरे के लिए किया, दूसरे को सोचकर किया, दूसरे की आशा-अपेक्षा मे किया—वह सब ससार है। दूसरे से आशा-अपेक्षा छोडो। दूसरे से दृष्टि हटाओ। तुम वही लीन हो जाओ जो तुम हो। यही सयम, यही योग।

इश्क भी हो हिजाब मे हुस्न भी हो हिजाब मे

या तो खुद आशकार हो, या मुझे आशकार कर।

दो ही उपाय है। या तो हम परमात्मा से कहे या तो खुद आशकार हो—या तो खुद को प्रगट कर, या मुझे आशकार कर—या मुझे प्रगट कर।

महावीर ने दूसरा ही रास्ता चुना है। वे कहते है, अपने को ही प्रगट करना है। प्रार्थना की उन्होने गुजाइश नही छोडी। उन्होने

इतना भी दूसरे पर भरोसा नहीं रखा है। परमात्मा भी दूसरा हो जायेगा, 'पर' हो जायेगा। तो परमात्मा भी ससार ही हो जायेगा। उतना भी दूसरे पर निर्भर नही रखना है। क्योकि दूसरे पर निर्भरता तुम्हे कभी भी मोक्ष, कभी भी परम स्वतत्रता मे न ले जा सकेगी।

तेरी दुआ से कजा तो बदल नही सकती
मगर है इसमे ये मुमकिन कि तू बदल जाये।

यह बात बड़ी ठीक है। जब तुम प्रार्थना करते हो तो प्रार्थना से कोई तुम्हारी मौत नहीं रुक जायेगी, न प्रार्थना से कुछ और बदलेगा। लेकिन यही होता है कि प्रार्थना करने मे तुम बदल जाते हो। जब तुम प्रार्थना करते हो तो तुम्हारी प्रार्थना से और कुछ भी नहीं बदलता, लेकिन प्रार्थना करनेवाला बदल जाता है।

तो महावीर ने इस सार को बहुत गहराई से पकड़ा। उन्होने कहा कि, तो फिर प्रार्थना की जरूरत क्या? जब बदलना ही स्वय को है, तो फिर परोक्ष क्यो? फिर प्रत्यक्ष क्यो नही? जब असली सवाल मेरे भीतर ही घटना है, जब असली मे भगवान भक्त के भीतर ही प्रगट होना है, तो फिर बाहर की तलाश बद। फिर बाहर क्यो टटोलू किसी पैरो को? फिर अपने घर लौट आऊ। फिर अपने मे ही लीन हो जाऊ।

अप्पा अप्पम्मि रओ।

और यह जो तुम्हारे भीतर की आत्मा की बात महावीर कर रहे है, यह तुम भूल भला गए हो, लेकिन बिलकुल भूल भी नहीं गए हो। थोडी पर्ते जम गई है धूल की, लेकिन पर्त के नीचे तुम्हारे प्राण अभी भी जीवत है। जलधार अभी भी ताजी है। ऊपर-ऊपर काई छा गई है। तुम इसे भूल भी नही गए हो, क्योंकि कोई कैसे अपने को भूल जा सकता है? भूलने जैसी हालत है, लेकिन बिलकुल नहीं भूल गये हो। उसी मे सभावना है। उसी मे किरण है सभावना की। जरा-सा सहारा पकड़ लो तो तुम अपने को याद कर पाओगे।

एक मुद्दत से तेरी याद भी आयी न हमे
और हम भूल गये हो तुझे ऐसा भी नही।

सदिया बीत गयी हो, मुद्दत बीत गयी है और तुमने अपनी याद भी न की हो। लेकिन भूल गये हो, ऐसा भी नही है। इस बात को ठीक से समझना। अगर बिलकुल भूल गये हो, तब तो याद का कोई उपाय नही। और अगर बिलकुल याद है तो याद की कोई जरूरत नही। दोनो के बीच मे है स्थिति भूली-भूली सी याद है। भूली-भूली सी याद, धुधली-धुधली सी याद। सूरज नहीं निकला है, भर-दुपहरी नही है, अधेरी रात भी नही है—सुबह का हलका-हलका सा आलोक। सूरज ऊगने-उगने को है। कुहासा छाया है। हाथ को हाथ नहीं सूझता, फिर भी सूझ बिलकुल नही खो गयी है। वह जो थोड़ी-सी सूझ बची है, जो थोड़ी-सी याद बची है, उसी को ही निखारो, प्रगाढ़ करो। उसी के सहारे भीतर की यात्रा होगी। उसी को निखारने और प्रगाढने का नाम ध्यान है, विवेक है।

थोडा जागते चलो। जो थोड़ा-सा आसरा दिखायी पड रहा है, उसको पकडो, और उस दिशा मे थोडे बढते चलो। थोड़ा साहस करो। वह भूली-भूली सी याद गहन होने लगेगी। भूल छटती जायेगी, याद सघन होने लगेगी।

और जिस दिन भी कोई अपने घर लौट आता है, एक अनूठी घटना घटती है। इतने दुख, इतनी पीडाए, इतनी शिकायत, इतने शिकवे, सब समाप्त हो जाते है। इतनी मागे, इतनी वाछनाए, इतनी आकाक्षाए, इतनी तृष्णाए, सब अचानक पूरी हो जाती है।

सब न मिलने की बाते थी जब आकर मिल गए
सारे शिकवे मिट गए, सारा गिला जाता रहा।

तब पता चलता है कि वह सब जो मागे थीं, अनत-अनत, वह एक ही माग के खड थी। अपने से मिलने की असली माग थी। उसको नही पहचान पा रहे थे, तो वही माग अनत खडो मे बट गई थी। वह जो पद को चाहा था, वह अपने ही भीतर आत्मपद को चाहा था। वह जो धन को चाहा था, वह अपने ही भीतर उस शाश्वत धन को चाहा था, जो मेरा स्वभाव है। वह जो यश और प्रतिष्ठा चाही थी, उस यश और प्रतिष्ठा मे अपनी ही महिमा की तलाश थी—गलत रास्ते पर गलत दिशा मे।

महावीर का सारा योग आत्म-स्थिति है। कृष्ण ने कहा है गीता मे समत्व योग उच्चते।

समत्व को उपलब्ध हो जाना योग है। महावीर भी कहते है, सम्यक दृष्टि, समत्व। सम्यकत्व—समता को उपलब्ध हो जाना। डावाडोल न रहे चित्त, सम हो जाये। यहा-वहा न जाये, थिर हो जाये। थिरता सधे। ज्योति ऐसी हो जाये जैसे किसी घर मे हवा के झोके न आते हो, और ज्योति अकंप जलती हो, कपती न हो। समत्व योग उच्चते। यही दशा योग की दशा है। और

महावीर कहते है, यही दशा—आया हु मह नाणे—यही दशा ज्ञान। आया मे दसणे चरित्ते य। और यही दर्शन और यही चरित्र।

आया पच्चक्खाणे, आया मे सजमे जोगे।

'और यही प्रत्याख्यान, व्रत, नियम, अनुशासन। और यही सयम और योग।'

महावीर ने जैसी महिमा का गुणगान आत्मा का किया है, किसी ने भी नहीं किया। महावीर ने सारे परमात्मा को आत्मा मे उडेल दिया है। महावीर ने मनुष्य को जैसी महिमा दी है और किसी ने भी नही दी।

महावीर ने मनुष्य को सर्वोत्तम, सबसे ऊपर रखा है।

और यह जो दुर्लभ क्षण तुम्हे मिला है मनुष्य होने का, इसे ऐसे ही मत गवा देना। इसे ऐसे भूले-भूले ही मत गवा देना। इसे दूसरो के द्वार खटखटाते-खटखटाते ही मत गवा देना। बहुत मुश्किल से मिलता है यह क्षण और बहुत जल्दी खो जाता है। बडा दुर्लभ है यह फूल, सुबह खिलता है, साझ मुर्झा जाता है। फिर हो सकता है सदियो-सदियो तक प्रतीक्षा करनी पडे।

इसलिए मनुष्य होना महिमा ही नही है, बड़ा उत्तरदायित्व है। अस्तित्व ने तुम्हारे भीतर से कोई बहुत बड़ा कृत्य पूरा करना चाहा है। साथ दो। सहयोग दो।

अस्तित्व ने तुम्हारे भीतर से कोई बहुत बडी घटना को घटाने का आयोजन किया है। साथ दो। सहयोग दो। और जब तक तुम खिल न पाओगे, नियति तुम्हारी पूरी न होगी।

तो समस्त ज्ञानी पुरुष कहते है तुम वापिस भेज दिये जाओगे। यह जीवन और मरण का चक्र चलता रहेगा। इससे केवल वे ही बाहर निकल पाते है जो इस जीवन और मरण के चक्र मे चलते हुए भी अपने भीतर के सारे विचारो के चक्र को रोक देते है, जो इस जीवन-मरण के चक्र मे रहते हुए भी, साक्षी हो जाते है और एक गहन अर्थ मे बाहर हो जाते है।

साक्षी होकर जो बाहर हो गया ससार के, उसको फिर दुबारा लौटने की कोई जरूरत न रहेगी। और जो दुबारा नही लौटता, उसने ही अपनी नियति को पूरा किया। उसके भीतर ही बीज फूल को उपलब्ध हुए।

इस अवस्था को महावीर कहते है परमात्म-अवस्था।

तुम परमात्मा होने को हो। इससे कम पर राजी मत होना। इससे जो कम पर राजी हुआ वह नासमझ है। तुम कंकड़-पत्थरो से राजी मत हो जाना। हीरो की अनत राशिया तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं।

आज इतना ही।





अट्ठाईसवां प्रवचन

जीवन का ऋत्: भाव, प्रेम, भक्ति

प्रश्न-सार

आप कहते है कि पुण्य भी बाधता है और पाप भी बाधता है।
तो तीर्थकरो को उनका करुणाजन्य कर्म क्यो नहीं बाधता ?

पहली बार मै किसी के प्रेम मे पडा हू,
लेकिन मेरा अहकार मुझे पूरी तरह प्रेम मे डूबने नही देता।
मेरा हृदय तो नारद के साथ है, लेकिन बुद्धि महावीर के साथ।
उलझन है, खीचातानी है। कृपया मार्गनिर्देश दे।

कृपाकर कीर्तन-ध्यान के बारे मे कुछ समझाए।

*प*हला प्रश्न *आप कहते है कि पुण्य भी बाधता है और पाप भी बाधता है। तो तीर्थकरो को उनका करुणाजन्य कर्म क्यो नही बाधता ?*

पहली बात तीर्थकर जा करते है वह कर्म नही है, कृत्य नहीं है, क्योकि कर्ता का कोई भाव नही है। तीर्थकर जो करते है वह करते नही—होता है। जैसे तुम श्वास ले रहे हो, श्वास लेना कृत्य नहीं है। जैसे श्वास सहज चल रही है, और जब न चलेगी तो तुम कुछ भी न कर पाओगे—जब तक चलेगी, चलेगी, जब रुकेगी तो रुक जायेगी। तुम्हारे हाथ के भीतर नही है। तुम्हारा कृत्य नही है। अहकार-नियत्रित नही है।

तीर्थकर का कृत्य, कृत्य नही—श्वास जैसी सहज दशा है। होता है, किया नही जाता। करनेवाला कोई भी बचा नहीं है। करुणाजन्य है, ऐसा कहना भी गलत है। करुणापूर्ण है, लेकिन करुणाजन्य नहीं। करुणाजन्य तो तब होता है जब तुम्हे दया आए और तुम कुछ करो। करुणापूर्ण तब होता है जब तुम करुणा से पूर्ण हो गए हो—और उससे कुछ बहता है।

इन दोनो मे फर्क है।

जब तुम्हे राह चलते किसी भिखमगे पर दया आती है तो तुम्हारे भीतर कुछ हलन-चलन हो गया, तुम्हारी ज्योति कप गयी, तुम्हारी प्रज्ञा थिर न रही। दूसरे के दुख से कप गयी। पहले दूसरे के सुख से कपती थी। किसी ने बहुत बड़ा मकान बना लिया तो ईर्ष्या जगी थी, अब किसी के मकान मे आग लग गयी, तो दया उठी। लेकिन हर हाल तुम कपे, तुम थिर न रहे, तुम वैसे ही न रहे जैसा इस भिखमगे को देखने के पहले थे। राह पर तुम निकले, कोई न था, अकेले थे, फिर एक भिखमगा दिखायी पड़ा, दया उठी, भाव का निर्माण हुआ—फिर भाव से कृत्य आया। तुम्हारी दशा बदली। तीर्थकर की दशा नही बदलती, इसलिए करुणाजन्य नही है कृत्य, करुणापूर्ण जरूर है। जब भिखारी नही है मार्ग पर, तब भी तीर्थकर करुणा से भरे है। तुम नही भरे हो। तुम्हे करुणा से भरने के लिए किसी का दुखी होना जरूरी है।

इसे ठीक से समझना। अगर दुनिया से दुखी लोग विदा हो जायेगे तो तुम्हारी दया भी समाप्त हो जायेगी। किस पर दया करोगे? किसको दान दोगे? तुम्हारी दान और दया के लिए किन्ही का दुखी रहना जरूरी है। तुम्हारी दान, दया के लिए दुख आवश्यक है। कोई न होगा कोढी, कोई न होगा बीमार—किसके पैर दबाओगे? तुम्हारी दया एकदम मर जायेगी, कुम्हला जायेगी। उसके लिए बाहर से कोई प्रेरणा चाहिए। तो तुम्हारी दया भी बाहर से पैदा हुआ परिणाम है।

तीर्थकर करुणापूर्ण है—नही कि किसी पर करुणा करते है, करुणा से भरे है, जैसे दीये से प्रकाश झरता है कोई निकल जाये तो उस पर पड़ता है, कोई न निकले तो भी जलता रहता है, किसी के निकलने से नही जलता और किसी के चले जाने से बुझ नही जाता, किसी पर निर्भर नही है। आत्म भाव की दशा है।

तो तीर्थकर की करुणा तुम्हारे दुख के कारण नहीं है। तुम सुखी हो तो भी तीर्थकर की करुणा तुम पर उतनी ही है जितने तुम दुखी हो। तुमसे कुछ प्रयोजन नही है। तुम नही हो तो भी तीर्थकर की

करुणा उतनी ही है, जब कि तुम हो। तुम्हारा होना न होना कुछ फर्क नहीं लाता। तीर्थंकर की करुणा तुम्हारे और तीर्थंकर के बीच सबध नहीं है—तीर्थंकर की दशा है, उसकी अवस्था है, उसका आनदभाव है। वह तुम पर इसलिए करुणा नहीं कर रहा है कि तुम दुखी हो। उससे तुम्हारी तरफ करुणा बहती है क्योंकि वह आनदित है। इस भेद को बहुत ठीक से समझ लेना। तुम्हारी जरूरत है, इसलिए नही देता है वह, उसके पास जरूरत से ज्यादा है, इसलिए देता है।

जीसस के जीवन मे कहानी है, जो उन्होने बहुत बार कही। एक बगीचे के मालिक ने सुबह-सुबह मजदूर बुलाए। अगूरो का बगीचा था और जल्दी ही फसल को काट लेना था। मौसम बदला जाता था। सुबह जो मजदूर आये उन्होने दोपहर तक काम किया। मालिक आया, उसने देखा। उसने कहा, इतने मजदूरो से शाम तक काम निपटेगा नही। तो भेजा अपने मुनीम को कि और मजदूर ले आओ। तो भर-दुपहरी कुछ और मजदूर लाए गये। फिर आया मालिक। साझ ढलने को थी। उसने कहा, इनसे भी काम न हो पायेगा, कुछ और बुला लाओ। तो सूरज ढलते-ढलते काम बद होते-होते कुछ मजदूर आए। और जब रात्रि मे उसने पैसे बाटे तो सबको बराबर दे दिये—जो सुबह आये थे उनको भी, जो दोपहर आये थे उनको भी, जो साझ आये थे उनको भी। जिन्होने दिनभर काम किया उनको भी, और जिन्होने कुछ भी काम न किया था उनको भी। तो जो सुबह आये थे वे निश्चित नाराज हो गये। और उन्होने कहा, 'यह अन्याय है। हम सुबह से आये है, दिनभर पसीना बहाया है। हमे भी उतना, और इन्हे भी उतना जो अभी-अभी आये और जिन्होंने कुछ भी नही किया, जिन्हे करने का मौका ही न मिला, क्योकि सूरज ढल गया?'

तो उस मालिक ने कहा, तुम्हे कम तो नहीं दिया है? उन्होंने कहा, 'नहीं, कम नहीं दिया है। जितनी मजदूरी मिलती, उससे ज्यादा ही दिया है। लेकिन अन्याय हो रहा है। इन्होने तो कुछ भी नहीं किया।' तो उस मालिक ने कहा कि तुम अपनी फिक्र करो। तुम्हे जितना मिलना था उससे ज्यादा मिल गया, तुम प्रसन्न नहीं हो। तुम इनसे तुलना मत करो। इन्हे मै काम के कारण नहीं देता, मेरे पास बहुत है, इसलिए देता हू। मै सबको बराबर दे रहा हूं। मेरे पास जरूरत से ज्यादा है। तुम्हारे काम के कारण नही, मेरे पास है, इसलिए, मै बोझ से दबा हू, इसलिए।

जीसस की कहानी बडी महत्वपूर्ण है।

महावीर तुम्हे देते है तुम्हारे दुख के कारण नही। मिला है उन्हे, खूब मिला है। और उसको न बाटे तो वह बोझिल हो जाता है। उसे बाटना जरूरी है। अगर तुम न भी होओगे तो भी बाटेगे। अगर तुम सुखी होओगे तो भी बाटेगे।

तो तुम्हारे दुख से तुम तीर्थंकर की करुणा को मत जोड़ना। तुमसे उसका कोई सबध नही है। तीर्थंकर की करुणा का सबध उसके अतर-आनद से है, सच्चिदानद से है। वह अपनी आत्मा मे रमा है और उसने इतना पा लिया है। और जो पाया है वह कुछ ऐसा है कि बाटो तो बढता है, न बाटो तो घट जाता है। इसलिए तुम पर करुणा करके तीर्थंकर कुछ कर रहे है, ऐसा नही। आनद-भाव मे बाटते है—बाटने से बढता है। जितना बाटते है, उलीचते है, उतना बढता चला जाता है, उतने नये स्रोत खुलते चले जाते है। तो जब रोज-रोज नया-नया आनद बरस रहा हो, बासे को कौन रखेगा। तुम साझ भोजन कर लेते हो, फिर बाट देते हो। लेकिन गरीब बासी रोटी को भी रख लेता है कल काम पड़ेगी।

तुम बाटने से डरते हो, क्योकि कल का पक्का नही है। और आज का अगर बाट दिया तो कल मिलेगा या नहीं। लेकिन तीर्थंकर उस दशा मे है जहा प्रतिपल अनत बरस रहा है। तो जो इस क्षण बरसा है, उसे बाट ही देना है, क्योकि दूसरे क्षण के लिए जगह खाली करनी है। अगर न बाटा तो बासा पड़ा रह जायेगा और बासे के कारण नये के आने मे बाधा पडेगी। और अगर बासा बहुत इकट्ठा हो गया, उसकी राशिया लग गयीं तो नये के जन्म की कोई सभावना न रह जायेगी।

तो न तो तीर्थंकर का कृत्य कृत्य है, और न करुणाजन्य है—करुणापूर्ण है। इसलिए कोई बध नहीं—न पाप का न पुण्य का। तीर्थंकर से बहुत कुछ होता है, लेकिन तीर्थंकर कुछ करता नही। सहजस्फूर्त, जैसे पक्षी गीत गाते है।

मिर्जा गालिब से कोई पूछा कि लोग आपकी कविताओ की बडी प्रशसा करते है, लेकिन मेरी तो कुछ समझ मे नही आती। और जो प्रशसा करते है, मुझे शक है कि उनकी भी समझ मे आती है। क्योकि जब भी मैने उनसे पूछा तो वे समझा न पाये, आप कुछ कहे।

गालिब ने बड़ा अजीब-सा उत्तर दिया। आकाश की तरफ देखा और कहा, 'खुदा बड़ा है। कविता से खुदा का क्या लेना-देना?' कहा, खुदा बड़ा है उस आदमी ने भी कहा, 'यह तो निश्चित ही है कि खुदा बड़ा है। लेकिन इससे मेरे प्रश्न का क्या सबध है?' उन्होने कहा, 'थोडा ठहरो। खुदा बड़ा है, यह तुम मानते हो?' उसने कहा, 'निश्चित मानता हू।'

'लेकिन खुदा को समझते हो?'

समझ मे तो कुछ भी नही आता। तो गालिब ने कहा, 'ऐसी ही मेरी कविताए है। मै ही कहा समझता हू।'

समझ छोटे की होती है, विराट की नही। हमारी छोटी समझ है—कजूस की, कृपण की समझ है। तो हम कृत्य की भाषा जानते है केवल, सहज की भाषा हमे पता नहीं। हम तो कर-करके मुश्किल से कर पाते है, तो हम यह कैसे माने कि कुछ अपने-आप होता है। हम तो कर-करके भी नही कर पाते है और हार जाते है, विफल हो जाते है। जोड़-जोड़कर नही जुटा पाते तो हम यह कैसे माने कि कोई लुटा-लुटाकर, और अपनी सपदा को बढ़ा लेता होगा? हम तो तिजोडिया बाध-बाधकर आखिर मे पाते है राख हाथ मे रह गयी। जोड़-जोड़ के भी कुछ नही जुडता हो, जिसने एक ही गणित जाना हो, वह यह कैसे मानेगा कि बाटने से बढ़ सकता है, पागल हुए हो? होश की बाते करो, वह कहेगा। यहा हार गए जीत-जीतकर, तुम कहते हो हार कर जीत हो जाती है।

लेकिन मै तुमसे कहता हू, ऐसा है। जोड़-जोड़कर नहीं जुड़ता, इससे सिद्ध होता है कि विपरीत शायद सही हो। क्योकि जोड-जोड़कर तो कोई कभी नहीं जोड़ पाया। तो एक बात तो तय हो गयी कि जोड़ने से नहीं जुड़ता है। अब तुम जरा दूसरा प्रयोग करके देख लो कि बाटने से बढ़ता है। लेकिन बाटोगे तो तभी जब होगा।

तीर्थंकर का अर्थ है जो है, जिसके पास है।

बुद्ध के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि ऐसा मन होता है कि 'मनुष्यता कि सेवा मे सब कुछ लगा दू। आपका आशीर्वाद चाहिए।' कहते है, बुद्ध की आखे गीली हो गयी, उनमे आसू झलक आए। और बुद्ध ने उस आदमी की तरफ ऐसी करुणा से देखा कि वह आदमी भी विचलित हुआ। बुद्ध के शिष्य भी थोड़े घबड़ाए कि उसने कुछ ऐसी बात तो कही नहीं, भली आकाक्षा जाहिर की थी।

वह आदमी बेचैन हुआ। उसने कहा कि आप इतने उदास क्यो हो गये? आपकी आखे गीली क्यो हो आयीं? मैने कुछ गलत पूछा? मैने आपको कोई चोट पहुचायी?

बुद्ध ने कहा कि नहीं, यह सोचकर ही मुझे दया आती है कि तुम देने का सोच रहे हो, लेकिन तुम्हारे पास है नहीं। तुम कहते हो, 'सारी मनुष्यता की सेवा करनी है मुझे, कैसे यह जीवन अर्पित कर दू।' लेकिन जीवन कहा है? तुम्हे मै देखता हू तो खाली हाथ हो तुम। राख ही राख है भीतर, जीवन कहा है? तुम दोगे क्या? देने के पहले होना चाहिए। चूकि हमारे पास नही है, इसलिए हम जोड़ते है। जोड़कर सोचते है कि हो जायेगा। जिनके पास है वे बाटते है। क्योकि बाटकर उनको लगता है कि बढता है।

किसी बगीचे के माली से पूछो, वृक्षो की काट-छाट करता रहता है तो वृक्ष घने होते जाते है। कलम करता है तो वृक्ष सघन होते है, बढते है। एक पत्ता काटो तो चार पत्ते निकल आते है। एक शाखा काटो तो दो शाखाए पैदा हो जाती है। माली से पूछो जीवन का राज।

ऐसे ही तुम्हारे अतर्जीवन का वृक्ष भी है। उसे बाटो तो कलम होती है। उसे सम्हालकर रख लो, डर के कारण छिपाकर रख लो, सब तरफ से ढाककर रख लो—मर जाता है पौधा जीवन का। ऐसे ही तो जीवन के पौधे कुम्हला गये है। छोडो खुली हवा मे। ले जाने दो सुगध को हवाओ को। छोडो खुले आकाश मे। खेलने दो मेघो को, होने दो मेघ-मल्हार। नाचने दो तूफानो और आधियो को वृक्ष के आसपास। बढने दो वृक्ष को। खुलने दो, फैलने दो। यह बढ़ेगा, खूब बढेगा। ऊपर भी, भीतर भी। ऊचाइयो मे भी बढेगा और गहराइयो मे भी बढेगा। जितना वृक्ष ऊपर जाता है उतनी ही जड़े नीचे गहरी चली जाती है। लेकिन हमने अभी कृपण का ही गणित जाना है। हमने धनी का गणित जाना ही नहीं। इसलिए जब हम तीर्थकरो के सबध मे भी पूछते हैं तो हम अपने ही हिसाब से पूछते है। हम कहते है कि जब पुण्य भी बाध लेता, तो तीर्थकर के करुणापूर्ण कृत्य उन्हे नही बाधते?

तीर्थकर का अर्थ ही है कि जो पाप और पुण्य के पार हो गया। तीर्थकर का अर्थ ही है जो कृत्य के पार हो गया और सहज मे प्रवेश कर गया।

इस शब्द 'सहज' को खूब-खूब मथन करना, चितन करना, ध्यान करना। यह शब्द बड़ा बहुमूल्य है। इस शब्द का अगर तुम्हे अर्थ-विस्फोट हो जाये तो तुम्हारे जीवन मे क्राति हो जायेगी। 'सहज' का अर्थ है जो तुम्हारे बिना किये अपने से होता है। बहुत कुछ है जो सहज हो रहा है। उस पर भी तुम अपने को आरोपित किये हो। तुम कहते हो, 'मै'। किसी से प्रेम हो जाता है, तुम कहते हो, 'मै प्रेम करता हू।' होता है। तत्क्षण तुम बदल देते हो भाषा। तुम कहते हो, करता हू। किसी ने कभी प्रेम किया? सुना कभी तुमने कि किसी ने प्रेम किया? कोई प्रेम कर सकता है? अगर मै तुम्हे आज्ञा दू कि करो प्रेम, तुम कर पाओगे? तुम कहोगे, यह भी कोई आज्ञा की बात है? यह कोई मेरे किये से होगा? होगा तो होगा। नही होगा तो नही होगा। होता है, तो होता है। नहीं होता है, तो नही होता है। जब हो जाता है तब रुका नहीं जा सकता, और जब नही होता है तब किया नही जा सकता।

लेकिन फिर भी तुम प्रेम पर भी थोप देते हो अहकार को। तुम कहते हो, मैने किया प्रेम। तुम कहते हो, मै तो प्रेम कर रहा हू और तुम नहीं कर रहे हो। और हम यही सिखाते भी है।

छोटे-छोटे बच्चो को भी मा कहती है, मुझे प्रेम करो, मै तुम्हारी मा हू। क्या पागलपन की बात हो रही है? कौन कर पाया प्रेम? बच्चे की तो छोड दो, बड़े नही कर पाये। बड़े-बडे कुशल नही कर पाये। प्रेम को करोगे कैसे? कोई तुम्हारे हाथ की बात है? प्रेम कोई कृत्य तो नही। लेकिन अगर बच्चे को तुमने जोर दिया कि करो मुझे प्रेम, मै तुम्हारी मा हू, तो बच्चे को तुम एक ऐसी असमजस मे, ऐसे सकट मे, ऐसी विडबना मे डाल रहे हो जिसका तुम्हे कुछ पता नही कि तुम क्या कह रहे हो। छोटा-सा बच्चा तड़फेगा, सोचेगा, कैसे करो प्रेम। लेकिन करना ही पडेगा, क्योकि मा पर सब निर्भर है। दूध निर्भर है, जीवन निर्भर है। मा के सहारे ही बच सकता है बच्चा। बाप कहेगा, 'मुझे प्रेम करो, मैं तुम्हारा बाप हू। मैने तुम्हे जन्म दिया।' अब जन्म देने से कोई प्रेम का लेना-देना है? लेकिन बच्चा चेष्टा करेगा कि ठीक है, जब सब कहते है बड़े-बूढ़े कहते है तो करना ही होगा। तो झूठा मुस्कुराएगा, झूठे पैर छुएगा, झूठी प्रसन्नता जाहिर करेगा। शुरू हुआ पाखड। फिर जीवनभर ऐसे ही झूठ मे जीयेगा। फिर मर जायेगा और प्रेम की सहज उदभावना से परिचित न हो पायेगा। क्योकि पहले से ही प्रेम के मार्ग पर झूठ खड़ा हो गया।

न, मा इतना ही कर सकती है कि अगर उसे बच्चे के प्रति प्रेम है तो करे प्रेम। अगर उस प्रेम के सघात मे, अगर उस प्रेम के ससर्ग मे बच्चे की सहजता भी प्रफुल्लित हो उठेगी तो हो उठेगी—सौभाग्य। न हो तो मजबूरी है। हो जाये तो सौभाग्य, न हो तो कुछ किया नही जा सकता, असहाय अवस्था है। हो जाये तो धन्यभाग। परमात्मा को धन्यवाद दिया जा सकता है। न हो तो शिकायत करने का कोई उपाय नहीं है। स्वीकार कर लेना होगा, यही भाग्य है।

लेकिन इतना ही किया जा सकता है कि मा बच्चे को अगर प्रेम करती है तो करे। अगर उसके भीतर प्रेम का आविर्भाव हुआ है तो उलीचे, लुटाए, बरसाए। इस बरसा मे ही बच्चे की वीणा भी बजेगी—बजनी ही चाहिए। इस प्रेम के परिवेश मे बच्चे का सोया हुआ प्राण जाग्रत होगा। बच्चे के बीज—प्रेम के—अकुरित होगे। यह प्रेम सब तरफ से बरसता हुआ उसके भीतर भी प्रेम की हुकार को उठाएगा। यह प्रेम का आह्वान उसके भीतर भी चैतन्य को जगाएगा। वह भी प्रेम से भरेगा, लेकिन तब प्रेम का सहज अनुभव होगा। एक दिन अचानक पायेगा वह मा को प्रेम करता है। करता है—भाषा की बात, पायेगा कि मा से प्रेम है। और तब उसके जीवन मे एक बात निश्चित हो जायेगी कि भूलकर भी प्रेम को कृत्य न बनाएगा।

शिक्षक कहत है, सम्मान करो, श्रद्धा करो। श्रद्धा कही कोई करता है? होती है।

मै विश्वविद्यालय मे बहुत दिन तक था। शिक्षको की एक ही परेशानी कि श्रद्धा खो गयी, कि विद्यार्थी आदर नहीं करते। मैने बार-बार शिक्षको के सम्मेलन मे कहा कि यह बात ही तुम गलत तरफ से उठाते हो। श्रद्धा कोई कर सकता है? और जो की गयी श्रद्धा थी वह झूठी थी, इसलिए उखड़ गई है।

यह सदी थोड़ी सचाई की तरफ ज्यादा झुकी सदी है। आज का युवक अतीत के युवक से सचाई की तरफ ज्यादा झुका हुआ युवक है।

एक मा अपनी बेटी को कह रही थी कि जब तक मेरा विवाह नहीं हुआ तब तक मैंने किसी पुरुष का स्पर्श भी नहीं किया था। क्या तू भी बड़े होकर अपने बच्चो से यही कह सकेगी?

उस युवती ने कहा, कह तो सकूगी, मगर इतनी अकड़ से नहीं जितनी अकड़ से तुम कह रही हो। क्योकि मै जानती हू, यह झूठ है। तो कह तो सकूगी अगर कहना ही पड़ेगा तो कह सकूगी, लेकिन इतनी अकड़ से नही जितनी अकड़ से तुम कह रही हो।

थोडी सचाई की तरफ झुका हुआ युग है। तो जो झूठ जहा-जहा था वहा से टूट गया है।

तो शिक्षको से मैंने बहुत बार कहा कि तुम जब भी यह सवाल उठाते हो कि विद्यार्थियो का आदर खो गया है, तब तुम्हे असल मे दूसरा सवाल उठाना चाहिए—बुनियादी सवाल—कि तुम कही ऐसा तो नहीं कि गुरु नहीं रहे हो? क्योकि गुरु हो तो आदर होता ही है—होना ही चाहिए, जैसे वर्षा हो तो वृक्ष हरे हो जाये। अब वृक्ष अगर सूखने लगे और बादल शिकायत करे कि यह वृक्षो को क्या हो रहा है, वर्षा आ गयी है और वृक्ष हरे नही हो रहे। तो हम यही कहेगे कि तुम बरसे कहा? तुम बरसते तो वृक्षो का हरा हो जाना बिलकुल सहज था। यह अपने से होता है।

गुरु, गुरु नहीं है। आकाक्षा कर रहा है गुरु को जैसा सम्मान मिलना चाहिए वैसा सम्मान मिलने की। वह नहीं मिलता। नहीं मिलता, पीड़ा खड़ी होती है। वह जबर्दस्ती थोपने की कोशिश करता है। जबर्दस्ती जो उस आदर को करने लगता है वह भी विकृत हो जाता है। तब उसके जीवन मे सहज श्रद्धा का उपाय न रहा। इसे खयाल मे लेना।

जीवन मे जो भी महत्वपूर्ण है—सत्यम, शिवम, सुदरम—जो भी सत्य है, सुदर है, शिव है, वह सभी होता है, किया नही जाता। जो किया जाता है वह क्षुद्र है। दुकान चलायी जाती है। मकान बनाए जाते है। प्रेम नही किया जाता। श्रद्धा नहीं बनायी जाती। झूठ गढ़े जाते हैं, सत्य नहीं गढ़ा जाता। सत्य का तो सिर्फ आविष्कार होता है। सत्य तो है, झूठ बनाने पडते है।

तो अगर कर्ता बनना हो तो झूठ बनाना, क्योकि कर्ता होने का एक ही उपाय है।

और अगर अकर्ता बनना हो तो सत्य की खोज करना।

तीर्थंकर यानी अकर्ता, जो अब कुछ अपनी तरफ से नही करता है, जो होता है उसे होने देता है, उसे रोकता भी नहीं, जो आता है उसे आने देता है—अगर जीवन है तो जीवन, अगर मौत है तो मौत, सुख है तो सुख, दुख है तो दुख, जवानी है तो जवानी, बुढ़ापा है तो बुढ़ापा—जो अपनी तरफ से बिलकुल निश्चेष्ट हो जाता है, सारी चेष्टा छोड देता है, जीवन के ऊपर आरोपण करने का कोई प्रयास नहीं करता। जीवन जहा ले जाये उसकी सहजता के साथ जो बहने को तत्पर है, वही तीर्थंकर है।

तो न तो तीर्थंकर को पाप लगता, न पुण्य लगता। तीर्थंकर को कर्म-बध नही होता।

लेकिन इस सदर्भ मे एक बात खयाल ले लेनी चाहिए, जैन शास्त्र बड़ी बहुमूल्य बात कहते है। वे कहते है, तीर्थंकर को तो कर्म-बध नहीं होता, लेकिन आदमी तीर्थंकर कर्म-बध के कारण होता है। सभी लोग तीर्थंकर नहीं होते। सभी परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति भी तीर्थंकर नहीं होते। 'केवल ज्ञान' को तो करोड़ो लोग उपलब्ध होते है, लेकिन तीर्थंकर तो कभी कोई एकाध होता है। तो फिर इतने लोग जो परम-ज्ञान को उपलब्ध होते है और परम सत्य मे खो जाते है, सभी तीर्थंकर क्यो नही होते? तो कारण तो होना चाहिए।

महावीर जब ज्ञान को उपलब्ध हुए तो और भी बहुत लोग ज्ञान को उपलब्ध थे, लेकिन सभी तीर्थंकर न थे। जैन चौबीस की सख्या मानते है एक प्रलय और सृष्टि के बीच मे चौबीस तीर्थंकर। करोडो लोग, करोडो आत्माए 'केवल ज्ञान' को उपलब्ध होगी, लेकिन चौबीस ही तीर्थंकर? मामला क्या है? सभी ज्ञानी क्यो तीर्थंकर नही है?

तो इस फर्क को खयाल मे लेना। वे कहते है तीर्थंकर का कर्म-बध होता है। तीर्थंकर बनने के पहले जिस व्यक्ति ने खूब करुणा का अभ्यास किया है, तीर्थंकर बनने के पहले जिस व्यक्ति ने सब भाति अहिसा का अभ्यास किया है, तीर्थंकर बनने के पहले जिसने सब भाति अपने चरित्र को इस तरह से नियोजित किया है कि उससे किसी को दुख न हो, किसी को पीडा न पहुचे, जिसने एक गहन अनुशासन अपने जीवन मे निर्मित किया है जिसने ऐसा अनुशासन निर्मित नही किया वह भी ज्ञान को उपलब्ध हो जायेगा, लेकिन जब वह ज्ञान को उपलब्ध होगा तो तत्क्षण विराट मे खो जायेगा। उसे इस जमीन पर पकड़ रखने के लिए कोई भी उपाय नहीं है। लेकिन जिसने खूब गहनता से सेवा, दया, करुणा, अहिसा का अभ्यास किया है जन्मो-जन्मो तक वह करुणा, सेवा, और दया सहज नही है, चेष्टित है तो जिसने चेष्टित दया और करुणा का अभ्यास किया है, उसको तीर्थंकर का कर्म-बध होता है।

जैन अदभुत है। वे कहते है, यह भी कर्म-बध है। है तो यह भी। कितना ही पुण्य हो, लेकिन है तो यह भी बाधनेवाला है। करुणा से बधे हो—तो बड़ी सोने की जजीर है, हीरे-जवाहरातो से जड़ी जजीर है, लेकिन बधे हो। तो आखिरी जन्म मे ऐसा व्यक्ति जब ज्ञान को उपलब्ध होता है तो अपने ज्ञान को लेकर चुपचाप उड़ नहीं जाता आकाश मे, रुकता है जमीन पर। उसके पास जजीरे है कुछ। जीवन की सासारिक जजीरे तो सब उसने तोड़ दी है, लेकिन करुणा की जजीरे है उसके पास। उनके आधार पर वह थोड़ी देर पृथ्वी पर टिकता है। उन क्षणो मे वह बाट पाता है, दे पाता है जो उसे मिला है।

तो तीर्थकर तो कोई कर्म-बध के कारण होता है। लेकिन तीर्थकर का कोई कर्म-बध नहीं होता।

तीर्थकर का अर्थ है जिसने जाना ही नही, जो जनाने मे कुशल है। तीर्थकर का अर्थ है जो स्वय नहीं हो गया केवल, बल्कि दूसरो को भी उस दिशा मे इशारे करने मे कुशल है, जिसने अपनी ही आखे नही खोल लीं, बल्कि दूसरो की आखो की भी चिकित्सा करने मे जो कुशल है, जो अपनी आखो के सहारे, अपनी दृष्टि के सहारे तुम्हे भी दर्शन करा देता है।

तो ज्ञानी तो केवल ज्ञानी है—उसने पा लिया और गया। तीर्थकर ऐसा ज्ञानी है जो रुकता है थोडी देर। उसकी नाव इसके पहले कि छूटे अनत के तट की ओर, इस किनारे पर वह थोड़ी देर रुकता है। और इस किनारे पर जो लोग अभी है और जिन्हे दूसरे किनारे का कोई पता भी नहीं, जिन्होंने स्वप्न मे भी दूसरे किनारे को नही देखा, जिनकी कल्पना मे भी दूसरे किनारे की छाया नही पडी है—ऐसे लोगो को भी दूसरे किनारे की अभीप्सा से भर देता है। इसके पहले कि खुद की नाव छोडे और न मालूम कितने लोगो को तैयार कर देता है कि वे भी उत्सुक हो जाये, आतुर हो जाये, प्यासे हो जाये।

तीर्थकर का अर्थ है जान लिया और जनाया भी। सिर्फ जानकर ही जो चला गया, वह अकेला चला जाता है। उसके पीछे कोई परपरा नही बनती जानेवालो की। जो सिर्फ जानकर चला गया, उसके पीछे कोई धर्म निर्मित नही होता, वह चुपचाप तिरोहित हो जाता है। उसकी कोई रेखा नहीं छूट जाती। लेकिन जो दूसरो को जनाने की अथक चेष्टा करता है, वह अथक चेष्टा उसके पिछले जन्मो मे साधे गये अभ्यास का परिणाम है। लेकिन वह भी कर्म-बध है। पर इस जन्म मे, तीर्थंकर की दशा मे, कोई कर्म-बध नही होता। अब तो सब सहज होता है। इसको खयाल रखना।

तुम्हारी अगर अहिसा भी होगी तो असहज होगी, चेष्टित होगी। तुम अगर दया भी करोगे तो प्रयास करोगे तो ही दया करोगे। तुम अगर करुणा करोगे तो अपने को बहुत ज्यादा खीचोगे तो ही कर पाओगे। अगर तुमने अपने को ज्यादा न खीचा तो तुम करुणा न कर पाओगे। हा, क्रोध कर पाओगे सहज। क्रोध तुममे सहज होता है, करुणा असहज। अगर तीर्थकर को क्रोध करना हो तो असहज होगा, करुणा सहज। सिक्का उलटा हो गया। सारे गणित के नियम विपरीत हो गये। अगर तीर्थकर को क्रोध करना पडे कभी-कभी तीर्थकर क्रोध करते है। जैन तीर्थकगे के जीवन मे तो उल्लेख नही, क्योकि जैन उल्लेख नही कर सकते। वे सोच ही नहीं सकते कि तीर्थकर और क्रोध कर सकता है। बात भी ठीक है। तीर्थकर से क्रोध सहज नही होता, इसलिए उसका उल्लेख करना उचित नही है। लेकिन और परपराए है। वहा भी तीर्थकर होते है।

जसे जीसस के जीवन मे उल्लेख है कि वे चर्च मे, मदिर मे गये—यहूदियो का जो सबसे प्राचीन मदिर था जेरुसलम का—और वहा उन्होने देखा कि ब्याजखोर मदिर के भीतर दुकाने लगाकर बैठ गये है। तो उन्होने कोडा उठा लिया और वे आग-बबूला हो गये और उनकी आखो से आग बरसने लगी। और अकेले आदमी ने सैकडो ब्याजखोरो को मदिर के बाहर उठाकर फेक दिया। वह इतने घबडा गए। इतना जाज्वल्यमान रूप था उनका। ईसाइयो को बड़ी कठिनाई रही है यह समझाने मे कि ईसा इतने क्रोधित कैसे हो गये। करुणा का मसीहा इतना क्रोधित कैसे हो गया।

लेकिन अगर तीर्थकर चाहे तो चेष्टा से क्रोध कर सकता है। लेकिन वह क्रोध भी होगा किसी करुणा की ही सेवा मे। इस कीमिया को समझना। यह करुणा ही थी जीसस की कि यह परमात्मा का मदिर विकृत न हो जाये, यहां की प्रार्थना बाजारू न हो जाये, यह पूजागृह बाजार की गदगी से न भर जाये। यह करुणा ही थी। इस करुणा के कारण ही वे क्रोधित हो गए। लेकिन यह क्रोध चेष्टित था, अभिनय था, जैसे कोई अभिनेता क्रोधित हो जाता है। जैसे राम रामलीला मे अभिनय करते हुए

रोते है कि मेरी सीता कहा है, वृक्षो से पूछते है कि मेरी सीता कहा गई—वह सिर्फ पूछना है, अभिनय है, भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर तो उनकी सीता उनके घर है। अभिनेता है। राम तो वे हैं भी नहीं। अभिनय है।

जीसस की क्रोध की अवस्था भी करुणा की सेवा मे किया गया अभिनय है।

गुरजिएफ तो बहुत कुशल था क्रोध करने मे। ऐसी घटनाए है जो बडी अनूठी है। कि गुरजिएफ धीरे-धीरे इतना कुशल हो गया अभिनय मे कि वह आधे चेहरे से क्रोध कर सकता था और आधे से करुणा। और कई दफा उसने लोगो को चकित कर दिया और दुविधा मे डाल दिया। दो आदमी मिलने आये—एक बाए बैठा है, एक दाए—तो वह आधे चेहरे से तो इस तरह देखता रहा जैसे कि हत्या कर देगा और आधे चेहरे से इस तरह देखता रहा कि फूल बरसते रहे। एक तरफ की आख बड़ा प्रेम बरसाती रही और दूसरी तरफ की आख आग बरसाती रही। जब वे दोनो आदमी मिलकर बाहर गए तो दोनो ने अलग-अलग वर्णन किया गुरजिएफ का, कि यह तो आदमी बहुत दुष्ट और हत्यारा मालूम होता है, यह तो ऐसा खतरनाक आदमी है कि अगर एकात मे मिल जाये तो गर्दन दबा दे। दूसरे ने कहा, तुम कहते क्या हो? तुम पागल हो गए हो? जरा उसकी आख तो देखते। कैसा प्रेम। यह आदमी चींटी भी मार सकेगा?

ऐसा बहुत बार बहुत लोगो को हुआ। कुशलता इतनी गहरी हो सकती है।

अगर तुमने शरीर से अपने को बिलकुल अलग कर लिया है तो शरीर का तुम यत्रवत उपयोग कर सकते हो। तुम एक हाथ हिलाते हो, दूसरा रोके रखते हो। इसी तरह एक आख क्रोध कर सकती है, एक प्रेम कर सकती है। चेहरे का एक हिस्सा कुछ कह सकता है, दूसरा कुछ कह सकता है। और इसके पीछे वैज्ञानिक कारण है। क्योकि तुम्हारे पास दो मस्तिष्क है, एक मस्तिष्क नहीं है। बायां मस्तिष्क अलग है, दाया मस्तिष्क अलग है। दोनो की प्रक्रिया अलग है। और यह भी हो जाता है कभी कि अगर दोनो के बीच का छोटा-सा सेतु है, वह टूट जाये, तो एक आदमी मे दो आदमी पैदा हो जाते है, स्प्लिट पर्सनैलिटी हो जाती है।

तुम्हारा शरीर दो हिस्सो मे बटा है, इसे खयाल मे रखना। इसलिए तो दाया हाथ अगर सक्रिय होता है तो बाया निष्क्रिय होता है। जिसका बाया सक्रिय होता है उसका दाया निष्क्रिय होता है। क्योकि दोनो हिस्सो मे एक हिस्सा पुरुष का और एक हिस्सा स्त्री का है। आधा हिस्सा निष्क्रिय है, आधा हिस्सा सक्रिय है। और तुम्हारा आधा चेहरा अलग होता है और आधा चेहर अलग होता है।

तुमने कभी खयाल नही किया। तुम अपना चित्र उतरवाना और एक ही हिस्से के आधे-आधे चित्रो को जोड़ देना और तुम पाओगे कि तुम्हारा चेहरा बड़ा नया ढग ले लेता है। बाए चेहरे के दो हिस्सो को जोड़ देना और दाए चेहरे के दो हिस्सो को जोड़ देना और तुम पाओगे तुम दो आदमी मालूम पडने लगे और ये दोनो आदमी तुमसे बिलकुल अलग मालूम पड़ते है। तुम्हारी एक आख अलग है, दूसरी आख अलग है। क्योकि आधा शरीर बाए मस्तिष्क से सचालित होता है, आधा दाए मस्तिष्क से सचालित होता है। लेकिन चूकि तुम बहुत ज्यादा जुडे हो शरीर से, उससे दूर नहीं हो कि उपयोग कर सको। लेकिन गुरजिएफ कर सकता है। महावीर कर सकते है। किया न हो, हो सकता है। लेकिन कर सकते है।

महावीर क्रोध कर सकते है, लेकिन वह चेष्टा होगी और अभिनय होगा। और तुम भी करुणा कर सकते हो, लेकिन वह चेष्टा होगी और अभिनय होगा। क्रोध तुम्हारे लिए सहज है। कुछ करना नही पडता, अपने से होता है। किसी ने गाली दी, बस हो गया। तुम्हे कुछ करना थोडे ही पडता है। किसी ने गाली दी, बटन दबा दी—हो गया। करुणा करनी हो तो बड़ा सोच-विचार करना पड़ता है, शास्त्र पढ़ने पड़ते है, सदगुरुओ के पास जाना पड़ता है, सत्सग करना पड़ता है, वचन, प्रतिज्ञा लेनी पडती है, और फिर-फिर छूटकर क्रोध हो जाता है। जरा भूल हुई कि क्रोध हुआ। बहुत होश रखो तो थोडी-बहुत करुणा को तुम सम्हाल सकते हो।

इससे ठीक विपरीत दशा तीर्थंकर की है। करुणा सहज है, करनी नही पड़ती। तीर्थंकर सोया भी रहे तो भी करुणा होती है।

तुमने कभी खयाल किया कि तुम सोते-सोते भी क्रोधित रहते हो, बडबडाते हो क्रोध मे, मरने-मारने की धमकी देते हो। कभी अपनी पत्नी को कहना कि जब तुम सोये हो, तुम्हारे चेहरे का जरा अध्ययन करे। या तुम अपनी पत्नी के चेहरे का अध्ययन

करना सोते हुए। शायद इसीलिए लोग अकेले मे सोना पसद करते है, भीड़-भाड़ मे सोना पसद नही करते, हर कहीं सो जाना पसद नहीं करते, क्योंकि सोने की अवस्था मे चित्त से वही प्रगट होने लगता है जो तुम्हारे लिए सहज स्वाभाविक है। नियत्रण करनेवाला तो रह नही जाता, वह तो सो गया, नियता तो सो गया, कर्ता तो सो गया।

तो अगर तुम क्रोधी आदमी हो तो तुम्हारा रात मे चेहरा बिलकुल क्रोध से भरा हुआ होगा। अगर तुम कामुक आदमी हो तो रात तुम्हारा चेहरा काम से भरा होगा; तुम्हारे चेहरे पर काम रिसता होगा। तुम जैसे हो, रात का चेहरा तुम्हारा, तुम्हारे बाबत ज्यादा असली खबर देगा। दिन मे तो तुम थोडा झूठ कर लेते हो, रात मे तुम न कर पाओगे।

इसलिए तथाकथित साधु-सन्यासी सोने तक से डरते है। घबड़ाहट रहती है। क्योंकि सोए कि उन्होने जो-जो साधा है दिन मे, उस सब पर कब्जा गया। दिनभर तो साधा ब्रह्मचर्य, लेकिन रात कामवासना का स्वप्न मन को पकड लेता है। अब क्या करे, स्वप्न मे कैसे साधे। स्वप्न मे तो होश ही नही है, साधना कैसे हो पायेगा? ऐसी चित्त की दशा है।

साधारणत जब तक हम मूर्च्छित है, बेहोश है, तब तक हमसे गलत तो सहज होता है और सही चेष्टा से होता है।

जब चित्त की दशा जागरूक होती है, प्रबुद्ध होती है, सबोधि को उपलब्ध होती है, तो जो ठीक है वह सहज होता है, जो गलत है, अगर वह करना पड़े किसी कारण से तो वह अभिनय से ज्यादा नही होता।

दूसरा प्रश्न पहली बार मै किसी के प्रेम मे पड़ा हू, लेकिन मेरा अहकार मुझे प्रेम मे पूरी तरह डूबने नही देता। मेरा हृदय तो नारद के साथ है, लेकिन बुद्धि महावीर के साथ। भीतर से तो प्रेम करना चाहता हू लेकिन बाहर कुछ और ही प्रकाशित होता है। फलस्वरूप बड़ी खींचातानी चलती है। क्या कोई आशा है इस उलझन से बाहर हो जाने की?

जहा-जहा उलझन है वहा-वहा सुलझन का उपाय है। उलझन होती ही नहीं, अगर सुलझने की आशा न हो। उलझन खडी ही वहा होती है जहा सुलझने का द्वार पास ही है।

हर समस्या मे छिपा हुआ समाधान है और हर उलझन मे छिपी हुई सुलझन है और हर प्रश्न अपने उत्तर को लिए हुए है। जरा खोज की जरूरत है।

तुम ऐसा कोई प्रश्न नही खोज सकते जिसका उत्तर न हो देर-अबेर लगे। तुम ऐसी कोई उलझन नहीं बना सकते जिसका सुलझाव न हो। तुम न करना चाहो सुलझाव तो बात अलग। तब उलझन की समस्या नही है—तुम्हारी समस्या है, तुम करना ही नही चाहते। अगर तुम करना चाहो तो कोई बाधा नही है।

अब यह उलझन खडी की हुई है।

'पहली बार किसी के प्रेम मे पडा हू, लेकिन मेरा अहकार मुझे प्रेम मे पूरी तरह डूबने नही देता।'

अगर यह समझ मे आ रहा है तो चुन लो। या तो अहकार को चुन लो, तब प्रेम पागलपन है। तब छोड़ो बकवास। नारद का दिमाग फिर गया होगा। और अगर प्रेम को चुनना है, तो फिर अहकार को गिराओ। दो नावो पर सवार मत हो जाओ, अन्यथा उलझन होगी। और दोनो नावे बडी अलग-अलग है। महावीर और नारद दोनो के कधो पर हाथ मत रख लेना, अन्यथा तुम त्रिशकु हो जाओगे। तब तुम बडी उलझन मे पडोगे। लेकिन उलझन के लिए न तो महावीर जिम्मेवार होगे और न नारद जिम्मेवार होगे—जिम्मेवार तुम होओगे जिसने दोनो के कधो पर हाथ रख लिये। किसने तुमसे कहा था?

नारद से पूछते तो नारद तो कहते है, महावीर गलत है। महावीर से पूछो तो महावीर कहते है, नारद गलत है। इसलिए जुम्मा उन पर न डाल सकोगे तुम। तुम उलझन अगर पैदा करना चाहो तो फिर बात अलग।

अब एक आदमी अगर दो नावो पर सवार हो और पूछे कि मै क्या करू, तो हम क्या कहेगे? हम कहेगे, साफ है बात· एक नाव पर सवार हो जाओ। निश्चित ही एक नाव पर सवार होने के लिए दूसरी नाव छोड़नी पड़ेगी। इसलिए दोनों के लाभ मन मे मत रखना।

जिदगी चुनाव है—प्रतिपल चुनाव और निर्णय है। और जब भी तुम एक बात चुनते हो तो कुछ छोड़ना पड़ता है। सच तो यह है एक बात चुनने के लिए हजार बाते छोड़नी पड़ती है।

तुम यहा आए मुझे सुनने, इस घटे के हजार उपयोग हो सकते

थे। तुम दुकान पर बैठ सकते थे, कुछ रुपया कमा लेते। तुम सिनेमा जा सकते थे, कोई फिल्म देख लेते। तुम शराब-घर मे जा सकते थे, शराब पी लेते। गपशप कर लेते, अखबार पढ़ लेते, रेडियो सुन लेते। हजार उपयोग हो सकते थे इसके, वह तुमने छोड़े और यह उपयोग चुना कि मुझे सुनते हो। यह बड़ा चुनाव है। अब तुम अगर चाहो कि वे लाभ भी जो तुमने छोड़ दिये, मुझे सुनने से मिल जाये, तो तुम गलत चाह कर रहे हो। गलत चाह से अड़चन आती है।

अब अगर तुम्हे अहकार मे रस आ रहा हो तो छोड़ो प्रेम की बात। फिर पूरे अहकारी बन जाओ। फिर राजनीति तुम्हारा धर्म होगी। फिर दौड़ो अहकार, पद दिल्ली की यात्रा करो। फिर तुम यहा बैठे क्या कर रहे हो? फिर यह समय गवाया हुआ सिद्ध होगा। फिर तुम एक न एक दिन मुझ पर बहुत नाराज हो जाओगे। यह समय तो दिल्ली की यात्रा मे लगाना था। बस तुम्हारा एक ही मत्र होना चाहिए दिल्ली चलो।

अगर अहंकार को ही भरना है, तो साफ-साफ भरो, फिर इधर-उधर बेईमानी मत करो। निश्चित ही, ध्यान रखना, अहकार को भरने के थोड़े से सुख है। दुख भी बहुत है। सुख तो भ्रामक है, भासमान है, दुख बड़े यथार्थ है। तो सोच लेना, ठीक से देख लेना, दुख-सुख दोनो का दर्शन कर लेना। प्रेम के सुख तो बड़े सच्चे है, दुख केवल भासमान है। इसलिए बुद्धिमानो ने प्रेम चुना, बुद्धिहीनो ने अहकार चुना। बुद्धिमानो ने धर्म चुना, बुद्धिहीनो ने राजनीति चुनी। बुद्धिमानो ने अतर्जगत चुना, बुद्धिहीनो ने बाहर का जगत चुना। बाहर के जगत का धन दिखाई पड़ता है—है नही, सिर्फ मान्यता है। भीतर का धन दिखाई नही पड़ता, लेकिन है। अदृश्य है—और दृश्य केवल दिखाई पड़ता है।

तो तुम्हारे ऊपर निर्भर है। उलझन चुन लोगे तो तुम कही के भी न रहोगे—घर के न घाट के। तुम धोबी के गधे हो जाओगे। . या तो घाट या घर। अगर अहकार चुनना है तो घाट। अगर प्रेम चुनना है तो घर।

प्रेम चुनने का अर्थ है कि जीवन अपने-आप मे मूल्यवान है और जीवन का चरम अर्थ जीवन की प्रफुल्लता मे है—धन मे नहीं, गीत मे है, पद मे नहीं, प्रसन्नता मे है, वस्तुओ मे नही, व्यक्तियो के अंतर्संबधो में है। और बाहर नहीं भीतर है। यह बड़ा क्रातिकारी निर्णय है। और निर्णय बहुत साफ-साफ लेना चाहिए, क्योकि निर्णय पर, इसी निर्णय पर सारे जीवन का ढाचा निर्भर करेगा। तुम कहा पहुचोगे, यह इस पर निर्भर करेगा कि तुमने पहला कदम किस दिशा मे उठाया था। अगर पहला कदम गलत उठा तो तुम लाख दौड़ो, लाख श्रम करो, तुम ठीक जगह न पहुच पाओगे। तुम्हारी दौड, तुम्हारी आपाधापी, अगर गलत कदम पर खड़ी है तो बुनियाद गलत है, यह भवन गिरेगा।

पूछा है, 'पहली बार किसी के प्रेम मे पडा हू।' इसलिए स्वाभाविक भी है। पहली बार जब कोई किसी के प्रेम मे पड़ता है तो अहकार बाधा डालता है। क्योकि अब तक तुम अहकार के प्रेम मे रहे। अब तक तुमने सिर्फ अहकार को ही प्रेम किया है। आज पहली दफा अहकार के विपरीत कोई नये प्रेम का उदभव हुआ—जहा अहकार को समर्पित करना होगा, जहा 'मै' को मिटाना होगा। तो स्वभावत , जिस 'मै' को अब तक सींचा, जिस 'मै' को अब तक सम्हाला, वह अगर बाधा डाले तो कुछ आश्चर्य नहीं। लेकिन तुमने जिसे सीचा है, तुम ही अगर पानी बद कर दोगे, वह अपने से कुम्हला भी जायेगा, सूख भी जायेगा। अब तुम्हारे सामने है निर्णय। अब तक तो तुमने अहकार को ही सीचा था, अब प्रेम का भी अकुर उठा है। अब तुम सोच लो अहकार क्या दे सकता है और प्रेम क्या दे सकता है? अहकार देने के बहुत-से आश्वासन देगा, लेकिन देता कभी कुछ नही—बस कोरे आश्वासन। यही तो सब सिकदरो, नेपोलियनो की कथा है। प्रेम आश्वासन नही देता—देने की तो बात ही नहीं उठाता। प्रेम तो कहता है, सब खोना पड़ेगा। लेकिन खोनेवालो की कथा ही तो सारे भक्तो की कथा है, सारे धार्मिको की कथा है, सारे ध्यानियो की कथा है।

प्रेम कहता है, खोओगे तो मिलेगा। और अहकार कहता है, पाओगे तो मिलेगा। अहकार का गणित बुद्धि की समझ मे आ जाता है। स्वाभाविक है, पाओगे तो मिलेगा। और प्रेम कहता है, खोओगे तो मिलेगा। तो गणित कुछ अटपटा है, बेबूझ है, बुद्धि मे आता नही।

अहकार और बुद्धि के बीच तो एक तरह का समझौता है, एक षड्यत्र है। बुद्धि अहकार की पक्षपाती है, अहकार बुद्धि का पक्षपाती है। तो अगर तुमने सिर से ही पूछा तो तुम अहकार के ही रास्ते पर भटकते-भटकते खो जाओगे, जैसे कोई सरिता

मरुस्थल मे भटकते-भटकते खो जाये और उसे सागर न मिले। हृदय से पूछो। हृदय और प्रेम का समझौता है। और हृदय कह रहा है ।

'लेकिन मेरा अहकार मुझे प्रेम मे पूरी तरह डूबने नही देता। मेरा हृदय नारद के साथ है और मेरी बुद्धि महावीर के साथ।'

तो तुम चुन लो। अगर तुम्हे लगता है कि हृदय गलत कह रहा है तो तुम बुद्धि के साथ कुछ दिन चल लो, दौड़ लो। सौ मे से कभी कोई एकाध पहुच पाता है। कोई महावीर। बहुत दुर्गम है। क्योकि व्यर्थ की उलझन अस्मिता की खड़ी हो जाती है। कोई परमात्मा नहीं, जहा सिर झुकाया जा सके, तो बिना किसी परमात्मा के सामने सिर झुकाना आ जाना बहुत दुर्लभ है। महावीर को घटा, बिना किसी परमात्मा के सिर झुका दिया, बिना किसी वेदी के आहुति चढ़ा दी।

कोई नहीं है परमात्मा, इस कारण साधारणत तो 'मै' मजबूत होगा। तो इसकी बहुत कम सभावना है कि तुम महावीर हो सको, इसकी सभावना ज्यादा है कि तुम नीत्से हो जाओ। नीत्से का भी तर्क वही है। वह कहता है, कोई परमात्मा नही। लेकिन जैसे ही उसने कहा कोई परमात्मा नही, उसने तत्क्षण कहा जब परमात्मा नही है तो अब मनुष्य स्वतत्र है कुछ भी करने को। फल क्या हुआ? फल हुआ नीत्से का पागल हो जाना। वह अहकार मजबूत होता चला गया। कही कोई वेदी न मिली जहा चढ़ा देता। वेदी को इनकार कर दिया। इनकार करने का कारण ही यही बताया कि 'अगर परमात्मा है तो मै नीचा हो गया—और मै नीचे कैसे हो सकता हू। मेरे से ऊपर कोई भी नहीं हो सकता।' इसलिए परमात्मा को इनकार किया। नीत्से पागल हुआ।

सौ मे निन्यानबे मौके ये है कि तुम पागल हो जाओगे। महावीर तो बड़े कुशल व्यक्ति है। चुना तो ठीक वही मार्ग जो नीत्से का है; लेकिन परमात्मा नही है, इससे यह निष्कर्ष न लिया कि मनुष्य अब स्वच्छद है। इससे उलटा ही निष्कर्ष लिया। महावीर ने कहा, 'चूकि परमात्मा नहीं है, इसलिए अब कोई स्वच्छदता न चलेगी, सारा उत्तरदायित्व मेरा है।' समझे फर्क? नीत्से ने कहा, कोई परमात्मा नहीं, तो अब करो जो करना है। महावीर ने कहा, अब तो कुछ करने का उपाय ही न रहा, अब तो जो भी किया, जिम्मेवारी मेरी है। परमात्मा होता तो कुछ रास्ता भी निकाल लेते—कुछ भी करने का, तीर्थ स्नान कर आते, मदिर मे पूजा कर देते, प्रार्थना करके समझा-बुझा लेते, पाप हो जाता, पश्चात्ताप कर लेते—और फिर वह करुणावान है, रहीम है, रहमान है, वह क्षमा कर ही देता, उसने तो बड़े-बडे पापियो को क्षमा कर दिया।

कहते है, एक पापी ने मरते वक्त भूल से अपने लड़के को बुलाया नारायण, नारायण। लड़के का नाम नारायण था और ऊपर के नारायण ने समझा कि मुझे पुकार रहा है। क्षमा कर दिया। स्वर्ग मे उठा लिया। बैकुठ मे वास कर रहा है वह पापी अब। तो जो इतनी सरलता से फुसला लिया जाता है, रिश्वत भी जिसकी इतनी सस्ती है, बुलाया भी नही था जिसे, किसी और को ही बुलाया था, लेकिन नाममात्र का सयोग मिल गया, 'नारायण', और जो भूल मे पड़ गया, जो ऐसा खुशामद-लोलुप है—ऐसा परमात्मा हो तो फिर कुछ भी करने की छूट है।

अगर महावीर से पूछो तो महावीर यह कहेगे, अगर परमात्मा है तो फिर मनुष्य स्वच्छद है। फिर जो भी करना हो करो, क्योकि आखिर मे तो वह है, उसके चरण पर गिड़गिड़ा लेना, रो लेना, माफी माग लेना।

और वह करुणावान है, वह क्षमा कर देगा।

तो जो निष्कर्ष नीत्से ने लिया, वही निष्कर्ष महावीर ने लिया—लेकिन बिलकुल उलटी तरफ से। अगर परमात्मा है तो आदमी स्वच्छद हो जायेगा। तो महावीर ने कहा, परमात्मा तो कोई भी नही है, इसलिए प्रार्थना का उपाय नही है। अपने को बनाना है, निर्मित करना है, छाटना है, काटना है, निखारना है, सब अपना ही है। खुद की जिम्मेवारी चरम है। यह उत्तरदायित्व आखिरी है। इसको तुम किसी और पर न टाल सकोगे। इसलिए तुम आखिर मे यह न कह सकोगे कि मैं क्या करू, हो गया। भोगना पड़ेगा। स्वच्छदता का कोई उपाय नही।

तो महावीर ने तो परमात्मा के न होने से उत्तरदायित्व लिया। नीत्से ने परमात्मा के न होने से स्वच्छंदता ली। महावीर तो विमुक्त हो गये, नीत्से विक्षिप्त हो गया। दोनो के तर्क का प्रारभ बिलकुल एक जैसा था, लेकिन अत बड़ा भिन्न हुआ। कहा महावीर परम सुगध को उपलब्ध हुए और कहा नीत्से पागलखाने मे सड़ा और मरा।

सोच लेना। महावीर का रास्ता बहुत थोडे लोगो के लिए है। उनके लिए है, जिनके लिए स्वतत्रता स्वच्छदता न बनेगी। उनके लिए है, जिनके लिए परमात्मा का अभाव अहकार न बनेगा, जो कहेगे, 'जब परमात्मा ही नहीं तो मेरे होने का क्या ? परमात्मा तक नहीं है तो मै क्या हो सकता हू ?'

परमात्मा का अर्थ है सारे अस्तित्व का 'मै', सारे अस्तित्व का केद्र। जब सारा अस्तित्व केद्रहीन है और 'मै' रहित है, तो मै एक छोटा-सा व्यक्ति, एक छोटी-सी लहर, एक जरा-सी तरग। जब सागर का ही कोई 'मै' नहीं है तो मेरा मै क्या हो सकता है ? बात खतम हो गयी।

तो महावीर ने तो परमात्मा को इनकार करने मे ही अपने भीतर 'मै' की सभावना को इनकार कर दिया। इसलिए तुम यह मत सोचना कि महावीर और नारद वस्तुत विपरीत है। अतत तो सार एक ही निकलता है। महावीर ने परमात्मा को अस्वीकार करके 'मै' को अस्वीकार कर दिया। नारद ने परमात्मा को स्वीकार करके 'मै' उसके चरणो मे चढ़ा दिया। हर हाल नारद और महावीर दोनो 'मै' से मुक्त हो गये।

तो तुम चाहे कुछ भी निर्णय लो—तुम चाहे प्रेम के पक्ष मे निर्णय लो, चाहे अहकार के पक्ष मे निर्णय लो—लेकिन एक बात ध्यान रखना, अहकार तो मरेगा ही। उससे तुम बच न सकोगे। उसे अगर बचा लिया तो तुम विक्षिप्त हो जाओगे, पागल हो जाओगे। उसी कारण तो सारी पृथ्वी करीब-करीब पागल जैसी है।

अगर मेरी सुनो तो मै कहूगा हृदय की सुनो। प्रेम की सुनो। ज्यादा सुरक्षित मार्ग है। महावीर का मार्ग बहुत खाई-खड्ड से गुजरता है। डर है कि तुम कही गिर न जाओ। नारद का मार्ग बहुत सुरक्षित है। तुम्हारी कमजोरी को भी सम्हाल लेगा। तुम्हे सहारा देगा। महावीर का मार्ग बहुत अकेला है, अत्यत एकात का है। दूर, बहुत दूभर है। जाओ तो सोच समझकर जाना, कि नीत्से का खतरा तुम्हारे पीछे लगा रहेगा।

नारद के मार्ग पर नीत्से का खतरा नही है। ऐसा नहीं कि वहा कोई खतरा ही नहीं है। खतरा तो हर चलने मे होता है, हर यात्रा मे होता है। जो घर बैठे रहते है उन्ही को खतरा नहीं है। हवाई जहाज से चलो तो खतरा है। बैलगाड़ी से चलो तो वह भी कभी-कभी उलट जाती है। लेकिन ऐसा है कि बैलगाड़ी से उलटकर मरते हुए लोग नहीं देखे जाते, थोड़ी चोट-वगैरह लग जाती हो साधारणत बैलगाड़ी उलट जाये तो इतना खतरा नहीं है, क्योकि गति ही कोई बडी न थी, पृथ्वी से फासला ज्यादा दूर का न था।

नारद का रास्ता बहुत पृथ्वी के करीब है। प्रेम का रास्ता पृथ्वी के बहुत करीब है। और तुम्हारा जो सामान्य जीवन है उससे बहुत फासला नहीं है। तुम अपने सामान्य जीवन मे जीते हुए भी नारद को सुगमता मे साध सकते हो।

खतरा क्या है ? खतरा एक ही है और वह यह है कि प्रेम कही वासना ही न बन जाए। प्रेम भक्ति बने, यह तो नारद का मार्ग है। और प्रेम कहीं वासना ही रह जाये, यह खतरा है।

जैसे महावीर के पीछे चलनेवाले जैन मुनि अहकार की पाषाण प्रतिमाए बन गए, वैसे ही नारद के पीछे चलने वाले भक्त केवल भोग-शृगार मे खो गये। खतरा तो है ही। खतरा तो सभी रास्तो पर है। चलनेवाले को खतरा तो है ही। इसलिए सम्हलकर तो चलना होगा। फिर भी खतरे की मात्राए भिन्न-भिन्न है।

अगर नारद के मार्ग पर तुम भटके भी तो तुम वहा से नीचे न गिरोगे जहा तुम हो। क्योकि वासना मे तो तुम हो ही। अगर नारद के मार्ग मे तुम गिरे भी तो बैलगाडी से गिरे, जमीन से ज्यादा दूर न थे। वासना मे तुम हो ही। इतना ही धोखा दे सकते हो कि अब तुम अपनी वासना को प्रेम कहने लगो और प्रेम को भक्ति कहने लगो। बस नामो के धोखे दे सकते हो। कुछ ज्यादा खतरा न होगा। लेकिन महावीर के मार्ग से अगर तुम गिरे तो पागलपन है, विक्षिप्ता है और भयकर अहकार के खड़े हो जाने का डर है।

जैन मुनि को देखते हो। उससे ज्यादा गहन अहकारी व्यक्ति खोजना मुश्किल है।

जैन मुनि श्रावक को हाथ जोड़कर नमस्कार भी नही कर सकता। कठिन है, असभव है। मुनि और श्रावक को नमस्कार करे। आशीर्वाद दे सकता है, नमस्कार नहीं कर सकता।

लेकिन मै पूछता हू, जब नमस्कार ही नहीं कर सकते तो आशीर्वाद देने की झझट भी क्या कर रहे हो ? जब कुछ करना ही है तो नमस्कार बेहतर था, आशीर्वाद देने की बजाय। और जिसका नमस्कार सूख गया है उसके आशीर्वाद मे कोई बहुत बल नही हो सकता। अहकार से आया हुआ आशीर्वाद क्या

फल लायेगा? वह तो झुके हुए हृदय से निकले तो ही लाभ होता है। वह तो लदे हुए वृक्ष की तरह है। जैसे वृक्ष झुक जाता है, जब फलो से लद जाता है। ऐसा जब कोई प्रेम से लदा हो और झुका हो, तभी उससे मीठे फलो के आशीर्वाद उपलब्ध होते है। अकड़े खड़े है। एक डाल नही झुकी। फल तो है ही नहीं। आशीर्वाद कहा से होगा? लेकिन जैन मुनि अकडकर खड़ा हो जाता है तपश्चर्या है। कोई समर्पण किसी के प्रति नही है। सिर्फ सकल्प है।

तो सिर्फ सकल्प की शक्ति का खतरा यह है कि तुम्हारा अहकार विक्षिप्त न हो जाये। फिर चुनाव तुम्हारा है। इतना निश्चित है कि उस मार्ग से भी लोग पहुचे है।

लेकिन अगर मेरी सुनो तो हृदय की सुनना। और जब तुम हृदय की सुनोगे तो बुद्धि को तकलीफ होगी। क्योकि हृदय को चुनने का अर्थ है बुद्धि का प्रभुत्व गया, तर्क की तुम्हारे ऊपर जो मालकियत है, वह टूटी।

न जाने आज मै क्या बात कहनेवाला हू
जुबान खुश्क है, आवाज रुकती जाती है।

जैसे-जैसे प्रेम की बात कहने के करीब आओगे, वैसे ही पाओगे जबान खुश्क हो गयी, आवाज रुकती जाती है, क्योकि बुद्धि काम नहीं करती।

न जाने आज मै क्या बात कहनेवाला हू
जुबान खुश्क है, आवाज रुकती जाती है।

हृदय की तरफ सरकोगे तो बुद्धि मरने लगेगी। इसलिए बुद्धि बहुत सघर्ष करेगी। लेकिन चुनाव तो करना ही होगा।

और प्रेम का मार्ग सुगम है, छोटा है—करीब से करीब है। क्योकि प्रेम सुगम है, सहज है। प्रेम को लेकर ही तुम पैदा हुए हो, ध्यान को इतनी आसानी से नहीं कहा जा सकता कि तुम लेकर पैदा हुए हो। ध्यान तो तुम बडी चेष्टा करोगे तो शायद दीया जले। लेकिन प्रेम की तडफ तो तुम्हारे भीतर है ही, तुम्हारी श्वास-श्वास मे भरी है। तुम्हारे रोए-रोए मे भरी है। कहा है ऐसा मनुष्य जो प्रेम के लिए प्यासा न हो। कहा है ऐसा मनुष्य जो प्रेम देने को आतुर न हो। न दे पाओ, कुछ अड़चन आती हो, न मिल पाये, कुछ बाधा पड़ जाती हो—और बात। लेकिन कहा है ऐसा मनुष्य जो प्रेम के लिए आतुर न हो। प्रेम स्वाभाविक है, नैसर्गिक है। वह जीवन के ऋत का हिस्सा है।

ध्यान बडी चेष्टा, बड़े परिमार्जन, बड़ी मर्यादा, बड़े अनुशासन से उपलब्ध होता है। तो जो नैसर्गिक है उसे तुम जल्दी काम मे ला सकते हो।

तू न दे नामे को इतना तूल गालिब मुख्तसर लिख दे
कि हसरत सेज हू, अर्जे-सितमहाए-जुदाई का।

—प्राणप्यारे को पत्र लिखते समय, पत्र को बहुत विस्तृत न बना, गालिब। बस इतना लिख दे, इतना काफी है-सक्षेप मे कि श्री चरणो मे विरह की पीड़ा निवेदन करने की लालसा से लसित। काफी है।

'न दे नामे को इतना तूल'—चिट्ठी को बहुत लबी मत कर। 'गालिब, मुख्तसर लिख दे।' बस सक्षेप मे इतना लिख दे 'कि हसरत सेज हू अर्जे-सितमहाए-जुदाई का।' कि विरह की पीडा बहुत हो गयी, अब श्री चरणो मे यह निवेदन रखता हू कि अब मिलने की बड़ी गहरी अभीप्सा है। बस काफी है।

प्रेम की चिट्ठी छोटी होती है।

ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पडित होय।

अगर प्रेम न पुकारा हो तो इस आवाज को ऐसे ही मत लौट जाने देना। अगर प्रेम ने पुकारा हो तो सुनना, दो गाम उसके पीछे चलना। क्योकि प्रेम के रास्ते से दो गाम चलकर भी आदमी परमात्मा तक पहुच जाता है।

सकल्प का रास्ता बहुत लबा बहुत बीहड़, बहुत अकेले का है। हा, कुछ को वैसी चुनौती ही भाती है। जिनको वैसी चुनौती भाती है, उनका वही मार्ग चुनना चाहिए।

लेकिन प्रश्नकर्ता के प्रश्न से मुझे ऐसा लगता है कि उसे बुद्धि का मार्ग जमेगा नही, सकल्प का मार्ग जमेगा नही। क्योकि जिन्हे सकल्प का मार्ग जमता है, उन्हे प्रेम की पुकार ही सुनायी नही पड़ती। वह दस्तक प्रेम देता रहे, उनके कान बहरे होते है। प्रेम मे उन्हे सिर्फ पाप दिखायी पड़ता है।

तो सकल्प के मार्गवाला व्यक्ति तो यह पूछेगा ही नही। यह तो उसी ने पूछा है जिसका मार्ग प्रेम है, लेकिन बुद्धि की अड़चन मे पड़ गया है। चाह तो गहरी यही है कि प्रेम मे उतर जाये, लेकिन अहकार उतरने नहीं देता, झुकने नहीं देता। तो इस अहकार को तोड़ो। इस अहकार से अपने को अलग करो। पूछनेवाला शिकार तो हो ही गया है। तीर तो लग ही गया है।

दिल को हम सर्दे-वफा समझे थे, क्या मालूम था

यानी, यह पहले ही नजरे-इम्तिहा हो जायेगा।

—समझे थे कि दिल बहुत प्रेम-प्रवीण है, पता न था कि पहली नजर मे ही मर मिटेगा।

प्रेम का तीर तो लगा है, अब तुम बुद्धि की सुन-सुनकर कही इस घाव को छिपा मत लेना। यह घाव सौभाग्य है। हा, जिनका मार्ग सकल्प का है, उन्हे यह घाव लगता ही नही। उनके आसपास से तीर निकल जाते है, उनको चुभते नहीं। इसलिए उनके सामने सवाल नही उठता। सवाल ही उसके सामने उठता है, जिसको प्रेम की आवाज सुनायी पड़ती है। अगर प्रेम की आवाज सुनायी पडी है तो चलो, हिम्मत करो। अहकार मे बचाने जैसा कुछ भी नहीं है।

और इतना मै कहता हू कि सकल्प के मार्ग पर भी आखिर मे तो अहकार छोडना ही पड़ेगा। प्रेम के मार्ग पर प्रथम ही छोड़ना पड़ता है, सकल्प के मार्ग पर अत मे छोड़ना पड़ता है। प्रेम के मार्ग और सकल्प के मार्ग मे इतना ही भेद है। प्रेम के मार्ग पर जो पहला कदम है, वह सकल्प के मार्ग पर अतिम कदम है। पहले तो सकल्प के मार्ग का साधक अपने को निखारता है, तेज से भरता है, उज्जवल करता है, चरित्र को निर्मित करता है, शील को बाधता है, मर्यादा बनाता है सब तरह से अनुशासित होकर शील और चरित्र का स्तभ बनता है। लेकिन इस सबके भीतर एक सूक्ष्म अहकार बनता जाता है 'मै हू तपस्वी। मै हू सयमी। मै हू योगी।' यह 'मै' भरता जाता है। फिर आखिरी घडी आती है, तब उसे पता चलता है कि अब सब तो छूट गया, यह 'मै' बचा। वह सब तो गिर गया जो गलत था, लेकिन उस सब गलत को गिराने मे एक चीज भीतर निर्मित होती चली गयी—अब इसको गिराना है।

तो सकल्प के मार्ग पर अतत, अतिम, अहकार को छोडना पड़ता है। भक्ति के मार्ग पर अहकार पहले ही कदम मे छोड़ना पड़ता है। इसलिए मै कहता हू जिसे छोड़ना ही है उसे इतनी देर भी क्या ढोना। जिसे छोडना ही पड़ेगा, आखिरी शिखर पर पहुचने के पहले. ।

कभी तुम हिमालय गये, कभी शिखर चढे ? तो जैसे-जैसे शिखर की ऊचाई बढ़ने लगती है वैसे-वैसे सामान छोड़ना पडता है। आखिरी शिखर पर तो कोई नग्न होकर ही पहुचता है, सब छोड़कर ही पहुचता है। वस्त्र भी भारी हो जाते है। अपनी श्वास भी भारी होने लगती है। तो कधे पर अगर तुम बोझ डाले हुए हो, छोड़ना पड़ेगा, छोड़ते जाना पड़ेगा।

अतिम शिखर सत्य का बस तुम बचते हो तुम्हारी शुद्धता मे। कोई 'मै' का भाव नही होता। महावीर उसे आत्मा कहते है। नारद उसे परमात्मा कहते है।

तीसरा प्रश्न कृपा कर कीर्तन-ध्यान के बारे मे कुछ समझाए।

कीर्तन समझने की बात नहीं—करने की बात है। कीर्तन शब्द मे ही छिपा है राज—करने की बात। करो तो जानोगे। समझ से कीर्तन का कोई लेना-देना नही। वस्तुत तो समझ को रख दोगे एक किनारे तभी कीर्तन कर सकोगे। तो समझ-समझकर अगर कीर्तन किया तो होगा ही नही। समझकर किया तो चूक ही जाओगे। अगर बुद्धिमानी के द्वारा किया, वही गलती हो जायेगी। समझने की फिक्र छोड़ो। अगर सच मे ही समझना चाहते हो तो करो, समझ पीछे से आयेगी। डूबो।

कीर्तन-ध्यान तल्लीनता का नाम है। कीर्तन-ध्यान अहोभाव की अभिव्यक्ति है। धन्यभाव की। यह अहोभाव कि मै हू। यह अहोभाव कि परमात्मा ने मुझे सृजा। यह अहोभाव कि थोड़ी देर आखे खुली, रोशनी देखी, फूल देखे, पक्षियो के गीत सुने, सूरज, चाद-तारो का नृत्य देखा।

ये थोड़े क्षण, ये थोडे लम्हे, जो जीने के मिले, ये न मिलते तो किससे शिकायत करते ? ये मिले—अकारण मिले। मागे न थे, बिना मागे मिले। किसी ने दिये। यह किसी का प्रसाद—इस प्रसाद के प्रति जो धन्यवाद है, वही कीर्तन है।

तुमने चाहा तो न था कि तुम हो जाओ। तुम चाहते भी कैसे, जब तुम थे ही न ? चाहने के लिए हो जाना तो पहले जरूरी है। तुमने चाहा तो न था कि तुम देख सको। क्योकि देखा ही न होता, तो देखने की चाह कैसे पैदा होती, तुमने चाहा तो न था कि सुन सको यह गीत, यह सगीत जो जीवन का है, यह कलरव-नाद जो अस्तित्व का है—यह सब मिला है, यह वरदान है। यह तुम्हारे बिना मागे मिला है। यह भीख नहीं है, यह प्रसाद है।

भीख और प्रसाद के फर्क को समझ लेना। तुमने मागा और

मिले—तो भीख। तुमने न मागा, न तुमने चाहा और मिला—तो प्रसाद। यह प्रभु-प्रसाद है। यह परम अस्तित्व का प्रसाद है तुम्हारे लिए। लहर-लहर को उसने ऐसा बनाया कि वह सारे अस्तित्व को भोग सके। एक-एक कण को जीवत किया, ताकि एक-एक कण को पूरे होने का स्वाद आ सके। इसके लिए धन्यवाद दोगे या नहीं? इतने कृपण मत बनो। धन्यवाद दो। कैसे धन्यवाद दोगे इसे?

आदमी कितना असहाय है। नाच सकता है, गीत गुनगुना सकता है। और क्या कर सकेगा? हमारे बस मे और क्या है?

कीर्तन का इतना ही अर्थ है, जो हम कर सकते है, चढ़ाने को कुछ ज्यादा नही है। बस जो कुछ है, यह अहोभाव है। इसको ही हम उस समग्र के प्रति समर्पित करते है।

तो कीर्तन तो एक तरह का उन्माद है। पागलपन नहीं—उन्माद। भाषाकोश मे तो दोनो का एक ही अर्थ है, जीवन के कोश मे अर्थ अलग-अलग है। पागलपन है जब तुम्हारी जीवन की अवस्था खड-खड हो जाये, टुकडे-टुकडे मे टूट जाये, तुम एक न रह जाओ, अनेक हो जाओ। और उन्माद है जब तुम्हारे सारे खड इकट्ठे हो जाये, तुम एक हो जाओ, उस एक मे होकर तुम नाच उठो, मस्त हो उठो।

उन्माद, सामान्य चित्त से ऊपर जाने की अवस्था है। पागलपन, सामान्य चित्त से नीचे गिर जाने की अवस्था है। दोनो मे एक बात समान है कि दोनो सामान्य चित्त के बाहर है। इसलिए परमहस पागल मालूम होते है। इसलिए परमात्मा के दीवाने भी विक्षिप्त जैसे मालूम होते है। एक बात समान है कि दोनो जिसको तुम सामान्य बुद्धिमानी कहते हो उसके बाहर हो गए। पागल नीचे गिरकर बाहर हो गया, मस्त ऊपर उठकर बाहर हो गया। लेकिन दोनो को एक मत समझ लेना। दोनो मे जमीन-आसमान जैसा अतर है।

न जाने क्यो जमाना हस रहा है मेरी हालत पर
जुनू मे जैसा होना चाहिए वैसा गिरेबा है।

भक्त कहता है क्यो हस रहे है लोग? ये तो उन्माद मे जैसा होना चाहिए, वैसे ही तो वस्त्र है, वैसा ही परिधान है। तो पागल को जैसा होना चाहिए, वैसा ही तो मै हू। लोग हस क्यो रहे है।

न जाने क्यो जमाना हस रहा है मेरी हालत पर
जुनू मे जैसा होना चाहिए वैसा गिरेबा है।

और क्या चाहिए?

कीर्तन तो उन्माद है। बुद्धिमान तो हसेगे। इसलिए दुनिया से कीर्तन खोता चला गया है। दुनिया बहुत बुद्धिमान होती चली गयी है। उसी बुद्धिमानी मे बुद्धू हो गयी है। कीर्तन खोता चला गया है। नाच गुम हो गया है।

लोग अगर नाचते भी है अब तो बहुत निम्न तल पर नाचते है। वह कामोत्तेजना का नृत्य होता है। अब प्रभु-उन्माद का नृत्य कही भी नही होता। अब ऊर्जा ने उन ऊचाइयो को छूना बद कर दिया है। अब यहा तूफान भी उठते है, आधिया भी आती है, तो भी जमीन का दामन नही छूटता। आकाश मे नही उठ पाते। पक्षी उड़ते भी हैं, तो ऐसा घर के चारो तरफ चक्कर लगाकर फिर वही बैठे जाते है। दूर-दूर कि खो जाए पृथ्वी, दूर कि खो जाये नीड़—इतने दूर आकाश मे नही जाते।

कीर्तन बडी दूर यात्रा है। यह परमात्मा के साथ नाचना है। जैसे तुम कभी किसी स्त्री के साथ नाचे, जिसे तुमने प्रेम किया, तो नृत्य मे एक प्रसाद आ जाता है, एक गुणधर्म आ जाता है। किसी के साथ तुम नाचो, सिर्फ नाचने के लिए, औपचारिक, तो नाच तो हो जायेगा, क्रिया पूरी हो जायेगी, लेकिन भीतर प्राणो म कोई रस न बहेगा। फिर किसी के साथ नाचो, जिससे तुम्हे प्रेम है, तो कामोत्तेजना का, वासना का रस बहेगा।

कीर्तन है परमात्मा के साथ नाचना, उस परम प्यारे के साथ नाचना। तो जैसे साधारण कामोत्तेजना का नृत्य काम-केद्र के आसपास भटकता है, वैसे कीर्तन सहस्रार के आसपास। तुम्हारे जीवन की आखिरी ऊचाई पर, नृत्य के फूल खिलते है, हजार-हजार कमल खिलते है।

ऐ मुब्तिला-ए-जीस्त। ठहर खुदकुशी न कर
तेरा इलाज जहर नही है, शराब है।

कीर्तन। भक्त तो कहता है कि जीवन से घबड़ाकर आत्महत्या करने की तरफ मत जाओ, पागल हुए हो?

ऐ मुब्तिला-ए-जीस्त। ठहर खुदकुशी न कर।

—ऐ जीवन से उत्तप्त हुए, आत्मघात मत कर। भाग मत जीवन से। तेरा इलाज जहर नहीं, शराब है। मृत्यु तेरा इलाज नही है। जीवन की रसधार को पी लेना। परमात्मा की मधुशाला मे प्रविष्ट हो जाना ही मदिर मे प्रवेश हो जाना है।

तर दामनी पर शैख हमारी न जाइए

दामन निचोड़ दे तो फरिश्ते वजू करे।

तो कीर्तन करनेवाला तो दीवाना है, पागल है, नर्तक है, गायक है, वादक है। और इतनी तीव्रता से नर्तन करता है, इतनी गहनता से कि अपने को भूल जाता है, खो देता है, खुद बचता ही नही।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा नर्तक हुआ निजिन्सकी। उसके सबध मे वैज्ञानिक बड़े चकित थे। उसके नृत्य जैसा नृत्य फिर कभी देखा नहीं गया—न उसके पहले, न उसके बाद। वैज्ञानिक हैरान थे कि जब वह नृत्य करते-करते छलाग लगाता था तो ऐसा लगता था कि पृथ्वी पर वापस लौटते समय बड़ा धीमे-धीमे वापस आता है, जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम उस पर काम नहीं करता। और भी नर्तक छलाग लगाते है, लेकिन तत्क्षण पृथ्वी पर वापिस लौट आते है। वह भी छलाग लगाता था, लेकिन ऐसे लौटता था जैसे कोई पक्षी का पख डगमगाता-डगमगाता, आहिस्ता-आहिस्ता, हवा पर तिरता-तिरता जमीन की तरफ आता है। उसके बहुत अध्ययन किये गये। उससे पूछा भी गया कि चमत्कार कहा है? यह जादू कैसे पैदा होता है?

तो वह कहता है, मुझे पता नहीं। जब 'मै' अपने को बिलकुल भूल जाता हू, तभी यह छलाग घटती है। जब 'मै' नहीं होता—तभी। जब तक मै होता हू, अगर मै चेष्टा से ही छलाग लगाऊ, तो परिणाम मे कुछ हाथ नहीं आता। लेकिन नाचते-नाचते एक ऐसी घड़ी आती है कि नाच रह जाता है, नर्तक नहीं रह जाता। उस क्षण अगर यह छलाग लगती है तो मै खुद ही चकित होता हू। मै बिलकुल हलका, निर्भार हो जाता हू, जैसे जमीन की कशिश का अहकार का बड़ा बल हो। है भी। जमीन तुम्हारे अहकार को ही खीच रही है। जिस दिन तुम्हारा अहकार गया, आकाश खुला है। फिर तुम्हारे लिए जमीन की कोई पकड़ नही है।

नृत्य मे, गीत मे, कीर्तन मे, भजन मे, डूबा हुआ भक्त ज्ञानियो से कहता है तर दामनी पर शैख हमारी न जाइए—हमारे भीगे दामन पर मत जाइए। दामन निचोड़ दे तो फरिश्ते वजू करे।

यह शराब इस जगत की शराब नहीं—यह बेहोशी किसी और जगत की बेहोशी है। यह अपने भीतर किसी और जगत को निमत्रण है। भक्त जब कीर्तन मे परिपूर्ण लवलीन होता है तब भक्त नहीं रहता, भगवान ही होता है। तब वह केवल शून्य हो गया होता है। और उस शून्य मे उतर आती है परम मूर्च्छा। तुम खाली तो जगह करो। तुम सिंहासन तो रिक्त करो। परमात्मा प्रतिपल उत्सुक है तुम्हारे भीतर आ जाने को। तुम तो जरा बाहर हो जाओ।

कीर्तन का इतना ही अर्थ है अपने से बाहर हो जाना, अपने घर को खाली छोड़ देना कि तू आ, अब भीतर कोई भी नहीं है, अब पूरी जगह तेरे लिए खाली है, तेरे लिए सुरक्षित है।

रज-गम, दर्द-अलम, यास, तमन्ना, हसरत
इक तेरी याद के होने से है क्या-क्या दिल मे।
रज-गम, दर्द-अलम, यास, तमन्ना, हसरत
इक तेरी याद के होने से है क्या-क्या दिल मे।

भक्त कहता है, भगवान की याद के साथ ही क्या-क्या नहीं होने लगता! आनद, अहोभाव, आशा-निराशा, सुख-दुख, अभीप्सा, प्यास-तृप्ति।

रज-गम, दर्द-अलम, यास, तमन्ना, हसरत

—बस जरा तेरी एक याद आ जाती है तो हजार-हजार चीजे तेरे आसपास चली आती है।

तो कीर्तन की बहुत भगिमाए है। कभी भक्त विरह मे नाचता है, तब उसकी कीर्तन मे बडी उदास भगिमा होती है। आसू बहते है। पीड़ा और विरह होती है। कभी भक्त आनदोल्लास मे नाचता है, तब उसकी बडी प्रसन्न भगिमा होती है, वसत होता है, सब तरफ फूल होते है। तब उसकी मस्ती देखे। तब उसके चारो तरफ आनद की किरणे नाचती है। कभी प्यास मे नाचता है, कभी तृप्ति मे नाचता है।

भक्त की बडी ऋतुए है और कीर्तन की बडी भाव-भगिमाए है। कीर्तन बड़ी समृद्ध घटना है। जीवन की सभी गहराइया उसमे समाविष्ट है, और सभी ऊचाईया भी। पहले तो भक्त छिपाता है अपने प्रेम को भीतर। प्रेम का वह अनिवार्य अग है कि हम उसे किसी को बताना नहीं चाहते। वह कोई तमाशा थोड़े ही है। वह कुछ ऐसी बात थोड़े ही है जो दिखलाते फिरे। उसकी कोई प्रदर्शनी तो नहीं, कोई नुमाइश तो नही। उसे छिपाता है, उसे हीरे की तरह गाठ मे बाधकर रखता है। कबीर कहते है हीरा पायो गाठ गठियायो। उसे बिलकुल गाठ मे बाध लेता है, किसी को पता भी नही चले, कानो-कान खबर न हो। जीसस ने कहा है, 'बाए हाथ मे हो तो दाए हाथ को पता न चले।' सूफी फकीर कहते है, 'रात, आधी रात उठकर कर लेना प्रार्थना, तुम्हारी

पत्नी को भी पता न चले।'

पहले तो बडा निजी है, लेकिन ज्यादा देर निजी नही रहता। जब भरने लगता है पात्र तो पात्र ऊपर से बहने लगता है, फिर छिपाए नहीं छिपता, फिर प्रगट होने लगता है। जब प्रगट होने की घड़ी आती है, तब भजन कीर्तन बनता है। भक्ति जब तक भीतर-भीतर, भीतर-भीतर रसधार बहती है तो भजन, जप, फिर जब बहने लगती है बाहर, अवश होकर, तुम चाहो तो भी रोक नही पाते, इतनी ऊर्जा का जन्म होता है कि चारो तरफ फैलने लगती है ऊर्जा अपने-आप, तब कीर्तन।

कीर्तन भजन की अभिव्यक्ति है। कीर्तन भजन की अभिव्यजना है।

तुम भी मजाज इन्सा हो आखिर लाख छुपाओ इश्क अपना
ये भेद मगर खुल जायेगा, ये राज मगर इफ्शा होगा।

—छिप न सकेगा यह भेद। यह राज मगर इफ्शा होगा। यह पता चल ही जायेगा। प्रेम को कौन कब छिपा पाया। तो प्रेम जब तुम्हारे बिना दिखाए दिखायी पडने लगता है, तुम्हारे रग-रोए मे झलकने लगता है, प्रेम की आभा तुम्हे घेर लेती है, तुम्हारी आखो के पास, तुम्हारे चेहरे के पास एक प्रेम का आभामडल निर्मित हो जाता है कि कोई चाहे तो छू ले, कि कोई चाहे तो थोड़ा-सा आभामडल अपनी मुट्ठी मे बाध ले, कि कोई चाहे तो तुम्हारे आभामडल को पी ले—जब आभामडल इतना वास्तविक हो जाता है तब कीर्तन प्रगट होता है।

तो जल्दी मत करना। कीर्तन तो भजन की आखिरी अवस्था है। पहले भजना। भीतर-भीतर-भीतर डुबाना, ताकि जडे फैल जाये। फिर एक दिन तुम भी चौककर दखोगे

तुम भी मजाज इन्सा हो आखिर लाख छिपाओ इश्क अपना
ये भेद मगर खुल जायेगा ये राज मगर इफ्शा होगा।

तब उन्माद की आखिरी घड़ी आती है। तब तुम्हारे अतर की कोयल कूक उठती है। तब तुम्हारे अतर का मोर नाच उठता है। तब फिर चिंता नही रह जाती। तब कीर्तन।

कीर्तन का अर्थ है जब भक्ति प्रगट होकर बहने लगी। चैतन्य नाचते हुए, गाव-गाव ढोलक बजाते हुए। मीरा नाचती हुई गाव-गाव। फिर लोक-लाज की चिंता नही। फिर सब उपचार छूट जाते है। फिर सब उपाधिया गिर जाती है। निरुपाधिक। उपचार-मुक्त। भक्त उसके हाथ मे कठपुतली होकर नाचने लगता है और गीत गुनगुनाने लगता है। फिर भक्त तो सिर्फ बास की पोगरी है। फिर उसे जो गीत गाना हो गा ले, जो गुनगुनाना हो गुनगुना ले। भक्त सिर्फ राह देता है, उपकरण-मात्र हो जाता है।

चलो भाव से। भाव जब सघन होगा तो भजन। और जब भजन फूट पड़ेगा हजार-हजार फूलो मे और सुगध बिखर जायेगी लोक-लोकातर मे, तब कीर्तन।

कीर्तन, भक्ति की परम दशा है।

आज इतना ही।





उनतीसवां प्रवचन

मोक्ष का द्वार: सम्यक दृष्टि

सूत्र

दसणभट्ठा भट्ठा, दसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाण।
सिज्झति चरियभट्ठा, दंसणभट्ठा ण सिज्झति।।७१।।

सम्मत्तस्स य लंभो, तेलोक्कस्स य हवेज्ज जो लभो।
सम्मदसणलभो, वर खु तेलोक्कलभादो।।७२।।

कि बहुणा भणिएण, जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहिति जे वि भविया, त जाणइ सम्ममाहप्प।।७३।।

जह सलिलेण ण लिप्पइ, कमलिणिपत्त सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पई, कसायविसएहिं सप्पुरिसो।।७४।।

उवभोगमिंदियेहि, दव्वाणमचेदणाणमिदराण।
ज कुणदि सम्मदिट्ठी, त सव्व णिज्जरणिमित्त।।७५।।

सवेतो वि ण सेवइ, असेवमाणो वि सेवगो कोई।
पगरणचेट्ठा कस्स वि, ण य पायरणो त्ति सो होई।।७६।।

न कामभोगा समयं उवेति, न यावि भोगा विगइं उवेति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य, से तेसु मोहा विगइ विगइ उवेई।।७७।।

जिन-दर्शन की चितन-धारा के ठीक मध्य के सूत्रो पर हम आ गये है। धार यहा बहुत गहरी है। ऊपर-ऊपर से समझेगे तो चूकेगे। डुबकी गहरी लगानी होगी—साहस के साथ और अत्यत धीरज के साथ—तो ही ये सूत्र समझ मे आ सकेगे।

और ये उन सूत्रो मे से है, जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, और उनमे से भी, जिनका जैनो ने सर्वाधिक गलत अर्थ किया है। उनको करना पड़ा गलत अर्थ, क्योकि अगर इन सूत्रो का ठीक अर्थ करे तो जैन जो कर रहे है, न कर पाएगे।

अगर ये सूत्र ठीक है तो जैन गलत हो जाते है और अगर जैनो को अपने को ठीक बनाए रखना है, बताए रखना है, तो इन सूत्रो की गलत व्याख्या करनी जरूरी है। वह जैसे हम सूत्रो मे प्रवेश करेगे, स्पष्ट होने लगेगा।

सभी अनुयायियो ने अपने गुरुओ के साथ अनाचार किया है, कभी-कभी तो सीधा बलात्कार। क्योकि अगर गुरु पूरा ठीक है तो अनुयायी को गलत होने का उपाय नही छूटता। गुरु के विदा होते ही अनुयायी उसके वचनो मे जोड़ता है, घटाता है, अर्थ को बदलता है, नये अर्थ बिठाता है, नये रग डालता है। तब वे काम के योग्य हो जाते है। तब फिर उनका खतरा समाप्त हो जाता है। उनके प्राण ही निकल जाते है, निष्प्राण सूत्र रह जाते है।

पहला सूत्र

दसणभट्ठा भट्ठा—जो दर्शन से भ्रष्ट है वही भ्रष्ट है।

दसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाण—और दर्शन से जो भ्रष्ट है, उसकी कभी निर्वाण की उपलब्धि सभव नही है। वह कभी मोक्ष को उपलब्ध न हो सकेगा।

सिज्झति चरियभट्ठा—यह बडा अनूठा सूत्र है। महावीर कहते है, चरित्र-विहीन दृष्टिवाला व्यक्ति भी सिद्धि प्राप्त कर सकता है। सिज्झति चरियभट्ठा। वह भी पहुच जायेगा जिसके पास कोई चरित्र नही, सिर्फ दृष्टि हो।

दसणभट्ठा ण सिज्झति। लेकिन जिसके पास दर्शन नही है, वह लाख उपाय करे तो भी न पहुच पायेगा। चरित्र से ऊपर दर्शन के लिए इससे ज्यादा बहुमूल्य सूत्र नही हो सकता। एक-एक शब्द को गौर से समझे।

'दर्शन से जो भ्रष्ट है, वही भ्रष्ट है।' जिसके पास आख नहीं, वही भटका है। तुम चरित्र को कितना ही सुधार लो, तुम चरित्र को कितना ही अनुशासित, परिमार्जित कर लो, लेकिन अगर यह चरित्र तुम्हारी ही दृष्टि से निष्पन्न नही हुआ है, उधार है, तो इससे मोक्ष न हो सकेगा। तुम सत्य बोलो, क्योकि शास्त्र कहते है, 'सत्य बोलो, सत्य वद।' इसलिए सत्य बोलते हो। लेकिन प्राणो मे असत्य सगृहीत होता है। ऐसा हो सकता है कि तुम जीवन को इस तरह से बाध लो कि असत्य कभी जबान के बाहर न आये। कठिन है, असभव तो नही। जबान आखिर जबान है, काबू मे रखी जा सकती है। और इतना तो कर ही सकते हो, अगर काबू मे न रहती हो तो चुप हो जाओ, जबान काट ही दे सकते हो। इसलिए बहुत लोग मौन हो जाते है। लेकिन मौन से असत्य थोड़े ही मिट जायेगा । अब असत्य बोलते तो नही, लेकिन असत्य अगर बोलने से ही जुडा होता तो एक बात थी, असत्य तो तुम्हारे प्राणो मे बैठा है। न बोलोगे तो

दूसरो तक न पहुचेगा, लेकिन तुम तो उससे मुक्त न हो जाओगे। बोलने से तो अभिव्यक्त होता था, पैदा थोडे ही होता था। बोलने से तो केवल प्रगट होता था, जन्मता थोड़े ही था। असत्य तो भीतर बैठा है। बोलने से दूसरे को भी खबर मिल जाती थी।

तो जो व्यक्ति चरित्र को साध लेगा शास्त्र के अनुसार, बिना स्वय की दृष्टि के, दूसरो के और उसके बीच के सबध तो ठीक हो जायेगे, वह व्यक्ति नैतिक हो जायेगा—लेकिन महावीर कहते हैं—धार्मिक नही। मोक्ष उसके लिए नहीं है। परम आनद का द्वार उसके लिए न खुलेगा। वह अच्छा नागरिक हो जायेगा। सज्जन हो जायेगा, लेकिन सत नही।

सज्जन का अर्थ है, जिससे किसी को कोई नुकसान नही पहुचता। लेकिन स्वय तो सज्जन अपना आत्मघात करता रहता है। जहर किसी पर नहीं फेकता, लेकिन खुद ही पीता चला जाता है। तो खुद ही के रोए-रोए मे, रग-रग मे, श्वास-श्वास मे जहर फैल जाता है। तो जिनको तुम सच्चरित्र कहते हो, कभी उनकी अतरात्मा मे भी झाककर देखना, तुम उन्हे दुश्चरित्रो से भी ज्यादा जहर से भरा हुआ पाओगे। पाओगे ही, क्योकि दुश्चरित्र तो थोड़ा-बहुत बाहर भी फेक लेता है, वह तो भीतर ही इकट्ठा किए चले जाते है। दुश्चरित्र का तो थोड़ा रेचन भी हो जाता है, उनका तो कोई रेचन भी नहीं होता। दुश्चरित्र तो ऐसा है कि श्वास लेता है, जीवनदायी आक्सीजन को पी लेता है, जीवन-विरोधी कार्बन डाय-आक्साइड को बाहर फेक देता है।

लेकिन तुम जिसे सज्जन कहते हो, वह ऐसा है कि कार्बन डाय-आक्साइड को भीतर इकट्ठा किए जाता है फेफड़ो मे, बाहर नही फेकता। उसके खुद के फेफड़े सड़ने लगते है। सज्जन एक तरह के आत्मिक कैसर की दशा मे होता है।

इसलिए एक बहुत बड़ा चमत्कार मनोवैज्ञानिको को अनुभव मे आया है कि गहनतम अपराधियो की आखो मे भी कभी-कभी बच्चो जैसा निर्दोष भाव होता है, लेकिन तुम्हारे तथाकथित सतो की आखो मे नहीं होता। उनकी आखो मे बड़ी जटिलता, बड़ा गणित, बड़ा हिसाब । और वे चौबीस घटे अपने को पकड़े हुए हैं। क्षणभर को ढीला छोड़ा, तो वह जो बाध रखा है जन्मभर का जहर वह बिखर सकता है।

सत क्षणभर को विश्राम नही करता। सत के लिए—कहते है—कोई छुट्टी नहीं। तथाकथित सत के लिए। वास्तविक सत तो चौबीस घटे विश्राम मे है। विश्राम ही उसकी जीवन-शैली है। लेकिन जिसे तुम सत कहते हो और जिसे महावीर के हिसाब से ज्यादा से ज्यादा सज्जन कहना चाहिए, वह भी शिष्टाचारवश । यह जो तथाकथित सत है यह एक क्षण को भी विश्राम मे नही है, हो नहीं सकता, क्योकि यह डरा हुआ है। जब भी अपने को ढीला छोडेगा, शिथिल करेगा, तो जो दबा रखा है वह गाठ खुलेगी।

तुमने कभी देखा, एक झूठ तुम बोल दो तो फिर तुम शिथिल नही हो पाते। क्योकि तुम शिथिल हुए तो कही झूठ निकल न जाये। तुम कही गपशप मे, बातचीत करने मे भूल गए और कह दिया किसी से, तो झूठ बोलनेवाला आदमी ज्यादा नही बोलता, सोच-सोचकर बोलता है। और जो बहुत झूठ बोलता है, वह तो चौबीस घटे सचेष्ट रहता है।

जिसको तुम सज्जन कहते हो उसने जीवन का सबसे बड़ा झूठ बोला है—जो उसके भीतर नही है वह उसने बाहर करके दिखला दिया है। वह सबसे बड़ी असत्य घटना है। आत्मा मे नही है वह, आचरण मे बतला दिया है। इस बड़े झूठ का परिणाम यह होता है कि तुम्हारा सज्जन तो विश्राम ले ही नही सकता। वह चौबीस घटे सगीनधारी की तरह अपनी ही छाती पर पहरा देता है। यह कोई सत की अवस्था न हुई। यह कोई मुक्ति न हुई। यह तो बुरी तरह बध जाना हुआ।

महावीर कहते है दसणभट्ठा भट्ठा। भटका वही, जिसके पास आख नही।

सारा जोर दृष्टि पर है, आख पर है।

तथाकथित चरित्रवान व्यक्ति ऐसा है जैसे कोई अधा व्यक्ति एक ही रास्ते पर बार-बार आ-जाकर धीरे-धीरे इतना अभ्यस्त हो जाये कि आख की तो जरूरत ही नही होती, लेकिन वह बिना लकड़ी टेके, बिना किसी का सहारा खोजे, बिना टटोले, बिना पूछे, निरतर उसी रास्ते पर आने-जाने के कारण अभ्यस्त हो जाने की वजह से ऐसा चलने लगता है जैसा आखवाले को चलना चाहिए। उसे चलते देखकर राह पर शायद तुम भी चमत्कृत हो जाओगे। शायद तुम्हे भी शक होगा कि कहीं आख इस आदमी को मिल तो नही गयी। क्योकि वह ठीक वैसा ही चल रहा है जैसे आखवाले चल रहे है। लेकिन गहरा फर्क है। यह चलना केवल अभ्यासवश है। यह निरतर इसी रास्ते पर आने-जाने से

आदत हो गयी है। उसे रास्ते का एक-एक पत्थर परिचित है। उसे रास्ते का एक-एक मोड़ परिचित है। वह रास्ते पर चल लेता है, लेकिन चल लेने से कुछ आख थोड़े ही खुल जाती है। आख खुलने से चलना हो सकता था, इसने धोखा दे लिया।

जिसको तुम चरित्रवान कहते हो, वह ऐसा ही आदमी है जिसको अभी दिखायी तो नहीं पडा, लेकिन सुनकर औरो को, कान का भरोसा करके, अभ्यास कर लिया है। तो लोग अहिसा का अभ्यास कर रहे है। अहिसा का कोई अभ्यास हो ही नही सकता। अहिसा की तो आख होती है। प्रेम की एक दृष्टि होती है। प्रेम का एक भाव होता है। प्रेम तो एक नया जन्म है। तुम्हारा हृदय और ही ढग से देखना शुरू करता है, तब अहिसा फलित होती है। तब अहिसा बड़ी जीवत होती है। तब उस अहिसा मे पुलक होती है, प्रसन्नता होती है।

लेकिन तुम दूसरो को सुनकर, लोभ के कारण कि परलोक को सम्हालना है, चरित्र को बना ले सकते हो, अहिसक हो सकते हो, फूक-फूककर पैर रख सकते हो। चीटी भी न मरे, लेकिन तुम मर जाओगे। तुम सब बचा सकते हो, लेकिन अपने को न बचा सकोगे। और असली बात तो वही थी।

दसणभट्ठा भट्ठा।

जिसके पास आख नही है, वही भटका हुआ है सम्यक दर्शन से जो भ्रष्ट, वही भ्रष्ट। महावीर का वचन बहुत साफ है।

दसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाण।

और जो दर्शन से भ्रष्ट है, उसका कोई निर्वाण नही, उसका कोई मोक्ष नही। यहा तक भी जैन को कठिनाई न होगी। आगे जो सूत्र है—सिज्झति चरियभट्ठा, चरित्र-भ्रष्ट भी अगर आखवाला है तो पहुच जाता है—यहा अड़चन होगी। तो जैन जब अनुवाद करते है, जैन-मुनि जब अनुवाद करते है, तो वे क्या करते है अनुवाद मे? वे इस सीधे-साधे वचन का जहा दो शब्द है केवल—सिज्झति चरियभट्ठा—जो नही भी जानते प्राकृत वे भी कह सकते है—सिज्झति चरियभट्ठा—वे भी सिद्धि को पहुच जाते है जो चरित्र-भ्रष्ट है। जैन अनुवाद मे क्या करते है? वे कहते हैं, 'चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि तो चारित्र्य धारण करके सिद्धि को प्राप्त हो जाते है।'

चारित्र्य धारण करके? इस तरह महावीर को विकृत करने मे सुविधा हो जाती है। जैनों को तकलीफ है कि अगर यह बात सही है कि चरित्र-भ्रष्ट व्यक्ति भी, सिर्फ आख के होने के कारण सिद्धि को उपलब्ध हो जाता है तो हमारे सारे चरित्र का, जो हमने आयोजन किया है, उसका क्या होगा? तो उसमे दो छोटे-से शब्द जोड़ दिए, कोष्ठक मे रख दिए 'चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि तो (चारित्र्य धारण करके) सिद्धि प्राप्त कर लेते है।' यह महावीर ने कहीं कहा नही। महावीर का वचन सिर्फ सीधा-साफ है। उन्हे कहना होता तो वे खुद ही कह देते, ये कोष्ठक वे भी लगा सकते थे।

सिज्झति चरियभट्ठा, दसणभट्ठा ण सिज्झति।

लेकिन दर्शन-भ्रष्ट नही सिद्ध होता, चरित्र-भ्रष्ट तो सिद्ध हो सकता है। अब यहा बहुत-से सवाल सोचने जैसे है। पहली बात चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि। इसका अर्थ हुआ, महावीर यह स्वीकार करते है कि चरित्र-विहीन भी सम्यक दृष्टि हो सकता है। इसका यह अर्थ हुआ कि चारित्र्य का होना या न होना मौलिक नहीं है। चारित्र्य का होना न होना छाया की भाति है। छाया बन भी सकती है, न भी बने। क्योकि छाया तुम पर निर्भर नही होती। तुम सोचते हो, तुम्हारी छाया तुम्हारा पीछा करती है—इस भूल मे मत पडना। छाया तुम पर निर्भर नही होती, अन्य कारणो पर निर्भर होती है। छाया तुम्हारी नही है, जैसा तुम सोचते हो, सूरज पर निर्भर है। छाया मे खडे हो जाओगे तो छाया खो जायेगी। सूरज सिर पर आ जायेगा, छाया छोटी हो जायेगी। सूरज पीछे होगा, छाया आगे पडेगी। सूरज आगे होगा, छाया पीछे पडेगी। तुमने सदा यही सोचा है कि छाया मेरी और गलत सोचा है। छाया से तुम्हारा क्या लेना-देना? अगर सूरज न होगा तो कोई छाया न होगी। छाया तुम पर निर्भर नही है, अन्य कारणो पर निर्भर है।

अगर तुम्हारे चारो तरफ कई प्रकाश लगा दिये जाये तो कई छायाए एक साथ बनने लगेगी। यहा तुम बैठे हो, अगर कोई प्रकाश नही तो छाया न बनेगी।

चारित्र्य मौलिक नही है, और-और कारणो पर निर्भर होता है, छाया की भाति है। लेकिन दर्शन मौलिक है। दृष्टि मौलिक है। वह तुम्हारी है। वह किसी सूरज पर निर्भर नही है। अधेरे मे भी जब सूरज नही होता तब भी तुम्हारी दृष्टि तुम्हारे पास है। उसी दृष्टि के कारण तो तुम कहते हो, बडा घना अधेरा है। अधेरा भी तो दिखायी पड़ता है।

अंधे को अंधेरा भी दिखायी नहीं पडता, याद रखना। आमतौर से लोग सोचते हैं कि अंधा तो बेचारा अंधेरे मे ही जीता होगा। इस भूल मे मत पडना। किसी अंधे ने कभी अंधेरा नही देखा। जिसने प्रकाश ही नही देखा वह अंधेरा देखेगा कैसे? अंधा अंधेरे मे नही होता। अंधे को तो पता ही नही है कि अंधेरा जैसी कोई चीज होती है। अंधेरे को देखने के लिए भी आख चाहिए। प्रकाश के लिए भी आख, अंधेरे के लिए भी आख ।

दृष्टि मौलिक है, किसी पर निर्भर नही—तुम्हारी है। और महावीर का यह बड़ा जोर है कि जो तुम्हारा है वही सत्य है, जो तुम्हारा नही उधार है, वह असत्य है।

चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि सिद्धि प्राप्त कर लेते है। तो महावीर यह कह रहे है कि चरित्र कोई मौलिक बात नही है, गौण है। हो तो ठीक, न हो तो भी यह सभव है कि व्यक्ति मुक्ति को उपलब्ध हो जाये। लेकिन दर्शन-विहीन कभी मुक्ति को उपलब्ध नही होता, क्योकि वह मौलिक है।

अब दृष्टि की इतनी महिमा और चरित्र को ऐसा कचरे मे डाल देना, महावीर करेगे—ऐसा जैन सोच ही नही सकते। क्योकि ढाई हजार साल तक धीरे-धीरे महावीर के वचन तो कम मूल्य के हो गये है, वे जो कोष्ठक लगे है, ज्यादा मूल्य के हो गए है। वह जो उनकी व्याख्याए की गयी है, वे ज्यादा मूल्य की हो गयी है। अब जैन मुनि डरे होगे कि यह तो खतरनाक वचन है। यह तो अग्नि जैसा है, जला देगा। इसमे कही लोग भटक न जाये। कही लोग यह न सोचने लगे कि चरित्र का कोई मूल्य नही है। क्योकि अगर चरित्र का कोई मूल्य नही तो जैन मुनि का कोई मूल्य नही है, क्योकि वह चरित्र के ही मूल्य पर उसका सारा व्यवसाय है। तो यह कोष्ठक लगा देना जरूरी है।

यह महावीर के साथ बेईमानी है। यह महावीर के साथ बलात्कार है।

'चारित्र्य धारण करके सिद्धि को प्राप्त हो जाते है'—अगर ऐसा ही था तो कहने की जरूरत क्या है? जैसा जैन मुनि मानते है, अगर ऐसा ही है, अगर उनका वचन ही महावीर का ठीक-ठीक अनुवाद है—'चारित्र्य-विहीन सम्यक दृष्टि तो (चारित्र्य धारण करके) सिद्धि को प्राप्त हो जाते है'—अगर यही महावीर को कहना हो तो कहने की जरूरत क्या है? और अगर यही कहना होता तो फिर दूसरे वचन मे भी उन्हे एक कोष्ठक और लगाना चाहिए था—'किंतु सम्यक दर्शन से रहित सिद्धि प्राप्त नही कर सकते है'—उसमे भी एक कोष्ठक लगा दो। 'किंतु सम्यक दर्शन से रहित भी तो (सम्यक दर्शन को प्राप्त करके) सिद्धि प्राप्त कर सकते है।' तब तो महावीर के अर्थ के सारे प्राण खो गये। फिर कहने की जरूरत क्या है? चरित्र-विहीन चरित्र पाकर सिद्धि पा लेते है, तो दर्शन-विहीन दर्शन पाकर सिद्धि पा लेगे। कहने की जरूरत क्या है?

कहने का प्रयोजन साफ है। महावीर भेद करना चाहते है कि दर्शन को उपलब्ध व्यक्ति तो चरित्र के बिना भी मुक्ति को पा लेते है, लेकिन जो दर्शन को उपलब्ध नहीं है वह चरित्र पाकर भी मोक्ष को उपलब्ध नही हो सकते।

यह इतना सीधा गणित की तरह, दो और दो चार जैसा साफ है। लेकिन बडे न्यस्त स्वार्थ है।

महावीर को तो दर्शन उपलब्ध हुआ। तो जिसको आत्मा मिल गयी वह छाया की फिक्र छोड देता है। जिसको आत्मा नही मिली वह छाया की ही चिता करता है। उसे छाया ही आत्मा जैसी मालूम पड़ती है। जिसने अपने को देख लिया, फिर वह दर्पण मे अपनी छवि देखने के लिए थोड़े ही बहुत आतुर होता है। जिसने अपनी आत्मा देख ली, वह दर्पण मे अपनी छवि देखने के लिए कोई चिता नही करता। और अगर दर्पण खो जाये तो वह पागल नही हो उठता कि अब मै क्या करू, अब अपने चेहरे को कैसे देखूगा। जिसने आत्मा देख ली, वह चेहरे को देखने की फिक्र छोड देता है।

चारित्र्य तो छाया है। चारित्र्य तो दर्पण मे देखा गया प्रतिबिंब है। चारित्र्य तो अपने और दूसरो के बीच सबंधों से जो दर्पण निर्मित होते है, उनमे देखी गयी छवि है। वह आत्मा का सीधा अनुभव नही है।

तुम झूठ बोले—एक तरह का चरित्र निर्मित हुआ। तुम सच बोले—दूसरे तरह का चरित्र निर्मित हुआ। लेकिन तुम किसी से बोले, झूठ या सच—दूसरे की जरूरत पड़ी। अकेले मे तुम कैसे सच बोलोगे, कैसे झूठ बोलोगे? एकात मे बैठे पहाड़ पर तुम कैसे ईमानदार होओगे और कैसे बेईमान होओगे? कोई उपाय न रह जायेगा। दूसरा चाहिए।

और जिस चीज के होने मे दूसरे की जरूरत पड़ती है उससे मोक्ष न हो सकेगा, क्योकि मोक्ष का कुल अर्थ इतना ही है

अपने मे पूरा हो जाना। यह तो पर-निर्भर हुआ।

महावीर कहते है, धिक्कार है परवशता पर। यह तो परवशता ही हुई। यह तो दर्पण के बिना कोई उपाय न चलेगा। यह तो अगर मुझे सत होना है तो लोगो के बीच होना चाहिए।

और मजे की बात है, जरा खयाल करना। अगर तुम्हे बडा सत होना हो तो लोगो को असत होना चाहिए, तभी तुम बडे सत हो सकोगे। अगर सभी लोग सत हो, तुम्हारा सतत्व खो जायेगा।

थोड़ी देर सोचो, कोई ऐसी दुनिया हो जहा सभी राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम हो, तो दशरथ के बेटे राम को कौन पूछेगा? यह तो पूछ इसलिए चलती है कि ये मर्यादा पुरुषोत्तम अकेले है। तो इनकी मर्यादा तुम्हारी अमर्यादा पर निर्भर है। साधु का साधु होना तुम्हारे असाधु होने पर निर्भर है।

अगर बहुत गहरे मे देखो तो साधु मिट जायेगा, जिस दिन जगत साधु हो जायेगा। तो साधु का निहित स्वार्थ यही है कि जगत साधु न हो जाये, जगत असाधु रहे।

नेता तभी तक नेता है जब तक और लोगो को नेता होने का खयाल पैदा नहीं हुआ है। जब तक अनुयायी अनुयायी होने को राजी है, तब तक नेता, नेता है। जिस दिन अनुयायियो ने भी घोषणा कर दी कि हम भी नेता हो गए, उस दिन नेता खो जायेगा। अमीर तभी तक अमीर है, जब तक गरीब है। और तुम्हारे पास बड़ा महल तभी तक हो सकता है जब तक और लोगो के पास छोटे झोपड़े है। तो जैसे बड़ा महलवाला आदमी न चाहेगा कि सभी के पास बडे महल हो जाये ।

यह तो साफ समझ मे आता है, अर्थशास्त्र का सीधा नियम है, कि अमीर का मजा उसकी अमीरी मे तभी तक है जब तक और लोग गरीब है। तुम्हारे पास एक शानदार कार है, तो उसका मजा तभी तक है जब तक दूसरे लोगो पर, राह चलते लोगो पर बरसात मे तुम कीचड़ उछालते हुए कार से निकल जाते हो। अगर सभी के पास वैसी गाड़िया है, बात खतम हो गयी। तुम्हारा सारा मजा इस कार मे चला जायेगा। इस कार का मजा कार में न था, दूसरो के पास कार नहीं है, उसमे था। जीवन का जाल बड़ा जटिल है।

मेरे एक मित्र हैं कलकत्ते मे। मै उनके घर मे कभी-कभी रुकता था। वे बिलकुल पागल थे अपने मकान के लिए। उन्होने शानदार मकान बनाया था। कलकत्ते मे उसकी कोई तुलना न थी। उन्होने पूरे कलकत्ते को मात कर दिया था। चौबीस घटे वे मकान के ही खयाल से भरे रहते थे तो जब भी मै उनके घर जाता तो मकान, मकान यह दिखाते, वह दिखाते। नया स्विमिग पूल बना डाला। क्या-क्या उन्होने कर डाला है, वह दिखाते। एक बार जब मै गया तो उन्होने मकान की कोई बात न की। और मै तो पहले से ही तैयार होकर आया था कि वह मकान की बात सुननी पड़ेगी। वे कुछ बोले ही नही मकान पर और कुछ बड़े उदास दिखे, उत्साह भी कुछ ढीला मालूम पडा, कुछ सुस्त से मालूम पड़े। साझ होते-होते मैने पूछा, 'मामला क्या है? मकान का क्या हुआ?' उन्होने कहा, 'वह बात ही मत उठाओ।' मैने कहा, 'कुछ तो बात होगी। तुम उदास भी हो। वह सदा की प्रफुल्लता, मकान की चर्चा, कुछ नया किया, कुछ नया बनाया—वह सब हुआ क्या?' वे मुझे हाथ पकडकर बाहर लाए पडोस मे, कहा कि वह देखो। एक आदमी ने उनसे बड़ा मकान बना लिया। वे बोले, जब तक इसको मात न कर दू, तब तक अब क्या बात करना। मन बडा दुखी रहने लगा। अभी सुविधा भी नही है कि इतना ऊचा उठा लू। मात हो गया हू।

मैने कहा कि तुम्हारा मकान वैसा का वैसा है। इस पर किसी ने छुआ भी नही है। कुछ घटा नही, कुछ बिगडा नही, सब सुदर है। लेकिन पास के आकाश मे एक नया मकान खड़ा हो गया। किसी ने तुम्हारी लकीर के पास बडी लकीर खीच दी—तुम्हारी लकीर को छुआ भी नही है, तुम अचानक छोटे हो गये।

तो मैने उनसे कहा, अब तुम यह तो सोचो, तो यह मजा तुम जो अपने मकान मे ले रहे थे, अपने मकान का मजा न था, वह जो झोपडे पास मे थे, उनका मजा था। तो तुम्हारी अमीरी किसी के गरीब होने मे निर्भर है।

और वही बात तुम्हारे साधु के सबध मे भी सच है। अगर दुनिया से असाधु खो जाये तो तुम्हारा साधु फिर कौन उसे मदिरो मे विराजमान करेगा? कौन उसके सामने पूजा के थाल सजायेगा? कौन अर्चना के दीप उतारेगा? वह खो जायेगा। इसलिए साधु कहता तो यही है तुमसे कि सब साधु बनो, लेकिन उसकी अतर्तम की प्रार्थना यही होती है कि हे प्रभु, इन सबको साधु मत बना देना। उसकी हालत, जिसको मनोवैज्ञानिक कहते है 'पेराडाक्सिकल इटेशन', विरोधाभासी आकाक्षा की है।

जैसे चिकित्सक के पास तुम जाते हो तुमने कभी खयाल

किया? अगर तुम्हारी जेबे भरी हो तो बीमारी के ठीक होने मे ज्यादा देर लगती है। इस अर्थ मे गरीब आदमी सौभाग्यशाली है। अगर तुम बहुत अमीर हो और एक दफे बीमार पड गए, तो पड़ गए, अब तुम ठीक न हो सकोगे। क्योकि चिकित्सक की विरोधाभासी आकाक्षा है। वह तुम्हारी बीमारी पर जीता है और तुम्हे स्वस्थ करने का आयोजन कर रहा है। उसका सारा जीवन तुम बीमार रहो, इस पर निर्भर है। और उसकी सारी चेष्टा इस पर निर्भर है कि तुम ठीक हो जाओ। यह विरोधाभासी बात है।

मैने सुना है, एक डाक्टर का बेटा कालेज से वापिस लौटा डाक्टर होकर। तो बाप बहुत दिन का थका था और विश्राम न लिया था, तो उसने कहा, 'मै सात दिन के लिए छुट्टी पर चला जाऊ, पहाड चला जाऊ। अब तू घर आ गया है, तू सम्हाल ले।' सात दिन बाद जब बाप लौटा तो बेटे ने उसे बडी खुशी से दरवाजे पर कहा कि पिताजी, जिस सेठानी को आप बीस साल मे ठीक न कर पाए उसे मैने पाच दिन मे ठीक कर दिया। बाप ने सिर ठोक लिया और उसने कहा, 'नासमझ। उसी की वजह से तू कालेज मे पढ़ सका और उसी पर आशा थी कि और बच्चे भी पढ लेगे। उसे ठीक करना ही नही था। यह तूने क्या किया? तूने सारा खेल खराब कर दिया।'

चिकित्सक दिखाता है तुम्हे ठीक करने की चेष्टा। शायद खुद भी मानता है कि तुम्हे ठीक करना चाहता है। शायद खुद के चेतन मे कही कोई बात भी नही है, तुम्हे ठीक ही करने का आयोजन करता है। लेकिन अतस-चेतन मे, गहरे अनकाशस मे अगर उसके हम अतस-चेतन को खोल सके तो कही तो यह बात छिपी होगी कि लोग बीमार रहे, बीमार रहे तो ही तो वह जी सकता है।

एक रात एक मधुशाला मे बड़ा उत्सव रहा। एक आदमी पहली दफे अपने मित्रो को लेकर आया था और उसने खूब रुपये उछाले, खूब पीया-पिलवाया। मधुशाला का मालिक भी चकित हो गया। ऐसा दिलदार उसने कभी देखा न था। और जब आधी रात वे जाने लगे, हजारो रुपये लुटाकर, तो उसने अपनी पत्नी से कहा कि ऐसे ग्राहक रोज आते रहे तो कुछ ही दिनो मे हम मालामाल हो जायेगे। चलते-चलते उसने अपने इस ग्राहक को कहा कि कभी-कभी आया करे। उस ग्राहक ने कहा, 'प्रार्थना करो हमारे लिए कि हमारा धधा ठीक चलता रहे तो हम आते रहे।' उसने कहा, 'जरूर प्रार्थना करेगे, क्यो न प्रार्थना करेगे। रोज यही प्रार्थना करेगे कि तुम्हारा धधा लेकिन यह तो बताओ तुम्हारा धधा क्या है?' उसने कहा, अब यह मत पूछो, अन्यथा तुम प्रार्थना न कर पाओगे। मै मरघट पर लकडिया बेचता हू। लोग मरते रहे, लकडिया बिकती रहे, तो मै आता रहू। मेरा धधा चले ।

अब कुछ है जो मरघट पर लकड़िया बेचते है, उनका धधा ही यही है कि लोग मरे।

एक गाव मे एक नया-नया इस्पक्टर आया। वह दिनभर बैठा रहा। कपड़े-लत्ते सजाकर, बेल्ट इत्यादि, जूते इत्यादि बाधकर दिनभर बैठा रहा। बार-बार चौककर देखे, लेकिन कोई घटना ही न घटी दिनभर। न कोई चोरी हुई न कोई डाका पड़ा, न कही कोई हत्या हुई, न किसी ने आत्महत्या की, न कोई दगा-फसाद हुआ, न कोई हिंदू-मुसलमान मरे, कुछ भी न हुआ। वह जरा उदास होने लगा। साझ होन लगी तो उसका चेहरा एकदम फीका पडने लगा।

उसके मुशी ने कहा, 'आप घबडाओ मत। मुझे मनुष्य के स्वभाव पर पूरा भरोसा है। ठहरो, कुछ न कुछ होकर रहेगा। अभी रात पडी है। तुम इतने उदास क्यो हुए जा रहे हो?

अब वह जो चोर को पकडने पर जीता है, वह पकडता चोर को है, लेकिन प्रतीक्षा करता है कही चोरी हो। वह जो न्यायाधीश है, वह सजा देता है हत्यारो को, लेकिन उसका सारा होना उन्ही के होने पर निर्भर है। उन्ही की साझेदारी मे वह न्यायाधीश है। जीवन के इस व्यग्य को समझना।

साधु तुमसे कहे चला जाता है कि क्या तुम असाधु बने हो, बनो साधु। बनना भर मत, अन्यथा वह नाराज हो जाएगा। एक साधु दूसरे साधु से प्रसन्न थोड़े ही है। एक साधु दूसरे साधु से बडा अप्रसन्न है। तुम असाधु हो, इससे वह खुश है। उसकी साधुता, उसका ऊचा सिहासन तुम्हारी छाती पर लगा है। अगर वास्तविक रूप से किसी दिन दुनिया धार्मिक हो जायेगी तो न असाधु रह जाएगे, न साधु रह जाएगे।

साधु का सारा बल इसमे है कि उनके पास चरित्र है और तुम्हारे पास नहीं है। उसने कुछ करके दिखा दिया है जो तुम नहीं कर पाए, भला वह करना बिलकुल मूढ़तापूर्ण है। भला वह इस तरह का मूढ़तापूर्ण हो कि एक आदमी रास्ते पर शीर्षासन

लगाकर खड़ा हो जाता है। अब इसमे कुछ गुण नहीं है, लेकिन भीड़ लग जायेगी। लोग पैसे भी चढाने लगेगे। क्योकि तुम शीर्षासन लगाकर घटो नहीं खड़े रह सकते। बस इतना काफी है। कोई आदमी छत्तीस घटे साईकिल पर चढा हुआ चक्कर लगाता रहता है। उसको भी पैसे मिल जाते है, उसके भी अखबार मे फोटो छप जाते है। कुछ अर्थ नहीं है। छत्तीस घटे या छत्तीस जन्म भी साइकिल पर चढे रहो—क्या सार है? लेकिन जो दूसरे नही कर सकते, वह किसी ने कर दिया—बस काफी है, उसका सम्मान होना शुरू हो जाता है।

तुम्हारे साधुओ के सम्मान मे तुमने देखा।

किसी ने तीन महीने का उपवास किया—बस तुम सम्मान से भर गए। यह तीन महीने साइकिल पर सवार रहने से ज्यादा भिन्न बात नहीं है। या किसी ने अपने शरीर को सुखाकर हड्डिया कर लिया—तुम प्रभावित हो गये। या किसी ने अपने बाल-बच्चो को, घर-गृहस्थी को, सबको छोडकर, उजाडकर जगल मे खड़ा हो गया—बस तुम चले पूजा के फूल लेकर। यह तुम नहीं कर पाते हो, तो तुम सोचते हो, तुम कमजोर हो और इस आदमी ने कर लिया।

अभी अमरीका मे अपराधियो और अपराधियो से जूझ जानेवाले लोगो के सबध मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन चलता है। बडे हैरानी के नतीजे हाथ मे आये है। अकसर तुमने देखा होगा कि कोई आदमी डूब रहा है या किसी घर मे आग लग गयी है कोई बच्चा अदर छूट गया है, तो हजारो की भीड़ लगी रहती है, हजारो लोग खडे रहते है, कोई एकाध ही होता है जो उछलकर और मकान मे दौड जाता है, आग का खतरा है, खुद की जान खतरे मे डालता है, बच्चे को निकाल लाता है। अखबारो मे खबर छपेगी, सत्कार होगा, स्वागत होगा। लोग कहेगे, बहुत बहादुर है। बहुत गजब का आदमी है। साधु-चरित्र है। दयावान है। करुणावान है।

कोई नदी मे डूब रहा है, कोई बचा लेता है। या रास्ते पर किसी आदमी ने किसी दूसरे पर हमला किया, अनेक लोग गुजर जाते है, लेकिन एक आदमी बीच मे कूद पडता है और हमलावर को पकड़ लेता है या पुलिस को पकड़ा देता है या हमलावर को काबू मे कर लेता है या हत्यारे को पकड लेता है—अपनी जान जोखिम मे डालकर। तो अमरीका मे एक अध्ययन किया जा रहा है कि ये किस तरह के लोग हैं जो इस तरह का काम करते है। और एक बड़ी हैरानी का नतीजा आया और वह यह कि ये उसी तरह के लोग है जिस तरह के लोगो को ये पकडते है। ये साधु-चरित्र लोग नहीं है।

जो आदमी, दो आदमी लड रहे है इनके बीच मे कूद पडता है, यह क्रोधी आदमी है, यह खुद भी हत्या कर सकता है। वही हत्या की जो वृत्ति है, वही इसे बीच मे कुदा देती है। यह कोई साधुता के कारण बीच मे नही कूदता। यह कोई दया के कारण नहीं कूदता। और एक बडे मजे की बात समझ मे आयी है और वह यह, कि इसको इससे मतलब नही होता कि वह जो आदमी पिट रहा है उसको बचाये, इसको मतलब होता है, जो पीट रहा है उसको पीटे। इसकी जो एम्फेसिस है, इसका जो जोर है, वह इस पर नहीं रहता कि जो पिट रहा है उसको बचाए। उसके प्रति तो इसके मन मे भी यह है कि यह तो गया-गुजरा आदमी है, यह कोई मतलब का आदमी है। यह तो जो पीट रहा है उसके पीट के दिखा दे, उस चेष्टा मे रहता है।

एक आदमी ने कार का धक्का मारा एक स्त्री को शिकागो मे। वह बूढी औरत गिर पडी। और दूसरा आदमी जो मोटर साइकल पर चढने के लिए तैयार ही था, उसने उस कार का पीछा किया। कोई दस मील की दौड-धूप के बाद उसने उस आदमी को पकड लिया। और पकडने के लिए उसको गोली चलानी पडी और दूसरे आदमी के कार के टायर छेद डालने पडे गोली से, तब वह पकड पाया। इस बीच वह महिला मर गयी। उससे जब पूछा गया कि जब यह महिला गिरी तो तेरे सामने दो विकल्प थे कि या तो तू इस महिला को उठाकर अस्पताल मे पहुचाता तो शायद यह बच जाती, लेकिन तूने उसकी तो फिकर ही न की, तू जान जोखिम मे लगाकर इस आदमी के पीछे पड गया और इस आदमी को तूने पकड़ा दिया।

ऐसे बहुत-से अध्ययन किए गए और पाया गया कि जब दो आदमी लड़ रहे हो तो जो आदमी कूद पड़ता है उसको पिटनेवाले से कोई सहानुभूति नहीं होती, उसको पीटनेवाले से ईर्ष्या होती है। वह उसे कुछ करके दिखा देना चाहता है। वह यह कह रहा है कि मेरे रहते कौन किसको पीट रहा है। वह जो आदमी आग जलते मकान मे कूद पड़ता है, उसको शायद आग मे पड़े हुए बच्चे से कुछ लेना-देना नही होता, लेकिन यह उसके अहकार

के लिए बर्दाश्त के बाहर है कि कोई और कूद जाये। और कई बार ऐसा हुआ है कि दो आदमी एक साथ कूद गये और जो बच्चे को बचाकर ले आया और दूसरा खाली हाथ लौटा, तो उसकी निराशा देखो। बच्चे के बचने से कोई प्रयोजन नही है—कौन बचा लाया। किसने अपने अहकार को तृप्त कर लिया। आदमी बड़ा उलझा हुआ है!

तो जैन साधु, जो व्याख्या कर रहे है, उस व्याख्या मे महावीर से प्रयोजन नहीं है। उस व्याख्या मे स्वय को और स्वय के पूरे व्यवसाय को बचा लेने की आकाक्षा है।

ये कोष्ठक बहुत खतरनाक है। महावीर का वचन सीधा है सिज्झति चरियभट्ठा। चरित्र-विहीन सिद्धि प्राप्त कर लेते है। सिद्धि का कोई सबध चरित्र-भ्रष्ट होने या चरित्रवान होने से नही है। सिद्धि का सबध दर्शन की शुद्धि से है, दृष्टि की सुघडता से है, दृष्टि की निर्मलता से है।

अब महावीर का यह वचन यह भी कहता है कि चरित्रहीन भी सम्यक दृष्टि हो सकता है, और चरित्रवान भी दृष्टि-विहीन हो सकता है।

शुभ होगा अगर तुम चरित्रवान और दृष्टिवान दोनो होओ। यह तो अच्छा ही होगा। यह तो सोने मे सुगध हो जायेगी कि तुम्हारे पास दृष्टि भी है और आचरण भी।

और अकसर तो दृष्टि होती है तो आचरण होता ही है, आ ही जाता है, लाना नही पड़ता।

लेकिन फिर महावीर ऐसा क्यो कहते है कि चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि भी पहुच सकता है? वे यह कह रहे है कि बहुत बार ऐसा होता है कि जो तुम्हारा चरित्र है, वह दूसरो को चरित्र न मालूम पडे, क्योकि दूसरो की धारणाए अनिवार्य रूप से, दर्शन से जो चरित्र पैदा होता है, उससे मेल खाए न खाए। इसे समझना। जिसके पास दृष्टि है, वह दीवाल से क्यो निकलने की कोशिश करेगा? वह तो दरवाजे से निकलेगा ही। लेकिन यह हो सकता है कि उसे जो दरवाजा मालूम होता है वह तुम्हे दरवाजा न मालूम होता हो, देखनेवालो को न मालूम होता हो।

महावीर जब नग्न खड़े हो गये, तो अनेको को लगा, यह तो बात अनैतिक है, यह तो चरित्रहीनता है। तुम यह मत सोचना कि आज जब रास्ते पर कोई आदमी नग्न खडा हो जाता है तो तुम सोचते हो चरित्रहीनता है, उस दिन भी यही लोगो ने सोचा था। लोग वही के वही है। लोग वैसे के वैसे है। महावीर को मारा-पीटा, गावो से निकाल दिया, गावो मे ठहरने न दिया, वर्षों उनको जगलो मे बिताने पड़े। नग्नता बड़ी बेचैन करनेवाली बात थी। जब कोई आदमी समाज मे नग्न खड़ा हो जाता है तो सभी कपड़े पहननेवाले लोगो को कष्ट होता है। क्योकि वह आदमी नग्न होकर किसी गहरे अर्थ मे तुमको भी नग्न कर देता है। जब एक आदमी नग्न खड़ा हो जाता है तो तुमने जो-जो छिपा रखा है वस्त्रो मे वह सब उसने उघाड़ दिया है। तुम भी उसी जैसे हो, थोड़े-बहुत विस्तार के फर्क होगे। कोई ज्यादा फर्क तो है नही। वही सब तुम भी हो, जो वह आदमी है। उसे नगा देखकर तुम भी नग्न हो जाते हो, तुम्हारे वस्त्रो का उसने सारा अर्थ गवा दिया। तुम अपने को छिपाकर चल रहे थे। अगर तुम अपने को खुद ही कही नग्न पा लो तो पहचान न सकोगे बिना कपडो के।

दो छोटे बच्चे एक नग्न क्लब के पास से गुजरते थे और दीवाल मे से पानी निकलने के छेद मे से उन्होने अदर देखा। छोटे बच्चे, स्कूल से लौटते हुए। जब एक देख चुका तो दूसरा जा खडा था और देखने की प्रतीक्षा कर रहा था कि तुम हटो तो मै देखू, उसने पूछा, 'कौन है अदर?' उसने कहा, 'कहना मुश्किल है। सब बिना वस्त्र के है।' उसने पहले ने पूछा, 'स्त्रिया है कि पुरुष?' उसने कहा, 'अब कैसे बताऊ? कोई वस्त्र पहने ही हुए नही है।'

हमारा तो स्त्री-पुरुष का भेद भी करीब-करीब वस्त्र मे है। छोटे बच्चो को तो स्त्री-पुरुष मे यही भेद दिखाई पडता है कि अलग-अलग पकड़े पहने हुए है। गरीब-अमीर का भेद भी वस्त्रो मे है। तुम जरा देखो। एक मजिस्ट्रेट को और चोर को दोनो को नग्न खडा कर दो—फिर कौन मजिस्ट्रेट है, कौन चोर है? मुश्किल हो जायेगी। वह तो सारा भेद वस्त्रो का है। इसलिए पुराने दिनो से मजिस्ट्रेट को खास ढग से विग पहनाया जाता है। वह न केवल वस्त्रों से काम चलता है, वह सिर पर बालो का एक विग भी लगा ले, ताकि आदमीयत बिलकुल खो जाये, कुछ पता न चले। वकील काले चोगे मे खड़े हो जाते हैं। विश्वविद्यालयो मे दीक्षात समारोह होते हैं और बड़े-बूढ़े भी बचकानी हरकते करते हैं, चोगे पहन लेते हैं, उनमें खड़े हो जाते है। लेकिन वही भेद है, नहीं तो उपकुलपति कुलपति कौन, चासलर, वाइसचासलर कौन? मुश्किल हो जायेगा पहचान

करना। इसलिए हम कपड़ो पर बड़ी जिद्द करते है।

अगर कोई आदमी रास्ते पर पुलिसवाले के कपड़े पहनकर निकल पड़े तो फौरन पकड़ लेगे उसको कि यह तुम क्या कर रहे हो, क्योकि इससे फर्क कम हो जाता है। तुमने कभी पुलिसवाले को वर्दी के बिना देखा? लज्जत ही खो जाती है, शान ही चली जाती है। वही आदमी जब अपनी वर्दी मे खड़ा होता है, तब देखो। तब एक शान आ जाती है।

'कर्नल राज' वहा बैठे हुए हैं, सिर छिपाए हुए है। उनको सन्यासी के वेश मे देखो और जब वह मेजर, कर्नल के वेश मे होते है, तब देखो। तब बात ही और बदल जाती है।

आदमी चलता और ढग से है जब कपडे कर्नल के होते है। उसके पैरो की आवाज, उसके जूतो की चरमराहट, उसके कपड़ो की शिकन, सब बदल जाती है। आदमी का थोड़ा हमे हिसाब है, हमे हिसाब तो कपड़ो के है।

कहते है गालिब को बहादुरशाह ने निमत्रित किया था भोजन के लिए। वह गरीब आदमी था, अपने साधारण कपडो को पहने चला गया। मित्रो ने कहा भी कि इन कपड़ो मे तुम्हे कोई दरबार मे प्रवेश न करने देगा। पर उसने कहा कि निमत्रण मुझे मिला है कि कपड़ो को? जिद्दी। नही माना, गया। जब द्वारपाल को जाकर उसने कहा कि मुझे भीतर जाने दो, तो द्वारपाल ने धक्का देकर उसे हटा दिया। उसने कहा कि 'भिखमगो के लिए राजमहल मे निमत्रण। दिमाग खराब हो गया है?' उसको तो भरोसा ही नही आया कि यह दुर्व्यवहार । उसने खीसे से निमत्रण-पत्र निकालकर दिखाया तो उसने झपट्टा मारकर वह भी छुड़ा लिया। उसने कहा, 'किसी का चुराया होगा। किसका उठा लिया?'

वह बेचारा गालिब घबड़ाया, घर वापिस लौट आया। मित्रो ने कहा, 'हमने पहले कहा था, हम जानते थे। हम कपड़े ले आये है।' तो उन्होने अचकन वगैरह पहना दी। ठीक-ठाक कपड़े पहना दिए, जूते नये पहना दिए। और जब यह आदमी वापस गया तो वही द्वारपाल झुककर नमस्कार किया कि आइये। तुम हसना मत द्वारपाल पर, तुम भी होते तो यही करते। फिर जब भोजन के लिए बैठे तो बहादुरशाह ने . तो गालिब का बड़ा सम्मान था उसके मन मे। वह भी कवि था, बहादुरशाह भी कवि था। और गालिब की कविता का तो क्या कहना। वैसे उस्ताद तो बहुत कम हुए है। तो उसने तो अपने पास ही बिठाया। और जब गालिब भोजन करने लगा तो उसने पहले उठायी मिठाई, अपने कोट को कहा कि ले खा, टोपी को लगाया कि ले खा। तो बहादुरशाह को कुछ लगा कि कवि पागल होते है, यह तो ठीक है, लेकिन इतने होते हैं, यह नहीं सोचा था। उसने कहा, 'क्षमा करे। आप यह क्या कर रहे है? यह कौन-सी शैली है भोजन करने की?' गालिब ने कहा, 'मै तो पहले भी आया था। मै तो लौटा दिया गया, मै फिर आया ही नहीं। ये तो अब वस्त्र आए है। यह भोजन इन्ही के लिए है। इन्ही को प्रवेश मिला है, मुझे तो प्रवेश नही मिला। मै तो बाहर से ही लौट गया हू। वह तो पहरेदार ने धक्का दे दिया। तो जिनकी वजह से मै भी पीछे-पीछे चला आया हू, क्योकि मजबूरी थी, मेरे बिना ये वस्त्र कैसे आते, ये मेरे बिना आते ही नहीं और इनके बिना मै नही आ सकता था, तो जिनके कारण मै आ गया हू छाया की तरह, उनको तो पहले भोजन करा दू।'

महावीर जब नग्न खडे हो गए तो उन्होने तुम सबको नग्न कर दिया, उन्होने सबके वस्त्र उघाड दिए। बडी अनैतिकता मालूम पड़ी लोगो को यह आदमी तो खतरनाक है। इसको कौन चरित्रवान कहेगा? यह कैसी मर्यादा? यह तो मर्यादा छोडना है, यह तो स्वच्छदता है।

इसलिए महावीर कहते है कि सम्यक दृष्टि तो अनिवार्यरूपेण आचरणवाला होता है, लेकिन उसका आचरण समाज की तथाकथित धारणा से मेल खाए न खाए। इसलिए वे कहते है, कि अगर न भी मेल खाए तो कोई फर्क नही पड़ता।

सिज्झति चरियभट्ठा। वह जिसको लोग सोचते है चरित्र-भ्रष्ट, वह भी केवल दर्शन के सहारे मुक्त हो जाता है, सिद्धि को उपलब्ध हो जाता है। किंतु सम्यक दर्शन से रहित सिद्धि प्राप्त नही कर सकते।

इसलिए जो पाना है, जो खोजना है, वह दृष्टि है, वह देखने का ढग है, वह साफ-सुथरी आख है, वह निर्मल भाव-दशा है। आख पर कोई विचार न रह जाये। आख पर कोई धारणा न रह जाये। आख पर कोई पक्षपात न रह जाये। आख ऐसी निर्मल हो, पारदर्शी हो कि जो है, जैसा है, वैसा दिखाई पडने लगे—बस पर्याप्त है। उसके पीछे ज्ञान अपने से आ जाता है, चारित्र्य अपने से आ जाता है। लेकिन यह चारित्र्य जरूरी नही है

कि समाज की सम्मत मान्यताओ के अनुकूल हो। यह तुम्हारी दृष्टि के अनुकूल होगा। लेकिन जिसके पास दृष्टि है वह चिंता भी नही करता कि उसके चरित्र को आदर मिलता है या नही। जिसके पास दृष्टि है वह तुम्हारे मत का कोई विचार नहीं रखता कि तुम क्या सोचते हो। तुम्हारे सोचने पर, तुम्हारी धारणाओ पर, तुम्हारी प्रशसा और निदा पर उसके चरित्र के आधार नही होते। उसके चरित्र के आधार अपनी अतर्दृष्टि पर होते है। अगर वह अकेला भी है और सारा ससार भी उससे भिन्न सोचता है तो भी वह मस्त है।

'अर्श' सुनता नही किसी की बात
हाल मे अपने मस्त है शायद।

—वह अपनी मस्ती मे होता है। वह उन्मत्त होता है अपने आनद मे।

'अर्श' सुनता नही किसी की बात
हाल मे अपने मस्त है शायद।

तो महावीर कोई चिता नही करते कि तुम किसे आचरण कहते हो। महावीर को जो आचरण दिखाई पड़ता है, वह घटता है। और ऐसे बलशाली पुरुष ही, आचरण के नये मापदड, नये प्रतिमान दे जाते है। ऐसे बलशाली पुरुष ही, ऐसे महावीर ही आचरण की नयी-नयी सूझे, नये-नये आकाश खोल जाते है। तो नग्नता को भी आचरण दे दिया। नग्नता महावीर के साथ जुडकर निर्दोष हो गयी। लोग वस्त्रो मे भी इतने सुदर नही है, जितने महावीर अपनी नग्नता मे सुदर थे। लोग वस्त्रो मे छिपकर भी, वस्त्रो मे ढके हुए भी इतने सुगधपूर्ण नही है, जितने महावीर अपनी नग्नता मे थे। महावीर की नग्नता शुद्ध निर्दोष बालपन हो गयी, छोटे बच्चे की नग्नता हो गयी।

महावीर इस जगत मे नग्नता के निर्दोष होने के पहले प्रमाण है, तुम्हारे साथ तो वस्त्र भी गदे हो जाते है, महावीर के साथ तो नग्नता भी पवित्र हो गयी। ऐसे वीर पुरुष ही जीवन को नये प्रतिमान, नयी गतिया, नये आयाम, नये क्षितिज, नये आकाश देते है। इसलिए धार्मिक व्यक्ति अनिवार्यरूपेण विद्रोही होता है—होगा ही। क्योकि तुम्हारी पिटी-पिटायी, सड़ी-सडायी धारणाए है। तुम रखो अपने पास। वह तुम्हारी धारणाओ के अनुकूल अपने को ढाचे मे नहीं ढालता। वह तो अपनी दृष्टि के अनुकूल जीता है। अगर तुम्हारी मर्जी हो तो अपनी धारणाओ को बदल लेना, लेकिन तुम धार्मिक व्यक्ति को नहीं बदल सकते। धार्मिक व्यक्ति के साथ तुम ससर्ग मे आए तो या तो तुम बदलोगे या तुम दुश्मन हो जाओगे, लेकिन धार्मिक व्यक्ति नही बदलता। कोई उपाय नही। इसलिए नही कि धार्मिक व्यक्ति जिद्दी होता है, इसलिए नही कि हठाग्रही होता है—बल्कि इसलिए कि उसकी दृष्टि उसे जहा दरवाजा दिखाती है वहीं जाता है। तुम जहा दरवाजा बताते हो वहा उसे दीवाल दिखाई पड़ती है। वह अधो की बात नही मानता तो कुछ आश्चर्य तो नही। इसमे जिद्द क्या है? अगर अधो की एक भीड़ हो और आखवाला आदमी हो और अधो की भीड़ कहे, तुम गलत चल रहे हो।

मैने सुना है, एच. जी. वेल्स की एक कहानी है कि मैक्सिको मे एक छोटी-सी घाटी है जहा सभी अधे है। क्योकि वहा के पानी मे और भूमि मे कुछ ऐसे तत्व है कि बच्चे पैदा होते है और पैदा होते से ही महीने दो महीने के भीतर उनकी आखो की ज्योति चली जाती है। एक आदमी, आखवाला, उस घाटी मे पहुच गया। वह तो चकित हुआ। वह तो विश्वास न कर सका कि कोई सैकड़ो आदमी अधे है, एक भी आखवाला नहीं। उसे बडा उनसे प्रेम हो गया। वह उनके बीच रहने भी लगा। वह एक युवती के प्रेम मे पड गया। अब तक तो बात ठीक थी कि वह अजनबी था और उलटी-सीधी बाते करता था—ऐसा अधे सोचते थे—आख की, रग की, रोशनी की, इद्रधनुषो की, फूलो की, हरियालो की। और जब भी अधे उससे पूछते तो कुछ समझा तो नही पाता। अधे पूछते कि दिखाओ, 'हरियाली कैसी है? समझाओ, हरियाली कैसी है?' तो क्या समझाता। 'समझाओ इद्रधनुष, किसकी बात कर रहे हो तुम, कहा है? हम छूकर देखना चाहते है।' वृक्षो को छू भी लेते तो हरियाली तो छूने से हाथ मे समझ मे नहीं आती। तो वे हसते। वे कहते, कोई पागल आ गया है। स्वभावत भीड़ उनकी थी। लोकतात्रिक दृष्टि से वही सही थे। सख्या उनकी थी। यह अकेला था, वे सब थे। अब तक तो कोई बात न थी, लेकिन जब वह एक लड़की के प्रेम मे पड गया तो जरा उस वादी के लोग हैरान हुए। उन्होने कहा, अब जरा मुश्किल है। अगर यह आदमी विवाह करना चाहता है तो इसे हमारे जीवन के रीति-नियम स्वीकार करने होगे। और पहला रीति-नियम यह है

कि हम आखो को नहीं मानते और हम मानते है कि आंखे सब झूठ है। तो इसको इस झूठ का खयाल छोडना पडेगा। इसको यह खयाल छोड़ना पड़ेगा कि यह आखवाला है। और जो उसमे बहुत उत्साही थे, उन्होने कहा कि इसकी आख का आपरेशन कर दे। यह जहा बताता है, आखे है, उनको निकालकर अलग कर दे, ठीक हम जैसा हो जायेगा।

बड़ी मुश्किल मे पड़ गया वह आखवाला आदमी। युवती से प्रेम भी था तो आधा मन वहा खिचा। फिर आखे खो देना और आखो के साथ सारा रग, सूरज के सारे खेल, चाद-तारो की पूरी दुनिया—यह दाव बडा था। एक रात वह भाग खडा हुआ। दूसरे दिन सुबह वह उसकी आख की शल्यक्रिया करनेवाले थे। वह वहा से भाग निकला क्योकि यह बड़ी कीमत हो जायेगी। प्रेम तो फिर भी हो सकता है, आख फिर कहा से लाऊगा? और एक बार अधा हो गया तो सदा के लिए अधा हो गया। और इस सृष्टि को जिसने एक बार आख मे देख लिया, फिर बिना आख के बहुत फीकी हो जायेगी, फिर जीने जैसी न रह जायेगी। वस्तुत सचाई तो यह थी कि उस स्त्री के प्रेम मे भी वह आखो के कारण पड़ा था। वह उसका रूप, उसका रग, उसके नक्श उसे भा गये थे। तो जिन आखो के कारण वह स्त्री को खोज पाया था, उन्ही आखो को गवा दे, यह उसकी समझ मे न आया। वह भाग खड़ा हुआ।

महावीर जैसे व्यक्ति अधो की बस्ती मे पड जाते है। लेकिन आखो की शल्यक्रिया करवाने को वे राजी न होगे।

इसलिए महावीर कहते है, 'चरित्र-विहीन सम्यक दृष्टि तो सिद्धि प्राप्त कर लेते है, किंतु सम्यक दर्शन से रहित सिद्धि प्राप्त नही कर पाते।'

जरा अपनी तरफ गौर करो, कैसी तुम्हारी हालत है।

वाए, दीवानगिए-शौक कि हरदम मुझको
आप जाना उधर और आप ही हैरा होना।

—हाय रे आकाक्षाओ का चक्कर कि अपने-आप उधर जाता हू और अपने-आप भ्रमों को खड़ा कर लेता हू। अपने-आप जाता हूं उधर और अपने-आप भटकता हू।

और हर बार तय कर लेते हो तुम कि अब न करेगे यह भूल, लेकिन वह तय किया काम नही आता। क्योकि दृष्टि तो पास नहीं। भूल, भूल दिखायी कहा पड़ती है? कहते हो कि क्रोध अब न करेगे। कहते हो कि क्रोध जलाता है। कहते हो कि क्रोध जहर है, लेकिन ये शब्द उधार है। ये सब शास्त्र से सुने हैं। ये किन्हीं जाननेवालो ने कहे होगे, लेकिन यह तुमने जाना नही है। क्योकि तुम जान लो तो जैसे आग मे कोई जल जाये, तो दुबारा हाथ नहीं डालता—ऐसे ही तुम दुबारा क्रोध न करते। लेकिन तुम दुबारा फिर क्रोध करते हो।

वाए, दीवानगिए-शौक कि हरदम मुझको
आप जाना उधर और आप ही हैरा होना।

अजीब चक्कर है। लेकिन अगर समझो तो एक सूत्र है जिससे सारी बात साफ हो जाती है तुम कान से जीये हो अब तक, आख से नहीं जीये। 'कानो सुनी सो झूठ सब।' कान से सत्य मिलता ही नहीं—आख से मिलता है। इसलिए तो हमने सत्य की खोज को दर्शन कहा है। वह आख की खोज है। इसलिए तो जिन्होने खोज लिया है उनको हमने द्रष्टा कहा है आख मिल गयी। अगर कान से मिलता होता सत्य तो हम दर्शन न कहते, श्रवण कहते। अगर कान से मिलता होता सत्य तो जो पा लेते उनको हम श्रोता कहते, द्रष्टा न कहते। सत्य का कुछ सबध साक्षात्कार से है। कान को तो धोखे दिये जा सकते है, आख को धोखे नही दिये जा सकते। और जिस आख की हम बात कर रहे है वह इन बाहर की आखो की ही बात नही, भीतर की आख की बात है। वहा एक जागरूकता का पुज चाहिए—ऐसा सघनीभूत कि उस सघनीभूत जागरूकता से तुम्हे दिखायी पड़ने लगे। वह तुम्हारे भीतर की रोशनी बन जाये।

नत्थि जागरतो भयम्।—बुद्ध ने धम्मपद मे कहा है, जागे हुए को भय नही। सब भय सोये हुए को है।

ऋग्वेद मे एक बडा बहुमूल्य सूत्र है भूत्यै जागरणम्। अभूत्यै स्वप्नम्। जागने से उन्नति, सोने से, स्वप्न से अवनति।

जिसको महावीर सम्यक दृष्टि कहते है उसका अर्थ है जागा हुआ, देखता हुआ, आखवाला। तुम जीवन को देखने मे लगो। शास्त्रो के पढ़ने से यह न होगा, तुम जीवन के शास्त्र को देखने मे लगो। जीवन मे जो भी है उसके सबध मे धारणाए मत बनाओ, पहचान बनाओ। क्रोध है तो क्रोध को देखो। घृणा है तो घृणा को देखो। प्रेम है तो प्रेम को देखो। मोह है तो मोह को देखो। लोभ है तो लोभ को देखो। जल्दबाजी मे मत पडो।

चरित्र की चेष्टा करनेवाला बड़ा जल्दबाज है। वह लोभ को

देखता ही नही और अलोभ को साधने लगता है। यही फर्क है। वह क्रोध को देखता ही नहीं, अक्रोध की आकाक्षा मे सलग्न हो जाता है। कामवासना मे आख नही डालता, और ब्रह्मचर्य के नियम ले लेता है। यही महावीर कह रहे है।

ऐसा चरित्र पहुचाएगा न। उधार से कभी कोई गया नही। धर्म चाहिए नगद।

एक मुअम्मा है समझने का न समझाने का
जिदगी काहे को है एक ख्वाब है दीवाने का।

जिसे अभी हम जिदगी कह रहे है, सोयी-सोयी, एक स्वप्न से ज्यादा नही है। जिस दिन तुम जागोगे उस दिन तुम पाओगे, अब तक तुमने जिसे जीवन जाना था वह केवल एक स्वप्न था, और स्वप्न भी कोई बहुत मधुर नही। दुख-स्वप्न, नाइट-मेयर। कोई धन के सपने देख रहा है, कोई पद के सपने देख रहा है।

चरित्र का अनुयायी कहता है, छोड़ो धन की दौड़, छोड़ो पद की दौड। और दृष्टि का अनुयायी कहता है, देखो पद की दौड़ को, देखो धन की दौड को। इस फर्क को खयाल मे ले लेना। दृष्टिवाला कहता है, भागो मत। भागकर कहा जाओगे? अगर भीतर नीद है तो साथ चली जायेगी। अगर भीतर स्वप्न है तो साथ चला जायेगा। भागो मत। जागो। देखो जहा हो, जो है। जीवन का जो भी तथ्य है, मधुर कि कड़वा, सुस्वादु कि विषाक्त—चखो, पहचान बनाओ। उसी पहचान से धीरे-धीरे ज्ञान निसृत होता है। उसी से धीरे-धीरे बूद-बूद ज्ञान की टपकती है। तुम्हारा मधु-पात्र एक दिन भर जाएगा। और तब तुम्हारे जीवन मे आचरण होगा। लेकिन वह आचरण जरूरी नही कि जैनो की मान्यता के अनुसार हो कि हिदुओ की मान्यता के अनुसार हो कि बौद्धो की मान्यता के अनुसार हो। वह आचरण तुम्हारे स्वभाव के अनुसार होगा। यह भी खयाल मे ले लेना।

प्रत्येक जाग्रत पुरुष का आचरण अद्वितीय होता है। तो तुम राम को कृष्ण से मत तौलना। अगर कृष्ण से राम को तौलोगे तो दो मे एक ही ठीक रह जायेगा, दोनो ठीक नही हो सकते। और न तुम बुद्ध को महावीर से तौलना। और न तुम मुहम्मद को जीसस से तौलना। और न तुम जरथुस्त्र को लाओत्से से तौलना। तुम तौलना ही मत। क्योकि प्रत्येक जाग्रत व्यक्ति का आचरण उसके अपने जागरण का परिणाम होता है। वह निजी है, अद्वितीय है, अनूठा है।

वैसा न कभी हुआ है, वैसा न कभी होगा।

सोए हुए लोगो का आचरण पक्तिबद्ध होता है, दूसरो जैसा होता है, अनुकरण पर निर्भर होता है। दो महावीर नही हुए, न दो बुद्ध हुए, न दो कृष्ण हुए, न हो सकते है। इस अद्वितीयता को खूब गहरे मे बिठा लेना। तब तुम्हे भय न रहेगा। तब तुम्हारी दृष्टि जागेगी तो तुम्हारा आचरण तुम जैसा होगा। और परमात्मा अगर कहीं होगा और तुमसे पूछेगा तो वह यह न पूछेगा कि तुम महावीर जैसे क्यो न हुए, वह तुमसे पूछेगा, तुम तुम जैसे क्यो न हुए? तुमने अपने स्वभाव को खिलाया क्यो न? तुम जो होने को पैदा हुए थे, विकसित क्यो न हुए? तुमने अपने बीज को फूलो तक क्यो न पहुचाया? इसकी फिक्र छोड देना कि तुम किसी से तालमेल खा रहे हो कि नही, क्योकि सत्य अनूठा है। किसी गहरे अर्थ मे तालमेल खाता भी है और किसी गहरे अर्थ मे बिलकुल भिन्न होता है। अगर बहुत गहराई मे कृष्ण के उतरोगे, अतस्तल मे, तो ठीक महावीर को पा लोगे। लेकिन बाहर-बाहर से देखोगे तो महावीर कहा, कृष्ण कहा, बडे अलग-अलग है। तुम भी अलग ही होनेवाले हो।

धर्म व्यक्ति को व्यक्ति बनाता है। और सप्रदाय व्यक्ति को भीड बना देते है। भीड से बचना।

धर्म निजी और वैयक्तिक खोज है।

दूसरा सूत्र 'एक ओर सम्यक्त्व का लाभ और दूसरी ओर त्रैलोक्य का लाभ हो तो त्रैलोक्य के लाभ से सम्यक दर्शन का लाभ श्रेष्ठ है।'

एक तरफ मिलती हो दृष्टि और दूसरी तरफ मिलते हो तीनो लोक के खजाने और सारी सपदा और साम्राज्य, तो भी महावीर कहते है, तीनो लोक के साम्राज्य और सपदा से दृष्टि का लाभ श्रेष्ठ है। क्योकि अधे के हाथ मे साम्राज्य हो तो भी वह भिखारी रहेगा। और आखवाले के पास भिक्षा का पात्र भी हो तो साम्राज्य बन जाता है। आख का सारा खेल है। इसीलिए तो यह अनूठी घटना घटी कि महावीर भिखारी की तरह राह पर खड़े हो गये। लेकिन इनसे बडे सम्राट कभी किसी ने देखे? कि बुद्ध ने राजमहल छोड़ दिया, राह के भिखारी हो गये, कुछ भी उनके पास न रहा, लेकिन फिर भी जितना इस आदमी के पास था किसके पास कब रहा। जीवन को बड़ी से बड़ी सपदा मिलती है दृष्टि से, और कोई सपदा उसके मुकाबले बड़ी नहीं।

सम्मत्तस्य य लभो, तेलोक्कस्स य हवेज्ज जो लभो।
सम्मदसणलभो, वर खु तेलोक्कलभादो।।

मत चुनना तीन लोक की सपदा को, लोभ को, लाभ को। दृष्टि मिलती हो तो सब उसके लिए गवा देने जैसा है। सब गवाकर दृष्टि मिलती हो तो बचा लेना। और सब बचाकर दृष्टि खोती हो तो यह महगा सौदा मत कर लेना। अधे, आखहीन तो सिर्फ भटकते है, पहुचते नहीं। फिर गरीब हो कि अमीर, सफल हो कि असफल, सुखी हो कि दुखी, कुछ अतर नही पड़ता, मौत सबको मटियामेट कर देती है, और सब को मिला जाती है।

पथ मिलकर सभी एक होगे
तम घिरे यम के नगर मे।

वह जो अधा आदमी है, वह कुछ भी करे, मौत सबको एक ही जगह पहुचा देगी।

पथ मिलकर सभी एक होगे
तम घिरे यम के नगर मे।

सिर्फ दृष्टिवाला बच जाता है। मौत सिर्फ अधो को पकड़ पाती है। जिसके पास दृष्टि है, उसे मौत नही देख पाती। और जिनके पास दृष्टि नही है, उन्हे सिर्फ मौत ही दिखायी पड़ती है और मौत को वे दिखायी पडते है। हमारी दृष्टि पर सब निर्भर करता है।

तुमने कभी इस पर खयाल किया, विचार किया, ध्यान किया कि बहुत-बहुत अर्थो मे बहुत-सी चीजे अदृश्य होती है? जैसे समझो, एक चींटी यहा से गुजर रही हो, बहुत-सी चीटिया गुजर रही होगी। मै यहा बोल रहा हू, लेकिन चींटी के लिए जो मै बोल रहा हू, वह बिलकुल सुनायी न पड़ेगा। वह चींटी की सीमा के बाहर है। यहा वृक्ष खड़े है जो मै कह रहा हू, वह जैसे कहा ही नहीं गया। वे मौजूद है, लेकिन उनकी मौजूदगी का आयाम अलग है।

मैं एक कहानी पढ़ता था। एक हवाई जहाज जल गया बीच आकाश मे और एक युवती मर गई। वह युवती लदन जा रही थी। तो मरते वक्त उसे बस एक ही खयाल था कि अरे, लदन न पहुच पायी। वह पति की प्रतीक्षा कर रही थी। पति आतुर होकर प्रतीक्षा कर रहा होगा। बस एक ही धुन थी, उस धुन के कारण उसकी प्रेतात्मा सीधी लदन पहुच गयी। लेकिन वह चकित हुई लदन बिलकुल खाली था। लोग कहा खो गये। क्योंकि जब अपना शरीर खो जाये तो दूसरो के शरीर दिखायी नही पड़ते। उसे अभी तो खयाल मे नहीं आया था कि अपना शरीर खो गया। क्योकि यह शरीर खो भी जाता है तो सूक्ष्म शरीर तो खोता नही, वह बिलकुल इस जैसा ही है—इससे ज्यादा सुदर, इससे ज्यादा कमनीय, इससे ज्यादा सूक्ष्म, पर ठीक इसकी प्रतिलिपि। सचाई तो यह होगी कि यह शरीर उसकी प्रतिलिपि है। तो उसे अभी यह तो पता ही न चला था कि मेरा शरीर खो गया, लेकिन जब उसने लदन मे जाकर देखा, तो सारे घर खाली पडे है। मकानो से रोशनी निकल रही है, खिडकियो से रोशनी निकल रही है, लेकिन घर सन्नाटा है, कही कोई नहीं। वह थेम्स नदी के पुल पर खड़ी हो गयी जाकर। उसे भरोसा ही न हुआ कि जहा हजारो लोग निकलते रहते है, वहा कोई भी नही निकल रहा है। हजारो लोग अब भी निकल रहे है। लेकिन देह अपनी खो गयी तो दूसरी देह से सबध नहीं जुडता। लेकिन तभी अचानक उसे दिखायी पड़ा, उसका पति भी पुल से निकल रहा है। जब पति निकला तो उसे दिखायी पड़ा। क्योकि पति से एक लगाव था, एक घनीभूत वासना थी, प्रेम था। उस प्रेम के कारण एक सूत्र जुड़ा था। उस प्रेम के कारण वह पति के शरीर से ही नही जुडी थी, पति के सूक्ष्म शरीर से भी थोड़े सबध हुए थे। उस सूक्ष्म शरीर से सबध के कारण उसे पति थोडा-सा दिखायी पड़ा, पहले धुधला-धुधला, फिर रेखा उभरी, फिर साफ हुआ। लेकिन जब उसे पति दिखायी पड़ा तो चकित हुई कि जैसे ही उसे पति दिखायी पडा, और लोग भी दिखायी पड़ने लगे। क्योकि जब एक शरीर दिख गया तो दूसरे शरीर भी दिखाई पड़ने लगे। तत्क्षण पूरा लदन भरा था—एक क्षण मे—लदन खाली न था। हजारो लोग आ-जा रहे थे, मकान भरे थे।

यह कहानी मुझे बड़ी प्रीतिकर लगी, जिसने भी लिखी हो, बडी सूझ से लिखी है। कहानी तो कल्पित है, लेकिन सूझ गहरी है।

हमे वही दिखायी पड़ता है जहा हम है। अभी हमे शरीर दिखायी पड़ते है। इसलिए मौत से हमारा सबध होने ही वाला है। मौत हमे दिखायी पड़ेगी क्योकि शरीर की मौत होती है। इसलिए हम मौत से भयभीत है। जैसे ही दृष्टि जगती है और हमे दिखायी पड़ता है, हम शरीर नही है—मौत के हम बाहर हो गये। फिर मौत भी हमको नही देख सकती। वह भी हमको तभी तक देख सकती है जब तक हम शरीर है और शरीर मे है, और

माने हुए है कि हम शरीर ही है। जब तक हम शरीर के ठोसपन से जुड़े है, तभी तक हम मौत की सीमा मे है। जैसे ही हम शरीर के ठोसपन से मुक्त हुए, हम मौत के बाहर हुए।

इस जिदगी मे इन तीनो लोको मे जो भी मिल जाता है, वह बाहर-बाहर है। वह हमारा कभी नही हो पाता। जो बाहर है वह बाहर ही रह जाता है, उसे तुम भीतर ले जाओगे कैसे? तुम सपत्ति का ढेर लगा लोगे, ढेर बाहर लगेगा, भीतर कैसे लगाओगे? भीतर ज्यादा से ज्यादा हिसाब रख सकते हो, सपत्ति के आकडे रख सकते हो, वह भी बहुत भीतर नही, वह भी मन मे होगे, वह भी चैतन्य मे न पहुच पाएगे। चैतन्य तक तो आकडे भी नही पहुचेगे, सपत्ति तो बाहर रहेगी, गणित मन तक पहुच जायेगा। सपत्ति मन तक भी नही पहुचेगी, गणित भी न पहुच पायेगा चैतन्य तक। तुम्हारी चेतना तो पार ही रहेगी। तो जब तक भीतर की कोई सपदा न मिल जाये तब तक कोई सपदा काम की नही है।

'अधिक क्या कहे? अतीतकाल मे जो श्रेष्ठजन सिद्ध हुए और जो आगे सिद्ध होगे, वह इस एक सम्यक्त्व का ही परिणाम है। इसी एक सम्यकत्व का महात्म्य है।'

कि बहुणा भणिएण—क्या कहे ज्यादा अब? जे सिद्धा णरवरा गए काले—वह जो बीते समय मे हुए है सिद्ध । जैनो से कुछ लेना-देना नही है इसका। ये वचन शुद्ध उन सबके लिए है जो सिद्ध हुए है। इसमे वेदो के ऋषि और उपनिषदो के कवि सभी सम्मिलित है।

कि बहुणा भणिएण, जे सिद्धा णरवरा गए काले। जो-जो बीते समय मे, बीते काल मे बेशर्त महावीर कह रहे है, कोई शर्त नही लगायी है। नही तो कहते, कि जैन सिद्ध जो हुए है अतीत मे। जो अभी जागे है । जैन से क्या लेना-देना जागने का? जो जाग गये, वे सभी जिन है।

सिज्झिहिति जे वि भविया, त जाणइ सम्ममाहप्प।

—वे इसी सम्यकत्व के महात्म्य से उपलब्ध हुए है। वे इसी दृष्टि के, इसी जागरण से, इसी ध्यान, इसी समाधि से उपलब्ध हुए है।

'जैसे कमलिनी का पत्र स्वभाव से ही जल से लिप्त नही होता वैसे ही सत्पुरुष सम्यकत्व के प्रभाव से कषाय और विषयो से लिप्त नही होते।'

तो महावीर क्यो कर कहेगे, भाग जाओ ससार से। हा, किसी को स्वभाव के अनुकूल बैठता हो ससार से अलग हट जाना तो वह भागना नही है। जब किसी के घर मे आग लगती है और कोई आदमी भागकर बाहर आता है तो तुम उसको भगोडा तो नही कहते। तुम यह तो नहीं कहते, एस्केपिस्ट हो, पलायनवादी हो। अगर वह घर मे ही बैठा रहे और जल जाये तो तुम उसको मूढ़ जरूर कहोगे, लेकिन बाहर निकल आए तो भगोड़ा तो न कहोगे। किसी व्यक्ति को अगर ससार का जीवन तालमेल न खाता हो, उसके भीतर के सगीत मे न बैठता हो, उसकी लयबद्धता खडित होती हो, तो वह हट जाये। लेकिन वह भगोडा नही है। भगोडा तो वह है जो यह सोचता है कि ससार से हट जाने के कारण मुझे मोक्ष मिलेगा। जो ससार से हट जाने को मोक्ष पाने का साधन बनाता है, वह भगोडा है। मोक्ष का कोई सबध ससार से भाग जाने से नही है।

महावीर कहते है, 'जैसे कमलिनी का पत्र स्वभाव से जल से लिप्त नही होता वैसे ही सत्पुरुष, सम्यकत्व के प्रभाव से कषाय और विषयो से लिप्त नही होते।' वह अगर कषायो और विषयो के बीच भी खड़े रहे, जैसे कमलिनी का पत्र सरोवर मे पडा रहता है, तो भी लिप्त नही होते। एक दफा दिखायी पडना शुरू हो जाये, बस वह दृष्टि ही अलिप्तता बन जाती है।

दुनिया की महफिलो से उकता गया हू या रब
क्या लुत्फ अजुमन का जब दिल ही बुझ गया हो।

एक दफा वासना बुझ जाये, एक बार वासना की जगह दृष्टि का दीया जल जाये

दुनिया से कुछ लगाव न उक्बा की आरजू है
तग आ गये है इस दिले बे-मुद्दआ से हम।

और फिर न तो इस दुनिया का कोई लगाव रह जाता और न उस दुनिया की कोई आकाक्षा रह जाती है। जिनके मन मे उस दुनिया की कोई आकाक्षा रह गयी है—वह दुनिया इसी दुनिया का विस्तार है—वह दुनिया से अभी उकताए नही। जो सोच रहे है, स्वर्ग मे मजे करेगे, जो सोच रहे है स्वर्ग मे नचाएगे अप्सराओ को, जो सोच रहे है, स्वर्ग मे शराब के झरने बह रहे है, डुबकी लेगे—वे इस दुनिया से उकताए नही है। समझ उन्हे आयी नही, जागरण हुआ नही।

'सम्यक दृष्टि मनुष्य अपनी इद्रियो के द्वारा चेतन तथा

अचेतन तत्वो का जो भी उपयोग करता है, जो भी उपभोग करता है, वह सब कर्मो की निर्जरा मे सहायक होता है।'

महावीर कहते है, सभी उपभोग बाधता नहीं, क्योकि ध्यान भी करोगे तो भोजन करना होगा। तो ध्यान के लिए भी शरीर जरूरी होगा। वेश्या के घर जाना है तो भी शरीर से ही चलकर जाओगे और मदिर जाना है तो भी शरीर से ही चलकर जाओगे। किसी की हत्या करनी हो तो भी ऊर्जा चाहिए, भोजन से मिलेगी, और किसी की सेवा करनी हो तो भी ऊर्जा चाहिए, भोजन से ही मिलेगी। भोजन छोड देने का सवाल नही है, भोजन का सम्यक उपयोग कर लेने का सवाल है।

तो महावीर कहते है, 'सम्यक दृष्टि मनुष्य अपनी इद्रियो के द्वारा चेतन तथा अचेतन द्रव्यो का जो भी उपभोग करता है, वह सब कर्मो की निर्जरा मे सहायक होता है।' वह इसीलिए जीता है ताकि जीवन के पार जा सके। वह इसीलिए भोजन करता है ताकि भगवत्ता को पा सके। वह इसीलिए जल पीता है, ताकि शरीर तृप्त हो, शात हो, तो अतर्गमन हो सके। उसकी दृष्टि हर घडी उस भीतर के सत्य पर लगी रहती है। वह उसी के लिए सारे जीवन को उपकरण बना लेता है।

श्रीमद्भागवत मे एक वचन है स्वय हि तीर्थानि पुनन्ति सत। सत पुरुष तीर्थो को पवित्र करते है। तीर्थो के कारण कोई पवित्र नही होता, सत पुरुषो के कारण तीर्थ बन जाते है। जहा सत पुरुष बैठता है वही तीर्थ बन जाता है। जहा तीर्थकर चलते है वही तीर्थ बन जाते है।

गगा की खोज मत करो। तुम गगा कभी न पहुच पाओगे। तुम दृष्टि को, सम्यकत्व को उपलब्ध हो जाओ—गगा तुम्हारी खोज करती चली जाएगी। नदी, नाला कोई भी तुम्हारे पास से गुजर जायेगा, गगा जैसा पवित्र हो जायेगा। वास्तविक मूल्य, आत्यतिक मूल्य तुम्हारे चैतन्य का है।

'कोई तो विषयो का सेवन करते हुए भी सेवन नहीं करता।' यह वचन सुनना। यह गीता मे कहा गया होता तो अड़चन न होती, यह महावीर ने कहा है।

इसको बहुत गौर से, होश से सुनना।

'कोई तो विषयो का सेवन करते हुए भी सेवन नहीं करता और कोई न सेवन करते हुए भी विषयो का सेवन करता है। जैसे कोई पुरुष विवाह आदि कार्यों मे लगा रहने पर भी उस कार्य का स्वामी न होने से कर्ता नहीं होता।'

यह गीता मे तो बिलकुल ठीक था। तो कृष्ण की दृष्टि मे साफ था। लेकिन जैनो ने महावीर की दृष्टि को ऐसा लीपा-पोता है कि महावीर के ही वचन पराये मालूम पड़ते है।

महावीर यह कह रहे है कि कोई तो ऐसे है, जागे होने के कारण, सेवन करते हुए भी सेवन नही करते, भोजन करते हुए भी उपवासे है, ठेठ ससार मे खड़े हुए भी ससार के बाहर है। और कोई ऐसे भी है कि न सेवन करते हुए भी सेवन करते है। उपवास किए है, लेकिन भोजन की कल्पना, भोजन की वासना । ब्रह्मचर्य का व्रत लिए है, लेकिन कामवासना की लहरे । हिमालय पर बैठ गये है जाकर, लेकिन ससार की पुकार उन्हे अभी भी सुनायी पडती है।

तो असली सवाल बाहर से भाग जाने का नही है—भीतर से जाग जाने का है।

फिर तुम भोग कर भी त्यागी हो सकते हो। और अगर वैसा न हुआ तो तुम त्याग कर लोगे और भोगी ही रहोगे।

गो मै रहा रहीने-सितमहा-ए-रोजगार
लेकिन तेरे खयाल से गाफिल नही रहा।

रहा दुनिया की भीड मे, रहा बाजार मे, रहा उलझा ससार मे ।

गो मै रहा रहीने-सितमहा-ए-रोजगार

—काम-धधो मे उलझा हुआ, 'लेकिन तेरे खयाल से गाफिल नही रहा।' बस इतना ही कह सको तो काफी है। स्मरण बना रहा, सुरति सधी रही, ध्यान का धागा हाथ मे रहा—फिर रहो तुम बाजार मे, तुम कमलिनी के पत्र की भाति सरोवर मे पानी के बीच रहते हुए भी पानी से अस्पर्शित रहोगे।

महावीर कहते है, जैसे कोई आदमी विवाह इत्यादि का आयोजन करता है मुनीम, मालिक नही, तो बड़ी दौड़-धूप करता है, इतजाम करता है बैडबाजे लाओ, भोजन-पत्तल सजाओ, लेकिन चूकि वह मालिक नही है, इसलिए परेशान नही है। रात घर जाकर सो जाता है मजे से। कोई याद भी नही आती। काम था, कर दिया। कर्ता तो वह नही है। लेकिन मालिक चाहे दौड़-धूप भी न कर रहा हो, सिहासन पर बैठा हो, लेकिन रात सो न पायेगा। उसकी लड़की का विवाह हो रहा है। बड़ी चिताए पकड़ेगी। चिताए विवाह के कारण नही पकडती,

चिताए पकड़ती है—मेरी लड़की। जहा 'मेरा' है, ममत्व है, वही ससार है। जहा 'मेरा' नहीं, ममत्व नही, वही ससार खो गया। तो फिर तुम कर्ता-भाव से मुक्त होकर जो भी करो उसका कोई बध नहीं है।

'इसी तरह काम-भोग न समभाव उपस्थित करते है और न विकृति ।'

ये वचन तुम सोचना—जैसे किसी महातात्रिक ने कहे हो।

'इसी तरह काम-भोग न समभाव उपस्थित करते है और न विकृति या विषमता। जो उनके प्रति द्वेष और ममत्व रखता है, वह उनमे विकृति को प्राप्त होता है।'

न रखना द्वेष, न रखना ममत्व। जो हो, चुपचाप अपने बोध को सम्हाले, होने देना। जो हो स्थिति, स्मरण न खोये, आत्मस्मरण न खोये। बस, इतना काफी है।

तो महावीर बड़ी हिम्मत का वचन कह रहे है। वे कह रहे है काम-भोग भी न तो बाधते है, न उन्हे छोडने से कोई छूटता है। न तो काम-भोग से कोई बधन निर्मित होता है और न काम-भोग से कोई मुक्ति निर्मित होती है। हा, काम-भोग के प्रति द्वेष और ममत्व का भाव, उससे ही रज्जु निर्मित होती है जो बाधती है। तो तुम कोई ममत्व का भाव मत रखना और द्वेष मत रखना।

अब जिनको तुम ससारी कहते हो, जिनको तुम श्रावक कहते हो, इनका ममत्व है काम-भोग मे। तुम अपने सन्यासी को पूछो, उसका क्या है? उसका द्वेष है।

अगर तुम्हे कोई नग्न तस्वीरो वाली किताब मिल जाये तो तुम छिपाकर उसे देख लोगे, या गीता का कवर चढा दोगे ऊपर से और देख लोगे। बच न सकोगे। लेकिन उसी किताब को अगर तुम अपने मुनि महाराज के पास जाकर खोल दो, वह छलाग लगाकर खडे हो जायेगे, जैसे तुम साप-बिच्छू की पिटारी ले आये। वह तुम पर चीखने-चिल्लाने लगेगे कि यह तुमने क्या किया। भ्रष्ट कर दिया।

तुम्हारा ममत्व है, उनका द्वेष है। महावीर कहते है, दोनो ही खतरनाक है। कोई भी भाव बाध लेगा, फिर चाहे पक्ष का हो चाहे विपक्ष का हो। तुम ससार मे निर्लिप्त, ऐसे जीना कि जैसे तुम्हारा कोई भाव नहीं है। जो हो रहा है, ठीक है। न तुम पकड़ने को उत्सुक हो, न तुम छोड़ने को उत्सुक हो।

विनोबा के पास कोई पैसे ले जाये तो वे आख बद कर लेते है। पैसे से ऐसा क्या डर? पैसे मे ऐसा क्या बल? और अगर पैसे मे इतना बल है कि सतो को आख बद करनी पड़ती है तो फिर बेचारे ये ससारी अगर पैसे के बल से दबे है तो क्या आश्चर्य। किसी की आख एकदम फैल के दोगुनी हो जाती है और किसी की बद हो जाती है।

मै एक सज्जन को जानता था। उनको अगर दूसरे का भी नोट हाथ मे लग जाये तो वह उसको ऐसा पुचकार के छूते थे, वैसा कलाकार मैने नहीं देखा फिर दुबारा। बहुत लोग देखे। मगर दूसरे के नोट को भी पुचकार के छूते थे। सम्मान तो होना ही चाहिए था। उसको उलट-पलटकर देखते, उसको ऐसे छूते जैसे प्रेयसी हो।

एक तरफ ये है कि पैसे को देखते से उनकी जीभ से एकदम लार टपकने लगेगी, और दूसरी तरफ लोग है कि आख बद कर लेगे। लेकिन फर्क क्या हुआ? पैसे ने दोनो पर प्रभाव रखा। पैसे ने दोनो से कुछ करवा लिया।

महावीर कह रहे है कि पैसे मे ऐसा कुछ भी नही है—न तो लार टपकाने योग्य कुछ है और न आख बद करने योग्य कुछ है। जिस दिन न ममत्व, न द्वेष, दोनो नही रह जाते, न राग न विराग—उसी दिन वीतरागता उपलब्ध होती है।

'वीतराग' महावीर का बड़ा बहुमूल्य शब्द है। न राग न विराग, न पकड़ना न छोड़ना, कोई चुनाव नही, न इस तरफ न उस तरफ, न घृणा न मोह। अपने मे थिर हो जाना, अपने मे रम जाना, कि बाहर से कोई भी घटना घटे, तुम्हारे भीतर पक्ष-विपक्ष मे कोई भी विचार न उठे, भाव न उठे—ऐसी वीतराग दशा ही मोक्ष का द्वार है। महावीर इस दृष्टि को सर्वाधिक मूल्यवान कहते है।

तूफान से उलझ गए लेकर खुदा का नाम
आखिर निजात पा ही गये नाखुदा से हम

—माझी से छुटकारा पा लिया खुदा का नाम लेकर। लेकिन महावीर ने खुदा से भी छुटकारा पा लिया है। नाखुदा से तो छुटकारा पा ही लिया। किसी के पीछे तो वह चलते ही नही, कोई माझी नही है, लेकिन खुदा से, परमात्मा से भी छुटकारा पा लिया। उन्होने तो सीधा धर्म का विज्ञान निरूपित किया कि दृष्टि की शुद्धि ही तुम्हारी मार्गद्रष्टा है, वही सदगुरु है।

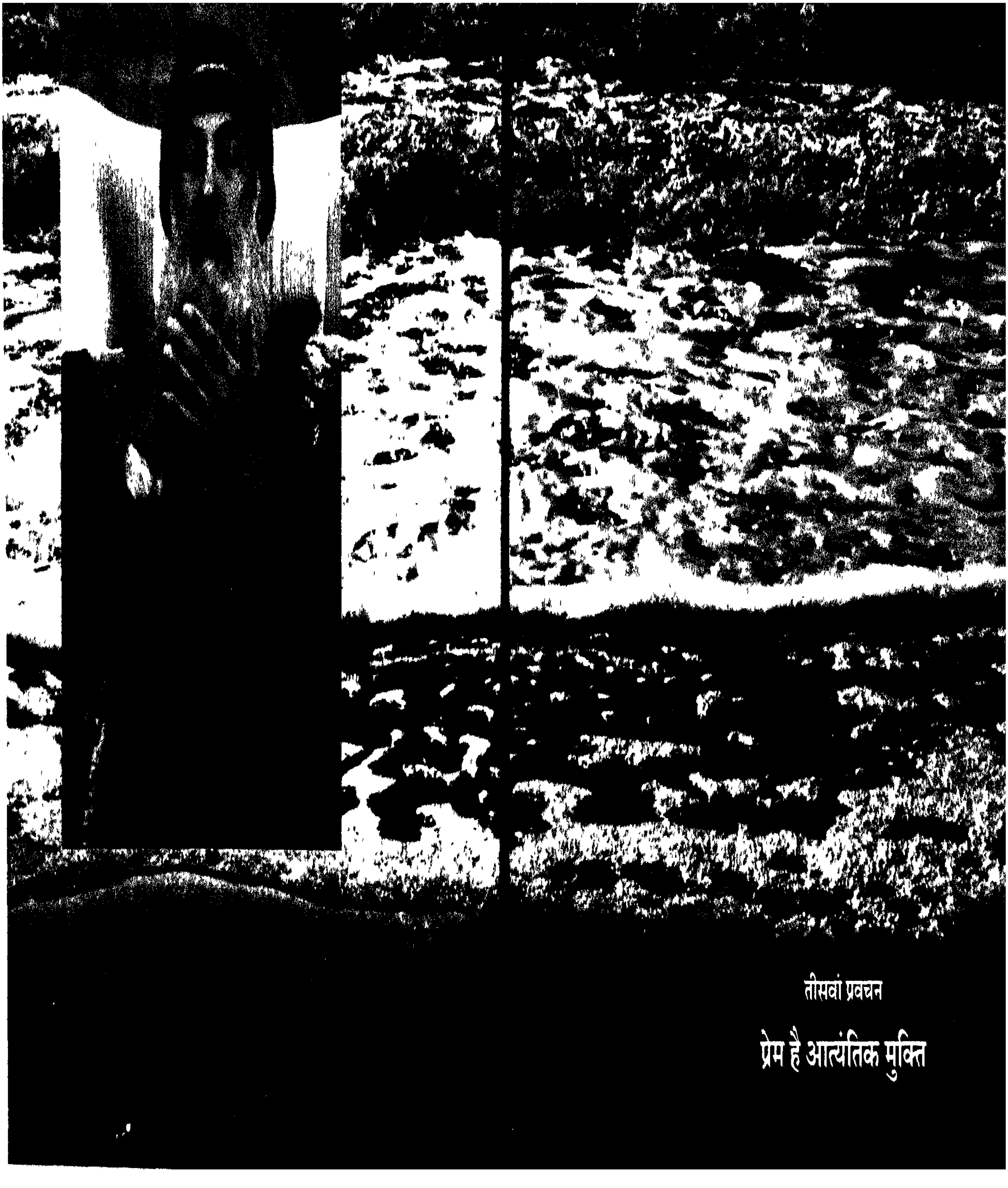
दृष्टि थिर हो जाये, अनुद्वेग सम्हल जाये, कोई उद्वेग न उठे।

घृणा का, प्रशंसा का, सफलता-विफलता का, भोग और त्याग का कोई उद्वेग न उठे, तो तुम निर्वाण के करीब आने लगे।

'अनुद्वेग श्रीयोमूल।' हिंदू शास्त्र कहते है, अनुद्वेग ही श्रेय का मूल है, निःश्रेयस का मूल है। यह अनुद्वेग दशा ही तुम्हे जल मे कमलवत बना देगी। और धन्यभागी है वे जो सबके बीच रहकर और सबसे अछूते रह जाते है।

आज इतना ही।





तीसवां प्रवचन

प्रेम है आत्यंतिक मुक्ति

प्रश्न-सार

नरहरि कैसे भगति करू मै तोरी
चचल है मति मोरी।

आपने कहा कि जहा उत्कट प्यास होगी वहा पानी को आना ही पडेगा।
अब पानी तो आ गया है; लेकिन क्या मै तुरत अजुलि भरकर पीना शुरू करू,
या पानी मुह तक आ जाए, इसकी प्रतीक्षा करू ?

आपके प्रति इतना प्रेम रहते हुए भी आपको सुनते वक्त कभी-कभी
अकुलाहट और क्रोध क्यो उठने लगता है ?

प

हला प्रश्न
नरहरि कैसे भगति करू मै तोरी,
चचल है मति मोरी।

भक्ति के मार्ग पर मन की चचलता बाधा नही है। भक्ति के मार्ग पर मन की चचलता साधन बन जाती है। वही भक्ति और ज्ञान का भेद है।

ज्ञान के मार्ग पर चचलता बड़ी बाधा है। क्योकि ध्यान उपजाना होगा। और ध्यान तो तभी उपजेगा जब मन की सारी कल्पनाए, सारे विचार, सारी तरगे सो जाये। ध्यान तो मन की अचचल दशा का नाम है। तो ज्ञान के मार्ग पर चचल मन शत्रु मालूम होता है। उससे सघर्ष करना होगा। लेकिन भक्ति के मार्ग पर चचल मन से कोई विरोध नही है। जो लहरे मन की ससार के लिए उठती है उन्हीं लहरो को परमात्मा के लिए उठाना है। लहरे बनी रहे—बस परमात्मा के लिए उठने लगे। तरगे उठती रहे, विचार हो, भावनाए हो, कोई अड़चन नही है—लेकिन उन सभी भावनाओ और तरगो और विचारो मे परमात्मा का रूप समा जाये। चचल मन भी उसके चरणो मे समर्पित हो जाये

इसलिए भक्ति बडी सहज है, और ज्ञान असहज है। भक्ति तुम्हारे स्वभाव का उपयोग करती है। ज्ञान, तुम जैसे हो, उसे इनकार करता है, और तुम जैसे होने चाहिए, उसके आदर्श को निरूपित करता है। भक्ति कहती है, तुम जैसे हो, ऐसे ही भगवान को स्वीकार हो। तुम भर भगवान को स्वीकार कर लो, भगवान ने तुम्हे स्वीकार किया ही हुआ है। उसके स्वीकार के बिना तुम हो ही न सकते थे। बुरे भले, जैसे हो, तुम उसके चरणो मे अपने को डाल दो। तुम उससे ही कह दो कि हमारे किए कुछ न होगा। कर-करके ही तो हम भटके। किया तो बहुत, कुछ भी न हुआ। अब तेरी मर्जी।

तो भक्ति और ज्ञान के फासले को समझ लेना। यह प्रश्न साधक का तो सम्यक है, लेकिन शब्दावली भक्त की है।

'नरहरि कैसे भगति करू मै तोरी
चचल है मति मोरी।'

यह शब्दावली तो भक्त की है। और यह प्रश्न साधक का है, भक्त का नहीं। इसे तुम स्पष्ट अलग-अलग कर लोगे तो सुलझाव हो जायेगा। अगर तुम साधक होने के मार्ग पर हो तो भक्ति का कोई सवाल नही है। 'नरहरि' का कोई सवाल नही है। तब तो तुम हो और तुम्हे अपने प्राणो को अपनी ही ऊर्जा से शुद्ध करना है। तब तुम अकेले हो, कोई सग-साथ नही है।

लेकिन, अगर तुम भक्ति के मार्ग पर हो तो 'नरहरि' तुम्हे घेरे खडा है, तुम्हारी श्वास-श्वास मे छिपा है। तुम जब चचल होते हो तब वही तुम्हारे भीतर चचल हो रहा है। ये लहरे भी उसी की है, यह सागर भी उसी का है।

यह सागर और लहर मे फासला क्यो करते हो? लहर हो सकती है सागर के बिना? सागर हो सकता है लहर के बिना? सागर होगा लहर के बिना तो मुर्दा होगा। उसमे प्राण ही न होगे। उसमे जीवन का कोई लक्षण न होगा। और लहरे हो सकती है सागर के बिना? असभव। न तो लहरे हो सकती है सागर के

बिना, अगर होगी तो किसी चित्र मे चित्रित होगी, वास्तविक न होगी, कागजी होगी। और सागर नही हो सकता लहरो के बिना, अगर होगा तो मुर्दा होगा। उसमे कोई जीवन न होगा। जीवन होगा तो हवाए भी उठेगी और जीवन होगा तो तरगे भी उठेगी। और जितना विराट सागर होगा उतने विराट तूफानो को झेलने की क्षमता होगी। ये लहरे भी उसी की है। यह मन भी उसी का। हम भी उसी के। यह तन भी उसी का।

भक्त की भाषा अलग है। इस प्रश्न मे उलझन है। यह प्रश्न साफ नहीं है। और जिसने भी ये दो पक्तिया रची होगी, उसके मन मे भी साफ नही थी बात कि वह क्या कह रहा है। उसके मन मे खिचडी रही। प्रश्न तो साधक का था, और भाषा भक्त की थी। ऐसी उलझन मे जो भी पडेगा वह बडे सकट मे पड जाता है—आत्मसकट मे। उसका मन दो खड़ो मे बट जाता है। वह टिकिट तो लेता है कलकत्ता जाने की और ट्रेन मे बैठ जाता है बबई की। तो वह सोचता है, टिकिट भी मेरे पास है, और वह सोचता है टिकिट-चैकर मुझे परेशान क्यो कर रहा है। टिकिट उसके पास है, लेकिन उसे किसी और दिशा मे जाना था। जहा वह जा रहा है, वहा की टिकिट उसके पास नही है।

ऋग्वेद मे एक परम वचन है 'ऋतस्य यथा प्रेत', जो प्राकृतिक है, वही प्रिय है। जो स्वाभाविक है, वही शुभ है। स्वभाव के अनुसार जीवन व्यतीत करो। ऋतस्य यथा प्रेत। यही लाओत्सु का आधार है ताओ। पूरे ताओ को इस ऋग्वेद के एक छोटे-से सूत्र मे रखा जा सकता है ऋतस्य यथा प्रेत।

जो प्राकृतिक, वही प्रिय। तुम श्रेय और प्रेय को तोडो मत। जो प्रीतिकर लग रहा है वही श्रेयस्कर है। प्रीतिकर लगना श्रेयस्कर की खबर है। कही पास ही श्रेय भी छुपा होगा। तुम श्रेय के द्वार को खोज लो।

इसलिए वेदो का जो ऋषि है, वह कोई भगोड़ा नही है। उसने जीवन का निषेध नही किया है। जीवन का परम स्वीकार है। परमात्मा ने जो दिया है, वह प्रसाद है। वह उसकी भेट है। उसका अस्वीकार कैसे हो? उसका त्याग कैसे हो?

त्याग का तो अर्थ ही होगा कि तेरी भेट हम राजी नहीं होते तेरी भेट से। तेरी भेट, भेट के योग्य नही। तूने जीवन दिया, यह ले वापिस।

दोस्तोवस्की के बड़े प्रसिद्ध उपन्यास 'ब्रदर्स करमाझोव' मे एक पात्र नाराज होकर ईश्वर से कहता है यह अपनी टिकिट तू वापिस ले ले। यह जीवन हमे नही चाहिए। सम्हाल अपने जीवन को। जीवन को जो त्यागकर जा रहा है, वह यही कह रहा है कि ये फूल हमे न भाये, ये फूल हमे शूल सिद्ध हुए। यह तूने जो वर्षा की थी, यह अमृत की नहीं थी, जहर की थी। और यह तूने हमे जीवन दिया था, यह देने योग्य न था। तूने किसे धोखा देना चाहा?

त्यागी यह कह रहा है कि हम छोडते है तेरे जीवन को, हमे आवागमन से छुटकारा चाहिए। त्यागी प्रकृति के विपरीत चलता है। वह नदी की धार के विपरीत लडता है। वह गगोत्री की तरफ बहता है, भक्त गगासागर की तरफ। भक्त कहता है, जहा ले जाये गगा। हम भी उसी के, गगा भी उसी की, हवाए भी उसी की। तो जहा भी पहुचा देगा वही मजिल होगी। और हम कौन है मजिल को तय करे। तो अगर मन मे तरगे उठती है तो उन्ही तरगो मे वह प्रभु के नाम को गुनगुनाता है।

इसलिए भक्त तुम्हे गुनगुनाता मिलेगा। ज्ञानी तुम्हे मौन मिलेगा। ज्ञानी बाहर से ही मौन नही है, भीतर से भी चुप है। शब्द उठा कि ससार उठा। वह ससार से ही नही डर गया, शब्द से भी डर गया है। भक्त तुम्हे बाहर भी गुनगुनाता मिलेगा, भीतर भी गुनगुनाता मिलेगा। लहरे उसे स्वीकार है। वह लहरो को बदलने की कीमिया जानता है। उसने लहरे भी परमात्मा के चरणो मे समर्पित कर दी है। वह इससे भयभीत नही होता। प्रकृति और उसके बीच कोई विरोध नहीं है। इनकार की भाषा उसे नहीं आती। वस्तुत भक्त के लिए इनकार की भाषा मे ही नास्तिकता छिपी है।

इसलिए ऐसा तो हुआ कि अनेक ज्ञानी नास्तिक हुए, लेकिन एक भी भक्त नास्तिक नही हुआ। यह तुम थोडा सोचना।

बुद्ध नास्तिक है। परमज्ञान को उपलब्ध हो गए, लेकिन नास्तिकता इससे नही छूटी है। महावीर नास्तिक है। परमज्ञान को उपलब्ध हुए, लेकिन परमात्मा की कोई जगह नहीं। क्योकि जब पूजा की ही जगह न हो तो परमात्मा की कैसे जगह हो सकती है? जब प्रार्थना की ही जगह न हो तो परमात्मा की कैसे जगह हो सकती है?

तो एक अनूठी घटना घटी कि बुद्ध और महावीर जैसे परमज्ञानी नास्तिक है। जब पश्चिम को पहली दफा पता चला

बुद्ध और महावीर का तो पश्चिम मे तो ईसाई शास्त्री समझ ही न सका यह, कि धार्मिक और नास्तिक, यह हो कैसे सकता है। क्योकि पश्चिम मे इस्लाम, यहूदी, ईसाई, तीनो ही भक्ति के सप्रदाय है। वो ज्ञान के सप्रदाय, उनमे कोई भी नही है। तो उन्होने एक ही तरह का ढग जाना था—भक्त का। यह उनके लिए असभव था कि भगवान के बिना भक्त हो कैसे सकता है। तो प्रथम-रूप जो किताबे लिखी गयी जैन धर्म और बौद्ध धर्म पर, पश्चिम के लेखको ने लिखी, उन्होने लिखा ये नीतिशास्त्र की व्यवस्थाए है, धर्म नही है। मारल कोड्स। क्योकि धर्म तो ईश्वर के बिना होगा कैसे? लेकिन धर्म ईश्वर के बिना हो सकता है। वस्तुत साधक का धर्म ईश्वर के बिना ही होगा।

भगवान, भक्त के हृदय का आविर्भाव है। वह पूजा का ही सघन रूप है। वह प्रार्थना ही पर्त दर पर्त जमती जाती है, तब परमात्मा बनती है। वह लहरे, तरगे अस्वीकार नही की गयीं, तभी सागर मिलता है। ज्ञानी तो धीरे-धीरे लहरो को अस्वीकार करके सागर को भी छोडकर मरुस्थल मे विराजमान हो जाता है।

ऋतस्य यथा प्रेत।

तो घबडाओ मत। उसने तरगे दी है, उसी को समर्पित कर दो। और उसी की बात उसे लौटा देने मे लगता क्या है?

सामवेद मे भी एक वचन है देवस्य पश्य काव्यम्। यह जो दिखायी पड़ रहा है, यह परमात्मा का प्रगट काव्य है। छिपा है वही पीछे। यह जो गुनगुनाहट दिखायी पड़ती है प्रकृति के नाम से, इसके पीछे उसी का कठ छिपा है। चाहे कोयल की कुहू-कुहू मे और चाहे कौवो की शिकायत मे—वही छिपा है। काव-काव हो कि कुहू-कुहू, अधेरी रात हो कि प्रकाश से भरा हुआ दिवस हो, और जन्म हो कि मृत्यु हो—सब तरफ उसी के हाथ है। यह काव्य उसका है।

देवस्य पश्य काव्यम्। यह जो दिखाई पड रहा है ससार, यह उसी का प्रगट काव्य है। जैसे कवि तो छिपा है और हमे केवल कविता हाथ लग रही है।

तुम्हारे भीतर भी जो तरगे उठा रहा है वह वही है। तुम भी उसी की तरग हो। तुममे उठी तरगे भी उसी की तरगे है।

तो यदि भक्त का तुम्हारे पास मन हो तो चिता मत करो। उसने तरगे उठाने योग्य तुम्हे समझा, इसके लिए धन्यवाद दो। उसने तुम्हे जीवन दिया। उसने तुम्हे रस दिया। उसने तुम्हे होने के हजार-हजार आयाम दिये। उसने तुम्हे प्रेम दिया, राग-रग दिए। स्वीकार करो। और स्वीकार करते ही तुम पाओगे कि दश चला गया। काटा नही चुभता फिर। भक्त तो कहता है

पकड़े जाते है फरिश्तो के लिखे पर, नाहक
आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर भी था?

भक्त तो भगवान से कहता है कि फरिश्तो ने जो हमारे सबध मे खबर दी है, उनका भरोसा मत करना। हमारे पाप-पुण्यो का जो लेखा-जोखा तुम्हारे फरिश्तो ने बताया है उसका भरोसा मत करना। 'आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर भी था?' अगर पूछना हो तो आदमियो से पूछना, क्योकि आदमी ही समझ पाएगे कि तुमने हमे ऐसा बनाया था। फरिश्तो को क्या पता कि तुमने कितना प्रेम भर दिया था हमारे रग-रेशे मे? फरिश्तो को क्या पता कि कितना नाच और कितनी तरगे तुमने दी थी? नही, इनकी बात पर भरोसा मत करना। अगर हमने भूल-चूक की हो तो तुमने करवायी थी। और अगर गवाह चाहिए हो तो आदमियो से पूछना, क्योकि वे हमे समझ सकेगे। क्योकि जैसे वे है वैसे हम है।

पकड़े जाते है फरिश्तो के लिखे पर, नाहक
आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर भी था?

अगर कोई चश्मदीद आदमी हमारा गवाह हो तो ही बात का भरोसा करना।

ईसाइयत कहती है कि जीसस होगे तुम्हारे गवाह। जीसस बाइबिल मे जगह-जगह दो वचनो का उपयोग करते है। कभी-कभी वे कहते है, मै हू ईश्वर-पुत्र। लेकिन इससे भी ज्यादा बार वे कहते है, मै हू मनुष्य का पुत्र। सन आफ मैन। बड़ा जोर है उनका इस बात पर कि मै आदमी का बेटा हू, जैसे ईश्वर का बेटा होना नबर दो है। और जीसस कहते है कि मै तुम्हारा गवाह हू। यह थोडे सोचने जैसी बात है।

इस्लाम मुहम्मद को ईश्वर का अवतार नही मानता, न तीर्थंकर मानता है—इतना ही मानता है, ईश्वर का भेजा हुआ दूत, लेकिन आदमी। यह बात महत्वपूर्ण है। यह महत्वपूर्ण इसलिए है कि आदमी ही आदमी का गवाह हो सकेगा। अगर राम तुम्हारे लिए गवाही देगे तो गड़बड हो जायेगी, क्योकि वे अपने मापदड से सोचेगे। उनके मापदड बड़े कठोर है, अति कठोर है, अमानवीय है, असभव है। कोई धोबी कह देता है अपनी पत्नी

को कि 'मै कोई रामचद्र नही हू कि सालो सीता रावण के घर रही और फिर भी उसे स्वीकार कर लिया। एक रात भी अगर तू घर नही रही, मै स्वीकार करनेवाला नही हू।' यह खबर काफी हो जाती है राम को सीता को त्याग देने के लिए। मर्यादा।

अब ऐसा व्यक्ति अगर तुम्हारे बाबत गवाही देगा तो तुम मुश्किल मे पडोगे। इसकी गवाही का मापदड बड़ा ऊचा होगा, अमानवीय होगा। तुम तो इसके सामने हर हालत मे पापी सिद्ध हो जाओगे।

इसलिए इस्लाम कहता है, मुहम्मद कोई ईश्वर के अवतार नही है। वे आदमी जैसे आदमी है। और आदमी की जो मुसीबते है, उसकी मुसीबते है। और आदमी की जो आतरिक पीड़ाए है। उनकी आतरिक पीडाए है। और आदमी के मन के जो भाव है, वेग है, वह उनके भाव, वेग है। उनकी गवाही का अर्थ है।

भक्त तो कहता है, तुमने जैसा बनाया वैसा मै हू। मैने स्वय को तो बनाया नही है। यह मन भी तुमने दिया है। मुझे तो सिर्फ मिला है। इसका कर्ता मै नही हू। इसलिए तुम जानो, तुम्हारी जिम्मेवारी है।

अगर भक्त को भगवान का स्मरण भी भूल जाता है तो भी वह बहुत चिता नहीं करता। वह कहता है, तुम्ही भुला रहे हो।

तू है तो तेरी फिक्र क्या,
तू नही, तो तेरा जिक्र क्या ?

अगर तू है तो हमने तेरी फिक्र न भी की तो भी तू है। और अगर तू नहीं है तो तेरा जिक्र भी करते रहे तो क्या सार ?

तू है तो तेरी फिक्र क्या,
तू नही, तो तेरा जिक्र क्या ?

और निश्चित ही आदमी कमजोर है, असहाय है। क्षणभर भाव से भर जाता है, क्षणभर बाद भाव का तूफान उतर जाता है, ज्वार उतर जाता है, सब भूल जाता है।

देखो मदिर मे आदमी को पूजा करते—कैसी पवित्रता झलकती है उसके चेहरे से। नमाज पढ़ते देखो किसी को—कैसा निर्दोष भाव आखो मे उतर आता है। चेहरे पर कोई अद्वितीय आभा आ जाती है। फिर इसी आदमी को बाजार मे देखो, किसी से लडते-झगड़ते, दुकान चलाते, तो तुम भरोसा ही न कर सकोगे कि वही आदमी है। मन है प्रतिपल बदला जाता अभी कुछ, अभी कुछ। मन तरगायित है। चचल होना मन का स्वभाव है। अगर उसकी याद भी आती है तो भी थिर नही हो पाती। किसी क्षण बड़े जोर से आती है, रोए-रोए को कपा जाती है। और कभी भूल जाता है तो दिनो निकल जाते है और याद नही आती। जब तुम्हे याद आती है, तब तुम चौकते हो, रोते हो कि अरे, इतने दिन भूला रहा।

लेकिन मनुष्य की यह नैसर्गिक स्थिति है। श्वास भीतर जाती है, फिर बाहर जाती है। तुम भीतर ही श्वास को रखना चाहोगे, मर जाओगे। भीतर जो आयी है वह बाहर जायेगी। बाहर जो गयी है वह फिर भीतर आयेगी। ऐसा प्रतिपल श्वास का आदोलन चलेगा। सभी स्थितियो मे विरोध रहेगा। दिन काम करोगे, रात सो जाओगे। एक क्षण तय करोगे, दूसरे क्षण निश्चय टूट जायेगा। ऐसे ही श्वास आती-जाती रहेगी। ऐसी ही लहरो पर नौका डोलती रहेगी।

अब दो उपाय है। एक तो ज्ञानी का उपाय है, जो कि बड़ा दुर्गम है, क्योकि स्वय से चेष्टा करनी पडेगी। अपने छोटे-छोटे हाथो से इस पूरे सागर को शात करना पडेगा। इसलिए महावीर को अगर हमने महावीर कहा तो ऐसे ही नही कहा। बड़ी घनघोर तपश्चर्या थी। दुर्धर्ष। जन्मो-जन्मो की तपश्चर्या थी, तब कही जाकर वह क्षण आया सौभाग्य का कि लहरे शात हुई। यह बड़ी लडाई थी। हा, जिन्हे लड़ने का शौक है वे इस रास्ते पर जा सकते है। यह रास्ता भी पहुचा देता है। भक्त ने तो प्राकृतिक रास्ते को चुना है।

और अगर तुम नैसर्गिक और स्वाभाविक ढग से, बिना बहुत जद्दोजहद के, बिना व्यर्थ का सघर्ष किए पहुच जाना चाहते हो तो भक्त का ही रास्ता है। उसी पर छोड़ दो। जो ज्ञानी जन्मो-जन्मो मे कर पाता है, भक्त क्षण मे कर लेता है। और जो क्षण मे हो सकता है उसको जन्मो-जन्मो मे करने की जिद्द, जिद्द ही है। जो क्षण मे हो सकता हो, उसे जन्मो-जन्मो तक करके क्या करना है ? इकट्ठा ही छोड़ सकते हो ।

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया। वह हजार सोने की अशर्फिया लाया। उसने उनके चरणो मे रख दी और कहा कि यह मुझे आपको देना है। रामकृष्ण ने कहा कि ठीक है, अब तू ले आया है तो लौटाऊगा तो तुझे बुरा लगेगा, ले लिया। ये मेरी हो गयी। अब तू इतना काम कर दे मेरी तरफ से इनको ले जाकर गगा मे डाल आ। यह मेरी हो गयी। अब तू इतना काम

और कर दे मेरे लिए कि इनको जाकर गगा मे डाल आ।

वह आदमी गया तो, लेकिन लौटा नहीं, बड़ी देर होने लगी। तो रामकृष्ण ने कहा कि जाओ, देखो वह क्या कर रहा है। वह वहा एक-एक अशर्फी को बजा-बजाकर, खनका-खनकाकर फेक रहा था पानी मे। भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। चमत्कार हो रहा था कि यह आदमी भी क्या कर रहा है। और वह एक-एक को बजाता, परखता, देखता, फेकता। तो देर लग रही थी। गिनती रखता—तीन सौ तीन, तीन सौ चार—ऐसा धीरे-धीरे जा रहा था। तो रामकृष्ण ने कहा, उससे जाकर कहो कि नासमझ, जब इकट्ठी करनी हो तो एक-एक अशर्फी को जाच-जाचकर, परख-परखकर गिनती कर-करके, खाते मे लिख-लिखकर करना पड़ता है। जब पूरी फेकनी है नदी मे तो हजार हुई कि नौ सौ निन्यानबे हुई कि एक हजार एक हुई। जब फेकना है तो इकट्ठा फेका जा सकता है, गिन-गिनकर वहा क्या कर रहा है?

भक्त कहता है, जब डालना ही है उसके चरणो मे तो गिन-गिनकर क्या डालना, इकट्ठा ही डाल देगे। और यह भी अहकार क्यो करना कि पुण्य ही उसके चरणो मे डालेगे।

यह भक्त की महिमा है। वह कहता है, पाप भी उसी के चरणो मे डाल देगे। यह भी अहकार हम क्यो रखे कि हम पुण्य ही तेरे चरणो मे चढ़ाएगे, पाप न चढ़ाएगे? इसमे भी बडी सूक्ष्म अस्मिता है छिपी हुई, कि मै और पाप तेरे चरणो मे चढाऊ। नहीं, पहले पुण्य का निर्माण करूगा, फिर चढ़ाऊगा। मै, और गलत तेरे चरणो मे आऊ—नही। आऊगा—सर्व सुदर होकर, सर्वांग सुदर होकर, महिमा से आवृत्त होकर—तब तेरे चरणो मे रखूगा। इसमे भी बड़ी अस्मिता है। भक्त कहता है, अब जैसा भी हू, दीन-हीन, बुरा-भला, सुदर-असुदर, स्वीकार कर लो।

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो
जमीन है न बोलती
न आसमान बोलता
जहान देखकर मुझे
नही जबान खोलता
नहीं जगह कही जहा
न अजनबी गिना गया
कहा-कहा न फिर चुका
दिमाग-दिल टटोलता
कहा मनुष्य है कि जो
उम्मीद छोड़कर जीया
इसीलिए अड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो।
पुकार कर दुलार लो
दुलार कर सुधार लो।

भक्त कहता है, तुम्हीं ! पुकारकर दुलार लो, दुलारकर सुधार लो। तुम्ही ।

भक्त की बड़ी अनूठी भाव-दशा है। भक्त को कुछ भी करना नहीं है, सिर्फ कर्तापन का भाव छोड़ना है। ज्ञानी को बहुत कुछ करना है—लबी यात्रा है। और मजा यह है कि ज्ञानी कर-करके भी अत मे यही कर पाता है कि कर्तापन का भाव छोड़ पाता है। वह उसकी अतिम सीढी है। भक्त की वही प्रथम सीढी है। इसलिए मै बार-बार कहता हू, ज्ञानी क्रमश चलता है, भक्त छलाग लगाता है। ज्ञानी सीढ़ी से उतरता है, भक्त छलाग लगाता है।

इसलिए महावीर के वचनो मे तुम्हे एक क्रमबद्धता मिलेगी, एक वैज्ञानिक शृखला मिलेगी। एक कदम दूसरे कदम से जुडा हुआ है। एक-एक कदम ब्योरेवार, साफ-साफ। सब इगित-इशारे है। पूरा नक्शा है। जगह-जगह मील के पत्थर है। कितने आ गये, कितना आगे जाने को है—सब लिखा है।

महावीर ने चौदह गुणस्थान कहे है और पूरी यात्रा को चौदह खंडो मे बाट दिया है। एक-एक खड का स्पष्ट मील का पत्थर है। तुम पक्की तरह जान सकते हो कि तुम कहा हो, कितने चल गये हो और कितना चलने को बाकी है। चौदहवे गुणस्थान के बाद ही यात्रा पूरी होती है।

भक्त के पास कोई गुणस्थान नही है। भक्त के पास कोई नक्शा ही नही है। भक्त के पास कोई क्रमबद्ध सीढ़िया नही है। भक्त को कुछ पता भी नहीं कि वह कहा है। वह इतना ही भर जानता है कि जहा भी हू, उसी का हू, जैसा भी हू, उसी का हू। बस इतना सूत्र उसके हृदय मे सघन होता चला जाता है।

और यह निर्भर करता है तुम पर, चाहो तो एक क्षण मे छलाग

लग जाये, चाहो तो तुम जन्मो-जन्मो तक छलाग का विचार करते रहो।

जो गणित से जीते है उनके लिए ज्ञान का रास्ता है। जो प्रेम से जीते है उनके लिए भक्ति का रास्ता है।

'नरहरि कैसे भगति करू मै तोरी
चचल है मति मोरी।'

उस चचल मति को उसके चरणो मे रख दो। कहना, ले सम्हाल। फिर अगर वह कहे कि नहीं, तुम्ही सम्हालो मेरे लिए, तो जैसे रामकृष्ण ने उस आदमी से कहा था कि जा मेरे लिए गगा मे फेक आ, तो तुम सम्हालना जब तक उसने तुम्हे दी है। वह अमानत है। तुम्हारा कुछ लेना-देना नही है। वह कहता है, सम्हाल मेरे लिए। अमानत है, तो तुमने सम्हाल ली है, जब मागेगा तब वापस लौटा देगे।

दूसरा प्रश्न दो दिन पहले सध्या के दर्शन मे आपने एक युवती से कहा था, श्रद्धा करो। और मैने भी आपकी बात पर श्रद्धा की कि जहा उत्कट प्यास होगी वहा पानी को आना ही पड़ेगा। अब पानी तो आ गया है, लेकिन क्या मै तुरत अजलि भर के पीना शुरू करू या पानी मुह तक आ जाये, इसकी धैर्य से प्रतीक्षा करू ?

तुम्हारी जैसी मर्जी।

साधना के जगत मे हर जगह भक्त और साधक का फर्क है। साधक तत्क्षण अजलि भरकर पी लेगा। भक्त थोडी मान-मनौवल चाहता है। वह कहता है, भगवान कहे, 'पीयो।' थपथपाए कि 'चलो पीयो भी। माना कि बहुत देर प्यासे रहे, अब तो पी लो।' तो वह रूठकर खड़ा हो जाता है।

झुकाया तूने, झुके हम, बराबरी न रही
यह बंदगी हुई ऐ दोस्त। आशिकी न रही।

वह बड़े मान-मनौवल लेता है। वह कहता है, 'झुके ? क्यो झुकें?' और वह यह इसीलिए कह पाता है, 'क्यो झुके', क्योकि वह झुका तो है ही।

सब उसने छोड़ा है तो यह हक अर्जित किया है कि वह थोड़ा रूठने-मनाने का खेल खेल सकता है।

साधक के सामने जब पानी आता है तो वह तत्क्षण पी लेता है, क्योकि ऐसे ही तो बहुत प्रतीक्षा की उसने। और वह सदा डरा होता है कि कही छूट न जाये, आया हुआ कहीं खो न जाये। जिसने, इतने श्रम से आया है, इतनी लबी यात्रा करके आया है, तब कहीं पानी के दर्शन हुए, वह तो एकदम झुक जाता है और पीने मे लग जाता है। लेकिन भक्त को तो बिना कुछ किए मिलता है। वह कोई लबी यात्रा करके आया नही है। 'उसके' प्रसाद से मिलता है। 'उसकी' अनुकपा से मिलता है। उसने कुछ अर्जित किया, ऐसा नहीं है। उसने किसी योग्यता के बल पर पाया, ऐसा नही। उसने तो अपनी अपात्रता को जाहिर करके, उसके ही हाथ मे सब छोडकर पाया है। तो वह चाहे तो थोड़ी मान-मनौवल कर सकता है। रुक सकता है। वह कहता है, 'आने दो, थोडा और जल को बढ़ने दो। इतना आ गया है तो ओठ तक भी आ ही जायेगा। तब पी लेगे। अजुलि भी क्यो बाधे ? और जिसने इतनी कृपा की है कि जल को ले आया है इतने करीब, वह इतनी और भी करेगा।'

उल्फत का जब मजा है कि वह भी हो बेकरार
दोनो तरफ हो आग बराबर लगी हुई।

और भक्त को तो जैसे-जैसे भक्ति मे गहराई आती है, वैसे-वैसे यह बात दिखाई पड़ने लगती है कि मै ही उसे नहीं खोज रहा हू, वह भी मुझे खोज रहा है। सचाई भी यही है। प्यासा ही जलस्रोत को नही खोज रहा है, जलस्रोत भी प्रतीक्षा कर रहा है कि आओ। क्योकि जब प्यासा जलस्रोत पर तृप्त होता है, तब जलस्रोत भी तृप्त होता है। प्यासे की ही प्यास नहीं बुझती, जलस्रोत की भी जन्मो-जन्मो की प्यास बुझती है। जलस्रोत का सुख यही है कि किसी की प्यास बुझे।

तुम ही खोज रहे हो परमात्मा को, अगर ऐसा ही होता और उसे कोई प्रयोजन नहीं है तुमसे, तो खोज पूरी भी होती, इसकी सभावना नहीं है। क्योकि अगर उसको रस ही न हो खोजे जाने मे, तो तुम कैसे खोज पाते ? तुम खोज पाते हो, क्योकि वह भी चाहता है तुम खोज लो। वह ऐसी जगह खड़ा होता है कि तुमसे मिलन हो जाये। वह ऐसे तुम्हारे पास ही आकर खड़ा हो जाता है कि तुम जरा ही खोजबीन करो कि मिलना हो जाये।

तुमने बच्चो को देखा है न, छिया-छी खेलते, बस वही खेल है। वे कोई ज्यादा दूर नही चले जाते कि फिर तुम खोज ही न पाओ। वही कमरे मे बिस्तर के पीछे छिपे है, कि पलग के नीचे

चले गए है। तुमको भी पता है, उनको भी पता है।

जिसको पता है वह भी दो-चार चक्कर लगाकर बिस्तर के नीचे आ जाता है कि अरे। और इस तरह चमत्कृत होता है कि जैसे कुछ पता न था। हालाकि वह आख बद किये खड़ा था, लेकिन उसने थोड़ी-सी आख खोलकर देख लिया था कि कहा जा रहे हो। सबको पता है।

इसलिए हिदू इस जगत को लीला कहते है। छिया-छी है।

परमात्मा भी तुम्हे खोज रहा है। तुम्हीं अकेले नहीं हो खोज मे। यह तुम्हारा हाथ ही उसके हाथ की तरफ नहीं बढ़ा है, उसका हाथ भी तुम्हारे हाथ की तरफ बढा है। शायद तुमने हाथ बढ़ाया, उससे पहले ही उसने हाथ बढ़ा दिया है। तुम्हे जब से बनाया, तब से ही हाथ बढाए खड़ा है। तुमने बड़ी देर कर दी है।

उल्फत का जब मजा है कि वह भी हो बेकरार
दोनो तरफ हो आग बराबर लगी हुई।

—आग दोनो तरफ बराबर लगी हुई है। प्यासा वह भी है कि तुम आओ।

वैज्ञानिक कहते है, सूरज निकलता है, फूल खिलते है। अब तक ऐसा ही समझा जाता रहा है कि यह एकतरफा लेन-देन है सूरज निकला, फूल खिले। सूरज तो बहुत कुछ देता है फूलो को। सूरज के बिना तो फूल खिल न सकेगे। कवियो को सदा इस बात पर सदेह रहा है और अब कुछ वैज्ञानिको को भी सदेह होना शुरू हुआ है। और वह सदेह यह है कि एकतरफा तो जगत मे कुछ भी नहीं हो सकता। यहा तो सब लेन-देन सतुलित है। यहा तो दोनो तराजू समान होने चाहिए। अन्यथा अव्यवस्था हो जायेगी। सूरज देता रहे, फूल लेते रहे, सूरज देता रहे, फूल लेते रहे—तो एक दिन सूरज का दिवाला निकल जायेगा। और फूलो के पेट इतने बड़े हो जाएगे कि वे अपने को सम्हाल न पाएगे। नहीं, फूल भी कुछ दे रहे होगे। और सुबह जब सूरज निकलता है तो फूल ही नहीं खिलते, सूरज भी फूलो को खिला देखकर खिलता होगा।

यह अब तक तो कविता रही है। लेकिन अभी इधर दस वर्षो मे वैज्ञानिको को इस पर सदेह आने लगा है और शक होने लगा है कि यह कविता कहीं सच ही न हो। क्योकि सब तरफ जीवन मे लेन-देन बराबर है। तुम जिसे प्रेम देते हो, तत्क्षण उससे प्रेम पाते हो। अगर तुम ही प्रेम दे रहे हो और दूसरी तरफ से प्रेम नहीं लौटता, तुम जल्दी ही थक जाते हो। तुम उदास हो जाते हो। तुम अपने रास्ते पर लग जाते हो। तुम सोचते हो, यह द्वार अपने लिए नहीं। तुम अगर मित्रता बाट रहे हो और दूसरी तरफ से मित्रता के लिए कोई प्रतिसवेदन नहीं होता, कोई सवाद नही उठता, दूसरे हृदय से कुछ खबर नहीं आती कि तुम्हारी मित्रता स्वीकार की गयी, अस्वीकार की गयी, चाही गई थी, नहीं चाही गई थी, दूसरा प्रसन्न हुआ कि नहीं प्रसन्न हुआ, दूसरा अगर तटस्थ ही खड़ा रहे उपेक्षा से—तो जल्दी ही मित्रता सूख जाती है। सींचना तभी सभव हो पाता है जब दोनो तरफ से बह चले, आये भी जाये भी, लौटे। और जब तुम किसी को प्रेम देते हो और प्रेम वापस लौटता है तो हजार गुना होकर लौटता है। फिर तुम देते हो, फिर हजार गुना होकर लौटता है। दो प्रेमी एक-दूसरे को देकर इतना पा लेते है जितना उन्होने दिया कभी भी नही था, क्योकि दोनो की तरफ हजार गुना होकर लौटने लगता है।

दो प्रेमियो का जोड केवल जोड़ नही होता, गुणनफल होता है। जो अतिम हिसाब है उसमे ऐसा नही होता कि तीन + तीन = छह। उसमे ऐसा होता है तीन × तीन से = नौ। गुणनफल की तरह चलती है, बढ़ती जाती है सख्या। बड़ा होता चला जाता है। दोनो प्रेमी छोटे हो जाते है और दोनो के आसपास आने-जानेवाला प्रेम बहुत बडा हो जाता है। दोनो प्रेमी दो तट की भाति हो जाते है और प्रेम की गगा बडी होने लगती है। लेकिन यह तभी सभव है जब लौटता भी हो।

मेरी भी दृष्टि यही है कि फूल भी लौटाते है। और जिस दिन पृथ्वी पर एक भी फूल न होगा, उस दिन सूरज ऊगना न चाहेगा। ऊगने का कोई अर्थ न रह जायेगा। किसके लिए?

मै यहा बोल रहा हू। तुम अगर समझते हो तो ही बोल सकता हू। तुम्हारी आख से, तुम्हारे भाव से, तुम्हारी मुद्रा से अगर समझ को लौटते हुए देखता हू तो ही बोल सकता हू। अन्यथा फिर दीवालों से बोलने मे और तुमसे बोलने मे कोई फर्क न रह जायेगा। फिर दीवालो से ही बोल ले सकता हू। तुम दीवाल नहीं हो। इसलिए धीरे-धीरे मैने भीड़ मे बोलना बद कर दिया, क्योकि मैंने पाया कि वहा बड़ी दीवाल खड़ी है। भीड़ तो खडी होती है, लेकिन दीवाल की तरह खड़ी होती है। वहा सवेदनशील चित नही है। तो मै बोलता हूं, लेकिन लौटता कुछ भी नहीं। और अगर लौटता न हो, कम से कम समझ न लौटती

हो, आखो की झलक न लौटती हो, जरा-सी रोशनी है, तुम्हारी आख मे कौध जाती है, अगर वह न लौटती हो, तो बोलना व्यर्थ हो जाता है।

मै कहता हू, सूरज नही ऊगेगा, जिस दिन फूल नहीं खिलेगे। यह तो हम जानते है कि फूल नही खिलेगे अगर सूरज नही ऊगेगा। दूसरी बात भी इतनी ही सुनिश्चित है। फूलो की तरफ से किसी ने अभी बहुत गवाही नही दी। फूलो की तरफ से खोज नहीं हुई। फूल छोटे-छोटे है, सूरज बडा है।

लेकिन आदमी के जगत मे उलटी हालत है। आदमी छोटा है और कहता है, हम परमात्मा को खोजते है। और परमात्मा बडा है, सूरज की भाति। परमात्मा तुम्हे खोज रहा है। तुम छोटे-छोटे फूल हो। वह तुम्हारी तलाश कर रहा है। उसकी किरणे तुम्हे आकर घेर लेना चाहती है, तुम्हारे साथ हवाओ मे नाचना चाहती है। इसे अगर स्मरण रखा तो कोई डर नही है, थोड़ी देर रुक जाना। जो छाती तक आ गया है पानी, वह ओठो तक भी आ जायेगा। वह तुम्हे डुबा लेना चाहता है अपने मे। वह डूबकर बड़ा मस्त होगा। वह डुबाकर बड़ा मस्त होगा। वह तुम्हे अपने मे आत्मसात कर लेना चाहता है। तुम उसी की ऊर्जा हो—दूर भटक गयी। वह तुम्हे पाकर वैसा ही प्रसन्न होगा जैसे कोई प्रेयसी, उसका पति खोया हुआ वापिस लौट आए, या कोई मा, उसका बेटा खोया हुआ वापिस लौट आए, या कोई बाप।

यह आनद एकतरफा होनेवाला नही है। इस जगत मे एकतरफा कुछ भी नही है। इसे तुम जीवन का बुनियादी सत्य समझो। यहा जहा भी एक तरफ तुम कुछ देखो, समझना कि दूसरी तरफ भी कुछ हो रहा है। यहा ताली एक हाथ से नही बजती।

तो भक्त अकेला ही ताली न बजा पाएगा। और भक्त अकेला भजन न कर पायेगा। और भक्त अकेला कीर्तन न कर पायेगा। अगर पाए न कि भजन मे वह भी सम्मिलित है, कहीं पीछे खडा वह भी गुनगुना रहा है, और कीर्तन मे अगर पाए न कि वह भी नाच रहा है—कितनी देर भक्त अकेला चल पाएगा? ईधन जल्दी ही चुक जायेगा। वही है जो ईधन को डाले चला जाता है। इसलिए अगर साधक हो और बड़ी मेहनत से पहुचे हो जलस्रोत पर, तो अजुलि भरकर पीना ही पड़ेगा, तुम देर तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। क्योकि साधक मानता है, मै ही खोज रहा हू, परमात्मा मुझे नहीं खोज रहा है। परमात्मा का साधक को कोई बडा सवाल ही नही है। साधक सत्य खोजता है। सत्य का अर्थ होता है तटस्थ। भक्त भगवान खोजता है। भगवान का अर्थ होता है व्यक्ति, प्रेम से लबालब। सत्य रूखा शब्द है। सत्य मे तर्क की भनक है, गणित का स्वाद है। सत्य शब्द मे कोई रसधार नही है, मरुस्थल जैसा है। अब तुम लगाओ सत्य को छाती से, तुमको पता चलेगा। तो तुम तो लगा रहे हो, लेकिन सत्य बिलकुल हाथ नही फैला रहा। जैसे तुम किसी खभे को छाती से लगा रहे हो, ऐसा सत्य छाती से लगेगा।

'भगवान।' भक्त यही कह रहा है कि अस्तित्व तुम्हारे प्रति तटस्थ नही है। इतना ही अर्थ है भगवान शब्द का। भगवान से कोई मतलब नही है कि कोई बैठा है आकाश मे व्यक्ति की तरह। यह शब्द तो सूचक है। यह तो इतना कह रहा है कि अस्तित्व तुम्हारे प्रति उदासीन नही है। अस्तित्व तुम्हारे प्रति प्रेम से लबालब है, भरा हुआ है। यह सत्य नही है, बल्कि प्रेम है।

इसलिए जब जीसस ने कहा कि परमात्मा प्रेम है तो उनका यही अर्थ था। कह सकते थे, परमात्मा सत्य है। गाधी ने कहा ही है ट्रुथ इज गाड, सत्य परमात्मा है। लेकिन सत्य बडा रूखा-सूखा शब्द है, जैसे किसी तर्क का, गणित का, हिसाब का शब्द है। इसमे भगवान का रस नही। सत्य को परमात्मा कहने का अर्थ है कि परमात्मा नही है, सत्य है। फिर सत्य को खोजना पड़ेगा। सत्य तुम्हे नही खोजेगा। सत्य को क्या पड़ी है? सत्य मे तो कोई प्राण भी नही हो सकते। जब सत्य मे प्राण होते है और भीतर ज्योति का दीया जलता है, तब वह परमात्मा हो जाता है, तब वह सत्य नही रह जाता। इसलिए जीसस ज्यादा सही है, जब वे कहते है परमात्मा प्रेम है या प्रेम परमात्मा है।

तो अगर तुमने भक्त की तरह से छलाग लगायी है तो कोई फिक्र नहीं, रुके रहना, ठहरे रहना—वह बढ़ेगा। तुम जितनी जिद करोगे उतनी तीव्रता से बढ़ेगा। तुम्हारी जिद्द भी तुम्हारे भरोसे की अभिव्यक्ति होगी। तुम्हारी जल्दबाजी अधैर्य की, तुम्हारी प्रतीक्षा तुम्हारे धैर्य की।

खुद्दारिया यह मेरे तजस्सुस की देखना
मजिल पर आकर अपना पता पूछता हू मै।

भक्त कहता है, देखो मेरी तलाश का स्वाभिमान कि मजिल पर आ गया हू और मजिल पर आकर अपना पता पूछता

हू। छिया-छी।

भक्त कभी-कभी बड़े स्वाभिमान से भी बात करता है। भक्त ही कर सकता है स्वाभिमान से बात, क्योंकि जिसका कोई अहकार नहीं वही स्वाभिमान से बात कर सकता है।

महाराष्ट्र मे प्यारी कथा है विठोबा के मदिर की, कि एक भक्त अपनी मा की सेवा कर रहा है और कृष्ण उसे दर्शन देने आए है। उन्होने द्वार पर दस्तक दी है। तो उसने कहा, अभी गड़बड़ न करो, अभी मै मा के पैर दाबता हू। लेकिन कृष्ण ने कहा, सुनो भी मै कौन हू। जिसके लिए तुमने सदा प्रार्थना की और सदा पुकारा, वही कृष्ण हू। इतनी मुश्किल और इतनी प्रार्थनाओ के बाद आया हू।' तो उसके पास एक ईट पड़ी थी, उसने ईट सरका दी, लेकिन उस तरफ देखा नही, और कहा, 'इस पर बेठो, विश्राम करो, जब तक मै मा के पैर दाब लू।' वह रातभर पेर दाबता रहा और कृष्ण उस ईट पर खडे-खड़े थक गये और मूर्ति हो गये होगे। तो विठोबा की मूर्ति है वह ईट पर खडी है। मगर गजब का भक्त रहा होगा—गजब का भरोसा रहा होगा।

खुद्दारिया यह मेरे तजस्सुस की देखना।

—यह स्वाभिमान मेरी खोज का।

मजिल पर आकर अपना पता पूछता हू मै।

कृष्ण को भी खडा रखा। कृष्ण को भी ईट पर खड़ा कर दिया। भक्त का भरोसा इतना है, भक्त की श्रद्धा इतनी है कि जल्दी क्या है। बेचैनी क्या है। भक्त को भगवान मिला ही हुआ है। भगवान लौट जायेगा, यह तो सवाल ही नही उठता। लौट भी जायेगा तो जायेगा कहा।

इसलिए अगर भक्त की दशा हो और खेल थोड़ी देर और चलाना हो, तो जलस्रोत सामने फूट पड़े, तुम्हे छाती तक डुबा ले, तो भी खड़े रहना, कोई हर्जा नही। आएगा। वह भी आ रहा है, तुम्हे खोज रहा है। वह ओठो तक भी आयेगा। लेकिन अगर बहुत चेष्टा से आए हो तो इतना धैर्य मत करना। क्योंकि जो चेष्टा से मिलता है वह क्षण मे खो भी सकता है। मन की किसी भाव-दशा मे जलस्रोत दिखाई पड़ता है, भाव-दशा बदल जाये, खो जायेगा। अगर मन की तरगो पर कब्जा पाकर, ध्यानस्थ होकर, उसके जलस्रोत की झलक मिली हो तो जल्दी पी लेना, क्योकि तरगो का क्या पता, विचार फिर आ जाये, फिर चूक जाओ।

साधक कई बार चूक जाता है पहुच-पहुचकर, क्योकि साधक का पहुचना मन की एक खास दशा पर निर्भर करता है। वह दशा बडी सकीर्ण है और बडी कठिन है। उसे क्षणभर भी बाधकर रखना बहुत मुश्किल है। महावीर ने कहा है, अड़तालीस सैकिड तुम ध्यान मे रह जाओ तो सत्य की उपलब्धि हो जायेगी। अडतालीस सैकिड। अडतालीस सैकिड भी मन को ध्यान की अवस्था मे रखना कठिन है।

लेकिन भक्त तो चौबीस घटे भी भगवान के भाव मे रह सकता है। वह भूलता भी है तो भी उसी को भूलता है, याद भी करता है तो भी उसी की याद करता है—लेकिन उससे कभी नही छूटता। उसका भूलना भी उसी का भूलना है। अगर पीठ भी करता है तो उसी की तरफ करता है और मुह भी करता है तो उसी की तरफ करता है। भक्त की बड़ी अनूठी स्थिति है।

तो तुम पर निर्भर है, पूछनेवाले पर निर्भर है। अगर बामुश्किल खोज पाए हो तो जब पहुच जाओ पास तो देर मत कर देना, एकदम पी लेना। कौन जाने, कही पास आया हुआ स्रोत फिर न खो जाये। हा, अगर भक्त हो तो थोडा मजा और खेल का ले सकते हो। और पहुचकर खेल का जो मजा है वह और ही है। पहले तो हम तड़फते है, डरे हुए रहते है, परेशान रहते है, बेचैन रहते है।

इसलिए तुमने अकसर देखा, मजिल पर जब लोग पहुच जाते है तो सामने ही बैठ जाते है विश्राम के लिए। वैसे चलते रहे, बड़े मीलो चलकर आए होगे, लेकिन ठीक जब द्वार पर आ जाते है तो सोचते है ठीक, सीढियो पर बैठ जाते है विश्राम करने के लिए। अब कुछ देर नहीं, लेकिन अब पहुच ही गए तो अब जल्दी भी क्या है।

तीसरा प्रश्न आपके प्रति इतना प्रेम रहते हुए भी आपको सुनते वक्त कभी-कभी अकुलाहट और क्रोध क्यो उठने लगता है?

प्रेम है—इसीलिए।

तुम्हारा प्रेम क्रोध से मुक्त तो अभी नही हो सकता। तुम्हारे प्रेम मे तो क्रोध अभी होगा ही। तुम्हारी दोस्ती मे तुम्हारी दुश्मनी भी अभी होगी। क्योकि तुम बटे-बटे हो। अभी तुम एकरस नही।

अभी तो तुम जिससे प्रेम करते हो, उसी को क्रोध भी करते हो। अभी तो तुम जिस पर श्रद्धा करते हो, उसी पर अश्रद्धा भी करते हो। अभी तो तुम विरोधाभासी हो। अभी तो तुम्हारा चित्त एक द्वंद्व की अवस्था मे है—जहा विपरीत से छुटकारा नही हुआ, जहा विपरीत मौजूद है। तो अगर तुम मुझे प्रेम नहीं करते तो जरूर कोई नाराजगी न होगी।

तुमने देखा, अगर किसी को दुश्मन बनाना हो तो पहले दोस्त बनाना जरूरी है। तुम बिना दोस्त बनाए किसी को दुश्मन बना सकते हो? कैसे बनाओगे? कोई उपाय नही। दोस्ती दुश्मनी मे बदल सकती है, दुश्मनी दोस्ती मे बदल सकती है, लेकिन सीधी दुश्मनी बनाने का कोई उपाय नही। हम नाराज उन्ही पर होते है जिनसे हमारा लगाव है। अपनो से हम नाराज होते है, परायो से तो हम नाराज नहीं होते।

तो मुझसे अगर तुम्हारा लगाव है तो बहुत बार नाराजगी भी होगी। उससे कुछ घबड़ाने की जरूरत नहीं— वह प्रेम की छाया है। उससे कुछ चिंतित भी मत हो जाना। क्योकि उससे अगर तुम चिंतित हुए तो खतरा है। खतरा यह है कि तुम अगर उस पर बहुत ज्यादा ध्यान देने लगे चिंतित होकर, तो कही वही तुम्हारे ध्यान से मजबूत न होने लगे। स्वीकार कर लेना कि ठीक है, प्रेम है तो कभी-कभी नाराजगी भी हो जाती है। लेकिन उस पर ज्यादा ध्यान मत देना। ध्यान देने से, जिस पर भी हम ध्यान दे वही बढ़ने लगता है। ध्यान भोजन है।

इसीलिए तो हम बहुत रस लेते है। अगर कोई तुम्हारे प्रति ध्यान न दे तो तुम कुम्हालने लगते हो। मनोवैज्ञानिक कहते है, बच्चे को अगर मा का ध्यान न मिले तो बच्चा, भोजन सब तरह से मिले, चिकित्सा मिले, सुविधा-सुख मिले, तो भी कुम्हला जाता है। ध्यान मिलना चाहिए। ध्यान पाने के लिए बच्चा तड़फता है, रोता है, चीखता है। तुमने देखा, बच्चे को कह दो, 'घर मे मेहमान आ रहे है, शोरगुल मत करना'। वैसे वह शाति से बैठा था, खेल रहा था अपने खिलौनो से, मेहमान के आते ही वह शोरगुल मचाएगा। क्योकि इतने लोग घर मे मौजूद है, इनका ध्यान आकर्षित करने का मौका वह नही चूक सकता। और वह एक ही रास्ता जानता है ध्यान आकर्षित करने का कि कुछ उपद्रव खड़ा कर दे।

ध्यान भोजन है। इसीलिए तो लोग इतने आतुर होते है कि दूसरो का ध्यान आकर्षित कर ले। कोई राजनेता बनना चाहता है—वह कुछ भी नहीं है, आकाक्षा इतनी है कि हजारो लोगो का ध्यान मेरी तरफ हो। राष्ट्रपति, प्रधानमत्री तो करोड़ो लोगो का ध्यान मेरी तरफ हो।

तुमने देखा कि राजनेता जब तक पद पर होते है तब तक स्वस्थ रहते है, जैसे ही पद से उतरे कि बीमार पड जाते है। राजनेता जब तक सफल होता रहता है तब तक बिलकुल स्वस्थ रहता है, असफल हुआ कि मरा, फिर नहीं जी सकता। क्या हो जाता है? जब तक ध्यान मिलता है तब तक भोजन। ध्यान ऊर्जा है। तुम जब भी किसी की तरफ देखते हो गौर से, तब तुम उसे ऊर्जा दे रहे हो। तुम्हारी आखो से जीवन-स्रोत बहता है।

इसलिए जिन लोगो को ठीक-ठीक रास्ते से ध्यान नही मिल पाता वे उलटे उपाय भी करते है। मनोवैज्ञानिक कहते है कि राजनेताओ मे और अपराधियो मे कोई फर्क नही है। फर्क इतना ही है कि राजनेता समाज-सम्मत उपाय से ध्यान आकर्षित करता है, अपराधी, समाज-असम्मत उपाय से। हत्या कर देता है किसी की, अखबार मे फोटो तो छप जाता है, चर्चा तो हो जाती है। लोग कहते है, बदनाम हुए तो क्या, कुछ नाम तो होगा। तुम भला सोचते होओ कि अपराधी को कैसा कठिन नही मालूम पडता होगा जब जजीरे डालकर पुलिस के आदमी उसे जेलखाने की तरफ ले जाते है। तुम गलती मे हो, तुम जरा फिर से गौर से देखना। जब किसी आदमी को जजीर बाधकर पुलिसवाले ले जाते है तो तुम उसकी अकड़ देखना—वह किस शान से चलता है। बाजार मे वह प्रतिष्ठित है, वह खास आदमी है। बाकी किसी के हाथ मे तो जजीरे नही और बाकी की तरफ तो चार-पाच पुलिसवाले आसपास नहीं चल रहे हैं, उसी के पास चल रहे हैं। जैसे राष्ट्रपति के आगे-पीछे पुलिसवाले, ऐसा अपराधी के आगे पीछे भी पुलिसवाले। जैसे राजनेता को भीड़ देखती है, वैसे अपराधी को भी देखती है।

मैने सुना है, एक राजनेता मरा तो उसकी प्रेतात्मा अपनी अर्थी के साथ गयी। एक दूसरी प्रेतात्मा, एक पुराने भूतपूर्व राजनेता, वे भी वहा मौजूद थे मरघट पर। तो उस नये राजनेता की प्रेतात्मा ने उनसे कहा कि अगर मुझे पता होता कि मरने पर इतनी भीड़ इकट्ठी होगी, मै कभी का मर गया होता। इतनी भीड़ इकट्ठी हुई, जिंदगी मे कभी नही हुई थी। अगर मुझे पहले पता होता तो मै

कभी का मर गया होता।

भीड़ को इकट्ठा करने का बड़ा शौक है, बड़ा रस है। उसके पीछे मनोवैज्ञानिक सत्य है। अगर कोई भी उपाय न मिले तो आदमी उलटे-सीधे उपाय करता है।

एक आदमी ने अमरीका मे इस सदी के प्रारभ मे अपने को प्रसिद्ध करने के लिए आधे बाल काट लिए, आधी दाढ़ी-मूछ काट ली। न्यूयार्क की सड़को पर वह तीन दिन घूमता रहा। जहा गया वही लोगो ने चौककर देखा कि क्या हुआ। सब अखबारो मे उसका नाम छपा। तीन दिन मे वह आदमी हर आदमी की जबान पर था। और जब उससे पूछा गया कि यह तुमने किसलिए किया है, तो उसने कहा कि इसमे क्या कुछ बताने की बात है। मै मरा जा रहा था, कोई मुझे जानता ही नही। हम आए और चले। किसी की नजर भी न पडी। यह भी कोई जिदगी हुई? और मुझमे कोई गुणवत्ता तो है नही, मै कोई बडा कवि नही हू, कोई बडा चित्रकार नही हू कि लोग मुझे देखेगे—तो मैने कहा, कुछ तो करू। यह मुझे सूझ गया। मगर अब चित्रकार मेरा चित्र उतारने को आ रहे है और कवि मेरे सबध मे कविताए लिख रहे है।

खयाल रखना, जिस पर भी तुमने ध्यान दिया वह मजबूत होता चला जाता है। आधुनिक विज्ञान ने जो बडी से बड़ी खोजे की है उनमे एक खोज बड़ी चमत्कारी है—और वह यह कि जब वैज्ञानिक निरीक्षण करता है परमाणुओ का, अणुओ का, गहरी खुर्दबीन से, तो एक बहुत अनूठी बात पता चली कि जब वह उनका निरीक्षण करता है तब उनका व्यवहार बदल जाता है। परमाणुओ का निरीक्षण करने से व्यवहार बदल जाता है। यह तो हद्द हो गयी। इसका तो यह अर्थ हुआ कि जब तुम गौर से कुर्सी को देखते हो तो कुर्सी वही नही रह जाती, जब वह कोई नहीं देख रहा था, जैसी तब थी। यह आदमी के सबध मे तो समझ मे आता है कि रास्ते पर तुम चले जा रहे हो, कोई भी नहीं है, तो तुम एक ढग के आदमी होते हो। फिर रास्ते पर कोई निकल आया, दो आदमी निकल आए, तो तुम बदल जाते हो, तुम थोड़े सम्हलकर चलने लगते हो। और अगर दो स्त्रिया निकल आए और अगर सुदर हुई, तब तो तुम बिलकुल ही बदल जाते हो। तब तो तुम एकदम झाड़ देते हो अपने को, सब तरह से सुदर होकर, टाई-वाई ठीक करके चल पड़ते हो। चेहरे पर रौनक आ जाती है, पैर मे गति आ जाती है।

तुमने देखा, दस आदमी बैठकर बात कर रहे हो और एक स्त्री वहा आ जाये, बात का पूरा का पूरा रूप बदल जायेगा—तत्क्षण। अब वह दसो के बीच एक होड शुरू हो गयी कि इस स्त्री का ध्यान कौन आकर्षित करे।

स्त्री यानी मा। उसी से आख का पहला सबध है। उसी से पहला ध्यान मिला था। उसी की आख से पहली जीवन की ज्योति पायी थी। जैसे ही स्त्री को देखा कि तत्क्षण वही ध्यान की ज्योति पाने की आकाक्षा जगती है। और दसो मे प्रतिस्पर्धा हो जायेगी कि कौन इस स्त्री को आकर्षित कर लेता है। जो आकर्षित कर लेगा वह जीत गया, वह नेता हो गया, बाकी नौ हार गये।

वैज्ञानिक कहते है कि वस्तुए तक वही नहीं रह जाती निरीक्षण करने के साथ, जैसी वह पहले थीं। उनमे भी रूपातरण हो जाता है। यह तो हद्द हो गयी। परमाणु को देखने के साथ ही व्यवहार बदल जाता है—इससे एक बात सिद्ध होती है कि परमाणु भी आत्मवान है। वहा भी चैतन्य है। चैतन्य के अतिरिक्त तो ऐसा नहीं हो सकता।

तो तुम जब वृक्ष को गौर से देखते हो तो तुम यह मत सोचना कि वृक्ष वही रहा—बदल गया। इस पर बहुत प्रयोग हो रहे है। अगर तुम एक वृक्ष को चुन लो बगीचे मे और रोज उसके पास जाकर उसको ध्यान दो, और ठीक उसके ही मुकाबले वैसा ही दूसरा वृक्ष हो उसको ध्यान मत दो, पानी दो, खाद दो, सब बराबर, सिर्फ ध्यान मत दो और एक वृक्ष को चुनकर तुम उसे रोज ध्यान दो, दुलराओ, पुचकारो, प्यार करो, उससे थोड़ी बात करो, थोड़ी गुफ्तगू अपनी कहो, थोडी उसकी सुनो—तुम अचानक हैरान होओगे, जिस वृक्ष को ध्यान दिया वह दुगनी गति से बढ़ता है।

इसके अब तो वैज्ञानिक प्रमाण है। उसमे जल्दी फूल आ जाते है। और फूल उसके बड़े होगे। खाद और पानी मे कोई फर्क नही है। दोनो वृक्ष एक साथ रोपे गए थे, एक ऊचाई के थे, लेकिन जल्दी ही, जिसको ध्यान दिया गया था वह बढ़ जायेगा, जिसको ध्यान नहीं दिया गया, उपेक्षित, दुर्बल, दीन रह जायेगा।

यही सत्य भीतर के सबध मे भी है। उन्ही बातो को ध्यान दो जिन्हे तुम बढ़ाना चाहते हो। मुझसे तुम्हे प्रेम है, प्रेम को ही ध्यान

दो। हा, बीच-बीच मे छाया पड़ती है क्रोध की, ध्यान मत देना। क्योंकि जिसको तुम ध्यान दोगे वह बढ़ेगा। प्रेम को ही ध्यान देना। ध्यान देते-देते तुम पाओगे, क्रोध कम होने लगा। एक दिन ऐसी घड़ी आयेगी कि क्रोध की सारी ऊर्जा ध्यान मे निमज्जित होकर प्रेम बन जायेगी। तब क्रोध की छाया भी न बनेगी। तब प्रेम शुद्ध होगा। और जहा प्रेम शुद्ध है वही प्रार्थना का जन्म हो जाता है।

'आपके प्रति इतना प्रेम रहते हुए भी, आपको सुनते वक्त कभी-कभी अकुलाहट और क्रोध क्यो उठने लगता है?'

और भी कारण है। मै जो कह रहा हू, वह सभी से तुम्हे सात्वना मिले, ऐसा जरूरी नही है। उसमे बहुत है जिससे तुम्हे सात्वना न मिलेगी। उसमे बहुत है जिससे तुम्हारी धारणाए टूटेगी। उसमे बहुत है जिनके कारण तुम्हारे बधे हुए विचार उखड़ेगे। उसमे बहुत है जिनसे तुम्हारी अब तक की की गयी व्यवस्था मे विघ्न-बाधा पडेगी। तो अकुलाहट भी होगी।

अगर तुम एक रास्ते पर चल रहे थे और सोच रहे थे कि सब ठीक है और मुझसे मिलना हो गया, और मैंने कहा कि कुछ भी ठीक नहीं है इसमे—तो अकुलाहट स्वाभाविक है।

एक सूफी मेरे पास लाया गया। तीस साल से निरतर स्मरण-स्मरण परमात्मा का कर रहा है, जिक्र कर रहा है। और ऐसी घड़ी आ गयी थी कि उसे अब सब जगह परमात्मा दिखायी पड़ता है—वृक्षो मे, पहाड़ो मे, पत्थरो मे। तो मैंने उससे कहा कि तीन दिन मेरे पास रहो और तीन दिन के लिए यह स्मरण बद कर दो। उसने कहा, क्यो? मैने कहा, तीस साल हो गए, अब इसका भी तो पता लगाना जरूरी है कि यह कहीं स्मरण ही तो नही है। यह कही आत्म-सम्मोहन तो नही है। क्योंकि बार-बार दोहरा-दोहरा-दोहराकर कही ऐसा तो नही तुमने खयाल पैदा कर लिया है। तुम्हे दिखायी नही पड़ता, सिर्फ भ्राति हो रही है।

उसने कहा, यह बात तो ठीक है। वह थोडा डरा भी। लेकिन फिर भी उसने कहा, मै कोशिश करूगा। तीन दिन वह मेरे पास था। उसने परमात्मा का स्मरण छोड दिया, नमाज न पढ़ी। तीसरे दिन सुबह वह मुझ पर बहुत नाराज हो गया। उसने कहा, यह तो सब खराब कर दिया। तीस साल की मेरी साधना पर पानी फेर दिया। यह तुमने कैसी दुश्मनी की? मैने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?

मैने कहा, मैने कुछ बिगाड़ा नही है, कोई दुश्मनी नही की है। एक तथ्य का तुम्हारे सामने उदघाटन हुआ। यह परमात्मा जो तुम सोच रहे हो कि तुम्हे दिखायी पड़ता है, अभी दिखायी नहीं पड़ा है। तुमने सिर्फ अपनी आख मे धुध खड़ी कर ली है। तीस साल की मेहनत अगर तीन दिन मे खो जाये, तो बचाने योग्य ही न थी। तीस साल मे अगर वह घड़ी न आयी कि तुम्हारे बिना याद किए परमात्मा याद रहे तो कब आयेगी? तो कही कुछ भूल हो रही है। तुम्हारी याददाश्त मे कही कोई भूल-चूक है। तुम्हारी प्रक्रिया भ्रात है।

तो स्वाभाविक है कि वह मुझ पर नाराज हुआ। वह नाराज होकर चला गया। फिर कोई पद्रह दिन बाद वापस लौटा। उसने कहा, क्षमा करना। शायद आप जो कहते है, ठीक है, यद्यपि मै नाराज हुआ, क्योंकि मेरी सात्वना छीन ली, मेरी सुरक्षा छीन ली। मै सोचता था, एक सत्य मिल गया है और वह सत्य छीन लिया। यद्यपि अब मै समझता हू कि आपने छीना कुछ भी नही। मेरी मुट्ठी खाली थी। मैने खोलकर न देखी थी। मैने मान रखा था। अब मै पूछने आया हू कि क्या करू।

तो ऐसा बहुत बार होगा कि सुनते-सुनते तुम्हे अकुलाहट होगी। क्योंकि तुम अपनी सारी मान्यताओ को घर नही छोड़कर आ गये हो। तुम उन्हे साथ ले आये हो। जब मै कुछ बोल रहा हू तो तुम्हारी मान्यताओ से सतत सघर्ष चल रहा है। एक शब्द तुम्हारे भीतर जाता है तो तुम्हारे हजार शब्दो की भीड़ उसे भीतर घुसने नही देती। बेचैनी खड़ी होगी, अकुलाहट खड़ी होगी और क्रोध भी उठेगा। लेकिन इसे समझने की कोशिश करना।

अकुलाहट तभी खड़ी होती है जब मेरे शब्द तुम्हे कुछ दृष्टि देते है और वह दृष्टि तुम्हारी धारणाओ के विपरीत पड़ती है। तो जल्दी मत करना। सुनना, समझना। वह अकुलाहट तुम्हारे मन की तरकीब है धुआ खड़ा करने की, ताकि तुम समझ ही न पाओ। उस अकुलाहट मे तुम चूक जाओगे। उस वक्त शात रहकर सुन लेना। मन से कहना, घबडा मत, घर चलकर विचार कर लेगे, पहले समझ लेने दे। तुझे तो हम समझते है, वर्षो तेरे साथ रहे है, इस बात को भी समझ लेने दे। फिर दोनो पर ठीक-ठीक तौलकर विचार कर लेगे, तराजू मे रख लेगे, हिसाब-किताब लगा लेगे। फिर जो ठीक होगा उसे मान लेगे।

अगर तुमने ठीक से सुना तो फिर कोई अड़चन नहीं है। सत्य

की एक खूबी है। तुम उसे ठीक से सुन लो, फिर तुम उससे बचकर भाग न सकोगे। उससे बचने का एक ही उपाय है कि तुम ठीक से सुनो ही न, सुनते वक्त ही तुम गड़बड़ कर दो तो ठीक है। अगर सुन लिया तो फिर असत्य उसके सामने टिक न सकेगा। अगर तुम्हारी धारणा ठीक होगी तो बचेगी, अगर ठीक न होगी तो गिर जायेगी। दोनो हालत मे शुभ है।

फिर मेरी बाते सुन-सुनकर तुम्हारे जीवन मे रूपातरण होगे। वे रूपातरण समाज को स्वीकृत होगे, ऐसा नही है। समाज को धार्मिक व्यक्ति कभी स्वीकृत नही रहा, क्योकि समाज अभी तक धार्मिक नहीं है। समाज को साप्रदायिक व्यक्ति स्वीकृत है, क्योकि समाज साप्रदायिक है। हिदू स्वीकृत है, मुसलमान स्वीकृत है, ईसाई स्वीकृत है, धार्मिक व्यक्ति किसी को स्वीकृत नही है। मै न तुम्हे हिदू बना रहा, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। मेरी चेष्टा अनूठी है। मै तुम्हे सिर्फ धार्मिक बनाना चाहता हू विशेषण-शून्य।

तो तुम जब लौटकर जाओगे, अगर मेरी बात तुम्हारे मन मे गूज गई, तुम्हारे हृदय को छू गई, तुम्हारे प्राणो का तार बज गया, तो तुम कुछ अन्यथा होने लगोगे। रूपातरण शुरू होगा। तुम जहा हो, वहा अडचन आएगी। तुम मुझ पर क्रोधित भी होओगे।

मुझको तो होश नही तुझको खबर हो शायद
लोग कहते है कि तुमने मुझे बर्बाद किया।

तो तुम मुझ पर नाराज होओगे। कहोगे कि इस आदमी न बर्बाद किया। भले-चगे थे। अपना काम-धाम करते थे। यह सब गड़बड़ हो गया। ये गेरुए वस्त्र, यह माला—लोग कहते है, पागल हो गये। लोग कहते है, सम्मोहित हो गये। अडचन होगी दफ्तर मे, दुकान मे। मै जानकर ही अड़चन खड़ी कर रहा हू, क्योकि उसी अड़चन के माध्यम से तुम बदलोगे, अन्यथा तुम बदल न सकोगे।

सुविधा से कोई बदलता नही—चुनौती से बदलता है। चुनौती कष्टपूर्ण होती है। प्रथम चरण मे बड़ी पीडा होती है, लेकिन पीड़ा के बाद ही नया जन्म है।

तो तुम्हारी नाराजगी, तुम्हारा क्रोध एकदम अकारण है, ऐसा भी नहीं है। फिर जो मेरे प्रेम मे पड़ गए है, काफी गहरे, जिनको समाज की भी चिता नही है अब, उनको भी अड़चन है। उनको मेरे बिना खाली-खाली लगता है। वह भी नाराजगी का कारण है। वे मुझे न सुने ज्यादा दिन तक तो बेचैनी होती है। तो जिस आदमी पर हमे निर्भर हो जाना पडता है, उस पर नाराजगी होने लगती है कि यह तो बात बुरी हुई। यह तो एक तरह की परतत्रता हो गयी। अगर वह दो-चार महीने मेरे पास न आए तो मन बडा-बड़ा वीरान हो जाता है, दौड होने लगती है आने की, हजार काम छोड़कर आने का मन होने लगता है। यह नशा ऐसा है। इसकी तलफ भी होगी। तो जैसी नाराजगी आनी शुरू होगी कि यह क्या मामला हुआ, यह तो हम जैसे किसी के वश मे हो गए, जैसे कोई हमे खीचने लगा, कोई धागे बध गए, जैसे प्रेम ने कुछ जजीरे बना लीं। तो भी नाराजगी आती है।

तेरे बगैर किसी चीज की कमी तो नही
तेरे बगैर तबियत उदास रहती है।

सब हो तुम्हारे पास लेकिन अगर तुमने अपने हृदय मे मुझे थोडी-सी जगह दी तो मेरे बिना थोडी तबियत उदास रहने लगेगी। तो जो तुम्हे उदास कर रहा है, उससे तुम नाराज न होओगे तो क्या करोगे? यद्यपि यह उदासी सक्रमण काल की है। जल्दी ही यह उदासी भी चली जाएगी। और जल्दी ही ऐसी घड़ी भी आ जायेगी कि यहा भाग-भागकर आने की जरूरत न रहेगी। तुम जहा होओगे वही मै चला आऊगा। वह घडी आने के पहले यह उदासी की घडी गुजरेगी।

वीरा है मयकदा खुम-ओ-सागर उदास है
तुम क्या गए कि रूठ गये दिन बहार के।

तो अगर मेरे साथ तुमने अपनी बहार का सबध जोडा—जो कि जुड़ ही जाएगा, अगर तुम्हारा नाच मेरे साथ पैदा हुआ, तो सबध जुड़ ही जायेगा, अगर तुम यहा आकर खुश हुए, प्रसन्न हुए, आनदित हुए, उत्साह जगा, उत्सव हुआ—तो घर लौटकर तुम उदास हो जाओगे। तो मन यहा की तरफ भागा-भागा रहेगा। करोगे कुछ, याद यहा की बनी रहेगी। पत्नी, बच्चे पराए मालूम होने लगेगे। अपना ही घर धर्मशाला मालूम होने लगेगा। तो नाराजगी बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन यह सक्रमण की बात है। थोड़े और गहरे उतरोगे तो धीरे-धीरे तुम्हे पहली दफा पत्नी-बच्चे अपने मालूम होगे।

मै तुम्हे तोड़ने को नही हू, किसी से भी तोड़ने को नही हू। वही मेरी निष्ठा है। तुम्हे मै किसी से भी तोड़ने की चेष्टा नहीं कर रहा

हू। तुम्हे जोडने की ही चेष्टा है। लेकिन इसके पहले कि असली जोड़ घटे, नकली जोड़ टूटेगे। इसके पहले कि तुम अपने बच्चो को सच मे प्रेम कर पाओ, वह जो झूठा प्रेम है—जो तुमने अब तक समझा है प्रेम है—वह जायेगा। वह जायेगा तो तुम बेचैन होओगे। तुम्हारे हाथ खाली लगने लगेगे। तुम्हारा हृदय रिक्त होता हुआ मालूम पड़ेगा। लेकिन भरने की वह पहली शर्त है। तुम्हे पहले सूना करूगा, खाली करूगा, ताकि तुम भरे जा सको। तुम्हे काटना भी पड़ेगा, छैनी उठाकर तुम्हारे कई टुकड़े अलग भी करने पडेगे—तभी तुम्हारी प्रतिमा निखर सकती है।

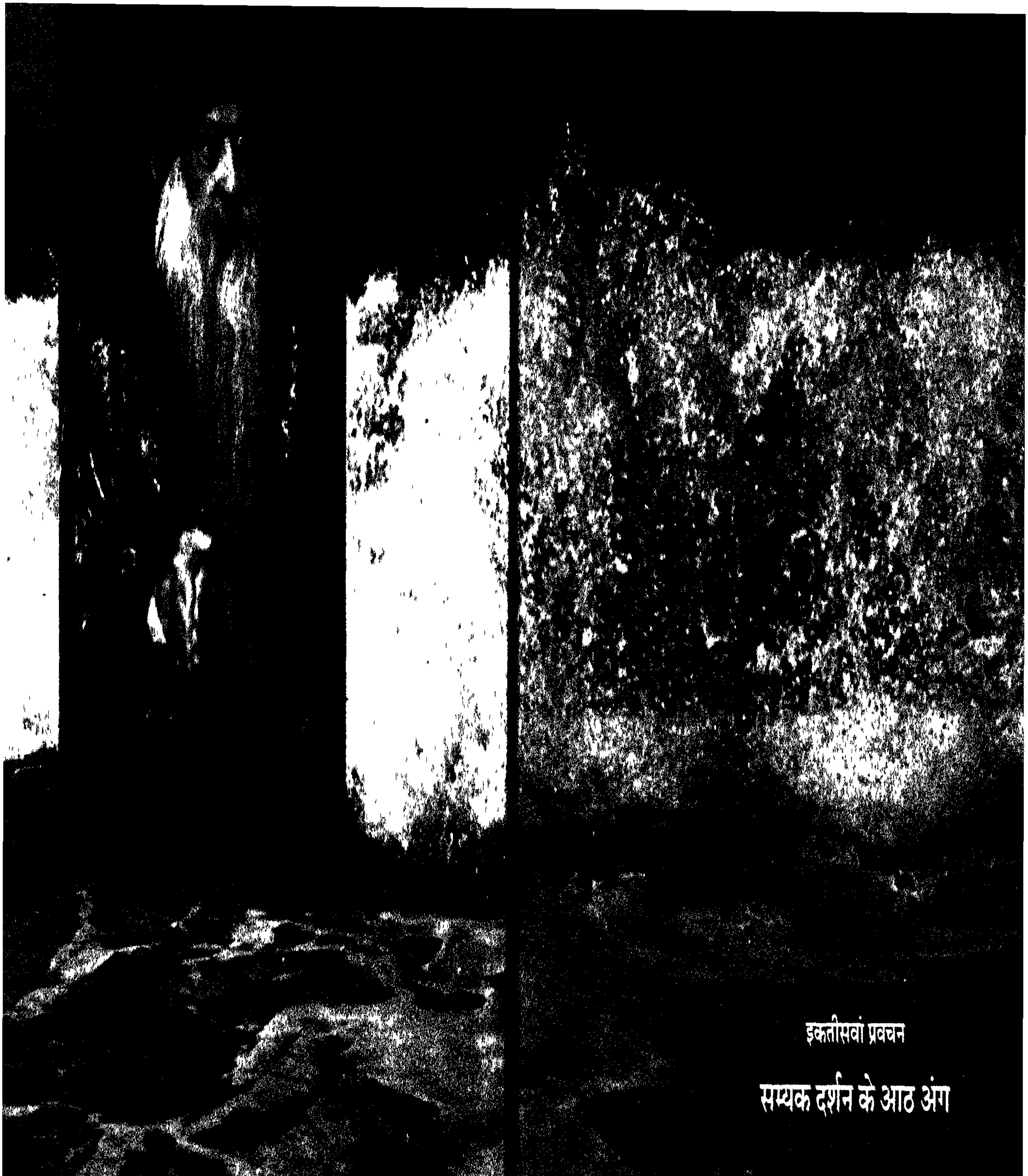
तो अकारण नही है, स्वाभाविक है। अगर समझ लिया तो बेचैन न होओगे। ये बेचैनी की घडिया बीत जायेगी।

प्रेम कभी भी किसी को दुखी नही किया है। और प्रेम कभी किसी के लिए बधन नही बना है। अगर मालूम पड़ता हो तो इतना ही समझना कि नया-नया है। यह स्वाद अभी जबान पर बैठा नही, एक दफा बैठ जायेगा तो तुम पाओगे, प्रेम ही स्वतत्रता है।

प्रेम मुक्ति है। प्रेम से बड़ी कोई मुक्ति नही।

आज इतना ही।




इकतीसवां प्रवचन
सम्यक दर्शन के आठ अंग

सूत्र

निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढ़दिट्ठी य।
उववूह थिरीकरणे, वच्छल पभावणे अट्ठ।।७८।।

जत्थेव पासे कई दुप्पउत्तं, काएण वाया अदु माणसेण।
तत्थेव धीरो पडिसाहरेज्जा, आइन्नओ खिप्पमिवक्खलीणं।।७९।।

तिण्णो हु सि अण्णव मह, कि पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पार गमित्तए, समयं गोयम्। मा पमायए।।८०।।

पहला सूत्र 'सम्यक दर्शन के आठ अग है निशका, निष्काक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना।'

एक-एक अग को बहुत ध्यान से समझना जरूरी है।

'निशका'

सम्यक दर्शन का पहला अग, पहला चरण अभय। मन मे कोई शका न हो, कोई भय न हो।

साहस। क्योंकि जो साहसी है वे ही केवल सत्य की खोज पर जा सकेगे। सत्य की खोज मे, समझ से भी ज्यादा मूल्य साहस का है। साहस का अर्थ होता है जहा कभी न गये हो, जिसे कभी न जाना हो, अपरिचित, अनजान, अज्ञेय—उसमे प्रवेश।

सत्य है अपरिचित। उसे अब तक जाना नही। जो जाना-माना है, उससे भय मिट जाता है, उससे हम परिचित हो जाते है। जिस रास्ते पर बहुत बार आये-गये, उस रास्ते पर फिर डर नही लगता। पहली बार, नये रास्ते पर, भय प्रतीत होता है पता नहीं, रास्ता कहा ले जाये, और पता नहीं रास्ते पर क्या घटे। और सत्य का रास्ता तो तुम कभी चले नही। जिस रास्ते पर तुम चले हो, वह है ससार का रास्ता। साहस के अभाव के कारण ही हम बार-बार ससार के रास्ते पर ही परिभ्रमण करते रहते है।

मनस्विद कहते है कि आदमी अपरिचित सुख से भी डरता है, परिचित दुख को भी पकड़े रखता है, कम से कम परिचित तो है। कम से कम जाना-माना, अपना तो है। इतने दिनो का नाता तो है! अपरिचित सुख से भी भय लगता है, कि पता नहीं क्या हो, क्या घटे। और जो व्यक्ति सत्य की खोज मे चला है, वह तो अत्यत अपरिचित की खोज मे चला है।

अकसर लोग सत्य की खोज नही करते, शास्त्र को पकड़कर बैठ जाते है। क्योकि शास्त्र मे कही जाना नही—शब्द का खेल है, बुद्धि की खुजलाहट है। तोते की तरह रट लेगे, याद कर लेगे और सोच लेगे, पहुच गये। जैसे कोई हिमालय के नक्शे को लेकर बैठ जाये, छाती से लगाकर रखे और सोचे कि पहुच गये, लेकिन हिलेरी को या तेनसिंग को जब गौरीशकर चढ़ना होता है तो यह छाती पर नक्शे लगाने जैसा नही है, यह जीवन को दाव पर लगाना है। साहस चाहिये। मृत्यु भी घट सकती है। जो है वह भी खो सकता है। और उसका तो कोई पता नही जो मिलने को है।

तो जिसके पास जुआरी जैसा दिल है कि जो है उसे दाव पर लगा दे, उसके लिये जो नही है, वही केवल सत्य की खोज मे सफल हो पाता है। दुकानदार सफल नही हो पाते। हिसाबी-किताबी सफल नही हो पाते। इसलिये महावीर सम्यक दर्शन का पहला सूत्र कहते है निशका। मन मे जरा भी भय न हो, तो ही जा सकोगे। अभय का, वीरो का मार्ग है—कायरो का नही, भगोड़ो का नहीं।

अब यहा तो उलटी हालत घटी है। जैन धर्म को स्वीकार करनेवाले, जरा भी साहसी नही है। साहस से उनका कोई सबध नही रहा है और उन्होने अपनी कायरता को अच्छे-अच्छे शब्दो मे ढाक लिया है अहिसा। अकसर मुझे ऐसा दिखाई पड़ा कि जो आदमी डरता है कि कोई उसकी हिसा न कर दे, वह अहिसक हो जाता है। इस भय से कि कही दूसरा मेरी हानि न कर दे, वह

कहता है हानि किसी को पहुचाना ही नहीं। वह स्वय भी हानि नहीं पहुचाता, क्योंकि हानि पहुचाने मे हानि उठाने का खतरा भी जुड़ा है। वह किसी को मारता भी नही है, क्योंकि मारने जाने मे अपने मारे जाने की भी सभावना खुलती है। वह अहिसा की बात करता है।

यहा खयाल रखना, अहिसा वीरो का वेश है—उनका नही जो अभी डर रहे है, भयभीत हो रहे है, घबड़ा रहे है। उनकी अहिसा किसी काम की नही है। वह तो केवल लफ्फाजी है। वह तो ऊपर से थोप लिया आवरण है। वह तो अपने को छिपा लेना है, सुरक्षा है।

महावीर कहते है, नि शका पहला चरण है। और जो ससार से ही घबड़ा गये है, वह सत्य की यात्रा पर क्या खाक निकल सकेगे। जहा डरने जैसा कुछ भी न था, क्योंकि जहा खोने जैसा ही कुछ न था, वहा जो डर गये, वे सत्य की यात्रा पर कैसे निकल सकेगे ? इस भेद को खयाल मे लो।

सत्य की खोज के नाम पर तुम कही ससार से डरकर तो नही बैठ गये हो। जैन मुनियो को मै देखता हू तो ऐसा ही प्रतीत होता है। अधिक मौको पर वे सत्य की खोज मे नहीं गये, सिर्फ ससार की खोज से रुक गये है। ससार की खोज से रुक जाना अनिवार्य रूप से सत्य की खोज नही है। हा, सत्य का खोजी ससार की खोज से मुक्त हो जाता है, यह जरूर सही है। लेकिन ससार की खोज छोड देनेवाला सत्य की खोज पर निकल जाता है, यह आवश्यक नही है।

ऐसा समझो, एक आदमी गौरीशकर चढ़ने जाता है—गौरीशकर चढ़ने जायेगा तो पूना छूटेगा। लेकिन पूना छोड़कर कोई बैठ जाये, इससे गौरीशकर नहीं पहुच जायेगा। पूना छोड़कर बैठने के हजार उपाय है पूना की ठीक सीमा पर बाहर बैठा रहे, जहा पूना का कारपोरेशन का क्षेत्र शुरू होता है, बस उसकी सीमा पर बैठा रहे। लेकिन इससे कोई गौरीशकर पर नहीं पहुच जायेगा। हा, गौरीशकर की यात्रा पर जो गया है वह पूना से जरूर मुक्त हो जायेगा, उसे पूना छोड़ना ही पड़ेगा।

महावीर ने संसार छोडा, सत्य की यात्रा पर गये, इसलिये। बड़े साहस का कदम उठाया। लेकिन जैन मुनि। वह ससार से डरकर बैठ गया है। ससार से जो डर गया वह सत्य मे तो जायेगा ही कैसे ? परिचित से जो डर रहा है वह अपरिचित मे तो जायेगा कैसे ? दिखाई पडनेवाले से जो डर रहा है वह अदृश्य की यात्रा पर तो कैसे कदम उठायेगा ? जहा भीड़ है, सगी-साथी है, परिवार है, मित्र है, उस रास्ते पर, राजपथ पर चलने से डर रहा है, तो बीहड़ वनो मे और पगडडियो पर उतरेगा ? सत्य की खोज पर तो जाना पड़ता है अकेले। वहा तो कोई साथी न होगा, कोई सगी न होगा। वहा तो शास्त्र भी छोड़ देने होगे, शब्द भी छोड़ देने होगे। वहा तो समाज से जो लिया है वह सब छोड़कर जाना होगा। भाषा भी छोड देनी होगी। इसलिये महावीर ने अपने सन्यासी को मुनि कहा था, कि वह भाषा का त्याग कर दे। क्योंकि भाषा तो समाज की ही देन है। गौर से देखे तो भाषा ही समाज है। जब तुम बोलते हो तभी समाज बनता है, जब तुम नही बोलते तो समाज नही बनता। तुम अगर चुप खड़े हो तो तुम अकेले हो, बोले, कि जुड़े।

थोडी देर को सोचो। एक गाव तय कर ले कि अब वाणी का त्याग करते है, पूरा गाव चुप हो जाये, तो उस गाव मे अकेले-अकेले लोग रह जायेगे। उस गाव मे समाज न रहेगा, क्योंकि सेतु गिर जायेगे। दो आदमियो के बीच जो सेतु है वे तो शब्द है। अगर सारा गाव तय कर ले कि अब हम चुप होगे तो गाव मिट जायेगा, व्यक्ति रह जायेगे, समूह न रह जाएगा। समूह तो जीता है भाषा पर।

महावीर ने कहा कि तुम भाषा भी छोड़ोगे तो ही जा सकोगे सत्य तक। हा, जब सत्य को जान लो, तब चाहे भाषा का उपयोग करके लोगो को समझा देना। लेकिन जानते समय छोड़कर जाना होगा, मौन होना होगा, शून्य होना होगा। और जो भी तुम्हारे पास है उस सबको उसके लिए दाव पर लगा देना होगा, जिसको न तुम जानते, न कोई आश्वासन है जिसका कि पक्का है, मिलेगा। क्योंकि कोई दूसरा तुम्हे आश्वासन नहीं दे सकता। अगर मुझे कुछ मिला तो मै लाख सिर पटकू तो भी तुम्हे समझा नहीं सकता कि तुम्हे भी मिलेगा। कोई उपाय नहीं है।

सत्य की अनुभूति आतरिक है। वस्तुत नहीं है सत्य, कि तुम्हे दिखा दू हाथ मे रखकर, कि यह रहा सत्य, ताकि तुम्हे भरोसा आ जाये। तुम छूकर तो न देख सकोगे, आख से न देख सकोगे, कान से सुना न जा सकेगा। भरोसा करना होगा। उसी भरोसे को महावीर कहते है नि शका, ट्रस्ट। एक गहन श्रद्धा की जरूरत होगी, एक ऐसी श्रद्धा की, जिसमे जरा भी सदेह न हो, क्योंकि

जरा भी सदेह हुआ तो सदेह पैर को पीछे खींच लेता है। सदेह पैर को आगे बढ़ने ही नही देता। अगर तुम्हे जरा भी डर रहा और पता, पता नहीं होगा ऐसा, न होगा ऐसा—अगर ऐसी तुम आशका मे घिरे रहे, तो कदम उठेगा नहीं।

इसलिए पहला कदम महावीर कहते है निशका। लेकिन हम तो बड़ी आशका से भरे है। और हमारी आशकाए बड़ी अदभुत है। हमारी आशकाए ऐसी है कि जैसे कोई नगा कहे कि मै नहाऊ कैसे, क्योकि नहा लूगा तो फिर कपड़े कहा निचोड़ूगा, कपडे कहा सुखाऊगा। नगा है, कपडे है नही, लेकिन स्नान नही करता इस डर से कि कही कपड़े भीग न जाये। भिखारी है, डरता है कि कही चोर-लुटेरे न मिल जाए। पास कुछ भी नहीं। लुटेरे मिल भी जाएगे तो उन्ही को लुटना पड़ेगा, कुछ देकर जाना पडेगा। लेकिन, भिखारी भी डरता है कि कहीं चोर-लुटेरे न मिल जाए। हमारी दशा ऐसी ही है। हमारे पास कुछ भी नहीं और आशका बहुत है कि कही खो न जाये।

कभी तुमने सोचा, क्या है तुम्हारे पास जो खो जायेगा? हाथ तुम्हारे खाली है, हृदय तुम्हारा रिक्त है, सपत्ति के नाम पर कुछ ठीकरे इकट्ठे कर रखे है जो मौत तुमसे छीन ही लेगी। तुम लाख उपाय करो तो भी अतत मौत से तुम हारोगे। कितने ही बचो, इधर बचो उधर बचो, इधर छिपो उधर छिपो, एक न एक दिन मौत तुम्हारी गर्दन पकड़ ही लेगी।

अतत मौत जीतेगी, तुम न जीत पाओगे—इतनी बात निश्चित है। बीच मे कितनी देर तुम धोखा दे लेते हो, मौत को इससे क्या फर्क पड़ता है? अततोगत्वा मौत तुम्हारी गर्दन पकड़ लेगी और तुम्हारे ठीकरो को उगलवा लेगी। जिसे तुमने इनकमटैक्स आफिस से बचा लिया होगा, उसको तुम मौत से न बचा सकोगे। जिसको तुमने चोरो से, डाकुओ से बचा लिया होगा, उसको तुम मौत से न बचा सकोगे।

यहा, पहली तो बात तुम्हारे पास कुछ है नहीं, और जो तुम्हारे पास है वह सब मौत छीन लेगी। तो गवाने का डर क्या है? भय क्या है? लेकिन तुम बड़े भयभीत होते हो।

महावीर कहते हैं, ठीक से अपनी स्थिति को समझो तो आशका का कोई कारण ही नही है। आशका के लिए जरा भी कोई आधार नहीं है। आशका कल्पित है और जब आशका गिर जाये, और तुम देख लो खुली आख से कि आशका की तो कोई बात ही नहीं है, मेरे पास कुछ है नही ।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के द्वार पर एक भिखारी आया। तो मुल्ला ने उसे देखते ही से कहा कि मालूम होता है गाव मे नये-नये आये हो।

उस भिखारी ने कहा, आप कैसे पहचान गए? बिलकुल ठीक कहते है। मै अभी स्टेशन से ही उतरकर चला आ रहा हू। मगर आप पहचाने कैसे? आप कोई ज्योतिषी हो?

उसने कहा कि मै कोई ज्योतिषी नही, लेकिन गाव के भिखारी जानते है कि यहा कुछ मिलेगा नही।

भिखारी को भी देने योग्य हमारे पास क्या है। हमारे पास है ही कहा कुछ। लेकिन हम मानकर बैठे है, मान्यता है, और मान्यता मे हम काफी रस लेते है। मान्यता के ढक्कन को उघाडकर भी भीतर के खाली बर्तन को नही देखते। डर लगता है कि कही ऐसा न हो कि खाली ही हो। मुट्ठी हम बाधकर रखते है, खोलते नही, क्योकि कही दिखाई न पड़ जाये कि खाली है। हम अपने को समझाये रखते है कि है, बहुत है। हम गुनगुनाते रहते है कि बहुत है। और फिर आशका पैदा होती हैं कि कही छिन न जाये।

महावीर जब तुमसे कहते है, आशका नही चाहिये, निशका की स्थिति चाहिये, तो वे यह नही कह रहे है कि तुम निशका को आरोपित करो। वे इतना ही कह रहे है कि तुम अपनी आशका को जरा गौर से खोलकर, आखो के सामने बिछाकर तो देख लो वहा कोई कारण है? कोई भी कारण नही है। जिस दिन तुम्हे ऐसी दृष्टि उपलब्ध होगी कि डरने का कोई भी कारण नही है, खोने का कोई उपाय नही, क्योकि है ही नहीं, उसी क्षण तुम्हारे जीवन मे एक नई ऊर्जा का आविर्भाव होगा। उस नई ऊर्जा को कहो श्रद्धा, भरोसा, ट्रस्ट। उस नई ऊर्जा को कहो निशका। तब तुम असदिग्ध भाव से बिना पीछे लौटकर देखे, सत्य की खोज मे निकल जाओगे। वह भाव तुम्हे, यह अनुभव कि मेरे पास कुछ भी नही है, ना-कुछ ही दाव पर लगाना है, मिला तो ठीक न मिला तो कुछ खोता नही—तो फिर दाव पर लगाने मे तुम झिझकोगे नही। तुम सभी दाव पर लगा दोगे।

मैंने सुना है, एक आदमी अमरीका की एक कार बेचनेवाली दुकान मे गया। वह जिस कार को खरीदना चाहता था, उसका मिलना मुश्किल था। दुकानदार ने कहा, 'कम से कम साल भर रुकना पड़ेगा। लबा क्यू है। और कोई उपाय नही अभी देने

का।' वह आदमी बड़ा नाराज हो गया। उसने कहा कि सालभर। गुस्से मे उसने अपने खीसे से नोटो के बडल निकाले और जो कचरा फेकने की टोकरी थी, उसमे डालकर दरवाजे के बाहर हो गया। दुकानदार भी चकित हो गया। और बहुत धनी लोग देखे थे, मगर यह आदमी अदभुत है। हजारो डालर, ऐसे कचरे मे डालकर चला गया। उसने जल्दी से नोट निकलवाये, गिनती करवाई, दुगने थे, जितने कि कार के दाम हो सकते थे। उसने फौरन अपने आदमियो को कहा कि जाकर कार उसके घर पहुचा दो। कार घर पहुचा दी। दूसरे दिन वह हैरान हुआ। भागा हुआ उस आदमी के घर गया और कहा, 'महानुभाव। वह सब नोट नकली है।' उस आदमी ने कहा, नकली न होते तो हम कचराघर मे फेकते ?

एक बार तुम्हे दिखाई पड जाये कि नोट नकली है, तो कचराघर मे फेकना भी आसान है। अडचन कहा है ? वस्तुत ढोना मुश्किल हो जायेगा। उस बोझ को तुम किसलिये ढोओगे। उस बोझ को किस कारण ढोओगे।

महावीर तुमसे श्रद्धा जन्माने को नही कहते। यही महावीर का और अन्य शिक्षको का भेद है। महावीर कहते है, तुम अपनी आशका को ठीक से पहचान लो, वह गिर जाएगी। जो शेष रह जायेगा, वही श्रद्धा है। इसलिये महावीर श्रद्धा शब्द का उपयोग नही करते। एक-एक शब्द खयाल करना। यहा महावीर श्रद्धा कह सकते थे, लेकिन नही कहा, साहस कह सकते थे, नही कहा। नकारात्मक शब्द उपयोग किया निशका। कोई विधायक शब्द उपयोग न किया, क्योकि विधायक की कोई जरूरत नही है। सिर्फ आशका की समझ आ जाए कि व्यर्थ है, कोरी है, अकारण है—जैसे ही आशका गिर जाती है तो जो शकारहित चित्त की दशा है वही श्रद्धा है, वही साहस है, वही अभय है। तुम्हारे भीतर एक अनूठी ऊर्जा का जन्म होगा। वह दबी पडी है। तुम्हारी चट्टान ने, आशका की चट्टान ने उस झरने को फूटने से रोका है। हटा दो चट्टान झरना अपने से फूट पडेगा। झरना तो है ही। झरना तुमने खोया नही है।

इसलिए महावीर नहीं कहते कि झरने को खोजो। महावीर नही कहते कि श्रद्धा को आरोपित करो। महावीर कहते है, सिर्फ आशका को उघाड़ो।

दूसरा चरण है निष्काक्षा। जो भी तुम करो सत्य की खोज मे, उसमे कोई आकाक्षा मत रखना। क्योकि आकाक्षा ही ससार है। अगर सत्य की खोज पर भी आकाक्षा लेकर गये, तो तुम अपने को धोखा दे रहे हो, तुम ससार मे ही दौड़ रहे हो। तुम्हे भ्राति हो गई है कि तुम सत्य की खोज पर जा रहे हो। सत्य की खोज पर वही जाता है जिसकी आकाक्षा गिर गई।

आकाक्षा को हम समझे। फिर नकारात्मक शब्द है निष्काक्षा। आकाक्षा क्या है ? जैसे हम है उससे हम राजी नही है। एक बडी गहरी बेचैनी है—कुछ होने की, कुछ पाने की, कही और होने की, कही और जाने की। जहा हम है वहा अतृप्ति। जैसे हम है वहा अतृप्ति। जो हम है उससे अतृप्ति। कुछ और होना था, कही और होना था। किसी और मकान मे, किसी और गाव मे। किसी और पति के पास, किसी और पत्नी के पास। कोई और बेटे होते। कोई और देह होती। कोई और तिजोडी होती। लेकिन कुछ और। 'कुछ और' की दौड़ आकाक्षा है।

तुम थोडा सोचो। कही भी तुम होते, क्या इससे आकाक्षा की दौड़ रुक जाती ? तुम सोचते हो, जिस महल मे तुम्हे होना चाहिए था, उसमे कोई है, उससे तो पूछो। वह कही और होने की दौड मे लगा है। तुम जिस पद पर नही हो और सोचते हो, होना चाहिए थे, उस पद पर भी कोई है। उससे तो पूछो। वह कही और जाने की तैयारी मे लगा है। जिस गाव तुम पहुचना चाहते हो, वहा भी कोई रहता है। उससे तो पूछो। वह बिस्तर-बोरिया बाधे बैठा है कि कब ट्रेन मिल जाये कि वह कही और चल पड़े।

यहूदियो मे एक कहानी है। एक यहूदी धर्मगुरु ने—गरीब आदमी था—एक रात सपना देखा। सपना देखा कि देश की राजधानी मे जो पुल है नदी के ऊपर, उसके एक किनारे बिजली के ठीक खभे के नीचे बड़ा धन गड़ा है। उसने धन भी देखा—हीरे-जवाहरात चमकते हुए। सुबह उठा, सोचा सपना है। लेकिन दूसरी रात सपना फिर आया, ठीक वैसा का वैसा। दूसरे दिन सुबह जागकर वह एकदम यह न कह सका कि सपना है, क्योकि सपने इस तरह नही दुहरते। फिर भी उसने सोचा कि क्या भरोसा, कहा जाना। लेकिन तीसरी रात सपना फिर आया, तब रुकना मुश्किल हो गया। उसने कहा, कोई राजधानी इतनी दूर भी नही है, जाकर देख तो आऊ मामला क्या है! वह कभी राजधानी गया भी न था। जब वह गया तो चकित हुआ। ठीक

जैसा पुल उसने सपने मे देखा था वैसा ही पुल राजधानी का है। तब तो उत्साह बढ़ा। तेजी से चलने लगा। दूसरी तरफ पहुचा। ठीक बिजली का खभा वहीं है जहा सपने मे देखा था। ठीक वैसा ही बिजली का बल्ब लगा है—तब तो भरोसा और बढ़ा। लेकिन एक मुसीबत थी। सपने मे उसने यह न देखा था कि एक पुलिसवाला वहा पहरा देता है। तो वह राह देखने लगा कि पुलिसवाला जाये तो मै खोदकर देखू। लेकिन पुलिसवाला तभी जाता जब दूसरा आ जाता, ड्यूटी बदलती। वह दो-तीन दिन ऐसे चक्कर मारता रहा। पुलिसवाले ने भी बार-बार इस आदमी को वहा चक्कर मारते देखा। उसे बुलाया पास और कहा कि सुनो, क्या मामला है? आत्महत्या करनी है पुल से कूदकर? क्योकि इसीलिये वहा वह खडा रहता था कि कोई आत्महत्या न कर ले। मामला क्या है?

उस यहूदी धर्मगुरु ने कहा, अब आपसे छिपाना क्या है, एक सपने के चक्कर मे पड़ गया हू। वह पुलिसवाला हसा और उसने कहा, ठहरो। इसके पहले कि तुम अपना सपना कहो, मै भी तुम्हे कह दू। तीन दिन से मै भी एक सपना देख रहा हू। मै एक सपना देख रहा हू कि फला-फला गाव मे । जो उसने नाम लिया तो वह धर्मगुरु बडा हैरान हुआ, वह तो उसी के गाव का नाम है। फला-फला गाव मे फला-फला नाम का एक धर्मगुरु है।

उसने कहा, अरे ठहरो। यह मेरा नाम है और मेरे गाव का तुम पता ले रहे हो। मै ही हू वह धर्मगुरु।

वह पुलिसवाला बहुत हसा। उसने कहा कि मै तीन दिन से एक सपना देखता हू कि जहा धर्मगुरु सोता है उसके बिस्तर के नीचे एक खजाना गड़ा है। मै तो एक दिन तो सोचा सपना है, दूसरे दिन कैसे सोचू कि सपना है। हीरे-जवाहरात सब साफ दिखाई पड़ते है। और आज तीसरी रात फिर सपना देखा है। और तुमसे इसलिए कह रहा हू कि तुम्हारा चेहरा उस सपने मे मुझे दिखाई पड़ता है। यह माजरा क्या है? तुम तीन दिन से यहा चक्कर भी लगा रहे हो।

उस धर्मगुरु ने कहा कि अब कुछ माजरा नहीं है। मै कुछ और ही सपना देखा हू। लेकिन अब मै कुछ कहूगा नहीं, अब मै जाता हू गाव अपने वापस।

वह भागा आया। उसने अपनी खाट के नीचे खोदा, पाया, खजाना था।

हसीद फकीर इस कहानी मे बड़ा रस लेते है। क्योकि यह कहानी जीवन की कहानी है। तुम सोच रहे हो, कहीं और खजाना गड़ा है, किसी राजधानी मे, किसी पुल के पास। वहा जो खडा है वह सोच रहा है कि तुम्हारे घर खजाना गडा है।

तुमने कभी देखा। कभी-कभी राह से चलते भिखमगे को देखकर भी धनपति के मन मे भी ईर्ष्या आ जाती है। कभी-कभी सम्राटो के मन मे ईर्ष्या आ जाती है। क्योकि जिस मस्ती से भिखारी चल सकते है उस मस्ती से सम्राट तो नही चल सकते। बोझ भारी है, चिता बहुत है। रात सो भी नही सकते। कौन सम्राट सो सकता है भिखारी की तरह। राह के किनारे की तो बात दूर, सुदरतम, सुविधा से सुविधापूर्ण कक्षो मे भी, आरामदायक बिस्तरो पर भी नींद नहीं आती। चिताए इतनी है, मन ऊहापोह मे लगा रहता है। और भिखारी राह के किनारे, अखबार को बिछाकर ही सो जाता है और घुर्राटे लेने लगता है। कभी-कभी सम्राटो के मन मे भी ईर्ष्या उठती है कि ऐसा स्वास्थ्य, ऐसी निश्चितता, ऐसी शाति, ऐसे विश्राम की दशा काश, हमारी भी होती। भिखमगा भी रोज महल के पास से निकलता है, सोचता है, काश, हमारे पास ऐसा महल होता।

आकाक्षा का अर्थ है तुम जहा हो वहा राजी नही। जो जहा है वहा राजी नही। कही और दिखाई पड़ता है जीवन का स्वप्न पूरा होता। वहा जो है, उसका भी जीवन का स्वप्न पूरा नही हो रहा है। यहा भिखमगे तो पराजित है ही, यहा सिकदर भी पराजित है। यहां भिखमगे तो खाली हाथ है ही, यहा सिकदर भी खाली हाथ है। जिस दिन तुम्हे आकाक्षा की यह व्यर्थता दिखाई पड़ जाती है, उसी दिन निष्काक्षा पैदा होती है, निष्काम-भाव पैदा होता है।

सत्य के जगत मे तुम आकाक्षा से नही जा सकोगे। क्योकि सभी आकाक्षा ससार मे लौटा लाती है। तो महावीर कहते है, अगर तुम स्वर्ग की आकाक्षा से सत्य की खोज करो, चूक जाओगे। क्योकि स्वर्ग की खोज फिर ससार की ही खोज है। परिमार्जित, सुधरे हुए सस्कार—ससार का ही सस्करण है वह। यही जो सुख नही मिल पाये है, उनका ही बढ़ा-चढा रूप है, फैला विस्तार है। जो शराब यहा नही पी, वहा बहिश्त मे उसके झरने बहाये है—वह तुम्हारी ही कल्पना है। जो स्त्रिया यहा

उपलब्ध नही हो सकीं, वहा अप्सराओ की तरह बैठी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। इतना ही नही, अगर तुम किसी वृक्ष के नीचे ध्यान वगैरह करो, तो उर्वशी और मेनका आकर तुमको परेशान करेगी। तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है बिलकुल कि तुम कब करो तपश्चर्या कि वे आये। यह वासना, अतृप्त वासना ही, नये-नये विक्षेप कर रही है। यह अतृप्त वासना का ही विस्तार है।

तो महावीर कहते है, किसी भी तरह के लाभ की आकाक्षा—वह स्वर्ग का ही लाभ क्यो न हो—ससार मे लौटा लायेगी, सम्यक दृष्टि पैदा न होगी।

निष्काक्षा। कैसे निष्काक्षा पैदा हो? आकाक्षा को समझने से, आकाक्षा की व्यर्थता को देख लेने से। जैसे कोई आदमी रेत से तेल निचोड रहा हो, और न निचुड़ता हो और परेशान हो रहा हो और कोई उसे बता दे कि 'पागल, रेत मे तेल होता ही नही, इसलिए तू लाख उपाय कर, तेरे उपायो का सवाल नही है, तेल निकलेगा नही, तू लाख सिर मार, तेरा सिर टूटेगा, गिरेगा, रेत से तेल निकलेगा नही।'

अकाक्षा से कभी सत्य नही निकला, क्योकि आकाक्षा स्वप्नो की जननी है। आकाक्षा का जिसने सहारा पकडा, वह सपनो मे खो गया, उसने अपने सपनो का ससार बना लिया। लेकिन सत्य उससे कभी निकला नही। वह रेत की तरह है, उससे तेल निकल नही सकता। तेल वहा है नही।

ध्यान रखना, महावीर की प्रक्रिया का यह अनिवार्य हिस्सा है कि वह जो है उसे देखने को कहते है। आकाक्षा है तो आकाक्षा को देखो, पहचानो, परखो, चारो तरफ से अवलोकन, निरीक्षण करो, विश्लेषण करो। खोज करो कि इससे तुम जो चाह रहे हो वह हो भी सकता है? अगर नही हो सकता तो आकाक्षा गिर जायेगी। जो शेष रह जायेगी, चित्त की दशा, निष्काक्षा वही दूसरा चरण है सम्यक दृष्टि का।

तीसरा—निर्विचिकित्सा। जुगुप्सा का अभाव। अपने दोषो को तथा दूसरो के गुणो को छिपाने का नाम है जुगुप्सा। प्रत्येक व्यक्ति उलझा है जुगुप्सा मे। हम अपने दोष छिपाते है और दूसरो के गुण छिपाते है।

अगर तुमसे कोई कहे फला आदमी देखा, कितनी प्यारी बासुरी बजाता है, तुम फौरन कहते हो वह क्या बासुरी बजायेगा। चोर, लुच्चा, लपट। अब चोर, लुच्चा, लपट से बासुरी बजाने का कोई भी सबध नही है। कोई चोर है, इससे बासुरी बजाने मे बाधा नही पड़ती। लेकिन तुम तत्क्षण दबा देते हो कि वह चोर है, वह क्या बासुरी बजायेगा।

और तुम अपने दोषो को छिपाये चले जाते हो। तुम अगर क्रोध भी करते हो तो जिस पर क्रोध करते हो उसी के हित के लिये करते हो, सुधार के लिये, एक तरह की सेवा समझो। अगर तुम बच्चे को पीटते भी हो, तो उसी के भविष्य के लिये। हालाकि कभी पीटने से, किसी का भविष्य बना नही, बिगड़ा भला हो। मा अगर बेटे को पीटती है, तो सोचती है, क्योकि वह कपड़े खराब कर आया, धूल-धवास मे खेला, या गलत बच्चो के साथ खेला। लेकिन अगर भीतर खोज करे तो पायेगी कि वह क्रोध से उबल रही थी। पति से कुछ झझट हो गई थी। पति पर न फेक पाई क्रोध को, बच्चे की प्रतीक्षा करती रही। क्योकि यह बच्चा कल भी उन्ही बच्चो के साथ खेला था और कल भी यह धूल-धवास से भरा लौटा था। बच्चे है—लौटेगे ही। बच्चे बूढे नही है। और समय के पहले उन्हे बूढ़ा बनाने की चेष्टा बडी खतरनाक है। उनके लिये अभी कपडो का कोई मूल्य नही है—और शुभ है कि कोई मूल्य नही है। क्योकि जिस दिन कपडो का मूल्य हो जाता है उसी दिन अपने भीतर के सब मूल्य खो जाते है। अभी भीतर का आनद पर्याप्त है, कपड़े गदे भी हो जाते है तो चिता नही, लेकिन भीतर का खेल शुद्ध रहता है, स्वच्छ रहता है। अभी भीतर की मौज इतनी बड़ी है कि थोडी धूल पड़ जाये तो बर्दाश्त कर लेती है। अभी बच्चे मे प्रदर्शन का भाव नही जगा है और अभी थोथी वस्तुओ का मूल्य निर्मित नही हुआ है। अभी असली का मूल्य है। खेल का आनद, रस मूल्यवान है। कपडे इत्यादि अभी निर्मूल्य है। अभी इनका कोई, कोई अर्थ नही है। लेकिन कल भी वह ऐसा ही आया था, तब मा ने कुछ भी न कहा था। लेकिन आज टूट पड़ती है, पीटने लगती है। पूछो तो कहेगी, सुधार के लिये। लेकिन अगर गौर से निरीक्षण करे तो पायेगी कि पति पर नाराजगी थी। पति पर निकाल न सकी—पति परमात्मा है। ऐसा पतियो ने ही समझाया हुआ है, तो उन पर नाराजगी निकाली भी नहीं जा सकती। वहा द्वार-दरवाजा बद है।

तो जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है, ऐसा ही क्रोध भी अपने से कमजोर की तरफ बहता है। बच्चे से ज्यादा कमजोर और तुम

क्या पाओगे? बच्चे से ज्यादा कोमल और तुम क्या पाओगे? पति अगर नाराज हो जाता है दफ्तर मे मालिक से, तो घर पत्नी पर निकाल लेता है। पत्नी नाराज हो जाती है, बच्चे पर निकाल लेती है। बच्चे को तुमने देखा। जाकर अपने कमरे मे बैठकर या तो किताब फाड़ डालेगा, या अपनी गुड़िया की टागे तोड़ देगा, क्योकि अब और कहा निकाले।

सारा ससार वहा खतम हो जाता है।

हम अपने दोषो को भी बड़ी सुदर व्याख्या देते है। हम दूसरो के गुणो को भी स्वीकार नही करते, अस्वीकार करते है। और हम अपने दोषो को भी बचाते है।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा उससे पूछ रहा था। एक आदमी मुसलमान था, हिंदू हो गया था। उसके बेटे ने पूछा कि पिताजी, इसको हम क्या कहे? उसने कहा, 'क्या कहना, गद्दारी है। जो आदमी मुसलमान से हिंदू हो गया, यह गद्दारी है।' पर उसके बेटे ने कहा कि कुछ ही दिन पहले, एक आदमी हिंदू से मुसलमान हुआ था, तब आपने यह न कहा? उसने कहा कि वह धर्म-रूपातरण था। उस आदमी को बुद्धि आई थी, सदबुद्धि का आविर्भाव हुआ था।

तो जब हिंदू मुसलमान बने, तो मुसलमान कहता है, सदबुद्धि, और जब मुसलमान हिंदू बन जाये तो गद्दार। यही हिंदू के लिए मूल्य है।

मै एक जैन सत को जानता था। वे हिंदू थे और जैन हो गये। तो जैन उनसे बडे प्रसन्न थे, हिंदू बडे नाराज थे। हिंदू उनकी बात भी न करते। लेकिन जैन उन्हे बडा सम्मान देते, उतना सम्मान देते, जितना कि उन्होने कभी जैन सतो को भी नही दिया था। क्योकि इस आदमी का हिंदू से जैन हो जाना, इस बात का सबूत था कि जैन धर्म सही है। तब तो कोई हिंदू जैन होता है, नही तो क्यों होगा। तो जैनो से भी ज्यादा आदृत जैनो मे वे थे, लेकिन हिंदुओ में उनका बडा अनादर था क्योकि यह गद्दार था। इसने हिंदू धर्म की अवमानना की।

तुम इसे जरा गौर करना। हमारे जीवन मे दोहरे मूल्य होते है। अपनी भूल को भी हम सोने से ढक लेते है, दूसरे के सौदर्य को भी हम मिट्टी से पोत देते है। इसको महावीर कहते है जुगुप्सा।

जुगुप्सा के अभाव का नाम है निर्विचिकित्सा।

यह बहुत बहुमूल्य सूत्र है। इसे अगर खयाल मे रखा तो ही तुम आत्म-रूपातरण को पा सकोगे, अन्यथा नही। क्योकि जो आदमी अपनी भूले छिपाता है और दूसरो के गुण दबाता है, वह आदमी कभी गुणवान न हो सकेगा। दूसरे के गुण को देखना, पहचानना, स्वीकार करना, क्योकि दूसरे मे देखकर ही तो तुममे भी उसके जन्म का सूत्रपात होगा। किसी के मधुर कठ को सुनकर ही तो तुम्हे भी खयाल उठेगा कि मेरा कठ भी मधुर हो सकता है। किसी कोयल की कुहू-कुहू सुनकर तो तुम्हारे भीतर भी रस का सचार होगा।

लेकिन तुमने कहा, 'यह क्या कुहू-कुहू है? यह सब शोरगुल है। यह सब उत्पात है। यह कोई सगीत है?' अगर तुमने कुहू-कुहू को इनकार किया तो तुमने अपने भीतर भी कुहू-कुहू की सभावना को इनकार कर दिया।

तो दूसरे मे जब कोई महिमा दिखाई पडे तो सम्मान और समादर से, अहोभाव से, उसे स्वीकार करना। उस स्वीकृति मे, तुम्हारे भीतर भी महिमा के जन्म का पहला बीजारोपण होगा। और अपने भीतर जब कोई दोष दिखाई पडे तो उसे छिपाना मत, क्योकि छिपाने से दोष मिटते नही, छिप जाते है, और भीतर-भीतर बढते रहते है। जिसे तुमने छिपाया वह बढ़ेगा। अपना दोष हो तो उसे प्रगट कर देना, उसे स्वीकार कर लेना।

तुमने कभी खयाल किया, दोष स्वीकार करते से ही तुम्हारे भीतर क्राति घटित हो जाती है। उस दोष का तुम्हारे ऊपर कब्जा छूट जाता है।

ईसाइयो मे कन्फेशन का बडा मूल्य है। उसी कन्फैशन की तरफ महावीर का इशारा है। कन्फैशन का अर्थ होता है अपनी बड़ी से बडी भूल को भी स्वीकार कर लेना। स्वीकार करते ही तुम हलके हो जाते हो। प्रगट करते ही तुम निर्विकार हो जाते हो। छिपाया, दबाया, तो जो आज छिपाया है उसे कल भी छिपाना पड़ेगा। और मजा यह है कि जिसे तुम छिपाओगे, दूसरे उघाडने की कोशिश करेगे। क्योकि जो तुम उनके साथ कर रहे हो, वही वे तुम्हारे साथ कर रहे है। तुम उनके गुणो को दाब रहे हो, उनके दुर्गुणो को उघाड रहे हो—वे तुम्हारे गुणो को दाब रहे है, तुम्हारे दुर्गुणो को उघाड़ रहे है। तो तुम जो छिपाओगे, उसे लोग उघाड़ेगे। और अगर तुमने छिपाया और न छिपा पाये और लोगो ने उघाड़ा तो भी दुख होगा, पीडा होगी, नाराजगी होगी, क्रोध होगा। इससे अधेरा बढेगा प्रकाश घटेगा। जो हो गई हो भूल,

उसे स्वीकार कर लेना।

चौथा चरण है अमूढ़दृष्टि। यह बहुत क्रातिकारी चरण है।

महावीर ने कहा है, दुनिया मे तीन तरह की मूढताए है, भ्रात दृष्टिया है। एक मूढ़ता को वे कहते है, लोकमूढ़ता। अनेक लोग अनेक कामो मे लगे रहते है, क्योकि वे कहते है कि समाज ऐसा करता है, क्योकि और लोग ऐसा करते है। उसको महावीर कहते है. लोकमूढ़ता। क्योकि सभी लोग ऐसा करते है, इसलिए हम भी करेगे। सत्य का कोई हिसाब नही है—भीड़ का हिसाब है। तो यह तो भेडचाल हुई।

एक स्कूल मे एक शिक्षक ने पूछा एक छोटे बच्चे से कि तुम्हारे घर भेड़े है, तो अगर तुमने अपने आगन मे दस भेड़े बद कर रखी है और उनमे से एक छलाग लगाकर बाहर निकल जाये, तो कितनी पीछे बचेगी? उस बच्चे ने कहा एक भी नही। उस शिक्षक ने कहा, 'तुम्हे कुछ गणित का हिसाब है? मै कह रहा हू दस अदर है, और एक छलाग लगाकर निकल जाये तो कितनी बचेगी?' उसने कहा, 'गणित की तुम समझो, भेडो को मै अच्छी तरह जानता हू। एक निकल गई तो सब निकल गई। गणित का मुझे भला पता न हो, लेकिन भेड़ो का मुझे पता है।'

भेड़चाल। भीड़ के पीछे चले चलना। यह भरोसा रखकर कि जहा सब जा रहे है ठीक ही जा रहे होगे। और मजा यह है कि बाकी सबका भी यही भरोसा है। वह जो तुम्हारे पड़ोस मे चल रहा है, तुम्हारी वजह से चल रहा है। कि तुम जा रहे हो तो ठीक ही जा रहे होओगे, और तुम जा रहे हो उसकी वजह से कि वह जा रहा है तो ठीक ही जा रहा होगा। इसको महावीर कहते है लोकमूढता।

और सत्य की तरफ केवल वही जा सकता है जो भेड़चाल से ऊपर उठे, जो धीरे-धीरे अपने को जगाए और देखने की चेष्टा करे कि जो मै कर रहा हू, वह करना भी था या सिर्फ इसलिए कर रहा हू कि और लोग कर रहे है।

अकसर तुम कहते पाये जाते हो कि हमारे घर मे तो यह सदा से चला आया है। हमारे पिता भी करते थे, उनके पिता भी करते थे, इसलिए हम भी कर रहे है। तुमने कभी यह भी पूछा कि इसके करने का कोई प्रयोजन है, कोई लाभ है? इसके करने से जीवन मे कुछ सपदा, शाति, आनद का अवतरण होता है? नही, तुम्हारे पिताजी भी सत्यनारायण की कथा करवाते थे, तुम भी करवा रहे हो, क्योकि हमारे यहा सदा से होता चला आया है। और सत्यनारायण की कथा मे सत्य जैसा कुछ भी नही है, मगर हो रही है कथा। क्योकि न करवाये, तो तुम अकेले पड़ जाते हो, भीड़ से टूटते हो।

और भीड़ के साथ हम जुड़े रहते है—भय के कारण। अकेले होने मे डर लगता है। मदिर तुम चले जाते हो—पिताजी भी जाते थे, पिताजी के पिताजी भी जाते थे। उनसे भी अगर पूछा जाता, वे कहते, 'हम क्या करे, हमारे पिताजी जाते थे, उनके पिताजी जाते थे।' ऐसे पक्तिबद्ध मूढता चलती रहती है।

हिम्मत होनी चाहिए साधक मे, कि वह इस पक्ति के बाहर निकल आये। अगर उसे ठीक लगे तो बराबर करे, लेकिन ठीक लगना चाहिए स्वय की बुद्धि को। यह उधार नही होना चाहिए। और अगर ठीक न लगे, तो चाहे लाख कीमत चुकानी पड़े तो भी करना नही चाहिए, हट जाना चाहिए।

तुम झुक जाते हो पत्थर की मूर्ति के सामने जाकर, क्योकि और सब भी कहते है कि भगवान की मूर्ति है। और तुम कभी भी नही सोचते कि भगवान की मूर्ति है। भगवान की कोई मूर्ति हो सकती है? क्योकि समस्त ज्ञानी कहते है, वह अमूर्त, निराकार, निर्गुण, अनत, असीम—उसकी मूर्ति हो सकती है? हा, अगर तुम्हे लगता हो, तुम्हारी अतरप्रज्ञा कहती हो, हा, हो सकती है, तुम्हारे भाव मे लगता हो कि हा, है—तो झुकना। फिर चाहे सारा ससार कहे कि नही है तो फिक्र मत करना। तो महावीर यह नही कह रहे है, वे तुम्हे कोई स्पष्ट निर्देश नहीं दे रहे है कि तुम क्या करो। वे इतना ही कह रहे है कि जो भी तुम करो वह तुम्हारी अत प्रज्ञा की साक्षी से किया गया हो, बस। वे यह नही कह रहे है कि तुम मस्जिद जाओ कि मदिर जाओ कि गुरुद्वारा कि चर्च। इससे कोई प्रयोजन नहीं है। जो तुम्हारी अत प्रज्ञा कहे, जो तुम्हारा बोध कहे, वही तुम करना, उससे अन्यथा मत करना, अन्यथा वह लोकमूढ़ता होगी।

दूसरी मूढ़ता को उन्होने कहा—देवमूढता, कि लोग देवताओ की पूजा करते है। कोई इद्र की पूजा कर रहा है कि इद्र पानी गिरायेगा, कि कोई कालीमाता की पूजा कर रहा है कि बीमारी दूर हो जायेगी। लोग देवताओ की पूजा कर रहे है।

महावीर कहते है, देवता भी तो तुम्हारे ही जैसे है। यही वासनाये, यही जाल, यही जजाल उनका भी है। यही

धन-लोलुपता, यही पद-लोलुपता, यही राजनीति उनकी भी है। तो अपने ही जैसो की पूजा करके, तुम कहा पहुच जाओगे? जो उन्हे नहीं मिला है वह तुम्हे कैसे दे सकेगे?

महावीर कहते है कि देवता का अर्थ है होगे स्वर्ग मे, सुख मे होगे, तुमसे ज्यादा सुख मे होगे, लेकिन अभी आकाक्षा से मुक्त नही हुए।

महावीर और बुद्ध ने मनुष्य की गरिमा को देवता के ऊपर उठाया। महावीर और बुद्ध ने देवताओ को आदमी के पीछे छोड दिया। महावीर और बुद्ध ने कहा कि जो निर्विकार हो गया है, जो निष्काक्षा से भर गया है, जो निष्काम हो गया है, देवता भी उसके पैर छुए, देवता भी उसके चरणो मे झुके। हिदु बहुत नाराज हुए, क्योकि जैन कथाये है, बौद्ध कथाये है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी बुद्ध और महावीर के चरणो मे झुका देती है। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो खुद ब्रह्मा आकर चरण छुआ। हिदुओ को बड़ा कष्ट हो जाता है कि यह क्या बात हुई 'ब्रह्मा से पैर छुआ रहे हो। ब्रह्मा तो जगत का स्रष्टा है। उसने तो बनाया। और ब्रह्मा से पैर छुआ रहे हो।'

लेकिन जैनो और बौद्धो का कारण है।

वे कहते है, ब्रह्मा का जीवन तो उठाकर देखो। कथा है, कि उसने पृथ्वी को बनाया, और वह पृथ्वी पर मोहित हो गया, कामातुर हो गया। कामाध होकर पृथ्वी के पीछे भागने लगा। पिता, बेटी के प्रति कामाध हो गया। बेटी घबड़ा गई कि इस पिता से कैसे बचे। तो वह अनेक-अनेक रूपो मे छिपने लगी। वह गाय बन गई, तो ब्रह्मा साड बन गया। और इस तरह सारी सृष्टि हुई।

जैन और बौद्ध कहते है कि ये तो देवता भी कामातुर है। तो तुम हिदू देवताओ की कथाये पढो। किसी ऋषि की पत्नी सुदर है, तो कोई देवता लोलुप हो जाता है, काम-लोलुप हो जाता है, तो षड्यत्र करके स्त्री के साथ कामभोग कर लेता है।

महावीर और बुद्ध कहते है कि यह तो देवमूढ़ता हुई। अगर पूजना है तो उनको पूजो, जिनके जीवन से सारी आकाक्षा चली गई है। अगर पूजना है, तो उनको पूजो, जिनके जीवन से सारे मल-दोष समाप्त हो गए है।

इन देवताओ का चरित्र तो देखो, महावीर कहते है। हम गौर से कभी देवताओ का चरित्र देखते नहीं, अन्यथा हम बड़े चकित होगे कि इस चरित्र के रहते हुए, इनको देवता कहे जाने का कारण क्या है। दिव्यता तो कही भी मालूम नही पडती।

इद्र के सबध मे कितनी कथाये है कि जब भी कोई तेजस्वी व्यक्ति, कोई तपस्वी, चैतन्य की ऊचाइयो पर पहुचने लगता है, सहस्रार के करीब उसकी ऊर्जा आती है, कि इद्र का देवासन डोलने लगता है।

क्यो? क्योकि उसे डर लगता है कि कोई प्रतिद्वद्वी पैदा हुआ। प्रतिद्वद्वी। यह तो कोई राजनीतिज्ञ की स्थिति हो गई, कि कोई राष्ट्रपति है, कोई प्रधानमत्री है, और दूसरा चेष्टा करने लगा, और लोक मे उसकी प्रतिष्ठा बढने लगी तो घबड़ाहट पैदा हो जाती है कि यह आदमी कुर्सी छीनने आ रहा है।

यह इद्र देवता कैसा, जिसको अपने आसन के छिन जाने की इतनी चिता और घबड़ाहट है, और फिर जो उस आसन को बचाने के लिये सब तरह के उपाय करता है—सही, गलत, भेज देता है मेनका को कि भ्रष्ट करो विश्वामित्र को। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे राजनेता के पास किसी वेश्या को भेज दिया, और फिर चित्र निकलवा लिये और अखबारो मे छाप दिये तो लोक मे प्रतिष्ठा खतम हो गई। यह तो कोई सम्यक उपाय भी न हुआ। यह तो शुद्ध राजनीति भी न हुई। यह तो राजनीति का भी बडा गर्हित रूप हुआ। यह तो तरकीब बडे वासनातुर चित्त की हो सकती है।

तो महावीर कहते है, पहली मूढता—लोकमूढ़ता, दूसरी मूढ़ता—देवमूढता।

देवताओ से सावधान।

दिव्यत्व की पूजा करो—देवताओ की नही। और दिव्यत्व कभी-कभी घटता है—उन मनीषियो मे, जिनके भीतर चैतन्य सब तरह से शुद्ध और निर्विकार हुआ। ध्यान की आखिरी ऊचाई—समाधि—समाधि की पूजा करो। इसलिए जैनो ने महावीर की पूजा की, ऋषभ की पूजा की, नेमि की पूजा की, तीर्थकरो की पूजा की, देवताओ की पूजा नही की। मनुष्यो की पूजा की, जो परमशुद्ध हो गए। बौद्धो ने बुद्ध की पूजा की, बुद्ध को भगवान कहा, लेकिन देवताओ को नहीं पूजा। यह बडी क्रातिकारी घटना थी। यह बड़ी गहरी दृष्टि थी। इस दृष्टि से बड़े रूपातर हुए। धर्म का नया रूप प्रगट हुआ।

और तीसरी मूढता, महावीर कहते है—गुरुमूढ़ता। लोग हर

किसी को गुरु बना लेते है। जैसे बिना गुरु बनाए रहना ठीक नही मालूम पड़ता—गुरु तो होना ही चाहिए। तो किसी को भी गुरु बना लेते है। किसी से भी कान फुकवा लिए। यह भी नहीं सोचते कि जिससे कान फुकवा रहे है उसके पास कान फूकने योग्य भी कुछ है।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते है कि हम पहले गुरु बना चुके है, तो आपका ध्यान करने से कोई अड़चन तो न होगी? मैने कहा, 'अगर तुम्हे पहले गुरु मिल चुका है तो यहा आने की कोई जरूरत नही।' वे कहते है, 'मिला कहा।' वह तो गाव मे जो ब्राह्मण था, उसी को बना लिया था।

अभी उसको खुद ही कुछ नहीं मिला। तो तुम सोचते तो थोड़ा कि जिसे तुम गुरु बनाने जा रहे हो, वह कम से कम तुमसे एक कदम तो आगे हो। लेकिन गुरु होना चाहिए। बिना गुरु के कैसे रहे। तो किसी को भी गुरु बना लेते हो। जो मिल गया वही गुरु हो गया। पिता के गुरु थे तो वही तुम्हारे गुर हो गये, पति के गुरु थे तो वही पत्नी के गुरु हो गये। बिना इस बात का विचार किए कि यह बड़ी महिमापूर्ण बात है, यह जीवन की बड़ी चरम खोज है—गुरु को खोज लेना।

गुरु को खोज लेने का अर्थ, एक ऐसे हृदय को खोज लेना है जिसके साथ तुम धड़क सको और उस लबी अनत की यात्रा पर जा सको।

तो महावीर कहते है, ये तीन मूढ़ताए है और इन मूढ़ताओ के कारण व्यक्ति सत्य की तरफ नही जा पाता। या तो भीड़ को मानता है, या देवी-देवताओ को पूजता रहता है। कितने देवी-देवता है। हर जगह मदिर खडे हैं। हर कही भी झाड़ के नीचे रख दो एक पत्थर और पोत दो लाल रग उस पर, थोड़ी देर मे तुम पाओगे, कोई आकर पूजा कर रहा है। तुम करके देखो। तुम सिर्फ बैठे रहो दूर छिपे हुए, देखते रहो। तुमने ही पत्थर रख दिया है और सिदूर पोत दिया है, थोड़ी देर मे कोई न कोई आकर पूजा करेगा। बड़ी मूढ़ता है।

मैंने सुना है, जिस आदमी ने अमरीका मे पहला बैक खोला, उससे बाद मे जब पूछा गया, कि तुमने यह बैक खोला कैसे? उसने कहा कि कोई काम-धाम न था मेरे पास, कुछ और न सूझा मेरे लिए तो मैने एक तख्ती लटका दी अपने घर के सामने, 'बैक' उस पर लिख दिया। थोड़ी देर मे देखा कि एक आदमी आकर ढाई सौ डालर जमा करवा गया। तो मै खुद भी चमत्कृत हुआ। यह मैने सोचा न था। दूसरे दिन देखा कि एक दूसरा आदमी आया और वह भी कोई सौ डालर जमा करवा गया। फिर तो मेरी इतनी हिम्मत बढ़ गई कि मेरे पास जो पच्चीस डालर थे वे भी मैने जमा कर दिये। बैक चल पड़ा।

तुम अगर थोड़ी देर किसी पत्थर पर, सिदूर पोतकर बैठ जाओ, तो शाम होते-होते तुम खुद ही पूजा करोगे। क्योकि तुम देखोगे कि इतने लोग पूजा कर रहे है, सभी गलत थोडे ही हो सकते है। माना कि तुम्हीं ने रग पोता था, लेकिन जरूर कुछ बात होगी, कुछ राज होगा। शायद तुमने ठीक पत्थर पर रग पोत दिया है। अनजाने सही। तुमने परमात्मा की किसी प्रतिमा पर रग डाल दिया, इतने लोग पूज रहे है।

यह मूढता छूटनी चाहिए।

तो महावीर कहते है अमूढ़दृष्टि पैदा होती है।

अमूढदृष्टि चौथा चरण है सम्यक दर्शन का।

पाचवा चरण है उपगूहन।

उपगूहन का अर्थ है अपने गुणो और दूसरो के दोषो को प्रगट न करना। यह जुगुप्सा के ठीक विपरीत है। अपने गुण प्रगट न करना और दूसरे के दोष प्रगट न करना। हम तो करते है उलटा ही अपने गुण प्रगट करते है, जो नहीं है वे भी प्रगट कर देते है, और दूसरे के दोष प्रगट करते है, जो नही है वे भी प्रगट कर देते है, जो है उनकी तो बात ही छोड दो।

महावीर कहते है, जिसको सत्य की खोज पर जाना है, उसे ये सारे सयम, ये अनुशासन, ये मर्यादाए, अपने जीवन मे उभारनी पड़ेगी। अपने गुणो को मत कहना, दूसरो के दोषो को मत कहना। तुम्हारा क्या प्रयोजन है? दूसरे का दोष है—दूसरा जाने। और तुम जान भी कैसे सकते हो, क्योकि तुम दूसरे के स्थान पर खड़े नही हो सकते। दूसरे की परिस्थिति का तुम्हे पता नही है। दूसरे ने किस परिस्थिति मे ऐसा दोष किया, इसका तुम्हे कुछ पता नहीं है। अगर वैसी ही ठीक परिस्थिति तुम्हारे जीवन मे भी होती तो शायद तुम भी न बच सकते।

कोई भूखा है, और किसी ने चोरी कर ली; किसी की मा मर रही है और दवा नहीं है, और किसी ने किसी का जेब काट लिया—तुम भी उसकी परिस्थिति मे अपने को रखकर देखो, तो शायद तुम भी यही कर लेते।

लेकिन हम परिस्थिति से तोड़ लेते है तथ्यो को अलग। हम कहते हैं, यह आदमी चोर है। और हम परिस्थितियो की बात ही भूल जाते हैं। यह किन परिस्थितियो मे चोर था?

मनोवैज्ञानिक पश्चिम मे बहुत अध्ययन कर रहे है अपराध के ऊपर। और उनके जो नतीजे हैं वे बहुत घबड़ानेवाले है। आनेवाली सदी मे, अगर उनके नतीजे स्वीकार किये गये तो अदालतो को विदा हो जाना पड़ेगा। अदालतो के ज्यादा दिन नहीं है—दिन लद गये। क्योकि अदालते बुनियादी गलती पर खडी है। मजिस्ट्रेट इस तरह से बैठकर निर्णय करता है जैसे कि चोर होना कोई सारी परिस्थितियो से टूटा हुआ अलग तथ्य है। उन्हीं परिस्थितियो मे यह मजिस्ट्रेट भी चोरी करता।

मनस्विद कहते है कि अपराध की जितनी समझ बढती जा रही है, उससे पता चलता है कि लोग मजबूरी मे अपराध करते है।

दो तरह के अपराधी है। एक तो अपराधी है जो इस तरह मजबूर हो जाते है, इस तरह मजबूर किये जाते है, सारी समाज की परिस्थिति उन्हे ऐसी जगह ले आती है, जहा अपराध किये बिना वे जी नही सकते। जहा अपराध करना ही उनके बचने का एकमात्र उपाय रह जाता है। अगर अपराध न करना हो तो मरने के सिवा उनके पास कोई सुविधा नहीं है। और मजा यह है कि इस समाज मे मरना भी अपराध है। यहा आत्महत्या करना भी अपराध है। अगर करते पकड़े गये तो सजा पाओगे। यहा जीना तो मुश्किल है ही, यहा मरना भी मुश्किल है। यहा जीने भी नहीं देते ठीक से, यहा मरने की भी आज्ञा नही है।

तो ऐसी परिस्थिति मे कुछ लोग है, जो अपराध करते है। और कुछ दूसरा एक वर्ग है जो किसी मानसिक रोग के कारण अपराध करता है। उसकी परिस्थिति नहीं थी अपराध करने की। जैसे क्लिप्टोमैनिया है। कुछ लोग है जिनको चोरी का रोग होता है। अपराध नहीं। उनको चोरी करने मे मजा आता है। उनको कोई कमी नहीं है। वे लखपति हो सकते हैं, और ऐसी चीजो की चोरी कर सकते है जिनका कोई मूल्य भी नहीं है, जैसे कि माचिस की डिबिया उन्होने खीसे मे रख ली। कोई कारण नहीं है, क्योकि उनके पास खूब है। और माचिस की डिबिया का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन उनको कुछ मानसिक रोग है।

मै एक प्रोफेसर को जानता हू। उनको इस तरह का रोग था। उनकी पत्नी ने मुझे कहा कि आप कुछ करिये। वे कोई ऐसी चीज भी चुराकर नही लाते है कि कोई अपराध कहा जा सके। किसी के घर बैठे है, पैंसिल दिख गई, वह खीसे मे सरका ली। किसी के यहा भोजन करने गये है, चम्मच ही डाल लिया। पत्नी परेशान कि यह आज नही कल, यह झझट । और उसने मुझसे कहा कि आपसे उनका लगाव है, शायद ।

तो मै उनसे धीरे-धीरे बात किया। मैंने उनकी बड़ी प्रशसा की, क्योकि मै समझा कि उनको कोई कमी तो है नहीं। धनपति घर से है, अच्छी नौकरी पर है। पत्नी भी नौकरी पर है, खुद भी नौकरी पर है। सब कुछ है। तो कोई चम्मच चुराने का कोई परिस्थिति मे तो कारण नही है। तो जरूर कुछ मन मे कारण होगा। तो मैने कभी उनकी चोरी का विरोध नही किया। इस ढग से उनको फुसलाया कि उनको लगे कि शायद मै भी उसी रोग का बीमार हू। उनको मैने इसी तरह बात की कि जैसे मै भी चम्मचे उठा लाता हू। तो उन्होने कहा, 'अरे। यह तो अच्छा हुआ, आपसे दिल खोल सकते है। आपको मै दिखाऊगा, घर चलिए।' उन्होने एक अलमारी मे, जितनी चीजे चुराई थी वे सब सजा रखी थी। उस पर चिटे भी लगा रखी थीं कि किसके घर से कब लाए। और उन्होने बड़ी प्रसन्नता से दिखाई।

उनका इलाज करना पड़ा। वे मानसिक रूप से रोगी थे। चोरी के माध्यम से, वे यह सिद्ध कर रहे थे कि वे दूसरो से ज्यादा कुशल है। दूसरे उनकी चोरी नही पकड़ पाते, वे कर जाते है। यह चोरी मे चोरी कारण नहीं थी—अपनी कुशलता, अपनी होशियारी, सिद्ध करने की चेष्टा थी।

मनोवैज्ञानिक कहते है, इस तरह का बीमार चिकित्सा चाहता है। उसको मनोचिकित्सा चाहिए। और जिसने परिस्थितिगत रूप से चोरी की हो, उसकी परिस्थिति मे रूपातरण चाहिए। अपराध समाप्त हो जाते है। या तो कोई परिस्थिति के कारण चोर है तो परिस्थिति बदलनी चाहिए, और या कोई मानसिक रोग के कारण चोर है, तो मानसिक रोग का इलाज होना चाहिए। जेलखाने खाली हो जाते है। जेलखाने मे बस दो तरह के लोग पड़े हुए है।

महावीर कहते है, दूसरे के दोष को बताना ही मत। तुम्हे क्या पता, किस मजबूरी मे, किस कठिनाई मे उसने किया हो? और तुम्हे क्या पता उसके जन्मो-जन्मो की जीवन-कथा का? लबी यात्रा है। उस लबी यात्रा मे कहा उसने किसी दोष को अर्जित कर

लिया हो, अनजाने सीख लिया हो।

और फिर तुम कौन हो निर्णायक ?

जीसस ने भी यही बात कही है। कहा है कि निर्णायक मत बनना, 'जज ई नाट।' दूसरे के न्यायाधीश मत बनना। दूसरा स्वय जिम्मेवार है अपने कृत्यो के लिए, अपने कृत्यो का फल स्वय पा लेगा। तुम बीच मे निदा, तुम बीच मे विरोध और व्याख्या मत करना। और ध्यान रखना, जैसे दूसरे के गुणो को देखना जरूरी, दुर्गुणो को देखना जरूरी नही—अपने दुर्गुणो को देखना जरूरी है, अपने गुणो को देखना जरूरी नही है। क्योकि जो व्यक्ति अपने गुणो को बहुत देखने लगता है, वह फूलने लगात है गुब्बारे जैसा। उसका अहकार मजबूत होने लगता है। तो अपने गुब्बारे को, अहकार के गुब्बारे को दोषो को देख-देखकर फोडते रहना, ताकि अहकार बडा न हो। और अपने गुणो की कोई चर्चा मत करना। क्योकि अगर वे है तो उनकी सुगध अपने से पहुच जाएगी। अगर वे नही है तो चर्चा करने से कुछ सार नही।

'उपगूहन' के बाद छठवा है स्थिरीकरण। महावीर कहते है कि जीवन की, सत्य की इस यात्रा मे बहुत बार चूके होगी, बहुत बार पाव यहा-वहा पड़ जायेगे, बहुत बार तुम भटक जाओगे। तो उसके कारण व्यर्थ परेशान मत होना और अपराध भाव भी मत लाना। यह स्वाभाविक है। जब भी तुम्हे स्मरण आ जाए, फिर अपने को मार्ग पर आरूढ कर लेना। उसका नाम है स्थिरीकरण। फिर अपने को स्थिर कर लेना।

जैसे तुमने तय किया, क्रोध न करेगे, समझ आई कि क्रोध न करेगे, देखा, बार-बार क्रोध करके कि सिवाय दुख के कुछ भी न हुआ, देखा क्रोध करके कि अपने लिये भी नर्क बना, दूसरे के लिये भी नर्क बना—तय किया, अब क्रोध नहीं करेगे। ऐसी समझपूर्वक एक स्थिति बनी क्रोध न करने की। लेकिन फिर भी चूके होगी। किसी आवेश के क्षण मे पुन क्रोध हो जाएगा। लबी आदत है। जन्मो-जन्मों के सस्कार है, इतनी जल्दी नही छूट जाते। फिर-फिर पकड़ लिये जाओगे। तो जब याद आ जाए, जैसे ही याद आ जाए, अगर क्रोध के मध्य मे याद आ जाए, तो पुन अपने को अक्रोध मे स्थिर कर लेना। अगर गाली आधी निकल गई थी, तो बस आधी को पूरा भी मत करना। यह भी मत कहना कि अब पूरी तो कर दु। बीच से ही रोक लेना। वही क्षमा माग लेना। वहीं हाथ जोड़ लेना। कहना, माफ करना, क्षमा करना, भूल हो गई। वापस लौट आना। फिर स्थिर हो जाना।

स्थिरीकरण बहुत उपयोगी सूत्र है। और जिनको जीवन को साधना है, उनके लिए निरतर उसका उपयोग करना होगा, क्योकि भूले तो होगी ही। फिर भूलो को लेकर मत बैठ जाना और उनमे बहुत रस मत लेने लगना, कि भूल हो गई, अपराध का भाव, और गिल्ट । क्योकि वह भी गलत है। वह भी नाहक अपने घाव को कुरेद-कुरेदकर खराब करना है। हो गई भूल, याद आ गई, वापस लौट जाए।

तुम ध्यान करने बैठते हो, थिरता टूट जाती है किसी विचार के पीछे चल पड़े। कभी-कभी ऐसे विचार, जिनसे तुम्हे जाने का कोई सबध न था—तुम ध्यान करने बैठे, एक कुत्ता भौकने लगा, अब कुत्ते के भौकने से तुम्हारा कोई लेना-देना न था, लेकिन कुत्ते के भौकने से तुमको अपने मित्र के कुत्ते की याद आ गई। मित्र के कुत्ते की याद आई तो मित्र की याद आ गई। मित्र के साथ कभी दो साल पहले कोई सुदर दिन बिताया था पहाड़ो पर, वह याद आ गया—चल पडे।

जब याद आ जाय कि अरे। तब तत्क्षण स्थिर हो जाना। फिर वापस लौट आना। फिर इसको लेकर परेशान मत होना, कि यह मैने क्या कर लिया, क्योकि वह परेशानी भी फिर ध्यान मे न लगने देगी। तो जैसे ही याद आ जाए, स्मरण हो, चुपचाप अपने को स्थिर कर लेना। नही तो लोग क्या करते है—पहले गलती करते है, फिर गलती के सबध मे पश्चात्ताप करते है, फिर रोते है, अपराध अनुभव करते है—तो गलती से भी ज्यादा गलती हो गई। गलती तो एक जगह होकर पूरी हो गई फिर उसका सिलसिला चल पडा। अब उसका पश्चात्ताप करो। अब रोओ। अब कहो कि भूल हो गई, डिग गया अपने पथ से, पापी हो गया।

महावीर कहते है, इस सब मे पड़ने की इतनी ऊर्जा खराब मत करना। आया स्मरण, कि भूल के रास्ते पर चले गये थे, तत्क्षण चुपचाप वापस लौट आना। ऐसा बार-बार स्थिरीकरण होते-होते, होते-होते, जिसको कृष्ण ने स्थिति भी कहा है, स्थितिप्रज्ञ कहा है—वह स्थिति घटेगी। कभी ऐसी घड़ी आ जाती है कि फिर कोई भूल नही होती। तुम्हारी थिरता शाश्वत हो जाती है। तुम्हारी लौ अकप हो जाती है।

सातवा वात्सल्य। इसे समझना।

भक्ति के सप्रदाय, प्रार्थना को मूल्य देते है। तो तीन शब्द समझ लेना, तो ही वात्सल्य समझ मे आयेगा प्रार्थना, प्रेम, वात्सल्य। प्रार्थना होती है, जो अपने से बड़ा है—परमात्मा, उसके प्रति। प्रार्थना मे एक माग होती है। प्रार्थना शब्द मे ही माग छिपी है। इसलिए मागनेवाले को हम प्रार्थी कहते हैं। मागा उससे जा सकता है जिसके पास हमसे ज्यादा हो, अनत हो। तो प्रार्थना सिर्फ भगवान से की जा सकती है। लेकिन महावीर की व्यवस्था मे भगवान की कोई जगह नहीं है—प्रार्थना की कोई जगह नहीं।

फिर दूसरा शब्द है प्रेम। प्रेम होता है सम अवस्था, सम स्थितिवाले लोगो मे—एक स्त्री मे, एक पुरुष मे, दो मित्रो मे, मा मे, बेटे मे, भाई-भाई मे—ऐसा समस्थिति। परमात्मा ऊपर है, प्रार्थी नीचे है। लेकिन प्रेमी साथ-साथ खड़े है। परमात्मा से सिर्फ मागा जा सकता है, उसको दिया तो क्या जा सकता है। देने को हमारे पास कुछ भी नही है। उसके सामने हम निपट भिखारी है, समग्ररूपेण भिखारी। देगे क्या? देने को कुछ भी नहीं है। अपने को भी दे तो भी वह देना नही है, क्योकि हम भी उसी के है तो देना क्या है? उससे हम सिर्फ माग सकते है, सिर्फ माग सकते है। उसके सामने हम सिर्फ भिखारी हो सकते है।

इसलिए महावीर कहते है, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं, क्योकि परमात्मा के कारण सारा ससार भिखारी हो जाता है।

प्रेम मे हम लेते है, देते है, क्योकि दोनो समान हैं। जिसको तुम प्रेम करते हो, तुम देते भी हो, लेकिन देते तुम इसीलिए हो कि मिले। जो तुम्हे प्रेम करता है, वह भी देता है, लेकिन देता इसीलिए है कि मिले, वापिस हो। तो प्रेम मे लेन-देन है। परमात्मा की तरफ से इकतरफा है, सिर्फ मिलता है, देने को हमारे पास कुछ भी नहीं है। प्रेमी लेते-देते हैं।

वात्सल्य ठीक प्रार्थना का उलटा है। वात्सल्य का अर्थ है तुम दो। इसलिए हम कहते है, मा का वात्सल्य होता है बेटे की तरफ। बेटा क्या दे सकता है? छोटा-सा बेटा है, अभी पैदा हुआ, चल भी नही सकता, बोल भी नहीं सकता, कुछ लाया भी नहीं, बिलकुल नग-धड़ग चला आया है। हाथ खाली है। वह देगा क्या? इसलिए समान तल तो है नही मा का और बेटे का। और माग भी नहीं सकता, क्योकि मांगने के लिए भी अभी उसके पास बुद्धि नहीं है। तो मा का वात्सल्य है। मा उसे जो प्रेम करती है वह सिर्फ देने-देने का है। मा देती है, वह लौटा भी नहीं सकता। उसको अभी होश ही नही लौटाने का।

वात्सल्य का अर्थ है तुम दो जैसे मा देती है।

तो महावीर कहते है, प्रार्थना नही, प्रेम नहीं—वात्सल्य। तुम तो लुटाओ, जो तुम्हारे पास है दिये चले जाओ। इसकी फिक्र ही मत करो कि किसको दिया। बस इसकी फिक्र करो कि दिया। तो जो तुम्हारे पास हो, वह तुम देते चले जाओ। कुछ तुम्हारे पास बाहर का देने का न हो तो भीतर का दो। वस्तुए न हो तो अपना प्राण बाटो, अपना अस्तित्व बाटो, पर दो और देते रहो।

तो जैसे भक्ति के रास्ते पर प्रार्थना सूत्र है, ठीक उससे विपरीत, ध्यान के रास्ते पर वात्सल्य सूत्र है। भक्ति के रास्ते पर तुम भिखारी होकर भगवान के मदिर पर जाते हो ध्यान के रास्ते पर तुम सम्राट होकर, तुम बाटते हुए जाते हो, तुम देते हुए जाते हो। तुम मागते नहीं। क्योकि माग मे तो आकाक्षा है—वह तो पहले ही चरण मे समाप्त हो गई।

अब तुम्हारे पास कुछ है, तुम उसे बाटते हो—और जब तुम बाटते हो, तब तुम पाते हो और आने लगा। अनत ऊर्जा उठने लगी। तुम्हारे सब जलस्रोत खुल जाते है। तुम्हारे झरने सब फूट पड़ते है। जितना तुम्हारे कुए से पानी उलीचा जाता है, तुम पाते हो उतना ही नया पानी आ रहा है। सागर तुममे अपने को उडेलने लगता है।

तो लुटाओ। दोनो हाथ उलीचिए, यही सज्जन को काम। कबीर ने कहा है उलीचो। महावीर का वात्सल्य वही है जिसको कबीर कहते है उलीचना।

और प्रभावना।

और आठवा चरण है सम्यक दर्शन का. प्रभावना। यह महावीर का अपना शब्द है। इसके लिए कही तुम्हे पर्याय न मिलेगा। प्रभावना का अर्थ होता है इस भाति जीयो कि तुम्हारे जीने से धर्म की प्रभावना हो। इस ढग से उठो-बैठो कि तुम्हारे उठने-बैठने से धर्म झरे। और जिनके जीवन मे धर्म की कोई रोशनी नही है, उनको भी प्यास पैदा हो। तुम्हारा चलना, तुम्हारा व्यवहार, तुम्हारे जीवन की शैली—सभी प्रभावना बन जाए। प्रभावना—धर्म की, सत्य की।

तुम एक ज्योतिर्मय व्यक्तित्व बन जाओ कि जिनके भी पास

ज्योति नहीं है, उनको भी ज्योति होनी चाहिए। और यह जीवन—अंधेरे का भी क्या कोई जीवन है, ऐसा भाव उठे। तुम जहा से गुजर जाओ, वही लोगो के हृदय मे एक लहर दौड़ जाए। और लोगो का जीवन सत्य की तरफ उन्मुख हो।

महावीर कहते है, इस सत्य की खोज का आठवा अग है प्रभावना। क्योकि तुम जब सत्य को खोजने चले हो, तो अकेले नहीं। उसमे भी कजूसी मत कर बैठना। नही तो वह भी स्वार्थ हो जायेगा। तो जिसकी खोज पर तुम चले हो और जो तुम्हे मिलने लगा है, उसकी खोज पर औरो को भी लगा देना। लेकिन खयाल रखना, महावीर बड़े अनूठे शब्दो का उपयोग करते है। वे यह नही कहते, तुम लोगो को उपदेश देना। वे यह नही कहते, तुम लोगो को आदेश देना। वे कहते है, प्रभावना।

तुम्हारे होने के ढग से ही उनको उपदेश मिल जाए। तुम्हारे होने के ढग से उनको आदेश मिल जाए। तुम्हारा होने का ढग ही उनको पकड़ ले और एक नये नृत्य मे डुबा दे और एक, एक नई मस्ती से भर दे। तुम्हारा होना ही, तुम्हार अस्तित्व मात्र, तुम्हारा उनके पास से गुजर जाना एक नए जगत का प्रवेश हो जाए उनके जीवन मे। तुम्हारा उनके पास आ जाना, तुम्हारा सत्सग, तुम्हारी मौजूदगी, उन्हे रूपातरित कर दे। उनकी आखे उस तरफ उठ जाये जहा कभी न उठी थी। लेकिन इसके लिए वे जो शब्द उपयोग करते है, वह बड़ा अनूठा है प्रभावना। तुम उन्हे प्रभावित भी करने की चेष्टा मत करना। तुम्हारा होना प्रभावना बने। वे प्रभावित हो तुमसे नहीं—धर्म से, तुमसे नही—सत्य से, जो तुममे घटा है—उससे, वह जो पारलौकिक तुममे उतरा है—उससे।

ये आठ अग स्मरण हो तो सम्यक दर्शन निर्मित होता है।

यह पहला सूत्र है

निस्सकिय निक्कखिय निव्वितिगिच्छा अमूढ़दिट्ठी य।

उववूह थिरीकरणे, वच्छल पभावणे अट्ठ।।

ये आठ बाते सम्यक दर्शन के आठ अग है।

दूसरा सूत्र 'जब कभी अपने मे दुष्प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई दे तो उसे तत्काल मन, वचन, काया से धीर (सम्यक दृष्टि) समेट ले, जैसे कि जातिवत घोड़ा रास के द्वारा शीघ्र ही सीधे रास्ते पर आ जाता है।'

और महावीर इस बात को बार-बार दोहराते है कि तुम कभी ऐसा मत समझ लेना कि सिद्ध हो गये। क्योकि इस अनत की खोज के मार्ग पर बहुत ऐसे पड़ाव आते है जहा यह भ्रम पैदा होता है कि हो गये सिद्ध। सिद्ध होने का भ्रम बड़ा आसान है, क्योकि अहकार को बड़ा भाता है, कि हो गये सिद्ध, पहुच गये।

तुम ध्यान रखना कि ऐसा भाव जब भी तुम्हे आएगा कि पहुच गए, तभी तुम तत्क्षण पाओगे कि कुछ विकृति घटी, कुछ दुष्प्रयोग हुआ, कहीं कोई भूल हुई।

तो स्मरण रखना कि भूल होती रहेगी अतिम क्षण तक। निर्वाण के आखिरी क्षण तक भूल होती रहेगी। समाधि के परम फूल के खिलने तक भूल होती रहेगी।

भूल मनुष्य का स्वभाव है। और भूलो का जन्मो-जन्मो का इतिहास है। इसलिए जहा भी कही ऐसा लगे, कि दुष्प्रयोग मे प्रवृत्ति दिखाई दे, उसे तत्काल मन, वचन और काया से (सम्यक दृष्टि) धीरपुरुष समेट ले, जैसे कि जातिवत घोडा रास के द्वारा शीघ्र ही सीधे रास्ते पर आ जाता है।

तो अपनी लगाम को कभी भी छोड़ मत देना। जब तक घोडा है, तब तक लगाम को हाथ मे रखना। घोडा यानी मन। जब तक मन है, तब तक लगाम मत छोड़ देना। मन पर भरोसा मत कर लेना। क्योकि बहुत बार घोड़ा बिलकुल ठीक-ठीक चल रहा है, घटो तक ठीक-ठीक चल रहा है और तुम्हारा मन होता है, अब लगाम की क्या जरूरत है, रख दो ताक पर, अब तो सब ठीक चल रहा है, अब होश की क्या जरूरत है, अब निरतर स्मरण की क्या जरूरत है, घोड़ा तो ठीक अपने-आप ही चल रहा है। ऐसा भरोसा मत करना। लगाम के रखते ही तत्क्षण घोड़ा अपने स्वभाव के अनुकूल बरतने लगेगा। लगाम तो हाथ मे रखनी पड़ेगी जब तक घोड़ा है। जब तक मन न मर जाए, जब तक कि मन से परिपूर्ण मुक्ति न हो जाए, जब तक तुम्हारे भीतर विचारो की तरगे उठती हैं—तब तक लगाम का खयाल रखना। और जैसे ही तुम्हे लगे कि कहीं घोड़ा गलत रास्ते पर जाने लगा, मार्ग से च्युत हुआ, दुष्प्रयोग मे लगा, कहीं कोई प्रवृत्ति उठने लगी, फिर आख गलत पर पड़ी, फिर कान ने गलत को सुना, फिर हाथ गलत की तरफ बढ़े, फिर विचार में गलत की छाया पड़ी—तत्क्षण मन, वचन, काया से धीरपुरुष अपने को फिर ऐसे समेट ले मन, वचन, काया से—शरीर को तत्क्षण हटा ले वहा से।

शरीर को हटाने का अर्थ समझना। जब भी तुम्हारे मन मे कोई तरग उठती है, तत्क्षण शरीर मे भी समानातर तरग उठती है। अगर तुम्हारे मन मे कामवासना उठी, तो तत्क्षण शरीर कामवासना के लिये तत्पर होने लगता है, तरग उठती है। और जब भी तुम्हारे मन मे कोई तरग उठती है, और शरीर मे तरग उठती है, तो तुम्हारे भीतर भाषा और वचन निर्मित होता है। रूप बनता है विकार का। प्रतिमाये उठती है। स्वप्न निर्मित होता है।

वचन से अर्थ है विचार, मन की कल्पना का जाल। और मन, शरीर, वचन, तीनो मे एक साथ लहर आती है। तीनो को एक साथ खीच लेना। किसी एक को खींच लेने से काम न चलेगा। तुम, हो सकता है शरीर को खीचकर दरवाजा बद करके बैठ जाओ, इससे कुछ फर्क न पडेगा। बहुत-से जैन मुनि शरीर को खीचकर बैठ गए है, लेकिन मन और वचन मे तरगे उठती रहती है। शरीर को खीच लेना बहुत आसान है। शरीर को खीच लेने मे बहुत कठिनाई नही है। शरीर बहुत स्थूल है। उससे भी गहरा वचन है। विचार मे भी तरग न उठे।

लेकिन बहुत-से लोग विचार को भी खींचकर बैठ जाते है। फिर भी मन मे तरग उठती है। मन यानी अचेतन। तो दिनभर याद नही आते, लेकिन रात सपने मे याद आ जाते है। दिनभर तुम सम्हाले रहते हो। कोई विचार नही उठने देते। लेकिन स्वप्न मे विचार आ जाते है। तो भी, दुष्प्रवृत्ति हो गई। तो भी, तुम च्युत हुए। इन सबसे धीरपुरुष अपने को खीचता रहता है।

'तू महासागर को तो पार कर गया है, अब तट के निकट पहुचकर क्यो खड़ा है? उसे पार करने मे शीघ्रता कर हे गौतम, क्षणभर का भी प्रमाद मतकर।'

यह तीसरा सूत्र है आज के लिए। यह महावीर ने अपने महानिर्वाण के क्षणभर पहले कहा था। यह अपने पट्ट शिष्य गौतम के लिये कहा था।

गौतम महावीर का प्रथम गणधर है—उनका सबसे ज्यादा निकट का शिष्य। लेकिन विडबना भाग्य की, कि वह आया था सबसे पहले, लेकिन मुक्ति का स्वाद न ले सका। वह महावीर के पास वर्षो रहा, फिर भी उस परम दशा को न पहुच सका, जिसको हम कैवल्य कहे, समाधि कहे। मन मिट न सका। और उसने कुछ छोड़ा हो करने मे, ऐसा भी नहीं है। उसने सब किया जो महावीर ने कहा। लेकिन एक छोटा-सा राग पैदा हो गया—वह राग था महावीर के प्रति। वह राग था महावीर के चरणो का। उतने ही राग ने रोक लिया। एक प्रेम लग गया महावीर से। महावीर के बिना उसे तकलीफ होने लगी। दिन को भी कहीं जाता तो बस महावीर की ही याद आती रहती। महावीर ने उसे कई बार कहा कि तूने सब छोड़ दिया, अब मुझे क्यो पकड लिया है? क्योकि असली सवाल छोड़ने का नहीं—असली सवाल तो पकड ही छोड़ देने का है।

तुमने कुछ पकड़ा, किसी ने कुछ और पकड़ा, किसी ने कुछ और पकड़ा—लेकिन पकड़ तो जारी रहती है। किसी ने धन पकड़ा, किसी ने धर्म पकड़ा। किसी ने पत्नी पकड़ी, किसी ने गुरु पकड़ा—लेकिन पकड तो जारी रहती है।

और महावीर बडे कठोर है इस दृष्टि से। क्योकि उनका पूरा राग से ही विरोध है। वह पूरा रास्ता ही वीतराग का है। तो यह गौतम सब छोड़ आया। पत्नी होगी, बच्चे होगे, घर-द्वार होगा, मित्र-परिजन होगे, धन-सपत्ति होगी, पद-प्रतिष्ठा होगी—सब छोड आया। यह बडा पडित था, ब्राह्मण था। इसने सब शास्त्र वेद, उपनिषद, सब छोड़ दिये। लेकिन उस सबको छोड़कर महावीर के चरणो को पकडकर बैठ गया। यह अब महावीर का दीवाना बन गया। तो महावीर उससे बार-बार कहते रहे कि तू मुझे भी छोड़। यह बात ही सुनकर उसको कष्ट होता। यह बात ही कल्पना के बाहर थी महावीर को छोडो। वह सब छोड़ने को तैयार था महावीर के लिए। सब छोड़ा ही महावीर के लिए था। अब यह तो बात जरा ज्यादा हो गई कि महावीर को भी छोड़ो। तो फिर सब छोड़ा ही किसलिए था। वह महावीर के लिए ही छोड़ा था। वह मुक्त न हो सका।

महावीर ने जिस दिन देह छोडी, उसे सुबह ही दूसरे गाव मे उपदेश के लिए भेजा। शायद जानकर ही भेजा हो। क्योकि वह पास रहेगा तो बहुत दुखी होगा। यह मृत्यु उसके सामने, कही उसे विक्षिप्त न कर दे। उसका लगाव बहुत था। फिर पीछे से खबर मिलेगी तो बात आई-गई हो जाएगी। फिर धीरे-धीरे सम्हल जाएगा। आघात मृत्यु का सीधे, महावीर को अपने सामने ही, मरा हुआ देखना, देह से छूट जाना देखना—शायद उसके प्राणो को तोड़ दे, शायद वह सह न पाये। तो उसे दूसरे गाव भेज दिया। जब वह साझ को लौट रहा था दूसरे गाव से तो राहगीरो ने रास्ते मे उससे कहा कि गौतम, तुम्हे कुछ पता है,

महावीर जा चुके। अब तुम कहां जा रहे हो? अब वह सत्पुरुष न रहा।

तो वह वहीं रोने लगा। वहीं छाती पीटकर चिल्लाने लगा। भरी आखो से, टपकते आसुओ से, उसने उन लोगो से पूछा कि 'एक बात मुझे पूछनी है कि यह कैसा हुआ? यह उन्होने कैसा अन्याय किया? जीवनभर मै उनके साथ रहा। तो आज तो कम से कम मुझे बाहर न भेजते, दूर न भेजते। यह उन्होने कौन-सा बदला लिया। एक ही बात पूछनी है मुझे मरते समय मुझे याद किया था? मरने के पहले मेरे लिये कोई इशारा छोड़ा? क्योकि मै तो अभी भी अधेरे मे भटक रहा हू। मेरा क्या होगा? दीया बुझ गया—अब मेरा क्या होगा?' तो उन लोगो ने यह सूत्र महावीर ने गौतम के लिए कहा है, इसलिए गौतम का नाम इस सूत्र मे आता है उन लोगो ने गौतम को कहा, महावीर ने तुझे याद किया था। वे यह सूत्र तेरे लिये छोड़ गए है 'तू महासागर को तो पार कर गया है, अब तट के निकट पहुचकर क्यो खड़ा है? उसे पार करने मे शीघ्रता कर। हे गौतम, क्षणभर का भी प्रमाद मत कर।'

तिण्णो हु सि अण्णव मह, कि पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पार गमित्तए, समय गोयम्! मा पमायए।।

'हे गौतम। तू पूरा भवसागर पार कर गया, सारा ससार छोड दिया, सब तरफ से राग की जड़े उखाड़ ली—और अब तू किनारे को पकडकर क्यो रुका है?'

किनारा यानी महावीर। ऐसा समझो कि तुम उस दूर के किनारे को पाने के लिए सारी नदी पार करते हो, निश्चित ही उस किनारे जाने के लिए ही नदी पार करते हो। फिर इस नदी के सारे कष्ट उठाते हो—तूफान, झझावात, धार के उपद्रव, मृत्यु का डर, डूब जाने का भय—यह सबको तुम पार कर जाते हो। फिर उस दूसरे किनारे को पकड़कर रुक जाते हो। रुके हो नदी मे ही। किनारे को पकड़कर रुके हो। तुम कहते हो, इसी किनारे के लिए तो सारी नदी पार की, वह किनारा छोड़ा, नदी छोड़ी, इतना सघर्ष झेला—अब इस किनारे को न छोड़ेगे।

तो महावीर कहते हैं, यह तो कुछ लाभ न हुआ। रुके तुम अब भी नदी मे हो। अब इस किनारे को भी छोड़ो, बाहर निकलो। अब पार हो गए, नदी छूट गई, किनारे को भी छोड़ो।

तो गुरु का उपयोग दूर के किनारे की तरह है। नदी को पार करने मे निमित्त बना लेना, लेकिन जब नदी पार हो जाए, तो गुरु को पकड़कर मत रुक जाना। महावीर कहते है, क्षणभर का भी प्रमाद मत कर, और इसमे क्षणभर की देर मत कर, आलस्य मत कर—क्योकि समय बीता जाता है, फिर लौटकर न आएगा।

और जो महावीर के जीते-जी न हो सका, वह महावीर की मृत्यु के कारण हो गया। गौतम को वह चोट भारी पडी। किनारा उसने नही छोड़ा, किनारा खुद ही जा चुका था अब। अब पकडने को कुछ था भी नही। जो जीवनभर महावीर के साथ रहकर बोध न हुआ, वह महावीर के मरने के एक दिन बाद गौतम समाधि को उपलब्ध हो गया। उसने जान लिया ससार ही असार नही है, यहा सदगुरु के चरण भी छूट जाते है। यहा सपत्ति ही नही छूटती, सदगुरु भी छूट जाता है। यहा सभी कुछ असार है। यहा अपने मे ही लौट आने मे सार है।

ऐसा समझ कर और तो सब छोड ही चुका था, यह महावीर के प्रति लगाव था, यह भी छूट गया और यह लगाव बिलकुल मानवीय है, समझ मे आता है। महावीर जैसा प्यारा पुरुष हो तो किसे लगाव न हो। गौतम की अडचन समझ मे आती है। महावीर ही कठोर मालूम होते है। गौतम का भाव तो ठीक ही है, समझ मे पडता है। इतना प्यारा पुरुष कभी-कभी होता है। और ऐसे प्यारे पुरुष के पास पकड़ लेने का मन किसके मन मे न होगा। और एकबारगी ऐसा भी होता है कि छोड़ो मोक्ष, छोड़ो बैकुठ—यही चरण काफी है। ऐसा ही गौतम को हुआ होगा। सब ससार छोड़ने की हिम्मत की थी, लेकिन ये चरण न छोड़ सका। लेकिन फिर ये चरण एक दिन छूट गए। जो भी बाहर है, वह छूट ही जाएगा।

इसलिए महावीर कहते है आत्मा मे ही रमण करो। सब तरफ से अपने मे ही लौट आओ। अपने मे ही लीन हो जाओ। उस आत्मलीनता को ही महावीर ने मोक्ष कहा है।

यह जो निमत्रण गौतम के लिए है, यही निमत्रण तुम्हारे लिए भी है।

पोत अगणित इन तरगो ने
डुबाए, मानता मै
पार भी पहुचे बहुत से
बात यह भी जानता मै
कितु होता सत्य यदि यह

भी, सभी जलयान डूबे
पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मै
डूबता मै, किंतु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा
हो युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन
तीर पर कैसे रुकू मै
आज लहरो मे निमत्रण।

महावीर दूर अनत के सागर की लहरो का निमत्रण है। और निमत्रण ही नहीं, उस दूर के सागर तक पहुचने का एक-एक कदम भी स्पष्ट कर गए है। महावीर ने अध्यात्म के विज्ञान मे कुछ भी अधूरा नही छोडा, खाली जगह नहीं है। नक्शा पूरा है। एक-एक इच भूमि को ठीक से माप गए है और जगह-जगह मील के पत्थर खड़े कर गए है।

ये आठ सूत्र सम्यक दर्शन के सध जाए तो सब सध गया। ये आठ सध जाए तो समाधि सध गई, क्योकि इन आठ के सधते ही सारी समस्याए तिरोहित हो जाती है। जो शेष रह जाता है, वही समाधान है।

महावीर के निमत्रण को अनुभव करो। उनकी पुकार को सुनो। ऐसे खाली नाममात्र को जैन होकर बैठे रहने से कुछ भी न होगा। ऐसी नपुसक स्थिति से कुछ लाभ नहीं। उठो। अपने का जगाओ। बहुत बड़ी सभावना तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। खतरा है। इसलिए महावीर कहते है अभय, साहस चाहिए।

खतरा यही है

पोत अगणित इन तरगो ने
डुबाए, मानता मै

—बड़ा है, विराट है सागर। और न मालूम कितने पोत डूब चुके है।

पोत अगणित इन तरगो ने
डुबाए, मानता मै
पार भी पहुचे बहुत से
बात यह भी जानता मै।

लेकिन कुछ है जो पार भी पहुच गए हैं। कोई महावीर, कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई मुहम्मद पार भी पहुच गये है। बहुत-से खो भी गये है। अनत खो गए है।

कहते है, हजार बुलाए जाते तो सौ पहुचते है। सौ जो पहुचते है, उनमे से दस चलते है। और दस चलते है, एक कहीं सिद्धावस्था को उपलब्ध हो पाता है।

किंतु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे
पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मै

लेकिन, अगर यह भी सत्य होता कि जो भी गया, सभी डूब गए, तो भी—

पार जाने की प्रतिज्ञा,
आज बरबस ठानता मै

—क्योकि यहा इस किनारे कुछ भी तो नही है। यहा बचे भी, तो भी तो कुछ बचने जैसा नही है। और सागर मे अगर डूबे भी तो डूबकर भी कुछ मिलता है।

डूबता मै किंतु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा।

तुम तो डूब जाओगे, लेकिन आत्मा उतराएगी। तुम तो डूबोगे तभी आत्मा उतराएगी। तुम तो आत्मा मे पत्थर की तरह हो। तुम्हारी वजह से आत्मा तैर नही पाती, तिर नही पाती।

हो युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन
तीर पर कैसे रुकू मै
आज लहरो मे निमत्रण।

सुनो इस निमत्रण को। करो हिम्मत। चलो थोडे कदम महावीर के साथ। थोड़े ही कदम चलकर तुम पाओगे कि जीवन की रसधार बहने लगेगी। थोडे ही कदम चलकर तुम पाओगे, सपदा करीब आने लगगी। आने लगीं शीतल हवाए—शाति की, मुक्ति की। फिर तुम रुक न पाओगे। फिर तुम्हे कोई भी रोक न सकेगा। थोड़ा लेकिन स्वाद जरूरी है। दो कदम चलो, स्वाद मिल जाए, फिर तुम अपने स्वाद के बल ही चल पड़ोगे।

लाओत्सु ने कहा है, एक कदम तुम उठा लो, फिर फिक्र नही। बस एक कदम तुम न उठाओ तो बड़ी फिक्र है। पहला कदम तुम उठा लो तो बस, दूसरा तुम उठाओगे ही। क्योकि पहले को उठाने मे ही ऐसा रस बरस जाता है, फिर कौन पागल होगा जो

दूसरा कदम न उठाए। और एक-एक कदम चलकर हजारों मील की यात्रा भी अंतत: पूरी हो जाती है। दो कदम तो कोई एकसाथ चल भी नहीं सकता। एक कदम। छोटा कदम। जितनी तुम्हारी सामर्थ्य में आता हो, इतना बड़ा कदम। लेकिन उठाओ। बैठे-बैठे बहुत जन्म खोए—और मत खोओ।

धम्मपद में बुद्ध ने कहा है 'उत्तिट्ठे।' उठो। 'न पमज्जेय्य।' उठो। प्रमाद मत करो। सोये मत रहो। आलसी मत रहो। जो उठता है, वही पाता है। जो सोया रहता, वह सभी कुछ खो देता है।

आज इतना ही।

ओशो एक परिचय

बुद्धत्व की प्रवाहमान धारा मे ओशो एक नया प्रारभ है, वे अतीत की किसी भी धार्मिक परपरा या श्रृखला की कड़ी नही है। ओशो से एक नये युग का शुभारभ होता है और उनके साथ ही समय दो सुस्पष्ट खडो मे विभाजित होता है ओशो पूर्व तथा ओशो पश्चात।

ओशो के आगमन से एक नये मनुष्य का, एक नये जगत का, एक नये युग का सूत्रपात हुआ है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म मे नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति मे नहीं है। ओशो सद्य स्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष है, सर्वथा अनूठे सबुद्ध रहस्यदर्शी है।

मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा गाव मे 11 दिसबर 1931 को जन्मे ओशो का बचपन का नाम रजनीश था। उन्होने जीवन के प्रारभिक काल मे ही एक निर्भीक स्वतत्र आत्मा का परिचय दिया। खतरो से खेलना उन्हे प्रीतिकर था। 100 फीट ऊचे पुल से कूद कर बरसात मे उफनती नदी को तैर कर पार करना उनके लिए साधारण खेल था। युवा ओशो ने अपनी अलौकिक बुद्धि तथा दृढ़ता से पडित-पुरोहितो, मुल्ला-पादरियो, सत-महात्माओ—जो स्वानुभव के बिना ही भीड़ के अगुवा बने बैठे थे—की मूढताओ और पाखडो का पर्दाफाश किया।

21 मार्च 1953 को इक्कीस वर्ष की आयु मे ओशो सबोधि को उपलब्ध हुए। सबोधि के संबध मे वे कहते है 'अब मै किसी भी प्रकार की खोज मे नहीं हू। अस्तित्व ने अपने समस्त द्वार मेरे लिए खोल दिये है।' उन दिनो वे जबलपुर के एक कालेज मे दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी थे। बुद्धत्व घटित होने के पश्चात भी उन्होने अपनी शिक्षा जारी रखी और सन 1957 मे सागर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र मे प्रथम श्रेणी मे प्रथम (गोल्डमेडलिस्ट) रहकर एम ए की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात वे जबलपुर विश्वविद्यालय मे दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। विद्यार्थियो के बीच वे 'आचार्य रजनीश' के नाम से अतिशय लोकप्रिय थे।

विश्वविद्यालय के अपने नौ सालो के अध्यापन-काल के दौरान वे पूरे भारत मे भ्रमण भी करते रहे। प्राय ही 60-70 हजार की सख्या मे उपस्थित होनेवाले श्रोताओ मे वे आध्यात्मिक जन-जागरण की लहर फैला रहे थे। उनकी वाणी मे और उनकी उपस्थिति मे वह जादू था, वह सुगध थी जो किसी पार के लोक से आती है।

सन 1966 मे ओशो ने विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दे दिया ताकि वे ध्यान की कला को और एक नये मनुष्य—जोरबा दि बुद्धा—के अपने जीवनदर्शन को अधिक से अधिक लोगो तक पहुचा सके। 'जोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है जो भौतिक जीवन का पूरा आनद मनाना जानता है, जो मौन होकर ध्यान मे उतरने मे भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनो तरह से समृद्ध है।

सन 1970 मे वे बबई मे रहने के लिए आ गये। अब पश्चिम से सत्य के खोजी भी जो भौतिक समृद्धि से ऊब चुके थे और जीवन के किन्ही और गहरे रहस्यो को जानने और समझने के लिए उत्सुक थे, उन तक पहुचने लगे। ओशो ने उन्हे बताया कि अगला कदम ध्यान है। ध्यान ही जीवन मे सार्थकता

के फूलो के खिलने मे सहयोगी सिद्ध होगा।

इसी वर्ष सितबर मे, मनाली (हिमालय) मे आयोजित अपने एक शिविर मे ओशो ने नव-सन्यास मे दीक्षा देना प्रारभ किया। इसी समय के आसपास वे आचार्य रजनीश से भगवान श्री रजनीश के रूप मे जाने जाने लगे।

सन 1974 मे वे अपने बहुत से सन्यासियो के साथ पूना आ गये जहा 'श्री रजनीश आश्रम' की स्थापना हुई। पूना आने पर उनके प्रभाव का घेरा विश्वव्यापी होने लगा।

श्री रजनीश आश्रम, पूना मे प्रतिदिन अपने प्रवचनो मे ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। कृष्ण, शिव, महावीर, बुद्ध, शाडिल्य, नारद, जीसस के साथ ही साथ भारतीय अध्यात्म आकाश के अनेक सतो—आदि शकराचार्य, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारो प्रवचन उपलब्ध है। जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनो से अस्पर्शित रहा हो। योग, तत्र, ताओ, झेन, हसीद, सूफी जैसी अनेक साधना-पद्धतियो के गूढ रहस्यो पर उन्होने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसख्या-विस्फोट, पर्यावरण, सभावित परमाणु युद्ध का विश्व-सकट जैसे अनेक विषयो पर भी उनकी क्रातिकारी जीवनदृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यो और साधको के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तको के रूप मे प्रकाशित हो चुके है और तीस से अधिक भाषाओ मे अनुवादित हो चुके है। वे कहते है, "मेरा सदेश कोई सिद्धात, कोई चितन नहीं है। मेरा सदेश तो रूपातरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।"

वे दिन मे केवल दो बार बाहर आते रहे—प्रात प्रवचन देने के लिए और सध्या समय सत्य की यात्रा पर निकले हुए साधको को मार्गदर्शन एव नये प्रेमियो को सन्यास-दीक्षा देने के लिए।

वर्ष 1979 मे कट्टरपथी हिदू समुदाय के एक सदस्य द्वारा उनकी हत्या का प्रयास भी उनके एक प्रवचन के दौरान किया गया।

अचानक शारीरिक रूप से बीमार हो जाने से 1981 की वसत ऋतु मे वे मौन मे चले गये। चिकित्सको के परामर्श पर उसी वर्ष उन्हे जून मे अमरीका ले जाया गया। उनके अमरीकी शिष्यो ने ओरेगॅन के मध्य भाग मे 64,000 एकड़ जगह खरीदी जहा उन्होने ओशो को रहने के लिए आमत्रित किया। धीरे-धीरे यह जगह एक फूलते-फलते शहर मे परिवर्तित होती गई। वहा लगभग 5000 प्रेमी मित्र मिल-जुलकर अपने सद्‌गुरु के सान्निध्य मे आनद और उत्सव के वातावरण मे एक अनूठे नगर के सृजन को यथार्थ रूप दे रहे थे।

जैसे अचानक एक दिन ओशो मौन हो गये थे वैसे ही अचानक अक्टूबर 1984 मे उन्होने पुन प्रवचन देना प्रारभ कर दिया।

मध्य सितबर 1985 मे ओशो की सचिव के रजनीशपुरम छोड़कर चले जाने के बाद उसके अपराधो की खबरे ओशो तक पहुची। उसके अपराधपूर्ण कृत्यो के सबध मे बताने के लिए एक विश्व पत्रकार-सम्मेलन बुलाया गया, जिसमे ओशो ने स्वय प्रशासन-अधिकारियो से अपनी सचिव को गिरफ्तार करने को कहा। लेकिन अधिकारियो की खोजबीन का उद्देश्य कम्यून को नष्ट करना था, न कि सचिव के अपराधपूर्ण कृत्यो का पता लगाना। प्रारभ से ही कम्यून के इस प्रयोग को नष्ट करने के लिए अमरीका की सघीय, राज्य और स्थानीय सरकारे हर सभव प्रयास कर रही थी। यह उनके लिए एक अच्छा मौका था।

अक्तूबर 1985 मे अमरीकी सरकार ने ओशो पर आप्रवास-नियमो के उल्लघन के 35 मनगढत आरोप लगाए। बिना किसी गिरफ्तारी-वारट के ओशो को बदूको की नोक पर हिरासत मे ले लिया गया।

12 दिनो तक उनकी जमानत स्वीकार नहीं की गयी और उनके हाथ-पैर मे हथकडी व बेडिया डालकर उन्हे एक जेल से दूसरी जेल ले जाया जाता रहा। जगह-जगह घुमाते हुए उन्हे पोर्टलैड (ओरेगॅन) ले जाया गया। सामान्यत जो यात्रा पांच घटे की है, वह आठ दिन मे पूरी की गयी। जेल मे उनके शरीर के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया और यही सघीय सरकार के अधिकारियो ने उन्हे 'थेलियम' नामक धीमे असरवाला जहर दिया।

14 नवबर 1985 को अमरीका छोड कर ओशो भारत लौट आये। यहा की तत्कालीन सरकार ने उन्हे विश्व से अलग-थलग कर देने का पूरा प्रयास किया। उनकी देखभाल करनेवाले उनके गैर-भारतीय शिष्यो के वीसा रद्द कर दिये गये,

उन्हे मिलने के लिए आनेवाले पत्रकारो और उनके शिष्यो को वीसा देने से इनकार किया गया। तब ओशो नेपाल चले गये। लेकिन उन्हे नेपाल मे भी अधिक समय तक रुकने की अनुमति नही दी गयी।

फरवरी 1986 मे वे विश्व-भ्रमण के लिए निकले जिसकी शुरुआत उन्होने ग्रीस से की। लेकिन अमरीका के दबाव के अतर्गत 21 देशो ने या तो उन्हे देश से निष्कासित किया या फिर देश मे प्रवेश की अनुमति ही नहीं दी। इन तथाकथित स्वतत्र लोकतात्रिक देशो मे ग्रीस, इटली, स्विट्जरलैड, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, हालैड, कनाडा, जमाइका और स्पेन प्रमुख थे।

ओशो जुलाई 1986 मे बम्बई और जनवरी 1987 मे पूना मे अपने आश्रम लौटे, जो अब ओशो कम्यून इटरनेशनल के नाम से जाना जाता है। यहा वे पुन अपनी क्रातिकारी शैली मे अपने प्रवचनो के आग्नेय बाणो से पडित-पुरोहितो और राजनेताओ के पाखडो व मानवता के प्रति उनके षड्यत्रो का पर्दाफाश करने लगे।

इसी बीच भारत सहित सारी दुनिया के बुद्धिजीवी वर्ग व समाचार माध्यमो ने ओशो के प्रति गैर-पक्षपातपूर्ण व विधायक चितन का रुख अपनाया। छोटे-बड़े सभी प्रकार के समाचारपत्रो व पत्रिकाओ मे अक्सर उनके अमृत-वचन अथवा उनके सबध मे लेख व समाचार प्रकाशित होने लगे। देश के अधिकाश प्रतिष्ठित सगीतज्ञ, नर्तक, साहित्यकार, कवि व शायर ओशो कम्यून इटरनेशनल मे अक्सर आने लगे। मनुष्य की चिर-आकाक्षित ऊटोपिया का सपना साकार देखकर उन्हे अपनी ही आखो पर विश्वास न होता।

26 दिसबर 1988 को ओशो ने अपने नाम के आगे से 'भगवान' सबोधन हटा दिया। 27 फरवरी 1989 को ओशो कम्यून इटरनेशनल के बुद्ध सभागार मे प्रवचन के दौरान उनके 10,000 शिष्यो व प्रेमियो ने एकमत से अपने प्यारे सद्गुरु को 'ओशो' नाम से पुकारने का निर्णय लिया।

अक्तूबर 1985 मे अमरीका की रीगन सरकार द्वारा ओशो को थेलियम नामक धीमा असर करने वाला जहर दिये जाने के कारण एव उनके शरीर को प्राणघातक रेडिएशन से गुजारे जाने के कारण उनका शरीर तब से निरतर अस्वस्थ रहने लगा था और भीतर से क्षीण होता चला गया, जिसके बावजूद वे ओशो कम्यून इटरनेशनल, पूना के गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम मे 10 अप्रैल 1989 तक प्रतिदिन सध्या दस हजार शिष्यो, खोजियो और प्रेमियो की सभा मे प्रवचन देते रहे और उन्हे ध्यान मे डुबाते रहे।

17 सितबर 1989 से गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम मे केवल आधे घटे के लिए आकर ओशो मौन दर्शन-सत्सग के सगीत और मौन मे सबको डुबाते रहे। यह बैठक "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" कहलाती है। ओशो 16 जनवरी 1990 तक प्रतिदिन सध्या सात बजे व्हाइट रोब ब्रदरहुड की सभा मे उपस्थित होते रहे।

17 जनवरी को वे सभा मे केवल नमस्कार करके वापस चले गए। 18 जनवरी को व्हाइट रोब ब्रदरहुड की साध्य-सभा मे उनके निजी चिकित्सक स्वामी अमृतो ने सूचना दी कि ओशो के शरीर मे इतना दर्द है कि वे हमारे बीच नही आ सकते, लेकिन वे अपने कमरे मे ही सात बजे से हमारे साथ ध्यान मे बैठेगे। दूसरे दिन 19 जनवरी 1990 की सध्या-सभा मे घोषणा की गई कि ओशो अपनी देह छोडकर पाच बजे अपराह्न को महाप्रयाण कर गए है। ओशो की इच्छा के अनुरूप उसी सध्या उनका शरीर गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम मे दस मिनट के लिए ला कर रखा गया। दस हजार शिष्यो और प्रेमियो ने उनकी आखिरी विदाई का उत्सव सगीत-नृत्य, भावातिरेक और मौन मे मनाया। फिर उनका शरीर दाहक्रिया के लिए ले जाया गया।

21 जनवरी 1990 की पूर्वाह्न मे उनके अस्थि-फूल का कलश महोत्सवपूर्वक कम्यून मे ला कर च्वाग्त्सू हॉल मे निर्मित एक सगमरमर की समाधि मे स्थापित किया गया।

ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरो मे अकित है

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec 11 1931 – Jan 19 1990

ओशो का हिंदी साहित्य

उपनिषद
सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत (विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण
गीता-दर्शन (आठ भागो मे अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

बुद्ध
एस धम्मो सनतनो (बारह भागो मे)

अष्टावक्र
महागीता (छह भागो मे)

महावीर
महावीर-वाणी (दो भागो मे)
महावीर-वाणी (पुस्तिका)
जिन-सूत्र (दो भागो मे)
महावीर या महाविनाश
महावीर मेरी दृष्टि मे
ज्यो की त्यो धरि दीन्ही चदरिया

लाओत्से
ताओ उपनिषद (छह भागो मे)

कबीर
सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मै पूरा पाया
मगन भया रसि लागा
घूघट के पट खोल
न कानो सुना न आखो देखा (कबीर व फरीद)

मीरा
पद घुघरू बाध
झुक आई बदरिया सावन की

पलटू
अजहू चेत गवार
सपना यह ससार
काहे होत अधीर

दादू
सबै सयाने एक मत
पिव पिव लागी प्यास

शांडिल्य
अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागो मे)

जगजीवन
नाम सुमिर मन बावरे
अरी, मै तो नाम के रग छकी

सुंदरदास
हरि बोलौ हरि बोल
ज्योति से ज्योति जले

धरमदास
जस पनिहार धरे सिर गागर
का सोवै दिन रैन

मलूकदास
कन थोरे काकर घने
रामदुवारे जो मरे

दरिया
कानो सुनी सो झूठ सब
अमी झरत बिगसत कवल

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानिया
बिन बाती बिन तेल
सहज समाधि भली
दीया तले अधेरा

अन्य रहस्यदर्शी
भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशकराचार्य)
एक ओकार सतनाम (नानक)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
नही साझ नही भोर (चरणदास)
सतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मदिर दियना बार (यारी)
दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियादास बिहारवाले)
प्रेम-रग-रस ओढ चदरिया (दूलन)
हसा तो मोती चुगै (लाल)
गुरु-परताप साध की सगति (भीखा)
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)
झरत दसहु दिस मोती (गुलाल)
जरथुस्त्र नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर
नहि राम बिन ठाव
प्रेम-पथ ऐसो कठिन
उत्सव आमार जाति, आनद आमार गोत्र
मृत्योर्मा अमृत गमय
प्रीतम छवि नैनन बसी
रहिमन धागा प्रेम का
उडियो पख पसार
सुमिरन मेरा हरि करै
पिय को खोजन मै चली
साहेब मिल साहेब भये
जो बोलै तो हरिकथा
बहुरि न ऐसा दाव
ज्यू था त्यू ठहराया
ज्यू मछली बिन नीर
दीपक बारा नाम का
अनहद मे बिसराम

लगन महूरत झूठ सब
सहज आसिकी नाहि
पीवत रामरस लगी खुमारी
रामनाम जान्यो नहीं
साच साच सो साच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे है घाट
कोपले फिर फूट आई
फिर पत्तो की पाजेब बजी
फिर अमरित की बूद पडी
चेति सकै तो चेति
क्या सोवै तू बावरी
एक एक कदम
चल हसा उस देस
कहा कहू उस देस की
पथ प्रेम को अटपटो
मूलभूत मानवीय अधिकार
नया मनुष्य भविष्य की एकमात्र आशा
सत्यम् शिवम् सुदरम्
रसो वै स
सच्चिदानद
पडित-पुरोहित और राजनेता मानव आत्मा के शोषक
ॐ मणि पद्मे हुम्
ॐ शाति शाति शाति
हरि ॐ तत्सत्
एक महान चुनौती मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य
मैं धार्मिकता सिखाता हू, धर्म नही

तंत्र
सभोग से समाधि की ओर
तत्र-सूत्र (पाच भागो मे)

पत्र-संकलन
क्राति-बीज
पथ के प्रदीप

अतर्वीणा
प्रेम की झील मे अनुग्रह के फूल

बोध-कथा
मिट्टी के दीये

ध्यान, साधना, योग
ध्यानयोग प्रथम और अतिम मुक्ति
रजनीश ध्यान योग
हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्
नेति-नेति
मै कहता आखन देखी
पतजलि योग-सूत्र (दो भागो मे)

साधना-शिविर
साधना-पथ
ध्यान-सूत्र
जीवन ही है प्रभु
माटी कहै कुम्हार सू
मै मृत्यु सिखाता हू
जिन खोजा तिन पाइया
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याए
देख कबीरा रोया
स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का
शिक्षा मे क्राति
नये समाज की खोज

ओशो के संबंध मे
भगवान श्री रजनीश ईसा मसीह के पश्चात सर्वाधिक विद्रोही व्यक्ति